१६ माघ सं० २०२९ वि०, दयानन्दाब्द १४८,
तदनुसार २८ जनवरी १९७३ रविवार
सृष्टि सं०-१९६०८५३०७२

वर्ष ५ — वार्षिक शुल्क स्वदेश में १०) रुपये
अंक ९ — ,, ,, विदेश में २०) रुपये
एक प्रति का मूल्य ००-२० पैसे

सम्पादक—जगदेवसिंह सिद्धान्ती शास्त्री, पूर्व लोकसभा सदस्य (फोन ५१२१६३)

वेदमन्त्रार्थ-प्रवचन

अथ वायुविद्युतौ कीदृशावित्युपदिश्यते ॥

अब पवन और बिजुली कैसे हैं यह विषय अगले मन्त्र में कहा गया है।

प्र चर्षणिभ्यः पृतनाहवेषु प्र पृथिव्या रिरिचाथे दिवश्च ।
प्र सिन्धुभ्यः प्र गिरिभ्यो महित्वा प्रेन्द्राग्नी विश्वा भुवनात्यन्या ॥

ऋ० १.१०९.६

पदार्थः—(प्र) प्रकृष्टार्थे (चर्षणिभ्यः) मनुष्येभ्यः (पृतनाहवेषु) सेनाभिः प्रवृत्तेषु युद्धेषु (प्र) (पृथिव्याः) भूमेः (रिरिचाथे) अतिरिक्तौ भवतः (दिवः) सूर्यात् (च) (प्र) (सिन्धुभ्यः) समुद्रेभ्यः (प्र) (गिरिभ्यः) शैलेभ्यः (महित्वा) प्रशंसय्य (प्र) (इन्द्राग्नी) वायु विद्युतौ (विश्वा) अखिला (भुवना) भुवनानि लोकान् (अति) (अन्या) अन्यानि ॥

अन्वयः—इन्द्राग्नी अन्या विश्वा भुवना अन्यान् सर्वांल्लोकान् महित्वा पृतनाहवेषु चर्षणिभ्यः प्रपृथिव्या प्रसिन्धुभ्यः प्रगिरिभ्यः प्रदिवश्च प्रातिरिरिचाथे प्रातिरिक्तौ भवतः ॥

भावार्थः—अत्र वाचक-लुप्तोपमालङ्कारः। नहि वायुविद्युद्भ्यां दृढो महान् कश्चिदपि लोको वेऽर्महति कुत एतौ सर्वांल्लोकानभिव्याप्य स्थितावतः ॥

भाषार्थः—(इन्द्राग्नी) वायु और बिजुली (अन्या) (विश्वा) (भवना) और समस्त लोकों को (महित्वा) प्रशसित कराके (पृतना हवेषु) सेनाओं से प्रवृत्त होते हुए युद्धों में (चर्षणिभ्यः) मनुष्यों से (प्र, पृथिव्याः) अच्छे प्रकार पृथिवी वा (प्र, सिन्धुभ्यः) अच्छे प्रकार समुद्रों वा (प्र, गिरिभ्यः) अच्छे प्रकार पर्वतों वा (प्र, दिवश्च) और अच्छे प्रकार सूर्य से (प्र, अति, रिरिचाथे) अत्यन्त बढकर प्रतीत होते अर्थात् कला यन्त्रों के सहाय से बढ़कर काम देते हैं ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। पवन और बिजुली के समान बड़ा कोई लोक नही होने योग्य है क्योंकि ये दोनों सब लोकों को व्याप्त होकर ठहरे हुए हैं ॥

—(ऋषि दयानन्दभाष्य)

सत्यार्थप्रकाश (१० वाँ समुल्लास)

अथ दशम समुल्लासारम्भः ॥

अथाऽऽचाराऽनाचारभक्ष्याऽभक्ष्यविषयान् व्याख्यास्यामः ।

अब जो धर्मयुक्त कामों का आचरण, सुशीलता, सत्पुरुषों का संग और सद्विद्या के ग्रहण में रुचि आदि आचार और इनसे विपरीत अनाचार कहाता है, उनको लिखते हैं :—

विद्वद्भिः सेवितः सद्भिर्नित्यमद्वेषरागिभिः ।
हृदयेनाभ्यनुज्ञातो यो धर्मस्तन्निबोधत ॥ मनु० २-१

मनुष्यों को सदा इस बात पर ध्यान रखना चाहिये कि जिसका सेवन रागद्वेष रहित विद्वान् लोग नित्य करे जिसको हृदय अर्थात् आत्मा से सत्य कर्त्तव्य जाने वही धर्म माननीय और करणीय है ॥१॥

कामात्मता न प्रशस्ता न चैवेहास्त्यकामता ।
काम्यो हि वेदाधिगमः कर्मयोगश्च वैदिकः ॥ मनु० २ २

क्योंकि इस ससार में अत्यन्त कामात्मता और निष्कामता श्रेष्ठ नही है वेदार्थ विज्ञान और वेदोक्त कर्म ये सब कामना ही से सिद्ध होते हैं ॥२॥

सङ्कल्पमूलः कामो वै यज्ञाः सङ्कल्पसम्भवः ।
व्रतानि यमधर्माश्च सर्वे सङ्कल्पजाः स्मृताः ॥ मनु० २.३

जो कोई कहे कि मैं निरिच्छ और निष्काम हूं वा हो जाऊ तो वह कभी नही हो सकता क्योंकि सब काम अर्थात् यज्ञ, सत्यभाषणादि व्रत, यम, नियमरूपी धर्म आदि सङ्कल्प ही से बनते हैं ॥३॥

अकामस्य क्रिया काचिद् दृश्यते नेह कर्हिचित् ।
यद्यद्धि कुरुते किञ्चित् तत्तत्कामस्य चेष्टितम् ॥ मनु० २.४

क्योंकि जो जो हस्त, पाद, नेत्र, मन आदि चलाये जाते हैं वे सब कामना ही से चलते हैं जो इच्छा न हो तो आंख का खोलना और मींचना भी नही हो सकता ॥४॥

—(ऋषि दयानन्द)

मुक्तिविषयः

क्रमागत—(प्रश्न) वह मुक्त जीव सब सृष्टि में घूमता है अथवा कहीं एक ही ठिकाने बैठा रहता है। (उत्तर) (य एते ब्रह्मलोके०) जो मुक्त पुरुष होते हैं वे ब्रह्मलोक अर्थात् परमेश्वर को प्राप्त होके और सबके आत्मा परमेश्वर की उपासना करते हुए उसी के आश्रय से रहते हैं। इसी कारण से उनका आना जाना सब लोकलोकान्तरो में होता है, उनके लिये कही रुकावट नही रहती, और उनके सब काम पूर्ण हो जाते हैं, कोई काम अपूर्ण नही रहता। इसलिये जो मनुष्य पूर्वोक्त रीति से परमेश्वर को सबका आत्मा जानके उसकी उपासना करता है वह अपनी सम्पूर्ण कामनाओं को प्राप्त होता है। यह बात प्रजापति परमेश्वर सब जीवों के लिये वेदों में बताता ॥ पूर्व प्रसग का अभिप्राय यह है कि मोक्ष की इच्छा सब जीवों को करनी चाहिये ॥६॥ छान्दो० ८ सां० १२॥ (यदन्तरा०) जो कि आत्मा का भी अन्तर्यामी है उसी को ब्रह्म कहते हैं और वही अमृत अर्थात् मोक्ष स्वरूप है और जैसे वह सबका अन्तर्यामी है वैसा उसका अन्तर्यामी कोई भी नही, किन्तु वह अपना अन्तर्यामी आप ही है। ऐसे प्रजानाथ परमेश्वर के व्याप्ति रूप सभी स्थान को मैं प्राप्त होऊ और इस ससार में जो पूर्ण विद्वान् ब्राह्मण हैं उनके बीच में (यशः) अर्थात् कीर्त्ति को प्राप्त होऊ, तथा (राज्ञाम्) क्षत्रियों (विशाम्) अर्थात् व्यवहार में चतुर लोगों के बीच यशस्वी होऊ। हे परमेश्वर! मैं कीर्त्तियों का भी कीर्त्ति रूप होके आपको प्राप्त हुआ चाहता हूं। आप भी कृपा करके मुझको सदा अपने समीप रखिये ॥७॥

—छान्दो० म० ८. ख० १४॥

—(ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका)

वर्षा और वैदिक वाङ्मय

(प्रा० भद्रसेन प्रकाशन मन्त्री, संस्कृत विश्व परिषद् (पं०) साधु आश्रम, होशियारपुर—पंजाब)

आज भारत के राजस्थान, महाराष्ट्र आदि अनेक प्रदेशों के बहुत सारे भाग में अकाल की काली छाया छाई हुई है। जो कि स्वाभाविक रूप से विवेकशीलों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर रही है। इस अकाल का एक मात्र कारण वर्षा का न होना तथा अपर्याप्त वर्षा ही है। जीवन की मौलिक आवश्यकताओं में जल का दूसरा स्थान है तथा जल ही खाद्य आदि पदार्थों के उत्पादन का एक आवश्यक अवलम्ब है। अतः जल के अभाव में होने वाले भयंकर परिणाम की सहजतया कल्पना की जा सकती है।

अकाल की इन काली घटाओं में स्वाभाविक रूप में जल प्राप्ति की ओर सब का ध्यान केन्द्रित होता है जिस की उपलब्धि का भारत में आज भी सबसे बड़ा सहारा वर्षा ही है। वर्षा के साधनों पर जब हम विचार करते हैं तो हमारा ध्यान वैदिक वाङ्मय की ओर जाता है, क्योंकि वहां वृष्टि यज्ञ को वर्षा का अमोघ साधन बताया है।

वैदिक वाङ्मय में जीवन के वैयक्तिक एवं सामाजिक पक्षों के विविध विषयों, तत्त्वों, रहस्यों, अनुभूतियों का जहां वर्णन आया है, "वहीं इसमें वर्षा की प्राप्ति के लिए वृष्टि यज्ञ का दावे का साथ वर्णन किया गया है"। वैदिक वाङ्मय का कोई विरला ही ऐसा ग्रन्थ होगा, जिसमें इच्छानुसार वर्षा की प्राप्ति के लिए वृष्टि यज्ञ का विश्वास के साथ वर्णन न हो। केवल वृष्टि यज्ञ का नाम ही नहीं आता, अपितु अनेकत्र उसकी प्रक्रिया का भी वर्णन है।

वेद ने वैदिक राष्ट्र का स्वरूप बताते हुए इस सम्बन्ध में बड़े ही मार्मिक शब्दों में कहा है कि 'निकामे निकामे नः पर्जन्यो अभिवर्षतु' यजु० २२,२ हमारी इच्छा के अनुसार बादल वर्षा करें। इस मन्त्रांश से यह भी स्पष्ट होता है कि उत्तम राष्ट्र के लिए सर्व व्यापी, प्रभूतमात्रा में जल की व्यवस्था होना एक आवश्यक बात है।

शन्नो वातः पवतां, शन्नस्तपतु सूर्यः।
शन्नः कनिक्रदद् देवः पर्जन्यो अभिवर्षतु॥ यजु० ३६,१०

हमारे लिये वर्षा के अनुकूल कल्याणकारी वायुएं बहें, सूर्य खूब तपे, जिससे यह गर्जता हुआ पर्जन्य देव हमारे लिये खूब वर्षा वर्षाये।

समुत्पतन्तु प्रदिशो नभस्वतीः समभ्राणि वातजूतानि यन्तु।
महऋषभस्य नदतो नभस्वतो वाश्रा आपःपृथिवीं तर्पयन्तु॥ ४,१५,१

अथर्ववेद का यह सूक्त और ऋग्वेद के १०,९८ जैसे सूक्त स्पष्ट रूप से वृष्टि यज्ञ द्वारा वर्षा होने के रहस्य को प्रकट करते हैं। वैदिक वाङ्मय के मूल स्रोत वेद में वृष्टि यज्ञ के सम्बन्ध में इस प्रकार की अनेक महत्वपूर्ण घोषणायें मिलती हैं

एक दो स्थल पर ही नहीं अपितु सैंकडों मन्त्रों में वर्षा सम्बन्धी प्रार्थनाओं का वर्णन मिलता है अनेक वर्षा विषयक सूक्त हैं। जिन में वर्षा उसके तत्त्वों एवं प्रक्रिया का सजीव वर्णन है। इतने अधिक वर्षा के इन वर्णनों को सामान्य कह कर टाला नहीं जा सकता, अपितु ये सारे वणन अपने आप में बड़े महत्वपूर्ण ढंग से आये हैं।

वर्षा के सम्बन्ध में वेद के इन विस्तृत वर्णनों को देखकर ही ब्राह्मण ग्रन्थों में उसको विस्तार के साथ दर्शाने का अनेक स्थलों पर प्रयास किया गया है। इस सम्बन्ध में करीरी इष्टि आदि प्रयास विश्वास पूर्ण अनुभव और परीक्षण ही कहे जा सकते हैं।

वेद को समझाने के लिये वेदांगों मे निरुक्त का अपना विशेष स्थान है। इस में देवापि द्वारा शन्तनु के लिये वृष्टि यज्ञ से वर्षा कराने का आख्यान मिलता है। जिस में ऋ १०, ९८ सूक्त के दो मन्त्रों को इसी दृष्टि से सुन्दर ढंग से स्पष्ट किया गया है। निरुक्त कार महर्षि यास्क ने मन्त्रों के अपने आधिदैविक व्याख्यान में वर्षा की प्रक्रिया का सजीव वर्णन किया है। निरुक्त का वृत्र शब्द का विवेचन कितना रहस्य पूर्ण है। "तत्को वृत्रः? मेघ इति नैरुक्ताः। अपांच ज्योतिषश्च मिश्रीभावकर्मणो वर्षकर्म जायते। तत्रोपमार्थेन युद्धवर्णा भवन्ति। अहिवत्तु खलु मन्त्रवर्णा ब्राह्मण वादाश्च। विवृद्धया शरीरस्य स्रोतांसि निवारयां श्चाकार। तस्मिन् हते प्रस्यन्दिर आपः। २,५ वृत्र शब्द का क्या अभिप्राय है? निरुक्त प्रक्रिया की दृष्टि से इसका अर्थ मेघ-बादल है जलों और विद्युत् अग्नि के मेल से वर्षा होती है। युद्ध वर्णन की तरह ही वृष्टि प्रक्रिया का वर्णन मिलता है। मन्त्रों और ब्राह्मण ग्रन्थों में मेघ के रूप में भी वृत्र का वर्णन आता है। यह अपने शरीर को फैला करके जलों को रोक लेता है और तब इसके नष्ट होने पर वर्षा रूप में जल वर्षते हैं।

शक्वरी शब्द की निरुक्ति के अवसर पर किसी ब्राह्मण ग्रन्थ के वाक्य को उद्धृत करते हुए निरुक्तकार ने लिखा है 'शक्वर्य ऋचः शक्नोतेः। तद् यदाभिर्वृत्रमशकद् हन्तुं तच्छक्वरीणां शक्वरीत्वमिति विज्ञायते १,३। अपने कार्य के सम्पादन में सफल होने के कारण इन विशेष ऋचाओं का नाम शक्वरी है, क्योंकि इनके द्वारा वृत्र मेघ का नाश होता है। अर्थात् इन विशेष ऋचाओं के उच्चारण और तदनुसारी प्रक्रिया के पालन से वर्षा होती है। इस शक्वरी के विवेचन में तो बिल्कुल ही स्पष्ट रूप से वृष्टि यज्ञ की भावना को पुष्ट किया गया है।

इस प्रकार वैदिक साहित्य में बड़े विश्वास के साथ वृष्टि यज्ञ से होने वाली वर्षा का वर्णन किया गया है। इसी आधार पर संस्कृत के अन्य ग्रन्थों में भी इसका सामान्य निर्देश मिलता है। वैदिक वाङ्मय की भावना को सामने रखकर ही मनुस्मृति और गीता में कहा है—

अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते। आदित्याज्जायते वृष्टिः—
मनु० ३, ७६॥

अग्नि में यज्ञ प्रक्रिया की विधि के अनुसार दी हुई आहुति सूर्य को प्राप्त होती है, पुनः वह सूर्य के सहयोग से वर्षा में सहायक बनती है।

अन्नाद् भवन्ति भूतानि, पर्जन्यादन्नसम्भवः।
यज्ञाद् भवति पर्जन्यः, यज्ञः कर्म समुद् भवः॥ गीता ३, १५॥

अन्न से प्राणियों का पालन पोषण होता है, और वर्षा से सुन्दर तथा पर्याप्त मात्रा में अन्न उत्पन्न होता है। वर्षा वृष्टि यज्ञ से होती है अर्थात् यज्ञ वृष्टि करने वाले बादल के निर्माण और वर्षाने में सहयोग देता है।

इस प्रकार संस्कृत साहित्य के वैदिक वाङ्मय में वृष्टि यज्ञ से इच्छानुसार वर्षा करने की विश्वासपूर्ण भावना को देखकर यह एक स्वाभाविक प्रश्न उठता है कि ऐसे अमोघ साधन के होने पर भी हमारे यहां अकाल क्यों? संस्कृत और यज्ञ प्रेमी अपने इस अमोघ साधन को क्यों नहीं वर्तते तथा इसकी सत्यता को प्रमाणित कर जनता के दुःख को दूर क्यों नहीं करते? एक तरफ तो इतना भयंकर अकाल है और दूसरी तरफ ऐसे अमोघ साधनों का वर्णन है। यदि इस विकट समय में उसका प्रयोग नहीं किया गया तो पुनः कब किया जायेगा? वस्तुतः हथियार तो वह है जो मौके पर काम आये, अन्यथा उसका लाभ क्या?

यह बात भी नहीं है कि पुराने समय में ऐसे यज्ञ करने वाले हों और आज ऐसे विद्वानों के दर्शन न होते हों। श्री वीरसेन जी वेदश्रमी—इन्दौर के अनेक लेख पत्रिकाओं में अपने सफल परीक्षणों के सम्बन्ध में प्रकाशित हुए हैं। स्वा० विद्यानन्द जी विदेह की भी सविता—अजमेर में इसी सम्बन्ध में लेखमाला प्रकाशित हुई थी।

जब वृष्टियज्ञ से इच्छानुसार वर्षा का वर्णन करने वाला साहित्य विद्यमान है और उस प्रक्रिया को दावे के साथ पूर्ण करने वाले सुयोग्य विद्वान् भी विद्यमान हैं, तो फिर वर्षा का अकाल क्यों है? इसको अब चरितार्थ नहीं किया जाएगा तो पुनः कब?

संस्कृत के प्रति इतना लगाव होने पर भी आज को इन अकाल की काली घटनाओं को हटाने के लिये संस्कृत साहित्य के बताये हुए वृष्टियज्ञ के उपाय को क्यों नहीं बर्ता जाता। और वृष्टि यज्ञ की सफलता को दर्शाकर अपने साहित्य की सत्यता को पुनः कब सिद्ध किया जायेगा? क्या कोई संस्कृत प्रेमी सज्जन, देवस्थल या ट्रस्ट के अधिकारीगण इस क्षेत्र में आगे आकर संस्कृत साहित्य के वृष्टियज्ञ को कराकर गौरव को प्राप्त करेगा?

श्री वीरसेन जी वेदश्रमी तथा स्वा० विद्यानन्द जी एक दो हजार में ही सफल वृष्टियज्ञ करने का विश्वास दिलवाते हैं। यह भी बात नहीं कि संस्कृत प्रेमियों के पास धन की कमी हो, क्योंकि उनके अनेक देवालयों की प्रतिदिन की आय हजारों है। देवालयों के अधिकारी अपने धर्म के इस महत्त्वपूर्ण अंग यज्ञ का आयोजन कर अपने देवालयों के भक्तों का दुःख दूर करने में सहयोग देंगे, वहां अपने यज्ञ की सफलता को चरितार्थ करेंगे। यह एक दो हजार का व्यय उनके लिये बहुत साधारण सी बात है।

वस्तुतः किसी की सच्चाई विपत्ति काल में ही सफल होने पर प्रमाणित होती है। आज तो विज्ञान के युग में हर बात को अनुभवों और परीक्षणों मे दर्शाकर ही प्रमाणित किया जा सकता है। पुनः इस दावे को चरितार्थ करने वालों को मौका क्यों नहीं दिया जाता? क्या संस्कृत प्रेमी और धर्म स्थानों के अधिकारी इस चुनौती को स्वीकार कर अकाल को दूर करने के लिये अपने शास्त्रों के अमोघ साधन वृष्टियज्ञ को चरितार्थ करने के लिये आगे आयेंगे? जिससे संस्कृत साहित्य [के वृष्टियज्ञ] की सच्चाई प्रमाणित हो सके? संस्कृत प्रेमियों को अवश्य ही आगे आना चाहिये। ●

गणतन्त्र और जनतन्त्रवाद

हमारा राष्ट्र जनतन्त्रवादी देश है। इसका गणतन्त्र दिवस प्रतिवर्ष २६ जनवरी को समारोहपूर्वक मनाया जाता है।

राष्ट्र का प्रतिनिधित्व वयस्क मताधिकार के रूप में जनतन्त्र के आधार पर माना गया है। यह मौलिक निर्वाचन प्रणाली है। प्रतिनिधित्व के पश्चात् गणतन्त्र का कार्य आरम्भ होता है। वर्तमान रूप में गणतन्त्र प्रणाली राज्यों के आधार पर बनाई गई है। यद्यपि इस रीति में आपत्तिजनक कुछ बात नहीं है। परन्तु गण शब्द का एक अन्य पृथक् रूप भी है। गण का दूसरा अर्थ श्रेणी=पेशा=वर्ग भी है। अर्थात् किसान, मजदूर, उद्योग, व्यापार, शिक्षा, सेना, पुलिस और अन्य अनेक इनके अवान्तर विभाग भी हैं। वर्तमान संविधान के अनुसार जनता द्वारा प्रतिनिधि चुने जाते हैं। इस प्रणाली में एक दोष यह है कि निर्वाचन में वर्ग विभाग को आधार नहीं है। उदाहरण के रूप में कहा जा सकता है कि देहातों में किसानों, मजदूरों, छोटे दुकानदारों और सामान्य कारीगरों का बहुमत है और नगरों में शिक्षा, डाक्टरों, इंजिनियरों आदि का बहुतमत है। इसका परिणाम यह है कि जिन वर्गों का बहुमत है, उनको कम प्रतिनिधित्व मिल पाता है और नगरवासी वर्गों को व्यक्तित्व के आधार पर अधिक प्रतिनिधित्व प्राप्त होता रहता है। इस प्रणाली का कुपरिणाम यह है कि खेती, मजदूरी, दुकानदारी, कारीगरी आदि पेशों के लिये जो योजनायें बनायी जाती हैं। उनमें नगरवासी डाक्टर, उद्योगपति और इंजिनियर आदि को केन्द्रिय सरकार घुसेड़ देती है। परन्तु, इनको खेती आदि के सम्बन्ध में कोई व्यावहारिक क्रियात्मक बोध नहीं होता। केवल पुस्तक ज्ञान ही होता है। इससे राष्ट्र पर व्यय भार बहुत पड़ता है और लाभ का अंश बहुत कम मिल पाता है। परम्परा से जिन धन्धों को जो लोग करते आते हैं, उनको ही वास्तविक ज्ञान होता है। सरकार इन को योजनाओं में सम्मिलित नहीं करती। सरकार को चाहिये कि वर्ग=पेशे आदि के आधार पर मौलिक क्रियात्मक ज्ञान रखने वाले लोगों को उन उन योजनाओं में शामिल करे। केवल पुस्तकी ज्ञान रखने वालों को सरकार भारी भारी वेतन और भत्ते देती है। यदि ठीक ढंग से योजनाओं को चलाया जावे, तो राष्ट्र पर व्यय भार बहुत कम पड़ सकता है और लाभ बहुत अधिक हो सकता है। अतः हमारा विचार यह है कि जनप्रतिनिधित्व वर्ग=श्रेणी के आधार पर निर्वाचित किया जावे। एक सज्जन केन्द्र सरकार के कृषिमन्त्री थे। जब वह गांवों को देखने गये तो सड़क के किनारे के गड्ढों में पानी भरा देखा तो कहने लगे कि इस बार गेहूं बहुत पैदा होगा। इस प्रकार की प्रक्रिया को बन्द करके वर्गवाद के आधार पर निर्वाचन किया जाना उचित है। इस प्रणाली से ही गणतन्त्र दिवस का मनाना सफल हो सकता है। आशा है केन्द्र की सरकार इस समस्या पर गम्भीर रूप से विचार करके राष्ट्र के हित सम्पादन में उचित पग बढ़ावेगी। इसी प्रकार राज्य सरकारों द्वारा बनाई जाने वाली समितियों में भी वर्ग के आधार पर सदस्य निर्वाचित किये जाने चाहियें। हमने अपने उपर्युक्त विचार राष्ट्र की उन्नति सुरक्षा और सुदृढ़ता को ध्यान में रखकर प्रस्तुत किये हैं। इनमें किसी वर्ग का पक्षपात नहीं रखा गया है।

श्री रामलाल जी ठेकेदार प्रधान आर्यसमाज करौलबाग, नई दिल्ली से

निवेदन है कि आप प्रायः प्रतिवर्ष टंकारा आदि यात्रा के लिये विशेष रेल गाड़ियों का प्रबन्ध करते रहते हैं। आर्यमर्यादा में भी उनका कार्यक्रम प्रकाशनार्थ भेजते रहते हैं। श्री रामनाथ जी सहगल भी आपको इस कार्य में सहयोग देते हैं। कुछ आर्य पुरुष कहते हैं कि इन ट्रेनों के आयव्यय का हिसाब भी पत्रों में प्रकाशित किया जावे तो ठीक रहेगा। जब कार्यक्रम तथा व्यय के लिये टिकट आदि के किराये का प्रकाशन होता है, तब यह भी उचित है कि उनका आय व्यय का वृत्त भी प्रकाशित करवा दिया जावे। इससे कार्यकर्त्ताओं की नीयत पर कोई आक्षेप नहीं हो सकेगा और आर्यजनता में भ्रान्ति भी नहीं फैल सकेगी। आशा है श्री ठेकेदार साहिब तथा श्री सहगल जी इस नम्र निवेदन पर ध्यान देकर उचित कार्यवाही करके कृतार्थ करेंगे।

लेखक महानुभावों से निवेदन

हमारे पास आर्यमर्यादा में प्रकाशनार्थ आदरणीय लेखकों के लेख तथा कविताएं पहुंचती रहती हैं। अधिक होने से उनका प्रकाशन कुछ देर से भी हो सकता है। अतः अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये। यह भी ध्यान रखना उचित है कि समाजों और संस्थाओं के निर्वाचन में केवल प्रधान, मन्त्री, कोषाध्यक्ष और पुस्तकाध्यक्ष के नाम ही भेजने चाहिये। उप आदि के नहीं। समाचार भी संक्षिप्त होने चाहियें। कुछ सज्जन अपील रूप समाचार भेजते हैं। उन्हें पृथक् छपवा कर समाजों में भेजनी चाहिये। यह भी ध्यान रखना चाहिये कि प्रत्येक राज्य की सभाओं के अपने अपने पत्र हैं, तो उनको विशेष रूप से संस्थाओं और समाजों के समाचार उन्ही पत्रों में भेजने चाहियें। हां लेख आदि कहीं से भी भेजे जा सकते हैं। पत्र के सम्पादक को ऐसे समाचारों को प्रकाशित करने पर बड़ी कठिनता पड़ती है। कोई एक समाचार छप जावे तो दूसरे भी आग्रह करते है। एक और विशेष निवेदन है कि राजनीतिक नेताओं के सम्बन्ध में लेख राजनीतिक पत्रों मे छपवाने चाहियें। आर्य पत्रों में तो आर्यसमाज सम्बन्धी ही लेख आदि भेजने चाहिये। आशा है इस निवेदन पर ध्यान दिया जावेगा।

श्री भुट्टो और शेख अब्दुल्ला को व्यर्थ महत्ता

पाकिस्तान के राष्ट्रपति श्री भुट्टो के वक्तव्य भारतीय दैनिक समाचार पत्रों में प्रकाशित किये जाते रहते हैं। परन्तु जो वक्तव्य आज देते हैं, अगले ही दिन उसका विरोध कर डालते हैं। न जाने इनके परस्पर विरोधी वक्तव्यों के प्रकाशन में भारतीय समाचार पत्र क्या विशेषता समझते हैं। यदि इस प्रकार इनके वक्तव्यों को छापने की अपेक्षा इनका प्रकाशन नहीं किया जावे, तो इनको कुछ बुद्धि आ सकती है कि भारतीय समाचार पत्रों में इनकी उपेक्षा की जाने लगी है। अब तो वह समझते है कि जिस कूड़े करकट से भरे उनके वक्तव्य छापे जाते है, इसमें भी कुछ कारण हो सकता है। अतः हमारा स्पष्ट मत है कि इनके महत्त्व को कम करने का यही उपाय है कि श्री भुट्टो के वक्तव्यो को दृष्टिग्राह्य किया जावे।

यही अवस्था काश्मीर के सम्बन्ध में शेख अब्दुल्ला के वक्तव्यों की है। यह भी गिरगट की तरह आये दिन रंग बदलते रहते हैं। न जाने भारत सरकार इनसे अथवा इनके प्रतिनिधियों मे क्यों बातें करती रहती हैं। इसका कुपरिणाम यह होता है कि जम्मूकाश्मीर की राज्य सरकार की राज्यास्थिति डावांडोल होती रहती है। भारतीय जनता भी भोली मनोवृत्ति रखती है। यह वही शेख है कि इसी के राज्यप्रशासन के समय महान् राजनीतिज्ञ डा० श्यामप्रसाद मुखर जी को अपने प्राणों से हाथ धोना पड़ा था। यह एक प्रकार का भारतीय राष्ट्र के प्रति उनका अमर बलिदान था। ज्यों त्यों करके श्री किदवई साहिब ने शेख को पदच्युत किया। यह वर्षों नजरबन्द रखे गये। अब फिर उनके विचारों में भारत सरकार ने क्या परिवर्तन समझा है कि इनको जम्मू काश्मीर राज्य की स्थिति में अव्यवस्था करने के लिये फिर खुला छोड़ दिया है। इनके वक्तव्य भी दिन रात बदलते रहते हैं। यह इनकी अत्यन्त कूटनीतिक चाल है। इनका एकमात्र उद्देश्य यही प्रतीत होता है कि काश्मीर को स्वतन्त्र कराके इसका एकमात्र प्रशासक बन जावें। भारत सरकार को धोखे में नहीं रहना चाहिये।

दण्डः शास्ति प्रजाः

हमारे राष्ट्र में नित्य नये मनमाने उपद्रव खड़े किये जा रहे हैं। मानों राष्ट्रिय सरकार का जनता पर कोई अंकुश नहीं रह गया है। सृष्टि के आदि के प्रशासक श्री मनु महाराज का यह नियम आज तक प्रचलित है कि प्रजा का शासन दण्ड से ही सम्भव है। जब दण्ड का दुर्बल अथवा अनुचित प्रयोग सरकार करने लगती है तब राष्ट्र में विप्लव होने अस्वाभाविक नहीं रहते। अतः राष्ट्रिय सरकार को दण्ड का यथायोग्य समुचित प्रयोग करना चाहिये। इसी से राष्ट्र में सुख, शान्ति, समृद्धि, सुदृढ़ता और सुरक्षा बनी रहती है। इस नियम का पालन करते रहना आवश्यक है॥ ● —जगदेवसिंह सिद्धान्ती शास्त्री

श्री फुल्का की रिपोर्ट के विरुद्ध की गई आपत्तियों की सुनवाई पंजाब तथा हरयाणा हाईकोर्ट ६-२-७३ को करेगी।

सभा के लिये रिसीवर की नियुक्ति का विषय भी उसी दिन सुना जायगा।

चण्डीगढ़ दिनांक १९-१-७३ : सभा के दोनों पक्षों द्वारा श्री फुलका निर्वाचन अधिकारी की रिपोर्ट के विरुद्ध पंजाब हाईकोर्ट में की गई आपत्तियों की सुनवाई का विषय जस्टिस ढिल्लों के समक्ष प्रस्तुत हुआ। श्री वीरेन्द्र के वकील ने आपत्ति की कि उपरोक्त आपत्तियां २-१-७३ तक हाईकोर्ट में फाईल करनी थी। परन्तु वह ५-१-७३ को फाईल की हैं। निश्चित तिथि के भीतर फाईल न होने के कारण उन्हें अस्वीकार कर दिया जावे। जज महोदय ने आपत्ति अस्वीकार कर दी। उक्त वकील ने दूसरी आपत्ति उठाई कि प्रो० रामसिंह जी की ओर से की गई आपत्तियों पर श्री केदारसिंह के हस्ताक्षर है जो सभा के अधिकारी न[illegible]। आनन्द स्वरूप जी ने उत्तर दिया कि हाईकोर्ट के १२-१२-७२ के आदेश के बाद सभा का अधिकारी तो अब कोई भी नहीं रहा। फिर उक्त आपत्तियों पर श्री मनमोहन सिंह जी एडवोकेट के हस्ताक्षर है। इस कारण वह वैध है। उन पर विचार अवश्य होना चाहिये। जज महोदय ने श्री वीरेन्द्र पक्ष की वह आपत्ति भी अस्वीकार कर दी।

२. फिर आपत्तियों पर विचार होने लगा। जज महोदय ने देखा कि सैकड़ों पृष्ठों की लम्बी लम्बी आपत्तियां फाईल की गई हैं जिनको सुनने तथा उन पर निर्णय करने के लिए बहुत समय लगेगा। उन्होंने आदेश दिया कि वह क्रम से आर्यसमाजों की आपत्तियों को सुनेंगे और कहा कि दोनों पक्ष हाईकोर्ट की फाईलों की भांति ही अपनी फाइलें तैयार करें। इस विचार के लिये ६-२-७३ की तिथि निश्चित की गई।

३. श्री आनन्द स्वरूप जी एडवोकेट ने एक प्रार्थना पत्र दिया कि महात्मा आनन्द जी के रिसीवर की नियुक्ति न मानने से सभा संस्थाओं तथा आर्य समाजों का प्रबन्ध नियंत्रण और अनुशासन अस्त व्यस्त हो गया है और सभा की आय भी बन्द हो गई है। काम सारा ठप हो गया है। उन्होंने सुझाव दिया कि १२-१२-७२ के आदेश में परिवर्तन करके सभा की अन्तरग सभा व अधिकारियों को कार्य करने दिया जावे तथा सभा के व्यय की पेमैण्ट हाईकोर्ट के दिनांक १२-१-७३ के आदेशानुसार बेशक श्री फुल्का ही करते रहें। जज महोदय ने कहा कि यदि वह उक्त प्रार्थना को स्वीकार कर लेते हैं तो रिसीवर का अभियोग पुन: चल पड़ेगा और निर्वाचन कार्य जिसके लिये वह स्वयं भी बहुत उत्सुक हैं उसमें देर हो जावेगी। उन्होंने नये रिसीवर को नियुक्ति के लिये दोनों पक्षों से ऐसा नाम मांगा जिस पर दोनों पक्ष सहमत हों परन्तु ऐसा नाम न आने के कारण रिसीवर की नियुक्ति का कार्य भी ६-२-७३ के लिये स्थगित कर दिया। पत्र प्रतिनिधि द्वारा।

पुस्तक समालोचना

नाम पुस्तक—सामवेद आध्यात्मिक मुनिभाष्य उत्तरार्चिक। भाष्यकार—स्वामी ब्रह्ममुनि परिव्राजक विद्यामार्तण्ड। प्रकाशक स्वामी ब्रह्ममुनि परिव्राजक विद्यामार्तण्ड गुरुकुल कांगड़ी (हरद्वार) पृष्ठ संख्या ६६४ मूल्य १३)रु० सजिल्द (डस्ट कवर सहित) पुस्तक मिलने का पता—सार्वदेशिक आर्य-प्रतिनिधि सभा दयानन्द भवन (रामलीला मैदान) न्यू देहली-१ प्रथम बार १००० प्रतियां दीपावली २०२९ वि० नवम्बर १९७२।।

समालोचना—लेखक महानुभाव आर्यसमाज में जाने माने उच्च कोटि के प्रतिष्ठित वेदादि सत्य शास्त्रों के प्रकाण्ड विद्वान् हैं। इनका यह ७२वां लिखित ग्रन्थ है। उक्त ग्रन्थों में वेद के अनेक सूक्तों, निरुक्त, मीमांसा के अतिरिक्त पांचों दर्शनों तथा योग जिज्ञासुओं के जानने और अभ्यास करने योग्य परिचयात्मक लघु पुस्तक भी हैं। आपको कुछ ग्रन्थों पर मङ्गला प्रसाद पारितोषिक भी मिला है। वेदान्त दर्शन पर शाङ्करभाष्य के अद्वैत मत की युक्तियुक्त आलोचना की है। सामवेद पुस्तक के सम्बन्ध में डा० मङ्गलदेव जी शास्त्री एम० ए० पूर्व उपकुलपति वाराणसेय संस्कृति महाविद्यालय तथा श्री वेदवाचस्पति पं० प्रियव्रत जी पूर्व उपकुलपति गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी ने अपनी अपनी उत्तम सम्मति दी है। इसमें सन्देह नहीं कि लेखक महोदय ने वैदिक साहित्य की अच्छी श्री वृद्धि की है। इस सामवेद के सम्बन्ध में अपने विचार भी प्रकट किये हैं। आपका भाव स्पष्ट यह है कि सामवेद स्तुति परक है।

इन भावों के सम्बन्ध में हमें कुछ निवेदन करना है। ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका के प्रश्नोत्तर प्रकरण विषय में ऋषि दयानन्द ने लिखा है—"ऋग्भि: स्तुवन्ति, यजुर्भिर्यजन्ति। सामभिर्गायन्ति। ऋग्वेदे सर्वेषां पदार्थानां गुणप्रकाश: कृतो अस्ति। तथा यजुर्वेदे विदितगुणानां पदार्थानां सकाशात् क्रिययाऽनेकविद्योपकारग्रहणाय विधानं कृतमस्ति तथा सामवेदे ज्ञानक्रिया विद्ययोर्दीर्घ विचारेण फलावाधिपर्यन्तं विद्या विचार:। एवमथर्ववेदेऽपि त्रयाणां वेदानां मध्ये यो विद्याफलविचारो विहितोस्ति तस्य पूर्तिकरणेन रक्षोन्ती विहितेस्त:। (ऋग्भिस्तु)।

......ऋग्वेद में सब पदार्थों के गुणों का प्रकाश किया है। यजुर्वेद में क्रिया काण्ड का विधान लिखा है, सो ज्ञान के पश्चात् ही कर्त्ता की प्रवृत्ति यथावत् हो सकती है। तथा सामवेद से ज्ञान और आनन्द की उन्नति और अथर्ववेद से सर्व संशयों की निवृत्ति होती है" यहां सामवेद का विषय ज्ञान और क्रिया दोनों पर दीर्घ विचार द्वारा फल पर्यन्त विद्या विचार कहा गया है। अत: सामवेद केवल अध्यात्मविद्या मात्र नहीं है। इस से हम समझते हैं कि सामवेद का भाष्य स्तुति परक तक ही सीमित नहीं रखना चाहिए। अपितु उसमें जिन पदार्थों का स्तुति में उपयोग लिया जा सकता है उन के अर्थ भी स्वतन्त्र रूप में करने में सहायता ही मिलती है। बाधा नहीं पड़ती। इस वेदभाष्य में लेखक महोदय ने जो ऋषि पद प्रत्येक मन्त्र के ऊपर दिये गये हैं; उनके यौगिक अर्थ किये हैं, परन्तु यह लेखक का मन्तव्य ऋषि दयानन्द के मन्तव्य से सर्वथा विपरीत है। देखिये ऋग्वेदादिभास्यभूमिका—यही प्रकरण। येन येन र्षिणा यस्य यस्यमन्त्रस्मार्थ: प्रकाशितोऽस्ति तस्य तस्य ऋषेरेकैकमन्त्रस्य सम्बन्धे नामोल्लेख: कृतोऽस्ति ।। भाषार्थ जिस जिस मन्त्र का अर्थ जिस जिस ऋषि ने प्रकाशित किया उस उस का नाम उसी उसी मन्त्र के साथ स्मरण के लिये लिखा गया है।,' सत्यार्थप्रकाश के सप्तम समुल्लास का वेद प्रकरण भी पढ़ना चाहिए। वहां लिखा है—"जिस जिस मन्त्रार्थ का दर्शन जिस ऋषि को हुआ और प्रथम ही जिसके पहले उस मन्त्र को किसी ने प्रकाशित नहीं किया था और दूसरों को पढ़ाया भी इसलिये अध्यावधि उस उस मन्त्र के साथ ऋषि का नाम स्मरणार्थ लिखा आता है। इन दोनों स्थलों से सिद्ध होता है कि प्रत्येक मन्त्र के ऊपर जो ऋषि नाम मिलते हैं वे ऐतिहासिक है यौगिक नहीं। खेद के साथ लिखना पड़ता है। कि सामवेद के भाष्यकार महानुभाव ने उन को ऐतिहासिक न मानकर यौगिक अर्थ लिये हैं। यह मत अग्राह्य है। हां वेद मन्त्रों के बीच में मन्त्रांश रूप में जो ऋषि नाम दिखाई पड़ते हैं, वे यौगिक शब्द हैं, उनका अर्थ यौगिक ही किया जाना उचित है, वहां ऐतिहासिक अर्थ अनुचित है। परन्तु मन्त्रों के ऊपर जो ऋषि नाम मिलते हैं वे मन्त्र के अंश नहीं हैं, अत: वे ऋषि दयानन्द के मन्तव्य के अनुसार ऐतिहासिक अर्थ रखते हैं। न जाने लेखक ने यह अर्थ समाज के प्रवर्तक ऋषि दयानन्द के मत के विरुद्ध कैसे अपना मत लिख दिया है? यह दोष आर्यसमाज के अन्य विद्वानों में भी मिलता है। कहां स्वामी शङ्कराचार्य के शिष्यों ने उनके अद्वैत मत का पोषण और प्रचार किया और कहां आर्यसमाज के विद्वान् ऋषि के मन्तव्य के विरुद्ध लिख रहे हैं। हम नि:संकोच भाव से लिखते हैं कि यह परिपाटी सदोष है। पाठक बन्धुओं से निवेदन है कि इस पुस्तक से पूरा लाभ उठायें, परन्तु सिद्धान्त मत विरुद्ध अर्थो का परित्याग अवश्य करें।

—जगदेवसिंहसिद्धान्ती शास्त्री

गतांक से आगे—

मांडूक्य आचार्य गौडपाद कारिकाओं की समीक्षा (३)

(ले० श्रीमान् स्वामी ब्रह्मानन्द जी म० आर्यत्रैतवादाचार्य, मु० ओंकार आश्रम, चांदोद बड़ोदा)

आगम प्रकरण की छठी कारिका

असल में यातो गुरु शंकर ने स्वयं ही यहां के इस विषय को नहीं समझा था अथवा वे और उन्होंके दादा गुरु ये दोनों ही बौद्धों की फिलासफी से बहके हैं, नहीं तो चकाचौंध में तो थे ही अन्यथा ऐसा ही सर्वत्र (सत्यं ज्ञानमनंतं ब्रह्म) को भ्रान्त कभी न मानते? अरे जब स्वयं जिसके मत में परमात्मा ही भ्रान्त बने तो फिर निर्भ्रान्त ही भला कौन रहेगा? और कौन किसको अविद्या से मुक्त करेगा? परन्तु असल में ब्रह्मात्मा के चार पाद इस प्रकार हैं सत् स्वरूपता, चित्त स्वरूपता, आनन्द स्वरूपता, एवं स्वातंत्र मोक्ष स्वरूपता। और केवल सत् स्वरूप माया प्रकृति को भी ब्रह्म आत्मा नाम से वेदादि साहित्य में कहा गया है जैसे—

(मम योनिर्महद् ब्रह्म तस्मिन्गर्भं दधाम्यहम्।। भ० गीता)

यहां प्रकृति को ब्रह्म नाम से निर्देश किया गया है तो जो जाग्रत् के स्थूल एवं जीवात्मा के सप्तांग एकोविंशति मुख याने जिनके द्वारा भोगों का ग्रहण होता है उन्हें मुख की सदृश्यता दी है वे सब प्राकृतिक होने से सब सत् रूप याने निर्भ्रांत ही हैं, किन्तु स्वप्नवत् भ्रान्ति युक्त नहीं हैं यथार्थ भावरूप हैं इसलिये सत् रूप प्राकृतिक कार्य होने से वे सब भी सत्य ही हैं। तथा दूसरा ब्रह्म का पाद चिद्चैतन्य ज्ञानरूप जीवात्मा है जो चैतन्य होने से प्रकृति एवं पुरुष परमात्मा के क्रमशः प्रेयश्रेयमय भोगों का स्वयं जाग्रत् सुषुप्ति समाधि में एवं मोक्ष में भोक्ता है तो इसीलिये इसे प्रकृति पुरुष के संयोग की साम्यलिंगता प्राप्त होना मिलना वेदान्त दर्शन के चतुर्थ पाद में बताया गया है याने (भोगमात्र साम्यलिंग) तो यहाँ जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति में शरीरस्थ हो और मोक्ष में सभी शरीरों से रहित हो संकल्प मात्र शरीर से भोक्ता बनता है। याने भोक्ता जीवात्मा चेतन ये ब्रह्म का दूसरा पाद कहाता है। तथा तीसरा सर्वान्तिर्यामि जगदीश्वर स्वयं आनन्द रूप कहा गया है जो सबका धारण पालन एवं प्रलय या प्रकृति को लीन अपने अन्दर करने वाला होने से एवं स्वयं आनन्द रूप होने से तृतीय पाद कहा गया है जैसे कि ऋग्वेद में (कस्मै देवाय हविषा विधेम) कस्मैदेवाय इति आनन्द स्वरूपाय हविषा-विधेम।। याने वही देवाधिदेव परमात्मा हमारे लिये हवि प्रदान युक्त उपासनीय है जो आनन्द स्वरूप है। याने सर्व भोग मोक्ष में वही सुख रूप से व्यक्त ही रहा है सर्वत्र सो वही ब्रह्म का तृतीय पाद कहा गया है एवं ब्रह्म का चतुर्थ पाद तृतीया शिवमोक्ष स्वतन्त्र रूप है क्योंकि यहाँ सभी मायारूप प्रपंच का उपशमन वा अन्त आ जाता है जैसे यहाँ कहा भी है कि (प्रपंचोपशमंशान्तंशिवमद्वैतं चतुर्थमन्यं ते स आत्मा स विज्ञेय:।। मां० उ०।। ७।। तो यही चतुर्थ पाद ब्रह्म का शिव नाम से मायातीत होने से स्वतन्त्र एवं उपासनीय तथा ज्ञेय है। अब बताओ इतने उपनिषद् के चारों पादों के वर्णन में कहीं भी अविद्या भ्रान्ति वा मिथ्यात्व का वर्णन आया है? परन्तु कहीं नहीं, तब जबरदस्ती से ब्रह्म के तीन पादों को अविद्यामय बताना ये कितना बड़ा प्रमाद एवं ईश्वर के अपमान का अपराध है? परन्तु फिर भी जो अविद्या से माया कहें और बताएँ तो भी ठीक नहीं क्योंकि माया को प्रकृति कहा है माया तुप्रकृति विद्यात्।। श्वे० उ०) देखें और स्वयं श्री० शंकर जी भी माया का प्रज्ञा अर्थ स्वीकार रहे हैं अपने भाष्य में तो प्रज्ञा एवं प्रज्ञान घन अज्ञान अज्ञानघन तो नहीं कहा जा सकता और इतने पर भी जो प्रज्ञा का अर्थ प्रज्ञप्ति करें तो फिर उन्हें अपने मान्य इस महा वाक्य को जो (प्रज्ञानं ब्रह्म) इसे न महावाक्य ही कहना चाहिये न प्रज्ञानं ब्रह्म ही कहना चाहिये कि ऐन्द्रिक प्रज्ञप्तिवान् अज्ञान ब्रह्म कहना चाहिये क्योंकि जहां इन्द्रियों की प्रज्ञप्ति जन्म वृत्ति ज्ञात है वह सब अविद्या संयुक्त है ऐसा आ० श्री गुरु शंकर ने अपने भाष्य में माना है। तो विद्या अविद्या का तो फिर कोई सुनिश्चित अर्थ ही नहीं होगा? इसलिये माया का अर्थ न अविद्या न अज्ञान होगा न छल न जादू ही किन्तु सद्भाव रूप प्रकृति एवं ब्रह्म विद्या ही होगा। इसी बात का खुलासा इसी मांडूक्य उ० की प्रथम श्रुति में इस प्रकार से प्रथम ही कर दिया है (ओमित्येतदक्षरमिदं सर्वं तस्योपव्याख्यानं भूतंभवद्भविष्यमदिति सर्व ओंकार एव।

पच्चान्यत् त्रिकालातीतं तदप्योङ्कार एव।। मां० उ० १।।

अर्थ—यह ओंकार अविनाशी एवं सर्व रक्षक है और यह सब जीव जगत् उसी का उपव्याख्यान महिमा विभूति का विस्तार वाला है (इति) ऐसा जानो तथा जो तीनों कालों में है। वह भी सब ओंकार स्वरूप ही जानो तथा जो (अन्यत्) त्रिकालातीत् तुरीय पद है वह भी ओंकार ही है। जैसे राज्य ऐश्वर्य एवं प्रजायुक्त पुरुष ही को राजा महाराजा कहा जाता है। वैसे ही समष्टि व्यष्टि जीव जगत् माया प्रपंच सहित ही ईश्वर परमेश्वर कहा जाता है इसी प्रकार यहाँ कार्य कारण युक्त संपूर्ण शक्ति मान भगवान् को ओंकार रूप बताया है तो शक्ति शाक्त मिले जुले से अनन्यत्व से सदा समन्वित जीवेश्वर प्रकृति की सम्मिलित प्रतीक को यहां ओंकार स्वरूप दिया गया। तो इस श्रुति में कहीं भी अविद्या अज्ञान भ्रान्ति की जरा भी गन्ध नहीं है। न मिथ्यात्व वाद को जरा भी स्थान है। ये ध्यान रहे इसलिये जो भी पर अपर या क्षराक्षर वा अक्षरातीत है वह सभी ओंकार स्वरूप होने से ये सभी परमार्थ रूप ही है ऐसा ही मानना समिचीन है युक्तियुक्त एवं आर्यमर्यादा शास्त्रीय मर्यादा से युक्त है किन्तु (ब्रह्म सत्यं जगत् मिथ्या) बताना और जहता जहत लक्षणा लगाना ये मात्र भ्रान्ति अविद्यान्धकार की बात है।

आगम पृष्ठ की १० वीं कारिका

निवृत्तेः सर्वदुःखानामीशानः प्रभुरव्ययः।
अद्वैतः सर्वभावानां देवस्तुर्यो विभुः स्मृतः।।

अर्थ—तुरीय आत्मा सब प्रकार के दुःखों की निवृत्ति में ईशान प्रभु समर्थ है। वह अविकारी सब पदार्थों का अद्वैत रूप देव तुरीय और व्यापक माना गया है।। १०।।

समीक्षा—आपने तुरीय पद वाच्य शिवको (अद्वैत सर्व भावनां) ऐसा कहा सो अनर्थ किया है क्योंकि मूल श्रुति में तो (शिवं अद्वैतं चतुर्थं मन्यते) ऐसा कहा है अर्थात् चतुर्थ तुरीय पद वाच्य शिव ही अद्वैत पाने अद्वितीय श्रुति ने कहा है सो सर्वथा ठीक ही है क्योंकि उसके न समान कोई है न उससे श्रेष्ठ ही कोई। इस लिये वह अद्वैत है याने अजोड़ है। सो वेद में भी ऐसा ही कहा है कि—

यस्मान्न जातः परो अन्यो अस्ति यो भुवनानि विश्वा (।। य. वेद)

तथा (एकमेवाद्वितीयम्) इसलिये उपनिषदों ने भी उसे एक अकेला अद्वितीय बतला दिया है। क्योंकि सभी उपनिषदें प्रायः वेदानुकूल ही प्रतिपादन करती हैं किन्तु आप लोग अद्वैत वादी नवीन वेदान्ती अपने आप को कहते मानते हुये भी वेदान्त के श्रुति सूत्र एवं श्लोकों का अर्थ वैसा ही लेते वा करते हैं जैसे बौद्ध विज्ञान वादियों का मन्तव्य है। याने सांख्य वादी वैदिकों के मन्तव्य से सर्वथा प्रायः न्यारे ही रहते हैं। इसीलिये हम लोग तुम अद्वैत वादियों को नवीन वेदान्ती और पौराणिक लोग तो तुम्हें प्रच्छन्न बौद्ध मतानुयाई मानते हैं। तथा माया वादी विवर्त वादी अविद्यावादी भी तुम्हें कई एक कहते हैं अस्तु।

तथा आप अपनी उक्त दशवीं कारिका में (सर्वभावानाम्) ऐसा कहा है तो जो सब को आप भाव रूप मान लिये तो फिर उनका अभाव कहां और कैसे हो सकेगा? हां अभाव का भाव कभी नहीं देखा गया तो (नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।। भ० गीता) के अनुसार भाव रूप पदार्थों का फिर अद्वैत कैसे होगा? कभी नहीं। क्या घट पट रोटी मिट्टी एक कहे वा मानें जायेंगे? किन्तु कभी नहीं। परन्तु एकत्व उन सब का भले ही याने एक दूसरे से संयुक्त रहना भले ही नैमित्तिक ढंग से माना जा सकता है किन्तु एकत्व का मतलब अद्वैत नहीं होता। इसलिये भाव से अभाव मानना ही दार्शनिकता का गला घोटना है। परन्तु जगत् प्रपंच तो प्रकृति की विकृति होने से वह प्रपंचात्-मक जगत् शहस्त्रोंवार प्रकृति में विलीन होता ही रहता है। इससे उस सदा शिव में द्वैतता की अद्वैतता नहीं आती किन्तु वह तो अपने स्वगुण वा स्वरूप धर्म से ही अद्वैत है एवं सुशान्त ही बना रहता है। याने उसमें कभी क्षोभ वा क्रान्ति नहीं आती इसलिये श्रुति उस तुरीय पद वाच्य शिव को अद्वैत शान्त बतलाती है प्रभु सर्वदा एक समान वा विशुद्ध आकाश के समान बना रहता होने से ही वेद ने भी (ॐ खं ब्रह्म।। य. अ. ४०) कहा है कि वह शिव सच्चिदानन्द घन पर ब्रह्म आकाश के समान नित्य विभु है वही सर्व रक्षक हैं ऐसा उसे कहा गया है। ● (क्रमशः)

गतांक के आगे—

योगी का आत्म चरित्र

भ्रान्ति ध्वान्त निवारण (बाघेर कौन ?) (२१)

(ले० स्व० सच्चिदानन्द योगी, अध्यक्ष श्री नारायण स्वामी आश्रम)
महामहिम पाञ्जल योग साधना संघ, आ. वा. आ. ज्वालापुर

पं० भवानी लाल जी ने आक्षेप किया है :- "कोई इतिहास का प्रमाण नहीं दिया कि नाना साहब आदि लोग बाघेर जाति के थे।"

हमारा निवेदन है- १९वें लेख में यह लिखा कि श्रीमान् जी बाघेर जाति के वीर सैनिक थे। नाना साहब को बाघेर कह कर अपने को इतिहास से कोरा मत सिद्ध कोजिये। नाना साहब और लक्ष्मीबाई तो ब्राह्मण वीर थे। इसीलिये बिठूर का नाम ब्रह्मावर्त रखा गया था। जब खेर ब्राह्मणों ने अपने जान माल को परवाह न कर शिवाजी महाराज को औरङ्गजेब की कैद से भगाया तब शिवाजी ने इन खेर ब्राह्मणों को झांसी इनाम में दी थी। नाना और लक्ष्मी बाई तो ब्राह्मण थे।

कानपुर के आस पास 'बाघेर जाति' रहती थी। अब भी रहती है। हाथ कंगन को आरसी क्या ? ऋषि की जीवनी की खोज का क्या बढ़िया ढंग है। प्रत्यक्ष को प्रमाण नहीं मानते। कानपुर बिठूर कौन जाये। इस अमर शहीदों को भूमि के दर्शन कौन करे ? पं० भवानीलाल को लेखा चाहिये। किसी ने लिखा हो तो प्रमाण मानेंगे। श्रीमान् जी प्रत्यक्ष के होते शब्द प्रमाण, इतिहास की आवश्यकता नहीं होती। और यदि शब्द प्रमाण ही प्रमाण है तो सत्यार्थ प्रकाश जैसे ऋषि के अमर ग्रन्थ को ही क्यों प्रमाण नहीं मान रहे। उन्होंने तो स्पष्ट ही 'वीर बाघेरों' की प्रशंसा की है।

ऋषि की जीवनी लिखने वाले को यदि ऋषि प्रमाण नहीं तो अन्यों को प्रमाण मानने का ढोंग क्यों। ऋषि साक्षात् द्रष्टा सत्य वक्ता भी यदि प्रमाण नहीं। तो और प्रमाण को ही क्या प्रमाणता होगी ? साथ ही यह भी विचारने की बात है। गम्भीरता से विचारने की बात है, कि सत्यार्थ प्रकाश संवत् १९३९ में छपा अर्थात् ५७ की क्रान्ति के २१ वर्ष बाद। उस समय तक ५७ के गदर का कोई इतिहास भी नहीं छपा था। समाचार पत्र बहुत थोड़े थे। उनमें भी ५७ की क्रान्ति का कोई विस्तृत इतिहास नहीं। अंग्रेजी शासन की कठोरता बर्बरता नंगा नाच चुकी थी। भारतीय वीरों की वीर गाथा कौन गाता। मौखिक भी यह घटनायें कहां कही जातीं। आतङ्क जो था। जोगी भी आल्हा ऊदल तो गाते थे, सन् ५७ या झांसी वाली रानी के कौन गीत गाता। दास कभी अपने गौरव गान गा सकता है। अंग्रेजी काल में लिखे गये गदर के इतिहास आदि भी अंग्रेजों की ही महत्ता दर्शाते हुये लिखे गये। नाना या लक्ष्मी की वीरता कौन कैसे गाता। वीर सावरकर को war of Independence तक जब्त कर ली गयी थी। टाइप की कापी कभा कांग्रेस की कृपा से मिल जाती थी। जिस के थोड़े से टाइप किये पन्ने भी पैसे देकर भी लेकर भाग कर लापता हो जाना पड़ता था। भारतीय जी ने वह समय कहां देखा। इसलिये इतिहास का प्रमाण माग रहें हैं। प्रत्यक्ष पर ऋषि वाक्यों पर उनका अटूट विश्वास नहीं। उन की पुष्टि की खोज करने का उनके पास समय ही कहां। सस्ती पार्टी बाजी को लोडरो उन्हें प्राप्त ही है।

हमें तो ऋषि वाक्य पर पूर्ण आस्था है इसलिये आत्म चरित्र में बिठूर और सत्यार्थ प्रकाश के वीर बाघेरों को मिलाने में विलम्ब नहीं लगा। बाघेरों का पता तो डाक्टरों को ही लगा लेना चाहिये था। वह पता न लगा सके या लगाना नहीं चाहते। इसलिये हमें ही खोज करनी पड़ी। किसी प्रकार सत्यार्थ प्रकाश की व्याख्या हो सके। देखिये:-

बाघेर— चौहान, सोलङ्की, परमार, परिहार, जातियां छोटी मानी जाती थीं। पर इनकी वीरता देखकर राजपूतों ने इन्हें माउण्ट आबू पर यज्ञ करके राजपूत बनाया था। यह घटना आठवीं शती की है।

सोलङ्कियों का राज्य— मूल राज सोलङ्की इन चारों में से एक थे। राजपूत घोषित होने पर मूलराज सोलङ्की ने मौरवी शहर के पास राजधानी बनाई। (यही मोरवी जहां पर ऋषि दयानन्द का जन्म हुआ था।) गौरी शङ्कर हरिश्चन्द्र ओझा ने 'राजपूताने का इतिहास' में लिखा है "सोलङ्की और बाघेल (सोलङ्कियों की एक शाखा) वसिष्ठ ऋषि के द्वारा आबू पर के अग्नि कुण्ड से अपने मूल पुरुष चालूक्य का उत्पन्न होना मानते हैं। पृष्ठ २१३ रा० इति०

इस से प्रमाणित हो रहा है कि बाघेल सोलङ्कियों की १२ शाखाओं में से एक शाखा है। यह इतिहास वैदिक यन्त्रालय अजमेर में ही छपा है। पर पं० भवानी लाल जी को खोज का चस्का हो जब न ! वे तो अपने प्रेस की बात भी हम से ही जानना चाह रहे हैं। कोई बात नहीं और पढ़िये।

"मूल राज ने पाटण के अन्तिम चावडा वंश को मार कर गुजरात का राज्य उस से छीन लिया। यह घटना वि० १०१७ की है। (९६० ई०)। २१५ पृ० पर लिखा है—'मूल राज ने सिद्धपुर में' रुद्र महालय नामक बड़ा ही विशाल शिवालय बनवाया। प्रतिष्ठा के समय थाणेश्वर, कन्नौज आदि उत्तरी प्रदेशों के ब्राह्मणों को बुलाया और गांव आदि को जीविका देकर उन को वहीं रखा। वे उत्तर, (उदीच्य) से आने के कारण 'औदीच्य' कहलाये। गुजरात में बसने के कारण औदीच्य ब्राह्मणों की गणना पीछे से पांच गौडों में हो गये।"

पाठक मिलान करें इन घटनाओं के ऋषि जीवन से। ऋषि औदीच्य ब्राह्मण थे। गुजरात में आने से पांच द्रविणों में गणना हुई। सिद्धपुर के इसी रुद्रमहालय के परिसर में अपने पिता कर्शन त्रिवाडी (त्रिवेदी) से अन्तिम भेंट हुई थी।

आगे ओझा जी का राजपूताने का इतिहास पढ़िये- (यह मूलराज सोलङ्की) बाल्य अवस्था में ही गुजरात का राजा हुआ। सुलतान शाह शाहबुद्दीन गौरी ने गुजरात पर चढ़ाई को आबू के नीचे लड़ाई हुई। सुलतान घायल हुआ। हार खा कर लौट गया। पृ० २२०

आगे पढ़िये—

"बघेल, बघेले (बाघेल) गुजरात के सोलङ्कियों की छोटी शाखा में है। भाटों के ख्यातों में लिखा है - बाघराव के वंशज बघेल कहलाये अर्णोराज ने कुमारपाल की अच्छी सेवा बजाई। जिससे प्रसन्न होकर कुमारपाल ने उस को व्याघ्र पल्ली (बघेल अणवाडे) से १० मील पर गांव दिया उस के नाम से उसके वंशज व्याघ्रपल्लीय या बघेल कहलाये। पृ० २२१-२२२ राजपूताने का इतिहास

"सोलङ्कियों की नीचे लिखी १२ शाखायें बताई हैं-

१, सोलङ्की २. बाघेला (बघेल) .... ।

—सोलङ्की वंश सोलह शाखाओं में इस प्रकार विभाजित है —

१. सोलङ्की २. बघेले ..... ॥ टाडराजस्थान— पृ० ६९.

मूलराज सोलङ्की को छटी पीढी में 'बघेल देव' (या बघेर देव) हुये। उन्होंने दो हजार घुड़सवार लेकर बुन्देल खण्ड पर आक्रमण कर दिया। सतपुड़ा और विन्ध्याचल के मध्य मानकपुर स्टेशन के समीपस्थ चित्रकूट का पूर्वी भाग और इलाहाबाद का दक्षिण भाग अर्थात् ४०० मील लम्बा १५० मील चौड़ा भाग जीत लिया। नर्वदा का निकास स्थान अमरकण्टक पहाड़ तक उस भाग में आ गया। रीवां राज्य की नींव डाली और शासन करने लगा। २०० वर्ष के बाद हिजरी सन् ११५६ में लगभग १६ वीं ईस्वी शताब्दी में तिरवाह किला बनाया गया राज्य का विस्तार भी हो गया। जिस के अन्तिम राजा कैप्टिन दुर्गा नारायण सिंह सोलङ्की बुन्देल खण्ड के तालुकेदार हुये। महाराज रीवां गङ्गा स्नान के लिए सदा की भांति अब भी बिठूर पहुंचते हैं।

कन्नौज और कानपुर के बीच बिठूर २७ मील पर है। बलघे या बाघेल या बघेर इसी तिरवाह राज्य के थे। जिन्होंने ५७ की क्रान्ति में भाग लिया। बाघेरों के ८० गांव हैं। उनमें से २७ गांव जो कभी मुसलमान हो गए थे, कैप्टिन दुर्गानारायण सिंह ने शुद्ध किये थे। जब वे शुद्धि सभा के प्रधान थे। ठाकुर संसारसिंह उन दिनों उन के साथ शुद्धि का कार्य करते थे। यह सब वर्णन तिरवाह राज्य के इतिहास में हैं।

(शेष पृष्ठ ७ पर)

महर्षि दयानन्द को विष दिया गया (७)

ऋषिवर के बलिदान की अमर कहानी।

लेखक—(श्री राजेन्द्र जिज्ञासु एम० ए० बी०टी० अबोहर)

ऐतिहासिक प्रमाण

मैं पूर्व के लेखों में सब आवश्यक प्रमाण व युक्तियाँ संक्षेप से दे चुका हूँ। इस लेखमाला को समाप्त करने का विचार था। इसी बीच एक आवश्यक कार्य के लिये हिसार रोहतक जाना पड़ा। हिसार समाज में इसी विषय पर १½ घण्टा मेरा व्याख्यान हुआ। वहाँ ग्राम सज्जनों व आर्य विद्वानों से इसी विषय पर चर्चा होती रही। रोहतक के आर्य समाज व माडल टाउन के कुछ सज्जनों ने भी इस विषय पर कुछ चर्चा की। आर्यमर्यादा के ये लेख समाजों में बड़े उत्साह व सुरुचि से पढ़कर सुनाये जा रहे हैं। कुछ प्रश्न किये गये। उनके समाधान के साथ कुछ नये प्रमाण भी देता हूँ।

महर्षि के बलिदान की घटना को झुठलाने का विफल व घृणित प्रयास प्रि० श्रीराम शर्मा जी ने ही सर्वप्रथम किया है। Illustrated Weekly वाले मिस्टर सिंह ने तो इनकी तथाकथित वैज्ञानिक खोज की आड़ में अपना नाम चमकाने व आर्यसमाज के प्रति अपना द्वेषभाव प्रकट करने का इसमें सुअवसर पाया। स्मरण रहे कि बोकली वालों के ही एक दैनिक में १४-१२-७२ को आर्यसमाज के विषय में एक और सर्वथा झूठा लेख छपा है। हमने उसके लेख को भी चैलेंज दिया है कि अपनी बात की पुष्टि में एक भी वाक्य व शब्द प्रमाण रूप में लाये। अस्तु !

प्रि० शर्मा जी ने ही १९५९ ई० में शोलापुर से प्रि० बहादुर मल की एक पुस्तक महर्षि दयानन्द व उनकी शिक्षाओं पर प्रकाशित करवाई। प्रि० बहादुर मल दयानन्द संस्थाओं से सेवा निवृत्ति होकर आर्यसमाज के क्षेत्र में कभी देखे नहीं गये। प्रि० शर्मा जी द्वारा छपवाई गई इस पुस्तक में लिखा है :—

"and a conspiracy was hatched against the life of Swami Dayanand, and this time it succeeded. Poison was administered to him and it was only after a time that he suspected foul play. He tried to throw out the poison by vomitting as he had previously done on a number of occasions, but it had no effect."

(Swami Dayanand And His Teachings Page II)

इसका भाव यह है कि षड्यन्त्र करके ऋषि को विष दिया गया, यह सफल रहा। ऋषि ने विष को न्यौली द्वारा बाहर फेंकने का प्रयास किया। वह इससे पूर्व भी विष दिये जाने पर ऐसा ही करते रहे परन्तु इसका प्रभाव हो के रहा। इसमें यह भी कहा गया है कि ऋषि को विष दिये जाने के कुछ समय पश्चात् इसका सन्देह हुआ।

लीजिए प्रि० शर्मा जी द्वारा उनकी कल्पना का भवन भूमि पर बिछ गया। वह कहते रहे कि ऋषि ने विष के बारे में किसी को कुछ न कहा। वह कहते थे कोई षड्यन्त्र नहीं किया गया। विष न दिया गया। इस एक पैरे में जो उन्हीं की छपवाई पुस्तक से हम यहां दे रहे हैं—उनकी तीनों मिथ्या कल्पनाओं का प्रतिवाद हो गया। अब हम पूछते हैं शर्मा जी क्या तब तक आपने ऋषि जीवन नहीं पढ़ा था ? पढ़ा था तो क्या 'अंध श्रद्धा' से आपने इसे जोड़ दिया ? आप आज तक इसका प्रतिवाद करने का साहस क्यों न कर पाये ? क्या हरयाणा सरकार के ५०००० रु० को ठिकाने लगाने के लिये ही आपको एक उच्छृङ्खल कल्पना का भवन खड़ा करना पड़ा ? खोज तो आपने कुछ की नहीं। काम सौंपा गया ऋषि जीवन की खोज का। उसमें कोई नई व महत्त्वपूर्ण प्रामाणिक खोज देने में आप असमर्थ रहे। जीवन को छोड़कर झट मृत्यु पर जा पहुंचे। खोज के नाम पर आपने अपने नाम की सनक व मन के छिपे पाप को प्रकट कर दिया।

यह कार्य हरयाणा सरकार ने पंजाब विश्वविद्यालय को सौंपा। विश्वविद्यालय ने शर्मा जी को सौंपा। सौभाग्य से विश्वविद्यालय के उप-कुलपति श्री सूर्य भानु जी भी ऋषि जीवन चरित्र लेखकों में से एक हैं। उनकी सम्मति भी पाठक पढ़ लें :—

"I did poison the milk you took last evening I have committed a sin." (Dayanand his life and work P 74) जगन्नाथ ऋषि से कहता है कि जो दूध आपने गत सायंकाल लिया मैंने उसमें विषय मिलाया। मैंने यह पाप किया। फिर लिखा है :—

The latter stated that he had been poisoned, and if he had come to Ajmer earlier, very probably the poison could have been got rid of." P.76) अर्थात् पीर इमाम अली हकीम ने कहा कि ऋषि को विष दिया गया है। यदि कुछ पहिले अजमेर आ जाते तो सम्भव है विष से बचाव हो जाता।

" .... the poison had been absorbed into the system." (P. 76) सारे शरीर में विष प्रविष्ट हो गया। क्या प्रि० सूर्य भानु भी 'अंध श्रद्धा' की सूली पर चढ़ाये जायेंगे ? हम समझते हैं कि उपकुलपति महोदय को इस गम्भीर विषय पर स्पष्ट रूप से अपने विचार देने चाहिएँ। वह प्रादेशिक सभा के भूतपूर्व प्रधान हैं। पूज्य महात्मा हंसराज जी के उत्तराधिकारियों में से एक प्रतिष्ठित व्यक्ति हैं। उन्हें कदापि झूठ को सहन नहीं करना चाहिये। इतने बड़े पाप को देखकर उन्हें डटकर मैदान में आना चाहिये था। उनका कार्य हमें करना पड़ रहा है। आशा है वह अवश्य इस अनर्थ के विरुद्ध बोलेंगे। उनकी स्पष्ट सम्मति तो हमने ऊपर दे दी है।

एक सज्जन ने कहा ला० लाजपत राय वाले जीवन चरित्र में विष के बारे में कहाँ लिखा है। मेरा निवेदन है कि पृष्ठ २७२ पर श्री पं० लेखराम का प्रमाण देकर ला० जी ने विष दिये जाने का उल्लेख किया है। पीर इमाम अली हकीम का नाम लिये बिना पृष्ठ २६६ हर खारची के स्थान पर उनकी औषधि दिये जाने की चर्चा है। वैसे भी ऋषि के कार्यों के मूल्यांकन में भी विष देने की चर्चा है।

१९२७ के दैनिक तेज के अंक में साधु वासवानी ने महर्षि के प्रति लिखा, "वह वीरगति पा गये।" इतिहासज्ञ पं० भगवद्दत्त जी की खोज भी यही थी कि षड्यन्त्र से विष दिया गया। 'मारवाड़ का भीषण पाप' चाँद मासिक पत्रिका में तो बहुत विस्तार से इस विषय पर लिखा है। ज्ञानवृद्धवयोवृद्ध म० नारायण स्वामी जी की भी यही खोज थी। ●

(पृ० ६ का शेष)

बिठूर के पास कुरमी और बाघेर बसते हैं। कुरमी खेती बाडी करते हैं। बाघेर या बघेले सोलङ्की हैं। विन्ध्याचल, प्रयागराज, जबलपुर तक एक शाखा बाघेरों की कन्नौज के पास भी है। ४०, ५० गांव हैं। इन्हीं बाघेरों का उल्लेख सत्यार्थ प्रकाश में ऋषिवर ने किया। जब कि उन्होंने उन की वीरता अपनी आखों देखी थी। बाघेरों ने ही बुन्देल खण्ड बसाया। बुन्देल खण्ड में ही चन्देले हुये। इन्हीं के बारे में मैथिली शरण गुप्त ने लिखा है:-

बुन्देले चन्देलों का सुना जुबानी। खूब लड़ी थी वह झांसी की रानी॥

इतिहास पढ़ो भवानीलाल जी और भी रहस्य खुलेंगे। फरुखाबाद और बिजनौर की सीमायें मिलती हैं। बिठूर भी बहुत दूर नही है। बिठुर का स्नेह ही ऋषि को फरुखाबाद और कन्नौज ले गया। मिट्टी की वीरता देखकर ही फरुखाबाद वैदिक पाठशाला खोली थी। भारत सुदशाप्रवर्तक मासिक भी वहां से जारी किया था।

इस प्रकार यह निर्विवाद है कि बाघेर गुजरात से आकर बुन्देलखण्ड को जीत कर बसे और ५७ की क्रान्ति में अंग्रेजों से लोहा लिया इन्हीं वीरों को सत्यार्थ प्रकाश में ऋषि ने प्रशस्ति के साथ स्मरण किया।

—क्रमशः-

एक मुसलमान सज्जन का पत्र

(श्री सुरेन्द्र सिंह कादियाण w/z 79 राजा पार्क शकूरबस्ती, दिल्ली 34)

'आर्यमर्यादा' के ३१ दिसम्बर १९७२ के अंक में पृष्ठ ८ पर उपरोक्त शीर्षक से भाई अख़तर का पत्र प्रकाशित हुआ है। यह पत्र मेरे उस लेख की प्रतिक्रिया में लिखा गया है जो 'जमायत इस्लामी का आर्यमर्यादा पर रोष' शीर्षक के अन्तर्गत आर्यमर्यादा में प्रकाशित हुआ है। अख़तर साहब के पत्र की मुख्य बातें इस प्रकार हैं :

१. जो कुछ बंगला देश में हुआ वह तो आये दिन यहाँ भारत जैसे देश में होता रहता है। २. भारत में मुसलमान जिस जुल्म के शिकार हो रहे हैं क्या उसके विरुद्ध सम्पादक महोदय ने अपने पत्र में कभी सरकार की आलोचना की है। ३. हमारे साथ हो रहे अन्याय के विरुद्ध कोई कुछ नहीं कहता तब दूसरे मुल्क में हो रहे ऐसे ही अन्याय की आलोचना करने का क्या फायदा ? ४. अपने को दुरुस्त करके राहेरास्त पर लाओ फिर दूसरों को एतराज करना ठीक है। पत्र लिखते समय अख़तर साहब का वही दृष्टिकोण व मनोवृत्ति रही है जो भारत पाक युद्ध के दौरान मुस्लिम पत्र पत्रिकाओं में पहले ही काफी स्पष्ट हो चुकी है। बंगला देश में हुए नरसंहार को औचित्यपूर्ण सिद्ध करने के लिए जो रवैया साम्प्रदायिक नेताओं ने अपनाया उसी का अनुमोदन अख़तर साहब ने अपने इस पत्र में किया है। वे लिखते हैं कि बंगला देश में जो हुआ वह तो आय दिन यहाँ भारत जैसे देश में होता रहता है। इन शब्दों को पढ़ कर ऐसा आभास होता है कि या तो हम सोये पड़े हैं या फिर अख़तर साहब की आंखें जरूरत से ज्यादा खुली हैं। यदि हम ही सोये पड़े हैं तो अख़तर मियां को स्पष्ट करना चाहिये कि भारतीय सेना ने कितने मुसलमानों की सामूहिक हत्या की है, कितनी मुस्लिम बहनों की अस्मत को लूटा है अथवा कितने मुस्लिम वकील, प्रोफेसर, पत्रकार व बुद्धिजीवी उनकी गोली के शिकार हुए हैं। अख़तर मियां को यह भी स्पष्ट करना होगा कि धर्म के नाम पर यहाँ कितनी मुस्लिम बहनों के सुहाग को पोंछा है, कितनी माताओं को सन्तानहीन बनाया है, कितनी कुआरियों को विवश होकर मां बनना पड़ा है अथवा कितनी बहनें अत्याचार सहते सहते पागल हुई नग्नावस्था में सड़कों पर घूम रही हैं, चीत्कार कर रही हैं। अख़तर साहब को यदि भारत में यह सब कुछ दिखाई दे रहा है तो उन्हें यह भी बतलाना चाहिये कि यहां कितने मुसलमनों के घर सम्पत्ति पर जबरन अधिकार हुआ है, कितने घरों व मकानों को फूंका गया है अथवा कितने मुसलमान शरणार्थी के रूप में पाकिस्तान में चले गये हैं। अख़तर मियां स्पष्ट कीजिये यहाँ शक्ति के मद में कितने मुसलमानों को धर्मपरिवर्तन के लिये विवश किया गया है, कितनी मुस्लिम देवियों का विवाह गैर मुस्लिमों से हुआ है अथवा कितनी मस्जिदों को मिट्टी में मिलाया व तोड़ा फुड़वाया गया है।

साम्प्रदायिक मुसलमान नेताओं द्वारा यह हौवा खड़ा किया गया है कि भारतीय मुसलमान भारी जुल्म के शिकार हो रहे हैं। इस षड्यंत्र और कमीनी हरकत का मूलोच्छेद पूना के युवा मुस्लिम नेता हमीद दलवाई, मेहरुद्दीन खां, जहीर न्याजी जैसे राष्ट्रवादी मुसलमान भली भाँति कर रहे हैं। बूढ़े छागला साहब भी इस झूठ से जूझ रहे हैं। मुसलमान यदि आर्थिक संकट में फंसे हुए हैं तो इसका कारण वे स्वयं हैं। परिवार नियोजित करने का परामर्श यदि उन्हें दिया जाता है तो उन्हें डर रहता है कि हिन्दुओं के बीच वे अल्पसंख्यक ही बने रहेंगे। मजहबी मक्तबों को छोड़ स्कूल कालेजों में जाना उनके लिये नापाक ख्याल है। उर्दू फारसी से विमुख हो हिन्दी पढ़ना उनकी दृष्टि में इस्लामी परम्परा का अपमान है। घर में चाहे दाने न हों लेकिन तीन शादियों का विचार रखना उनकी दृष्टि में मजहब की सच्ची सेवा है। हाथ पाँव हिलाकर रोजी कमाना उन्हें गंवारा नहीं लेकिन मछली, मुर्गाबी, बटेर, तीतर, कबूतर, खरगोश आदि का शिकार कर पेट भरना उनकी इज्जत में चार चाँद लगाता है। ऐसी स्थिति में उनका आर्थिक विकास असम्भव है, युग के साथ जो कदम मिला कर नहीं चलता उन्हें परेशानी तो उठानी ही पड़ेगी। इसका दोष न हिन्दू के सिर मढ़ा जा सकता है और न ही सरकार के सिर। धर्म के नाम पर मुसलमानों के प्रति कोई अत्याचार यहाँ हुआ हो ऐसा दिखाई नहीं पड़ता। साम्प्रदायिक उपद्रवों का यदि विश्लेषण किया जाये तो वहां भी धर्म का नहीं राजनीति का ही हस्तक्षेप अधिक दिखाई पड़ता है। और राजनीति का यह भौंडा खेल भी मुस्लिम नेताओं की पहल का परिणाम होता है। अहमदाबाद और उसके पश्चात् जलगांव भिवण्डी व अलीगढ़ में जो हुआ उसे देखते हुए अख़तर साहब को अपने खत पर पुनर्विचार करना चाहिए। दो तीन साल पहले संसद में २३ साम्प्रदायिक उपद्रवों की रिपोर्ट प्रस्तुत हुई थी जिसमें सभी उपद्रवों के प्रारम्भ का दोष मुसलमानों के सिर पर आया था। आजादी से पूर्व मुस्लिम लीग की कारगुजारियों का अध्ययन अख़तर साहब को करना चाहिये और उसके बाद उन्हें इस तथ्य पर भी विचार करना होगा कि अधिकांश मुस्लिम लीगी पाकिस्तान बनने के पश्चात् भारत में ही रहे। तो क्या वे चुपचाप बैठे होंगे ?

मुसलमानों के साथ जब किसी प्रकार का अन्याय यहाँ हो नहीं रहा तो उसके विरुद्ध कोई आवाज उठाये भी तो कैसे उठाये ? बंगला देश में जो अन्याय हुआ उसका शतांश भी यहाँ दृष्टिगोचर नहीं हो रहा। अपने धर्म पर चलने की पूरी छूट उन्हें प्राप्त है, अपनी इच्छानुसार जीवन व्यतीत करने की उन्हें छूट है, फिर अन्याय आखिर हो कहाँ रहा है ? यदि किसी काल्पनिक जगत् में यह हो ही रहा है तो उसके विरुद्ध मुस्लिम पत्रों में आग उगलती ही रहती है। अन्याय चाहे भारत में हो या बंगला देश में हो अथवा किसी अन्य देश में हो उसकी आलोचना न तो अस्वाभाविक मानी जा सकती है और न ही मानव हितों के प्रतिकूल समझी जा सकती है धर्म के नाम पर यदि अन्याय होता है तो उसे न्याय की संज्ञा नहीं दी जा सकती। बंगला देश में पाश्विकता का जो खुला खेल खेला गया सारे संसार में उसकी निन्दा व आलोचना हुई है, यदि भारत ने एक पड़ोसी के लिये सहानुभूति के दो शब्द कह ही दिये तो उस से अख़तर जैसे मुसलमानों को परेशानी क्यों उठानी पड़ रही है ?

अख़तर साहब फरमाते हैं कि दूसरों पर अंगुली तब उठानी चाहिये जब अपना आपा ठीक हो। क्या इसका अर्थ यह लगा लिया जावे कि यदि किसी वैद्य हकीम को कोई रोग है तो वह तब तक रोगियों का उपचार करने के योग्य नहीं जब तक कि वह स्वयं रोगमुक्त न हो जाय ? क्या दूसरे शब्दों में इसका मतलब यह निकाल लिया जाय कि गरीबी के विरुद्ध किसी गरीब को बोलने का अधिकार नहीं है। हम में भी गलतियां हो सकती हैं लेकिन इसका अर्थ यह तो नहीं कि यदि उन्हीं गलतियों को कोई दूसरा करे तो वे जायज मानी जायेंगी या मानी जानी चाहियें। गलती तो गलती ही कहलायेगी भले ही वह भारत में होती हो या कहीं और। अपनी गलतियों को सुधारने में यदि देर हो जाय तो इसका भाव यह नहीं कि उस समय तक वैसी ही गलतियों के विरुद्ध बोलने का हम अधिकार खो बैठें हैं। गलतियों के कारण व उपचार समय व स्थान के कारण भिन्न भिन्न हो सकते हैं इसका ध्यान भी हमें रहना चाहिये।

अख़तर मियां ने मेरे लेख के उसी अंश पर प्रतिक्रिया व्यक्त की है जो बंगला देश से सम्बन्धित था। क्या लेख के शेष भाग का वह समर्थन करते हैं ? यदि हाँ तो उनके पत्र में लिखी बातों का कोई औचित्य सिद्ध नहीं होता। और यदि वे लेख के शेष भाग से भी असंतुष्ट हैं तो उन्हें पत्र नहीं लेख लिख कर भेजना चाहिये। मेरा लेख आर्यमर्यादा में चार किस्तों में प्रकाशित हुआ है, हम आशा करते हैं कि इन सभी किस्तों को पुनः पढ़कर अख़तर भाई कुछ विस्तार से लिखेंगे। रही सम्पादक महोदय की बात तो वे इतने उदारचित्त हैं कि आपके लेख को उसी प्रकार प्रकाशित करेंगे जैसे कि आपके पत्र को प्रकाशित कर चुके हैं। ●

"परिवार नियोजन के विज्ञपान की भाषा की प्रतिलिपियां"

जिनकी जितनी लाठियां उनका उतना ही जोर।
सयाने तो कहते हैं :

पर भगत इसको सच नहीं मानता। वह जानता है कि नई खेती बाड़ी और शिक्षा-दीक्षा के कारण आज लाठियों की नहीं दिमाग की जरूरत है। अपनी सूझ बूझ के कारण ही तो उसने अपनी फसलों की पैदावार इतनी बढ़ा ली है। शिक्षा दीक्षा से उसके बच्चे और तरक्की करेंगे। पृ० ६

१४-६-७२ तथा १७-६-७२—देश की शक्ति उसकी जनसंख्या नहीं बल्कि उसके स्वस्थ और शिक्षित नागरिक हैं। छोटे परिवार का अर्थ—स्वस्थ बच्चे। हर एक के लिये अच्छी शिक्षा।

१५-१०-७२—राजू कब तक अकेला रहेगा। राजू दो साल का था। लेकिन चम्पा की सास परिवार में एक और बच्चा चाहती थी। उसके सोचने का ढंग ही ऐसा था। लेकिन चम्पा जानती है कि राजू के सही विकास के लिये यह जरूरी है कि उसे कम से कम एक और साल तक लाड-प्यार मिले और ठीक देखभाल हो। बच्चों के जन्म में सही अन्तर होने पर वे स्वस्थ रहते हैं।

२६-११-७२—सुनीता खुश है, लेकिन मालती चिन्ता से घुली जा रही है। बार बार गर्भ धारण से मालती की सेहत तबाह हो गई और उसे मिले कमजोर और बीमार बच्चे। सुनीता ने समझदारी से काम लिया और अपने परिवार को सीमित रखा। परिवार नियोजन के तरीकों की जानकारी ने उसके परिवार के जीवन की खुशियों ने भर दिया। छोटा परिवार स्वस्थ परिवार।

१७-१२-७२—क्या यह कहना ठीक है कि ज्यादा बच्चे हों तो भविष्य में आमदनी भी ज्यादा होगी? अक्सर कहा जाता है कि हर बच्चा अपने साथ दो हाथ लेकर पैदा होता है। लेकिन याद रहे कि आदमी खाता-पीता तो जीवन भर है और उपजाने का काम कुछ वर्षों तक ही कर पाता है नये तरीकों से आप उत्पादन बढ़ा सकते हैं। लेकिन इनके इस्तेमाल के लिये अच्छी शिक्षा और कुशलता की जरूरत है। एक पढ़ा लिखा व्यक्ति जिन्दगी में अनपढ़ों से सदा अच्छा रहता है। अगर आपके ज्यादा बच्चे होंगे तो अच्छी शिक्षा और खुराक देने में आपको काफी दिक्कत होगी। सीमित संख्या में पढ़े लिखे और सेहतमन्द बच्चे, बहुत से अनपढ़ और कमजोर बच्चों से ज्यादा कमा सकते हैं।।

२४ तथा ३१ दिसम्बर ७२—(क) क्या आप परिवार नियोजन के बारे में सभी कुछ जानते हैं? तब इसे मत पढ़िये, और यदि आप उन लोगों में हैं जिनकी कथनी और करनी में अन्तर है तो बात दूसरी है। यदि आपको इस बारे में पूरी जानकारी नहीं है और इसीलिये आप इस पर व्यवहार नहीं कर रहे हैं तो हमारे पास आइये। यहां हम आपके सवालों का जवाब देने, आपके सन्देह और संघर्ष दूर करने के लिये हैं। संक्षेप में, हम आपकी सहायता करने के लिये हैं। डाक्टर साहिब आपकी समस्याओं के बारे में सुनेंगे और आपको आपकी आवश्यकताओं के अनुसार उचित सलाह देंगे। आप कोई भी सवाल कर सकते हैं। हम उनका स्वागत करते हैं जो अधिक जानना चाहते हैं।

(ख) केवल आपको याद दिलाने के लिये व्यक्तिगत। शायद आप हमारे पास आना और डाक्टर साहिब से सलाह लेना चाहते हैं। हम केवल आपको याद दिला रहे हैं। आपका हार्दिक स्वागत है। शायद आप हिचकिचा रहे हों क्यों कुछ मामलों पर आपको अधिक सूचनाएं चाहिये। आपको कुछ सन्देह कुरेदते रहते हैं। कुछ बातें जो साफ नहीं हैं. आपको परेशान कर रही हैं। जो भी हो, डाक्टर साहिब से सलाह लीजिये। आपकी परेशानी दूर होगी। आपने जो कुछ साहित्य पढ़ा है। वह काफी नहीं है। आप जानते ही हैं सभी बातें पुस्तकों में लिखी नहीं जा सकतीं; कम से कम उनमें आपकी निजी समस्याओं पर विचार नहीं किया जा सकता। लेकिन आप विशेषज्ञ से सभी बातें खुलकर कह सकते हैं। परिवार कल्याण नियोजन केन्द्र में डाक्टर से सलाह लीजिये।

(ग) अब आएं अपनी पत्नी को भी साथ लाएं, हम परिवार नियोजन केन्द्र में आपकी बातें सुनने को तैयार हैं। आपकी व्यक्तिगत समस्याओं पर विचार करने और उन्हें हल करने के सुझाव देने को तैयार हैं। आपसे आपका जीवन अधिक सुखी हो जावेगा। आप हमारे पास आजादी के साथ बातचीत कर सकते हैं। आप हमसे कोई भी सवाल पूछ सकते हैं, यहां तक कि ऐसा सवाल भी, जिसे आप अपने मित्रों से पूछते हुए झिझकें। अपने साथ अपनी पत्नी को भी लाना समझदारी होगी। वह लेडी डाक्टर से बात कर लेंगी। वह उनसे अनेक ऐसे सवाल पूछ सकती हैं, जिन्हें आपसे पूछने में वह हिचकिचाती हैं। जब आप घर लौटेंगे तो आप पाएंगे कि आपका विवाहित जीवन अधिक सुखी हो गया है। क्योंकि अब आपकी पत्नी अधिक समझदार हो गई है।।

२१-१-७३ आपका अनमोल बच्चा। आपका प्यारा बच्चा। आप उसकी इच्छा पूरी करने के लिये आसमान के तारे भी तोड़कर लाने को तैयार हैं। लेकिन अगर आपके बच्चे बहुत ज्यादा हों तो आप उनकी इच्छाओं और जरूरतों को पूरा नहीं कर सकते। दूसरा बच्चा तीन साल बाद। अपने पास के परिवार कल्याण नियोजन केन्द्र से सलाह लीजिये।।

"आर्यमर्यादा"

परिवार नियोजन की समस्या पर विचार

भारत सरकार परिवार नियोजन की समस्या के समाधान पर बहुत प्रचार कर रही है। राष्ट्र की जनसंख्या प्रति वर्ष बढ़ती जा रही है। उसी हिसाब से अन्न, निवास, रोजगार, मजदूरी आदि के लिये प्रबन्ध करना होता है। राज्य भी इस काम को ठीक रखने के लिये पूरा बल लगा रहे हैं, सरकारी मशीनरी जगह जगह कैम्प लगाकर जनता को कहती है कि सन्तान कम पैदा करो। गृहस्थियों को नसबन्धी करानी चाहिये। ऐसे लोगों को ६० रु० नकद सरकार देती है। ६) रु० उस व्यक्ति को देती है जो कि नसबन्धी करवाने के लिये कैम्प में लावें। हस्पताल में डाक्टर, दवाई भोजनादि का प्रबन्ध सरकारी रूप से होता है। इसी बात के लिये सरकार अखबारों को खूब विज्ञापन देती है। दीवारों पर इश्तिहार लगवाये जाते हैं। हम सरकार की नियत पर सन्देह नहीं करते, परन्तु स्पष्ट घोषित करते हैं कि सरकार का प्रचार तन्त्र मिथ्या ढंग पर चलाया जा रहा है। यह सर्वथा अनुचित है। पाप प्रवर्त्तक है। परन्तु जनता को विवश नहीं किया जाता, कि वह नसबन्धी करवाये। यह जनता की इच्छा पर निर्भर है। परन्तु जनता सन्तानों के बोझ से दुःखी है, वह यही समझती है कि इस भार से पिण्ड इसी प्रकार छूट सकता है कि नसबन्धी करवाये। यह जनता का स्वयं स्वीकृत दोष है। इस पाप का यह परिणाम है कि पुरुष और स्त्री के स्वास्थ्य का नाश हो जाता है, अतः सरकार के जोर देने पर भी जनता को इस पापकर्म से दूर रहना आवश्यक है।

प्राचीनकाल में वर्णाश्रम की मर्यादा प्रचलित थी। ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास में केवल गृहस्थी ही सन्तान पैदा करता था। २५ वर्ष से पूर्व युवा और १६ वर्ष से पूर्व युवति विवाह बन्धन में नहीं बन्धते थे। ब्रह्मचर्य का पूरा पालन किया जाता था गृहस्थ के २५ वर्ष के पश्चात् सन्तान पैदा नहीं की जाती थी। गृहस्थ में भी नियमपूर्वक सन्तान के लिये ही गर्भाधान संस्कार होता था। इस कारण सन्तानें अधिक नहीं होती थीं। यह रीति सन्तान कम करने की सर्वोत्तम थी। आज नवीन शिक्षा प्रणाली ने पुरानी प्रणाली का नाश कर दिया। बच्चों के विवाह होते हैं। ६५-७० वर्ष तक सन्तान पैदा करते है। फिर सन्तानों का भरण पोषण कैसे हो सकता है। अतः सरकारी तन्त्र की शरण लेते हैं। बुरी चीज होते हुए भी खानपान की सुविधा चाहते हैं।

अच्छा यह है कि सरकार और जनता पुरानी ब्रह्मचर्य प्रणाली का प्रचार और पालन करे।

अब हम आर्यमर्यादा की बात लेते हैं। अन्य अखबारों की भान्ति हमारे पास भी लूप, नसबन्धी आदि के विज्ञापन ब्लाक सहित आते थे। हम तुरन्त लौटा देते थे। अब कुछ समय से सरकारी मशीनरी का ढंग बदला और इश्तिहार तथा ब्लाकों का ढंग बदल दिया है। इसी परिवर्तन का साक्षात् प्रमाण इसी अंक के पृष्ठ ११ पर देख सकते हैं। इस ब्लाक में जो विज्ञापन है। उससे परिवार नियोजन का जो लाभ बताया है। उससे किसी शिष्ट को आपत्ति नहीं हो सकती। यह लेख हमने इसलिये लिखना पड़ा कि एक सज्जन ने विना विचार किये हम पर आरोप लगा दिया। आशा है वह सज्जन स्वयं अब विचार कर लेंगे। परिवार नियोजन का नाम सुनते ही भड़क उठना उचित नहीं। इस पर गम्भीरता से विचार करना चाहिये। यदि इसमें आपत्तिजनक कोई बात नहीं है तो ग्रहण करना और अनुचित बात प्रतीत होवे तो उसका त्याग करना आवश्यक है। हमने यही किया है।। —सिद्धान्ती शास्त्री (अगले पृष्ठ पर)—

गत पृष्ठ से आगे—

आर्यमर्यादा किस राह पर ?

श्री सत्यप्रिय जी शास्त्री उपाचार्य
(दयानन्द ब्राह्म महाविद्यालय हिसार)

मैं आर्यमर्यादा साप्ताहिक का न केवल नियमित पाठक हूं प्रत्युत यदा कदा उसमें लेख भी देता रहता हूं, इसका कारण इसके सम्पादक जी का सिद्धान्तनिष्ठता एवं सिद्धान्त प्रतिपादन में निर्भीक वृत्ति अपनाना है, परन्तु अभी लगभग दो तीन सप्ताह से लगातार उक्त पत्रिका में अन्तिम तीन पृष्ठ लगातार परिवार नियोजन के विज्ञापन के होते हैं। आश्चर्य होता है कि हमारे चोटी के सिद्धान्तज्ञ भी पैसे पर फिसलने लग गये हैं। हम तो समझते थे कि लोटे में ही भांग पड़ी है, परन्तु यहां तो कुवे में ही भांग पड़ी है, सभी बुद्धिमानों को पता है कि इस परिवार नियोजन की आड़ में सरकार हिन्दुओं की जनसंख्या कम करने का कूटनीतिक षड्यन्त्र कर रही है, कोई मुसलमान ईसाई इसका प्रचार नहीं करता प्रत्युत सभी विरोध करते हैं, इसी कारण उनकी जनसंख्या बढ़ती जा रही है, परन्तु दुर्भाग्य हमारा कि हमारे कर्णधार ही पैसे के लोभ में सरकार के जाल में जा फंसे हैं। वे स्वयं तो वहां फंसते हैं परन्तु भोले भाले आर्यों को और फंसाते हैं और उनके कारण इस परिवार नियोजन में हिन्दुओं की रुचि बढ़ती है, परिणाम स्वरूप पतन तथा ह्रास होता है।

इसमें भी पढ़ा लिखा तबका अधिक रुचि लेता है, भविष्य में इसका यह दुष्परिणाम होगा कि हममें बुद्धिजीवी वर्ग कम होगा तथा बुद्धिहीन वर्ग बढ़ेगा, परिणामस्वरूप उन्नति के क्षेत्र में पिछड़ जायेंगे एक ओर तो सभा के प्रचारक परिवार नियोजन के विरोध में स्टेजों से गले फाड़ते हैं, दूसरी ओर उसी सभा का प्रमुख पत्र प्रति सप्ताह तीन पृष्ठों का विज्ञापन देता है। बस हो गया कल्याण आर्यसमाज का। आप लोग स्पष्ट सामने क्यों नहीं आते ? पक्के कांग्रेसी बनकर जनता के सामने, और आर्यसमाजीपने की खाल ओढ़कर अपने कांग्रेसीपने को छिपाने का व्यर्थ प्रयास क्यों किया जाता है ? क्या सिद्धान्त केवल लेखों तक ही सीमित रहेंगे ? या सिद्धान्तों का प्रभाव विज्ञापनों पर भी होगा ? यदि नहीं तो फिर आपके पत्र और उन दैनिक पत्रों में क्या अन्तर है जो केवल पैसे के लोभ में अपने पत्रों के सिनेमा संस्करण निकालते रहते हैं या फिर बीस बीस भुजा वाली मनोवाञ्छित फल देने वाली देवी के चित्र प्रकाशित करते रहते हैं, इतने पर भी वे आर्यसमाजी कहने से किसी से पीछे नहीं हैं।

काश कि आप अपने पद की गरिमा बनाये रख सकते होते ? यदि किसी व्यक्तिगत पत्र में ऐसा विज्ञापन छपे तो शायद उससे उतनी हानि न हो तथा उतना व्यापक प्रभाव न पड़े। जितना कि इस पत्र में प्रकाशित होने से होता है, क्योंकि यह पत्र एक उस सभा का है, जो प्रान्त के समस्त समाजों की नायिका है, उसके पत्र में इस विज्ञापन का होना सभा तथा समाजों की नीति समझ लिया जाना स्वाभाविक है और ऐसा समझा जाना एक महान् अनर्थ तथा हानि को जन्म देने वाला है, वैसे भी परिवार नियोजन के वर्तमान कार्यक्रम एवं स्वरूप को ऋषि दयानन्द के मन्तव्यों के अनुकूल नहीं कहा जा सकता, क्योंकि महर्षि तो इस विषय में संयम तथा ब्रह्मचर्य को ही स्वीकार करते हैं। इस कारण समस्त आर्य-जगत् इसका एक स्वर से विरोध करता है, ऐसे सिद्धान्त के विरुद्ध, हानिकारक तथा कूटनीति मूलक विज्ञापनों को आर्यजगत् की प्रमुख पत्रिका में थोड़ा बहुत नहीं तथा अल्पकालीन नहीं बल्कि पूरे तीन पृष्ठ तथा लगातार स्थान देना आर्यजगत् को पथभ्रष्ट करना नहीं तो क्या है ? ठीक इससे प्राप्त राशि के बदले आपको अन्य उत्तम विज्ञापनों से आय हो सकती है। अतः हमारी प्रार्थना है कि आर्यमर्यादा इस हानि-कारक कार्यक्रम को बन्द करे, अन्यथा आर्यसमाजों में इसके विरुद्ध धीरे धीरे जो रोष पनप रहा है, वह किसी दिन भयंकर रूप धारण कर सकता है, सम्पादक महोदय समय रहते सम्भल जावें तथा भविष्य में होने वाली हानि से समय रहते सुधार कर लेवें अन्यथा इससे आर्यजगत् के रोष का आभास आपको हो ही जावेगा। (सार्वदेशिक)

"आर्यमर्यादा किस राह पर ?" के सम्बन्ध में

यह लेख भी छाप दिया गया है। अब हम इसके बारे में कुछ निवेदन करते हैं।

१. आर्यप्रतिनिधि सभा पंजाब के प्रधान, मन्त्री, कोषाध्यक्ष तथा सम्पादक कोई भी कांग्रेसी नहीं है।

२. आर्यमर्यादा सभा का पत्र है। उसके समाचार अवश्य छापे जाते हैं। परन्तु सम्पादकीय लेख तथा अन्य लेखों पर सभा का कुछ प्रतिबन्ध वा अंकुश नहीं है।

३. सम्पादक अपने लेखों को देने में स्वतन्त्र है।

४. सभा जब चाहे सम्पादक को बदल सकती है और सम्पादक जब चाहे सम्पादक स्थान को छोड़ सकता है।

५. परिवार नियोजन के ब्लाक छापने में सभा का कुछ भी उत्तर-दायित्व नहीं है। केवल सम्पादक की जिम्मेवारी है।

अतः श्री पं० सत्यप्रिय जी शास्त्री के लेख से सभा आदि के सम्बन्ध में जो भ्रान्ति हो सकती थी, उसको हमने निरस्त कर दिया है।

हमने परिवार नियोजन के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट कर दिये थे, उनको भी विद्वान् लेखक के लेख से पूर्व पुनः प्रकाशित कर दिया है। जितने ब्लाक पहिले प्रकाशित हो चुके थे, उनकी भाषा भी सबसे पहिले इसी जगह पुनः छाप दी है। एक नया ब्लाक इसी अंक में पृष्ठ ११ पर छाप दिया है। पाठक महानुभाव ध्यान से सब ब्लाकों की भाषा को पढ़ें। इनमें कहीं भी नसबन्दी आदि का उल्लेख नहीं है, अपितु बच्चों के स्वास्थ्य को उत्तम रखने के भाव दिये हुये हैं।

ऋषि दयानन्द के वचन

(क) जो विवाह करना ही न चाहें वे मरण पर्यन्त ब्रह्मचारी रह सकें तो भले ही रहें परन्तु यह काम पूर्ण विद्या वाले जितेन्द्रिय और निर्दोष योगी स्त्री और पुरुष का है। यह बड़ा कठिन काम है कि जो काम के वेग को थाम के इन्द्रियों को अपने वश में रखना।

(ख) जब एक विवाह होगा तब एक पुरुष को एक स्त्री और एक स्त्री को एक पुरुष रहेगा तब स्त्री गर्भवती स्थिर रोगिणी अथवा पुरुष दीर्घ रोगी हो और दोनों की युवा अवस्था हो, रहा न जाय तो फिर क्या करें ? (उत्तर) इसका उत्तर नियोग विषय में दे चुके हैं। और गर्भवती स्त्री से एक वर्ष समागम न करने के समय में पुरुष से वा दीर्घ रोगी पुरुष की स्त्री से न रहा जाय तो किसी से नियोग करके उसके लिये पुत्रो-त्पत्ति कर दे, परन्तु वेश्यागमन वा व्यभिचार कभी न करे।" आर्य बन्धुओ ! नियोग आज सर्वथा अप्रचलित है। यदि उक्त अवस्था के स्त्री पुरुष इसकी चर्चा भी कर देवें, तो सब जानते हैं उनकी क्या दुर्दशा समाज में होवे। नियोग तो दूर की बात है। अपितु द्विजों में पुनर्विवाह का निषेध ऋषि दयानन्द ने किया, परन्तु मथुरा जन्म शताब्दी में आर्यसमाज ने द्विजों में पुनर्विवाह की व्यवस्था की थी।

(ग) गर्भ स्थिति का निश्चय हो जाय तब से एक वर्ष पर्यन्त स्त्री पुरुष का समागम कभी न होना चाहिये।

(घ) दूसरा समुल्लास—गर्भ स्थिति के पश्चात् एक वर्ष तक संयुक्त न हों।

(ङ) दूध रोकने के लिये स्तन के छिद्र पर उस औषधि का लेप करे जिससे दूध स्रवित न हो। ऐसे करने से दूसरे महीने में पुनरपि युवति हो जाती है।

(च) संस्कारविधि (पुंसवन संस्कार)—यावत् बालक के जन्म हुए पश्चात् दो महीने न बीत जावें तब तक पुरुष ब्रह्मचारी रहकर स्वप्न में भी वीर्य को नष्ट न होने देवे। उपर्युक्त ऋषि वचनों से सिद्ध है कि बालक के जन्म के पश्चात् १ वर्ष छोड़कर पुनः गर्भाधान किया जा सकता है। परिवार नियोजन में तो दो बालकों में ३ वर्ष का अन्तर होना चाहिये।

आदरणीय श्री शास्त्री जी ! आप आर्यजगत् के प्रसिद्ध विद्वान् हैं, और समाज की वर्त्तमान अवस्था को जानते हैं, अतः परिवार नियोजन के गुण अवगुणों पर गम्भीर विचार करके अवगुणों का खण्डन और गुणों का ग्रहण करने का आर्यजगत् को सुझाव दीजिये। आर्य बन्धुओं से निवेदन है कि स्वयं अपने गृहस्थ की अवस्था को जानें और उचित का ग्रहण करें। भावुकतावश लाभ की अपेक्षा हानि हो सकती है। मैंने ऋषि के वचनों पर बहुत विचार करके ही सन्तान के उपयोगी विज्ञापन ही छापे हैं। दूषित नहीं। सम्पादक—जगदेवसिंह सिद्धान्ती शास्त्री

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब द्वारा प्रकाशित और प्रचारित वैदिक साहित्य

१. बलिदान जयन्ती स्मृति ग्रन्थ--आर्य बलिदानों की गाथा मूल्य ४-५०
२. सोम सरोवर-वेदमन्त्रों की व्याख्या —पं० चमूपति एम. ए. ३-००
३. जीवन ज्योति-वेदमन्त्रों की व्याख्या ,, ,, ३-००
४. नीहारिकावाद और उपनिषदें ,, ,, ००-२५
५. Principles of Arya samaj ,, ,, १-५०
६. Glimpses of swami Daya Nand ,, ,, १-००
७. पंजाब का आर्य समाज पंजाब तथा हरयाणा के आर्यसमाज का इतिहास २-००
८. वैदिक सत्संग पद्धति सन्ध्या हवन मन्त्र अर्थ सहित विधि १-००
९. वेदाविर्भाव —आर्यमर्यादा का विशेषांक ०-६५
१०. यजुर्वेद का स्वाध्याय ,, ,, ,, ०-५०
११. वेद स्वरूप निर्णय —पं० मदन मोहन विद्यासागर १-००
१२. व्यवहारभानु —महर्षि स्वामी दयानन्द ०-५०
१३. स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश — ,, ,, ०-४०
१४. Social Reconstruction By Budha & Swami Daya Nand —By. Pt. gangaPrasad Upadhya M. A. २.००
१५. Subject Matter of the Vedas —By S. Bhoomanad १-००
१६. Enchanted Island By Swami Staya Parkashanand १-००
१७. Cow Protection By Swami Daya Nand ०-१५
१८. वेद में पुनरुक्ति दोष नहीं है आर्यमर्यादा का विशेषांक २-००
१९. मूर्तिपूजा निषेध ,, ,, ००-५०
२०. धर्मवीर पं० लेखराम जीवन —स्वामी श्रद्धानन्द १-२५
२१. कुलियात आर्य मुसाफिर प्रथम भाग—पं० लेखराम की पुस्तकों का संग्रह ६-००
२२. ,, ,, दूसरा भाग ,, ,, ८-००
२३. मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र —कु० सुशीला आर्या एम. ए. ०-२५
२४. योगीराज कृष्ण ,, ,, ,, ०-१५
२५. गोकरुणा निधि —स्वामी दयानन्द सरस्वती ०-२०
२६. आर्यसमाज के नियम उपनियम ०-१०
२७. आर्य नेताओं के वचनामृत —साईंदास भण्डारी ०-१२
२८. कायाकल्प —स्वामी समर्पणानन्द सरस्वती १-५०
२९. वैदिक धर्म की विशेषतायें —पं० हरिदेव सिद्धान्त भूषण ०-१५
३०. स्वतन्त्रानन्द लेखमाला —स्वा० स्वतन्त्रानन्द की जीवनी तथा उनके व्याख्यान १-२५
३१. आत्मानन्द लेखमाला —स्वामी आत्मानन्द सरस्वती की जीवनी १-२५
३२. आर्यसमाज के सदस्यता फार्म —सैंकड़ा १०-००
३३. वैदिक गीता —स्वामी आत्मानन्द सरस्वती २-५०
३४. मनोविज्ञान तथा शिव संकल्प ,, ,, ,, ३-५०
३५. कन्या और ब्रह्मचर्य ,, ,, ,, ०-१५
३६. सन्ध्या अष्टाङ्गयोग ,, ,, ,, ०-३५
३७. वैदिक विवाह ०-७५
३८. सुखी जीवन —श्री सत्यव्रत २-००
३९. एक मनस्वी जीवन —पं० मनसाराम वैदिक तोप १-५०
४०. छात्रोपयोगी विचारमाला —जगदेवसिंह सिद्धान्ती १-५०
४१. स्त्री शिक्षा —पं० लेखराम आर्य मुसाफिर ०-६०
४२. विदेशों में एक साल —स्वामी स्वतन्त्रानन्द २-२५
४३. वेद विमर्श —पं० भगवद्दत्त वेदालंकार २-००
४४. वेद विमर्श —पं० वेदव्रत शास्त्री २-००
४५. आसनों के व्यायाम ,, ,, ,, १-००
४६. महर्षि जीवन गाथा —स्वामी वेदानन्द वेदवागीश २-२५
४७. मांस मनुष्य का भोजन नहीं —स्वामी ओमानन्द सरस्वती १-००
४८. वीर भूमि हरयाणा ,, ,, ,, ४-००
४९. चोटी क्यों रखें —स्वामी ओमानन्द सरस्वती ०-५०
५० हमारा फाजिल्का ,, ,, ,, १-५०
५१. सत्संग स्वाध्याय ,, ,, ,, ०-५०
५२. जापान यात्रा ,, ,, ,, ०-७५
५३. भोजन ,, ,, ,, ०-७५
५४. ऋषि रहस्य —पं० भगवद्दत्त वेदालंकार २-००
५५. स्वामी श्रद्धानन्द जीवन परिचय २-००
५६. मेरा धर्म —आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति १-२५
५७. वेद का राष्ट्रिय गीत ,, ,, ,, ७-००
५८. ईशोपनिषद्भाष्य —इन्द्र विद्या वाचस्पति ५-००
५९. पं० गुरुदत्त विद्यार्थी जीवन —डा० रामप्रकाश २-००
६०. वैदिक पथ —पं० हरिदेव सिद्धान्त भूषण १-३५
६१. ज्ञानदीप ,, ,, ,, २-००
६२. आर्यसमाज का सैद्धान्तिक परिचय २-००
६३. The Vedas ०-५०
६४. The Philosophy of Vedas ०-५०
६५. वैदिक प्रवचन —पं० जगत्कुमार शास्त्री ०-५०
६६. ईश्वर दर्शन ,, ,, २-२५
६७. श्वेताश्वरोपनिषद् ,, ,, १-५०
६८. ब्रह्मचर्य प्रदीप ,, ,, ४-००
६९. भगवत प्राप्ति क्यों और कैसे —स्वा० सत्यानन्द ४-००
७०. आर्य सामाजिक धर्म ,, ,, ०-६०
७१. बोध प्रसाद —स्वामी श्रद्धानन्द ०-७५
७२. ऋषि दर्शन —पं० चमूपति एम. ए. ०-२५
७३. ऋषि का चमत्कार ,, ,, ,, ००-२५
७४. वैदिक जीवन दर्शन ,, ,, ,, ००-१२
७५. वैदिक तत्व विचार ,, ,, ,, ००-२०
७६. देव यज्ञ रहस्य ,, ,, ,, ००-५०

००-३५

सभी पुस्तकों का प्राप्ति स्थान

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब, गुरुदत्त भवन, जालन्धर (४२५०) टेलीफोन
,, ,, ,, १५ हनुमान् मार्ग नई दिल्ली-१ ,, (३१०१५०)
,, ,, ,, दयानन्द मठ रोहतक (हरयाणा) ,, (५०४)

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के लिए जगदेवसिंह सिद्धान्ती शास्त्री द्वारा सैनी प्रिंटर्स पहाड़ी धीरज, देहली में मुद्रित और १५ हनुमान् रोड, नई दिल्ली—१ से प्रकाशित

२३ माघ सं० २०२९ वि०, दयानन्दाब्द १४८,
तदनुसार ४ फरवरी १९७३ रविवार
सृष्टि सं०-१९६०८५३०७२

वर्ष ५ — वार्षिक शुल्क स्वदेश में १०) रुपये
अंक १० — „ „ विदेश में २०) रुपये
एक प्रति का मूल्य ००-२० पैसे

सम्पादक—जगदेवसिंह सिद्धान्ती शास्त्री, पूर्व लोकसभा सदस्य (फोन ५१२२१६३)

वेदमन्त्रार्थ-प्रवचन

पुनस्ते [विद्वांसः] कीदृशा इत्युपदिश्यते ॥

फिर वे [विद्वान्] कैसे हैं यह विषय अगले मन्त्र में कहा गया है।

आभोगयं प्रयदिच्छन्त ऐतेनापाकाः प्राञ्चो मम के चिदापयः।
सौधन्वनासश्चरितस्य भूमनागच्छत सवितुर्दाशुषो गृहम् ॥

—ऋ० १-११०-२

पदार्थः—(आभोगयम्) आसमन्ताद्भोगेषु साधुं व्यवहारम् (प्र) (यत्) यम् (इच्छन्तः) (ऐतन) प्राप्नुत (अपाकाः) वर्जितपाकयज्ञा यतय (प्राञ्चः) प्राचीनाः (मम) (के) (चित्) (आपयः) विद्या व्याप्तुकामाः (सौधन्वनासः) शोभनानि धन्वानि धनूंषि येषु ते सुधन्वानस्तेषु कुशलाः सौधन्वनाः (चरितस्य) अनुष्ठितस्य कर्मणः (भूमना) बहुत्वेन (अगच्छत) (सवितुः) ऐश्वर्ययुक्तस्य (दाशुषः) दानशीलस्य (गृहम्) निवासस्थानम् ॥

अन्वयः—हे प्राञ्चोऽपाका यतयो यूयं ये केचिन् ममापयो यदाभोगयमिच्छन्तो वर्त्तन्ते तान् तं प्रैतन। हे सौधन्वनासो यदा यूयं भूमना चरितस्य सवितुर्दाशुषो गृहमगच्छत खल्वागच्छत तदा जिज्ञासून् प्रति सत्यधर्म ग्रहणमुपदिशत् ॥

भावार्थः—हे गृहस्थादयो मनुष्या यूयं परिब्राजां सकाशात् सत्या विद्याः प्राप्य सर्वविद्दानशीलस्य सभां गत्वा तत्र युक्त्या स्थित्वा निरभिमानत्वेन वर्त्तित्वा विद्याविनयौ प्रचारयत ॥

भाषार्थ—हे (प्राञ्चः) प्राचीन (अपाकाः) रोटी आदि का स्वयं पाक तथा यज्ञादि कर्म न करने हारे संन्यासी जनो आप जो (के, चित्) कोई जन (मम) मेरे (आपयः) विद्या में अच्छी प्रकार व्याप्त होने की कामना किये (यत्) जिस (आभोगयम्) अच्छी प्रकार भोगने के पदार्थों में प्रशंसित भोग की (इच्छन्तः) चाह रहे हैं उनको उसी भोग को (प्र, ऐतन) प्राप्त करो। हे (सौधन्वनासः) धनुष बाण के बान्धने वालों में अतीव चतुरो जब तुम (भूमना) बहुत (चरितस्य) किये हुए काम के (सवितुः) ऐश्वर्य से युक्त (दाशुषः) दान करने वाले के (गृहम्) घर को (अगच्छत) आओ तब जिज्ञासुओं अर्थात् उपदेश सुनने वालों के प्रति सांचे धर्म के ग्रहण करने का उपदेश करो ॥

भावार्थ—हे गृहस्थ आदि मनुष्यो तुम संन्यासियों से सत्य विद्या को पाकर कहीं दान करने वालों की सभा में जाकर वहां युक्ति से बैठ और निरभिमानता से वर्त्त कर विद्या और विनय का प्रचार करो ॥

—(ऋषि दयानन्दभाष्य)●

आर्यमर्यादा साप्ताहिक का वार्षिक शुल्क
१० रु० मनीआर्डर से भेज कर ग्राहक बनिये

मुक्तिविषयः

अब मुक्ति के मार्ग का स्वरूप वर्णन करते हैं। (अणुः पन्था०) मुक्ति का जो मार्ग है सो अणु अर्थात् अत्यन्त सूक्ष्म है, (पितरः) उस मार्ग से सब दुःखों के पार सुगमता से पहुंच जाते हैं, जैसे दृढ़ नौका से समुद्र को तर जाते हैं। तथा (पुराणा) जो मुक्ति का मार्ग है वह प्राचीन है दूसरा कोई नहीं। मुझको (स्पृष्टः) वह ईश्वर की कृपा से प्राप्त हुआ है। उसी मार्ग से विमुक्त मनुष्य सब दोष और दुःखों से छूटे हुए, (धीराः) अर्थात् विचारशील और ब्रह्मवित् वेदविद्या और परमेश्वर के जानने वाले जीव (उत्क्रम्य) अर्थात् अपने सत्य पुरुषार्थ से सब दुःखों का उल्लङ्घन करके (स्वर्गं लोकम्०) सुख स्वरूप ब्रह्मलोक को प्राप्त होते हैं ॥८॥ शतपथ १४.७.२.११ ॥

(तस्मिञ्छुक्ल) अर्थात् उसी मोक्षपद में (शुक्ल) श्वेत, (नील) शुद्ध घनश्याम, (पिङ्गल) पीला श्वेत, (हरित) हरा और (लोहित) लाल ये सब गुण वाले लोक लोकान्तर ज्ञान से प्रकाशित होते हैं। वही मोक्ष का मार्ग परमेश्वर के साथ समागम के पीछे प्राप्त होता है। उसी मार्ग से ब्रह्म का जानने वाला तथा (तैजसः०) शुद्ध स्वरूप और पुण्य का करने वाला मनुष्य मोक्ष सुख को प्राप्त होता है, अन्य प्रकार से नहीं ॥९॥ शत० १४.७.२.१२॥

(प्राणस्य प्राण०) जो परमेश्वर प्राण का प्राण, चक्षु का चक्षु, श्रोत्र का श्रोत्र, अन्न का अन्न और मन का मन है, उसको जो विद्वान् निश्चय करके जानते हैं वे पुरातन और सबसे श्रेष्ठ ब्रह्म को मन से प्राप्त होने के योग्य मोक्ष सुख को प्राप्त होके आनन्द में रहते हैं, (नेह, ना०) जिस सुख में किञ्चित् भी दुःख नहीं है ॥१०॥ शत० १४.७.३.१२ ॥

—(ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका)●

सत्यार्थप्रकाश (१० वाँ समुल्लास)

वेदोऽखिलो धर्ममूलं स्मृतिशीले च तद्विदाम्।
आचारश्चैव साधूनामात्मनस्तुष्टिरेव च ॥ मनु० २.६

इसलिये सम्पूर्ण वेद मनुस्मृति तथा ऋषि प्रणीत शास्त्र, सत्पुरुषों का आचार और जिस जिस कर्म में अपना आत्मा प्रसन्न रहे अर्थात् भय, शंका, लज्जा जिनमें न हो उन कर्मों का सेवन करना उचित है। देखो! जब कोई मिथ्या भाषण चोरी आदि की इच्छा करता है तभी उसी के आत्मा में भय, शङ्का, लज्जा अवश्य उत्पन्न होती है इसलिये वह कर्म करने योग्य नहीं ॥५॥

सर्वं तु समवेक्ष्येदं निखिलं ज्ञानचक्षुषा।
श्रुतिप्रामाण्यतो विद्वान् स्वधर्मे निविशेत वै ॥ मनु० २.८॥

मनुष्य सम्पूर्ण शास्त्र, वेद, सत्पुरुषों का आचार, अपने आत्मा के अविरुद्ध अच्छे प्रकार विचार कर ज्ञाननेत्र करके श्रुति प्रमाण से स्वात्मानुकूल धर्म में प्रवेश करो ॥६॥

श्रुतिस्मृत्युदितं धर्ममनुतिष्ठन् हि मानवः।
इह कीर्त्तिमवाप्नोति प्रेत्य चानुत्तमं सुखम् ॥ मनु० २.९

क्योंकि जो मनुष्य वेदोक्त धर्म और वेद से अविरुद्ध स्मृत्युक्त धर्म का अनुष्ठान करता है वह इस लोक में कीर्ति और मर के सर्वोत्तम सुख को प्राप्त होता है ॥७॥

योऽवमन्येत ते मूले हेतुशास्त्राश्रयाद् द्विजः।
स साधुभिर्बहिष्कार्यो नास्तिको वेद निन्दकः ॥ मनु० २.११

श्रुति वेद और स्मृति धर्मशास्त्र को कहते हैं इनसे सब कर्त्तव्याऽकर्त्तव्य का निश्चय करना चाहिये जो कोई मनुष्य वेद और वेदानुकूल आप्त ग्रन्थों का अपमान करे उसको श्रेष्ठ लोग जातिबाह्य कर दें क्योंकि जो वेद की निन्दा करता है वही नास्तिक कहाता है ॥८॥

—(ऋषिदयानन्द)●

महाविद्वान् श्री युधिष्ठिर जी मीमांसक का लेख ?

"वेदवाणी वर्ष २५—अंक ३ (जनवरी १९७३) के पृ० २४ से २६ तक कुछ निम्न बातें दी गई हैं—

१. ट्रस्ट के प्रकाशनों के सम्बन्ध में मिथ्या प्रचार।

२. मैंने वैदिक स्वर मीमांसा और वैदिक छन्दो मीमांसा ऋषि की शास्त्रीय दृष्टि को पल्लवित करने के लिये लिखे हैं।

३. ऋषि दयानन्द पर लगाये आक्षेपों का समाधान मैंने किया और किसी ने नहीं।

४. मैं स्पष्ट लिख देना चाहता हूं कि मैं ऋषि दयानन्द के किसी भी मत को या लेख को भ्रान्त नहीं मानता।

५. सहायक पण्डितों के प्रमादों को दूर करना ही होगा।

६. मेरी और श्री सिद्धान्ती की बातचीत से कोई लाभ नहीं।

७. आलोचक न व्याकरण शास्त्र के विशेषज्ञ हैं और ना ही पाश्चात्य भाषा विज्ञान एवं भारतीय ऋषियों के निर्वचनों पर किये गये आक्षेपों से ही परिचित हैं। अतः छन्द=पद के निर्वचन के प्रसंग में जो कुछ मैंने लिखा है, यह उनकी समझ से बाहर की बात है। इधर उधर के वाक्यांशों को उद्धृत करके मुझे लञ्छित करने का ही वे प्रयत्न करते हैं जो मुझ दयानन्द द्रोही के रूप में लाञ्छित करके अपने पांडित्य का प्रचार करना चाहते हैं।"

हमारा आर्य विद्वानों की सेवा में निवेदन—

१. हमने कभी भी रामलाल कपूर ट्रस्ट के प्रकाशनों के सम्बन्ध में मिथ्या प्रचार नहीं किया। श्री मीमांसक जी का यह काला झूठ है। हां आप इस ट्रस्ट के द्वारा जो ऋषि दयानन्द के विरुद्ध लिख रहे हैं, उसका खण्डन सप्रमाण अवश्य कर रहे हैं।

२. ऋषि ने ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका में छन्द पद 'चदि' आह्लादे से लिखा है और आपने ऋषि का खण्डन करके लिखा है कि चदि धातु से छन्द नहीं बन सकता। क्या यह ऋषि विरोध नहीं है। क्या यह ऋषि की शास्त्रीय दृष्टि को पल्लवित करना है? जब जड़ पर कुल्हाड़ा रख दिया तो पल्लव कहां रहेंगे?

३ ऋषि दयानन्द के सत्यार्थप्रकाश आदि ग्रन्थों पर पौराणिक, जैन, सिख, ईसाई और मुहम्मदी तथा अहमदियों ने जो आक्षेप किये थे—क्या उनका उत्तर आपने दिया था? एक का भी नहीं। आर्यसमाज के पूज्य विद्वानों ने उनके सफलता पूर्वक उत्तर दिये थे। आप कृतघ्न होते हैं जो उनके किये उपकारों पर पानी फेरते हैं।

४. आप सर्वथा मिथ्या लिखते हैं कि—ऋषि के किसी भी मत को या लेख को भ्रान्त नहीं मानता। आपके द्वारा रचित—ऋषि के ग्रन्थों में जो पाठभेद, भ्रष्ट पाठ और ऊपर नीचे हेरा फेरी की गई है वे आर्य विद्वानों से छुपी हुई नहीं है। आप यह लिखकर आर्य जनता को भ्रान्ति में डालने का कुत्सित यत्न करते हैं। आप समझते हैं कि आर्य जनता इसी पर विश्वास कर लेगी। यह भूल जाइये कि आपके इस मायावी रूप को आर्यसमाज के पूज्य विद्वान् नहीं समझते? पूरी तरह समझते हैं। वेद मन्त्रों में अनेक स्थानों पर मायावी शब्द आया है। ऋषि दयानन्द ने इसके दो भिन्न भिन्न अर्थ अपने भाष्य में किये हैं (१) विद्वान् बुद्धिमान् और (२) छली कपटी। आप में ऋषि के दोनों अर्थ घटते हैं। छल कपट से ऋषि की प्रशंसा कर देते हैं और उनके मत का खण्डन भी करते हैं।

५. सहायक पण्डितों के बहाने से ऋषि के लेखों में हेरा फेरी करना आपका पेशा रहा है।

६. मेरे साथ आप बातचीत न करें। किसी भी ऋषि भक्त (आपके अपने वचन अनुसार) से बातें कर लीजिये। मैं कुल्हिया में गुड़ नहीं फोड़ता, चौराहे में आपके ऋषि द्वेष का भण्डा फोड़ देता हूं।

७. मेरी अयोग्यता को लिखना आपकी नई बात नहीं। मैं भी मानता हूं कि आप मुझसे विद्वान् हैं। परन्तु आपमें ऋषि द्वेष के संस्कार आपकी बुद्धि को कुण्ठित किये हुए हैं! मैं क्या जानता हूं, अपने मुख से अपनी बड़ाई करना मृत्यु से बुरा है। महाभारत को देख लीजिये। समय पड़ने पर पता लग जाता है कि कौन कितने पानी में है। इतना बताने में आपत्ति नहीं कि हमने आजीविका कमाने के लिये संस्कृत भाषा का अध्ययन नहीं किया, अपितु अपनी योग्यता वृद्धि के लिये ही किया है। अतः हम किसी की चाटुकारी नहीं करते अशिष्टता नहीं करते इतना ही कहना पर्याप्त होगा।—जगदेवसिंह सिद्धान्ती शास्त्री ●

संस्कारविधि की वास्तविक स्थिति

(ऋषि मन्तव्य पोषक—वेदाचार्य पं० विश्वश्रवा जी व्यास एम० ए०)

अपने आर्यमित्र वर्ष ७५, अंक १ के पृष्ठ ७ पर "संस्कारविधि की वास्तविक स्थिति" एक लेख लिखा है, उसमें मेरे सम्बन्ध में भी कुछ निर्देश दिये हैं, उस विषय में निवेदन है कि—

(१) "अद्याहमुक्तकर्मकरणाय भवन्तं वृणे" (संस्कारविधि) में मैंने "अद्य" का अर्थ संस्कार की तिथि किया है। इस पर आपने लिखा है कि यहां तिथि अर्थ ठीक नहीं। यहां तत् सत् श्री ब्रह्मणो···" ऋग्वेदादिभाष्य-भूमिका में दिया कालगणना पाठ बोलना चाहिये। ठीक है मुझे इस पर आपत्ति नहीं। परन्तु तिथि वर्णन तो इस में भी आवेगा ही और अति-व्याप्ति से रहित तिथि वचन बना रहेगा। फिर भी जो सज्जन "तत् क्षत्" आदि पाठ बोलें तो अच्छा है, परन्तु अभिप्रेत तिथि ही है।

(२)'आधारावाज्याभागाहुति आद्यन्तदिखाकर फिर सामान्य प्रकरण आरम्भ है ठीक नहीं।' इस पर मेरा निवेदन है कि ऋषि ने लिखा है कि सामान्य प्रकरण में आधारा······४ मन्त्रों से आहुतियां देकर प्रधान होम (जो जिस कर्म में हो) करके पुनः 'आधारपूर्वोक्ति चार पूर्णाहुतियां देवें। इसका अभिप्राय यही ही यह पूर्णाहुतियां प्रधान होम विषयक हैं क्योंकि बीच में विशिष्ट कर्म में प्रधान होम आया, उसको पूर्ति इन्हीं ४ आहुतियों से करें। प्रधान होम की ये पूर्णाहुतियां हैं। पुनः सामान्य प्रकरण यथापूर्व चलता है—उसकी पूर्णाहुति "सर्वं वैपूर्णं स्वाहा" से दी जाती है। संस्कार विधि के अनुसार लिख दिया है।

३. मैं भी मानता हूं कि ऋषि दयानन्द "मन्त्रकार" भी थे, अतः उन्होंने भिन्न भिन्न सूत्रकारों से जहाँ जहाँ पृथक् उचित समझा वैसे विधान कर दिया है। ऋषि ने गृह्यसूत्रादि के पते नहीं लिखे, परन्तु विधि के बीच में यथास्थान पारस्कर, आश्वलायन, गोभिल और शौनक आदि के नाम दिये हैं। ऋषि दयानन्द जी ने वेदोक्त आर्ष वचनों का यथास्थान उचित प्रयोग किया है। जहां भिन्नता समझी, वहां पृथक् वचन दे दिया। —जगदेवसिंह सिद्धान्ती शास्त्री ○

रंगीले साधु

(श्री सोमेश आर्य रियासी जम्मू काश्मीर)

जो खुद सो रहे हैं, जगायेंगे किनको ?
हैं खुद बेखबर जो, सिखायेंगे किनको ?
जो रस्ता दिखाया है, अपने ऋषि ने—
वह देखा नहीं, खुद दिखायेंगे किनको
यह देवता भी कोई देवता हैं,
कपड़े रंगे हैं, साधु कहाँ हैं।
अरे आर्यो ! कुछ देखो व परखो—
चोर डाकू आदि कई कुछ यहाँ हैं।
यह दुनिया भरी है, बस्ती बड़ी है।
ऋषि दूत साधु की कमी भी बड़ी है ॥
न तप कुछ किया हो तो साधु कहाँ है—
न सोना तपा हो तो कुन्दन नहीं है ॥

सम्पादकीय—

वियतनाम में क्या समझौता हो गया ?

अमेरिका, उत्तरी वियतनाम, दक्षिणी वियतनाम और दक्षिणी वियतनाम की क्रान्तिकारी सैनिकों सरकारों में कहने को युद्ध बन्द हो गया। शान्ति समझौते पर इन चारों पक्षों के विदेश मन्त्रियों के हस्ताक्षर हो गये। अमेरिका दक्षिणी वियतनाम से अपनी सेनाएँ हटा लेगा। उत्तरी वियतनाम अमेरिकी युद्ध बन्दियों को छोड़ देगा। परन्तु द० वियतनाम में अब भी सैनिकों की झड़प चल रही है। हमारा निश्चित विचार है कि राजनीति में कभी शान्ति समझौतों का पालन नहीं किया जाता। भारत पाकिस्तान का उदाहरण प्रत्यक्ष है। जो पक्ष प्रबल होता है, वह अपनी विशेष शर्तों पर समझौते द्वारा लाभ उठा लेता है। जब समय पाकर दूसरा पक्ष प्रबल हो जाता है तो फिर नई शर्तों के समझौते के आधार पर युद्ध बन्द हो जाता और शान्ति हो जाती है। इस प्रकार यह युद्ध, समझौता, शान्ति के क्रम सदा चलता रहता है। भारत का इतिहास महाभारत से १००० वर्ष पूर्व से यही क्रम देखा जा सकता है। वियतनाम का यह समझौता अमेरिकी शस्त्रों की नोक पर हुआ। यद्यपि उ० वियतनाम इसमें लाभ में है, क्योंकि द० वियतनाम में क्रान्तिकारी विरोधी सरकार को खुली छुट्टी मिली है कि वे दोनों पक्ष आपस में निपट लेवें। अतः निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि वियतनाम में कारगर समझौता नहीं हुआ। कुछ समय के लिये ऐसा कहा जा सकता है। यद्यपि अनेक देशों ने इस समझौते का स्वागत किया है। परन्तु अमेरिका में भी ऐसी आशंका उठ रही है कि इस समझौते से स्थिर लाभ नहीं हो सकता। भारतीय पत्रकारों के स्वर में भी यही बात कही सुनी जाती है। स्वतन्त्रता पूर्वक विचार करने पर तो यही परिणाम दिखाई पड़ता है। आगे क्या होगा यह तो भगवान् ही जानता है। देखने में अमेरिकी पक्ष की हार और कम्युनिस्ट पक्ष की जीत हुई है। इस १२ वर्षीय युद्ध में जहां दोनों पक्षों के लाखों सैनिकों और जनता का संहार हुआ है। वहां अमेरिका के भारी संख्या में वायुयान और हेलिकोपटर भी नष्ट हुए हैं। संसार की यह गति है कि बहुत समय तक युद्ध नहीं रुकते। राष्ट्रों के परस्पर स्वार्थ टकराते ही रहते हैं। समय पाकर युद्ध हो ही जाते हैं। जो हार जाता है वह कुचला गया और जो जीत गया वह हारे पक्ष के देश पर अधिकार कर गया। परन्तु हारा पक्ष फिर उभरता है और जीते पक्ष के साथ युद्ध छिड़ जाता है। इस युद्ध में पूर्व से उलट गति हो जाता है। पहिले जीता पक्ष हार जाता है और हारा पक्ष जीत जाता है। संस्कृत में युद्ध का एक नाम महाधन मिलता है। युद्ध से जीतने वाले पक्ष को अतुल सम्पत्ति मिलती है। इस कारण संसार में युद्ध होने अनिवार्य हैं। अतः हमारे राष्ट्र को सदा सजग रहना चाहिये। अपनी सैनिक साज सज्जा पूरी तरह बनाये रखनी चाहिये।

किसान और मजदूर का हानिकारक हुक्का

अभी कुछ दिन पूर्व की घटना है कि रोहतक नगर के पास के किशनपुरा गांव का एक किसान रात में अपने गेहूं की रखवाली पर गया हुआ था। जाड़ा कठोर पड़ रहा था। वह अपनी फूस की झौपड़ी में भीतर हो गया। हुक्का भर के पीने लगा। पीते पीते उसको नींद आ गई। हुक्के की आग गिर गई। उसकी झोपड़ी जलने लगी और उसके कपड़ों में भी आग लग गई। वह कपड़ों को फेंक कर झौपड़ी से बाहर हो गया। एक दम जाड़े के कारण सिकुड़ गया और बेहोश होकर भूमि पर गिर पड़ा। प्राण पखेरू उड़ गये। पास में कोई व्यक्ति नही था। इस हुक्के की आग से किसान की बैल गाड़ी, खेत, खलिहान में निकाला हुआ अन्न तथा तूड़ा सब कुछ स्वाहा हो जाता है। परन्तु इस दुर्गुण से कभी हटता नहीं। यही दशा खेतीहर मजदूर की होती रहती है। इन दोनों वर्गों में यह दोष पराकाष्ठा में पाया जाता है। इतना ही नहीं अब तो जहां जहां गन्ने के मिल लगे हैं, वहाँ ये दोनों चाय, अण्डा और शराब भी पीने लगे हैं। न जाने, जानते हुए भी इन दुर्गुणों से दूर क्यों नहीं होते। समाज-सुधारक उपदेशक लोग इनको कहते रहते हैं, परन्तु इन पर कुछ प्रभाव नहीं पड़ता। जो लोग पहिले पहल आर्य समाज में प्रविष्ट हुए और बड़ी आयु तक हुक्का पीते रहे, वे उपदेश से इस दोष को छोड़ गये। परन्तु आज की सन्तान फिर से इस दोष में फंस गई है।

श्री रामलाल जी ठेकेदार से पुनः निवेदन

गत अंक में हमने उनसे निवेदन किया था कि वे जो स्पेशल यात्रा ट्रेनें चलाते आ रहे हैं। उनके आय-व्यय का ब्योरा जनता के सामने प्रकाशित करने का कष्ट करें, जिन से सन्देह हट जावे। हमने इनके सहयोगी श्री रामनाथ सहगल का नाम भी लिखा था। उन्होंने आर्य मर्यादा के सम्पादकीय नोट में यह सूचना पढ़ते ही अपना स्पष्टीकरण लिखित रूप में आर्य मर्यादा के सम्पादक के नाम भेज दिया और स्वयं मिलकर हमें कुछ अन्य बातें भी सुनाई। इसी प्रकार हम आशा करे कि श्री ठेकेदार साहिब भी अपना आय-व्यय का स्पष्टीकरण आर्य मर्यादा में प्रकाशनार्थ शीघ्र भिजवा कर कृतार्थ करें। यदि कुछ दिनों तक उन्होंने भेजने की कृपा नही की, तो हम श्री रामनाथ जी सहगल का लिखित उत्तर आर्य मर्यादा में प्रकाशित कर देंगे। उत्तम ढंग यही है कि परस्पर शंका प्रशंका को दूर कर दिया जावे। इस मे आर्य समाज में सद्भावना बनी रहती है और भविष्य में भी इसी सद्भावना का प्रयोग होता रहता है। आर्य समाजी बन्धुओं में विशेषकर अधिकारियों में यह रीति प्रचलित रहनी चाहिये।

सम्पत्ति का राष्ट्रियकरण वेद विरुद्ध है

आर्य सभा के नाम पर कम्युनिस्टों के मन्तव्यों का प्रचार आर्य समाज में किया जा रहा है। आर्य भाई बहिन स्वाध्याय से रहित होने के कारण उनकी झूठी बात को ठीक मान लेते हैं और आश्चर्य यह है कि ऐसे लोग आर्य समाज और व्यक्तियों से चन्दा इक्ट्ठा करते हैं। जब सम्पत्ति के राष्ट्रियकरण के वे पक्षपाती हैं, तो स्वयं जन सम्पत्ति को हथियाते हैं ? क्यों नहीं अपनी निजी सम्पत्ति राष्ट्र को सौंप देते ? बैंकों में निजी हिसाब रखते हैं। गेरू कपड़े रंग कर घर से बाहर होकर आर्य जनता के धन से कमाई करते हैं। आर्यो में विरोध खड़ा करते है। आगे हम वेद मन्त्रों के ऋषि दयानन्द का भाष्य देते हैं—

(१) जो बणिये सब देशों की भाषाओं को जान के देश देशान्तर और द्वीप द्वीपान्तर से धन को लाय ऐश्वर्य युक्त होते हैं वे सब को सब प्रकार से सत्कार करने योग्य होते हैं॥ भावार्थ ऋ० १.१२२-१४

(२) जो जन सभा सेना और शाला के अधिकारी कुशल चतुर आठ सनसदों शत्रुओं का विनाश करने वाले वीरों गौ बैल आदि पशुओं मित्र धनी बणिक् जनों और खेती करने वालों की अच्छी प्रकार रक्षा करके अन्नादि ऐश्वर्य की उन्नति करते है वे मनुष्यों में शिरोमणि अर्थात् अत्यन्त उत्तम होते हैं॥ भावार्थ ऋ० १-१२६-५।

ऋषि दयानन्द ने प्रायः सभी वर्गों को धनी रहना लिखा है परन्तु आश्चर्य है कि कम्युनिस्टनुमा आर्य नामधारी आर्या सभाई और तो किसी को धोखा नहीं दे सकते. परन्तु ऋषि के नाम की दुहाई देकर केवल आर्य समाज को भ्रम में डालते हैं। यद्यपि सामान्य जनता में इनका दुष्प्रचार बहुत कम हो चुका है। परन्तु जिनका रोजगार इन आर्य सभा के द्वारा चलता है, वह जन समुदाय को धोखा देते रहते है। आर्य भाई बहिनों को चाहिये कि धोखे में बिल्कुल न पड़ें। ऐसे पाखण्डी आर्य समाज में बहुत घुस चुके हैं। गेरूवे कपड़ों में सभी कुछ उत्तम है इसी से ऐसे कपटी लोग लाभ उठाते हैं।●

—जगदेवसिंह सिद्धान्ती, शास्त्री

धर्म बदनाम होता है

—(श्री देवेन्द्रनाथ शास्त्री, एम० ए०)

करे कोई भरे कोई, धर्म बदनाम होता है।
भारत में तमाशा यह सवेरे शाम होता है॥१॥
भगवती-जागरण करते हैं, मदिरा पान कर करके।
मचाते शोर सारी रात, नहीं कुछ काम होता है॥२॥
कहते तीर्थ हैं जिनको वहां पाखण्ड का घर है।
नहीं धुलते कभी हैं पाप, कैसा स्नान होना है॥३॥
"देवी" पर हैं कटते बकरे, मैंढे और भमे भी।
किसी का पेट भरता है, कोई बलिदान होता है॥४॥
"राधेश्याम" हैं रटते, कभी सियाराम "रटते हैं।
न हो ईश्वर का गुण कीर्तन, तो "कीर्तन" नाम होता है॥५॥
कहीं है मूर्ति की पूजा, कहीं है ग्रन्थ की पूजा।
तड़पता दीन मानव है, सवेरे शाम होता है॥६॥
नही स्वाध्याय हैं करते, न पालें आर्य मर्यादा।
"समाज" ऐसे ही "आर्यों" से यहां बदनाम होता है॥७॥
वैदिक धर्म है सच्चा, ओम् का नाम है सच्चा।
सभी मतजाल हैं मिथ्या, नहीं कुछ ज्ञान होता है॥८॥
धर्म है छल कपट से दूर, आडम्बर से खाली है।
धर्म धारण जो कर लेता, वही इंसान होता है॥९॥

प्रि० श्रीराम जी शर्मा की सेवा में—

"भ्रमोच्छेदन"

(लेखक—प्राध्यापक श्री राजेन्द्र 'जिज्ञासु' एम. ए. बी. टी. अबोहर)

प्रि० श्रीराम जी शर्मा ने ऋषि को विषपान देने के विषय में अपनी मिथ्या कल्पना व भ्रान्तिपूर्ण विचारों के लिये प्रायश्चित तो क्या करना है उल्टा नई नई भ्रान्तियां फैलाने में लगे हुए हैं। हरयाणा सरकार ने उनको ५०००० रुपये पंजाब विश्वविद्यालय द्वारा प्रदान करके एक अच्छा कार्य सौंपा है कि भ्रान्तियां पैदा करो और भ्रामिक विचार फैलाओ। अभी वैदिक धर्म उर्दू साप्ताहिक में मान्यवर जावेद जी ने श्री शर्मा जी का भ्रान्ति निवारण शीर्षक से एक नोट प्रकाशित किया है। मैं इसे 'आर्यमर्यादा' के पाठकों की सेवा में भी रखता हूं ताकि पाठक शर्मा जी की मनोवृत्ति को समझ जाएं।

"प्रोफेसर राजेन्द्र 'जिज्ञासु' ने अपने लेख में मेरी एक छोटी पुस्तक का उल्लेख किया है और कहा है कि मैंने शोलापुर रहते हुए भी हैदराबाद सत्याग्रह का इस पुस्तिका में उल्लेख नहीं किया। मैं इस पुस्तिका के पृष्ठ २६ से यहां कुछ पंक्तियां उद्धृत कर रहा हूं।"

आगे आपने उक्त अंग्रेजी पुस्तिका की कुछ पंक्तियां दी हैं जिनमें हैदराबाद सत्याग्रह का उल्लेख है। मैंने ऊपर प्रि० शर्मा जी के उर्दू शब्दों का ठीक ठीक हिन्दी अनुवाद दिया है। मेरे जिस लेख में प्रि० शर्मा जी की पुस्तिका की चर्चा है वह २१-१२-७३ के 'वैदिक धर्म' साप्ताहिक में छपा। मेरे सारे लेख में कहीं भी सत्याग्रह शब्द नहीं। मैंने कहीं भी किसी भी लेख में यह नहीं लिखा कि प्रि० शर्मा जी ने अपनी अमुक पुस्तिका में हैदराबाद सत्याग्रह की चर्चा नहीं की। आर्य सज्जन देख लें कि मान्य शर्मा जी कितने सत्यनिष्ठ हैं। यूं ही एक मिथ्या आरोप लगाकर मुझे अपमानित करने की कुचेष्टा की गई है। अपने 'मन का प्रकाश' शर्मा जी को तंग कर रहा है। प्रतीत होता है मेरा लेख आपने पढ़ा ही नहीं। सुना होगा। सुनी सुनाई बात के आधार पर इस प्रकार अनुत्तरदायी ढंग से जो मन में आया सो लिख दिया। सम्भवतः यह भी उनकी 'वैज्ञानिक रिसर्च' है। जैसे मेरा लेख पढ़े बिना ही उन्होंने 'भ्रान्ति निवारण' नोट लिख दिया है। इसी प्रकार ऋषि जीवन मान्यवर शर्मा जी शर्मा ने कभी ध्यान से पढ़ा हो, ऐसा प्रतीत नहीं होता (पूज्य महात्मा आनन्द स्वामी जी का भी यही मत है)। अब हरयाणा सरकार की कृपा से उनको पढ़ना पड़ा तो अपना पूर्वाग्रह युक्त मत लोगों पर ठूंस रहे हैं।

पाठक प्रि० शर्मा जी की पुस्तिका विषयक मेरे शब्द जो वैदिक धर्म में प्रकाशित हुए यहां पढ़कर न्याय करें और देखें कि शर्मा जी ने एक नया जुल्म ढा दिया है।

"प्रि० शर्मा जी एक बुजुर्ग हैं और माननीय बुजुर्ग हैं परन्तु आर्यसमाज के बलिदानों का विराट् रूप उन्होंने कभी पूरी तरह देखने का यत्न ही नहीं किया। उन्होंने आर्यसमाज के प्रभाव विषय पर एक पुस्तिका लिखी है। बड़ी सुन्दर है परन्तु हैदराबाद राज्य के बलिदानों की झांकी तक नहीं दी। आर्यसमाज के प्रभाव का उल्लेख (वहां का) किया ही नहीं। प्रि० महोदय शोलापुर में वर्षों रहे तिनके की ओट में पहाड़ छुपा था उन्हें दीखा ही नहीं।"

मैंने अपने उर्दू वाक्यों का यहां अक्षरशः हिन्दी अनुवाद दिया है। कुछ भी घटाया बढ़ाया नहीं। पाठक अब देखें कि इसमें कहां हैदराबाद सत्याग्रह की बाबत कुछ लिखा है। यूं ही मेरे शब्दों को चालाकी से तोड़ मरोड़कर प्यारे ऋषि के प्यारे ग्रन्थ 'भ्रान्ति निवारण' के नाम का दुरुपयोग करके आर्यों में मेरे बारे में भ्रान्ति फैलाने का प्रयत्न किया है।

अब मैं पूछता हूं कि प्रि० महोदय बताएं कि इस सारी पुस्तिका में पंजाब से बाहर के प्रदेशों के आर्यों की कितनी घटनाओं की ओर आपने उल्लेख किया है? हरयाणा में आर्यसमाज का सर्वाधिक प्रचार है। हरयाणा में सर्वाधिक गुरुकुल है। आर्यों का एकमेव उपदेशक विद्यालय हरयाणा में। संस्कृत के सर्वाधिक विद्वान् हरयाणा में। हरयाणा के ही किसी आर्य नेता या आर्यसमाज की किसी घटना का उसमें उल्लेख या संकेत नहीं तो हैदराबाद वालों को कौन जाने पहचाने। मारीशस में हरयाणा के सैनिक आर्यसमाज का बीज बो आए परन्तु ...

उक्त पुस्तिका के पृष्ठ १४ पर आपने लाला लाजपतराय जी पर अकाल पीड़ित सहायता कार्य के प्रसंग में पादरियों द्वारा चलाए गये अपहरण के ऐतिहासिक अभियोग की आपने चर्चा की है। हैदराबाद में ऐसी घटनायें एक नहीं सैंकड़ों घटीं। आपने कोई चर्चा की?

इसी पृष्ठ १४ पर आपने पं० रलाराम जी बजवाड़िया द्वारा मुलतान में प्लेग के फोड़े को दस्तों से फोड़ने व मुख से पीप चूसने की घटना का उल्लेख किया। प्लेग हैदराबाद में भी आई। वहां भी आर्यों ने सेवा कार्य किया। रोगियों के लिये हैदराबाद में शिविर लगाया गया। एक मुसलमान इतिहासकार ने राज्य के इतिहास में आर्यों की गौरवपूर्ण सेवा की भूरि भूरि प्रशंसा की है। उसमें लिखा है कि मुसलमान चिकित्सक मकसूर साहिब ने आर्यों की सेवा से प्रभावित होकर उनके शिविर में अपनी सेवायें समर्पित कर दी। महाशय गया प्रसाद जी को निजाम सरकार ने इस सेवा कार्य के लिये मैडल दिया। भाई श्यामलाल ने उदगीर में सबके रोकने पर भी एक बार अपने रक्त के प्यासे एक मुसलमान बदमाश को औषधि दी। वह जीवन भर उनका भक्त रहा।

आपने पुस्तिका में स्थान स्थान पर पंजाब की शिक्षा संस्थाओं की विशेष चर्चा की है। हैद्राबाद की संस्थायें भी कम महत्व नहीं रखतीं। उन्होंने भी देश भक्ति की भावना पैदा की। निजाम का राज्य सदा रहे' के भावों वाली प्रार्थना सारे राज्य के स्कूलों में गाई जाती थी: आर्य संस्थाओं में नहीं। यह क्या कम महत्त्वपूर्ण बात है?

पृष्ठ १८ पर अस्पृश्यता विरोधी दयानन्द कालेज लाहौर की एक घटना आपने दी है। हैद्राबाद के आर्य जातपात तोड़ने में सारे भारत में सबसे आगे रहे। शेषराव वाघमोर को उनकी माता ने बाजार में जूते मारे कि ब्राह्मण होकर बहिन की शादी छोटी जाति में कर रहे हो।

पृष्ठ १६ पर आपने तारा देवी पर सरकार द्वारा गाड़ी रोके जाने की एक अच्छी घटना का संकेत दिया है परन्तु निजाम राज्य में चार आर्य (एक महिला सहित) जीवित जलाये गये। अपराध यह था कि राज्य का भारत से विलय चाहते थे। यह घटनायें सारे भारत में अद्वितीय है इनकी चर्चा आपने कहां की?

पृष्ठ २१ पर आपने पंजाब उ०प्र० आर्य संस्थाओं द्वारा हिन्दी को माध्यम की चर्चा की है। इसमें हैद्राबाद का उल्लेख कहां है? अकेले कलम तालुका में हिन्दी के लिये आर्य समाज की चालीस पाठशाला थीं। और क्या क्या लिखें? आप में भूल को स्वीकार करने का तो साहस नहीं, उलटा मुझ पर मिथ्या आरोप लगाकर एक नया पाप कर रहे हैं।

पृष्ठ २६ पर आपने एक अपनी घटना दी है। अच्छा है आपने अंग्रेजी राज्य में साहस दिखाया परन्तु हैद्राबाद में तो भाई श्यामलाल जी, भाई वंशीलाल जी, श्री व्यास जी, पं० नरेन्द्र जी आदि ने सारा जीवन अन्यायी सरकार से लोहा लिया। तिल तिल जलकर इन शूरवीरों ने इतिहास बनाया। मान्य शर्मा जी उ० प्र० के महात्मा नारायण स्वामी जी महाराज राजस्थान के कुंवर चाँदकरण जी शारदा का भी संकेत कर देते। इन प्रदेशों की किसी घटना का विशेष उल्लेख नहीं तो हैद्राबाद का क्या महत्त्व? पुस्तिका पर मेरी ही यह सम्मति नहीं हैद्राबाद के कई आर्यों ने यही बात कही।

फिर शर्मा जी ने जावेद जी को लिखा कि "जिज्ञासु" जी ने स्वामी दयानन्द की मृत्यु पर तो लेख के अन्त में आठ दस पंक्तियां ही लिखी हैं मेरे ऊपर ही बरसने की कृपा की है।" यह भी अनर्थ है। मेरे लेख के अन्त में लिखा था 'शेष अगले सप्ताह' फिर उस लेख के अन्त में Illustrated weekly के पुराने लेख की भी चर्चा थी। उसका भी उत्तर था। ऋषि की मृत्यु सम्बन्धी आप लोगों से कुछ प्रश्न भी उठाए गये थे। वे भी विषय से ही सम्बन्धित थे। शेष रही बरसने की बात आर्यसमाज के सब विरोधी आक्षेपों का उत्तर पाते हुए जब तर्क से पिटे तो यही रट लगाते रहे। ●

क्रमागत—

माण्डूक्य पर आचार्य गौडपाद कारिकाओं की समीक्षा (५)

(ले० श्री स्वामी ब्रह्मानन्द जी आर्यत्रैतवेदान्ताचार्य, मु० ओंकार आश्रम, चान्दोद, बड़ौदा)

किन्तु आप अद्वैतवादी महानुभाव तो माया जीव जगत् रूप प्रपंच का उपशमन उपसंहार के बाद भी उसे विभु वा व्यापक मान रहे हो तो यह तो बड़ा ही अन्धेर है कि जब व्याप्य हो नहीं तो व्यापकता का धर्म किसमें चरितार्थ होगा ? और यदि नहीं तो वह व्यर्थ होगा। क्योंकि व्यापक की व्यापकता तभी मानी जा सकती है जब व्याप्य पदार्थ विद्यमान होवें या माने जावें और आप लोग तो व्याप्य पदार्थों को अविद्या कल्पित भ्रान्तिमात्र मान उन्होंने मिथ्या बता उनका एवं उनकी अविद्या प्रज्ञप्ति रूप इन्द्रिय वृत्ति का भी उन्हीं के सहित त्याग हो जाना मानते हो, तो तब उस प्रभु में व्यापकता की चरितार्थता ही कहा रही ? इसलिये यहां इस दशवीं कारिका में दोनों ही बड़े छोटे गुरुओं की इस विषय में बुद्धि ही कुंठित हो गई सी मालूम होती है। चलो खैर आगे बढ़ें।

कार्यकारणबद्धौ ताविष्येते विश्वतैजसौ।
प्राज्ञः कारणबद्धस्तु द्वौ तौ तुर्ये न सिध्यतः ॥११॥

आगम प्र० की ११ वी कारिका

अर्थ—विश्व और तैजस ये दोनों कार्य—(फलावस्था) और कारण—(बीजावस्था) से बंधे हुये माने जाते है, किन्तु प्राज्ञ केवल कारणावस्था से ही बद्ध है तथा तुरीय में तो ये दोनों हो नहीं हैं ॥११॥

समीक्षा—आपने विश्व और तैजस जो जाग्रत् स्वप्न का द्रष्टा और भोक्ता जीवात्मा ही है उसे आपने कार्य कारण रूप अविद्या अज्ञान मे बंधा बीज फलावस्था से युक्त माना है तो ऐसी तुम्हारी बात के लिये किस वेद वा वेदान्त के श्रुति सूत्र में, बताया है कि ये विश्व तैजस अविद्या के कार्य हैं ? तो जब तक तुम दोनों अद्वैतवादी गुरु हमारी इस बात का जवाब न दे दोगे तब तक तुम्हारा यह उक्त कारिका के सिद्धान्त की बात हो जाली एवं मिथ्या मानी जायेगा। कार्य जगत् जो जाग्रत में प्रत्यक्ष हो रही है और स्वप्न अवस्था और इसके द्रष्टा विश्व और तैजस नामक जीव को अविद्या रूप बीज का फल वा कार्य मानना तुम्हारा यह कितना बड़ा अज्ञान और प्रमाद है ? अरे इसी आ० प्रकरण की छठी कारिका में आप जो प्राण नाम्ना सत् भाव रूप प्रकृति है उससे अनादि भाव रूप पदार्थों की उत्पत्ति मानकर विश्वतैज प्राज्ञरूप जीवों का चैतन्य पुरुष से पृथक् उत्पन्न होना माना है। तथा इसी प्रकरण की सोलवीं कारिका में जीव को माया सहित अनादि एवं अजन्मा माना है और यहां इस ग्यारहवीं कारिका में जीव जगत् को अविद्या जन्य मान बैठे हो तो फिर तुम्हारी कौन सी बात सच्ची ? तथा तुम अविद्या का सत् मानते हो क्या ? तथा माया को अविद्या मानते हो क्या ? तथा जो अविद्या जनित जीव मानते हो तो फिर चैतन्य पुरुष का अंग कैसा ? और तुम अंशा-अंशी भाव मानते हो क्या ? और अंशी मे अंश के होने में जो अग्नि की चिनगारियों का दृष्टान्त का हवाला (प्रमाण) दोगे तो तुम्हारे मत में द्वैतापत्ती होकर तुम्हारे परमार्थ अद्वैत की हानि भी होगी क्योकि अग्नि काट में प्रवेश होकर ही उसे जला सकता है जब प्रथम आकाश का अवकाश एवं हवा का संयोग मिलेगा तभी जलेगी अग्नि अन्यथा न अग्नि जलेगी न चिनगारियां ही उड़कर निकल सकेंगी। तो जब तक काष्ठ रूप आधार न मिले तब तक आधेय रूप अग्नि को आश्रय नही और जब तक आश्रय ही नहीं तब तक चिनगारियों का निकलना कभी भी संभव नहीं तो ये तुम्हारे असिद्धि दृष्टान्त से तो तुम्हारे ही अद्वैत सिद्धान्त की हानि होकर द्वैत को ही स्थापना स्वतः हो जाती है तो जैसा अग्नि स्थानीय भावरूप ब्रह्म वा चैतन्य परम पुरुष सिद्ध हुआ वैसा ही काष्ठरूप अविद्या एवं हवारूप और आकाश उसमें काल कारण युगपत् सिद्ध हो जाते हैं तो सबका झमेला द्वैत की ही सिद्धि कर बताता है तो स्वयमेव सिद्ध हो गया कि एक तत्त्व से या अकेले ब्रह्मतत्त्व से कार्य कारण भाव या बीज फल वा वृक्ष रूप समष्टि व्यष्टि जीव भाव जगत् भाव का प्रगट होना कभी संभव नहीं होता। तो तुम्हारे मत से ही सत् प्राण नाम्ना प्रकृति जिसे तुमने यहां अविद्या और आगे माया प्रज्ञा माना है वह ब्रह्म के समान ही सत् भावरूप हो गई और जीव को अनादि माया को अनादित्व धर्म वाली मान लेने से उनका कभी अन्त भी न होगा ? किन्तु आप लोग अद्वैतवादी तो बौद्धों के पदचिह्नों पर चलते याने (संवृत्या जायते सर्वं शास्वतं नास्ति तेन वै। सद्भावेन ह्यजं सर्वं उच्छेदस्तेन नास्ति वै ॥ ५७। अ० शां० प्र०) में आप संवृति सत्य एवं परमार्थ सत्य ऐसा दो प्रकार का सत्य मान रहे हो, तो जब (संवृति) का ही अर्थ असत् अविद्यामय जगत् है तुम्हारे मत में तो अविद्या जनित को सत्य कहना मिथ्या मूलक है। देखो बौद्ध भी ऐसे ही दो प्रकार के सत्य को मानते हैं—

द्वे सत्ये समुपाश्रित्य बुद्धानां धर्मदेशना।
लोकसंवृतिसत्यं च सत्यं च परमार्थतः॥

माध्य० बृ० ४९२। बोधिचर्या. ३६१

माध्यमिक शून्यवाद बौद्धों का मत है कि सत्य दो भेदों वाला मुख्य है एक सांवृतिक सत्य जो अविद्या जनित घट पट मठ जिसे (नवीन वेदान्ती व्यावहारिक सत् वा सत्ता के नाम से कहते हैं) तो ये संवृति सत्य के भी दो भेद ये लोग मानते हैं उसमें से एक तो यहां ऊपर बताया गया इसे लोक संवृति कहते हैं दूसरा है अलोक संवृति सत् (जिसे नवीन वेदान्ति प्रातिभासिक सत्ता के नाम से कहते हैं) मृग जल आदि। तो ये लौकिक अलौकिक संवृति सत्य को दो भेद वाला जैसे बौद्ध मानते हैं वैसे ये हमारे नवीन वे० भाई भी मानते हैं। उन बौद्धों का ऐसा मत है कि (प्रत्यक्षमपि रूपादि प्रसिद्धया न प्रमाणतः अशुच्यादिषु शुच्यादिप्रसिद्धिरिव सामृषा। बौद्धिचर्या० ६१६।) अर्थात् इन्द्रियों से प्रत्यक्ष होने वाले शब्द स्पर्श रूपमय पदार्थ सब स्वतः प्रमाणतः सिद्ध नही परतः प्रमाण वाले हैं। (याने वे इन्द्रियाश्रित एवं इन्द्रियां उन पर आश्रित हैं तो अन्यो न्याश्रय दोष से मुक्त न होने से परतन्त्र सत्ता वाले होने से उनका प्रमाण नहीं हो सकता। इसीलिये वे अविद्या जन्य होने से मृषा सर्वथा झूठे माने जाते हैं और यदि ऐसे संवृति अविद्या जन्य को ही जो सर्वथा सत्य माना जायगा तो फिर अशुचि अज्ञानी भी ज्ञानी माना जायगा फिर परमार्थ सत्य (प्रज्ञामय सत्य की कोई खोज ही नहीं करेगा ? तो ऐसी ही बात ये हमारे नवीन वे० भाई भी कहते हैं कि अरे भाई नारायण ? ये द्वैत, सत्य रूप से एक अज्ञानी को या सभी को भास रहा है तो द्वैत की सिद्धि करना कोई पांडित्य नहीं। किन्तु अद्वैत की सिद्धि करना ही सच्चा परमार्थ ज्ञान है।

अब बौद्धों का दूसरा सत्य परमार्थ सत्य। उसे वे लोग तथता, भूतकोटि अनिमित्त धर्मधातु ये इनके परमार्थ सत्य के पर्यायवाची शब्द हैं। (न सन्न न चासन्न तथा न चान्यथा न जायते व्येति न चावहीयते। न वर्धते नापि विशुध्यते पुनर्विशुध्यते तत्परमार्थलक्षणम्।) आर्य असंग ने जिस परमार्थ सत्य का निरूपण किया है वह तत्त्व (तथता) यही उपरोक्त कारिका में वर्णित है याने इनका परमार्थ सत्य ऊपर की सभी प्रकार की कोटियों मे रहित याने उसे न सत् न असत् न इन दोनों कोटि से विपरीत न वह जन्मने घटने बढ़ने नाश होने वाला ही है न ज्ञान से शोधित वा अशोधित होना है तो जो ऐसे परि लक्षण मे संयुक्त है वही परमार्थ सत्य तत्त्व है। इसी प्रकार अद्वैतवादी गौडपाद भी परमार्थ तत्त्व इसी प्रकार मानते है।

नाजेषु सर्व धर्मेषु शाश्वताशाश्वताभिधा।
यत्र वर्णा न वर्तन्ते विवेकस्तत्र नोच्यते ॥६०॥ अ० शां० प्र०

अर्थ इन सम्पूर्ण अनुत्पन्न पदार्थों में नित्य अनित्य नामों की प्रवृत्ति नहीं है। और जहां शब्द ही नही है उस परमार्थ तत्त्व में नित्य अनित्य सत्य असत्य आदि विवेक भी नहीं कहा जा सकता। क्योंकि जो पदार्थ व्यावहारिक होता है वह अविद्या के कारण ही कल्पित होता है परमार्थ सत्य नहीं। (योऽस्ति कल्पितसंवृत्या परमार्थेन नास्त्यसौ ॥७३। अ० शां० प्र०) यहा तक हमने बौद्धों के एवं अद्वैतवादी गौडपाद जी की कारिकाओं मे संवृतिसत्य एवं परमार्थ सत्य का कुछ थोड़े से अंश में दिग्दर्शन कराया है, वह इसीलिये कि आप विज्ञ पाठक ये जान लेवें कि अद्वैतवादियों की विचारधारा एवं प्रक्रिया बौद्ध विज्ञानवादियों एवं माध्यमिक शून्यवादी बौद्धों के साथ मिलती है, वैसी आप सांख्यवादी वैदिकों के साथ नही मिलती।

क्रमशः

गतांक के आगे—

योगी का आत्म चरित्र

भ्रान्तिध्वान्तनिवारण (वेद परमात्मा के कहे नहीं ? ब्रह्मसमाज) (२२)

(ले० स्वा० सच्चिदानन्द योगी, अध्यक्ष श्री नारायण स्वामी आश्रम)
महामहिम पाञ्जल योग साधना संघ, आ. बा. आ ज्वालापुर

(५०) पं० भवानीलाल ने लिखा है—'योगी जी ने सार्वदेशिक में प्रकाशित ३१-१-७१ अपने लेख में......राजा राममोहनराय को वेद विरोधी कहा था......।" —आर्यमर्यादा २६ मार्च ७२।

मेरा निवेदन—'पण्डित भवानीलाल जी का यह लिखना कि मैंने राजा को वेद विरोधी लिखा था।' अशुद्ध है। वे मेरे लेख में वेद विरोधी शब्द भी नहीं दिखा सकते। मेरा कहना तो यही रहा है, राजा राममोहनराय वेद के इतने भक्त न थे कि वे वेद को अपौरुषेय स्वीकार करते। या यह मानते थे कि वेद परमात्मा के बनाये हैं। आपने जो लेख राजा साहब का उद्धृत किया है उससे यही सिद्ध होता है कि 'वेद विरोधी ग्रन्थ कदापि प्रामाणिक नहीं।' यही बात वे स्वीकार करते थे। पर मैं निवेदन करूं यह मत भी राजा साहब का अपना नहीं। उन्होंने तो यह सर्वसाधारण धारणा बतायी है। और उसके लिये मनु १२।९५ प्रमाण दिया है। उनकी भाषा बड़ी स्पष्ट है :—

A Commonly received rule for axestaining the authority of any book is this, that what ever book oppose the Veda is destitute of authority. "All Some Smrities which are Contrary to the Vedas and all atheskica works are not Conducive to future happinass. they dwell in darkness," Manu —12-95

अर्थात्—किसी ग्रन्थ के प्रमाण का निश्चय करने के लिये सर्वसाधारण नियम यह है कि जो ग्रन्थ वेद के विरुद्ध है वह अप्रामाणिक है जैसा कि मनु ने कहा है—वे सब स्मृतियां जो वेदों के विरुद्ध है और जिन्हें स्वार्थियों ने बनाया है वे सब तमोगुण से युक्त और निष्फल हैं—" —पृ० ९

आपने भी तो यही अर्थ किया है। सर्वसाधारण नियम है। अर्थात् वेदों को मानने वालों का यह नियम है। राजा राममोहनराय तो ऋषि के विरुद्ध ब्राह्मण ग्रन्थों और उपनिषदों को भी वेद मानते थे। आपने स्वयं भी यही माना है :—

"राममोहन के समय में लोगों में यही धारणा प्रचलित थी कि उपनिषद्, ब्राह्मण और आरण्यक आदि सभी ग्रन्थ वेद हैं।"

"दयानन्द ने तो वेदों के स्वत: प्रमाणत्व वेद से अविरुद्ध ग्रन्थों के परत: प्रमाणत्व और वेद विरुद्ध ग्रन्थों के अप्रामाणत्व का सिद्धान्त घोषित किया।" —पृ० २२

भारतीय जी कैसे कहते हैं कि "राजा राममोहनराय' वेद को सर्वोपरि प्रमाण और अपौरुषेय शास्त्र के रूप में स्वीकार करते हैं।" राजा के समस्त साहित्य भारतीय जी कहीं भी नहीं दिखा सकते कि राजा ने कहीं भी वेदों को अपौरुषेय माना है। इतना प्रबल विरोध होते हुए भी कैसे कहा जा सकता है यह विरोध भी जीवनी को प्रकाश में लाने में बाधक नहीं हुआ। यह 'स्वत: प्रमाण वेद' का सिद्धान्त काशी शास्त्रार्थ से पहले हो निर्णीत कर लिया गया जान पड़ता है, क्योंकि प्रथम प्रश्न दयानन्द ने काशी शास्त्रार्थ में यही किया था—"आप वेद का प्रमाण स्वीकृत करते हैं।" पं० घासीराम लिखते हैं—"ब्राह्मसमाज राजा राममोहनराय ने जो सुधारक संस्था संस्थापित की थी वह ब्राह्मसमाज के नाम से प्रसिद्ध है। ब्रह्म समाज और स्वामी जी के सिद्धान्त कई अंशों में मिलते थे। मुख्य भेद यही था कि ब्राह्मसमाजी वेदों को ईश्वर कृत और आवागमन के सिद्धान्त को नहीं मानते थे।" —म० द० ज० च० पृ० २२७

इस विचार को लम्बा बढ़ाने से असली बात रह जाती है। ऋषि जीवनी के प्रकाश में न आ सकने का कारण ब्राह्मसमाजियों से विरोध का हो जाना था। राजा राममोहनराय ही तो ब्राह्मसमाज नहीं थे।

'उन्हीं दिनों ब्राह्मसमाज में एक नये सुधारक उत्पन्न हो गये थे इनका नाम बाबू केशवचन्द्रसेन था। इनका दावा था कि वह ईश्वर के प्रेरित और प्रेषित व्यक्ति हैं। वास्तव में वह अपना वही पदसमझते थे और लोगों को समझाते भी थे कि जो पद ईसा का था। उनके विचार ईसाई धर्म की ओर अधिक झुके हुए थे......।' —म० द० ज० च० २२७

थियासोफिस्टों से अलग होने का कारण भी वेद का ईश्वरकृत न मानना था—"ईश्वर प्रणीत का पर्यायवाची न लिखकर Most divine कर दिया था।" —पृ० ७७४ वही

वेद के अपौरुषेयत्व को छोड़कर ऋषि किसी से भी समझौता करने को तैय्यार न थे। ब्रह्म समाज में नाना विचार के नाना व्यक्ति नाना विचारों के थे। भेद और कड़ा खण्डन करने पर ब्रह्म समाजियों का ऋषि जीवनी से उपरत हो जाना स्वाभाविक था। जीवन घटनाओं के हस्तलेखों में से जहां तक हम समझे हैं कोई पन्ना राजा राममोहनराय के घर से मिला है। ऐसा दीनबन्धु जी ने नहीं लिखा। फिर राजा राममोहनराय का अण्ड बण्ड मत छापकर यह कैसे सिद्ध किया जा सकता है कि ब्राह्म समाजी ऋषि के जीवन पत्रों के देने को अनुत्सुक नहीं हो सकते। जीवनी को प्रकाशित न करने की बात ऋषि ने भी कही थी—"मेरे जीवनकाल में यह आत्म चरित्र न छापा जाये।' —योगी का आत्म चरित्र पृ० २४१

उनके जीवनकाल में प्रकाशित करने का प्रश्न ही नहीं उठता। ऋषिवर १८७३ अप्रैल में काशी दिग्विजय के पीछे कलकत्ता में ४ मास रहे थे। तब जीवनी लिखाई थी। और बंगाल के मूर्धन्य नेताओं को प्रभावित किया था। जिनमें राजा राममोहनराय, केशवचन्द्रसेन आदि सब ही थे।

सन् १८७५ में अर्थात् ३ वर्ष से कुछ कम पहले ऋषिवर लाहौर पहुंचे। और ब्राह्मसमाज के साथ प्रबल संघर्ष आरम्भ हो गया। जिसका ब्योरा योगी के आत्म चरित्र में १००-१०२ तक दिया था। जिसको पं० भवानीलाल जी को ऊहा ने केवल लाहौर का संघर्ष कहकर टाल दिया है। यह तो धांधली स्वीकार नहीं की जा सकती। क्योंकि लाहौर के ब्राह्म समाज ने मि० सेन को शिमला से बुला भेजा। सेन बंगाली थे। संघर्ष में पूरा भाग लिया। वहां से बंगाल में सारा समाचार जाना स्वाभाविक है। केन्द्र में समाचार न जाये। उनका उपदेशक काम करे और उन्हें मालूम न हो। और शायद सेन फिर लौटकर बंगाल भी नहीं गए होंगे। जो बंगालियों को आर्यसमाज के साथ संघर्ष का पता ही नहीं चलता, और वे जीवनी से उदास नहीं हो सकते। कैसा कल्पना दारिद्र्य है। क्या कहा जाये इस खोज पर।

यह सब संघर्ष का पूरा विवरण History of Brahma Samaj—By Sivanath M. A. में है—ब्राह्मसमाज का इतिहास—शिवनाथ एम० ए० लिखित—पृ० ४०० पर है। यह इतिहास १९१२ में प्रकाशित हुआ। वहां तो लिखा है—"In the begining of 1875—But there was Coming in a short time a new rival and a fresh struggle in to the field 1875 के आरम्भ में—अर्थात् कलकत्ता के केवल तीन वर्ष पीछे ही एक नया प्रतिद्वन्द्वी और एक ताजा संघर्ष मैदान में आ रहा था।" इस ब्राह्मसमाज और आर्यसमाज के संघर्ष का अपलाप करना, या हेतु न मानना इतिहास की अभिज्ञता नहीं कहा जा सकता। ब्राह्म समाज कभी वेदों को अपौरुषेय नहीं माना।

इसीलिये ऋषि को कहना पड़ा—कि "वेद विद्या विहीन लोगों (अर्थात् ब्रह्मसमाजियों) की कल्पना सर्वथा सत्य क्यों कर हो सकती है? वेदादि की प्रतिष्ठा तो दूर रही, परन्तु निन्दा करने से पृथक नहीं रहते।"

ब्राह्मसमाज के उद्देश्य के पुस्तक में साधुओं की संख्या में 'ईसा, मूसा, मुहम्मद, नानक और चैतन्य लिखे हैं। किसी ऋषि, महर्षि का नाम भी नहीं लिखा है। उन्हीं के मतानुसारी मत वाले हैं।" —स० प्र० ११ समु०

(शेष पृ० ९ पर)

योगी का आत्म चरित्र एक मनघड़न्त कहानी

(लेखक—श्री स्वामी पूर्णानन्द जी सरस्वती–बड़ौत जिला मेरठ)

मैंने अपने पिछले लेखों में यह सिद्ध कर दिया है कि 'योगी का आत्मचरित्र' का छटा और सातवां अध्याय जिनमें महर्षि दयानन्द को कश्मोर से लेकर कन्याकुमारी तक की यात्रा की कल्पित कहानी बड़े विस्तार के साथ (२०९ से २४३ पृष्ठ) लिखी गई है सर्वथा झूठ और मनघडन्त है। इस प्रकार से दीनबन्धु जी की यह सब कहानी सर्वथा बन्ध्या सिद्ध हो गई फिर उसके पेट से ईसा की उत्पत्ति कहां से होगी ? जब बास ही नहीं रहा तो कौन सी बांसुरी के मीठे स्वर में ईसा के वेदपन्थी, वेदज्ञ, वेदप्रचारक और बुद्ध के अवतार होने के मधुर गीत और स्तुति के भजन गाकर ईसाइयों की वाह वाह लूटकर धन प्राप्ति की लिप्सा पूरी होगी ? अब मैं 'योगी का आत्म चरित्र' के पांचवें अध्याय के मिथ्यात्व पर विचार करूंगा। यह अध्याय दीनबन्धु जी ने ३१ पृष्ठों (१७८ से २०८ पृष्ठ तक) में लिखा है। इसमें वर्णित सब बाते ऋषि दयानन्द के मुख से कहलाई गई हैं। परन्तु इन ३१ पृष्ठों में महर्षि दयानन्द के मुख की एक बात भी नही है, यह सब दोनबन्धु जी के मन की कल्पना है। इस अध्याय में ऋषि को तथाकथित यात्रा का वर्णन है जो उन्होंने सम्वत् १९११ वि० में आबू से लेकर हरद्वार कुम्भ के मेले तक की थी। इसके मिथ्यात्व को सिद्ध करने के लिये हम ऋषि दयानन्द के स्वलिखित आत्म चरित (थियासोफिस्ट १८८०) में से उस सन्दर्भ को रखना आवश्यक समझते हैं जिसमें ऋषि ने आबू से हरद्वार तक की यात्रा का वर्णन किया है। ऋषि जी लिखते हैं :—

"स० १९११ की समाप्ति पर (आबू से) हरद्वार के कुम्भ के मेले में मैं पहली बार सम्मिलित हुआ, जहा बहुत से ऐसे महात्मा और दार्शनिक महापुरुष इकट्ठे होते हैं जिनके साधारणतया दर्शन दुर्लभ हैं। जब तक मेले में यात्रियो की भीड़भाड़ बनी रही मैं चण्डी के जगल में एकान्त स्थान में रहा और योगाभ्यास करता रहा। यात्री लोगों के हठ जाने पर मे ऋषिकेश चला गया जहा कभी कभी पवित्रात्मा योगियों की संगति में किन्तु प्राय: एकाकी हो योग का अध्ययन और अभ्यास करता रहा।"

ऋषि ने आबू से हरद्वार तक अपनी यात्रा केवल ७ पंक्तियों में लिखकर गागर में सागर भर दिया। यह यात्रा क्या है ? सच्चे मोतियों की माला एक हीरे की कणी। सच्चे आत्म ज्ञानी, परम वीतराम, ब्रह्मनिष्ठ, सरल हृदय, शान्त, दान्त, निर्भय, परमयोगी, स्थित प्रज्ञ, समाधिस्थ और पवित्रात्मा के चरित्र की मुह बोलती तस्वीर है एक पारखी इन सात पंक्तियो मे ही ऋषि के सच्चे दर्शन कर लेगा। इन ही पक्तियो में उसे गीता के दूसरे अध्याय में वर्णित स्थित प्रज्ञ और समाधियो की परिभाषा की गूंज सुनाई देगी। गीता के १३ अध्याय में वर्णित—"विविक्तदेशसेवित्वमरतिजनसंसदि। अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं तत्त्वज्ञानार्थ दर्शनद्। एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञान यदतोऽन्यथा ॥" की ये पक्तिया प्रतिध्वनि हैं। गीता के १८ वें अध्याय में कथित :—

"विविक्तसेवीलघ्वाशी यतवाक्कायमानस:।
ध्यानयोगपरो नित्य वैराग्य समुपाश्रित: ॥
अहकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं परिग्रहम्।
विमुच्य निर्मम: शान्तो ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥"

ये श्लोक मानों ऋषि जी की चण्डी के जंगल में योगारूढ़ अवस्था का ही वर्णन कर रहे हैं। योगीश्वर की लिखी हुई ये सात पंक्तियां ही उसकी ऋद्धि सिद्धि और विभूतियों का वर्णन कर रही हैं। जिनकी अन्दर की आंखें हैं वे देख सकते हैं और अन्दर के कान हैं वे सुन सकते हैं। महापुरुष थोड़े में ही बहुत कुछ कह जाते हैं। उन्हें अधिक लपा-लपो की आवश्यकता नहीं पड़ती। वे अपने आपको कभी योगी और महामहिम नहीं कहते, परन्तु लोग स्वयं उनको योगी और ऋषि कहते हैं। यह काम तो अत्यन्त क्षुद्रजनों का होता है जो स्वयं अपने को योगी योगी पुकारते फिरते हैं। फिर भी जनता उनकी कुत्ते जितनी भी कदर नहीं करती। मूर्ख जन चाहे उन्हें योगी क्या ईश्वर भी कह दें परन्तु विज्ञ लोग तो उनको निरा लम्पट ही कहते हैं। परमयोगी महर्षि दयानन्द जी की उपरिलिखित पंक्तियों के प्रकाश में ही कल्पित दयानन्द के कथन और स्वरूप को परखना चाहिये। दीनबन्धु जी ने ३१ पृष्ठों में कल्पित दयानन्द का चरित्र लिखा है, परन्तु यह लेख ऋषिवर दयानन्द के लेख से चाहे सौ गुणा विस्तृत है, परन्तु यह ऋषि के लेख की तुलना में घास-फूस और कूड़ेकर्कट के ढेर के समान है। दीनबन्धु जी एण्ड को का सारा प्रयत्न ऋषि दयानन्द के विमल चरित्र को कलकित करने का एक सुनियोजित षड्यन्त्र है। तथाकथित योगो सच्चिदानन्द ने कई बार यह स्पष्ट कहा है 'कि स्वामी जी का स्वलिखित आत्मचरित्र झूठा और धोखे से भरा है' इसके प्रमाण में मैं फिर लिखूगा। परन्तु जिस आत्मचरित्र को यह पार्टी सर्वथा शुद्ध और पवित्र मानती है उसमें वर्णित दयानन्द के चरित्र को 'योगी का आत्म चरित्र' के पृष्ठ १०८ से २०८ तक पढ़कर देखे ? इसमें वर्णित दयानन्द कस्तूरी के मृग की भान्ति गलियो में, बाजारों में, पैंठो में, दुकानो में, स्नानागारो, नहाने के घाटों में, सरायों में, धर्मशालाओं में, मन्दिरो में, मस्जिदों में, सरकारी कर्मचारियों के दफ्तरों में, मेलों में, ठेलों में, भिखमगों में, सुलफा गांजा पीने वालों में, स्त्रियो में, पुरुषों में, अमीरों में, गरीबों में, रात में, दिन में, षड्यन्त्रकारियों में और गुप्त समितियों में मारा मारा फिरता है। उसे एक घड़ी चैन नही।

आबू से हरद्वार तक पहुंचने के वर्णन में ११ पृष्ठ भरे गये हैं; जबकि ऋषि दयानन्द ने स्वलिखित चरित्र में उसके लिये एक शब्द भी नहीं लिखा। ऋषि ने क्यों नहीं लिखा ? इसलिये कि ऋषि ने उस यात्रा में कोई विशेष घटना न देखी और न सुनी। परन्तु दीनबन्धु जी ने ११ पृष्ठों में यह सफेद झूठ क्यों घड़ कर रख दिया ? इसलिये कि हरद्वार मे होने वाले कुम्भ के मेले में दयानन्द का १८५७ की जनक्रान्ति के नेताओं से मेल होने की भूमिका को बांधा जा सके और फिर संसार के ऐतिहासिकों को आश्चर्य में डालने वाली अनोखी और सर्वथा निराली खोज का सम्बन्ध ऋषि दयानन्द से जोड़कर आर्यसमाजियो में खूब जोर से ढिंढोरा पीटकर उनसे मनमाना धन लूटा जा सके।

इस झूठ का पर्दाफाश करने के लिये दोनबन्धु जी की पुस्तक में मेरठ से हरद्वार तक की यात्रा का वर्णन पढ़िये !

"दिल्ली से मेरठ—हरद्वार कुम्भ मेले के यात्री हम सब साधु लोग यथा समय दिल्ली से मेरठ पहुच गये थे। तीर्थ यात्रियों के अन्दर सैंकड़ों गृहस्थ स्त्री पुरुष भी थे। मेरठ से लगभग चार योजन दूरी पर पाण्डवों की पुरानी राजधानी हस्तिनापुर है। गगा नदी वहा से धीरे धीरे हटती जा रही है। वहां से हम गढ़मुक्तेश्वर गये थे। मेरठ के पास ही परशुराम की जन्मभूमि और जमदग्नि का आश्रम है। ऋषि बाल्मीकि का आश्रम भी वहा ही था। वहां के पुराने आश्रमों में योगसिद्ध पुरुषों का सन्धान नही मिला।···तीर्थ यात्रियों के पीछे घुड़सवार श्वेताग सैनिक भी तीर्थयात्रियों की रक्षा के बहाने से आते थे सरकारी कर्मचारी के पीछे बन्दूकधारी पलटन बहुत सख्या में थी। गृहस्थ तीर्थयात्री चारो तरफ भाग गये थे।···हम सब साधु लोग दलबद्ध न होकर चार चार पाच पांच करके एक साथ रहकर हरद्वार को तरफ चलने लगे·····किन्तु गुप्तचर कर्मचारियो के सन्देह करने के डर के मारे कोई साधु किसी साधु से बातचीत करना निरापद नही समझता था।" मेरठ से हरद्वार को यात्रा के इस वर्णन को पढ़कर मेरठ प्रान्त की सड़कों और मार्गो से परिचित एक व्यक्ति झट यह समझ जायेगा कि यह यात्रा सचमुच कोई देहधारी व्यक्ति नहीं कर रहा, अपितु यह यात्रा कलकत्ते में बैठे दीनबन्धु जी का कल्पनाशील मन कर रहा है। मेरठ से हरद्वार के लिये यह यात्रा नही अपितु तेली के बैल का चक्कर काटना है। कैसे ? जरा ध्यानपूर्वक पढ़िये ! मेरठ से हस्तिनापुर उत्तरपूर्व की दिशा में २० मील; हस्तिनापुर से गढ़मुक्तेश्वर दक्षिण दिशा में ३२ मील; गढ़मुक्तेश्वर से फिर मेरठ पश्चिम दिशा में २८ मील (क्योंकि गढ़मुक्तेश्वर से हरद्वार जाने के लिये मेरठ होकर ही जाते हैं) यह चक्कर मेरठ से फिर मेरठ आने का ८० मील का हुआ। मेरठ से बाल्मीकि का आश्रम तथा परशुराम की जन्मभूमि २० मील पश्चिम दिशा में हीण्डन नदी के पश्चिम किनारे पर बालैनी गांव के पास है। यहां से फिर मेरठ पूर्व दिशा में २० मील इस प्रकार से यह दूसरा चक्कर ४० मील का हुआ। मेरठ से फिर हरद्वार मुजफ्फर नगर और रुड़की होते हुए लगभग १०० मील का मार्ग है, परन्तु दीनबन्धु जी ने दयानन्द को २२० मील का चक्कर कटवाया। दीनबन्धु जी के अनुसार दयानन्द अकेला ही चक्कर नहीं काटता रहा, अपितु उसके साथ सैंकड़ों साधु और सैंकड़ों स्त्री पुरुष हैं उनके पोछे सैंकड़ों कर्मचारी, अंग्रेज घुड़सवार और बहुतसी बन्दूकधारी पलटन भी है। ● (क्रमश:)

हरयाणा सर्व खाप पंचायत के इतिहास में

न्याय का उत्तम उदाहरण (६)

(श्री निहालसिंह आर्य बी० ए० अध्यापक रामपुरा देहली)

मुस्लिम बादशाह 'बलबन" सन् १२८६ ई० में हुआ था। उर्दू, अरबी, फारसी का प्रसिद्ध कवि बलबन का ही समकालीन था और इसका राजकवि था। खुसरो हज़रत निजामुद्दीन मुस्लिम सन्त का चेला था इस कवि का जन्म सन् १२५० ई० में ग्रा० पहियाली जिला एटा में हुआ था। अमीर खुसरो संस्कृत, अरबी फारसी, तुर्की तथा हिन्दी का कवि था। खुसरो की पुस्तक का नाम खालिक बारी है। यह पुस्तक बलबन बादशाह ने हरयाणा के शिष्ट लोगों की भाषा को समझने के लिये ही खुसरो कवि से लिखवायी थी।

हरयाणा के पंचों की योग्यता :—जिस समय लखनऊ में नवाब आसफुद्दौला का शासन था, उस समय उसके राज्य में एक ग्राम में एक वृद्ध गृहस्थी था। उसकी तीन सन्तानें थीं अर्थात् उसका भतीजा, पुत्र और पौत्र उसके घर में उन्नीस ऊंट भी थे उस गृहस्थी ने कहा कि मेरे मरने के पश्चात् मेरे उन्नीस (१९) ऊंट मेरी सन्तानों में इस प्रकार बांट देना कि मेरे कुल ऊंटों का आधा भाग तो मेरे भतीजे को दे देना और इनका चौथा भाग मेरे पुत्र को और इनका पांचवां भाग मेरे पौत्र को दे देना। उस वृद्ध की मृत्यु के पश्चात् इन ऊंटों का बँटवारा करने के लये ग्राम पंचायत में कोई निर्णय नहीं हो सका फिर बड़े सरदारों के पास भी गये यहां तक कि इस निर्णय के लिये नवाब आसफुद्दौला के पास लखनऊ दरबार में भी गये, परन्तु उन उन्नीस ऊंटों का आधा चौथा और पांचवां भाग नहीं हो सका। और यह बात एक समस्या बन गई। यह निर्णय कराने के लिये आसफुद्दौला के राज पुरुष दिल्ली के बड़े दरबार में भी पहुंचे पर १९ ऊंटों का बँटवारा नहीं हो सका। किसी जानकार मनुष्य ने कहा कि इन ऊंटों का बँटवारा हरयाणा के पंच कर सकते हैं क्योंकि वे बहुत योग्य एवं व्यवहार कुशल हैं। नवाब के कर्मचारी हरयाणा के पंचों के पास आये और इस निर्णय के लिये प्रार्थना की। हरयाणा के पंचों ने कहा कि इन ऊंटों का बँटवारा हम तुरन्त कर देंगे। हरयाणा के पंच आसफुद्दौला नवाब के राज में गये, तो उन्हें बड़े सम्मान पूर्वक बैठाया गया। मुख्य पंच ने उन उन्नीस ऊँटों तथा गृहस्थ की तीनों सन्तानों को बुला लिया। नवाब इस निर्णय को देखने को बहुत उत्सुक था कि कैसे करेंगे। सारा जन समूह देख रहा था हरयाणा पंचायत के प्रधान ने कहा कि इस का न्याय तो मैं अभी कर देता हूं। उस प्रधान ने एक ऊँट मार्ग में अपना भी ले लिया था न्याय करते समय उसने अपना ऊँट भी उनमें मिलाकर पूरे बीस कर दिये और कहा कि इन तीनों के साथ मैं भी अपना ऊँट बटवाऊंगा। हरयाणा प्रधान ने उन बीस का आधा भाग दस ऊँट तो वृद्ध गृहस्थी के भतीजे को दे दिये और उन बीस का चौथा भाग पाँच ऊँट उसके बेटे को दे दिये और बीस का पांचवां भाग चार ऊँट उसके पौत्र को दे दिये। इस प्रकार उनके १०+५+४=१९ ऊँट इन्हीं तीनों में बाँट दिये और कहा कि बीसवाँ ऊँट मैं अपना अपने साथ वापिस ले जाता हूँ। इस कुशल निर्णय को देख कर आसफुद्दौला के भरे दरबार में बहुत प्रसन्नता मानी गई। और हरयाणा पचायत के उस विद्वान प्रधान् की वहाँ बहुत प्रतिष्ठा और सम्मान किया गया। उस स्थल पर विद्यमान एक मुस्लिम कवि ने गदगद हो कर हरयाणा प्रधान के सम्मान में ये शब्द कहे :—

"अनपढ़ जाट पढ़े बराबर और पढ़ा हुआ जाट खुदा बराबर"
पगड़ी है हरयाणे के वीरों का ताज।
जिसको देख झुके महाराज॥

यहाँ यह तथ्य भी स्पष्ट कर देना उचित है कि भारतीय स्वतन्त्रता क्रान्ति सं० १८५७ ई० से पहले अंग्रेजी कचहरी में किसी को पगड़ी बाँध कर नहीं जाने दिया जाता था, परन्तु क्रान्ति के पश्चात् १८५७ ई० में तत्कालीन इंगलैण्ड की महारानी मलका विक्टोरिया ने कहा था कि हरयाणा का वीर हमारी किसी कोर्ट में पगड़ी बाँधकर जा सकता है।

जब अत्याचारी मुगल बादशाह औरंगजेब ने अपने अत्याचार एवं दुर्नीति से देश के छोटे बड़े राजाओं पर आक्रमण करके उनके सारे खजाने लूट लूट कर अपना धन भंडार भरपूर कर लिया तो वीर शिवाजी के पूज्य गुरु समर्थ रामदास ने उस समय उत्तरी भारत का भ्रमण किया उन दिनों स्वामी समर्थ रामदास सारे ही भारत के धर्म गुरु माने जाते थे। वे यहाँ वैशाख बदी अमावस्या सं० १७२३ विक्रमी में आये थे। उन्होंने कहा था "औरंगजेब का जुल्म हद को पार कर चुका है किसी पर जुल्म करना महापाप है और किसी का जुल्म बरदाश्त करना भी पाप है,, इस प्रकार गुरु समर्थ रामदास जी ने हरयाणा के वीरों को जगाकर औरंगजेब की अत्याचारी हकूमत का दमन करने के लिये तथा उसका खजाना लूटने के लिये सबको उत्तेजित करके आक्रमण करा दिया।

सर्व प्रथम ब्रज में भरतपुर के राज्य में श्री कान्हाराय गोकुल देव प्रसिद्ध सेनापति बना था। सर्वप्रथम इसी ने शाहदाबाद मथुरा के हाकिम को कत्ल करके युद्ध छेड़ दिया और महायुद्ध मचाता हुआ युद्ध में ही बलिदान हो गया। पश्चात् इन्हीं सेनापति "कान्हाराय जी" के भाई भतीजों के वंश में ही भरतपुर के राजा सूरजमल्ल और जवाहर सिंह हुये थे। औरंगजेब की सेना सब स्थानों में विजय करती हुई जब हरयाणा के वीरों से हारी है। औरंगजेब के ही एक कवि ने उसकी हार का वर्णन इस प्रकार किया है। वो दिने हुजाजी का बेबाक बेड़ा निशाँ जिसका अकसाय आलम में पहुंचा।

न जेहूँ में अटका न कुलजम में झझका मुकाबिल हुआ कोई न जिसका।
किए पै सिपार जिसने सातों समन्दर वो डूबा दहने में गंगा आकर।

(अलताफ हुसैन हाली)

अर्थात इस्लाम का जो बेड़ा निडरता से सब जगह विजयी होता गया और जिसका डंका सारे विश्व में बज गया और जिसने सातों समन्दरों को भी जीत लिया परन्तु वह इस्लाम का बड़ा वीरप्रभू हरयाणा के पवित्र स्थान गंगा के निवकास स्थान में आकर पराजित होकर डूब गया। (यह लेख वैदिक सम्पत्ति पुस्तक के पृष्ठ ५२७ पर भी लिखा है) औरंगजेब ने अपने अन्तिम दिनों में स्वयं कहा था कि "मैं ने सर्वत्र विजय की पर अन्त में शिवाजी की सेना के मरहठों ने और उसके सुपुत्र राजा राम की पत्नी ताराबाई ने मुझे हराकर मेरा सारा खजाना लूट लिया और उत्तरी भारत में जाटों ने हमारी कमर तोड़ दी" इस खजाने की लूट में हरयाणा के योद्धाओं ने ही जाकर मरहटों को सेना को झपट्टा मार लड़ाई सिखाई थी। जिससे विजय हुई।

औरंगजेब का पुत्र मोअज्जम बहादुरशाह प्रथम था एक लड़का जहांदारा था। यह बड़ा मूर्ख, विलासी और मनोरंजी था। यह एक रंडी लालकोर के मोह में आसक्त रहता था। इस रंडी के मोह में फंसा हुआ बाजार में सब्जी भी लेने जाता था तो दो करोड़ रुपया सालाना इस वेश्या पर खर्च करता था। एक बार इस रंडी ने लालकिले को दीवार पर खड़े होकर कहा कि मैंने कभी नाव डूबती नहो देखा। जहांदाराशाह ने एक नाव वाले को कहकर उसकी नाव लोगों से भर कर जमना नदी में तैरा दी और उसके गुप्त आदेश पर वह नाव जल में डुबो दी बेचारे सारे सवार वहीं डूब कर मर गये और लालकोर रंडी हंसती हुई देखती रही। और इस अत्याचार पर कोई दया नहीं आई।

सय्यद वंश में उत्पन्न अबदुल्ला खां और हुसन अली खां दो भाई हरयाणा के जानसठ (जि० मुजफ्फर नगर) ग्राम में रहते थे। ये दोनों भाई वीर थे। इन्होंने आकर उस दुष्ट जहांदाराशाह को मार दिया ये दोनों भाई सर्व खाप पंचायत हरयाणा के पूरे आज्ञा पालक थे। इन्होंने बीस वर्ष तक दिल्ली के तखत पर मनोनीत बादशाह बनाया? इन दोनों भाइयों ने कहा था कि हम सर्वखाप पंचायत हरयाणा के कृतज्ञ हैं। हरयाणा के जाट योद्धा हमारे साथ हैं। हम जिसके सिर पर जूता भी रखेंगे वही दिल्ली का बादशाह बनेगा। उन्होंने दिल्ली में अमन रखा। अब्दुल्ला खां प्रधान मन्त्री था और हसन अली खां सेनापति था। हसन अली खां ने डीघल, बेरी, नरेला और बादली में भाषण दिया था कि मैं जाट भाइयों में पैदा हुआ हूं। ये मेरे पिता और भाई हैं। जो विदेशी नये मुस्लिम यहां का राज्य करना चाहते हैं मैं उनके विरुद्ध हूं। हमारे अन्दर जाटों का खून है। मेरे बुजुर्ग छः सौ (६००) वर्ष पूर्व भी यहां बसते थे जो यहीं के निवासी थे। नोट (क्रमशः)

(अगले अंक में यह लेखमाला पूर्ण हो जायेगी)

अग्नेः सूर्यस्य संदृशः—

(श्री सत्यभूषण जी वेदालंकार एम० ए० C. ६६—जंगपुरा इक्टेन्शन नई दिल्ली-१४)

मानव ! तू ऊपर उठ नीचे की ओर मत जा, मृत्यु के पाश को छुड़ाता हुआ आगे बढ़। इस लोक से अपना सम्बन्ध मत तोड़। वेद की इन तीन शिक्षाओं के बाद चौथी शिक्षा है, "अग्ने सूर्यस्य संदृशः अग्नि तथा सूर्य के संदर्शन से मत छूट।"

दुनियां में भगवान् ने अग्नि और सूर्य दो पदार्थ ऐसे बनाये हैं, जो हमें निरन्तर आगे बढ़ने की प्रेरणा देते रहते हैं। "अग्निः कस्यात् ? अग्रणीर्भवति" श्री यास्याचार्य कहते हैं, कि आगे बढ़ने वाला अगुआ होने से अग्नि कही जाती है। "अधोकृतस्यापि तनूनपातः नाधः शिखा याति कदाचिदेव।" आग को ज्वाला को नीचे कर दो, तो भी ऊपर को गति करेगी। तो हमें अग्रणी बनना है, हर क्षेत्र में, सामाजिक, राजनीतिक, व्यक्तिगत प्रत्येक जीवन में। अग्नि से हम कितने ही काम लेते हैं, इसी कारण न कि वह अग्रणी है, उसमें प्रकाश है। हम भी आगे बढ़ें हमारे जीवन में प्रकाश की चिनगारियां फूटें, अज्ञान भस्म हो जाए। "अग्नि-नाग्निः समिध्यते।" अग्नि से अग्नि का प्रज्जलन होता है। गुरु विरजानन्द अतिशय तेजस्वी, प्रकाशमय, अग्रणी थे। उन्होंने दयानन्द रूपी अग्नि को पाकर उसे तेजोमय प्रकाशयुत कर दिया। हमारे जीवन में अग्नि होगी, तभी हम दूसरों को प्रकाशित कर सकेंगे, कुछ प्रभाव डाल सकेंगे। अतः अपने को अग्नि के संदर्शन से मत छुड़ाओ। सदा अग्नि को देखकर उससे शिक्षा ग्रहण करते रहो।

सूर्य भी इसी प्रकार हमें आगे बढ़ने की प्रेरणा प्रदान करता है। 'सर्तेः गत्यर्थात् सुवतेर्वा प्रेरणार्थत्वात्' सदा गतिशील तथा सत्प्रेरणा लेने की शिक्षा सूर्य से प्राप्त होती है। हमें भी सतत गतिशील तथा सत्प्रेरक बनना चाहिये। सत्प्रेरणा, उच्च विचार, सद्भावना से मानव देवत्व को प्राप्त करता है। "उच्च विचार उठाते हैं, मानव को, नीच विचार गिराते हैं मानव को। उच्च विचारों से देवत्व मिला है, नीच विचारों में दनुजत्व पला है।

तो आइये, सद्भावना, सत्प्रेरणा, शुद्ध विचारों, संकल्पों की शिक्षा सूर्य से ग्रहण कीजिये। अग्नि तथा सूर्य दोनों के गुणों को अपने जीवन में धारण कर यश प्राप्त कीजिये। ●

सम्पादक को बधाई पत्र

आप जिस विद्वत्तापूर्ण रीति और सूझबूझ भरे लेखों से आर्यमर्यादा को चला रहे हैं उसे देखकर तो बड़ा खेद होता है कि आपने "सम्राट्" क्यों बन्द कर दिया था ? तब से तो आप देश के शीर्षस्थ सम्पादक हो गये होते। आज भी आपके लेख और सम्पादकीय आर्यजगत् का नेतृत्व कर रहे हैं। आर्यजगत् की ओर से आप बधाई के पात्र हैं। प्रभु आपको सदा स्वस्थ और उत्साह सम्पन्न रक्खें, जिससे इसी प्रकार आपके द्वारा आर्यजन पावन प्रेरणाएं प्राप्त करते रहें।

—आयुर्वेद बृहस्पति कविराज योगेन्द्रपाल शास्त्री मुख्य सम्पादक शक्ति संदेश, कनखल।

प्रिंसीपल श्रीरामजी शर्मा के बारे में

महात्मा आनन्द स्वामी जी महाराज का कथन बिल्कुल ठीक है उन्हें और कुछ नहीं हुआ केवल हिस्टीरिया ? हुआ है, इसीलिये इन के हाथों कोई भी कार्य सम्पन्न नही हुआ। यहां चौदह बरस रह कर इन्होंने शोलापुर के कालेज को भी ठीक तरह से नहीं चलाया। आर्यसमाज को समझना इनके बूते के बाहर की चीज है। पंजाब विश्वविद्यालय का कोई अधिकार नहीं कि सार्वजनिक धन का इस प्रकार दुरुपयोग करे अतः फौरन उनको दिया जाने वाला पैसा बन्द किया जाना चाहिये।

—निर्मल कुमार ११० कसबा पेठ, शोलापुर

(पृष्ठ ६ का शेष)

देवेन्द्र बाबू बंगाली थे। हर सत्य प्रगट करने से पीछे नहीं हटे। उन्होंने लिखा जीवन चरित्र में—

उन्होंने (ऋषिवर ने) पण्डित कृपाराम से पूछा आपने हमारे व्ययार्थ चन्दा किन किन लोगों से एकत्र किया है ? पण्डित जी ने उन्हें चन्दे की सूची दिखाई तो उसमें केवल दो व्यक्तियों को छोड़कर शेष ब्रह्म समाजी बंगाली थे। महाराज यह बात जानकर कुछ क्षुण्ण हुए। और कहा कि आप लोगों को इन पर भरोसा नहीं करना चाहिये। यह लोग आज आपके मित्र हैं और कल शत्रु हो जायेंगे। आपने भूल की जो ब्रह्म समाजियों का विश्वास किया।" म० द० जी० च० पृ० ५३८

यह घटना १४ अप्रैल १८७८ की है। १८७५ में संघर्ष लाहौर में हुआ। देहरादून में ऊपर वाली ऋषि की सम्मति है। १६ दिसम्बर १८७२ में कलकत्ते में थे। कलकत्ते का आनुकूल्य प्रातिकूल्य सब उनके ध्यान में था। कलकत्ते में वेद पाठशाला नहीं खुल पायी थी। योजना ही बनकर रह गयी थी।

आगे की दूसरी घटना—'व्याख्यान में बाइबिल और कुरान का खण्डन तो था ही, ब्रह्म समाज भी लपेट में आ गया। इधर ईसाई कष्ट, उधर मुसलमान कष्ट और तीसरी और ब्राह्म समाजी रुष्ट। ब्राह्म समाजियों ने तो आगे से सहायता देना ही बन्द कर दिया और सर्वथा विरुद्ध हो गए। महाराज का वचन पूरा हुआ।

सन् १८८३ में सत्यार्थप्रकाश ११ समुल्लास में ऋषिवर ने यहां तक लिखा—"ब्राह्म समाज के उद्देश्य के पुस्तक में साधुओं की संख्या में ईसा, मूसा, मुहम्मद, नानक और चैतन्य लिखे है, किसी ऋषि महर्षि का नाम ही नहीं लिखा है। उन्हीं के मतानुसारी मत वाले है।

—स० प्र० ११ समु०

ऋषि के इस अन्तिम वाक्य को पढ़कर तो हमें लगता है श्री पं० भवानीलाल जी भी 'उन्हीं के मतानुसारी है।' विरोधियों के गीत गाते हैं। उन्हीं की बात की पुष्टि करते है। राजा राममोहन राय ने वेद को ईश्वरकृत नहीं माना। पर यह उनकी प्रशंसा आर्यसमाजियों को धोखे में डालने के लिये ऋषि के साथ राममोहनराय गृहस्थ की तुलना कर रहे है। उधर नोट विच की बताई लद्दाख की यात्रा का खण्डन ईसाइयों ने किया यह ऋषि की वहीं की यात्रा का खण्डन कर रहे हैं, मालूम होता है पण्डित भवानीलाल जी प्रछन्न रूप से ईसाई और बौद्ध भक्त हैं। ऋषि के सिद्धान्तों से समाज को भटकाने के लिये अन्यथा सिद्ध व्याख्याओं में लगे हैं। आश्चर्य है जो यह मानता है मैं योग का करना भी नहीं जानता वह योगी के आत्म चरित्र का खण्डन कर रहा है। राजा राममोहनराय के सिद्धान्त को ऋषि के अनुकूल बता रहे हैं। इसलिये उनके मत में आर्यसमाजियों को उनकी सभाओं का सदस्य बन जाना चाहिये। अस्तु जो हो। क्योंकि उनके मत में राजा राममोहनराय वेद को सर्वोपरि अपौरुषेय शास्त्र के रूप में स्वीकार करते हैं।" राजा जी वेदों को अपौरुषेय, ईश्वर प्रदत्त मानते हैं, इसमें एक भी प्रमाण आज तक नहीं दे सके हैं, न आगे दे सकेंगे। हां अपनी कहे जाना उनका स्वभाव है। ●

स्वामी परमानन्द—एक प्रेरणाप्रद संस्मरण

(लेखक—श्री देवनारायण भारद्वाज मन्त्री आर्यसमाज अलीगढ़)

उत्तर प्रदेश के शाहजहांपुर जनपद में एक सुन्दर उपनगर जलालाबाद है। इस उपनगर के चारों ओर दूर दूर तक कोई आर्य समाज मन्दिर अब से अनेक दशाब्दियों पूर्व नहीं था। और अब भी नहीं है। अब से ७०-८० वर्ष पूर्व स्वामी परमानन्द जी ने अपना सर्वस्व न्योछावर कर यहाँ पर आर्यसमाज की स्थापना की थी।

स्वामी जी का पूर्व नाम श्री ख्याली राम जी था। आप अपने नगर के बहुत ही प्रतिष्ठित एवं ऐश्वर्य शाली सज्जन थे। अपने जीवन के आरम्भ काल में आप आर्यसमाज के सम्पर्क में न आ सकने के कारण आप कुछ व्यसनी हो गए थे। पर बाद में आप शाहजहाँपुर जनपद के प्रसिद्ध क्रान्तिकारियों तथा स्वतन्त्रता सेनानियों के साथ हो गए थे।

श्री ख्यालीराम जी प्रसिद्ध कपड़े के थोक व्यवसायी थे। व्यापार के काम से, तथा देशभक्तों के साथ प्रायः आपको देश भ्रमण का अवसर भी मिलता था। ऐसी ही किसी यात्रा में आपका आर्यसमाज से सम्पर्क हो गया। बाद में अपने नगर में भी कई आर्यसमाजी विचारों के व्यक्ति मिल गये थे। सुन्दर सम्पर्क के कारण सारे दुर्व्यसन दूर कर श्री ख्याली राम एक आर्य पुरुष बन चुके थे।

अब ख्यालीराम जी के नियमित रूप से तीन काम हो गए थे। अपने व्यवसाय का संचालन, देशभक्तों की सहायता एवं आर्यसमाज का प्रचार। इनकी पत्नी अपनी सन्तानों को छोड़कर स्वर्गधाम गई। अनेक लोगों ने दूसरे विवाह की प्रेरणा दी। परन्तु उन्होंने स्वीकार नहीं किया।

वैराग्य भावना प्रबल हो उठी थी। सारे सांसारिक कार्यों से उपराम होने लगे। महर्षि दयानन्द के सन्देश को जीवन में उतारने की ठान ली। अपनी पुत्री के विधवा होने पर—समाज की रूढ़ियों को उसके अवरोध को एक ओर रखकर उसका पुनर्विवाह कर दिया। अपने विशाल कोठीनुमा निवास को बेच दिया। इस धन से जलालाबाद में प्रमुख स्थान पर भूमि क्रय करके आर्यसमाज मन्दिर बनवा दिया। स्वयं अपनी दो पक्की दुकानें तथा गोदाम आदि आर्यसमाज के नाम कर दीं। बाद में इनके साथी व शिष्यों ने भी सहयोग करके मन्दिर-निर्माण में सहयोग किया। आर्यसमाज मन्दिर में इनके अतिरिक्त निर्माण निधि में यदि दूसरा शिलालेख किसी का है तो वे हैं स्व० महाशय दीनानाथ जी। इन्होंने भी एक दुकान तथा यज्ञशाला बनवाकर समाज को दान की थी।

उस समय आर्य जगत् के प्राण महात्मा नारायण स्वामी को आमन्त्रित करके संन्यास आश्रम की दीक्षा लेकर ख्यालीराम से स्वामी परमानन्द बन गये। "शतहस्त समाहार सहस्र हस्त संकिर" वेद मन्त्र को अपने जीवन में साकार कर दिया। निर्धन अनाथों को आर्थिक सहायता एवं स्थान स्थान के आर्यसमाजों को अधिकाधिक दान देना उनका स्वभाव बन गया था। गुरुकुल वृन्दावन को कई सहस्र रुपये देकर एक निधि उन्होंने स्थापित की थी। आर्य प्रतिनिधि सभा उ० प्र० के मुख्यालय पर कूप का निर्माण कराया था। उनके नाम का पत्थर कभी मैंने वहाँ देखा था। इसी भाँति अनेक आर्य संस्थाओं को सदैव प्रचुर धन दान करते रहे। अब से लगभग १८ वर्ष पूर्व ८४ वर्ष की अवस्था में स्वामी जी का देहावसान हो गया था। लेखक ने उनके चरणों में बैठकर प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त की थीं। अबोध बाल्यावस्था में जो भावनायें। स्वामी जी ने मेरे मन. मस्तिष्क में भर दी थीं—वे ही मेरा पथ प्रदर्शन करती रहती हैं।

न केवल इसलिये कि स्वामी जी मेरे पूज्य पितामह थे, अपितु इसलिये भी कि वे मेरे प्रथम गुरु थे—मैं उनका सदा ऋणी हूं, तथा उनके प्रति हार्दिक श्रद्धाञ्जली अर्पित करता हूं।

ग्राम डालावास (महेन्द्रगढ़) में धर्म प्रचार

दिनांक ९ जनवरी १९७३ को ग्राम डालावास (महेन्द्रगढ़) के राजकीय उच्चतर विद्यालय में आर्य युवक सभा हरयाणा की ओर से श्री स्वामी योगानन्द जी सरस्वती का छात्रों तथा अध्यापकों में सदाचार विषयक अत्यन्त प्रभावशाली व्याख्यान हुआ। आसनों के व्यायाम का प्रदर्शन किया इससे छात्रों को व्यायाम में बड़ी लगन और प्रेरणा प्राप्त हुई। अगले दिन ग्राम—मन्दिर में यज्ञ का आयोजन किया गया जिसमें बालक, युवा, वृद्ध पुरुषों और महिलाओं ने बड़ी रुचि और भारी संख्या में श्रद्धा से भाग लियां। २० छात्रों ने यज्ञोपवीत धारण किये। कुछ युवकों ने सुरापन, मांस-भक्षण, और धूम्रपान के परित्याग का व्रत लिया ग्राम के सरपंच श्री कप्तान रामस्वरूप जी ने इस ग्राम मन्दिर के निर्माण तथा वेद प्रचार की व्यवस्था की प्रतिज्ञा की। स्थानीय युवक सभा ने एक पुस्तकालय स्थापित करने की योजना बनाई। इस युवक सभा का संचालन श्री मा० रणधीरसिंह जी(सुवाना) बड़ी कुशलता से कर रहे हैं। चौ० होशियारसिंह जी मुख्याध्यापक ने इस प्रचार में बड़े उत्साह से भाग लिया। श्री दादा बस्तीराम जी ने लगभग १८-२० वर्ष पहले १५ दिन प्रचार किया था। तत्पश्चात् यहाँ वेद प्रचार नहीं हुआ। यह वेद प्रचार अत्यन्त प्रभावशाली रहा।

—सुदर्शनदेव आचार्य प्रचार-मन्त्री हरयाणा आर्य युवक सभा

श्रीमद्दयानन्द आर्ष विद्यापीठ के कुलपति श्री स्वामी ओमानन्द जी सरस्वती द्वारा गुरुकुल आश्रम आमसेना (उड़ीसा) के बारे में सम्मति।

श्री गुरुकुल आमसेना जिला कालाहांसी के पांचवें वार्षिक उत्सव पर २९, ३०, ३१ दिसम्बर १९७२ को जाने का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ। बहुत थोड़े समय में ही गुरुकुल के ब्रह्मचारियों ने अत्यन्त प्रशंसनीय उन्नति की है। प्रातःकाल चार बजे से लेकर सायंकाल दस बजे तक सब दिनचर्या मैंने बहुत ध्यानपूर्वक देखी। ब्रह्मचारियों की आदर्श दिनचर्या है। दोनों समय व्यायाम, सन्ध्योपासना, दैनिक यज्ञ सब श्रद्धापूर्वक करते हैं। भोजन भी सरल और सात्विक है। लोग तीनों दिन भारी संख्या में उत्सव में धर्मलाभ उठाते रहे। यह गुरुकुल प्राचीन ऋषियों के आश्रमों और गुरुकुलों की याद दिलाता है। ब्रह्मचारियों के श्लोक, मन्त्रोच्चारण व्याख्यान, संस्कृत भाषण तथा संगीत और व्यायाम प्रदर्शन सभी आकर्षक हैं। ब्रह्मचारियों का सदैव देववाणी संस्कृत में बोलना तो सतयुग की याद दिलाता है। यह सब कुछ मेरे शिष्य आचार्य धर्मदेव जी स्नातक तथा स्वामी भूमानन्द जी के पुरुषार्थ का फल है। ईश्वर से मेरी प्रार्थना है कि यह संस्था दिन दूनी और रात चौगुनी उन्नति करे। आर्य जनता को इस संस्था की तन मन और धन से,जी खोल कर सहायता करनी चाहिये।

—ओमानन्द सरस्वती गुरुकुल झज्जर (रोहतक) हरयाणा

काशी बनारस का आँखों देखा पाखंड

मैं दि० १९-११-७२ को काशी (बनारस) गया था मेरा भांजा १२ साल से ला पता था। उसे ढूंढने, वह वहाँ साधु भेष में था। वह तो मिल गया। दूसरे दिन सोमवार कार्तिक सुदी १४ को कई लाख हिन्दू ठंडी में प्रातः ४ बजे से ही कई गाँवों से आना शुरू कर दिये। मैं प्रातः ६-७ बजे उनकी भीड़ के साथ काशी विश्वनाथ का मन्दिर व देवता देखने चला किन्तु मन्दिर जाने के रास्ते में इतनी ज्यादा भीड़ ठसा ठस थी व मन्दिर में जाने का रास्ता कम चौड़ा था अंधेरा था तो जा न सका वहाँ से घाट देखने गया जहाँ लाखों हिन्दू गंगा के ठंडे व गंदे पानी में डुबकी लगा रहे थे। एक पोप नामधारी ब्राह्मण एक छोटी सी काले रंग की गाय की बछिया को बांध कर खड़ा था और लोगों से कह रहा था कि इसकी पूजा करो। कुछ भोले भाले हिन्दू उसकी पूजा कर पैसे देते थे। बछिया भूखी थी पेट खाली था उसकी ओर ध्यान नहीं। बाद में मणि कणिका घाट देखा। कई मुर्दे रखे थे। कुछ जला रहे थे। पूरे जले नहीं कि पानी में डाल कर नदी में प्रवाहित कर पुनः दूसरा जलाते थे। जलाने के पहले २०)रु० टैक्स एक ब्राह्मण को देते तब कहीं फूंकने दिया जाता। पाखंड देखा ऋषि दयानन्द की याद आई कि वह अकेला ही पाखंड का खंडन किया व आज हम पैसा बटोरने व गद्दी सम्हालने में ही लगे हैं।

—गंगा प्रसाद आर्य

भारतीय हिन्दू शुद्धि सभा, देहली

ग्राम माछली (मेरठ) में ४५ वर्ष पूर्व बने ४० ईसाइयों की शुद्धि की गई।

—द्वारकानाथ प्रधान मन्त्री

आर्यप्रतिनिधि सभा पंजाब—

हरयाणा के आर्यसमाजों में उत्सव व प्रचार समाचार

१. आर्यसमाज नरेला—अमर शहीद श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी का बलिदान दिवस २३ दिसम्बर को उत्साहपूर्वक मनाया गया। स्वामी ओमानन्द जी तथा पं० अर्जुनदेव जी के व्याख्यान तथा पं० मुंशीलाल जी के भजन हुये।

२. ग्राम ढ़ाणी की पाल—२६ से २९ दिसम्बर ७२ चौ० जवाहरसिंह जी के पुरुषार्थ से वानप्रस्थी रामपत जी तथा श्री जयलाल जी के प्रभावशाली भजन हुये। रात्रि को ग्राम की चोपाल में भारी संख्या में नर नारियों ने प्रचार में उत्साहपूर्वक भाग लिया। ४५) वेदप्रचारार्थ प्राप्त हुये।

३. आर्यसमाज शहीद स्मारक गुलकनी जि० जीन्द—प्रति वर्ष की भान्ति इस वर्ष भी आर्यसमाज की ओर से हिन्दी आन्दोलन के वीर शहीद श्री अमरसिंह जी तथा श्री रत्नसिंह जी की स्मृति में वार्षिक उत्सव धूमधाम से मनाया गया। श्री देवव्रत जी व्यायामाचार्य तथा श्री ब्र० कर्मपालसिंह जी ने उत्साहपूर्वक सारा प्रबन्ध बहुत ही अच्छे ढंग से किया। इस अवसर पर चौ० राममेहर जी एडवोकेट, श्री सुखदेव जी शास्त्री आदि के व्याख्यान तथा वानप्रस्थी रामपत, श्री जयलाल जी के भजन हुये। सभा को ७१) प्राप्त हुये।

४ आर्यसमाज कुण्डली बढ़खालसा, नांगल (जि० सोनोपत)—२४ से ३० दिसम्बर ७२ तक इन आर्यसमाजों में सभा के भजनोपदेशक पं० मुंशीलाल-धर्मपाल जी ने प्रचार कार्य किया। सर्दी के होते हुये भी ग्रामीण जनता ने रात्रि को भारी संख्या में प्रचार में भाग लिया। प्रातःकाल प्रतिदिन यज्ञ किया गया। युवकों को यज्ञोपवीत दिये गये।

५. आर्यसमाज सुरहती जि० रोहतक—४ से ७ जनवरी १९७३ को सभा के भजनोपदेशक पं० मुंशीलाल-धर्मपाल जी ने प्रातः यज्ञ तथा रात्रि में प्रभावशाली प्रचार किया। युवकों को यज्ञोपवीत देकर हुक्का बीड़ी तथा शराब के ग्रहण न करने की प्रतिज्ञा करवाई गई। सभा को ५८) प्राप्त हुये।

६. आर्यसमाज ढाकला (तहसील झज्जर)—८ से १० जनवरी ७३ को पं० मुंशीलाल जी ने रात्रि को प्रभावशाली प्रचार किया।

७ आर्यसमाज कासनी (जि० रोहतक)—प्रतिवर्ष की भान्ति मकर सक्रान्ति के अवसर पर १२ से १४ जनवरी ७३ को वार्षिक उत्सव मनाया गय। इस शुभावसर पर सभा के भजनोपदेशक पं० मुंशीलाल धर्मपाल जी ने प्रातः यज्ञ तथा रात्रि को आर्यसमाज मन्दिर में प्रचार किया। यज्ञ में छात्रों को यज्ञोपवीत दिये गये। रात्रि को प्रचार में शराब की हानियों पर प्रकाश डाला। सभा को ७०) प्राप्त हुये।

८. आर्यसमाज खिड़वाली (जि० रोहतक)—३०, ३१ दिसम्बर ७२ को प्रतिवर्ष की भान्ति वार्षिक प्रचार उत्साहपूर्वक मनाया गया। सभा के उपदेशक पं० अर्जुनदेव जी तथा पं० जयपाल जी आर्य ने प्रातः यज्ञ करवाया और यज्ञोपवीत देकर उपदेश दिया। दिन में तथा रात्रि को सभा के भजनोपदेशक पं० हरिश्चन्द्र ने प्रभावशाली प्रचार किया। ४३) सभा को प्राप्त हुये।

९. आर्यसमाज नारनौल जि० महेन्द्रगढ़—१२ से १४ जनवरी १९७३ को आर्यसमाज की ओर से वैदिक पाठशाला की स्थापना के उपलक्ष में वानप्रस्थी रामपत जी तथा पं० जयलाल जी के मनोहर भजन हुये।

१०. आर्यसमाज छतेहरा, बिचपड़ी जि० रोहतक तथा ऐंचरा जि० जीन्द—सभा के भजनोपदेशक वानप्रस्थी रामपत जी तथा पं० जयलाल जी ने इन आर्यसमाजों में ५ से ११ जनवरी ७३ तक प्रभावशाली प्रचार कार्य किया। सभी स्थानों से ११६) सभा को प्राप्त हुये।

हरयाणा के आर्यसमाजों से आवश्यक निवेदन

शरद् ऋतु के कम होते ही ग्रामीण आर्यसमाजों के उत्सव आरम्भ हो जाते हैं। प्रायः एक ही तिथि में ५, ६ आर्यसमाजों के उत्सवों पर प्रबन्ध की मांग आ जाती है जिससे सभी का प्रबन्ध कर सकना कार्यालय के लिये कठिन हो जाता है। अतः आर्यसमाजों के अधिकारियों से निवेदन है कि अपने उत्सवों की तिथियां कम से कम एक मास पूर्व सभा कार्यालय से नियत करवाने की कृपा करें जिससे प्रबन्ध करने में सुविधा रहे।

—केदारसिंह आर्य, कार्यालय हरयाणा वेदप्रचार मण्डल दयानन्दमठ रोहतक

१. कन्या गुरुकुल खानपुर जिला रोहतक का वार्षिक महोत्सव

१०-११ फरवरी १९७३ को गुरुकुल भूमि में होगा। इसमें बड़े बड़े धार्मिक तथा राजनीतिक नेताओं को निमन्त्रित किया गया है।

२. गुरुकुल विद्यापीठ हरयाणा भैंसवाल का वार्षिक महोत्सव

१०-११-१२ मार्च, १९७३ को गुरुकुल भूमि में धूमधाम से मनाया जावेगा। इस अवसर पर अनेक संन्यासी महात्मा विद्वानों को सादर निमन्त्रित किया गया है।

उपकुलपति—कन्या गुरुकुल खानपुर तथा गुरुकुल विद्यापीठ हरयाणा भैंसवाल

आर्यसमाज कनीना (महेन्द्रगढ़)

प्रधान—श्री देवराज आर्य जी। मंत्री—मास्टर माधोसिंह जी। कोषाध्यक्ष—श्री घासीराम। पुस्तकाध्यक्ष—श्री रामसिंह।

—प्रधान आर्यसमाज

शोक समाचार

यह समाचार अतीव दुःख के साथ सुना गया है कि श्रीयुत डा० महेन्द्र प्रताप जी आयुर्वेदाचार्य सुपुत्र श्री चौ० आशाराम जी मुखिया, ग्राम रसूलपुर जाटान जिला मुजफ्फर नगर का आकस्मिक निधन ता० १५ जनवरी को अपनी मोटर साइकिल तथा ठेले की टक्कर से हो गया है। श्री डा० महेन्द्र प्रताप जी आर्य महाविद्यालय किरठल मेरठ के स्नातक थे। इस समय "आशा चिकित्सा सदन, शाहपुर में अपना—चिकित्सालय चला रहे थे। वे एक सफल चिकित्सक थे। इस कारण अपने क्षेत्र में इन्होंने आशातीत ख्याति अर्जित कर ली थी। इनकी मृत्यु से इनके परिवार पर तो वज्रपात हुआ ही है। क्षेत्रीय जनता के लिये भी अपूरणीय क्षति हुई है। इस असह्य शोक के कारण आर्य महाविद्यालय किरठल एक दिन के लिये बन्द कर दिया गया एवं समस्त गुरुकुलीय परिवार की ओर से दिवंगत आत्मा की चिरशान्ति के लिये ईश्वर से प्रार्थना की गई तथा शोक-सन्तप्त परिवार को समवेदना प्रेषित की गई'

—शोक संतप्त शिवपूजन शास्त्री आचार्य आर्य महाविद्यालय किरठल

शोक प्रकाश

आर्य समाज कैथला बुलन्दशहर के प्रधान श्री डालचन्द जी ठेकदार का देहान्त हो गया। आप एक कर्मठ आर्य पुरुष थे आपने कई आर्य समाज और दयानन्द कालेज स्थापित किये। परमात्मा उनके आत्मा को शान्ति और परिवार को धैर्य प्रदान करें। —होशियारसिंह मन्त्री।

शोक संवेदना

आर्य हायर सैकंड्री स्कूल लुध्याना का अध्यापक मण्डल तथा विद्यार्थी वर्ग स्कूल के मैनेजर श्री डा० राम स्वरूप जी के नवयुवक सुपुत्र के असामयिक देहान्त पर हार्दिक शोक प्रकट करता है। जगन्नियन्ता ईश्वर से प्रार्थना है कि वह दिवंगत आत्मा को सद्गति प्रदान करे और उसके शोकाकुल परिवार को शोक सागर से पार होने की शक्ति प्रदान करे।

—शोक संतप्त अध्यापक तथा विद्यार्थी

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब द्वारा प्रकाशित और प्रचारित वैदिक साहित्य

१. बलिदान जयन्ती स्मृति ग्रन्थ—आर्य बलिदानों की गाथा मूल्य ४-५०
२. सोम सरोवर-वेदमन्त्रों की व्याख्या —पं० चमूपति एम. ए. ३-००
३. जीवन ज्योति-वेदमन्त्रों की व्याख्या „ „ ३-००
४. नीहारिकावाद और उपनिषदें „ „ ००-२५
५. Principles of Arya samaj „ „ १-५०
६. Glimpses of swami Daya Nand „ „ १-००
७. पंजाब का आर्य समाज पंजाब तथा हरयाणा के आर्यसमाज का इतिहास २-००
८. वैदिक सत्संग पद्धति सन्ध्या हवन मन्त्र अर्थ सहित विधि १-००
९. वेदाविर्भाव —आर्यमर्यादा का विशेषांक ०-६५
१०. यजुर्वेद का स्वाध्याय „ „ „ ०-५०
११. वेद स्वरुप निर्णय —पं० मदन मोहन विद्यासागर १-००
१२. व्यवहारभानु —महर्षि स्वामी दयानन्द ०-५०
१३. स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश — „ „ ०-४०
१४. Social Reconstruction By Budha & Swami Daya Nand —By. Pt. gangaPrasad Upadhya M. A, २.००
१५ Subject Matter of the Vedas —By S. Bhoomanad १-००
१६. Enchanted Island By Swami Staya Parkashanand १-००
१७. Cow Protection By Swami Daya Nand ०-१५
१८. वेद में पुनरुक्ति दोष नहीं है आर्यमर्यादा का विशेषांक २-००
१९ मूर्तिपूजा निषेध „ „ ००-५०
२० धर्मवीर पं० लेखराम जीवन —स्वामी श्रद्धानन्द १-२५
२१ कुलियात आर्य मुसाफिर प्रथम भाग—पं० लेखराम की पुस्तकों का संग्रह ६-००
२२. „ „ दूसरा भाग „ „ ८-००
२३ मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र —कु० सुशीला आर्या एम. ए. ०-२५
२४. योगीराज कृष्ण „ „ „ ०-१५
२५. गोकरुणा निधि —स्वामी दयानन्द सरस्वती ०-२०
२६ आर्यसमाज के नियम उपनियम ०-१०
२७. आर्य नेताओं के वचनामृत —साईंदास भण्डारी ०-१२
२८. कायाकल्प —स्वामी समर्पणानन्द सरस्वती १-५०
२९ वैदिक धर्म की विशेषतायें —पं० हरिदेव सिद्धान्त भूषण ०-१५
३०. स्वतन्त्रानन्द लेखमाला —स्वा०स्वतन्त्रानन्द की जीवनी तथा उनके व्याख्यान १-२५
३१ आत्मानन्द लेखमाला —स्वामी आत्मानन्द सरस्वती की जीवनी १-२५
३२. आर्यसमाज के सदस्यता फार्म —सैंकड़ा १०-००
३३. वैदिक गीता —स्वामी आत्मानन्द सरस्वती २-५०
३४. मनोविज्ञान तथा शिव संकल्प „ „ „ ३-५०
३५. कन्या और ब्रह्मचर्य „ „ „ ०-१५
३६. सन्ध्या अष्टाङ्गयोग „ „ „ ०-७५
३७. वैदिक विवाह ०-७५
३८. सुखी जीवन —श्री सत्यव्रत २-००
३९. एक मनस्वी जीवन —पं० मनसाराम वैदिक तोप १-५०
४०. छात्रोपयोगी विचारमाला —जगदेवसिंह सिद्धान्ती १-५०
४१. स्त्री शिक्षा —पं० लेखराम आर्य मुसाफिर ०-६०
४२ विदेशों में एक साल —स्वामी स्वतन्त्रानन्द २-२५
४३. वेद विमर्श —पं० भगवद्दत्त वेदालंकार २-००
४४. वेद विमर्श —पं० वेदव्रत शास्त्री २-००
४५. आसनों के व्यायाम „ „ „ १-००
४६. महर्षि जीवन गाथा —स्वामी वेदानन्द वेदवागीश २-२५
४७. मांस मनुष्य का भोजन नहीं —स्वामी ओमानन्द सरस्वती १-००
४८ वीर भूमि हरयाणा „ „ „ ४-००
४९. चोटी क्यों रखें —स्वामी ओमानन्द सरस्वती ०-५०
५० हमारा फाजिल्का —श्री योगेन्द्रपाल १-५०
५१. सत्संग स्वाध्याय —स्वामी ओमान्द सरस्वतो ०-५०
५२. जापान यात्रा „ „ „ ०-७५
५३. भोजन „ „ „ ०-७०
५४. ऋषि रहस्य —पं० भगवद्दत्त वेदालंकार २-००
५५. स्वामी श्रद्धानन्द जीवन परिचय १-२५
५६. मेरा धर्म —आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति ७-००
५७. वेद का राष्ट्रिय गीत „ „ „ ५-००
५८. ईशोपनिषद्भाष्य —इन्द्र विद्या वाचस्पति २-००
५९. पं० गुरुदत्त विद्यार्थी जीवन —डा० रामप्रकाश १-३१
६०. वैदिक पथ —पं० हरिदेव सिद्धान्त भूषण २-००
६१. ज्ञानदीप „ „ „ २-००
६२. आर्यसमाज का सैद्धान्तिक परिचय ०-५०
६३. The Vedas ०-५०
६४. The Philosophy of Vedas ०-५०
६५. वैदिक प्रवचन —पं० जगत्कुमार शास्त्री २-२५
६६. ईश्वर दर्शन „ „ १-५०
६७. श्वेताश्वरोपनिषद् „ „ ४-००
६८. ब्रह्मचर्य प्रदीप „ „ ४-००
६९. भगवत प्राप्ति क्यों और कैसे —स्वा० सत्यानन्द ०-६०
७०. आर्य सामाजिक धर्म „ „ ०-७५
७१. बोध प्रसाद —स्वामी श्रद्धानन्द ०-२५
७२. ऋषि दर्शन —पं० चमूपति एम. ए. ००-२५
७३. ऋषि का चमत्कार „ „ „ ००-१२
७४. वैदिक जीवन दर्शन „ „ „ ००-२०
७५. वैदिक तत्व विचार „ „ „ ००-५०
७६. देव यज्ञ रहस्य „ „ „ ००-३१

सभी पुस्तकों का प्राप्ति स्थान

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब, गुरुदत्त भवन, जालन्धर (४२५०) टेलीफोन
„ „ „ १५ हनुमान् मार्ग नई दिल्ली-१ „ (३१०१५०)
„ „ „ दयानन्द मठ रोहतक (हरयाणा) „ (५७४)

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के लिए जगदेवसिंह सिद्धान्ती शास्त्री द्वारा सैनी प्रिंटर्स पहाड़ी धीरज, देहली में मुद्रित और १५ हनुमान् रोड, नई दिल्ली—१ से प्रकाशित

३० माघ सं० २०२९ वि०, दयानन्दाब्द १४८, तदनुसार ११ फरवरी १९७३ रविवार
सृष्टि सं०-१९६०८५३०७२
वर्ष ५ वार्षिक शुल्क स्वदेश में १०) रुपये
अंक ११ „ „ विदेश में २०) रुपये
एक प्रति का मूल्य ०-२० पैसे
सम्पादक - जगदेवसिंह सिद्धान्ती शास्त्री, पूर्व लोकसभा सदस्य (फोन ५१२१६३)

वेदमन्त्रार्थ-प्रवचन

पुनस्ते कीदृशा इत्युपदिश्यते ।।

फिर वे कैसे हैं यह विषय अगले मन्त्र में कहा गया है ।।

क्षेत्रमिव वि ममुस्तेजनेनँ एकं पात्रमृभवो जेहमानम् ।

उपस्तुता उपमं नाधमाना अमर्त्येषु श्रव इच्छमानाः ।।

— ऋ० १.११०.५

पदार्थः—(क्षेत्रमिव) यथा क्षेत्रं तथा (वि) (ममुः) मानं कुर्वन्ति (तेजनेन) तीव्रेण कर्मणा (एकम्) (पात्रम्) पत्राणां ज्ञानानां समूहम् (ऋभवः) (जेहमानम्) प्रयत्नसाधकम् (उपस्तुताः) उपगतेन स्तुताः (उपमम्) उपमानम् (नाधमानाः) याचमानाः (अमर्त्येषु) मरणधर्मरहितेषु पदार्थेषु (श्रवः) अन्नम् (इच्छमानाः) इच्छन्तः ।।

अन्वयः—ये उपस्तुता नाधमाना अमर्त्येषु श्रव इच्छमाना ऋभवो मेधाविनस्तेजनेन क्षेत्रमिव जेहमानमेकमुपमं पात्रं विममुर्विविधं मान्ति ते सुखं प्राप्नुवन्ति ।।

भावार्थः अत्रोपमालं०—यथा जनाः क्षेत्रं कर्षित्वा उप्त्वा संरक्ष्य ततो अन्नादिकं प्राप्य भुक्त्वाऽऽनन्दन्ति तथा वेदोक्तकलाकौशलेन प्रशस्तानि रचित्वा तत्र स्थित्वा संचाल्य देशान्तं गत्वा व्यवहारेण राज्येन वा धनं प्राप्य सुखयन्ति ।

भाषार्थः—जो (उपस्तुताः) तीर आने वालों से प्रशंसा को प्राप्त हुए (नाधमानाः) और लोगों ने अपने प्रयोजन से याचे हुए (अमर्त्येषु) अविनाशी पदार्थों में (श्रवः) अन्न को (इच्छमानाः) चाहते हुए (ऋभवः) बुद्धिमान् जन (तेजनेन) अपनी उत्तेजना से (क्षेत्रमिव) खेत के समान (जेहमानम्) प्रयत्नों को सिद्ध कराने हारे (एकम्) एक (उपमम्) उपमा रूप अर्थात् अतिश्रेष्ठ (पात्रम्) ज्ञानों के समूह का (वि, ममुः) विशेष मान करते हैं सुख पाते हैं ।।

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं० । जैसे मनुष्य खेत को जोत बोय और सम्यक् रक्षा कर उससे अन्नादि को पाके भोजन कर आनन्दित होते हैं वैसे वेद में कहे हुए कलाकौशल से प्रशंसित यानों को रच कर उनमें बैठ और उन्हें चला और एक देश से दूसरे देश में जाकर व्यवहार वा राज्य से धन को पाकर सुखी होते हैं ।। —(ऋषिदयानन्द-भाष्य)●

मुक्तिविषयः

(प्राणस्य प्राण०) जो परमेश्वर प्राण का प्राण, चक्षु का चक्षु, श्रोत्र का श्रोत्र, अन्न का अन्न और मन का मन है, उसको जो विद्वान् निश्चय करके जानते हैं वे पुरातन और सब में श्रेष्ठ ब्रह्म को मन से प्राप्त होने योग्य मोक्षसुख को प्राप्त होके आनन्द में रहते हैं, (नेह ना०) जिस सुख में किञ्चित् भी दुःख नहीं है ।।१०।। (मृत्योः स मृत्यु०) जो अनेक ब्रह्म अर्थात् दो, तीन, चार, दश, , बीस जानता है वा अनेक पदार्थों के संयोग से बना जानता है वह वारंवार मृत्यु अर्थात् जन्म मरण को प्राप्त होता है, क्यों वह ब्रह्म एक चेतनमात्र स्वरूप ही है तथा प्रमाद रहित और व्यापक होके सब में स्थिर है। उसको मन से ही देखना होता है, क्योंकि ब्रह्म आकाश से भी सूक्ष्म है।।११।। (विरजः पर आ०) जो परमात्मा विक्षेप रहित, आकाश से परम सूक्ष्म, (अजः) अर्थात् जन्म रहित और महाध्रुव अर्थात् निश्चल है। ज्ञानी लोग उसी को जान के अपनी बुद्धि को विशाल करें ।। —(ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका)●

सत्यार्थप्रकाश (१० वाँ समुल्लास)

वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः :
एतच्चतुर्विधं प्राहुः स्तक्षाद्धर्मस्य लक्षणम् ।। मनु० २.१३ ।।

इसलिये वेद, स्मृति, सत्पुरुषों का आचार और अपने आत्मा के ज्ञान के अविरुद्ध प्रियाचरण ये चार धर्म के लक्षण अर्थात् इन्हीं से धर्म लक्षित होता है ।।९।।

अर्थकामेष्वसक्तानां धर्मज्ञानं विधीयते ।
धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः ।। मनु० २.१२ ।।

परन्तु जो द्रव्यों के लोभ और काम अर्थात् विषय में फंसा हुआ नहीं होता उसी को धर्म का ज्ञान होता है जो धर्म को जानने की इच्छा करे उनके लिये वेद ही परम प्रमाण है ।।१०।।

वैदिकैः कर्मभिः पुण्यैर्निषेकादिर्द्विजन्मनाम् ।
कार्य्यः शरीरसंस्कारः पावनः प्रेत्य चेह च ।। मनु० २:२६ ।।

इसी से सब मनुष्यों को उचित है कि वेदोक्त पुण्य रूप कर्मों से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अपने सन्तानों का निषेकादि संस्कार करें जो इस जन्म वा परजन्म में पवित्र करने वाला है ।।११।।

केशान्तः षोडशे वर्षे ब्राह्मणस्य विधीयते ।
राजन्यबन्धोर्द्वाविंशे वैश्यस्य द्वयधिके ततः ।। मनु० २.६५ ।।

ब्राह्मण के सोलहवें, क्षत्रिय के बाईसवें और वैश्य के चौबीसवें वर्ष में केशान्त कर्म और क्षौर मुण्डन हो जाना चाहिये अर्थात् इस विधि के पश्चात् केवल शिखा को रख के अन्य दाढ़ी मूंछ और शिर के बाल सदा मुंडवाते रहना चाहिये अर्थात् पुनः कभी न रखना और जो शीत प्रधान देश हो तो कामाचार है चाहे जितने केश रखे और जो अति उष्ण देश हो तो सब शिखा सहित छेदन करा देना चाहिये क्योंकि शिर में बाल रहने से उष्णता अधिक होती है और इससे बुद्धि कम हो जाती है दाढ़ी मूंछ रखने से भोजनपान अच्छे प्रकार नहीं होता और उच्छिष्ट भी बालों में रह जाता है ।। —(ऋषि दयानन्द)●

दर्शन शास्त्र क्या कहते हैं ?

(श्री वैद्य गुरुदत्त जी, एम. एस. सी., वैद्य भास्कर, आयुर्वेद वाचस्पति
निवास १८, मार्ग २८, पंजाबी बाग, दिल्ली-२६)

इस लेखमाला के ग्यारह लेख पहले पाठकों के अवलोकनार्थ दे चुका हूं। यह बारहवां लेख है। मेरा विचार है कि बीस लेखों में ब्रह्म सूत्रों का भाव अपने विचार से दे सकूंगा।

बीच में कुछ एक कारणों से लेख भेज नहीं सका। अब उन कारणों के दूर हो जाने से पुनः मैं लेखमाला आगे चला रहा हूं।

अन्तिम लेख में मैंने बताया था कि जीवात्मा जब एक शरीर को छोड़कर दूसरे शरीर में जाता है तो वह सूक्ष्म शरीर में लिपटा हुआ जाता है।

एक पूर्व लेख में लिखा था कि शरीर में सात प्राण रहते हैं। प्राणी के मरण काल में सब प्राण जीवात्मा पर एकत्र हो जाते हैं और वे प्राण जीवात्मा को लेकर दूसरे शरीर में जाते हैं।

ये प्राण उस अग्नि से भिन्न हैं जो शरीर को संघटित किये हुए हैं। शरीर में संयुक्त पदार्थों (Chemical Compounds) से पेशियां, अभिप्राय शरीर के सात धातु बने होते हैं। रस, रक्त, मांस, मज्जा, पेट, अस्थि और बीर्य ही होते हैं। ये रासायनिक पदार्थ अपने में कई कई रासायनिक शक्ति तत्त्वों (chemical elements) के संयुक्त होते हैं, उन्हें रासायनिक शक्ति (chemical afinity) कहते हैं। इसे सूत्रकार अग्नि कहते हैं। यह अग्नि प्राण से भिन्न है। एक सूत्र इस प्रकार है:—

अन्यादिगतिश्रुतेरिति चेन्न भाक्तत्वात् ॥ (ब्र० सू०—३—१—४

अग्नि आदि से गति श्रुति में कही है। यदि यह कहो तो ठीक नहीं। कारण यह है कि वह (अग्नि) गौण हैं।

यह उपनिषद् में लिखा है कि शरीर की अग्नि चिता की अग्नि में मिल जाती है। प्राण भी अग्नि (शक्ति) का एक रूप है। इस कारण सूत्रकार ने दोनों प्रकार की अग्नियों में भिन्नता प्रकट कर दी है। कहा गया है कि वह धातुओं की अग्नि प्राणों से भिन्न है। वह गौण है। वह शरीर के भस्म होने के साथ चिता की अग्नि में मिल जाती है। वह गौण है। प्राण जीवात्मा को साथ लेकर दूसरे शरीर को जाते हैं।

जीवात्मा की गति क्यों होती? इस विषय में सूत्रकार कहता है:—

अश्रुतत्वादिति चेन्नेष्टादिकारिणां प्रतीतेः ॥ (ब्र० सू०—३—१—६)

संशय करने वाला कहता है कि यह न सुना जाने से है। अर्थात् जीवात्मा जब जाता है तो उसके साथ कोई नहीं जाता। यह सुनने में आता है। सूत्रकार कहता है कि यह ठीक नहीं। प्राण जीवात्मा के साथ जाते हैं।

सूत्रकार कहता है कि यह जो उपनिषद् ग्रन्थों में ऐसा लिखा है, परन्तु वहां यह अभिप्राय नहीं। वहां शरीर से अभिप्राय है। वह साथ नहीं जाता। परन्तु मनुष्य का इष्टादि कर्म तो साथ जाते हैं। इष्टादि कर्मों से अभिप्राय है कि यज्ञ-यागादि कर्म। इसके शाब्दिक अर्थ हैं कामना से जो कर्म किये जायें। उनके फल जीवात्मा को ले जाते हैं। कहां ले जाते हैं।

कर्म अच्छे भी होते हैं और बुरे भी। अतः दोनों प्रकार के कर्मों के के फल भिन्न भिन्न दिशाओं में ले जाते हैं। सूत्रकार कहता है:—

कृतात्ययेऽनुशयवान्दृष्टस्मृतिभ्यां यथेतमनेवं च ॥ (ब्र० सु०—३—१—८)

कर्मफल के समाप्त होने पर शेष कर्म संस्कारों से युक्त जैसे गया था वैसे ही लौट आता है। और दूसरे मार्ग से भी हो सकता है।

जो लोग अच्छे कर्म किये होते हैं, वे अच्छे लोकों को प्राप्त होते हैं और जो निम्न कर्म करते है, वे निम्न कोटि के लोकों को जाते हैं। इन दोनों स्थानों पर कर्मफल समाप्त हो जाने पर जीवात्मा पुनः मनुष्य योनि में लौट आता है। कभी तो उसी मार्ग से लौटता है जिससे जाता है और कभी किसी अन्य मार्ग से भी लौटता है।

उदाहरण में रूप में एक मनुष्य खोटे कर्म करने से पहले कुत्ते की योनि में जन्म लेता है। तदनन्तर एक मेंडक बन जाता है और अनेक यौनियों में घूमता हुआ कर्मभल को समाप्त कर पुनः मनुष्य जन्म में आ जाता है। वह जिन जिन यौनियों में से होकर गया है उन उन यौनियों में से ही होकर लौटता है। सूत्रकार कहता है कि कभी सीधा मानव योनि में लौटता है और कभी उसके कर्म फल ऐसे होते हैं कि जिन यौनियों में से होकर गया हो, उन्हीं में से होकर ही लौट आता है।

इसी प्रकार अच्छे कर्म करने मे चन्द्र लोक को जाता है। इसके जाने का मार्ग उपनिषदों में वर्णन किया गया है। वहां कर्म फल भोग कर वह पुनः मानव योनि में लौटता है। सूत्रकार का मत है कि जिस से वह गया था उसी मार्ग से लौटता है अथवा किसी अन्य मार्ग से भी लौटता है?

यह कर्म फल ही हैं जो जीवात्मा को उत्क्रमण तथा नीचे की योनियों में ले जाते हैं। मोक्ष प्राप्ति भी कर्म द्वारा ही होती है। सूत्रकार कहता है—

सुकृतदुष्कृते एवेति तु बादरिः ॥ (ब्र० सू — ३—१—११)

बादरी आचार्य कहते हैं कि दो प्रकार के कर्म हैं। सुकृत और दुष्कृत भले कर्म क्षौर दुष्टता के कर्म। इनके अतिरिक्त कर्म नहीं।

भले कर्म करने से स्वर्ग लोक की प्राप्ति होती है और बुरे कर्म करने से संयमन यौनियों को प्राप्त होना पड़ता है। संयमन का अभिप्राय है कि वे यौनियां जिनमें जीवात्मा के काम परमात्मा के नियन्त्रन में हो जाते हैं। ये इतर जीव जन्तुओं की यौनियां हैं जो उन साधनों से ही अपना जीवन चलाते हैं, जो उनको परमात्मा की ओर से प्राप्त हैं। उदाहरण के रूप में एक कुत्ते का जीवन लें। यह ऐसा मन और बुद्धि रखता है जिससे वह अपनी जीवन की कठिनाईयों में उनको दूर नहीं कर सकता। यदि इसे सर्दी लगती है तो यह अपने लिये रजाई नहीं बना सकता। यदि इसे भूख लगे तो यह रोटी अथवा मिठाई तैयार नहीं कर सकता। यह वही कुछ कर सकता है जिसके करने की सामर्थ्य परमात्मा ने इसे दी है। ऐसी योनियों को नियमन की योनियां कहते हैं। ये यम के अधीन मानी जाती हैं। यम परमात्मा के उस स्वरूप का नाम है जिससे वह जगत् के प्राणियों को नियन्त्रण में रखता है। इन यौनियों को यम लोक कहते हैं।

उत्क्रमण के दो मार्ग हैं। एक केवल सुकृत कर्म करने से प्राप्त होता है और दूसरा ज्ञान युक्त कर्मों से प्राप्त होता है।

विद्याकर्मणोरिति तु प्रकृतत्वात् ॥ (ब्र० सू० ३-१-१७)

इर दोनों मार्गों की दिशा एक ही है। मनुष्य योनि से ऊपर अर्थात् श्रेष्ठ स्थिति की ओर हो जाते हैं। केवल सुकृत कर्म जिनमें यज्ञ यागादि कर्म हैं, वे स्वर्ग प्राप्त कराते हैं। जब ये कर्म ज्ञानयुक्त होते हैं तो मोक्ष स्थान को ले जाते हैं। ऐसा उपनिषद् में भी वर्णन आया है। वहां लिखा है:—

तदेतत्सत्यं मन्त्रेषु कर्माणि कवयो यान्यपश्यंस्तानि त्रेतायां बहुधा सन्ततानि। तान्याचरथ नियतं सत्यकामा एष वः पन्थाः सुकृतस्य लोके। (मुण्डको०—१—२—१)

इसका अभिप्राय है कि वेदों में जो कर्म करने को लिखे हैं और जिनको करने के त्रेता युग में बहुत उपाय बताये गये थे। उनके करने से सुकृत लोकों की प्राप्ति होती है। वही उनका मार्ग है। आगे कहा है:—

एह्येहीति तमाहुतयः सुवर्चस सूर्यस्य: रश्मिभिर्यजमानं वहन्ति।
प्रियां वाचमभिवदन्त्योऽर्चयन्त्य एष वः पुण्यः सुकृतो ब्रह्मलोकः ॥
(मुण्डको० १-२-६)

अर्थात्—ये प्रकाशकान आहुतियां आओ—आओ कहती हुई कि यह तुम्हारे सुकृत से प्राप्त हो रहा है, ब्रह्म लोक है। यज्ञ कर्म में दी गयी आहुतियों से अभिप्राय है लोक कल्याण के कर्मों में होम किया धन अथवा शारीरिक एवं बौद्धिक प्रयत्न हो है। ये सुकृत कर्म जीवात्मा को ब्रह्मलोक की ओर ले जाते हैं। परन्तुः—

प्लवा ह्येते अदृढा यज्ञरूपा अष्टादशोक्तमवरं येषु कर्म
एतच्छ्रेयो येऽभिनन्दन्ति मूढा जरामृत्युं ते पुनरेवापि यन्ति ॥
(मुण्डको० १ २ ७)

अर्थात्—ये यज्ञ रूप कर्म जो अट्ठारह प्रकार के बताये हैं। यदि मूढता से अर्थात् ज्ञानहीनता से किये जायें तो ब्रह्म लोक तक नहीं पहुंचा सकते वे लौटा लाते हैं और पुनः जन्म मरण के बन्धन में बांध देते हैं।

यही अभिप्राय सूत्र (ब्र० सू० ३-१-१७) का हैं। सुकृत कर्म जो ज्ञान युक्त होते हैं, वे ब्रह्म लोक में पहुँचा देते हैं। वहां से चिरकाल तक लौटना नहीं होता।

बादरि ऋषि का यही कहना है कि सुकृत और दुष्कृत दो ही प्रकार के कर्म हैं और जीवात्मा को दो ही गतियां हैं। एक उत्क्रमण की ओर दूसरी निम्न क्रमण की

हां, उत्क्रमण के दो लक्ष्य स्थान है एक स्वर्ग लोक और दूसरे ब्रह्म लोक स्वर्ग स्थान उसको मिलता है जो सुकृत कर्म करते हैं, परन्तु उसके विषय में अज्ञान युक्त व्यवहार रखते हैं। दूसरे ज्ञान मुक्त युकृत कर्म करते हैं। उनको चिरकाल तक ब्रह्म लोक (मोक्षावस्था) का फल प्राप्त प्राप्त होता है। और सूत्रकार कहता है :——

न तृतीये तथोपलब्धेः ॥ (ब्र० सू० - ३-१-१८)

तीसरा कोई मार्ग नहीं है जो प्राप्त हो सके। एक मार्ग है यम लोक का। यह दुष्कृतों से प्राप्त होता है और दूसरा प्राप्त होता है स्वर्ग अथवा ब्रह्म लोक। दिशा एक हो है। यद्यपि लक्ष्य दो हैं।

हरयाणा सरकार का कर्तव्य

हरयाणा राज्य की सरकार ने बड़ी शुद्ध भावना से महर्षि दयानन्द का जीवन वृत्त अंग्रेजी भाषा में लिखने के लिये ५० हजार रुपये पंजाब विश्वविद्यालय चण्डीगढ को दिये। उक्त वि० विद्यालय के उपकुलपति श्री ला० सूरजभान ने श्री श्रीराम शर्मा को इस कार्य पर नियुक्त कर दिया। श्री श्रीराम शर्मा ने आरम्भ में ही वक्तव्य दिया कि ऋषि दयानन्द को विष नहीं दिया गया था। न जाने श्री श्रीराम शर्मा किस अन्धेरी गुफा में रहते रहे हैं। उनके इस मिथ्या वक्तव्य पर सारे आर्यसमाज के क्षेत्र में क्षोभ फैल गया। दयानन्द महाविद्यालय अबोहर के प्राध्यापक श्री राजेन्द्र जिज्ञासु एम० ए० बी० टी० ने इनके इस असत्य वक्तव्य का प्रबल सत्य प्रमाणों से खण्डन किया है। आर्यमर्यादा के पाठक बन्धु प्रति सप्ताह श्री जिज्ञासु जी के ऐतिहासिक लेख पढ़ते आ रहे हैं। इनसे सिद्ध हो रहा रहा है न केवल आर्यसमाजी लेखकों, अपितु आर्येतर लेखकों ने भी निष्पक्ष रूप में ऋषि जीवन पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि ऋषि को विष दिया गया था। इतना होने पर भी श्री श्रीराम शर्मा अपनी हठ पर अड़े हुए हैं। इतना ही नहीं, उन्होंने कुछ आर्यसमाजी पत्रों द्वारा अपने पक्ष में अप्रामाणिक लेख लिखवाने का क्रम चालू कर दिया है। प्रतीत होता है कि श्री श्रीराम शर्मा का एक गुट है, उस गुट का सहारा पकड़ने लगे हैं।

हम हरयाणा सरकार से स्पष्ट आग्रह पूर्वक निवेदन करते हैं कि वह पंजाब विश्वविद्यालय के उपकुलपति पर जोर डाले कि इन अवाञ्छित व्यक्ति द्वारा ऋषि जीवन लिखने के कार्य को बन्द करे। यदि उपकुलपति ऐसा नहीं करना चाहते तो क्या हम समझें कि क्या षड्यन्त्र में उपकुलपति का भी गुप्त हाथ हो सकता है? हम चाहते हैं कि ऐसी बात नहीं है, परन्तु इन व्यक्ति को वि० विद्यालय क्यों नहीं इस अनिष्ट कार्य को करने से रोकता। यदि इस दुष्ट कार्य को नहीं रोका गया, तो आर्यसमाज में वह वातावरण खड़ा हो सकता है कि श्री श्रीराम शर्मा की तो हैसियत ही क्या है, उपकुलपति को भी लेने के देने पड़ सकते हैं। पंजाब के गत हिन्दी रक्षा आन्दोलन में उपकुलपति जी से हमारा पर्याप्त सम्पर्क रहा है। यह वाणी के बड़े मीठे हैं, परन्तु किसी पवित्र और शुद्ध काम को करने में झिझकते हैं। इन व्यक्ति द्वारा लिखवाये गये ऋषि के मिथ्या वृत्तान्त को वि० विद्यालय यदि प्रकाशित करेगा तो इसकी होली जला दी जावेगी तो कुछ आश्चर्य नहीं। आर्यों की भावनाओं से खिलवाड़ करना सहल नहीं है। हरयाणा राज्य में आर्यसमाज का विशेष प्रभाव है, अतः हम हरयाणा सरकार को सचेत करना उचित समझते हैं कि पंजाब वि० विद्यालय को इस प्रकाशन से रोके। हरयाणा राज्य का पैसा शुद्ध कमाई का है। ऐसी शुद्ध कमाई के पैसे को एक ऐसा व्यक्ति नष्ट करे जिसका कोई नियम नहीं। अतः इस प्रकाशन को तुरन्त वापस लेकर किन्हीं विद्वान् इतिहास वेत्ता को यह कार्यभार सौंपा जावे।

आगे हमने श्री श्रीराम शर्मा का पत्र जो इन्होंने पूज्य महात्मा आनन्द सरस्वती के पत्र के उत्तर में लिखा है इसमें पाठक पढ़ सकते हैं कि महात्मा जी को सम्बोधन इन में व्यक्ति ने "नमस्ते" शब्द लिखने की शिष्टता भी नहीं दिखाई। फिर यह आर्य कैसे हैं? इसका प्रत्युत्तर श्रद्धेय महात्मा जी ने दिया जिसमें ऐसे व्यक्ति को भी सम्बोधन में नमस्ते लिखा है। महात्मा जी ने इनके पत्र का जो प्रत्युत्तर दिया है उससे आर्यजगत् को मालूम हो जाता है कि इस दूषित षड्यन्त्र के प्रति महात्मा जी के क्या भाव हैं? आर्य बन्धुओ! सावधान होकर इस षड्यन्त्र को नष्ट करने के लिये तुरन्त आगे बढ़ो।

—जगदेवसिंह सिद्धान्ती शास्त्री

महात्मा आनन्द स्वामी जी महाराज द्वारा श्री श्रीराम शर्मा के पत्र का उत्तर

श्री श्रीराम शर्मा का पत्र

श्रीमान आनन्द स्वामी जी महाराज,

कुछ मित्रों ने आर्यमर्यादा में प्रकाशित सम्पादक के नाम आपके एक पत्र की ओर मेरा ध्यान आकर्षित किया। परन्तु आर्यमर्यादा का वह पर्चा बड़ी देर के पश्चात् मुझे मिला। से इस आपकी सेवा में पत्र लिखने में देर हो गई। क्षमा करें।

आपने उस पत्र में विषय को छोड़कर मेरे सम्बन्ध में जो कुछ लिखा है उसके लिए मैं बहुत आभारी हूँ।

मुझे आपने नामधारी आर्य समाजी बना दिया। मेरे लेखों को पढ़े बगैर मुझे इस पाप का जिम्मेदार ठहराया कि मैं—"महर्षि जी के जीवन के गौरव को मिट्टी में मिलाया जा सके" ऐसा यत्न कर रहा हूँ। आपको अचम्भा है कि "श्री राम जी को पता नहीं क्या हो गया है। आपने मुझे इस दोष का भागी बनाया है कि मैंने बाबा छज्जूसिंह जी का लिखा हुआ स्वामी दयानन्द का जीवन चरित्र भी नहीं पढ़ा। अन्त में आपको यह बात सूझी है कि मेरी बुद्धि आपको ठीक प्रतीत नहीं होती और इस कारण आपने पंजाब यूनिवर्सिटी पर दोष लगाया है कि उसने मुझे यह काम क्यों सौंप दिया। मैं आपके इन शब्दों के लिए आपका बहुत आभारी हूँ।

विषय के सम्बन्ध में आपको कुछ नहीं लिखना चाहता। आपने न मेरा लेख "स्वामी दयानन्द के जीवन के अन्तिम सात सप्ताह" पढ़ा प्रतीत होता है और न ही मेरे लेख—स्वामी दयानन्द और स्वामी विरजानन्द (आर्य जगत्) आर्यसमाज स्थापना दिवस दो लेख (आर्यजगत्) स्वामी दयानन्द और वेद (आर्यजगत्) सत्यार्थ प्रकाश में निर्देशित ग्रन्थ (परोपकारी), स्वामी दयानन्द और हिन्दी भाषा (परोपकारी), स्वामी दयानन्द और थियोसाफिकल सोसाइटी (वेद वाणी), स्वामी दयानन्द के जीवन के अन्तिम सात सप्ताह (वेद वाणी)। जिन मूल स्रोतों को लेकर मैंने स्वामी दयानन्द के जीवन के अन्तिम सात सप्ताह लेख लिखा था उसको पढ़ने का समय आपको कहाँ मिल सकता है। मुझे यह बात अचम्भा करने वाली प्रतीत नहीं हुई कि आपने दूसरों से सुनी सुनाई निराधार बातों पर अपने हस्ताक्षर करके आर्यमर्यादा के सम्पादक को एक पत्र लिख भेजा आप अब आर्य प्रतिनिधि सभा के रिसीवर और डिक्टेटर तो हैं ही। [नोट यह बात असत्य है–सम्पादक] भवदीय, हस्ताक्षर–श्रीराम शर्मा

महात्मा जी का उत्तर

पं० श्रीराम जी,

सप्रेम नमस्ते।

आपका कृपा पत्र मिला। मैं तो आपको चिरकाल से प्यार करता हूँ। जहां प्यार हो वहीं शिकायत होती है। इसलिए मैंने एक लेख आर्य मर्यादा में भेजा था ताकि आपका ध्यान इस ओर हो सके।

आप अनुसंधान कीजिए, परन्तु क्या यह अनुसंधान इस बात से शुरू होना चाहिए था कि स्वामी दयानन्द को विष नहीं दिया गया। मुझे स्वयं शाहपुराधीश ने आज से ३० वर्ष पूर्व अजमेर में बतलाया था कि स्वामी दयानन्द जी महाराज को दूध में विष पिलाया गया था और मुसलमान डाक्टर ने जाने या अनजाने में तीव्र दवाई देकर उनको मृत्यु शैया पर लेटा दिया।"

दूसरे श्री हरविलास जी शारदा ने मुझे बताया था कि स्वामी दयानन्द जी को विष दिलाया गया था।"

आपको क्या जरूरत पड़ी कि आप विष के मामले को इतना उछालते? क्या अनुसंधान घटना को झुठला दिया जाए? यदि यही अनुसंधान है तो— ऐसे अनुसंधान को दूर से नमस्कार।

मेरा विचार है कि आप बुरी तरह भटक गये हैं और स्वामी दयानन्द के जीवन चरित्र के लिखने के लायक नहीं रहे। अतः एक सच्चे मित्र के नाते आपसे निवेदन करता हूँ कि आप यूनिवर्सिटी को लिख दें कि—आप स्वामी दयानन्द का जीवन चरित्र नहीं लिखेंगे।

सेवक—
आनन्दस्वामी सरस्वती

कामधेनु को छाडि आर्य, छाया छेरी चले दुहावन (२)

(लेखक—श्री खेमचन्द यादव, डब्ल्यू १८ ग्रीन पार्क, नई दिल्ली)

पिछले इन लेखों में जिस आर्य समाज के उग्र तेजस्वो प्रचार की धूमधाम का जिक्र किया गया है। स्वभाविक प्रश्न उठता है कि उसकी गति क्यों इस प्रकार रुद्ध सी हो गई। महात्मा गांधी के नेतृत्व में कांग्रेस ने स्वतंत्रता का युद्ध छेड़ दिया। इस युद्ध के लिये आर्यसमाज ने मैदान तैयार कर रखा था। अंग्रेजी सरकार आर्यसमाजियों के प्रचार, उनकी लग्न, उनके देश प्रेम व त्याग एवं निर्भयता से अन्दर ही अन्दर परेशान थो। उनकी इस वेग धारा के बीच उन्हें अपने राज्य की नींव उखड़ती नजर आने लगी थी। उस समय के सेना के कमाण्डर इन चीफ को बाध्य होकर सरकार को लिखना पड़ा कि सेना में आर्यसमाजियों की भर्ती पर रोक लगा दी जावे और जो आर्य सेना में हैं उनको निकाला जावे। सरकार को गवर्नरों से परामर्श करना पड़ा और गवर्नरों ने सीधे आर्यसमाज पर हाथ न डालने और टक्कर न लेने का परामर्श दिया और घुमघुमाव व पेंचदार मार्ग आर्य समाज की लहर से निपटने के लिये अपनाने का परामर्श दिया उस समय की खुफिया फाइलों में यह मसाला भरा पड़ा है। कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के इतिहास विभाग के डाक्टर कृपालचन्द्र यादव ने इन फाइलों का गहरा अध्ययन किया है पिछले माह उन्होंने कृपा कर उनका कुछ सच्चा विवरण मुझे सुनाया था। जिससे मुझे आभास हुआ कि उस समय के उन त्यागी तपस्वी आर्यों को शक्ति कितनी अपार थी, कितनी उनमें लग्न व निष्ठा थी कि जिसके कारण इतना बड़ा साम्राज्य जिसके पास अपार सेना थी, दिल ही दिल कांप रहा था। जब महान् शक्तिशाली सरकार का यह हाल था तो मतमतान्तरों वालों का क्या हाल होगा, यह अन्दाजा ही लगाया जा सकता है। उनके खुल कर प्रचार करने के तरीके समाप्त हो गये। गन्दे और गिरावट के तरीके जो कि गोपनीय होते थे उन्हें वह अपनाने को बाध्य हुवे। एक मजहब के बड़े नेता ने तो प्रचार के अपने तरीकों की सूची बनाकर गोपनीय तौर पर उस पर अमल करने का परामर्श दिया। पाठकों को यह जानकर आश्चर्य होगा कि इस प्रचार के लिये उन नेता जी ने रंडियों से भी सहयोग की याचना की थो कि वह अपने ग्राहकों को प्रेरित करें कि वे उनके मजहब को अपनावें। हां तो गांधी जी के आवाहन पर आर्यसमाज के ९० प्रतिशत दीवाने उस स्वतंत्रता संग्राम में कूद पड़े। दलितोउद्धार, शराबबन्दो, नशीली वस्तुओं का त्याग, सादा सरल सात्विक जीवन पद्धति, स्वदेश प्रेम, स्वदेशी वस्तुओं का प्रयोग, विदेशी वस्तुओं का त्याग, हिन्दी प्रेम, गो सेवा, भारतीय संस्कृति व सभ्यता से लगाव व प्यार, आदि आदि आर्यसमाज के प्रोग्रामों को महात्मा जी ने कांग्रेस में ऊंचा स्थान दिया। बस आर्य तो दीवानों की तरह टूट पड़े। तन मन धन से उन्होंने अपने को वहां न्यौछावर कर दिया। वे शतप्रतिशत कांग्रेस के प्रोग्राम के अनुयायी बने जबकि दूसरे मजहब वाले अपने अपने मत मजहबों को प्रथम स्थान देते हुवे और उन्हीं के प्रोग्राम को और आगे बढ़ाने हेतु कांग्रेस में आये। इस प्रकार आर्यसमाज का क्षेत्र और विशेषकर प्रचार प्रोग्राम समाप्त प्रायः सा हो गया। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् उसकी सफलता का श्रेय लेने को देशवासियों में होड़ लग गई और उचित अनुचित का विचार त्याग एक दूसरे को धक्का देते आगे बढ़ने में बहुत से तिकड़मबाज बिना विशेष त्याग के ही आगे बढ़ गये। आर्यों का हृदय तो धार्मिक मान्यताओं से ओत प्रोत था इस धींगा मुश्ती से वे हट गये और वे पीछे धकेल दिये गये। इधर उनको अनुपस्थिति में आर्यसमाज की ओर विशेषकर प्रचार की बागडोर उन लोगों के हाथ में अनायास ही आ गई जो किसी भी प्रकार खतरा उठाने से कतराते थे। इस प्रकार आर्य समाज का उग्र जोशिला तेज भरा प्रचार शास्त्रार्थ आदि प्रायः समाप्त हो गया। दूसरी ओर पहले त्यागी तपस्वी प्रचारकों के प्रचार से प्रभावित होकर हिन्दू समाज का धनी वर्ग, युवा वर्ग और शिक्षित वर्ग आर्यसमाज की मान्यताओं से प्रभावित हो चुका था और उसके प्रोग्राम को आगे बढ़ाने में दिल खोल कर धन दे रहा था। इस प्रकार आर्यसमाजों में उनकी और संस्थाओं में बड़ी बड़ी धनराशि इकट्ठी हो गई। यही नहीं अचल सम्पत्ति भी समाजों में और संस्थाओं में भरपूर आय वाली आ गई। धन और जायदाद अधिकार वहां होता है उसको अपने अधिकार में ले लेने की होड़ लग ही जाती है। जिन महानुभावों का कभी आर्य सिद्धान्तों से लगाव या प्रेम नहीं था वह लुभावने चोले धारण कर आर्यसमाजों और आर्य संस्थाओं में घुस गये और अपने हथकंडों से उनके स्वामी बन बैठे। उनके गुट उचित अनुचित का विचार छोड़ अपनी गद्दियां सुरक्षित बनाये हुवे हैं। उनकी ऐसी मनोवृति को देखकर प्रायः सच्चे आर्य उनके मार्ग से हट गये। भला ऐसे सज्जन आर्य समाज का हित या प्रचार कर या करा सकते हैं? अगर करें भी तो उनका प्रभाव हो क्या हो सकता है। उनकी कथनी करनी में आकाश पाताल के अन्तर हैं। उनमें से बहुत इतने पर हो सन्तोष नहीं किये हैं वे आर्यसमाज व आर्य संस्थाओं को अपने लिये और ऊंचा चढ़ने का साधन समझते हैं और बनाये भी हैं। उनमें से बहुत राजनीति के कुशल खिलाड़ी हैं जो अपनी अपनी पार्टी में अपने आर्यसमाज की शक्ति के प्रभाव से अपनी अपनी पार्टी में अपना उच्च व प्रभावशाली स्थान बनाये हुये हैं। बड़ी बड़ी आर्य संस्थाओं में मुकदमे चल रहे हैं और दान जो आयसंस्थाओं को वेद प्रचार आदि शुभ कर्मों के हेतु मिला था, अधिकारियों के भत्ते वकीलों की फीस अहलकारों को रिश्वत आदि में पानी की तरह बहाया जा रहा है। जब सूर्य अस्त हो जाता है तो हजारों दीप जल उठते हैं। आर्यसमाज का तेजस्वी, जोशिला तर्क और बुद्धि पर आधारित प्रचार जब समाप्त हो गया तो सहस्रों गुरु, भगवान, अवतार, पैगम्बर नमूदार हो गये। जनता की रुचि अनुसार उनको सस्ते से सस्ता उनके उद्धार का उनके पापों की क्षमा मार्ग बनाने लगे। आजादी के बाद से भारत में धन बटोरने की होड़ लगी है। महात्मा गांधी का यह घोष यह उपदेश कि अमीरों गरीबों की तरह रहो, एक स्वप्न बन चुका है। श्री जवाहरलाल जी नेहरू के इस रुचिकर घोष को हम ने कसकर पकड़ कर अपने जीवन से चिपटा लिया है कि ओ गरीबो! अमीरों की तरह रहो उचित अनुचित का विचार लोप हो गया है, बस जिसका जहां दाव लगता है वह वहीं अपनी गरीबी हटा बैठना है। बड़े बड़े नेता मंत्री, अधिकारी, व्यौपारी, दलाल, ठेकेदार आदि आदि इसमें शक नहीं अपनी अपनी गरीबी हटाने में सफल हो गये हैं। मगर उनके पास भी प्रभु का दिया अन्तःकरण है जो अकेले में उनको इस पाप की कमाई पर उन्हें अन्दर ही अन्दर कचोटता है। ऐसे में इस कचोटपन से निस्तार पाने के लिये उन्हें इन नवीन गुरुओं की शरण लेने को बाध्य होना पड़ता है। उन फरेबियों के दरबार में जब यह बड़े बड़े अजगर माथा टेकते हैं तो साधारण मनुष्य तो फिर उनके चंगुल से एक बार फंस कर निकल ही नहीं सकता। इन गुरुओं के यह ठाठ देखकर कुछ आर्य अपने को समझने व कहने वाले भी इसी प्रकार अपने अपने ठाठ बनाने को योजना बनाते नजर आते हैं। यह दूकानकारी चमत्कारों बिना नहीं पनप सकती। ता अब आर्य जगत् में इसका जन्म हो रहा है। क्या कहें धन बटोरने के वैज्ञानिक ढंग निकाले जा रहे हैं। इन आर्यों के तड़फड़ाते लेख और भाषण का सार यही रहता है कि बस पैसा दो और खूब दो यह उस पैसे से घर घर वेदों का डंका बजा देंगे। १०३ साल पहले ऋषि दयानन्द जी ने मूर्ति पूजा के गढ़ काशी में उस समय के उच्चकोटि के मूर्ति पूजा के समर्थक २६ विद्वानों से एक साथ ही शास्त्रार्थ कर उन्हें परास्त किया था। उस समय के निष्पक्ष पत्रों ने ऋषि की इस विजय को छापा था। आज उन द्वारा स्थापित आर्यसमाजों की शिरोमणि संस्था का उच्च अधिकारी प्रचारक को आदेश देता है, एकान्त में नहीं समारोह में कि खबरदार! मूर्ति पूजा का खण्डन न करना। अपना उदाहरण भी देता है कि किस प्रकार मूर्ति पूजा का औचित्य ईसाई भाइयों को समझाया। इस पर सनातन धर्म वालों ने उनका मान किया। और खूब सम्मान व भेंट प्राप्त हुई। हां तो उनको निगाह में अब आर्यसमाज का प्रचार उनके कहे अनुसार होना चाहिये। भूल भी जो इस प्रकार जा भिड़ और काशी को हिला बैठे। ऐसे विकट समय में वे आर्य जिनको संस्था में न आवाज है न अधिकार. मगर हैं सच्चे आर्य वे क्या करें, उनका इस समय क्या कर्तव्य है। जिससे आर्यसमाज के उग्र तीव्र और तेजस्वी प्रचार को लहर पुनः प्रवाहित हो सके। (क्रमशः)

क्रमागत—

माण्डूक्य पर आचार्य गौडपाद कारिकाओं की समीक्षा (६)

(ले० श्री स्वामी ब्रह्मानन्द जी आर्यत्रैतवेदान्ताचार्य, मु० ओंकार आश्रम, चान्दोद, बड़ौदा)

है क्या ? यदि कहो कि हो सकता है। तब तो आप लोगों के मत में एवं बुद्धि में बड़ा ही अन्धेर है। परन्तु आप जो यों समाधान रूप से कहें कि हम लोग संवृति सत् वा व्यावहारिक सत्ता को केवल व्यवहार में सत्य मानते हैं। तो ऐसा भी कहना तुम्हारा युक्ति युक्त नहीं, क्योंकि संवृति—अथवा अविद्या का मतलब ही जब अज्ञान मिथ्या है तो अविद्या जन्य हुआ कार्य जो जगत् रूप व्यवहार है, तो वह तुम्हारे भी मत से सत्य कहा हुआ ? मिथ्या ही तुमने उसे माना है तो फिर उसे सत् एवं सत्ता ऐसा नाम देना ही बुद्धि विरुद्ध है क्योंकि सत् कहो चाहे सत्ता कहो वह भाववान् की ही हमेशा हो सकती है।

अभाव की तो विद्यमानता ही दो क्षण भी तो नहीं फिर उसे यों कहना कि ये व्यावहारिक सत्ता है या प्रातिभासिक सत्ता है. ऐसा कहना और नाम देना ही निरर्थक होने से सर्वथा मिथ्या है। तो उपरोक्त हमारे सब कथन का आशय यही है कि जिसे आपने मूल में मिथ्या मान लिया है उसे उलट फेर करके सत्य एवं सत्ता के नाम स्थापन करना यह तो सत् वा सत्ता के नाम पर हम वैदिकों की आंखों में दिन दुफेरे धूल झोंकना है। तो परमार्थ सत्ता ही एक तुम कह सकते हो बाकी दूसरी व्यावहारिक एवं प्रातिभासिक जो अविद्या जन्य है उसे अद्वैतवादी का सत्ता नाम देना ही व्यर्थ है कि जो अविद्या होने से वह स्वयं अभाव रूपी है तथा परमार्थ सत्ता जो ब्रह्म भाव रूप है। तो इन दोनों के जब भाव अभाव रूप धर्म ही समान नहीं हैं तब इनमें सत्यत्व की भी समानता कैसे ? ऐसी पोलपाल हम वैदिक सांख्यवादियों के आगे कभी भी चलने नहीं दी जायेगी। आपने अपनी उक्त ग्यारहवीं कारिका में अज्ञान अविद्या रूप कारण से विश्व तैजस प्राज्ञ रूप जीवात्मा की उत्पत्ति मानी है तो अविद्या स्वयं असत् अभावरूपी है उससे नित्य सत्य भावरूप जीवात्मा कैसे उत्पन्न होगा ? क्या अभाव से भाव का होना मानना यह तुम्हारा प्रमाद वा सिद्धान्तहीनता नहीं है ? तो सत् आत्मा का बांध वा बँधना सत् से ही हो सकता है असत् अविद्या से नहीं। और आत्मा को असंग तो आप भी मानते हो और बुद्ध विज्ञान वा शून्यवादी परमार्थ को सभी विकल्पों से शान्त नहीं मानते ? तब अविद्या का उसमें विकल्प कैसा ? और इस बात को तो तुम मान रहे हो। यहां कि तुरीय में तो ये सब कुछ भी नहीं तो फिर अविद्या आई किधर से ? किन्तु तुम्हीं बौद्ध और वेदान्तियों के दिमाग रूप घर से निकली मालूम होती है इसलिये—

जिसकी बलाय उसी को खाय, घर की बलाय घर ही में जाय।

नात्मानं न परं चैव न सत्यं नापि चानृतम्।
प्राज्ञः किञ्चन संवेत्ति तुर्यं तत्सर्वदृक्सदा ॥१२॥

आगम प्रकरण की १२ वीं का०

अर्थ—प्राज्ञ तो न अपने को न पराये को और न सत्य को अथवा अनृत को ही जानता है किन्तु वह तुरीय सर्वदा सर्वदृक् है ॥१२॥

समीक्षा—आप प्राज्ञ नामक आत्मा को सुषुप्ति अवस्था रूप परिस्थिति के कारण जो अज्ञ मानते हो तो कुछ ठीक है किन्तु यदि जो तुम प्राज्ञ आत्मा को स्वभाव से यदि अज्ञ मानते हो तो आप बड़ी भूल करते हो क्योंकि वह तो (प्राक्) प्रथम अनादि काल से ही (ज्ञ) ज्ञान स्वरूप है, किन्तु यह प्राज्ञ सुषुप्त अवस्था में ही परिच्छिन्न के देशीय होने से तमोविभूत होने से इसके ज्ञान में बाहर की ओर से अविद्या रूप घनता आ जाती है, जिस प्रकार जल में डुबकी लगाने के समय तक जल मग्न हुआ व्यक्ति को जल से बाहर का, जैसे उतने समय तक का कुछ भी नहीं दीखता किन्तु वह जल मग्न मनुष्य जल के अन्दर रहकर जल की शीतलता का अनुभव एवं आनन्द लेता ही है, यदि वहां भी वह अपने स्वकीय ज्ञान स्वरूपता से रहित हो जाय तो उस जल की शीतलता का आनन्दानुभव ही वह कैसे कर सकता है ? तो बस इसी प्रकार सुषुप्त अवस्था में तो वह प्राज्ञ जीवात्मा जाग्रत स्वप्न के ज्ञान एवं वहां के भोगों से रहित हो जाता है किन्तु वहां सुषुप्ति में जब वह प्राकृतिक स्थूल भोगों से विमुख होता है तो अपने आत्मा में रहे परमात्मा को आनन्दरूप से भोगता है तो वहां भी जो आनन्दानुभव मिलता है वह उसका खुद का आनन्द नहीं किन्तु उसके अन्तर्यामी प्रभु का ही सुख मिला होता है, देखो परमर्षि भगवान् कपिल महामुनि जी अपने सांख्य दर्शन में इसीलिये कहते हैं कि (समाधिसुषुप्तिमोक्षेषु ब्रह्मरूपता ।। सां० द०) याने जाग्रत् की समाधि में योगी को सुषुप्ति में सभी जीवों को एवं मोक्ष में मुक्तात्मा को ब्रह्म रूपता याने ब्रह्मानन्द की उपलब्धि होती है और यही बात वेदान्त में संक्षेप से कही गई है कि (भोगमात्र साम्यलिगम् ।। वे० द० ४ पा०) याने आनन्द के भोगमात्र में ही मुक्तात्मा की ब्रह्म से साम्यता होती है और किसी बात में नहीं सो यही बात यहां मांडूक्य की श्रुति में कही है कि (सुषुप्तस्थान एकीभूतः प्रज्ञानघन एवानन्दमयो ह्यानन्द भुक् चेतोमुखः प्राज्ञस्तृतीय पादः ।। मा० उ० ५) याने सुषुप्ति स्थान में हो सभी जीव (एकीभूतः) याने ब्रह्मानन्द के एकत्व को प्राप्त होते हैं और एकत्व का अर्थ ही बता रहा है कि एक जैसे याने मिले जुले से तो यह बात खास ध्यान देने की है, एकत्व का अर्थ अद्वैत नहीं होता। किन्तु एक जैसे मिले हुये और ऐसा ही वेद में और ईशावास्य में (एकत्वमनु पश्यतः) जो सुषुप्ति समाधिमोक्ष में एकत्व जीव ब्रह्म के मिलन से विषयातीत श्रेय-सुख का अनुभव करता है। क्योंकि यह जीव स्वयं दृष्टा है इसीलिये इसे (पश्यतः) कहा है याने यह अपने को ज्ञप्ति रूप से जानता है। इसीलिये यहां भी मांडूक्य में (चेतोभुक्) अपने चैतन्य ज्ञान को जानता है तभी तो ये (आनन्दभुक्) होता है तो भोक्ता सर्वत्र वेदोपनिषदों में अभोक्ता बताया गया है। तथा जहां (यत्र ब्रह्म च क्षत्रं च) वाली श्रुति में और (अत्ताचराचरस्य) इस सूत्र में तो उसे मात्र भोक्ता अलंकार एवं उपालंभ मात्र है, यथार्थ नहीं ऐसे ही (भोक्तारं यज्ञतपसाम्) वाले श्लोक में भी वही उपालंभ है यथार्थ नहीं तो क्या ब्राह्म एवं क्षात्र बल तथा चराचर तप आदि भी क्या कोई खाने को चीज है ? किन्तु खाना होता है परितृप्ति के लिये एवं परिपुष्टि के लिये, तो क्या परमात्मा भी उक्त चराचर को खाकर ही परितृप्त और परिपुष्ट हो सकता है ? क्योंकि वह स्वयं आप्त काम पूर्ण काम है जिसे कि वेद में भी (न कुतश्चनोनः) वह किसी भी प्रकार की न्यूनता वा कमी वाला नहीं या अपूर्ण अतृप्त नहीं किन्तु सर्वदा सर्वथा परिपूर्ण काम है। ऐसा वेद में बताया है, उस प्रभु को तो यह सुषुप्त जीव यदि स्वभाव से ही अज्ञ होता तो फिर उसे सुषुप्ति में चेतोभुक्त, ज्ञानयुक्त भोक्ता न कहा जाता किन्तु इसी बात से सिद्ध है कि जीव की चेतनता बाहर की ओर न होने से अपने अन्दर की ओर भी नहीं है सो ऐसी बात ही नहीं, क्योंकि चेतनायुक्त है तभी तो यह यहाँ भी भोक्ता और सभी अवस्था में और सभी परिस्थितियों में यह भोक्ता ही रहता है किन्तु ये भी ध्यान रहे कि भोक्ता का भोग उससे जुदा माना जायगा तभी वह उसका उपयोग और उपभोग कर सकेगा अन्यथा नहीं क्योंकि भोग की प्रथम यह उपलब्धि अपने ज्ञान से करता है तत्पश्चात् ही अपने आत्म विवेक से भोक्ता बनता है विषयों का। एवं ब्रह्म का, तभी तो श्रुति में कहा है कि (भूमा वै तत्सुखम् नाल्पे सुखमस्ति भूमैव सुखम् ।। उ०) यहां भूमा ब्रह्म को कहा गया है तो श्रुति बताती है भूमा ब्रह्म ही सुख स्वरूप है न की उससे अल्प जीव और जड़ में सुख है कि जो उस प्रभु से सर्वथा अल्प है। इसलिये निश्चय जानो कि वही परब्रह्म ही सच्चा सुखरूप है। तो इसीलिये यह जीव (तमोविभूतःसुखरूपमेति) अज्ञानान्धकारता की अवस्था सुषुप्ति में सुखरूपता को उपलब्ध करना है। तो यह उपरोक्त लेख से हमने यह बता दिया है कि जीव अज्ञ नहीं प्राज्ञ है। याने प्रथम सदा से अनादि काल से ही ज्ञानवान् है, अल्पज्ञान वाला है, इसीलिये इसे काल एवं अवस्था की परिस्थिति अनुरूप ही परिच्छिन्न ज्ञान रहता है। तो यह पूर्ण योगी होने पर भी सर्वज्ञ नहीं हो सकता त्रिकालज्ञ ही होता है किन्तु सर्वज्ञ तो एक नित्य विभु प्रभु परमात्मा ही है, जो इसका अन्तर्यामी होने से साक्षी है। जो वही सर्वदा सर्व दृक् कहा जाता है किन्तु अद्वैतवादी तो अविद्या रहित जीव को ही सर्वज्ञ मान लेते हैं तो यह उनकी भूल है।● (क्रमशः)

गतांक से आगे—

योगी का आत्मचरित्र

सब ही आत्मचरित्रों की एक वाक्यता (२३)

(ले०—श्री स्वामी सच्चिदानन्द योगी, अध्यक्ष श्री नारायण स्वामी आश्रम महामहिम पातञ्जल योग साधना संघ आ० बा० आ० ज्वालापुर, सहारनपुर)

'योगी का आत्म चरित्र', थ्यासोफिस्ट आत्म चरित्र, और पूना प्रवचन के स्वकथित आत्मचरित्र में कोई भी तो विरोध नहीं। घटनाओं के संक्षिप्त या विस्तृत उल्लेख का भेद है। घटनाओं की न्यूनता या अधिकता भी है। किन्तु किसी भी घटना में परस्पर विरोध नहीं है। यदि घटनाओं की अधिकता या न्यूनता से प्रामाणिकता को खण्डित माना जाये तब तो सब ही आत्मचरित्र आप्रमाणिक हो जायेंगे। पर यह कोई हेतु नहीं। समय, परिस्थिति, और श्रोतृ वर्ग की आकांक्षा के भेद से भेद होना अनिवार्य है। हां घटनायें परस्पर विरोधी या भिन्न समय की न लिखी गई हों।' तिथियों को मिलाकर सावधानता के साथ नहीं देखा जाये तो ऐसी आशङ्कायें स्वाभाविक ही उठती हैं। अतः सन् संवत् के अनुसार तुलना करना उपयोगी होगा। मननशील विचार कर अपनी शंका को निवृत्त कर सकेंगे।

संवत् १८८१ (सन् १८२४)—तीनों आत्मचरित्रों में यही जन्म सम्वत् है। पूना प्रवचन सन् १८७५ के ४ अगस्त को हुआ, उसमें ऋषि ने कहा "इस समय मेरी अवस्था ५० वर्ष की होगी।"

—'योगी का आत्मचरित्र पृ० २७३

योगी का आत्मचरित्र में—उत्तरार्ध को पृष्ठ भूमि शीर्षक पृष्ठ १ पर लिखा है :—

"१६ दिसम्बर १९७२ से १६ अप्रैल १९७३ तक बंगाल में रहे थे।" पृष्ठ नौ पर लिखा है :—"मेरी अवस्था अब (सन् १८७३) में प्रायः ४८ वर्ष की है।" अतः जन्मकाल सन् १८२४ के उत्तरार्ध में ही हुआ। थियासोफिस्ट में स्पष्ट ही Samvat 1881 (1924 A. D.) I was born.

संवत् १८८६ (सन् १८२९)—I was hardly five years of age when I began to steady the Dev Nagri characters." P. 308—"अष्टम वर्ष की वय में मेरे यज्ञोपवीत संस्कार का प्रबन्ध हुआ"—यो० आ० पृ० १३, पूना प्रवचन में यज्ञोपवीत संस्कार का उल्लेख नहीं है। यह कोई विरोध तो नहीं। संक्षेप के लिये छोटी छोटी बातें छोड़नी ही होती हैं। योगी का आत्मचरित विस्तृत है अतः उसमें १८९० सं० (१८३३ सन्) में '९ वर्ष की आयु में मेरे पितामह की मृत्यु हो गई थी। लिखा गया। अन्यत्र नहीं इसी प्रकार सं० १८८९ (सन् १८२९) को जन्मोत्सव' नामकरण एवं दाई की घटना का कुछ विस्तार से वर्णन है। यह इसी प्रकार की घटनाएं हैं जिन्हें ऋषि ही बता सकते। जीवनी लेखकों के काल में अन्य कोई स्रोत इन्हें नहीं बता सकता था।

सं० १८८६ (सन् १९२९) विद्यारम्भ संस्कार योगी का आत्मचरित्र में—देवनागरी अक्षरों का सीखना थियासोफिस्ट में है—"पांच वर्ष की आयु में देवनागरी अक्षरों का अभ्यास।"

सं० १८८९ (सन् १८३२) में :—अष्टम वर्ष की अवस्था में यज्ञोपवीत संस्कार का प्रबन्ध हुआ यो० आ० पृ०। 'जब मैं आठ वर्ष का हुआ तब मेरा उपनयन संस्कार कराकर—थिया० पृ० २८२

सं० १८९५ (सन् १८३८-३९ प्रारम्भ) शिव चतुर्दशी का व्रत १४ वर्ष की आयु में व्रत—व्रतभंग की बात योगी का आत्मचरित्र में है और यही थियासोफिस्ट में—"चौदहवें वर्ष के आरम्भ होने से पूर्व··· पाठ्यक्रम समाप्त हो गया। पृ० २८३। महाशिवरात्रि आयी जो माघ० ब० दि० कृष्णा त्रयोदशी के अगले दिन थी पूना प्रवचन में तिथि नहीं—"मुझे पिता ने शिवरात्रि का व्रत रखने को कहा।" योगी के आत्मचरित्र में है—"माता जी मुझे इस सौभाग्य से वञ्चित करना चाहती थी; मैंने माता जी की बातें नहीं सुनी ···।" थियासोफिस्ट में है—"माता जी के प्रतिरोध पर ध्यान देते हुए।" पृ० २८४॥ पूना प्रवचन में—"मेरी मां कहती थी उपवास मत कर मैंने माता का कहना न मानकर उपवास किया" पृ० २७४॥

सं० १८९९ (१८४२ सन्)—"मेरी अठारह वर्ष की अवस्था में १४ वर्ष की बहन की मृत्यु हुई थी। पृ० १९ "मेरी छोटी बहन १४ वर्ष की थी' मैं तब १८ वर्ष का था।" थियासोफिस्ट पृ० २८६

सं० १९०० (१८४३ सन्)—"१९ वर्ष की आयु में चाचा की मृत्यु" योगी० आ० पृ० २०। "कुछ समय पश्चात् मेरे चाचा जी की मृत्यु हो गई।" थियासो० पृ० २८६।—"उन्नीसवें वर्ष चाचा जी की भी मृत्यु ने आन दबाया। पृ० २७५ पूना प्रवचन।

सं० १९०२ (१८४५ सन्) में विवाह प्रसंग बन्द। २१ वें वर्ष में वैराग्य।

सं० १९०३ (१८४६ सन्) सिद्धपुर का मेला बाईस वर्ष में घर से निकल पड़ा।

सं० १९०४ (१८४७ सन्) में बड़ौदा में चैतन्य मठ में केवल वेदान्त पर ही मेरा एक वर्ष का समय बीत गया।" पृ० ३३। यहां तक सहमति है।

(१) सं० १९०५ (१८४८-४९ सन्) में वाराणसी में अध्ययन कर—नर्मदा तीर की ओर अग्रसर।

(२) (सं० १९०८ मध्य) (१८५२) नर्मदा की यात्रा के उपरान्त चाणोद कर्णाली—व्यास आश्रम चाणोद कर्णाली में दयानन्द नाम तथा संन्यास दीक्षा।

(२) सं० १९०८ से १९११ तक (१८५२ से १८५४ तक) आबू पर योग साधना और कठोर तप।

सं० १९११ के अन्त में—(१८५४-५५ सन्) अजमेर, दिल्ली, हरद्वार=सन् ५७ की क्रान्ति का पूर्वाभ्यास।

(३) सं० १९१२ वैशाख (१८५५ अप्रैल में) हरद्वार कुम्भ में चण्डी के पहाड़ पर पहली बार। नाना साहब, अजीमुल्ला खा, बाला साहब, तांत्या टोपे, बा० कुंवरसिंह, लक्ष्मीबाई और रानी गंगाई बाई का दर्शनार्थ आगमन। क्रान्ति के लिये आशीर्वाद।

---

(१) बड़ौदा से बनारस हो गये थे। इस विषय में १२ वें लेख में ७ प्रमाण ऋषि जीवनियों में दिये हैं और १९ वें लेख में पं० घासीराम जी के हिन्दी 'दयानन्द चरित्र' पूरे तीन उद्धरण दिये हैं। इन १० प्रमाणों की विद्यमानता में यह निर्विवाद सत्य है ऋषि बड़ौदा से बनारस गये थे।

(२) चाणोद कर्णाली, व्यास आश्रम में तीन वर्ष और तीन वर्ष आबू में भी योगाभ्यास निर्विवाद है। यह ऋषि का एकान्त योगाभ्यास था, अतः ऋषि ने इसकी प्रामाणिक विस्तृत योग व्याख्या सहित जीवनी की जानकारी दी। यह सारी साधना पातञ्जल योगदर्शन का क्रियात्मक स्वरूप है जो अन्यत्र अनुपलब्ध है।

(३) हरद्वार १९१२ संवत् के कुम्भ गमन तो निर्विवाद है। नाना आदि क्रान्तिकारियों का मिलना भी ऋषि ही बता सकते थे। या नाना आदि क्रान्तिकारी। ५७ की क्रान्तिकारियों का लिखा कुछ भी उपलब्ध नहीं है। क्रान्ति का इतिहास उस काल के अंग्रेजी सरकार के पीठुओं का ही है। हां, सावरकर आदि नवीन इतिहासों से पर्याप्त पुष्टि मिलती है। इसमें भी सन्देह करने का कोई कारण प्रतीत नहीं होता।

(शेष अगले अंक में [२३] भाग का शेष)

गतांक से आगे

योगी का आत्म चरित्र एक मनघडन्त कहानी

(लेखक—श्री स्वामी पूर्णानन्द जी सरस्वती-बड़ौत-जिला मेरठ)

इस वर्णन को एक जागरूक मस्तिष्क वाला और उस प्रान्त की भौगोलिक स्थिति से परिचित व्यक्ति एक बेहूदा बकवास के अतिरिक्त कुछ नहीं करेगा ? हरद्वार पहुंचने पर भी दीनबन्धु जी दयानन्द को शान्ति पूर्वक भगवच्चिन्तन नहीं करने देते हैं और उसके पैरों में ऐसा चक्कर डाल देते हैं कि वह बेचारा भंगड़, सुलफेबाज, अफीमी, खाली, नागधड़क और न जाने कितने प्रकार के साधुनाम धारी धूर्तों के डेरों पर चक्कर कटवाते हैं। लिखा है :—

"निश्चित रूप से सब ही जगह घूम घूमकर सब कुछ अनुभव किया था"। यह उस दयानन्द के नाम से प्रचारित किया जाता है जो स्वयं कहता है कि 'जब तक मेले में भीड़भाड़ रही मैं चण्डी के जंगल में एकान्त स्थान में रहा और योगाभ्यास करता रहा। अब आगे असली बात आती है जिसके लिये दीनबन्धु एण्ड को ने सारा प्रपञ्च रचा है, वह है '५७ की क्रान्ति के नेताओं का हरद्वार कुम्भ मेले में भविष्यत् युद्ध के लिये ऋषि दयानन्द से आशीर्वाद लेना। दीनबन्धु जी लिखते हैं :—

अब तीन दिन बाद ही पांच अज्ञात नामा और अपरिचित सज्जन हमारे अतिसंकीर्ण कुटीर के सम्मुख आकर पूछने लगे :—"आबूशैल से आये हुए महात्मा जी कहां हैं"?

उनमें प्रथम थे बाजीराव पेशवा के दत्तक पुत्र धुन्धपन्थ (नाना साहब) द्वितीय थे उनके बन्धु अजीमुल्ला खां तृतीय थे उनके भाई बाला साहब, चतुर्थ थे तात्या टोपे और पञ्चम थे जगदीशपुर के जमीदार कुंवरसिंह।" (योगी का आत्म चरित्र पृ०)

फिर आगे लिखा है :—"रानी लक्ष्मी बाई और रानी गंगा बाई दो एक रोज के बाद ही झांसी की रानी लक्ष्मी बाई और इनकी सहचारी (पहले सार्वदेशिक में सपत्नी था) रानी गंगाबाई ने तीन कर्म चारियों के साथ वहां आकर प्रणिपात किया। परिचय पूछने पर लक्ष्मीबाई आंखों में आंसू भरकर ओजस्विनी भाषा में बोलने लगी :—

मैं निःसन्तान और विधवा हूं। मेरे पतिदेव की मृत्यु के बाद मेरे श्वसुर कुल के वैध राज्य को अंग्रेजों ने मेरे निःसन्तान होने के बहाने से अपना राज्य घोषित कर दिया। मेरे पतिदेव के राज्य से मेरा हक चला गया और अंग्रेजों का हक बन गया' सुनते हैं। अंग्रेज सेनापति बहुत अधिक संख्या में फौज लेकर मेरी झांसी को छीनने के लिये आ जायंगे।"

इस प्रकार के लेखों से दीनबन्धु जी आर्य जनता पर यह प्रभाव डालना चाहते हैं कि सन् १८५७ की जनक्रान्ति के मुख्यसूत्रधार ऋषि दयानन्द जी ही थे और नाना साहब आदि ६ नेताओं ने उन्हीं से प्रेरणा, आशीर्वाद और आदेश पाकर जनक्रान्ति का युद्ध प्रारम्भ किया था'। परन्तु यह विचार सर्वथा निर्मूल है। ऋषि दयानन्द से इन नेताओं का न तो कभी सम्पर्क हुआ और न उन नेताओं को कोई आदेश प्रेरणा या आशीर्वाद ही दिया। इन नेताओं का हरद्वार में आना जाना किसी इतिहास से सिद्ध नहीं होता। यह दीनबन्धु जी की अपनी मनघडन्त कहानी है' हम इसको पुष्ट प्रमाणों से सिद्ध करेंगे। हम पहले लक्ष्मी बाई की बात को ही लेते हैं। लक्ष्मी बाई के सम्बन्ध में दीनबन्धु जी ने चार बातें लिखी हैं :-

१. झांसी की रानी लक्ष्मीबाई और उनकी सपत्नी (सहचरी पीछे लिखा गया) रानी गंगाबाई स्वामी दयानन्द के पास हरद्वार कुम्भ मेले के अवसर पर अप्रैल सन् १८५५ में गई।

२. लक्ष्मीबाई ने कहा : 'मैं निःसन्तान हूं।'

३. सुनते हैं– अंग्रेज सेनापति बहुत अधिक संख्या में सेना लेकर मेरी झांसी को छीनने के लिये आ जावेंगे

४. मैं जिन्दा रहती हुई अपने श्वसुर कुल के इस राज्य को दुश्मनों को नहीं दूंगी।

दीनबन्धु जी की ये सब बातें सर्वथा झूठ हैं। क्यों ? इसलिये कि अप्रैल सन् १८५५ में लक्ष्मीबाई को कोई सपत्नी या सहचरी रानी गंगाबाई के नाम वाली झांसी में मौजूद नहीं थी। राजा गंगाधर राव की पहली पत्नी रमाबाई की मृत्यु हो जाने पर ही सन् १८४२ में लक्ष्मीबाई का उसके साथ विवाह हुआ था। अतः १८५५ में लक्ष्मीबाई का अपनी पत्नी के साथ हरद्वार में जाना असम्भव है।

दूसरे यह कहना भी झूठ है कि लक्ष्मीबाई निःसन्तान थी, क्योंकि सन् १८५३ में ही गंगाधर राव ने बालक दामोदर राव को अपना दत्तक पुत्र स्वीकार कर लिया था और रानी लक्ष्मीबाई का उसको माता घोषित कर दिया था।

तीसरे यह कहना भी झूठ है कि अंग्रेज सेनापति फौज लेकर झांसी को छीनने के लिये आ जावेंगे, क्योंकि झांसी को तो सन् १८५४ में ही अंग्रेजी राज्य में मिला लिया गया था और लक्ष्मीबाई के हाथ से सब सत्ता छीन ली गई थी। जब लक्ष्मीबाई के हाथ में कुछ रहा हो नहीं था तो बड़ी भारी सेना और क्या छीनने के लिये आने वाली थी। जरा इतिहास को पढ़िये—"७ मार्च सन् १८५४ को झांसी को ब्रिटिश राज्य में मिला लिया गया। घोषणा में कहा गया"—"झांसी फिलहाल पोलिटिकल एजेंट एलिस को सौंपी जाती है। झांसी के सभी निवासियों को चाहिये कि वे अपने को अंग्रेजों की प्रजाजन समझें।" (अठारह सौ सत्तावन—ले० श्री निवास बाला जी हार्डीकर पृ० ३१)

आगे लिखा है "रानी को झांसी का किला और महल अंग्रेजों को सौंपना पड़ा, शहर के महल में उसको रक्खा गया।" (पृ० ३२)। इस घटना का सब ही इतिहासकार समर्थन करते हैं। विशेषतया सर्वाधिक प्रामाणिक वीर सावरकर अपने अंग्रेजी इतिहास में और भारत सरकार द्वारा नियुक्त डा० सुरेन्द्रनाथ सेन ने अपने हिन्दी के 'अठारह सौ सत्तावन' इतिहास में इस घटना का विस्तारपूर्वक उल्लेख किया है।

डा० सेन ने लिखा है :—"अतः मार्च सन् १८५४ में ब्रिटिश भारती अधिराज्य में मिला लिया गया और रानी को एक काफी बड़ी पेंशन का वचन दिया गया। उसके जीवन भर के लिये ६० हजार रुपये (वार्षिक पेंशन निश्चित कर दी गई।...यह भी विधान कर दिया गया कि उसके जीवन काल में उसके वैयक्तिक अनुचर वृन्द को वही विशेषाधिकार प्राप्त रहेंगे। दत्तक ग्रहण भी निषिद्ध नहीं किया गया।

दामोदर को परिवार के खजाने तथा अपने गोद लेने वाले पिता की वैयक्तिक सम्पत्ति का वारिस स्वीकार कर लिया गया।" (पृ० २७४) फिर आगे लिखा है :—"जब मेजर एलिस ने सरकार के झांसी को मिलाने सम्बन्धी निर्णय को सम्प्रेषित किया तो उसने साफ और गूंजती हुई आवाज में घोषणा की "मेरा झांसी नहीं देंगे" चाहे यह एक अप्रत्याशित अन्याय का विरोध हो या एक भावुक हृदय का क्षणिक उद्वेग, झांसी को मिलाये जाने का कोई प्रतिरोध नहीं किया। लक्ष्मीबाई ने अपने किले में अपने पति का निवास स्थान शान्ति पूर्वक छोड़ दिया। और नगर के उस महल में आ गई जो उसको दिया गया था, और वह एक हिन्दू विधवा का जीवन विताने लगी। उसके सैन्यदल को भंगकर दिया गया"। (पृ० २७६-२७७)

इन उद्धरणों से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि सन १८५४ में मार्च मास से ही झांसी अंग्रेजी राज्य में मिला ली गई थी और लक्ष्मीबाई का उसपर कोई अधिकार नहीं रहा था। तो फिर अंग्रेज सेनापति बहुत बड़ी संख्या में फौजों को लाकर झांसी को किस से छीनना चाहते थे ? इतने बड़े झूठ को न तो लक्ष्मी बाई ने किसी से कहा और न ऋषि दयानन्द ने किसी से कहा, यह तो केवल दीनबन्धु जी का ही दिलगुर्दा है कि उसको बड़े से बड़े झूठ बोलने में परमात्मा का भय नहीं होता। दीनबन्धु जी ने आर्यसमाजियों को धोखा देने के लिये मार्च सन १८५८ में अर्थात् सन १८५५ से तीन वर्ष के बाद होने वाली घटना को इतिहासों से चुराकर रानी लक्ष्मी के मुख से हरद्वार के कुम्भ के मेले पर सन् १८५५ में कहलवा रहे हैं। ठीक है। तीर्थ पर जाकर बड़े से बड़े झूठ बोलने दें कोई पाप नहीं क्योंकि गंगामय्या सब पापों को छोड़ा लेगी !!

इस बात में सब ही इतिहासकार सहमत हैं कि जून सन् १८५७ में झांसी स्थित भारतीय सेना ने विद्रोह कर दिया था और वहां के सब ही अंग्रेजों को मार दिया था और विद्रोहियों ने १० जून को लक्ष्मीबाई को झांसी की गद्दी पर बैठा दिया था। रानी लगभग १० मास तक अर्थात् १० जून में सन् १८५७ से ३ अप्रैल सन १८५८ तक राज्य करती रही रानी लक्ष्मी की झांसी को छीनने के लिये अंग्रेजों की बहुत बड़ी सेना सरह्यू रोज के नेतृत्व में बड़े दलबल के साथ आ गई और २२ मार्च सन् १८५८ से झांसी को घेर लिया और ५ अप्रैल को अंग्रेजों ने झांसी को लक्ष्मीबाई से छीन लिया। क्रमशः●

ऐतिहासिक प्रमाण—

महर्षि दयानन्द को विष दिया गया।

ऋषिवर के बलिदान की अमर कहानी (८)

(ले०—श्री राजेन्द्र 'जिज्ञासु जी' एम० ए० बी० टी०, प्रा० दयानन्द कालिज अबोहर)

आर्य जनता को जोधपुर के ज्ञानवृद्ध वयोवृद्ध श्रीयुत भैरवसिंह जी का ऋणी होना चाहिए जिन्होंने मुझे एक अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रमाण सुझाया। मेरे मित्र श्री प्रो० रोहताशसिंह जी मेरा पत्र लेकर उनके घर जोधपुर गये। श्री भैरवसिंह जी को मैंने अबोहर भी बुलाया। वह जोधपुर में ऋषि के आगमन, प्रचार, विषपान, बलिदान पर सर्वाधिक ज्ञान रखते हैं।'

उन्होंने मेरे सब लेखों को ध्यान से पढ़ा है और पूरा पूरा समर्थन दिया है। उन्होंने सुझाया कि तुम्हारे (मेरे पास) ही पुस्तकालय में अमुक अप्राप्य पुस्तक है। उसके अमुक पृष्ठ पर एक लेख ऋषि के बलिदान पर है। मैं विस्तार से तो अपनी पुस्तक में दूंगा। पाठक यहां भी कुछ नई खोज से लाभान्वित हों।

प्रो० रमाकान्त जी त्रिपाठी एक अन-आर्यसमाजी विद्वान् लेखक ने सरस्वती में वर्षों पहले एक लेख दिया। लेख का सीधा सम्बन्ध महर्षि से तो नहीं परन्तु उसमें ऋषि के बलिदान व विषपान की पर्याप्त चर्चा है। लेख बड़ा खोजपूर्ण है और जोधपुर के इतिहासज्ञों की साक्षी से लिखा गया। प्रो० त्रिपाठी जी ने स्पष्ट शब्दों में महर्षि के विषपान द्वारा बलिदान के ऐतिहासिक तथ्य को स्वीकार किया है। क्यों शर्मा जी? अब भी 'मैं न मानूं' ही कहेंगे अथवा सत्य को स्वीकार करने का नैतिक भूठी प्रतिष्ठा व दुराग्रह आपको शोभा नहीं देता।

Sir John Marshall तथा डा० भण्डारकर जी के नाम से कौन इतिहास प्रेमी परिचित नहीं? श्री भण्डारकर जी भी सर जन मार्शल के साथ १६०६ ई० में जोधपुर इतिहास की खोज के लिये गये। मार्शल जी ने लिखा है :—

Mr. Bhandarkar tells me that Brahmbatta Nanoo Ram Jee has been of great assistance to him in collecting information about the antiquities in and around Jodhpur......He has "quite a remarkable knowledge of the subject."

इसका भावार्थ यह है कि श्री नेनूराम जी ने भण्डारकर जी के कथनानुसार उनको जोधपुर में इतिहास की सामग्री एकत्र करने में बड़ी सहायता की। भण्डारकर जी ने मार्शल महोदय को बताया कि नेनूराम जी का पुरातत्व का इतिहास का, असाधारण ज्ञान है।

सरजान मार्शल के ये शब्द मैंने कहां से उद्धृत किये हैं यह पुस्तक में लिखूंगा। यहां यह दर्शाना अभिप्रेत है कि पाठक नेनूराम जी की इतिहास विषय की साधना को समझ सकें। श्री नेनूराम जी ने इतिहास को खोज के लिये दूर दूर की यात्रा की। वह ऋषि को जोधपुर लाने के लिये अजमेर गये (शाहपुर नहीं अजमेर ठीक है)। इसके लिये मेरे पास लिखित प्रमाण है। श्री भैरवसिंह जी ने भी नेनूराम जी के दर्शन किये हैं। श्री नेनूराम जोधपुर में ऋषि के प्रचार, प्रभाव, विषपान व बलिदान के बारे में अधिक से अधिक जानते थे। बड़े बड़े इतिहासज्ञों ने उनको शीश निवाया। ऋषि के बलिदान विषय में उनसे अधिक तो सम्भवतः किसी को भी ज्ञान न था। हम नेनूराम जो का मत पहले दे चुके हैं पुनः हम दोहराते हैं कि उनको खोज अब और अधिक विस्तार से हमें अपने ही पुस्तकालय से मिल चुकी है। अब हमारा पक्ष प्रत्येक दृष्टि से सत्य सिद्ध हो गया। नेनूराम जी का स्पष्ट मत है कि ऋषि को षड्यन्त्र से विष दिया गया।

श्री परमेश्वरन केरलीय विद्वान् थे। आर्यसमाजी न थे। उन्होंने भी ऋषि जीवन की खोज की। उनकी लिखी अंग्रेजी पुस्तक भी मेरे पास है। वह भी ऋषि का बलिदान षड्यन्त्र से मानते हैं।

कल्याण गोरखपुर में भी कई वर्ष हुए एक पौराणिक विद्वान् ने ऋषि का बलिदान विष से ही लिखा। श्री अखिलानन्द ऋषि मिशन के विरोधी बनकर डट गये थे। वह भी यही मानते थे कि ऋषि को विष दिया गया। 'क्रान्ति' लाहौर ने वर्षों पूर्व 'महापुरुष अङ्क' निकाला। उसमें ऋषि का बलिदान विष से लिखा है।

मैं ये सब तथा और भी अनेक प्रमाण विस्तार से पुस्तक में दूंगा।

शर्मा जी ने पैंतरा बदला

अब प्रि० श्रीराम जी शर्मा लिखते हैं कि प्रि० सूर्य भानु प्रि० बहादुर मल ऋषि जीवन पर प्रमाण नहीं। हमने कब लिखा था कि ये दो विद्वान् प्रमाण हैं। हमने जिस प्रसंग में इनके विचार दिये उनको शर्मा जी जानते हुए भी बात को तोड़ मरोड़ रहे हैं। साथ ही लिखते हैं बाबा छज्जूसिंह, ला० लाजपतराय व अन्य बहुत लोगों ने भी ऋषि जीवन पर कोई खोज नहीं की, केवल पूर्व लिखित बातों को प्रकाशित कर दिया। "Several others" (अन्य बहुत) के नाम शर्मा जी गिना देते तो अच्छा होता। अब शर्मा जी और खुल खेले हैं परन्तु पैंतरा बदल कर। अब वह किसी की विद्वत्ता व खोज को मानने को उद्यत ही नहीं। सर्वश्री महात्मा हंसराज, स्वा० श्रद्धानन्द, आचार्य रामदेव, म० नारायण स्वामी, पं० चमूपति, स्वा० स्वतन्त्रानन्द, स्वा० वेदानन्द, पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय, श्री विश्वप्रकाश, दीवान हरबिलास, श्री देवेन्द्र बाबू, स्वा० आत्मानन्द, स्वामी सत्यानन्द, श्री सुदर्शन जी, श्री आनन्द स्वामी, स्वामी वेदानन्द (गुरुकुल झज्जर) श्री पं० नरेन्द्र जी आदि किसी ने कुछ खोज न की। बस खोज की तो श्री गोपाल हरि देशमुख व आज शर्मा जी ने।

प्रि० शर्मा जी ने मेरे विरुद्ध श्रद्धेय प्रि० ग्रोवर जी को एक पत्र लिखा है। उनके सौजन्य के लिये मैं उनका ऋणी हूं पर स्मरण रखें मैं साधारण मिट्टी का बना नहीं हूं। भूखा मर जाऊंगा। ऋषि का सत्य पक्ष न तजूंगा। मैंने पं० लेखराम जी का लिखा "आग का राग" सुना :—

"दरीं राह गर कुशंदम वर बिसोजन्द, न ताबम रू ज़े दीने वेदे अकदस···"

मुझे जला दो मार दो वेद पथ से मुख न मोड़ूंगा। मित्र बंधु सब इस पर वार दूं। केवल ईश्वर से डरता हूं अन्य से नहीं।

मान्य शर्मा जी उस पत्र के अन्त में लिखते हैं शिकायत नहीं केवल सूचना दे रहा हूं। न जाने सूचना विभाग का कार्यभार आपने कब से संभाला है। आर्य संस्थाओं में ईसाई, सिख, मुसलमान, नास्तिक सब प्रकार के लोग हैं। अनुशासन को चुनौती देने वाले भी···क्या उनकी सूचना भी कभी किसी को दी? अच्छा है एक आर्यसमाजी को आपने कृपा पात्र बनाया। श्री शर्मा जी कहते हैं 'जिज्ञासु' को इतिहास के शोध के मूल सिद्धान्तों का भी ज्ञान नहीं। सर्वथा अनभिज्ञ लिखा है। ठीक है महाराज! मैं क्या जानूं? परन्तु इतना तो जानता हूं कि "इतिहास व इतिनाश" में क्या भेद है। इतिहास का अर्थ है ऐसा हुआ। इतिनाश हुआ ऐसा नाश। जैसी घटना घटी हम वैसा बता रहे हैं। आप नाश पर तुले हुए हैं।

मान्य शर्मा जी लिखते हैं कि 'जिज्ञासु' प्रसिद्धि के लिये लिख रहा है। यह भ्रान्ति उनकी दूर हो जाए यदि वह कन्या कुमारी से कश्मीर तक का भ्रमण करके समाजों में एक बार अपना दर्शन दें। आर्यसमाज से बाहर भी असंख्य लोग 'जिज्ञासु' को जानते हैं 'जिज्ञासु' आज से नहीं लिख रहा दो दशाब्दियों से लिख रहा है। हां! शर्मा जी अब नियमित रूप से पूरे विधि विधान से आर्य पत्रों में प्रकट हुए हैं। महाराज! इतनी देर कहां अज्ञातवास किया? सत्तर बहत्तर या पचहत्तर वर्ष के आर नहीं पार ही आप होंगे। महात्मा आनन्द स्वामी जी के शब्दों में अब ऋषि जीवन के अनुसन्धान की सूझी। वह महर्षि जिसको ऋषि भी भूलकर आप न लिख सके यह तो दूर रहा 'जी' शब्द का प्रयोग भी भूलकर उस विभूति के नाम के साथ लिये कर देते तो क्या हानि थी?

पूज्य शर्मा जी लिखते हैं "मुझे आश्चर्य है कि वैदिक धर्म के उर्दू लेख में 'जिज्ञासु' ने जो झूठ मेरी बाबत लिखा वह हिन्दी लेखों में लिखना कैसे भूल गया।" पाठक भ्रमोच्छेदन में पढ़ चुके होंगे कि बिना पढ़े सम्भवतः सुना सुनाकर शर्मा जी ने मेरे एक लेख पर आपत्ति कर दी कि मैंने उसमें 'हैदराबाद सत्याग्रह' शब्द लिखे हैं। मेरे किसी भी लेख में उनकी किसी पुस्तक व लेख की चर्चा के प्रसंग में या वैसे कहीं भी सत्याग्रह या हैदराबाद सत्याग्रह ये शब्द आए ही नहीं। शर्मा जी ने अवश्य सत्य की हत्या की है जो एक स्थान पर लिख दिया कि केरल में Kottayam नगर में एक आर्यसमाजी ने अस्पृश्यता के विरोध में जलूस निकालकर······

मैं इस नगर में कई बार गया हूं। वहां ऐसी घटना कभी नहीं घटी। यह काला झूठ नहीं तो क्या है? ● (क्रमशः)

शास्त्रीय चर्चा

वाचक और ग्राहक आदि शंकाओं का समाधान

[लेखक :— पं० सुदर्शन देव आचार्य एम. ए., आख्याता—राजकीय महाविद्यालय जीन्द (हरयाणा)]

दिनांक १४ जनवरी १९७३ के 'आर्यमर्यादा' पत्र में श्री आचार्य विश्वश्रवा व्यास जी का एक लेख प्रकाशित हुआ है। जिसमें एक शंका और कुछ शंकाओं का समाधान प्रस्तुत किया गया है। जिन पर यहां क्रमश: विचार किया जाता है।

१. वाचक और ग्राहक—महर्षि दयानन्द सरस्वती सत्यार्थप्रकाश के प्रारम्भ में 'ओ३म्' शब्द की व्याख्या में लिखते हैं "इस एक नाम से परमेश्वर के बहुत से नाम आते हैं जैसे अकार से विराट्, अग्नि और विश्वादि। उकार से हिरण्यगर्भ, वायु और तैजसादि। मकार से ईश्वर आदित्य और प्राज्ञ आदि नामों का "वाचक और ग्राहक है"।

श्री आचार्य जी ने पहले भी एक बार इस प्रश्न को उठाया था कि यहां वाचक और ग्राहक का क्या अभिप्राय है। जिसका उत्तर मैंने दिया था। उन्होंने इस आर्यमर्यादा के अंक में फिर उठाया है। उत्तर में फिर निवेदन है कि महर्षि के लेख का अभिप्राय अत्यन्त स्पष्ट है। 'ओ३म्' यह पद अ, उ, म् इन अक्षरों से मिलकर बना है। ईश्वर के जितने भी नाम हैं—महर्षि उन्हें अ, उ, म् से ग्रहण कर रहे हैं। कुछ नाम अ से ग्रहण होते हैं, कुछ नाम उ से और कुछ म् से। इस प्रकार ओ३म् शब्द ईश्वर के नामों का ग्राहक खण्डशः होता है और समुदित रूप में वाचक है। जैसे—'ओ३म्' का अकार विराट् का ग्राहक है और समुदित 'ओ३म्' विराट् का वाचक है। इस प्रकार ओ३म् विराट् का ग्राहक और वाचक होता है। महर्षि का लेख अत्यन्त स्पष्ट है। यदि श्री आचार्य जी को इस समाधान में कोई आपत्ति हो तो कृपया अपना मन्तव्य स्पष्ट करें।

२. महाभाष्य में जहां यह प्रसङ्ग आता है वहां दो उदाहरण पतंजलि मुनि जी ने दिये हैं —(१) कृष्णसर्पो वल्मीकः (२) दूसरा कृष्णसर्पवान् मण्डूकः (आर्यमर्यादा पृ०२)"

समीक्षा—पतंजलि मुनि जी ने उक्त प्रसङ्ग में ये उक्त दो उदाहरण नहीं दिये। अपितु कृष्णसर्पवान् वल्मीकः और कृष्णसर्पो वल्मीकः ये दो उदाहरण दिये हैं। कृष्णसर्पवान् मण्डूकः वहां उदाहरण नहीं है और न ही इसका कोई संगत अर्थ। है श्री आचार्य जी बतलाने का कष्ट करें कि यह उदाहरण महाभाष्य के किस संस्करण में है।

३. कृष्णसर्पवान् वल्मीकः। वह सिद्धान्त स्थिर है कि कर्मधारय से मत्वर्थीय नहीं होता (आर्यमर्यादा पृ०२)"

समीक्षा—पतंजलि मुनि व्याकरण महाभाष्य (२।१।६९। में लिखते हैं—कथं गौरखरवदरण्यम्, गौरमृगवदरण्यम्, कृष्णसर्पवान् वल्मीकः, लोहितशालिमान् ग्रामः ? अस्त्यत्र विशेषः। जात्यात्राभिसम्बन्धः क्रियन्ते। कृष्णसर्पो नाम सर्पजातिः सास्मिन् वल्मीकेऽस्ति। यदा ह्यन्तरेण जाति सद्‌वताभिसम्बन्धः क्रियते कृष्णसर्पो वल्मीकः, इत्येवं तदा भविष्यति ?

इसका अर्थ यह है कि गौरमृगवदरण्यम् [गौर मृगों वाला जंगल], कृष्णसर्पवान् वल्मीकः [काले सांप वाली बांबी], इत्यादि प्रयोग कैसे बनेंगे ? इसका उत्तर पतंजलि मुनि ने यह दिया है कि जब जाति की विवक्षा होगी तब कृष्णश्चासौ सर्पः कृष्णसर्पः, कृष्णसर्पोऽस्मिन् स कृष्णसर्पवान् वल्मीकः इस प्रकार यह प्रयोग बनेगा। किन्तु जब व्यक्ति की विवक्षा होगी तब कर्मधारय से मतुप् करने की आवश्यकता नहीं तब बहुव्रीहि से अर्थ का कथन हो जायेगा अतः कृष्णः सर्पो ऽस्मिन् स कृष्णसर्पो वल्मीकः यही प्रयोग बनेगा।

श्री आचार्य जी का यह कथन कि कर्मधारय से मत्वर्थीय नहीं होता महाभाष्य के विरुद्ध है। मत्वर्थीय होता ही कर्मधारय से है। बहुव्रीहि से मत्वर्थ के कथन होने से उक्तार्थानामप्रयोगः के नाम से मत्वर्थीय नहीं होता। क्या श्री आचार्य जी बतलाने का कष्ट करेंगे कि 'कृष्णसर्पवान्' पद में कृष्ण और सर्प समस्त पद में कर्मधारय नहीं तो और कौन सा समास है ? देखिये श्री कैयट प्रदीप व्याख्या में यहां क्या लिखते हैं—'जातिवाचकेन कर्मधारये न प्रीतयते" (महा० प्रदीप २।१।६९। कर्मधारय किये बिना जाति की प्रतीति नहीं होती। अतः सिद्धान्त स्थिर है कि कर्मधारय से मत्वर्थीय होता है। सर्वधनी, सर्वबीजी, सर्वकेशी आदि प्रयोग कर्मधारय मत्वर्थीय इनि प्रत्यय होकर ही ता बनते हैं जो महाभाष्य में उक्त स्थल पर ही प्रदर्शित किये गये हैं।

४. त्रिवेदी, चतुर्वेदी—त्रिवेदी चतुर्वेदी शब्द भी कर्मधारय से मत्वर्थीय होकर नहीं बने हैं प्रत्युत त्रीणि वेत्ति चत्वारि वेत्ति इति त्रिवेदी चतुर्वेदी हो सकते हैं (सुप्यजातौणिनिस्ताच्छील्ये) इस सूत्र से उष्णभोजी के समान णिनि प्रत्यय कर लो, परन्तु यदि त्रि और वेद शब्द से बनाया जायेगा तो त्रिवेद, चतुर् और वेद शब्द से बनाया जायेगा तो चतुर्वेद रूप बनेगा (आर्यमर्यादा पृ० २)"

समीक्षा—बड़े आश्चर्य की बात है कि श्री आचार्य जी त्रिवेदी, चतुर्वेदी में शब्दों की सिद्धि में कर्मधारय से मत्वर्थीय की प्राप्ति मान रहे हैं। जब कि यहां कर्मधारय समास है ही नहीं। तब श्री आचार्य जी के सिद्धान्त के अनुसार कि कर्मधारय से मत्वर्थीय नहीं होता, उसकी प्राप्ति ही कैसे सम्भव है। स्वयं श्री आचार्य जी ने यहां द्विगु समास स्वीकार किया क्योंकि त्रि और वेद तथा चतुर् और वेद शब्द से सिद्धि करने पर वे त्रिवेद और चतुर्वेद प्रयोग स्वीकार कर रहे हैं अर्थात् द्विगोर्लुगनपत्ये (४।१।८८) से द्विगु होने तद्धित प्रत्यय का लुक् मान रहे हैं। श्री आचार्य जी के मतानुसार यदि कर्मधारय है तो द्विगोर्लुगनपत्ये की प्रवृत्ति कैसे हो सकती है। यदि द्विगु है तो 'कर्मधारय से मत्वर्थीय नहीं होता' यह नियम कैसे लागू हो सकता है। श्री आचार्य जी से भूल यह हुई कि वे त्रिवेदी, चतुर्वेदी में कर्मधारय मानकर चल पड़े इसी लिये तो उन्होंने कृष्णसर्पवान् वल्मीकः और कृष्णसर्पो वल्मीकः इस महाभाष्य के कर्मधारय सम्बन्धी प्रकरण को उठाया। नहीं तो इसकी आवश्यकता ही क्या थी। वेद व्याकरण और साहित्य विषयों के आचार्य, श्री आचार्य जी कर्मधारय और द्विगु के भेद को नहीं समझ सके 'किमाश्चर्यमतः परम्'।

श्री आचार्य जी ने त्रिवेदी और चतुर्वेदी शब्दों को सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये' से णिनि प्रत्यय करके त्रीणि वेत्ति, चत्वारि वेत्ति इति त्रिवेदी, चतुर्वेदी प्रयोग सिद्ध किये हैं। प्रयोग तो बन गये किन्तु अर्थ क्या हुआ ? इस पर कुछ भी विचार नहीं किया। अर्थ यह हुआ कि जो तीनों को जानता है। वह त्रिवेदी, चारों को जानता है वह चतुर्वेदी। जब कि अर्थ यह अभीष्ट है कि तीन वेदों को पढ़ने वाला त्रिवेदी, चार वेदों का पढ़ने वाला चतुर्वेदी। श्री आचार्य जी की प्रयोगसिद्धि इस अर्थ से शून्य है अतः सिद्धि निरर्थक है।

२६ नवम्बर १९७२ के आर्यमर्यादा के अङ्क में भी माननीय पण्डित विहारीलाल जी ने भी इन प्रयोगों के विषय में शंका उठाई थी। और महर्षि के वेद भाष्य का उद्धरण प्रस्तुत किया था। जो इस प्रकार है यो द्वौ वेदावधीते स द्विवेदी यस्त्रीन् वेदानधीते स त्रिवेदी, यश्चतुरो वेदानधीते स चतुर्वेदी" (यजुर्वेदभाष्य १८। ६७)॥

श्री शास्त्री जी का अभिप्राय यह था कि यहां द्विगोर्लुगनपत्ये (४। १। ८८) से तद्धित प्रत्यय का लुक् होकर द्विवेदः, त्रिवेदः, चतुर्वेदः ऐसे प्रयोग होने चाहिये। यही बात श्री आचार्य जी ने भी स्वीकार की है कि त्रिवेद, चतुर्वेद रूप बनेगा।

इसका स्पष्ट शब्दों में उत्तर यह है कि महर्षि के द्विवेदी, त्रिवेदी आदि प्रयोग व्याकरण सम्मत हैं। यहा 'द्विगोर्लुगनपत्ये' की प्रवृत्ति नही होती। सूत्र का अर्थ यह है—अपत्य-प्रत्यय को छोड़कर द्विगुसंज्ञक प्रातिपदिक से प्राग्दीव्यतीय तद्धित प्रत्यय का लुक् होता है। द्विवेदी, त्रिवेदी आदि प्रयोगों में प्राग्दीव्यतीय तद्धित प्रत्यय है ही नहीं। फिर लुक् का प्रश्न ही नहीं उठता यहां 'अत इनिठनौ'(५। २। ११५) से 'अधीते वेद वा' अर्थ में इनि प्रत्यय है। जो प्राग्दीव्यतीय अधिकार से बाहर है।

चकित होने की आवश्यकता नहीं कि अत 'इनिठनौ' (५। २।११५) से 'अधीते वेद वा अर्थ में इनि प्रत्यय कैसे हो सकता है ? पतञ्जलि मुनिकृत महाभाष्य को खोलकर देखिये। उन्होंने 'अनुब्राह्मणादिनिः'। (४। २। ६२) की क्या व्याख्या की है ? महर्षि पतञ्जलि लिखते हैं—अयं योगः शक्यो ऽवक्तुम्। कथमनुब्राह्मणी, अनुब्राह्मणिनौ, अनुब्राह्मणिनः' इनिनैतन्मत्वर्थीयेन सिद्धम्"।

(शेष पृष्ठ १० पर)

जागृति—शङ्ख

[कविवर "प्रणव" शास्त्री एम० ए० फिरोजाबाद (उ० प्र०)

शङ्ख जागृति का बजाओ।

आ रही है बोध-बेला गान स्वागत के सजाओ ॥१॥
तामसी सुकुमारियाँ कलकलि करती आ रही हैं,
सुख स्वयंवर की सभा में सुन्दरी इठला रही हैं।
ये सुहागिनि हो पावें चक्र कुछ ऐसा चलाओ ॥२॥
स्नेह-शिविरों में न बजतीं अब सुखद शहनाइयाँ,
भिन्नता भुजगी भयावह हो रहीं अंगड़ाइयाँ।
प्रिय वशीकर मन्त्र मोहन माधुरी मञ्जुल सुनाओ ॥३॥
नींद के पर्यङ्क पर है यह चली संस्कृत सहेली,
सौम्य संस्कृति पूछती है, भूलती सी फिर पहेली।
मानसी अनुकूलता की गङ्ग में इनको निहलाओ ॥४॥
होम के होता जगोरे आर्य उद्गाता जगोरे,
आद्य अध्वर्यु कि ब्रह्मा यज्ञ के त्राता जगोरे।
पन्थ में हैं, पथिक प्यासे सोमरस इनको पिलाओ। ५॥
कर्म कञ्जों को मिटाने हे खड़ा हेमन्त मानी,
शीघ्र ही ऋतुराज की अब प्रिय करो तुम आगवानी।
सृष्टि के शृङ्गारने को श्रुति सिंदूरी रङ्गलाओ ॥६॥
जो कि जगता है, जगाता वरण करती हैं ऋचाएं,
साम श्याम कूंजती हैं, स्वर उसी के हो रचाएं।
'प्रणव' प्रियतम है, उसी का मान्यता मन में बिठाओ ॥७॥●

—स्वामी जी की क्षमा—

(ले०—श्री सत्यभूषण शान्त वेदालंकार एम० ए० नई दिल्ली)

है एक दिवस की बात सुनो, विद्यालय के शिक्षक बोले।
छात्रों को लाये, एक किया, औ पत्थर झोली में छोड़े ॥
आदेश दिया उनको ऐसा, जिस समय तुम्हें संकेत करूं।
पत्थर दो मार दयानन्द को, लड्डू के बदले यही कहूं ॥
जब रात हुई और आठ बजे, थोड़ा सा अन्धकार छाया।
भाषण का समय समाप्त हुआ, बच्चों ने था ऊधम ढाया ॥
तब दयानन्द जी ने लड्डू, कुछ भक्त-जनों से मंगवाये।
बोले गुरु जी देवें ना दें, हम हो देते हैं मनभाये ॥
यूं कहकर तब मोदक सहर्ष, बच्चों में तत्क्षण बांट दिये।
कर क्षमा उन्हें निज सहज भाव, से उनके मानस शान्त किये ॥
बच्चो, कितना था क्षमा भाव, उन दयानन्द जी का जानो।
शिशु फूट फूट कर रोये तब, अपनी करनी पर पहिचानो ॥
ऋषि दया, क्षमा भंडार और, सबके उपकारी थे महान्।
उनके सम तुम भी बन जाओ, सबको करुणा का करो दान ॥●

वेद तीर्थ आर्षगुरुकुल हाथरस

निर्वाचन निम्न प्रकार सम्पन्न हुआ—प्रधान—श्री मुरलीधर पोद्दार, मन्त्री—श्री हीरालाल आर्य, कोषाध्यक्ष—डा० रामनिवास मोहता। —मन्त्री

आर्यमर्यादा के लिये बधाई

आर्यमर्यादा आर्य जगत् के शिरोमणि पत्रों की कोटि में आता है। आपका सफल मार्गदर्शन न केवल पत्र के प्रेरक स्तर को दिनोदिन निखारता जाता है, अपितु दूर दूर स्थित आर्यों को जागरण सन्देश देता रहता है। ईश्वर से प्रार्थना है कि वह आर्य सिद्धान्त धनी सहृदय सिद्धान्ती जी को सानन्द स्वस्थ सुदीर्घ आयु प्रदान करे, ताकि वे समाज का आर्योचित नेतृत्व करते हुए ऋषि के उपवन को हराभरा बनाये रखने में सफल हों।

—देवनारायण भारद्वाज, मन्त्री आर्य समाज, अलीगढ़।

गुरुकुल प्रभात आश्रम में महोत्सव सम्पन्न

पंचम वार्षिक महोत्सव स्व० स्वामी समर्पणानन्द जी सरस्वती (पू० पं० बुद्धदेव विद्यालंकार) का निर्वाण दिवस बड़े ही उत्साह एवं श्रद्धा के साथ मनाया गया। इस उत्सव के शुभावसर पर कृषि राज्यमन्त्री प्रो० शेरसिंह जी भी पधारे। इस अवसर पर मेरठ और आस पास के अनेक ग्रामीण लोग अधिक संख्या में उपस्थित हुए। उड़ीसा (उत्कल) वासी ३० बच्चों का उपनयन संस्कार सम्पन्न हुआ। ब्रह्मचारियों का संस्कृत भाषण तथा शास्त्रार्थ भी हुआ। श्री स्वामी विवेकानन्द सरस्वती जी का अन्तिम आदर्श है जो कि महासागर से निकलता हुआ ज्ञान का स्रोत ब्रह्मचारियों के शास्त्रार्थ में प्रथम प्रतीक था।

महोत्सव में २००० रु० दान नगद प्राप्त हुए तथा १०,००० रु० भवन निर्माणार्थ देने की घोषणा श्री मनोहरलाल ने की।

—आचार्य प्रभात आश्रम।

मोरिशस यात्रा

इससे पहिले आप सात बार स्पैशल ट्रेनों द्वारा सारे भारत का भ्रमण कर चुके हैं। अब आठवीं बार आपकी विदेश यात्रा की व्यवस्था की गयी है।

मौरिशस में १२ वें सार्वदेशिक आर्य महासम्मेलन २४-२५-२६ अगस्त ७३ को आयोजित किया जा रहा है। इसमें भाग लेने के लिये दिल्ली से ही स्पेशल ट्रेनों द्वारा बम्बई तक, फिर बम्बई से समुद्री जहाज द्वारा सैसिल व पोर्ट लुइस (मौरिशस) सम्मेलन में भाग लेने के पश्चात् समुद्री जहाज द्वारा बम्बई और वहां से फिर स्पेशल ट्रेनों द्वारा नई दिल्ली लौट आने की व्यवस्था की गई है।

इसके अतिरिक्त हवाई जहाज नई दिल्ली से मौरिशस और वापस नई दिल्ली लौटने का भी प्रबन्ध किया गया है।

पूरी जानकारी के लिये नीचे लिखे पते पर लिखें अथवा मिलें :—

रामलाल मलिक प्रबन्धक (मौरिशस यात्रा)
आर्यसमाज करौल बाग, दिल्ली-५

(पृष्ठ ६ का शेष)

महर्षि पाणिनि ने अधीते वेद वा' अर्थ में अनुब्राह्मण शब्द से इन प्रत्यय का विधान किया। महर्षि पतंजलि कह रहे हैं कि इस सूत्र के विना भी काम चल सकता हैं। प्रश्न हुआ कि 'अनुब्राह्मणमधीते वेद वा "अनुब्राह्मणी" यह अनुब्राह्मणी प्रयोग कैसे सिद्ध होगा? उत्तर मिला कि 'अत इनिठनौ' (५।२।११५) से मत्वींय इनि प्रत्यय करने से सिद्ध हो जायेगा। यह महर्षि पतञ्जलि का लेख स्पष्ट ज्ञापक है कि मत्वर्थीय 'इनि' प्रत्यय अधीते वेद वा' अर्थ में भी लगता है। जब मत्वर्थीइ 'इनि' प्रत्यय 'अधीते वेद वा' अर्थ में अनुब्राह्मण' शब्द से हो सकता है तो द्विवेद, त्रिवेद, और चतुर्वेद से क्यों नहीं हो सकता?

वास्तविकता यह है कि आर्य विद्वानों का व्याकरण का अध्ययन छिछला है। महर्षि का महाभाष्य आदि व्याकरण ग्रन्थों का अध्ययन अत्यन्त गम्भीर है। द्विवेदी आदि प्रयोगों की इस गम्भीरता को एक साधारण व्याकरण स्पर्शी विद्वान् क्या समझ सकता है? अतः व्याकरण महाभाष्य के इस प्रमाण से यह स्पष्ट है कि द्विवेदी आदि महर्षि के प्रयोग सर्वथा व्याकरण सम्मत हैं। और यहां द्विगोर्लुगनपत्ये' की कोई गति नहीं।●

राजभाषा के रूप में हिन्दी के प्रयोग में कठिनाईयाँ और उनका निराकरण

(लेखक—श्री जगन्नाथ बी० ए०, एल० एल० बी० जे० डी०, प्रभाकर, सि० शास्त्री)

हिन्दी का सरकारी काम काज में प्रयोग बढ़े और इसके मार्ग में बाधक कुछ कठिनाइयों के व्यवहारिक उपाय पाठकों के विचारार्थ प्रस्तुत कर रहा हूं :—

१. सरकारी परीक्षाओं में हिन्दी का स्थान

बड़े पदों की कुछ भरती सेवाओं के अतिरिक्त केन्द्रीय सरकार के अनेक कार्यालय तथा संघीय लोक सेवा आयोग छोटे पदों के लिये भी प्रतियोगितात्मक परीक्षाएं लेते हैं, जिनमें से अनेक में हिन्दी को वैकल्पिक माध्यम के रूप में अभी तक स्वीकार नहीं किया गया है। उदाहरणार्थ इंडियन मिलिटरी अकादमी और रेलवे अप्रेंटिस परीक्षाओं में, जो संघीय लोक सेवा आयोग द्वारा ली जाती हैं, इंटरमीडिएट पास परीक्षार्थी बैठ सकते हैं। किन्तु इनके सभी प्रश्नपत्रों का उत्तर अंग्रेजी में ही दिया जाना अनिवार्य है। हिन्दी भाषी क्षेत्रों के अनेक विश्वविद्यालयों में पढ़ाई और परीक्षा का माध्यम हिन्दी हो चुकी है। कुछ विश्वविद्यालयों में अंग्रेजी को अनिवार्य विषय की कोटि से हटाकर ऐच्छिक विषय की कोटि में डाल दिया गया है। ऐसी स्थिति में यह अत्यन्त आवश्यक है कि संघीय लोक सेवा आयोग की तथा भारत सरकार की अन्य परीक्षाओं का परीक्षा माध्यम भी वैकल्पिक रूप से हिन्दी भी हो।

२. हिन्दी में सरकारी परीक्षाएं

अनेक मन्त्रालयों, कार्यालयों की भरती और विभागीय परीक्षाओं में अनेक विषयों के लिये अंग्रेजी के साथ साथ हिन्दी को भी वैकल्पिक माध्यम के रूप में स्वीकार कर लिया गया है। अनेक परीक्षार्थी हिन्दी माध्यम से परीक्षा देना चाहते हैं। किन्तु दिल्ली में जिस प्रकार की अनेक संस्थाएं अंग्रेजी माध्यम से परीक्षा देने वालों के लिये पैसा लेकर के भी कक्षाएं चलाती हैं, उस प्रकार की हिन्दी माध्यम से परीक्षा देने वालों की सुविधा के लिये कक्षाओं का प्रबन्ध नहीं है। प्रारम्भिक अवस्था में व्यापारिक संस्थाओं के इस कार्य में आगे आने की आशा कम है। अतः हिन्दी सेवी संस्थाओं का यह कर्तव्य है कि :—

(क) परीक्षार्थियों की सुविधा के लिये कक्षाओं का प्रबन्ध करें, (ख) परीक्षा में निर्धारित पाठ्यक्रम के आधार पर सहायक पुस्तकों का प्रकाशन करें, और (ग) प्रचार और व्यक्तिगत सम्पर्क द्वारा ऐसी परीक्षाओं की जनता को अधिक से अधिक जानकारी दें और उन्हें इन परीक्षाओं में बैठने के लिये प्रेरित करें।

३. पुस्तकालयों के लिये कार्यालय उपयोगी पुस्तकें

हिन्दी राज्यों के अनेक पुस्तकालयों में प्रतिवर्ष अनेक हिन्दी पुस्तकें खरीदी जाती हैं। उनमें साहित्यिक पुस्तकों की खरीद के साथ साथ कार्यालय उपयोगी एवं तकनीकी विषयों पर हिन्दी में प्रकाशित पुस्तकों के खरीदने पर ध्यान दिया जाना चाहिये, जिससे कि जो लोग तकनीकी क्षेत्र में तथा कार्यालय से सम्बन्धित साहित्य हिन्दी में पढ़ना चाहें, वे उनसे समुचित लाभ उठा सकें। पुस्तकालयों में सरकारी परीक्षाएं हिन्दी माध्यम से दिये जाने में सहायक पुस्तकें भी रहें।

४. हिन्दी राज्यों तथा जनता द्वारा केन्द्रीय सरकार को भेजे जाने वाले पत्र

केन्द्रीय सरकार के कार्यालयों को गृह मंत्रालय ने आदेश दिये हैं कि हिन्दी पत्रों के उत्तर हिन्दी में ही दें। आदेशों की अवहेलना के होने पर हिन्दी पत्रों का अंग्रेजी में उत्तर देने वालों से जावाब-तलबी भी होती है। किन्तु अनेक हिन्दी राज्यों के सरकारी, अर्धसरकारी एवं संस्थाओं और व्यक्तियों के पत्र अभी भी अंग्रेजी में भेजे जा रहे हैं। इस प्रकार केन्द्रीय शासन में हिन्दी के प्रति वातावरण उत्पन्न होने में कठिनाई हो जाती है। होता यह है कि यदि किसी केन्द्रीय सरकार के कार्यालय में थोड़े पत्र पहुंचते हैं तो उनके अनुवाद आदि की व्यवस्था के लिये पृथक् विभाग बनाना कठिन हो जाता है। यदि हिन्दी के पत्र उस कार्यालय को अधिक संख्या में जाएं तो उसकी समुचित व्यवस्था होने के लिये आधार बन जाता है और इस प्रकार हिन्दी में पत्रों का हिन्दी में ही उत्तर दिये जाने के विषय में अधिक अनुकूल वातावरण बनता है। अतः हिन्दी भाषी राज्यों में जनता तथा हिन्दी सेवी संस्थाओं को प्रेरित किया जाए कि वे केन्द्रीय सरकार के साथ अपना पत्र व्यवहार हिन्दी में करें।

५. हिन्दी व्यवहार के पक्ष में वातावरण बनाना

जैसा कि डा० दिनकर जी प्रायः कहते हैं, देश का समस्त लाजिक (तर्क) हिन्दी के पक्ष में हैं, किन्तु सरकारी क्षेत्रों एवं व्यापारिक क्षेत्रों में साइकालौजी हिन्दी के विपरीत है। इस मनोविज्ञान को बदलने के लिये हिन्दी के पक्ष में उत्साहमय वातावरण बनाना होगा। हिन्दी के प्रशासनिक एवं व्यापारिक क्षेत्र में जो प्रगति हुई है, उसको दर्शाने के लिये हिन्दी व्यवहार प्रदर्शनियों का स्थान स्थान पर आयोजन कराना अत्यन्त ही आवश्यक है।

६. राजभाषा सेवी व्यक्तियों का सम्मान

राजभाषा के रूप में हिन्दी के प्रयोग को बढ़ाने के क्षेत्र में विभिन्न कीर्तिमान स्थापित करने वालों को सार्वजनिक रूप में प्रोत्साहित किया जाना चाहिये। उदाहरणार्थ—दिल्ली प्रादेशिक हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रति वर्ष उच्चतम गति में टाइप करने वाले और उच्चतम गति पर डिक्टेशन लिखने वाले व्यक्ति को पुरस्कार देता है। ऐसे ही पुरस्कार राजभाषा के सभी क्षेत्रों में भी दिये जाने चाहियें। ●

दिल्ली विश्वविद्यालय इन्द्र विद्यावाचस्पति प्रतियोगिता गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय विजयी

२७ जनवरी को दिल्ली विश्वविद्यालय द्वारा हिन्दी के प्रसिद्ध पत्रकार व साहित्य सेवी श्री पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति की स्मृति में अखिल भारतीय आशुवाक् संस्कृत वाद विवाद प्रतियोगिता का आयोजन किया गया, जिसमें भारत के अनेक विश्वविद्यालयों ने भाग लिया। इस प्रतियोगिता में गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के छात्र धर्मवीर ने सर्व श्रेष्ठ स्थान प्राप्त कर २५० रु० का सर्वप्रथम पुरस्कार प्राप्त किया।

इस प्रतियोगिता का उद्घाटन कृषि राज्य मंत्री प्रो० शेर सिंह जी ने किया व सभा अध्यक्ष गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के कुलपति श्री रघुवीरसिंह शास्त्री ने विजयी छात्रों को पुरस्कार वितरण किया।

इस प्रतियोगिता का प्रारम्भ दिल्ली विश्वविद्यालय ने श्रीमती इन्द्र विद्यावाचस्पति के १० सहस्र रुपये के आर्थिक सहयोग से उनकी स्मृति में किया है। ●

अध्यात्मिक साधना शिविर बड़ौदा में सम्पन्न

बड़ौदा के प्रसिद्ध स्त्री शिक्षा संस्थान आर्य कन्या महाविद्यालय के विशाल प्रांगण में ता० १९ से २४ जनवरी तक पूज्य महात्मा आनन्द स्वामी जी महाराज की अध्यक्षता में आध्यात्मिक योग साधना शिविर लगाया गया। प्रान्त भर के आर्य समाजों से करीब दो सौ से अधिक भाई बहिनों ने इस शिविर में भाग लिया।

महात्मा जी के ध्यान की विधि तथा मनोहर कथा से लोग काफी प्रभावित हुए। —कार्यालयाध्यक्ष

आर्य समाज जीन्द का वार्षिक चुनाव

प्रधान—श्री छबीलदास, मन्त्री—श्री लाजपत राय (बी० ई० ओ०), कोषाध्यक्ष—श्री बिशन दास, पुस्तकाध्यक्ष—श्री कर्मवीरसिंह। —रमेश वर्मा।

आर्य समाज बड़ा बाजार कलकत्ता

वार्षिक निर्वाचन निम्न प्रकार हुआ :—प्रधान—श्री मोहनलाल अग्रवाल, मन्त्री श्री राम गोपाल गुप्त, कोषाध्यक्ष—श्री महावीर प्रसाद बंसल।

शोक प्रकाश

श्री भैरवदत्त जी शुक्ल आर्य समाज के प्रसिद्ध विद्वान् लेखक तथा कवि हैं। आर्यमर्यादा के पाठक इनके लेखों आदि से लाभ उठाते रहते हैं। अत्यन्त खेद से लिखना पड़ता है कि इनके छोटे पुत्र संजय का निमोनिया रोग से देहान्त हो गया। पैसे के अभाव में चिकित्सा का उचित प्रबन्ध नहीं किया जा सका। खेद की बात है कि आर्य विद्वानों को आजीविका में कितना कष्ट उठाना पड़ता है। बच्चों की शिक्षा दीक्षा की तो बात दूर रही, परन्तु उनके रोगी हो जाने पर औषध भी कराना दूभर है। हम इनके इस दुःख में परमेश्वर से प्रार्थना करते हैं, वही सब प्रकार की रक्षा करे। —सम्पादक

आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब द्वारा प्रकाशित और प्रचारित वैदिक साहित्य

१. बालदान जयन्ती स्मृति ग्रन्थ -आर्य बलिदानो की गाथा मूल्य ४-५०
२. सा[illegible] -वेदमन्त्रो की व्याख्या —प० चमूपति एम ए. ३-००
३ ज[illegible]न ज्योति-वेदमन्त्रो को व्याख्या „ „ ३-००
४ [illegible]कावाद और उपनिषद „ „ ००-२५
५ Principles of Arya samaj „ „ १-५०
६ Glimpses of Swami Daya Nand „ „ १-००
७ पजाब का आर्य समाज पजाब तथा हरयाणा के आर्यसमाज का इतिहास २-००
८ वैदिक सन्सग पद्धति सन्ध्या हवन मन्त्र अर्थ सहित विधि १-००
९. वेदाविर्भाव —आर्यमर्यादा का विशेषाक ०-६५
१० यजुर्वेद का स्वाध्याय „ „ „ ०-५०
११ वेद स्वरूप निर्णय —प० मदन मोहन विद्यासागर १-००
१२ व्यवहारभानु —महर्षि स्वामी दयानन्द ०-५०
१३. स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश — „ „ ०-४०
१४ Social Reconstruction By Budha & Swami Daya Nand —By. Pt. gangaPrasad Upadhya M. A, २.००
१५. Subject Matter of the Vedas —By S. Bhoomanad १-००
१६. Enchanted Island By Swami Staya Parkashanand १-००
१७. Cow Protection By Swami Daya Nand ०-१५
१८. वेद मे पुनरुक्त दोष नही है आर्यमर्यादा का विशेषाक २-००
१९ मूर्तिपूजा निषेध „ „ ००-५०
२० धर्मवीर प० लेखराम जीवन —स्वामी श्रद्धानन्द १-२५
२१ कुलियात आर्य मुसाफिर प्रथम भाग—प० लेखराम की पुस्तकों का संग्रह ६-००
२२. „ „ दूसरा भाग „ „ ८-००
२३ मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र —कु० सुशीला आर्या एम. ए. ०-२५
२४. योगीराज कृष्ण „ „ „ ०-१५
२५. गोकरुणा निधि —स्वामी दयानन्द सरस्वती ०-२०
२६ आर्यसमाज के नियम उपनियम ०-१०
२७. आर्य नेताओ के वचनामृत —साईंदास भण्डारी ०-१२
२८. कायाकल्प —स्वामी समर्पणानन्द सरस्वती १-५०
२९ वैदिक धर्म की विशेषतायें —प० हरिदेव सिद्धान्त भूषण ०-१५
३० स्वतन्त्रानन्द लेखमाला —स्वा० स्वतन्त्रानन्द की जीवनी तथा उनके व्याख्यान १-२५
३१ आत्मानन्द लेखमाला —स्वामी आत्मानन्द सरस्वती की जीवनी १-२५
३२ आर्यसमाज के सदस्यता फार्म —सैकड़ा १०-००
३३. वैदिक गीता —स्वामी आत्मानन्द सरस्वती २-५०
३४ मनोविज्ञान तथा शिव संकल्प „ „ „ ३-५०
३५ कन्या और ब्रह्मचर्य „ „ „ ०-१५
३६. सन्ध्या अष्टाङ्गयोग „ „ „ ०-३५
३७. वैदिक विवाह ०-७५
३८ सुखी जीवन —श्री सत्यव्रत २-००
३९. एक मनस्वी जीवन —प० मनसाराम वैदिक तोप १-५०
४०. छात्रोपयोगी विचारमाला —जगदेवसिंह सिद्धान्ती १-५०
४१. स्त्री शिक्षा —पं० लेखराम आर्य मुसाफिर ०-६०
४२. विदेशों में एक साल —स्वामी स्वतन्त्रानन्द २-२५
४३. वेद विमर्श —प० भगवद्दत्त वेदालंकार २-००
४४. वेद विमर्श —प० वेदव्रत शास्त्री २-००
४५. आसनों के व्यायाम „ „ „ १-००
४६. महर्षि जीवन गाथा —स्वामी वेदानन्द वेदवागीश २-२५
४७. मांस मनुष्य का भोजन नही —स्वामी ओमानन्द सरस्वती १-००
४८ वीर भूमि हरयाणा „ „ „ ४-००
४९. चोटी क्यों रखें —स्वामी ओमानन्द सरस्वती ०-५०
५० हमारा फाजिल्का —श्री योगेन्द्रपाल १-५०
५१. सत्सग स्वाध्याय —स्वामी ओमानन्द सरस्वती ०-५०
५२. जापान यात्रा „ „ „ ०-७५
५३. भोजन „ „ „ ०-७०
५४. ऋषि रहस्य —प० भगवद्दत्त वेदालकार २-००
५५. स्वामी श्रद्धानन्द जीवन परिचय १-२५
५६ मेरा धर्म —आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति ७-००
५७. वेद का राष्ट्रिय गीत „ „ „ ५-००
५८. ईशोपनिषद्भाष्य —इन्द्र विद्या वाचस्पति २-००
५९. प० गुरुदत्त विद्यार्थी जीवन —डा० रामप्रकाश १-३५
६०. वैदिक पथ —प० हरिदेव सिद्धान्त भूषण [illegible]-००
६१. ज्ञानदीप „ „ „ २-००
६२. आर्यसमाज का सैद्धान्तिक परिचय ०-५०
६३ The Vedas ०-५०
६४. The Philosophy of Vedas ०-५०
६५. वैदिक प्रवचन —प० जगत्कुमार शास्त्री २-२५
६६. ईश्वर दर्शन „ „ १-५०
६७. श्वेताश्वरोपनिषद् „ „ ४-००
६८. ब्रह्मचर्य प्रदीप „ „ ४-००
६९. भगवत प्राप्ति क्यों और कैसे —स्वा० सत्यानन्द ०-६०
७० आर्य सामाजिक धर्म „ „ ०-७५
७१ बोध प्रसाद —स्वामी श्रद्धानन्द ०-२५
७२. ऋषि दर्शन —प० चमूपति एम. ए. ००-२५
७३. ऋषि का चमत्कार „ „ „ ००-१२
७४. वैदिक जीवन दर्शन „ „ „ ००-२०
७५ वैदिक तत्व विचार „ „ „ ००-५०
७६. देव यज्ञ रहस्य „ „ „ ००-३५

सभी पुस्तकों का प्राप्ति स्थान

आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब, गुरुदत्त भवन, जालन्धर (७२५०) टेलीफोन
„ „ „ १५ हनुमान् मार्ग नई दिल्ली-१ „ (३१०१५०)
„ „ „ दयानन्द मठ रोहतक (हरयाणा) „ (५७४)

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के लिए जगदेवसिंह सिद्धान्ती शास्त्री द्वारा सैनी प्रिंटर्स पहाड़ी धीरज, देहली में मुद्रित और १५ हनुमान् रोड, नई दिल्ली—१ से प्रकाशित

७ फाल्गुन सं० २०२९ वि०, दयानन्दाब्द १४८,
तदनुसार १८ फरवरी १९७३ रविवार
सृष्टि सं०-१९६०८५३०७२

वर्ष ५ वार्षिक शुल्क स्वदेश में १०) रुपये
अंक १२ ,, ,, विदेश में २०) रुपये
एक प्रति का मूल्य ००-२० पैसे

सम्पादक - जगदेवसिंह सिद्धान्ती शास्त्री, पूर्व लोकसभा सदस्य (फोन ५१२१६३)

वेदमन्त्रार्थ-प्रवचन

पुनर्विद्वानस्मदर्थं केन किं कुर्यादित्युपदिश्यते ॥

फिर श्रेष्ठ विद्वान् हमारे लिये किससे क्या करे यह विषय अगले मन्त्र में कहा गया है ॥

ऋभुर्न इन्द्रः शवसा नवीयानृभुर्वाजेभिर्वसुभिर्वसुर्ददिः ।
युष्माकं देवा अवसाहनि प्रियेऽभि तिष्ठेम पृत्सुतीरसुन्वताम् ॥

—ऋ० १.११०.७

पदार्थः—(ऋभुः) बहुविद्याप्रकाशको विद्वान् (नः) अस्मभ्यम् (इन्द्रः) यथा सूर्य्यः स्वस्य प्रकाशाकर्षणाभ्याम् सर्वानाह्लादयति तथा (शवसा) विद्यासुशिक्षाबलेन (नवीयान्) अतिशयेन नवः (ऋभुः) मेधाव्याऽऽयुः सभ्यताप्रकाशकः (वाजेभिः) विज्ञानैरन्नैः सग्रामैर्वा (वसुभिः) चक्रवर्त्यादिराज्यश्रीभिः सह (वसुः) सुखेषु वस्ता (ददिः) सुखानां दाता (युष्माकम्) (देवाः) विद्यासुशिक्षे जिज्ञासवः (अवसा) रक्षणादिना सह वर्त्तमानाः (अहनि) दिने (प्रिये) प्रसन्नताकारके (अभि) आभिमुख्ये (तिष्ठेम) (पृत्सुतीः) याः संपर्ककारकाणां सुतय ऐश्वर्यप्रापिकाः सेनास्ताः (असुन्वताम्) स्वैश्वर्यविरोधिनां शत्रूणाम् ॥

अन्वयः—यो नवीयानृभुर्यथेन्द्रस्तथा शवसा नोऽस्मभ्यं सुखं प्रयच्छेदृभुर्वाजेभिर्वसुभिर्वसुर्ददिस्तेन स्वराज्यसेनानामवसा सह देवा वयं प्रियेऽहन्यसुन्वतां युष्माकं शत्रूणां पृत्सुतीः सेना अभितिष्ठेमाभिभवेन सदा तिरस्कुर्याम ॥

भावार्थः—अत्र लुप्तोपमालंकारः। यथा सविता स्वप्रकाशे तेजस्वी सर्वान् चराचरान पदार्थान् जीवननिमित्ततयाऽऽह्लादयति तथा विद्वच्छूरवीरविद्वत्कुशलसहाययुक्ता वयं सुशिक्षिताभिर्हृष्टपुष्टाभिः स्वसेनाभिः ससेनान् शत्रूंस्तिरस्कृत्य धार्मिकाः प्रजाः संपाल्य चक्रवर्त्तिराज्यं सततं सेवेमहि ॥

भाषार्थः—जो (नवीयान्) अतीव नवीन (ऋभुः) बहुत विद्याओं का प्रकाश करने वाला विद्वान् जैसे (इन्द्रः) सूर्य्य अपने प्रकाश और आकर्षण से सबको आनन्द देता है वैसे (शवसा) विद्या और उत्तम शिक्षा के बल से (नः) हमको सुख देवे वा जो (ऋभुः) धीर बुद्धि आयुर्दा और सभ्यता का प्रकाश करने वाला (वाजेभिः) विज्ञान अन्न और संग्रामों से वा (वसुभिः) चक्रवर्ती राज्य आदि के धनों से (वसुः) आप सुख में बसने और (ददिः) दूसरों को सुखों का देने वाला होता है उससे अपने राज्य के और प्रजाजनों के (अवसा) रक्षा आदि व्यवहार के साथ वर्त्तमान (देवाः) विद्या और अच्छी शिक्षा को चाहते हुए हम विद्वान् लोग (प्रिये) प्रीति उत्पन्न करने वाले (अहनि) दिन में (असुन्वताम्) अच्छे ऐश्वर्य के विरोधी (युष्माकम्) तुम शत्रुजनों की (पृत्सुतीः) उन सेनाओं के जो कि सम्बन्ध कराने वाली को ऐश्वर्य पहुंचाने वाली हैं (अभि) सम्मुख (तिष्ठेम) स्थित होवें अर्थात् उनका तिरस्कार करें ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०। जैसे सूर्य्य अपने प्रकाश से तेजस्वी समस्त चर और अचर जीवों और समस्त पदार्थों के जीवन कराने से आनन्दित करता है वैसे विद्वान् शूरवीर और विद्वानों में अच्छे विद्वान् के सहायों से युक्त हम लोग अच्छी शिक्षा की हुई, प्रसन्न और पुष्ट अपनी सेनाओं से जो सेना के लिये हुए हैं उन शत्रुओं का तिरस्कार कर धार्मिक प्रजाजनों को पाल चक्रवर्त्ति राज्य को निरन्तर सेवें ॥

—(ऋषि दयानन्दभाष्य) ●

मुक्तिविषयः

(स होवाच ए०) याज्ञवल्क्य कहते हैं, हे गार्गि ! जो परब्रह्म नाश, स्थूल, सूक्ष्म, लघु, लाल, चिक्कन, छाया, अन्धकार, वायु, आकाश, सङ्ग, शब्द, स्पर्श, गन्ध, रस, नेत्र, कर्ण, मन, तेज, प्राण, मुख, नाम, गोत्र, वृद्धावस्था, मरण, भय, आकार, विकाश, संकोच, पूर्व, अपर, भीतर, बाहर, इन सब दोष और गुणों से रहित मोक्ष स्वरूप है, वह साकार पदार्थ के समान किसी को प्राप्त नहीं होता और न कोई उसको मूर्त्त द्रव्य के समान प्राप्त होता है, क्योंकि वह सब में परिपूर्ण, सबसे अलग, अद्भुत स्वरूप परमेश्वर है, उसको प्राप्त होने वाला कोई नहीं हो सकता जैसे मूर्त्त द्रव्य को चक्षुरादि इन्द्रियों से साक्षात् कर सकता है। क्योंकि वह सब इन्द्रियों को विषयों से अलग और सब इन्द्रियों का आत्मा है। तथा (ये यज्ञेन) अर्थात् पूर्वोक्त ज्ञानरूप यज्ञ और आत्मादि द्रव्यों की परमेश्वर को दक्षिणा देने से वे मुक्त लोग मोक्ष सुख में प्रसन्न रहते हैं। (इन्द्रस्य) जो परमेश्वर की सख्य अर्थात् मित्रता से मोक्षभाव को प्राप्त हो गये हैं उन्हीं के लिये भद्रनाम सब सुख नियत किये गये हैं। अङ्गिरसः) अर्थात् उनके जो प्राण हैं वे (सुमेधसः) उनकी बुद्धि को अत्यन्त वढ़ाने वाले होते हैं और उस मोक्ष प्राप्त मनुष्य को पूर्व मुक्त लोग अपने समीप आनन्द में रख लेते हैं और फिर वे परस्पर अपने ज्ञान से एक दूसरे को प्रीतिपूर्वक देखते और मिलते हैं। (स नो बन्धु०) सब मनुष्यों को यह जानना चाहिये कि वही परमेश्वर हमारा बन्धु अर्थात् दुःख का नाश करने वाला है, (जनिता) सब सुखों को उत्पन्न और पालन करने वाला है तथा वही सब कामों को पूर्ण करता और सब लोकों को जानने वाला है कि जिसमें देव अर्थात् विद्वान् लोग मोक्ष को प्राप्त होके सदा आनन्द में रहते हैं और वे तीसरे धाम अर्थात् शुद्ध सत्व से सहित होके सर्वोत्तम सुख में सदा स्वच्छन्दता से रमण करते हैं ॥२॥ इस प्रकार संक्षेप से मुक्ति विषय कुछ तो वर्णन कर दिया और कुछ आगे भी कही कहीं करेंगे। सो जान लेना। जैसे (वेदाहमेतम्) इस मन्त्र में भी मुक्ति का विषय कहा गया है ॥

इति मुक्ति विषयः संक्षेपतः

(ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका) ●

सत्यार्थप्रकाश (१० वाँ समुल्लास)

इन्द्रियाणां विचरतां विषयेष्वपहारिषु ।
संयमे यत्नमातिष्ठेद्विद्वान् यन्तेव वाजिनाम् ॥ मनु० २.८८

मनुष्य का यही मुख्य आचार है कि जो इन्द्रिया चित्त को हरण करने वाले विषयों में प्रवृत्त कराती हैं उनको रोकने में प्रयत्न करे जैसे घोड़े को सारथि रोक कर शुद्ध मार्ग में चलाता है इस प्रकार इनको अपने वश मे करके अधर्म मार्ग से हटा के धर्म मार्ग में सदा चलाया करे ॥१॥

—(ऋषि दयानन्द) ●

वेदाङ्गप्रकाश का स्वाध्याय

(श्री पं० मदनमोहन विद्यासागर, प्रेम मन्दिर, महर्षि दयानन्द मार्ग नारायण गुड़ा—हैदराबाद, आ० राज्य)

१. वर्णोच्चारण शिक्षा

ऋषि दयानन्द ने भिन्न भिन्न मतों के मानने वालों को एक सूत्र में बाँधने के लिये 'वेदमत', का पुनरुद्धार का स्थापन करने का प्रयास किया और भिन्न भिन्न भाषाओं को बोलने वाले और भिन्न भिन्न लिपियों में लिखने वाले मानव समूहों को 'एकवाक्' बनाने के लिये एक भाषा 'संस्कृत भाषा' व एक लिपि 'देवनागरीलिपि' के प्रचार का महान् प्रयत्न किया।

सब मत सम्प्रदायवादों का तुलनात्मक अध्ययन कर ऋषि दयानन्द ने 'सब धर्मों का आदिस्रोत' वैदिक धर्म को बताया और उस महाभाषा वैज्ञानिक ऋषि ने भाषाओं की उत्पत्ति एवं विकास के विज्ञान को सम्यक्तया जान, संस्कृत भाषा को सब भाषाओं की जननी एवं सब विद्याओं की भण्डार तथा देवनागरी लिपि को विश्व की सब भाषाओं के उपयुक्त लिपि बताया।

इसलिये ऋषि दयानन्द ने संस्कृत भाषा के वैज्ञानिक अध्ययन एवं देवनागरी लिपि के परिज्ञान के लिये 'वेदांगप्रकाश' की रचना की।

पाठकों के ज्ञानवर्धन के लिये, इसमें से कुछ चुने हुए विषय क्रम से लिखे जाते हैं। इससे ऋषि दयानन्द के विचार समझने में आर्य विद्वानों को सुभीता होगा।

पहले लेख में ऋषि दयानन्द के, 'वर्ण, अक्षर, शब्द' की उत्पत्ति स्वरूप भेद आदि पर विचारों का संकलन प्रस्तुत किया जाता है।

विषय को सर्वथा अद्यतनीय रूप देने के लिये मध्यमें कही कही कुछ अपनी ओर से लिखा है। ऐसा बहुत कम लेख है। उससे ऋषि दयानन्द के विचारों का पोषण ही हुआ है।

"आजकल देवनागरी वर्णों के उच्चारण में बहुधा जो जो गड़बड़ हुई है, उस उस को छोड़कर यथायोग्य वर्णों का उच्चारण मनुष्य करे। जैसे [ज्ञान का] 'ज्ञा' [पद है]; इसमें 'ज् + ञ् + आ' ये तीन अक्षर मिले हैं। [इसलिये] इनका उच्चारण भी जकार ञकार और आकार का ही होना चाहिये। किन्तु दक्षिणात्य लोग अर्थात् द्राविड़ तैलङ्ग, [तमिल], [आन्ध्र] कारणाटक और महाराष्ट्र 'ग्नान', गुजराती 'ग्यॉन' और पञ्चगौड़ 'ग्यान' ऐसा अशुद्ध उच्चारण अन्ध परम्परा से वेदादि शास्त्रों के पाठ में भी करते हैं। ऐसे ही पञ्चगौड़ प्रायः 'ष' के स्थान पर 'स' का [जैसे 'विष' के स्थान पर विस्] और कोई कोई ख [जैसे भाषा के स्थान पर 'भाखा'] और य के स्थान पर ज का [जैसे सूर्य के स्थान पर सूरज] अशुद्ध उच्चारण करते हैं। ऐसे ही बंगाली लोग ष और स के स्थान में भी श का [ही अशुद्ध] उच्चारण किया करते हैं। यह अन्ध परम्परा नष्ट होकर शुद्धउच्चारण की परम्परा होनी योग्य है [वर्णोच्चारण शिक्षा, भूमिका]।

ऐसे ही एरोपादेश निवासियों में कुछ जैसे अंग्रेज 'ल' के स्थान पर 'ट' और कुछ जैसे फ्रांसीसी 'ट' के स्थान पर 'ल्' का अशुद्ध उच्चारण करते हैं, तमिल देशवासी 'क' के स्थान पर 'ग' और आन्ध्र लोग 'ऋ' के स्थान पर 'रि' का उच्चारण करते हैं। ऐसे ही उच्चारण में बहुत से दोष होते हैं; जैसे 'राम' 'कृष्ण' के स्थान पर 'रामा' 'कृष्णा' और 'बुद्ध' के स्थान पर 'बुद्धा' का अशुद्ध उच्चारण पठित शिक्षित जन भी करते हैं [संकलन कर्त्ता]।

इसलिये माता पिता और अध्यापक को योग्य है कि वे बाल्यकाल से ही अपने सन्तानों व शिष्यों को ऐसा सिखावें "कि मनुष्यों को थोड़े ही परिश्रम से वर्णोच्चारण विद्या की प्राप्ति शीघ्र हो जावे [व. उ. शि. भूमिका]।"

(प्रश्न) वर्ण वा अक्षर किनको कहते हैं ?

(उत्तर) १. वर्ण शब्द 'वृञ्' वरणे धातु से बना है। पुरुष के कण्ठस्थ स्वरयन्त्र द्वारा प्रगट नाद=ध्वनि के, 'स्थान, करण, प्रयत्न' द्वारा व्यक्त भिन्न भिन्न उच्चारणों का नाम 'वर्ण' है [संकलनकर्त्ता]।

२. I अक्षर अर्थात् न+क्षर, 'जिनका कभी [क्षरण=] विनाश नहीं होता' अथवा II 'अशूङ्' व्याप्तौ धातु से 'सर' जोड़ने पर 'अक्षर' बनता है अर्थात् 'जो सर्वत्र व्याप्त है' [व. उ. शि.] सब मनुष्यों को चाहिये कि वे उनको प्रयत्न से जानें। [क्योंकि ऋषि दयानन्द 'शब्द' को आकाश का गुण तथा नित्य मानते हैं, इसीलिये वे शब्द के मूल, वर्ण वा अक्षर को 'सर्वत्र व्याप्त' व 'कभी विनष्ट न होने वाला' मानते हैं]

(प्रश्न) इनका उपदेश किसलिये किया जाता है ?

(उत्तर) वर्णों [के स्वरूप व उच्चारण] का यथार्थ विज्ञान, (उस) वाणी (अर्थात् सत्यज्ञान) का विषय है, जिसमें शब्द ब्रह्म वेद और परब्रह्म (सर्वज्ञ परमात्मा दोनों) का रहस्य निहित है। इसलिये ज्ञान के चरम सत्य वेद और परमात्मा के सम्यग्ज्ञान के अर्थ, इष्ट बुद्धि अर्थात् अभीष्ट ज्ञान की प्राप्ति के अर्थ और स्वल्प प्रयत्न से महालाभ को प्राप्त होने के लिये अक्षरों के अभ्यास उच्चारण की रीति प्रसिद्ध की जाती है (व. उ. शि. १)। [हमने मूल में उद्धृत संस्कृत के प्रमाण नहीं लिखे। कहीं कहीं भाषा को कठिन देख उसे मूल संस्कृत प्रमाण के साथ मिलाकर, सरल भाषा बना दी है। आगे भी ऐसा ही समझें।]

सो यह अक्षरों का अच्छे प्रकार कथन (एवं अभ्यास) किया जो 'नाम्समाम्नाय' अर्थात् ज्ञान है, वह शब्दरूपी पुष्पों से सुवासित व शोभित, (अर्थरूपी) फलों से युक्त, चन्द्र और ताराओं के समान आकाश में सुशोभित है। यह ब्रह्मराशि आकाश में स्थित शब्दों का समुदाय जानने योग्य है। और इसके (अक्षर समुदाय) यथार्थ ज्ञान से सम्पूर्ण वेदों के ज्ञान का फल प्राप्त होता है। इनमें वर्णों के ठीक ठीक उच्चारण से सुनने में प्रीति (अर्थात् प्रसन्नता) और (बोध में) भ्रम की निवृत्ति) होती है। इसलिये यह वर्णोच्चारण विद्या मनुष्यों को अवश्य जाननी चाहिये। (व. उ. शिक्षा. पृ. १)।

(प्रश्न) वर्णों का रूप कैसे प्रगट होता होता है ?

(उत्तर) I आकाश और वायु के संयोग से उत्पन्न हुआ, नाभि के नीचे से ऊपर उठता हुआ (कण्ठ नाली द्वारा) जो मुख को प्राप्त होता है, उसको 'नाद' (वा ध्वनि) कहते हैं। वह 'नाद', कण्ठ आदि स्थानों में विभाग को प्राप्त हुआ 'वर्ण'—भाव को प्राप्त होता है। उसको 'शब्द' कहते हैं। [(क) तुलना १. व. उ. शि. पृ. १५ "जो उपर को ···· यथा-योग्य क्रिया करनी चाहिये।" २. नामिक पृ० ४ "जिसका······शब्द कहाता है।"]

II. जीवात्मा बुद्धि से अर्थों की सगति करके कहने की इच्छा से मन को (प्र.) युक्त करता है; वह अग्नि (हृदयस्थ) वायु को प्रेरणा करता है और वह वायु उरःस्थल में विचरता हुआ मन्दस्वर (नाद या ध्वनि) को उत्पन्न करता है। उसको शब्द कहते हैं [(ख) वर्त्तमान भाषा वैज्ञानिक ध्वनि या शब्द की उत्पत्ति को पूर्णतः शारीरिक स्वरनाली द्वारा प्रादुर्भूत मानते हैं। ऋषि दयानन्द 'शब्द' का प्रगटन, 'आत्मा-मन कण्ठ' तीनों के सम्मिलित प्रयत्न को मानते हैं। इतना ही नहीं, इस आत्मा में प्रेरणा 'परम-आत्मा' की मानते हैं। आगे प्रसग आने पर इसका विवेचन करेंगे।] (व. उ. शि. २)।

(प्रश्न) शब्द का स्वरूप कैसा है ?

(उत्तर) जिसका कान इन्द्रिय से ज्ञान और बुद्धि से निरन्तर ग्रहण होता है; जो उच्चारण से प्रकाशित होता है तथा जिसके निवास (=सत्ता स्थिति, आश्रय) का स्थान आकाश है, वह 'शब्द' कहाता है [व. उ. शि. २, ३]।

(प्रश्न) [शब्द के शुद्ध ज्ञान, शुद्ध अभ्यास और सम्यक्प्रयोग से मनुष्य] किस फल को प्राप्त करता है ?

(उत्तर) विद्वान् लोग उस आकाश एवं वायु के संयोग से उत्पन्न, नाशरहित, विद्या सुशिक्षा सहित बुद्धि (रूपी गुहा) में स्थित, अत्यन्त शुद्ध पवित्र शब्द राशि की अच्छे प्रकार से प्राप्ति की कामना करते हैं। और (इस प्रकार) वही अच्छे प्रकार प्रयुक्त किया हुआ शब्द, मनुष्य को 'अभ्युदय' अर्थात् शरीर मन आत्मा स्वसम्बन्धियों के लिये सब (सांसारिक) सुख तथा 'श्रेयस्' अर्थात् विद्यादि शुभगुणों के योग द्वारा प्राप्त मुक्ति सुख से युक्त कर देता है (व. उ. शि. २)। ● (क्रमशः)

महर्षि दयानन्द का आर्ष दर्शन

वैदिक कोष निघण्टु और निरुक्त भाष्य

ऋषि दयानन्द द्वारा रचित ग्रन्थों के अध्ययन और मनन से यह प्रतीति स्पष्ट हो जाती है कि वह उसी कोटि के पारदृश्वा महान् विद्वान् थे कि जिस श्रेणी में ब्रह्मा से लेकर जैमिनि पर्यन्त ऋषि मुनियों का स्थान आता है। मानव कल्याण के लिये उन्होंने अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया था। सत्यार्थप्रकाश, संस्कारविधि, आर्य्याभिविनय तथा अन्य ग्रन्थों की रचना के साथ ही उन्होंने वेदभाष्य और ऋग्वेदादिभाष्य-भूमिका का प्रणयन किया। वह अन्य आर्ष ग्रन्थों के उद्धार और प्रकाशन में भी संलग्न रहे। वह आर्ष ग्रन्थों को वेदार्थ में उपयोगी मानते हुए और उनको वेदानुकूल होने पर भी परतः प्रमाण कोटि में स्वीकार करते थे। केवल ईश्वर उपदिष्ट चारों वेद=मूल संहिताओं को ही स्वतः प्रमाण मानते थे। अपने जीवनकाल में ऋषि दयानन्द ने वेदार्थ में सहायक समझकर यास्क मुनि कृत वैदिक कोष निघण्टु और उसके व्याख्यान निरुक्त का वैदिक यन्त्रालय में प्रकाशन किया था। सं० १९३९ वि० में उन्होंने संशोधित संस्करण छपवाया। उदयपुर में निवास करते समय वैदिक कोष निघण्टु की भूमिका में ऋषि लिखते हैं—

"यह ग्रन्थ ऋग्वेदी लोगों के पठितव्य दश ग्रन्थों में है। विशेषकर वेद और सामान्य से लौकिक ग्रन्थों से भी सम्बन्ध रखता है। यह मूल और इसका भाष्य निरुक्त यह दोनों ग्रन्थ यास्क मुनि जी के बनाये हैं। सदा से चले आने से प्राचीन हैं। इसको बहुत पुस्तकों से मिलाकर जो जो पुस्तकान्तरों में विशेष शब्द पाये थे नोट में धर दिये हैं। अकारादि क्रम से इसकी शब्दानुक्रमणिका भी बनाकर छपवाई है जिससे जिस शब्द को देखना चाहे झटिति देख सकता है।......परन्तु ये सब वेद में यौगिक और योग रूढि आते हैं केवल रूढि नहीं। इसमें जो पद नाम हैं वे पद धातु के गत्यर्थ अर्थात् ज्ञान गमन प्राप्त्यर्थ के वाचक होकर यौगिक हो जाते हैं। यह ग्रन्थ सर्वत्र उपलब्ध नहीं था अब छपने से प्राप्त होने लगा है इससे बड़ा उपकार यह होगा—कि जो पुराण वालों ने अर्थ का अनर्थ किया है सो इन आर्ष ग्रन्थों से निवृत्त होकर सबके आत्मा में सत्य का प्रकाश होगा। निदर्शन—जैसे पुराणी लोगों ने वृत्र शम्बर और असुर शब्द से दैत्य निघण्टु में मेघ। पु० अहि शब्द से सर्प नि० मेघ। पु० अद्रि गिरि तथा पर्वत से केवल पहाड़ नि० मेघ। पु० अश्मा, ग्रावा शब्दों से पाषाण और नि० मेघ। पु० वराह से सुअर नि० मेघ। पु० धारा से जल का प्रवाह नि० वाणी। पु० गौरी से महादेव की स्त्री नि० वाणी। पु० कर्मकाण्डी स्वाहा से अग्नि की स्त्री और स्वधा शब्द से पितृ की स्त्री नि० स्वाहा से वाणी और स्वधा से अन्न। पु० शची शब्द से इन्द्र की स्त्री नि० में वाणी कर्म और प्रज्ञा का नाम है। पुराणी लोग शचीपति शब्द से देवों का राजा इन्द्र और वेद में वाणी कर्म और प्रज्ञा का पालन करनेहारा स्वामी लिया जाता है। पु० गय शब्द से एक मृतकों के अर्थ पिण्ड प्रदानार्थ स्थान विशेष और नि० अपत्य, धन और गृह का नाम है। पु० घृताची शब्द से देवलोक की वेश्या विशेष स्त्री और नि० में रात्रि का नाम है। आजकल के लोग विप्र शब्द से केवल ब्राह्मण और निघण्टु में बुद्धिमान् का नाम है। पु० श्रद्धा से प्रीति और श्राद्ध से मृतकों की तृप्ति मानते हैं और नि० में श्रोत् शब्द से सत्य और जिस क्रिया से सत्य ग्रहण हो वह श्रद्धा और जो इससे धर्मयुक्त कर्म किया जाय सो श्राद्ध कहाता है। अब कहां तक लिखें मनुष्य लोग जब इस कोष को पढ़ेंगे तभी नवीन पुराणादि ग्रन्थों का मिथ्यापन और वेदों का सत्यत्व तथा वेदों के अर्थ करने में प्रवृत्ति अपने आप हो जावेगी तब तक वेदार्थ में प्रवृत्ति नहीं होती और व्याकरणादि का पढ़ना निष्फल है। यद्यपि जहां तहां यन्त्रालयों में निघण्टु छपा है तथापि इसके छापने का मुख्य प्रयोजन यही है कि अकारादि शब्दक्रम इसके साथ शब्दानुक्रमणिका ठिकाने के सहित छपवा दी है कि जिस शब्द को निकालना चाहें उसको शब्दानुक्रमणिका के अनुकूल देख के शीघ्र निकाल लेवेंगे इससे जिसको ग्रन्थ कण्ठस्थ न होगा वह भी शब्दानुक्रमणिका से लाभ ले सकेगा।" ऋषि द्वारा प्रकाशित निघण्टु की भूमिका के पाठ से सिद्ध होता है कि वह मनुष्यों को वेदार्थ जानने के लिये आर्ष ग्रन्थों का भी प्रकाशन करते थे।

निघण्टु और निरुक्त की वेदमूलकता

ऋषि दयानन्द ने ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के प्रश्नोत्तर विषय प्रकरण में लिखा है—

(प्रश्न०) वेदेष्वग्निवाय्विन्द्राश्विसरस्वत्यादिशब्दानां क्रमेण पाठः किमर्थः कृतोस्ति ? (उ०) पूर्वापरविद्याविज्ञापनार्थं विद्यासंग्यनुषंगिप्रति-विद्यानुषंगिबोधार्थं चेति। तद्यथा। अग्निशब्देनेश्वरभौतिकार्थयोर्ग्रहणं भवति। यथाऽनेनेश्वरस्य ज्ञानव्यापकत्वादयो गुणा विज्ञातव्या भवन्ति। यथेश्वरराचितस्य भौतिकस्याग्नेः शिल्पविद्याया मुख्यहेतुत्वात्प्रथमं गृह्यते। तथेश्वरस्य सर्वाधारकत्वानन्तबलवत्वादिगुणा वायुशब्देन प्रकाश्यन्ते। यथा शिल्पविद्यायां भौतिकाग्नेः सहायकारित्वान्मूर्त्तद्रव्याधारकत्वात्तदनु-षेङ्गित्वाच्च भौतिकस्य वायोर्ग्रहणं कृतमस्ति तथा वाय्वादीनामाधार-कत्वादीश्वरस्यापीति। यथेश्वरस्येन्द्रशब्देन परमैश्वर्य्यत्वादिगुणा विदिता भवन्ति। तथा भौतिकेन वायुनाप्युत्तमैश्वर्यप्राप्तिर्मनुष्यैः क्रियते। एतदर्थ-मिन्द्रशब्दस्य ग्रहणं कृतमस्ति। अश्विशब्देन शिल्पविद्यायां यानचलनादि—विद्याव्यवहारे जलाग्निपृथिवीप्रकाशादयो हेतवः प्रतिहेतवश्च सन्त्येनदर्थ-मग्निवायुग्रहणान्तरमश्विप्रयोगो वेदेषु कृतोस्ति। एवं च सरस्वती शब्दे-नेश्वरस्यानन्तविद्यावत्त्वशब्दार्थसम्बन्धरूपवेदोपदेष्टृत्वादि गुणा वेदेषु प्रकाशिता भवन्ति वाग्व्यवहारश्च। इत्यादिप्रयोजनायाग्निवाय्विन्द्राश्वि-सरस्वत्यादिशब्दानां ग्रहणं कृतमस्ति। एवमेव सर्वत्रैव वैदिकशब्दार्थ-व्यवहारज्ञानं सर्वैर्मनुष्यैर्बोध्यमस्तीति विज्ञाप्यते॥

भाषार्थ—(प्रश्न) वेदों में अनेक वार अग्नि, वायु, इन्द्र, (अश्वि) सरस्वती आदि शब्दों का प्रयोग किसलिये किया है ?

(उत्तर) पूर्वापर विद्याओं के जानने के लिये अर्थात् जिस जिस विद्या में जो जो मुख्य और गौण हेतु हैं उनके प्रकाश के लिये ईश्वर ने अग्नि आदि शब्दों का प्रयोग पूर्वापर सम्बन्ध से किया है। क्योंकि अग्नि शब्द से ईश्वर और भौतिक आदि कितने ही अर्थों का ग्रहण होता है, इस प्रयोजन से कि उनका अनन्त ज्ञान अर्थात् उसकी व्यापकता आदि गुणों का बोध मनुष्यों को यथावत् हो सके, फिर इसी अग्नि शब्द से पृथिव्यादिभूतों के बीच में जो प्रत्यक्ष अग्नि तत्व है वह शिल्प विद्या का मुख्य तुहे होने के कारण उसका ग्रहण प्रथम ही किया है। तथा ईश्वर के सबको धारण करने और उसके अनन्त बल आदि गुणों का प्रकाश जनाने के लिये वायु शब्द का ग्रहण किया है, तथा शिल्प विद्या में अग्नि का सहायकारी और मूर्त्तद्रव्य का धारण करने वाला मुख्य वायु ही है इसलिये प्रथम सूक्त में अग्नि का और दूसरे में वायु का ग्रहण किया है। तथा ईश्वर के अनन्त गुण विदित होने और भौतिक वायु से योगाभ्यास करके विज्ञान तथा शिल्प विद्या से उत्तम ऐश्वर्य की प्राप्ति करने के लिये इन्द्र शब्द का ग्रहण तीसरे स्थान में किया है, क्योंकि अग्नि और वायु की विद्या से मनुष्यों को अद्भुत अद्भुत कलाकौशलादि बनाने की युक्ति ठीक ठीक जान पड़ती है। तथा अश्वि शब्द का ग्रहण तीसरे सूक्त और चौथे स्थान में इसलिये किया है कि उसकी अनन्त क्रियाशक्ति विदित हो, क्योंकि शिल्प विद्या में विमान आदि यान चलाने के लिये जल, अग्नि, पृथिवी और प्रकाश आदि पदार्थ ही मुख्य होते हैं, अर्थात् जितने कलायन्त्र विमान, नौका और रथ आदि यान होते हैं वे सब

(शेष पृ० ४ पर)

(पृ० ३ का शेष)

पूर्वोक्त प्रकार से पृथिव्यादि पदार्थों ही से बनते हैं, इसलिये अश्वि शब्द का पाठ तीसरे सूक्त और चौथे स्थान में किया है। तथा सरस्वती नाम परमेश्वर की अनन्त वाणी का है कि जिससे उसकी अनन्त विद्या जानी जाती है, तथा जिस करके उसने सब मनुष्यों के हित के लिये अपनी अनन्त विद्यायुक्त वेदों का उपदेश भी किया है, इसलिये तीसरे सूक्त और पांचवें स्थान में सरस्वती शब्द का पाठ वेदों में किया है। इसी प्रकार सर्वत्र जान लेना।"

[यद्यपि ऋषि के भाषार्थ से ही प्रयोजन सिद्ध हो सकता है, परन्तु हमने ऋषि दयानन्द का संस्कृतभाष्य भी इसलिये दिया है, कि कुछ आर्य विद्वान् यह मानते हैं कि ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका का भाषार्थ ऋषि का अपना नहीं है। ऐसे सज्जनों का मुख बन्द करने के लिये संस्कृतभाष्य भी देना पड़ा है। [सम्पादक]

अब ऋषि दयानन्द द्वारा प्रदर्शित भाव को जानने के लिये ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के आरम्भ के तीन सूक्त स्वाध्यायशील वेदार्थ जानने के अभिलाषी पाठक महाशय स्वयं पढें।

(१) "अग्निमीळे पुरोहितम् ·· रत्नधातमम्"—यह प्रथम सूक्त का प्रथम मन्त्र है। इस सूक्त का देवता अग्नि है अर्थात् इस सूक्त में अग्नि प्रतिपाद्य पदार्थ है। इसके "ईश्वर और भौतिक अग्नि दोनों अर्थ होते है। अतः इस सूक्त में प्रथम अग्नि पदार्थ का वर्णन ईश्वर ने किया है।

(२) दूसरे सूक्त में "वायवा याहि दर्शतेमे सोमाः · श्रुधि हवम्" यह प्रथम मन्त्र है। इस सूक्त के देवता वायु इन्द्रवायु और मित्रावरुणौ हैं। अतः सूक्त में प्रतिपाद्य विषय वायु और इन्द्र मुख्य हैं तथा अनुषंगी मित्र वरुण हैं। अतः दूसरे सूक्त में वायु का वर्णन दूसरे क्रम पर और इन्द्र का वर्णन तीसरे स्थान पर ईश्वर ने किया है।

(३) तीसरे सूक्त का प्रथम मन्त्र ··अश्विना यज्वरीरिषः····· चनस्यतम्।" इस सूक्त में तीसरे क्रम में 'अश्वि' पदार्थ का वर्णन किया गया है और अश्वि का स्थान चौथा है। इस सूक्त के देवता अश्विनौ, विश्वेदेवाः और सरस्वती हैं अर्थात् इस सूक्त में अश्वि और सरस्वती प्रतिपाद्य विषय हैं। अतः परमेश्वर ने तीसरे सूक्त में तीसरे क्रम में और चौथे स्थान पर अश्वियों (पदार्थों) का वर्णन किया है, पुनः इसी तीसरे सूक्त में सरस्वती (वेदवाणी) पदार्थ का पांचवे स्थान पर वर्णन किया गया है। अतः ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में जो पदार्थों के क्रम और स्थान का वर्णन किया है वह ठीक ठीक रूप में ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के आरम्भ के तीनों सूक्तों में मिलता है।

निरुक्त में भी यही क्रम कहा गया है

दैवत काण्ड, अध्याय ६, द्वितीय पाद में महर्षि यास्क लिखते हैं—

'तिस्र एव देवता इति नैरुक्ताः।'

अर्थात् नैरुक्त प्रणाली में तीन देवता माने जाते हैं [देवता शब्द स्त्रीलिङ्ग है, अतः यहां "तिस्रः" पाठ है]

(क) अग्निः पृथिवीस्थानो वायुर्वेन्द्रो वान्तरिक्षस्थानः सूर्यो द्युस्थानः।

अर्थात् अग्नि पृथिवी स्थानीय, वायु वा इन्द्र अन्तरिक्ष स्थानीय तथा सूर्य द्युस्थानीय है। इसी अध्याय के चतुर्थपाद में कहा है—'अग्निः पृथिवीस्थानस्तं प्रथमं व्याख्यास्यामः।' अर्थात् अग्नि पृथिवी स्थानीय है, उसकी व्याख्या पहिले की जाती है—यहां निरुक्तकार ने ऋग्वेद १ मण्डल के प्रथम सूक्त का पहिला मन्त्र ही प्रमाण रूप में दिया है जैसा कि ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में दिया है। "अग्निमीळे"

(ख) आगे चतुर्थ अध्याय के प्रथमपाद में लिखा है—

"अथातो मध्यस्थाना देवताः। तासां वायुः प्रथमगामी भवति।" अर्थात् पृथिवी स्थान के पश्चात् आगें मध्यस्थान (अन्तरिक्ष) के देवता दिये जाते हैं। उनमें वायु सबसे प्रथम आता है। यहां भी ऋग्वेदादिभाष्य-भूमिका की भान्ति निरुक्त में भी ऋग्वेद–१ म मण्डल के दूसरे सूक्त का पहिला मन्त्र दिया है—"वायवा याहि दर्शतेमे"

(ग) छटे अध्याय के प्रथम पाद में निरुक्त में कहा है।

"अथातो द्युस्थाना देवताः। तासामश्विनौ प्रथमा गामिनौ भवतः" अर्थात् अब 'द्यु' स्थानीय देवता दिये जाते हैं इन में "अश्विनौ" सब में प्रथम आते हैं। यहां निरुक्त कार ने "प्रातर्युजा ···पीतये"। ऋ० १.२२.१ मन्त्र प्रमाण में रखा है। निरुक्त का मूल निघण्टु ग्रन्थ है ही। निघण्टु कोष के भी पंचम अध्याय के ३, ४ और ६ में "अग्नि, वायु और अश्वि" पदों को रखा गया है।

ऋषि दयानन्द ने वेदार्थ जानने में निघण्टु निरुक्त आदि आर्ष ग्रन्थों को परतः प्रमाण में स्वीकार किया है। क्यों? लीजिये—

ऋषि दयानन्द वेद में नित्य इतिहास को तो स्वीकार करते हैं परन्तु अनित्य इतिहास को नहीं, क्योंकि ईश्वरीय ज्ञान नित्य है, अतः उसमें अनित्य इतिहास हो ही नहीं सकता। यदि अनित्य इतिहास वेद में माना जावे, तो वेद नित्य ईश्वरीय ज्ञान नहीं रहा सकता। निरुक्त में मेघ और सूर्य्य की नित्य घटनाओं का इतिहास युद्ध रूप में माना है, क्योंकि यह घटना सदा होती रहती है। परन्तु किसी मानवीय अनित्य इतिहास को नहीं माना जा सकता अतः निरुक्त में "अश्विनौ" पद के द्यावा पृथिव्यौ अहोरात्रौ तथा सूर्य्याचन्द्रमसौ भिन्न भिन्न मत माने हैं। फिर यह लिखा है कि "राजानौ पुण्यव्रतावित्यैतिहासिकाः।" अर्थात् निरुक्त में यास्क मुनि ने एक पक्ष ऐतिहासिकों का भी दिया है कि पवित्रकर्मा राजाओं का इतिहास वेद में ऐतिहासिक मानते हैं। परन्तु निरुक्तकार ने यह स्पष्ट कर दिया है कि नैरुक्तों का यह मन्तव्य नहीं है। इतना होने पर भी ऋषि दयानन्द में इस ऐतिहासिक मत को नहीं माना चाहे यास्क ने ऐतिहासिक मत भी दिया हो—देखिये—

ऋग्वेद १.३.१ मन्त्र में 'अश्विना' मन्त्र पाठ पर अर्थ करते समय निरुक्त के उपर्युक्त स्थल "कौ अश्विनौ" इसको उद्धृत करते हुए ऋषि दयानन्द ने लिखा है—"काविश्वनौ द्यावापृथिव्यावित्येकेऽहोरात्रावित्येके सूर्य्यचन्द्रमसावित्येके" तक लिखकर आगे "राजानौ पुण्यकृतावित्येके" पाठको ···· करके छोड़ दिया। क्योंकि इस ऐतिहासिकों के अनित्य इति-हास पक्ष को ऋषि दयानन्द ने स्वीकार नहीं किया।

यही कारण है कि ऋषि दयानन्द केवल मूल संहिता वेदों को ही स्वतः प्रमाण मानते हैं अन्य आर्ष ग्रन्थों को परतः प्रमाण मानते हैं, क्योंकि उनमें वेद के प्रतिकूल पाठ मिल सकते हैं जैसा कि यही निरुक्त स्थल मिलता है। यही तो ऋषि दयानन्द के आर्ष दर्शन की महत्ता है। ●

—जगदेवसिंह सिद्धान्ती—देहली

सम्पादक को बधाई

मुझे प्रसन्ता है कि आप आर्य मर्यादा को आर्य मर्यादाओं के अनुरूप बनाने का सफल प्रयत्न कर रहे हैं अधिकतर आर्य समाज के नाम से निकलने वाले पत्रों में अधिकांश भाग निजी बातों से भरा होता है आर्य सिद्धान्तों की चर्चा बहुत कम होती है परस्परं प्रशंसिन्त अहो रूप महो ध्वनिः। अत ऐसे पत्रों को मैं कम पढ़ता हूं' परन्तु आपका 'आर्य मर्यादा' सारा ही पढ़ने योग्य होता है।

इसके लिये आपको धन्यवाद। और आपके पत्र की सफलता के लिये बधाई। शुभेच्छु :—पूर्णानन्द सरस्वती

गतांक से आगे—

योगी का आत्म चरित्र एक मनघडन्त कहानी

(लेखक—श्री स्वामी पूर्णानन्द जी सरस्वती-बड़ौत-जिला मेरठ)

इस सेना के आने की ही खबर सुनकर लक्ष्मीबाई ने सन् १८५८ के आरम्भ में ही यह कहा था—"The Lakshmi Bai of Jhansi declared with has sweet but firm voice No one can have my Jhansi, he who dares my try" मेरी झांसी को कोई नहीं ले सकता जिसमें साहस है वह करके देख ले।" "I shall not give! I shall not give up my Jhansi" सावरकर का इति० पृ० ३७६ से ३८५—"मैं अपनी झांसी को कदापि नहीं छोड़ूंगी।" दीनबन्धु जी ने इन ही इतिहासों की बातों को पढ़कर लक्ष्मीबाई से सन् १८५८ में कही हुई बातों को सन् १८५५ में कल्पित दयानन्द के सामने कहलवा दिया जो सरासर झूठ और धोखा है। इसमें यह सिद्ध हो गया कि लक्ष्मीबाई का सन् १८५५ में स्वामी दयानन्द से कोई सम्पर्क नहीं हुआ।

अब हम यह बतलाते हैं कि दीनबन्धु जी ने यह झूठ कहां से चुराया। दीनबन्धु जी अंग्रेजी के विद्वान् तो हैं ही उन्होंने अंग्रेजी इतिहासों को पढ़ा। दीनबन्धु जी ने पहले 'विन्सेन्टस्मिथ' के अंग्रेजी इतिहास 'The oxford history of India' को पढ़ा और उसमें उन्होंने पढ़ा :—

" t the begining of June 1857 The native Troops had mutintued at Jhansi. On the 7th of that month they committed a perfidious massacre of the Europen men, women, and children, comparable in wickedness with the slaughter at Cannpure, but on the smaller scale. Three days later "Rani Lakhmi Bai, young woman twenty yeare of age, principal widow of the Late Raja Gangadhar Rai" was prcclaimed ruler of the state which "Lord Dalhousie had annexed as" a lapse The Rani was "supported by Ganga Bai, another cansort of the deceased" prince It is uncertain whether or not Lakhmi Bai was priveay to the massacre which preceded her assumption of authority. When she had been unstalled, she certainly proved "herself to be a resduta nd bitter enemy of the British Government, earning from 'Hugh Rose the compliment" that she was the 'best and bravest' of the rabel leaders, She should courage far superior to that of Tatia Topi the Mana's general, with whom she cooper ated. She was left undisturbed untill 1858, when Sir Hugh Rose advanced to attack her". (The Oxford hirtary of India P. 720-21)

अर्थात् जून सन् १८५७ के आरम्भ में ही देशी सेना ने झांसी में विद्रोह कर दिया। उसी मास की ७ वीं तारीख को उन्होंने विश्वासघात करके योरोपीय पुरुषों, स्त्रियों और बच्चों का कतलेआम कर दिया, निर्दयता की दृष्टि से यह कतलेआम कानपुर के समान ही था, परन्तु उससे थोड़ी मात्रा में। तीन दिन के पश्चात् रानी लक्ष्मीबाई को जो २० वर्ष की एक युवती थी और स्वर्गवासी राजा गंगाधर राव की मुख्य विधवा थी, उस राज्य का शासक घोषित कर दिया जिसको लार्ड डलहोजी ने लावारिस होने के कारण अंग्रेजी राज्य में मिला लिया था। रानी गंगाबाई से जो मृत राजा की दूसरी पत्नी थी उसका (लक्ष्मीबाई का) समर्थन किया। यह बात अनिश्चित है कि लक्ष्मीबाई उस कतलेआम के सलाह मशवरे में सम्मिलित थी या नहीं जो उसके अधिकार की घोषणा से पूर्व हो चुका था? जब वह सिंहासन पर बैठ गई उसने अवश्य अपने आप को अंग्रेजी राज्य का दृढ़ और कट्टर शत्रु सिद्ध किया। ह्यू रोज से उसने यह प्रशंसा प्राप्त की कि वह क्रान्तिकारी नेताओं में सबसे श्रेष्ठ और सबसे अधिक बहादुर थी। उसने नाना साहब के जनरल तात्या टोपे से भी बहुत बढ़कर साहस और वीरता दिखाई जिसको उसने सहयोग दिया था। उसको सन् १८५८ तक स्वतन्त्र छोड़ दिया गया था। फिर सर ह्यू रोज ने उस पर आक्रमण किया।"

मैंने विन्सेन्ट लिखित अंग्रेजी इतिहास के इस संदर्भ को इसलिये उद्धृत किया है कि योगी जी ने अपने 'अनुसन्धान' के पृष्ठ १२२ पर इस ही लेख का एक अंश उद्धृत किया है। अतः पाठकों को दोनों लेखों को मिलाकर देखने से यह अच्छी तरह पता चल जायेगा कि दीनबन्धु जी ने रानी गंगाबाई को रानी लक्ष्मीबाई की सपत्नी होने का विचार कहां से चुराया और सच्चिदानन्द जी ने इस चोरी को छुपाने का किस प्रकार से असफल प्रयत्न किया। साथ ही योगी जी की अंग्रेजीदानी का पता भी लग जायेगा। विन्सेन्ट के उपर्युक्त लेख में केवल एक बात ही ऐसी है जिसकी सम्पुष्टि और कोई इतिहास नहीं करता, और वह यह है कि "राजा गंगाधर राव के मरने के पश्चात् उसकी विधवा पत्नी रानी लक्ष्मीबाई के अतिरिक्त दूसरी विधवा पत्नी रानी गंगाबाई भी थी।" दूसरा कोई प्रमाण न मिलने के कारण विन्सेन्ट का उपर्युक्त लेख गलत है। परन्तु उसका शेष भाग सभी इतिहासकारों द्वारा समर्थित होने से सर्वथा सत्य है। परन्तु दीनबन्धु जी की मनोवृत्ति को देखिये! कि उनको विन्सेन्ट का यह झूठा लेख ही पसन्द आया और इसीलिये उसको अपनी पुस्तक में लिख दिया कि 'रानी लक्ष्मीबाई की सहचरी (सपत्नी) रानी गंगाबाई भी हरद्वार में गई थी।'

विन्सेन्ट ने यदि एक झूठ लिखा था तो दीनबन्धु जी ने उसमें दो गुणा लिख मारा। यानी रानी गंगाबाई का झांसी में लक्ष्मी के साथ होना, तथा 'रानी लक्ष्मीबाई के साथ हरद्वार में जाना' जिसका समर्थन कोई भी इतिहासकार नहीं करता। पहले पहल जब यह लेख 'सार्वदेशिक' पत्र में छपा तो पं० भवानीलाल भारतीय ने इस लेख की आलोचना की और कहा कि 'राजा गंगाधर राव की मृत्यु के पश्चात् उसकी केवल एक विधवा पत्नी लक्ष्मीबाई ही थी। दूसरी कोई नहीं और कि गंगाबाई तो नाना साहब की माता थी, तो वड़े गुरु जी तथाकथित महामहिम योगी जी आगे आये और इस झूठ को दस गुणा बनाने के लिये लिखमारा :—

"नाना साहब जैसे भारत सपूत को जन्म देने का पुण्य एवं श्रेय गंगाबाई देवी को है। गंगाबाई सुशीला एवं नितान्त सादगी पूर्ण जीवन बिताने वाली महिला थी। नाना साहब को माधवराव ने गोद ले लिया। पीछे नाना साहब का महल भारत की समर भूमि ही बन गया था। गंगाबाई भी रणबांकुरी नाना की हठीली भगिनी लक्ष्मीबाई के साथ ही रहती थी। जब रानी लक्ष्मीबाई ने २०० वीरांगनाओं की वीर वाहिनी संजोई तो गंगाबाई उसमें भी महारानी के साथ कन्धे से कन्धा मिलाये रण में जूझ रही थी।

रानी लक्ष्मीबाई के साथ इनके स्नेह सम्बन्ध को समझने में इतिहासकार धोखा खाते रहे। वास्तविकता का प्रकाश तो बारबार सावरकर ने ५७ का स्वातन्त्र्य समर में किया है। ऋषि ने स्वकथित अज्ञात जीवनी में इन्हें 'सहचरी' नाम से उल्लिखित कराया। सहचरी, माता, भगिनी, दासी, संरक्षिका सभी हो सकती हैं। कोष को देखकर बंगाली में सहचरी का अनुवाद निहायत भद्दा सपत्नी कर दिया। धोखा इसलिये भी हुआ कि इतिहासकारों ने भी बिना खोज किये लिख मारा—

The Rani was supported by Ganga Bai another Coosort of the deceased prince. She should Curage for superior to that of Tatia-Tope the Nana's genaral with him she Conperated.—Oxford histary of India By Vincent Smith.

विन्सेन्ट ने लिख मारा Consart अर्थात् सम्बन्धित। अस्पष्ट। इसे यह भी नहीं पता कि नाना के जनरल तात्या को सहयोग देने वाली नाना की माता ही थी। क्या इन इतिहासों के आधार पर अज्ञात जीवनी के तथा परखे जा सकते हैं?"

(योगी का आत्मचरित्र—अनुसन्धान पृ० १२२)

तथाकथित योगी जी के अनुसन्धान में इतना लम्बा सदर्भ देने का अभिप्राय यह है कि उसके झूठों का पुलन्दा एक साथ ही पाठकों के सामने आ जावे और विन्सेन्ट के उपलिखित अंग्रेजी लेख के प्रकाश में उसकी धोखा धड़ी का पता चल जावे तथा उनकी अंग्रेजी दानी का पोल भी खुल जावे। पहला झूठ तो सच्चिदानन्द ने यह लिखा कि "नाना साहब को माधवराव ने गोद लिया था।" ● (क्रमशः)

गतांक से आगे—

कामधेनु को छाडि आर्य, छाया छेरी चले दुहावन (३)

(लेखक—श्री खेमचन्द यादव, डब्ल्यू १८ ग्रीन पार्क, नई दिल्ली)

इस समय भी आर्यजगत् में पूज्य उच्चकोटि के विद्वान् मौजूद हैं जिनकी विद्वत्ता का लोहा विपक्षी भी मानते हैं। परन्तु उनका आर्य समाजों से घनिष्ठ सम्बन्ध नही है। वे विद्वान् अपनी अपनी पहुंच के अनुसार अपने अपने ढग पर बिलकुल अलग अलग एक दूसरे से कोई विशेष सम्पर्क न रखते हुये बहुधा आर्य साहित्य सृजन में रत हैं। वे सब आर्यजगत् के गौरव हैं। इतना होते हुये भी वे न तो पूर्ण योगी हैं न ऋषि। उनसे मानव के नाते कोई न कोई त्रुटि कहीं न कहीं प्रायः हो ही जाती है और हो भी रही है। इसका पता जब चलता है जब उनके वे विचार पुस्तक रूप में पाठकों के हाथ में पहुंच जाते हैं। इस अवसर पर दूसरे विद्वान् उन की त्रुटि को समाचार पत्रों द्वारा प्रकट करते हैं। और फिर वादविवाद सा छिड़ जाता है। साधारण आर्य इससे बड़े परेशान हो जाते है और सही निर्णय ले सकने में वे अपने को असमर्थ पाते है। इस प्रकार आर्यजगत् में ही अपने विद्वानों के प्रति अश्रद्धा उत्पन्न होती जाती है। इस स्थिति से बचने के लिये मेरा उन पूज्य विद्वानो की सेवा में नम्र निवेदन है कि जब कोई ऐसा प्रसङ्ग उनके सम्मुख आवे जिमे वे यह समझे कि इस पर आक्षेप होगा तो वे अपने स्पप्ट विचार किसी आर्यजगत् के पत्र में प्रकाशित कर यह निवेदन कर दें कि जिन महानुभावों को इन विचारो से असहमति हो वे अपने विचार सीधे उन्हें या समाचार पत्र द्वारा सप्रमाण प्रकाशित कर दें। ऋषि दयानन्द सरस्वती महाराज ने भी जब वेद भाष्य प्रारम्भ किया था तो उसका नमूना विद्वानों के समक्ष रख उनके विचारों का आवाहन किया था। निश्चय ही इससे बड़ा लाभ होगा। या तो उन पूज्य विद्वान् को अपनी त्रुटि समझ में आ जावेगी और उसे वह फिर अपनी पुस्तक में स्थान न देकर वाद को व्यर्थ के वादविवाद से बच जायेंगे। पर उन्हें इस पर भी यदि अपना विचार ही सत्य प्रतीत हो तो अवश्य ही उसे पुस्तक में स्थान दें, परन्तु नीचे टिप्पणी में दूसरे विद्वानो का विचार भी पूर्ण रूपेण दे दें। इससे भी वाद विवाद से बचत होगी और पाठक दोनों विचारो को पढ़कर समझ कर किसी निर्णय पर पहुच सकने में समर्थ होंगे। मै इस विषय पर और कुछ अधिक न लिखकर उन सभी पूज्य आर्यजगत् के विद्वानों से नम्र निवेदन करूंगा कि इस प्रकार के आये दिन के वाद विवादों से बचने का वे कोई न कोई उपाय अवश्य ही निकालें वरना इससे बड़ी छीछालेदर हो रही है। आर्यजगत् के समाचार पत्र ही आर्य विद्वानों की कटु अलोचना करे यह शोभनीय नहीं हैं।

आर्यजगत् में एक बहुत बड़ा समूह उन आर्यो का है जो किसी कारण न तो पदाधिकारी है और न बहुत बड़े विद्वान्। परन्तु उन्हें आर्य सिद्धान्तों से सच्चा प्रेम है। वे तन मन धन से आर्य सिद्धान्तों की विजय चाहते है। आर्य सिद्धान्तों का प्रचार उसी रूप में देखने को उनकी आंखे तरसती रहती हैं जिस प्रचार की लहर का विवरण इस लेख माला में दिया जा चुका है। परन्तु ऊपर की खेंचातानी, मुकदमेबाजी बड़े बड़ों का आपसी मनमुटाव, ऊपर वालों की कथनी करनी में आकाश पाताल का अन्तर आदि आदि बातों से उनमें निराशा सी फैल रही है। बहुधा यह भी सुनने को मिलता है कि आर्यसमाज के अब दिन गये। नवयुवक उच्च शिक्षित वर्ग धनी वर्ग प्रायः आर्यसमाज से दूर अति दूर हटता दिखाई दे रहा है। इस गलाघोंट वातावरण को छिन्न भिन्न करने की शक्ति इसी वर्ग में है जो सोई पड़ी है। विचारिये और गहराई से सोचिये इसी वर्ग ने आर्यसमाज को वह रत्न दिये है जिन पर आज आर्य समाज को अनोखा गर्व है। उन्हीं के त्याग, निष्ठा और तप से इतना सब कुछ हो जाने पर भी अधिकांश आर्यजनों में वैदिक सिद्धान्तों पर अटूट विश्वास है श्रद्धा है। अमर शहीद पं० लेखराम जी क्या इसी वर्ग के देन न थे? उनका नाम सामने आते ही श्रद्धा प्रेम और उत्साह से रोमरोम पुलकित हो उठता है। स्वर्गीय निडरता की साक्षात् मूर्ति पं० मुरारीलाल जी शर्मा भी तो इस वर्ग की देन थे। कितने बड़े बड़े शास्त्रार्थ उपदेश और बड़े बड़े कार्य किये उन्होंने। अभी कल की ही तो बात है—शास्त्रार्थ महारथी अनुपम तार्कि स्वनाम धन्य पं० रामचन्द्र देहलवी कहाँ के आचार्य या शास्त्री थे। नहीं वह भी इसी वर्ग के एक अनमोल अनोखे रत्न थे। जो पचास वर्ष से ऊपर तक पूरे भारत के धार्मिक जगत् पर छाये रहे। वैदिक धर्म के सभी विरोधियों के दांत खट्टे किये, मगर इतने पर भी अपनी शालीनता और सोम स्वभाव से उनके श्रद्धा और प्रेम के पात्र भी बने रहे। कैसे यह महापुरुष इतने ऊँचे उठे। केवल अपनी अपूर्व निष्ठा लग्न और श्रद्धा वैदिक सिद्धान्तों पर हो जाने पर अपने स्वाध्याय के बल पर। वैदिक सिद्धान्तों की सत्यता पर अटल विश्वास और ऋषि ऋण उतारने की धुन जहाँ तक स्वभाव हो सका जीवन भर प्रचार व शास्त्रार्थ करते रहे। वैदिक नाद चारों और बजाते रहे। माना उनके पूर्व जन्म की कमाई उनकी पुश्त पर थी, वरना इतना ऊँचा उठ जाना यदि असम्भव नहीं तो महा कठिन तो अवश्य ही है। इतने न सही तो क्या।हम सच्ची लग्न से जुटें तो क्या हम तिहाई चौथाई किसी सीमा तक तो अवश्य ही अपने ज्ञान की वृद्धि कर ही सकते हैं। अतएव मैं इस वर्ग के उन महानुभावों से निवेदन करूँगा कि आप प्रभु कृपा से जितनी शिक्षा पा सके उसे प्रभु प्रसाद समझकर उसी को आगे अपने स्वाध्याय के बल पर बढ़ाइये। नित्य प्रति यदि एक घण्टा इस पवित्र कार्य को न दे सकें तो आध घण्टा तो अवश्य ही दीजिये। हमारे सौभाग्य से महर्षि ने सत्यार्थप्रकाश में वह गागर में सागर भर दिया है कि यदि उस अमर ग्रन्थ में आप पूरी श्रद्धा, प्रेम और लग्न से गोता लगाते ही रहेगे तो आपको अनमोल रत्न लगातार मिलते ही रहेंगे। सभी वैदिक सिद्धान्तों का उसमें समावेश है। एक दो दस बीस बार ही नही। बस जीवन भर इसे टटोलते ही रहिये, पढ़ते ही रहिये और अपना कोष अनमोल ज्ञान रत्नों से भरते रहिये। भोजन के साथ यदि चोखा चटनी आदि खट्टी मीठी चीजें और भी होती हैं तो भोजन बहुत रुचिकर हो जाता है। अतएव आप अवश्य ही वैदिक सिद्धान्तो को और रोचक तरीके से समझने के लिये दर्शनानन्द ग्रन्थ संग्रह दोनों भाग, स्वर्गीय पं० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय लिखित वैदिक साहित्य, कुलियात आर्य मुसाफिर दोनों भाग, वैदिक गीता स्वामी आत्मानन्द जी लिखित, पं० रामचन्द्र देहलवी लेखावलो, श्री नारायण स्वामी लिखित वैदिक साहित्य, ऋषि कृत दूसरे सब ग्रन्थ विशेषतया ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, संस्कारविधि, व्यवहारभानु, आर्यउद्देश्य रत्नमाला आदि आदि ग्रन्थों का स्वाध्याय नित्यप्रति ध्यान से कीजिये। आपके ज्ञान में आश्चर्यजनक वृद्धि होगी। आर्यसमाज के सत्सगों में शका समाधान द्वारा और आगे बढ़िये। अब इस प्रकार प्रभु कृपा से जो प्रसाद आपको प्राप्त हो जावे तो उसे अपनी शक्ति व पहुंच अनुसार बांटना प्रारम्भ कीजिये। मगर ऐसा करने से पहले थोड़ा अपने को शान्त चित्त हो टटोल अवश्य लीजिये ताकि आपके कहने का प्रभाव दूसरों पर पड़ सके। जो घर में परिवार में कमाई आ रही है सब ईमान की सात्विक ही है। यदि इसमें थोड़ा भी गोल माल हुआ तो सब किया कराया व्यर्थ हो रहेगा। जहां तक सम्भव हो आपको अपना चरित्र पवित्र रखना ही न होगा बल्कि इस प्रकार का हो कि दूसरे भी आपको नेक व चरित्रवान् ईमानदार और न्यायी सत्यवादी ही समझें।

प्रत्येक सच्चा आर्य यह तो स्वीकार करेगा ही उसके सिर पर ऋषि ऋण है और उसे अपने जीवन में अपनी शक्ति, और पहुंच के अनुसार उतारने में कोई कसर नहीं रखनी है। ऋषि का जीवन भर का प्रयास अज्ञान अविद्या में फंसी मानवता को उस गहरे नरक से निकाल कर ज्ञान के प्रकाश में लाना ही तो था। बस आपको भी अब यह अपने जीवन का अटूट अंग बनाना है कि आप जितना भी कर सकें अपने परिवार में मोहल्ले ग्राम में मित्रों और रिश्तेदारों आदि में जनता में फैले अज्ञान अन्धविश्वास को अपनी लग्न से प्रेमपूर्वक दूर करने का प्रयत्न कीजिये। ग्राम ग्राम नगर नगर मोहल्ले मोहल्ले में गुरु, अवतार, ब्रह्मनिष्ठ, योगी बने घूम रहे हैं और जनता की गाढी कमाई को अपने छल फरेब से हड़प रहे हैं।●

(शेष (३) का अगले अंक में)

क्रमागत—

माण्डूक्य पर आचार्य गौडपाद कारिकाओं की समीक्षा (७)

(ले० श्री स्वामी ब्रह्मानन्द जी आर्य त्रैतवेदान्ताचार्य, मु० ओंकार आश्रम, चान्दोद, बड़ौदा)

नही तो हम उनसे पूछते हैं कि जीव को सुषुप्ति समाधि मोक्षावस्था प्राप्त नही हुई थी—उससे पहिले इस जीव का साक्षी या सर्वदृक् प्रथम से था या नही ? और यदि कहो था तो सिद्ध हुआ कि प्रथम से ही जीव और उसका साक्षी शिव था। तब तो (अभेदचिन्तन ज्ञानम्) ही निरर्थक हो गया, हा नैमित्ति एव औपचारिक रूप से अवस्था और परिस्थिति के कारण माना जाय तो कुछ ठीक है, यदि स्वभाव से ही मानते हो तो युक्ति एव श्रुति के विरुद्ध है। इसलिये स्वय यह पूर्व से जीव ज्ञाता तत्त्व होने के कारण कभी अभेद का तो कभी भेद का ज्ञान ध्यान एव उपलब्धि तथा भोग हमेशा से करता चला आता है। और जब यह जीव अपने से बाहर की ओर चिन्तन स्मरण करता है तो इन्द्रियो के द्वारा प्राकृतिक भोग जागृत् स्वप्न मे तथा जब अपने अन्दर ध्यानस्थ आत्मस्थ होता है तब ये सुषुप्ति समाधि मोक्ष मे अपने साक्षी परमात्मा के स्वकीय परमानन्द मे निमग्न होता या भोक्ता बनता है। तो जो वह सुषुप्ति अवस्था प्राप्त प्राज्ञ जीव को आपने कहा कि वह न अपने को जानता है तो यह कथन गौडपाद जी का श्रुति सिद्धान्त विरुद्ध तो है ही कि जिसे हमने श्रुतियो से ही सिद्ध इस ऊपर के लेख से कर दिया है किन्तु इतना ही नही इनके प्रशिष्य आ० शकर जी भी इम विषय मे गुरु गौड जी के विरुद्ध मे बोल रहे हैं देखो वे अपने भाष्य मे प्राज्ञ के विषय मे कहते है कि (भूतभविष्यत्ज्ञातृतत्त्व सर्वविषयज्ञातृत्वमस्यै वेतिप्राज्ञ अथवा प्रज्ञप्तिमात्रमस्यै वा साधारणरूपमितिप्राज्ञ) भूतभविष्यत् का ज्ञाता तथा सम्पूर्ण विषयो का ज्ञाता यही (जीव) है इसलिये यह प्राज्ञ है। अथवा केवल प्रज्ञप्ति (ज्ञान मात्र) इसका आसाधारण रूप है इसलिये भी यह प्राज्ञ है। तो लीजिये अब तो यहा तुम्हारे वकील शकर जी भी तुम्हारे मन्तव्य के विरुद्ध ही वक्तव्य दे रहे हैं। किन्तु किया ही क्या जाय, जब तुम्हारी बुढौती मे विद्या बुद्धि ही स्थिल हो गई तो कौन तुम्हे ऐसी बुद्धि विरुद्ध बात मे साथ देगा ? जो प्राज्ञ नामक जीव को ही ज्ञान शून्य सर्वथा जड माने। और यदि आप (प्राज्ञ शब्द को (प्र-अज्ञ) ऐसा अर्थ लेकर इस अपने अर्थ की पुष्टि मे उसे श्वेताश्वतर वाली (ज्ञाज्ञौ०) वाली श्रुति का प्रमाण पेश करे तो भी उचित नही क्योकि वहा सर्वज्ञ की अपेक्षा से अज्ञ याने अल्पज्ञ जीव को कहा है, यदि कहो कि इसमे क्या प्रमाण ? तो वही श्रुति मे (भुक्तभोगा) पद पडा है जो जीव को भोक्ता बता रहा है और भोक्ता गुण जीव का चेतन होने का निजी गुण है जड मे तो भोक्ता होने का गुण ही नही किन्तु चेतन तो परमात्मा भी है तो वही क्यो नही भोक्ता माना जाय ? जो ऐसा भी कहे तो इस बात का खुलासा हम पहले ही कर आये है कि पूज्य प्रभु चेतन होते हुये भी भोक्ता इसीलिये नही कि वह सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् होने से उसमे किसी प्रकार की न्यूनता या उसे कुछ कमी या अप्राप्त न होने से वह आप्त काम पूर्ण काम है, इसीलिये वह भोक्ता नही किन्तु जीव को इस बात की कमी होने से यह उसके सम्पूर्ण ऐश्वर्यमय आनन्द का यह भोक्ता है और वह भोक्ता नही है पर भुगताने वाला है, ऋग्वेद के उक्त (द्वासुपर्णा) वाले मन्त्र मे प्रसिद्ध है।

द्वैतस्याग्रहण तुल्यमुभयोः प्राज्ञतुर्ययो ।
बीजनिद्रायुतः प्राज्ञ सा चतुर्ये न विद्यते ॥१३॥

आगम प्रकरण की १३ वी का०

अर्थ—द्वैत का अग्रहण तो प्राज्ञ और तुरीय दोनो मे ही समान है, किन्तु प्राज्ञ बीज स्वरूप निद्रा से युक्त है और तुरीय मे वह निद्रा नही है ॥१३॥

समीक्षा—यदि तुम्हारे मत मे प्राज्ञ नामक जीव मे बीज रूप से भी अज्ञान निद्रा जो रही है तो द्वैत का सर्वथा बीज गया ही नही, तो दोनो मे से एक जीव को द्वैत की सभावना बनी ही रही, मिटी ही कहा जैसे सोते मे कोई अपने दुश्मन को आया हुआ भले न देखे किन्तु दुश्मन तो अपने विरोधी को देख ही रहा है तो वह कहा उसे छोड देगा ? इस प्रकार वह प्राज्ञ भले न जाने न माने, बीज रूप अविद्या निद्रा को किन्तु वह तो उसे जन्मान्तर के कर्म योग से उस जीव को पुन द्वैत का मान कराती ही रहेगी। क्योकि बीज तो पुन पुन समय पाकर अकुरित होता ही रहेगा, यदि यह अज्ञान बीज जीव को स्वाभाविक ही है और यदि नैमित्तिक मानते हो तो फिर वह अज्ञान बीज कहा से आया और जीवात्मा को कहा से लगा इसका हेतु तुम्हे बतलाना पडेगा। और अज्ञान रूप बीज का भी हेतु मानोगे तो फिर बीज भी बीज न कहा जायेगा, न रह जायेगा। तो यह बात कुछ हम अपनी ओर से नही कह रहे, किन्तु हम तो तुम्हारा ही मत तुम्हारे सामने रख रहे है, देखो। अ० शा० प्र० की १० वी तुम्हारी कारिका को वहा तुम पूर्वपक्षी को कहते हो कि (तुम्हारे मत मे यदि हेतु फल से जो उत्पन्न होता है तो वह (हेतु रूप से) सिद्ध ही नही हो सकता, और असिद्ध हेतु फल को भी उत्पन्न फिर कैसे कर सकता है ?) तो इसी प्रकार तुमने अपनी इक्कीसवी कारिका तक मे ऐसी ही सब दलीले करी है तो अब तुम्हे भी बीजाकुर वा हेतु और कार्य कारण का आग्रह यहा न रखना चाहिये नही तो तुम्हे भी इसमे निरुत्तर ही रहना पडेगा। और जीव मे अविद्या बीज का तथा ब्रह्म मे माया बीज का होना रहना मानकर तुम अद्वैतवादी लोग बडे ही भारी भूल भुलैया के चक्कर मे जा पडे हो। तो हमारी तो तुम्हे यही सलाह है कि तुम अद्वैतवादी लोग जीव को अविद्या बीज से और ईश्वर का माया बीज से आबद्ध मत मानो इसी मे सार है। क्योकि (न स्वभावतो बद्धस्य ॥ सा० द०) भगवान् कपिल महामुनि जी तो पुरुष आत्मा परमात्मा को माया अविद्या बीज से स्वभावत बँधा इसीलिये नही मानते और तुम लोग मानते हो तो इस बात का तुम्हारे पास जवाब ही नही कि (प्रपचापशमशान्तशिव अद्वैतम्) को फिर माया अविद्या क्यो कब और किस हेतु वा कारण से लगी ? हमारी इस बात का तुम्हारे पास कोई जवाब ही नही। इसलिये तुम से ये जवाब जब तक हमे न मिल जायगा। तब तक जीवात्मा का भेद ब्रह्म मे स्वयमेव बना ही रहेगा यह निश्चित है।

स्वप्न निद्रायुतावाद्यौ प्राज्ञस्त्वस्वप्ननिद्रया ।
न निद्रां नैव च स्वप्नं तुर्ये पश्यन्ति निश्चिता ॥१४॥

आगम प्रकरण की १४ वी का०

अर्थ—विश्वा और तैजस—ये स्वप्न और निद्रा मे युक्त है तथा प्राज्ञ स्वप्न रहित निद्रा से युक्त है किन्तु निश्चित पुरुष तुरीय मे न निद्रा ही देखते है और न स्वप्न ही ॥१४॥

समीक्षा—वाह गुरु जी ? कल्पना तो आप की विलक्षण है, किन्तु यह श्रुति ही तुम्हारे आडे आती है, क्योकि वही श्रुति विराट् एव विश्व को समष्टि व्यष्टि रूप से जाग्रत् का अभिमानी बताती है। तो तुम्हे चाहिये कि यह तुम्हारी चौदहवा कारिका को मशी स्याही ले उक्त श्रुति के मुह पर पोत देनी चाहिये समझे ? और यदि नही तो फिर तुम्हारी इस कारिका एव इसके माने हुये सिद्धान्त को ही गटर मे डुबो देना चाहिये। अरे जब श्रुति विश्व एव विराट् को समष्टि व्यष्टि रूप से जाग्रत् अवस्था का अभिमानी बतला रही है तब इसके विरुद्ध तुम अपनी इस उक्त कारिका मे विश्वात्मा का (स्वप्ननिद्रायुतावाद्यौ) की मनमानी कल्पना कर मारो, ये कितना अज्ञान वा अन्धेर है ? यदि विश्वात्मा भी स्वप्न निद्राग्रस्थ माना जायेगा तो फिर जाग्रत का अभिमानी माना ही किसे जायेगा, यह तो कहो ?

किन्तु आप हमारी इस बात का जवाब यदि इस प्रकार से देव कि हम तो अविद्या रूप निद्रा मे सोया हुआ ऐसा अर्थ लेते है, याने हमारा तो अविद्या मे तात्पर्य है तो भी तुम्हारा उक्त कथन युक्ति युक्त नही। क्योकि आप स्वय प्रथम जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति के भेद को श्रुति सम्मत स्वीकार आये है दोनो ही बडे छोटे गुरु। नो प्रथम तो वह भेद ही मिट जायेगा, याने सभी विश्व तैजस प्राज्ञ व्यष्टि रूप से और विराट् हिरण्यगर्भ एव ईश्वर समष्टि रूप से अविद्या वा अज्ञान निद्राग्रस्त एक ही समान मानने पडगे। तो ईश्वर भी अविद्याग्रस्थ एव प्राज्ञ भी अविद्या बीज से ग्रस्त तुम्हारे मत से माना जायेगा किन्तु वे निश्चित पुरुष (ब्रह्मवेत्ता) ही कैसे जो विश्व विराट् प्राज्ञ ही नही किन्तु ईश्वर तक को अविद्या बीज से पूरा ढका माने। ● (क्रमश)

पिछले अंक का शेष –

योगी का आत्मचरित्र

सब ही आत्मचरित्रों की एक वाक्यता (२३)

(ले०– स्वामी सच्चिदानन्द योगी, अध्यक्ष श्री नारायण स्वामी आश्रम महामहिम पातञ्जल योग साधना संघ आ० बा० आ० ज्वालापुर, सहारनपुर)

सं० १९१ वैशाख, (सन् १८५५ मई)= after passing a certain line in solitude, with Rishi Kesh a Brahmchari and two mountain as calics joing one. ऋषिकेश में एकान्त में "कुछ समय" बिताकर टिहरी पहुंचे। दो पहाड़ी सन्तों और और ब्रह्मचारी के साथ।

जून=Staying of Tehri for "sometime" टिहरी में कुछ काल ठहरे। went to Shree nagar श्रीनगर गया केदार घाट पर मन्दिर में ठहरा। so attractive was his society for me that. जून, जुलाई, अगस्त I stayed over two months with him (Gangagiri)।

अगस्त मध्य-सितम्बर-अक्टूबर When autumn was setting in, that I with my companions, the Brahmchari and the two as celics left Kedarghat for other places. जब शरद् ऋतु आने वाली आ रही थी मैंने अपने साथियों-ब्रह्मचारी और दो योगियों के साथ केदार घाट छोड़ दिया।

यही अगस्त मास है जिसमें श्रावणी पर अमरनाथ की यात्रा खुलती है। इसी काल में श्रीनगर काशमीर की यात्रा को। योगी के आत्म चरित्र में भी ऐसा ही लिखा है :—टिहरी से आकर श्रीनगर तक पहुंच गया था। केदार घाट के योगी साधुओं के साथ सम्मिलित होके "तीन सप्ताह" का समय श्रीनगर (काशमीर वाले तक) पहुंचने में व्यतीत किया।"पृ०२१ फिर २२१ पृष्ठ पर श्रीनगर से वापसी पर लिखा है :—श्रीमत् स्वामी गंगा गिरी से मेरी घनिष्ट मित्रता हो गई थी। हम दोनों ने एक साथ लगभग दो महीने भिन्न-भिन्न तीर्थों में भ्रमण किया था।" यह यात्रा काशमीर की है जो आत्म चरित्र २१० से २२१ तक दी गयी है। थियासोफिस्ट में इसका संकेत है। यात्रा वर्णन नहीं। इससे कोई विरोध नहीं आता। जाने में तीन सप्ताह आने में तीन सप्ताह+दो तीन सप्ताह का भ्रमण दो मास।

इसके उपरान्त काशमीर से लौटने पर उन्हीं स्थानों का वर्णन है जो थियासोफिस्ट में दिये है :—धनुष तीर्थ होके हम दोनों आधा योजन दूरी पर अगस्त्य आश्रम गये थे इससे पहले रुद्र प्रयाग भी होके आये थे।" पृ० २२१

"We visited Rudra Prayag and other cities, until we reached the shrine of Agasta Munee." पृ० ३२३ थियोसोफिस्ट जीवनी—

नवम्बर, दिसम्बर, जनवरी, फरवरी सं० १९१२ का अवसान Tusthes to the North, there is a mountain peak known as the Shivpuri, where I spent the four months of the col d season, when finally parting from the Brahmchari and the two ascelies, आगे उत्तर की ओर शिवपुरी नामक एक पहाड़ है। शीतकाल के चार मास मैंने वहां व्यतीत किया। ब्रह्मचारी और दो योगियों से अलग हो मैं केदार को लौटा।

वहां से आगे अगले शीत के चार मास नवम्बर, दिसम्बर, जनवरी, फरवरी द्रोण सागर पर बिताये। मार्च से अक्टूबर तक आठ मास कहां रहे ? यह प्रश्न है। थियोसोफिस्ट में केवल कुछ दिन+कुछ दिन+बीस दिन+कुछ दिन+केवल एक दिन अलकनन्दा स्रोत तक जाने में लगाये। यह कुल अधिक से अधिक मास डेढ मास होता है। शेष समय कहां बिताया। कहीं ठहरने का प्रसंग ही नहीं। ठहरना होता तो शिवपुरी में ठहरे ही थे। इस काल का पूरा विवरण थियासोफिस्ट में ऋषि ने नहीं दिया। पं० भगवद्दत्त जी सम्पादित पत्र विज्ञापनों में पत्र सं० १८३, २७ अगस्त १८७२ को लिखा है ऋषि ने—'कुछ थोड़ा सा जन्म चरित्र लिख कर भेजते हैं।"

१७८ सं० के पत्र में लिखा है—"The question with regard to my life, I should say that at present, I am not quite prepared to undertake so long a business. I shall give a brief account of me after sometime" १३ जुलाई १८७८ मुरादाबाद —अपनी जीवनी के बारे में मैं यही कहूंगा कि मैं इस समय बिल्कुल इस बात के लिये तैयार नहीं हूं। कि इतना लम्बी जीवनी लिख भेजने का काम हाथ में लू। कुछ काल पीछे मैं बहुत संक्षिप्त विवरण दूंगा।

अप्रैल १२८० को फिर पत्र में लिखा है —I have not been able to give the necessary time to it But as soon as possible I will send the narrative to you" मैं इसके लिये पर्याप्त समय नहीं दे सका। पर शीघ्र ही जब भी सम्भव होगा मैं अपनी कथा भेजूंगा।

स्पष्ट है ऋषि जीवनी भेजने में विलम्ब कर रहे थे। आग्रह पर विवश हो अत्यन्त संक्षिप्त जीवनी भेजी। ऋषि थयासोफिस्टों की विपरीत गति को भाप रहे थे। मार्च ८२ में ही थियासोफिस्ट में जीवनी छपने के १५ मास पीछे ही विज्ञापन छाप कर थियासोफिस्टों के अयुक्त व्यवहार के ९ कारण जनता के सामने रखने पड़े। देखो—

योगी का आत्मचरित्र पृष्ठ २९-३०-३१

अतः स्पष्ट है ८ मास में से केवल एक मास के लगभग का ही संक्षिप्त सा ब्योरा दिया। वह भी महत्वपूर्ण अलकनन्दा स्रोत की एक दिन की यात्रा का विचारणीय स्थल है "हरद्वार से केवल १५ मील, वहां से टिहरी ४१ मी० वहां से श्री नगर केवल ६६ मील—यो. आ. २७२ पृष्ठ। कुल मील हुए १२२ मील ऋषि कम से कम ४०-४५ मील चलते थे। आजकल के वैरागी साधु भी ऐसा ही चलते हैं। तो क्या केवल तीन दिन की यात्रा, एक दिन की अलकनन्दा और एक मास की आस पास की यात्रा तो। तो केवल ४-५ सप्ताह की यात्रा में ही दो वर्ष लग गये। ४० और ७० मील चलने वाला कभी पंगु बन कर नहीं बैठ सकता।

यात्रा योगी के आत्मचरित्र में ही है। इस यात्रा की खोज भी नहीं की जा सकती थी। क्योंकि वह अकेले की जिज्ञासामयी खोज यात्रा थी। थियासोफिस्ट की जीवनी जो छप भी गई थी। उस में कोई एक पंक्ति भी खोज कर न बढ़ा सका न घटा सका। उन्हीं पंक्तियों को अपनी भाषा में ही सब ने साहित्यकता देने का प्रयत्न किया है। उसकी प्रमाणिकता इसीलिये है कि ऋषि ने स्वयं बताई थी। योगी का आत्मचरित्र की प्रामाणिकता में भी यही हेतु है कि उसे उन्होंने स्वयं बताया था केवल न मानने से कोई बात खण्डित नहीं हो जाती। शङ्काओं से तो जीवन भी नहीं चल सकता। ऋषि सिद्धान्तों इतिहास की साक्षी से इसका कोई आज तक अपलापन नहीं कर सका है। न मानना कोई खण्डन नहीं है। ऋषि के सिद्धान्तों और मान्यताओं को आर्य समाजेतर पौराणिक, को जैनी, मुसलमान, ईसाई आदि कोई भी नहीं मानते, क्या इतने से ऋषि के सिद्धान्त खण्डित हो गये। वे अकाट्य है। इसी प्रकार योगी का आत्मचरित्र भी अकाट्य है। दयानन्द और दयानन्द की प्रेत आत्मा एक ही काल में दोनों की तुक कही भी नहीं है। निर्माणचित्तानि अस्मितामात्रात् यो. ४-४ बहुन् कायान्-बहुत से शरीर और उनके निर्माण कृत्रिम चित्तों के स्वीकार करने की बात नहीं है। ऋषि दयानन्द में यह योग सिद्धि नहीं थी। कहीं लेख मिल जाये कि ऋषि ने अनेक देह एक ही समय में धारण किये थे, तब तो शायद किसी को भी मानने में आपत्ति न होगी।

आगामी लेख में शेष ७ मास की तिथिशः यात्रा दी जायगी। जिससे स्पष्ट हो जायगा, कहीं भी तिथियों का विरोध नहीं है। यह सारी यात्रा ऋषि की अद्भुत सामर्थ्य और योग की खोज अध्यवसाय को उज्ज्वल रूप में उपस्थित करती हैं।

सेना का उदीयमान पहलवान परमानंद

(प्रस्तुतकर्ता श्री ब्रजभूषण दुबे सी० एफ० पी० बी "विशेष प्रतिनिधि भारतीय कुश्ती" ३० गोराचन्द रोड, कलकत्ता—१४)

संयमी साधनापूर्ण जीवन अपनाकर कोई साधारण खुराक पाने वाला व्यक्ति भी अच्छा पहलवान बन सकता है इस बात का ताजा प्रमाण वायु सेना केन्द्र, रेस-कोर्स मैदान, दिल्ली में राजधानी के कुश्ती प्रेमियों को १ नवम्बर ७२ को उस समय मिला जब सोवियत रूस के म्युनिख ओलंपिक के स्वर्ण-पदक विजेता रोमन दिमित्रेव से जाट बटालियन बरेली के हवलदार परमानंद पहलवान ने बराबरी की टक्कर लेकर उस दिन की सर्वश्रेष्ठ एवं सर्वाधिक संघर्षयुक्त कुश्ती लड़ने का सम्मान अर्जित किया।

सेना का उदीयमान पहलवान परमानन्द

पहलवान परमानंद का जन्म २५ वर्ष पूर्व वर्तमान हरयाणा प्रान्त के जिला महेन्द्रगढ़ की तहसील चर्खी दादरी के ग्राम पंचगांव के एक जाट परिवार में हुआ था। आर्य समाजी पिता श्री शिवनारायण जी ने बाल्यकाल से अच्छा संस्कार देकर परमानंद को देशभक्ति और वीरता के मार्ग पर आगे बढ़ाया जिसके फलस्वरूप १७ वर्ष की आयु में १, जाट बटालियन में परमानंद भरती हो गया। सैनिक के रूप में भरती हुआ परमानंद इस समय हवलदार के पद पर कार्यरत है तथा भविष्य में कुश्ती की नवीन सफलताओं के साथ हो पदोन्नति के प्रति आशावान है।

४-५ वर्ष पूर्व परमानंद को सैनिक पहलवानों की कुश्तियां देखकर कुश्ती लड़ने तथा पहलवान बनने की प्रेरणा मिली थी। साधन और सहयोग की कोई आशा नहीं थी, किन्तु चुपचाप उसने पहलवान बनने की ठान ली और सैनिकों को साधारण रूप से सुलभ खुराक खाते हुये व्यायाम तथा कुश्ती का अभ्यास प्रारम्भ कर दिया। कुछ ही दिनों में उसे जाट बटालियन के पहलवानों से दो दो हाथ करने पड़े जिसमें दृढ़ संकल्प एवं कठिन साधना के फलस्वरूप वह सफल रहा। इस प्रारम्भिक सफलता से उनकी आंखों में विश्वास की नई चमक आ गई तथा उसका हौसला चौगुना हो गया। उसे लगा 'कि सतत साधना के बल पर वह सफलताओं की लंबी दूरी तय करने में निश्चय ही सफल रहेगा, और इसी विश्वास पर उसने कुश्ती का अभ्यास जारी रखा। बटालियन के पश्चात् ब्रिगेड, डिविजन, कमान तथा अन्त: कमान की मंजिलें तय करके १६७१ में वह सेना का कलर प्राप्त करने में सफल हुआ।

अप्रैल ७२ में वाराणसी के सिगरा स्टेडियम में आयोजित २२ वीं राष्ट्रिय कुश्ती प्रतियोगिता में परमानंद ने देश के नामवर पहलवानों से आकर्षक कुश्तियां लड़ीं तथा शानदार तैयारी का प्रदर्शन करते हुये सेना के भूतपूर्व राष्ट्रिय विजेता हरफूलसिंह, रेलवे के अब्दुल मतीन तथा उत्तर प्रदेश के गुलाबराम को परस्त करके बेंटम श्रेणी का स्वर्ण पदक जीता। राष्ट्रिय स्तर पर ओलंपिक फ्रीस्टाइल का स्वर्ण पदक जीतने वाले परमानंद को म्यूनिख ओलंपिक हेतु चुने जाने की आशा थी, क्योंकि वाराणसी कुश्ती स्पर्धा के समय रेसलिंग फेडरेशन आफ इंडिया के अधिकारियों ने पूना के चयन शिविर में केवल उन्हीं पहलवानों को बुलाने की घोषणा की थी जो वाराणसी के दंगल में प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय स्थानों पर थे।

दुर्भाग्य किसे नहीं सताता? पहलवान परमानन्द भी दुर्भाग्य का शिकार होकर पूना की परीक्षण कुश्तियों से एक सप्ताह पहिले कुश्ती का अभ्यास करता हुआ सिर में गहरी चोट खा गया जिससे वह म्यूनिख भेजे जाने वाले कुश्ती दल में न चुना जा सका और उसके स्थान पर दूसरा पहलवान म्यूनिख भेजा गया। सोवियत रूस जाने के लिये सेना के पहलवानों की कुश्तियों में परमानन्द ने उपेक्षाकृत तगड़े तथा अनुभवी प्रतापसिंह को कड़े संघर्ष में परास्त करके अपना स्थान सुरक्षित कर लिया। ११ से २० जून ७२ तक वह सेना के पहलवानों के साथ सोवियत रूस की यात्रा पर गया। वहां उसने तीन कुश्तिया लड़ीं तथा अच्छी लड़ंत का प्रदर्शन किया। रूसी पहलवानों से वह लड़ चुका था और उनकी लड़ंत की खूबियों से वह पहिले ही परिचित हो गया था, संभवत: इसीलिये वह म्यूनिख के स्वर्ण पदक विजेता दिमित्रेव से दिल्ली में डटकर लड़ा तथा पराजित नहीं हुआ।

व्यायाम तथा खुराक—२०० दण्ड ४०० बैठक, २ मील की दौड़ तथा अखाड़े में कुश्ती का अभ्यास यही परमानन्द का प्रतिदिन का व्यायाम है। खुराक में घी, दूध, बादाम तथा मौसमी सस्ते फलों का ही सुविधानुसार सेवन करता है। हरी सब्जी वह चाव से खाता है। सात्विक शाकाहारी जीवन व्यतीत करने वाला परमान्द मास्टर चंदगीराम के समान निर्व्यसनी पहलवान है तथा खुराक की कमी को संयम से पूरा करता हुआ कुश्ती का श्रमसाध्य शौक चला रहा है।

खास दाव:—विशेषता यह है कि पहलवान परमानन्द ने मल्ल कला का कहीं भी विधिवत् प्रशिक्षण प्राप्त नहीं किया, किन्तु कुछ कर दिखाने की धुन में पहलवानों की कुश्तियां देखकर ही कुछ दाव सीख लिये हैं और उनका अच्छा अभ्यास कर लिया है। प्रतिद्वन्दी के सामने पहुंचते ही वह बिजली सी फुर्ती से उसके दोनों पट खींचकर कुश्ती का फैसला कर दिखाने की चेष्टा करता है। यह परमानंद का प्रिय दाव है और देशवासी भारत केशरी मा० चन्दगीराम की लड़ंत में वर्षों से इस दाव को देख रहे हैं।

कुश्ती के मैदान में प्राप्त सफलताओं का श्रेय व्यक्तिगतरूप से परमानन्द को ही है, किन्तु यूनिट के सूबेदार मेजर शेरसिंह तथा पहलवान गुरु बलवंतसिंह के अतिरिक्त अंग्रेजी नायब सूबेदार यज्ञपालसिंह शास्त्री के स्नेहपूर्ण सहयोग एवं समयोचित मार्गदर्शन के प्रति वह सदा श्रद्धा के भाव प्रदर्शित करता है।

पहलवान परमानन्द जब से राष्ट्रिय विजेता बना है तथा सोवियत रूस की यात्रा करके आया है उसकी लड़त में अनेक नवीन दावों का समावेश हो गया है। सेना के शीर्षस्थ पहलवानों के सानिध्य में उसने कुश्ती की अनेक बारीकियां सीख ली है। अपनी सूझ बूझ एवं प्रगतिशीलता का परिचय देते हुये उसने नवम्बर ७२ में मध्य कमान की कुश्ती स्पर्धा में भारतीय कुश्ती, ओलंपिक फ्रीस्टाइल तथा ग्रीको रोमन शैली के मुकाबलों में बेंटम वर्ग के सभी पहलवानों को परास्त किया था। दिसम्बर के अंतिम सप्ताह में जालंधर में आयोजित अन्त: कमान कुश्ती स्पर्धा में बेंटम वेट का विजेता बनकर बम्बई की राष्ट्रिय कुश्ती स्पर्धा के लिये उसने अपना स्थान सुरक्षित कर लिया है। बनारस में प्राप्त गौरव की रक्षा के लिये वह १६ फरवरी से होने वाली राष्ट्रिय कुश्ती स्पर्धा में पूरी तैयारी से उतरने के लिये अभी से कड़ी मेहनत कर रहा है। परमानन्द की ताजी सफलताओं को ध्यान में रखते हुये यह कहना गलत न होगा—'कि आगामी दिनों में वह राष्ट्रिय ही नहीं अन्तरराष्ट्रिय कुश्ती स्पर्धाओं में रेलवे के गौरव विशंभरसिंह के रिक्त स्थान की पूर्ति करने में सफल रहेगा।' ●

पंजाब तथा हरयाणा हाईकोर्ट ने स्वामी सर्वानन्द जी को आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का दोनों पक्षों की स्वीकृति से रिसीवर नियुक्त कर दिया।

श्री आर० एस० फुलका उनके सहायक होंगे।

आपत्तियो का समाधान हाईकोर्ट में आरम्भ हो गया।

चण्डीगढ दिनाक ९-२-७३ श्री वीरेन्द्र आदि हाईकोर्ट मे प्राय स्वामी सर्वानन्द जी के नाम का पजाब सभा के लिये सर्वाधिकारी बनाने, निर्वाचन अधिकारी बनाने अथवा रिसीवर बनाने के लिये सुझाओ गत दो वर्षो से दे रहे थे। बीच मे श्री रामनाथ जी भल्ला, श्री स्वामी जी से दो-तीन बार मिले तो पता लगा कि वह लोग स्वामी जी को बिना पूछे तथा बिना उनको स्वीकृति लिये ही उपरोक्त सुझाओ देते रहते है। महात्मा आनन्द स्वामी जी को रिसीवर नियुक्त करते समय हाईकोर्ट ने उन पर केवल सभा के प्रबन्ध व नियत्रण की ही जिम्मेवारी डाली तथा उनकी सहायता और अभियोगो आदि को निपटाने के लिये श्री आर० एस० फुलका निर्वाचन अधिकारी को स्वामी जी के साथ लगा दिया। परन्तु सभा के निर्वाचन कार्य से महात्मा जी को मुक्त रख कर वह कार्य श्री फुलका को ही दे रखा। महात्मा जी ने जब रिसीवर बनने से इन्कार किया तो श्री वीरेन्द्र आदि ने पुन स्वामी सर्वानन्द जी का नाम प्रस्तुत किया। स्वामी ओमानन्द जी तथा श्री रामनाथ जी भल्ला स्वय स्वामी जी को मिलने २२-१-७३ को दयानन्द मठ दीनानगर गये तथा सारी स्थिति से स्वामी जी को अवगत किया। स्वामी जी ने बताया कि उनके नाम के हाईकोर्ट मे दिये सुझावो के लिये उनकी किसी ने स्वीकृति नही ली। उन्होने इस झगडे मे पडने की असमर्थता प्रगट की श्री भल्ला जी ने कहा कि वह उनके नाम का प्राय हाईकोर्ट मे विरोध करते रहे है ताकि एक सच्चा साधु तो बदनामी से बचा रहा। उन्होने स्वामी जी को बताया कि निर्वाचन के कार्य मे ही उनको परेशानी हो सकती है परन्तु उस कार्य के लिये श्री फुलका पहले ही नियुक्त है। श्री भल्ला जी ने कहा कि रिसीवर का कार्य केवल प्रबन्ध आदि का होगा। स्वामी ओमानन्द जी तथा भल्ला जी ने विश्वास दिलाया कि सभा के प्रबन्ध मे वह उनका पूरा सहयोग देगे तथा किसी प्रकार का कष्ट न होने देगे। उन्होने प्रार्थना की कि वह सभा का रिसीवर बनना स्वीकार कर ले। दोनो महानुभावो की प्रेरणा के बाद स्वामी जी ने रिसीवर बनना स्वीकार कर लिया। २३-१-७३ को श्री वीरेन्द्र, सेठ कुलदीपचन्द जी की शोक सभा मे भाग लेने पठानकोट गये तो सुना है कि उन्होने भी स्वामी से उपरोक्त प्रार्थना की। स्वामी जी ने तब बताया कि कल स्वामी ओमानन्द जी तथा श्री भल्ला जी को वह रिसीवर बनने की स्वीकृति दे चुके है। इस प्रकार स्वामी जी के रिसीवर बनने का सयुक्त सुझाव हाईकोर्ट मे २-२-७३ को श्री भल्ला जी के वकील न प्रस्तुत किया और बाद मे जज महोदय की इच्छानुसार दोनो वकीलो तथा स्वामी जी की लिखित स्वीकृति भी ९-२-७३ को हाईकोर्ट को दे दी जिस पर जज महोदय ने स्वामी सर्वानन्द जी को पजाब सभा का रिसीवर नियुक्त कर दिया और कहा कि उनके कर्त्तव्य तथा अधिकार वही होगे जो उन्होने अपने आदेश दिनाक १२-१२-७२ मे दिये है। श्री फुलका अपने निर्वाचन अधिकारी के कार्य के अतिरिक्त रिसीवर महोदय का आवश्यक सहयोग भी देते रहेगे।

श्री वीरेन्द्र आदि ने सभा के प्रबन्ध व नियत्रण के अतिरिक्त स्वामी जी पर सभा के अभियोगो, सम्पत्ति की समस्याओ तथा आपत्तिया आदि के निपटाने का कार्य भी स्वामी जी पर डालने का हाईकोर्ट मे सुझाव रखा। श्री भल्ला जी के वकील श्री आनन्द स्वरूप जी ने कहा कि स्वामी जी वृद्ध है तथा अधिक व्यस्त है अत उन पर अधिक भार नही डालना चाहिये क्योकि वह उसे कर नही सकगे। उन्होने कहा कि महात्मा आनन्द स्वामी जी की भाति उन्हे भी श्री फुलका जैसे उच्च अधिकारी की सहायता दी जावे। श्री वीरेद्र आदि ने आग्रह किया कि स्वामी वह सब कार्य कर सकेगे। इस पर स्वामी सर्वानन्द जी को १६-२-७३ को हाईकोर्ट मे बुलाने का आदेश हुआ ताकि उनसे पूछा जावे कि वह कितना भार उठा सकगे।

९-२-७३ को श्री वीरेन्द्र आदि द्वारा श्री फुलका की रिपोर्ट के विरुद्ध की गई आपत्तियो पर विचार आरम्भ हुआ। अब अगली पेशी इस कार्य के लिये १६-२-७३ की लगी है। (विशेष प्रतिनिधि द्वारा)

महर्षि दयानन्द को विष दिया गया।

ऋषिवर के बलिदान की अमर कहानी (६)

(ले०—श्री राजेन्द्र 'जिज्ञासु' एम० ए० बी० टी०, प्रा० दयानन्द कालिज अबोहर)

कुछ पाठको ने कुछ बाते और स्पष्ट करने के लिए पत्र लिखे हैं। भारत भर से इस लेखमाला पर प्रतिदिन पत्र आ रहे हैं। ऋषि भक्तो की सत्य निष्ठा ही उनका भूषण है। प्रोत्साहन व आशीर्वाद के लिए मैं आभार प्रकट करता हूँ। सबके पत्रो का व्यक्तिगत उत्तर देना इस समय सर्वथा असम्भव है। वैदिक साहित्य सस्थान की ओर से पूज्य स्वामी सर्वानन्द जी के आदेश पर मैं इस समय केवल विद्वानो व सभाओ के विशेष पत्रो का ही उत्तर बडी कठिनता से दे पाता हूँ। इसी लेखमाला मे यथास्थान सब बातो की चर्चा हो जाएगी।

पाठक स्मरण रखे व सबको बता दे कि यदि नन्ही जी आदि ने षड्यन्त्र करके महर्षि को विष नही दिया था तो 'नन्ही जी' ने महात्मा मुशीराम जी, मास्टर आत्माराम जी, बाबा छज्जूसिह जी आदि लेखको अथवा उनके साहित्य प्रकाशको पर अभियोग क्यो न चलाया? नन्ही भगतन की लाखो की सम्पत्ति थी। वह वेश्या सबको न्यायालयो मे खराब कर सकती थी। देर तक जीवित रही। उसके जीवन काल मे कई जीवन चरित्र छप चुके थे। अली मर्दान तो और भी बाद मे मरा। उसके पास क्या कमी थी? वह बडी सरलता से न्यायालय मे जाकर आर्यो पर झूठा आरोप लगाने का अभियोग चला सकता था। १९१४ ई० के आर्य गजट के ऋषि अङ्क मे सक्षिप्त ऋषि जीवन छपा। उसमे स्पष्ट लिखा है कि महर्षि को विष दिया गया। अली मर्दान इस अपमान के लिये महात्मा हसराज जी व महाशय खुशहालचन्द 'खुरसन्द' (म० आनन्द स्वामी जी) पर अभियोग चला सकत था। इस डा० के जीवन काल मे स्वामी सत्यानन्द जी वाला जीवन चरित्र हिन्दी उर्दू मे छप चुका था। कविवर श्री अखिलानन्द का दिग्विजय, श्री स्वामी दर्शनानन्द जी, साधु वासवानी व प्रो० ताराचन्द आदि कई विद्वानो के लिखे छोटे बडे ऋषि जीवन चरित्र छप छुके थे। ओहो! उस बेचारे को हमारे पूज्य शर्मा जी जैसा कोई मार्ग दर्शक न मिला। किसी ने सुझाया ही नही।

अब हमारे शर्मा जी को एक सर्वथा नई बात सूझी है। वह कहते हैं पीर इमाम अली का वक्तव्य प० लेखराम जी ने नही उनकी सामग्री का सम्पादन करने वाले बाद के लेखकों ने जोडा। जिज्ञासु इतना भी नहीं जानता। पूज्य शर्मा जी बडे कृपालु है आप जो मेरा अज्ञान दूर करने का कष्ट कर रहे है। कहिये क्या कहना चाहते है यही न कि फिर महात्मा मुशी राम जी व महात्मा आत्माराम ने यह वक्तव्य देकर झूठ जोडा? छी! छी! सत्य पर कट मरने वालो पर सन्देह। उनकी सत्यनिष्ठा का क्या कहना- सगीनो की नौक पर सीना चढाकर भी सत्य नही छोडा। मान्य शर्मा जी—एक जीवन चरित्र मे नही अनेको मे पीर साहिब का वक्तव्य छपा है। अजमेर के पुराने सब लोग मर नही गये अभी भी कई है जो इसकी पुष्टि करते है। आप क्या ऋषि जीवन की खोज करेगे अभी तक आप यह भी ठीक ठीक पता न लगा सके कि सत्यार्थप्रकाश किस किस भाषा मे छप चुका है। ●

विश्व में डालर संकट

एक वर्ष मे दूसरी बार उत्पन्न हुये वर्तमान डालर सकट का अन्तिम स्वरूप क्या होगा। भारत देश इस की प्रतीक्षा कर रहा है। कहा जाता है डालर के वर्तमान उतार चढाव भारतीय रुपये पर सामयिक आवययक प्रभाव नही पडेगा क्योकि रुपया ब्रिटिश पौण्ड से सम्बद्ध है। स्थिति अभी बहुत अस्थिर है। १९७१ मे आये पहले डालर सकट के समय के बाद जुलाई मे भारतीय रुपये की पौण्ड के साथ विनिमय दर में मामूली से सुधार किया गया था। डालर का सम्बन्ध पौण्ड से भी है अब भारतीय रुपये की स्थिति अस्थिर अवश्य है।

करो सुविचार नियोजन

(श्री प. देवेन्द्रनाथ शास्त्री एम०ए० १५,आर्य कुटीर, नई कालोनी नरेला, दिल्ली-४०)

करो सुविचार नियोजन, हो परिवार नियोजन ।।
पाश्चात्य सभ्यता ने है वासना भडकाई,
वासना की अग्नि में जनता है जलाई।
बस भोग वाद की ही भेरी है बजाई,
सयम तो शास्त्र मे ही देता है सुनाई।
इस भोग के बन्धन से करो आत्म-विमोचन।
करो सुविचार नियोजन, हो परिवार नियोजन ।।१।।

यदि काम की भक्ति नर नारी करेंगे,
यदि विषय सुखो मे दिन रात मरेंगे।
सिनेमा, सुरा, सुन्दरी से स्नेह रचेंगे,
तो नाश की अग्नि मे पतगे से जलेंगे।
बनते हो क्यो अन्धे खोलो निज लोचन।
करो सुविचार नियोजन, हो परिवार नियोजन ।।२।।

दयानन्द ब्रह्मचर्य का दीवाना था आया,
जीवन से ब्रह्मचर्य का था पाठ पढाया।
ब्रह्मचर्य के तप से था देश जगाया,
व्यभिचार के विष से था जाति को बचाया।
ब्रह्मचर्य मन्त्र जपो सब दोष विमोचन।
करो सुविचार नियोजन, हो परिवार नियोजन ।।३।।

जब चाय व अडे का सेवन भी यहा है,
जब मास के साथ मद्य का भी पान यहा है।
जब नग्नता, कामुकता का प्रचार यहा है,
चहु ओर कुचित्रो की भरमार यहा है।
सयम बेचारा क्यो न करे तब मूक ही रोदन।
करो सुविचार नियोजन, हो परिवार नियोजन ।।४।।

क्यो भोग की शिक्षा देते मेरे नेता,
नसबन्दी, निरोध और लूप प्रणेता।
भारत की तो सस्कृति है भोग विजेता,
सयम ही सच्चा सुख और आनन्द है देता।
सन्तान सुवीर बने, हो राष्ट्र का पोषण।
करो सुविचार नियोजन, हो परिवार नियोजन ।।५।।

थे राम व सीता भी सयम के पुजारी,
श्री कृष्ण रुक्मिणी थे गृहस्थी ब्रह्मचारी।
गाधी ने भी सयम साधना सुविचारी,
भगवान्, क्यो अब देश की बुद्धि गई मारी।
चलो पूर्वजो के पथ पर, बनो राष्ट्र के भूषण।
करो सुविचार नियोजन, हो परिवार नियोजन ।।६।।●

श्री हरिशरण बनवासी छात्रावास

धर्म प्रचार शिविर का आयोजन किया गया था। जिसमे ३ दिनो तक यहां हवन के साथ धर्म प्रचार हुआ। आर्य समाज के नेता, सन्यासी, भजनोपदेश पधारे थे। जनता पर अच्छा प्रभाव पडा। शिविर का प्रबन्ध भी देशपाल दीक्षित ने किया था। —सवाददाता

आर्य युवक समाज आबोहर

जवानों का उत्साह अभिनन्दन

१९६५ के भारत पाक युद्ध के पश्चात् से लेकर आर्य युवक समाज अबोहर द्वारा सैनिक भाईयो मे प्रचार का कार्यक्रम निरन्तर चल रहा है किन्तु १९७१ के युद्ध के पश्चात् तो इसे खूब तीव्र गति प्राप्त हुई। शायद ही कोई सप्ताह ऐसा गया होगा जिसमे कि सैनिको मे प्रचार न हुआ हो। इसी का ही परिणाम है कि सैनिको मे माँ आर्य समाज व वैदिक साहित्य के प्रति रुचि निरन्तर बढती ही चली जा रही है।

अभी अभी चार सैनिक जवानो को अवकाश प्राप्त हुआ। निश्चित दिन से कुछ दिन पूर्व ही हमे सूचित कर दिया गया। अत रेलवे स्टेशन पर इन वीर सैनिकी को विदाई देने के लिए आर्य युवक समाज के सदस्य भी पहुँचे। इस अवसर पर प्राध्यापक राजेन्द्र जिज्ञासु ने जाने वाले सैनिको का मालाओ से अभिनन्दन किया व श्री अशोक आर्य प्रकाशसन मन्त्री ने आर्य युवक समाज अबोहर द्वारा प्रकाशित पुस्तके भेट की। इसे देखकर जवान द्रवित हो उठे तथा उन्होने आर्य युवक समाज को एक स्थाई स्मृति के रूप मे सहयोग देने का वचन दिया और कहा कि हम जहा भी रहगे आप से सम्पर्क स्थापित रखते हुए कार्य करगे।

स्मरण रहे कि आर्य युवक समाज अबोहर प्रकाशन कार्य के अतिरिक्त देहातो, दलित वर्ग व सैनिको मे विशेष रथ मे कार्य कर रहा है।

—अशोक आर्य —प्रकाशन मन्त्री

आर्ष कन्या गुरुकुल दाधियां जिला अलवर का नवम वार्षिकोत्सव

९-१०-११ मार्च सन् १९७३ को धूम धाम मे मनाया जायेगा। जिसमे वड बडे विद्वान् साधु सन्यासी भाग लगे।

—आचार्य सुशीला स्नानिका एम० ए०

डा० रामस्वरूप के सुपुत्र के प्रति शोक सहानुभूति

डाक्टर साहिब लुधियाना के ही नही अपितु पजाब, हरयाणा और देहली के कर्मठ आर्य है। आपके सुपुत्र के देहान्त का समाचार आर्य मर्यादा मे प्रकाशित होने पर सब ओर से शोक सहानुभूति प्रकाशक अनेक पत्र उनको प्राप्त हुए है हम आर्यमर्यादा की ओर मे उन सभी आर्य बन्धुओ के प्रति इस दु ख मे हाथ बटाने के लिये आभार प्रकट करते हैं। कर्म फल सिद्धान्त अटल है, अत धीरज रखना ही पडता है। प्रभु इनके परिवार को शान्ति देवे। ——जगदेवसिह सिद्धान्ती सम्पादक

यमुनानगर के प्रसिद्ध धर्मात्मा प्रधान लाला बाबूराम जी आर्य का स्वर्गवास

लाला जी आर्य समाज के एक दृढ स्तम्भ थे। सभी कार्यो मे भाग लेते थे। कुछ समय से रुग्ण चले आ रहे थे। समस्त परिवार ने सर्वात्मना उनकी परिचर्या सेवाशुश्रूषा की। उनको आर्य समाज के कार्य की बडी चिन्ता रहती थी। बड दानी पुरुष थे। स्वर्गीय लाला जी के पाचो सुपुत्र श्री सोमप्रकाश, ओम्प्रकाश, मोहनलाल, वेदप्रकाश और जयप्रकाश जी अपने पूज्य पिता के अनुकरण से आर्य समाज की सेवा में सलग्न रहते है। आर्य समाज यमुनानगर के साप्ताहिक सत्सग मे शोक सहानुभूति का प्रकाश किया गया। प० भक्तराम जी आर्योपदेशक के द्वारा यह शोक समाचार प्राप्त होने पर बडा खेद हुआ परमात्मा उनके आत्मा को शान्ति और परिवार को धीरज देवे।—शोकातुर रामनाथभल्ला सभा मन्त्री तथा जगदेवसिह सिद्धान्ती—सम्पादक।

श्री देवकरण जी का स्वर्गवास

८६ वर्ष की अवस्था मे अपने गाव भगड्धाण (जि० महेन्द्रगढ) मे हो गया। अन्त समय तक शान्तचित रहे। आप के ६पुत्र और एक पुत्री है। हरा भरा परिवार है। अपने परिवार को स्वर्गवास से कुछ मिनिट पहिले नक सब बाते बनाते रहे। इस क्षेत्र के दृढ आर्य पुरुष थे। परमेश्वर कर्मफल व्यवस्था के अनुसार शुभ गति प्रदान करे।

—निज सवाददाता

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब द्वारा प्रकाशित और प्रचारित वैदिक साहित्य

१ बलिदान जयन्ती स्मृति ग्रन्थ–आर्य बलिदानो की गाथा मूल्य ४-५०
२ सोम सरोवर-वेदमन्त्रो की व्याख्या —प० चमूपति एम ए ३-००
३ जीवन ज्योति-वेदमन्त्रो की व्याख्या ,, ,, ३-००
४ नीहारिकावाद और उपनिषदे ,, ,, ०-२५
५ Principles of Arya samaj ,, ,, १-५०
६ Glimpses of swami Daya Nand ,, ,, १-००
७ पजाब का आर्य समाज पजाब तथा हरयाणा के आर्यसमाज का इतिहास २-००
८ वैदिक सत्सग पद्धति सन्ध्या हवन मन्त्र अर्थ रहित विधि १-००
९ वेदाविर्भाव —आर्यमर्यादा का विशेषाक ०-६५
१० यजुर्वेद का स्वाध्याय ,, ,, ,, ०-५०
११ वेद स्वरूप निर्णय —प० मदनमोहन विद्यासागर १-००
१२ व्यवहारभानु —महर्षि स्वामी दयानन्द ०-५०
१३ स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश— ,, ,, ०-४०
१४ Social Reconstruction By Budha & Swami Daya Nand By. Pt Ganga Prasad Upadhya M A. २-००
१५ Subject Matter of the Vedas By S Bhoomanad १-००
१६ Enchanted Island By Swami Staya Parkashanand १-००
१७ Cow Protection By Swami Daya Nand ०-१५
१८ वेद मे पुनरुक्ति दोष नही है आर्यमर्यादा का विशेषाक २-००
१९ मूर्त्तिपूजा निषेध ,, ,, ०-५०
२० धर्मवीर प० लेखराम जीवन —स्वामी श्रद्धानन्द १-२५
२१ कुलियात आर्य मुसाफिर प्रथम भाग—प० लेखराम की पुस्तको का सग्रह ६-००
२२ ,, ,, दूसरा भाग ,, ,, ८-००
२३ मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र —कु० सुशीला आर्या एम ए ०-२५
२४ योगीराज कृष्ण ,, ,, ,, ०-१५
२५ गोकरुणा निधि —स्वामी दयानन्द सरस्वती ०-२०
२६ आर्यसमाज के नियम उपनियम ०-१०
२७ आर्य नेताओ के वचनामृत —साईदास भण्डारी ०-१२
२८ कायाकल्प —स्वामी समर्पणानन्द सरस्वती १-५०
२९ वैदिक धर्म की विशेषताय —प० हरिदेव सिद्धान्त भूषण ०-१५
३० स्वतन्त्रानन्द लेखमाला —स्वा० स्वतन्त्रानन्द जी जीवनी तथा उनके व्याख्यान १-२५
३१ आत्मानन्द लेखमाला —स्वामी आत्मानन्द सरस्वती की जीवनी १-२५
३२ आर्यसमाज के सदस्यता फार्म —सैकडा १०-००
३३ वैदिक गीता —स्वामी आत्मानन्द सरस्वती २-५०
३४ मनोविज्ञान तथा शिव सकल्प ,, ,, ,, ३-५०
३५ कन्या और ब्रह्मचर्य ,, ,, ,, ०-१५
३६ सन्ध्या अष्टाङ्गयोग , ,, ,, ०-७५
३७ वैदिक विवाह , ,, ०-७५
३८ सुखी जीवन —श्री सत्यव्रत २-००
३९ एक मनस्वी जीवन —प० मनसाराम वैदिक तोप १-५०
४० छात्रोपयागी विचारमाला —जगदेवसिह सिद्धान्ती १-५०
४१ स्त्री शिक्षा —प० लेखराम आर्य मुसाफिर ०-६०
४२ विदेश मे एक साल —स्वामी स्वतन्त्रानन्द २-२५
४३ वेद विमर्श —प० भगवद्दत्त वेदालकार २-००
४४ वेद विमर्श —प० वेदव्रत शास्त्री २-००
४५ आसना के व्यायाम ,, ,, ,, १-००
४६ महर्षि जीवन गाथा —स्वामी वेदानन्द वेदवागीश २-२५
४७ मास मनुष्य का भोजन नही —स्वामी ओमानन्द सरस्वती १-००
४८ वीर भूमि हरयाणा ,, ,, ,, ४-००
४९ चोटी क्यो रखें —स्वामी ओमानन्द सरस्वती ०-५०
५० हमारा फाजिल्का —श्री योगेन्द्रपाल १-५०
५१ सत्सग स्वाध्याय —स्वामी ओमानन्द सरस्वती ०-५०
५२ जापान यात्रा ,, ,, ,, ०-७५
५३ भोजन ,, ,, ,, ०-७०
५४ ऋषि रहस्य —प० भगवद्दत्त वेदालकार २-००
५५ स्वामी श्रद्धानन्द जीवन परिचय . १-२५
५६ मेरा धर्म —आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति ७-००
५७ वेद का राष्ट्रिय गीत ,, ,, ,, ५-००
५८ ईशोपनिषद्भाष्य —इन्द्र विद्या वाचस्पति २-००
५९ प० गुरुदत्त विद्यार्थी जीवन —डा० रामप्रकाश १-३५
६० वैदिक पथ —प० हरिदेव सिद्धान्त भूषण २-००
६१ ज्ञानदीप ,, ,, ,, २-००
६२ आर्यसमाज का सैद्धान्तिक परिचय ०-५०
६३ The Vedas ०-५०
६४ The Philosophy of Vedas ०-५०
६५ वैदिक प्रवचन —प० जगत्कुमार शास्त्री २-२५
६६ ईश्वर दर्शन ,, ,, १-५०
६७ श्वेताश्वरोपनिषद् ,, ,, ४-००
६८ ब्रह्मचर्य प्रदीप ,, ,, ४-००
६९ भगवन प्राप्ति क्यो और कैसे —स्वा० सत्यानन्द ०-६०
७० आर्य सामाजिक धर्म , ,, ०-७५
७१ बोध प्रसाद —स्वामी श्रद्धानन्द ०-२५
७२ ऋषि दर्शन —प० चमूपति एम ए ०-२५
७३ ऋषि का चमत्कार ,, ,, ,, ००-१२
७४ वैदिक जीवन दर्शन ,, ,, ,, ००-२०
७५ वैदिक तत्व विचार ,, ,, ,, ००-५०
७६ देव यज्ञ रहस्य ,, ,, ,, ००-३५

सभी पुस्तकों का प्राप्ति स्थान

आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब, गुरुदत्त भवन, जालन्धर (४२५०) टेलीफोन
,, ,, ,, १५ हनुमान् मार्ग नई दिल्ली-१ ,, (३१०१५०)
,, ,, ,, दयानन्द मठ रोहतक (हरयाणा) ,, (२५४)

आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब के लिए जगदेवसिह सिद्धान्ती शास्त्री द्वारा सैनी प्रिटर्स पहाडी धीरज, देहली मे मुद्रित और १५ हनुमान् रोड, नई दिल्ली–१ से प्रकाशित

१४ फाल्गुन सं० २०२९ वि०, दयानन्दाब्द १४८,
तदनुसार २५ फरवरी १९७३ रविवार
सृष्टि सं०-१९६०८५३०७२

वर्ष ५ — वार्षिक शुल्क स्वदेश में १०) रुपये
अंक १३ — ,, ,, विदेश में २०) रुपये
एक प्रति का मूल्य ००-२० पैसे

सम्पादक—जगदेवसिंह सिद्धान्ती शास्त्री, पूर्व लोकसभा सदस्य (फोन ५१२१६३)

वेदमन्त्रार्थ-प्रवचन

अथ स्त्रीपुंसाभ्यां कथं कदा विवाहः कार्यः ॥

अब स्त्री पुरुष को कैसे और कब विवाह करना चाहिये इस विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया गया है ॥

याभिः पत्नीर्विमदाय न्यूहथुरा घ वा याभिररुणीरशिक्षतम् ।
याभिः सुदास ऊहथुः सुदेव्यं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥

—ऋ० १.११२.१९

पदार्थः—(याभिः) (पत्नीः) यज्ञसम्बन्धिनीर्विदुषीः (विमदाय) विविधानन्दाय (न्यूहथुः) नितरां वहतम् (आ) (घ) एव (वा) पक्षान्तरे (याभिः) (अरुणीः) ब्रह्मचारिणीः कन्याः (अशिक्षितम्) पाठयतम् (याभिः) (सुदासे) सुष्ठुदाने (ऊहथुः) प्राप्नुतम् (सुदेव्यम्) शोभनेषु विद्वत्सु भवं विज्ञानम् (ताभिः) (उ) वितर्के (सु) शोभने (ऊतिभिः) रक्षणादिभिः (अश्विना) (आ) (गतम्) समन्तात् प्राप्नुतम् ॥

अन्वयः—हे अश्विनाध्यापकाध्येतारौ युवां याभिरूतिभि विमदाय पत्नीर्न्यूहथुः। वा याभिररुणीर्घैवा शिक्षतम्। याभिः सुदासे सुदेव्यमूहथुश्च ताभिर्विद्या उ विनयं स्वागतम् ॥

भावार्थः—सुखं जिगमिषुभिः पुरुषैः स्त्रीभिश्च धर्मसेवितेन ब्रह्मचर्य्येण च पूर्णां विद्यां युवावस्थां च प्राप्य स्वतुल्यतयैव विवाहः कर्त्तव्योऽथवा ब्रह्मचर्यं एव स्थित्वा सर्वदा स्त्रीपुरुषाणां सुशिक्षा कार्या नहि तुल्यगुणकर्मस्वभावैर्विना गृहाश्रमं धृत्वा केचित् किञ्चिदपि सुखं वा सुसन्तानं प्राप्तु शक्नुवन्त्यत एवमेव विवाहः कर्त्तव्यः ॥

भावार्थः—(अश्विना) पढ़ने पढ़ाने हारे ब्रह्मचारी लोगो तुम (याभिः) जिन (ऊतिभिः) रक्षाओं से (विमदाय) विविध आनन्द के लिये (पत्नीः) पति के साथ यज्ञ सम्बन्ध करने वाली विदुषी स्त्रियों को (न्यूहथुः) निश्चय से ग्रहण करो (वा) वा (याभिः) जिन रक्षाओं से (अरुणीः) ब्रह्मचारिणी कन्याओं को (घ) ही (आ, अशिक्षितम्) अच्छे प्रकार शिक्षा करो और (याभिः) जिन रक्षादि क्रियाओं से (सुदासे) अच्छे प्रकार दान करने में (सुदेव्यम्) उत्तम विद्वानो में उत्पन्न हुए विज्ञान को (ऊहथुः) प्राप्त कराओ (ताभिः) उन रक्षाओ से विद्या (उ) और विनय को (सु, आ, गतम्) अच्छे प्रकार प्राप्त हूजिये ।

भावार्थः—सुख पाने की इच्छा करने वाले पुरुष और स्त्रियो को धर्म से सेवित ब्रह्मचर्य से पूर्ण विद्या और युवावस्था को प्राप्त होकर अपनी तुल्यता से ही विवाह करना योग्य है अथवा ब्रह्मचर्य ही में ठहर के सर्वदा स्त्री पुरुषों को अच्छी शिक्षा करना योग्य है क्योंकि तुल्यगुणकर्मस्वभाव वाले स्त्री पुरुषों के विना गृहाश्रम को धारण करके कोई किञ्चित् भी सुख वा उत्तम सन्तान को प्राप्त होने में समर्थ नही होते इससे इसी प्रकार विवाह करना चाहिये ॥

—(ऋषि दयानन्द-भाष्य)●

अथ नौविमानादि विद्याविषयः संक्षेपतः

अब मुक्ति के आगे समुद्र, और अन्तरिक्ष में शीघ्र चलने के लिये यान विद्या लिखते है, जैसी कि वेदों में लिखी है। (तुग्रो० ऋ० १ ११६.३) तुनि धातु से रक् प्रत्यय करने से तुग्र शब्द सिद्ध होता है। उसका अर्थ हिसक, बलवान्, ग्रहण करने वाला और स्थान वाला है। क्योकि वैदिक शब्द सामान्य अर्थ में विद्यमान हैं। जो शत्रु को हनन करके अपने विजय बल और धनादि पदार्थ और जिस जिस स्थान में सवारियो से अत्यन्त सुख का ग्रहण किया चाहे उन सबों का नाम तुग्र है। (रयि) जो मनुष्य उत्तम विद्या, सुवर्णादि पदार्थों की कामना वाला है उसका जिससे पालन और भोग होता है उन धनादि पदार्थों की प्राप्ति, भोग और विजय की इच्छा को आगे लिखे हुए प्रकारों से पूर्ण करे। (अश्विना) जो कोई सोना, चान्दी, ताम्बा, पीतल, लोहा और लकडी आदि पदार्थों से अनेक प्रकार की कला युक्त नौकाओं को रच के उन अग्नि, वायु और जलादि का यथावत् प्रयोग कर और पदार्थों को भर के व्यापार के लिये (उदमेघे) समुद्र और नद आदि में (अवाहाः) आवे जावे तो उसके द्रव्यादि पदार्थों की उन्नति होती है। जो कोई इस प्रकार से पुरुषार्थ करता है वह (न काश्चिन्ममृवान्) पदार्थों की प्राप्ति और उनकी रक्षा सहित होकर दु:ख से मरण को कभी प्राप्त नही होता। वे नौका आदि किन से होते है ? अर्थात् जो अग्नि, वायु और पृथिव्यादि पदार्थों में शीघ्रगमणादि गुण और अश्वि नाम से सिद्ध है वे ही यानों को धारण और प्रेरणा आदि अपने गुणो से वेगवान् कर देते है। —(ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका)●

सत्यार्थप्रकाश (१० वाँ समुल्लास)

इन्द्रियाणां प्रसङ्गेन दोषमृच्छत्यसंशयम् ।
सन्नियम्य तु तान्येव ततः सिद्धिं नियच्छति ।। मनु० २.९३

क्योकि इन्द्रियो को विषयासक्ति और अधर्म मे चलाने से मनुष्य निश्चित दोष को प्राप्त होता है और जब इनको जीतकर धर्म में चलाता है तभी अभीष्ट सिद्धि को प्राप्त होता है ॥२॥

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति ।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते ।। मनु० २.९४

यह निश्चय है कि जैसे अग्नि में इन्धन और घी डालने से बढ़ता जाता है वैसे ही कामो के उपभोग से काम शान्त कभी नही होता किन्तु बढ़ता ही जाता है इसलिये मनुष्य को विषयासक्त कभी न होना चाहिये ॥३॥

वेदास्त्यागश्च यज्ञाश्च नियमाश्च तपांसि च ।
न विप्रदुष्टभावस्य सिद्धिं गच्छन्ति कर्हिचित् ।। मनु० २.९७

जो अजितेन्द्रिय पुरुष है उसको विप्रदुष्ट कहते है उसके करने से न वेदज्ञान, न त्याग, न यज्ञ, न नियम और न धर्माचरण सिद्धि को प्राप्त होते हैं किन्तु ये सब जितेन्द्रिय धार्मिक जन को सिद्ध होते हैं ॥४॥

वशे कृत्वेन्द्रियग्रामं संयम्य च मनस्तथा ।
सर्वान् संसाधयेदर्थानक्षिण्वन् योगतस्तनुम् ।। मनु० २ १००

इसलिये पाच कर्मन्द्रिय, पांच ज्ञानेन्द्रिय और ग्यारहवे मन को अपने वश में करके युक्ताहार विहार योग से शरीर की रक्षा करता हुआ सब आर्यों को सिद्ध करे ॥५॥

—(ऋषि दयानन्द)●

स्वामी सर्वानन्द जी की आर्य प्रतिनिधि सभा के रिसीवर केरूप मे नियुक्ति ।

सभा तथा संस्थाओं व सम्पत्ति के प्रबन्ध नियंत्रण का पूर्ण अधिकार

(पत्र प्रतिनिधि द्वारा)

दिनाक २८-१०-७० को पजाब तथा हरयाणा हाईकोर्ट मे डा० हरि प्रकाश द्वारा एक प्रार्थना पत्र दिया गया था कि प्रो० रामसिह जी के अधीन चल रही पजाब सभा का सारा कार्य, प्रबन्ध, नियत्रण तथा सपत्ति लेकर एक रिसीवर के हवाले कर दी जावे। इस प्रार्थना पत्र पर कई बार श्री मरवाहा तथा उसके अन्य साथी वकील बोले। अन्त मे वह बहस ७-११-७२ को समाप्त हुई। १६-११-७२ को प्रो० रामसिह जी के वकील श्री आनन्द स्वरूप जी ने ५० मिनट ही उत्तर दिया था कि जब महोदय ने कहा कि यह बहस लम्बी चल रही है तथा सुझाव दिया कि यदि दोनो पक्ष महात्मा आनन्द स्वामी जी को सभा के लिये रिसीवर नियुक्त करना मान ल तो वह निर्वाचन सम्बन्धित कार्य की ओर ध्यान देकर उसे शीघ्र करान का प्रयत्न करगे। उपरोक्त योजना के अनुसार जज महोदय ने १२-१२ ७२ को दोनो पक्षो की सम्मति से दोनो पक्षो के अधिकारियो आदि को भग करके महात्मा आनन्द स्वामी जी को आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब का रिसीवर नियुक्त कर दिया तथा श्री आर० एस० फुलका को उनकी सहायता के लिये लगा दिया। जब श्री फुलका १४-१२-७२ को महात्मा जी का मिलन दिल्ली गये तो उस दिन तथा उसके उपरान्त २०-१२-७२ और २१-१२-७२ को महात्मा जी ने रिसीवर का पद स्वीकार करने मे असमर्थता प्रगट की। इसी कारण यह विषय ५-१-७३, १२-१ ७३ तथा १६-१-७३ को न्यायालय के समक्ष आया। जज महोदय की भावना को देखते हुये श्री रामनाथ जी भल्ला तथा श्री स्वामी ओमानन्द जी २२-१-७३ को स्वामी सर्वानन्द जी को दयानन्द मठ दीनानगर मे मिले तथा बताया कि निर्वाचन कार्य जिसे सब कठिन मानते है उसके लिये तो निर्वाचन अधिकारी श्री फुलका नियुक्त हुये है। अत सभा के प्रबन्ध और नियत्रण का यदि वह रिसीवर के रूप मे कार्य सभाल ले तो हाईकोर्ट निर्वाचन शीघ्र करा देगा तथा झगडा समाप्त हो जावेगा। स्वामी जी ने इस कार्य मे अपनी विवशता तथा असमर्थता प्रगट की। स्वामी ओमानन्द जी तथा श्री रामनाथ जी भल्ला ने स्वामी जी को विश्वास दिलाया कि प्रबन्ध तथा नियत्रण के अतिरिक्त वह उन पर अन्य कोई बोझ न डालगे और प्रबन्ध के कार्य मे भी उनको पूर्ण सहयोग देगे। इस प्रेरणा के उपरान्त स्वामी जी ने रिसीवर बनना स्वीकार कर लिया।

दिनाक २-१-७३ को दोनो पक्षो के वकीलो ने स्वामी जी को सभा के प्रबन्ध तथा नियत्रण के लिये रिसीवर नियुक्त करने के निम्न समझौते के अनुसार सहमति प्रगट की जिस पर स्वामी जी ने भी स्वीकृति प्रदान कर दी।

Chandigarh
2-2-1973

Co 3 1970

Both the parties to the case have agreed before the Hon'ble High Court to the appointment of Swami Sarvanand ji of Dina Nager as Receiver of the entire assets, properties, management and control of all Arya Samajes and Institutions affiliated to Arya Pratinidhi Sabha Punjab in the control of both the parties.

Counsel for both the parties have signed in token of the acceptance Now the consent of the Swami is asked for

Sd/—G C Mittal
for the Defendant
Sd/—Manmohan Singh
for the Plaintiffs.

उपरोक्त समझौता ६-२-७३ को हाईकोर्ट मे प्रस्तुत कर दिया गया जिसके आधार पर हाईकोर्ट ने स्वामी सर्वानन्द जी को आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब का रिसीवर नियुक्त कर दिया तथा श्री फुलका जी को आदेश दिया कि वह दीनानगर जाकर स्वामी जी को आदेश की प्रति दे और दोनो पक्षो से स्वामी जी को चार्ज दिलाने का प्रबन्ध करें। श्री फुलका यथापूर्व निर्वाचन अधिकारी बने रहे। हाईकोर्ट पजाब का स्वामी जी की नियुक्ति के सम्बन्ध मे आदेश अग्रेजी मे लेख के अन्त मे दिया जाता है।

जैसा कि गत अक मे लिखा था स्वामी सर्वानन्द जी को हाईकोर्ट ने १६-२-७३ को उपस्थित होने का सन्देश देने के लिये श्री आर० एस० फुलका को भेजा परन्तु १६-२-७३ से ही उनके आश्रम मे यज्ञ तथा अन्य उत्सव आरम्भ होना था इसलिये उन्होने १६-२-७३ को हाईकोर्ट मे उपस्थित होने की असमर्थता प्रगट की। हाईकोर्ट ने १६-३-७३ की इस कार्य के लिये अगली तिथि रखी है। उस दिन स्वामी जी बतायगे कि रिसीवर के सब कर्तव्यो का वह स्वय ही पालन कर सकगे अथवा उनको किसी की सहायता की आवश्यकता है। स्मरण रहे कि सभा की दिल्ली, पजाब हरयाणा, हिमाचल तथा कशमीर मे लगभग २० करोड की सम्पत्ति है और इन प्रान्तो मे ४० से अधिक सम्पत्ति आदि के अभियोग चल रहे हैं जिनकी देखभाल करना रिसीवर के कार्य क्षेत्र मे आता है परन्तु महात्मा आनन्द स्वामी जी को १२-१२-७२ को रिसीवर नियुक्त किया था तो उनकी सहायता के लिये श्री फुलका नामक एक उच्च अधिकारी को भी नियुक्त किया था।

सभा के दोनो पक्षो की आर्यसमाजो के प्रतिनिधियो के विरुद्ध आपत्तिया सुनने के उपरान्त निर्वाचन अधिकारी श्री फुलका ने जो हाईकोर्ट को अपनी २०० पृष्ठ की रिपोर्ट दी है उसके विरुद्ध भी हाईकोर्ट मे अपील की गई है। उस पर १६-२-७३ को विचार हुआ। विरोधी पक्ष के स्थानीय वकील ने बडी सहनशीलता का व्योहार किया तथा अत्यन्त शान्त वाताकरण मे लगभग ७५ प्रतिशत आर्यसमाजो की जज महोदय ने आपत्तिया सुन ली। शेष ४०-४५ आर्यसमाजे रहती है जिनके लिये २२-२-७३ की पेशी लगी है। बहस के लिये २३-२-७३ की तिथि निश्चित कर दी है। इसके उपरान्त प्रतिनिधिया की एक अन्तिम सूची बन जावेगी तथा सभा के निर्वाचन का कार्यक्रम बन सकेगा।

स्वामी सर्वानन्द जी की नियुक्ति का आदेश—

IN THE HIGH COURT OF PANJAB AND HARYANA
AT CHANDIGARH CIVIL MISC SIDE
CIVIL MISC No 559 of 1970
and
CIVIL MISC No 445 of 1973
in CIVIL ORIGINAL No 3 of 1970

Professor Ram Singh and others. Plaintiffs.

Versus

Dewan Ram Saran Das and others
C M. 6559 of 1970

RESPONDENTS

Applicaton under Order 40 Rules 1 and 2, and Order 39, Rules 1 and 2 and Section 151 C P C. praying that the Receiver be appointed under Order 40, Rule 1 C P C and to remove the plaintiffs from the possession and custody of the property and the Institutions under the controll and management of the plaintiffs, as stated by them and pending the appointment of the Receiver, they should be restrained from in any way operating upon the accounts of the Sabha and spend any amount of the Sabha or transfer any property of the Sabha, and they be also restrained from proceeding with the cases, they have filed after the decision of the Civil Revision in This Court

(शेष पृष्ट ४ पर)

"वाद की आवश्यकता"

दर्शन शास्त्र मूल रूप मे दो प्रकार के है। (१) वैदिक तथा (२) अवैदिक। वैदिकदर्शनो का आधार वेद हैं। इनके ६ अवान्तर भेद हैं। न्याय, वैशेषिक, साख्य, योग, मीमासा और वेदान्त। इनको वैदिक साहित्य मे दर्शन, शास्त्र और उपाग कहा जाता है अवैदिक दर्शनो मे बौद्ध, जैन चर्वाक और पाश्चात्य माने जाते है। वैदिक दर्शनो मे ऋषियो ने भिन्न भिन्न विषयो पर अपनी अपनी प्रक्रिया के अनुसार उनकी रचना की है। परन्तु मौलिक सिद्धान्तो मे परस्पर कुछ भिन्नता नही है। ऋषि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश मे ६ दर्शनो के विषय मे लिखा है कि इनमे परस्पर विरोध नही है। इनमे सृष्टि के भिन्न भिन्न ६ विषयो पर विचार किया है किसी एक विषय पर नही। एक ही विषय पर भिन्न विचार प्रकट करना विरोध कहलाता है। परन्तु वैदिक दर्शनो मे ऐसा विरोध नही है।

न्याय दर्शन मे १६ पदार्थ माने गये है और उन पर विचार किया गया है। इन १६ पदार्थों मे एक पदार्थ "वाद है। न्याय दर्शन के भाष्यकार वात्स्यायन मुनि ने कहा है कि 'तिस्र कथा भवन्ति वादो जल्पो वितण्डा चेति' अर्थात् कथा वार्ता के तीन भेद होते है। वाद, जल्प और वितण्ड। इन तीनों भेदों में "वाद" का लक्षण महर्षि गौतम न्याय सूत्र-कार ने यह किया है "पक्षप्रतिपक्षपरिग्रहो वाद" ॥ न्याय १ २ १॥ इस पर वात्स्यायन भाष्य यह है—एकाधिकरणस्थौ विरुद्धौ धर्मौ पक्षप्रतिपक्षौ प्रत्यनीकभावादस्त्यात्मा नास्त्यात्मेति॥ नानाधिकरणौ विरुद्धौ न पक्षप्रतिपक्षौ यथा नित्य आत्माऽनित्या बुद्धिरिति परिग्रहोऽभ्युपगमव्यवस्था सोऽयं पक्षप्रतिपक्षपरिग्रहो वाद ॥ अर्थात् एक ही अधिकरण मे स्थित परस्पर विरुद्ध धर्म पक्ष और प्रतिपक्ष कहलाते है—एक दूसरे से विरोधी होने से जैसे अस्ति आत्मा=आत्मा है यह एक पक्ष है और नास्ति आत्मा=आत्मा नही है यह प्रतिपक्ष है। परन्तु अनेक अधिकरणो मे स्थित विरुद्ध पक्ष और प्रतिपक्ष नही हो सकते—जैसे आत्मा नित्य है बुद्धि अनित्या है। यहा आत्मा और बुद्धि भिन्न भिन्न अधिकरण है। अत यह पक्ष प्रतिपक्ष नही हो सकते। स्वीकृत व्यवस्था को परिग्रह कहा जाता है। अत पक्ष प्रतिपक्ष रूप मे परिग्रह को वाद कहा जाता है।

वाद वही प्रवृत्त होता है जहा परस्पर पक्षो मे सशय होवे। सशय का लक्षण न्याय १ १ २३ सूत्र मे कहा है—"विशेषापेक्षो विमर्श सशय अर्थात् उस विमर्श=विचार को सशय कहा जाता है जहा कोई निश्चित बात न होवे, अपितु विशेष बात की अपेक्षा रहे। यदि किसी विशेष बात की अपेक्षा न रहे तो सशय भी न हो सकता। अत वाद की प्रवृत्ति तभी चलती है जबकि विमर्श मे विशेष बात की अपेक्षा बनी हुई है निर्णय होने के लिये अर्थ=तत्त्व का अवधारण=निश्चय अवश्य होना चाहिये। इस निश्चय से पूर्व पक्ष और प्रतिपक्ष मे विमर्श=सशय होता है एक बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि 'वाद' पृथक् पृथक् पक्ष-प्रतिपक्ष हार जीत के लिये ग्रहण किये जाते हैं, परन्तु "सवाद मे परस्पर सवाद करने वालो उभय पक्षो मे हार जीत का प्रश्न नही होता, अपितु ज्ञानग्रहण और मनन=चिन्तन करने वालो मे केवल विद्या प्राप्ति और तत्त्वज्ञान की उपलब्धि के लिये ही होता है। जैसे "त शिष्यगुरुसब्रह्मचारिविशिष्टश्रेयोऽर्थिभिरनसूयिभिरभ्युपेयात्।" न्याय ४ २ ४६॥ अर्थात् गुरु शिष्य, सहपाठी विशेष कल्याण के इच्छुक और ईर्ष्यारहित विचारको मे 'सवाद होता है। अन्यत्र वाद चलता है।

आर्यमर्यादा मे आर्य विद्वानो के परस्पर वाद चल रहे है। इनको सवाद नही कहा जा सकता। क्योकि इन लेखो म पक्ष प्रतिपक्ष मे हार-जीत चलती है। कुछ सज्जनो की इच्छा है कि ऐसे वाद विवाद न प्रकाशित किये जाव। इस पर हमारा स्पष्ट निवेदन है कि एसे विवादो से तत्त्व का निर्णय होता है। पाठको की स्वाध्याय मे प्रवृत्ति हानी है। विद्वानो मे विशेष विषयो की योग्यता का प्रकाश हाना है। आर्यमर्यादा मे भिन्न भिन्न विषयो मे वाद प्रकाशित किये जा रहे है। इस सम्बन्ध मे एक नम्र निवेदन है कि वाद का प्रकाशन करने मे परस्पर शिष्टता का प्रयोग रखे। यह प्रक्रिया आर्यसमाज के भिन्न भिन्न पूज्य विद्वानो म चलनी आवश्यक है। प्राय अब आर्यसमाज के विद्वाना क अन्य सम्प्रदायस्थ विद्वानो से शास्त्रार्थ नही होते हैं। शास्त्रार्थ से बुद्धि का प्रकर्ष होता है। पाठको को अपनी योग्यता का प्रकाश करने के लिये तथा विद्वानो को भी अपनी योग्यता को चमकाते रहना चाहिये। प्राय देखा जाता है कि आर्यसमाजो के उत्सवो और साप्ताहिक सत्सगो मे सैद्धान्तिक भाषण कम ही दिये और सुने जाते है। इसमे श्रोताओ के चित्त मे स्वाध्याय की प्रवृत्ति बहुत कम होती जा रही है। स्वाध्याय से हमारा अभिप्राय आर्षग्रन्थो के मनन से है। सामान्य आर्य भाई बहिन वैदिक सिद्धान्तो और ऋषि दयानन्द के मन्तव्यो से सुपरिचित न होने के कारण भ्रम मे पड जाते हैं। अत आर्यजनो मे स्वाध्याय प्रवृत्ति का प्रोत्साहन देने के लिये आर्यपत्रो मे 'वाद का प्रकाशन होते रहना अनिवार्य होना सर्वथा उचित है।

सौभाग्य से अब वेदभाष्यो के प्रकाशन और मनन की प्रवृत्ति आर्य-जगत् मे चल पडी है। इसी प्रकार ऋषि दयानन्द द्वारा रचित ग्रन्थो का पारायण, मनन और अभ्यास अधिक से अधिक किया जाना चाहिये। देखा गया है कि नवीन समाजवाद की लहर के कारण पुराने पुराने आर्य-नेता ऋषि के ग्रन्थो मे लिखित स्मार्त वचनो को समय के अनुकूल ठीक नही समझते और उन वचनो के सशोधन की आवाज उठाने लगे है। आशा है हमारे निवेदन पर सहृदयता स आर्यजन और पूज्य विद्वान् विचार करके कृतार्थ करगे। ●

—जगदेवसिह सिद्धान्ती शास्त्री।

ऋषि दयानन्द के भाव (सत्यार्थप्रकाश से)

१ यद्यपि मै आर्य्यावर्त्त उत्पन्न हुआ और बसता हू तथापि जैसे इस देश के मतमतान्तरो की झूठी बाना का पक्षपात न कर याथातथ्य प्रकाश करता हू वैसे ही दूसरे देशस्थ वा मतान्नति वालो के साथ भा वर्तता हू। —भूमिका

२ विद्वानो के विरोध से अविद्वानो मे विरोध बढकर अनेक विध दुख की वृद्धि और सुख की हानि होती है। इस हानि न जो कि स्वार्थी मनुष्यो को प्रिय है सब मनुष्यो को दुख सागर मे डुबा दिया है।

—भूमिका

३ जैसी हानि प्रतिज्ञा को मिथ्या करने वाले की होती है वैसी अन्य किसी का नही —दूसरा समुल्लास

४ वे ही धन्यवादार्ह और कृतकृत्य है जा अपने सन्तानो को ब्रह्मचर्य, उत्तम शिक्षा और विद्या से शरीर और आत्मा के बल को बढाय।

—तीसरा समुल्लास

५ राजा और राजपुरुषो को अति उचित है कि कभी दुष्टाचार न करे किन्तु सब दिन धर्म न्याय मे वर्त्त कर सब के सुधार का दृष्टान्त बने। —छठा समुल्लास

६ मैं अपना मतव्य उसी को जानता हु कि जो तीन काल मे सब को एकसा मानने योग्य है। मेरा कोई नवीन कल्पना वा मतमतान्तर चलाने का लेशमात्र भी अभिप्राय नही है किन्तु जो सत्य है उसको मानना मनवाना और जो असत्य है उसको छोडना और छुडवाना मुझको अभीष्ट है। —स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश॥ ●

(पृष्ट २ का शेष)

CIVIL MISC. No. 445 of 1973—Application Under Order 40 Rule 1 read with Section 151 C. P. C. praying that order dated 12th of December, 1972 passed on the application of the defendants be vacated and the existing member of the Executive Committee of the Arya Pratinidhi Sabha Panjab be permitted to function as before. Dated the 9th February. 1973.

PRESENT

THE HON'BLE MR JUSTICE BHOPINDER SINGH DHILLON

For the Plaintiffs :—Mr. Anand Swaroop. Advocate with Mr M S. Liberhan. Advocate.

For the Defendants —Mr; S. N. Marwaha. Advocate with Mr. G. C. Mittal. Advocate.

ORDER

During the course of arguments in the application for appointment of Receiver filed by the defendants. the counsel for the parties made statements before me on December 12. 1972 that they agree for the appointment of mahamta Anand Swami as a Receiver by this Court Consequently, in view of the consent of the parties, I had appointed Mahatma Anand Swami as Receiver vide my order dated December 12, 1972. At the time of the passing of the said order, I was given to understand by the learned counsel for the plaintiffs that Mahetma Anand Swami was prepared to act as Receiver. Therefore, I appointed him as Receiver. Subsequently, when Mr. R. S. Phoolka, Returning Officer met Mahatma Anand Swami, he showed his inability to act as Receiver and a report was submitted by the Returning Officer to this Court to that effect. In view of this position, a Civil Miscellaneous Application 445 of 1973 was filed by the plaintiffs with the prayer that order dated December 12, 1972, which was consent order and the consent having been given only on the appointment of Mahatma Anand Swami be withdrawn. A notice of this application was given to the learned counsel for the other party.

On the last date of hearing the learned counsel for the Defendants had proposed the name of Swami Sarvanand of Dina Nager for being appointed as Receiver and it was prayed that the other party be asked if they would consider the appointment of Swami Sarvanand of Dina Nager, as Receiver by way of compromise. I had put this proposal to the learned counsel for the plaintiffs who had asked for time for counsulting his clients and I had made it clear to the parties that if they agree, both of them should make enquiry from Swami Sarvanand whether he is willing to act as Receiver and I had directed them to get a written consent so that the situation as created earlier may not arise.

The learned counsel for the defendants Mr. S. N. Marwaha has to-day put in a memorandum signed by the learned counsel for both the parties stating therein that Swami Sarvanando Dinangar is ready to act as Receiver, if appointed by this Court On this memorandum an endorsement has been made by Swami Sarvanand wherein he has shown his inclination to act as Receiver if appointed by this Court. In view of the agreement of the parties that Swami Sarvanand may act as Receiver I consider it just and proper in the circumstances of the case that Swami Sarvanand of Dina Nager should be appointed as Receiver to manage the affairs and property of Arya Pratinidhi Sabha, Panjab pending the election of the new officer bearers of the Arya Pratinidhi Sabha, Punjab. The appointment of Mahatma Anand Swami who never took over as Receiver is hereby annulled and it be deemed that he was never appointed Receiver by this Court. I hereby appoint Swami Sorvanand of Dayanand Math Dina Nager. District Gurdaspur as Receiver to manage and control all institution along with their connected properties which belong to Arya Pratinidhi Sabha, Punjab.

Mr. R. S. Phoolka who is working as Returning Officer for conducting elections of the Arya Pratinidhi Sabha will assist Swami Sarvanand in taking over the charge of the receivership. In my earlier order. when I appointed Mahatma Anand Swami as receiver, I had directed that Shri Phoolka should assist the Mehatma Anand Swami in the management and control of the Sabha as I was told that he was an old man and therefore nerded assistance. As to whether Swami Sarvanand needs assistance of Mr. Phoolka is a question which would be discussed with him by me. It is therefore, directed that Mr. Phoolka may deliver this order of the Court to Swami Sarvanand at Dina Nager and also assist him in taking over the charge. Necessary intimation to the Banks etcetera may be sent. Mr. Phoolka will direct Swami Sarvanand to be present in court on the next date of hearing i e 16th February, 1973, when certain matters regarding his duties as receiver have to be discussed by me with him. Mr. Phoolka is authorised to incur necessary expenditure in this connection.

In view of Swami Sarvanand having been appointed as Receiver, Civi Miscellaneous Application 445 of 1973 is being dismissed as withdrawn February 9, 1973.

S/d—Bhopinder Singh Dhillon Judge

words ; 978—Cost : Rs. 2.50

Typed by : Madan —Copies : 16—Examined by ; Aneja.

True Copy

Sd/—12-2-73.

Supervisor Copy Branch.—Rubber Stamp Court.

समाज सुधारक चौ० पृथ्वीसिंह बेधड़क का देहान्त

ग्राम शिकोहपुर (जि० मेरठ) के निवासी चौ० पृथ्वीसिंह जी बेधड़क का १० फरवरी ७३ को स्वर्गवास हो गया। श्री बेधड़क जी ने लगातार ४५-४७ वर्ष तक आर्यसमाज का समस्त उत्तर भारत में प्रचार किया। सर्वखाप पंचायत द्वारा सामाजिक कुरीतियों का प्रबल खण्डन किया। अनेक पुस्तकों की रचना की। इनका एक पुस्तक 'दर्पण का दर्पण' बड़ा प्रसिद्ध हुआ। यह कहा जा सकता है कि उत्तर भारत के देहातों में समाज सुधार के कार्य में अग्रणी रहे। अत्यन्त पुरुषार्थी थे। शिथिलता पास नही फटकती थी। स्वाध्यायशील थे। व्यक्तिगत रूप से हमारा उनके साथ घनिष्ट सम्पर्क रहा। बड़े निर्भीक उपदेशक थे। एक बार हाथरस (अलीगढ़) के जलसे में कलक्टर ने एक वैश्य को तलवार दी और एक चौधरी को पान का डिब्बा। तुरन्त श्री बेधड़क जी ने इस अयोग्य व्यवहार का खण्डन करते हुए कहा कि अंग्रेजों की बुद्धि का पता भी चल गया कि क्षत्रिय को पान का डिब्बा और व्यापारी को तलवार दी। अंग्रेज कलक्टर लज्जित हो गया। उस समय श्री पृथ्वीसिंह बेधड़क उत्तर प्रदेश की प्रथम कांग्रेस सरकार के पब्लिसटी आफीसर थे। आपने प्रचार के द्वारा सैकड़ों कन्या पाठशालाएं, स्कूल, कालिज और गुरुकुलों का कार्य किया। सैंकड़ों गांव के युवकों को आर्यसमाज का प्रचारक बनाया। उनके देहान्त की सूचना श्री रामभजसिंह और सुखवीरसिंह द्वारा सब जगह भेजी गई हम आर्यसमाज और सर्वखाप पंचायत की ओर से उनके परिवार को धीरज रखने और उनके आत्मा को कर्मफल व्यवस्था के अनुसार उत्तम गति देने के लिये ईश्वर से प्रार्थना करते हैं। अभी कुछ समय पूर्व ही आर्य जनता इण्टर कालिज बड़ौत के आर्यसमाज के उत्सव में वह पधारे हुए थे। कुछ समय से उनके पांव में कैंसर हो गया था। शोक है—आर्यसमाज का निर्भीक और बेधड़क आर्य भजनोपदेशक उठ गया। वास्तव में वह बेधड़क थे। उत्तर भारत के ग्रामीण क्षेत्र में उनके देहान्त से शोक छा गया।

—निरंजनदेव शास्त्री, भवीसा (मुजफ्फर नगर) कबूलसिंह मन्त्री सर्वखाप पंचायत शोरम तथा समस्त ग्रामीण क्षेत्र उत्तर भारत।

क्रमागत—

माण्डूक्य पर आचार्य गौडपाद कारिकाओं की समीक्षा (८)

(ले० श्री स्वामी ब्रह्मानन्द जी आर्य त्रैतवेदान्ताचार्य, मु० ओंकार आश्रम, चान्दोद, बड़ौदा)

यह कितना जुल्म है ? परन्तु जब इस उपनिषद् की श्रुति ही (ओमित्ते तदक्षरमिद सर्वम् ॥ मा० उ० १) ये सब ओकार स्वरूप ही हैं जो सब कार्यजगत् है। तो तब तुम्हे क्या हक है कि श्रुति के विरुद्ध समष्टि व्यष्टि कार्य जगत् एव विश्व तैजस प्राज्ञ और विराट् हिरण्यगर्भ ईश्वर तक को अविद्या अज्ञान रूप बताओ ? और क्या तुम्ही फिर इस आगम प्रकरण मे आगे झख मार के इस प्रकार—

प्रणवो ह्यपरं ब्रह्म प्रणवश्च परः स्मृतः ।
अपूर्वोऽन्तरोऽबाह्योऽनपर· प्रणवोऽव्ययः ॥२६॥
प्रणव ह्यीश्वरं विद्यात्सर्वस्य हृदि संस्थितम् ॥२८॥

अर्थ—ओकार ही परब्रह्म है और ओकार ही अपर ब्रह्म माना गया है, वह ओकार अपूर्व (अकारण) अन्तर बाहर शून्य अकार्य तथा अव्यय है। इस प्रणव को ही सबके हृदय मे स्थित ईश्वर जाने। तो जब पर और अपर यानी जीव जगत् ईश्वर माया—प्रकृति परब्रह्म, सभी ओकार माना गया तो तुम्हारी अविद्या या अज्ञान बीज तुमने कहा से ला धरा ? जिसमे समूचा नही तो आधा ओकार को सोया हुआ मान लिया तुमने और यदि सोया ही हुआ माना तो यहा पर अपर ईश्वर ब्रह्म जीव को एक कैसे मान लिया तुमने ? क्या यह तुम्हारा प्रमाद नही है वा बौद्धो की सवृति जो अज्ञान अविद्या उन्होने मानी है, उसी नास्तिक मत का छिपा प्रचार नही है ? आ० शकर जी भी यहा इस कारिका के भाष्य मे कहते हैं कि (रज्जु मे सर्प ग्रहण के समान अन्यथा ग्रहण का नाम स्वप्न है। तथा तत्त्व के अप्रति बोध रूप तम को निद्रा कहते हैं। उस स्वप्न और निद्रा से विश्व और तैजस युक्त हैं) अत वे कार्य कारणबद्ध कहे गये हैं। किन्तु प्राज्ञ तो स्वप्न रहित केवल निद्रा से ही युक्त है। अब यह भाषार्थ शकर जी का है। तो हम अद्वैतवादियो से पूछते है कि तुम्हारी इस स्वप्न निद्रा वाली मान्यता के लिये कोई श्रुति सूत्रग्रन्थ का भी प्रमाण है ? तो वे अपने अद्वैतवादियों की कपोल कल्पित आधुनिक पुस्तक लोग बताते है, परन्तु एक भी किसी ऋषि मुनि प्रणीत ग्रन्थ का प्रमाण वे इस विषय मे देते ही नही। तब हम उनसे तर्क करते है कि बताओ जब सब कुछ एक ब्रह्म तत्त्व ही आदि मे था तो फिर तत्त्व का अप्रतिबोध वा अज्ञान किसे हुआ ? तो कोई अद्वैतवादी तो कहते है कि जीव को (प० वाचस्पति मिश्र तो जीव को ही अज्ञान होना मानते है) तो इनका ऐसा मानना तो कुछ ठीक भी है, किन्तु कोई अद्वैतवादी तो सीधा ब्रह्म को ही अज्ञान होना बतलाते हैं। क्योकि विद्यारण्य पचदशी मे ऐसा ही मानते है, तो चलो खैर। किन्तु जो तुम जीव को अज्ञान होना मानोगे तो तुम्हारे मत मे द्वैतापत्ति होगी, क्योकि अद्वैतवादी के मत मे, जीव अनादि ही नही किन्तु इनमे एकमत ऐसा भी चलता है कि (षट् अस्माक अनादय) हमारे मत मे एक ही नही छ अनादि है। तो देखो सुनो वैदिक त्रैतवादियो ? ये लोग तुमसे डबल भेदवादी हुये कि नही ? क्या इन्हे भी अब तुम अद्वैतवादी कहोगे ? परन्तु ये बडे ही चालाक है, इनके मत मे छ पदार्थ ये हैं—

जीवेशौच विशुद्धाचिद्विभेदस्तु तयोर्द्वयोः ।
अविद्या तच्चितोर्योग. षडस्माकमनाद्यवय ॥१
कार्योपाधिरय जीव कारणोपाधिरीश्वर ।
कार्यकारणतां हित्वा पूर्णबोधोऽवशिष्यते ॥२॥

(सक्षेप शरीरि का एव अद्वैत सिद्धि) मे ये दो श्लोक आये हैं।

अर्थ—जीव, ईश्वर, ब्रह्म तथा जीव ईश्वर का विशेष भेद, अविद्या और छठा चेतन का योग। ये हमारे अद्वैत मत मे अनादि हैं। परन्तु एक ब्रह्म को अनादि अनन्त मानकर बाकी पाचो को ये अनादि सान्त मानते हैं। और अनादि शान्त पदार्थ को प्रागभाव कहा जाता है—दार्शनिक परि-भाषा मे जैसे वस्तु की उत्पत्ति से पहिले प्रागभाव था। जैसे घट की उत्पत्ति से पहिले अनादि काल से उस घट अभाव था किन्तु घट की उत्पत्ति के साथ ही उस घट का जो प्रागभाव था उसका अब अभाव होगा, तो वही प्रागभाव अब अनादि सान्त कहा गया। तो इसी प्रकार ये अद्वैतवादी ब्रह्म को छोड बाकी को कार्य कारण भाव से ग्रस्त इन्हे पाचो को मानते होने से जो भी कार्य कारण जन्य होगा उन सबको ये बौद्धो के जैसे ही अविद्या, सवृति, कार्य कारण जन्य मान मिथ्या शान्त मानते हैं तो इनके मत मे कार्योपाधि जीव है और कारणोपाधि ईश्वर है तो कार्य कारणता का सर्वथा त्याग ही सम्यक् ब्रह्मबोध है जो वही परमार्थ अवशेष रहता है, सो ही परमार्थ सत्य एव बीच के ईश्वरादि पाचो ही सवृत्ति—अविद्या जन्य होने से व्यवहारिक सत्य हैं (याने कल्पित सत्य) हैं, तो उपरोक्त लम्बे विवेचन से आप विज्ञ पाठकगण अब समझ गये होगे कि ये लोगो का सब कुछ व्यवहार जन्य कार्य, अविद्यामाया के बगैर जरा भी आगे नही चलता है। चलो आगे बढे, तो हा कहिये अद्वैतवादी जी ? जब परमार्थ मे माया ही नही तो ब्रह्म मे फिर अज्ञान वा माया कहा से आ घुसी ? तो कहते हैं जैसे जल तो सर्वत्र परिपूर्ण ही रहता है किन्तु उस निर्मल जल मे से काई अपने ही आप उत्पन्न हो जाती है और उसी जल के कुछ भाग को ढक देती है, इसी प्रकार ब्रह्म मे से अज्ञान उत्पन्न होकर उसके एक भाग को ढक देता है। देखा साहिब ? दूसरो को तो ये लोग कार्य कारण भाव का विरोध करते हैं और आप ऐसा ब्रह्म से अज्ञान अविद्या वा जडता का अपने आप निकल आना ये कितना बडा कार्य कारणभाव मान लिया है। देखो ऐसे कार्य कारणभाव के लिये तुम्हारे किसी श्रुति सूत्र मे है कही ठिकाना ? तो इसी का नाम है वेदान्त के नाम से मनमाना सिद्धान्त चलाना। हम इनसे फिर से पूछते है कि यदि ब्रह्म से अज्ञान वा जडता निकल आई तो फिर वह अविद्या अनादि ही कहा हुई ? और तुम अद्वैतियो के मत मे तो उपरोक्त छहो अनादि माने गये है तत्त्व। और अनादि तो वही कहा जा सकता है कि (नतस्य आदि स एव अनादि) जिसका आदि नही वही अनादि हे। ता वे कहत है कि हम लोग अध्यारोप विधि से उत्पन्न होने वाले मायिक पदार्थों मे ही प्रागभाव मानते है। यानी जो अनादि सान्त पदार्थ हैं उनमे 'प्रागभाव हम मानते है और जिनमे प्रागभाव मानते है उनमे ही प्रध्वसाभाव अन्यान्याभाव मानते हैं। तो हम फिर पूछते है कि जैसे मिट्टी मे से जब तक घट उत्पन्न नही हुआ था तब तक उसका प्रागभाव था और उसमे से कुभार के द्वारा उत्पन्न होकर नष्ट हो गया वह प्रध्वसाभाव घट का माना। तो इसी प्रकार तुम मिट्टी मे से पट वस्त्र को कुभार के द्वारा उत्पन्न होना भी मानोगे क्या ? जो यदि कहो नही हा तो तुम्हारी अध्यारोप विधि निरर्थक पडी और आरोप मात्र से या कुभार के विचार या कैसे भी काय कुशलता से भी मिट्टी मे घट के बजाय पट वस्त्र तैयार न कर सकेगा, न हो सकेगा, तब मिट्टी से पट के होने मे अत्यन्ताभाव तो तुम्हे मानना ही पडेगा न? जो यदि कहो हा तो फिर साख्य वादियो का सत्कार्यवाद सिद्ध हो गया। कहो कैसे ? ती सुनो देखो ? मिट्टी म घटत्व धर्म स्वाभाविक ही अनादि था ऐसा जानकर ही कुभार अपन विचार युक्त प्रयत्न से घडा मिट्टी से तैयार कर सका, यदि घटत्व धर्म मिट्टी रूपी धर्मी मे जो अनादि काल से स्वाभाविक न होता। तो घट कभी कुभार बना ही नही सकता था बल्कि अध्यारोप विधि से कुभार मिट्टी से कपडा, रोटी, दाल ही क्या सभी धन धान्य लडके बाल बच्चे भी उसी मे से तैयार कर लेना किन्तु इन सबका होना करना उसकी मर्जी की बात नही या केवल ज्ञानाज्ञान की ही बात नही। इसी प्रकार ब्रह्म मे कोई कितनी भी भ्रान्ति की कल्पना करता रहे कभी भी भ्रान्ति अज्ञान उत्पन्न होना उस प्रभु पर ब्रह्म का धर्म ही नही। वह तो नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त सच्चिदानन्द स्वरूप ही स्वभाव से है तो वह अपने स्वभाव स्वरूप के विरुद्ध कैसे हो वा कर सकेगा ? कभी भी नही। और तत्त्व का अज्ञान तत्त्व को नही होता किन्तु तत्त्व का अज्ञान भ्रान्त अज्ञानी मनुष्य वा जीव को होता है सो वह तुम अद्वैतियो के मत मे जीव तो है नही। ● क्रमशः

गत.के से आगे—

योगी का आत्मचरित्र (गंगा से गंगा सागर)

सब ही आत्मचरित्रों की एक वाक्यता (२४)

(ले०– स्वामी सच्चिदानन्द योगी, अध्यक्ष श्री नारायण स्वामी आश्रम महामहिम पातञ्जल योग साधना संघ आ० वा० आ० ज्वालापुर, सहारनपुर)

महर्षि दयानन्द जीवन चरित्र मे देवेन्द्र बाबू और प० घासीराम जी ने ६२२ पृष्ठ पर ऋषि मुख से सुनी भक्तो की वार्ता को छपवाया है। ऋषि बोले —"मैं एक बार गङ्गोत्तरी से चलकर गगा सागर तक गया हुआ। था। हिमाच्छादित पर्वतो मे तथा गगा तट पर निराहार सोया हू।

आचरण मे ऋषि सिद्धान्तो को भुला देने वाला आर्यसमाजी कहलाने वाला क्या इस पर विश्वास करेगा? योगी का आत्म चरित्र छपने से पहले किसी ने भी इस सदर्भ का प्रतिवाद नही किया। आज भी प्रतिवाद करने का तो साहस नही पर योगी के आत्म चरित्र मे इस के विवरण को अल्पज्ञता और श्रद्धा हीनता स्वीकार नही करने देती।

श्री युधिष्ठिर जी मीमासक ने भी पूना प्रवचन मे अन्य प्रकाशको को नाइ छापा हैं— महादेव कैलाश के रहने वाले थे। कुबेर अलकापुरी के रहने वाले थे। यह सब इतिहास केदार खण्ड का वर्णन किया गया है। हम स्वय भी इन सब ओर घूमे हुये है।

आगे काश्मीर से नपाल तक सजीव आंखो देखा सो वर्णन है। (पृ० १०)

स्पष्ट है पूना प्रवचन—उपदेश मञ्जरी मे ऋषि ने कैलाश और अलकापुरी घूमने की घटना का उल्लेख किया है। इस उद्धृत सदर्भ के आरम्भ मे एक और वाक्य है —"विष्णु वैकुण्ठ मे रहने वाले थे और वही उनकी राजधानी थी। अगला वाक्य जिसको उद्धृत किया उसका इसमे भी सम्बन्ध है। एक ही तो सदर्भ है। अर्थात् ऋषि वैकुण्ठ नगर भी गये थे। यह वैकुण्ठ नगर कहा है यह खोजना पडेगा। ऋषि कोई बात अन्यथा नही कहते। यह सब काम खोजने के है। साधारण जन तो यही कहेगे। यह तुक है! वैकुण्ठ सागर कही हो सकता है। वैकुण्ठ तो विष्णु लोक का नाम है। वैकुण्ठ नगर राजधानी विष्णु की कह देना अललटप तुक है। जैसे भैरो गुफा आदि सब स्थानो की पुराणो की गप्प कहा गया। ऐसी बुद्धि पर दया आती है। यह क्या खोज करेंगे। इस समस्या को ले लायब्रेरी पहुचा। कोषो का छानना आरम्भ किया। अन्त मे The Colombia Lippeir cot-gazetteer of the world मे वैकुण्ठ पर मिला। ग्राम है। सरगिया डिस्ट्रिक्ट मध्य प्रदेश मे भारत मे। अम्बिकापुर से ४० मील कोरिया की पहली शाही स्टेट था। Formerly princely state of Koriya one of the Chhattisgharh states छत्तीसगढ स्टेटो मे एक थी। यही हो या वैकुण्ठ नगर दूसरा मिलेगा। विष्णु पद गया मे स्थिति एक पवित्र पर्वत है। मत्स्य पुराण मे ४९-६३ मे। गगा के उद्‌गम स्थान विष्णु पद कहा गया है ब्रह्माण्ठ २, २१, १७६॥ शब्द कल्पद्रुम मे पद्म पुराण के श्लोक दिये वैकुण्ड लोक मे विष्णु के घर का वर्णन करते हुये—

प्राच्यां वैकुण्ठलोकस्य वासुदेवस्य मन्दिरम्।
आग्नेय्या लक्ष्मीलोकस्तु, याम्यां सकर्षणालय.।
सारस्वत तु नैर्ऋत्यां, प्राद्युम्न: पश्चिमे तथा।
रतिलोकस्तु वायव्याम् उदीच्याम् निरुद्धभू.।
ऐशान्यां शान्ति-लोक स्यात्, प्रथमावरण स्मृतम्॥

पद्म उत्तर खण्डे २९ अध्याय

और खोज करने पर और भी मिलेगा। ऋषि कल्पना नही करते। तथ्य कहते हैं। लगता ऐसा है कि केदार खण्ड का ही कोई भाग है। केदार खण्ड की सीमा निर्धारण कर उसी मे खोजा जाये। या अन्यत्र जहा भी हो।

इसी दशम प्रवचन मे आगे लिखा है—"काशी, उजैन, हरद्वार आदि मे महादेव जी का राज्य था।" ऋषि सच्चे शिव की तलाश में घर से निकले। शिव कैलाशवासी हैं। पिता जी ने कहा था—"इस प्रतिमा ही के माध्यम से भक्तजन कैलाशपति भगवान् महादेव की पूजा करते हैं। यह पूजा उन देवाधि देव को इतना प्रसन्न कर देती है मानो प्रतिमा के स्थान पर वे स्वय ही विराजमान है।"

पूना प्रवचन मे इस काल के निश्चय यो ओजस्वी शब्दो मे रखा है— "तब मैंने निश्चय किया कि जब मैं इस त्रिशूलधारी शिव को देखूगा तब ही पूजा करूंगा अन्यथा नहीं" उस कैलाशपति शिव को कैलाश मे देखना ऋषि के लिये स्वाभाविक था। पूना प्रवचन दशम व्याख्यान मे स्पष्ट कहा हम स्वय भी इन सब ओर घूमे हुये हैं।"

थियासोफिस्ट मे भी अवान्तर रूप से इस उत्कट इच्छा को प्रकट किया है —

"But once that any object was ful filled, I felt a strong desire to visit the surroundings, with their eternal ice and glaciers, in quest of those true ascetics, I had heard of, but as yet had never met them. I was determined, come what might, to asecctain whether some of them did or did not live there as sumoured.

"बस किसी प्रकार मेरा लक्ष्य पूरा हो जाये। मेरी प्रबल उत्कट इच्छा जागी कि मैं चारो ओर, सदा हिमाछन्न पर्वतो और हिम पर्वतो पर पहुचू और सच्चे योगियो को खोजू। जिनके बारे मे मैंने सुना है, और आज तक मिलेनही हैं। मैं कृत प्रतिज्ञ था, कुछ भी हो कोई भी कष्ट आये, मैं निश्चय करूगा कि कोई उन योगियो मे से वहा है या नही जैसा मैंने सुन रखा है।" इस सकल्प को पूरा करने दयानन्द निकल पडे।

थियासोफिस्ट मे लिखा है —I proceeded Back to Kadar and reached Gupta Kashi केदार घाट और गुप्त काशी आया, वहा से यात्राये की—त्रिगुणी नारायण, गौरी कुण्ड, भीम गुफा, केदार, तुगनाथ की चोटी, ओखी मठ, गुप्त काशी, बद्रीनारायण, अलकनन्दा स्रोत अग्रम आदि एक दिन मे।

यह सारे स्थान ४० मील के एरिया मे १०, १२, १५ मील के अन्तर पर हैं। बद्रीनाथ भी ६० मील के लगभग ही होगा। "अवधूत अवस्था मे ४०-४० मील चलना मेरे लिये कोई बात न थी।" म० द० जी० च० पृ० ६२२। मैं कम से कम ५ योजन रास्ता अति क्रमण करता था।" यो० आ० पृ० १७८॥ एक योजना ९। ९ मील का होता है। ५ योजन ४०। ४५ मील का ही बैठता है। अब यात्राक्रम और समय मिलाइये। सर्वथा सही उतरतो है —

"अनुकूल ऋतु मे ऋषिकेश से रवाना हो के हम देहरादून आये।" पहले यही रास्ता था। इसी से जाते आते थे। गुरुवर योगेश्वर जी के काल मे ६० वर्ग पूर्व भी यही मार्ग चालू था। देखो हिमालय का योगी। अनुकूल ऋतु भी कैलाश यात्रा का यही है।' "There are only two seasons for climbing the Himalayas The pre-monsoon, e. I. March, April and May, and post monsoon e i mid september to to mid November During the pre mansoon season there is a sorf of bull, when the wind are quief as they say Calm before the storm. All the Everest climbs have been done in this bull period"

Hindustan Times sunday Nov 26 72

"हिमाल आरोहण के केवल दो ही मौसम हैं। वर्षा से पूर्व, अर्थात् मार्च, अप्रैल और मई। और वर्षा के उपरान्त अर्थात् मध्य सितम्बर से मध्य नवम्बर तक। वर्षा से पहले दिनो मे प्रकृति शान्त रहती है। हवायें नही चलती, इतनी शान्त जैसा कि कहा जाता है आधी तूफान से पहले की सी शान्ति। गौरी शकर शिखर की चढाइया इन्ही दिनो मे की गयी हैं।

(शेष (२४) भाग का अगले अक में)

गतांक से आगे—

योगी का आत्म चरित्र एक मनघडन्त कहानी

(लेखक—श्री स्वामी पूर्णानन्द जी सरस्वती-बड़ौत-जिला मेरठ)

सच्चिदानन्द ने यह लिख कर इतिहास के सम्बन्ध मे अपनी पूर्ण अनभिज्ञता का परिचय दे दिया। देखिये इतिहास क्या कहता है — "That son of Madhavarao and Ganga Bai was no other than to Nana Sahib Peshwa On the 7th of June 1827 Bajirao formally placed him on his lap and adopted him।" (सावरकर का अग्रेजी इतिहास पृष्ठ २३)

"अर्थात् माधव राव और गगा बाई का वह पुत्र नाना साहब ही था। २८ जून १८२७ को बाजीराव ने उसको गोद ले लिया।" इससे पता चल गया कि नाना साहब को गोद लेने वाला बाजीराव पेशवा था न कि माधव राव। दूसरा झूठ उसका यह है कि उसने यह तो लिखा कि "वास्तविकता का प्रकाश तो वीर सावरकर ने ५७ का स्वातन्त्र्य समर मे किया है।" परन्तु उसने वीर सावरकर के इतिहास से कोई ऐसा उद्धरण नही दिया जिसमे गगा बाई (नाना की माता) का लक्ष्मी बाई के साथ विशेष स्नेह सम्बन्ध और साहचर्य सिद्ध होता हो और यह भी कि लक्ष्मी बाई ने कभी २०० वीरागनाओ की वीरवाहिनी तैय्यार की हो ! और गगाबाई भी लक्ष्मीबाई के साथ कन्धे से कन्धा मिलाये जूझ रही हो। बिना किसी प्रमाण के केवल सावरकर का प्रशसात्मक वर्णन करके झूठ को छुपाया नही जा सकता। हम योगी जी को खुला चेलेज देते हैं कि वे किसी भी इतिहास से यह सिद्ध करद कि गगा बाई नाम की कोई महिला लक्ष्मी बाई के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर युद्ध मे लडी थी ? या उसने वीरागनाओ की कोई वीरवाहिनी बनाई हो ? जिस सावरकर के इतिहास को वास्तविकता का प्रकाश करने वाला लिखा है उसमे रानी लक्ष्मी बाई के तीन युद्धो का वर्णन है—१ मार्च सन् १८५८ मे झासी के किले मे, उसमे एक वर्णन मे लिखा है—'Its women carried ammunition on built Topkhans, supplied provisions दूसरे किसी सेना का सकेत नही मिलता अर्थात् झासी की स्त्रिया गोलाबारूद ढो रही थी, तोपखाने को बनाती थी और भोजन सामग्री इकट्ठी करती थी, (पृ० ३७९)। २ कालपी के पास कूञ्च गाव में मई सन् १८५८ से पृ० ३९४ से ४०० तक, इसमे स्त्रियो के भाग लेने का वर्णन नही।

३ ग्वालियर के किले मे २८ मई से १८ जून सन् १८५८ तक। इसमे इस प्रकार से वर्णन है —

'He two female friends, Mandar and Kashi, also faught bravely by her side May the sweet memory of these two patriotic girls—beautiful in appearance, with male othere donned on' (P 398)

अर्थात् उसकी (लक्ष्मी बाई की) दो सहेलिया मन्दर और काशो भी उसके साथ साथ बडी बहादुरी के साथ लडी। इन दोनो देशभक्त लडकियो की मधुर स्मृति भी याद रहनी चाहिये, वे पुरुष के वेश मे कितनी सुन्दर लगती थी ! सावरकर जी के इन उद्धरणो से दीनबन्धु जी और उनके वकील के छल कपट का पर्दा बिलकुल फट चुका है। अब भी यदि योगी जी चिल्लाये—मैं न मानू मैं न मानू ! तो हम उन्हे और भी खेल दिखालाने के लिये तैय्यार है।

देखिये योगी जी क्या जादू करते है ! "कोष को देखकर बगाली मे सहचरी का अनुवाद निहायत भद्दा सपत्नी कर दिया। धोखा इसलिये भी हुआ कि इतिहासकारो ने भी बिना खोज किये लिख मारा।' इसी को कहते है—'जादू वह जो सर चढकर बोले। अपने झूठ को आप ही खोले।' हाँ तो इतिहासकारो ने बिना खोज के क्या लिख मारा ? योगी जी कहते हैं —"The Rani was supported by Ganga Bai an other consort of the deseased prince" अर्थात् मृत राजा की दूसरी पत्नी गगा बाई ने रानी (लक्ष्मी बाई) का समर्थन किया।" इसी को तो हम जादू कहते हैं। सजग पाठक दीनबन्धु जी की लिखी हुई 'अज्ञात जीवनी' को पढकर यही अनुमान कर रहे थे कि यह 'अज्ञान जीवनी' ऋषि दयानन्द की कही हुई नही है। अपितु यह तो दीनबन्धु जी का षड्यन्त्र है और उसने अग्रेजी इतिहासो को और अनेक यात्रियो के यात्रा वर्णनो को पढकर ये सब बाते ऋषि दयानन्द के सिर मढ दी है। सो दीनबन्धु जी के वकील ने ही इस रहस्य का उदघाटन कर दिया कि 'गगा बाई को लक्ष्मी बाई की सपत्नी लिखने का कारण विन्सेंट के इतिहास मे गगा बाई को गगाधर राव की consort लिखना हैं। नही तो क्या कारण था कि ऋषि दयानन्द की अज्ञान जीवनी का बगला से हिन्दी मे अनुवाद करने के लिये अग्रेजी इतिहासो को टटोला गया। 'सहचरी' शब्द ऐसा नही है कि उसका अनुवाद करने के लिये बहुत से कोषो और इतिहासो को देखने की आवश्यकता पडे। 'सहचरी' सस्कृत का शब्द है और हिन्दी मे भी प्रचलित है। इसलिये वास्तविकता यही है कि ऋषि की अज्ञात जीवनी दीनबन्धु जी की घडी हुई है। अब योगी जी की अग्रेजी दानी और इतिहासज्ञाता का थोडा सा नमूना भी देख लीजिये।

ऊपर मैंने योगी जी को लेख को उद्धृत किया है अग्रेजी लेख की ४ पक्तियो मे ८ अशुद्धियां हैं जिनको छापे की गलती नही कहा जा सकता, जैसे—'far' के स्थान मे 'for' 'courage' के स्थान मे Courage, 'whom' के स्थान मे 'him' Tope के स्थान मे tope she के स्थान मे She, cooperated, के स्थान मे Coperated, Oxford के स्थान मे exford। आगे आगे पाठको पर अपनी अग्रेज दानी और इतिहासज्ञाता का रोब जमाने के लिये विन्सट की अनभिज्ञता को बतलाते हुये लिखते हैं —"विन्सेंट ने लिख मारा consort अर्थात् सम्बन्धित। सर्वथा अस्पष्ट। इसे यह भी नही पता कि नाना के जनरल तात्या को सहयोग देने वाली नाना की माता ही थी। इन इतिहासो के आधार पर अज्ञात जीवनी के तथ्य परखे जा सकते है।

मैंने विन्सेंट के उस सारे लेख को ऊपर उद्धृत कर दिया है जिसके एक अश को लेकर योगी जी ने इसको अनभिज्ञ बतलाया है। पाठक इन दोनो को लेखो को मिलाकर देखेगे तो वे स्वय कहेगे कि योगी जी 'उल्टा चोर कोतवाल को डाटे वाली बात करते हैं। विन्सट ने न तो co sort का अर्थ सम्बन्धित किया है और न उसने कोई बात अस्पष्ट कही है। उसने तो स्पष्ट कहा है—"मृत राजा की दूसरी पत्नी गगा बाई ने रानी का समर्थन किया था। 'another शब्द ही इस बात को बतला रहा है कि राजा की एक पत्नी रानी लक्ष्मी बाई थी और दूसरी रानी गगा बाई। यदि consort का अर्थ सम्बन्धित माना जायेगा तो रानी भी राजा की सम्बन्धित ही मानी जायेगी, जो सर्वथा झूठ है। अत यहा विन्सेन्ट की अस्पष्टता नही यहा तो योगी जी के मस्तिष्क मे झूठ का भूत बैठा हुआ इसको अस्पष्ट समझ रहा है।

यद्यपि ऐतिहासिक प्रमाणो से विन्सेन्ट का यह कहना गलत सिद्ध होता है कि राजा गगाधरराव की मृत्यु के पश्चात् लक्ष्मीबाई के अतिरिक्त उसकी कोई और पत्नी भी जीवित थी, परन्तु उसके शब्दार्थो मे कोई अस्पष्टता नही और दीनबन्धु जी ने तो विन्सेन्ट के उस झूठ को भी सत्य सिद्ध करने के लिये रानी गगा बाई को लक्ष्मी बाई के साथ हरद्वार भेज दिया और स्वय लक्ष्मी बाई के मुख से स्वामी जी के सामने परिचय देने हुये उसको 'रानी गगाबाई' कहलवाया। रानी नाम भी तो किसी राजा की पत्नी का या स्वय राज्य करने वाली स्त्री का होना है। नाना साहब की माता न तो किसी राजा की पत्नी थी और न वह स्वय राज्य करने वाली स्त्री थी। इसलिये योगी जी की सारी कल्पनाएं निर्मूल है योगी जी विन्सेन्ट के लेख मे से एक शब्द को भी नही समझ सके और उल्टा उन पर धोस जमाते है कि "इसे यह भी पता नही कि नाना के जनरल तात्या को सहयोग देने वाली नाना की माता ही थी। भला इसमे "विन्सेन्ट का क्या दोष है ? ससार का कोई भी इतिहास और इतिहासज्ञ यह नही जानता कि नाना साहब की माता ने युद्ध क्षेत्र मे तात्या टोपे को सहयोग दिया था। और वह बूढी स्त्री सहयोग दे भी कैसे सकती थी ? सब इतिहास बतला रहे है कि तात्या टोपे के साथ युद्ध मे नाना साहब की माता गगा बाई या कोई भी गगा बाई नाम की स्त्री नही गई।

(क्रमश)

गताक से आगे—

वेदाङ्गप्रकाश का स्वाध्याय

(श्री प० मदनमोहन विद्यासागर, प्रेम मन्दिर, महर्षि दयानन्द मार्ग नारायण गुडा—हैदराबाद, आ० राज्य)

१. वर्णोच्चारण शिक्षा

इसका भाव यह है कि "शब्दो के सम्यग् ज्ञान, अभ्यास व प्रयोग से मनुष्य को इहलौकिक और पारलौकिक दोनो प्रकार का सुख प्राप्त होता है।" इसलिये वर्णोच्चारण की श्रेष्ठ शिक्षा से शब्द के विज्ञान मे (पारगत बनने बनाने मे) सब लोग प्रयत्न करे" [व उ शि २]।

(प्रश्न) 'नादो' या ध्वनियो से कितने 'वर्ण' बनते है ?

अर्थात्—वर्णमाला मे कितने वर्ण होते है ? उनके कितने भेद हैं ?

(उत्तर) 'नादो' से तिरसठ 'वर्ण' बनते है। और वे अकारादि वर्णो मे विभक्त हैं (इनके स्वर और व्यञ्जन दो भेद हैं अर्थात्) उक्त वर्णो मे अवर्ग के वर्ण अकार आदि 'स्वर' और कवर्ग आदि वर्णो के वर्ण 'व्यञ्जन' कहाते है। स्वर वर्ण शब्दो मे शुद्ध स्वरूप से भी रहते है और व्यञ्जनो के साथ मे मात्रारूप से भी आते है (व उ शि ३)। वर्णमाला के (ककारादि) व्यञ्जनो मे, अकार (स्वर) का जो अनुबन्ध किया जाता है, वह उच्चारणमात्र के लिये है कि जिससे कि व्यञ्जन (वर्णो) का स्पष्ट उच्चारण हो (व उ शि १४)। ककारादि (व्यञ्जन) वर्णा का (अकारादि) स्वरो के साथ मेल और स्वरूप का विज्ञान बुद्धि से पढने-पढाने वालो को लिख-लिखाकर ठीक करना चाहिये (व उ शि ४)।

स्वर का लक्षण—जिनके उच्चारण मे दूसरे वर्णो के सहाय की अपेक्षा न हो, वे 'स्वर' कहाते है। स्वरो की 'ह्रस्व दीर्घ' और 'प्लुत' भेद से तीन सज्ञा है। इनके उच्चारण समय का लक्षण यह है कि जितने समय मे अङ्गुष्ठ के मूल की नाडी की गति एक बार होती है, उतने समय मे 'ह्रस्व', उसमे दूने काल मे 'दीर्घ' और उसके तिगुने काल मे 'प्लुत' का उच्चारण करना चाहिये (व उ शि ४)।

व्यञ्जन का लक्षण—जिनका उच्चारण विना स्वर के नही हो सकता, वे 'व्यञ्जन' कहाते है (व उ शि ५)।

(प्रश्न) वर्णो के उच्चारण मे किन बातो का विशेष ध्यान रखना चाहिये।

(उत्तर) पढाने वाले को योग्य है कि बालको से वर्णो के उच्चारण मे स्थान, करण अर्थात्—साधन और प्रयत्न का मुख्यत ध्यान रखे (स क) इसलिये जिस जिस अक्षर का जो जो स्थान, करण तथा प्रयत्न हो और उच्चारण का क्रम है, वैसा वैसा उसका उच्चारण करना योग्य है (व उ शि ६)।

'स्थान'—उसको कहते है, कि जहा से प्रसिद्ध अर्थात् प्रगट होके वर्ण सुनने मे आते है।

'करण'—स्थानो मे जिह्वा और वायु अर्थात् जीभ और प्राण के जिस सयोग से वर्णो का उच्चारण करना होता है, उसको 'करण' कहते हैं।

'प्रयत्न'—वर्णो के उच्चारण मे (जीभ और प्राण के) पुरुषार्थ से जो यथावत् क्रिया करनी होती है, वह 'प्रयत्न' कहाता है। (व उ शि १५)।

इसका भाव यह है —

१ जिन 'अकारादि' स्वर 'ककारादि' व्यञ्जन वर्णो तथा 'ह' का जिह्वा के मूल कण्ठ के अग्रभाग का कल्क के नीचे का देश 'कण्ठस्थान' है, उसमे इनका शुद्ध उच्चारण।

जिन 'इकारादि' स्वर, 'चकारादि' व्यञ्जन वर्णो तथा 'श' का दान्तो के ऊपर 'तालुस्थान' है, उससे इनका उच्चारण।

जिन 'ऋकारादि' स्वर, 'टकारादि' व्यजन वर्णो तथा 'ष' का तालु के ऊपर 'मूर्द्धा स्थान' है, उसमे इनका शुद्ध उच्चारण।

जिन 'लृकारादि' स्वर, तकारादि' व्यजन वर्णो तथा 'स' का दान्तो मे जिह्वा लगा के 'दन्त स्थान' (=दन्त मूल) से शुद्ध उच्चारण और।

जिन 'उकारादि' स्वर, 'पकारादि' व्यजन वर्णो का 'ओष्ठ स्थान' से शुद्ध उच्चारण करना तथा इसी प्रकार सब वर्णो का शुद्ध उच्चारण सब सन्तानो व विद्यार्थियो को सिखाना चाहिये।

२ I सब वर्णों के उच्चारण में (यद्यपि जिह्वा और प्राण वायु दो साधन हैं, तथापि) जिह्वा मुख्य साधन है; क्योकि उसके बिना किसी वर्ण का उच्चारण कभी नही हो सकता। और जिस जिस वर्ण का जो जो स्थान कहा है, उस उस में जिह्वा लगाने ही से उनका ज्यो का त्यों उच्चारण होता है। "इस प्रकार से मुख के भीतर स्थानों में जिह्वा से उच्चारण क्रिया जाननी चाहिये (व उ शि ६-९)।

II सन्तानो व विद्यार्थियो को 'प्राणायाम क्रिया' की भी यथोचित शिक्षा देनी चाहिये। इससे भी वर्णो के उच्चारण में माधुर्य, धैर्य, सुस्वरता और लयसामर्थ्य आदि उच्चारण के गुणो की वृद्धि होती है (स क.)।

३ 'प्रयत्न' दो प्रकार के होते हैं :—आभ्यन्तर और बाह्य।

I जिन ककार से लेकर मकार पर्यन्त पच्चीस वर्णों का 'स्पृष्ट प्रयत्न' है, अर्थात् जिह्वा से स्वस्व स्थानो में स्पर्श करके इन वर्णों का उच्चारण करना शुद्ध है।

इसी प्रकार 'य र ल व' वर्णो का ईषत् स्पृष्ट, 'श ष स ह' का 'ईषत् विवृत्त' या विवृत्त और स्वरो का विवृत्त प्रयत्न अर्थात् उक्त स्थानो से जिह्वा के स्पर्श के विना उच्चारण करना योग्य है (व उ शि १०)।

ये आभ्यान्तरो प्रयत्नो के उदाहरण हैं।

II जिन कवर्गादि पाचो वर्गों के प्रथम, तृतीय और पञ्चम वर्णो तथा य र ल व के उच्चारण मे थोडा बल लगता है, वे 'अल्पप्राण' और जिन कवर्गादि पाचो वर्णो के द्वितीय व चतुर्थ वर्णो तथा श ष स ह और अकारादि स्वरो के उच्चारण मे अधिक बल लगता है, वे सब 'महाप्राण' कहाते हैं।

ये बाह्य प्रयत्नो के उदाहरण हैं।

इस प्रकार जो स्थान, करण और प्रयत्न कह चुके हैं, उनका ज्ञान अवश्य कर (करावे)। (व उ शि ११, १२)।

(प्रश्न) स्वरो और व्यजनो के उच्चारण मे कितने दोष हैं ?

(उत्तर) स्वरो के उच्चारण मे निम्न दोष होते है।

(ग्रस्तम्) जैसे किसी वस्तु को मुख मे पकड (या दबा) कर बोलना,

(निरस्तम्) जैसे किसी वस्तु को मुख से ग्रहण करके फेक देना;

(अविलम्बितम्) जिस (वर्ण) का उच्चारण पृथक् पृथक् करना चाहिये, उसको वर्णान्तिर मे (अर्थात् दूसरे वर्ण के साथ) मिलाके बोलना,

(निर्हतम्) जैसे किसी (वर्ण) को धक्का देना (जैसा बोलना),

(अम्बूकृतम्) जैसे मुख मे जलभर के (अस्पष्ट) बोलना,

(ध्मातम्) जैसे रूई को धुनना (वैसे) वा लोहार की भाठी (=भट्टी) के (शब्द जैसा) उच्चारण करना,

(विकम्पितम्) जैसे कम्प करके (अर्थात् कम्पती आवाज मे) बोलना,

(सन्दष्टम्) जैसे किसी वस्तु को दान्तो से काटते हुए बोलना,

(एणीकृतम्) जैसे हरिण कूद के चलते है, वैसे (वर्णो को) ऊपर नीचे ध्वनि से बोलना,

(अर्द्धकम्) जितने समय मे जिस वर्ण का उच्चारण करना चाहिये, उससे आधे समय मे बोलना,

(द्रुतम्) त्वरा (अर्थात् जल्दी जल्दी) से बोलना और,

(विकीर्णम्) जैसे कोई वस्तु बिखर जाय, वैसा उच्चारण करना, ये सब दोष उच्चारण करने हारो के हैं (व उ शि ५, ६)

२ व्यजनो के उच्चारण मे भी दोषो को छोडकर बोलना चाहिये। जैसे तालव्य शकारो (=श श) के उच्चारण मे मूर्द्धन्य षकारों (=ष ष) का, 'च' के स्थान पर 'ज' का, 'क' के स्थान पर 'ग' और 'ट' को 'त' या 'त' को 'ट', 'ड' को 'र' का, 'प' को 'भ' का उच्चारण करना व्यञ्जनो के उच्चारण करने हारो के दोष हैं (व. उ. शि ६)

(प्रश्न) उच्चारण करने वालो के गुण क्या होते हैं ?

(उत्तर) १. (माधुर्यम्) वर्ण (शब्द व वाक्यो) के उच्चारण में मधुरता।

(अक्षर व्यक्ति) (पदो के उच्चारण के समय, उनके घटक) भिन्न भिन्न अक्षरो का स्पष्ट उच्चारण।

(शेष पृष्ठ ११ पर)

शर्मा जी की नई सूझ !

महर्षि दयानन्द को विष दिया गया।

ऋषिवर के बलिदान की अमर कहानी (१०)

(ले०—श्री राजेन्द्र 'जिज्ञासु' एम० ए० बी० टी०, प्रा० दयानन्द कालिज अबोहर)

इससे पूर्व कि हम श्री शर्मा जी के कुछ नये तर्कों का उत्तर द पाठको को यह बारम्बार स्मरण कराना चाहते हैं कि पश्चिमो विद्वान् श्री मैक्समूलर ने भी ऋषि का बलिदान विषपान से ही लिखा है। मैक्समूलर श्री बाबा छज्जूसिह का मित्र न था। आर्यसमाजो भो न था। ऋषि ने तो उसे रगडा भी दिया। उसने वेद धर्म पर भोषण प्रहार किये। वह भी ऋषि का बलिदान जब विषपान से लिखता है तो शर्मा जो क्या उस पर भी अन्ध श्रद्धा का आरोप लगायेंगे ? शर्मा जो को हम बता देने हैं कि मैक्समूलर ने बाबा छज्जूसिह जी का लिखा जीवन चरित्र नही पढा था। उसकी मृत्यु १६०० ई० मे हो गई। यह पुस्तक १६०३ मे प्रकाशित हुई।

श्री शर्मा जी ! यदि ईश्वर मे कुछ कच्चा पक्का विश्वास है तो इतना तो मान जावे कि मैक्समूलर, वीर लेखराम जी का शिष्य भी न था। अत प० जी के कहने पर भी उसने ऐसा न लिखा। उसकी जानकारी का स्रोत और ही था। अब भी आप दिन को रात कहे तो इसका क्या इलाज ?

अब पाठक शर्मा जी की भी सुने। उनको एक नई बात सूझी है। जब हरयाणा की जनता का ५०००० रु० उन तक पहुचाने की व्यवस्था बन रही थी तब तक उनको यह नई बात न सूझी थी। जब पत्रो मे 'ऋषि का अन्तिम मास' आदि लेख दिये तब तक भी यह नया इहलाम नाजिल न हुआ था। यह तो जिज्ञासु व पूज्य आनन्द स्वामी जी को हो कृपा समझे कि एक नई वही नाजिल हो गई है। अब शर्मा जी महात्मा जी को कोस रहे हैं। उन पर दोष लगाया है कि प्रतिनिधि सभा के रिसीवर बन जाने के कारण उन्होंने आर्यमर्यादा मे उनकी 'नई खोज' की शव परीक्षा कर दी है।

मेरे बारे मे तो वह बहुत कुछ लिख रहे हैं कह रहे हैं। एक रुचिकर तर्क अब दे रहे हैं 'जिज्ञासु' को पता ही नही कि प० लेखराम ने स्वामी दयानन्द का जोवन चरित्र लिखा ही नही। उन्होने तो केवल सामग्री एकत्र की। जो सामग्री इकट्ठी की, उसमे पीर इमाम अली का कथन नही है। अपने २२-१-७३ के पत्र मे आपने मान्य जावेद जी को यह बात लिखी है।

प० लेखराम जी ने ऋषि जीवन लिखा या नही इसका मैं यहा उत्तर नही देता। अच्छा हो यदि हमारे अत्यन्त स्नेही स्वाध्याय प्रमी मास्टर निहालसिंह जी आर्य इस विषय मे कुछ पक्तिया 'आर्यमर्यादा' आदि पत्रो मे लिख दे। अन्य भाई भी हिन्दी मे अब उक्त पुस्तक आर्यसमाज नया बास व श्री स्वामी ओमानन्द जी से लेकर पढ व लिखे। मुझे तो इस विषय मे शर्मा जी कुछ ज्ञान है या नही आपके शब्द ही आपके व पाठको के सामने रख देता हू। एक आपके नये मित्र बने हैं व्याकरण के महा पडित पूज्य मीमासक जी। उनकी मासिक पत्रिका के अक्तूबर १६७२ ई० के अङ्क पृ० १३ पर आपने लिखा है, "प० लेखराम ने (पृ० ८७१) लिखा है कि उन्होने उनको कहा कि उनके विचार मे उनको विष दिया गया था। पीर इमाम अली ने ।" आगे भी प० जी का ही नाम ले लेकर आपने पीर जी की चर्चा की है।

अब शर्मा जी आप ही बताए कि आप किस प्रयोजन से सत्य की हत्या कर रहे हैं ? एक झूठ को छिपाने के लिये नये नये झूठ घड रहे हैं। बुढापे मे यह पाप किसलिये ? हमे आपकी यह दयनीय अवस्था देखकर दु ख हो रहा है। पाठक भी शर्मा जी के आक्षेप व उन्ही के शब्दो मे मेरे उत्तर को पढकर देखे कि यह वयोवृद्ध महारथी कितनी सत्यनिष्ठा रखते हैं। महात्मा आनन्द स्वामी जी पर खोजने से लाभ न होगा। अपने मन की मलीनता दूर करने से शान्ति मिलेगी। आपके २२-१-७३ के पत्र की बात सत्य है या अक्तूबर १६७२ के लेख मे लिखो सत्य है ? दोनो मे से एक तो झूठी आप मानगे हो। शर्मा जो यह झूठ को आदन अब बुढापे मे तो छोड दे।

शर्मा जी लिखते हैं कि मेरी पुस्तक उन्नीसवी शताब्दि मे आर्यसमाज के प्रभाव के बारे मे है। उसमे श्यामभाई, वशोभाई, प० नरेन्द्र जी की चर्चा कैसे करता ? शर्मा जो अपने पोल आप ही तो खोलो। हम चुप थे। अब आप ही बोल पडे। भला यह तो बताए कि आपने अपनी जो घटना दी वह किस शती की थी ? उन्नीसवी या बीसवी ? मुलतान प्लेग किस शती मे आई ? आपने अपने स्पष्टीकरण मे हैदराबाद सत्याग्रह का स्वय ही तो उल्लेख किया था। यह सत्याग्रह १६३८-३६ ई० मे हुआ। गणित वाले कहते हैं १६३८ ई० तो बीसवी शताब्दि मे पडता है। अब आप इसे इस कारण तो उन्नीसवी शताब्दि न मान ल क्योकि 'जिज्ञासु इसे बीसवी मे मानता है। अब मेरा क्या दोष—जब १६३८ ई० है ही बीसवी शताब्दि मे। आपने १६३८ ई० का घटना का सकेत तो दिया और घटना वालो का इसलिये उल्लेख आप नहा कर पाये क्योकि वह आपके विचार मे दूसरी शताब्दि मे पडते हैं। शर्मा जी मै आपको मनोदशा को समझता हू। बहुत समय बीता कुवर सुखलाल जी ने लिखा था —

तर्क के तीर बर्साए इस ओर से।

बस आप पर भी वही बीत रही है। शर्मा जो झूठ के पाव कहा ?

शर्मा जी डा० भारतीय जी को कहते हैं कि 'जिज्ञासु' के लेखो मे आवेश व आक्रोश है। ठीक है महाराज ! मैं स्वय मानता हू। मैंने वर्षों नियमपूर्वक तेजोऽसि—मन्त्र का पाठ किया। मन्यु रखता हू। मेरे ऋषि के विषय मे, वीर लेखराम, बाबा छज्जूसिह, महात्मा हसराज, सुदर्शन जी, आचार्य रामदेव जी आदि पर आप प्रहार कर और हमे आवेश न आए ? मैं चेतन हू जड नही। महात्मा आनन्द स्वामी, स्वामी सर्वानन्द जी जैसे महापुरुष तडप उठे मैं तो छोटा सा व्यक्ति हू। ●(क्रमश)

"निर्भय होकर बढ़ो लक्ष्य तक !"

(श्री राधेश्याम श्रीवास्तव 'आर्य' एम ए भगवत भक्त आश्रम, लखनऊ)

दानवता का अनुगामी बन, कहाँ जा रहा मानव दल ?
भ्रष्ट पथो पर बढा जा रहा, गति कितनी है अधिक प्रबल ?
स्वार्थ हितो की पूर्ति हेतु, कर रहा मनुज कैसा दुष्कर्म ?
मानवता का प्रिय अचल तज, छोड रहा है अपना धर्म ?
कर्म केतु हम त्याग, पराजित-सा करते है पश्चात्ताप।
अपने हाथो बने हुए हे-अपने कर्मो के अभिशाप।
आशाए हैं मौन बनी अब, हुइ दिशाए सब सभ्रान्त।
मलयानिल की मृदुल झकोर-खोज रही है अब एकान्त।
निरुद्देश्य सा प्रगति पन्थ पर, हुआ मनुज समुदाय भ्रमित।
दुस्तर पथ पर बढने से हो-गया कहा असहाय श्रमित ?
कैसे हुआ ? कहा से हमने-सीखा यह अज्ञान प्रबल ?
कहा गयी सद्बुद्धि हमारी ? कहा गया पावन सम्बल ?
निद्रा त्याग सुपथ पर आओ ! मनुसुत ! जगने की बेला।
निर्भय होकर बढो लक्ष्य तक, चाहे चलना पडे अकेला। ●

महाविद्यालय गुरुकुल झज्जर (रोहतक) का ५८ वां वार्षिकोत्सव

प्रतिवर्ष की भाति इस वर्ष भी शिवरात्री पर महाविद्यालय गुरुकुल झज्जर का उत्सव मनाया जा रहा है। जनता से अनुरोध है कि वह ३, ४ मार्च शनिवार, रविवार को गुरुकुल मे दर्शन देकर महोत्सव को सफल बनावे।

—अमीलाल अधिष्ठाता

हरयाणा सर्वखाप के इतिहास मे

"महर्षि दयानन्द का समुज्ज्वल यश"

(श्री निहाल सिह आर्य, बी० ए० अध्यापक रामपुरा देहली)

महर्षि दयानन्द दो बार मुजफ्फरनगर में आये थे। दोनो बार ही सौरम ग्राम के पचासो सज्जन ऋषि जी के दर्शन करने के लिये गये थे। एक बार प्रथम दिन जब स्वामी दयानन्द ने मुजफ्फरनगर मे अपना प्रभाव पूर्ण भाषण दिया तो कुछ विरोधी दुर्जनो ने एक वेश्या को साठ रुपये देकर यू कह दिया कि कल जब स्वामी दयानन्द सभा मे अपना भाषण करने लगे तो तुम सभा मे आकर दूर से ऊची बोलकर यू कह देना कि स्वामी जी, आपने मेरे रात के पैसे नही दिये। वे लोग स्वामी जी का अपयश करना चाहते थे। जब अगले दिन यथा नियम स्वामी जी अपना भाषण कर रहे थे। और खूब जन समूह एकत्र हो गया तो पूर्व योजना के अनुसार वह वेश्या उस जन समूह मे आई और वहा स्वामी जी को कहने लगी कि स्वामी जी आप ने मेरे आज रात के पैसे नही दिये। उस वेश्या की यह बात सुनकर स्वामी जी ने उसे प्यार से कहा कि अच्छा बेटी तुम्हारे पैसे दूंगा। इन शब्दो को सुन कर स्वामी जी की सच्चरित्रता का उस वेश्या पर जादू का सा एक दम प्रभाव पडा और उसका हृदय द्रवित हो गया और तत्काल जन समूह मे स्वामी जी के सामने नीचा मुख करके रो पडी और कहने लगी कि हे महाराज! मैने यह बात इन विरोधियो के कहने से कही है। इन्होने मुझे साठ रुपये दिये है। मुझ से बडा अपराध हो गया। आप मुझे क्षमा कर दे। इस प्रकार स्वामी जी की निर्दोष आदर्श वाणी मे प्रभावित हो कर उसने सत्यता भी प्रकट कर दी और प्रायश्चित भी किया। यह घटना भटोणा के चौ० गगाराम ने भी बताई थी जब सन् १८५६ ई० मे स्वामी जी मुजफ्फरनगर गये तो उनके दर्शनार्थ सौरम ग्राम से हरयाणा सर्वखाप पचायत के वर्तमान मन्त्री चौ० कबूलसिह जी के दादा श्री नानक चन्द और चौधरी मागे राम भी गये थे। मागे राम जी के पिता श्री विजय सिह ने भी स्वामी जी को वही देखा था। श्री नानक चन्द जी उस समय सौ (१००) ग्रामो के माने हुये सर्वप्रथम योग्य पडित मल्ह थे। और इन्होने एक वर्ष पर्यन्त महर्षि दयानन्द के साथ भ्रमण भी किया था। इनके सामने ही चादपुर मेले मे मौलवी अब्दुल कासिम ने स्वामी दयानन्द से शास्त्रार्थ किया था। उस मौलवी ने स्वामी जी से प्रभावित हो कर कहा कि मै आपका मुरीद हू आप ने दुनिया के हर मजहब का अधा एतकाद (अधकार) दूर कर दिया अत मै प्रभावित हो कर आपको एक पगडी और पच्चीस रुपये भट करता हू। आप इस युग के सब से बडे वली अल्लाह (ईश्वरीय उपदेशक) है।

वहा शास्त्रार्थ मे बीसियो मौलवी और भी विद्यमान थे। उस समय नानक चन्द जी मारी खाप बालायन के गुरु माने जाते थे। उन्होने शास्त्रार्थ के पश्चात् स्वामी जी के प्रति यो कहा कि पारस के साथ लोहा भी सोना बन जाता है। श्री नानक चन्द ने चौ० कबूलसिह को बताया था कि स्वामी दयानन्द का कद छ फुट दश इञ्च (६'—१०") ऊँचा था। चौधरी कबूलसिह के पास महर्षि दयानन्द के वास्तविक जीवन चरित्र की पुस्तक थी जो इनके गुरु श्री गेदालाल शास्त्री आर्य शास्त्रार्थी ने माग कर ले ली थी जो शाहपुर जिला मुजफ्फरनगर मे रहते थे। उनके पास मे वह पुस्तक किसी ने चुरा ली।

जब श्री नानक चन्द स्वामी जी के साथ एक वर्ष तक रहे थे। उन्ही दिनो मे वे एक दिन स्वामी जी के साथ गगा नदी के तट पर घूम रहे थे। एक स्थान पर एक लम्बा मोटा मगरमच्छ दलदल मे अकडा पडा था उसे देखकर कुछ चचल लडको ने उस मगरमच्छ की कमर मे एक लम्बा रस्सा लाकर बाध दिया। वे उसे बाहर खेंच रहे थे। परन्तु मगर मच्छ ने अपने पजे उस गढ्ढे को दलदल में जोर से गाड दिये और टस से मस भी न हुआ स्वामी जी ने जब यह घटना देखी तो उन लडको को तो हटा दिया और वह रस्सा अपनी कमर मे लपेट कर उस मगर मच्छ को बलपूर्वक खेंच कर बाहर निकाल दिया कि अब यह अन्यत्र जल मे चला जायेगा। स्वामी जी के शारीरिक बल की यह घटना श्री नानक चन्द जी ने ही बताई थी परन्तु वहा से स्वामी जी के चले जाने के पश्चात् उन लडको ने मिलकर उस मगर मच्छ को पत्थरो और लठों से मार ही दिया।

मैने यह लेख हरयाणा सर्वखाप पचायत के इतिहास मे से वर्तमान मन्त्री श्री कबूलसिह जी की जानकारी के आधार पर ही लिखे है इसका सारा श्रेय उन्ही को है अत मैं उनका सविनय सम्मान करता हू। कई इतिहासकारो ने मन्त्री जो से लाखो रुपये के बदले इस इतिहास सामग्री को मोल लेना चाहा परन्तु मन्त्री जी ने इस प्रलोभन को ठोकर मारकर सारे हरयाणा के इस गौरवपूर्ण इतिहास की सुरक्षा की है जिसमे ऐसी सहस्रो वीर गाथाये भरी पडी है। अत श्री कबूलसिह जी प्रतिष्ठा तथा बधाई के सुपात्र है। इनकी पूर्ण सहायता करके हरयाणा वासियो तथा सरकार को यह सारा इतिहास प्रकाशित करना चाहिये। आर्यमर्यादा के कुशल विद्वान् सम्पादक महोदय का भी मैं हार्दिक धन्यवाद करता हूँ। ●

गताक से आगे—

कामधेनु को छाडि आर्य, छाया छेरी चले दुहावन (४)

(लेखक— श्री खेमचन्द यादव डब्ल्यू १८ ग्रीन पार्क, नई दिल्ली)

जनता उन के द्वारा लूटी जा रही है दुख पा रही है। आप वैदिक सिद्धान्तो के मानने वाले हैं। निश्चय जानिये सत्य यही मार्ग है। दूसरे इनके विपरीत जाल व फरेब ही हैं। इन सिद्धान्तो को मानने वाला स्वत ही शक्तिशाली है, उसके सामने पाखण्ठ ठहर ही नही सकता। चोर बलकान होता है मगर चोरी के दुष्कर्म के कारण उसका बल क्षीण हो जाता है, इसी लिये यदि घर मे छोटा बच्चा भी जाग जाता है तो उसे पसीना आ जाता है और वह भाग खडा होता है। इसी प्रकार वैदिक सिद्धान्त तर्क और बुद्धि की कसौटी पर खरे उतरने के कारण दृढ है इनके आगे असत्य ठगी वाले अन्य सिद्धान्त ठहर ही नही सकते। उनकी पोल खुलनी प्रारम्भ हो जाती है और उनको मानने वाले मैदान छोडकर एक दो तीन हो जाते देखे गये है। याद रखिये इस शुभ कार्य के लिये आपको कोई बुलावेगा नही, नही आपका स्वागत होगा। हो सकता है आप बेइज्जत भी हो जावे। यह आपको सहना होगा। यही आपका तप होगा जो आपको और आगे बढने में सहायक होगा। आपका तेज बढेगा। इस प्रकार के प्रचार मे आपको दो प्रकार के व्यक्तियो से निबटना होगा एक तो वे जो स्वय गुरु आदि हैं और उनके दलाल। यह बडे बुद्धिमान और बहुधा क्रूर होते है उलटी सीधी सब चाल चलना जानते हैं और चलते हैं। याद रखिये आपके प्रचार से इनकी रोजी बन्द होती है अतएव इनसे आपको तैयार होकर कुछ साथियो क साथ दृढता और निर्भयता से भिडना होगा। अगर आप इनकी भभकी में न आये तो यह सब समझते हैं मैदान छोड देगे। दूसरे है वे भोले भाले नर नारी जो इनको भेड है। इनको प्रेम से लगातार समझा कर सच्चा मार्ग दिखाकर चगुल से निकाल सकते हे। इस प्रकार आप वैदिक सिद्धान्त रूपी कामधेनु के सहारे अपनी शक्ति अनुसार अपने भाले भाइयो को अमृत पिलाकर ऋषि ऋण उतारने मे सफल होगे और यश के भागी बनेंगे। यदि आपकी सच्ची लगन है तो सफलता अवश्य हो आपको मिलेगी। छोडिये यह आशा कि जगद्गुरु या करपात्री जी महाराज आदि इस काम को कर सकेंगे। यह आशा तो निश्चय ही छाया छेरी दुहाने समान है।

प्रभु भी उनकी ही सहायता करता है जो अपनी सहायता स्वय करता है। आओ! प्रत्येक आर्य ऋषि दयानन्द सरस्वती का सच्चा सैनिक बने और प्रतिदिन जितना बन पडे, अविद्या अन्धकार को मिटाने, वैदिक सिद्धान्तो के प्रचार मे भरसक प्रयत्न करना प्रारम्भ कर दे। अवश्य ही इस से प्रचार की गति तीव्र होगी, जाग्रति फैलेगी।

यह लेखमाला सफलता के उन नमूनो को देखकर लिखी गई है जो कि इस प्रकार के साधारण आर्य जनो द्वारा अपनाये गये। मैं उनमे मे कुछ का विवरण पाठको की जानकारी एव उनके उत्साह की वृद्धि हेतु देना आवश्यक समझता हूँ। परन्तु यह ठहरा दूसरा विषय। अतएव इस प्रसङ्ग को यही समाप्त कर आगे कभी दूसरी लेखमाला में उन उदाहरणो को प्रस्तुत किया जावेगा।

करुणामय भगवान् हम आर्यों को बल बुद्धि लगन दे, ताकि हम बिना दूसरो का मुंह ताके ऋषि दयानन्द के मिशन को आगे बढाने मे लग सके। ●

"आर्य उच्चतर माध्यमिक विद्यालय पानीपत"
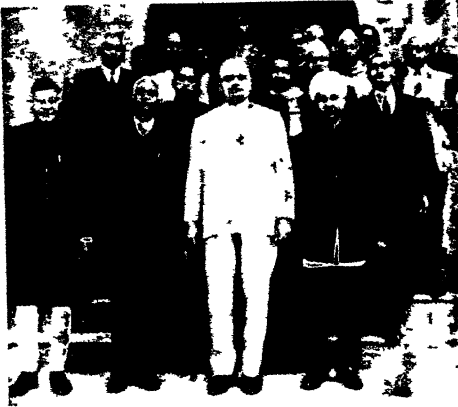
रजत जयन्ती समारोह ७-२-७३ को श्री चिरंजीलाल शर्मा मंत्री सार्वजनिक निर्माण विभाग हरयाणा की अध्यक्षता मे सम्पन्न हुआ। विद्यालय का विवरण प्रस्तुत किया गया। छात्रो द्वारा सगीत और सवाद का मनोहारी कार्यक्रम प्रस्तुत किया गया। विद्यालय के आचार्य श्री नित्यानन्द जी ने मत्री महोदय को अभिनन्दन-पत्र भट किया तथा ला० रामगोपाल एडवोकेट ने उनका स्वागत किया। मत्री महोदय ने भाषण देते हुए कहा कि अध्यापको को अन्य सभी कामो की अपेक्षा छात्रो को शिक्षा की ओर विशेष ध्यान देना चाहिये। —निज सवाददाता

हिन्दी टलीफोन डायरेक्टरी

केन्द्रीय सचिवालय हिन्दी परिषद्, नई दिल्ली को लिखे अपन पत्र मे सचार मत्रालय ने सूचित किया है कि जहा जहा से हिन्दी टेलीफोन डायरेक्टरिया प्रकाशित होती है, उन सभी सर्किलो तथा टेलीफोन जिलो के अध्यक्षो को निदेश दे दिया गया है कि वे टेलीफोन डायरेक्टरियो के हिन्दी और अग्रेजी सस्करण एक साथ प्रकाशित किया करे।

परिषद् को इस प्रकार की शिकायत मिली थी कि हिन्दी डायरेक्टरियो को अग्रेजी डायरेक्टरियो के प्रकाशित हीने के बहुत देर बाद प्रकाशित किया जाता है। सचार मत्रालय का उक्त स्पष्टीकरण इस सदर्भ मे उत्साहजनक है।

परिषद् ने हिन्दी प्रेमी सस्थाओ एव व्यक्तियो से पुन प्रार्थना की है कि हिन्दी टेलीफोन डायरेक्टरियो को लोकप्रिय बनाने के लिये विशेष अभियान चलाए।

—जगन्नाथ सयोजक, राजभाषा कार्य केन्द्रीय सचिवालय हिन्दी परिषद्।

[पृष्ठ ८ का शेष]

(पदच्छेद) (वाक्यो के उच्चारण के समय, उनके घटक) पृथक् पृथक् पदो का स्पष्ट उच्चारण।

(सुस्वर) सुन्दर ध्वनि।

(धैर्यम्) धीरता (अर्थात् उच्चारण मे गम्भीरता)।

(लयसमर्थम्) (उच्चारण समय मे उचित) विराम तथा सार्थकता, ह्रस्व दीर्घ प्लुत एव उदात्त अनुदात्त स्वरित का ध्यान रखना और स्पर्श आदि आभ्यन्तर तथा विवारादि बाह्य प्रयत्न से अपने अपने 'स्थानो मे उच्चारण करना उच्चारण करने वालो के गुण हैं।

२ उच्चारण करने वाले के भाषण वा वार्त्ता मे यदि वे सब बाह्य गुण हैं, परन्तु उसका भाषण वा वार्त्ता 'असत्य' है, तो भी उसका यह उच्चारण दोष युक्त ही माना जावेगा। क्योकि "सत्यभाषणादि भी वर्णो (पदो, वाक्यो) के उच्चारण करने वालो के गुण है।" (व उ शि ५)। अभिप्राय यह है कि उच्चारण के समय वर्णो की शुद्धता के साथ साथ उच्चारण किया गया विषय 'सत्य' होना चाहिये।

इस प्रकार सब विद्वान् मनुष्यो को उचित है कि जिस जिस प्रकरण मे जिस वर्ण के उच्चारण के लिये, (जैसा योग्य हो, वैसा) उसको ठीक ठीक जानकर विद्यार्थियो को जनाके शब्दाक्षरो के प्रयोग (अर्थात् अभ्यास व उच्चारण) ज्यो के त्यो (अर्थात् यथोचित) करके, (विद्वानो में स्वयं) प्रशसित हो, सदा आनन्द से युक्त रहे और सब विद्यार्थियो को भी वर्णोच्चारण शुद्ध कराकर आनन्द मे रक्खें (व उ शि १५)। ●

१—रेलवे स्पेशल ट्रेनों के सम्बन्ध में स्पष्टोकरण

आर्यमर्यादा साप्ताहिक तिथि २८-१-७३ का अभी मिला जिसके सम्पादकीय लेख मे रेलयात्रा टँकार के विषय पर लिखा है निवेदन है कि पहले जो दो गाडिया चली उनमे मैने केन्द्रीय सभा को सहयोग दिया उसके बाद जो और गाडिया चली मैंने उनका विरोध किया। क्योकि ला० रामलाल आदि हिसाब मे गडबड करने थे। मैने सभा मे इसका विरोध किया। खैर आपको इस विषय पर मालूम न होने के कारण मेरा नाम जोड दिया, इस वर्ष केन्द्रीय सभा के चुनाव तथा आय व्यय मे जा रामलाल ठेकेदार आदि ने धाधली करी मैन उस दिन मे त्यागपत्र दे रखा है। मेरा अब केन्द्रीय सभा मे या यह लोग जो रेलयात्रा चलाते ह कोई सम्बन्ध नही। यह ही कारण है कि मुझे ला० रामलाल ठकेदार के साथ अपना नाम पढकर आश्चर्य हुआ।

हा तीन साल मे हम टँकारा बस यात्रा चला रह हे पर उमका ठका हम बस वाले को दे देते है No Profit No Loss पर ताकि लोग टँकारा ज्यादा मे ज्यादा जावे। —आपका शुभ चिन्तक रामनाथ

२—श्री ला० रामलाल का स्पष्टीकरण

आपने लिखा है कि आप स्पैशल ट्रन चलाते हे। ठीक है कि मै एक सयोजक के नाते कोई भी आर्य सस्था मुझे आदेश दे तो यदि म कर सकू तो मै उस आज्ञा का पालन करता हू। जैसा मैने तथा मेरी पत्नी ने सभा की आज्ञानुसार जो सेवा हमारे जुम्मे लगाई गई उसका पालन करते रहे।

स्पैशल ट्रेन आर्य सस्थाओ के तत्ववाधान मे चलती रही है, चलती रहेगी। रामलाल ने न कोई व्यक्तिगत ट्रेन चलाई है न चलाने की कोई इच्छा। आय व्यय तो उस सस्था से पूछा जावे जिसके तत्त्वावधान मे यह ट्रेन चलती आई है।

[नोट—मैने जो बाते स्पेशल ट्रेनो के आय व्यय के बारे मे पूछी थी, उनके दोनो स्पष्टीकरण प्रकाशित कर दिये। मेरा इन स्पष्टीकरणो के प्रति कोई लगाव नही है। स्पेशल ट्रेन चलाने वाले सज्जन स्वय परस्पर निपट लेव] —निवेदक सम्पादक आर्यमर्यादा।

आर्यसमाजों से विनम्र प्रार्थना

आजकल उत्सव आरम्भ हो रहे हैं जिन समाजो ने अभी तक अपने उत्सवो की तिथिया निश्चित नही की वह कृपया इस सम्बन्ध मे अभी से तिथिया निश्चित करके सभा से पत्र व्यवहार करने का कष्ट करे। निम्न समाजो के उत्सव एव कथा आदि के कार्यक्रम स्वीकार हो चुके है —

(१) राणाप्रताप बाग, नई दिल्ली, (२) सोनीपत, (३) सालवन, (४) मुआना, (५) कौसली, (६) जीद, (७) कुल्लू हिमाचल इत्यादि। —विनीत निरजनदेव वेदप्रचाराधिष्ठाता, आर्यप्रतिनिधि सभा पजाब जालन्धर नगर—

आभार प्रकाशन

स्वर्गीय ला० बाबूराम आर्य, यमुना नगर के पुत्रो ने उनकी शोक सभा के अवसर पर लगभग ६ हजार रुपये दान किया है—इसमे आर्यप्रतिनिधि सभा पजाब ५१ रु० आर्यमर्यादा २१ रु० तथा वैदिक साधन आश्रम यमुना नगर १०० रु० तथा ५१०० रु० आर्यसमाज यमुना नगर। इस प्रकार सभा को २०० रु० दान मिला है। हम स्वर्गीय लाला जी के सुपुत्रो के शुभ दान के प्रति आभार प्रकट करते है।

—रामनाथ भल्ला सभा मन्त्री

शोक समाचार

बडे खेद से लिखना पडता है कि इन दिनो तीन कर्मठ नेताओ का देहान्त हो गया है। प्रथम श्री सेठ कुलदीप चन्द जी पठानकोट, दूसरे लाला बाबूराम जी गुप्त यमुनानगर, तीसरे सज्जन थे बाबू प्राणनाथ जी वकील फिल्लौर। तीनो सज्जन स्थानीय समाजो के अधिकारी थे। तीनो ने ही अपने समय के अन्दर समाज के लिये बडा कार्य किया। मै सभा की ओर से तीनो महानुभावो के दुखी परिवारो से सहानुभूति प्रकट करता हू। इनके अतिरिक्त श्री प० बलराज जी सभा भजनोपदेशक के धर्मपिता जी का देहान्त भी इन्ही दिनो हो गया है। मै सभा की ओर से आपके साथ तथा स्वर्गीय के परिवार के साथ सहानुभूति प्रकट करता हू।

—विनीत वेदप्रचाराधिष्ठाता—आर्यप्रतिनिधिसभा पजाब वेदप्रचाराधिष्ठाता

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब द्वारा प्रकाशित और प्रचारित वैदिक साहित्य

१ बलिदान जयन्ती स्मृति ग्रन्थ–आर्य बलिदानो की गाथा मूल्य ४-५०
२ सोम सरोवर-वेदमन्त्रो की व्याख्या —प० चमूपति एम ए ३-००
३ जीवन ज्योति-वेदमन्त्रो की व्याख्या „ „ ३-००
४ नीहारिकावाद और उपनिषद „ „ ०-२५
५ Principles of Arya samaj „ „ १-५०
६ Glimpses of swami Daya Nand „ „ १-००
७ पजाब का आर्य समाज पजाब तथा हरयाणा के आर्यसमाज का इतिहास २-००
८ वैदिक सत्सग पद्धति सन्ध्या हवन मन्त्र अर्थ रहित विधि १-००
९ वेदाविर्भाव —आर्यमर्यादा का विशेषाक ०-६५
१० यजुर्वेद का स्वाध्याय „ „ „ ०-५०
११ वेद स्वरूप निर्णय —प० मदनमोहन विद्यासागर १-००
१२ व्यवहारभानु —महर्षि स्वामी दयानन्द ०-५०
१३ स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश— „ „ ०-४०
१४ Social Reconstruction By Budha & Swami Daya Nand By Pt Ganga Prasad Upadhya M A २-००
१५ Subject Matter of the Vedas By S Bhoomanad १-००
१६ Enchanted Island By Swami Staya Parkashanand १-००
१७ Cow Protection By Swami Daya Nand ०-१५
१८ वेद मे पुनरुक्ति दोष न्ही है आर्यमर्यादा का विशेषाक २-००
१९ मूर्तिपूजा निषेध „ „ ०-५०
२० धर्मवीर प० लेखराम जीवन —स्वामी श्रद्धानन्द १-२५
२१ कुलियात आर्य मुसाफिर प्रथम भाग—प० लेखराम की पुस्तको का सग्रह ६-००
२२ „ „ दूसरा भाग „ „ ८-००
२३ मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र —कु० सुशीला आर्या एम ए ०-२५
२४ योगीराज कृष्ण „ „ „ ०-१५
२५ गोकरुणा निधि —स्वामी दयानन्द सरस्वती ०-२०
२६ आर्यसमाज के नियम उपनियम ०-१०
२७ आर्य नेताओ के वचनामृत —साईदास भण्डारी ०-१२
२८ कायाकल्प —स्वामी समर्पणानन्द सरस्वती १-५०
२९ वैदिक धर्म की विशेषताय —प० हरिदेव सिद्धान्त भूषण ०-१५
३० स्वतन्त्रानन्द लेखमाला —स्वा० स्वतन्त्रानन्द जी जीवनी तथा उनके व्याख्यान १-२५
३१ आत्मानन्द लेखमाला —स्वामी आत्मानन्द सरस्वती की जीवनी १-२५
३२ आर्यसमाज के सदस्यता फार्म —सैकडा १०-००
३३ वैदिक गीता —स्वामी आत्मानन्द सरस्वती २-५०
३४ मनोविज्ञान तथा शिव सकल्प „ „ „ ३-५०
३५ कन्या और ब्रह्मचर्य „ „ „ ०-१५
३६ सन्ध्या अष्टाङ्गयोग „ „ „ ०-७५
३७ वैदिक विवाह „ „ „ ०-७५
३८ सुखी जीवन —श्री सत्यव्रत २-००
३९ एक मनस्वी जीवन —प० मनसाराम वैदिक तोप १-५०
४० छात्रोपयोगी विचारमाला —जगदेवसिंह सिद्धान्ती १-५०
४१ स्त्री शिक्षा —प० लेखराम आर्य मुसाफिर ०-६०
४२ विदेशो मे एक साल —स्वामी स्वतन्त्रानन्द २-२५
४३ वेद विमर्श —प० भगवद्दत्त वेदालकार २-००
४४ वेद विमर्श —प० वेदव्रत शास्त्री २-००
४५ आसनो के व्यायाम „ „ „ १-००
४६ महर्षि जीवन गाथा —स्वामी वेदानन्द वेदवागीश २-२५
४७ मास मनुष्य का भोजन नही —स्वामी ओमानन्द सरस्वती १-००
४८ वीर भूमि हरयाणा „ „ „ ४-००
४९ चोटी क्यो रखे —स्वामी ओमानन्द सरस्वती ०-५०
५० हमारा फाजिल्का —श्री योगेन्द्रपाल १-५०
५१ सत्सग स्वाध्याय —स्वामी ओमानन्द सरस्वती ०-५०
५२ जापान यात्रा „ „ „ ०-७५
५३ भोजन „ „ „ ०-५०
५४ ऋषि रहस्य —प० भगवद्दत्त वेदालकार २-७५
५५ स्वामी श्रद्धानन्द जीवन परिचय १-२५
५६ मेरा धर्म —आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति ७-५०
५७ वेद का राष्ट्रिय गीत „ „ „ ५-००
५८ ईशोपनिषद्भाष्य —इन्द्र विद्या वाचस्पति २-००
५९ प० गुरुदत्त विद्यार्थी जीवन —डा० रामप्रकाश १-३५
६० वैदिक पथ —प० हरिदेव सिद्धान्त भूषण २-००
६१ ज्ञानदीप „ „ „ २-००
६२ आर्यसमाज का सैद्धान्तिक परिचय ०-५०
६३ The Vedas ०-५०
६४ The Philosophy of Vedas ०-५०
६५ वैदिक प्रवचन —प० जगत्कुमार शास्त्री २-२५
६६ ईश्वर दर्शन „ „ १-५०
६७ श्वेताश्वरोपनिषद् „ „ ४-००
६८ ब्रह्मचर्य प्रदीप „ „ ४-००
६९ भगवन प्राप्ति क्यो और कैसे —स्वा० सत्यानन्द ०-६०
७० आर्य सामाजिक धर्म „ „ ०-७५
७१ बोध प्रसाद —स्वामी श्रद्धानन्द ०-२५
७२ ऋषि दर्शन —प० चमूपति एम ए ००-२५
७३ ऋषि का चमत्कार „ „ „ ००-१२
७४ वैदिक जीवन दर्शन „ „ „ ००-२०
७५ वैदिक तत्व विचार „ „ „ ००-५०
७६ देव यज्ञ रहस्य „ „ „ ००-३५

सभी पुस्तकों का प्राप्ति स्थान

आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब, गुरुदत्त भवन, जालन्धर (४२५०) टेलीफोन
„ „ „ १५ हनुमान् मार्ग नई दिल्ली-१ „ (३१०१५०)
„ „ „ दयानन्द मठ रोहतक (हरयाणा) „ (५७४)

आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब के लिए जगदेवसिह सिद्धान्ती शास्त्री द्वारा सैनी प्रिटर्स पहाडी धीरज, देहली मे मुद्रित और १५ हनुमान् रोड, नई दिल्ली–१ से प्रकाशित

२१ फाल्गुन स० २०२६ वि०, दयानन्दाब्द १४८, तदनुसार ४ मार्च १९७३ रविवार
सृष्टि सं०-१९६०८५३०७२
वर्ष ५ अंक १४
वार्षिक शुल्क स्वदेश मे १०) रुपये
" " विदेश मे २०) रुपये
एक प्रति का मूल्य ००-२० पैसे

सम्पादक—जगदेवसिंह सिद्धान्ती शास्त्री, पूर्व लोकसभा सदस्य (फोन ५१२१६३)

वेदमन्त्रार्थ-प्रवचन

पुन प्रभातविषये प्राह ॥

फिर प्रभात विषय को अगले मन्त्र में कहा है।

ईयुष्टे ये पूर्वतरामपश्यन्व्युच्छन्तीमुषसं मर्त्यासः।
अस्माभिरू नु प्रतिचक्ष्याऽभूदो ते यन्ति ये अपरीषु पश्यान् ॥

—ऋ० १ ११३ ११

पदार्थ—(ईयु) प्राप्नुयु (ते) (ये) (पूर्वतराम्) अतिशयेन पूर्वाम् (अपश्यन्) पश्येयु (व्युच्छन्तीम्) निद्रा व्यवासयन्तीम् (उषसम्) प्रभातसमयम् (मर्त्यास) मनुष्या (अस्माभि) (उ) वितर्के (नु) शीघ्रम् (प्रतिचक्ष्या) प्रत्यक्षेण द्रष्टु योग्या (अभूत्) भवति (ओ) अवधारणे (ते) (यान्ति) (ये) (अपरीषु) आगामिनीषूषस्सु (पश्यान्) पश्येयु ॥

अन्वय—ये मर्त्यासो व्युच्छन्ती पूर्वतरामुषसमीयुस्ते अस्माभि सह सुखमपश्यन् योषा अस्माभि प्रतिचक्ष्याभूद् भवति सा नु सुखप्रदा भवति। उ ये अपरीषु पूर्वतरा पश्यान् त ओ एव सुख यन्ति प्राप्नुवन्ति ॥

भावार्थ—हे मनुष्या उषस प्राक् शयनादुत्थावश्यक कृत्वा परमेश्वर ध्यायन्ति ते धीमन्तो धार्मिका जायन्ते ये स्त्रीपुरुषा जगदीश्वर ध्यात्वा प्रीत्या सवदते तेऽनेकविधानि सुखानि प्राप्नुवन्ति ॥

भावार्थ—(ये) जो (मर्त्यासि) मनुष्य लोग (व्युच्छन्तीम्) जगाती हुई (पूर्वतराम्) अति प्राचीन (उषसम्) प्रभात वेला की (ईयु) प्राप्त होवे (ते) वे (अस्माभि) हम लोगो के साथ सुख को (अपश्यन्) देखते है जो प्रभात वेला हमारे साथ (प्रतिचक्ष्या) प्रत्यक्ष से देखने योग्य (अभूत्) होती है वह (नु) शीघ्र सुख देने वाली होती है (उ) और (ये) जो (अपरीषु) आने वाली उषाओ मे व्यतीत हुई उषा को (पश्यान्) देखे (ते) वे (ओ) हि सुख को (यन्ति) प्राप्त होते है ॥

भावार्थ—जो मनुष्य उषा के पहिले शयन से उठ आवश्यक कर्म करके परमेश्वर का ध्यान करते है वे बुद्धिमान् और धार्मिक होते है जो स्त्री पुरुष परमेश्वर का ध्यान करके प्रीति से आपस मे बोलते चालते हैं वे अनेक विध सुखो को प्राप्त होते है ॥

—(ऋषि दयानन्द वेदभाष्य)

नौविमानादिविद्याविषयः

वेदोक्त युक्ति से सिद्ध किये हुए नाव, विमान और रथ अर्थात् भूमि मे चलने वाली सवारियो का (ऊहथु) जाना आना जिन पदार्थो से देश देशान्तरो मे सुख से होता है। वहा पुरुष व्यत्यय से (ऊहतु) इसके स्थान में (ऊहथु) ऐसा प्रयोग किया गया है। उनसे किस किस प्रकार की सवारी सिद्ध होती है सो लिखते है। (नौभि) अर्थात् समुद्र मे सुख से जाने आने के लिये अत्यन्त उत्तम नौका होती है। (आत्मन्वतीभि) जिनसे उनके मालिक अथवा नौकर चला के जाते आते रहे। व्यवहारो और राजपुरुष लोग इन सवारियो मे समुद्र मे जावे आवे। तथा (अन्तरिक्षप्रुद्भि) अर्थात् जिनसे आकाश मे जाने आने की क्रिया सिद्ध होती है। जिनका नाम विमान शब्द करके प्रसिद्ध है। तथा (अपोदकाभि) वे सवारी ऐसी शुद्ध और चिक्कन होनी चाहिये जो जल से न गले और न जल्दी टूटे फूटे। इन तीन प्रकार की सवारियो की जो रीति पहिले कह आये और जो आगे कहेगे उसी के अनुसार बराबर उनको सिद्ध करे। इस अर्थ मे निरुक्त का प्रमाण सस्कृत मे लिखा है सो देख लेना। उसका अर्थ यह है (अथातो द्युस्थाना दे०) वायु और अग्नि आदि का नाम अश्वि है, क्योकि सब पदार्थों मे धनजय रूप करके वायु और विद्युत् रूप मे अग्नि ये दोनो व्याप्त हो रहे है। तथा जल और अग्नि का नाम भी अश्वि है, क्यो अग्नि ज्योति से युक्त और जल इससे युक्त होके व्याप्त हो रहा है। (अश्वै) अर्थात् वे वेगादि गुणो से भी युक्त है। जिन पुरुषो को विमानादि सवारियो की सिद्धि की इच्छा हो वे वायु, अग्नि और जल से उनको सिद्ध कर यह और्णनाभ आचार्य का मत है। तथा कई एक ऋषियो का ऐसा मत है कि अग्नि की ज्वाला और पृथिवी का नाम अश्वि है। पृथिवी के विकार काष्ठ और लोहा आदि के कला यन्त्र चलाने से भी अनेक प्रकार के वेगादि गुण सवारियो वा अन्य कारीगरिया मे किये जाते है। (क्रमश)

—(ऋषि दयानन्द)

सत्यार्थप्रकाश (१० वाँ समुल्लास)

श्रुत्वा स्पृष्ट्वा च दृष्ट्वा च भुक्त्वा घ्रात्वा च योनर।
न हृष्यति ग्लायति वा स विज्ञेयो जितेन्द्रिय ॥ मनु० २.९८ ॥

जितेन्द्रिय उसको कहते है जो स्तुति सुनके हर्ष और निन्दा सुनके शोक, अच्छा स्पर्श करके सुख और दुष्ट स्पर्श से दु ख, सुन्दर रूप देख के प्रसन्न और दुष्ट रूप देख अप्रसन्न, उत्तम भोजन करके आनन्दित और निकृष्ट भोजन करके दु खित, सुगन्ध मे रुचि और दुर्गन्ध मे अरुचि नही करता है ॥६॥

नापृष्टः कस्यचिद् ब्रूयान्न चान्यायेन पृच्छत।
जानन्नपि मेधावी जडवल्लोक आचरेत् ॥ मनु० २,११०

कभी विना पूछे वा अन्याय से पूछने वाले को जो कि कपट से पूछता हो उसको उत्तर न देवे उसके सामने बुद्धिमान् जड के समान रह हा जो निष्कपट और जिज्ञासु हो उनको विना पूछ भी उपदेश करे ॥७॥

वित्त बन्धुर्वय कर्म विद्या भवति पञ्चमी।
एतानि मान्यस्थानानि गरीयो उत्तरम् ॥ मनु० २.१३६

एक धन, दूसरे बन्धु कुटुम्ब कुल, तीसरी अवस्था, चौथा उत्तम कर्म और पाचवी श्रेष्ठ विद्या ये पाच मान्य के स्थान है, परन्तु धन मे उत्तम बन्धु, बन्धु से अधिक अवस्था, अवस्था से श्रेष्ठ कर्म और कर्म मे पवित्र विद्या वाले उत्तरोत्तर अधिक माननीय है ॥८॥

अज्ञो भवति वै बाल पिता भवति मन्त्रद।
अज्ञ हि बालमित्याहुः पितेत्येव तु मन्त्रदम् ॥ मनु० २ १५३

क्योकि चाहे सौ वर्ष का हो परन्तु विद्या विज्ञान रहित है वह बालक और जो विद्या विज्ञान का दाता है उस बालक को भी वृद्ध मानना चाहिये क्योकि सब शास्त्र आप्त विद्वान् अज्ञानी को बालक और ज्ञानी को पिता कहते है ॥९॥

—(ऋषि दयानन्द)

द्विवेदी आदि शब्दों का समाधान

[व्याख्याता—स्वामी वेदानन्द वेदवागीश, गुरुकुल झज्जर (रोहतक)]

२६ नवम्बर १९७२ के आर्यमर्यादा के अंक में श्री पं० विहारीलाल जी ने द्विवेदी आदि शब्दों पर कुछ जानकारी चाही थी। आचार्य श्री विश्वश्रवा जी तथा आचार्य सुदर्शनदेव जी ने समाधान किये। इनमें आचार्य सुदर्शनदेव जी पर्याप्त निकट पहुंचे। उनके लिये ता केवल इतना ही कहना है कि यहां द्विगुसमास नहीं है। तद्धितार्थोत्तरपद समाहारे च (२.१.५१) पर वार्तिक है—"सर्वत्र मत्वर्थे प्रतिषेधः" सर्वेषु पक्षेषु द्विगुसंज्ञायाः प्रतिषेधो वक्तव्यः। द्वौ वेदौ यस्य स द्विवेदी" इस विग्रह में ही द्विवेदी शब्द है। यहां द्विगुसंज्ञा न होने से "द्विगोर्लुगनपत्ये" सूत्र की प्रवृत्ति नहीं है। जहां द्विगुसंज्ञा होती है, वहां मत्वर्थीय तद्धित प्रत्यय नहीं होता। इस विषय में भाष्यकार "तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप् (५.२.९४) पर लिखते हैं:—तदेतत्क्रियमाणमपि प्रत्ययविध्यर्थं नोपाध्यर्थं तस्माद् द्विगोस्तद्धिनस्य प्रतिषेधो वक्तव्यः, यदि तन्नास्ति—"सर्वत्र मत्वर्थे प्रतिषेधः" इति। सति तस्मिन् तेनैव सिद्धम्॥

"तदधीते तद्वेद" से प्रत्यय किये जाने पर तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च से समास होकर द्विगु संज्ञा होगी और प्राग्दीव्यतीयप्रत्यय होने में लुक भी होगा। वार्तिककार भी इसकी पुष्टि इस प्रकार करता है कि "सर्वसादेर्द्विगोश्च लः" (४.२.६०) पर यह वार्तिक है। अतः तब "द्विवेदः" आदि प्रयोग बनेंगे।

हमारे सम्मुख दो प्रयोग हैं, द्विवेदः और द्विवेदी, दोनों ही ठीक हैं। विग्रह भिन्न भिन्न किये जावेंगे। किन्तु अर्थ में समानता है। इस प्रसङ्ग में तद्वहतिरथयुगप्रासङ्गम् (४.४.७६) सूत्र पर लिखा वार्तिक द्रष्टव्य है। "शब्दभेदादविधानमितिचेदर्थाश्रयत्वात् प्रत्ययविधानस्यार्थसामान्यात् सिद्धम्" इसका अर्थ दर्शाकर भाष्यकार ने पाणिनि आचार्य के सूत्र का प्रयोजन बताते हुए लिखा है—यौ द्वौ रथौ बहति स द्विरथ्यः। यो द्वयो रथयोर्वोढा स द्विरथः। तेन सति लुग्भवति। अनेन सति कस्मान्न भवति? प्राग्दीव्यत इत्युच्यते।

जिस प्रकार "द्विरथः" में तस्मेदं से विहित प्राग्दीव्यतीय अण् का लुक् हुआ इसी प्रकार "द्विवेदः" में "तदधीते तद्वेद" से विहित का लुक् है और जैसे "द्विरथः" में लुक नहीं है ऐसे ही द्विवेदी में भी प्राग्दीव्यतीय न होने से अलुक् है। दोनों ही शब्द पर्यायवाची हैं।

(१) अनुब्राह्मणादिनिः (४.२.६२) (२) पाण्डुकम्बलादिनिः (४.२.११) (३) चूर्णादिनिः (४.४.२३) इन सूत्रों का भाष्यकार ने खण्डन किया है। कैय्यट और नागेश दोनों ही व्याख्याकार इन सूत्रों को अनभिधान का आश्रय लेकर खण्डित मानते हैं। श्री आचार्य सुदर्शनदेव जी "द्वौ वेदौ अधीते वेद वा इसी विग्रह में "अनुब्राह्मणमधीते वेद वा" और इसी विग्रह में इनिः मत्वर्थीय प्रत्यय मान लेते हैं, यह उन द्वारा विचारणीय बात है; क्योंकि भाष्यकार मत्वर्थीय इनि प्रत्ययः करते हुए तीनों ही स्थलों पर विग्रहः मत्वर्थीयः ही करते हैं।

इस प्रकार द्विवेदी आदि शब्दों का विग्रह मत्वर्थीय ही रहेगा।

अब बात यह रह जाती है कि महर्षि दयानन्द ने यह कैसे लिख दिया—यो द्वौ वेदो अधीते स द्विवदी आदि।

इस विषय में हमारा निवेदन यह है कि "द्वौ वेदौ अधीते" और "द्वौ वेदौ यस्य स्तः" इनमें अर्थ की समानता है। महर्षि दयानन्द यहां प्रयोग सिद्धि तो कर नहीं रहे। एक सामान्य वाक्य का प्रयोग कर रहे हैं। दूसरे वाक्य का भी कर सकते हैं। दोनों ही वाक्यों के प्रयोगों में कोई भी शब्द बोला जा सकता है, द्विवेदी भी और द्विवेदः भी।

एक हमारा निवेदन यहां और है वह यह कि हम महर्षि दयानन्द के मन्त्र यजु १८-६७ पर लिखे गये शब्दों को आरम्भ से लें—वे लिखते हैं:—"यः ऋग्वेदयधीते स ऋग्वेदी, यः यजुर्वेदयधीते स यजुर्वेदी" इत्यादि। इन शब्दों की भी वही स्थिति है। यहां तो अधीते अर्थ में आये प्रत्यय के लुक् की सम्भावना ही नहीं है। तब ऋग्वेदी, यजुर्वेदी कैसे बनें। आर्ग्वेदः, याजुर्वेदः चाहियें। जैसे छान्दसः—वैयाकरणः आदि होते हैं।

अतः इनिप्रत्ययान्त दिये गये सभी शब्द ठीक हैं। इसीलिये वे लिखे हैं। हमें इनके विग्रह में व्याकरण की ओर यहां नहीं देखना है। एक वाक्य पक्ष होता है, दूसरा वृत्ति पक्ष। यहां वाक्य का भी प्रयोग है और वृत्ति पक्ष का भी; किन्तु जिस अर्थ में वाक्य है, उसमें यहां वृत्ति नहीं है। वृत्ति दूसरे वाक्य की है। सो ऐसा किये जाने में कोई दोष नहीं है। मुख्य बात यह है कि शब्द अशुद्ध न हो। यहां संस्कृत है, वह सर्वथा ठीक है। ●

ऋषि दयानन्द का धर्म शास्त्र अर्थात् दयानन्द स्मृति

(श्री जगदेवसिंह सिद्धान्ती शास्त्री, देहली)

श्रुतिस्मृत्युदितं धर्ममनुतिष्ठन हि मानवः।
इह कीर्तिमवाप्नोति प्रेत्य चानुत्तमं सुखम्॥
योऽवमन्येत ते मूले हेतुशास्त्राश्रयाद् द्विजः।
स साधुभिर्बहिष्कार्यो नास्तिको वेदनिन्दकः॥ २

—मनुस्मृति अध्याय २, श्लोक ९, ११

क्योंकि जो मनुष्य वेदोक्त धर्म और वेद से अविरुद्ध स्मृत्युक्त धर्म का अनुष्ठान करता है। वह इस लोक में कीर्ति और मरके सर्वोत्तम सुख को प्राप्त होता है। १

श्रुतिवेद और स्मृति धर्मशास्त्र को कहते हैं इनसे सब कर्त्तव्याऽकर्तव्य का निश्चय करना चाहिये जो कोई मनुष्य वेद और वेदानुकूल आप्तग्रन्थों का अपमान करे उसको जातिबाह्य कर दें क्योंकि जो वेद की निन्दा करता है वही नास्तिक कहाता है।

इसी श्लोक का तृतीय समुल्लास में ऋषि ने यह अर्थ किया है कि जो वेदानुकूल आप्त पुरुषों के किये शास्त्रों का अपमान करता है उस वेदनिन्दक नास्तिक को जाति पंक्ति और देश से बाह्य कर देना चाहिये। न्यायदर्शन के वात्स्यामन भाष्य में लिखा है—"य एवऽऽप्ता वेदानमर्थद्रष्टारः प्रवक्तारश्च ते एवऽऽयुर्वेदप्रभृतानाम्।"

अर्थात् जिन आप्तों=ऋषियों ने वेदमन्त्रों के अर्थों का साक्षात् किया, वे ही आयुर्वेद आदि शास्त्रों के प्रवक्ता हैं। न्याय दर्शन १.१.६८॥

मनुस्मृति २.१० में कहा है—

श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो धर्मशास्त्रं तु वै स्मृतिः अर्थात् श्रुतिवेद को कहते हैं और स्मृति को धर्मशास्त्र कहते हैं। यही भाव ऋषि दयानन्द जी ने बताया है जिसको हम अभी ऊपर लिख चुके हैं।

ऋषि दयानन्द ने सत्य का मण्डन और असत्य का खण्डन बड़े प्रबल वेग से किया था। इसी कारण उनको समाजसुधारक=ग्रेट रिफार्मर के रूप में न केवल भारत, अपितु विश्व में उनको ग्रेट रिफार्मर के नाम से कहा गया है।

ऋषि ने समाज सुधार के कार्य में मनुस्मृति के सैंकड़ों श्लोकों को सत्यार्थप्रकाश के २ से ६ तथा १० समुल्लास और संस्कार विधि के गृहस्थाश्रम प्रकरण में उद्धृत किया है। इनको देखने से मालूम होता है कि ऋषि ने दयानन्द स्मृति के रूप में इन प्रमाणों से काम लिया है। ऋषि ने वेद भाष्य के भावार्थ में समाज शास्त्र का विस्तृत रूप में वर्णन दिया है।

सत्यार्थ प्रकाश ६ समुल्लास के अन्तिम भाग में लिखा है कि—"प्रत्यह लोकदृष्टैश्च शास्त्रदृष्टैश्च हेतुभिः॥ मनु० ८. ३०। इस प्रमाण से ऋषि कहते हैं कि जिनका प्रत्यक्ष लेख नहीं है उनके लिये जो नियम राजा और प्रजा के सुखकारक और धर्म युक्त समझें उन नियमों को पूर्ण विद्वानों की राज सभा बांधा करे।

संस्कार विधि के गृहाश्रम प्रकरण में लिखा है—

अनाम्नातेषु धर्मेषु कथं स्यादिति चेद् भवेत्।
यं शिष्टा ब्राह्मणा ब्रूयुस्स धर्मः स्यादशङ्कितः॥

मनु० १२. १०८

ऋषि अर्थ कहते हैं—हे गृहस्थ लोगो। जो धर्म युक्त व्यवहार मनुस्मृति आदि में न कहे हों यदि उनमें शंङ्का होवे तो तुम जिसको शिष्ट आप्त विद्वान् कहें उसी को शङ्का रहित धर्म जानो। शिष्ट सब मनुष्य मात्र नहीं होते किन्तु जिन्होंने पूर्ण ब्रह्मचर्य और धर्म से साङ्गोपांग वेद पढ़े हों जो श्रुति प्रमाण और प्रत्यक्षादि प्रमाणों ही से विधि या निषेध करने में समर्थ, धार्मिक, परोपकारी हों वे ही शिष्ट पुरुष होते हैं।

अत्यन्त खेद है कि आर्यसमाज में ऋषि के ग्रन्थों का स्वाध्याय नहीं किया जाता, चाहे कोई भी हो आर्यसमाज में अपनी पद्धति चला देता है। ऋषि के ग्रन्थों में समाज सुधार के अपूर्व रत्न भरे पड़े हैं उनको जानकर आर्यसमाज अपना ही नहीं; दूसरों का भी कल्याण कर सकता है। भगवान् दया करे कि हम आर्यों में स्वाध्याय की प्रवृत्ति बढ़े जिससे हम अपने समाज का उत्थान करते रहें। ●

सम्पादकीय—

ऋषि बोध दिवस से क्या हमने कुछ सीखा?

देहली के एक उत्साही आर्य सज्जन ने हमें लिखा कि "हमने टंकारा यात्रा पर जाने के लिये आर्यमर्यादा में प्रकाशनार्थ एक समाचार भेजा था और साथ ही यह भी लिखा था कि इस सम्बन्ध में आर्यमर्यादा में सम्पादकीय लेख भी लिखें।" वे इतने उतावले हुए कि जब उनको हमारी ओर से शीघ्र उत्तर न मिला और न ही समाचार प्रकाशित हुआ, तब उन्होंने एक अन्य महानुभावों से हमारे पास अपनी पुष्टि में पत्र उसी सम्बन्ध में भिजवाया। दूसरे सज्जन ने उसमें इतना अंश और बढ़ाया कि "यह समाचार तो किसी विशेषदल से सम्बन्ध नहीं रखता, अतः इसको अवश्य प्रकाशित कर देना चाहिये था।"

उक्त दोनों सज्जनों से हम सामान्य रूप से निवेदन करना चाहते हैं कि ऋषि बोध की टंकारा घटना को लम्बा समय व्यतीत हो चुका है। प्रतिवर्ष शिवरात्रि के समय की चूहे की घटना के हम गीत गाते हैं और मस्त होकर गाते हैं। और अब तो स्पेशल ट्रेनों अथवा बसों द्वारा टंकारा की यात्रा के लिये कार्यक्रम बनाये जा रहे हैं। मार्ग में बड़े बड़े रेलवे स्टेशनों अथवा नगरों में जब ट्रेन ठहरती है, तो प्लेटफार्म पर उतरकर बड़े जोर जोर से वैदिक धर्म और ऋषि दयानन्द के नाम का नाद गाजे बाजे के साथ गुंजाया जाता है। टंकारा पहुंचकर क्या ध्येय किया जाता है। यात्री महाशय ही जानते और बता सकते हैं।

ऋषि ने अपना जीवन ईश्वरार्पण, योगाभ्यास द्वारा समाधिदशा को प्राप्त किया तथा गुरु विरजानन्द जी महाराज से वेदादि सत्य शास्त्रों की शिक्षा ग्रहण करके वेदप्रचार के लिये विश्व के सामने उतरे। जो कुछ ऋषि ने किया हम ही नहीं, सारा संसार उससे सुपरिचित है। कहने सुनने की आवश्यकता नहीं। परन्तु उनके उपदेशों पर हमने क्या आचरण किया? इस बात को हम अपने अन्तःकरण में झांक कर ही टटोल सकते हैं। जिन पूज्य आर्य विद्वानों ने ऋषि के आदेश पर चलकर कार्य किया उसी पवित्र कार्य का यह सुफल है कि आर्यसमाज का यश सर्वत्र फैला। इधर हम हैं कि केवल यात्रा और ढोल ढमके की आवाज से ही वेदप्रचार करने का यश लेना चाह रहे हैं.

इतना ही नहीं, हम पर क्या प्रभाव हुआ है इसकी एक घटना मान्य पाठकों को सुनाना चाहते हैं। जब अजमेर में ऋषि की निर्वाण अर्ध शताब्दी मनायी गई। उस समय हम वहां राजा भिनाय की उस कोठी में खड़े देख रहे थे कि आर्य लोग आते और जहां ऋषि का सामान और चारपाई रखी हुई थी—वहां नतमस्तक होकर हाथ जोड़कर चारपाई के पायों को पकड़कर आंसू निकालकर पोंछ कर चलते रहते थे। क्या हमने ऋषि के उपदेश को यही समझा कि जड़ पदार्थों के आगे माथा झुकाकर हाथ जोड़कर चलते रहें। जो आर्य सज्जन टंकारा में स्पेशल ट्रेन से यात्रा में जाते हैं, उनके वृत्तान्त भी आर्यसमाज के पत्रों में प्रत्यक्षदर्शी के रूप में निकलते रहते हैं। केवल भावनावश जाने आने पर सैकड़ों रुपये व्यय कर डालते हैं। मार्ग के कष्ट सहन कर अपने अपने घरों को लौट आते हैं। कुछ लेकर नहीं किन्तु खोकर ही आते है।

हम सभी आर्य बन्धुओं=भाई बहिनों से साग्रह नम्र निवेदन करते हैं कि इन यात्रा आदि के अनर्थक कष्टों को छोड़कर प्रतिदिन आर्षग्रन्थों का स्वाध्याय करें। यही ऋषि दयानन्द का उपदेश है। सत्यार्थप्रकाश के ११ वें समुल्लास में ऋषि दयानन्द का वचन है—"इस बिगाड़ के मूल महाभारत युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे क्योंकि उस समय में ऋषि मुनि भी थे तथापि कुछ कुछ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे वे बढ़ते बढ़ते वृद्ध हो गये जब सच्चा उपदेश न रहा तब आर्य्यावर्त्त में अविद्या फैलकर परस्पर में लड़ने झगड़ने लगे क्योंकि—

"उपदेश्योपदेष्टृत्वात् तत्सिद्धिः। इतरथान्धपरम्परा॥"

सांख्य० अ० ३, सू० ७९, ८१॥

अर्थात् जब उत्तम उत्तम उपदेशक होते हैं तब अच्छे प्रकार धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष सिद्ध होते हैं। और जब उत्तम उपदेशक और श्रोता नहीं रहते तब अन्ध परम्परा चलती है। फिर भी जब सत्पुरुष उत्पन्न होकर सत्योपदेश करते हैं तभी अन्ध परम्परा नष्ट होकर प्रकाश की परम्परा चलती है।

ऋषि दयानन्द ने पूना में १५ प्रवचन किये थे। उनमें १३ वें प्रवचन के अन्त में ऋषि अपने आगे लिखे भावों को प्रकट करते हैं—"हमारे भाई शास्त्री लोग हठ करते हैं, यह हम सबका दुर्भाग्य है। हमारे भारत खण्ड देश से वेदों का बहुत सा धर्म लुप्त हो गया है और रहा सहा हम लोगों के प्रमाद से नष्ट होता जा रहा है और उसकी जगह पाखण्ड, अनाचार और दम्भ बढ़ता जा रहा है। सदाचार और सच्चाई से हम लोग दूर होते जा रहे हैं, तभी तो हम सबकी दुर्दशा हो रही है, इसमें आश्चर्य ही क्या है? सनातन आर्षग्रन्थ वेदादि को छोड़कर पुराणों में लिपट रहे हैं और उनकी कल्पित और असम्भव गाथाओं को अपना धर्म समझ रहे हैं। यदि मुझसे कोई पूछे कि इस पागलपन का कोई उपाय भी है या नहीं? तो मेरा उत्तर यह है कि यद्यपि रोग बहुत बढ़ा हुआ है, तथापि इसका उपाय हो सकता है। यदि परमात्मा की कृपा हुई तो रोग असाध्य नहीं है। वह और ६ दर्शनों को प्राचीन पुस्तकों के भिन्न भिन्न भाषाओं में अनुवाद करके सब लोगों को जिससे अनायास प्राचीन विद्याओं का ज्ञान प्राप्त हो सके ऐसा यत्न करना चाहिये और पढ़े लिखे विद्वान् लोगों को सच्चे धर्म का उपदेश करने की तरफ विशेष ध्यान देना चाहिये और गांव गांव में आर्यसमाज स्थापना करके तथा मूर्त्तिपूजा आदि अनाचारों को दूर करके एवं ब्रह्मचर्य से तप का सामर्थ्य बढ़ाकर सब वर्णों और आश्रमों के लोगों को चाहिये कि शारीरिक और आत्मिक बल को बढ़ावें तो सुगमता से शीघ्र लोगों की आंख खुल जावेगी और दुर्दशा दूर होकर सुदशा प्राप्त होगी। मेरे जैसे एक निर्बल मनुष्य के करने से यह काम कैसे हो सकेगा, इसलिये आप सब बुद्धिमान् लोगों से आशा रखता हूं कि आप मुझे इस कार्य में सहयोग देवें।" आगे १५ वें प्रवचन के अन्त में ऋषि ने फिर कहा है—"यह मेरा पिछला इतिहास है, आर्य धर्म की उन्नति के लिये मुझ जैसे बहुत से उपदेशक आपके देश में होने चाहियें। ऐसा काम अकेला आदमी भली प्रकार नहीं कर सकता, फिर भी यह दृढ़ निश्चय कर लिया है कि अपनी बुद्धि और शक्ति के अनुसार जो कुछ दीक्षा ली है उसे चलाऊंगा। अब अन्त में ईश्वर से यह प्रार्थना करता हूं कि सर्वत्र आर्यसमाज कायम होकर मूर्त्तिपूजा आदि दुराचार दूर हो जावें, वेदशास्त्रों का सच्चा अर्थ सबको समझ में आवे और उन्हीं के अनुसार लोगों का आचरण होकर देश की उन्नति हो जावे। पूरी आशा है कि आप सब सज्जनों की सहायता से मेरी यह इच्छा पूर्ण होगी।"

(नोट—पूना में जो १५ प्रवचन ऋषि ने दिये थे वे तब समाचार पत्रों में निकले, पीछे उनके अनुसार कुछ सज्जनों ने अपने रूप में उनको लिखा। अतः ऋषि दयानन्द के ये शब्द अपने नहीं कहे जा सकते, फिर भी इनसे आर्यजनों को लाभ उठाना चाहिये।

ऋषि ने सत्यार्थप्रकाश के ११ वें समुल्लास में कहा है (प्रश्न) तो कोई तीर्थ नामकरण सत्य है वा नहीं? (उत्तर) हैं—वेदादि सत्यशास्त्रों का पढ़ना पढ़ाना, धार्मिक विद्वानों का संग, परोपकार, धर्मानुष्ठान, योगाभ्यास, निर्वैर, निष्कपट, सत्य भाषण, सत्य का मानना, सत्य करना, ब्रह्मचर्य सेवन, आचार्य, अतिथि, माता पिता की सेवा, परमेश्वर की स्तुति प्रार्थनोपासना, शान्ति, जितेन्द्रियता, सुशीलता, धर्मयुक्त पुरुषार्थ, ज्ञान विज्ञान आदि शुभकर्म दुःखों से तारने वाले होने से तीर्थ है। और जो जल स्थलमय हैं वे तीर्थ कभी नहीं हो सकते क्योंकि जना यैस्तरन्ति तानि तीर्थानि" मनुष्य जिन करके दुःखों से तरें इनका नाम तीर्थ है जलस्थल तराने वाले नहीं हैं किन्तु डुबाकर मारने वाले हैं प्रत्युत नौका आदि का नाम तीर्थ हो सकता है क्योंकि उनसे भी समुद्र आदि को तरते हैं।"

आर्य बन्धुओं से निवेदन है कि स्वयं विचार कर लेवें कि टङ्कारा क्या तीर्थ हो सकता है? अपने हृदय से विचार करके यथोचित कार्य से कृतार्थ करें॥

—जगदेवसिंह सिद्धान्ती शास्त्री

"कब तक चलेगा यह उपहास ?"

(ले०—श्री सन्तोष कुमार "कण्व" आर्यसमाज बिहारीपुर, बरेली)

संसार का मानव अविद्या और अज्ञान के घटाटोप अन्धकार में भटक रहा था। मतमतान्तरों व रूढ़ियों की हथकड़ी व बेड़ियों में जकड़े हुए मानव ने जब जब उठने का प्रयास किया वह उठ न सका।

यह दशा थी मानव जाति की। १९ वीं शताब्दी का अन्तिम चरण था। ऐसे वातावरण में एक ऐसी उथल पुथल (क्रान्ति) हुई कि सभी कुछ बदल गया। अद्भुत दिव्य ज्योति को हाथ में ले अलौकिक तेज सम्पन्न एक ऐसा पुरुष ऊपर को उठा—जिसने उस दिव्य प्रकाश से अविद्या और अज्ञान के घटाटोप अन्धकार को नष्ट किया। युक्ति और प्रमाणों के तीव्र प्रहार से मतमतान्तरों व रूढ़ियों को हथकड़ी व बेड़ियों को खण्ड खण्ड कर दिया।

कौन था वह महापुरुष ? कौन सी थी वह दिव्य ज्योति ? कौन सा था वह मजबूत सहारा ? कौन सा था वह मार्ग ? कौन सी थी वह क्रान्ति ?

वह महापुरुष था—"महर्षि दयानन्द"। वह दिव्य ज्योति थी—"वेद" वह मजबूत सहारा था "परमपिता परमात्मा"। वह उचित मार्ग था "वेद पथ"। और वह क्रान्ति थी "आर्य समाज"।

आज "आर्य समाज" अपनी प्रथम शताब्दी मनाने जा रहा है। इन सौ वर्षों में आर्यसमाज रूपी समुद्र में न जाने कितने ज्वार भाटे आये हैं परन्तु यह शान्त और विशाल समुद्र की भाँति आज भी हिलोरें ले रहा है।

इन सौ वर्षों में न जाने कितने दीवाने आये जिन्होंने आर्य समाज के प्रचार व प्रसार में अपना सर्वस्व ही लुटा दिया। परन्तु इसके विपरीत ऋषि द्रोहियों की भी कमी न रही। समय समय पर इस प्रकार के लोगों ने सिर उठाये हैं। किसी ने सिद्धान्तों में परिवर्तन का दुस्साहस किया तो किसी ने महर्षि के जीवन चरित्र से खिलवाड़ करने की चेष्टा की। किसी ने ऋषिकृत ग्रन्थों के पाठ बदले तो किसी ने आर्यसमाज के संघटन को छिन्न भिन्न किया। न जाने इस प्रकार के कितने कार्य अब तक हुये हैं। परन्तु आज भी इस प्रकार के लोगों की कमी नहीं है। समय समय पर अवसर पाकर वे सिर उठा रहे हैं।

आज एक ओर तो श्री स्वामी ओमानन्द जी (आचार्य भगवान देव जी) पं० बिहारीलाल जी शास्त्री डा० भवानीलाल भारतीय और पूज्य अमर स्वामी जी आदि कर्मठ विद्वान् हैं, जिनकी एक एक बोटी भी काट दी जाय तो भी आर्यसमाज की जय ही उनके मुंह से निकलेगी। परन्तु दूसरी ओर पाखण्ड को आर्य समाज में फैलाने का असफल प्रयास कर अपनी दुकानदारी को चलाया चाह रहे हैं।

महर्षि के जीवन चरित्र को बिगाड़ने का भरसक प्रयास किया जा रहा है। कोई कहता है महर्षि दयानन्द आकाश में उड़ा करते थे। कुछ का कहना है कि महर्षि ने जोधपुर नरेश को एक कमरे में उड़कर दिखाया था। यहाँ (बरेली में) एक महानुभाव कहते थे कि उन्होंने एक दिन प्रातःकाल चौधरी तालाब में पानी के तीन फुट ऊपर महर्षि को पद्मासन लगाये देखा परन्तु जैसे ही महर्षि ने उनकी ओर देखा तो वे अदृश्य हो गये। कुछ रंगीन तबियत के लोगों को यह बुरा लगा कि महर्षि की मृत्यु षड्यन्त्र में नन्ही जान वेश्या का हाथ था। वे लोग वेश्या के इस अपमान को भला कैसे सह सकते हैं। उन्होंने अपनी रंगीन रिसर्चें की हैं। आज कल हर व्यक्ति रिसर्चस्कालर की डिग्री अपने ऊपर लादना चाह रहा है। कुछ डा० अलीमर्दन खां और फैजुल्ला आदि को निष्कलंक सिद्ध करना चाह रहे हैं। इस प्रकार के लोग यदि आगे चल कर यह भी सिद्ध करने लगें कि पं० लेखराम और स्वामी श्रद्धानन्द की हत्या में भी किसी मतान्ध मुसलमान का हाथ नहीं था वरन् वे अपनी स्वाभाविक मौत से मरे तो भी कोई आश्चर्य नहीं। पता नहीं किसको प्रसन्न करने के लिये महर्षि के जीवन चरित्र के साथ इस प्रकार का खिलवाड़ किया जा रहा है।

कुछ लोग महर्षि की हत्या के षडयन्त्र में से ब्रिटिश गवर्नमेण्ट (Government) को भी हटाना चाह रहे हैं। लोगों का कहना है कि महर्षि को विष नहीं दिया गया है।

महर्षि के जीवन में चमत्कारिक घटनाओं का उल्लेख भी बड़ी तेजी से हो रहा है। इसी प्रकार की तथ्यहीन काल्पनिक घटनाओं का एक पुलन्दा एक योगी जी ने तैयार किया है। वे इसको ऋषि का अज्ञात जीवन कहते हैं। वह ऋषि की जीवनी तो नहीं परन्तु एक छोटा सा पुराण अवश्य है। उसमें तो थोड़े ही चमत्कार हैं लगता है आगे चलकर तो लोग महर्षि के जीवन में चमत्कारों की भरमार कर देंगे। कोई कहेगा ऋषि दयानन्द आसमान से पैदा हुये थे। कोई कहेगा जब वे पैदा हुये थे तो उन्हें वेद मन्त्र कंठस्थ थे। कोई कहेगा कि वे पैदा होते ही समाधि लगा लेते थे। कोई कहेगा जब वे पैदा हुये थे तो जमीन थर थर काँप रही थी। सच्चिदानन्द जी (तथाकथित योगी जी महाराज) का यह उपन्यास (महर्षि की अज्ञात जीवनी) इस दिशा में प्रथम महत्वपूर्ण प्रयास है।

डा० भवानीलाल जी भारतीय ने इस जीवनी की समालोचना लिखी। तथाकथित योगी जी महाराज ने बड़े ताव में आकर अपनी पुस्तक की पुष्टि में लिखते हुये भारतीय जी के प्रश्नों का उत्तर देने का प्रयास किया। अच्छा होता वे मौन ही रहते। इस प्रकार "सान्यसम हेत्वाभास" में फंस कर निग्रह स्थानों में तो न गिरते। हेत्वाभासों के चक्र में फंस कर और निग्रह स्थानों में गिर कर भी यदि वे साहस के साथ ऊपर आकर उस भ्रामक जीवनी की वकालत करने के लिये खड़े होने का दुःसाहस करते रहेंगे तो यह उनकी जवांमर्दी और बहादुरी नहीं कहलायेगी महर्षि के जीवन चरित्र के साथ इस प्रकार का खिलवाड़ करना उचित नहीं।

परन्तु प्रश्न इस जीवनी का ही नहीं है। ऋषि के जीवन का बिगाड़, ऋषिकृत ग्रन्थों का पाठ बदलना, सिद्धान्त विरुद्ध पुस्तकों का प्रकाशन आर्यसमाज के संगठन से खिलवाड़ आदि बातों का होना एक विचारणीय समस्या है। आर्य विद्वानों को परस्पर मिलकर कोई हल निकालना ही होगा। नहीं तो आखिर कब तक चलेगा यह उपहास ? ●

पंजाब तथा हरयाणा हाई कोर्ट ने सभा के अभियोग की अगली सुनवाई की तारीख १५-१६ मार्च ७३ की लगा दी।

(पत्र प्रतिनिधि द्वारा)

जस्टिस बी० एस० ढिल्लों ने श्री आर० एस० फुलका निर्वाचन अधिकारी की २०० पृष्ठों की प्रतिनिधियों के सम्बन्ध में की कई आपत्तियों की रिपोर्ट का मुख्य भाग १६-२-७३ की सुन कर उक्त रिपोर्ट के आधार पर सम्बन्धित आर्य समाजों के प्रतिनिधियों को स्वीकार अथवा अस्वीकार करके अपने कार्यकलाप को आदेश दिया कि स्वीकृत प्रतिनिधियों को न्यायालय के रजिस्टर में अंकित किया जावे। श्री फुलका की रिपोर्ट का शेष भाग श्री आनन्द स्वरूप जी एडवोकेट ने २२-२-७३ तथा २३-२-७३ को पढ़ कर सुना दिया। २३-२-७३ को २-० बजे के बाद श्री सोमनाथ मरवाहा अपना पक्ष प्रस्तुत करते रहे। अब न्यायालय ने १५ व १६ मार्च ७३ की तारीखें इस कार्य के लिये निश्चित की हैं। आशा है कि मार्च मास में प्रतिनिधियों की पूर्ण सूची बन जायेगी उसके उपरान्त ही जज महोदय सभा के निर्वाचन तथा स्थान का निश्चय करेंगे। ●

महर्षि-गाथा

[ले०—श्री भैरवदत्त शुक्ल, केसरी गंज पो०—नबी नगर सीतापुर (उ.प्र.)]

उपक्रम (देवघनाक्षरी)—

तीनों लोक जिसका सदैव गुणगान करें,
उस अविनाशी इन्द्र, अग्नि, पवमान की जय।
विश्व में समाया किन्तु सीमा में न आया जो कि,
उस अव्यय, अनन्त, पूजा, दिनमान की जय।
सगुण, महान्, शक्तिशाली जो कि अविकारी,
उस कवि, यम, ज्योति रूप बलवान् की जय।
नाम हैं अनेक किन्तु विश्व में अकेला जो कि,
उस दीनबन्धु, दयासिंधु भगवान् की जय ॥१॥

एक-एक ज्ञान-रश्मि पर दृष्टिपात किये,
उज्ज्वल अनोखे चित्त सुकुमार दृग की जय।
ब्रह्म सत्य, जीव सत्य, प्रकृति अनोखी सत्य,
'त्रैतवाद' के सुहावने सुपुष्ट डग की जय।
जिसका सहारा लेके दुरित विनष्ट होते,
सुबुद्धि परिवर्द्धक उस आर्य मग की जय।
सविता की कृति का प्रतीक मनोहारी जो कि,
विविध पदार्थ, गुणयुक्त उसी जग की जय ॥२॥

भिन्न जलवायु, भिन्न मतवाद पाले हुए,
ऐक्य-अनुभूति-पूर्ण मतवारे वेश की जय।
उज्ज्वल परम्परा का दाय सुखदायी पुष्ट,
लिये हुए 'त्रयी' के सुभव्य परिवेश की जय।
गरिमा अनोखी लिये, महिमा समेटे सभी,
'सबको बनाओ आर्य' दैविक संदेश की जय।
हिमगिरि जिसका किरीट-सा प्रतीत होता,
सागर के दुलराये उस प्यारे देश की जय ॥३॥

(मन हरण)—

जानता हूं शक्ति मेरी सीमित है न्यून बनी,
साधनों का रूप तक देख नहीं पाता हूं।
विद्या के समस्त गुण पास नहीं आने पाये,
उद्यम-विहीन बना, ठीक से न खाता हूं।
कोई आर्य मुझको सहारा भी तो देता नहीं,
लाभप्रद काव्य के समीप नहीं जाता हूं।
माँग कर क्षमा किन्तु छन्दों में समेटे हुए,
महर्षि दयानन्द के कुछ गुण गाता हूं ॥४॥

(रूप घनाक्षरी)—

वृक्ष, चौरे पूज-पूज, कब्रों पर माथा टेक,
व्यक्ति हुए झाड़-फूंक, यंत्र-तंत्र के शिकार।
शाक्तों, शैवों, वैष्णवों के सम्प्रदाय थे अनेक,
आपस की फूट से ही हो चुका था बंटाढार।
पत्थर की धातुओं की मूर्तियों की पूजा बढ़ी,
बहु देव-देवियों की हो चुकी थी भरमार।
धर्म था विलीन हुआ, दम्भ का कलुष बढ़ा,
हो चुका था जड़ मिथ्या रूढ़िवाद का प्रसार ॥५॥

देश-काल-बाधित विनष्ट आर्य ध्येय हुए,
तर्क व्यवहार का न शेष रह गया नाम।
वेदों की मखौल उड़ा, मनमाने श्लोक गढ़,
तिलकों से रंगे हुए फैले थे छली तमाम।
मूढ़जन लेकर पुरोहिती की आड़ बड़ी,
इमली को सिद्ध कर डालते थे मीठा आम।
तीर्थ, मठ, मन्दिरों में पंडों की ठगी थी बढ़ी,
दान के बहाने लूट पनपी थी अविराम ॥६॥

अवतारवाद के शिकंजे कुछ ऐसे कसे,
शूकर का स्वरूप भगवान् धरने लगे।
योगी राज कृष्ण छेड़खानी कर गोपियों से,
चोर, जार बने, सहस्र विवाह करने लगे।
राम आनबान तज सरयू के तट पर,
काम-केलियों में नवीन रंग भरने लगे।
पांच ही मकारों का सहारा पशु तुल्य लिये,
भैरव वामाचारी भव-पीड़ा हरने लगे ॥७॥

चारों ओर सन्त गाँजा, भांग के नशे में चूर,
'नाम' का सहारा लिये बदनामी ढोने लगे।
मन्दिर-मठों के ठाठ और ही निराले बने,
रास, रंग, नृत्य के विलास नित्य होने लगे।
'देवदासियों' के हाव-भाव भरे मंजु राग,
सुन सुन सज्जन विवेकी धैर्य खोने लगे।
अन्धकार से समस्त परिवेश पूर्ण देख,
भारत के भाग्य सूर्य पड़कर सोने लगे ॥८॥

जाति उपजाति के असंख्य भेदभाव पले,
छुआछूत, ऊंच-नीच बढ़ चली बेमिसाल।
वर्ण थे विवर्ण हुए, आश्रम सभी थे नष्ट,
पुरुषार्थ के भी न थे शेष रहे तुक-ताल।
खान-पान असमान, ऐक्य का न रंच ध्यान,
नग्न अतिचार का था हर ढंग मालामाल।
मातृ शक्ति दलित निरक्षरा मलीन बनी,
सभी ओर फैला था विनाश का ही आल जाल ॥९॥

खंडित अखण्डता समस्त देश की थी हुई,
कलह कुचाल जन्य फैले पाप दुःख क्लेश।
दमन-दुःशासन की शक्ति पनपी थी खूब,
शांति द्रौपदी के खुले बिखरे हुए थे केश।
राजा हीनवीर्य बने, भ्रष्ट थे नवाब सभी,
शासन प्रशासन का विकृत हुआ था वेश।
मुट्ठी भर परदेशी भाग्य के नियन्ता बने,
किरण स्वतन्त्रता की एक भी नहीं थी शेष ॥१०॥

नीति थी विलीन हुई, अविवेक फैल गया,
हो चुका था जाड्य का ही घनीभूत संविधान।
गूढ़तम उलझाव का प्रभाव ऐसा हुआ,
अपने विकास का समाज को रहा न ध्यान।
हतवीर्य हिन्दुओं का वैभव सभी था फुका,
शाही ठाठ-बाट खोये दुःखी थे मुसलमान।
भिन्न भिन्न मतवाद भिन्न मंच वाले बने,
अलग अलग राग, कैसे होती एक तान?? ११??

सत्य कर्ममयी सूत्र-सूची का सुयोग पाये,
युग की दरार फिर एक बार सिल गयी।
विष-रस द्वारा सींची कलिका सुधर्म की भी,
रंच सुधा-सार पाये पल मध्य खिल गयी।
प्रखर तर्क-शर के प्रहार से छिदी-बिधी,
सत्ता रूढ़ि की तुरन्त मूल से ही हिल गयी।
महर्षि दयानन्द की तपस्या साधना से ही,
सर्वज्ञानमयी वेद-भूति-ज्योति मिल गयी ॥१२॥ ●

गतांक से आगे—

महर्षि दयानन्द को विष दिया गया

ऋषिवर के बलिदान की कहानी (११)

(ले० श्री प्रो० राजेन्द्र जिज्ञासु एम० ए० बी० टी० अबोहर)

महर्षि दयानन्द के बलिदान की गौरव गाथा का वर्णन उस काल के सभी प्रमुख राजस्थानी इतिहासकारों ने किया है। सब के प्रमाण हम दे चुके हैं अतः यह शङ्का करना अथवा ऐसा सोचना, लिखना व कहना कि महर्षि के विषपान की घटना ऐतिहासिक नहीं, यह बाद में अंधविश्वास से आर्यों ने जोड़ी, सर्वथा मिथ्या मत है।

पाठकों को हम बता चुके हैं कि आर्य संस्कृति व धर्म पर भीषण प्रहार करने वाले मैक्समूलर ने भी महर्षि का बलिदान विषपान से लिखा है। एक स्थान पर दो पुस्तकों में महर्षि के बलिदान की उसने चर्चा की है। आश्चर्य की बात है कि अंग्रेज सरकार का वेतनभोगी लेखक तो घटना को ऐतिहासिक तथ्य बता रहा है और हरयाणा सरकार के धन से पंजाब विश्वविद्यालय की सेवा में लगा हुआ एक वृद्ध महारथी इस ऐतिहासिक तथ्य व सत्य को भुठलाने का दुःसाहस कर रहा है।

पाठक इस तथ्य का खूब प्रचार करें कि महर्षि का बलिदान १८८३ ई० में हुआ। प्रो० मैक्स मूलर ने बलिदान के थोड़ा समय पश्चात् ही यह लिखा है कि ऋषि को विरोधियों ने उनके विचारों व सुधारों के कारण विष दिया। "जब मैक्स मूलर ने यह बात लिखी तब तक तो पं० लेखराम अभी प्रचार क्षेत्र में भी न उतरे थे। ऋषि जीवन की सामग्री एकत्र करने का कार्य तो सभा न उनको बहुत वर्ष पश्चात् सौंपा था।" तब तक पंजाब सभा के किसी भी नेता ने स्वप्न में भी यह कार्य पं० जी अथवा सभा के किसी कार्यकर्त्ता को सौंपने का विचार न किया था।

"जब श्री मैक्स मूलर ने ऋषि के बलिदान पर लिखा तब तक तो आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का जन्म भी न हुआ था। सभा के जन्म से बहुत पूर्व प्रो० मैक्स मूलर ने बड़े स्पष्ट व सजीव शब्दों में लिखा कि क्रान्तिकारी सुधारों के कारण ऋषि के कई शत्रु बन गये। उनको दुःख, कष्ट, वैर, विरोध, अपमान का सामना करना पड़ा। वैरियों द्वारा विष देने से उनकी मृत्यु हो गई।"

अब पाठक निष्पक्ष सत्यनिष्ठ अनआर्यसमाजी लोगों को भी बताएं कि किस प्रकार हरयाणा के भोले भाले, सीधे सादे लोगों की धर्मनिष्ठा से खिलवाड़ हो रहा है। सरकार ने तो जनता को कह दिया हमने बड़ा पुण्य कर दिया जो राष्ट्र व विश्व की एक विभूति का जीवन चरित्र पंजाब विश्वविद्यालय से छपवाने के लिये ५०००० रु० दे दिया और इधर आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब व वीर लेखराम आदि पर महर्षि के बलिदान की घटना घटने का निराधार कपोल कल्पित आरोप लगाया जा रहा है। इतने प्रमाण देने पर भी श्री शर्मा जी अभी अपने हठ व दुराग्रह से पीछे नहीं हटे।

उनकी रिसर्च उनको कहाँ तक ले गई है इसका एक उदाहरण उनका ८.२.१९७३ के श्री जावेद जी के पत्र में प्रकाशित एक लेख है कि महात्मा आनन्द स्वामी जी ने लिखा है (२४.१२ ७२ के आर्य मर्यादा में) कि २० अक्तूबर को पीर हमाम अली ने ऋषि को देखा। महात्मा जी ने बाबा छज्जूसिह जी की पुस्तक का प्रमाण दिया आदि आदि। शर्मा जी लिखते हैं कि किसी भी लेखक ने नहीं लिखा कि पीर जी ने २० अक्तूबर को ऋषि को देखा। प्रि० शर्मा जी यह लिखना चाहते हैं कि महात्मा जी ने यह मिथ्या बात लिख दी है। जान बूझ कर शर्मा जी यहां भोले बनकर लिख रहे हैं किसी भी लेखक (लेखकों के उन्होंने नाम दिये हैं) ने ऐसा नहीं लिखा। महात्मा जी को आर्य जनता में मिथ्या भाषी सिद्ध करने के लिये शर्मा जी ने ऐसा लिखा है।

पाठक शर्मा जी की मनोवृत्ति देख लें महात्मा जी ने घटना सर्वथा सत्य लिखी है। शीघ्रता से वह ३० अक्तूबर की बजाए २० अक्तूबर लिख गये। बाबा छज्जू सिंह, दीवान हरबिलास जी शारदा, वीर लेखराम आदि सब लेखकों ने यह घटना दी है। अतः महात्मा जी ने जो लिखा वह ठीक है। Slip of the pen से अनजाने में तीस के स्थान पर बीस लिखा गया है। शर्मा जी भी जानते हैं परन्तु अपनी श्रेणी में महात्मा जी को भी घसीटना चाहते हैं।

एक और बात शर्मा जी साथ लिख गये कि "जिज्ञासु जी ने उनकी पुस्तक से उद्धरण देकर यह सम्मति प्रकट की है कि सन्देह किया जाता है कि उन्हें विष दिया गया।" यह भी सर्वथा मनघड़न्त बात है। मैंने एक बार भी यह सम्मति नहीं दी, न कहीं कहा न लिखा, न कल्पना की कि ऋषि को विष देने की बात सन्देहास्पद है। मैं बार बार लिख चुका हूं। मेरा निश्चित मत वही है जो उस समय के इतिहासज्ञों, लेखकों, आर्य विद्वानों, राज घराना के लोगों का था कि महर्षि को विष ही दिया गया। शब्दों को तोड़ना मरोड़ना 'वैज्ञानिक रिसर्च' हो सकती है नैतिकता नहीं।

फिर शर्मा जी ने महात्मा आनन्द स्वामी जी, डा० भारतीय जी व मेरे बारे में लिखा है कि हमने राव राजा तेजसिंह जी का प्रमाण दिया है कि ऋषि को विष दिया गया। शर्मा जी लिखते हैं कि शारदा जी ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि राव राजा की कहानी बहुत सारे भागों में ठीक नहीं।

शर्मा जी यहाँ भी हेर फेर से काम ले रहे हैं। शारदा जी के नाम पर क्यों मिथ्या बात लिखते हो बाबा। अपनी बात कहो। पाठक दीवान हरबिलास जी का लिखा ऋषि जीवन पढ़ें कहीं शारदा जी ने लिखा कि राव राजा का यह कथन ठीक नहीं कि महर्षि को विष नहीं दिया गया। बड़ी दुर्भाग्यपूर्ण बात है कि पूज्य महात्मा हंसराज के चरणों में वर्षों बैठने वाला व्यक्ति अपनी चतुराई से आर्य जगत् में भ्रान्ति फैलाने की कुचेष्टा कर रहा है।

"अब शर्मा जी मुझ से श्री गौरी शङ्कर ओझा के लेख अथवा पुस्तक की बाबत पूछते हैं कि मैं उनको बताऊँ कि ओझा जी ने कहां लिखा है कि ऋषि को विष दिया गया। शर्मा जी मुझे बताने में क्या आपत्ति है आपसत्य को मानने को उद्यत हो जाएं। हमारा आपसे क्या नाम बता देता हूं। क्या नाम बता दूं लेख दिखा दू, पुस्तक दिखा दू तो झगड़ा है। मैं फिर आप यह साहस करके सत्य को स्वीकार कर अपनी भूल पर पश्चा- ताप करेंगे ?"

शर्मा जी ने एक और अनर्थ किया है कि श्री रामलाल कपूर ट्रस्ट की मासिक पत्रिका पृष्ठ १२, १३ मास अक्तूबर १९७२ में लिखा है कि जोधपुर से निकल जाने के पश्चात् स्वामी दयानन्द को विष का सन्देह था तो क्यों प्रकट न किया। यह है उनके लम्बे वाक्य का भाव। शर्मा जी यहां यही बताना चाहते हैं कि जोधपुर में तो ऋषि को डर हो सकता था जोधपुर के बाहर तो कह देते।

जिस साधु ने जोधपुर में ही वेश्यागमन का भरी सभाओं में रोकने पर भी खण्डन न छोड़ा। जिस साधु के सारे भारत में सर्वप्रथम अंग्रेजी न्यायालयों के पक्षपात की भर्त्सना की उस महापुरुष पर डरने का सन्देह कर रहे हैं या मान रहे हैं। क्या कहें इस विषय में। उनकी भावना पाठकों के सामने है। दुःख तो यह है कि यह वाक्य छापने वाले पूज्य मीमांसक जी को यहां व्याकरण का कोई ऐसा सूत्र याद न रहा कि योगी मन्त्र दृष्टा ऋषि क्या भयभीत हो सकता है ? ऐसी कल्पना करना क्या अनर्थ नहीं ? जो एक दो सम्पादक शर्मा जी के लेख देते हैं वे अपनी असहमति तो उनमें प्रकट कर देते हैं खुल कर अपने विचार उनके विरोध में क्यों नहीं देते यह हमारी समझ से बाहर है। किस बात का उनको भय है ? सब विद्वान् हैं। जब उनके मत को मिथ्या मानते हो तो उसका खण्डन करो। श्री सिद्धान्ती जी आदि कई सम्पादकों की भांति साहस करना चाहिये। डर किस बात का ? ●

आर्यभावना के सुलभ लाभ

(ले० श्री देवनारायण भारद्वाज, मन्त्री आर्यसमाज, अलीगढ़)

भूतप्रेत की अन्ध धारणा

बस पर बैठ कर एक छोटी सी यात्रा कर रहा था। बस ग्रामीण अंचल से गुजरते हुए एक छोटे से स्टेशन पर रुकी। बड़ी भीड़ थी। बहुत से यात्री बैलगाड़ी, घोड़ा गाड़ी, साइकिलों से तथा पैदल ही बढ़े चले जा रहे थे। स्त्री पुरुष, आबाल वृद्ध सभी यात्री अपने गन्तव्य को ओर जा रहे थे। हमारी बस में भी अनेक स्त्री पुरुष एक दम चढ़ आये थे। पर एक नव युवती ऐसी थी जो पूरे प्रयास के बाद भी चढ़ना नहीं चाहती थी। उसके साथी उसे ऊपर धकेल रहे थे और वह नीचे भाग रही थी। उस तरुणी के अनेक स्त्री पुरुष साथियों ने उसको धकेल कर ऊपर चढ़ा दिया और बलात् एक सीट पर पकड़ कर बैठा दिया। बस चल पड़ी किन्तु उस महिला की क्रियायें-प्रतिक्रियायें बिल्कुल बन्द नहीं हुईं। वह भांति भांति की बातें कर रही थी। साथी उसको चुप कर रहे थे। बस में बैठे शेष सभी यात्री या तो मौन थे या फिर धीरे धीरे कुछ वार्ता कर रहे थे।

तरुणी बहुत ही सुन्दर हृष्ट पुष्ट और मधुर भाषिणी प्रतीत हो रही थी। मुझ से देर तक मौन नहीं रहा गया—मैंने उसके एक साथी से वस्तु स्थिति के सम्बन्ध में बात की। ज्ञात हुआ आगे एक ग्राम में मियां की मज़ार है जहाँ आज मेला लग रहा है। इस लड़की पर कोई भूत प्रेत चढ़ आया है। इस मिया की मज़ार पर चढ़ावा चढ़ाने से तथा झाड़फूंक करने से वह उतर जायेगा। यह सुनकर मुझे बड़ा कष्ट हुआ तथा उस युवती के प्रौढ़ साथियों को मैंने भरसक समझाने का यत्न किया कि इसे किसी योग्य डाक्टर को दिखाइए, उत्तम उपचार से इसका ठीक होना संभव है। इस प्रकार मिया की मज़ारों पर चक्कर काटने से कुछ भी होना मृगमरीचिका के समान ही है। बस में बैठे लोग यद्यपि अधिकांश मुझसे सहमत थे, किन्तु कुछ असहमत थे। एक व्यक्ति के विचार कुछ मनोरंजक प्रतीत हुए। उसने कहा कि मुसलमानों की मजारों से तो कुछ नहीं होगा, किन्तु हिन्दुओं के जो देवता हैं उनकी पूंजा करने से तथा प्रसाद चढ़ाने से अवश्य लाभ हो सकता है।

अन्त में वह स्थान भी आ गया, जहाँ पर वह मियां का मेला लगा था। उस युवती का एक प्रौढ़ साथी उतरते उतरते यही कहता हुआ चला गया कि मेरा छोटा भाई जो आज कल कालिज में पढ़ रहा है—उसका विचार भी आपके समान ही है। इस मज़ार को और अजमा के देख लें—फिर चिकित्सा का ही प्रबन्ध करेंगे। वह युवती तथा उसके साथी बस से उतर चुके थे और बस आगे बढ़ चुकी थी। मेरा मन बड़ा कष्ट अनुभव कर रहा था। मैं अब से बहुत पीछे अपने बाल्यकाल की एक घटना का स्मरण करने लगा था। पड़ौस में ही एक व्यक्ति का बड़ा लड़का जो पूर्ण तरुणाई पर था—रोगग्रसित हो गया। वह चुपचाप निष्क्रिय होकर बैठने लगा—हाथ पाँव हिलाना बन्द और जिस ओर देख रहा है—बस उसी ओर देखता रह जाता है। मुख पर बैठी मक्खी भी हटाना कठिन। सम्बन्धी किसी डाक्टर से सम्पर्क करने को इच्छुक थे, किन्तु पड़ोसियों ने एक देहाती अपढ़ भगत के पास भेज दिया। फिर एक भगत से दूसरे तक और दूसरे से तीसरे तक दौड़धूप होने लगी। झाड़-झंकार भी हुई—कोई परिणाम नहीं निकला। इस बीच अपने बड़े पुत्र पर अत्यन्त मोह रखने वाला उसका पिता भी रोग ग्रसित हो गया। यह देखकर कि हमारी आशाओं का आधार-युवक पुत्र भला इस प्रकार दीन हीन दशा में कैसे जीवन काटेगा। सोच सोच कर पिता का मस्तिष्क भी विक्षिप्त हो गया। अब भगत-ओझाओं और साधुओं तक दौड़ धूप और भी बढ़ गई। भगत जी ने भाँति भाँति के टोने टोटके किये, तथा उसके अन्य पुत्रों—छोटे छोटे बच्चों से मारने पीटने की सलाह भी दी और उस विचारे कृशकाय व्यक्ति को बुरी तरह से पीटा गया—बाँधा गया और बन्द किया गया। भोजन रोक दिया गया, तथा ऊट पटांग वस्तुयें खाने को दी गईं। भगतों ने सम्बन्धियों की सारी मोह ममता यह समझा कर समाप्त कर दी थी कि यह आप लोगों का कोई आत्मीय या परिजन नहीं है। यह तो भूत है। इसी उहापोह में एक दिन वह महान् सरल सोम्य तथा धार्मिक पुरुष दिवंगत होकर अन्धविश्वास की भेंट हो गया

इस अज्ञात मौन बलिदान के बाद घरवालों को ज्ञान हुआ तथा योग्य पुरुषों का परामर्श समझ में आया। उन्होंने उस लड़के का यथोचित उपचार कराया, और वह ठीक हो गया। बाद में उसका विवाह हुआ और अब अनेक होनहार सन्तानें भी उसने प्राप्त करली है, पर आज, वह पिता तथा नन्हें बच्चों का बाबा पितामह उनको लाड़प्यार तथा खिलाने के लिये नहीं है। मैं इस परिवार से अत्यन्त निकट सम्बन्धित हूँ। तब मैं भी अबोध तथा बालक था। उस समय भगतों द्वारा होने वाले आक्रमणों का अवलोकन करते हुए दिल कम्पायमान हो जाता था, किन्तु आज स्मरण करके दिल दहल जाता है।

न जाने कितने प्राणी तथा परिवार इस अन्धविश्वास के आखेट बन चुके हैं। आश्चर्य तो यह है कि अब भी बनते जा रहे हैं। आर्य भावना रखने वाले सज्जन यदि मूर्ति को ईश्वर या देवता कहने से मना करते हैं तो अन्ध अबोध व्यक्ति उनको नास्तिक कहने का दुस्साहस तो करते हैं, किन्तु उनके द्वारा बताये गए सर्वशक्तिमान् सर्वव्यापक निराकार ईश्वर की ओर ध्यान देने का प्रयास नही करते। और जब वे भूत प्रेत को मृत मान्यताओं तथा भयंकारी भगतों के भ्रम भावों का विरोध करते है तब भी उनकी बात कठिनाई से मानी जाती है। भूत क्या? जो हो चुका। यानी पीछे गुजर चुका। इसीलिये भूत के पैर पीछे की ओर कल्पित किये गये होंगे। यही कल्पनायें आज साहित्य और समाज पर छा गई। ग्रामीण क्षेत्रों में बहुत तथा नागरीय क्षेत्रों में कुछ कम भूत प्रेत की चर्चायें होती रहती हैं। ग्रामों में तो भूतों की कुश्ती, भूतों द्वारा खरीदारी, भूतों के उत्सव न जाने कितने उपाख्यान बहुधा सुनने को मिलते हैं और इन्हीं को सुन सुन कर भूतों की भ्रान्त भावनायें पुरानी पीढ़ी से नई पीढ़ी को विरासत में मिलती जाती हैं। स्थिति तो यहाँ तक पहुँच जाती है कि कभी कभी कोई मकान ही भूतों को अलाट कर दिया जाता है। उसमें किसी भी परिवार को रहने का साहस ही नहीं होता। कभी कोई आर्य परिवार वहाँ जाकर रहता है, तो स्वार्थी लोग जो उस मकान में किसी का बसना अपने हित के विपरीत समझते हैं — उस परिवार पर भांति भाँति के आक्रमण करते हैं। अनेक बार तो वे लोग प्रत्यक्ष पकड़ लिये जाते हैं और पीटे जाते हैं तो वहां से सदा के लिये भूत भाग जाता है।

एक लालाजी किसी मेले से गाय खरीदकर लाये। चार ठगों ने उस गाय को लाला से ठगने का निश्चय किया। वे चारों मार्ग में थोड़ी थोड़ी दूरी पर खड़े हो गये। पहले ने कहा लाला जी यह बकरी कहाँ से लाये हो। थोड़ी दूर पर दूसरा मिला उसने कहा—यह बकरी तो बड़ी अच्छी है। बाद में तीसरा मिला और बोला यह बकरी बड़ी भी है, सुन्दर भी है पर देखने को ही है दूध बहुत कम देगी। आगे चले तो चौथा अन्तिम ठग मिला—लाला जी बकरी कितने रुपये में लाये हो। वे तीनों ठग भी चलते चलते वहीं आ गये थे। लाला जी ने बताया कि साठ रुपये में यह बकरी नही गाय खरीद कर लाया हूँ। अच्छा तो गाय के धोके में ही आप इस बकरी के साठ रुपये दे आये। एक ठग बोला बीस रुपये का मूल्य तो इसका होगा ही। दूसरे ने कहा और तो कोई इसके इतने रुपये देगा नही तुम्हीं भले दे दो। तीसरे और चौथे ने लाला को समझाया "लाला जी बीस रुपये लेकर इस बकरी से छुटकारा पालो"। और लाला जी ने वह गाय ठगों को सौंप दी। यह था बारम्बार के कथन का प्रभाव।

उन दिनों में मैं जब लखनऊ के न्यू हैदराबाद में रहता था। प्रायः रात देर से घर आना होता था। एक अतिथि मित्र के साथ रात्रि को गोमती के सहारे सहारे चला आ रहा था कि सहसा मित्र रुक गया। बोला कोई खड़ा है—कहीं यह भूत तो नही। वास्तव में एक ठूंठ खड़ा था जो अँधेरे में मानव की आकृति सा लगता था। जब समझाया तब कहीं आगे चलना हुआ। यदि मैं समर्थन कर देता तो वह ठूंठ अवश्य ही भूत बन जाता और भागते तो ऐसा लगता कि वह भी पीछे भाग रहा हो। कभी कभी अपने स्वार्थ सिद्धि के लिये अनेक व्यक्ति अपने ऊपर भूत-प्रेत या देवी देवता चढ़ा लेते हैं और स्वार्थ पूर्तिके बाद वे सब स्वयं भाग जाते हैं। किसी योग्य चिकित्सक के निकट जाने पर सभी नीर-क्षीर विवेचन हो जाता है। आर्य समाज के सत्संग में जाते रहने से, तथा वैदिक साहित्य के स्वाध्याय से इस प्रकार की अन्ध कुत्सित धारणायें समाप्त होती हैं, तथा हृदय में शक्ति का संचार होता है जिससे यह भूत सदैव के लिये भाग जाते हैं। ●

विचारणीय प्रसंग—

मक्का—भावना और हम

(लेखक—श्री पं० जगत्कुमार शास्त्री "साधु सोमतीर्थ" आर्योपदेशक
सी-२/७३, अशोक विहार-२, देहली-५२)

१—मनुष्य पूजा, कब्र पूजा और समाधि पूजा करना एवं किसी मनुष्य विशेष के जन्म स्थान अथवा मरण स्थान पर पुण्य प्राप्ति की कामना से जाना, वहां चढ़ावे चढ़ाना, रोना, गिड़गिड़ाना, रस्म-रिवाजों और तथाकथित धार्मिक वा स्मृति विशेष कृत्यों का सम्पादन वहां करना और उस स्थान विशेष में अलौकिक महत्व या पवित्रता का आरोप करना आदि ही मक्का-भावना के परिचायक कर्म हैं।

२—इसे मक्का-भावना कहने और समझने में विशेष हेतु है। मनुष्य पूजाओं के विभिन्न रूप और प्रकार आदि तो पौराणिकों, जैनियों, ईसाइयों, मूसाइयों ओर सिक्खों में भी प्रचलित हैं; परन्तु कट्टरता में वे सब मुम्मदियों की कट्टरता से कम ही हैं। एकेश्वरवाद का उद्‌घोष जो इस्लाम की एक बड़ी विशेषता है, वह भी इस मक्का-भावना के सामने निस्तेज हो चुका है। सिक्खों में प्रचलित मनुष्य पूजा अर्थात् गुरुडम पर तो क्रान्तदर्शी श्री गुरु गोविन्दसिंह जी ने पुस्तक पूजा का एक नया प्रयोग चलाकर, कुछ प्रतिबन्ध भी लगाया है। उन्होंने पूर्व गुरुओं की पूजा का निषेध तो नहीं किया; परन्तु ग्रन्थ साहेब की प्रतिष्ठा गुरुपद पर करके गुरुडम को आगे बढ़ने से रोक अवश्य दिया। उनके प्रयत्नों में जो आंशिक सफलता हुई, वह कुछ कम महत्वपूर्ण नहीं है।

३—यह मक्का-भावना मनुष्य को पक्षपाती, अनुदार, बहिर्मुख, आत्मद्वेषी, संकीर्ण, झगड़ालू, अन्धविश्वासी, नास्तिक, मक्कार और कूपमण्डूक बनाती है। महर्षि दयानन्द सरस्वती जी इस मक्का-भावना के प्रबल निवारक और सब प्रकार की मनुष्य पूजाओं को हटाकर एकेश्वरवाद का प्रचार करने वाले एक बड़े महापुरुष थे।

४—मथुरा, अयोध्या, वाराणसी, हरद्वार, ननकाना, लुम्बनी, वैशाली, कुशीनगर, अजमेर, मक्का, मदीना और अब हमारा टंकारा भी—इत्यादि नगर जो विभिन्न महापुरुषों के जन्मस्थान, मरणस्थान अथवा उनके जीवन की किसी विशेष घटना से सम्बन्धित स्थान हैं, उनकी अलौकिकता, महात्म्य और यात्रा आदि के प्रतिपादक सब आन्दोलन उक्त मनुष्य पूजा की मक्का-भावना के ही प्रतिफल हैं।

५—मक्का हजरत मुहम्मद का जन्म स्थान है, मथुरा योगेश्वर श्रीकृष्ण का जन्म स्थान, अयोध्या मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम का, ननकाना गुरुनानकदेव का, लुम्बनी महात्मा गौतमबुद्ध का, वैशाली भगवान महावीर का और टंकारा महर्षि दयानन्द का। विभिन्न मतमतान्तरों वाले लोग अपने अपने मान्य अथवा मतप्रवर्त्तक महापुरुषों के जन्मस्थानों की यात्राएं विशेष समारोह के साथ करते हैं, वहां बड़े बड़े मेले लगाते हैं, और दान पुण्य आदि भी करते हैं। कई प्रकार के दर्शन भी वहां पर किये कराये जाते हैं। मक्का और मथुरा आदि के अलौकिक महत्व को नाना प्रकार से सूचित करने वाला साहित्य बहुत अधिक रचा जा चुका है। ऐसे साहित्य का संवर्धन भी होता रहता है, संस्कार और प्रचार भी। टंकारा इस श्रेणी में अभी नया है। प्रगति करके अब तेजी के साथ यह भी औरों के बराबर आ रहा है।

६—इस मक्का-भावना के विषय में हमारी अर्थात् महर्षि दयानन्द सरस्वती जी के अनुगामी आर्यसमाजियों की सामाजिक, व्यावहारिक, वैधानिक, सैद्धान्तिक और मनोवैज्ञानिक आदि स्थितियां क्या क्या? कैसी कैसी हैं? इस विषय में दूसरे मतमतान्तर वालों से हम किस बात में भिन्न हैं? अथवा क्या हम भी उनके समान ही हैं? ये प्रश्न हम अपने अपने अन्तरात्मा से ही पूछें। जो उत्तर मिले, उस पर महर्षि दयानन्द द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों और मन्तव्यों के आधार पर विशेष विचार करें।

७—वीर पूजा का सिद्धान्त उत्तम है। मैं इसका विरोधी नहीं। वीरों और महापुरुषों के अनुगमन, उनके उपदेशों के प्रतिपालन उनके अधूरे कार्यों की पूर्ति, उनके उपदेशों का अनुष्ठान कर सकते हैं। यदि लोक दिखावे और मेरे तेरे के आधार पर राग द्वेषके शीघ्र ही भड़क उठने वाले भावों को न भड़काया जाये, तो यह वीर पूजा का सिद्धान्त मानव जीवन को सरस और स्निग्ध बानाने में अधिक सहायक हो सकता है। महापुरुषों को महापुरुष ही समझा जाये। ईश्वर के दूत, पूत, अवतार, प्रतिनिधि आदि उन्हें न बनाया जाये। अपनी योग्यता को साधना द्वारा बढ़ाकर महापुरुषों का पूरा व आंशिक, अनुकरणतम अवश्य ही कर सकते हैं। ईश्वर के दूतों, पूतों अवतारों आदि के अनुकरण का तो प्रश्न ही नहीं पैदा होता। वे तो मानवता की पहुंच से परे ही होते हैं।

८—मानव स्वभाव में वर्तमान एक दुर्बलता हजारों लाखों वर्षों से अपना काम कर रही है। कुछ थोड़े लोगों को छोड़कर, अधिकांश लोग उस दुर्बलता के वशीभूत हो जाया करते हैं। वह दुर्बलता यह है कि कोई मनुष्य जब अपने मान्य महापुरुष के प्रति उत्कृष्ट प्रेम करने लगता है: तब वह विशेषणों, अलंकारों और किंवदन्तियों आदि के द्वारा अपने मान्य महापुरुष के महत्व को बढ़ाते बढ़ाते इतना बढ़ाता है कि वह अलौकिक बन जाता है, चमत्कारिक बन जाता है, साधारणतया से पृथक् रूप धारण कर लेता है और, तभी "सुन्दरं प्रकुर्वीणो, रचयामास वानरम्" की उक्ति चरितार्थ होने लगती है।

९—पिछले एक सौ वर्षों में महर्षि दयानन्द जी की प्रशंसा में विभिन्न भाषाओं में बहुत कुछ लिखा जा चुका है। अभी और भी बहुत कुछ लिखा जायेगा। महर्षि दयानन्द के जीवन में सचमुच ऐसा बहुत कुछ है, जो कवियों, लेखकों, विचारकों और विद्वानों को आकर्षित ही नहीं करता, उन्हें मुखर भी बनाता है, उन्हें भाव प्रकाशन के लिये विवश भी करता है। जब चक्कर चलता है, तो सभी को अपने अपने संस्कारों, विचारों के अनुसार मनमौजीपन का अवसर खूब मिल जाता है। इस विषय में किसी की ओर इशारा करना भी कठिन है। इस स्थिति में तो महापुरुष के जय निनादों की तुमुलध्वनि में उस महापुरुष के विशेष सिद्धान्तों का गला भी घोटा जा सकता है। बहुत से महापुरुषों के प्रति यह क्रूर व्यवहार हो चुका है। खेद है कि अब महर्षि दयानन्द के प्रति भी यही हो रहा है। शोक! शोक!!

१०—मुसलमानों ने अपने हजरत मुहम्मद की महिमा का एक गीत बनाया था—"तौहीद का डंका आलम में बजवा दिया कमली वाले ने।" हमने इसे अपने महर्षि पर चिपका दिया—"वेदों का डंका आलम में बजवा दिया ऋषि दयानन्द ने।" कवि को कभी "ऋषि दयानन्द" प्रयोग कुछ हल्का लगा। तब उसने स्वयं हो बदला और भारी बनाना चाहा—"वेदों का डंका आलम में बजवा दिया देव दयानन्द ने।" किसी पौराणिक ने कृष्ण को बुलावा भेजा था—"बंशोवालिया श्यामा तेरे आवण दी लोड़:" इधर से भी दयानन्द को बुलावा भेजा गया। किसी ने सोचा ही नहीं कि बुलावा पहुंचेगा कहां? "वेदां वालिया ऋशिया नेरे आवण दी लोड़:" इस प्रकार महर्षि दयानन्द को भी अवतारों की श्रेणी में बैठा दिया गया। अनजान में ही सन्त कबीर और गुरु नानक देव प्रभृति सन्तों के लिये प्रयुक्त विशेषण ही नहीं, कुछ प्रचलित घटना क्रम भी महर्षि दयानन्द के साथ जोड़े जाते हैं। हजरत मुहम्मद की महिमा जैसी कव्वालियां और अन्य कवितायें प्रायः गाई जाती हैं, वैसी ही महिमा, वैसी ही कवितायें आदि हमने अपने महर्षि दयानन्द की भी विकसित करली हैं, जोड़-तोड़ करके प्रचलित भी कर दी हैं।

११—हमारे सत्संगों और प्रचार प्रसंगों में जब गायन, वादन और भाषणों आदि के आयोजन होते हैं, तब ईश्वर भक्ति और सिद्धान्त निरूपण आदि के साथ ही महर्षि दयानन्द की महिमा के गीत की खूब गाये जाते हैं। महर्षि दयानन्द को पंजाबी समुदायों में कुछ अधिक सफलता मिली थी। पंजाबी भाई मुसलमानों और सिक्खों आदि के साथ-सम्पर्कों और संघर्षों में उनकी पैगम्बरभक्ति तथा गुरुभक्ति को देखते और उससे प्रभावित होते थे। पंजाबी आर्यों हिन्दुओं के पास जो श्री राम और श्री कृष्ण आदि के नाम और काम पहले से ही मौजूद थे, वे पौराणिक अंक में लिप्त होकर अपनी चमक खो चुके थे। अतः पैगम्बरों और गुरुओं के साथ तुलना के लिये महर्षि दयानन्द को ही नये रूप में विकसित और प्रतिष्ठित कर लिया गया। काम धीरे धीरे हुआ। किसी व्यक्ति विशेष ने नहीं, अपितु मानव स्वभाव में मौजूद पुरानी दुर्बलताओं ने ही यह काम किया, यह काम साम्प्रदायिक भ्रान्तियों, योजनाओं और भावनाओं आदि का परिणाम है।

(शेष पृष्ठ ९ पर)

आर्य साहित्य का सर्वेक्षण अन्य मतों के मान्यग्रन्थों पर लिखे गये टीका ग्रन्थ

(ले०— डा० भवानीलाल भारतीय, अजमेर)

आर्यसमाज के विद्वानों ने अपने धर्म ग्रन्थों के अतिरिक्त अन्य मत सम्प्रदायों के ग्रन्थों का भी अध्ययन एवं अनुशीलन किया तथा उनकी विविध टीकायें एवं व्याख्यायें लिखीं। इस कार्य का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय रचित धम्मपद की टीका, धम्मपद बौद्ध धर्म का एक अत्यन्त लोकप्रिय ग्रन्थ है। गीता की ही भांति धम्मपद में भी बुद्ध के सार्वजनीन एवं सार्वभौम सिद्धान्तों को संग्रहीत किया गया है। पालि भाषा में लिखित इस ग्रन्थ की सरल हिन्दी व्याख्या उपाध्याय जी ने की, जो कला प्रेस, प्रयाग से १९३२ ई० में प्रकाशित हुई।

पारसी धर्म ग्रन्थ अवेस्ता के सम्पादन, अनुवाद तथा प्रकाशन का कार्य पं० राजाराम ने आर्ष ग्रन्थावली के अन्तर्गत किया। इसका प्रथम भाग 'अवेस्ता संस्कृतच्छाया समेत, उपोद्घात और 'हओं मयस्त् नहं' पर्यन्त १ वैशाख १९९१ वि० को प्रकाशित हुआ।

इस्लाम के मान्य ग्रन्थ कुरान के प्रकाशन के प्रयत्न भी आर्यसमाजी विद्वानों द्वारा हुये। कुरान के हिन्दी भाषान्तर तथा सम्पादन में निम्न आर्यसमाजी विद्वानों का योगदान महत्त्वपूर्ण है।

१. पं० रामचन्द्र देहलवी ने 'हिन्दी कुर्आन' सटीक प्रकाशित की। इसका प्रथम भाग 'अलिफ़ लाम्मीम् का पारा' (सूरए फातिहा तथा सूरए बकर) नागरी में मूल आयतें तथा हिन्दी अनुवाद सहित बेताब प्रिंटिंग वर्क्स देहली में मुद्रित होकर १ मई १९२४ में प्रकाशित हुई।

२. पं० कालीचरण शर्मा ने कुर्आने मजीद (प्रथम भाग) में मूल अरबी आयतों को नागरी में लिखकर उनका हिन्दी भाषान्तर किया। आर्य मुसाफिर पुस्तकालय से यह अनुवाद प्रकाशित हुआ।

३. श्री प्रेमशरण 'प्रणत' ने 'कुर्आन' का एक अन्य भाषान्तर किया जो प्रेम पुस्तकालय, आगरा से प्रकाशित हुआ। अनुवादक के अनुसार यह अनुवाद स्वामी ब्रह्मानन्द सरस्वती के आदेशानुसार तथा महात्मा गांधी के विचारों से प्रेरित होकर हिन्दू जनता को कुरान की शिक्षा से परिचित कराने मात्र के उद्देश्य से किया गया है। प्रथम भाग में सूरए बकर (प्रथम सूरत) तक का अनुवाद छपा।

आर्यसमाजी भाइयो !

(ले०—"श्री सत्यभूषण" वेदालंकार एम० ए० W—दिल्ली)

आर्य, श्रेष्ठ, उत्तम, भद्र, नोबल, संस्कृत, कल्चर्ड, का वाचक है। जानते हो, कौन हो तुम, महाभारत युद्ध में भारत के घोर अधःपतन के बाद तुम्हीं ने इस देश में नव ज्योति जगाई, वेदविद्या का प्रचार किया, जहां अविद्या, अशिक्षा, अन्धविश्वास, रूढ़िवाद, पाखण्ड आडम्बर कुरीति, अनाचार एवं शोषण के दुर्ग थे भूमिसात् किया। नारी जाति व्याकुल थी, कराह रही थी। धर्म के ठेकेदारों ने कह दिया था, "स्त्रीशूद्रौ नाधीयाताम्"—धर दो अंगारा उनकी जीभ पर, यदि स्त्री और शूद्र वेद पढ़ें। अछूत बढ़ते जा रहे थे। योशुमसीह (ईसा) के परवाने निर्धन, अनाथ भारत के लालों को विधर्मी बना रहे थे। लाखों ईसा के मानस पुत्र बन रहे थे। विधवाएं करुणक्रन्दन कर रही थीं। तभी इस भारत माता की गोद में महर्षि दयानन्द का जन्म हुआ, जिसने डंके की चोट घोषणा कर दी, कि "वैदिक धर्म ही सर्वश्रेष्ठ है, तुम आर्य हो, आर्य सस्कृति की रक्षा करो।"

पोप का सिंहासन डगमगा गया। आर्यों को जंगली चरवाहे कहने वाले मैक्समूलर, मैकडानल आदि यूरोपियन स्कालर महर्षि का सिंहनाद सुनकर हड़बड़ा गये। दयानन्द की ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका ने उनकी आंखें खोल दीं। खुली चुनौती थी उनका। सत्य के सर्वोच्च शिखर पर एकाकी अविचल भाव से खड़े दयानन्द ने डिण्डिम घोष से कहा—"आर्य सन्तान ! उठ !! स्वायंभुव से पांडव पर्यन्त आर्यों का चक्रवर्ती राज्य रहा। आर्य नाम उत्तम पुरुषों का है और आर्यो से भिन्न मनुष्यों का नाम दस्यु है। "विजानीह्यार्य्यान्ये च दस्यवः"

कोई कितना ही करे परन्तु जो स्वदेशीय राज्य होता है, वह सर्वोपरि आर्य होता है। अथवा मतमतान्तर के आग्रह रहित, अपने और पराये का पक्षपात शून्य, प्रजा पर माता पिता के समान कृपा, न्याय और दया के साथ विदेशियों का राज्य भी पूर्ण सुखदायक नहीं है।

दयानन्द की इस घोषणा को सुनकर ईसा-भक्तों की आशाओं पर तुषारपात हो गया। आर्य लोग उमंग में भरकर गाने लगे, "आई फौज दयानन्द वाली अब रस्ता कर दो खाली।" नारीजाति के विरोधियों को महर्षि ललकार कर बोले, इन्हें भी यज्ञोपवीत का अधिकार है। "प्रावृतां यज्ञोपवीतिनीम्" "यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः।"

स्वामी जी की थाती को लेकर अमर शहीद स्वा० श्रद्धानन्द, पं० गुरुदत्त एम० ए०, लेखराम जी कार्यक्षेत्र में उतरे। हिन्दू जाति महा अनर्थ से, घोर पतन से बच गई। यही क्या कम है। ● (क्रमशः)

(पृष्ठ ८ का शेष)

१२—वेदप्रिय आचार्य चमूपति जी एम० ए० ने महर्षि दयानन्द की महिमा के गीत विशेष उल्लास के साथ बनाये और गाये थे। उनके प्रसिद्ध काव्य—"दयानन्द आनन्द सागर" में एक स्थान पर है—"ए दयानन्द ! हमको तेरा डर है, नहीं तो हम तेरी पूजा करते।" महर्षि दयानन्द ने मरणोपरान्त अपनी भस्म को खेतों में बखेरने की वसीयत की थी। शायद जनसाधारण की अतीवादी श्रद्धा को उन्होंने देखा होगा, उसके कुपरिणामों को भी विचारा होगा और इसीलिये अपनी पूजा के उपक्रमों की सम्भावनाओं को भी मिटाना चाहा होगा। अन्यथा मठाधीश, पन्थ प्रवर्त्तक और अवतार बनना या कहलाना उनके लिये कठिन न था। आजकल के आर्यसमाजियों में आस्तिकता, श्रद्धा, यज्ञभावना, वेदप्रेम आदि की कमी हो सकती है, दयानन्द भक्ति की कमी नहीं है।

१३—यदि कोई कहे कि दयानन्दभक्ति तो कृतज्ञताज्ञापन और के लिये ही है। इसका विरोध मैं न करूंगा। इस कार्य में आर्षमर्यादाओं का अतिक्रमण न होना चाहिये, आर्यों के इतिहास में और भी बहुत से ऋषि हो चुके हैं, उन उनके प्रति भी आवश्यक कृतज्ञताज्ञापन होता रहे। बड़ी बात यह कि नानकपन्थी दादूपन्थी, कबीरपन्थी, मुहम्मदी, ईसाई मूसाई आदि जैसा कोई नया पन्थ जानबूझ कर या अनजाने में ही न चलाया जाये।

१४—अवतारों की बाढ़ के लेखक ने भी महर्षि दयानन्द का "हवा में उड़ना" और "पानी पर चलना" लिख दिया है। "योगी की आत्मकथा" नाम की पुस्तक तो कल्पना प्रसूत उपन्यास या दयानन्द पुराण ही है।

१५—सन्मान के लिये महर्षि को पहले दण्डी स्वामी श्री १०८ श्री विरजानन्द जी का शिष्य स्वामी दयानन्द सरस्वती लिखा और बोला जाता था। सरस्वती श्री शकराचार्य द्वारा प्रवर्तित दस प्रकार के संन्यासियों में से एक सम्प्रदाय का नाम है। फिर खोज द्वारा पता चला कि स्वामी जी तो ऋषि अर्थात् मन्त्रद्रष्टा और क्रान्तदर्शी भी थे। तब "ऋषि" का प्रचार बढ़ा। महत्व ज्ञापन ने, प्रेम और श्रद्धा ने, काव्य रचना में पदपूर्त्ति की आवश्यकता ने भी, "ऋषि" को "महर्षि" और— और भी बहुत कुछ बना दिया। मनमौजियों ने उन्हें अज़ीमउल्ला खाँ, नाना धोन्दूपन्त पेशवा, झांसी की रानी आदि का साथी भी बना डाला।

१६—क्या यह उचित न होगा कि हम अपने महर्षि की गौरव रक्षा के लिये, उनके मन्तव्यों की रक्षा के लिये विचार और आत्म सुधार करें ? ●

"वेदार्थ के नानार्थ में एकार्थ"

(स्वा० विवकानन्द जी सरस्वती प्रभात आश्रम मेरठ)

दान का महत्त्व प्रत्येक देश, जाति सम्प्रदाय संस्कृति में किसी न किसी रूप में अवश्य विद्यमान है। भले ही चाहे उसका स्वरूप वैदिक हो या अवैदिक, इस प्रकार विचार करने से पता लगता है कि दान भावना एक नैसर्गिक भावना है, जो प्रत्येक प्राणी के अन्दर सुतराम् पायी जाती है, यहां तक की पशु पक्षी कीट पतंगे भी इससे वंचित नहीं, फिर मनुष्य तो उस जगन्नियन्ता की सृष्टि की सर्वोत्कृष्ट रचना है, अतः इसके अन्दर अन्य जीवों की अपेक्षा दान की पद्धति भी सर्वोत्कृष्ट है, अन्य जीव स्वार्थ से अभिप्रेरित होकर दान प्रदान करते हैं किन्तु मनुष्य इससे आगे निकल कर निःस्वार्थ भाव से दान करता है, जो दान स्वार्थ के वशीभूत होकर किया जाता है उसका महत्त्व प्रत्येक संस्कृति में नहीं है या है भी तो नगण्य है। मानवीय जीवन में दान के लिये देय वस्तुयें विभिन्न हैं, इसलिए यह विचारना स्वाभाविक है कि इन सबों में श्रेष्ठतम दान कौन है? वैसे तो मनुमहाराज ने सरल सुबोध और सुस्पष्ट शब्दों में कह दिया है कि "सर्वेषामेव दानानां ब्रह्मदानं विशिष्यते" सब दानों में विद्या का दान श्रेष्ठ है, इसीलिये वैदिक समाज में विद्या के दान करने वाले को गुरु अर्थात् बड़ा कहा और माना जाता है, उसके साथ विश्वासघात या छल कपट करने वाला अति निकृष्ट कहा जाता एवं गुरुद्रोह जघन्यतम पापों में गिना जाता है। विद्या दान की भांति विचार दान की भी महत्ता कुछ कम नहीं और सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाये तो विद्यादान भी विचार-दान का श्रृंखलाबद्ध सुसंस्कृत परिष्कृत रूप ही तो है।

इस युग में महर्षि दयानन्द जी महाराज एक ऐसे ही विचारदाता हुये हैं, जिन्हें सर्वपथीन कहा जाये तो यह कोई अतिशयोक्ति नहीं किन्तु उनके प्रति कृतज्ञता तथा आभार प्रगट करना है। क्या धर्म क्या राजनीति, कला, कौशल, समाज, अध्यात्म आदि ऊंचे विषयों पर ही नहीं अपितु अति साधारण किन्तु प्रमुख्य, बोलने, चलने, उठने बैठने, आदि विषयों के सम्बन्ध में भी उन्होंने विचार दिये। फिर जो वेद प्रभु का ज्ञान और उनका मुख्य विषय था जिसके आधार पर ही वे अन्य विषयों पर लेखनी उठाते थे, उसे कैसे अछूता छोड़ देते, इस विषय पर भी उन्होंने प्राचीनतम किन्तु अत्यन्त परिष्कृत रूप में अपने विचार प्रकट किये जिसका ही यह परिणाम है कि आज आर्य जगत् में ही नहीं किन्तु विश्व के समस्त वेद के विद्वानों में महर्षि के दर्शाये मार्ग से वेदार्थ करने की परम्परा चल पड़ी है उनके वेद भाष्य की सबसे बड़ी एवं सबसे प्राचीन विशेषता यह है कि वेद मन्त्रों के अर्थों की परस्पर संगति और मन्त्रार्थों की संगति के साथ साथ अध्यायों, मंडलों की संगति की ओर भी उनका स्पष्ट संकेत है। यह बात और है कि साधारण व्यक्ति उसे समझ नही पाता। किन्तु जब मन्त्रों, अध्यायों, मंडलों के अर्थों की संगति होगी तो उनका निश्चित अर्थ भी होगा क्योंकि निश्चित अर्थ के विना संगति कैसे लगेगी। जब निश्चित अर्थ होगा तो प्रत्येक मन्त्र के कई अर्थ अवश्य होते हैं ऋषि की यह स्थापना आपाततः निराधार प्रतीत होती है किन्तु ऐसे ही स्थलों के लिये महर्षि पतञ्जलि ने लिखा "व्याख्यानतो विशेष प्रतिपत्तिर्नहि संदेहा-दलक्षणम्" अर्थात् कठिन विषयों की विशेष व्याख्या कर लेनी चाहिये यों ही विना विचारे अन्यथा नहीं समझना चाहिये। जैसे—

अग्निना रयिमश्नवत् पोषमेव दिवे दिवे यशसं वीरवत्तमम्॥ ऋग्वेद

इस मन्त्र में अग्नि का अर्थ परमात्मा, ज्ञान, प्रयत्न, आदि कोई भी अर्थ करें किन्तु अग्निः अग्रणीर्भवति—यह अर्थ सबके साथ सुसंगत है स्थूल दृष्टि से तो अग्निना शब्द का अर्थ नानार्थ या विभिन्नार्थ प्रतीत होता है परन्तु अग्रणी भवति का यह भाव है सब अर्थों में एक है इसके रहते हुये नानार्थ में भी एकार्थ ही है, इसी प्रकार एक अथर्ववेद का और उदाहरण लीजिये मन्त्र का भाग है "अग्निर्हिमस्य भेजषम्" इसका अर्थ है अग्नि शीत की दवा है यह एक अर्थ है किन्तु शीत कक्ष भेद से अनेक प्रकार का है भौतिक कक्ष में शीत का अर्थ ठंडक सर्वविदित है ही, आध्यात्मिक कक्ष में इसका अर्थ अविद्या होगा तथा उस समय अग्नि का अर्थ प्रकृति और पुरुष का पृथक् ज्ञान हो जाना होगा, सामाजिक कक्ष में हिम का अर्थ प्रजा का अज्ञान होगा तो अग्नि का अर्थ उसके अज्ञान को दूर करने में समर्थ ब्राह्मण वर्ग होगा आधिदैविक कक्ष में हिम का अर्थ अन्धकार और अग्नि का अर्थ प्रकाश, चाहे वह प्रकाश लालटेन टार्च सूर्य चाँद विद्युत् किसी का भी क्यों न हो हिम का अर्थ सर्दी का ज्वर है तो अग्नि का अर्थ उसकी दवा क्वाथ आदि होगा इस प्रकार कक्ष भेद से वस्तु भेद तथा वस्तु भेद से स्थूलार्थ में भेद अवश्य दृष्टिगोचर होता है। किन्तु अर्थ है एक "अग्निः अग्रणीर्भवति" अर्थात् अग्नि वह वस्तु है जो अपने विरोधी वस्तुओं को नष्ट करने का शमन करने में अग्रणी हो। इसी प्रकार यजुर्वेद का एक मन्त्रांश है "इन्द्र वर्धन्तु अप्तुरः" यहां इन्द्र का अर्थ परमात्मा. आत्मा, सूर्य, नेता, कुछ भी करें किन्तु ऐश्वर्य युक्त जो यह भाव है सब अर्थों के साथ समन्वित है। इस एकार्थ के साथ सभी अर्थ युक्त हैं या सभी अर्थों का यह अर्थ एक आता है अतः यहां भी नानार्थ में एकार्थ है। अब इसी बात को लौकिक उदाहरण से इस प्रकार समझ सकते हैं। जैसे कोई कहे कि सभी प्राणियों को भोजन की आवश्यकता होती है तो यहां भोजन का अर्थ दाल रोटी, चावल, शाक, मिष्ठान्नादि अर्थ ही नहीं होगा किन्तु यह अर्थ तो मानव शरीर की अपेक्षा से है। गाय, भैंस आदि पशु के लिये भूसा, खल, दाना बिल्ली सिंह के लिये मांस सूकर के लिये विष्टा (पुरीष) केचुआ के लिये मिट्टी वृक्षादि जड़ जीवों के लिये खाद पानी तथा आत्मा के लिये आध्यात्मिक ज्ञान आदि अनेक अर्थ होंगे। इस प्रकार के अनेक अर्थों में भी यहां एक अर्थ यह दिखाई देता है "भोजनं क्षुत्प्रतिघार्थम्" भूख की निवृत्ति के लिये जो जिस वस्तु को खाकर अपनी क्षुधा निवृत्त करता है वह उसका भोजन है। भुज पालनाभ्यावहारयोः इति पाणिनि धातु पाठे, इस प्रकार नानार्थ में एकार्थ स्पष्ट दिखाई देता है और इसी भाँति एकार्थ में नानार्थ भी समझना चाहिये। अतः ऋषि की स्थापना तथा उनका भाष्य सर्वथा बुद्धिसंगत है। जो ज्ञानलवदुर्विदग्ध लोग उनकी मान्यताओं की अवहेलना करके अन्यथा लिखते और कहते हैं गुरुद्रोही तो हैं ही किन्तु अज्ञ भी हैं। ऐसे लोग वेदार्थ करने से पूर्व ऋषि दयानन्द का अध्ययन अवश्य करें।

—अलमिति विस्तरेण ●

मेरा अस्तित्त्व अवश्य है

हरि गीत छन्द

(श्री स्वामी ब्रह्मानन्दार्य द्वैतवेदान्ताचार्य, ओंकार आश्रम, चान्दोद बड़ौदा)

इस देह और विराट् का मुझसे ही तो अस्तित्त्व है।
उस ईश ने रचना रची वह भी हमीं से सिद्ध है॥

फिर क्यों भला हमहीं नहीं ऐसा तो क्यों माने भला।
जिस बुद्धि से जाना उन्हें वह भी हमें देती सला॥

मैं ही प्रथम से था तभी तो जगत् को जाना महां।
विश्वेश को था बाद में निज को प्रथम जाना यहां॥

खुद की खुदी या मैं स्वयं निज आत्मबोध स्वरूप का।
इनकार जो खुद से करे वह अज्ञ है निज तत्त्व का॥

खुद से करे इनकार जो पर गैर को स्वीकारता।
पागल प्रमादी अज्ञ वह खुद को नहीं खुद का पता॥

मैं जीव हूं जाना नहीं कहने लगा शिव हूं सदा।
मेरे सिवा ना तत्त्व है मैं ब्रह्म हूं शिव सर्वदा॥

यदि ब्रह्म तू होता भला क्यों गुण नहीं आते वही।
निज धर्म धर्मी के कभी क्या छूट जाते हैं सही॥

सुखरूप तो वह ब्रह्म है तुझ में कहां सुख शान्ति है।
जग जन्म पालन वह करे तव जन्म मृत्यु अशान्ति है॥

अज्ञान का पर्दा पड़ा तो ये बहाना है तेरा।
उस ब्रह्म को परमार्थ में माया का पर्दा क्यों करा॥

ज्ञाता तू ही ना ज्ञेय है अस्तित्त्व तेरा ज्ञेय है।
आर्य ब्रह्मानन्द तेरा प्रेय वह सब श्रेय है॥ ●

फार्म ४ (नियम ८ देखें)

१. प्रकाशन स्थान— १५ हनुमान् रोड, नई दिल्ली १
२. प्रकाशन अवधि— प्रति सप्ताह
३. मुद्रक का नाम— जगदेवसिंह सिद्धान्ती शास्त्री
क्या भारत का नागरिक है ?— हां
४. प्रकाशक का नाम— जगदेवसिंह सिद्धान्ती शास्त्री
क्या भारत का नागरिक है ?— हां
५. सम्पादक का नाम— जगदेवसिंह सिद्धान्ती शास्त्री
क्या भारत का नागरिक है ?— हां
६. उन व्यक्तियों के नाम व पते— आर्यप्रतिनिधि सभा पंजाब
जो समाचार-पत्र के स्वामी हों (प्रधान) प्रो० रामसिंह एम. ए.
जो समस्त पूंजी के एक प्रतिशत
से अधिक साझेदार या हिस्सेदार हों—

मैं, जगदेवसिंह सिद्धान्ती शास्त्री, एतद्द्वारा घोषित करता हूं कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर दिये गये विवरण सत्य हैं।

जगदेवसिंह सिद्धान्ती शास्त्री
ता०—४ मार्च १९७३ ई० प्रकाशक के हस्ताक्षर

पुस्तक समालोचना—

(१) नाम पुस्तक—दर्शनानन्द ग्रन्थ संग्रह (चतुर्थ प्रसून)—लेखक—स्वर्गीय स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती, प्रकाशक मधुर प्रकाशन, आर्यसमाज मन्दिर, बाजार सीताराम, दिल्ली-६, पृष्ठ संख्या १३२—मूल्य २ रुपये शिवरात्रि १९७३।

आलोचना—इस भाग में दर्शनानन्द ग्रन्थ संग्रह के १४ विषय प्रकाशित किये गये हैं। लेखक स्वामी जी महाराज आर्यजगत् के तार्किक शास्त्रार्थ महारथी थे। प्रतिदिन किसी वैदिक मन्तव्य पर १ ट्रेक्ट १६ पृष्ठ का यात्रा करते समय भी लिख देते थे। वर्तमान में युवकों की प्रवृत्ति विपरीत मार्ग पर चल रही है। उनको सन्मार्ग पर लाने के लिये ऐसे ग्रन्थों की बड़ी आवश्यकता है। हम चाहते हैं ऐसे तर्क पूर्ण ग्रन्थों का घर घर में प्रसार होवे। प्रकाशक ऐसे उत्तम प्रकाशन के लिये बधाई के पात्र हैं। मूल्य, छपाई, कागज आदि साधारणतया ठीक हैं।

—जगदेवसिंह सिद्धान्ती

(२) श्री विष्णु अंक। वर्ष ४७ अंक १। कल्याण गोरखपुर का यह विशेषाङ्क है। इस विशेषाङ्क में ५४० पृष्ठ सामग्री से युक्त हैं। कवर पेज बढ़िया रंगीन है। इस अंक का मूल्य १० रुपये है। विशेष सूचि के पृष्ठ पृथक् हैं। इस अंक में १९६ विषयों पर भिन्न भिन्न विद्वानों के लेख हैं। "विष्णु के स्वरूप" पर अपने अपने दृष्टिकोण से विचार किया गया है। इसमें वेदों के सूक्तों से लेकर पौराणिक साहित्य से एतदर्थ सामग्री संग्रहीत की गई है। प्रकाशक—गीता प्रेस गोरखपुर। इस मासिक पत्र का मुख्य उद्देश्य हमारी दृष्टि में पौराणिक मन्तव्यों के प्रचार का है। यद्यपि हमारा इस उद्देश्य से मतभेद है, परन्तु अपने उद्देश्य में यह पत्र भारत भर में सफलता से अपना प्रचार करता आ रहा है। निःसंकोच हम कह सकते हैं कि आर्यसमाज के पास इस ढंग का कोई मासिक पत्र नहीं है। अंक में अनेक रंग-विरंगे और एक रंगे चित्र दिये गये हैं। छपाई और कागज आदि उत्तम है। पौराणिक अवतारवाद का मण्डन-खण्डन करने वाले दोनों प्रकार के सज्जन इस विशेषाङ्क से लाभ उठा सकते हैं।

—जगदेवसिंह सिद्धान्ती शास्त्री सम्पादक

(३) साहित्य संवर्द्धिनी सभा लखनऊ की स्मारिका १९७३ प्रधान सम्पादक श्री राधेश्याम श्रीवास्तव 'आर्य' एडवोकेट एम० ए० एल० एल० बी० सा० रत्न [illegible] भक्त आश्रम, हनुमान् सेतु लखनऊ-१ तथा यही प्रकाशक हैं। पृ० संख्या १६ तथा ऊपर कवर ४ पृष्ठ। अंक का मूल्य ५० पैसे। ३५—राणा प्रताप मार्ग—लखनऊ-१ (उ० प्र०)

आलोचना—स्मारिका का प्रकाशन गणतन्त्र की वर्षगांठ पर किया गया है। लेख तथा कविताओं का अच्छा संकलन है। सम्पादकीय तथा अन्य सहयोगियों के विचारों से जनता को लाभ उठाना चाहिये। श्री राधेश्याम श्रीवास्तव 'आर्य' की कविताओं का रसास्वादन आर्यमर्यादा के पाठक महानुभाव प्रायः आनन्द से करते हैं। हम उक्त सभा की साहित्यिक वृद्धि की कामना करते हैं। सम्पादक बन्धुओं को बधाई।

—जगदेवसिंह सिद्धान्ती शास्त्री सम्पादक

आर्य युवक सभा जीन्द का चुनाव

प्रधान—वीरेन्द्र कपूर आर्य। मन्त्री—श्री कर्मवीरसिंह आर्य। कोषाध्यक्ष—रमेशकुमार आर्य। पुस्तकाध्यक्ष—देवेन्द्र आर्य।

—मन्त्री आर्य युवक सभा (जीन्द)

सत्यार्थप्रकाश की महिमा

मैं मैसूर स्टेट के दांडेली गांव के पेपर मिल से वापस हुबली आ रहा था। यहां आर्यसमाज में प्रचार करना था इसलिये उतरा। मैंने अपना बिस्तर और सत्यार्थप्रकाश मोटर स्टैण्ड के मुसाफिरखाने में रखा और १० वर्ष के अपने नाती राजकुमार को वहां खड़ा कर मंत्री जी से मिलने गया, मंत्री जी तो मिले नहीं किन्तु वापस अपने सामान के पास आ जाने पर एक वकील साहब आकर बड़े प्रेम से कहने लगे कि महाशय ! नमस्ते, कुछ जलपान कर लीजिये, मैंने कहा मैं आपको जानता नहीं हूं—उन्होंने कहा कि मैं यहां समाज का प्रधान हूं, मैंने कहा आपको मालूम कैसे हुआ कि मैं आर्यसमाजी हूं। उन्होंने कहा कि आपका सत्यार्थप्रकाश दूर से दिखाई दिया, मैं जान गया कि कोई आर्य महाशय हैं मैंने उन्हें धन्यवाद दिया। उन्होंने हम दोनों को शर्बत पिलाया व मोटर पर बैठ कुछ कार्यवश अपने गांव चले गये।

ऋषि दयानन्द महाराज ने अपनी विद्या व यौगिक शक्ति द्वारा विश्व के महान् ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश की रचना की जिसको देखकर ही आर्य भाई प्रेम विभोर हो जाते हैं। —गंगाप्रसाद आर्य, बल्हारपुर, (महाराष्ट्र)

ग्राहकों को आवश्यक सूचना

१—इस वर्तमान अंक में "अज्ञात जीवनी," "जीवनी मनघड़न्त" और "गौडपाद कारिकाओं की समीक्षा"—ये तीनों लेख प्रकाशित नहीं किये जा सके हैं, क्योंकि कुछ लेख पर्याप्त समय से हमारे पास रक्खे हुए थे। इस वार उनमें से कुछ को दे दिया है।

२—कुछ लेखक महानुभाव लम्बे लम्बे लेख भेजते हैं। प्रार्थना यह है कि जहां तक हो सके आर्यमर्यादा के एक पृष्ठ से अधिक के लेख नहीं भेजने चाहिये। अन्यथा वे फिर पीछे फाइल में पड़े रहेंगे। जो लेखमाला चलती है, उनको स्थान देना आवश्यक होता है। अगले अंक से उपर्युक्त तीनों लेखमालाएं प्रकाशित होती रहेंगी। पूज्य विद्वानों के लेखों और कविताओं से आर्यमर्यादा द्वारा पाठक पूरा लाभ उठाते रहते हैं।

—सम्पादक

शोक प्रकाशन

श्री सन्तराम जी अजमानी सम्पादक आर्य गजट देहली की वृद्धा धर्मपत्नी श्रीमती लाजवन्ती का स्वर्गवास २०-२-७३ की रात्रि को विलिंगडन हस्पताल में हो गया है। हम इस शोक के प्रति प्रसिद्ध आर्य पत्रकार श्री सन्तराम जी अजमानी तथा उनके परिवार के साथ सहानुभूति प्रकाशित करते हैं। भगवान् इनके परिवार को धीरज देवे तथा स्वर्गीय आत्मा को कर्मफल व्यवस्था के अनुसार अच्छी गति देवे।

शोक समवेदक—सम्पादक

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब द्वारा प्रकाशित और प्रचारित वैदिक साहित्य

१ बलिदान जयन्ती स्मृति ग्रन्थ—आर्य बलिदानो की गाथा मूल्य ४-५०
२ सोम सरोवर-वेदमन्त्रो की व्याख्या —प० चमूपति एम. ए. ३-००
३ जीवन ज्योति-वेदमन्त्रो की व्याख्या ,, ,, ३-००
४ नीहारिकावाद और उपनिषदे ,, ,, ०-२५
५ Principles of Arya samaj ,, ,, १-५०
६ Glimpses of swami Daya Nand ,, ,, १-००
७ पजाब का आर्य समाज पजाब तथा हरयाणा के आर्यसमाज का इतिहास २-००
८ वैदिक सत्संग पद्धति सन्ध्या हवन मन्त्र अर्थ रहित विधि १-००
९ वेदाविर्भाव —आर्यमर्यादा का विशेषाक ०-६२
१० यजुर्वेद का स्वाध्याय ,, ,, ,, ०-५०
११ वेद स्वरूप निर्णय —प० मदनमोहन विद्यासागर १-००
१२ व्यवहारभानु —महर्षि स्वामी दयानन्द ०-५०
१३ स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश— ,, ,, ०-४०
१४ Social Reconstruction By Budha & Swami Daya Nand By. Pt. Ganga Prasad Upadhya M A. २-००
१५ Subject Matter of the Vedas By S Bhoomanad १-००
१६ Enchanted Island By Swami Staya Parkashanand १-००
१७ Cow Protection By Swami Daya Nand ०-१५
१८ वेद में पुनरुक्ति दोष नही है आर्यमर्यादा का विशेषाक २-००
१९ मूर्त्तिपूजा निषेध ,, ,, ०-५०
२० धर्मवीर प० लेखराम जीवन —स्वामी श्रद्धानन्द १-२५
२१ कुलियात आर्य मुसाफिर प्रथम भाग—प० लेखराम की पुस्तको का सग्रह ६-००
२२ ,, ,, दूसरा भाग ,, ,, ८-००
२३ मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र —कु० सुशीला आर्या एम ए ०-२५
२४ योगीराज कृष्ण ,, ,, ,, ०-१५
२५ गोकरुणा निधि —स्वामी दयानन्द सरस्वती ०-२०
२६ आर्यसमाज के नियम उपनियम ०-१०
२७ आर्य नेताओं के वचनामृत —साईदास भण्डारी ०-१२
२८ कायाकल्प —स्वामी समर्पणानन्द सरस्वती १-५०
२९ वैदिक धर्म की विशेषताय —प० हरिदेव सिद्धान्त भूषण ०-१५
३० स्वतन्त्रानन्द लेखमाला —स्वा० स्वतन्त्रानन्द जी जीवनी तथा उनके व्याख्यान १-२५
३१ आत्मानन्द लेखमाला —स्वामी आत्मानन्द सरस्वती की जीवनी १-२५
३२ आर्यसमाज के सदस्यता फार्म —सैकडा १०-००
३३ वैदिक गीता —स्वामी आत्मानन्द सरस्वती २-५०
३४ मनोविज्ञान तथा शिव सकल्प ,, ,, ,, ३-५०
३५ कन्या और ब्रह्मचर्य ,, ,, ,, ०-१५
३६ सन्ध्या अष्टाङ्गयोग ,, ,, ,, ०-७५
३७ वैदिक विवाह ,, ,, ,, ०-७५
३८ सुखी जीवन —श्री सत्यव्रत २-००
३९ एक मनस्वी जीवन —प० मनसाराम वैदिक तोप १-५०
४० छात्रोपयोगी विचारमाला —जगदेवसिह सिद्धान्ती १-५०
४१ स्त्री शिक्षा —प० लेखराम आर्य मुसाफिर ०-६०
४२ विदेशो मे एक साल —स्वामी स्वतन्त्रानन्द २-२५
४३ वेद विमर्श —प० भगवद्दत्त वेदालकार २-००
४४ वेद विमर्श —प० वेदव्रत शास्त्री २-००
४५ आसनो के व्यायाम ,, ,, ,, १-००
४६ महर्षि जीवन गाथा —स्वामी वेदानन्द वेदवागीश २-२५
४७ मास मनुष्य का भोजन नही —स्वामी ओमानन्द सरस्वती १-००
४८ वीर भूमि हरयाणा ,, , ,, ४-००
४९ चोटी क्यो रखे —स्वामी ओमानन्द सरस्वती ०-५०
५० हमारा फाजिल्का —श्री योगेन्द्रपाल १-५०
५१ सत्सग स्वाध्याय —स्वामी ओमानन्द सरस्वती ०-५०
५२ जापान यात्रा ,, ,, ,, ०-७५
५३ भोजन ,, ,, ,, ०-७०
५४ ऋषि रहस्य —प० भगवद्दत्त वेदालकार २-००
५५ स्वामी श्रद्धानन्द जीवन परिचय १-२५
५६ मेरा धर्म —आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति ७-००
५७ वेद का राष्ट्रिय गीत ,, ,, ,, ५-००
५८ ईशोपनिषद्भाष्य —इन्द्र विद्या वाचस्पति २-००
५९ प० गुरुदत्त विद्यार्थी जीवन —डा० रामप्रकाश १-३५
६० वैदिक पथ —प० हरिदेव सिद्धान्त भूषण २-००
६१ ज्ञानदीप ,, ,, ,, २-००
६२ आर्यसमाज का सैद्धान्तिक परिचय ०-५०
६३ The Vedas ०-५०
६४ The Philosophy of Vedas ०-५०
६५ वैदिक प्रवचन —प० जगत्कुमार शास्त्री २-२५
६६ ईश्वर दर्शन ,, ,, १-५०
६७ श्वेताश्वतरोपनिषद् ,, ,, ४-०६
६८ ब्रह्मचर्य प्रदीप ,, ,, ४-००
६९ भगवत प्राप्ति क्यो और कैसे —स्वा० सत्यानन्द ०-६०
७० आर्य सामाजिक धर्म , ,, ०-७५
७१ बोध प्रसाद —स्वामी श्रद्धानन्द ०-२५
७२ ऋषि दर्शन —प० चमूपति एम ए ००-[illegible]
७३ ऋषि [illegible] ,, ,, ,, ००-१२
७४ [illegible] ,, [illegible] ०-२०
७५ वैदिक तत्व विचार ,, ,, [illegible]
७६ देव यज्ञ रहस्य ,, ,, [illegible]

सभी पुस्तकों का प्राप्ति स्थान

आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब, गुरुकुल भवन, जालन्धर (४२५०) टेलीफोन
,, ,, ,, १५ हनुमान् मार्ग नई दिल्ली-१ ,, (३१०१५०)
,, ,, ,, दयानन्द मठ रोहतक (हरयाणा) ,, (५७४)

आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब के लिए जगदेवसिह सिद्धान्ती शास्त्री द्वारा सैनी प्रिंटर्स पहाडी धीरज, देहली मे मुद्रित और १५ हनुमान् रोड, नई दिल्ली-१ से प्रकाशित

२८ फाल्गुन सं २०२९ वि०, दयानन्दाब्द १४८,
तदनुसार ११ मार्च १९७३ रविवार
सृष्टि सं०-१९६०८५३०७२
वर्ष ५ वार्षिक शुल्क स्वदेश में १०) रुपये
अंक १५ ,, ,, विदेश में २०) रुपये
एक प्रति का मूल्य ००-२० पैसे

सम्पादक—जगदेवसिंह सिद्धान्ती शास्त्री, पूर्व लोकसभा सदस्य (फोन ५१२१६३)

वेदमन्त्रार्थ-प्रवचन

पुनस्तमेव विषयमाह ॥
अगले मन्त्र में फिर उसी विषयों को कहा गया है ॥

व्य१ञ्जिभिर्दिव आतास्वद्यौदप कृष्णां निर्णिजं देव्याव. ।
प्रबोधयन्त्यरुणेभिरश्वैरोषा याति सुयुजा रथेन ॥
—ऋ० १.११३.१४

पदार्थः—(वि) (अञ्जिभिः) प्रकटीकरणगुणैः (दिवः) आकाशात् (आतासु) व्याप्तासु दिक्षु (अद्यौत्) विद्योतयति प्रकाशते (अप) (कृष्णाम्) रात्रिम् (निर्णिजम्) रूपम् (देवी) दिव्यगुणा (आवः) निवारयति (प्रबोधयन्ती) जागरणं प्राप्यन्ती (अरुणेभिः) ईषद्रक्तैः (अश्वैः) व्यापनशीलैः किरणैः (आ) (उषाः) (याति) (सुयुजा) सुष्ठुयुक्तेन (रथेन) रमणीया स्वरूपेण ॥

अन्वयः—हे स्त्रियो यय यथा प्रयोधयन्ती देव्युषा अञ्जिभिर्दिव आतासु सर्वान् पदार्थान् व्यद्यौत् निर्णिजं कृष्णमावः। अरुणेभिरश्वैः सह वर्त्तमानेन सुयुजा रथेनायाति तद्वद्वर्त्तध्वम् ॥

भावार्थः—अत्र वाचकलु०। यथोषाः काष्ठासु व्याप्ताऽस्ति तथा कन्या विद्यासु व्याप्नुयुः यथेयमुषाः स्वकान्तिभिः सुशोभना रमणीयेन स्वरूपेण प्रकाशते तथैताः स्वशीलादिभिः सुन्दरेण रूपेण शुम्भेयुः यथेयमुषा अन्धकारनिवारणप्रकाशं जनयति तथैता मौर्ख्यं निवार्य सुसभ्यतादिगुणैः प्रकाशन्ताम् ॥

भावार्थ—(हे स्त्रीजनो तुम जैसे (प्रबोधयन्ती) सोतों को जगाती हुई (देवी) दिव्यगुणयुक्त (उषाः) प्रातः समय की वेला (अञ्जिभिः) प्रकट करने हारे गुणों के साथ (दिवः) आकाश से (आतासु) सर्वत्र व्याप्त दिशाओं में सब पदार्थों को (व्यद्यौत्) वशेषकर प्रकाशित करती (निर्णिजम्) वा निश्चितरूप (कृष्णाम्) कृष्णवर्ण रात्रि को (अपावः) दूर करती वा (अरुणेभिः) रक्तादिगुणयुक्त (अश्वैः) व्यापनशील किरणों के साथ वर्त्तमान (सुयुजा) अच्छे युक्त (रथेन) रमणीय स्वरूप से (आ, याति) आती है उसके समान तुम लोग वर्त्ता करो ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलु०। जैसे प्रातः समय की वेला दिशाओं में व्याप्त है वैसे कन्या लोग विद्याओं में व्याप्त होवें वा जैसे यह उषा अपनी कान्तियों से शोभायमान होकर रमणीय स्वरूप से प्रकाशमान रहती है वैसे यह कन्याजन अपने शील आदि गुण और सुन्दर रूप से प्रकाशमान हों जैसे यह उषा अन्धकार का निवारण रूप प्रकाश को उत्पन्न करती है वैसे यह कन्या जन मूर्खता आदि का निवारण कर सुसभ्यतादि शुभ गुणों से सदा प्रकाशित रहे ॥

—(ऋषिदयानन्दभाष्य)●

सत्यार्थप्रकाश (दशम समुल्लास)

न हायनैर्न न पलितैर्न वित्तेन न बंधुभिः ।

ऋषयश्चक्रिरे धर्मं यो नोऽनूचानः स नो महान् ॥ मनु० २.१५४

अधिक वर्षों के बीतने, श्वेत बाल के होने, अधिक धन से और बड़े कुटुम्ब के होने से वृद्ध नहीं होता, किन्तु ऋषि महात्माओं का यही निश्चय है कि जो हमारे बीच में विद्या विज्ञान में अधिक है वही वृद्ध पुरुष कहाता है ॥१०॥

विप्राणां ज्ञानतो ज्येष्ठ्यं क्षत्रियाणां तु वीर्यतः ।
वैश्यानां धान्यधनतः शूद्राणामेव जन्मतः ॥ मनु० २.१५५

ब्राह्मण ज्ञान से, क्षत्रिय बल से, वैश्य धनधान्य से और शूद्र जन्म अर्थात् अधिक आयु से वृद्ध होता है ॥११॥

न तेन वृद्धो भवति येनास्य पलितं शिरः ।
यो वै युवाप्यधीयानस्तं देवाः स्थविरं विदुः ॥ मनु० २ १५६

शिर के बाल श्वेत होने से बुड्ढा नहीं होता किन्तु जो युवा विद्या पढ़ा हुआ है उसी को विद्वान् लोग बड़ा जानते हैं ॥१२॥

यथा काष्ठमयो हस्ती यथा चर्ममयो मृगः ।
यश्च विप्रोऽनधीयानस्त्रयस्ते नाम बिभ्रति ॥ मनु० २.१५७

और जो विद्या नहीं पढ़ा वह जैसा काष्ठ का हाथी है तथा चमड़े का मृग होता है वैसा अविद्वान् मनुष्य जगत् में नाममात्र मनुष्य कहाता है ॥१३॥

अहिंसयैव भूतानां कार्यं श्रेयोऽनुशासनम् ।
वाक् चैव मधुरा श्लक्ष्णा प्रयोज्या धर्ममिच्छता ॥ मनु० २ १५९

इसलिये विद्या पढ़ विद्वान् धर्मात्मा होकर निर्वैरता से सब प्राणियों के कल्याण का उपदेश करे और उपदेश में वाणी मधुर और कोमल बोले जो सत्योपदेश से धर्म की वृद्धि और अधर्म का नाश करते हैं वे पुरुष धन्य हैं ॥१४॥

नित्य स्नान, वस्त्र, अन्न, पान, स्नान सब शुद्ध रक्खे क्योंकि इनके शुद्ध होने में चित्त की शुद्धि और आरोग्यता प्राप्त होकर पुरुषार्थ बढ़ता है। शौच करना उतना योग्य है जितने से मल दुर्गन्ध दूर हो जाय ॥

—(ऋषि दयानन्द)●

नौविमानादिविद्याविषयः

तथा कई एक विद्वानों का ऐसा मत है कि (अहोरात्रौ) अर्थात् दिन और रात्रि का नाम अश्वि है, क्योंकि इनसे भी सब पदार्थों के संयोग और वियोग होने के कारण से वेग उत्पन्न होते हैं, अर्थात् जैसे शरीर औषधि आदि में वृद्धि और क्षय होते हैं। इसी प्रकार कई एक शिल्प विद्या जानने वाले विद्वानों का ऐसा मत है कि (सूर्य्याचन्द्रमसौ) सूर्य्य और चन्द्रमा को अश्वि कहते हैं, क्योंकि सूर्य्य और चन्द्रमा के आकर्षण आदि गुणों से जगत् के पृथिवी आदि पदार्थों में संयोग वियोग, वृद्धि क्षय आदि श्रेष्ठ गुण उत्पन्न होते। तथा (जर्भरी) और (तुर्फरी) ये दोनों पूर्वोक्त अश्वि के नाम हैं। (जर्भरी) अर्थात् विमानादि सवारियों के धारण करने वाले और (तुर्फरी) अर्थात् कलायन्त्रों के हनन से वायु, अग्नि, जल और पृथिवी के युक्ति पूर्वक प्रयोग से विमान आदि सवारियों का धारण पोषण और वेग होते हैं। जैसे घोड़े और बैल चाबुक मारने से शीघ्र चलते हैं वैसे ही कला कौशल से धारण और वायु आदि को कलाओं करके प्रेरणे से सब प्रकार की शिल्पकला सिद्ध होती है। (उदन्यजे) अर्थात् वायु, अग्नि और जल के प्रयोग से समुद्र में सुख करके गमन हो सकता है ॥१॥ (ऋ० १.११.४)—(तिस्रः क्षपस्त्रि०) नासत्या० जो पूर्वोक्त अश्वि कह आये हैं (भुज्यमूहथुः) अनेक प्रकार के भोगों को प्राप्त करते हैं, क्योंकि जिनके योग से ३ दिन रात में (समुद्र) सागर=(धन्वन्) आकाश और भूमि के पार नौका विमान और रथ करके (व्रजद्भिः) सुख पूर्वक जाने में समर्थ होते हैं, (त्रिभीरथैः) अर्थात् पूर्वोक्त तीन प्रकार के वाहनों से गमनागमन करना चाहिये। तथा (षडश्वैः) छः अश्व अर्थात् उनमें अग्नि और जल के छः घर बनाने चाहियें। जैसे उन यानों से अनेक प्रकार के मार्गों में यथावत् गमन हो सकता है। —(ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका)●

सत्यार्थप्रकाश के सौ आदर्श वचन

(श्री पं० देवेन्द्रनाथ शास्त्री एम० ए०, १४-आर्य कुटीर, नरेला (दिल्ली)

इससे पूर्व "आर्यमर्यादा" के स्वाध्यायशील पाठकों की सेवा में संस्कार विधि के आदर्श ऋषि वचनों का संग्रह प्रस्तुत किया जा चुका है। आज महर्षि दयानन्द सरस्वती की अमरकृति सत्यार्थप्रकाश के सौ आदर्श वचन "मर्यादा" प्रेमियों की सेवा में प्रस्तुत किये जा रहे हैं जिनसे विदित होगा कि महर्षि मानव जीवन को किस उदात्त दृष्टिकोण से देखते थे, आर्यसमाज को उन्होंने किस मानवतावादी आधार पर स्थापित किया जिसमें साम्प्रदायिकता की गन्ध लेशमात्र भी नहीं। साक्षात् कृतधर्मा ऋषि होने के कारण वे मानव जीवन का सर्वांगीण विकास चाहते थे। ईश्वरोपासना, शिक्षा, गृहस्थ, समाजसुधार, सृष्टिविज्ञान, धर्मार्थकाम-मोक्ष, राजधर्म एवं राष्ट्रोन्नति, आचार व्यवहार, सत्यग्रहण एव असत्य-परित्याग सम्बन्धी उनके विचार तथा सबके मूल में उनकी मानवकल्याण की उदात्त भावना का परिचय देना इस संकलन का मुख्य प्रयोजन है। यह संग्रह ग्रन्थ की भूमिका एव समुल्लासों के क्रमानुसार हैं—

भूमिका :—

(१) जो पदार्थ जैसा है उसको वैसा ही कहना, लिखना, मानना सत्य कहता है।

(२) मनुष्य का आत्मा सत्यासत्य का जानने वाला है, तथापि अपने प्रयोजन की सिद्धि, हठ, दुराग्रह और अविद्यादि दोषों से सत्य को छोड़ असत्य में झुक जाता है।

(३) सत्योपदेश के विना अन्य कोई भी मनुष्य जाति की उन्नति का कारण नहीं है।

(४) जैसे पशु बलवान् होकर निर्बलों को दुःख देते और मार भी डालते हैं, जब मनुष्य शरीर पाके वैसा ही कर्म करते हैं तो वे मनुष्य स्वभाव युक्त नहीं किन्तु पशुवत् हैं।

पहला समुल्लास—

(५) सब जीव धर्म का आचरण और अधर्म को छोड़ के परमानन्द को प्राप्त हों और दुःखों से पृथक् रहें।

(६) जो जीव जैसा कर्म करता है वैसा ही फल पाता है।

(७) अन्य पदार्थों का ज्ञान भी उन्हीं को पूरा पूरा हो सकता है जो वेदादि शास्त्रों को पढ़ते हैं।

दूसरा समुल्लास—

(८) वह सन्तान बड़ा भाग्यवान ! जिसके माता और पिता धार्मिक विद्वान् हों।

(९) जैसे सन्तान जितेन्द्रिय, विद्याप्रिय और सत्संग में रुचि करें वैसा प्रयत्न करते रहें। ● (क्रमशः)

ऋषिदयानन्द के जीवन वृत्त को लिखने वाले श्री श्रीराम शर्मा ने लिखा कि "ऋषि को विष नहीं दिया गया था—" इस सम्बन्ध में आगे लिखा अत्यन्त आवश्यक पत्रव्यवहार ध्यान से पढ़िये..................

आदरणीय चौ० बंशीलाल जी,

मुख्य मन्त्री—हरयाणा राज्य सरकार, चण्डीगढ़

मान्य महोदय, नमस्ते।

आपने ऋषि दयानन्द का जीवन वृत्त अंग्रेजी भाषा में प्रकाशित करवाने के लिये पंजाब विश्वविद्यालय चण्डीगढ़ को ५० (पचास) हजार रुपये का अनुदान दिया। इस पवित्र कार्य से समस्त आर्यजगत् में आपके प्रति हर्ष की भावना प्रकट की गई।

पंजाब विश्वविद्यालय चण्डीगढ़ के उपकुलपति श्री ला० सूरजभान ने उक्त वृत्त को लिखने के काम पर डी० ए० वी० कालिज शोलापुर (दक्षिण) के अवकाश प्राप्त किन्ही पंजाबी श्री श्रीराम शर्मा प्रिंसिपल को नियुक्त कर दिया। इन्होंने पहिले ही ऋषि दयानन्द के वृत्तान्त में "समाचार पत्रों" में एक लेख छपवाया कि ऋषि दयानन्द को विष नहीं दिया गया था। इससे समस्त आर्यजगत् के क्षेत्र में भारी क्षोभ फैला हुआ है। इनके विरोध में आर्यसमाज के अनेक पत्रों में सप्रमाण ऐतिहासिक लेख प्रकाशित हो रहे हैं, परन्तु श्री श्रीराम शर्मा अपने दुराग्रह पर अड़े हुए हैं। पंजाब विश्वविद्यालय के उपकुलपति को लिखा जा रहा कि इन लेखक को इस ऋषि जीवन वृत्त को लिखने के कार्य से हटाकर अन्य किन्हीं संस्कृत तथा अंग्रेजी के सुयोग्य विद्वान् को यह भार सौंपा जावे, न जाने, इतना लिखे जाने पर भी पंजाब विश्वविद्यालय के उपकुलपति इस सम्बन्ध में कुछ पग नहीं उठा रहे। हरयाणा और पंजाब के आर्यसमाज के समाचार पत्रों में आर्यसमाजों के प्रस्ताव स्वीकृत होकर भेजे जा रहे हैं। मैंने स्वयं आर्यप्रतिनिधि सभा पंजाब के साप्ताहिक मुखपत्र, "आर्य-मर्यादा" १५ हनुमान् रोड, नई दिल्ली-१ के सम्पादक के रूप में "हरयाणा सरकार का कर्तव्य" सम्पादकीय लेख भी प्रकाशित किया है। आपके गृह विभाग के निर्देश पर अधीक्षक प्रैस शाखा अभी तक यह नहीं जानती कि श्रीराम शर्मा कौन हैं। यह कौन पुस्तक लिख रहे हैं। किस समाचार पत्र में इनका लेख छपा है। इस प्रकाशन की एक प्रति भिजवा देवें। मेरे पास इस प्रैस शाखा के पत्र की एक प्रति पहुंची है। खेद है कि हरयाणा और पंजाब राज्य के आर्यसमाज के पत्रों में इतना आन्दोलन होते पर भी हरयाणा प्रैस विभाग को इस सम्बन्ध में ठीक ज्ञान नहीं।

अतः आपसे नम्र निवेदन है कि गृह विभाग को निर्देश दिया जावे कि वह पंजाब विश्वविद्यालय के उपकुलपति से सारी जानकारी तुरन्त प्राप्त करके राज्य सरकार को भेजें। हरयाणा राज्य के इस पवित्र अनुदान का इतना दुरुपयोग हो रहा है और शिथिलता बर्ती जा रही है। यह अशोभनीय कार्यवाही है। कृपया शीघ्र उचित कार्यवाही करने का पग उठाकर कृतार्थ कीजिये। समस्त आर्यसमाज आपका आभार प्रकट करेगा।

१. संलग्न प्रति :—आर्यमर्यादा साप्ताहिक वर्ष ५, अंक ११ दि० ११-२-७३।

निवेदक, विनीत
जगदेवसिंह सिद्धान्ती शास्त्री
सम्पादक—आर्यमर्यादा
१५ हनुमान् रोड, नई दिल्ली-१

सेवा में :—
श्री चौ० बंशीलाल जी,
मुख्य मन्त्री—हरयाणा राज्य सरकार, चण्डीगढ़
प्रतिलिपि—श्री ला० सूरजभान उपकुलपति पं० वि०वि० चण्डीगढ़ ●

माड़ूसिंह मलिक

सील

मन्त्री, शिक्षा विभाग,
हरयाणा, चण्डीगढ़
दिनांक २८ फरवरी, १९७३

शेष कालम २ पर

(कालम १ से आगे)

प्रिय सिद्धान्ती जी, नमस्ते

आपका पत्र दिनांक १९-२-७३ मुख्य मंत्री, हरयाणा, द्वारा मुझे प्राप्त हुआ।

२. आपने उपर्युक्त पत्र में ऋषि दयानन्द के जीवन वृत के बारे में जो प्रश्न उठाया है उसके बारे में उपकुलपति, पंजाब विश्वविद्यालय से पहले ही पत्र व्यवहार किया गया है और उपकुलपति ने यह आश्वासन दिया है कि इस बात का ध्यान रखा जायेगा कि ऋषि दयानन्द के जीवन वृत में कोई विवादास्पद विषय न आए।

भवदीय,
(माड़ूसिंह मलिक)

श्री जगदेवसिंह सिद्धान्ती शास्त्री,
सम्पादक, आर्यमर्यादा,
१५, हनुमान् रोड, नई दिल्ली।

इस सम्बन्ध में पृ० ३ पर सम्पादकीय लेख अवश्य देखिये। ●

चौ० माड़ूसिंह शिक्षा मन्त्री हरयाणा राज्य से निवेदन

"ऋषि को विष दिया गया था," इसके विरुद्ध श्री शर्मा ने लेख लिखा। इससे आर्यजगत् में भारी क्षोभ फैला। इस क्षोभ को प्रकट करने के लिये श्री प्रा० राजेन्द्र जिज्ञासु एम. ए. बी. टो. अब तक १२ लेख आर्यमर्यादा में सप्रमाण ऐतिहासिक रूप में आर्यमर्यादा तथा अन्य पत्रों में लिख चुके हैं। परन्तु श्री शर्मा अभी तक अपने दुराग्रह पर अड़े हुए हैं। तब हमने हरयाणा राज्य सरकार के मुख्य मन्त्री की सेवा में पत्र लिखा कि आपने ५० हजार रुपये अंग्रेजी भाषा में ऋषि दयानन्द का जीवन वृत्त प्रकाशित करवाने के लिये पंजाब विश्वविद्यालय को अनुदान दिया। पं० वि० वि० के उपकुलपति श्री ला० सूरजभान ने इस कार्य पर श्री श्रीराम शर्मा को नियुक्त कर दिया, जिसने आरम्भ में ही लिखा कि ऋषि को विष नहीं दिया गया। इस सम्बन्ध में हमारे द्वारा लिखे गये पत्र को हरयाणा के मुख्य मन्त्री जी ने उचित जाँच और कार्य के लिये चौ० माड़ूसिंह जी शिक्षा मन्त्री के पास भेज दिया। शिक्षा मन्त्री जी ने हमारे पत्र का उत्तर हमारे पास भेज दिया। उसमें मन्त्री जी ने लिखा है कि हमने श्री ला० सूरजभान जी से पहले ही सम्पर्क किया है। श्री उपकुलपति जी ने आश्वासन दिलाया है कि ऋषि जीवन वृत्त में कोई विवादास्पद विषय नहीं लिखा जावेगा। यह दोनों पत्र पृ० २ पर इसी अंक में प्रकाशित कर दिये गये हैं। वहां देखें। हम शिक्षामन्त्री जी से बड़े विनीत भाव से स्पष्ट रूप से निवेदन करना अत्यन्त आवश्यक समझते हैं कि श्री ला० सूरजभान के आश्वासन पर हम सर्वथा विश्वास नहीं करते। इनके आश्वासन की एक कौड़ी भी कीमत नहीं है। हमने जो पत्र हरयाणा मुख्य मन्त्री जी को लिखा, उसकी एक शुद्ध प्रतिलिपि ला० सूरजभान जी को भी भेज दी। जहां मुख्यमन्त्री जी ने कार्यवाही करने के लिये आपको शिक्षामन्त्री रूप में (चौ० माड़ूसिंह जी) हमारा वास्तविक पत्र भेजा वहां श्री ला० सूरजभान जी ने इतनी भी शिष्टता नहीं प्रकट की कि हमारे पत्र की स्वीकृति में दो शब्द हमें लिख देते। उलटा आपको आश्वासन यह दिया कि लेखक कोई विवादास्पद बात नहीं लिखेगा। श्रीमान्—उपकुलपति जी! आपके नियुक्त इस अवकाश प्राप्त वृद्ध बेकार लेखक की कौन जांच करेगा? यह आर्यजगत् को स्पष्ट धोखा देना है। जहां हरयाणा के मुख्यमन्त्री जी ने बड़ी सद्भावना से पं० वि० वि० को हरयाणा की पवित्र कमाई का ५० हजार रुपया उपकुलपति को सौंप दिया, वहां आपने न जाने क्यों ऐसे व्यक्ति को लेखक लगाया जो वेद आदि सत्यशास्त्रों को तो क्या जाने सामान्य संस्कृत का बोध भी नहीं रखता। हम हरयाणा के शिक्षामन्त्री जी से साग्रह निवेदन करते हैं कि पं० वि० वि० से यह ५० हजार रुपये की राशि तुरन्त वापस की जावे और उपकुलपति जी को लिखा जावे कि ऋषि जीवन का कार्य किसी अयोग्य व्यक्ति को नहीं देना चाहिये था। स्वयं हरयाणा में अनेक गुरुकुल हैं जहां संस्कृत, इतिहास और वेद के प्रमाणिक पण्डित हैं। यदि कारणवश हरयाणा के किसी सुयोग्य ऐतिहासिक विद्वान् को यह कार्य न दिया जा सके, तो गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के कुलपति श्री पं० रघुवीरसिंह जी शास्त्री को इस पवित्र कार्य को कराने का भार सौंपा जावे। गुरुकुल वि० वि० में वेद, दर्शन, इतिहास, विज्ञान और अंग्रेजी के बड़े बड़े विद्वान् हैं। वहाँ के कुलपति स्वयं भी वेदादि शास्त्रों और संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् हैं।

आदरणीय श्री शिक्षामन्त्री जी! यदि हमारी सर्वथा उचित मांग पर ध्यान नहीं दिया गया तो हरयाणा का पवित्र ५० हजार रुपये को श्री शर्मा भाड़ में झौंक देंगे और ऋषि जीवन वृत्त का कोई मूल्य नहीं रहेगा। हमने सुना है कि श्री श्रीराम शर्मा अन्य विद्वानों से अन्य पत्रों में लेख लिखवाकर अपने नाम से प्रकाशित करा रहे हैं। जहां लेखक की ऐसी योग्यता हो उसके लिखे को आर्यजगत् में कोई प्रमाण नहीं माना जावेगा।

श्री ला० सूरजभान उपकुलपति जी! आर्यजगत् के महान् संन्यासी पूज्य महात्मा आनन्द सरस्वती जी आपको लिख चुके है कि "आप इस लेखक को इस कार्य से हटा दें और दूसरे लेखक को यह पवित्र कार्य दिया जावे। पूज्य स्वामी जी ने इन लेखक महाशय को भी लिखा है कि वह इस कार्य को स्वयं छोड़ देवें।" परन्तु न तो आप उपकुलपति ने महात्मा जी के पवित्र शब्दों पर ध्यान दिया, यद्यपि आप इस उच्च स्थान पर महात्मा जी के आशीर्वाद से ही बैठे हैं। आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब के रूप में भी आपको उनकी कृपा और वरद् हस्त रहा है। परन्तु कुलपति जी महात्मा जी के आदेश और निदेश पर भी चुप्पी साधे हुए हैं। हमारा व्यक्तिगत सम्पर्क श्री उपकुलपति जी से पंजाब हिन्दी रक्षा आन्दोलन से हुआ था। इस आन्दोलन के नेता स्वर्गीय स्वामी आत्मानन्द जी महाराज थे—उन्होंने अपने को गिरफ्तार कराया, परन्तु उपकुलपति जी ने क्या किया। यह सब कुछ आर्यजगत् को मालूम है। आप मिष्टभाषी हैं। प्रस्ताव बना सकते हैं, परन्तु कष्ट वहन का सामर्थ्य नहीं। जहाँ उस आन्दोलन में हरयाणा पंजाब तथा अन्य राज्यों के हजारों सत्याग्रही जेलों में पड़े हुए थे। हमें पता नहीं श्री उपकुलपति जी ने क्यों कोई सक्रिय पग नहीं बढ़ाया था। हम इनका मान करते हैं, परन्तु सत्य लिखने से अपनी लेखनी को कैसे ठीक रख सकते हैं। अच्छा है इस लेखक को तुरन्त हटा दीजिये और ५० हजार रुपये पवित्र हरयाणा की राशि दूसरे स्थान पर लगाने के लिये हरयाणा सरकार को लिख दीजिये। हमने अपना कर्तव्य पूरा किया है क्या हम आशा करें कि आप भी कुछ सक्रिय पग उठाने का इस लेखक को हटाने का यश ले सकेंगे? भगवान् ही जानता है कि आप इस साहस को कर सकते हैं अथवा नहीं।

हम हरयाणा राज्य के शिक्षामन्त्री चौ० माड़ूसिंह जी को इस सम्बन्ध में पुनर्निवेदन कर रहे हैं और उसकी यथापूर्व एक प्रति आपकी सेवा में भेजेंगे, चाहे उसको आप स्वीकार करें अथवा नहीं! ●

श्री भुट्टो प्रतिदिन नया रंग बदलते हैं

काश्मीर प्रश्न पर श्री भुट्टो फिर जनमत संग्रह की मांग कर रहे हैं। इनका कोई भी ढंग निश्चित नहीं है। वह कहते हैं कि कश्मीर की जनता भारत के आधिपत्य से बहुत दुःखी है इसी प्रकार बंगला देश को भी मुस्लिम देश कहते रहते हैं।

कर्नल शाहनवाज खां के पत्र की लीपा पोती

बिहारी मुसलमान बंगला देश से शरणार्थी रूप में भारत में आया। श्री शाहनवाज खां केन्द्रिय मन्त्री और एक मुस्लिम संसत्सदस्य ने उसको भारत में बसने की श्री कृष्णचन्द्र केन्द्रिय मन्त्री को पत्र लिखा है। इसको निषेध नहीं किया जा सकता, परन्तु श्री कृष्णचन्द्र केन्द्रिय मन्त्री ने श्री शाहनवाज खां की पुरानी सेवाओं की दुहाई देकर कहा है कि इसका राष्ट्र के प्रति अच्छा प्रभाव नही पड़ेगा। हम समझते है कि यह सरासर लीपा पोती है। इस मामले में स्पष्ट रवैया अपनाना चाहिये था।

वन्देमातरम् पर मुसलमानों को आपत्ति

यह साम्प्रदायिकता का अभिशाप है कि राष्ट्र में अत्यन्त प्रसिद्ध गान वन्देमातरम् पर मुसलमान का बड़ा भाग आपत्ति करता है हम समझते हैं कि इस प्रकार की आपत्ति को प्रोत्साहन नहीं देना चाहिये। इसी प्रकार मुस्लिम कानून को नहीं बदलना चाहिये। इसकी मांग भी मुसलमान करते हैं।

सिन्धी भाषा की लिपि देवनागरी मानी जावे।

प्रायः सिन्धी भाषी लोग अरबी लिपि में लिखते रहे हैं परन्तु अब वहां से मांग उठी है कि सिन्धी भाषा की लिपि देवनागरी स्वीकार की जावे। यह अच्छे लक्षण हैं। इससे राष्ट्र तत्त्व को प्रोत्साहन मिलेगा। ऐसी आशा है।

—जगदेवसिंह सिद्धान्ती शास्त्री ●

महर्षि दयानन्द की दरगाह ?

(लेखक—श्री पं० जगत्कुमार शास्त्री "साधु सोमतीर्थ" आर्योपदेशक
सी–२/७३, अशोक विहार–२, देहली-५२)

१—अजमेर में एक किसी ख़ाजा गरीब नवाज़ की बहुत बड़ी दरगाह है, जो कि दरगाह–शरीफ के नाम से प्रसिद्ध है। मतलब एक कब्र से ही है। आधुनिक अजमेर नगर की रौनक और तिजारत के साथ इस दरगाह पर प्रतिवर्ष बहुत बड़ा मेला लगता है। संसार भर के मुसलमान और गैर मुसलमान कब्रपूजक अपनी अपनी अन्ध श्रद्धा को लेकर अजमेर में एकत्र होते हैं और लाखों रुपये के चढ़ावे वहां चढ़ाते हैं। कहते हैं कि दरगाह वाले स्थान पर ही कभी पौराणिकों का एक बड़ा मन्दिर था, और वह जनूनी मुसलमान आक्रमणकारियों द्वारा तोड़ा गया था।

२—दरगाह के मेले और दैनिक दर्शन-पूजन आदि के सम्पूर्ण प्रबन्ध राजस्थान सरकार के देवस्थान विभाग द्वारा सम्पन्न किये कराये जाते हैं। मजावरों आदि [पुजारियों आदि] को सरकार की ओर से वेतन मिलते हैं और कब्र पर चढ़ने वाला सम्पूर्ण चढ़ावा=नकद और सामान सरकारी खजाने में जमा होता है।

३—पंजाब में सिक्खों के गुरुद्वारों के प्रबन्ध एक सरकारी कानून के अनुसार होते हैं। राजस्थान सरकार का देवस्थान विभाग उससे भिन्न प्रकार का है। पौराणिकों के मन्दिर भी उसके घेरे में आते हैं। आर्य-समाज के किस मन्दिर को राजस्थान का देवस्थान विभाग कितनी सहायता देता है, यह मुझे अभी तक भी ज्ञात नहीं हो सका। विश्वास है कि जब अजमेर में "महर्षि दयानन्द की दरगाह" पूर्णतया तैयार और विकसित हो जायेगी, तथा उसका चढ़ावा भी बढ़ेगा, तब उसे भी राजस्थान का देवस्थान विभाग अपने अधिकार में ले लेगा और आर्योपदेशकों तथा पुरोहितों आदि को भी सरकारी नौकर कहलाने का गौरव प्राप्त हो सकेगा। हमारे कुछ गुरुकुलों के अधिकारी और कर्मचारी भी इस प्रकार के गौरव के लिये प्रयत्नशील हैं। उनको आरम्भिक सी सफलता मिली है।

४—कई वर्ष पूर्व जब मैं प्रथमवार अजमेरी ख़ाजा की दरगाह को देखने गया था, तब दार्शनार्थियों के देखने दिखाने का समय समाप्त हो चुका था। मैदान में गुम्बद के नीचे वह कब्र है, जिसे खूब सजाकर रखा जाता है। गुम्बद के दरवाजों में लोहे के सींकचों वाले किवाड़ हैं। मैं उस गुम्बद की ओर बढ़ता गया था। एक पहरेदार लपकता हुआ आकर बोला था—"ज़यारत का वक्त खत्म हो चुका है। फिर आना। अब सरकार आराम फरमा रहे हैं।" सरकार का मतलब था कब्र का मुर्दा। श्रद्धापूर्ण कथन ऐसा ही होता है।

५—तब तक दरवाजे के पास पहुंचकर मैं अन्दर का दृश्य देख चुका था। कब्र पर हरा कपड़ा बिछा था। लोबान और इतर की सुगन्ध मण्डरा रही थी। हरे कपड़े पर चढ़ावे के फूल और नोट, सिक्के आदि पड़े थे। पहरेदार के कथन के उत्तर में मैंने कह दिया था—"आज से नहीं, सरकार तो यहां कई सौ वर्ष पहले से ही आराम फरमा रहे हैं।" मेरी बात उसे अच्छी नहीं लगी थी।

६—पहरेदार मुझे एक मुंशी जी के पास ले गया। वे एक तखत पर रजिस्टर, रसीदबुक और गोलक लिये बैठे थे। पहरेदार ने कहा—"अपना नजराना यहां दे दो और रसीद कटवा लो।" मैंने बतला दिया था कि कुछ देने के लिये नहीं, मैं तो हालचाल देखने के लिये ही आया हूं। देर तक मैं वहां घूमता देखता रहा था। दरगाह में बड़े दरवाजे के समीप ही वे बड़ी बड़ी देगें भट्टियों पर चढ़ी हैं, जिनके अन्दर चारपाई भी बिछाई जा सकती है। कहते हैं कि मेले के अवसर पर उन देगों में चावल पकाये जाते हैं।

७—अजमेर नगर के जनजीवन और आचार-विचार आदि पर इस दरगाह लीला या दरगाह फिलासफी का गहरा प्रभाव पड़ चुका है। हमारा अजमेरी आर्यसमाजी समुदाय भी उसके प्रभाव से बचा नहीं है। महर्षि दयानन्द जी ने जोधपुर के विषपान काण्ड के बाद दीवाली के दिन अपना अन्तिम सांस अजमेर में ही लिया था। महर्षि के शरीर का दाहकर्म अजमेर में ही हुआ था। अजमेर में ही महर्षि के फूल [हाड़, भस्मी आदि] एक बाग में गाड़े गये थे। स्थान अभी भी गुप्त ही है। वह बाग महर्षि के शिष्य महाराजाधिराज शाहपुराधीश सर नाहरसिंह जी का था। महर्षि के देहावसान के बाद उन्होंने वह परोपकारिणी सभा को दान में दे दिया था।

८—वह बाग पहाड़ के नीचे अन्नासागर नामक झील के किनारे पर है। स्थान सुन्दर है। उसमें लाखों रुपये की लागत से कई सुन्दर भवन और मकान बन चुके हैं। संस्कृत महाविद्यालय, वानप्रस्थ संन्यासाश्रम, छापेखाने और प्रकाशन घर एवं धर्मशाला आदि कई संस्थान, कोई चलाये और चलने दे, तो वहां सुविधापूर्वक चल सकते हैं। पुष्कर के प्रसिद्ध ब्रह्मा जी के मन्दिर वाली सड़क बाग के एक किनारे को छूती हुई जाती है। कुछ वर्षों से उस बाग में प्रतिवर्ष दीवाली के बाद वाले सप्ताह में ऋषि मेला भी लगाया जाने लगा है। कुछ न कुछ भीड़ एकत्र हो ही जाती है। यह उस दरगाह वाले मेले की ही एक छोटी नकल है।

९—उस ऋषि उद्यान में ही एक सुन्दर सरस्वती भवन है। उसकी लागत तो लाखों में कूती जायेगी, परन्तु रहता वह खाली ही है। उस भवन की एक छोटी कोठरी में ही महर्षि दयानन्द का कुछ सामान—खड़ाऊँ, कमण्डल, कोट, दुशाला, कलम, दवात, चाकू और रेतघड़ी आदि सुरक्षित हैं। सामान में एक छोटी सी खाट भी है, जो उनकी अन्तिम शैया कही जाती है। विश्वास नहीं होता। वह लम्बा-तड़ंगा, बड़े डील-डौल वाला महापुरुष, और छोटी सी खाट? स्मरण रहे कि महर्षि का अन्तिम निवास स्थान एक राजा [भिनाय के ठाकुर साहेब] की कोठी में था।

१०—जिस कोठी में महर्षि ने अपना अन्तिम सांस लिया था, वह "भिनाय हाऊस" पहले कभी अजमेर में आर्यों के पास रहन था। तब उसे प्राप्त करना आसान था; परन्तु तब शायद दरगाह–निर्माण जैसी किसी योजना की तरफ किसी का ध्यान न था। अब वह हाऊस बिक रहा है। मूल्य चार लाख रुपये बताया जाता है। यदि आर्य जनता धन दे देगी, तो परोपकारिणी सभा उसे खरीद ही लेगी। अपीलें छापी जा रही हैं। जैसे नई देहली का बिरला भवन गांधी स्मारक निधि को मिला है, मथुरा का विरजानन्द संस्थान—स्थान प्राप्त किया गया है, जोधपुर में भी वह मकान हमें मिल चुका है, जिसमें महर्षि का निवास रहा था। वैसे ही अजमेर का स्थान भी हमें मिलना ही चाहिये। सरकार उसे अपने अधिकार में ले और आर्यसमाज को सौंप दे। उचित मूल्य दे दिया जायेगा, आवश्यक होने पर।

११—ऊपर जिस ऋषि उद्यान स्थित सरस्वती भवन का उल्लेख किया गया है उसमें महर्षि दयानन्द के जीवन की घटनाओं के आधार पर काल्पनिक तस्वीरें बनवाई—दीवारों पर लगवाई जा रही हैं। इस काम के लिये १०१) रु० दान देने वाले २५० दानियों की जरूरत थी। अगस्त ७२ तक ७० दानी मिल चुके हैं। कुछ तस्वीरें बन और लग चुकी हैं। हो सकता है कि आगे चलकर अजन्ता और एलोरा की तस्वीरों से भी अधिक महत्व इन तस्वीरों का हो जाये। एक बात अवश्य होगी कि महर्षि दयानन्द के जीवन के आधार पर चलचित्र बनाना भी अब आसान हो जायेगा। वे बहुत से लोग पहले ही मर चुके हैं, जो चलचित्र निर्माण में बाधा डाला करते हैं।

१२—अजमेर में ही सुप्रसिद्ध आर्य नेता आचार्य श्री दत्तात्रयजी बावले भी रहते हैं। "बावले" वे कहने भर को ही हैं। अच्छे बुद्धिमान् और भारत के सुप्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री हैं। वे अजमेर के प्रसिद्ध डी. ए. वी. कालिज के प्रिंसिपल थे और कर्मवीर श्री पं० जियालाल जी के दत्तक पुत्र हैं। श्री बावले जी उस सभा के प्रमुख हैं, जो उस श्मशान भूमि को सुन्दर बनाने में संलग्न है, जिसमें महर्षि दयानन्द के शरीर का दाहकर्म सम्पन्न हुआ था। मरघट तो जहां तहां और भी हैं; परन्तु महर्षि दयानन्द से सम्बन्धित अजमेर के पहाड़गंज वाले मरघट की बात दूसरी है। उससे हमारे कोमलभाव जुड़े हुए हैं।

१३—जब आर्यसमाजियों के टंकारी फिरके की तीर्थयात्रा ट्रेनें चलाई जाती हैं। और अजमेर होकर गुजरती है, तब आर्यपुरुष बड़ी श्रद्धा के साथ अजमेर के महर्षिदयानन्द से सम्बन्धित स्थानों को देखने आया करते हैं। वे महर्षि द्वारा संस्थापित परोपकारिणी सभा के दफ्तरों आदि को

(शेष पृष्ठ ९ पर)

योगी का आत्म चरित्र एक मनघडन्त कहानी

(लेखक—श्री स्वामी पूर्णानन्द जी सरस्वती-बड़ौत-जिला मेरठ)

योगी जी अपनी नासमझी के कारण विन्सेन्ट के लेख से यह समझ बैठे कि मृतराजा की पत्नी गंगावाई ने तात्या टोपे का साथ दिया था। परन्तु विन्सेन्ट के लेख में इसका संकेत तक भी नहीं। विन्सेन्ट के लेख में दो प्रकरण हैं। १—यह की ७ जून को देश भक्त सैनिकों ने झांसी में विद्रोह करके झांसी के किले पर अधिकार कर लिया और रानी लक्ष्मीवाई को वहां का शासक घोषित कर दिया और गंगावाई ने जो मृतराजा की दूसरी पत्नी थी उसका समर्थन या सहयोग दिया। २—लक्ष्मीवाई के सम्बन्ध में 'सरह्यूरोज' की सम्मति जिसमें ह्यूरोज ने कहा था कि "सब क्रान्तिकारी नेताओं में लक्ष्मीवाई सबसे बढिया और सबसे बहादुर थी। और नाना साहब के जनरल तात्या टोपे से भी जिसके साथ वह मिल गई थी साहस और बहादुरी में बहुत आगे बढ़ी हुई थी"।

योगी जी ने 'लक्ष्मीवाई' के सहयोग को 'गंगावाई' का सहयोग समझ लिया। इसलिये विन्सेन्ट पर कही गई काकोक्ति योगी जी पर ही घटती कि क्या इसी प्रकार की योग्यता पर झूठ को सत्य सिद्ध किया जा सकता है? इन उद्धरणों और प्रमाणों से सर्वथा सिद्ध हो गया कि रानी लक्ष्मीवाई का १८५५ में कुम्भ के मेले में स्वामी दयानन्द से मिलना एक मन घड़न्त कहानी है। न्याय शास्त्र में कहा है......"आप्तोपदेश: शब्द:"। आप्तपुरुषों का उपदेश ही शब्द प्रमाण की कोटि में आता है। झूठों को ही अब हम यह सिद्ध करेंगे कि बाबूकुवर सिंह भी हरद्वार में ऋषिदयानन्द से नहीं मिले थे।

दीनबन्धु जी ने अपनी पुस्तक के पृष्ठ १६४ पर लिखा है कि श्री कुंवर सिंह जी ऋषि दयानन्द से मिले थे और प्रश्न किये थे। उसने कहा—"आप से पूछता हूं, हमारा यह प्रजा जनजागरण या गणयुद्ध सफल होगा या विफल होगा? दीनबन्धु जी का यह कहना सर्वथा झूठ है, क्यों उस समय अर्थात् सन् १८५५ के प्रारम्भिक दिनों में किसी प्रकार का जनजागरण या गणयुद्ध की तय्यारी नहीं थी और उन दिनों में स्वयं कुंवर सिंह के अन्दर अंग्रेजों के विरुद्ध कोई भावना भी दिखाई नहीं देती थी। डा० सेन ने लिखा है :—"उस (टेलर जो उस समय पटने का कमिश्नर था) ने १४ जून सन् १८५७ को बंगाल सरकार के सचिव को लिखा कि "कई लोगों ने अनेक जमीदारों और विशेषकर बाबू कुंवर सिंह की स्वामी भक्ति पर शब्द करते हुये पत्र लिखे हैं। लेकिन मैं उसके साथ अपनी व्यक्तिगत मित्रता और मेरे लिये उसके दिल में जो स्नेह है। उसके आधार पर कह सकता हूं कि ये बातें गलत हैं।" (अठारह सो सत्तावन पृ० २६३)

ये शब्द एक अंग्रेज के हैं जो उस समय पटने का कमिश्नर था। इससे पता चलता है कि उस समय तक अर्थात् जून सन् १८५७ तक यानी सन् १८५५ से सवा दो वर्ष पहले के हैं। इसलिये यह कहना गलत हो जाता है कि सन् १८५५ में वह स्वामी जी के सामने गणयुद्ध की बातें कर रहा था।

वीर सावर कर ने लिखा है :—After Dalhousie swallswed the kingdom of Oudh, the English went about throughout Hindustan, digging up and demolising all raised place in order to raze them all to the ground. It was in that compaign that Kumar Singh's Country also fell a victim. 'Kumar Singh swore that he would shotter to pices the English sword which had ruined his country and Swaraj in this inexcusabte, cruel and unjust menner. And he began at once communications with Nana Sahibe" (P. 273).

अर्थात् "अवध के राज्य को जब डलहौजी ने हड़प किया, उसके पश्चात् अंग्रेज सारे भारत में घूमे ताकि सब ऊंचे स्थानों को खोद डाला जावे और उन्हें नष्ट भ्रष्ट करके भूमिसात कर दिया जावे। उस कार्यक्रम में कुमार सिंह की भूमि भी बलि चढ़ने वाली थी। कुमार सिंह ने प्रतिज्ञा की कि अंग्रेजों की उस तलवार को टुकड़े-टुकड़े कर देगा, जिसने उसके देश और स्वराज्य को अक्षम्य, क्रूर, और अन्यायपूर्ण नीति से नष्ट कर डाला है।" और उसने तुरन्त ही नाना साहब से पत्र व्यवहार आदि द्वारा अपना मेल जोल और सम्बन्ध स्थापित करना आरम्भ कर दिया।"

इस उद्धरण में सिद्ध होता है कि अवध के अंग्रेजी राज्य में मिलाये जाने से पहले नाना साहब के साथ कुवर सिंह का कोई मेल जोल या सम्बन्ध नहीं था। अवध अंग्रेजी राज्य में कब मिला? —"Annexation of Outh 1856" (V, A. Smith की हिस्ट्री पृ० ७०६) सन् १८५६ में अवध का राज्य अंग्रेजी राज्य में मिलाया। इससे भी यही सिद्ध हुआ कि सन् १८५५ में नाना साहब का और कुवर सिंह का आपस में मेल जोल नहीं हुआ। अत: दीनबन्धु जी की दोनों बातें झूठ निकलीं। और भी किसी इतिहास से सिद्ध नहीं होता कि कुवर सिंह कभी हरद्वार गया! नाना साहब और कुवर सिंह का साक्षात मेल तो जौलाई सन् १८५७ में कानपुर की लड़ाई में हुआ—"In the camp of Tatia Nana Sahib and Kumar Singh had also arrived सावर का पृ० ३४३" अर्थात् तात्या के कैम्प में नाना साहब और कुवर सिंह भी पहुंच गये।" इस साक्षात्कार के अतिरिक्त नाना साहब और कुवर सिंह का एक जगह एकत्र होना सिद्ध नहीं होता नाना साहब, बाला साहब अजीमुल्ला खां और तात्या टोपे कभी हरद्वार नही गये।

पूर्ण अनुसन्धान के आधार पर कहा जा सकता है कि नाना साहब आदि १८५५ ई० में न तो हरद्वार गये और न ही वे ऋषि दयानन्द से मिले। कोई भी इतिहास सन् १८५६ से पूर्व नाना की बिठूर ओर कानपुर से बाहर जाने की पुष्टि नहीं करता। डा० सेन ने अपने इतिहास में लिखा है :—"बाजी राव तो बनारस, प्रयाग और गया की यात्रा करके अपने नियन्त्रित एवं निर्वासित जीवन की नीरसता को दूर कर लेते थे, यद्यपि उनकी गति विधियों पर निगरानी रक्खी जाती थी, किन्तु वातावरण में परिवर्तन आने से कुछ न कुछ मन अवश्य बदल जाता है। नाना के पास दिल बहलाने के लिये तेज से तेज घोड़े ...तथा भारत के सभी के जानवर थे। लेकिन यह सब होते हुये भी उन्हें सक्रिय मनोरंजन की आवश्यकता अनुभव होती थी। सन् १८५६ के अन्त में वे सैर के लिये लखनऊ गये। कैवेने उन्हें वहां मिले और रसेल ने लिखा है कि नाना साहब यात्रा के बहाने ग्राण्डट्रक रोड पर सभी सैनिक केन्द्रों को देखने गये, यहां तक कि वे शिमला जाने का विचार कर रहे थे। नाना साहब के दल में अजीमुल्ला खां भी था। एक हिन्दू यात्री के साथ एक बड़ी अजीब बात थी। रसेल ने एंगलोइण्डियन अधिकारियों के विवेक और बुद्धिमत्ता की आलोचना की है, जिनकी अनुमति के बिना नाना अपने महल से एक तीन मील दूर भी नही जा सकते थे और भारत में आने वाला नया आदमी भी जानता था कि कालपी और लखनऊ हिन्दुओं के तीर्थ स्थान नहीं हैं।" (अठारह सौ सत्तावन पृ० १३२) इस उद्धरण से यह स्पष्ट हो गया कि नाना साहब की गतिविधियों पर कड़ी निगरानी रक्खी जाती थी। और वह पहले पहल सन् १८५६ में ही तीर्थ यात्रा के बहाने बाहर निकला था। इसलिये सन् १८५६ में नाना साहब का अपनी पार्टी के साथ हरद्वार जाना और ऋषि दयानन्द से क्रान्ति युद्ध के लिये विचार विनिमय करना सर्वथा गलत है। वीर सावरकर के इतिहास से भी डा० सेन के इतिहास की सम्पुष्टि होती है :—

"So Nana Sahib came out from the palace of Brahmavarts to link together into one chain the various link—the nucler of organisation. With him started his brother, Bala Sahib, and his animal and withy counsilar Azimullah. And why did they start? "For a pilgrimage!" Indeed! A Brahmin add a Musiem are starting togetner arm in arm to visit the holy relrgious place... This was in the March 1857. most essentiai was it now to visit at last once the places of pilgrimage and the first was Delhi ....Nana went to unable On the 18th of April, he reached Lucknow .. Nana went to Kalpi" ●

क्या आर्य गोमांस खाते थे ?

(ले०—श्री सुरेन्द्रसिंह कादियाण, wz/79, राजा पार्क—
शकूर बस्ती, देहली-३४)

गाय असीम सुविधाओं की जननी, दुग्ध की अजस्र धाराओं को देने वाली, विविध सौख्य साधनों की स्रोत, घृत प्रदात्री है। वह समस्त जीवों की कामना पूर्ण करने हारी, शरीरधारियों का प्राण जीवन शक्ति अमृत दुग्ध का आश्रय स्थान, सुवर्ण के वर्ण वाली, देव पूजा की सामग्री देने वाली है। पौराणिक ग्रन्थों में तो जल से परिपूर्ण चारों समुद्र उसके चारों स्तन कहे गये हैं। रति, मेधा, स्वाहा, श्रद्धा, शान्ति, धृति, स्मृति, कीर्ति, दीप्ति, क्रिया, तुष्टि, पुष्टि, सन्तति, दिशा, प्रदिशा आदि दैवी शक्तियां सदा कपिला गौ का सेवन किया करती हैं क्योंकि गौ की पीठ पर ब्रह्मा, गले में विष्णु, मुख में शिवजी, मध्य में समस्त देवगण, रोम कूपों में महर्षि, दुम पर नाग, खुराग्रों पर आठों पर्वतों के कुलपति और दोनों नेत्रों में सूर्य तथा चन्द्रमा की मेधा एवं शक्ति विद्यमान है। गाय के प्रति इस गहन श्रद्धा और अद्भुत प्रेम के कारण उसे राष्ट्र को जीवन्त सांस्कृतिक निधि माना जाता है। अनेकानेक गुणों के कारण वह भारतीयों की दृष्टि में आध्यात्मिक माँ के उच्चासन पर विराजमान है। हमारे कृषि अर्थशास्त्र का तो वह मेरुदण्ड है। गोवंश के बिना यहाँ का निर्धन किसान एक पग भी नहीं उठा सकता। मरणोपरान्त भी गोवंश मानव कल्याणार्थ अपने शरीर का एक एक अंश समर्पित कर देता है। इस महान् परोपकारी जीव के ऋण को विस्मृत कर यदि हम कृतघ्नता की राह पर चलते हैं तो हमें अपने आपको ईश्वर की दया का पात्र समझना चाहिये। भारत में आज ऐसे कृतघ्नों की कमी नहीं जो गाय की हत्या को औचित्यपूर्ण मानने के साथ साथ गोमांस भक्षण को बुरा नहीं मानते।

गाय के प्रति इस प्रकार की दुर्भावना यदि कोई साधारण व्यक्ति रखता हो तो उसकी उपेक्षा की जा सकती है। लेकिन जब सर्वमान्य व्यक्ति भी ऐसा सोचने लगे तो हमें सावधान रहना चाहिये। सर्वश्री सी० आर० दास, डा० मजुमदार, डा० अम्बेदकर, डा० ईश्वर प्रसाद ओर के० एम० मुशी आदि ने जब अपनी बुद्धि को अंग्रेजी इतिहासकारों के यहाँ गिरवी रखकर यह लिखना आरम्भ किया कि प्राचीन ऋषि मांसाहारी थे, गोमांस खाते थे तब उसकी प्रतिक्रिया देखने को मिली थी। लेकिन इस क्षणिक विद्रोह के पश्चात् हम ऐसा मौन साध बैठे जैसे वे विद्वान् ठीक थे और हम गलती पर थे। यदि हम सतत सावधान रहते और इस दोष का परिमार्जन करने का अनवरत रूप से प्रयास करते तो उसकी पुनरावृत्ति देखने का अवसर हमें न मिलता।

उपरोक्त इतिहासज्ञों के मत को यदि हम सनक की संज्ञा देकर आगे बढ़ें तो इसी सनक को भयकर उन्माद के रूप में अपने समक्ष खड़ा पाते हैं। भारत सरकार भी जब इस मत की पुष्टि करके अपनी धर्मनिरपेक्षता का परिचय दे तो समस्या गम्भीर हो उठती है। गोहत्या को निरन्तर चलायमान रखकर उसने अपना वास्तविक रूप पहले ही प्रकट कर दिया है लेकिन सरकारें बदलती रहती हैं सो इस नीति को स्थायी नहीं माना जा सकता। किन्तु जब परम्परागत इतिहास को कलुषित कर अपनी सनक या उन्माद अथवा निर्लज्जता का सिक्का जमाने का उपक्रम सरकारी स्तर पर हो तो कौन विचारशील व्यक्ति हाथ पर हाथ धरकर बैठा रह सकता है ?

भारत सरकार द्वारा गठित 'राष्ट्रिय शैक्षिक अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण परिषद्' ने 'प्राचीन भारत' नामक ग्रन्थ प्रकाशित किया है जिसके लेखक हैं डा० रोमिला थापर। इस पुस्तक का सम्पादन करने वाले महानुभाव हैं डा० एस० गोपाल, डा० एस० नरूलहसन (केन्द्रीय शिक्षामन्त्री), डा० सतीशचन्द्र, डा० किरण मैत्र आदि। इस पुस्तक में एक स्थान पर लिखा है—"शिकार आमतौर मे दूसरा पेशा था। हाथियों, भैंसों, बारहसिंगों और सुअर का शिकार किया जाता था। पशुओं में गाय का गौरवपूर्ण स्थान था। वास्तव में, विशेष अतिथियों के लिये गोमांस का परोसा जाना सम्मानसूचक माना जाता था।" एक अन्य स्थान पर लिखा है—"आर्य लोग छक कर दूध पीते थे। अन्न और मांस भी खूब खाया जाता था। आर्य लोग सुरा और मधु जैसे नशीले पेय भी पीते थे। जुआ खेलना उनका सबसे प्रिय मनोरंजन जान पड़ता है।" इस अध्याय के अन्त में अभ्यासार्थ जो प्रश्न दिये गये हैं उनमें भी मुख्यत: आर्यों के आमोद-प्रमोद व आहार तथा पेय के बारे में उत्कंठा जाग्रत की गई है।

भारतीय इतिहास को बिगाड़ने, किसी धर्म विशेष को लाँछित करने और देश के नागरिकों को पथभ्रष्ट करने का यह सुनियोजित षड्यन्त्र क्या धर्मनिरपेक्षता के मूलभूत सिद्धान्तों की खुली अवज्ञा नहीं है ? पूर्वाग्रहों से ग्रसित कुछ अंग्रेज लेखकों द्वारा बनाये घेरे में आबद्ध होकर क्या इसी भांति भारतमाता के गौरव को धूल में मिलाया जाता रहेगा ? राजसत्ता के मद में क्या इतिहास और परम्परागत संस्कृति से यह बलात्कार किसी भी रूप में शोभनीय माना जा सकता है ? धर्मनिरपेक्षता का अर्थ यदि सत्य को दबा कर अपने दूषित विचारों को प्रतिष्ठित करना है तो भविष्यवक्ता न होते हुए भी हमें यह कहने पर विवश होना पड़ेगा कि इस देश में लोकतन्त्र का भविष्य उज्ज्वल नहीं है। वर्तमान सरकार और उसके क्रीत-इतिहासकारों की यह मान्यता कतई निराधार है कि आर्य गोमांस खाते थे। वास्तविकता क्या है, इसका परिचय इन वेदमन्त्रों के परिप्रेक्ष्य में ढूंढ़ा जा सकता है :—

विषं गवां यातुधाना भरन्तामावृश्चन्तामदितिं दुरेवाः।
परैणान् देवः सविता ददातु परा भागमोषधीनां जयन्ताम् ॥

—अथर्व० ८.३.१६

अर्थात्—यदि प्रजापीड़क लोग गौ आदि पशुओं को विष दें और उनको काट डालें और यदि दुष्ट चाल-चलन वाले लोग गाय को मार डालें, तब सबका प्रेरक राजा इनको राज्य से दूर करे, अर्थात् इनका सर्वस्व हरण कर ले और वे अन्न आदि एवं रोगनाशक औषधियों के भाग, जीवनोपयोगी अंश को भी न पा सकें।

यः पौरुषेण क्रविषां समंक्ते यो अश्व्येन पशुना यातुधानः।
यो अघ्न्याया भरति क्षीरमग्ने तेषां शीर्षाणि हरसापि वृश्च ॥

अर्थात्=यदि एक यातुधान युक्ति से न माने और गोघात कर ही डाले तो उसके घृणित दुष्कृत्व के लिये उसका सिर धड़ से अलग कर देना चाहिये।

यह आदेश वेद का ही नहीं है। दर्शन, उपनिषद्, स्मृति, रामायण और महाभारत में भी इसी विचारधारा की पुष्टि हुई है। बाबर जब हिन्दुस्तान में आया तो उसने इसी सत्य को हृदयंगम करते हुये अपनी वसीयत में हुमायूं को सावधान किया था कि गौ की कुर्बानी से परहेज करना क्योंकि ऐसा करने से तू हिन्दुस्तानियों के दिलों को जीत सकेगा। हुमायूं ने जीवनभर इस मर्यादा का पालन किया। तत्पश्चात् अकबर ने इसका कठोरता से पालन किया व करवाया। उसने एक फर्मान जारी करते हुए कहा है कि गोहत्यारे की अंगुलियाँ कटवा दी जायेंगी। जहाँगीर और शाहजहाँ के शासनकाल में यह स्थिति यथावत् रही लेकिन औरंगजेब की मतान्धता के कारण इसमें परिवर्तन आया। शाह आलम और बहादुरशाह 'जफर' के समय में गोहत्या पर पुनः प्रतिबन्ध लगाया गया। प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता डा० बर्नियर के कथनानुसार कश्मीर के शासक जैनुलाब्दीन तथा गुजरात के फरहतुलमुल्क ने भी अपने राज्यों में गोहत्या बन्द करा रखी थी। इस सन्दर्भ में यह भी ज्ञातव्य है कि मुहम्मद तुगलक और फीरोज तुगलक गोमांस नहीं खाते थे ताकि हिन्दू जनता को वेदना न पहुंचे। इतिहास की इन सम्मानित परम्पाराओं की अवहेलना करके हमारे वर्तमान शिक्षामन्त्री नरूलहसन साहब स्वयं को औरंगजेब का वंशज सिद्ध करना चाहते हैं। अकबर को धर्मनिरपेक्ष शासक प्रसिद्ध करने वाले पं० नेहरू जी की सुपुत्री हमारी प्रधानमंत्री आज अकबर को भूल गई हैं। धर्मग्रन्थों व प्राचीन इतिहास की मान्यताओं को छिन्न भिन्न करने का यह दुश्चक्र आखिर कब तक चलता रहेगा ?

(शेष पृष्ठ ९ पर)

क्रमागत—

माण्डूक्य पर आचार्य गौडपाद कारिकाओं की समीक्षा (१०)

(ले० श्री स्वामी ब्रह्मानन्द जी आर्य त्रैतवेदान्ताचार्य, मु० ओंकार आश्रम, चान्दोद, बड़ोदा)

अब रहा तत्त्व ब्रह्म, तो उसके स्थान पर तुम रज्जू रस्सी लेते हो और सर्प रूप संसार का अध्यारोप रस्सी में करते हो तो ये अध्यारोप रूप अविद्या से ग्रस्त अज्ञानी जीव को क्या तुम पहिले से मानते हो ? यदि नहीं तो फिर तत्त्व में तत्त्व का अज्ञान नहीं हुआ या रस्सी को रस्सी की भ्रान्ति नहीं हुई, संसार रूप सर्प की किन्तु अध्यासी जीव को हुई तो जीव तुम्हारे मत में ही नहीं। तब अध्यारोप वा अध्यास अथवा संवृति अविद्या अज्ञान बिना आश्रयी के टिकेगा ही कैसे किसमें ? अर्थात् नहीं। बस तो ये तुम अद्वैतियों का मायावादी सिद्धान्त जो रेतीला किला है, हम वैदिकों के सत्कार्यवाद के दिव्यास्त्रों से ध्वंस हो गया।

अन्यथा गृह्णतः स्वप्नो निद्रा तत्त्वमजानतः।
विपर्यासे तयोः क्षीणे तुरीयं पदमश्नुते ॥१५॥

आगम प्रकरण की १५ वीं कारिका

अर्थ—अन्यथा ग्रहण करने से स्वप्न होता है तथा तत्त्व को न जानने से निद्रा होती है और इन दोनों विपरीत ज्ञानों का क्षय हो जाने पर तुरीय पद की प्राप्ति होती है ॥१५॥

समीक्षा—आपके मत में ये समष्टि जाग्रत् रूप स्वप्न को तो अन्यथा ग्रहण मान लिया गया, और तत्त्व को न जानना ही निद्रा मान ली गई और इन दोनों प्रकार के विपरीत याने स्वप्न एवं निद्रा रूप विपरीत ज्ञान की निवृत्ति होने का नाम तुरीय मोक्ष निर्वाण पद ही को परमार्थ तुमने माना है, सो ठीक कहता हूं न ? यदि कहो हां तो प्रथम तो ये कहो कि तुम्हारी ऐसी कपोल कल्पित प्रक्रिया के लिये किस वेदमन्त्र वा सूत्र का आधार है ? यदि कहो कि हमारे मत में तो समस्त भौतिकशास्त्र भी अविद्या ग्रस्त होने से अन्यथा ज्ञान है जो ऐसा कहो तो फिर तुम्हीं दोनों बड़े छोटे गुरुओं ने भौतिक आर्ष शास्त्रों के प्रमाण किसलिये पेश किये अपने भाष्यादि ग्रन्थों में ? जो यदि आप कहें कि (कण्टकेनैव कंटकम्) याने कांटे को निकालने के लिये जैसे कांटे की जरूरत होती है उसी प्रकार अविद्या के हटाने वा मिटाने के लिये अविद्या जन्य शास्त्रों की जरूरत होती है फिर कांटे के निकल जाने पर वे दोनों ही निकलने और निकालने वाले कांटे के साथ ही फेंक दिये जाते हैं, उसी प्रकार हम भौतिकशास्त्रों का भी सर्वथा त्याग करना मानते हैं। यदि तुम जो ऐसा कहो तब तो तुम्हारे मत से स्वयं ईश्वर भी समष्टि माया ग्रसित अविद्या बीज से बन्धा मान लिया गया होने से उसका ज्ञान जो वेद है वह भी वैसा ही अविद्या बीजग्रस्त है, तो फिर कारुणिक सद्गुरु और उसका भी ज्ञान संसार में ही सबको उपलब्ध होने से उसका भी प्रमाण तुमने नहीं करना चाहिये, न शरण लेनी चाहिये ? क्योंकि जब स्वयं ईश्वर ही माया बीजग्रस्त है तुम्हारे मत में तब वह आ० शंकर जी के द्वारा बताया गया यहां के भाष्य में किसी कारुणिक विचारे सद्गुरु की ही क्या योग्यता है, कि वह ज्ञान देवे? और उसी गुरु को किसने ज्ञान दिया ? कहो उसके गुरु ने। तो सृष्टि के आदि में किसने ज्ञान दिया था मनुष्यों को ? तो यदि कहो कि सृष्टि के आदि में तो (यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै ॥ उ०) अर्थात् जो परमेश्वर सबसे प्रथम सृष्टि के आदि में ब्रह्मा को उत्पन्न कर फिर उसे अपना ज्ञान देता है। तो ज्ञान देने वाला सबसे प्रथम महान् करुणा निधान जगदीश्वर भगवान् ही सबसे प्रथम और श्रेष्ठतम अद्वितीय सद्गुरु श्रुति से सिद्ध हुआ—(सपूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात् ॥ यो० दर्श०) याने वह प्रभु पूर्वज ब्रह्मा वशिष्ठ सनकादि का भी गुरु अनादि काल से माना जाता है। तब तो इन श्रुति सूत्र के प्रमाणों से तो मनुष्य गुरुओं की बजाय अनन्त गुना श्रेष्ठतम कारुणिक जिसने अपने शिष्य पुत्रों से कभी भी कुछ सेवा दक्षिणा की चाहना कभी किये लिये बिना ही वेदों का नित्य ज्ञान दिया है तो उसी पूज्य प्रभु परमेश्वर की शरण लेनी चाहिये। उसके समता में कौन परम कारुणिक दया निधान न्यायकारी होगा ? कि जिसने सृष्टि के आदि में ही मनुष्य मात्र के लिये प्रणव सहित गुरुमंत्र त्रिपदा गायत्री की शिक्षा दीक्षा दे। चारों वेदों का ज्ञान हम तुम सब मनुष्यों को एक समान ज्ञान सूर्य के प्रकाश के समान दे दिया है, तो उसका ज्ञान तो अविद्याग्रस्त शंकर जी बताते हैं, अपने भाष्य में और कारुणिक गुरु किसी अद्वैतवादी मनुष्य को बतला रहे हैं जो तत्त्वमस्यादि उनके घर के माने हुये महावाक्यों के द्वारा प्रबोध करने वाला है, तो उसी ज्ञान से तुरीय मोक्ष निर्वाण पद का मिलना यहां शंकर जी मान रहे हैं तो इस मनुष्य के ज्ञान से ईश्वर का ज्ञान क्या खोटा है तो उसे तो यहाँ माना ही नहीं तुमने क्योंकि उस वेद ज्ञान को अविद्यामय मानते हो तो फिर मनुष्य ने किससे ज्ञान लेकर ज्ञानी गुरु बना था प्रथम ? तो ईश्वर से ही लेना श्रुति से सिद्ध हो चुका है तो वही मूल वेद ज्ञान और ईश्वर अविद्या ग्रसित मान लिये गये तो फिर प्रमाण की कोई कोटि ही नहीं रही और जो वेद को भी प्रमाणित न माने और (वेदा न लोका) कहे वो ऐसा कहने वाला फिर आ० शंकर भी नास्तिक कोटि में क्यों न माना जाय ? तो उपरोक्त सब कथन का हमारा आशय यही है कि यदि सब कुछ जाग्रत् अवस्था का प्राणी पदार्थ को अविद्या ग्रसित मान लिया गया तो मनुष्य के नाते वह तुम्हारा कारुणिक सद्गुरु भी मनुष्य होने के नाते अविद्या ग्रसित और तुम अद्वैतवादी दोनों गुरु और तुम्हारे अद्वैतमत प्रवर्त्तक सभी भाष्यादि पुस्तकें भी अविद्या ग्रसित सिद्ध हो जाते हैं फिर प्रमाण कोटि में ही कोई कुछ नहीं रह जाता है। इस वास्ते गौडपाद जी की उक्त पन्द्रहवीं कारिका का मत और उसका शंकर भाष्य केवल कपोल कल्पना एवं बाल चेष्टा से कुछ भी विशेषता नहीं रखता इसलिये ऐसा उक्त मत अमान्य एवं त्याज्य ही है। जो सब कुछ जाग्रत् के प्राणि पदार्थ को अविद्या जन्य एवं अन्यथा ग्रहण मानता है सो ऐसा मत भ्रान्त है।

अनादिमायया सुप्तो यदा जीवः प्रबुध्यते।
अजमनिद्रमस्वप्नमद्वैतं बुध्यते तदा ॥१६॥

आगम प्र० की १६ वीं का०

अर्थ—जिस समय अनादि माया से सोया हुआ जीव जागता है (अर्थात् तत्त्वज्ञान लाभ करता है) उसी समय उसे अज आनिद्र और स्वप्न रहित अद्वैत आत्म तत्त्व का बोध प्राप्त होता है ॥१६॥

समीक्षा—यहां आपने माया को अनादि मान लिया है और उसके सहित जीव को भी अनादि माया में सोया हुआ मान लिया है तो जो वस्तु वा तत्त्व अनादि होता है वह सादि नहीं होता याने शान्त भी नहीं होता इसलिये वे दोनों तुम्हारे ही मत से अनादि अनन्त सिद्ध हो गये, इसीलिये वे स्वभाव से ही दोनों अज नित्य शाश्वत सनातन पुरातन होने से वे दोनों या जीव अद्वैत ज्ञान को नहीं द्वैत को भी नहीं परन्तु त्रैत बोध को ही प्राप्त होना है जब अज्ञान अबोधता को प्राप्त वेदज्ञान से करता है अर्थात् एक तो मैं हूं जो स्वभाव से चैतन्य एवं हमेशा माया ब्रह्म को प्रेम श्रेयमय आनन्द का भोक्ता हूं और दूसरा वह है तत्त्व किसमें मैं अनादिकाल से शरीर संसार में रहा हुआ हूं अर्थात् जो शरीर ससार रूप जो जड़ तत्त्व है तभी तो उसी में मेरी अपने आपको उपलब्धि वस्तु भाव रूप से होती है तथा तीसरा तत्त्व वह है कि जिसके तत्त्वज्ञान से अपनी अल्पज्ञता का त्याग कर त्रिकालज्ञता को प्राप्त किया है जो हमें शरीरस्थ रख संसार के सभी ऐश्वर्यमयि स्वर्गीय भोगों को एवं अपने अनन्त मोक्ष सुख को हम जीवों पर वह देता है, तो ऐसे त्रिविध तत्त्वज्ञान को प्राप्त करता है।

प्रपंचो यदि विद्येत निवर्तेत न संशयः।
मायामात्रमिदं द्वैतमद्वैतं परमार्थतः ॥१७॥

आगम प्र० की १७ वी का०

अर्थ—प्रपंच यदि होता तो निवृत्त हो जाता इसमें सन्देह नहीं किन्तु वास्तव में यह द्वैत तो माया मात्र है, परमार्थतः तो अद्वैत ही है ॥१७॥

(क्रमशः)

गतांक से आगे—

योगी का आत्मचरित्र (गंगा से गंगा सागर)

सब ही आत्मचरित्रों की एक वाक्यता (२४)

(ले०— स्वामी सच्चिदानन्द योगी, अध्यक्ष श्री नारायण स्वामी आश्रम महामहिम पातञ्जल योग साधना संघ आ० वा० आ० ज्वालापुर, सहारनपुर)

महात्मा आनन्द स्वामी जी ने भी कैलाश यात्रा इन्हीं दिनों में की थी। काशमीर यात्रा भी ऋषि ने सितम्बर अक्टूबर में की थी। ऋषि की कैलाश यात्रा भी वर्षा से पहले की अत्यन्त अनुकूल ऋतु में है।

शिवपुरी से आकर ऋषिकेश से मानसरोवर की यात्रा इस क्रम से की है:—ऋषिकेश से देहरादून, यमुनोत्तरी, उत्तरी काशो, गङ्गोत्तरी, गोमुखी, गंगोत्तरी से त्रियुगी नारायण, (आधा योजन पर—४ मील) केदारनाथ (तीन योजन—१२ मील)। अगस्त्य मुनि, गुप्तकाशी, केदार नाथ जोशी मठ, बदरी नाथ आये। वहां से ब्रह्म कुण्ड, वसुधारा, सत्पथ, भागीरथी अलकनन्दा सगम, स्वर्गारोहण शिखर, अलकापुरी, शिखर, मानसोद्भेद तीर्थ आ गये। यही सब स्थान थियासोफिस्ट में हैं। अत्यन्त संक्षेप के कारण काशमीर और अगली कैलास यात्रा का वर्णन नही किया। आत्म चरित्र में भक्तों को विस्तृत वर्णन दिया।

मान सरोवर जाने के लिये तिब्बत में ही तीन सप्ताह भ्रमण करना पड़ा। तिब्बत के अन्दर से करीब ४ योजन (३२ मील) आने पर मान सरोवर और राक्षस ताल नाम के दो सरोवर मिले। लगभग अप्रैल के अन्त में पहुच गये। करीब तीन योजन (१२ मील) दूरी पर कैलास है। कैलास की परिक्रमा ४ योजन (३२।३६ मील की है) मान सरोवर के किनारे किनारे ल्हासा। ८० योजन (६४० मील) दूरी पर है। दो महीने के समय में ल्हासा पहुंच गये। व्यापारियोंके साथ। मई समाप्त हो गया जून आरम्भ हो गया होगा। ल्हासा से दार्जिलिंग। पापरत्सि तक चार रोज लगे। दूसरे रोज न्यांकरत्सि में विश्राम किया। ३ रोज में उपसि गांव देखते हुये गियात्सी से तीन रोज में फारि। दो रोज में चुम्त्रि। हइक होते हुये दार्जिलिंग १५ रोज में। नाटौर। बारीकपुरा कलकत्ता पहुच गये। जुलाई सन् ५६ के या अगस्त के आरम्भ में कलकत्ता पहुंचे।

यही बारीकपुर है जिस पर पुराने सहपाठी स्वामी पूर्णानन्द जी ने योगी के आत्मचरित्र पर धूआं धार कोप वर्षण किया है। निवेदन ध्यान से पढ़िये। बारीकपुर में दयानन्द स्वामी रुद्रानन्द के साथ पहुंचे। छावनी आदि प्रतिषिद्ध स्थानों में वट आदि के नीचे ही साधु धूना रमाकर बैठ जाते हैं। दूध आदि जो आ जाता है उस पर गरम हो जाता है। धुयें से लोग यही भी जान जाते हैं, कोई साधु आ गया है। मच्छर आदि का भय भी नही रहता। बभूत भी मिल जाती है। ऋषि अवधूत अवस्था में भस्म लगाते थे। इस मशक आदि का प्रभाव नहीं होता। दूसरे शीतोष्ण भी नही सताता। महात्मा आनन्द स्वामी जैसा मनोषी एवं सम्पन्न संन्यासी भी धूनी ओर बभूत का अनुभव कर चुके हैं। वैराग्य साधना के बिना इन साधनाओं का रहस्य समझ में नहीं आता। बीहड़ जगलों में यह धूना ही वन्य पशुओं शेर, हाथी, रीछ आदि से रक्षा करता है। इसी धूने पर मधुकड़ी सिकती है। बाटी बनती है। दाल पकती है। गोमुख भोज वासे में और रामगढ़ के शीत में हिमपात में इस धूनी का अनुभव कर चुका हूँ। धूना बना होगा। रुद्रानन्द जी ने चेतन कर दिया। दयानन्द की असहमति का प्रश्न ही नहीं। दयानन्द उस समय आधुनिक सन् ७२ के आर्य संन्यासी थोड़े ही थे। सन्तों महात्माओं के सामने तो बड़े बड़ों का दिल भर आता है दुःख भरे शब्दों में कहना ही रोते हुये कहा गया है इसका अनुभव भी किसी महात्मा संन्यासी को ही हो सकता है। अस्तु! जुलाई अगस्त ५६ का समय है। देश में क्रान्ति का बिगुल बज चुका है। इसके लिये ५७ की क्रान्ति के इतिहास पढ़ने होंगे। नित्य प्रति इस क्रान्ति के इतिहास में कैसी गम्भीर नयी नयी खोज हो रही है। यह कारतूस चरबी वाले ५७ में ही नहीं आये थे। भगवन इनका भी इतिहास है। पढ़िये:—

"१८५३ में क्रीमिया युद्ध में उस (चरबी वाली कारतूत फेंकने वाली राइफल) का प्रयोग किया गया, और वह काफी उपयोगी सिद्ध हुई। १८५६ में भारत में इसका प्रयोग आरम्भ किया गया। राइफल के साथ साथ इंगलैण्ड से ग्रीस (चरबी) लगे कारतूस भी आये। और भारत की सेनाओं के लिये इन कारतूसों का निर्माण कलकत्ता, दमदम, और मेरठ में भी होने लगा। —अठारह सौ सत्तावन—४१ पृष्ठ भारत सरकार द्वारा प्रकाशित—सुरेन्द्र नाथ सेन लिखित—

—For months, for year, tndeed, they had been spreading their net work of in "Tigvess all over the country from one native court to another from one extrimitly to another of great continou of India. The agents of Nana Sahib had passed with overtires and invitations discreetly perhaps mysteriously.

—भारत में अंग्रेजी राज्य पृष्ठ ८१२ Kay's Indian mutiny VOL. I P. 24, महीनों से, बल्कि बरसों से ये लोग देश के ऊपर अपनी साजिश का जाल फैला रहे थे। एक देशी दरबार से दूसरे देशी दरबार तक, विशाल भारतीय महाद्वीप के एक सिरे से दूसरे सिरे तक नाना साहब के दूत पत्र लेकर घूम चुके थे। इन पत्रों में होशियारी के साथ और शायद रहस्य पूर्ण शब्दों में भिन्न धर्मों के नरेशों और सरदारों को सलाह दी गयी थी, और उन्हें आमन्त्रित किया गया था कि आप लोग आगामी युद्ध में भाग लें।

अर्थात् वर्षों पूर्व ५७ की क्रान्ति जाल फैला रहे थे। अतः दो वर्ष पूर्व १८१२ में तो अवश्य ही हरद्वार पहुंचे होंगे। सारा देश जो इस अवसर पर इकट्ठा होता है। इस बढ़कर क्रान्ति के लिये संगठन का और अवसर नहीं हो सकता।

अधिकतर अंग्रेजों की ही पुस्तक से हमें इस संगठन के बारे जो कुछ मालूम हो सकता है, उससे पता चलता है कि १८५६ में कुछ पहले [अर्थात् १८५५ के अन्त में] नाना साहब ने बिठूर से बैठे हुये भारत भर में चारो ओर अपने गुप्त दूत और प्रचारक भेजने शुरू कर दिये थे— भा. में. अ. राज्य—पृष्ठ ८२२।

"चरबी वाले कारतूस"—श्री स्वा० पूर्णानन्द जी ने निम्न उद्धरण देकर यह परिणाम निकाला है कि कारतूत ५७ में फरवरी मास में प्रयोग किये गये तो मगल पाण्डे ने पहले ही कारतूसों से धर्म भ्रष्ट होने की बात पहले कैसे कह दी। और दयानन्द के दो रूप बनाये एक स्वयं एक उनकी प्रेत आत्मा। एक मंगल पाण्डे से बात कर रहा है, दूसरा ५७ के संग्राम में जूझ रहा है।

बात तो बड़ी स्पष्ट है बारीकपुर मे दयानन्द जुलाई १८५७ में पहुंचे हैं। ५७ के मार्च में कानपुर बिठूर में है तो दो रूप कैसे हो गये। समय की गणना न करने से यह विरोधाभास लगा है। कारतूस भी फरवरी में ५७ में हीं नहीं आगे कम से कम डेढ़ वर्ष पहले आये हैं। देखिये—

"१७५३ में क्रीमिया युद्ध में उस (राइफल) का प्रयोग किया गया और वह काफी उपयोगी सिद्ध हुई। १८५६ में भारत में उसका प्रयोग किया आरम्भ किया गया। राइफल के साथ साथ इंगलण्ड से ग्रीज (चरबी लगे) लगे कारतूस भी आये। और भारत की सेनाओं के लिये इन कारतूसों का निर्माण कलकत्ता, दमदम और मेरठ में भी होने लगा।"

अठारह सौ सत्तावन—पृष्ठ ४१, सुरेन्द्रनाथ सेन लिखित भारत सरकार प्रकाशन

Gohan Brucen Narton wrltes—

"There was disaffection enough in the land for a half a dozen rebellions. At that time the government discided to introduce new castridges. which the sepoys belived were really greased with the tar of Cows and pigs, and the use of which would deprive them of caste and religion. —Rebellion 1957. P.23

(The rebellion in India, How to prevent another 1857 P.P. 67)

१२ क्रान्तियां हो चुकीं थीं। देश में पर्याप्त विरोध था। उस समय गवर्नमेण्ट ने कारतूसों का प्रयोग आरम्भ किया। सिपाहियों का विश्वास था कि गाय और सूअर की चरबियों से कारतूस युक्त हैं। जिसके प्रयोग से उनका जाति और धर्म भ्रष्ट हो जायगा। ● क्रमशः

श्री स्वामी सच्चिदानन्द जी योगी, कृपया ध्यान देवें

(श्री सत्येन्द्रसिंह जी एम० ए०)

श्री दीनबन्धु जी वेदशास्त्री और स्वामी सच्चिदानन्द जी योगी के सत्प्रयास से महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज का एक वृहद् आकार का जीवन चरित्र प्रकाशित हुआ। इस ग्रन्थ का जितना स्वागत् आर्यजगत् और ऋषि भक्त लोगों के मध्य होना चाहिये था उतना नहीं हुआ। इसके लिये हो सकता है कि ऋषि भक्त लोग उपेक्षा बरतने के लिये दोषी हों पर स्वामी सच्चिदानन्द जी योगी और उनके मित्र श्री दीनबन्धु जी वेद शास्त्री भी कम दोषी नहीं हैं। इस पुस्तक में बहुत सी ऐसी बातें प्रकाशित करा दो गई हैं जो कि इतिहास के विरुद्ध हैं और महर्षि की स्वयं की अपनी विचारधारा के प्रतिकूल हैं। डा० भारतीय ने उनका विश्लेषण किया तो योगी जी अब उसका उत्तर दे रहे हैं। उत्तर भी मूल आक्षेपों का सीधा और सही उत्तर नहीं कहा जा सकता। अब उनकी लेखनी विषयान्तर में ही भटक रही है। दूसरी बात यह है कि इस प्रकार योगी जी किस किस आक्षेप करने वाले का उत्तर देंगे। अभी तक तो वे डा० भारतीय से ही नहीं निपट पाये कि स्वामी पूर्णानन्द जी सरस्वती (बड़ौत) उनसे अपने लेखों के माध्यम से बहुत से प्रश्नों का उत्तर मांग रहे हैं। मैं भी स्वामी जी की विचारधारा के प्रचार में रुचि रखने वाला छोटा सा सेवक हूं और स्वामी जी का जीवन मैंने भी ध्यानपूर्वक पढ़ा है। यदि योगी जी अपनी जिद पर अड़े रहे तो मुझे भी महर्षि के जीवन वृत का सही रूप लोगों के सम्मुख रखने के लिये बाध्य होकर लेखनी उठानी पड़ेगी। प्रत्येक ऋषि भक्त यही चाहेगा कि महर्षि के उज्ज्वल जीवनवृत को विकृत न किया जाये। योगी जी और उनके मित्रों ने तो महर्षि के जीवन पर खोज का नाम ले लेकर गपौड़ों के संकलन में जातक ग्रन्थों के प्रणेताओं को भी पीछे छोड़ दिया। जो जो बातें महर्षि से बंगाली विद्वानों के सामने कहलायी गई हैं, वे उन बातों को अपने जीवन के अन्तिम वर्षों में आर्य सज्जनों को क्यों नहीं बता गये, यह समझ नहीं आता है। महर्षि बड़े निर्भीक देशभक्त थे। उनके जीवन वृत में ऐसी बातों का समावेश करना जिससे कि वे कायर सिद्ध हों, उनकी मूल विचारधारा के प्रतिकूल ही कहा जायेगा।

इन सब बातों से ठीक ठीक रूप में उत्तर प्रयुत्तर होने के लिये एक अच्छा उपाय है। आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान के पाक्षिक मुखपत्र 'आर्यमार्तण्ड' के १-१२-७२ के लिये प्रकाशित अंक में पृष्ठ २ पर डा० भवानीलाल जी भारतीय ने शास्त्रार्थ के लिये श्री योगी जी से अपना निवेदन प्रकाशित किया है। नवम्बर ७२ में दीपावली पर आर्यसमाज देहरादून के वार्षिकोत्सव पर डा० भारतीय पधारे थे। उस समय मैं भी वहीं उपस्थित था और मैं उसी समाज का कार्यकर्त्ता हूं। उस समय विचार-विमर्श के पश्चात् यह निश्चय हुआ था कि डा० भारतीय और श्री स्वामी सच्चिदानन्द जी योगी पारस्परिक पत्र व्यवहार के द्वारा कोई तिथि निश्चित करके उसकी सूचना देहरादून आर्यसमाज के मंत्री जी को भेज देवें। तदनुसार देहरादून समाज में शास्त्रार्थ का आयोजन कर दिया जायेगा। शास्त्रार्थ की व्यवस्था का व्यय देहरादून आर्यसमाज वहन करेगा। व्यक्तिगत रूप से भी इन पंक्तियों का लेखक और श्री यशपाल जी आर्य देहरादून इस शास्त्रार्थ का आयोजन करने के लिये डा० भारतीय जी को वचन दे चुके हैं। उन्होंने तो अपनी ओर से "शास्त्रार्थ के लिये आह्वान" आर्यमार्तण्ड में १-१२-७२ को प्रकाशित अंक में छाप दिया। और योगी जी को भारतीय जी ने पत्र भी लिख दिया, परन्तु योगी जी ने न तो भारतीय जी के पत्र का ही उत्तर दिया और न आर्यमार्तण्ड में छपे आह्वान के लिये ही शास्त्रार्थ करने हेतु अपनी तत्परता प्रकट की। हां इसी शास्त्रार्थ विषयक एक पुरानी बात को जरूर तोड़ मरोड़कर प्रस्तुत कर दिया। अब मैं योगी जी से नम्रतापूर्वक निवेदन कर रहा हूं कि वे अपनी सुविधानुसार उस तिथि की सूचना डा० भारतीय को पत्र द्वारा दे देवें जिस तिथि में वे शास्त्रार्थ के लिये देहरादून पधार सकते हैं। स्वामी दयानन्द किसी एक आर्यसमाजी की निजी सम्पत्ति तो है नहीं। उनके जीवन के विषय में यदि कोई भ्रान्ति हो तो पारस्परिक विचार से दूर करना ही आर्यत्व की पहचान है। इसलिये मेरा आग्रह है कि सुविधानुसार भारतीय जी से पत्र व्यवहार द्वारा तिथि का निश्चय करके आप सत्यान्वेषण हेतु शास्त्रार्थ करने के लिये देहरादून अवश्य पधारें। ●

(पृ० ४ का शेष)

भी देखा करते हैं। अजमेर की सभी आर्यसंस्थाओं को भारत भर के आर्यसमाजियों द्वारा यथोचित दान और चन्दे भी पहुंचाये जाते हैं। बड़े-बड़े कालिज, हायरसैकेण्डरी स्कूल, आर्य कन्या महाविद्यालय और अनाथालय आदि अजमेर में बड़ी सफलताओं के साथ चल रहे हैं। हां, संस्कृत महाविद्यालय और वानप्रस्थ संन्यासाश्रम संचालन के कई बड़े प्रयास वहां विफल भी हो चुके हैं। यदि कभी आर्यप्रतिनिधि सभा राजस्थान का कोई केन्द्रीय कार्यालय बनाया जाये, तो उसके लिये अजमेर ही अच्छा है। अभी तक तो रिवाज के अनुसार जहां का मन्त्री चुना जाता है, सभा का कार्यालय वहां ही पहुंच जाता है।

१४—अजमेर में भारतभर के आर्यसमाजियों का आना जाना विविध प्रकार के कारणों से लगा ही रहता है। करोड़ों रुपये के मकान वहां आर्यसमाजियों के दान से बन चुके हैं। बाजार के बाजार, मकानों और गलियों के बड़े-बड़े सिलसिले कहां आर्यसमाजी जायदादों के हैं। इस पर भी वहां आर्यधर्मशाला जैसा कोई एक छोटा-सा स्थान भी ऐसा नहीं है, जिसमें कोई आर्यसमाजी यात्री दो चार दिन रह सके। यह कभी खटकने वाली है। जो आर्यसमाज मन्दिर हैं, उनमें स्कूल खुल चुके हैं, जो नये आर्यसमाज मन्दिर बनेंगे, उनमें नये स्कूल भी खुल ही जायेंगे। हां, दूसरों की कई धर्मशालायें अजमेर में है, उनसे कोई चाहे तो अपनी मुश्किल को कुछ आसान कर सकता है।

१५—अब अजमेर में सभा-संस्थावादी कुछ पेशेवर परोपकारी आर्यसमाजियों में भी पौराणिकों के पण्डे पुजारियों और दरगाहों के मुजावरों जैसी ही मनोवृत्ति तथा रीति नीतिविकसित होने लगी है। यह बात आर्यसमाज और महर्षि दयानन्द के गौरव को बढ़ाने वाली नहीं है। यदि कभी सचमुच ही दयानन्द की दरगाह अजमेर में बन जायेगी, तो वह आर्यसमाज की असफलता का ही एक बड़ा प्रमाण होगी। ●

(पृष्ठ ८ का शेष)

सरकारी स्तर पर जो कार्य होता है उसका प्रभाव क्षेत्र विस्तृत होता है। निसन्देह 'राष्ट्रिय शैक्षिक अनुसन्धान एवं प्राशिक्षण परिषद्' द्वारा प्रकाशित यह ग्रन्थ लोगों पर व्यापक प्रभाव डालेगा क्योंकि सरकार द्वारा प्रकाशित होने के कारण वह प्रमाणिक समझा जायेगा। इस परिषद् ने 'मध्यकालीन भारत' और 'आधुनिक भारत' नामक दो पुस्तकें और भी प्रकाशित की है। इन पुस्तकों में जहां महाराणा प्रताप और शिवाजी को विद्रोही नेताओं के रूप में उभारा गया है वहां अकबर के वंशजों का यशोगान विस्तृत रूप में हुआ है। इन पुस्तकों में भारतीय सभ्यता और संस्कृति के उज्ज्वल पक्ष की उपेक्षा करते हुये मुगलकाल व अरब सभ्यता की स्तुति में पृष्ठ पर पृष्ठ लिखे गये हैं। निश्चय ही यह परिषद् एक बने बनाये ढर्रे पर इतिहास का पुनर्लेखन कर रही है जिसकी बागडोर नरूल हसन साहब के हाथ में है। धर्मनिरपेक्षता के नाम पर उनकी साम्प्रदायिक मनोवृत्ति के इस खेल को जानबूझ कर हमारी सरकार नजर अन्दाज कर रही है जो दुःखद है। इन्हीं साहब ने गत वर्ष महायोगी अरविन्द घोष को साम्प्रदायिक कह कर अपनी संकीर्ण बुद्धि का परिचय दिया था। हम समझते हैं ऐसे व्यक्ति के नेतृत्व में इतिहास पुनर्लेखन का महत्त्वपूर्ण कार्य एक गलत दिशा में अग्रसर होता हुआ भावी पीढ़ी के लिये खतरनाक सिद्ध होगा।

आर्यों पर गोमांसभक्षण का आरोप लगाना वेदों पर खुला आक्षेप है। अभी कुछ दिन पूर्व संसद् में यह कानून पारित हो चुका है कि किसी भी धर्म की निन्दा करना दण्डनीय अपराध माना जायेगा। अपने ही बनाये कानून को इस निर्ममता से तोड़ने का अर्थ है कि सरकार का इस कानून के पालन करने या करवाने के बारे में कोई दायित्त्व नहीं है। कानून के प्रति प्रदर्शित इस अनास्था का प्रभाव जनता पर कैसा पड़ेगा, इसे समय रहते समझ लेना अच्छा रहेगा। भारत सरकार से हमारा विनम्र निवेदन है कि इस तथाकथित परिषद् ने जानबूझ कर जो गलत कदम उठाये हैं उसे वापिस लिया जाये। आर्य संस्कृति के जागरूक प्रहरियों से भी मेरी करबद्ध प्रार्थना है कि 'परिषद्' के गलत कदमों को रोकने की कोई ठोस योजना क्रियान्वित करें अन्यथा वैदिक सभ्यता का नामलेवा भी यहाँ कठिनता से ढूंढे मिलेगा। ●

गतांक से आगे—

महर्षि दयानन्द को विष दिया गया।

ऋषिवर के बलिदान की अमर कहानी (१२)

(ले०—श्री राजेन्द्र 'जिज्ञासु' एम० ए० बी० टी०, प्रा० दयानन्द कालिज अबोहर)

प्रबुद्ध पाठकों को चाहिये कि जन जन को यह हृदयङ्गम करवा दें कि १८८६ ई० में प्रतिनिधि सभा पंजाब की स्थापना हुई। १.७,१८८८ ई० को सभा की अन्तरंग ने ऋषि के जीवन चरित्र की सामग्री एकत्र करने का पवित्र कार्य धर्मवीर लेखराम को सौंपा। नवम्बर में वीरवर ने यह कार्य सम्भाल लिया। १८९७ ई० में आर्य पथिक का बलिदान हो गया। हुतात्मा के वीरगति पाने के पश्चात् उनके द्वारा किया गया ऐतिहासिक कार्य प्रकाश में आया। मैक्समूलर ने आर्य प्रतिनिधि सभा के जन्म से भी बहुत पहले महर्षि के बलिदान पर प्रकाश डाला। ऋषि के बलिदान के कुछ मास बाद ही मैक्समूलर ने स्पष्ट लिखा कि महाराज को विष दिया गया। अतः यह प्रचार मिथ्या व कपटपूर्ण है कि आर्यों ने अंध श्रद्धा से विषपान की बात जोड़ी है।

८.२.१९७३ ई० के अंक में मान्य जावेद जी के साप्ताहिक में इस विषैले मत के प्रसारक प्रि० शर्मा जी ने लिखा है "......पं० गौरीशङ्कर ओझा के लेख पढ़ूं। मेरा दुर्भाग्य मुझे कहीं उनमें स्वामी जी को विष देने के सम्बन्ध में उनकी सम्मति नहीं मिली। जिज्ञासु जी पुस्तक का नाम लिख देते तो मेरी बुद्धि ठिकाने पर आ जाती।"

प्रि० शर्मा जी के शब्द मैंने ज्यों के त्यों हिन्दी भाषा में दे दिये हैं। अब मेरा निवेदन है कि मैं यदि ओझा जी का प्रमाण उनको दिखा दूं तो क्या वह फिर अपना हठ छोड़ देवेंगे? मैंने 'आर्यमर्यादा' व कुछ अन्य पत्रों में ओझा जी का प्रमाण दिया था। उनके शब्द स्पष्ट हैं कि दुष्टों ने षड्यन्त्र से विष दिया। शर्मा जी असत्य को त्यागने व सत्य को ग्रहण करने का साहस दिखायें तो मैं रजिस्टरी करके पुस्तक उनको पहुंचा दूंगा या अपने किसी विश्वस्त व्यक्ति को भेज दें हमारे निवास पर आकर जब चाहें ओझा जी का लिखा पढ़ लें। हमें कोई मनघड़न्त बात लिखने व कहने की आवश्यकता नहीं और न ही ऐसा स्वभाव व मत है।

शर्मा जी ने इसी ८.२.७३ के लेख में कम से कम चार बार महात्मा आनन्द स्वामी जी की बाबत लिखा है कि महात्माजी ने लिखा है कि २० अक्तूबर को पीर इमाम अली ने स्वामी जी को देखा। इस पर आप बार बार लिखते हैं कि किसी जीवन चरित्र लेखक ने ऐसा नहीं लिखा। फारसी में कहते हैं :—

'दीवाना बकारे खेश होश्यार।'

कि दीवाना अपने कार्य में बड़ा दक्ष होता है।

इसी प्रसंग में शर्मा जी ने मेरा नाम तो लिख दिया है परन्तु यह नहीं लिखा कि मैंने इस विषय में क्या लिखा। शर्मा जी स्वयं भी सब जानते हैं कि पीर इमाम अली के बारे में बाबा छज्जूसिंह जी, वीर लेखराम जी, स्वामी सत्यानन्द जी आदि आदि ने क्या लिखा है। केवल महात्मा जी को झुठलाने के लिये यह बार बार लिखा है कि किसी जीवन चरित्र लेखक ने ऐसा नहीं लिखा। बात यह है कि सब जीवन चरित्र लेखकों ने लिखा है कि पीर जी ने ३० अक्तूबर को महर्षि को देखा। २४-१२-१९७२ के आर्यमर्यादा में महात्मा जो अनजाने में शीघ्रता से (slip of the pen) से तीस का बीस लिख गये। तथ्य को जानते हुये भी जो व्यक्ति जानबूझ कर इस स्तर पर आ जाता है वह ऋषि जीवन चरित्र क्या लिखेगा?

इसी लेख के आरम्भ में शर्मा जी ने पं० त्रिलोकचन्द्र जी, श्री सिद्धान्ती जी, श्री राधेश्याम, महात्मा आनंद स्वामी जी मेरा व कुछ अन्य व्यक्तियों का नाम लेकर यह लिखा है कि हमने महर्षि के काल के सारे आर्य सज्जनों को दोषी ठहराया है।

श्रीमान् जी! कब हममें से किसी ने ऐसा कहा व लिखा? यह कार्य तो सरकार के वेतन भोगी लेखक ही कर सकते हैं। अंग्रेज के काल के तथाकथित गवेषक अन्वेषक (paid scholars) यही कार्य करते रहे और पं० रुद्रदत्त जो शर्मा के शब्दों में अब तक यह क्रम बना हुआ है। श्रीमान् जी! आपने ही यह घोषणा की कि अंध श्रद्धा से आर्यों ने ऋषि जीवन में कई बातें जोड़ी हैं। उनमें से एक विषपान के बलिदान आपको अधिक चुभ रही है। इस प्रकार हमारे समस्त पूर्वजों को जिन्होंने ऐसा लिखा, प्रचार किया व माना, वे सब आपकी दृष्टि में दोषी व अपराधी थे। अपना पाप आप हमारे माथे तो न मढ़ें।

शर्मा जी ने लिखा है कि "जिज्ञासु" जी ने (स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी) इस पुस्तक में लिखा है कि स्वामी जी को विष दिया गया। उनके कथनानुसार मान लेता हूं कि ऐसा ही होगा परन्तु इससे यह कहां सिद्ध हो गया कि यह बात ठीक है।"

शर्मा जी यहाँ भी अपनी लेखनी की सफाई दिखा गये। पाठक मेरे पुराने लेख पढ़ें मैंने पूज्य स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज की सम्मति देते हुए साथ और क्या लिखा था। मैंने यह भी तो लिखा था कि वह इतिहास के मर्मज्ञ विद्वान् थे। ओझा जी, पं० नेनूराम, देवीप्रसाद जी व शारदा परिवार से उनका निकट का सम्पर्क था। उन जैसा दृढ़ सत्यव्रती कोई कल्पित बात मानले या लिख दे यह असम्भव है। शर्मा जी यह भी कहते हैं कि उनकी तो पुस्तक अभी अप्रकाशित है। महाराज शर्मा जी! उनका लिखा एक ऋषि जीवन प्रकाशित हुआ एक अभी अप्रकाशित है। शर्मा जी ने यह भी लिखा है कि स्वामी दयानन्द ने 'बाबा वाक्यम् प्रमाणम्' से ही तो निकाला था अतः स्वामी स्वतन्त्रतानन्द जी की लिखी बात क्यों मानें। शर्मा जी 'बाबा वाक्यम् प्रमाणम्' से निकाला' का यह अर्थ तो बड़ा मौलिक है कि किसी भी आप्त पुरुष का प्रमाण मत मानो!

शर्मा जी ने जावेद जी के निमन्त्रण के उत्तर में उनको लिखा है कि आर्यसमाज के विद्वानों के लेखों में कोई तथ्य नहीं अतः मैं उनसे कोई बात न करूंगा। शर्मा जी स्वयं ही अपने ८-२-७३ के लेख में लिखते हैं कि 'जिज्ञासु' मुझे ओझा जी का लिखा दें तो मेरी बुद्धि ठिकाने आ जावे। इससे स्पष्ट है कि हमारे लेखों में आपकी बुद्धि को ठिकाने लाने वाले तथ्य हैं। आप मानें या न मानें यह आपकी इच्छा। हम बता ही चुके हैं कि ओझा जी की सम्मति जो देखना चाहे हमारे पास आकर देख लें।

शर्मा जी ने लिखा है कि पुरुषोत्तम गौड़ मुंशी देवीप्रसाद जी का पौत्र कैसे बन गया? शर्मा जी! कैसे का तो मुझे पता नहीं। 'गौड़' उनका उपनाम था या गोत्र यह मुझे ज्ञात नहीं। परन्तु श्री पुरुषोत्तम प्रसाद मुंशी जी के पौत्र व उत्तराधिकारी थे। यह प्रामाणिक बात ही मैंने लिखी थी। वह ऋषि के बलिदान के तथ्य का साक्षी कैसे बन गया? इसका उत्तर तो मैं दे चुका हूं कि वह यही बताता था कि मुंशी जी की खोज व निजमत यही था।

शर्मा जी कहते हैं कि ऋषि को विष दिया गया तो उन्होंने स्वयं इसकी सूचना पत्रों द्वारा आर्यजगत् को क्यों न दी? शर्मा जी कभी आदर्श साधुओं के संग रहके देखो उत्तर मिल जावेगा। साधु लोग अपने कष्टों की दुहाई नहीं दिया करते। ऋषि ने अपने जीवनकाल में वैर विरोध विपत्तियों की किसी पुस्तक व लेख में कहाँ चर्चा की है? महा-पुरुष पूछने पर ही सामान्य संकेत बहुत आवश्यक हो तो देते हैं।

(क्रमशः)

आर्यसमाज नरेला

४५वां वार्षिक उत्सव १०-११-१९७३ को मनाया जावेगा।

—संजपाल आर्य एम० ए० मन्त्री

माया अनिर्वचनीया नहीं है परमार्थ सत्य रूपा है।

गजल

(श्री स्वामी ब्रह्मानन्दार्य 'द्वैतवेदान्ताचार्य' ओंकार आश्रम, पो० चांदोद बड़ोदा)

वचन में आवे नहीं वो, अनिर् वचन कहाय है।
वचन में आये न जो, पर बुद्धि में आ जाय है ॥
जिसको कि बुद्धि जानती, उसका हि रखते नाम है।
और नाम होता वस्तु का, जो सत्य गुण को धाम है ॥
गुण से गुणी को जानना यह तर्क मति का काम है।
और नाम भी गुण रूप ही रक्खे सभी के जाय हैं ॥
गुण युक्त वस्तु है वही, जो जानने में आय है।
जो हो विषय निज ज्ञान का परमार्थ वह ही कहाय है ॥
जिसको कि निश्चय जानते गुण रूप वस्तु के भला है।
उसका न क्यों फिर नाम हो मिथ्याभि क्यों माने भला ॥
माया जिसे तुम कह रहे क्यों अनिर् वचनी हो कहो।
व्याघात वदतो दोष है मत में तुम्हारे सच कहो ॥
सद्भाव रूपी द्रव्य से सब कार्य होता सर्वदा।
देखा सुना जाता यहां अनुभव में आता सर्वथा ॥
बुद्धि उसी को जानती देखा सुना पहिले कभी।
माया को मिथ्या जो कहैं वे हैं स्वयं झूठे सभी ॥
आर्य ब्रह्मानन्द जो नहीं वेद बुद्धि मानते।
ऐसों कि बातें पागलों सी सर्वथा हम मानते ॥१॥

पताका

(रचयिता:— स्व० श्री पं० चमूपति जी एम०ए०)

विश्व धर्म की विमल पताका

तेरी करुण लहरियां बन बन, उमड़ा स्रोत सुधा का।
तड़पा रहा तुझे रह रह कर, दुःख दुःखिया वसुधा का ॥
ताक रहीं हैं व्यथित जातियां, मुख तेरी महिमा का।
वचन दे रहा वेष केसरी, रजपूती रक्षा का ॥
स्वर्ण करों से बांट रहा रवि, कोष अमित सुषमा का।
मान मोह कन्दर्प दर्प गण, डाल रहे थे डाका।
जूझ पड़ा झट छेड़ जुझाऊ, क्षत्रिय वीर लड़ाका ॥
साम गान का नाद गुंजाता, ब्राह्मण वीर दया का।
हम सब तुझ पर वारे जायें, जन जन सब माता का ॥
ब्राह्मण ब्रह्म तेज निज भेंटें, क्षत्रिय खेलें साका ॥

'विश्व धर्म की विमल पताका' गीत पताका शीर्षक से सभा के मासिक पत्र आर्य' के वैसाख १९९१, मई १९३४ के अङ्क में छपा। आर्य जन की भेंट करता हूं। —राजेन्द्र 'जिज्ञासु' अबोहर

आर्यसमाजों को आवश्यक सूचना

वैदिक साहित्य संस्थान व आर्य युवक समाज अबोहर ने महर्षि का अमर बलिदान—ऋषि का विषपान पुस्तक प्रकाशित करवा दी है। बढ़िया कागज पर ५२ पृष्ठों की यह पुस्तक ४५ रु० सैकड़ा के दर से दयानन्द मठ रोहतक, दयानन्द मठ दीनानगर व आर्य युवक समाज अबोहर से मिल सकती है। समाजें इसका प्रचार प्रसार कर अधिक से अधिक लाभ प्राप्त करें। विनीत—राजेन्द्र 'जिज्ञासु'
मन्त्री—वैदिक-साहित्य संस्थान

संस्कारों की शिक्षा लें

विहार राज्य आर्यप्रतिनिधि सभा की ओर से संस्कारों के सम्बन्ध में प्रशिक्षण दिया जा रहा है। अनेक राज्यों के छात्र-छात्राएं शिक्षा ले रहे हैं, जो सज्जन स्वयं अथवा अपने परिवार के किन्हीं अन्य व्यक्ति को प्रशिक्षण दिलाने चाहें। उन्हें महामन्त्री—आर्यप्रतिनिधि सभा विहार राज्य, मनीश्वरानन्द भवन-पटना ४ से पत्र व्यवहार करना चाहिये।
—महामन्त्री

आर्य पत्रकार श्री पं० जगदेवसिंह जी सिद्धान्ती शास्त्री का हार्दिक बधाई

दिनाङ्क २६ नवम्बर ७२ को प्रकाशित अंक के साथ 'आर्यमर्यादा' का चौथा वर्ष हो चुका है और इस समय आर्यमर्यादा अपने पाचवे वर्ष में सुव्यवसित ढंग से चल रहा है। आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का जो पत्र पहले 'आर्य' और फिर 'आर्योदय' के नाम से निकलता था वही अब 'आर्यमर्यादा' के नाम से आर्यजगत् की सेवा कर रहा है। पत्र के सभी अंक ठीक समय पर प्रकाशित होकर यथासमय पाठकों को प्राप्त होते रहते हैं। यह सब सुव्यवस्थित प्रकाशन, संचालन तभी चल रहा है जबकि आर्य पत्रकार, महर्षि के अन्यतम भक्त, दार्शनिक सिद्धान्तों के सूक्ष्मज्ञाता, स्वाध्यायशील आर्य विद्वान् और आर्ष ग्रन्थों के प्रकाण्ड पण्डित श्री जगदेवसिंह जी सिद्धान्ती शास्त्री सम्पारकत्व का भार संभाले हुए हैं। एक आर्य पत्रकार का दायित्व सफलतापूर्वक निभाने के लिये मैं श्रद्धेयवर पण्डित जी को हार्दिक बधाई देता हूं। —सत्येन्द्रसिंह एम. ए. धामपुर

पुस्तक समालोचना

नाम पुस्तक—शास्त्रार्थ महारथी पं० गणपति शर्मा। सम्पादक—डा० भवानीलाल भारतीय एम. ए., पी. एच. डी.। प्रकाशक—नगर आर्यसमाज, अजमेर। पृ० संख्या ६०, कवर पर पं० गणपति शर्मा जी का चित्र। मूल्य ५० पैसे। प्रथम संस्करण। समालोचना—कागज तथा छपाई आदि ठीक है। पुस्तक में उनके व्यक्तित्व और कृतित्व पर सम्पादकीय पृष्ठों में योग्यतापूर्वक विवेचन किया गया है। महाकवि प० नाथूराम शर्मा 'शङ्कर' पं० पद्मसिंह शर्मा, महाविद्यालय ज्वालापुर के कुलपति पं० नरदेव जी शास्त्री तथा प्रो० भीमसेन शास्त्री प्रसिद्ध कवि तथा लेखकों के विचारों का संकलन किया गया है। स्वयं प० गणपति जी शर्मा का नाम आर्यजगत् में प्रसिद्ध है। हम निवेदन करते हैं कि सभी आर्यसमाजों में इस पुस्तक को रखना चाहिये और जनता में वितरित करना श्रेयस्कर है। —जगदेवसिंह सिद्धान्ती शास्त्री

भारतीय हिन्दू शुद्धि सभा, दिल्ली

ग्राम सोना (मेरठ) में ४७ ईसाइयों की शुद्धि की गई। उन्हें पुरानी विरादरी में सम्मिलित किया गया। —द्वारकानाथ प्रधान मन्त्री

आर्यसमाज गाजियाबाद

निर्वाचन निम्न प्रकार हुआ।—श्री रतनलाल राय-प्रधान। श्री परमानन्द आर्य-मंत्री। श्री शान्तिस्वरूप-कोषाध्यक्ष। श्री दुर्गाप्रसाद-पुस्तकाध्यक्ष। मन्त्री—परमानन्द आर्य

राष्ट्रकवि - आचार्य वल्लव दीक्षित

भारत माता को पराधीनता के पाश से मुक्त करने के लिये देश में अहिंसात्मक ढंग से व सशस्त्र क्रान्ति के माध्यम से श्री दीक्षित तत्पर थे तथा अपनी लेखनी से राष्ट्रभक्ति की भावना से ओत-प्रोत साहित्य लिखने वालों में भी श्री राधा वल्लभ दीक्षित की गणना की जाती है। उनकी निम्न दो पंक्तियां ही इस श्रेणी में उन्हें खड़ा करने के लिये पर्याप्त हैं।

जब रण करने को निकलेंगे, स्वतन्त्रता के दीवाने।
धरा धंसेगी, प्रलय मचेगी, व्योम लगेगा थर्राने ॥

उपर्युक्त कविता स्वाधीनता संग्राम के दौर में समस्त हिन्दी प्रदेशों में गली-कूचों में बहुत लोकप्रिय हुई। आजादी की प्राप्ति के बाद भी उत्तर प्रदेश के सूचना विभाग की 'राष्ट्रिय कवितायें' नामक संग्रह में सन् १९६७ में गौरवपूर्वक छापा गया। १४-१५ वर्ष की अल्पायु में ही कविता लिखना आरम्भ किया। उस समय के विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में आपकी कृतियां छपने लगी। प्रखर राष्ट्रवादी काव्य उद्गारों के परिणामस्वरूप शीघ्र ही आपको राष्ट्रव्यापी कीर्ति मिली। काव्य साधना में साथ साथ शिक्षा ग्रहण में रुचि का ही परिणाम है कि आप एम० ए०, व हिन्दी साहित्य सम्मेलन की उच्चतम हिन्दी परीक्षा 'साहित्य रत्न' उत्तीर्ण कर पाए। आप आजीविका साधन हेतु इटावा नगरपालिका में 'हिन्दी अध्यापक' के पद पर काफी समय तक आसीन रहे। सन् १९६८ में 'राष्ट्रपति पुरस्कार' से अलंकृत हुये।

—श्री नरेन्द्र अवस्थी, जी ३५४-श्री निवासपुरी, नई दिल्ली-२४

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब द्वारा प्रकाशित और प्रचारित वैदिक साहित्य

१. बलिदान जयन्ती स्मृति ग्रन्थ–आर्य बलिदानों की गाथा मूल्य ४-५०
२. सोम सरोवर-वेदमन्त्रों की व्याख्या —पं० चमूपति एम. ए. ३-००
३. जीवन ज्योति-वेदमन्त्रों की व्याख्या ,, ,, ३-००
४. नीहारिकावाद और उपनिषदें ,, ,, ०-२५
५. Principles of Arya samaj ,, ,, १-५०
६. Glimpses of swami Daya Nand ,, ,, १-००
७. पंजाब का आर्य समाज पंजाब तथा हरयाणा के आर्यसमाज का इतिहास २-००
८. वैदिक सत्संग पद्धति सन्ध्या हवन मन्त्र अर्थ रहित विधि १-००
९. वेदाविर्भाव —आर्यमर्यादा का विशेषांक ०-६५
१०. यजुर्वेद का स्वाध्याय ,, ,, ,, ०-५०
११. वेद स्वरूप निर्णय —पं० मदनमोहन विद्यासागर १-००
१२. व्यवहारभानु —महर्षि स्वामी दयानन्द ०-५०
१३. स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश— ,, ,, ०-४०
१४. Social Reconstruction By Budha & Swami Daya Nand By. Pt. Ganga Prasad Upadhya M. A. २-००
१५. Subject Matter of the Vedas By S. Bhoomanad १-००
१६. Enchanted Island By Swami Staya Parkashanand १-००
१७. Cow Protection By Swami Daya Nand ०-१५
१८. वेद में पुनरुक्ति दोष नहीं है आर्यमर्यादा का विशेषांक २-००
१९. मूर्त्तिपूजा निषेध ,, ,, ०-५०
२०. धर्मवीर पं० लेखराम जीवन —स्वामी श्रद्धानन्द १-२५
२१. कुलियात आर्य मुसाफिर प्रथम भाग—पं० लेखराम की पुस्तकों का संग्रह ६-००
२२. ,, ,, दूसरा भाग ,, ,, ८-००
२३. मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र —कु० सुशीला आर्या एम. ए. ०-२५
२४. योगीराज कृष्ण ,, ,, ,, ०-१५
२५. गोकरुणा निधि —स्वामी दयानन्द सरस्वती ०-२०
२६. आर्यसमाज के नियम उपनियम ०-१०
२७. आर्य नेताओं के वचनामृत —साईंदास भण्डारी ०-१२
२८. कायाकल्प —स्वामी समर्पणानन्द सरस्वती १-५०
२९. वैदिक धर्म की विशेषतायें —पं० हरिदेव सिद्धान्त भूषण ०-१५
३०. स्वतन्त्रानन्द लेखमाला —स्वा० स्वतन्त्रानन्द जी जीवनी तथा उनके व्याख्यान १-२५
३१. आत्मानन्द लेखमाला —स्वामी आत्मानन्द सरस्वती की जीवनी १-२५
३२. आर्यसमाज के सदस्यता फार्म —सैंकड़ा १०-००
३३. वैदिक गीता —स्वामी आत्मानन्द सरस्वती २-५०
३४. मनोविज्ञान तथा शिव संकल्प ,, ,, ,, ३-५०
३५. कन्या और ब्रह्मचर्य ,, ,, ,, ०-१५
३६. सन्ध्या अष्टाङ्गयोग ,, ,, ,, ०-७५
३७. वैदिक विवाह ,, ,, ,, ०-७५
३८. सुखी जीवन —श्री सत्यव्रत २-००
३९. एक मनस्वी जीवन —पं० मनसाराम वैदिक तोप १-५०
४०. छात्रोपयोगी विचारमाला —जगदेवसिंह सिद्धान्ती १-५०
४१. स्त्री शिक्षा —पं० लेखराम आर्य मुसाफिर ०-६०
४२. विदेशों में एक साल —स्वामी स्वतन्त्रानन्द २-२५
४३. वेद विमर्श —पं० भगवद्दत्त वेदालंकार २-००
४४. वेद विमर्श —पं० वेदव्रत शास्त्री २-००
४५. आसनों के व्यायाम ,, ,, ,, १-००
४६. महर्षि जीवन गाथा —स्वामी वेदानन्द वेदवागीश २-२५
४७. मांस मनुष्य का भोजन नहीं —स्वामी ओमानन्द सरस्वती १-००
४८. वीर भूमि हरयाणा ,, ,, ४-००
४९. चोटी क्यों रखें —स्वामी ओमानन्द सरस्वती ०-५०
५०. हमारा फाजिल्का —श्री योगेन्द्रपाल १-५०
५१. सत्संग स्वाध्याय —स्वामी ओमानन्द सरस्वती ०-५०
५२. जापान यात्रा ,, ,, ,, ०-७५
५३. भोजन ,, ,, ,, ०-७०
५४. ऋषि रहस्य —पं० भगवद्दत्त वेदालंकार २-००
५५. स्वामी श्रद्धानन्द जीवन परिचय १-२५
५६. मेरा धर्म —आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति ७-००
५७. वेद का राष्ट्रिय गीत ,, ,, ,, ५-००
५८. ईशोपनिषद्भाष्य —इन्द्र विद्या वाचस्पति २-००
५९. पं० गुरुदत्त विद्यार्थी जीवन —डा० रामप्रकाश १-३५
६०. वैदिक पथ —पं० हरिदेव सिद्धान्त भूषण २-००
६१. ज्ञानदीप ,, ,, ,, २-००
६२. आर्यसमाज का सैद्धान्तिक परिचय ०-५०
६३. The Vedas ०-५०
६४. The Philosophy of Vedas ०-५०
६५. वैदिक प्रवचन —पं० जगत्कुमार शास्त्री २-२५
६६. ईश्वर दर्शन ,, ,, १-५०
६७. श्वेताश्वरोपनिषद् ,, ,, ४-००
६८. ब्रह्मचर्य प्रदीप ,, ,, ४-००
६९. भगवत प्राप्ति क्यों और कैसे —स्वा० सत्यानन्द ०-६०
७०. आर्य सामाजिक धर्म ,, ,, ०-७५
७१. बोध प्रसाद —स्वामी श्रद्धानन्द ०-२५
७२. ऋषि दर्शन —पं० चमूपति एम. ए. ००-२५
७३. ऋषि का चत्मकार ,, ,, ,, ००-१२
७४. वैदिक जीवन दर्शन ,, ,, ,, ००-२०
७५. वैदिक तत्त्व विचार ,, ,, ,, ००-५०
७६. देव यज्ञ रहस्य ,, ,, ,, ००-३५

सभी पुस्तकों का प्राप्ति स्थान

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब, गुरुदत्त भवन, जालन्धर (४२५०) टेलीफोन
,, ,, ,, १५ हनुमान् मार्ग नई दिल्ली-१ ,, (३१०१५०)
,, ,, ,, दयानन्द मठ रोहतक (हरयाणा) ,, (५७४)

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के लिए जगदेवसिंह सिद्धान्ती शास्त्री द्वारा सैनी प्रिंटर्स पहाड़ी धीरज, देहली में मुद्रित और १५ हनुमान् रोड, नई दिल्ली–१ से प्रकाशित

५ चैत्र सं २०२६ वि०, दयानन्दाब्द १४८,
तदनुसार १८ मार्च १९७३ रविवार
सृष्टि सं०-१९६०८५३०७२

वर्ष ६५ वार्षिक शुल्क स्वदेश में १०) रुपये
अंक १६ " " विदेश में २०) रुपये
एक प्रति का मूल्य ००-२० पैसे

सम्पादक जगदेवसिंह सिद्धान्ती शास्त्री, पूर्व लोकसभा सदस्य (फोन ५१२१६३)

वेदमन्त्रार्थ-प्रवचन

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अश्याम ते सुमतिं देवयज्यया क्षयद्वीरस्य तव रुद्र मीढ्वः ।
सुम्नायन्निद्विशो अस्माकमा चरारिष्टवीरा जुहवाम ते हविः ॥

—ऋ० १:११४.३

पदार्थः—(अश्याम) प्राप्नुयाम (ते) तव (सुमतिम्) शोभनां बुद्धिम् (देवयज्यया) विदुषां सगत्या सत्कारेण च (क्षयद्वीरस्य) क्षयन्तो निवासिता वीरा येन तस्य (तव) (रुद्र) रुतः सत्योपदेशान् राति ददाति तत्सम्बुद्धौ (मीढ्वः) सुखैः सिञ्चन् (सुम्नयन्) सुखयन् (इत्) अपि (विशः) प्रजाः (अस्माकम्) (आ) (चर) (अरिष्टवीराः) अरिष्टा अहिंसिता वीरा यासु ताः (जुहवाम) दद्याम (ते) तुभ्यम् (हविः) ग्रहीतुं योग्यं करम् ॥

अन्वयः—हे मीढ्वो रुद्र सभाध्यक्ष राजन् वयं देवयज्यया क्षयद्वीरस्य तव सुमतिमश्याम यः सुम्नयँस्त्वमस्माकमरिष्टवीरा विश आ चर समन्तात्प्राप्नुयाः तस्य ते तव विशो वयमिदश्याम ते तुभ्यं हविर्जुहवाम च ॥

भावार्थः—राज्ञा प्रजाः सततं सुखयितव्याः प्रजाभी राजा च। यदि राजा प्रजाभ्यः करं गृहीत्वा न पालयेत्तर्हि स राजा दस्युवद्विज्ञेयः, याः पालिताः प्रजा राजभक्ता न स्युस्ता अपि चोरतुल्या बोध्या अत एव प्रजा राज्ञे करं ददति यतोऽयमस्माकं पालनं कुर्यात्, राजाप्येतत्प्रयोजनाय पालयति, यतः प्रजा मह्यं करं प्रदद्युः ॥

भाषार्थः—हे (मीढ्वः) प्रजा को सुख से सींचने और (रुद्र) सत्योपदेश करने वाले सभाध्यक्ष राजन् हम लोग (देवयज्यया) विद्वानों की संगति और सत्कार से (क्षयद्वीरस्य) वीरों का निवास कराने हारे (तव) तेरी (सुमतिम्) श्रेष्ठ प्रज्ञा को (अश्याम) प्राप्त होवें जो (सुम्नायन्) सुख कराता हुआ तू (अस्माकम्) हमारी (अरिष्टवीराः) हिंसारहित वीरों वाली (विशः) प्रजाओं को (आ, चर) सब ओर से प्राप्त हो उस (ते) तेरी प्रजाओं को हम लोग (इत्) भी प्राप्त हों और (ते) तेरे लिये (हविः) देने योग्य पदार्थ को (जुहवाम) दिया करें ॥

भावार्थः—राजा को योग्य है कि प्रजाओं को निरन्तर प्रसन्न रक्खे और प्रजाओं को उचित है कि राजा को आनन्दित करें जो राजा प्रजा से कर लेकर पालन न करे तो वह राजा डाकुओं के समान जानना चाहिये जो पालन की हुई प्रजा राजभक्त न हों वे भी चोर के तुल्य जाननी चाहियें इसीलिये प्रजा राजा को कर देती है कि जिससे यह हमारा पालन करे और राजा इसलिये पालन करता है कि जिससे प्रजा मुझको कर देवे ॥

—(ऋषिदयानन्दभाष्य)●

नौविमानादिविद्याविषयः

(अनारम्भणे०) हे मनुष्य लोगो ! तुम पूर्वोक्त प्रकार से अनारम्भण अर्थात् आलम्बरहित समुद्र में अपने कार्यों की सिद्धि करने योग्य यानों को रच लो (तद्वीरयेथाम्) वे यान पूर्वोक्त अश्विनी से ही जाने आने के लिये सिद्ध होते हैं। (अनास्थाने) अर्थात् जिस आकाश और समुद्र में विना आलम्ब कोई भी नहीं ठहर सकता, (अग्रभाणे) जिसमें हाथ से पकड़ने का आलम्बन कोई भी नहीं मिल सकता (समुद्रे) ऐसा जो पृथिवी पर जल से पूर्ण समुद्र प्रत्यक्ष है, तथा अन्तरिक्ष का भी नाम समुद्र है, क्योंकि वह भी वर्षा के जल से पूर्ण रहता है, उनमें किसी प्रकार का आलम्बन सिवाय नौका और विमान से नहीं मिल सकता, इससे इन यानों को पुरुषार्थ से रच लेवें। (यदश्विना) (ऊहथुर्भु०) जो यान वायु आदि अश्वि से रचा जाता है वह उत्तम भोगों को प्राप्त कर देता है, क्योंकि (अस्तं) जो उनसे चलाया जाता है वह पूर्वोक्त समुद्र, भूमि और अन्तरिक्ष में सब कार्यों को सिद्ध करता है (शतारित्राम्) उन नौकादि सवारियों में सैकड़ह अरित्र अर्थात् जल का थाह लेने, उनके थांभने और वायु आदि विघ्नों से रक्षा के लिये लोह आदि के लंगर भी रखना चाहियें, जिनसे जहाँ चाहे वहां उन यानों को थांभे, इसी प्रकार उनमें सैकड़ह कल बन्धन और थांभने के साधन रचने चाहियें। इस प्रकार के यानों से (तस्थिवांसम्) स्थिर भोग को मनुष्य लोग प्राप्त होते हैं ॥

—(ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका)●

सत्यार्थप्रकाश (दशम समुल्लास)

आचारः प्रथमो धर्मः श्रुत्युक्तः स्मार्त एव च ॥ —मनु० १.१०८

जो सत्य भाषणादि कर्मों का आचरण करना है वही वेद और स्मृति में कहा हुआ आचार है ॥

मा नो वधीः पितरं मोत मातरम् ॥ —यजु० अ० १६। मं० १५॥

मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्य्यदेवो भव। अतिथिदेवो भव॥

—तैत्तिरीयारण्यके ॥ प्र० ७। अनु० ११॥

माता, पिता, आचार्य्य और अतिथि की सेवा करना देवपूजा कहाती है और जिस जिस कर्म से जगत् का उपकार हो वह वह कर्म करना और हानिकारक छोड़ देना ही मनुष्य का मुख्य कर्त्तव्य कर्म है। कभी नास्तिक, लम्पट, विश्वासघाती, मिथ्यावादी, स्वार्थी, कपटी, छली आदि दुष्ट मनुष्यों का सङ्ग न करे आप्त जो सत्यवादी धर्मात्मा परोपकार प्रियजन हैं उनका सङ्ग करने ही का नाम श्रेष्ठाचार है। (प्रश्न) आर्य्यावर्त्त देशवासियों का आर्य्यावर्त्त देश से भिन्न भिन्न देशों में जाने से आचार नष्ट हो जाता है वा नहीं? (उत्तर) यह बात मिथ्या है क्योंकि जो बाहर भीतर की पवित्रता करनी सत्य भाषणादि आचरण करना है वह जहां कहीं करेगा आचार और धर्मभ्रष्ट कभी न होगा और जो आर्य्यावर्त्त में रहकर दुष्टाचार करेगा वहीं धर्म और आचार भ्रष्ट कहावेगा ॥

(क्रमशः) —(ऋषि दयानन्द)●

अन्तिम लेख—

महर्षि दयानन्द को विष दिया गया।

ऋषिवर के बलिदान की अमर कहानी (१३)

(ले०—श्री राजेन्द्र 'जिज्ञासु' एम० ए० बी० टी०, प्रा० दयानन्द कालिज अबोहर)

अब इस विषय पर और लेख लिखने की आवश्यकता नहीं। सामग्री हमारे पास पर्याप्त है। बहुत प्रमाण मिल रहे हैं। पुस्तक भी छप गई है। पाठक इस विषय में वैदिक साहित्य संस्थान द्वारा प्रकाशित पुस्तक को पढ़ें व पढ़ावें। पुस्तक में भी सारी सामग्री नहीं दी जा सकी। आज इस अन्तिम लेख में कुछ महत्त्वपूर्ण बातों का उल्लेख कर इस लेखमाला को समाप्त करता हूं। आवश्यकता हुई तो फिर लेखनी उठा लेंगे।

आर्य लोगों को प्रमाद नहीं करना चाहिए। श्रीराम शर्मा जी को जब तक इस काम से हटाया नहीं जाता तब तक आर्यों को चैन नहीं लेना चाहिए। हमें अभी एक प्रतिष्ठित आर्य ने बताया कि श्रीराम जी से बातें होने पर पता चला कि वह और भी कई गुल खिलाएंगे। सब लोग सम्पन्न हैं अतः हरयाणा का ५० हजार रुपया हरयाणा से बाहर किसी के परोपकार के लिये दान दे दिया गया है।

श्रीराम जी ने कितना अनर्थ किया है इसका सबसे ज्वलन्त प्रमाण यह है कि वह कहते रहे कि उनके अनुसन्धान का मुख्य आधार गोपाल शर्मा जी का दयानन्द दिग्विजयांक है। यही सबसे पहला जीवनचरित्र है। इसमें षड्यन्त्र, विष दिये जाने व अलीमर्दान के इलाज पर सन्देह की कोई बात नहीं। बार बार यही शोर मचाकर शर्मा जी ने जनता में भ्रामक विचार फैलाए। अभी हमें उस पुस्तक के प्रमाण श्री पं० ओमप्रकाश जी आर्य की कृपा से मिल गये। उनके पास यह पुस्तक है। इसके पृष्ठ १६४ पर लेखक ने स्पष्ट शब्दों में महर्षि की मृत्यु के पीछे पापियों के हाथ की चर्चा की है।

इसी पुस्तक में पृष्ठ १६२ पर शाहजहांपुर के समाचार पत्र 'शुभ-चिन्तक' में महर्षि के बलिदान पर छपी शिखरणी छन्द की एक श्रद्धाञ्जलि दी गई है। इसके श्लोक संख्या पांच व छः में दो बार विष दिये जाने की स्पष्ट चर्चा की गई है। मैंने यह प्रमाण पुस्तक में दे दिये हैं।

अभी मान्य जावेद जी के साप्ताहिक पत्र के ८-२-७३ के अङ्क में पुनः श्रीराम जी ने गोपाल शर्मा जी का नाम लेकर फिर अपनी मिथ्या बात लिखी है। इसी लेख में श्री हरविलास जी शारदा के नाम पर झूठ लिखा है। उनकी पुस्तक में राव राजा तेजसिंह जी का वक्तव्य विष की पुष्टि में दिया गया है। शर्मा जी ने शारदा जी के नाम पर बड़ा झूठ लिखा है। शर्मा जी ने लिखा है कि यदि मैं ओझा जी की पुस्तक या लेख दिखा दूं तो उनकी बुद्धि ठिकाने आ जावे। उनकी बुद्धि तो अब क्या ठिकाने पर आएगी, पक्षी के बच्चे जैसे घोंसले से एक बार गिरकर फिर घोंसले में नहीं पहुंच सकते शर्मा जी की बुद्धि भी ठिकाने पर नहीं आ सकती। हमने ओझा जी का पूरा प्रमाण दे दिया है जो चाहे पुस्तक मेरे पास देख लें।

प्रि० श्रीराम शर्मा ने डा० अलीमर्दान की वकालत पूरी शक्ति से की है अब गोपाल शर्मा जी के प्रमाण से ही उनकी यह मिथ्या मान्यता हमने झुठला दी है। शर्मा जी ने श्री सिद्धान्ती जी, महात्मा आनन्द स्वामी जी, डा० भारतीय जी व मेरे नाम पर भी ८-२ के लेख में ऐसी कल्पित बातें लिख मारी हैं जो हममें से किसी ने भी लिखी व कही नहीं।

जब हमने यह लिखा कि शर्मा जी ने ही प्रि० बहादुरमल की पुस्तक छपवाई उसमें भी विष व षड्यन्त्र का चर्चा है तो शर्मा जी ने बिगड़ कर लिखा कि जिज्ञासु को इतना भी ज्ञान नहीं कि यह प्रामाणिक लेखक नहीं। हमने भी प्रि० बहादुरमल व प्रि० सूर्यभान जी की पुस्तकों को प्रामाणिक नहीं माना हमने तो यह दिखाया कि यह आप द्वारा ही प्रकाशित है। परन्तु पाठक देखें कि इन्हीं शर्मा जी ने अपने एक पमफलैट में इस पुस्तक को प्रामाणिक माना है। क्या यही अनुसन्धान है? इतनी हेर फेर!

राजा नाहरसिंह का कथन सर्वथा अमान्य है कि चूंकि उनके दिये रसोइए ऋषि के पास थे अतः वह सोच भी नहीं सकते कि ऋषि को विष दिया गया। कोई न सोचे तो इसका अर्थ यह नहीं कि तथ्य से इनकार कर दिया जाए। अपने राज्य को कलंक से बचाने के लिये राजा नाहरसिंह ने ऐसा कहा ऐसा कई विद्वानों का मत है। महात्मा आनन्द स्वामी जी ने शर्मा जी को लिखा कि शाहपुरा महाराज ने भी उनको बताया कि विष ही दिया गया। शारदा जी ने भी कहा कि विष दिया गया। भारत सरकार की सहायता से प्रकाशित Dr. C. K. Parikh की पुस्तक A Simplified test Book of medical Jurisprudence and technology के पृष्ठ ६४३, ६७३, ६७४ पर विष के कारण शरीर में पैदा होने वाले सब लक्षण ऋषि के शरीर में अन्त समय में थे। यदि ऋषि को निमोनिया था तो आबू पर्वत पर भेजने व जाने का क्या अर्थ? अब हमने उस काल के पत्रों, इतिहासज्ञों, विद्वानों, लेखकों व ऋषि के विरोधियों के मत देकर सिद्ध कर दिया कि विष दिया गया। अब यह कहना कि यह घटना बाद में घड़ी गई, एक गप्प है, षड्यन्त्र है, नैतिक ह्रास है। पहले तो शर्मा जी ने कहा कि तब किसी ने ऐसा लिखा व कहा नहीं जब प्रमाण दे दिये तो भी हठ पर अड़े हैं। उनके मन का प्रयोजन वही जानें।

धन्यवाद

महर्षि के विषपान के ऐतिहासिक तथ्य की खोज में लगातार आठ मास मुझे दिनरात कार्य करना पड़ा। इस कार्य के लिये जिन महात्माओं, विद्वानों व मित्रों ने अपना आशीर्वाद, प्रोत्साहन व सहयोग दिया, मैं हृदय से उनका आभार मानता हूं। श्री पं० जगदेवसिंह जी सिद्धान्ती ने जिस दृढ़ता व साहस से महर्षि के विषपान की घटना को झुठला के षड्यन्त्र का पोल खोला व हमारा मार्गदर्शन किया उसके लिये वह बधाई के पात्र हैं। श्री पं० धर्मदेव जी विद्यामार्तण्ड की कृपा से हमें प्रो० मैक्समूलर के प्रमाण मिले। बड़ी खोज की, हमें प्रो० महोदय की पुस्तकें न मिलीं। परन्तु पूज्य पंडित जी ने यह सारा काम कर दिया। किन शब्दों में उन्हें धन्यवाद दूं! इस दम्भ दुर्ग को ढाने के अभियान की सफलता का सारा श्रेय पूज्य स्वामी सर्वानन्द जी को जाता है। उन्हीं के प्रबल अनुरोध पर यह कार्य हाथ में लिया। प्रि० श्रीराम जी शर्मा का भी धन्यवाद जिनकी कृपा से इतनी ठोस खोज आर्यजन कर पाए। उनकी दुर्भावना आर्यों के लिये Blessing in Disguise बन गई। बुराई से भलाई निकल आई। ●

मस्ताने का गीत

(रचयिता—श्री स्व० पं० चमूपति जी एम. ए.)

जो माने नहीं मनाए से उसको कर जोर मनाना क्या?
जो जानबूझ कर बधिर हुआ उसको हित अहित सुनाना क्या?
उस बिन छबि छैल छबीले की छबि देख आंख झपकाना क्या?
बिन जीभ अनहत नाद हुआ कर आरत जीभ थकाना क्या?
घर से बाहर जब निकल पड़े तब बस्ती क्या वीराना क्या?
मन ही अपना न रहा अब तो जन अपना क्या बेगाना क्या?
कहती है बुरा कहे दुनियां इस कुलटा को पतियाना क्या?
जब प्रेम गली में पांव धरा तो अपयश से घबराना क्या?
मत चेत हृदय हो मस्ताना चेता तो फिर मस्ताना क्या?
रह अपनी धुन में मस्त न सुन कहता है तुझे जमाना क्या?

मासिक 'आर्य' लाहौर के मार्गशीर्ष १९९१, दिसम्बर १९३४ ई० के अंक में पं० जी की यह रचना प्रकाशित हुई थी। पाठकों की भेंट कर रहा हूं। —राजेन्द्र 'जिज्ञासु' अबोहर

आर्यप्रतिनिधि सभा पंजाब के रिसीवर श्रद्धेय श्री स्वामी सर्वानन्द सरस्वती जी अध्यक्ष दयानन्द मठ दीनानगर का आदेश—

"सभी आर्यसमाजें और आर्य सज्जन गलत प्रोपगैंडे से बचें।"

किसी व्यक्ति ने कौटिल्य के नाम से एक पत्र प्रकाशित करके बहुत से स्थानों में भेजा है। उस पत्र का अभिप्राय सुधरती हुई स्थिति को बिगाड़ना ही प्रतीत होता है। जिसमें आर्यसमाज का महान् अहित है। ऐसे समय में जबकि हमें मिलकर बैठने का प्रयत्न कर रहे हैं। ऐसे पत्रों और सूचनाओं की ओर ध्यान न देकर सभी आर्यसमाजों तथा आर्य सदस्यों को संगठन के लिये ही प्रयत्नशील रहना चाहिये। इस प्रकार की अनिष्ट बातों की प्रत्येक को निन्दा करनी चाहिए।

—हस्ताक्षर-सर्वानन्द

रिसीवर आर्यप्रतिनिधि सभा पंजाब जालन्धर

स्वामी स्वतन्त्रानन्द संस्मरण विशेषाङ्क

'आर्यमर्यादा' के सभी ग्राहक महानुभावों तथा प्रेमी पाठकों की सेवा में सूचित किया जाता है कि २५ मार्च १९७३ का अंक स्वर्गीय स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज के संस्मरण में विशेषाङ्क रूप में प्रकाशित किया जा रहा है। अत: इस अंक में अन्य कोई लेख अथवा समाचार प्रकाशित नहीं किये जावेंगे। इस बात का ध्यान रखने की कृपा करें कि अपने डाकखाने के पोस्टमास्टर साहिब को अभी से बतला देवें कि उनका अंक उनके निवास स्थान पर ही भेजा जावे। पोस्टमैन किसी अन्य व्यक्ति को न देवें। यह अंक परिमित मात्रा में ही प्रकाशित किया जावेगा, अत: ग्राहक की पुन: मांग पहुंचने पर नहीं भेजा जा सकेगा।

ऋषि दयानन्द का विष कांड—

हरयाणा राज्य के शिक्षा मन्त्री चौ० माड़ूसिंह मलिक से पुर्नानिवेदन

आर्यमर्यादा के गत अंक में हमने पृष्ठ ३ पर चौ० वंशीलाल मुख्यमन्त्री हरयाणा राज्य को लिखा पत्र प्रकाशित कर दिया था। उन्होंने वह हमारा पत्र शिक्षामन्त्री चौ० माड़ूसिंह के पास भेजा। शिक्षामन्त्री जी ने उसका उत्तर हमारे पास भेजा। उस उत्तर को भी हमने गत अंक के पृष्ठ २ कालम दो पर छाप दिया था और इसी सम्बन्ध में सम्पादकीय लेख लिखा था। अब हम नियमपूर्वक शिक्षामन्त्री जी के उत्तर के सम्बन्ध में उनसे पत्र द्वारा पुर्ननिवेदन कर रहे हैं। इस निवेदन को रजिस्ट्री द्वारा उनकी सेवा में भेज दिया है, वह इस प्रकार है—

आदरणीय श्री शिक्षा मन्त्री जी, हरयाणा राज्य सरकार चण्डीगढ़।

मान्य महोदय! नमस्ते,

ऋषि दयानन्द के जीवत वृत्त के प्रकाशन के सम्बन्ध में आपका पत्र मिला। हम बहुत आभारी हैं। तथापि पुर्ननिवेदन है कि श्री ला० सूरजभान जी उपकुलपति के आश्वासन पर कुछ विश्वास नहीं किया जा सकता, क्योंकि श्री श्रीराम शर्मा लेखक की पुस्तक को कौन सज्जन पंक्ति पंक्ति पढ़कर जांच करेगा। यदि उन्होंने किसी व्यक्ति को जाँच करने पर नियुक्त भी कर दिया तो वह भी लेखक का अनुमोदन कर सकता है। अत: आपसे हमारी प्रबल मांग यही है कि पंजाब विश्व-विद्यालय से यह प्रकाशन वापस लिया जाय और गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी के कुलपति को यह कार्य सौंपा जाय। आशा है हमारे निवेदन पर पूर्ण विचार करके कृतार्थ करेंगे और हरयाणा के ५० हजार पवित्र रुपये का सदुपयोग करने में सहयोग देवें।

संलग्न—आर्यमर्यादा का अंक १५, वर्ष २

विनीत
जगदेवसिंह सिद्धान्ती शास्त्री
सम्पादक—आर्यमर्यादा
१५ हनुमान् रोड, नई दिल्ली-१

सेवा में—
श्री चौ० माड़ूसिंह जी शिक्षामन्त्री
हरयाणा राज्य सरकार, चण्डीगढ़
प्रतिलिपि—श्री ला० सूरजभान जी
उपकुलपति पंजाब विश्वविद्यालय चण्डीगढ़।●

भारत को भी यश पहुंचा

बंगला देश के स्वतन्त्र होने के पश्चात् उसका प्रथम निर्वाचन लोकतन्त्र के आधार पर हुआ है। वहां के प्रधानमन्त्री श्री मुजीब के राजनीतिक दल ने भारी बहुमत से प्रशासन सत्ता को हस्तगत कर लिया। प्रधान मन्त्री मुजीब दो जगह से निर्विरोध चुने जा चुके थे और दो जगह से मुकाबिले में बहुत मतों से विजयी हुए। उनके मन्त्रिमण्डल के सभी सदस्य जीत गये। प्रतिस्पर्धी राजनीतिक दलों में केवल ३ दलों को एक एक स्थान मिल सका। ६ निर्दली सदस्य जीते हैं। इससे पता चल गया कि बंगला देश ने धर्मनिरपेक्ष रूप में चुनाव की जो घोषणा की थी वहां की जनता ने इसको स्वीकार किया है। समय पर भारत देश की त्रिविध सेनाओं ने बंगला देश को मुक्त कराने में सहयोग दिया। और भारतीय सेना को संसार में यश मिला। अब इस जनतन्त्र चुनावों में धर्मनिरपेक्ष के आधार पर जीत प्राप्त होने पर भारत को बंगला देश जैसा प्रबुद्ध भू खण्ड का सहयोग प्राप्त हो गया है। शेख मुजीब ने भारत के पूर्व सहयोग के प्रति आभार प्रकट किया था और अब भी कामना की है कि भारत उपमहाद्वीप में भारत और बंगला देश परस्पर शान्ति स्थापना के काम में मिलकर चलेंगे। यदि पाकिस्तानी राष्ट्रपति श्री भुट्टो इस तथ्य को समझकर परस्पर मिलकर चलने की भावना पर आचरण करें तो तीनों देशों का ही नहीं, अपितु समस्त एशिया महाद्वीप का कल्याण सिद्ध हो सकता है। भारत और पाकिस्तान तथा बंगला देश की राजनीति में कितना अन्तर है कि जहां भारत और बंगला देश धर्मनिरपेक्ष रूप में स्वतन्त्र राज्य हैं, वहाँ पाकिस्तान इसलामी राज्य घोषित किया हुआ है। यह ठीक है कि राजनीति स्थिर नहीं होती, इसका रूप बदलता रहता है। परन्तु वर्तमान बंगला देश के राजनीतिक चुनावों ने सिद्ध कर दिया है कि सम्प्रदाय के नाम पर क्लिष्ट शंकाओं को उभारना उचित नहीं है।

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालल का रूप

मुसलमानों के साम्प्रदायिक रूप को इसके विधान में बदलने की जो चेष्टा भारत सरकार ने की है, इसके विरोध में भारत के मुसलमान खूब सिर फिरा रहे हैं और एक सम्मेलन बुला कर घोषणा करने के यत्न में हैं कि आगामी निर्वाचन में कांग्रेस को मुसलमान अपना वोट न देवें। प्रथम तो यह साम्प्रदायिक भावना फैलाना भारतीय संविधान और चुनाव की वैधानिकता के विरुद्ध है, परन्तु यह मान भी लिया जावे कि मुसलमान चाहे जिस राजनीतिक दलों को वोट देवें। परन्तु इन्हें विचार करना चाहिये कि अकेले मुसलमान भारत की राजनीति पर हावी नहीं हो सकते। दूसरे यह बात भी है कि भारत के अन्य राजनीतिक दल विचार कर सकते हैं कि जब यह मुस्लिम साम्प्रदायिकता की भावना कांग्रेस दल का विरोध करेगी तो दूसरे दल को उसी आधार पर यह कैसे वोट दे सकेंगे। यह सर्वथा अव्यवहारिक नीति है। मुसलमानों को जानना उचित है कि जिस देश में अनेक सम्प्रदायों के लोग बसते हैं वहां इस प्रकार की साम्प्र-दायिक नीति स्वयं उनका भी अनिष्ट कर सकती है। यदि भारत के अन्य राजनीतिक दल मुसलमानों की इस साम्प्रदायिक नीति को सहारा न देवें तो यह उनकी नीति कुनीति बन कर रह जावेगी। सम्प्रदाय के नाम पर दूसरे देशों के सहयोग की प्रतीक्षा करना यह आज की राजनीति ने नष्ट प्राय: कर दिया है। इसी कुनीति ने पाकिस्तान का एक बड़ी जन संख्या का भाग इस से पृथक् हो चुका है। अन्य मुस्लिम देश अब इस कुनीति को जानने लग चुके हैं। आशा है भारतीय मुसलमान भी इस तथ्य को शीघ्र समझ लेवें कि भारत जैसे असाम्प्रदायिक बहुल देश में यह कुनीति नहीं चलेगी।●

आर्य—आयोग

(लेखक—श्री पं० जगत्कुमार शास्त्री "साधु सोमतीर्थ" आर्योपदेशक
सी–२/७३, अशोक विहार–२, देहली-५२)

१— आर्य सामाजिक प्रगतियों में नीचे से ऊपर तक बहुत-सी उलझनें पैदा हो गयी हैं। अब तो साधारण आर्य पुरुष भी उन उलझनों और उनके कारणों को कुछ कुछ समझने लगे हैं। मेरे विचारानुसार उलझनों का एक मुख्य कारण यह भी है कि भारत विभाजन, स्वराज्यागमन, भाषावार राज्यों के पुर्नगठन और इनके बाद पंजाब राज्य और हरयाणा राज्य की सस्थापनाओं तथा भारत के वैधानिक एवं न्यायिक ढांचे में हुए गम्भीरतम परिवर्तनों के अनुसार आर्य समाज की सामुहिक शक्तियों को अभी तक भी नये सांचों में ढाला नहीं गया है। इसीलिये आर्य सामाजिक क्षेत्रों में भी महा विनाशक यादवी चक्र चल गया है।

२— आर्यसमाज मुख्यतया मध्यम श्रेणी के सुशिक्षित पुरुषों का समुदाय है। आर्यसमाजियों का सिद्धान्त प्रेम, बुद्धिवाद और तर्क प्रसिद्ध ही है। हम आर्य समाजी लोग वेदों, वैदिक संस्कृत, ऋषि मुनियों के जीवन और आर्यसम्राटों के इतिहास से सर्वाधिक मात्रा में प्रभावित होते हैं। यद्यपि हम राजनीति, समाजशास्त्र, मनोविज्ञान और अर्थशास्त्र के आधुनिकतम सिद्धान्तों, सम्पर्कों, प्रभावों, उपादानों आदि से अनभिज्ञ, अप्रभावित अथवा अछूते नहीं हैं। इस पर भी हमारे गम्भीरतर प्रयास तो प्राचीनतम वैदिक सिद्धान्तों की पुनःप्रतिष्ठा और सम्पूर्ण प्राचीनता के पुनरावर्तन के लिये ही होते हैं। हम सिद्धान्तवादी और आदर्शवादी हैं।

३—आर्य समाजिक प्रगतियों में नीति परिवर्तन के कई अवसर कई वार आये। सिद्धान्त और आदर्श को सुस्थिर रखते हुए देश, काल और पात्र के अनुसार नीति परिवर्तन तो सभी जीवित, जागृत समाजों और राष्ट्रों में होता ही रहता है। आवश्यकतानुसार नीति परिवर्तन कोई दोष नहीं है। इस पर भी किसी भूल भ्रान्तिवश, किसी अनिष्ट की आशंकावश या प्रमादवश हम स्थिति पालक ही बने रहे। इसका परिणाम यह निकला कि रूढ़िवाद बढ़ा और आर्य सामाजिक जीवन में महा विक्षोभकारी गतिरोध पैदा हो गया।

४— आर्यसमाज का संस्थवाद अब लगभग एक सौ वर्ष पुराना हो चुका है। कहने और देखने में तो आर्य सामाजिक संस्थावाद दानोपजीवी ही हैं; परन्तु जानने वाले जानते हैं कि हमारा सस्थावाद वास्तव में तो सूदखोर, किरायाखोर और सरकारी अनुदानोपजीवी ही है। यहां सूद-खोरी के लिये बड़ी बड़ी धनराशियां विधि विधान पूर्वक बैंकों और सरकारी खजानों में जमा कराई गई हैं। किरायाखोरी के लिये जायदादों की वृद्धि का चक्र, पाकिस्तान में बड़ी बड़ी जायदादों को गंवा देने के बाद भी यहां तेजी के साथ घूमता रहता है। सरकारी अनुदानों को प्राप्त करके, पचाने के लिये हमारे तथा कथित धार्मिक लोग जो जो पापड़ बेला करते हैं, उनके विस्तार में जाना कठिन है। यह एक स्वतन्त्र और अधिक चौंकाने वाला विषय है।

५— हमारे संस्थावाद का आरम्भ तो वैदिक धर्म के प्रसार के एक साधन के रूप में ही किया गया था; परन्तु परिस्थितियों ने साधन को साध्य बना दिया। ऐसा होने पर मुख्य उद्देश्य तो दृष्टि से तिरोहित ही हो गया। जो लोग हमारे संस्थावाद से नौकरी आदि द्वारा लाभान्वित हो रहे हैं, उनकी संख्या बहुत अधिक है। वे सब आरम्भ में तो आर्य समाजी और आर्यसमाज के हितैषी बनकर ही प्रगट होते हैं; परन्तु थोड़ी सुस्थिता पाते ही वे आर्यसमाज के भक्षक, शोषक, अहितचिन्तक बन जाते हैं। संस्थाओं का संचालन आदि वे अपने व्यक्तिगत स्वार्थों की पूर्ति के लिये ही करते हैं। वैदिक धर्म यदा कदा के दिखाते या ढाल के रूप में उनके काम आता है। जब प्रबन्ध समितियां बन जाती हैं, तब संस्थाओं के संस्थापक व्यक्ति, समाज और अन्य संस्थान उपेक्षित हो जाते हैं। मालिक और नौकर के पारस्परिक संघर्ष जैसी यह स्थिति अत्यन्त अवांच्छनीय है। नीति में आमूलचूल परिवर्तन किये विना इस का सुधार न होगा।

६— आर्यसमाज के सामुदायिक स्वरूप का विचार कीजिये। छोटे स्तर पर स्थानीय घटक हैं, जो कि आर्यसमाज कहलाते है। मध्यमस्तर पर राजकीय अथवा प्रान्तीय प्रतिनिधि सभायें है। आर्य समाजों स्थानीय घटकों में उपनियमों की किताबी एकरूपता है। प्रतिनिधि सभाओं में उपनियमों की एकरूपता किताबी रूप में भी नहीं है। अखिल भारतीय संघटन कोई है ही नहीं। आर्य समाज का सर्वोच्च संगठन कहने के लिये अन्तर्राष्ट्रीय है। अन्तर्राष्ट्रीयता के नियम को लागू करने के लिये एक काम चलाऊ ढंग यह अपनाया गया है कि विदेशों उपनिवेशों में जाने वाले भारतीयों ने जो आर्यसमाज जहां तहां बनाये हैं, उन्हें सम्बन्धित करके, उन की तरफ से उनका कोई दिल्लीवाल अथवा भारतवासी प्रतिनिधि सर्वोच्च संगठन में ले लिया जाता है। जिनके हाथों में एक बार मध्यम अथवा सर्वोच्च घटक आ जाते हैं, वे वे देर तक अपना अधिकार जमाने के लिये घटकों की नियमावलियों को अदलते बदलते हैं। अपने मन मानेपन को सुरक्षित रखने के लिये मुकदमे बाजी करने से भी वे नहीं चूकते। यह अधिकार जमाने की प्रवृन्ति इस लिये बढ़ती है कि धन भण्डारों तथा जायदादों के विषय में उन उन के अधिकार और अवसर सुरक्षित रहें। मान बड़ाई के साथ ही आर्थिक लाभ भी वहां होते हैं।

७—समाजवाद के जिस रूसी मार्ग पर हमारा देश दौड़ाया जा रहा है, उसका विचार कीजिये। शिक्षा का पूरा पूरा राष्ट्रीयकरण होकर ही रहेगा। कई वार संकेत मिल चुके हैं। आवश्यक तैयारी के अभाव में सरकारी छापे कुछ टलते जा रहे हैं। हमारे सभी छोटे बड़े स्कूल कालिज आदि अपने सामान मकान आदि सहित एक दिन सरकारी हो जयेंगे। उन पर आर्यसमाज का नाममात्र भी अधिकार न रहेगा। जिन मन्दिरों में स्कूल, कन्यापाठशाला आदि चल रहे हैं, उनमें भी छीना-झपटी के दुःखद दृश्य दिखाई देंगे।

८—सरकार द्वारा नागरिक और ग्रामीण स्थावर सम्पत्तियों का अधिकतम सीमा निर्धारण हो रहा है। बड़े परिवार छोटे परिवारों का रूप ग्रहण करके अपने हितों का संरक्षण कर रहे हैं। आर्यसमाजों के बड़े समुदाय वा घटक इस विषय में क्या कर रहे हैं? यह भी सोचा जाये कि वे क्या कर सकते हैं, या इस विषय में हम क्या कर सकते हैं? देखना चाहिये कि जब दोहरी-तेहरी निष्ठायें और व्यक्तिगत हित आपस में टकरायेंगे, तब हमारी व्यक्तिगत तथा सामुदायिक गतियां क्या रूप धारेंगे। ऐसा ही अधिकतम आर्थिक सीमा निर्धारण का=चल सम्पत्ति निर्धारण का सवाल है। व्यक्तियों और परिवारों के सामने यह सवाल उपस्थित हो चुका है। समाजों, समुदायों पर भी यह किसी न किसी रूप में लागू होगा ही।

९—हमारे भारतीय, अन्तर्राष्ट्रिय एवं प्रान्तीय वा राजकीय घटकों में राजनैतिक परिवर्तनों और भाषावार राज्यों के सीमा निर्धारण के साथ ही कुछ परिवर्तन आवश्यक हो गये थे। वे आज तक भी किये ही नहीं गये। इस दृष्टि से तो आज भी हम वहीं हैं, जहाँ विदेशी शासनकाल में थे। एक विशेष प्रवृत्ति यह भी बढ़ चुकी है कि आर्यसमाज के छोटे बड़े सभी घटकों में राजनैतिक संघटनों का अंधानुकरण तो होता है, धार्मिक अनुष्ठान, सिद्धान्त और मन्तव्य उपेक्षित रहते हैं।

१०—उलझनें बहुत हैं और बहुत प्रकार की हैं। अब होना यह चाहिये कि स्थिति सुधार के लिये एक सर्वसत्ता सम्पन्न "आर्य आयोग" यथाशीघ्र ही बने और वह सब बातों को ध्यान में रखते हुए आर्य सामाजिक प्रगतियों के लिये नई नीतियां, नये मार्ग, नये साधन निर्दिष्ट करे। ●

विदेशी प्रचारको का षड्यन्त्र बन्द किया जावे

सभी सम्प्रदायों के धर्मप्रचारक विदेशों में जाते आते रहते हैं। हमारे भारतवर्ष से भी धर्म प्रचारक विदेशों में इसी भान्ति जाते रहे हैं और अब भी जाते हैं। प्रचार पर आपत्ति नहीं। परन्तु भारत में विदेशों से आने वाले ईसाई पादरियों को करोड़ों रुपये प्रतिवर्ष भिन्न भिन्न विदेशों से मिलते हैं। वे भारत के अत्यन्त निर्धन लोगों में जाते रहते हैं और उन निर्धन समाज पीड़ित लोगों को धन की सहायता से फुसला कर अपनी शिक्षण संस्थाओं और अस्पताल आदि में प्रविष्ट कराकर उन्हें नौकरी का प्रलोभन देकर उनके धर्मपरिवर्तन का षड्यन्त्र करते रहते हैं। इसका दुष्परिणाम भारत के अनेक राज्यों के पिछड़े वर्गों में देखा जा सकता है। भारत के पूर्वाञ्चल क्षेत्र में ये ईसाई पादरी भारत की राष्ट्रियता के प्रति विद्रोह फैलाने का षड्यन्त्र करते रहते हैं। अतः भारत सरकार को इन षड्यन्त्रों को नष्ट करने की ओर पूरा ध्यान देते रहना चाहिये अन्यथा ईसाईयों की संख्या राष्ट्र के कुछ पिछड़े वर्गों में बढ़कर हमारी राष्ट्रियता में पूरी बाधा डाली जा सकती है। ●

क्रमागत—

माण्डूक्य पर आचार्य गौडपाद कारिकाओं की समीक्षा (११)

(ले० श्री स्वामी ब्रह्मानन्द जी आर्य त्रैतवेदान्ताचार्य, मु० ओंकार आश्रम, चान्दोद, बड़ोदा)

समीक्षा—प्रपंच नहीं है इससे क्या प्रमाण ? श्रुतियां सब तुम्हारे उक्त मत के विरुद्ध ही बतला रही हैं। तुम तो प्रपच के ही प्रगट होने एवं निवृत्ति की बात सर्वथा उड़ा दे रहे हो परन्तु (तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः ।। तै० उ०) इस श्रुति में पूज्य प्रभु परमात्मा एवं आत्मा प्रकृति के संयोग से आकाशादि का प्रगट होना माना है और इस सन्दर्भ में आत्मा शब्द प्रकृति के लिये आया है। तथा जो उदय होता है वही अस्त भी उसी में होता है (प्रकृति में) तो इस प्रपंच को (प्रपंचोपशम शान्तम् ।। मां० उ०) में उपशमन हो जाने वाला भी (मृत्तिका घटवत्) याने मृत्तिका से बने घड़े अन्त में मृत्तिका में ही मिल जाते हैं यह इस प्रकार सत् कार्यवाद का सिद्धान्त तुमने भी इसी आगम प्र० की छठी कारिका में (प्रभवः सर्वभावानाम्) वाली कारिका में मानकर परमपुरुष से अंशरूप जीवों का प्रगट होना मान त्रैतवाद स्वतः मान लिया है। यहां इस सत्रवीं कारिका में (अद्वैतं परमार्थतः) की रट लगाना व्यर्थ है। और तुम परमार्थ परमार्थ तो बात बात में कहते हो किन्तु परमार्थ यह शब्द मूल तो बौद्धों की परिभाषा का दार्शनिक शब्द है जो बौद्धों के द्वारा मानी गई तीन प्रकार की सत्ता है कल्पितः परतन्त्र परिनिस्पन्न एव च ।। मैत्रयनाथ ।। उन बौद्धाचार्य आर्य ने असंग लंकावत् ।। सूत्र पृ० १२२ में परिकल्पित सत्य तथा परतन्त्र सत्य एव तीसरा परमार्थ सत्य ये तीन प्रकार का सत्य उसी को सत्ता के नाम मे भी कहते हैं ? परिकल्पित सत्ता वह है जिसमें रज्जू में सर्प के समान जगत् के सम्पूर्ण पदार्थों का व्यवहारमात्र अध्यारोष होता है यहां रज्जू में सर्प का ज्ञान परिकल्पित है इसी प्रकार ब्रह्मरूप रज्जू में संसार के व्यवहार ज्ञान अध्यारोप हैं जो क्षण क्षण में बदलता होने से मिथ्या है तथा परतन्त्र सत्य वा सत्ता वह है जो स्वयं तो उत्पन्न नहीं होती किन्तु हेतु प्रत्यय से उत्पन्न हो जाती है जिसमें ग्राह्य ग्राहक के तीनों भाव या भेद अथवा लक्षण हों और वे लक्षण कल्पना पर अवलंबित हों इसमें (ग्राह्य) के तीन लक्षण शब्द अर्थ सम्बन्ध जो क्रमशः विज्ञानवादी की भाषा में पदार्थाभास—अर्थाभास—देहाभास नाम से कहे जाते हैं और अब (ग्राहक) के भी तीन भेद लक्षण ये हैं मन वा चित्त तथा (उदग्रह) जो चक्षु आदि पांच ज्ञानेन्द्रियां है वे एवं (विकल्प) कल्पना सो ये तीनों भेद जिस अवस्था में उत्पन्न होते हैं वो परतन्त्र सत्ता कही जाती हैं। तीसरी है परिनिस्पन्न ता जो पांचों प्रकार की कल्पनारहित है (न सन्न चासन्न तथा न चान्यथा, न जायते न व्येति न चावहीयते। न वर्धते नापि विशुद्धते पुनः विशुद्धते तत्परमार्थ-लक्षणम् ।। म० का० सू० ।६।१) अर्थात् १—(सत् असत्) (तथा तयता) (जन्म मरण) (ह्रास बृद्धि) और (शुद्धि अशुद्धि) इन पाच प्रकार की कल्पना से जो तत्त्व सर्वथा मुक्त है, वही तीसरी परमार्थ सत्ता कही जाती है। तो ये उपरोक्त बौद्धों की मानी हुई कल्पना का ही अनुसरण गौडपाद जी लेकर आगे चलते हैं हम वैदिक सांख्यवादियों के सामने तो बौद्धों की परिभाषा को समझेगा वही इन नवीन अद्वैतवादी वेदान्तियों को पकड़ सकेगा अन्यथा इनकी आस्मानी सुल्तानी कल्पना को समझना भी मुश्किल है ।।

उक्त तीनों सत्ताओं पर समीक्षा—प्रथम प्रातिभाषित सत्ता होती है कि परतन्त्र सत्ता अथवा परिनिष्पन्न (परमार्थ सत्ता) ? यदि कहो कि प्रतिभाषित सत्ता अथवा परन्त्रसत्ता। तो परमार्थ सत्ता गौण हो गई और मुख्य सत्ता प्रतिभाषित एवं परतन्त्र सत्ता हो गई। तो इस परमार्थ को परिनिष्पन्न सत्ता ही मानना बेकार हो गया, क्योंकि इसमें परिनिस्पन्नता का न गुण माना जायेगा न परमश्रेष्ठ—अर्थ तत्त्व ही का कोई लाभ।

और जो तुम प्रतिभाषित सत्ता को प्रथम मानोगे तो फिर प्रतिभास की कल्पना का चित्त से बाहर द्वैत अनादि सिद्ध रहेगा, क्योंकि उसकी भ्रांति रूप अविद्या के कार्य को प्रथम से ही मान लिया है, तो अविद्या की सर्वदा स्थिति ही बनी रहेगी याने क्षण क्षण में भ्रान्ति बदलते रहते हुये भी अविद्या का संस्कार बीज रूप से बना ही रहेगा। तथा जो तुम परतन्त्र सत्ता को प्रथम मानोगे तो वह परतन्त्र सत्ता ही परतन्त्र न रहकर स्वतन्त्र सत्ता सिद्ध हो जायगी, जिससे द्वैत प्रपंच जो चित्ताश्रय पर थी सो अब प्रथम मान लिया गया तो अब चित्त ही का लय कभी न होगा जिससे तुम्हारे मान्य अद्वैत का लोप होगा। यदि परमार्थ सत्ता को प्रथम मानोगे तो फिर ये प्रतिभाषित एवं परतन्त्र अविद्याजन्य मायाजन्य उक्त दोनों सत्ता का ही उदय कभी नहीं होगा, तो फिर परमार्थ को सत् असत् शुद्धि परिशुद्धि जन्म मृत्यु की कल्पना से अतीत ही कैसे प्रतिपादन कर सकोगे ? क्योंकि किसी के भी भाव अभाव के इदमित्थम् को ही प्रथम स्वीकार करके उससे परमार्थ वा तथता को (जैसा है वैसा) निराले का निरूपण भी न हो सकने पर परमार्थ का प्रतिपाद न ही निरर्थक वा व्यर्थ होगा तो तुम किन निषेधात्मक लक्षण से करोगे ? और यदि इन तीनों सत्ताओं को ही तुम जो युगपद् मानोगे तो ऐसी मान्यता ही फिर वाल, वा पागलों की चेष्टा से कुछ विशेषता न रखती होने से तीनों ही सत्ता व्यर्थ पड़ेगी। क्योंकि ये सभी को भान है कि ज्ञान अज्ञान सत् असत् धर्म अधर्म जड़ चैतन्य भाव या अभ्यास किसी को युगपद् नहीं होता।

अव हम तुम्हारी प्रतिभासिक सत्ता पर विचार करते हैं प्रतिभासिकता स्वयं अज्ञान रूप होने से अज्ञान या अविद्या मित्थ्या है वह या उसकी सत्ता ही कैसे ? और सत्ता कहो या भाव कहो या सत् कहो ये पर्यायवाची शब्द हैं और एकार्थ के बोधक हैं। तो जिसे तुम भी मित्थ्या कहते मानते हुये भी उसकी सत्ता वा उसे सत् मानते हो यह कैसा सत्य ? तो क्या सत्य, सत्य में भी भेद वा प्रकार हो सकता है ? यदि नहीं तो उपरोक्त प्रतिभासिक सत्ता की कल्पना ही कपोल कल्पित होने से त्याज्य है।

परतन्त्र सत्ता जिसे बौद्ध बताते हैं उसे आप अद्वैतवादी व्यावहारिकी सत्ता के नाम से कहते हो तो व्यवहार को भी यदि तुमने सत्ता नाम दे दिया तो फिर सत्ता वा सत्य को मिथ्या नाम देना यह विरोधाभास से भरा हुआ तुम्हारा कथन हुआ क्योंकि सत्ता का स्वीकार तभी होता है कि वह वस्तु का अस्तित्त्व वह सत्ता मानने वाला अपनी बुद्धि में उसके होने का प्रथम से निश्चय कर लेता है यदि तुम कहो कि हम बुद्धि का विकास है तभी तक पदार्थों का या वस्तु की सत्ता मानते हैं पर बुद्धि के विलीन होने के साथ ही हम पदार्थों की सत्ता का लोप मानते हैं इसलिये हम बुद्धि के आश्रय पर जिन पदार्थों का अस्तित्त्व है उन्हें परतन्त्र सत्ता वाले होने से हम बुद्धि का विलासमात्र होने से मिथ्या मानते हैं। तो ऐसा मानना और कहना भी तुम्हारा सार्थक नहीं क्योंकि फिर तो इस प्रकार तुम्हारा परमार्थ परतन्त्र सत्ता वाला सिद्ध होने से मिथ्या हो जायगा ? क्यों परमार्थ तत्त्व भी (दृश्यते त्वग्रया बुद्धया सूक्ष्मात् सूक्ष्म-दर्शिभिः ।। उ०) तीव्र या सूक्ष्म ऋतंभरा प्रज्ञा से जाना जाता है ऐसा श्रुति में कहा है तो फिर उसे भी मिथ्या मानोगे क्या ? यदि नहीं तो जैसे परमार्थ सर्वथा सत्य है वैसे ही व्यवहार के पदार्थ भी सर्वथा सत्य हैं क्योंकि इन दोनों व्यवहार परमार्थ के प्रज्ञानवान् हम स्वयं हैं न कि प्रज्ञाबुद्धि द्रष्टा तो दोनों के हम ही स्वयं हैं वे प्रज्ञप्तियां तो चश्मा दूर्वीन के समान हमारे देखने के साधन हैं। जैसे कोई संडासी से गरम तवेली को, चिमटे से रोटी को पकड़े और रस्सी से भैंस को बांधे, तलवार से किसी को मारे तो कोई कहे कि नहीं साहब तवेली रोटी भैंस एवं मरने वाले व्यक्ति का अस्तित्व ही नहीं ये परतन्त्र होने से यानें बिना संडासी के बिना गर्म तवेली की और रस्सी के बिना भैंस को वांधा नहीं जाता, होने से ये सब परतन्त्र सत्ता वाले होने से ये भी मिथ्या है। ऐसा यदि कोई कहेगा तो उसे पागल या मूर्ख बुद्ध के सिवाय कोई समझदार नहीं मानेगा। तो इसी प्रकार की ये उक्त तुम्हारी इन्द्रियाश्रित पदार्थों की सिद्धि होने से वे मिथ्या माने जाते हैं तो ऐसे कहने वालों की बात बच्चों जैसी है। ● (क्रमशः)

गतांक से आगे—

योगी का आत्मचरित्र (गंगा से गंगा सागर)

सब ही आत्मचरित्रों की एक वाक्यता (२४)

(ले० श्री स्वा० सच्चिदानन्द योगी, अध्यक्ष श्री नारायण स्वामी आश्रम, महामहिम पातञ्जलयोग साधना संघ आ० बा० आ० ज्वालापुर सहारनपुर)

कारतूस तो फरवरी ५७ से बहुत पहले प्रयोग में आये। उनके विरुद्ध प्रचार भी वर्षों पहले हुए। यही बात 'Indian war of Independence' में वीरसावरकर ने लिखा है—

"Just as the secret organization was becoming ripe, the government began to force the greased cortriges on the soldiers in Bengal"

जैसे जैसे गुप्त क्रान्ति संघटन परिपक्व हो रहा था सरकार ने चर्बी वाले कारतूसों को ठूंसना आरम्भ किया। बंगाल में सिपाहियों पर यह सम्भव हो सकता है कि पहला परीक्षण किया जायगा। १९ नं० रिसाले पर फरवरी महीनें में—पृ० १०२।

इन वाक्यों में यह नहीं है कि कारतूस फरवरी ५७ में जादू से ही तत्काल पैदा किये गये थे। वर्षों पहले से यह आ रहे थे, प्रचार किया जा रहा था। किस रेजीमेण्ट में कब पहुंचा यह अलग बात है। R. C. मौजुमदार ने तो यहां तक लिखा है—

"The cry of greasd cartridges did not origination with the sepoys, but was selected with Conseemmate tact and skill by those who behind the Curtain. were casting about for a motre which should deeply ster both Muslim and Hindu ranks of the Bengal Army. The cartridges cry was the spark which fired the terain, but the terain had been mostcarefully laid-
—Sepoy mutiny—P. 216

कारतूस की शिकायत सिपाहियों की आविष्कृत नहीं थी। बल्कि उन प्रछन्न परदे के पीछे रहने वालों से परिपूर्ण टैक्ट और बुद्धिमत्ता से छाँटा गया था, जो विशेष उद्देश्य की पूर्ति में लगे थे, जिस से मुस्लिम और हिन्दू दोनों ही सेनाओं को गहरा आघात पहुंचे। कारतूसों का नारा तो एक पतगा था जिसने ट्रेन को आग लगा दी। वह गाड़ी बड़ी सावधानी से लादी गई थी।

Indian war of independence – 102 फुटनोट पर यहां तक लिखता है—

One author goes further and says—"That the fear about the cartiiges was mere pretext with many is shown beyond all question. They have not hesitated to use freely when fighting against us the cartidges, which They declared, would, if used, have destroyed their caste.

इण्डियन वार आव इण्डिपेण्डन्स तो यहां तक लिखता है—'एक लेखक यहां तक बढ़ता है और कहता है—कि कारतूसों का भय तो बहुतों का मिथ्या बहानामात्र था यह विना किसी विकल्प के निश्चित रूप से कहा जा सकता है। उनही सिपाहियों ने कारतूसों के प्रयोग में बिल्कुल संकोच नहीं किया जब हमारे अंग्रेजों के विरुद्ध उनको मुँह से खोलकर चला रहे थे। जिससे उनकी जाति भ्रष्ट होती थी। यह चिल्ला-चिल्ला कर कहते थे।

अत: स्पष्ट है कारतूसों के प्रचार का मंगलपाण्डे की बात से कोई विरोध नहीं। जलपथ आदि से गंगासागर आदि की यात्रा की।

योगी का आत्मचरित्र (गंगोत्तरी से रामेश्वर तक)

देवेन्द्र बाबू तथा पं० घासीराम जी एडवोकेट ने महर्षि दयानन्द के जीवन चरित्र में "महर्षि की भक्तों से बातचीत को उद्धृत किया है। महर्षि बोले—"मैं एक बार गंगोत्तरी से गंगा सागर तक और एक बार गंगोत्तरी रामेश्वर तक गया था।" पृष्ठ ६२२ गंगोत्तरी से गंगा सागर तक की यात्रा का वर्णन तो 'योगी के आत्मचरित्र' में आ गया है। गंगोत्तरी से गंगासागर की यात्रा कब की। इसका तालमेल कैसे बैठे?

कलकत्ते से रामेश्वर तक की यात्रा योगी के आत्मचरित्र में है। जिस पर देवेन्द्र बाबू और घासीराम जी की गवाही विद्यमान होने पर शंका का कोई स्थान नहीं। गंगोत्तरी से कलकत्ते तक का विवरण मिला नहीं, या ऋषि ने दिया नहीं। पं० दीन बन्धु जी को अपशब्द प्रयोग से निरुत्साहित न किया जाता तो वह उस खोज को जारी रखते। पृ० ४ पर उनका वक्तव्य भी योगी के आत्मचरित्र में इस प्रकार छपा है—"पं० भगवद्दत्त जी बी० ए, पं० घासीराम जी एडवोकेट और दीवान हरविलास जी शारदा से और कलकत्ता के महाशय रघुनन्दन लाल जी और पं० मिहिरचन्द जी धीमान से बहुत ही उत्साह मिला है। आज तक भी इस विषय का अनुसन्धान कार्य बन्द नहीं हुआ है।"

पं० दीनबन्धु जी लगे थे, परन्तु तुफाने बदतमीजी से अब निराश हो गये हैं। अत: निर्णीत बात तो नहीं कही जा सकती है। पर फिर भी इतना स्पष्ट है कि गंगोत्तरी से बनारस तक की यात्रा थियासोफिस्ट में है ही। इसमें हो सकता है दोनों यात्राओं का सम्मिश्रण हो। अत: यही बात लगती है कि स्वामी जी जब नेपाल सितम्बर के मध्य या पहले नेपाल पहुंचे हैं। यह योगी के आत्मचरित्र से स्पष्ट है। वे नेपाल के 'काठमुण्डु' में नैनीताल होकर जोशी मठ से गंगोत्तरी पहुंचे हों। और वहां से साधुओं के संघटन को सन् ५७ में सक्रिय करते हुए चिलकिया छोटी से द्रोण सागर पहुंचे। शीतकाल बिताकर कानपुर और अमरकण्टक पहुंचे। अमरकण्टक जंगल पार करते हुए कलकत्ता पहुंच कर रामेश्वर तक गये। जो भी हो ऋषि गंगोत्तरी से रामेश्वर तक गये अवश्य। गंगोत्तरी से रामेश्वर जाना तीर्थयात्राओं में बड़ा महत्त्वपूर्ण है। भारत की अखण्डता के लिये भी, और महादेव के सच्चे स्वरूप को जानने के लिए भी। गंगोत्तरी के जल से रामेश्वर स्थित महादेव का लिंग बढ़ जाता है ऐसी पौराणिक मान्यता आज भी प्रचलित है। सन् ५७ भी बीच में ही था। अत: हो सकता है इस यात्रा का ७२ में १५ वर्ष आतंक के काल में सुनाना उपयुक्त न समझा हो संघटन यात्रा तो इतनी उत्तेजक नहीं थी, जितना कानपुर बनारस में भाग लेना। फिर आपने यह आत्मचरित्र मेरे जीवन काल में न छापा जाय, पृ० २४१; यह आदेश दे ही दिया।

क्रान्ति जब दबा दी गई, तब सन् १८५८ में—निस्सन्देह प्रत्येक असाधारण वस्तु संशय के साथ देखी जाती थी। अठारह सौ सत्तावन
—पृ० ४१३

जब अंग्रेज लोगों की विजय का अवसर आया तो जलाने और फाँसी लगाने के लिये अभियान साधारण दिनचर्या बन गए।......पंक्ति में चलते हुए देशी लोगों को फांसी पर लटकवाना अन्तिम सीमा का अविवेकपूर्ण कृत्य था।......दो दिन में ४२ आदमी सड़क के किनारे फांसी पर चढ़ा दिये गये। और बारह आदमियों को फांसी इसलिये लगा दी गई कि जब वे चल रहे थे तो उनके चेहरे गलत दिशा में मुड़े हुए थे। जो भी गांव सामने आया उसे जला दिया। ये अत्याचार कानपुर के हत्या काण्ड की बिना पर उचित नहीं ठहराये जा सकते थे, क्योंकि यह उस कृत्य से पूर्व हुए।" रसेल उद्धृत ग्रन्थ, जिल्द २, पृष्ठ ४०२।

ऐसा उदाहरण गदर के नृशंस इतिहास में नहीं मिलता—

"बंगले में एक सिख रेजीमेण्ट के लोकप्रिय तरुण अधिकारी एण्डरसन की जान गई थी। अकेले अभागे से बदला लेने के लिए आगे बढ़े। उन्होंने उसकी दोनों टांगें पकड़ कर उसको दो भागों में चीरने का प्रयत्न किया। इसमें सफल न होने पर उन्होंने उसे पैरों से घसीटा। चलते हुए उन्होंने उसके चेहरे में भोंका। मैंने उस गरीब अभागे को अत्यधिक तड़पते देखा जब कि उस पर चोटें पड़ रही थीं। उसके कटे हुए और दबोचे हुए शरीर में जब उसके पकड़ने वाले अपनी संगीनों को घुसेड़ रहे थे, तो उसका कराहना मुझे सुनाई पड़ रहा था। जिस धरती पर वह घसीट कर ले जाया जा रहा था उसके रेत पर पड़ा हुआ उसका खून उसे रक्त वर्ण बना रहा था। परन्तु सब से बुरी बात अभी होनी बाकी थी। यद्यपि अनेक घावों के कारण वह निर्बल और बेहोश था परन्तु उसमें जान बाकी थी। इसी अवस्था में उन्होंने उसे जानबूझ कर सूखी लकड़ियों की धीमी आग के ऊपर रख दिया जिसे इसी उद्देश्य के लिये तैयार किया गया था। वे उसे आग के ऊपर लटकाये रहे और वह मृत्यु से संघर्ष करता रहा।

(क्रमश:)

गतांक से आगे—

योगी का आत्म चरित्र एक मनघडन्त कहानी

(लेखक—श्री स्वामी पूर्णानन्द जी सरस्वती-बड़ौत-जिला मेरठ)

अर्थात् संघटन की भिन्न भिन्न कड़ियों को संघटन की एक जंजीर में बान्धने के लिये नाना साहब ब्रह्मावर्त्त के महल से बाहर निकला। उसके साथ उसका भाई बालासाहब, उसका सलाहकार और प्यारा मसखरा मित्र अजीमुल्लाखां चले। वे क्यों चले? एक तीर्थयात्रा के लिये! निःसन्देह एक ब्राह्मण और एक मुसलमान इकट्ठे चले कन्धे से कन्धा मिलाकर......यह यात्रा मार्च सन् १८५७ में हुई। निःसन्देह अब यह यात्रा अत्यन्त आवश्यक हो गई थी। कि कम से कम एक बार तो इन तीर्थ स्थानों के दर्शन किये जावें। पहला तीर्थ स्थान देहली का दीवान खास......दूसरा अम्बाला......१८ अप्रैल लखनऊ......फिर कालपी" इस सन्दर्भ से भी पता चलता है कि नानासाहब और उनकी पार्टी ने सन् १८५७ के मार्च मास में यात्रा आरम्भ की, इससे नाना साहब को पार्टी का हरद्वार में सन् १८५५ में मिलना सर्वथा मनघड़न्त है।

जब वे सन् १८५६ के अन्तिम महीनों से पहले किसी यात्रा पर गये ही नहीं तो १८५५ में हरद्वार कैसे जा सकते हैं?

पिछले लेख में प्रामाणिक इतिहासों के प्रमाणों से मैंने भलीभान्ति यह सिद्ध कर दिया था कि सन् १८५५ के कुम्भ मेले में १८५७ की क्रान्ति के नेताओं का ऋषि दयानन्द से कोई सम्पर्क नहीं हुआ, अतः दीनबन्धु जी की पुस्तक में लिखा हुआ वह सारा प्रकरण मनघड़न्त है जिसमें ऋषि दयानन्द और उन नेताओं के परस्पर प्रश्नोत्तरों का वर्णन है। परन्तु दीनबन्धु जी के वकील सच्चिदानन्द जी का यह विश्वास दिखाई देताहै कि सत्य की चिंगारी को छोटे से झूठसे नहीं दबाना चाहिये, उसको छुपाने के लिये तो झूठों का ढेर लगा देना चाहिये! परन्तु उनको याद रख लेना चाहिये कि सत्य के अन्दर इतनी अपरिमित शक्ति होती है कि उसकी तिलमात्र चिंगारी भी झूठ के पहाड़ जितने ढेर को भी भस्मसात करने में समर्थ होती है। योगी जी दीनबन्धु जी की पुष्टि में कहते हैं:—

"ऋषि से स्वातन्त्र्य संग्राम के सूत्रधार नाना परिवार का मिलना:— यही सब नाना परिवार के सदस्य थे—नाना की मुह बोली बहन लक्ष्मीबाई, नाना जी को माता गंगाबाई, भाई बालासाहब, लेखक फिर मन्त्री अजीमुल्लाखां, तात्याटोपे, वीरकुअरसिंह महाराज श्री के १९१२ सं० सन् १८५५ कुम्भ मेले पर चण्डी के पहाड़ पर दर्शन कर चुके थे। और संग्राम का आशीर्वाद लेकर आये थे। मंगलपाण्डे ने भी जो स्वातन्त्र्य संग्राम का श्रीगणेश करने वाला था, महाराज श्री के दर्शन और आशीर्वाद लाभ किया था। कानपुर में स्वयं महाराज श्री अपने आशीर्वाद और स्वातन्त्र्य संग्राम के स्वप्रज्वलित विस्फोट को विस्फोट के केन्द्र में पहुंचकर देख रहे थे।" मो० आ० च० ११३ परन्तु योगी जी! यह तो आपकी मनः कल्पना है। इसके लिये प्रमाण चाहिये? लक्षणप्रमाणाभ्यां वस्तुसिद्धिर्नतु प्रतिप्रतिज्ञामात्रेण' दार्शनिक होने की डींग मारने वाले योगी जी! यह तो पढ़ा ही होगा—'प्रमाणैरर्थपरीक्षणं न्यायः' अर्थात् प्रमाणों के द्वारा अर्थ की परीक्षा करना न्याय कहलाता है। बिना किसी प्रमाण के अपने कल्पित पक्ष की बार बार रट लगाना तो अन्याय अर्थात् मूर्खता मात्र ही है। न्यायशास्त्र चार प्रमाण मानता है:—'प्रत्यक्षानुमानोपमानशब्दाः प्रमाणानि' बतलाइये इनमें से कौन से प्रमाण से आपने अपने पक्ष को सिद्ध किया है? या धींगा मस्ती से ही 'मान न मान मैं तेरा मेहमान' वाली बात करते हैं? योगी जी ने सीधे साधे पाठकों को धोखा देने के लिये अपने लेख में कहा है कि 'दीनबन्धु जी की लिखी हुई अज्ञात जीवनी ही सच्ची जीवनी है, क्योंकि ऋषि जी ने स्वयं बंगालियों को यह जीवनी लिखाई थी, इसलिये यह जीवनी आप्तोपदेश होने से शब्द प्रमाण की कोटि में आती है। परन्तु यह तो योगी जी का साध्यसम हेत्वाभास है। साध्यसम क्या? "साध्यविशिष्टः साध्यत्वात् साध्यसमः" अर्थात् जो बात साध्य है (जो अभी तक सिद्ध नहीं हुई और जिसको आगे सिद्ध करता है) उस असिद्ध बात को अपने पक्ष की सिद्धि में हेतुरूप से देना हेत्वाभास कहा जाता है। इसलिये वह हेतु झूठा समझा जाता है। और ऐसे हेत्वाभास का कहने वाला भी झूठा समझा जाता है। ऐसा पक्ष जल्प और वितण्डा में गिना जाता है। गौतम मुनि ने अपने न्यायदर्शन में लिखा है:—"यथोक्तोपपन्नश्छलजातिनिग्रहस्थानसाधनोपालम्भो जल्पः"। अर्थात् छल जाति (हेत्वाभास भी जाति में गिना जाता है) और निग्रह स्थान के द्वारा अपने पक्ष को सिद्ध करना जल्प (बकवास) कहा जाता है। और वही जल्प—"स प्रतिपक्षस्थापना हीनो वितण्डा" प्रतिपक्ष स्थापना हीन वितण्डा हो जाता है। जैसा कि मैं पहले लेखों में सिद्ध कर चुका हूं कि—योगी जी गिरगिट की तरह रंग बदलते हैं। किसी एक सिद्धान्त पर जमे नहीं रहते। इसलिये इनकी सम्पूर्ण पुस्तक आदि से अन्त तक हेत्वाभास, छल, जाति और निग्रहस्थानों से परिपूर्ण है। अतः वह विश्वास से योग्य नहीं। ऋषि से मिलने वाले व्यक्तियों में योगी जी ने नानासाहब की माता गंगाबाई का नाम भी लिया है, परन्तु हम डंके की चोट पर कहते हैं कि सन् १८५५ के कुम्भ के मेले से २० वर्ष पहले तक भी नाना की माता गंगाबाई का कहीं नाम व निशान भी नहीं था। इसलिये लक्ष्मीबाई के साथ या नाना के साथ गंगाबाई का हरद्वार कुम्भ पर ऋषि के दर्शन करना सर्वथा झूठ है। हम 'योगी का आत्मचरित्र' के समर्थक सब विद्वान् महानुभावों को सप्रेम चुनौती देते हैं कि वे सब मिलकर भी प्रामाणिक इतिहासों के आधार पर नानासाहब की माता गंगाबाई के अस्तित्व को सन् १८५५ तक सिद्ध नहीं कर सकते। हमने भी अनेक प्रामाणिक इतिहास ग्रन्थों को बड़ी सावधानी से पढ़ा है परन्तु हमें सन् १८२४ के बाद गंगाबाई का कहीं नाम भी नहीं मिला। वीर सावरकर ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'सन् १८५७ का भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम' में केवल इतना लिखा है:—

"Madhawarao and his noble wife Ganga Bai, though living in Cercamstances of domestic poverty, were happy in the enjoyment of mutual love 1n the small house of this good family all faces beamed with joy and happiness in 1824. for the good Ganga Bai had given birth to a son. That son of Madhaw rao and Ganga Bai was no other than Nana Sahib peshwa." (P. 23)

अर्थात् माधवराव और उसकी सुशीला पत्नी गंगाबाई यद्यपि गरीबी की अवस्था में रह रहे थे, परन्तु वे परस्पर के प्रेम में बन्धे हुए अपने जीवन को बड़ी प्रसन्नता के साथ व्यतीत कर रहे थे, इस अच्छे परिवार के छोटे से घर में सन् १८२४ में सबके चेहरे प्रसन्नता और उल्लास से चमक उठे, क्योंकि माधवराव और गगाबाई ने एक पुत्र को जन्म दिया जिसका नाम नानासाहब पेशवा के नाम से प्रसिद्ध हुआ।" सावरकर के इतिहास में गंगाबाई के सम्बन्ध में केवल इतनी हो पंक्तियां है। इन पंक्तियों के अतिरिक्त गंगाबाई का कोई वर्णन नही आता। डा० सुरेन्द्रनाथसेन जो लब्ध प्रतिष्ठ इतिहासकार हैं, उन्होंने तो अपने 'अठारह सौ सत्तावन' नामक इतिहास में गंगाबाई का नामोल्लेख तक नहीं किया।

१८ जौलाई सन् १८५७ को जब नानासाहब ने बिठूर को खाली कर दिया और अपना सारा खजाना लेकर गंगा पार चले गये उस समय भी बालासाहब, तात्याटोपे, रावसाहब और राजघराने की महिलाओं का तो वर्णन है, परन्तु नानासाहब की माता का कोई उल्लेख नहीं है। (कोई अनभिज्ञ व्यक्ति यह न समझ ले कि राजघराने की महिलाओं में गंगाबाई भी होगी? क्योंकि नानासाहब बाजीराव का दत्तक पुत्र था। दूसरे का दत्तक पुत्र हो जाने पर उसका पहले परिवार से कोई सम्बन्ध नहीं रहता। इसके पश्चात् जब अप्रैल सन् १८५९ को नानासाहब, उसके साथी और सैनिकों को नेपाल में धकेल दिया तो उस समय भी नानासाहब की माता का नेपाल में जाने का कोई उल्लेल नहीं मिलता। डा० सेन ने लिखा है:—"पेशवा परिवार की महिलाओं—बाजीराव को दो विधवा पत्नियों, नाना की विधवा पत्नी और बाला की विधवा पत्नी इन सबको नेपाल में अपना अन्तिम जीवन बिताने की अनुमति दे दी गई।" (देखो पृ० ३८२) ● क्रमशः

साधारण आर्यजनों का प्रचार व उसका प्रभाव

(ले०—श्री खेमचन्द यादव, डब्ल्यू १८, ग्रीनपार्क–नई दिल्ली)

जो लेखमाला "कामधेनु को छाडि आर्य, छाया छेरी चले दुहावन" शीर्षक के अन्तर्गत चली थी, उसके अन्त में यह लिखा गया था कि "यह लेखमाला सफलता के उन नमूनों को देखकर लिखी गई है जो कि इस प्रकार के साधारण आर्यजनों द्वारा अपनाये गये।" उसी की पूर्ति के लिये उनमें से कुछ का विवरण दिया जा रहा है। आशा है पाठकों को यह रुचिकर होंगे ओर उनके प्रचार के कार्य में उन्हें कुछ सफलता भी मिल सकेगी। हा तो सर्वप्रथम एक ऐसे आर्य का उदाहरण प्रस्तुत है जो नितान्त अशिक्षित थे। उन्हें काला अक्षर भैंस बराबर था। यह बातें ५३-५४ वर्ष पहले की है। गांव में आर्यसमाज स्थापित हो चुका था। वार्षिकोत्सव के अतिरिक्त कुछ सन्यासी भी बीच बीच में गांव में आते रहते थे। प्रचार की धूम थी। नरनारी भारी सख्या में जुटते और ध्यान से उपदेश सुनते। गांव के ब्राह्मणों के कई घर गुरुवाई का काम करते थे। उनके चेले कई एक गांवों में थे। इस लहर में उन्हें अपनी जीविका समाप्त होती दिखाई पड़ने लगी। इसकी रोकथाम के लिये उनके द्वारा गांव में सनातन धर्म सभा भी स्थापित हो गई। अब क्या था, आये दिन शास्त्रार्थ व वादविवाद चलने लगे। गांव में कुछ शास्त्रार्थ बहुत वड़े बड़े हुये। उनमें जो तर्क रखे गये उनसे गांव वाले बहुत ही प्रभावित हुये और वैदिक सिद्धान्त मोटे मोटे उनके हृदय में घर कर गये। स्वर्गीय पं० मुरारीलाल जी शर्मा की तर्क गांव वालों को बहुत भाती थी, इसी प्रकार कुं० सुखलाल जी आर्यमुसाफिर की। बस इस लहजे में वह बात को रखते कि तीर निशाने पर ही लगता और श्रोता हसते हसते लोट पोट हो जाते। हां तो बरसात जा रही थी। एक दोपहर को सनातनधर्म सभा के मंत्री जी का वादविवाद आर्यसमाज के मत्री जी से वर्ण व्यवस्था पर छिड़ गया। भीड़ जमा हो गई। सनातनी मंत्री जोर जोर से कह रह थे कि कहीं गधी भी गाय हो सकती है। कितना ही करो गधी तो गधी ही रहेगी। और गाय गाय ही रहेगी। मंत्री आर्यसमाज सिद्धान्त की बात कहते जो गांव वालों को प्रभावित नहीं कर पाती। एक अशिक्षित ग्रामीण चारे के लिये जा रहे थे। खड़े होकर विवाद सुनने लगे। सनातनी मंत्री की बात पर लोगों को हंसी खूब आ जाती, उन्हें अपनी विजय पर गर्व होने लगा। इतने में वह ग्रामीण महाशय अपनी जगह से चिल्लाये कि भाई हमें तो न्यार (चारे) को देर हो रही है। हमारी एक बात सब भाई सुन लें और हमें जवाब (उत्तर) मिल जाय तो हम अपना काम देखें। लोग चिल्लाये हां हां कहो। सनातनी मंत्री ने सोचा यह गंवार क्या कहेगा इसे तो चुटकियों में उड़ा लूंगा, बोले कहिए प्रधान जी आप भी अपनी कहिये, इनका (मंत्री आर्यसमाज) तो मुंह ही बन्द हो गया। वह महाशय बोले पंडित जी आप यह ही तो कह रहे हैं कि ब्राह्मण सदा ब्राह्मण ही रहेगा और नोच सदा नीच ही रहेगा। गधी, गाय की तरह वह बदल नहीं सकते। पण्डित जी ने कहा हां ब्राह्मण सदा ब्राह्मण ही रहेगा। इस पर वह महाशय बोले अच्छा तो पंडित जो थारो (तुम्हारी) जो फूफी बीसों साल हुये गूजर की गैल (साथ) भग गई हो, अब भी जिन्दी है। तुम मोय न्यू बताओ कि अब वह बामनी है कि ना ? बोलो जो ऊ अब्बी बामनी है तो वाह घर ल्याओ और वाके हाथ को खाओ पियो। बोलो है हिम्मत। बस इतना कहना था। सनातनी मंत्री का मुंह लटक गया। सभा छोड़ भागे। जनता हंसी के मारे लोट पोट हो गई। और फिर कभी सनातनधर्म की ओर से वादविवाद का जिक्र तक भी न हुआ।

(२) गांव में साधु वेश में कुछ व्यक्ति आते थे। वह ग्रह शान्त करते। भूत भगाते, बीमारों की झाड़ फूक करते। हाथ देखते। भविष्य की बातें बताते। उनका अर्से से गांव में भारी प्रभाव था। इधर आर्यसमाज के प्रचार ने इन सब बातों को झूठा और धोखा कहा। गांव वालों को यह बाते गले नहीं उतर पा रही थीं उनके दिलों में भय समाया था कि अगर साधु रुष्ट हो गये तो उनका अनिष्ट हो जावेगा।

एक नितान्त अशिक्षित आर्य ने इस झूठे भय को गांव वालों के दिल से हटाने की ठानी। थे तो अशिक्षित मगर वैदिक सिद्धान्तों पर अटल विश्वास जम चुका था। भय का उनके दिल में कोई स्थान ही न था। भूतप्रेत, जादूटोना, ग्रह आदि का डर सब उनसे दूर हो चुका था। हां तो इस बार जब साधु आये तो उनकी दुकान पूर्वत् चली आटा, दाल, घी, रुपया सब मिला। अशिक्षित आर्य सज्जन में निर्भयता के साथ वहीं सबके सामने कहा कि यह सब ढौंग है पाखण्ड है। आप सबको ठगा जा रहा है। इनके वश में न भूत हैं न प्रेत और न ग्रह। उन पाखण्डी साधुओं ने बड़ क्रोध और तैश में खड़े होकर पुकारा कि तू यहां से चला जा वरना आज मन्त्र के प्रभाव से तेरा सर्वनाश हो जायगा। आर्य सज्जन ने दृढ़ता से इस धमकी को स्वीकार किया और चिल्लाकर कहा कि तुम अपने मत्र का प्रयोग करो और सच्चा साबित करो। फिर क्या था, गांव वाले डरे और उन्हें वहां से हट जाने को बाध्य करने लगे। मगर वह न हटे और बराबर उन्हें ललकारते रहे। बाध्य होकर बड़े साधु ने जो आटा आया था उस पर कपड़ा डाला, एक ओर को अग्नि रखकर घी दीप जलाया, बहुत से मन्त्र पढ़े, ओर फिर जोर से दोनों हाथ ऊपर उठाकर चिल्लाया कि जिसमें हिम्मत हो इस आटे को उठा ले, जो आदमी या पशु इसका प्रयोग करेगा वह तुरन्त मर जायगा। आर्य सज्जन निर्भय होकर तेजी से आगे बढ़े और आटा उठाने लगे। उपस्थित जन सब चिल्लाये, भयभीत होकर उन्हें इससे रोकना चाहा, मगर वह न रुके और तुरन्त सब आटा अपने मवेशियों के चारे में मिला दिया। देखते ही देखते उनके मवेशी सब आटा खा गये और कुछ भी न हुआ। एक साथ साधुओं की पोल खुल गई उनका पाखण्ड और आतंक समाप्त हो गया। गांव वालों ने हिम्मत बाँधी और अपना सब सामान छीन लिया। इस प्रकार सदा के लिये गांव ने उन ठगों से छुटकारा पाया। और भूतप्रेत का डर भागा।

(३) उत्तरप्रदेश के पूर्वी जिलों में तो अन्धविश्वास, जादू टोना, भूतप्रेतों का साम्राज्य ही समझिये। लगभग गांव में प्रतिवर्ष कम से कम एक बार वरना दो बार गुरु महाराज आते हैं। खूब घी में सने आटे की पूरी छानते हैं। नकद रुपया और कपड़ा घोड़ों और ऊँट पर लाद कर ले जाते हैं। बदले में मंत्र देकर कंठी बांधते हैं। गाँव में जो एक दो पढ़ा लिखा होता है। उसकी भरपूर प्रशंसा कर उसे अपना ऐजेण्ट बना लेते हैं। ऐसे ही एक गांव में जो कुर्मी क्षत्रियों का था दो युवक मिडिल पास थे। गुरु जी की उन पर कृपा थी और वह गुरु जी के चेले बढ़ाने में सहायता करते थे। दोनों युवक पच्छिम से गये एक आर्य के सम्पर्क में आये। उन्हें सत्यार्थप्रकाश पढ़ने को दिया गया और एक माह के सत्संग व वादविवाद से उन पर आर्य सिद्धान्तों की छाया पड़ गई। इस बार जब गुरु जी आये तो उनके साथ पहले गांवों के चेलों से प्राप्त पर्याप्त आटा, दाल, घी, कपड़ा, मोठा आदि था। दोनों युवकों ने गुरु जो को नमस्ते किया। न पैरों पर गिरे न चरणों को धोकर उसके जल से अपने घर को पवित्र किया। गुरुजी बड़े चक्कर में फंसे कि यह सब क्या हुआ। दोनों युवकों ने गुरुजी को समझाया कि वह अपना यह पाखण्ड अब समाप्त करें और गुरुजो को सत्यार्थप्रकाश दिखाया कि देखो इसमें तुम जैसे गुरुओं की पोल खोलकर सत्यमार्ग दिखाया गया है। गुरुजी का ठहरना कठिन हो गया और सदा के लिये उन्हें गांव छोड़ देना पड़ा। उन्हीं युवकों के प्रयास से जादूटोना, भूतप्रेत आदि आदि के सब भय गांव से जाते रहे। गांव में जाग्रति हुई शिक्षा की लहर चली और पाखंड समाप्त हुआ।

(४) यहां दिल्ली की बात ही लीजिये। नई दिल्ली में प्रायः ऐसे ऐसे स्थान व मोहल्ले हैं जिन में बाहर का आदमी जाकर अपने को विदेश में ही पहुंच जाने का अनुभव करता है। वहां पर सब का रहन सहन, बोल चाल, हाव भाव, खान पान आदि आदि सब ही विदेशी ढंग अंग्रेजियत के हैं। यहां के बच्चे रविवार, सोमवार सावनभादों नमस्ते राम राम माता पिता तीस पेंतीस आदि आदि स्वदेशी शब्दों से प्रायः अनभिज्ञ हैं इनके स्थान पर अंग्रेजी के शब्द उनको भाते है वही बोलते हैं। ऐसे सब स्थानों पर ईसाइयों द्वारा चालित स्कूल हैं।

(शेष पृष्ठ ९ पर)

महर्षि दयानन्द जी के सम्बन्ध में कुछ ज्ञातव्य बातें

श्री श्याम जी कल्याण जी (वानप्रस्थ श्री कर्मवीर जी) जो फाटसर त० जोडिया जि० जामनगर (सौराष्ट्र) के निवासी हैं और आजकल मसूदा (अजमेर, राजस्थान) में रहते हैं, जहां आषाढ़ बदी १२ सं० १९३८ बृहस्पतिवार को महर्षि दयानन्द जी पधारे थे। उन्होंने लेखक को जो बातें बताई, वे सब विद्वानों की दृष्टि में लाने के लिये समाचार पत्रों में दे रहा हूं। उनका कथन है कि मैं कर्मवीर वानप्रस्थ नाम से मसूदा में पुकारा जाता हूं, घर का नाम पिता सहित श्याम जी कल्याण जी है। वंश क्षत्रिय, गुर्जर, राठौर है (गुर्जर मांस मदिरा न सेवन करने वाले क्षत्रिय और ब्राह्मण कहे जाते हैं। मेरा वंश इस प्रकार है श्याम जी कल्याण जी, कल्याण जी जीवा जी, जीवा जी पर्वत जी, पर्वत जी कुंवर जी, कुंवर जी भाया जी है। पर्वत जी कुंवर जी के पुरोहित श्री कर्सनजी लाल जी थे। श्री कर्सन जी जब अठारह(१८) वर्ष के थे तब उनके पिता श्री लाल जी स्वर्ग सिधार गये थे। इस से श्री कर्सन जी के मन में वैराग्य उत्पन्न हुआ। और उन्होंने निश्चय किया कि मैं विवाह नहीं करूगा। इस प्रकार वे ३५ वर्ष खींच गये। यजमान पर्वत जी ने अपने पुरोहित श्री कर्सन जी को विवाह की प्रेरणा दी। तब श्री कर्सन जी ने ३६ वर्ष के वय: में विवाह किया। कछ भुज की एक निर्धन कन्या अमृत बेन, जिसे अम्बु बा बोलते थे विवाह किया था।

श्री कसर्न जी कुछ भुज से अपने पत्नी के भाई आदि को अपने यहां मौरवी ले आये थे। मौरवी राज्य में श्री कसर्न जी तहसीलदार और पुलिस इन्सपैक्टर थे। कसर्न जी स्वयं अपनी पत्नी और उसके भाई बन्धु सहित नौकरी के काल में मौरवी नगर में रहते थे। श्री कसर्न जी का स्थायी पैतृक निवास टंकारा के जीवापुर मोहल्ले में था। किसी समय इन के पूर्वज सिद्धपुर में रहते थे। श्री कसर्नजी की भूमि जामनगर स्टेट की दी हुई जीवापुर ग्राम समीप मेघपुर ग्राममें थी। जीवापुर ग्राम मौरवी राज्य में पड़ता था। अन्य कर्सन जी के कुटुम्ब परिवार की कुटियाएं जीवापुर में थीं। वे टंकारा से अपनी भूमि की देख रेख के लिये जब मेघपुर आते थे तो जीवापुर ग्राममें ठहरते थे। कर्सन जी नामक ये व्यक्ति उसी परिवार में थे। वे जीवापुर अपने ग्राम जो टंकारा से ३ कोश है, रहते थे। जीवापुर ग्राम में इस दूसरे कसर्न जी लाल के पुत्र का जन्म हुआ था, ऋषि दयानन्द जी का नहीं। ऋषि का जन्म टंकारा में ही जीवापुर मोहल्ले में हुआ था। किन्तु जीवापुर ग्राम वालों ने श्री मेधार्थी जी को बताया कि कर्सन लाल जी इसी ग्राम में रहते थे। और उनके पुत्र श्री दयानन्द जी का जन्म यहीं हुआ था। (जो ठीक नहीं रहा इससे लोगों को भ्रम हो गया) आजकल भी काठियावाड़ (सौराष्ट्र में एक ही परिवार में एक ही नाम दो व्यक्तियों के रखे जाते हैं श्री वानप्रस्थ कर्मवीर जी कहते हैं कि ऐसा ही हमारे परिवार में भी है और कई बार मेरी चिट्ठी मेरे पुत्र के पास नहीं पहुंच सकी। इसलिये जब मैं अपने पुत्र दयाल जी को पत्र लिखता हूं, तो पते पर दयाल जो श्याम जी श्याम जी कल्याण जी लिखता हूं। यदि केवल दयाल जी श्याम जी लिख दू तो हमारे दूसरे परिवार में पहुंच जाती है।

टंकारा के जीवापुर मोहल्ले में ऋषि दयानन्द जी के पिता कर्सन लाल जी के निवास स्थान में दो कमरे थे, जो कि उन्होंने अपने दामाद गिरधर लाल को दिये थे। श्री श्याम जी कल्याण जी (वानप्रस्थ कर्मवीर जी) के पिता कल्याण जी जीवा जी ऋषि दयानन्द जी की छोटी बहन प्रेमबा के इस पुराने मकान की मुरम्मत के लिये यजमान होने के नाते अपने पुरोहित कर्सनजी लाल जी की सेवा हेतु जाते थे, तो श्याम जी कल्याण जी भी अपने पिता के साथ सात वर्ष की उमर में साथ गये थे प्रेम बा ने प्यार से गोद में बैठाकर इन्हें लड्डू खिलाये। वे इन्हें अब तक अच्छे प्रकार याद हैं। १९८१ सं० में जब बड़ा सम्मेलन टंकारा में हुआ था तो उसमें ऋषि दयानन्द जी की बहन प्रेम बा की फोटू भी ली गई थी। तब श्याम जी कल्याण जी (वानप्रस्थ कर्मवीर जी) भी वहां उपस्थित थे।

ऋषि दयानन्द जी क्रमश: मूल शंकर, वल्लभशंकर, नवलशंकर और बहन रत्न बा व प्रेम बा—ये पांच भाई बहन थे। ऋषि दयानन्द जी की बहन प्रेम बा के परिवार में पांच पुत्र अभी मौजूद हैं, जो मौरवी के समीप बांकानेर में रहते हैं।

विशेष—मेरे द्वारा दी गई इस जानकारी में किसी को कोई सन्देह उत्पन्न हो तो वे मसूदा आर्यसमाज में जाकर श्री कर्मवीर वानप्रस्थ से ही समाधान पा सकेंगे। —वेदानन्द वेदवागीश गुरुकुल झज्जर (रोहतक)

(पृष्ठ ८ का शेष)

जहां भारी फीस ली जाती हैं। प्राय: तीन तीन साल के शिशु उनमें जाना आरम्भ कर देते हैं। वहाँ उन्हें प्रभु ईशु की प्रार्थना कराई जाती है। वह ईसाई मत व अंग्रेजी सभ्यता आदि से खूब परिचित हो जाते हैं वहां हिन्दी अंग्रेजी के माध्यम से पढ़ाई जाती है सो भी टूटो फूटी और आधी अशुद्ध। ऐसे प्रत्येक मोहल्ले में ईसाई मिशनरियों के अड्डे हैं वह प्राय: अच्छे कागज पर उत्तम छपाई के अपने मत धर्म के प्रचार हेतु पर्चे हर घर पहुंचाते रहते हैं। नियमानुसार एक एक दो दो की टोली में घरों पर जाकर भी प्रचार करते रहते हैं। उनका क्षेत तो वह उनके स्कूल तैयार कर ही देते हैं बस यह तो बीज ही डालते जाते हैं। यही कारण है इन स्थानों के निवासी जो कि उच्च शिक्षित हैं प्राय: अधिकारी नेता और पूंजी वाले हैं वह और उनके परिवार वाले अंग्रेजियत व ईसाईयत से अत्यन्त प्रभावित हैं। ऐसे ही मोहल्ले में एक आर्य सज्जन आये। अपनी शक्तिअनुसार अपने प्रचार का ताना वाना पूरा। कुछ नवयुवकों को गर्मियों की छुट्टी में सत्यार्थ प्रकाश पढ़ने को प्रेरित किया। केवल एक कालिज विद्यार्थी उनसे प्रभावित हो सका और उसने लग्न से सत्यार्थप्रकाश का अध्ययन प्रारम्भ किया। बीच में अपनी शंकाओं का समाधान भी आर्य सज्जन से करता रहा। १२-१३ और १४ वें समुल्लास में उसे बड़ी रुचि आई। १३ वें ने उसके सामने ईसाईयत की पोल ही खोल कर रख दी। एक दिन दो पादरी प्रचारक जिन में एक इंग्रेज सज्जन थे और दूसरे भारतीय अपने प्रचार हेतु आये। उस विद्यार्थी के यहां भी पहुंचे और उसके सामने प्रभु ईसा द्वारा पापों की क्षमा, स्वर्ग की प्राप्ति एवं विश्व में शान्ति की स्थापना करा देने का उपदेश दिया। नवयुवक ने कहा पादरी सा० ईसामसीह तो बाईविल में यह फरमाते हैं कि मैं दुनिया में शान्ति कराने नहीं आया हूं मै तो भाई को भाई से, मां को बेटे से स्त्री को पति से भाई को बहिन से लड़ाने आया हूं। पादरी ने कहा यह सब झूठ है तुम को किसी ने बहका दिया है। ऐसा काम तो शैतान का है प्रभु ईसा का नहीं हो सकता। नवयुवक अपना सत्यार्थ प्रकाश ले आया और कहा कि निकालिये अपनी बाइबिल। पादरी ने पूछा यह कौन किताब है। नवयुवक बोला सत्यार्थ प्रकाश। बस सत्यार्थप्रकाश का नाम सुनते ही विदेशी पादरी सन्न हो गया उसका मुंह लाल पड़ गया। होंट कांपे और बेहोश, तुम शैतान के चक्कर में फंस गये हो। और उठ कर चल दिये। नवयुवक ने रोक कर अपना समाधान चाहा और उन्हें उत्तर देने की चुनौती दी तो वह यह कहते चले गये कि हम किसी और दिन आकर तुम्हारा समाधान करेंगे। इन बातों को छ माह से ऊपर होता है वह पादरी उस ओर अभी तक नहीं आये जब कि उससे पहले प्राय: प्रति मास आते थे। उन्हें और दूसरे स्थानों पर प्रचार करते अब भी देखा जाता है। मगर सत्यार्थ-प्रकाश की चमक ने उन्हें वहां से काफूर ही कर दिया है। बहुत से ऐसे ऐसे उदाहरण मेरी आखों के सामने घूम रहे हैं किसको लिखू और किसको छोडू। विस्तार भय से मैं इतना हो पाठकों की जानकारी हेतु देकर सताप्त करता हूं।

मेरे उपरोक्त वर्णित लेख पर मेरे पास कई एक सज्जनों के पत्र आये हैं। उनमें से एक महाशय ने शिकायत लिखी है कि मैंने यह पढ़ा है यह भी पढ़ा है और वह भी पढ़ा है। मैं बार बार आर्य समाजों को लिखता हूं कि वह मुझे प्रचार हेतु बुलायें। मगर कोई नहीं बुलाता मैं क्या करूं। उन अपने भाई से मेरा निवेदन है। महाशय जी आप को कोई भी नहीं बुलावेगा। न आपको प्रचार के लिए कहीं अन्यत्र जाने की आवश्यकता है। अविद्या, अंधविश्वास-भूत, प्रेत, का डर जादू, टोना, शराब, सिगरेट, गोश्त, अंडा, मिलावट, रिश्वत, धोखा धड़ी सर्वत्र व्याप्त हैं सारी मानवता इससे परेशान है दुःखी है। आप के चारों ओर आपके घर में परिवार में ग्राम और मोहल्ले एवं सम्बन्धी एवं मित्रों में भी धंसी है। आप अपनी शक्तिअनुसार कहीं दूर न जाकर रात दिन उन्ही में जुट जाइये। प्यार से प्रेम से समझाकर बुझाकर उनकी सेवाकर उनको अपना बनाकर उनका विश्वास प्राप्त करके। यदि आपने दो चार दसबीस भाइयों को सत्यार्थ प्रकाश के स्वाध्याय का चसका लगा दिया तो आप के प्रचार की बेल चल निकली और आपने दो चार के सिगरेट शराब छुड़ा दिये तो आप ने बहुत कुछ कर लिया। याद रहे आप को सौ स्थान पर दौड़ धूप करने पर सफलता दो चार स्थान पर ही मिलेगी आप निराश न हों अपनी धुन में विना किसी फल की इच्छा के जुटे रहिये। प्रभु आप का कल्याण करेंगे। ●

महामण्डलेश्वर जी द्वारा वेद और वेदार्थ की विकृति

(लेखक—श्री साधुराम एम० ए०, देहली।

महामण्डलेश्वर स्वामी गङ्गेश्वरानन्द उदासीन महाराज ने 'वेदोपदेशचन्द्रिका' नाम की एक पुस्तक लिखी है। उसके पृष्ठ १०८ से ११० तक ऋग्वेद के दो मन्त्रों के आधार पर श्रीमद्भागवत में आयी एक कथा को सिद्ध किया है। उस कथा के अनुसार "कंस ने अक्रूर को दूत बना कर व्रज से श्रीकृष्ण और बलराम को मथुरामें आयोजित धनुर्याग उत्सव में भाग लेने के लिये लिवा लाने को कहा। वे दो मन्त्र 'वेदोपदेश चन्द्रिका' के अनुसार निम्नलिखित हैं।

द्वे विरूपे चरतः स्वर्थे अन्यान्या वत्समुप धापयेते।
हरिरन्यस्यां भवति स्वभावाञ् छुक्रो अन्यस्यां ददृशे सुवर्चाः॥
(ऋ० १-९५-१)

पूर्वापर चरतो मायर्यतौ शिशू क्रीडन्तौ परियातो अध्वरम्।
विश्वान्यन्यो भुवनाभिचष्ट ऋतूँरन्यो विदधज्जायते पुनः॥
(ऋ० १०-८५-१८)

महामण्डलेश्वर जी का अर्थ—धनुर्यागोत्सव के बहाने से कृष्ण और बलराम को लाने के लिये कंस द्वारा भेजे हुए 'सुवर्चा अर्थात् 'अक्रूर' ने भिन्न भिन्न रूप वाले व्यक्ति (कृष्ण और बलराम) देखे जो अन्य गोपों के साथ गोदोहन के अवसर पर स्वभावान् अर्थात् ऐश्वर्यशाली 'हरि' अर्थात् कृष्ण तथा 'शुक्र' या गौरवर्ण बलदेव को बछड़ों को दूध पिलाते देखा। ये दोनों अपनी माया से बाल्य अवस्था को प्राप्त हुए, क्रीडा करते हुए, धनुर्याग-स्थान पर, जहां कुवलयापीड, कंस, चाणूरादि उपस्थित थे जा पहुंचे। 'अन्यः' अर्थात् कृष्ण ने सारे भुवनों को संकल्प से जाना, 'अन्यः' बलदेव 'ऋतून्' अर्थात् मत्स्यादि अवतारों को धारण करते हुए बार बार जन्म लेकर प्रकट होता है।

समीक्षा—१. अत्यधिक आश्चर्य की बात है, कि वेदमन्त्रों में कृष्ण, बलराम, कंस, अक्रूर, कुवलयापीड, चाणूर आदि में से किसी भी व्यक्ति के नाम का उल्लेख नहीं है। मन्त्र के शब्दों की क्लिष्ट और अग्राह्य खींचातानी करके 'सुवर्चाः' का अर्थ अक्रूर, 'हरि' का अर्थ कृष्ण, और 'शुक्र' का अर्थ बलराम किया है, और शेष व्यक्ति कल्पना से जोड़ दिये हैं।

२. दूसरे मन्त्र से 'अध्वर' का मनमाना अर्थ धनुर्याग कर दिया है। वास्तव में इस दूसरे मन्त्र का, जो दसवें मण्डल में है, पहले मन्त्र से कोई सम्बन्ध नहीं। पहले मन्त्र में 'द्वे' शब्द स्त्रीलिंग है और दूसरे में 'द्वौ' पुल्लिग है। महामण्डलेश्वर जी ने इस विरोध को दूर करने के लिये 'डूबते को तिनके का सहारा' के अनुसार पहले मन्त्र में 'अन्यस्यां' का अर्थ 'नृसिंहवदेकस्यां' मूर्तियाँ करके अनुमान से 'द्वे' से दो पुरुषों के स्थान पर मूर्तियों की ओर संकेत कर दिया है। यह सर्वथा शब्दों से बलात्कार करना और अनधिकार चेष्टा है।

३. भागवत के पात्र महाभारत काल के हैं और वेद को महामण्डलेश्वर जी सृष्टि के आदि में आविर्भूत मानते हैं। श्रीमद्भागवत वेदव्यास जी की कृति कहते हैं। अतः उत्तरकालीन घटनाओं का आदि सृष्टि की रचना में कैसे समावेश हो सकता है? यह तो भोली-भाली जनता को मूढ़ बनाना है।

४. इन मन्त्रों के अर्थ महामण्डलेश्वर जी ने देवता और प्रसंग आदि की उपेक्षा करके खींचातानी द्वारा भागवत घटनाओं के अनुकूल करने से प्राचीन ऋषियों और भाष्यकारों की अवहेलना की है।

५. स्वामी जी ने पहले मन्त्र के पाठ को बदल कर, और कृष्ण तथा बलराम आदि को सिद्ध करने के लिये 'स्वधावान्' के स्थान पर 'स्वाभावान्' कर दिया है। यह छापेखाने की भूल नहीं, अपितु उनकी अपनी सूझ है; क्योंकि उन्होंने इसकी व्याख्या भी "स्वस्य भा स्वभा तद्वान्, अलुप्तैश्वर्यवान्" की है।

मन्त्रों के शुद्ध अर्थ

१. भिन्न भिन्न रूप वाले दिन और रात्रि दोनों क्रम से सदा बने रहते हैं। रात्रि में 'हरिः' अर्थात् उष्णता आदि पदार्थों का निवारण करने वाला चन्द्रमा उत्पन्न होता है और दिन में 'शुक्र' अर्थात् आपतवान् उजेला करने वाला सूर्य।

२. नियमानुसार दो अर्थात् सूर्य और चन्द्रमा एक दूसरे के आगे पीछे, मानो बच्चों के समान खेलते हुए, आकाश में बिहार करते हैं। सूर्य सभी लोकों को आलोक देता है और चन्द्रमा घटता बढ़ता हुआ मानो, पुनः पुनः जन्म लेता हुआ, ऋतुओं को बनाता है।

घोर हानि

यदि वेदों के पाठ को बदलने और मनमाने अर्थ करने की प्रथा चल पड़ी तो वेद की मर्यादा सर्वथा नष्ट हो जायेगी। उदाहरणस्वरूप यदि कोई विकृत बुद्धि व्यक्ति—

द्वे विरूपे चरतः स्वर्थे अन्यान्या वत्समुप धापयेते।
हरिरन्यस्यां भवति स्वधावाञ् छुक्रो अन्यस्यां ददृशे सुवर्चाः॥

इस मन्त्र के निम्नलिखित अर्थ कर दे, तो क्या स्वामी जी मान लेंगे?

विकृत अर्थ—दो भिन्न भिन्न रूप (के सिद्धान्तों) वाली संस्थायें (फार्वर्ड ब्लाक और कांग्रेस भारत में) सुन्दर लक्ष्य पर चल रही हैं, और अलग अलग (स्वराज्य रूपी) बच्चे का पोषण कर रही हैं। एक (फार्वर्ड ब्लाक) से हरि (विदेशियों के रक्त का हरण करने वाला और) स्वधावाम् (अपनी शक्ति पर निर्भर रहने वाला सुभाषचन्द्र बोस) प्रकट होता है, और दूसरी (कांग्रेस) में शुक्र (स्वच्छ चरित्र वाला) और सुवर्चाः (शुभ अहिंसा रूपी तेज वाला महात्मा गांधी) दिखायी देता है।

यदि स्वामी जी उपर्युक्त अर्थ को नहीं मानते, तो अपनी शैली के अनुसार इसमें दोष निकालें। उनके अपने अर्थ तो क्लिष्ट कल्पना से और बलात् खींचातानी से किये गये हैं, जबकि यह उपर्युक्त अर्थ सीधे और स्पष्ट हैं। ●

आर्यसमाज का ऋषिबोध महोत्सव एवं शोभायात्रा सम्पन्न

केन्द्रिय आर्यसमाज मन्दिर अलीगढ़ में २५ फरवरी से ४ मार्च १९७३ तक धूमधाम के साथ ऋषिबोध महोत्सव मनाया गया। शास्त्रार्थ महारथी, तर्कशिरोमणि श्री पं० बिहारीलाल शास्त्री काव्यतीर्थ, एवं सार्वदेशिक आर्यप्रतिनिधि सभा नई दिल्ली के वैदिक अनुसंधान विभाग के अध्यक्ष पंडितप्रवर श्री आचार्य वैद्यनाथ शास्त्री के मनोहारी लाभप्रद व्याख्यान हुए। कन्यागुरुकुल हाथरस की ब्रह्मचारिणियों द्वारा प्रस्तुत धर्मचिह्न सम्मेलन सर्वाधिक शोभाशाली एवं सराहनीय रहा। कार्यक्रमों में भाग लेने वाले, ब्रह्मचारी एवं ब्रह्मचारिणियों को प्रभूत पुरस्कार प्रमाणपत्र एवं पदक प्रदान किये गए।

मुख्य शिवरात्रि के बोधदिवस पर आर्यसमाज की एक विशाल शोभायात्रा (जलूस) मुख्य स्थानों में होता हुआ केन्द्रिय आर्यसमाज मन्दिर में सभा के रूप में परिणित हुआ। शोभायात्रा में अनेक संस्थाओं ने उत्साहपूर्वक भाग लिया। नगर मुख्य बाजार सुभाष रोड पर अनेक स्वागत द्वार बने थे। मन्त्री श्री देवनारायण भारद्वाज ने संक्षिप्त भाषण में हार्दिक आभार व्यक्त किया। —मन्त्री आर्यसमाज

उत्तरप्रदेशीय आर्यसमाज शताब्दी समारोह

आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तरप्रदेश ने अपने प्रान्त में निरन्तर तीन वर्ष तक आर्यसमाज शताब्दी समारोह मनाने का निश्चय किया है। इस त्रैवार्षिक समारोह का पहला अधिवेशन २५ से २८ मई ७२ तक गवर्नमेंट इण्टर कालेज मेरठ नगर में मनाया जायगा। भारत के राष्ट्रपति श्री वी. वी. गिरी इसका उद्घाटन करेंगे।

शताब्दी समारोह में आर्यसमाज के उच्चकोटि के संन्यासी और विद्वानों के अतिरिक्त रक्षामंत्री श्री जगजीवनराम, कृषि राज्यमंत्री प्रो० शेरसिंह, सूचना मंत्री श्री इन्द्रकुमार गुजराल और उत्तरप्रदेश के मुख्यमंत्री श्री कमलापति त्रिपाठी आदि देश के कुछ वरिष्ठ नेता भी भाग लेंगे।

आर्यसमाज द्वारा संचालित शिक्षण संस्थाओं के भविष्य और समाज सुधार के दूसरी योजनाओं पर भी शताब्दी समारोह में दूरगामी निर्णय लिये जायेंगे। भारत के और विदेशों के प्रायः सभी भागों से अच्छी संख्या में आर्यसमाजों के प्रतिनिधि इस आयोजन में भाग लेने पहुंचेंगे। स्वागत समिति के अधिकारी पूरे उत्साह से तैयारियों में जुट गये हैं।

सत्ताईस मई को एक भव्य जलूस भी शताब्दी समारोह के अध्यक्ष का निकलेगा। विभिन्न देशों और राज्यों के प्रतिनिधि अपने नामपट्टों के साथ जलूस में सम्मिलित रहेंगे। —इन्द्रराज, मंत्री—स्वागत समिति

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के तत्वावधान में—

हरयाणा के आर्यसमाजों के उत्सवों के समाचार

१. आर्यसमाज टिकोला कलाँ जि० सहारनपुर—३ से ५ फरवरी वार्षिक उत्सव पर सभा की ओर से वानप्रस्थी रामपत जी प्रचारार्थ पधारे ५१) प्राप्त हुये।

२. आर्यसमाज कन्या गुरुकुल खानपुर जि० सोनीपत—६ से ११ फरवरी वार्षिक उत्सव पर सभा की ओर से हरयाणा वेदप्रचार मण्डल के अध्यक्ष श्री पं० समरसिंह जी वेदालंकार, श्री रामनाथ जी भल्ला सभामन्त्री, श्री कपिलदेव जी शास्त्री सभा उपमन्त्री और श्री वानप्रस्थी रामपत जी, श्री जयलाल जी और कुँवर श्यामसिंह जी हितकर पधारे। इस अवसर पर केन्द्रिय राज्य मन्त्री प्रो० शेरसिंह जी, हरयाणा के शिक्षामन्त्री चौ० माडूसिंह जी, हरयाणा परिवहन मन्त्री कर्नल महासिंह जी आदि के भी व्याख्यान हुये। आसपास की ग्रामीण जनता ने भारी संख्या में उत्सव में भाग लिया और आर्यसमाज के प्रचार को सुनकर लाभ उठाया। सभा को वेदप्रचारार्थ २५०) प्राप्त हुआ।

३. आर्यसमाज ओरंगाबाद मीतनौल जि० गुड़गाँव—२३ से २५ फरवरी को उत्सव सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ। सभा की ओर से श्री पं० अर्जुनदेव जी, श्री पं० जयपाल आर्य के व्याख्यान और पं० मुंशीलाल धर्मपाल के मनोहर भजन हुये। सभा को १००) प्राप्त हुये।

४. आर्यसमाज बांकनेर (दिल्ली राज्य)—२४, २५ फरवरी को वार्षिक उत्सव धूमधाम और सफलतापूर्वक हुआ। प्रातः यज्ञ दोपहर को खेलकूद तथा रात्रि को प्रचार का कार्यक्रम होता रहा। श्री जगदेवसिंह श्री सिद्धान्ती सम्पादक आर्यमर्यादा, वानप्रस्थी रामपत जी व श्री जयलाल जी भजनोपदेशक पधारे। सभा को ६५) प्राप्त हुये।

५. आर्यसमाज कन्या गुरुकुल नरेला (दिल्ली राज्य) २४, २५ फरवरी को वार्षिक उत्सव के अवसर पर श्री जगदेवसिंह जी सिद्धान्ती सम्पादक आर्यमर्यादा, श्री स्वामी ओमानन्द जी महाराज, श्री वानप्रस्थी रामपत जयलाल जी के व्याख्यान तथा भजन हुये। दिल्ली के कार्यकारी पार्षद चौ० मांगेराम जी का भी व्याख्यान हुआ। सभा को ११५) प्राप्त हुये।

६. आर्यसमाज गुरुकुल भज्जर जि० रोहतक—२ से ४ मार्च को वार्षिक उत्सव धूमधाम और सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ। इस शुभावसर पर श्री स्वामी ओमानन्द जी, श्री स्वामी रामेश्वरानन्द जी, श्री जगदेवसिंह जी सिद्धान्ती, पं० रघुवीरसिंह शास्त्री कुलपति, हरद्वार भारत सरकार के राज्यमन्त्री प्रो० शेरसिंह जी, हरयाणा के शिक्षामन्त्री चौ० माडूसिंह जी आचार्य विष्णुमित्र जी, श्री कपिलदेव जी शास्त्री आदि के व्याख्यान तथा वानप्रस्थी रामपत जयलाल जी और चौ० नत्थासिंह जी आदि के भजन हुये। सभा को वेदप्रचारार्थ ५१) प्राप्त हुये।

७. आर्यसमाज सोनीपत नगर—ऋषिबोध दिवस १ से ४ मार्च को पं० भक्तराम जी के भजन हुये। सभा को ५१) वेदप्रचारार्थ प्राप्त हुये।

—केदारसिंह आर्य कार्यालय हरयाणा वेदप्रचार मण्डल रोहतक

आर्य प्रतिनिधि सभा दिल्ली राज्य

१९७३-७४ के लिये निम्नमिखित अधिकारी चुने गये—

प्रधान—श्री भक्तराम एडवोकेट। मंत्री—चतरसिंह "लुप्त" कोषाध्यक्ष—श्री ज्ञानचन्द आर्य। पुस्तकाध्यक्ष—श्री राममिलनसिंह। —मन्त्री

आर्यसमाजों से निवेदन

हमारे स्नातक विद्यालय से प्रतिवर्ष पुरोहित तैयार होकर प्रचार क्षेत्र में आकर प्रचार करते हैं, इस वर्ष भी जिन समाजों को उत्साही युवक लग्नशील पुरोहितों की आवश्यकता हो कृपया शीघ्र सूचित करें ताकि समय पर पुरोहित दे सकें ? १ मई से समाजों में पुरोहित भेज सकेंगे। केवल चार पुरोहित हैं, समाजें शीघ्र पत्र व्यवहार करें।

आचार्य—दयानन्द ब्राह्म महाविद्यालय हिसार (हरयाणा)

ऋषिबोधोत्सव

प्राय समस्त आर्य समाजों ने ऋषि बोधोत्सव अच्छे रूप से मनाया। पृथक् पृथक् नाम देने संभव नहीं। सभी बधाई के पात्र हैं।

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के वेद प्रचार विभाग के समाचार

आर्य समाज चम्बा :

समाज का उत्सव बड़ी सफलता से सम्पन्न हुआ। त्याग मूर्ति स्वामी सर्वानन्द जी महाराज के भी प्रवचन हुए। सभा की ओर से श्री पं० रामनाथ जी यात्री ने भाग लिया। समाज की ओर से ५१) रु० वेद प्रचार में प्राप्त हुए।

आर्य समाज कपूरथला, साबुन बाजार लुधियाना, आर्य नवयुवक समाज टाली चौक भर्गव कैम्प जालन्धर आदि में श्री रामनाथ जी यात्री ने सफलता पूर्वक प्रचार किया। और ८६) रु० वेद प्रचार में प्राप्त हुए।

फिरोजपुर नगर तथा छावनी की समाजों में श्री रामनाथ जी यात्री बड़ी लग्न से प्रचार कर रहे हैं।

नीलो खेड़ी—आर्य समाज में श्री स्वामी सुकर्मानन्द जी तथा पं० बलराज जी आर्य संगीत रत्न ने एक सप्ताह बड़ी मनोहर कथा की।

आर्य समाज संगरूर :—श्री पं० हरिदेव जी महोपदेशक तथा श्री अमरनाथ जी प्रेमी ने यहां सफलता पूर्वक प्रचार किया ५१) रु० वेद प्रचार में प्राप्त किए।

दिल्ली के आर्य भाईयों से श्री पं० हरिदेव जी द्वारा १०३) रु० प्राप्त हुए। आर्य समाज सोनीपत :—श्री पं० भक्तराम जी ने तीन दिन प्रचार किया ५१) रु० वेद प्रचार में प्राप्त किए।

राणा प्रताप बाग दिल्ली :— कथोत्सव पर श्री पं० निरंजनदेव जी वे० प्र० अ० तथा श्री हितकर मण्डली ने भाग लिया ३३०) रु० वेद प्रचार में प्राप्त हुए।

आर्य समाज कुल्लू : एक सप्ताह श्री पं० निरंजनदेव जी तथा श्री मुंशीलाल धर्मपाल की मण्डली ने प्रचार किया। स्वामी विवेकानन्द जी सरस्वती श्री रोशनलाल जी मंत्री तथा श्री लाला रामसरनदास आदि ने बहुत सहयोग दिया ६५०) रु० वेद प्रचार में प्राप्त किए। सभा की ओर से सभी आर्य भाईयों तथा रामाजों का हार्दिक धन्यवाद।

विनीत—निरञ्जन देव वेद प्रचाराधिष्टाता

(दिल्ली में कन्यावेद गुरुकुल की घोषणा)

श्रीमद्दयानन्द वेदविद्यालय गौतम नगर नई दिल्ली की कमेटी ने अब सर्वसम्मति से उसको कन्यावेद गुरुकुल बना दिया। १८ फरवरी १९७३ रविवार को उस प्रदेश के नेता श्री शशीभूषण जी संसत्सदम्य के सभापतित्व में कन्यावेद गुरुकुल का उद्घाटन हुआ जिसमें गुरुकुल के ट्रस्ट के प्रधान श्री मास्टर शिवचरन दास जी आदि उपस्थित थे।

उसी समय श्रीदयानन्द वेदविद्यालय की नवीन आचार्या सुश्री श्रीमती देवी शास्त्री एम० ए० वेदाचार्य को आचार्य पद का चार्ज आचार्य विश्वश्रवा जी ने दे दिया। श्री पूज्य माता ब्रह्मशक्ति जी कन्यागुरुकुल न्यू-राजेन्द्र नगर नई दिल्ली ने वेदाचार्य श्रीमती देवी को आशीर्वाद दिया और पूर्ण सहयोग का आश्वासन दिया।

अब इस गुरुकुल में कन्याओं को आरम्भ से वेद पढ़ा कर उन्हें काशी की वेदाचार्य बनाया जावेगा। और हरिजन कन्याएं भी वेद पढ़ने के लिये प्रविष्ट होंगी। —निज संवाददाता●

लगभग ४० वर्षों से चल रहे गुरुकुल को ट्रस्ट द्वारा कन्यावेद गुरुकुल के नाम से आरम्भ किया जा रहा है और जिसका उद्घाटन १८ फरवरी १९७३ को होने जा रहा है यह जानकर प्रसन्नता है।

गुरुकुल में कन्याओं को वेद की शिक्षा दी जावेगी और इसमें बिना किसी वर्ग एवम् जाति भेद की सभी जातियों को विशेषकर हरिजन वर्ग की कन्याओं को भी प्रवेश मिलेगा। यह अच्छी बात है।

मेरी शुभकामना है कि गुरुकुल अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर हो।

—जगजीवनराम, भारत रक्षा मन्त्री नई दिल्ली

विवाहसमाचार भेजने वालों से

जो सज्जन विवाह संस्कार के समय भिन्न भिन्न स्थानों को दान देते हैं और अपना विज्ञापन कराने के लिये आर्यमर्यादा में समाचार भेजते हैं। उनसे निवेदन है कि जिन संस्कारों में आर्यमर्यादा को कम से कम १५ रु० दान न दिया जाता, उनके समाचार प्रकाशित नहीं किये जाते। व्यवस्थापक

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब द्वारा प्रकाशित और प्रचारित वैदिक साहित्य

१. बलिदान जयन्ती स्मृति ग्रन्थ–आर्य बलिदानों की गाथा मूल्य ४-५०
२. सोम सरोवर-वेदमन्त्रों की व्याख्या —पं० चमूपति एम. ए. ३-००
३. जीवन ज्योति-वेदमन्त्रों की व्याख्या ,, ,, ३-००
४. नीहारिकावाद और उपनिषदें ,, ,, ०-२५
५. Principles of Arya samaj ,, ,, १-५०
६. Glimpses of swami Daya Nand ,, ,, १-००
७. पंजाब का आर्य समाज पंजाब तथा हरयाणा के आर्यसमाज का इतिहास २-००
८. वैदिक सत्संग पद्धति सन्ध्या हवन मन्त्र अर्थ रहित विधि १-००
९. वेदाविर्भाव —आर्यमर्यादा का विशेषांक ०-६५
१०. यजुर्वेद का स्वाध्याय ,, ,, ,, ०-५०
११. वेद स्वरूप निर्णय —पं० मदनमोहन विद्यासागर १-००
१२. व्यवहारभानु —महर्षि स्वामी दयानन्द ०-५०
१३. स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश— ,, ,, ०-४०
१४. Social Reconstruction By Budha & Swami Daya Nand By. Pt. Ganga Prasad Upadhya M. A. २-००
१५. Subject Matter of the Vedas By S. Bhoomanad १-००
१६. Enchanted Island By Swami Staya Parkashanand १-००
१७. Cow Protection By Swami Daya Nand ०-१५
१८. वेद में पुनरुक्ति दोष नही है आर्यमर्यादा का विशेषांक २-००
१९. मूर्त्तिपूजा निषेध ,, ,, ०-५०
२०. धर्मवीर पं० लेखराम जीवन —स्वामी श्रद्धानन्द १-२५
२१. कुलियात आर्य मुसाफिर प्रथम भाग—पं० लेखराम की पुस्तकों का संग्रह। ६-००
२२. ,, ,, दूसरा भाग ,, ,, ८-००
२३. मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र —कु० सुशीला आर्या एम. ए. ०-२५
२४. योगीराज कृष्ण ,, ,, ,, ०-१५
२५. गोकरुणा निधि —स्वामी दयानन्द सरस्वती ०-२०
२६. आर्यसमाज के नियम उपनियम ०-१०
२७. आर्य नेताओं के वचनामृत —साईदास भण्डारी ०-१२
२८. कायाकल्प —स्वामी समर्पणानन्द सरस्वती १-५०
२९. वैदिक धर्म की विशेषतायें —पं० हरिदेव सिद्धान्त भूषण ०-१५
३०. स्वतन्त्रानन्द लेखमाला —स्वा० स्वतन्त्रानन्द जी जीवनी तथा उनके व्याख्यान १-२५
३१. आत्मानन्द लेखमाला —स्वामी आत्मानन्द सरस्वती की जीवनी १-२५
३२. आर्यसमाज के सदस्यता फार्म —सैंकड़ा १०-००
३३. वैदिक गीता —स्वामी आत्मानन्द सरस्वती २-५०
३४. मनोविज्ञान तथा शिव संकल्प ,, ,, ,, ३-५०
३५. कन्या और ब्रह्मचर्य ,, ,, ,, ०-१५
३६. सन्ध्या अष्टाङ्गयोग ,, ,, ,, ०-७५
३७. वैदिक विवाह ,, ,, ,, ०-७५
३८. सुखी जीवन —श्री सत्यव्रत २-००
३९. एक मनस्वी जीवन —पं० मनसाराम वैदिक तोप १-५०
४०. छात्रोपयोगी विचारमाला —जगदेवसिंह सिद्धान्ती १-५०
४१. स्त्री शिक्षा —पं० लेखराम आर्य मुसाफिर ०-६०
४२. विदेशों में एक साल —स्वामी स्वतन्त्रानन्द २-२५
४३. वेद विमर्श —पं० भगवद्दत्त वेदालंकार २-००
४४. वेद विमर्श —पं० वेदव्रत शास्त्री २-००
४५. आसनों के व्यायाम ,, ,, ,, १-००
४६. महर्षि जीवन गाथा —स्वामी वेदानन्द वेदवागीश २-२५
४७. मांस मनुष्य का भोजन नहीं —स्वामी ओमानन्द सरस्वती १-००
४८. वीर भूमि हरयाणा ,, ,, ,, ४-००
४९. चोटी क्यों रखें —स्वामी ओमानन्द सरस्वती ०-५
५०. हमारा फाजिल्का —श्री योगेन्द्रपाल १-५
५१. सत्संग स्वाध्याय —स्वामी ओमानन्द सरस्वती ०-५
५२. जापान यात्रा ,, ,, ,, ०-७
५३. भोजन ,, ,, ,, ०-५
५४. ऋषि रहस्य —पं० भगवद्दत्त वेदालंकार २-०
५५. स्वामी श्रद्धानन्द जीवन परिचय १-२
५६. मेरा धर्म —आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति ७-०
५७. वेद का राष्ट्रिय गीत ,, ,, ,, ५-०
५८. ईशोपनिषद्भाष्य —इन्द्र विद्या वाचस्पति २-०
५९. पं० गुरुदत्त विद्यार्थी जीवन —डा० रामप्रकाश १-
६०. वैदिक पथ —पं० हरिदेव सिद्धान्त भूषण २-
६१. ज्ञानदीप ,, ,, ,, २-
६२. आर्यसमाज का सैद्धान्तिक परिचय ०-
६३. The Vedas ०-
६४. The Philosophy of Vedas ०-
६५. वैदिक प्रवचन —पं० जगत्कुमार शास्त्री २-
६६. ईश्वर दर्शन ,, ,, १-
६७. श्वेताश्वरोपनिषद् ,, ,, ४-
६८. ब्रह्मचर्य प्रदीप ,, ,, ४-
६९. भगवत प्राप्ति क्यों और कैसे —स्वा० सत्यानन्द ०-
७०. आर्य सामाजिक धर्म ,, ,, ०-
७१. बोध प्रसाद —स्वामी श्रद्धानन्द ०-
७२. ऋषि दर्शन —पं० चमूपति एम. ए. ००-
७३. ऋषि का चत्मकार ,, ,, ,, ००-
७४. वैदिक जीवन दर्शन ,, ,, ,, ००-
७५. वैदिक तत्व विचार ,, ,, ,, ००-
७६. देव यज्ञ रहस्य ,, ,, ,, ००-

सभी पुस्तकों का प्राप्ति स्थान

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब, गुरुदत्त भवन, जालन्धर (४२५०) टेली
,, ,, ,, १५ हनुमान् मार्ग नई दिल्ली-१ ,, (३१०१५
,, ,, ,, दयानन्द मठ रोहतक (हरयाणा) ,, (५५

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के लिए जगदेवसिंह सिद्धान्ती शास्त्री द्वारा सैनी प्रिंटर्स पहाड़ी धीरज, देहली में मुद्रित और १५ हनुमान् रोड, नई दिल्ली—१ से प्रकाशित

१९ चैत्र सं० २०२९ वि०, दयानन्दाब्द १४८,
तदनुसार १ अप्रैल १९७३ रविवार
सृष्टि सं०-१९६०८५३०७२

वर्ष ५ | वार्षिक शुल्क स्वदेश में १०) रुपये
अंक १८ | ,, ,, विदेश में २०) रुपये
एक प्रति का मूल्य ००-२० पैसे

सम्पादक—जगदेवसिंह सिद्धान्ती शास्त्री, पूर्व लोकसभा सदस्य (फोन ५१२१६३)

वेदमन्त्रार्थ-प्रवचन

तत्रादावीश्वरगुणा उपदिश्यन्ते ॥

अब अगले मन्त्र में ईश्वर के गुणों का वर्णन किया जाता है ॥

चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः ।
आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ॥१॥

ऋ० १.११५.१

पदार्थः—(चित्रम्) अद्भुतम् (देवानाम्) विदुषां दिव्यानां पदार्थानां वा (उत्) उत्कृष्टतया (अगात्) प्राप्तमस्ति (अनीकम्) चक्षुरादीन्द्रियैरप्राप्तम् (चक्षुः) दर्शकं ब्रह्म (मित्रस्य) सुहृद इव वर्त्तमानस्य सूर्यस्य (वरुणस्य) आह्लादकस्य जलचन्द्रादेः (अग्नेः) विद्युदादेः (आ) समन्तात् (अप्राः) पूरितवान् (द्यावापृथिवी) प्रकाशभूमी (अन्तरिक्षम्) आकाशम् (सूर्यः) सवितेव ज्ञानप्रकाशः (आत्मा) अतति सर्वत्र व्याप्नोति सर्वान्तर्यामी (जगतः) जङ्गमस्य (तस्थुषः) स्थावरस्य (च) सकलजीवसमुच्चये ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यदनीकं देवानां मित्रस्य वरुणस्याग्नेश्चित्रं चक्षुरुदगाद्यो जगदीश्वरः सूर्य इव विज्ञानमयो जगतस्तस्थुषश्चात्मा योऽन्तरिक्षं द्यावापृथिवी चाप्राः परिपूरितवानस्ति तमेव यूयमुपाध्वम् ॥

भावार्थः—न खलु दृश्यं परिच्छिन्नं वस्तु परमात्मा भवितुमर्हति नो कश्चिदप्यव्यक्तेन सर्वशक्तिमता जगदीश्वरेण विना सर्वस्य जगत उत्पादनं कर्तुं शक्नोति नैव कश्चित् सर्वव्यापकसच्चिदानन्दस्वरूपमनन्तमन्तर्यामिनं सर्वात्मानं परमेश्वरमन्तरा समस्तस्य जीवानां पापपुण्यानां साक्षित्वं फलदानं च कर्तुमर्हति । नह्येतस्योपासनया विना धर्मार्थकाममोक्षान् लब्धुं कोऽपि जीवः शक्नोति तस्मादयमेवोपास्य इष्टदेवः सर्वैर्मन्तव्यः ॥

भाषार्थः—हे मनुष्यो जो (अनीकम्) नेत्र से नहीं देखने में आता तथा (देवानाम्) विद्वान् और अच्छे अच्छे पदार्थों वा (मित्रस्य) मित्र के समान सूर्य वा (वरुणस्य) आनन्द देने वाले जल चन्द्रलोक और अपनी व्याप्ति आदि पदार्थों वा (अग्नेः) बिजुली आदि अग्नि वा और सब पदार्थों का (चित्रम्) अद्भुत (चक्षुः) दिखाने वाला है वह ब्रह्म (उदगात्) उत्कर्षता से प्राप्त है। जो जगदीश्वर (सूर्य्यः) सूर्य्य के ज्ञान का प्रकाश करने वाला विज्ञान से परिपूर्ण (जगतः) जङ्गम (च) और (तस्थुषः) स्थावर अर्थात् चराचर जगत् का (आत्मा) अन्तर्यामी अर्थात् जिसने (अन्तरिक्षम्) आकाश (द्यावापृथिवी) प्रकाश और भूमिलोक को (आ, अप्राः) अच्छे प्रकार परिपूर्ण किया अर्थात् उनमें आप भर रहा है उसी परमात्मा की तुम लोग उपासना करो ॥

भावार्थः—जो देखने वाला परिमाण योग्य पदार्थ है वह परमात्मा होने के योग्य नहीं है। न कोई भी उस अव्यक्त सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर के विना समस्त जगत् को उत्पन्न कर सकता है और न कोई सर्वव्यापक सच्चिदानन्दस्वरूप अनन्त अन्तर्यामी चराचर जगत् के आत्मा परमेश्वर के विना संसार के धारण करने जीवों को पाप और पुण्यों को साक्षीपन और उनके अनुसार जीवों को सुख दुःख रूप फल देने को योग्य है न इस परमेश्वर की उपासना के विना धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के पाने को कोई जीव समर्थ होता है इससे यही परमेश्वर उपासना करने योग्य इष्टदेव सबको मानना चाहिये ॥

—(महर्षिदयानन्द-भाष्य)

नौविमानादिविद्याविषयः

(ऋ० १.११६.६) (यमश्विना) जो अश्वि अर्थात् अग्नि और जल हैं उनके संयोग से (श्वेतमश्वं) भाफ रूप अश्व अत्यन्त वेग देने वाला होता है। जिससे कारीगर लोग सवारियों को (अधाश्वाय) शीघ्र गमन के लिये वेगयुक्त कर देते हैं जिस वेग की हानि नहीं हो सकती उसको जितना बढ़ाना चाहे उतना बढ़ सकता है (शश्वदित्स्वस्ति) अर्थात् नित्य सुख बढ़ता है। (ददथुः) जो कि वायु अग्नि और जलादि से वेग गुण उत्पन्न होता है उसको मनुष्य लोग सुविचार से ग्रहण करें। (वाम) यह सामर्थ्य पूर्वोक्त अश्वि संयुक्त पदार्थों ही में है (तत्) सो सामर्थ्य कैसा है कि (दात्रम्) जो दान करने के योग्य, (महि) अर्थात् बड़े बड़े शुभ गुणों से युक्त, (कीर्त्तेन्यम्) अत्यन्त प्रशंसा करने के योग्य और सब मनुष्यों को उपकार करने वाला (भूत्) है। क्योंकि वही (पैद्वः) अश्व मार्ग में शीघ्र चलाने वाला है। (सदमित्) अर्थात् जो अत्यन्त वेग से युक्त है (हव्यः) वह ग्रहण और दान देने के योग्य है। (अर्य्यः) वैश्य लोग तथा शिल्पविद्या का स्वामी इसको अवश्य ग्रहण करे, क्योंकि इन यानों के विना द्वीपान्तर में जाना कठिन है ॥ (ऋ० १.३५.२)—

यह यान किस प्रकार का बनाना चाहिये कि (त्रयः पवयो मधु०) जिसमें तीन पहिये हों, जिनसे वह जल और पृथिवी के ऊपर चलाया जाय और मधुर वेग वाला हो, उसके सब अंग वज्र के समान दृढ़ हों, जिनमें कला यन्त्र भी दृढ़ हों, जिनसे शीघ्र गमन होवे, (त्रयः स्कम्भासः) उनमें तीन तीन थम्भे ऐसे बनाने चाहियें कि जिनके आधार सब कलायन्त्र लगे रहें, तथा (स्कभितासः) ये थम्भे भी दूसरे काष्ठ वा लोहे के साथ लगे रहें उसी में सब कलायन्त्र जुड़े रहते हैं। (विश्वे) सब शिल्पि विद्वान् लोग ऐसे यानों को सिद्ध करना अवश्य जानें। (सोमस्य वेनाम्) जिनसे सुन्दर सुख की कामना सिद्ध होती है, (रथे) जिस रथ में सब क्रीड़ा सुखों की प्राप्ति होती है, (आरभे) उसके आरम्भ में अश्वि अर्थात् अग्नि और जल ही मुख्य हैं। (त्रिर्नक्तं याथस्त्रिर्वश्विना दिवा) जिन यानों से तीन दिन और तीन रात में द्वीप द्वीपान्तर में जा सकते हैं ॥५॥

—(ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका)

सत्यार्थप्रकाश (दशम समुल्लास)

(गताङ्क से आगे) जो ऐसा ही होता तो :—

मेरोहरेश्च द्वे वर्षे वर्षं हैमवतं ततः ।
क्रमेणैव व्यतिक्रम्य भारतं वर्षमासदत् ॥
स देशान् विविधान् पश्यंश्चीनहूणनिषेवितान् ॥

ये श्लोक भारत शान्तिपर्व मोक्षधर्म में व्यासशुकसंवाद में हैं—अर्थात् एक समय व्यास जी अपने पुत्र शुक और शिष्य सहित पाताल अर्थात् जिसको इस समय "अमेरिका" कहते हैं उसमें निवास करते थे शुकाचार्य्य ने अपने पिता से एक प्रश्न पूछा कि आत्मविद्या इतनी ही है वा अधिक ? व्यास जी ने जानकर उस बात का प्रत्युत्तर न दिया क्योंकि उस बात का उपदेश कर चुके थे, दूसरे की साक्षी के लिये अपने पुत्र शुक से कहा कि हे पुत्र ! तू मिथिलापुरी में जाकर यही प्रश्न जनक राजा से कर वह इसका यथायोग्य उत्तर देगा। पिता का वचन सुनकर शुकाचार्य्य पाताल से मिथिलापुरी की ओर चले प्रथम मेरु अर्थात् हिमालय से ईशान उत्तर और वायव्य कोण में जो देश बसते हैं उनका नाम हरिवर्ष था अर्थात् हरि कहते हैं बन्दर को उस देश के मनुष्य अब भी रक्तमुख अर्थात् बानर के समान भूरे नेत्र वाले होते हैं जिन देशों का नाम इस समय "यूरोप" है उन्हीं को संस्कृत में "हरिवर्ष" कहते थे उन देशों को देखते हुए और जिन को हूण "यहूदी" भी कहते हैं उन देशों को देखकर चीन में आये चीन से हिमालय और हिमालय से मिथिलापुरी को आये। —(ऋषि दयानन्द)

ऋषि दयानन्द का जीवन चरित्र और प्रो. श्रीरामजी शर्मा

(लेखक:—डाक्टर महेन्द्र कुमार शास्त्री, भूतपूर्व प्रिंसिपल, शासकीय आयुर्वेदिक कालेज, बम्बई)

जैसा सबको ज्ञात है हरयाणा की सरकार ने पंजाब विश्वविद्यालय को पचास हजार रुपया ऋषिवर के प्रामाणिक जीवन लिखवाने के लिये दिये हैं। पंजाब विश्वविद्यालय ने इस कार्य के लिये श्री प्रोफसर श्रीराम जी शर्मा को नियत किया है। उन्होंने इस विषय की पंजाब युनिवर्सिटी रिसर्च बुलेटिन (आर्ट) की प्रतिलिपि प्रकाशित की है। जिसका शीर्षक है —

"स्वामी दयानन्द की प्रारम्भिक जीवन की आत्मकथा" जिल्द ३ री, न० पं० २ अक्टूबर ७२।

एक आदरणीय मित्र महोदय की कृपा से यह अंग्रेजी पुस्तिका पढ़ने का सौभाग्य इस लेखक को भी प्राप्त हुआ। दो तीन बार इसका आद्योपान्त अनुशीलन किया। आश्चर्य मिश्रित दुःख के साथ लिखना पड़ता है कि यह प्रकाशन विषमिश्रित दूध के सामान प्रतीत हुआ। प्रोफेसर महोदय से हमारा परिचय नाम मात्र को भी नहीं है। अतः बात व्यक्तिगत तो है ही नहीं, सिद्धान्त और केवल सिद्धान्त की बात है।

इस रिसर्च बुलेटिन को पढ़कर ऐसा प्रतीत होता है कि लेखक महोदय ऋषि की जीवनी लिखने का अधिकारी नहीं है। क्योंकि—

(१) वे मेकाले की शिक्षा के स्कूल के स्नातक प्रतीत होते हैं। जिनका शरीर तो अवश्य भारतीय है किन्तु मन अंग्रेजी या यूरोपियन। अतः इस प्रकार के पक्षपात और पूर्वाग्रह से युक्त है।

(२) उक्त कारणों से ही उन्हें अंग्रेज या यूरोपियन द्वारा अंग्रेजी यूरोपियन भाषा में लिखा पदार्थ अधिक प्रामाणिक प्रतीत होता है तथा भारतीय भाषाओं, स्वतंत्र विचारों के भारतीयों द्वारा लिखा पदार्थ कम प्रामाणिक।

(३) भारत की प्राचीन शिक्षा प्रणाली और परम्पराओं के विषय में उनकी जानकारी शून्य के समान है। संस्कृत साहित्य से उनका परिचय नहीं सा है। फिर भला वे इस प्रणाली द्वारा शिक्षित ऋषि की मनोभावनाओं और उनके आचरण को ठीक ठीक कैसे आंक सकते हैं।

(४) यह रिसर्च बुलेटिन परस्पर विरोधी और अप्रामाणित बातों से भरा पड़ा है। इसका एक कारण शायद लेखक की संस्कृत शिक्षा प्रणाली और साहित्य से अनभिज्ञता भी है।

हमारी उक्त बातों के समर्थन के लिए आईये इस बुलेटिन के लेखक ने जो निष्कर्ष निकाले हैं उन्हें भी जरा परख लें।

(१) अंग्रेजी में लिखे इस रिसर्च बुलेटिन के पृष्ठ २१९ क्रमांक २६ में लेखक ने अपनी सम्मति दी है "वर्तमान विश्वास के विपरीत स्वामी दयानन्द ने स्वामी विरजानन्द के अपने भविष्य के प्रोग्राम के सम्बन्ध में कोई वचन नहीं दिया था।" मथुरा छोड़ने के पश्चात् दो वर्ष तक स्वामी दयानन्द ने अपने कार्यों द्वारा इसका कोई प्रमाण नहीं दिया। अर्थात् उन्होने स्वामी विरजानन्द को यदि कोई वचन दिया होता तो वह तुरन्त कार्य में प्रवृत्त हो जाते।

(२) "स्वामी विरजानन्द अन्य सामान्य पंडितों के समान व्याकरण के अध्यापक मात्र थे और 'सिद्धान्त कौमुदी' पढ़ाकर सन्तुष्ट थे और जब स्वामी दयानन्द उनके शिष्य हुये उस समय आस पास ही उन्होंने सिद्धान्त कौमुदी का पढ़ाना छोड़ा था"।

"स्वामी दयानन्द ने स्वामी विरजानन्द को अपना गुरु इसी दृष्टि से कहा कि वे लम्बे समय तक (तीन वर्ष तक) उनसे पढ़ते रहे (अन्यथा उनमें कोई विशेषता नहीं थी)"

(४) स्वामी विरजानन्द के पश्चात् भी दो वर्ष तक वे आगरा में पढ़ते रहे।

(५) कुछ लेखकों की धारणा है कि स्वामी विरजानन्द स्वामी दयानन्द को विशेष रूप से एकान्त में अध्ययन कराते थे, विशेषकर उन विषयों में, जिनका प्रचार वह स्वामी दयानन्द से कराना चाहते थे। किन्तु यह बात गलत है। स्वामी दयानन्द ने मथुरा छोड़ने के समय तक उन ग्रन्थों (वेदों) का अध्ययन नहीं किया था जिनको उन्होने पीछे से अपने प्रचार की आधार शिला बनाया। मथुरा निवास के समय तक स्वामी दयानन्द को वेदान्त सम्बन्धी सामान्य ग्रन्थों का भी ज्ञान नहीं था। संभवतः भागवत गीता को पढ़ा हो।"

यह तो हुई श्री प्रोफेसर श्रीराम जी की रिसर्च (अनुसन्धान) अब ऋषि की स्वयं कथित आत्मकथा की इससे तुलना करिये कि वे स्वयं अपने गुरु के सम्बन्ध में क्या कहते हैं। इसी रिसर्च बुलेटिन के पृष्ठ २१५ पर वे कहते हैं मथुरा में मुझे एक अति पवित्र पुण्यात्मा संन्यासी मिले, स्वामी विरजानन्द, वे उस समय ८१ वर्ष के थे इससे पहले वे अलवर में निवास करते थे। मैं उनका शिष्य बन गया। वे दोनों नेत्रों से हीन थे तथा उदर शूल उन्हें प्रायः तंग करता रहता था। वे सिद्धान्त कौमुदी, शेखर बोधादि व्याकरण के नवीन ग्रन्थों को तो तुच्छ समझते थे। वे पुराणों का भी खण्डन किया करते थे। वे ऋषियों द्वारा रचित प्राचीन ग्रन्थों के भक्त थे, इतनी अधिक आयु में भी वे वेदों और शास्त्रों की ओर बहुत अधिक झुके हुये थे।"..................

"मथुरा में तीन वर्ष पढ़कर दो वर्ष आगरा में रहा। वहां से भी पत्र द्वारा वा स्वयं जाकर मैं स्वामी विरजानन्द जो से अपनी शंकाओं, कठिनाईयों का समाधान कर लिया करता था।"

इस विषय में स्वर्गीय पंडित लेखराम लिखित" महर्षि स्वामी दयानन्दजी सरस्वती का जीवन चरित्र [प्रकाशक आर्य समाज नयाबास, दिल्ली-६, वि० सं० २०२८] के ६६० वे पृष्ठ का निम्न वर्णन भी ध्यान देने योग्य है" मूर्ति पूजा के खण्डन का विचार स्वामी जी के मन में कब से उत्पन्न हुआ? एक दिन मूला मिस्त्री जो गंगाहर में सब ओवरसियर थे स्वामी जी से पूछने लगे कि आपने यह बात क्यों और कैसे उठाई? स्वामी जी ने उत्तर दिया कि मेरा पहले से ही यह विचार था कि मूर्तिपूजा केवल अविद्या अन्धकार से है। परन्तु इसके अतिरिक्त मेरे गुरु परमहंस श्री विरजानन्द सरस्वती जी महाराज बैठे बैठे मूर्तिपूजा का खण्डन किया करते थे। क्योंकि वे चक्षुहीन थे और कहते थे कि कोई हमारा शिष्य ऐसा भी हो जो इस अन्धकार को देश से हटा दे, इसलिये मुझे इस देश पर दया आयी और यह बीड़ा उठाया है।"

ऋषि के उक्त उदाहरणों से स्वयं ही सिद्ध हो गया कि गुरुवर्य विरजानन्द न केवल असाधारण प्रतिभा के धनी थे अपितु उन्हीं से ऋषि दयानन्द ने अपने भविष्य के कार्यक्रम की प्रेरणा प्राप्त की। जबकि प्रोफेसर श्रीराम जी की रिसर्च बताती है कि विरजानन्द एक सामान्य पंडित मात्र था और उसने ऋषि दयानन्द से किसी प्रकार की आशा नहीं की थी। धन्य हैं प्रोफेसर साहब आपकी कल्पना शक्ति को जहां तक मथुरा में केवल व्याकरण पढ़ने और वेदादि न जानने की रिसर्च का सम्बन्ध है उसके विषय में भी स्वामी का कथन ही प्रोफेसर महोदय का खण्डन सम्बन्ध है मथुरा में स्वामी जी शिक्षा काल १८६० ईसवी से १८६३ ईसवी था" घर छोड़ने के पश्चात् (लगभग १८४७ से १८४९ ई० के मध्य में) नर्मदा के किनारे पर एक दाक्षिणात्य विद्वान् कृष्ण शास्त्री से कुछ पढ़ा तदनुसार में रिजगुरु के पास चला गया और वेदों का अध्ययन किया (रिसर्च बुलेटिन पृष्ठ २१४)।

इसी रिसर्च बुलेटिन के पृष्ठ २३७ पर बड़ौदा में १८४६ ई० में नवीन वेदान्त पढ़ने का उल्लेख है। अपने ही बुलेटिन में लिखी बातों का खण्डन प्रोफेसर महोदय अपने निष्कर्ष में कर रहे हैं? क्या ही बढ़िया रिसर्च है।"

पुनश्च काशी शास्त्रार्थ का वर्णन एक अंग्रेज विद्वान् ने "क्रिश्चियन इण्टेलिजेंसट मार्च सन् १८७०) लिखा था उसमें उसने लिखा है।" ११ वर्ष की आयु से उसने (दयानन्द) अपने आपको पूर्ण रूप से वेदों के अध्ययन में लगा रक्खा है।" पृष्ठ १६७) लेखराम लिखित महर्षि चरित्र (आर्य समाज, नयाबांस, प्रकाशन) इतने स्पष्ट प्रमाणों के होते हुये रिसर्च शिरोमणि प्रोफेसर श्रीराम जी शर्मा का यह लिखना कि मथुरा पढ़ने के समय तक स्वामी दयानन्द को वेदों, वेदान्त विषयक ज्ञान नहीं था, विचित्र

शेष पृ० ९ पर

प्रो० श्रीराम शर्मा का हुलिया देखें।

प्रो० महाशय ने ऋषि दयानन्द के जीवन चरित्र को ही नहीं बिगाड़ा, अपितु गुरुवर विरजानन्द जी महाराज के सम्बन्ध में आगे का वाक्य लिखा है —

"स्वामी विरजानन्द अन्य सामान्य पण्डितों के समान व्याकरण के अध्यापक मात्र थे" "स्वामी दयानन्द ने स्वामी विरजानन्द को अपना गुरु इसी दृष्टि से कहा कि वे लम्बे समय (तीन वर्ष तक) उनसे पढ़ते रहे (अन्यथा उनमें कोई विशेषता न थी। ' इत्यादि इस प्रकार प्रो. श्रीराम का पूरा हुलिया जानने के लिये आर्यमर्यादा के इस अंक में पृष्ठ दो पर डाक्टर महेन्द्र कुमार शास्त्री बम्बई का लेख ध्यान से पढ़ना आवश्यक है। आश्चर्य यह है कि प्रो० शर्मा ने यह लेख पंजाब विश्वविद्यालय रिसर्च बुलेटिन (आर्ट) में छपाया है।

आर्य जगत् को स्पष्ट जान लेना चाहिये कि श्री शर्मा ने किसी स्वार्थ और षड्यन्त्र के वशीभूत होकर आर्य समाज के इतिहास को भ्रष्ट करने के लिये यह लेख लिखा प्रतीत होता है। महान् आश्चर्य यह है। कि पंजाब विश्वविद्यालय के उपकुलपति ला० सूरजभान की छत्र छाया में ऐसे कलङ्कित लेख लिखे जा रहे हैं। इतना ही नहीं ला० सूरजभान ने इस कुकृत्य के लिये प्रो० श्रीराम शर्मा को बेदर्दी से हरयाणा राज्य का ५० हजार रुपया सौंप दिया। क्यों ? वही जानें।

२—क्या ला० सूरजभान इस षड्यन्त्र में नहीं हैं

इसी अंक में पृष्ठ १० पर आर्यसमाज के वयो-वृद्ध शिक्षा विशेषज्ञ त्याग मूर्ति ला० रामनारायण बी. ए. रोहतक का लेख भी प्रकाशित हुआ है। इस लेख का एक वाक्य आर्यसमाज के सभी महानुभव पढ़ें। "आपने कुलपति जी के अविश्वास के सम्बन्ध में जो कुछ लिखा है वे बहुत दिलेराना शब्द लिखे हैं और उन शब्दों में सच्चाई समझता हू। कुछ दिन हुये एक बहुत जानकार व्यक्ति ने मुझे बतलाया था कि प्रो० श्रीराम जी को फायदा पहुंचाने के लिये ही श्री सूरजभान जी ने उसको इस काम पर लगाया है।"

३—आदरणीय प्राचार्य श्री भगवान् दास जी एम. ए. का पत्र

डी. ए. वी. कालिज अम्बाला नगर के प्रसिद्ध आर्य विद्वान् का निम्नलिखित पत्र अभी छपते छपते प्राप्त हुआ "आचार्य श्रीराम जी को मैंने पत्र लिखा था पर उन्होंने मेरी बात नहीं मानी। उन्होंने यह कहा है कि इतिहास में केवल घटनाएं ही होती हैं, मैंने उनको यह सुझाव दिया है कि जीवन चरित्र में भावनाएं भी बहुत आवश्यक हैं केवल ऐतिहासिक घटनाएं ही नहीं होती। पर उन्होंने उत्तर भी नहीं दिया। अब तो आप और देशभर की सब आर्यसमाजें शिक्षा मन्त्री हरयाणा एवं उपकुलपति पंजाब विश्वविद्यालय चण्डीगढ़ को यही लिखें कि प्राचार्य श्रीराम शर्मा को जो कार्य दिया है उससे उन्हें हटा लिया जाय। इसकी प्रतिलिपि सब आर्य समाजों की सेवा में।"

४—एक संवधानिक प्रश्न ?

हमारे राष्ट्र के राष्ट्रपति श्री गिरि महोदय ने ब्रिगेड आफ गार्ड्स को नया झण्डा दिया है। परन्तु प्रश्न यह है कि इस विधि को करते समय महामहिम श्री गिरि महोदय नंगे शिर थे। हमारे राष्ट्र का सन्मान झण्डा राष्ट्र का सर्वोच्च प्रतीक हैं। हमारा निश्चित मत है कि झण्डे का आदर करते समय राष्ट्रपतिमहोदय को अपने शिर पर कुछ वस्त्र अवश्य रखना चाहिये। आशा कि हमारी विनम्र सम्मति पर राष्ट्र के विधान विशेषज्ञों को विशेष रूप से विचार करना चाहिये। क्योंकि यह विधि सामान्य नहीं है, अपितु राष्ट्र के सर्वोच्च सम्मान की प्रतीक है।

५—राष्ट्र की संस्कृत भाषा की अधोगति

चाहिये तो यह कि राष्ट्र की सर्व प्राचीन भाषा संस्कृत के पठन पाठन को सर्वत्र प्रोत्साहन दिया जावे, परन्तु खेद है कि पश्चिमी बंगाल राज्य के शिक्षा क्षेत्र की नवमी और दशमी श्रेणियों में से संस्कृत की पढ़ाई को हटा दिया गया है। क्या यह सस्कृत भाषा की अधोगति की ओर पग नहीं उठाया गया है ?

६—मुस्लिम विश्व विद्यालय अलीगढ़ और श्रीछागला

भारत के सभी राजनीतिक दलों के मुसलमान प्राय: एक स्वर से अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के विधान में परिवर्तन करने का विरोध करते हैं, जबकि इस विद्यालय को राष्ट्र और राज्य की ओर से बहुत भारी मात्रा में सहायक धन राशि दी जाती है। इस राशि में सभी सम्प्रदायों का धन दिया जाता है। केवल एक महानुभाव श्री छागला जी हैं जो मुस्लिम साम्प्रदायिक मनोवृत्ति का स्पष्ट विरोध करते हैं। कोई भी अवसर ऐसा आता है तो श्री छागला अपनी राष्ट्र भक्ति का तुरन्त प्रकाश करते रहते है। क्या मुसलमानों को यह पता नहीं है कि भारत राष्ट्र असाम्प्रदायिक आधार रखता है। फिर साम्प्रदायिकता का खुला प्रदर्शन करना राष्ट्र के हित में अवांच्छनीय नहीं है !

७—भारत सरकार क्या साम्प्रदायिकता के सामने झुकती नहीं है ?

जब जब भी भारत सरकार कोई असाम्प्रदायिक पग उठाती है और उसकी घोषणा करती है तब तब साम्प्रदायिक मनोवृत्ति के मुसलमानों के सामने झुकती है। यह राष्ट्र के प्रति घातक वृत्ति का कार्य कहा जा सकता है। सरकार को चाहिये कि जब राष्ट्र धर्मनिरपेक्ष आधार पर राज्य संचालन करता है तब सम्प्रदाय के आधार पर विरोध करने वालों को कठोरता से दबाया जाना चाहिये। अन्यथा राष्ट्र में से कभी भी साम्प्रदायिकता नष्ट नहीं हो सकती, अपितु बढ़ती है। यही कुदशा उर्दू जबान के लिये खड़ी की जाती है। सरकार का प्रशासन अनुचित मांगों के सामने झुकने से कभी नहीं चल सकता, अपितु दण्डात्मक प्रयोग से ही सुस्थिर रहता है। सरकारी पक्ष के राजनीतिक नेताओं को यह बात समझनी चाहिये।

८—देहली विश्वविद्यालय के परीसर में राष्ट्रभाषा का अपमान

देहली विश्वविद्यालय के कम्पस में श्री गुरु तेगबहादुर खालसा कालिज के नये भवन का उद्घाटन भारत की प्रधान मन्त्री श्रीमती इन्दिरा गान्धी द्वारा सम्पन्न कराया गया। इसके एक कक्ष की आधार शिला उनसे रखवाई गई। आश्चर्य है कि इस शिला लेख पर ऊपर पंजाबी भाषा और गुरुमुखी लिपि अंकित है और उससे नीचे रोमन लिपि में अंग्रेजी भाषा के अक्षर खोदे गये हैं। परन्तु हिन्दी भाषा और देवनागरी लिपि का कोई चिह्न नहीं। क्या हमारे सिख भाई हिन्दी और देवनागरी की अपेक्षा अंग्रेजी और रोमन लिपि को राष्ट्र के कार्य में अधिक महत्व देते हैं। यह साधारण बात नहीं समझनी चाहिये, यह भी साम्प्रदायिक मनोवृत्ति को प्रकट करना है। इसका एक नमूना पंजाब राज्य में दिया गया है पंजाब राज्य में सरकारी और गैर सरकारी कामों में पंजाबी भाषा और गुरुमुखी लिपि का छत्र पूरे रूप में छाया हुआ है। केवल इतना हिन्दी के लिये स्थान है कि मैट्रिक से हिन्दी पास करना अनिवार्य है। यह इसलिये कि हिन्दी द्वारा नौकरी भी मिल सके।

९—आर्यसमाजो आर्यबन्धु भी अंग्रेजी भक्त ?

प्राय: देखा जाता है कि आर्यसमाजी बन्धु वैयक्तिक और अपने निजी कारोबार में हिन्दी और देवनागरी की अपेक्षा अंग्रेजी भाषा और रोमन लिपि में अधिक काम काज करते हैं। यहां तक कुछ आर्यसमाजी और संस्थान हमारे पास अपने समाचार अंग्रेजी भाषा और रोमन लिपि में भेजते हैं।

१०—गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय का महोत्सव

१२ अप्रल ७३ से १५ अप्रैल ७३ तक सम्पन्न किया जावेगा। इस समय पूज्य संन्यासी, विद्वानों, उपदेशकों और प्रचारकों के अतिरिक्त अनेक राजनीतिक नेता भी पधारेंगे। १३ अप्रैल वैशाखी के दिवस पर भारत की प्रधान मन्त्री अपना दीक्षान्त भाषण देंगी और नवीन स्नातकों को भिन्न भिन्न उपाधियों के प्रमाण पत्र वितरित करेंगी। इस पवित्र समारोह में आर्यसमाजियों को अधिक से अधिक संख्या में सम्मिलित होकर गुरुकुल के यश को बढ़ाना चाहिये।

—जगदेवसिंह सिद्धान्ती शास्त्री

महर्षि दयानन्द को विष दिया गया

ऋषिवर के बलिदान की अमर कहानी

(श्री राजेन्द्र जिज्ञासु एम. ए. बी. टी प्राध्यापक दयानन्द कालिज अबोहर)

आर्यमर्यादा के कुछ पाठकों एवं कुछ आर्य विद्वानों के पत्रों व प्रश्नों का उत्तर देने के लिये यह लेख लिखने की आवश्यकता अनुभव हुई इधर कुछ लेख व पत्रादि पढ़कर भी विचार बना कि एक और लेख लिखूं आगे भी आवश्यकता पड़े तो इस विषय पर लिखूंगा। 'आर्यमर्यादा' में मैंने एक लेख लिखा था कि प्रिं० श्रीराम जी शर्मा ने मेरे लेखों में प्रकाशित इस बात पर ८ २. के अपने एक लेख में आपत्ति की है कि पुरुषोत्तम प्रसाद गौड़ मुंशी देवी प्रसाद जी इतिहासज्ञ का पौत्र कैसे ? मैं आर्य-मर्यादा में इस आक्षेप का उत्तर दे चुका हूं कि मेरे पास लिखित प्रमाण है और ठोस प्रमाण है कि मुंशी जी के पौत्र का नाम यही था। कैसे का मुझे पता नहीं।

आर्यमर्यादा में मेरा लेख पढ़कर यशस्वी आर्य लेखक श्री भाई भवानीलाल जी भारतीय ने ९. ३. को मुझे एक पत्र में लिखा है कि पुरुषोत्तम प्रसाद गौड मुंशी जी का पौत्र था। श्रद्धेय भारतीय जो ने भी पुरुषोत्तम प्रसाद जी को जोधपुर में देखा है। स्मरण रहे भारतीय जी वर्षों जोधपुर रह चुके हैं। जैसे कि मेरा विचार था वही बात निकली। गौड़ गोत्र ब्राह्मणों में भी है और कायस्थों में भी। मुंशी जी कायस्थ थे अतः प्रिं० शर्मा जी को उदारता पूर्वक स्वीकार कर लेना चाहिए कि ब्राह्मणतर भी गौड़ हो सकता है।। हमारे अबोहर में गोयल गोत्र अग्रवालों में भी है और धानक भाईयों में भी।

पाठक देख लें कि शर्मा जी की सब आपत्तियां कैसे निर्मूल, अप्रामाणिक, कपोल कल्पित व तथ्यहीन सिद्ध हो रही हैं। ऐसा व्यक्ति चाहे कितना बड़ा लेखक होने का दम्भ करें वह ऋषि जीवन नहीं लिख सकता।

प्रिं० श्रीराम शर्मा ने अपने ८. २. के लेख में इस बात के लिए मेरा उपहास उड़ाया है कि पीर इमाम अली को तार देकर ऋषि के रुग्ण होने की सूचना मिली फिर व्यक्ति भेजकर बुलाया गया। पाठक पं० लेखराम लिखित ऋषि जीवन उठाकर देखें कि मैंने जो लिखा सो सत्य है अथवा नहीं, प्रतीत होता है कि शर्मा जी ने अपने Ready Made मत को खपाने के लिए इधर उधर से कुछ पुस्तकें ऋषि पर देखीं तो अवश्य परन्तु उन्हें पढ़ने का कष्ट किया ही नहीं। नित नई निराधार बातें लिख देते है। मान्य भारतीय जी, महात्मा आनन्द स्वामीजी व मुझे झुठलाने के लिए दीवान हर बिलास शारदा जी का नाम ले दिया कि वह विष दिये जाने के सम्बध में राव राजा तेजसिंह का वक्तव्य ठीक नहीं मानते। कितना काला झूठ है। दीवानजी ने कहीं भी नहीं लिखा कि राव राजा कि यह कथन असत्य है कि ऋषि को विष नहीं दिया गया। वह तो उनकी कथा विष दिये जाने की पुष्टि में देते हैं।

प्रिं० शर्मा जी ने डा० भारतीय जी द्वारा महाराजा प्रताप सिंह जी की आत्मकथा के प्रमाण को झुठलाते हुए विचित्र युक्ति देते हैं कि यह तो 'जिज्ञासु' जी को भी न मिली। दीवान जी ने भी इसकी चर्चा न की। शर्मा जी समझते हैं कि डा० भारतीय ने मन घड़न्त प्रमाण दे दिया है। शर्मा जी ! सावन के अन्धे को हरा ही हरा दीखता है। यह ठीक है कि वह आत्मकथा उपलब्ध नहीं हो रही परन्तु आर्य मार्तण्ड के एक पुराने लेख के आधार पर ही भारतीय जी ने यह लिखा है। शर्मा जी लिखते हैं उस युग में अंग्रेजी में आत्मकथा कैसे ? क्यों जी ! तब अंग्रेजी में आत्म कथा लिखने पर कोई प्रतिबंध था ?

यह बात पाठक नोट करलें कि मैं जोधपुर के राज परिवार को ऋषि के बलिदान के षड्यन्त्र में दोषी समझता हूं। जाने अथवा अनजाने में वह भी इस पाप के लिए उत्तरदायी हैं। ज्ञानी पिण्डी दासजी ने मुझे लिखा था कि इस विषय पर उनका मत यह है, मेरा क्या विचार है। मैंने उनके पत्र की प्राप्ति से पूर्व ही आर्यमर्यादा में अपना विचार प्रकट कर दिया था। पुनः लिखता हूं कि वे दोषी थे। वीर लेखराम, दीवान हर बिलास जी शारदा आदि पुराने विद्वान् भी यही मानते थे। स्वामी ओमानन्द जी सरस्वती गुरुकुल झज्जर, स्वामी वेदानन्द जी गुरुकुल झज्जर, डा० भारतीय जी का भी यही सुनिश्चित मत है। जोधपुर के ज्ञानवृद्ध वयोवृद्ध अनुसंधान कर्त्ता श्री भैरवसिंह जी का भी यही सुनिश्चित मत है।

प्रिं० शर्मा ने यह भी लिखा है कि महर्षि ने विष दिये जाने का समाचार पत्रों द्वारा बाहर क्यों न भेजा। कितनी हास्यास्पद आक्षेप है आर्यमर्यादा में मैंने लिखा था। कि यदि मृत्यु के पीछे षड्यन्त्र न था तो ऋषि के रुग्ण होने का समाचार इतनी देर तक क्यों छिपाया गया। इस पर शर्मा जी ने उपरोक्त प्रश्न किया है।

शर्मा जी ऋषि का पत्र व्यवहार पढ़लें और उसमें से दिखाएं कि उसमें ऋषि ने निजी सुख दुःख की कहां चर्चा की है। ऋषि को जीवन भर कौनसा कष्ट नहीं दिया गया। पत्रों में मान अपमान, विषपान, तलवार, कटार आदि के प्रहारों की कितनी चर्चा है। विष की चर्चा छोड़िए जब ऋषि से पूछा गया कि आप के शरीर की यह अवस्था ! अपने पता क्यों न दिया। तो महाराज ने उत्तर में क्या कहा था ! मैं कई बार लिख चुका हूं कि आदर्श साधु इस बात की चिन्ता नहीं किया करते।

पूज्य स्वामी स्वतंत्रानन्द जी महाराज के अन्तिम दिनों में मैं कई बार उनका पता करने मठ गया। शरीर समाप्त हो रहा था वह फिर भी कहा करते थे सब ठीक है। महात्मा आनन्द स्वामी जी एक बार गुरदासपुर से स्वामी जी का पता करने दीनानगर गये स्वामी जी ने उनको भी और सबको पूछने पर ऐसा ही उत्तर दिया करते थे।

आर्यजन की सेवा में मेरा निवेदन है कि ११.३.७३ के सम्पादकीय में दिये श्री पं० जगदेवसिंह जी सिद्धान्ती के विचारों में पूर्णतया सहमत हूं कि प्रिं० शर्मा इस कार्य के सर्वथा अयोग्य हैं। उनको हटाया न गया तो यह हरयाणा के साथ अन्याय व आर्य समाज के साथ अपमानजनक व्यवहार होगा जिस व्यक्ति ने एक बार भी ऋषि के नाम के साथ 'जी' शब्द का प्रयोग नहीं किया। उससे हम क्या आशा रख सकते हैं। पंजाब विश्वविद्यालय ने कई पुस्तकों का विज्ञापन ट्रिब्यून में दिया। पंजाबी में बहुत पुस्तकें हैं। हिन्दी में बहुत कम। अंग्रेजी में भी हैं। हिन्दी वालों का उक्त विश्वविद्यालय में अधिक धन जाता है अतः हिन्दी से यह घटिया व्यवहार उचित ही है ? इनमें से भी अधिक पुस्तकें सिख मत पर हैं। उनमें आप देखें कैसे सम्मान सूचक शब्दों का प्रयोग सिख गुरुओं के लिए किया गया है।

हमारे सात तो वैसा व्यवहार हो रहा है कि एक चिरंजीव ने कहा मां माँ मैं थानेदार बनूंगा तो पहले तेरी ही पिटाई करूंगा। उच्च पदों पर पहुंच कर 'हमारा' होने का दम भरने वाले ऐसा ही व्यवहार करते हैं।

११.३ के आर्य ज्योति में श्री वीरेन्द्र जी ने अपने सम्पादकीय में लिखा है कि कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के डा० यादव जी ने सरकारी रिकार्ड देखकर महर्षि के बलिदान पर अपनी सम्मति दी है। मैंने श्री वीरेन्द्र जी को पढ़ते ही एक पत्र लिखा और पाठकों से कहूंगा कि कुछ भी अप्रमाणिक न लिखें। मान्य डा० यादव जी की पुस्तक मैंने भी देखी है। उसका विषय विषपान नहीं। वैसे वह यही मानते हैं कि महर्षि का विषपान से बलिदान एक ऐतिहासिक तथ्य है परन्तु सरकारी रिकार्ड उन्होंने नहीं देखा। श्री भैरवसिंह जोधपुर वाले सरकारी रिकार्ड पर सप्रमाण प्रकाश डालेंगे। डा० एडम कौन था और डा० रोडम कौन था। मैंने इस विषय की जांच की। श्री भैरवसिंह जी ने सप्रमाण तथ्य लिख दिया तथापि स्थान अभाव से पुस्तक में इसकी चर्चा न की।

सर्विदसिक सभा के मन्त्री श्री त्यागी जी ने ८. ३. के अपने एक पत्र में श्री अशोक आर्य अबोहर को लिखा है कि मेरे लेख उन्होंने पढ़े हैं अच्छे हैं। वीकली में लेख छपवाने के वह यत्न में हैं उसी लेख का प्रचार किया जाना चाहिए। मेरी लिखी पुस्तक का प्रचार करने में मन्त्री जी

शेष पृ० १० पर

क्रमागत—

माण्डूक्य पर आचार्य गौडपाद कारिकाओं की समीक्षा (२१)

(ले० श्री स्वामी ब्रह्मानन्द जी आर्य त्रैतवेदान्ताचार्य, मु० ओंकार आश्रम, चान्दोद, बड़ोदा)

अरे क्या चश्मे के द्वारा देखा या पढ़ा गया अथवा कलम के द्वारा लिखा गया। पत्र के द्वारा समाचार जाना गया तो क्या पत्र लेख किताब आदि सब ये उक्त चश्मा कलम आदि जड़ के आश्रय से जानने में आने वाले होने से परतन्त्र एवं मिथ्या थोड़े ही कहे जावेंगे ? अर्थात् कभी भी नहीं क्योंकि उन चश्मा आदि साधनों के द्वारा हम स्वयं देखने लिखते पढ़ते हैं क्योंकि हम स्वयं चैतन्य ज्ञान स्वरूप जो अपनी चेतनामयी शक्ति तत्तद् जड़ इन्द्रियों को जो न दें तो ये बुद्धि आदि इन्द्रियां हमें दिखाने सुनाने बुलाने विचारने की शक्ति उन इन्द्रियों में कहां ? देखो मुर्दा क्यों देखता सुनता बोलता नहीं, इसीलिये कि उस शरीर में चेतनात्मा अब नहीं है। इसीलिये पदार्थ सब इन्द्रियाश्रित नहीं किन्तु अपनी प्रकृतिस्थ हैं क्योंकि जो मिट्टी का अस्तित्त्व न हो तो घड़े का अस्तित्त्व कभी नहीं हो सकता, इसलिये घड़े का अस्तित्त्व या उसकी सत्ता अपने मिट्टी रूप उपादान से है न कि कुंभार की बुद्धि के परतन्त्र है। और कुंभार के अस्तित्त्व पर उसका अस्तित्व जो बताये उससे पूछो कि क्या कुंभार मिट्टी से वस्त्र तैयार कर सकता है ? कभी नहीं ? तब तुम्हीं कहो घट की परतन्त्र सत्ता कैसे हुई ? इसीलिये सांख्य का सत्कार्यवाद यह सिद्ध कर प्रत्यक्ष बताता है कि आंख खोलकर देख लेवें और अपनी बुद्धि से स्वयं विचार लेवें कि घड़े का अस्तित्त्व अपने उपादान मिट्टी पर है कुंभार की क्रिया या बुद्धि पर नहीं, हां कुंभार में घट को मिट्टी से बाहर लाने का या प्रगट करने का गुण अवश्य है उसमें इससे काई घट की परतन्त्रता नहीं कही जाती। नहीं तो कपड़े की भी परतन्त्रता सिद्ध हो जाती, परन्तु ऐसा न देखा जाता है न अनुभव में आता है। तो इसी प्रकार सभी भाववान् पदार्थों का अस्तित्त्व व्यक्ति की इन्द्रियों के आश्रित नहीं है किन्तु उनके उपादान पर है व्यक्ति तो अपनी चेतनामयी ज्ञान को अपने स्वकीय इन्द्रियादि करणों से उन पदार्थों को मात्र अपने स्वार्थ के लिये उपलब्ध ही मात्र करता है, क्योंकि भोगायतन शरीर उन प्राकृतिक स्थूल भोगों को इन्द्रियों द्वारा इसीलिये भोगता है कि वह स्वयं सूक्ष्मतम होने से स्थूल भोगों को पकड़ने वा ग्रहण करने के लिये उनके जैसे ही स्थूल इन्द्रियादि करणों की जरूरत वैसे ही पड़ती है जैसे रोटी को चिमटे की और कांटे को पकड़ने के लिये छोटी चिमटी की जरूरत होती है उसी प्रकार समझ लेवें कि शब्दस्पर्श रूप रस गन्ध को ग्रहण करने के लिये तत्तद् इन्द्रियों की जरूरत है तो सभी भोग पदार्थ उतने ही सत्य हैं जितने हम स्वयं हैं और जो लोग इन भोगों को इन्द्रियाश्रित होने से इन्हें परतन्त्र सत्ता वाले कहें और मिथ्या बतलावे तो उनसे पूछो कि जब तुम इन भोगों को मिथ्या वा झूठे मानते हो तो फिर इन्हें क्यों भोगते हो वा क्यों तुम अपनी इन्द्रियों से खाते पीते सूंघते देखते सुनते बोलते रस स्वादन करते स्मरण करते हो ? जो कहो मिथ्या मानकर मिथ्या दशा में ही हम उन्हें भोगते हैं। तो भी ऐसा करना युक्तियुक्त नहीं। क्योंकि मिथ्या भ्रान्ति की अवस्था में तो मिथ्या वा सत्यासत्य का विवेक ही नहीं होता ? क्या नन्हें शिशु को सत्यासत्य का सर्वथा विवेक होता है ? वह तो छुरी या सर्प को भी खिलौना समझकर पकड़ने दौड़ता है और जहर को भी उठाकर खाने लगता है किन्तु उसके माता पितादि संरक्षक क्या उसे ऐसा विपरीत आचरण करने भी देते हैं ? कभी नहीं। तब तुम्हीं कहो कि तुमने मिथ्या दशा में मिथ्या ही पदार्थ को कहां जाना ? किन्तु सत्य ही मानकर स्वीकार किया है और जब प्रत्यक्ष ही पदार्थ भी दीख रहा है एवं उसकी उपलब्धि भी हो रही है और उस उपलब्धि से सुख दुःख की वेदना भी हम अनुभव कर रहें हैं तब वे तुम्हारे केवल कथन मात्र से कैसे मिथ्या पदार्थ मान लिये जावेंगे ? कभी नहीं। अरे क्या कोई स्वप्न में उपलब्ध हुई अशर्फीयों से जाग्रत में आकर उनके मिलने से मैं अब धनवान् बन गया हूं ऐसी खुशी एवं सन्तोष प्राप्त करेगा समझदार ? पर कभी नहीं। किन्तु स्वप्न के समान जाग्रत के पदार्थ मिथ्या हैं ही नही। परन्तु सोने से पहले जिन पदार्थों को जैसे देखा सुना छोड़ गये थे उन्हें हम निद्रा भंग होने पर भी वैसे पाते हैं पर स्वप्न के पदार्थों में यह बात नहीं होती। इसलिये स्वप्न के पदार्थ मिथ्या हैं जाग्रत के सर्वथा सत्य हैं। परन्तु जो उन्हें फिर भी मिथ्या मानते—कहते हो वे भूखे प्यासे चुपचाप श्वास लिये बिना बैठे रहें तो उन्हें पता चल जायगा कि ये सब सत्य हैं सर्वथा कि असत्य ? अरे असत्य तो वह हो सकता और कहा जा सकता है जिसकी उपलब्धि वा प्रत्यक्ष देखने में आने पर भी जिसकी पदार्थ रूप से विद्यमानता और भोगने पर भी परितृप्ति क्षुधा आदि वेगों की शान्ति न हो। जैसे स्वप्न के पदार्थ अवश्य संस्कारमात्र होने से काल्पनिक कह सकते हो, उनको मिथ्या कहा जा सकता है। क्योंकि सोया हुआ मनुष्य उन्हें उपलब्ध करके भी जाग्रत में आने पर वहां की उपलब्धि से परितृप्त नहीं होता। भूखा प्यासा ही उठता है किन्तु जाग्रत के भोगों को हम सोने से प्रथम जैसे देख सुन भोग गये थे वैसे ही पुनः जागने पर वे वैसे के वैसे ही उपलब्ध होते हैं कुछ भी उनके देखे सुने भोगे हुये में फेर नहीं पड़ता किन्तु स्वप्न में के पदार्थ और स्वप्न तो सभी को नित नये पृथक् पृथक् अनुभव आते हैं और परितृप्ति वेदना भी जाग्रत् में नही देते इससे वे झूठे हैं परन्तु जाग्रत् के पदार्थ सत्य ही बने रहते होने से वे मिथ्या बिल्कुल ही नही किन्तु सर्वथा सत्य ही हैं। मिथ्या और परतन्त्र पदार्थ सब तो तब होते कि जब कुंभार भी मिट्टी में मे घट के समान पट वस्त्रादि भी अपनी बुद्धि के संकल्प एवं प्रयत्न से निकाल देता किन्तु मिट्टी से घट के अतिरिक्त पटादि विजातीय वस्तुयें निकलती न होने से वे घट आदि कुंभार के बुद्धि क्रिया के आश्रित हैं न परतन्त्र है न मिथ्या है किन्तु घटत्व धर्म तो अपनी मिट्टी रूप धर्मी में प्रथम से ही विद्यमान जो न होता तो कुंभार कितना भी अपनी बुद्धि एव क्रिया का जोर लगाता रहता कभी भी घट तैयार न कर सकता। अर्थात् घटत्त्व पटत्त्व धर्म तो अपने धर्मी के सहित अनन्यता से ही सदा सर्वदा काल से बना रहता है। तो इसीलिये वह न परतन्त्र है न मिथ्या ही है किन्तु सर्वथा सत्य है और सत्य को ही सत्ता वा भाव रूप कहा जाता है तो जिसे तुमने याने बौद्ध एवं नवीन वेदांति ने एक बार सत्ता रूप मान लिया तब फिर मिथ्या मानना या कहना यह तुम्हारी अबोधता या फिर छल ही कहा जायेगा। जिनकी बात ही मूर्खता या धूर्तता से भरी हो ऐसो की बातों पर कौन समझदार विश्वास करेगा ? हर्गिज नही। इसलिये सभी सत्ता के अस्तित्त्व को कायम करने वाला उसका भोक्ता स्वयं सिद्ध है तो उसके सहित उसकी सभी सत्ता सत्तारूप से ही बनी रहेगी मिथ्या नहीं हो सकती इसलिये भोक्ता भोग एवं भुगाने वाला ये तीनों ही परमार्थ मान जावेंगे।

विकल्पो विनिवर्तेत कल्पितो यदि केन चित्।
उपदेशादयं वादो ज्ञाते द्वैतं न विद्यते ॥१८॥

आगम प्र० की १८ वीं का०

अर्थ—इस गुरु शिष्यादि विकल्प की यदि किसी ने कल्पना की होती तो यह निवृत्त भी हो जाती। यह (गुरु शिष्यादि) वाद तो उपदेश के ही लिये है। आत्मज्ञान हो जाने पर द्वैत नहीं रहता ॥१८॥

समीक्षा—वाह गुरु वाह ? आप दोनों ही बड़े छोटे गुरुओं को दूर से ही नमस्कार है। इससे पहले जगत् प्रपंच को कल्पित कह आये और अब इस कारिका में शास्त्रोपदेश रूप शिष्य संवाद को ही आप दोनों गुरुजन कल्पित वा मिथ्या बतला रहे हैं। तो इस आपकी उक्त बात में आखिर कौन सा प्रमाण है कि इस उक्त संवाद को आप लोग रज्जू में सर्प की भ्रांतिवत् मिथ्या कल्पित मानते एवं कहते हैं ? यदि कहो हम व्यवहार दशा में सभी कुछ मिथ्या मानते हैं, तो फिर आप दोनों गुरु और आप दोनों अद्वैतवादी गुरुओं के संवाद उपदेश एवं आप लोगों की बनाई हुई अद्वैत की प्रक्रिया भी कल्पित मिथ्या हुई कि नहीं ? यदि कहो हाँ, तो तुम्हारी इस बात से तुम्हीं लोग स्वयं झूठे मिथ्यावादी भ्रान्त सिद्ध हो गये। ● (क्रमशः)

गतांक से आगे—

योगी का आत्मचरित्र (गंगा से गंगा सागर)

सब ही आत्मचरित्रों की एक वाक्यता (६४)

(ले० श्री स्वा० सच्चिदानन्द योगी, अध्यक्ष श्री नारायण स्वामी आश्रम, महामहिम पातञ्जलयोग साधना संघ आ० बा० आ० ज्वालापुर सहारनपुर)

ये संघर्ष प्रतिक्षण निर्बल और धीमा पड़ता गया। उसमें बेहोशी और निष्फल हतोत्साह था। वह एक दर्दनाक दृश्य था। जब यह भयंकर कृत्य किया जा रहा था, तो एक बार वह अभागा पीड़ा से उन्मत्त होकर अपने पीड़ादायकों से भाग निकला। और चूंकि वह भयंकर रूप से जल चुका था इसलिये थोड़ी दूर ही भाग सका। वे उसे पकड़कर और फिर उसे उसी आग पर रख दिया और तब तक रखे रहे जब तक उसके प्राण-पखेरू उड़ नहीं गये। — मेजेण्डी उद्धृतग्रन्थ पृ० १८६-८७॥

—अठारह सौ सत्तावन—पृ० ४३०-४३१

५८ में तो यह अत्याचार अंग्रेज कर ही रहे थे। इन घटनाओं को प्रकाशित नहीं कर सकता था। पीछे भी अंग्रेजी राज्य में यही स्थिति रही। "The few contemporary Indians who wrote on 1857 did so for the british।" ५७ के बारे में कुछ समकालीन भारतीयों ने लिखा भी तो केवल अंग्रजी के लिये—

—Revellion 1857– P. 119

९ अगस्त १८९६ के पाआनीयर ने लिखा—जो अंग्रेज का ही प्रभावशाली हिस्सा था—"We know how English men within the memory of living men treated their own newspaper writers.—If a gentie and graceful writes forgot himself so far as to call the Prince regent.

On a donis of forty he got to years 'hard' If clergy man praised the French Revolution and advocated Parliamentry reform and fair representation, he was condemned to work in iron manacles, to wade in sludge among the vilest crimenals.

The writes advocated the in fliction of the same punishment on an Indian who dared to write on the Indian Muteny 1857.

—Major B D. Basu Rise of the Christian power in India P. 935

Indian thus had no say in this controversy but ous-rebel ancestors with their heroic deeds and by sheding their warm blood had made their contribution more eloquent than words.

—हम जानते हैं वर्तमान में जीवित लोगों को स्मृति में अब है कि अंग्रेज अपने ही समाचार पत्र लेखकों के साथ क्या व्यवहार करते थे। यदि कोई सज्जन प्रसिद्ध लेखक भी यदि भूल जाता था, और नाबालिग राजकुमार के रहते शासन करने वाले को 'एक चालीस साल का एडोनी' लिख देता था तो उसे दो वर्ष का कठोर कारागार भुगतना पड़ता था। यदि कोई पादरी फ्रांस की क्रान्ति की प्रशंसा करता और पार्लियामेण्ट के सुधारों, और विशुद्ध प्रतिनिधि लिये जाने की बात का समर्थन करता तो उसको तिरस्कृत किया जाता और हथकड़ी लगाकर उससे जेल में मुशकत कराई जाती। तो उसे कीचड़ दलदल में बर्बर मुजरिमों में रखा जाता था।

क्रान्ति इतिहास के लेखक भी उस कठोर दण्ड को ठीक सिद्ध करते थे जो किसी भारतीय को दिया जाता था जो १८५७ की क्रान्ति पर लिखने का साहस करता था। —मेजर बी. डी. वसु—राइज आफ दी किश्चियन पावर इन इण्डियन पृ. ९३५

भारतीय किसी की भी विपरीत बात नहीं कह सकते थे। बस हमारे क्रान्तिकारी पूर्वजों ने अपने शौर्य भरे कारनामों और अपना गरम गरम खून बहाकर इसे अपने लहू से लिख गये हैं, जो शब्दों से भी अधिक सुस्पष्ट है॥ —रिबेलियन १८५७ पृ० ११९

ऐसी परिस्थिति में दयानन्द की उन दिनों की बात कोई समाचार पत्र या व्यक्ति नहीं बता सकता। वे स्वयं ही बता सकते हैं। उन्होंने सावधानी से बताई। दयानन्द १८५९ अर्थात कार्तिक संवत् १९१७ में मथुरा पहुंचे। ३६ वर्ष की जीवन घटनायें वह ही बता सकते थे। नई घटना उन दिनों की किसी ने एक भी नहीं बताई जो आत्मचरित्रों में न आई हो। उन दिनों का कोई पत्र या विज्ञापन भी नहीं है। अतः शब्द प्रमाण की मांग बालिशता ही है।

"On the 18th April, the farce, called his trial, ended. I alia was sentenced to death." "१८ अप्रैल १८५९ को तान्तिया को ४ बजे फांसी दी गयी।"

—इण्डियन वार आव इण्डिपेण्डेन्स पृ० ५३९

"हमारा उल्लेखनीय मित्र, तात्या टोपे, बहुत ही कष्टप्रद और चतुर शत्रु है जिसकी तारीफ करनी पड़ती है? गत जून ५७ उसने मध्य भारत में आतङ्क जमाया हुआ है, उसने स्टेशनों को लूटा है। खजानों को छीन लिया है। उसने शस्त्र भण्डार मेगजीनों को खाली कर दिया है। सेनाएं संघटित कर ली हैं। उनमे हाथ धो बैठा है। युद्ध लड़े हैं। हार गये हैं। देशी राजाओं से तोपें ले ली हैं। उनसे भी हाथ धो बैठा है। और लीं खेत रह गयीं। तब उसकी गति दुधारी बिजली की तरह है। सप्ताहों तक यह दौड़धूप। वह ३०-४० मील एक दिन में निकल जाता है। उसने नर्बदा को पार किया है। कभी यहां से कभी वहां से। हमारी सेनाओं के मध्य से मार्च कर गया है। कभी उनके आगे कभी उनके पीछे। पूर्ण कारीगरी से लैस एरियल भी मर्मज्ञ नहीं था। कभी पहाड़ों के ऊपर, कभी नदियों पर, कभी खड्डों और दर्रों के बीच में, कभो पहाड़ी घाटियों में। कभी दलदलों में बढ़ता ही जाता है। कभी पीछे। कभी आगे। पगडण्डियों से। टेढे मेढे रास्तों से अभी झपटा डाक गाड़ी पर, बाम्बे डाक छीनकर ले गया। अभी एक गांव को लूट लिया। सरदार बना। जला दिया। प्रोच्युस की तरह बहुत ही चतुर चालाक।

—The times 17th gan. I. W. 57—P. 530

[In sessan feighal sixty inilesaday—६० मील प्रतिदिन की दौड़धूम—पृ० ५२९]

तात्या गया नर्बदा, चम्बल, बेतवा, बून्दी, नीमच, उदयपुर, इन्द्रौ, नाथवाडा सब ओर ही तात्या पत्तन, मालवा, रायगढ़, पवनखिण्डी, वरगांव, बड़ौदा सब ही उसकी पहुंच में थे। Tatia inarched straight to the source of Narbudahi.—तात्या ने नर्बदा के स्रोत अमर कण्टक की ओर प्रयाण किया।

—इण्डियन वार आव इण्डीपेन्डंस—पृ० ५३२

मानसिंह ने धोखा दिया। बाला साहब भी इसी प्रकार जदो जहद में थे। इस सबको इसलिये उद्धृत किया, नर्बदा उस समय सर्वथा दयानन्द के ठहरने के अनुपयुक्त था इसीलिये ऋषि ने कहा—'I prepared my self for futher events. भावी घटनाओं के लिये स्वयं को तैयार किया—थियाο जोο। इस प्रकार दयानन्द नर्बदा के जंगलों में अरक्षा देख, कलकत्ता होकर दक्षिण की यात्रा पर चल दिये। जहां उन्हें नाना साहब मिले। ऋषि पहले नेपाल की राजधानी काठमुण्डु भी हो आये थे। नाना भी नेपाल गये थे। अप्रैल १८५९ में नेपाल में प्रवेश किया—At this time, the number of revolution aries who enterw Nepal was about sixty thous and.—

—In. w. India. 578

६० हजार के लगभग क्रान्तिकारी नेपाल में प्रवेश कर गये। जंगबहादुर ने सहायता नहीं की। नाना ने आकर सरकार को पत्र भेजा—अन्त में लिखा है—"महाराजा जंग एक हिन्दू है। हम गोरखों के विरुद्ध लड़ना नहीं चाहते। यदि वह लड़ना चाहें तो हम अपने हथियार उनके फेंक देंगे। यदि हम कतल भी कर दिये जायें, हम इसे विना प्रतिरोध के स्वीकार कर लेंगे।" अन्त में लिखा है:—भारत पर कब्जा करने का तुम्हारा क्या अधिकार है, और मुझे मुजरिम कहने का भारत पर शासन का तुम्हें किसने अधिकार दिया। फिरंगियों तुम बादशाह हो और हम चोर अपने ही देश में।" —वहीं ५८०

यह शब्द ऋषि की सत्यार्थप्रकाश आर्याभिविनय और कलकत्ते के गवर्नर आदि को दिये उत्तरों की प्रतिध्वनि मात्र है।

नाना का अन्त तक लापता रहना, दक्षिण से साधु वेश में दयानन्द से मिलन और मौरवी महल में गुप्तवास और प्रशान्त गम्भीर मृत्यु सब इसी ऋषि सञ्चालित क्रान्ति आन्दोलन की कड़ियां हैं। दयानन्द ने क्रान्ति में वहीं फलियां फोड़ीं जो लालबहादुर ने पाकिस्तान में, इन्दिरा ने बंगाल में, कृष्ण ने महाभारत में और चर्चिल ने दूसरे विश्वयुद्ध में फोड़ीं थीं।

(क्रमशः)

गतांक से आगे—

योगी का आत्म चरित्र एक मनघडन्त कहानी

(लेखक—श्री स्वामी पूर्णानन्द जी सरस्वती-बड़ौत-जिला मेरठ)

इस सन्दर्भ में भी गंगा बाई का कोई जिक्र नहीं है। इसके अतिरिक्त 'अठारहसौ सत्तावन' के एक और दूसरे लेखक श्रीनिवास बाला जी हार्डीकर ने अपने इतिहास में पृ०१९७ में लिखा है:—

"नाना साहब के साथ उसके कुटुम्ब की स्त्रियां भी नेपाल में गई थीं। चालीस वर्ष तक वे वहां रहीं। राणाजंगबहादुर ने उनकी सहायता की नाना साहब की बहन कुसुमावती उर्फ बयाबाई आप्टे भी नाना साहब के साथ नेपाल से रही। उसकी मृत्यु सन् १९१७ में हुई। मृत्यु से पूर्व उसने नाना साहब की मृत्यु के सम्बन्ध में इतिहासाचार्य राजवाड़े से जो बातें कीं, वे सबसे अधिक विश्वसनीय प्रतीत होती हैं; उसी के शब्दों में:—नानासाहब नेपाल की ओर बढ़े। वहां उन्हे आश्रम देने के लिये कोई तय्यार नहीं था। नेपाल की सीमा में जाते ही वहां का राजा उसे बाहर कर देता। अंग्रेजी राज्य में जाना तो कठिन ही था। अंग्रेजों का सुदर्शन चक्र रातदिन उन पर पहरा दे रहा था। नाना को दिन रात चैन नहीं था १४ मास तक कभी इस सीमा में कभी उस सीमा में, इस प्रकार भागते ही रहना पड़ा। सत्त से अन्यधिक श्रम और कष्टों के कारण नाना को ज्वर आने लगा, वह विषमज्वर में परिणत हो गया। नानासाहब ज्वर में बेहोश पड़े थे, लेकिन इस पर भी नेपाल के राणा उनसे अपनी सीमा से बाहर जाने का तकाजा करते ही रहे। तब लोगों ने हमको पास के गांव में भेज दिया और नानासाहब को देवखोरी नामक गांव के पास ले गये। वहीं उनका अन्त हुआ। वहीं लोगों ने उनका दाहसंस्कार किया, और उसकी अस्थियां लेकर स्त्रियों के पास आये। नानासाहब की उत्तर क्रिया मेरे ही सामने हुई। उस समय मैं १२ वर्ष की थी"। नाना साहब के सम्बन्ध में इससे अधिक प्रामाणिक और विश्वसनीय साक्षी और नही हो सकती। डा० सेन ने भी हार्डीकर के लेख के साथ मिलता जुलता लेख इस प्रकार से दिया है:—"कुसुमबाई जिसका नाम बयाबाई भी था की शादी ग्वालियर के सरदार बाबा साहब आप्टे से हुई थी......वह और उसकी दोनों सौतेली माताएं उसके भाई के साथ नेपाल चली गई थीं और जब पूरी तरह शान्ति हो गई तो वह अपने पति के साथ आगई"।(अठारह सौ सत्तावन पृ०१९७)

इन उद्धणों से कई बातें स्पष्ट हो गई—(१)नानासाहब की माता का सन् १८२४ के बाद कहीं पता नहीं चलता न कानपुर में, न नेपाल में और न झांसी के महलों में न मैदानों में, न कहीं आकाश में और न पाताल में ऐसी अवस्था में यदि कोई कहता है कि मैंने गंगाबाई को सन् १८५५ में हरद्वार के कुम्भ के अवसर पर देखा है तो उस व्यक्ति के मस्तिष्क में अवश्य बड़ा भारी विकार है। दीनबन्धु जी और योगी जी तो इस से बच जायेंगे परन्तु कल्पित दयानन्द को इसका शिकार अवश्य बनादेंगे।(२) नाना साहब की मृत्यु निश्चित रूप से अक्तूबर सन् १८५९ में हो गई थी। योगी जी तो इस सूर्य के समान स्पष्ट चमकती हुई सच्चाई को स्वीकार करेंगे नहीं; उन्हें इस बात से क्या लाभ है कि सत्य के ग्रहण करने और असत्य के परित्याग करने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिये? उन्हें तो इसे मानने में घाटा ही घाटा है! यदि वे इस सत्य को स्वीकार करलें तो उनकी झूठी पुस्तक को १५)में कौन खरीदेगा? क्योंकि उन्होंने तो अपनी पुस्तक में यह लिख दिया कि नाना जी तो नेपाल से आकर मौरवी और टंकारा में रहने लगे थे और उन दोनों स्थानों में उनकी छतरी और समाधि है और वे १२७ वर्ष के होकर सन् १९५१ में मरे

योगी जी को 'डूबते को तिनके का सहारा' मिल गया। वीर सावकर के इतिहास से! आप लिखते हैं:— "नेपाल से नानासाहब ने एक पत्र अंग्रेजों को लिखा था:- "What right have you to occupy India and declare me out—law" तुम्हारा क्या अधिकार है कि भारत पर अधिकार का मुझे अपराधी घोषित करने का? इस पत्र के पश्चात् क्या हुआ, इस सम्बन्ध में इतिहास मौन है"। (यो० आ० च० पृ० ११५) (यहां जरा पाठक योगी जी की अंग्रेजी दानी का नमूना भी देखते चलें। अर्थ होना चाहिये—तुम्हें भारत पर कब्जा करने और मुझे अपराधी घोषित करने का क्या अधिकार है?)

'इस सम्बन्ध में इतिहास मौन है' पर ही योगी जी ने अपना काल्पनिक भव्यवभन खड़ा किया है जिसकी वास्तविकता को कोई बुद्धिमान् स्वीकार नहीं कर सकता। यद्यपि सावरकर जी ने अपने इतिहास में यह अवश्य लिखा है कि इस पत्र के पश्चात् क्या हुआ, इस सम्बन्ध में इतिहास मौन है, परन्तु सावरकर जी का इतिहास सन १९०९ में छप चुका था, उस समय तक कोई ऐतिहासिक तथ्य सामने नहीं आया था। अतः एक सच्चे ऐतिहासिक होने के कारण उनका यह कहना ठीक ही था; परन्तु कुसुमावती का बयान तो सावरकर के लेख से ८ वर्ष बाद अर्थात् सन १९१७ में हुआ था। इसकी पुष्टि शेरर के बयान से भी होती है, जो क्रान्ति के दिनों में कानपुर —में मौजूद था उसने लिखा था:—"इस वर्ष (१८५९) जाड़ों में नानासाहब की मृत्यु हुई, क्योंकि उसी समय उसके आश्रित अनेक लोग नेपाल से अयोध्या होते हुए आये,,। उसी समय ज्वालाप्रसाद (जो नाना की सेना में ब्रिगेडियर था) भी पकड़ा गया था, उसने अपने बयान में कहा था—"नाना साहब की मृत्यु समय में उपस्थित नहीं था, पर दाह कर्म मेरे सामने हुआ"। इन दोनों गवाहों से अधिक विश्वसनीय और कौन गवाह हो सकता है? एक नाना साहब की अपनी सगी बहिन, कुसुमावती और दूसरा नानासाहब का सर्वाधिक विश्वास पात्र उनका सेना पति ज्वालाप्रसाद अतः इन दोनों अत्यन्त विश्वसनीय प्रमाणों के होते हुए किसी काल्पनिक कहानी पर विश्वास करना या किसी अखबार की कतरन का गीदड़ का परवाना समझना निरी बे समझी या स्वार्थ भावना ही हो सकती है!

अब तक हमने यह सिद्ध किया है कि योगी जी के तथाकथित ऋषि सम्मेलन के समय नाना साहब की माता का जीवित रहना सिद्ध नहीं होता। अतः १८५५ में हरद्वार में उनका जाना सिद्ध नहीं हो सकता अतः योगी जी का कहना झूठ है। दूसरे व्यक्ति जिनका हरद्वार में जाना लिखा है वह नाना साहब के छोटे भाई बाला साहब थे। यद्यपि योगी जी ने बाला साहब के हरद्वार जाने का कोई प्रमाण तो नहीं दिया, परन्तु अन्ध-विश्वासी पाठकों की सन्तुष्टि के लिये बालासाहब की वीरता और शौर्य का पुल बान्धा है। वे लिखते हैं:—"बालासाहब बड़े भाई नाना साहब का वैसे ही अनुकरण करते जैसे लक्ष्मण भगवान् राम का अनुसरण छाया की तरह करते थे। गंगा में प्रतिज्ञा लेने के समय भी साथ थे...इनका युद्ध कौशल और वीरता से मृत्यु के साथ खेल ५७ को भारतीय स्वातन्त्र्य समर में पढ़ने की एक मात्र निधि है,,। हम उस 'एक मात्र नि.ध' को भी इतिहास से निकाल कर रखते हैं—"About the same time Hauelock was pushing forward after defeating the army sent by Nana Sahib at pandu madi. Commander Bala Sahib washit by a bullet in the shoulder in a skimish and revrned to Cawnpur" p. 253

अर्थात् "लगभग उसी समय हैवालक उस सेना को हराकर आगे बढ़ रहा था जिसको नाना साहबने पाण्डू नदी के किनारे भेजा था। कमाण्डर बालासाहब को एक छोटी सी मुठभेड़ में कन्धे पर गोली लगी और वह कानपुर को लौट आया,,। इस लड़ाई में बालासाहब की इस बात को वीरता कहिये या कुछ और? कि वह कन्धे पर गोली लगने से कानपुर को लौट आया, इसके अतिरिक्त बालासाहब के सम्बन्ध में इस लड़ाई में एक शब्द भी नहीं। दूसरी वीरता बाला जी की कालपी की है जहां नाना साहब ने उसको अपना प्रतिनिधि बनाकर भेजा था, परन्तु वहां भी बालासाहब ने तात्याटोपे को कमाण्डर बना दिया और स्वयं युद्ध भूमि में नहीं गया(शायद कमाण्डरी का मजा पहले चख लिया था)इसके अतिरिक्त आने जाने में उसका उल्लेख नानासाहब के साथ है, परन्तु किसी महत्वपूर्ण कार्य में उसका हाथ दिखाई नहीं देता। परन्तु अपने भाई का अनुसरण करना और गंगा में घुसकर शपथ ग्रहण करना क्या था? इसका पता उसके हाथ से लिखे हुए पत्र से चल जाता है जो उसने २५ अप्रैल सन् १९५८ को एच० रोक्राफ्र, ब्रिगेडियर, समदेशक अधिकारी जिला गोरखपुर को लिखा:—प्रेषक—बालासाहब—अंग्रेजों को दी गई पत्रिका का अनुवाद। — ● (क्रमशः)

आर्य समाज के दो साहित्यकार

(ले० डा० भवानी लाल भारतीय, अजमेर)

मुंशी चिम्मनलाल वैश्य तिलहर निवासी

नारी शिक्षा के सुप्रसिद्ध ग्रन्थ नारायणी शिक्षा के लेखक श्री चिम्मन-लाल वैश्य मूलतः कासगंज (जिला एटा) निवासी थे। ऐसा अनुमान होता है कि कालान्तर में वे तिलहर (जिला शाहजहाँपुर) में रहने लगे थे उनके पिता का नाम लाला टीकाराम था। श्री चिम्मनलाल ने आर्य-समाज के साहित्य की महती सेवा की है। उनके द्वारा रचित ग्रन्थों का विवरण इस प्रकार है—

(१) नारायणी शिक्षा अर्थात् गृहस्थ धर्म–भारतीय हिन्दू नारी को शिक्षित तथा सुसंस्कृत बनाने की दृष्टि से इस महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ की रचना लेखक ने विगत शताब्दी के नवम दशक के उत्तरार्द्ध में की। इसका प्रथम प्रकाशन १८८६ ई० में हुआ। लेखक ने इसका सर्वाधिकार रजिस्ट्री करा कर सुरक्षित कर लिया था। इसमें गृहस्थ धर्मोपयोगी ५०० से अधिक विषयों का विवेचन हुआ है? पुस्तक की लोकप्रियता का पता इसी बात से लग सकता है कि इसके अनेक संस्करण छपे। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी जैसे हिन्दी के मूर्धन्य समालोचक ने स्वसम्पादित सरस्वती मासिक पत्रिका (भाग १० संख्या ७) में पुस्तक की समालोचना लिखते हुये इसकी उपयोगिता स्वीकार की थी।

(२) सरस्वतीन्द्र जीवन अर्थात् १०८ श्री महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी का जीवन चरित्र। पं० लेखराम रचित स्वामी दयानन्द के उर्दू जीवन चरित का आधार लेकर यह जीवन चरित लिखा गया। तथापि इसमें कई विशिष्ट बातों का उल्लेख किया गया है। यथा काशी शास्त्रार्थ पर विभिन्न पत्रों की सम्मतियां उदयपुर में स्वामी जी की दिनचर्या, जैनाचार्य स्वामी आत्माराम (आनन्द विजय) तथा साधु सिद्धकरण के साथ स्वामी दयानन्द का शास्त्रार्थ, पादरी ग्रे से शास्त्रार्थ, आर्य सन्मार्ग सन्दर्शनी सभा का वर्णन, जालन्धर तथा उदयपुर में मौलवियों से स्वामी जी के शास्त्रार्थ आदि। तृतीय संस्करण १९२१ में प्रकाशित हुआ।

(३) पुराण तत्त्व प्रकाश-तीन भागों में प्रकाशित यह वृहद् ग्रन्थ तथाकथित अष्टादश पुराणों के व्यास प्रोक्त होने तथा उनके आर्ष ग्रन्थ होने का खण्डन करता है। इसका प्रथम भाग १९०९ ई० द्वितीय भाग १९१० ई० में तथा तृतीय भाग १९११ ई० में आर्य भास्कर मंत्रालय आगरा से मुद्रित हुये। लेखक ने इस पुस्तक के प्रकाशनाधिकार भी रजिस्ट्री के द्वारा स्वायत्त कर लिये थे।

(४) मूर्ति पूजा विचार।

(५) रत्न जोड़ी (हकीम लुकमान् की शिक्षाओं का संग्रह)।

(६) अनमोल रत्न—१८९१ ई० में आर्य दर्पण प्रेस शाहजहाँपुर से मुद्रित होकर प्रकाशित हुई।

(७) मित्रानन्द—१८८८ ई० में आर्य दर्पण प्रेस शाहजहाँपुर से मुद्रित होकर प्रकाशित हुई।

(८) मौत का डर।

(९) पुत्री उपदेश—(गृहस्थाश्रम द्वितीय भाग)।

(१०) रत्न भण्डार—रामायण से भिन्न भिन्न विषयों पर उद्धृत पदों का सरलार्थ सहित संग्रह।

(११) प्रेमधारा—उपन्यास शैली में लिखित स्त्री शिक्षा विषयक ग्रन्थ। अपरनाम नारीभूषण जीवन चरित, दशरथ, राम, लक्ष्मण, भरत महात्मा विदुर, युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन, द्रोणाचार्य, दुर्योधन, धृतराष्ट्र, पं० गुरुदत्त, महात्मा पूरण भक्त, महारानी मन्दालसा इनकी पुत्री श्रीमती प्रियंवदा देवी ने आनन्दमयी रात्रि का स्वप्न, धर्मात्मा चाची और अभागा भतीजा तथा कलियुगी परिवार का एक दृश्य शीर्षक तीन उपन्यास शैली के उपदेशात्मक ग्रन्थ लिखे।

पीयूषवर्षी स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

ऋषि दयानन्द के भक्ति भावापन्न जीवन चरित श्रीमद्दयानन्द प्रकाश के अमर लेखक स्वामी सत्यानन्द जी का जन्म ग्राम पोठोहार (जिला रावलपिण्डी) में सन् १८६२ ई० में हुआ। ये जैन मतावलम्बी थे। जैन समाज में इनकी पर्याप्त ख्याति थी। यद्यपि जैनमत के अनुसार इन्होंने अनेक कृच्छ साधनायें की परन्तु आत्मिक सन्तोष नहीं मिला, तब ये आर्यसमाज की ओर आकृष्ट हुये तथा दिसम्बर १८६८ में विधिवत् आर्यसमाजी बन गये। आर्यसमाज बच्छोवाली लाहौर में रह कर स्वामी जी ने रामायण, महाभारत, उपनिषद्, वेद आदि का अध्ययन किया और इन्हीं ग्रन्थों की सरल कथायें आर्यसमाजों में करने लगे। मधुर एवं आकर्षक शैली के कथावाचक के रूप में स्वामी सत्यानन्द को आर्यसमाज में प्रचुर कीर्ति मिली। सन् १९२१ ई० में आप गुरुकुल कांगड़ी के आचार्य पद पर प्रतिष्ठित हुये तथा १९२४ ई० तक इस कार्य का वहन करते रहे। पं० ठाकुरदत्त वैद्य अमृतधारा वालों के यहां आपका स्थायी निवास रहता था। आर्य प्रतिनिधि सभा सभा पंजाब ने १९२५ में जब गुरुदत्त भवन में उपदेशक विद्यालय प्रारम्भ किया तो स्वामी जी ने इस कार्य हेतु एक लाख रुपया एकत्र कर सभा को भेंट किया। ९ अक्टूबर १९२७ ई० को जब आप महाशय राजपाल बुकसेलर की दुकान पर लाहौर के अनारकली बाजार में बैठे थे तो अब्दुल अजीज नामक मुसलमान ने इन्हें ही 'रंगीला रसूल' का प्रकाशक महाशय राजपाल समझकर छुरे से घायल कर दिया। पर्याप्त समय तक अस्पताल में रहने के पश्चात् आप स्वस्थ हुये।

कालान्तर में स्वामी जी के विचारों में परिवर्तन भी आ गया और आप सन्तमत की ओर झुक गये। राम नाम की दीक्षा भी देने लगे और अपने इन विचारों को पुस्तक के रूप में भी निबद्ध किया जिसे अपने अनुयायियों की मण्डली में प्रचारित करते थे। पं० बुद्धदेव जी मीरपुरी ने स्वामी जी के इस सिद्धान्त स्खलन की आलोचना एक पुस्तक में की है जिसका नाम था 'सत्यानन्दी पाखण्ड खण्डन' यह आर्य प्रेस अमृतसर से १९३० ई० में प्रकाशित हुई। ९८ वर्ष की दीर्घायु प्राप्त कर स्वामी सत्यानन्द १३ नवम्बर १९६० को परलोकवासी हुये। स्वामी सत्यानन्द कृत ग्रन्थों का विवरण इस प्रकार है—

१) श्री मद्दयानन्द प्रकाश—स्वामी दयानन्द का यह जीवन चरित अत्यन्त ललित शैली में लिखा गया है। इसका प्रथम प्रकाशन १९७५ वि० (१९१८ ई०) में राजपाल अध्यक्ष, आर्य पुस्तकालय, लाहौर द्वारा हुआ। पुनः गोविन्दराम हासानन्द दिल्ली, सत्य प्रकाशन मथुरा तथा वेद प्रचारक मण्डल दिल्ली ने इसके विभिन्न संस्करण प्रकाशित किये।

२) एकादशोपनिषद् संग्रह—ईश से श्वेताश्वतर पर्यन्त ग्यारह उपनिषदों की सरल टीका। यह लाहौर से प्रकाशित हुई।

३) आर्यसामाजिक धर्म—आर्यसमाज के दस नियमों की सारगर्भित व्याख्या। इसका प्रथम संस्करण साहित्य सदन लाहौर से प्रकाशित हुआ। इसका द्वितीय संस्करण सुधारक (झज्जर गुरुकुल का मासिक मुख पत्र) के विशेषांक के रूप में फाल्गुन २०१५ वि० में प्रकाशित हुआ।

४) दयानन्द वचनामृत—सत्यानन्द ग्रन्थ माला के प्रथम पुष्प के रूप में साहित्य सदन लाहौर से प्रकाशित हुआ। इसमें ऋषि दयानन्द के विभिन्न पन्द्रह विषयों पर उपदेशों का संग्रह प्रस्तुत कियागया है। 'अमृत कलश' शीर्षक से आर्य ज्योति जालंधर ने फरवरी १९७२ में इसे पुनः विशेषांक के रूप में प्रकाशित किया।

५) ओंकार उपासना—इसके तीन विभिन्न संस्करण राजपाल एण्ड सन्स, लाहौर, दर्शनानन्द ग्रन्थागार मथुरा तथा ठाकुरदत्त धर्मार्थ ट्रस्ट देहरादून से प्रकाशित हुये।

६) भगवद् प्राप्ति क्यों और कैसे—पं० ओम्प्रकाश आर्योपदेशक, जालन्धर ने प्रकाशित किया।●

स्वामी स्वतंत्रानन्द जी—एक साहित्यकार के रूप में

(ले०—डा० भवानी लाल भारतीय, एम. ए. पी. एच. डी. अजमेर)

पुण्यश्लोक तपोधन स्वामी स्वतंत्रानन्द जी न केवल आर्य जगत् के अद्वितीय तपस्वी संन्यासी, अद्भुत नेतृत्व क्षमता वाले पथ प्रदर्शक एवं अध्यात्म पथ के पथिक ही थे अपितु समर्थ साहित्यकार तथा लेखक भी थे। उनके द्वारा रचित ग्रन्थों का विवरण इस प्रकार है—

(१) आर्य सिद्धान्त व सिख गुरु—सिख मत तथा आर्य धर्म का तुलनात्मक अनुशीलन उपस्थित करने वाला यह ग्रन्थ पंजाबी (गुरुमुखी) तथा हिन्दी मे प्रकाशित हुआ।

(२) सिख और यज्ञोपवीत—वैदिक साहित्य सदन, दिल्ली से प्रकाशित इस पुस्तक में सिखमत में यज्ञोमवीत संस्कार में महत्त्व की स्वीकृति सिद्ध की गई है।

(३) वेद की इयत्ता—ऋग्वेद की मंत्र संख्या का विवेचन करते हुये यह पुस्तक लिखी गई।

४) आर्यसमाज के महाधन—वैदिक धर्म और आर्यसमाज के प्रचारार्थ अपने प्राणों की आहुति देने वाले हुतात्माओं का यह विस्तृत जीवन परिचयात्मक ग्रन्थ है। इसे सार्वदेशिक सभा ने २००५ वि० में प्रकाशित किया।

५) पूर्वी अफ्रीका और मारीशस आदि में भारतीयों का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक सघर्ष तथा आंखों देखा वृत्तान्त—स्वामी जी ने १९४९-५० में उपर्युक्त स्थानों की यात्रा का विवरण प्रस्तुत किया है जो वैदिक साहित्य सदन दिल्ली से २००८ वि० में प्रकाशित हुआ।

स्वामी जी के अप्रकाशित ग्रन्थ—(१) महर्षि दयानन्द का पंजाबी भाषा में लिखित जीवन चरित। इसका कुछ अंश १९६०-६१ में आर्य-ज्योति में धारावाही प्रकाशित हुआ था। (२) सत्यार्थप्रकाश का पजाबी अनुवाद (३) आर्योद्देश्य रत्नमाला का पंजाबी अनुवाद (४) गोकरुणानिधि का पंजाबी अनुवाद।

६) स्वामी स्वतंत्रानन्द लेखमाला—स्वामी जी के फुटकर लेखो का संग्रह पं० रामचन्द्र जावेद द्वारा सम्पादित होकर आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब द्वारा प्रकाशित हुआ। स्वामी जी की एक विशद जीवनी प्रो० राजेन्द्र जी जिज्ञासु ने वीर संन्यासी के नाम से लिखी तथा एक लघु जीवनी श्री स्वामी वेदानन्द जी ने लिखी। ●

यज्ञ

पुण्य है पावन, देव वेदकी ऋचाएँ बोल,
ईश्वर, बानी को सुन, देव हरषाते हैं।
बता रहे सृष्टि की आदि से यज्ञ कर्म विधि,
यज्ञ से सुखद प्रभु वारी वरसाते हैं॥

यज्ञ कर्म छूटे तब दलित मानुष बने,
दाने दाने हेतु आज दीन तरषाते हैं।
अरे! "धनसार" यज्ञ कर्म को न छोड़ कभी,
यज्ञ ही वसन्त नव रूप सरसाते हैं॥

(२)

आर्य्यावर्त्त देश में ये यज्ञ ही है मुख्य कर्म,
आर्य देश, वही यज्ञ कर्म को न छोड़ते।
यज्ञ किये बिना आर्य्य, कार्य्य न करे कभी,
यज्ञ ही सिखाते कर्म यज्ञ मांहि जोड़ते॥

यज्ञ किये बिना कभी देव न बनत देवी,
असुर वही है जो यज्ञ से मुँह मोड़ते।
यज्ञमय "धनसार" जीवन बनाता वही,
बिना यज्ञ जीवन को दुख मांही बोड़ते॥

(कवि श्री कस्तूरचन्द "धनसार" कवि कुटीर पीपाड़ (रजि०)

"हर्षित सा आ गया बसन्त"

(श्री राधेश्याम श्री वास्तव आर्य भगवत भक्त आश्रम, लखनऊ-१)

नयी उमंगों से आपूरित धारण कर नूतन परिवेश।
अपनी विविध कलाओं से है सजा रहा अवनी का वेष।
ज्योतिष्मान किरण से जिसकी जग उठा है दिगदिगन्त।
हर्षित सा आ गया बसन्त॥

बालें लहराई खेतों में विकसे रंग बिरंगे फूल।
प्रमुदित से लग रहे मनोहर सरिताओं के सौम्य दुकूल।
नव जागृति का आज न मिलता कही दिखायी आदि व अन्त
हर्षित सा आ गया बसन्त॥

मादक सी पवन स्वर लहरी छोड़ रही पिक मतवाली।
'पिउ' की चातक लगा रहे रट विरह अग्नि जल, डाली डाली।
बिखरा है सौन्दर्य प्रकृति का भूमण्डल पर अमित अनन्त।
हर्षित सा आ गया बसन्त॥ ●

पृ० २ का शेष

ही लगता है। और उनकी प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणाली मे अनभिज्ञता ही प्रगट करता है। प्राचीन समय में गुरु एक शास्त्र को पढ़ाते हुये प्रसंग वश अन्य शास्त्रों का भी परिचय शिष्यों को करा देते थे। इस विषय में आयुर्वेद के महान् ग्रन्थ सुश्रुत संहिता का निम्न पद्य विचारणीय है।

"एकं शास्त्रमधीयानो न विद्याद् शास्त्रनिश्चयम्।
तस्माद् बहुश्रुतः शास्त्रं विजानीयात् चिकित्सकः॥
सूत्र अध्याय १

अर्थात् केवल एक शास्त्र के अध्ययन मात्र से ही किसी बात का निर्णय नही हो सकता अपितु अनेक शास्त्रो का ज्ञान करके किसी निर्णय पर पहुंचना चाहिये। इसलिये वैद्य का बहुश्रुत बहुत शास्त्रों का ज्ञाता होना चाहिये। भारत की प्राचीन शिक्षा प्रणाली में शिष्यों को बहुश्रुत बनाया जाता था। इसलिये प्रोफेसर साहब का यह कहना कि मथुरा में स्वामी जी ने विरजानन्द से केवल व्याकरण पढ़ा था, अत्यन्त हास्यास्पद है। ऋषि जैसा तेजस्वी और विवेकशील किसी साधारण व्यक्ति को अपना गुरु नही बना सकता था। प्रोफेसर साहब के अस्पष्ट चिन्तन और ढिलमुल विचार धारा का एक और नमूना देकर लेख समाप्त करते हैं।

उक्त रिसर्च बुलेटिन के पृष्ठ २२४ पर पदक्रमाक ४६ में वे लिखते है—स्वामी जी ने बनारस में वैदिक साहित्य पढ़ाने के लिए एक पाठशाला की सूचना हिन्दी विज्ञापन द्वारा दी थी। उसमें उन्होंने लिखा था "कि शूद्र (जन्म से) को मन्त्र भाग नही पढ़ाया जाएगा। (लेखराम)" हमने लेखराम लिखित तथा हिन्दी में आर्यसमाज नयाबास देहली से प्रकाशित स्वामी जी के जीवन चरित्र से इसका मिलान किया। वहा यह वाक्य इस प्रकार है। "इसमें ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य सब पढ़ेंगे वेद पर्यन्त और शूद्र मन्त्रभाग को छोड़कर सब शास्त्र पढ़ेंगे।" रिसर्च स्कालर प्रोफेसर महोदय ने उक्त मूल वाक्य में कष्ट में (By birth जन्म मे) यह वाक्य अपनी ओर से मिला दिया और यह दिखाने का प्रयत्न किया कि स्वामी जो उस समय तक (विज्ञापन तिथि जुलाई १८४७) जन्म जात-वर्णव्यवस्था मानते थे। पाठकों को स्मरण रखना चाहिये कि सितम्बर १८४७ में ही सत्यार्थप्रकाश का प्रथम संस्करण प्रकाशित हुआ था जिसमें जन्मजात वर्ण व्यवस्था की धज्जियां उड़ाई गई हैं। क्या दो तीन महीनों में ही स्वामीजी का मन्तव्य बदल गया।

स्पष्ट रूप से स्वामी जी ने स्वमन्तव्यानुसार ही वर्ण व्यवस्था का यहां उल्लेख किया है जो गुण कर्म योग्यता पर आधारित है न कि जन्म जात जात पांत व्यवस्था पर। देखी प्रोफेसर महोदय की पोप लीला!

इस प्रकार की अन्य बहुत सी अनर्गल कल्पनाए रिसर्च बुलेटिन में हैं जिन पर बहुत कुछ लिखा जा सकता है किन्तु खिचड़ी में एक चावल के देखने के समान उक्त लेख ही यह सिद्ध करने के लिये पर्याप्त है कि प्रोफेसर श्रीराम जी शर्मा इस प्रकारके कार्य के लिये सर्वथा अयोग्य है। ●

पुस्तक समालोचना

नाम पुस्तक—योगार्य्य भाष्य। भाष्य कर्त्ता—श्री स्व० पं० आर्य्य-मुनि जी महामहोपाध्याय। प्रकाशक—हरयाणा साहित्य संस्थान, गुरुकुल झज्जर (रोहतक)। पृष्ठ संख्या २१०, मूल्य ५ रु०।

समालोचना—वैदिक षड्दर्शन वेद के उपांग माने जाते हैं। सब का अपना अपना महत्त्व है। महर्षि पतंजलि ने योग दर्शन की रचना कर के मानवों को लौकिक उन्नति के साथ ही मोक्ष प्राप्ति के क्रियात्मक उपाय बताये हैं। इस दर्शन को केवल बुद्धि से ही नहीं जाना जा सकता, अपितु शुद्ध कर्मपूर्वक अनुभव के आधार पर इससे लाभ उठाना आवश्यक है। इस दर्शन में कुल १६५ सूत्र हैं। इन पर संस्कृत तथा आर्यभाषा में अनेक भाष्य मिलते हैं। स्वर्गीय पं० आर्यमुनि जी वैदिक सिद्धान्तों के समर्मज्ञ थे। उन्होंने छहों दर्शनों पर आर्यभाषा में भाष्य किया है। योग रहस्य के समझाने के लिये यह भाष्य विशेष उपयोगी है। कागज और छपाई आदि उत्तम है। परमेश्वर की दया से इस समय योग-अभ्यास में जन रुचि बढ़ती जा रही है। इस भाष्य के प्रकाशक स्वामी ओमानन्द जी सरस्वती स्वयं आगारूढ़ महानुभाव हैं। हम सभी योग क्रिया के सीखने वाले जिज्ञासुओं से निवेदन करना आवश्यक समझते हैं कि इस भाष्य को लेकर पूरा लाभ उठावें। इस में मूल सूत्र भी अन्त में दे दिये गये हे। यह ध्यान रखना अनिवार्य है कि योग क्रिया के सीखते समय योगी का सान्निध्य होवे। पुस्तक प्रकाशक के पते पर मिल सकता है।

२. वेद रत्नमाला। संग्रह कर्त्ता प्रो० साधु राम एम० ए० तथा वैद्य रामगोपाल शास्त्री, करौल बाग, नई दिल्ली हैं, प्रकाशक उपर्युक्त प्रथम पुस्तक के प्रकाशक हैं। पृष्ठ संख्या २६, मूल्य ४० पैसे।

समालोचना—इस पुस्तिका में ११ विषयों पर वेद मन्त्रों की सूक्तियों का आर्यभाषा और अंग्रेजी में सरल अनुवाद दिया गया है। अंग्रेजी जानने वाले भी इससे पूरा लाभ उठा सकते हैं, उनकी रुचि वेद मन्त्रों के स्वाध्याय में बढ़ेगी। पुस्तिका उपयोगी है। छपाई कागज अच्छा है। वेद प्रेमियों ने इसे मंगवा कर लाभ उठाना चाहिये।

३. नाम पुस्तक—महापुरुषों के सङ्ग में। लेखक—श्री सत्यव्रत अग्निवेश जी। पृष्ठ संख्या १०४। मूल्य १ रु० ५० पैसे, प्रकाशक—उपर्युक्त—हरयाणा साहित्य संस्थान, गुरुकुल झज्जर (रोहतक) है।

समालोचना—पुस्तक के ऊपर ५ महापुरुषों के रंगीन चित्र हैं। महर्षि दयानन्द, स्वामी ओमानन्द, स्वामी श्रद्धानन्द, स्वामी विवेकानन्द और नेता जी सुभाष चन्द्र—इन पाच महापुरुषों का संक्षिप्त जीवन वृत्त और इनके अमूल्य वचनों का संग्रह इसमें दिया गया है। भाषा सरल और प्राञ्जल है। कागज और छपाई उत्तम है। पुस्तक मिलने का स्थान उपर्युक्त प्रकाशक का ही है। लेखक महोदय अन्य पुस्तकों के भी रचयिता हैं। हम निवेदन करते हैं कि सभी व्यक्तियों को महापुरुषों के जीवन और वचनों को पढ़कर लाभ उठाना चाहिये। यही पुस्तक सुधारक के वर्ष २०, अंक ६ में प्रकाशित हुआ है।

४. नाम पुस्तिका—माधुरी रचयिता—कविवर "प्रणव" शास्त्री एम. ए. अध्यक्ष संस्कृत विभाग, डी. ए. वी. कालिज फीरोजाबाद (उ० प्र०) प्रकाशक—"पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय" प्रकाशन मन्दिर, आर्य युवक समाज अबोहर। पृष्ठ संख्या ७२। मूल्य अजिल्द १ रु० २० पैसे तथा सजिल्द २.०० रु० है।

समालोचना—लेखक आर्यसमाज के ही नहीं, अपितु राष्ट्र के प्रसिद्ध कवियों में भी अग्रगण्य माने जाते हैं। पुस्तक में अनेक विषयों पर कविताओं की रचना की गई है। इनमें भाषा रस और भाव के साथ अलङ्कारों का भी सौष्ठव प्रकट किया गया है, प्रथम कवर पृष्ठ रंगीन है और ऊपर भी लेखक का चित्र है। पुस्तक मिलने का पता इसके प्रकाशक का ही है कागज छपाई आदि अच्छी है। हम सभी सज्जनों से साग्रह निवेदन करते हैं। कि पुस्तक को मंगवा कर इसका पारायण करके लाभ उठावें।

मान्य मास्टर रामनारायण जी बी० ए० आर्य प्रचारक (रोहतक) का पत्र—

श्री मान्य सिद्धान्तीजी नमस्ते। मैंने आपके पत्र की प्रतिलिपि मान्यवर चौ. वंशीलालजी तथा श्री मान्यवर चौ० मार्डूसिह जी के नाम जो आपने लिखे, पढ़े और इसी अंक में आप का सम्पादकीय भी पढ़ा। आप ने जो कुछ लिखा है वह बहुत उचित लिखा है। श्री राजेन्द्र जिज्ञासु के लेख भी मैं बहुत ध्यान से पढ़ता हूं। इस सम्बन्ध में आप जो आवाज उठा रहे हैं मैं समझता हूं कि आप आर्य समाज की बड़ी भारी सेवा कर हैं। आपने श्री कुलपति जी के अविश्वास के सम्बन्ध में जो कुछ लिखा है वह बहुत दिलेराना शब्द लिखे हैं। मैं इन शब्दों में सच्चाई समझता हूं। कुछ दिन हुए एक बहुत जानकार व्यक्ति ने मुझे बतलाया था। कि प्रो० श्रीराम जी को फायदा पहुंचाने के लिये ही श्री सूरजभान ने उसको इस काम पर लगाया है। एक चिरकाल के स्थापित तथ्य को झुठलाने की कोशिश करना और इस प्रकार आर्यसमाज के अन्दर गड़बड़ पैदा करना प्रोफेसर साहिब का एक घृणित कार्य है। इनको चाहिये था कि अपना लेख लिखने से पहिले वह आर्य विद्वानों को बतलाते। उनके सामने सारी सामग्री जिस के आधार पर वह लिखते हैं—कि स्वामी जी को विष नहीं दिया गया रखते और खुले दिल से उन सब प्रमाणों को देखते और जाँच करते जिन के आधार पर यह तथ्य माना जा रहा है कि ऋषि को जहर दिया गया। खैर मैं तो आप से यही निवेदन करूंगा कि आप इस सम्बन्ध में अपने प्रयत्न को जारी रक्खें और ऐसा जोरदार आन्दोलन करें कि श्री कुलपति जी उनको इस कार्य से हटाने के लिये मजबूर हो जावें और कोई अन्य योग्य व्यक्ति का इस कार्य पर लगायें। ईश्वर आपको शक्ति प्रदान करें। ●

पृ० ४ का शेष

इस प्रकार असमर्थता प्रकट करने की बजाए या न में उत्तर देने की बजाए यह सूचना दे रहे हैं कि वीकली में कोई लेख छप रहा है।

अपने बड़ों को क्या लिखें। इतना अवश्य पूछेंगे कि उस लेख को अभी क्यों नहीं छपवा देते। उस में क्या विशेष सामग्री है। मेरी खोज में क्या कमी है जो आप इसके प्रसार में संकोच अनुभव कर रहे हैं? कमियां तो मनुष्य की कृति में होती ही हैं यह मैं मानता हूं परन्तु सभा मन्त्री भी तो अपनी सम्मति दें जो अपने लेख के प्रसार का निर्देश कर रहे हैं और प्रकाश में आ रही सामग्री का प्रचार करने को उद्यत नहीं। मुझसे अशोक जी पूछते तो मैं सभा को पत्र ही न लिखने देता। मैं वहां से आने वाले उत्तर को जानता ही हूं।

सभा का लेख क्या होगा इसका पता इसी पत्र संख्या ६१ दिनांक ८.३.७३ से ही लग गया कि हमारे मान्य नेताओं को ६.७ मास बीत जाने पर इतना आन्दोलन होने पर भी यही पता नहीं चल सका कि महर्षि के विषपान को सर्वप्रथम किसने झुठलाया। मैं सभा मन्त्री श्री त्यागी जी के शब्द यहां नहीं देता परन्तु, पत्र पढ़कर मन को इस बात पर बड़ा दुःख हुआ कि मन्त्री जी ने आर्य समाज पर हुए इस भयङ्कर प्रहार के बारे में यथार्थ जानकारी प्राप्त करने का यत्न तक नहीं किया।

रही मेरी पुस्तक की बात सो मन्त्री जी उसके छपाने की चिन्ता आप न करें। आर्य समाज में साहित्यकारों को कौन पूछता है। स्व० उपाध्याय जी को भी यही मिला था। आज डा० भारतीय जी, मान्य प्रणव जी को भी यही दुःख है। मैं भी यही सोचता हूं कि स्व० डा० बालकृष्ण जी का लिखा ठीक है कि आर्य समाज में ललित कलाओं की हत्या हो रही है। साहित्य की भी हो रही है। कौन परिश्रम करेगा? कौन लिखेगा? ढीठ बनकर सब ऋषि के प्रति कर्त्तव्य भाव से लिख रहे हैं। आर्य जगत् के प्रति कर्त्तव्य भाव से लिख रहे हैं। आर्य जगत् विद्वानों यथा अमर स्वामी जी, पं० शान्ति प्रकाश जी, पं० भगवान स्वरूप जी न्याय भूषण व अन्य अनेक सज्जनों का आर्शीवाद पाकर ही मेरे मन को सन्तोष है कि एक पुण्य का कार्य अपने हाथों से हो गया। ●

हरयाणा वेद प्रचार मण्डल के प्रचार समाचार

इस समय, मौसम की सुविधा पा कर लगभग सभी समाजें प्रचार तथा उत्सवों पर प्रचारकों की मांग कर रही हैं जहां सभा के नियमित रूप से कार्य करने वाले उपदेशक व भजनोपदेशक सभा के नियन्त्रण में बन्धे हुये दिन रात प्रचार कार्य में संलग्न हैं। वहां सभा के अधिकारी महानुभाव तथा सभा से सम्बन्धित संस्थाओं के संचालक तथा कार्यकर्ता भी इस शुभ कार्य में योग दे रहे हैं। प्रतिनिधि सभा पंजाब के लिये नियुक्त रिसीवर महोदय श्री पूज्य स्वामी सर्वानन्द जी महाराज का सहयोग आशीर्वाद व उन से प्रेरणा पा कर सभी प्रचारक उत्साह से दिनरात कार्य कर रहे हैं।

इस समय हरयाणा वेद प्रचार मण्डल में सभा की ओर से नियमित रूप में चार पूरी पूरी (तीन तीन प्रचारकों की) भजन मण्डलियां श्री मुंशीलाल जी, श्री जयलाल जी, श्री श्यामसिंह जी व श्री हरिचन्दजी की कार्य रत हैं उत्सवों और विशेष अवसरों पर इन से कार्य लेने व इन्हें सहयोग देने के लिये श्री रामपत जी वानप्रस्थी पुराने प्रजनोपदेशक, श्री लालसिंहजी, श्री स्वा० हरपाणनन्द जी, प्रसिद्ध भजनोपदेशक श्री पं० भक्त राम जी आदि सज्जन नियुक्त हैं।

भजनोपदेशकों के अतिरिक्त श्री पं० जयपालजी, श्री पं० अर्जुनदेव जी, श्री पं० कुलवन्त राय जी व हरयाणा मण्डल के अध्यक्ष महोदय, उपाध्यक्ष सभा के आदेश व नियन्त्रण को ध्यान में रखते हुये शहर कस्बों व गांवों में निरन्तर प्रचार कार्य व समाज संगठन में संलग्न हैं।

विशेष महानुभाव:—इस वेद प्रचार के पवित्र कार्य में सभा के पूर्व व वर्तमान अधिकारी महानुभाव प्रधान श्री. प्रो. रामसिंह जी, मन्त्री श्री. रामनाथ जी भल्ला, सभा उसमन्त्री श्री. पं. कपिल देव जी शास्त्री, उप प्रधान श्री महाशय भरतसिंह जी आदि सज्जन पूरा सहयोग दे रहे हैं वहां गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी के पुराने व नए उप कुलपति महोदय श्री आचार्य प्रियव्रत जी वेदवाचस्पति व श्री पं. रघुवीरसिंह जी शास्त्री भी कहीं कहीं हरयाणा के उत्सवों की शोभा बढ़ा रहे हैं।

अपने जीवन का सर्वस्व अर्पित करने वाले श्री पूज्य स्वामी ओमानन्द जी, माननीय श्री सिद्धान्ती जी व पूज्य स्वामी सर्वानन्द जी महाराज भी इस समय हरयाणा वेद प्रचार मण्डल की सहायतार्थ उपस्थित हैं। शहर कस्बों ग्रामों व संस्थाओं के उत्सव हो रहे हैं।

विगत दिनों में कन्या गुरुकुल खानपुर, आर्यसमाज जीन्द जंकशन व शहर, भाणा, करसिन्धु खेड़ा, घरौंडा, गोरखपुर, मोतरौल औरंगाबाद, बांकानेर, कन्या गुरुकुल नरेला, गुरुकुल झज्जर, गुरुकुल विद्यापीठ भैंसवाल कलां, आ. स. नरेला, सालवन, प्रताप बाग दहेली व कोसली के उत्सव व प्रचार समारोह सफलता से सम्पन्न हुए। जिनमें उपयुक्त महानुभावों का योगदान सराहनीय है।

दयानन्द मठ रोहतक में ऋषि बोधोत्सव के उपलक्ष में १५ दिन १८ मार्च तक प्रातः यज्ञ उपदेश भजन तथा शान्ति के समय कथा का आयोजन किया हुआ है। जिस में सभा के प्रचारकों के अतिरिक्त श्री पं० वेदव्रत जो शास्त्री व पूज्य स्वामी सर्वानन्द जी महाराज के प्रवचन हो रहे हैं।

उत्सवों का विस्तृत विवरण पृथक् सूचना के रूप में भी प्रकाशित होता रहता है। होने वाले आगे के उत्सव आ. स. मुवाना, निदाना, ऐंचरा कलां, गदपुरी, राठीवास,, रामपुर कुण्डल, बोहला, गु. कु. कुरुक्षेत्र व लोहारू आदि उल्लेखनीय हैं। जिन समाजों वा महानुभवों को प्रचारार्थ उपदेशकों की आवश्यकता हो दयानन्द मठ रोहतक या आ. स. जींद शहर के पते पर सूचना देने की कृपा करें।

—समरसिंह वेदालंकार अध्यक्ष हरयाणा वेदप्रचार मण्डल आ. स. जींद

आर्य समाज पीपाड़ में वेद प्रचार की धूम

आर्य समाज पीपाड़ का वार्षिकोत्सव पर ६ मार्च से ११ मार्च १९७३ तक सामवेद महापारायण यज्ञ बड़ी धूमधाम से सम्पन्न हुआ।

दिनांक ९ मार्च को पूज्य महात्मा आनन्द स्वामी जी महाराज भी पधार गये थे जिनसे की श्री कर्मचन्द जी आर्य ने संन्यास ग्रहण किया। एवं उनका नाम श्री प्रेमानन्द जी सरस्वती रखा गया।

दीक्षा संस्कर के पश्चात् १० मार्च को शोभा यात्रा निकाली गई। पूज्य महात्मा आनन्द स्वामी जी महाराज के प्रवचनों का यहां की जनता पर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा। ७० भाई बहिनों ने यज्ञोपवीत धारण किया। —मंत्री लोहन लाल आर्य

सरयूसंस्कृत विश्व विद्या मन्दिरम्

१. अस्य विश्व विद्यालयस्योदेश्यम्—संस्कृत संस्कृति संरक्षण संवर्धन प्रचाराः।

२. शिक्षा व्यवहार माध्यम भाषाः—सरलं संस्कृतं हिन्दी नेपाली विदेश भाषाश्च।

३. शिक्षा परीक्षा प्रणाल्यौ—वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय नियमानुसारिणी, सरयू संस्कृत विश्व विद्यालय नियमानुसारिणी च।

४. विश्वविद्यालय प्रबन्धः—सरयू संस्कृत विश्वविद्यालय प्रबन्ध समितिद्वारा।

५. विश्व विद्यालय सम्बन्धि नियमोपनियमादि निर्माण स्थगनादि प्रबन्ध समिति बहुमत द्वारा।

६. पाठ्यविषयः—वेदोपवेदवेदाङ्गदर्शनगणितपुराणेतिहास भूगोल साहित्य सङ्गीत कला शिल्प विज्ञान गोपालन कृषि वाणिज्य प्रमुखः।

नियमावली

(१) अत्र विश्व विद्यायये शिक्षाध्यायादनुसन्धानावधि निश्शुल्कं शिक्षणं भवति।

(२) नियमानुशासनपालको मनुष्यमात्रस्य बालकोऽत्र शिक्षां लभते।

(३) एकमुद्रां प्रवेशशुल्कं दत्वा स्वयमभिभावकद्वारा वा प्रवेशप्रतिज्ञापत्रे हस्ताक्षराणि कृत्वा विद्यार्थी प्रवेशं कुरुते।

(४) नियमानुशासनलङ्घयिता स्वापरहानिकरो बहिष्क्रियते।

सस्थापकः असंचालकश्च योगी नरहरि नाथ शास्त्री विद्यालङ्कारः

—सस्थापक योगी नरहरीनाथ शास्त्री

दयानन्द सेवाश्रम आर्यसमाज बदायूं

"होली के पर्व पर आर्य समाज बदायूं के तत्वाधान में वृहद् यज्ञ किया गया। भजन उपदेश हुए। नगर की ६ शिक्षण संस्थाओं के कार्य कर्त्ताओं एवं छात्रों ने उत्साह पूर्ण भाग लिया। बाल गोष्ठी का कार्यक्रम किया गया। नगर के प्रतिष्ठित लोग भी सम्मलित हुये। अनेक विद्वानों के प्रवचनों से श्रोतागण लाभान्वित हुये।"

पाल्हावास (गुड़गांवा) आर्य समाज की स्थापना

हमारे ग्राम पाल्हावास में म० हीरालाल जी आर्य समाज बीकानेर छोटी के प्रयत्न से आर्य समाज की स्थापना होकर निर्वाचन इस प्रकार हुआ है—

प्रधान—महाशय प्रभुदयाल जी। मन्त्री महा० श्री बाबू राम प्रताप जी। कोषाध्यक्ष श्री छजूराम जी।—मन्त्री

आर्य समाज अलीगढ़ का निर्वाचन।

प्रधान —श्री रघुवीर सहाय आर्य। मन्त्री—श्री देव नारायण भारद्वाज। कोषाध्यक्ष—श्री ओम्प्रकाश ठेकेदार। पुस्तकाध्यक्ष—श्री देवदत्त झा।

— उपमंत्री आर्यसमाज

आर्य समाज नरेला [दिल्ली]

"आर्य समाज नरेला का वार्षिकोत्सव पूर्णतया सफल रहा" १० मार्च को नगर कीर्तन अत्यन्त प्रभावशाली व रोचक रहा। रात्रि को युवक सम्मेलन मनाया गया। श्री० पं० रघुवीरसिंह जी शास्त्री, कुलपति गुरुकुल कांगड़ी प्रो० शेरसिंह जी (कृषि मन्त्री) डा० लोकेश जी, स्वामी ओमानन्द जी, प्रि० होशियार सिंह जी के प्रभावशाली व्याख्यान हुये तथा श्री चन्द्रपाल जी द्वारा व्यायाम प्रदर्शन किया गया जो बहुत ही उत्साह वर्धक रहा। पं० समरसिंह जी वेदालंकार तथा श्री हरिश्चन्द्र जी के उपदेश व भजन हुये।"

—राजपाल आर्य एम०ए० मन्त्री आर्यसमाज नरेला दिल्ली-४०

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब द्वारा प्रकाशित और प्रचारित वैदिक साहित्य

१. बलिदान जयन्ती स्मृति ग्रन्थ—आर्य बलिदानो की गाथा मूल्य ४-५०
२ सोम सरोवर-वेदमन्त्रो की व्याख्या —प० चमूपति एम. ए. ३-००
३ जीवन ज्योति-वेदमन्त्रो की व्याख्या „ „ ३-००
४. नीहारिकावाद और उपनिषदे „ „ ०-२५
५ Principles of Arya samaj „ „ १-५०
६ Glimpses of swami Daya Nand „ „ १-००
७ पजाब का आर्य समाज पजाब तथा हरयाणा के आर्यसमाज का इतिहास २-००
८ वैदिक सत्सग पद्धति सन्ध्या हवनमन्त्र अर्थ रहित विधि १-००
९ वेदाविर्भाव —आर्यमर्यादा का विशेषाक ०-६५
१०. यजुर्वेद का स्वाध्याय „ „ „ ०-५०
११. वेद स्वरूप निर्णय —प० मदनमोहन विद्यासागर १-००
१२ व्यवहारभानु —महर्षि स्वामी दयानन्द ०-५०
१३. स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश— „ „ ०-४०
१४. Social Reconstruction By Budha & Swami Daya Nand By. Pt. Ganga Prasad Upadhya M. A. २-००
१५. Subject Matter of the Vedas By S Bhoomanad १-००
१६. Enchanted Island By Swami Staya Parkashanand १-००
१७. Cow Protection By Swami Daya Nand ०-१५
१८. वेद मे पुनरुक्ति दोष नही है आर्यमर्यादा का विशेषाक २-००
१९. मूर्त्तिपूजा निषेध „ „ ०-५०
२०. धर्मवीर प० लेखराम जीवन —स्वामी श्रद्धानन्द १-२५
२१. कुलियात आर्य मुसाफिर प्रथम भाग—प० लेखराम की पुस्तको का सग्रह ६-००
२२. „ „ दूसरा भाग „ „ ८-००
२३. मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र —कु० सुशीला आर्या एम. ए. ०-२५
२४. योगीराज कृष्ण „ „ „ ०-१५
२५. गोकरुणा निधि —स्वामी दयानन्द सरस्वती ०-२०
२६ आर्यसमाज के नियम उपनियम ०-१०
२७. आर्य नेताओ के वचनामृत —साईंदास भण्डारी ०-१२
२८. कायाकल्प —स्वामी समर्पणानन्द सरस्वती १-५०
२९. वैदिक धर्म की विशेषताये —प० हरिदेव सिद्धान्त भूषण ०-१५
३०. स्वतन्त्रानन्द लेखमाला —स्वा० स्वतन्त्रानन्द जी जीवनी तथा उनके व्याख्यान १-२५
३१ आत्मानन्द लेखमाला—स्वामी आत्मानन्द सरस्वतीकी जीवनी १-२५
३२. आर्यसमाज के सदस्यता फार्म —सैकड़ा १०-००
३३. वैदिक गीता —स्वामी आत्मानन्द सरस्वती २-५०
३४. मनोविज्ञान तथा शिव सकल्प „ „ „ ३-५०
३५. कन्या और ब्रह्मचर्य „ „ „ ०-१५
३६. सन्ध्या अष्टाङ्गयोग „ „ „ ०-७५
३७. वैदिक विवाह „ „ „ ०-७५
३८. सुखी जीवन —श्री सत्यव्रत २-००
३९. एक मनस्वी जीवन —प० मनसाराम वैदिक तोप १-५०
४०. छात्रोपयोगी विचारमाला —जगदेवसिंह सिद्धान्ती १-५०
४१. स्त्री शिक्षा —प० लेखराम आर्य मुसाफिर ०-६०
४२. विदेशो मे एक साल —स्वामी स्वतन्त्रानन्द २-२५
४३. वेद विमर्श —पं० भगवद्दत्त वेदालकार २-००
४४. वेद विमर्श —पं० वेदव्रत शास्त्री २-००
४५. आसनो के व्यायाम „ „ „ १-००
४६. महर्षि जीवन गाथा. —स्वामी वेदानन्द वेदवागीश २-२५
४७. मास मनुष्य का भोजन नही—स्वामी ओमानन्द सरस्वती १-००
४८. वीर भूमि हरयाणा „ „ „ ४-००
४९ चोटी क्यों रखें —स्वामी ओमानन्द सरस्वती ०-५०
५०. हमारा फाजिल्का —श्री योगेन्द्रपाल १-५०
५१. सत्सग स्वाध्याय —स्वामी ओमानन्द सरस्वती ०-५०
५२. जापान यात्रा „ „ „ ०-७५
५३. भोजन „ „ „ ०-७०
५४. ऋषि रहस्य —प० भगवद्दत्त वेदालकार २-००
५५. स्वामी श्रद्धानन्द जीवन परिचय १-२५
५६. मेरा धर्म —आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति ७-००
५७. वेद का राष्ट्रिय गीत „ „ „ ५-००
५८. ईशोपनिषद्भाष्य —इन्द्र विद्या वाचस्पति २-००
५९. प० गुरुदत्त विद्यार्थी जीवन —डा० रामप्रकाश १-३०
६०. वैदिक पथ —प० हरिदेव सिद्धान्त भूषण २-००
६५. वैदिक प्रवचन —प० जगत्कुमार शास्त्री २-२५
६१. ज्ञानदीप „ „ „ २-००
६२. आर्यसमाज का सैद्धान्तिक परिचय ०-४५
६३. The Vedas ०-५०
६४. The Philosophy of Vedas ०-५०
६६. ईश्वर दर्शन „ „ १-५०
६७. श्वेताश्वरोपनिषद् „ „ ४-००
६८. ब्रह्मचर्य प्रदीप „ „ ४-००
६९. भगवत प्राप्ति क्यो और कैसे —स्वा० सत्यानन्द ०-६०
७०. आर्य सामाजिक धर्म „ „ ०-७५
७१. बोध प्रसाद —स्वामी श्रद्धानन्द ०-२५
७२. ऋषि दर्शन —प० चमूपति एम. ए. ००-२५
७३. ऋषि का चमत्कार „ „ „ ००-१२
७४. वैदिक जीवन दर्शन „ „ „ ००-२०
७५. वैदिक तत्व विचार „ „ „ ००-५०
७६. देव यज्ञ रहस्य „ „ „ ००-३५

सभी पुस्तकों का प्राप्ति स्थान

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब, गुरुदत्त भवन, जालन्धर (४२५०) टेलीफोन
„ „ „ १५ हनुमान् मार्ग नई दिल्ली-१ „ (३१०१५०)
„ „ „ दयानन्द मठ रोहतक (हरयाणा) „ (५७४)

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के लिए जगदेवसिंह सिद्धान्ती शास्त्री द्वारा सैनी प्रिंटर्स पहाड़ी धीरज, देहली में मुद्रित और १५ हनुमान् रोड, नई दिल्ली—१ से प्रकाशित

३ वैशाख सं० २०३० वि०, दयानन्दाब्द १४६,
तदनुसार १५ अप्रैल १९७३ रविवार
सृष्टि सं०-१९६०८५३०७३

वर्ष ५ वार्षिक शुल्क स्वदेश में १०) रुपये
अंक २० „ „ विदेश मे २०) रुपये
एक प्रति का मूल्य ००-२० पैसे

सम्पादक—जगदेवसिंह सिद्धान्ती शास्त्री, पूर्व लोकसभा सदस्य (फोन ५१२१६३)

वेदमन्त्रार्थ-प्रवचन

पुनस्तत्कृत्यमाह ॥

फिर उसी सूर्य का काम अगले मन्त्र में कहा है ॥

तत् सूर्यस्य देवत्वं तन् महित्वं मध्या कर्त्तोर्विततं संजभार ।
यदेदयुक्त हरितः सधस्थादाद्रात्री वासस्तनुते सिमस्मै ॥

—ऋ० १.११५.४

पदार्थः—(तत्) यत् प्रथम-मंत्रोक्तं ब्रह्म (सूर्यस्य) सूर्य-मण्डलस्य (देवत्वम्) देवस्य प्रकाश-मयस्य भावः (तत्) (महित्वम्) (मध्या) मध्ये (कर्त्तोः) कर्म (विततम्) व्याप्तम् (सम्) (जभार) हरति (यदा) (इत्) (अयुक्त) युनक्ति (हरितः) दिशः (सधस्थात्) समानस्थानात् (आत्) अनन्तरम् (रात्री) (वासः) वसनम् (तनुते) (सिमस्मै) सर्वस्मै लोकाय ॥

अन्वयः—हे मनुष्या यदा तत् सूर्यस्य मध्याविततं तत् ब्रह्म तस्य देवत्वं महित्वं कर्त्तोः संजभार प्रलयसमये संहरति आत् यदा सृष्टिं करोति तदा सूर्यमयुक्तोत्पाद्य कक्षायां स्थापयति सूर्यः सधस्थाद्धरितः किरणैर्व्याप्य सिमस्मै वासस्तनुते यस्य तत्त्वाद्रात्री जायते तदिदेव ब्रह्म यूयमुपाध्वं तदेव जगत्कर्तृ विजानीत ॥

भावार्थः—हे सज्जना यदपि सूर्य आकर्षणेन पृथिव्यादि-पदार्थान् धरति पृथिव्यादिभ्यो महानपि वर्त्तते विश्वं प्रकाश्य व्यवहारयति च तदप्ययं परमेश्वरस्योत्पादन-धारणाकर्षणैर्विनोत्पत्तुं स्थातुमा-कर्षितुं च न शक्नोति नैनमीश्वरे-णान्तरेणैतेषां लोकानां रचनं धारणं प्रलयं च कर्त्तुं कश्चित् समर्थो भवति ॥

भाषार्थः—हे मनुष्यो (यदा) जब (तत्) वह पहिले मन्त्र में कहा हुआ (सूर्यस्य) सूर्यमण्डल के (मध्या) बीच में (विततम्) व्याप्त ब्रह्म इस सूर्यस्य के (देवत्वम्) प्रकाश (महित्वम्) बड़प्पन (कर्त्तोः) और काम का (संजभार) संहार कर्त्ता अर्थात् प्रलय समय सूर्य्य के समस्त व्यवहार को हर लेता (आत्) और फिर जब सृष्टि को उत्पन्न करता है तब सूर्य्य को (अयुक्त) युक्त अर्थात् उत्पन्न करता और नियत कक्षा में स्थापन करता है सूर्य्य (सधस्थात्) एक स्थान से (हरितः) दिशाओं को अपनी किरणों से व्याप्त होकर (सिमस्मै) समस्त लोक के लिये (वासः) अपने निवास का (तनुते) विस्तार करता जिस ब्रह्म के तत्त्व से (रात्री) रात्री होती है (तत्, इत्) उसी ब्रह्म की उपासना तुम लोग करो तथा उसी को जगत् का कर्त्ता जानो ॥

भावार्थः—हे सज्जनो यद्यपि सूर्य्य आकर्षण से पृथिव्यादि पदार्थों का धारण करता है पृथिवी आदि लोकों से बड़ा भी वर्त्तमान है संसार का प्रकाश कर व्यवहार भी कराता है तो भी यह सूर्य्य परमेश्वर के उत्पादन धारण और आकर्षण आदि गुणों के विना उत्पन्न होने स्थिर रहने और पदार्थों का आक-र्षण करने को समर्थ नहीं हो सकता न इस ईश्वर के विना ऐसे ऐसे लोक लोकान्तरों की रचना धारण और इनके प्रलय करने को कोई समर्थ होता है ॥

—(ऋषिदयानन्द-भाष्य)

नौविमानादिविद्याविषयः

(वि ये भ्राजन्ते०) हे मनुष्य लोगो ! (मनोजुवः) अर्थात् जैसा मन का वेग है वैसे वेग वाले यान सिद्ध करो (यन्मरुतो रथेषु) उन रथों में (मरुत्) अर्थात् वायु और अग्नि को मनोवेग के समान चलाओ और (आ वृषव्रातासः) उनके योग में जलों का भी स्थापन करो। (पृषतीर-युग्ध्वम्) जैसे जल के बाष्प घूमने की कलाओं को वेग वाली कर देते हैं वैसे ही तुम भी उनको सब प्रकार से युक्त करो। जो इस प्रकार से प्रयत्न करके सवारी सिद्ध करते हैं, वे (विभ्राजन्ते) अर्थात् विविध प्रकार भोगों से प्रकाशमान होते हैं और (सुमखास ऋष्टिभिः) जो इस प्रकार से इन शिल्प विद्यारूप श्रेष्ठ यज्ञ करने वाले सब भोगों से युक्त होते हैं (अच्युता चिदोजसा०) वे कभी दुःखी होके नष्ट नही होते और सदा पराक्रम से बढ़ते जाते हैं, क्योंकि कलाकौशलता से युक्त वायु और अग्नि आदि पदार्थों की (ऋष्टि) अर्थात् कलाओं से (प्रच्या०) पूर्व स्थान को छोड़ के मनोवेग यानों से जाते हैं, उन्ही से मनुष्यों को सुख भी बढ़ता है, इसलिये इन उत्तम यानों को अवश्य सिद्ध करें ॥

—(ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका)

सत्यार्थप्रकाश (दशम समुल्लास)

भला जो महाभ्रष्ट म्लेच्छ-कुलोत्पन्न वेश्या आदि के समागम से आचार भ्रष्ट धर्महीन नही होते किन्तु देशदेशान्तर के उत्तम पुरुषो के साथ समागम में छूत और दोष मानते हैं!!! यह केवल मूर्खता नहीं तो क्या है? हां, इतना कारण तो है कि जो लोग मास भक्षण और मद्यपान करते हैं उनके शरीर और वीर्यादि धातु भी दुर्गन्धादि से दूषित होते है इसलिये उनके संग करने से आर्य्यों को भी यह कुलक्षण न लग जायें यह तो ठीक है परन्तु जब इनसे व्यवहार और गुण ग्रहण करने में कोई भी दोष वा पाप नही है। किन्तु इनके मद्यपान दोषो को छोड़ गुणों को ग्रहण करें तो कुछ भी हानि नही जब इनके स्पर्श और देखने से भी मूर्खजन पाप गिनते हैं इसी से उनसे युद्ध कभी नहीं कर सकते क्योकि युद्ध में उनको देखना और स्पर्श होना अवश्य है। सज्जन लोगो को रागद्वेष अन्याय मिथ्याभाषणादि दोषों को छोड़ निर्वैर प्रीति परोपकार सज्जनादि का धारण करना उत्तम आचार है और यह भी समझ ले कि धर्म हमारे आत्मा और कर्त्तव्य के साथ है जब हम अच्छे काम करते हैं तो हमको देशदेशान्तर और द्वीपद्वीपान्तर जाने में कुछ भी दोष नही लग सकता दोष तो पाप के काम करने में लगते है। हां, इतना अवश्य चाहिये कि वेदोक्त धर्म का निश्चय और पाखण्ड मत का खण्डन करना अवश्य सीख लें जिससे कोई हमको झूठा निश्चय न करा सके ॥

—(ऋषिदयानन्द)

प्रि० शर्मा की नई कल्पनाओं का उत्तर—
सिंहावलोकन व नये प्रमाण—

महर्षि दयानन्द को विष दिया गया

ऋषिवर के बलिदान की अमर कहानी

(ले०—प्राध्यापक श्री राजेन्द्र 'जिज्ञासु' एम० ए० अबोहर)

पाठकों को इतनी बात भलि भांति ज्ञात है कि प्रि० श्रीराम शर्मा ने जब अपने नये मत की सृष्टि की तो यह कहा कि महर्षि के बलिदान की गाथा बाद में अन्धविश्वास से ऋषि जीवन में जोड़ी गई। उस युग में किसी इतिहासकार ने किसी लेखक ने ऐसा लिखा व कहा नहीं। विषपान की कहानी आर्यसमाजियों ने घड़ी है। श्री जावेद जी से मौखिक भी आपने यही कहा—इस पर जावेद जी ने सार्वदेशिक व अन्य सभाओं को उत्तर के लिये पुकारा।

आर्यमर्यादा में राजस्थान के चार देश विख्यात इतिहासकारों की साक्षी इस ऐतिहासिक तथ्य की पुष्टि में हम दे चुके हैं। पीर इमाम अली मुसलमान की साक्षी दी जा चुकी है। और भी अनेक अन-आर्यसमाजी विद्वानों के प्रमाण दिये जा चुके हैं।

हमारे मित्र प्रो० राजकुमार जी ने बताया है कि प्रि० शर्मा अब हड़बड़ा कर घबरा कर कुछ नई नई आपत्तियां कर रहे हैं। मैं इन नई आपत्तियों को भी यहां रखता हूं। पाठक देखें कि यह वृद्ध महाशय किस मनोभावना से अपना मत थोपने के लिये ऐड़ी चोटी का जोर लगा रहे हैं। जब हमने ऋषि के काल के इतिहासकारों के प्रमाण दिये तो फिर यह मिथ्या बात कही कि मुंशी देवी प्रसाद जी आर्यसमाजी हैं। इसका यह अर्थ हुआ कि प्रि० शर्मा की दृष्टि में आर्यसमाजी इतिहासकार की साक्षी उन्हें अमान्य हैं। इससे पता चला कि आर्य से प्रि० शर्मा को विशेष चिड़ है। जो सज्जन यह सोचते हैं कि प्रि० शर्मा ने दुर्भावना से यह शोशा नहीं छेड़ा वह इस बात से ही जान लें कि उनके मन में क्या है।

फिर कहा कि ओझा जी का प्रमाण 'जिज्ञासु' दिखा दें तो मेरी बुद्धि ठिकाने आ जावे। हम उनकी बुद्धि को ठिकाने पर लाने के लिये ही तो इतने समय से यह खोज कर रहे हैं। हमने पत्रों में बार बार लिखा कि प्रमाण बड़े प्रेम से जब चाहें देख लें फिर इस विषय में मौन साध ली। अब कहते हैं कि ऋषि के निधन के पांच वर्ष के भीतर किसी का लिखा दिखा दो तो बात है। शर्मा जी हम तो बार बार बता चुके और दिखा चुके कि मैक्समूलर साहिब ने महर्षि के बलिदान के तुरन्त बाद लिखा कि विष दिया गया। श्री मैक्समूलर ने लिखा है कि पत्रों में यह समाचार छपा। पं० लेखराम जी वाले जीवनचरित्र में भी पढ़ लें।

कल तक जिस गोपाल हरि शर्मा जी के जीवनचरित्र को अपना आधार मानकर शोर मचा रहे थे उसमें भी शुभ चिन्तक समाचार वाली श्रद्धाञ्जलि पढ़ लें। यह तो तभी छप गई थी। शर्मा जी आप तो छिपा रहे थे हमने यह भी पता लगाकर प्रकट कर दिया कि गोपाल शर्मा जी ने भी विषपान के तथ्य को स्वीकार किया है। और यह पुस्तक भी महर्षि के बलिदान के पांच वष के भीतर ही छप गई चार वर्ष भी पूरे न हुए। अपने कथन की तो लाज रखो। कहीं तो महाराज टिक जाओ।

प्रि० शर्मा कह रहे हैं कि जो औषधि ऋषि को दी गई उसमें तो विष का इलाज नहीं। कितने भोले हैं हमारे प्यारे शर्मा जी। सब जीवन चरित्र यही लिखते आ रहे हैं कि इलाज ठीक नहीं किया गया। विष देकर फिर उलटी सीधी औषधियां देकर ऋषि की हत्या की गई। शर्मा जी और चिढ़ाने के लिये अब नया अनुसन्धान पेश कर रहे हैं कि विष की दवाई क्यों न दी गई? घाव पर नमक छिड़क रहे हैं। अनुसंधान का आरम्भ ही इसी बात से किया कि अली मर्दान की चिकित्सा में किसी को सन्देह न था। ऋषि ने भी आपत्ति न की। प्रमाण क्या दिया, श्री गोपाल शर्मा जी का। और यह असत्य निकला। गोपाल शर्मा जी अली मर्दान का भाण्डा फोड़ रहे हैं। देखिये शर्मा जी की मनोभावना।

एक बात और कहते हैं कि पं० गुरुदत्त जी को लाहौर समाज ने अजमेर भेजा था। उन्होंने अपने देखे वृत्तान्त में विष की चर्चा नहीं की। श्रीमान् शर्मा जी की सूझ पर बलिहारी। शर्मा जी सारा संसार जान गया कि ऋषि को विष दिया गया। पत्रों में, लेखों में, जीवनियों में सब में इस तथ्य की चर्चा हो रही थी फिर पं० जी के लिये यह आवश्यक न था कि वह भी उस तथ्य को अनिवार्य रूप से चर्चा करें। जिस बात से उनका जीवन पलटा, उन्होंने उसका वर्णन कर दिया। शेष बातों का और लोग उल्लेख कर ही रहे थे। यदि प० जी इसे असत्य मानते तो इसका प्रतिवाद कर देते परन्तु उनके एक भी लेख में इसका प्रतिवाद नहीं। दीवान हरबिलास जी श्री रामबिलास जी भी तो अजमेर में ही थे। उनके कथन को क्यों नहीं आगे करते?

अभी मेरे हाथ एक ऋषि जीवनचरित्र आया है। करनाल से श्री पं० ओमप्रकाश जी खतौली वालों की कृपा से प्राप्त हुआ। इसका बड़ा महत्त्व है। जीर्ण होने से यह अत्यन्त पुरानी पुस्तक बच गई। एक अन-आर्यसमाजी का लिखा है। इसमें भी महर्षि का बलिदान विषपान से ही लिखा है। इसके प्रमाण में महर्षि के बलिदान पर अपनी बड़ी पुस्तक में दूंगा। पूज्य महात्मा आनन्द स्वामी जी ने सारी सामग्री एक बड़ी पुस्तक में देने की आज्ञा दी है। श्रद्धेय स्वामी सर्वानन्द जी महाराज से विचार-विमर्श कर आगामी ऋषि बलिदान पर्व पर निश्चय ही इसको प्रकाशित करवा दिया जावेगा।

१९७१ ई० में एक साधु समाधिस्थानन्द जोधपुर आये। वह १८० वर्ष के हैं। जोधपुर में ही उनका जन्म हुआ। जोधपुर की पुरानी तीन तीन पीढ़ियों का ठीक ठीक वृत्त बताते थे। जोधपुर के अन-आर्यसमाजी साक्षी हैं कि उन्होंने तब कहा कि हमीं लोगों ने महर्षि को विष दिलाकर यहां से भेजा था। हमें क्या पता था कि यह सच्चा योगी है मरेगा नहीं अमर हो जायेगा। उक्त स्वामी जी का पूर्व नाम श्री गिरधारीलाल श्री माली ब्राह्मण था। वह जोधपुर के पुराने परिवारों को तो जानते ही थे। कई राजघरानों के कई कई पीढ़ी तक गुरु रहे। जोधपुर के मास्टर मुरलीधर जी आदि ने स्वामी जी की कही सब बातें लिखित वक्तव्य के रूप में दी हैं।

नन्ही भगत वैश्या के परिवार के लोग भी यही कहते आये हैं कि वह महर्षि की हत्या के पाप को मानती थी। महाराजा प्रतापसिंह के भय के कारण लोग कानाफूसी तो करते थे खुलकर इस पाप के बारे में कुछ विशेष न कहते थे। आर्यमर्यादा के कई पाठकों ने जोधपुर के श्री भैरवसिंह जो के बारे में जानकारी मांगी है। इस पर किसी आगामी अङ्क में लिखूंगा। ●

"ज्योति जगाना होगा"

(श्री राधेश्याम श्रीवास्तव 'आर्य', भगवत भक्त आश्रम, लखनऊ-१)

हाय! धरणी पर आज हो रहा मानवता उपहास।
दम्भ-द्वेष कर रहा सत्य का ही देखो परिहास॥
दया-प्रेम निरुपाय बने हैं, त्याग बना है शामिल।
दानवता का विकट वृत्तियों से देवत्व हुआ कंपित॥

शान्ति न जाने किस कोने में बैठी सिसक रही है।
समरसता के चरण तले की धरती खिसक रही है॥
अत्याचार बढ़ा है अविरल, नैतिकता का हुआ पतन।
नहीं हो रहा है धरती पर सत्य शक्ति का कहीं मनन॥

जानें कब तक दिव्य धरा पर समता सुमन खिलेंगे?
शान्ति सफलता के नीड़ों में सभी मनुज सर्वदा पलेंगे?
ज्ञान प्रभा की प्रखर रश्मियां निकलेंगी नव ज्योतिष्मान्?
मानवता के तत्वों का फिर कब से होगा शुचि सम्मान?

आज हिमालय अंगड़ाई ले, होगा नव परिवर्तन।
भारत भू के कण कण में अब जागेगा स्पन्दन॥
उठो जवानो! नवल क्रान्ति की ज्योति जगाना होगा।
भूमण्डल का गहन तिमिर अब तुम्हें भगाना होगा॥ ●

सम्पादकीय—

१. नूतन सौर संवत्सर का आरम्भ

आर्यमर्यादा में दिनाङ्क सौर वर्ष से लिखा जाता है। ज्योतिर्विद् भारत में सौर और चान्द्र पद्धति से गणना करते आये हैं। ये दोनों सरणियां वेदोक्त गणित के आधार पर सदा से प्रचलित रही हैं। यह वर्त्तमान अंक ३ वैशाख सं० २०३० विक्रमी, दयानन्दाब्द १४९, सृष्टि-संवत् १ अरब ९६ करोड़ ८ लाख ५३ हजार ७३, १५ अप्रैल १९७३ (क्रमाङ्क वर्ष ५, अंक २०) है। गत चतुर्थ वर्ष और वर्त्तमान ५ वें वर्ष में आर्यमर्यादा के अच्छे अच्छे विशेषाङ्क प्रकाशित हुए हैं। बीच में एक भी अंक का अवकाश नहीं किया गया। हम बड़े विनीत भाव से अपने पूज्य विद्वान् लेखकों और कवियों के प्रति शिर झुका कर आदर भाव प्रकट करते हैं। इनके सहयोग से ही आर्यमर्यादा सदा अग्रसर रहता आया है। वैदिक सिद्धान्तों और आर्ष मन्तव्यों के प्रचार और प्रसार में कभी पग इधर उधर नहीं किया। पाठक महानुभावों की सेवा में धार्मिक, सामाजिक और आर्थिक रूप में उत्तम सामग्री प्रस्तुत की है। हमें पूर्ण विश्वास है कि आगे भी इसी प्रकार श्रद्धेय विद्वद्वृन्द आर्यमर्यादा के लिये अपना वरदहस्त रखते रहेंगे। महर्षि दयानन्द के द्वारा प्रदर्शित वैदिक पथ पर ही यथापूर्व आर्यमर्यादा बढ़ते रहने का उद्योग करता रहेगा। हम अल्पज्ञ हैं। हमसे भूल हो जाना असम्भव नहीं। भूल दिखाने पर हम नम्रभाव से स्वीकार करते रहे हैं। आगे भी यही सरणी चालू रखी जावेगी। हां—विद्या के अभिमान में किन्हीं महानुभावों ने हमें ऋषि मन्तव्य के विपरीत चलाने का यत्न किया, उस यत्न को हमने सदा दूर किया है। इस मार्ग में शिष्टता का परित्याग कभी नहीं किया। हमने पूज्य विद्वान् उपदेशकों को सर्वोपरि स्थान दिया है। राजनीति में वेदोक्त राजनीति को आगे रक्खा और तदनुसार सम्पादकीय टिप्पणियां प्रकाशित करते रहे हैं। परमपिता परमेश्वर से प्रार्थना है कि हमें सन्मार्ग पर चलते रहने का सामर्थ्य देता रहे। आदरणीय ग्राहक तथा प्रेमी पाठक सज्जनों से नम्र निवेदन है इस आगामी सौर वर्ष में भी आर्यमर्यादा की शक्ति को यथापूर्व बढ़ाते रहें।

२. कुछ अपने विषय में स्पष्टीकरण

(क) सन् १९११ ई० में उर्दू प्राइमरी पास करके गांव से बाहर निकला। आगे उर्दू, हिन्दी और मैट्रिक में कुछ संस्कृत पढ़कर सन् १४ के युद्ध में ४॥ वर्ष सेना में रहा। वहीं सत्यार्थप्रकाश हाथ लगा। पाठ विधि प्रकरण पढ़ने पर सेना से पृथक् हो गया और संस्कृत पढ़ना आरम्भ किया। प्रभु की अपार दया से लाहौर उपदेशक विद्यालय की सिद्धान्त परीक्षाएं तथा पंजाब विश्वविद्यालय की शास्त्री परीक्षा पास करके आर्यसमाज के शिक्षा क्षेत्र में प्रविष्ट हो गया। साथ ही सर्वखाप पंचायत द्वारा सामाजिक कुरीति निवारण का कार्य भी करता रहा। १९४४ में आर्य महाविद्यालय किरठल (मेरठ) की रजत जयन्ती के पश्चात् देहली आ गया और सम्राट् साप्ताहिक पत्र तथा प्रेस चालू किया, आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब की सेवा भी करता रहा। अब मेरी आयु ७३ वें वर्ष में चल रही है। दयानन्द मठ रोहतक में विशेष रूप से रहकर प्रचार कार्य करने का निश्चय कर लिया है। ४ अप्रैल ७३ को दयानन्द मठ रोहतक में आर्यसमाज स्थापना के पवित्र दिवस पर इसकी घोषणा कर दी है। परमात्मा मुझे इस पवित्र कार्य को करने की शक्ति देता रहे।

यह निवेदन इसलिये करना पड़ा कि ५ अप्रैल ७३ को मुझे रोहतक में एक सज्जन का पत्र मिला, उसमें लिखा है कि तुम्हें जाल में फंसा दिया गया है। मैं बड़े शुद्धभाव से निवेदन करना आवश्यक समझता हूं कि मुझे किसी ने जाल में नहीं फंसाया है। मैं राजनीति की दलगत दलदल से वैयक्तिक सम्पर्क नहीं रखूंगा। कोई भी आर्य भाई किसी भी राजनैतिक दल से सम्बद्ध हों, मैं यथा सम्भव सबके साथ शुद्ध सम्बन्ध रखूंगा—यह भाव मैंने ४ अप्रैल को भी प्रकट कर दिये थे। बुढ़ापे में गोशाला में भेजे गये पशु की भान्ति मैं नहीं रहूंगा। सभी महानुभाव मुझसे यथायोग्य सेवा लेते रहें। भगवान् की अपार दया से मेरा परिवार सुखी और हरा भरा है। मुझे किसी के आश्रय पर रहने की आवश्यकता नहीं है। जहां सेवा करूंगा—वहां भोजन तो करना ही होगा। अन्य पदार्थों की आवश्यकता का भार किसी पर नहीं। कोई बाहर बुलावेंगे तो मार्ग व्यय उन्हें देना ही पड़ेगा। कोई दक्षिणा का भार नहीं पड़ेगा। मठ में रहते हुए भी पठन पाठन और लेखन का कार्य करता रहूंगा। उसका कुछ शुल्क नहीं होगा। जो साहित्य लिखूंगा। वह आर्यसमाज के अधिकार में होगा। मैंने अपने परिवार से घर के काम काज में कभी सम्बन्ध नहीं रखा। आशा है सभी आर्य महानुभावों को स्पष्टीकरण हो जावेगा। पूज्य संन्यासी विद्वानों का आदर करूंगा। संन्यास इसलिये नहीं लिया है कि वित्तैषणा और पुत्रैषणा न होते हुए भी अभी लोकैषणा से मैं बाहर नहीं हूं। मेरा कोई पुत्र नहीं है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि सभी आर्य महानुभाव मुझ पर सौजन्य बनाये रहेंगे। जिन सज्जन ने मुझे पत्र लिखा है, उन्होंने मुझ पर बड़ी कृपा की है जिससे स्पष्टीकरण हो सका।

३. आवश्यक निवेदन

कुछ समय से मेरा शरीर शिथिल चला आ रहा है अतः प्रश्न—शङ्का पुस्तक समालोचना कम से कम १-१॥ महीने तक भेजने का कष्ट न किया जावे, इनके कारण मानसिक प्रभाव भी पड़ता है। आशा है सम्बद्ध महानुभाव ध्यान रखने का अनुग्रह करते रहेंगे। स्वस्थ होने पर मैं निवेदन कर दूंगा। पत्र भेजने का कष्ट न कीजिये।

(क) आर्यसमाजों तथा संस्थाओं के उत्सवों में मैं कुछ समय से उक्त कारण से नहीं जाता। अतः १-२ मास तक बुलाने का कष्ट न किया जावे।

(ख) संस्थाओं और आर्यसमाजों के समाचार लम्बे नहीं भेजने चाहियें। तथा एक ही बात प्रति मास नहीं भेजनी चाहिये।

(ग) वार्षिक चुनावों के विवरण में केवल प्रधान, मन्त्री, कोषाध्यक्ष और पुस्तकाध्यक्ष के नाम ही भेजने चाहियें। "उप" नहीं। उनको प्रकाशित नहीं किया जाता। आशा है सम्बद्ध महानुभाव इस नम्र निवेदन पर ध्यान रखने का कष्ट करेंगे।

४. आर्यसमाज स्थापना शताब्दी समारोह

(क) दयानन्द मठ रोहतक में आर्यसमाज स्थापना शताब्दी समारोह मनाने के लिये आयोजन किया गया। समारोह इसी अंक के पृष्ठ चार पर पूरी तरह प्रकाशित किया गया है—वहीं देखना चाहिये।

(ख) इसी समय ऋषि दयानन्द के जीवनचरित्र को कलङ्कित करने वाले डा० श्रीराम शर्मा के विरोध में प्रस्ताव स्वीकार किया गया। यह कार्यवाही भी पृष्ठ चार पर ही अंकित की गई है।

५. श्रीमती सम्पादिका 'आर्य विजय' मासिक बम्बई की चेतावनी

"बम्बई में हमें शताब्दी मनानी है। यहां १५ समाजें हैं, सब समाजों की सदस्यता मिलाकर मुश्किल से एक हजार है। उसमें से पांच सौ तो केवल छः रुपये मासिक देकर घर बैठने वाले हैं। बचे पांच सौ, उसमें २५० ऐसे हैं जो बूढ़े रिटायर्ड; जिनसे कुछ आशा नहीं रखी जा सकती। कुल २५० लोग ऐसे हैं जिनमें से दो सौ को हम आर्यसमाज के उत्सवों में चाहे वह चौपाटी या शिवाजी पार्क, चाहे फोर्ट अथवा भांडुप कहीं भी वही चेहरे यत्र तत्र नजर आते हैं। इन दो सौ लोगों में भी अनेक दल हैं। नरम दल, गरम दल, समझौतावादी दल, पूजीवादी दल, कार्यकर्ता दल ! और भी क्या क्या दल ईश्वर जानें।

क्या इन सौ डेढ़ सौ लोगों के बल पर हम शताब्दी मनायेंगे। सत्य तो कड़वा लगेगा ही, पर यह बात सत्य है कि इसका एकमात्र कारण नेताओं का दिशा विहीन नेतृत्व है। जब तक बम्बई के नेतृत्व को नहीं बदलेंगे तब तक यहां आर्यसमाज नहीं पनपेगा। आर्यसमाज को आज आर्यों की जरूरत है। आडम्बरवादी अनार्यों की नहीं। इसलिये सच्चाई को समझें और आज के इस आडम्बरवादी नेतृत्व को बदल डालें।"

६. सिक्किम का प्रशासन भारत सरकार ने सम्भाला

वहां गत चुनावों को लेकर राज्य में अव्यवस्था चल रही थी। सरकार और जन नेताओं में संघर्ष की स्थिति बनी। सरकार की ओर से श्री चोग्याल की प्रार्थना पर भारत ने शासन कार्य संभाला। सौभाग्य है जननेताओं ने भी इस पग का स्वागत किया। श्री चोग्याल सविधान के अनुसार अध्यक्ष रहेंगे। जनता की मांग पर भारत पूरी तरह विचार करेगा।

—जगदेवसिंह सिद्धान्ती शास्त्री

दयानन्द मठ रोहतक में आर्यसमाज स्थापना समारोह सम्पन्न

हरयाणा में आर्यसमाज शताब्दी समारोह मनाने तथा हरयाणा में आर्य समाज के १०० वर्ष का इतिहास लिखाने का निश्चय हुआ

रोहतक ४ अप्रैल, आज यहाँ हरयाणा के प्रसिद्ध धार्मिक स्थान दयानन्द मठ रोहतक में हरयाणा के आर्यसमाजों की ओर से श्री स्वामी सर्वानन्दजी सरस्वती रिसीवर आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब–हरयाणा की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ। प्रातः ५ बजे रोहतक नगर के आर्यसमाजों के सदस्यों तथा दयानन्द मठ वासियों द्वारा नगर के मुख्य मार्गों पर प्रभात फेरी निकाली गई। यज्ञ के पश्चात् पूज्य श्री स्वामी सर्वानन्द जी महाराज का वेदोपदेश हुआ।

११ बजे हरयाणा के कोने कोने से पधारे हुये आर्यसमाजों के अधिकारियों, प्रतिनिधियों तथा कार्यकर्त्ताओं की बैठक श्री जगदेवसिंहजी सिद्धान्ती शास्त्री की अध्यक्षता में हुई जिनमें निम्न प्रकार निश्चय किये गये।

१. हरयाण के मुख्य मन्त्री तथा शिक्षा मन्त्री की सेवा में आर्यसमाज का एक शिष्ट मण्डल भेजा जावे और दृढ़ता पूर्वक निवेदन किया जावे कि हरयाणा सरकार की ओर से आर्यसमाज के संस्थापक श्री स्वामी दयानन्द जी का जीवन चरित्र छपवाया जा रहा है, उसका सम्पादन कार्य प्रिंसिपल श्रीराम शर्मा द्वारा किसी भी अवस्था में न करवाया जावे, क्योंकि वे जान बूझ कर ऋषि दयानन्द के अमर बलिदान को समाप्त करना चाहते हैं।

२. हरयाणा में भी आर्यसमाज स्थापना शताब्दी समारोह मनाया जावे और इस के स्थान के चयन तथा आवश्यक तैयारी के लिये हरयाणा के आर्यसमाजों के अधिकारियों तथा प्रतिनिधियों की बैठक शीघ्र ही बुलाई जावे।

३. आर्यसमाज शताब्दी समारोह के अवसर पर हरयाणा में आर्य-समाज के १०० वर्ष नामक एक पुस्तक का प्रकाशन किया जावे जिसमें आर्यसमाज की स्थापना, प्रचार व प्रसार का विवरण, आर्य उपदेशकों, भजनोपदेकों तथा कार्य कर्त्ताओं का परिचय और हैदराबाद सत्याग्रह एवं स्वतन्त्रता आन्दोलन, हिन्दी आन्दोलन, गो रक्षा सत्याग्रह कुण्डली-बूचड़-खाना निरोध सत्याग्रह एवं चण्डीगढ़ आदि सत्याग्रह का इतिहास लिखा जावे और सत्याग्रहियों का सम्मान किया जावे।

दोपहर बाद २ बजे खुला अधिवेशन श्री स्वामी सर्वानन्द जी महाराज की अध्यक्षता में हुआ। फसल काटने का आवश्यक कार्य छोड़कर भी ग्रामों से पर्याप्त आर्य भाई दूर दूर से पधारे क्योंकि आर्य जगत् के प्रसिद्ध वैदिक विद्वान् श्री जगदेवसिंह सिद्धान्ती शास्त्री का दयानन्द मठ रोहतक को वैदिक धर्म का प्रचार केन्द्र बनाना स्वीकार करने की घोषणा की है। इसी उपलक्ष में हरयाणा के आर्यसमाजों तथा गुरुकुलों के अधिकारियों की ओर से स्वागत किया गया। अनेक वक्ताओं ने श्री सिद्धान्ती जी द्वारा आर्यसमाजकी की गई सेवाओं की प्रशंसा की और आशा व्यक्त की कि श्री सिद्धान्ती जी दयानन्द मठ रोहतक में बैठकर और अधिक सेवा कर सकेंगे।

श्री सिद्धान्ती जी ने अन्त में सभी आर्य भाइयों का धन्यवाद करते हुए कहा कि ऋषिदयानन्द की कृपा से आज हरयाणा के ग्राम ग्राम में वैदिक धर्म के सिद्धान्तों की छाप है। हरयाणा में जो भी आन्दोलन हुआ है उसका नेतृत्व आर्यसमाज के हाथ में रहा है। हम सभी को आपस के सभी मत भेद भुलाकर आर्यसमाज का कार्य तन-मन और धन से करना चाहिये। मैं भी रोहतक को प्रचार केन्द्र बनाकर यथापूर्व कार्य करता रहूंगा।

आर्यसमाज स्थापना समारोह सफलता पूर्वक सम्पन्न हुआ क्योंकि इस शुभावसर पर आर्यसमाज के प्रचार का ठोस कार्यक्रम तैयार किया गया। इसकी सफलता के लिये आर्यप्रतिनिधि सभा पंजाब हरयाणा के वेदप्रचार मण्डल के अध्यक्ष पं० समरसिंह जी वेदालंकार, श्री बनवारी लाल जी आर्य, श्री अर्जुनदेव जी श्री जयपाल जी आर्य, श्री कुलवन्त राय जी, वानप्रस्थी श्री रामपत जी, श्री मुंशीलाल धर्मपाल मण्डली, श्री जयलाल, सिंहराम तथा श्री हरिश्चन्द करनालवी की मण्डली ने आर्य-समाज स्थापना की तैयारी के लिये रोहतक के आस पास के ग्रामों में प्रचार कार्य किया दयानन्द मठ रोहतक के अध्यक्ष श्री स्वामी ओमानन्द जी, सभा के उपप्रधान महाशय भरतसिंह जी, वैद्य भरतसिंह आर्य तथा मठ के कर्मठ साधु श्री स्वामी सोमानन्द जी महाराज ने रात दिन कार्य करके आर्यसमाज के सन्देश को जन जन तक पहुंचाने का यत्न किया।

रोहतक नगर के आर्यसमाजों के कार्य कर्त्ताओं ने पूर्ण सहयोग देकर संगठन का परिचय दिया। आर्यवीर दल के कार्यकर्त्ताओं ने श्री जगदीश जी के नेतृत्व में प्रभात फेरी तथा समारोह व्यवस्था में योगदान किया। श्री राममेहर जी एडवोकेट ने आर्यसमाज स्थापना की योजना बनाने में सहयोग दिया।

आर्यसमाज स्थापना समारोह पर सर्वसम्मति से पारित प्रस्ताव निम्न प्रकार हैं:—

(१) आज ४-४-७३ को दयानन्दमठ रोहतक में आर्यसामज स्थापना दिवस के शुभावसर पर हरयाणा की लगभग सभी प्रतिष्ठित आर्यसमाजों व संस्थाओं के एकत्रित प्रतिनिधियों का यह सम्मेलन इस विषय पर घोर चिन्ता व खेद व्यक्त करता है कि हरयाणा सरकार ने जिस पवित्र सद्भावना से महर्षि दयानन्द के जीवन चरित्र लिखवाने के लिये ५० हजार रुपये की राशि पंजाब विश्वविद्यालय को प्रदान की थी उसका सही सदुपयोग नहीं किया जा रहा। उपकुलपति महोदय ने इस महान् कार्य के लिये श्री डा० श्रीराम शर्मा को नियुक्त किया है जो एकदम से इस शुभ काम के लिये अयोग्य व अनुपयुक्त हैं। इस विषय पर उनके लिये अब तक के लेख जो आर्यजगत् के दृष्टिगोचर हुए हैं, उनसे ज्ञात होता है कि उन्हें न तो पूरी तरह इस विषय के तथ्यों का ज्ञान है न सच्ची लगन व श्रद्धा है। जो सही अन्वेषण कर सकें।

अतः उपकुलपति महोदय तथा हरयाणा सरकार से साग्रह अनुरोध है कि इन्हे इस काम से हटा कर इनके स्थान पर निम्न महानुभावों मे से किसी विद्वान् सज्जन को नियुक्त करें।

१—श्री प्रो० राजेन्द्र जी जिज्ञासु एम. ए. डी. ए. वी. कालेज अबोहर। २— श्री पं० रघुवीर सिंह जी शास्त्री कुलपति गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय। ३— श्री पं० शिवकुमार जी शास्त्री एम. पी.। ४— श्री स्वामी ओमानन्द जी सरस्वती गुरुकुल झज्जर। ५—श्री डा० भवानीलाल जी भारतीय एम. ए. पी. एच. डी. अजमेर तथा साथ ही निर्णय हुआ कि हरयाणा के प्रतिष्ठित महानुभावों का एक शिष्टमण्डल हरयाणा के मुख्य मंत्री, शिक्षामन्त्री और पं० वि० विद्यालय के उपकुलपति महोदय से मिले। इसकी व्यवस्था श्री महाशय भरतसिंह जी करेंगे।

२—यह सम्मेलन सर्वसम्मति से निर्णय करता है कि हरयाणा में भी आर्यसमाज शताब्दी समारोह बड़े पैमाने पर मनाया जाय। उसके प्रबन्ध स्थान तथा तिथियों व समय के निर्णय के लिये समाजों व संस्थाओं के प्रतिनिधियों की एक विशेष बैठक बुलवाई जाय जिस की व्यवस्था महाशय भरतसिंह जी करें।

—केदारसिंह आर्य-कार्यालय हरयाणा वेदप्रचार मण्डल दयानन्दमठ रोहतक

क्रमागत—

माण्डूक्य पर आचार्य गौडपाद कारिकाओं की समीक्षा (२३)

(ले० श्री स्वामी ब्रह्मानन्द जी आर्य त्रैतवेदान्ताचार्य, मु० ओंकार आश्रम, चान्दोद, बड़ोदा)

परन्तु हमें आश्चर्य तो यह होता है कि आ० गुरु शंकर जी रज्जू को तो भाव रूप सत्य मानते हैं किन्तु सर्प को सर्वथा अभाव असत्य ही मानते हैं अर्थात् उन्हीं का यह कहना है कि ब्रह्मरूप रज्जू में अध्यासी जीव को जगत् रूप सर्प का अध्यास अनादि काल से हो आया है किन्तु जगत् रूप सर्प तो तीन काल में नहीं है, यह वह एवं तू स्वयं ही ब्रह्मरूप है, जो स्वयं की विकृत कल्पना स्वयं कर बैठा है। तो हमारा कहना उनसे इस विषय में यह है कि जो ब्रह्म स्वभाव से निर्भ्रान्ति है वह विभ्रान्ति कभी कैसे हो सकेगा? अर्थात् कभी भी नहीं, क्योंकि वह स्वभाव से ही नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त गुण धर्म स्वभाव वाला है। तो कोई भी धर्मी अपने गुणधर्म के विरुद्ध कभी नहीं हो सकता यही शास्त्रीय मर्यादा है ॥१९॥

तैजसस्यात्व-विज्ञान उत्कर्षो दृश्यतेस्फुटम् ।
मात्रास प्रतिपत्तौस्पादुभयत्वं तथाविधम् ॥२०॥

आगम प्र० की २० वीं कारिका

अर्थ—तैजस को उकार रूप जानने पर अर्थात् तैजस उकार रूप है ऐसा जानने पर उनका उत्कर्ष स्पष्ट दिखाई देता है। तथा उनका उभयत्व भी स्पष्ट ही है ॥२०॥

समीक्षा—यहां जीव को तैजस इसलिये कहा है कि वह स्वयं तेजस्वी स्वरूप से ओंकार की द्वितीया मात्रा उकार के साथ में तादात्म्य करके स्वप्नावस्था में अपने ही मानसिक तेज से सभी विषयों को व्यष्टि रूप संस्कार मात्र से भोगता है, याने अपने विषयेन्द्रियों का अपने ही आप प्रकाशक है, इसीलिये यह तैजस नाम से उस स्वप्न अवस्था में स्वयं सिद्ध है। किन्तु अद्वैताचार्य इसके इस स्वप्नावस्था के व्यापार या भोगों को मिथ्या काल्पनिक मानते हैं। किन्तु मिथ्या नहीं है, परन्तु वहां के सभी इसके भोगेन्द्रियां, संकल्प एवं संस्कार मात्र या सूक्ष्म बीजरूप से मन में विद्यमान प्रथम से ही रहते होने से इन्हें मिथ्या कहना उन्हों का युक्ति युक्त न होने से निरर्थक ही है ॥२०॥

मकारभावे प्राज्ञस्य मानसामान्यमुत्कटम् ।
मात्रा संप्रतिपत्तौ तु लयसामान्यमेव च ॥२१॥

आगम प्र० की २१ वीं कारिका

अर्थ—प्राज्ञ की मकार रूपता में अर्थात् प्राज्ञ मकार मात्रा रूप है ऐसा जानने में मान करने की समानता स्पष्ट है। इसी प्रकार उनमें लय स्थान होने की समानता भी स्पष्ट ही है ॥२१॥

समीक्षा—परन्तु बड़े गुरु गौड जी यहां प्राज्ञ नामक जीव को यहां अज्ञ मानते हैं सो ऐसी बात नहीं है, यहां सुषुप्त अवस्था प्राप्त जीव को प्राज्ञ इसीलिये कहा है कि वह अपने मन इन्द्रिय के सर्व संकल्पों से रहित हो, ओंकार की अन्त की मकार मात्रा में तल्लीन रहता है तब ये घन प्रज्ञ याने इसकी प्रज्ञप्ति ज्ञान के बाहर के आवरण से तो घनीभूत रहता है किन्तु अपने ही आत्मा में परमात्माभिमुख हुआ यहां ये उसके आनन्द का अनुभव अपने ही अन्दर करता हुआ (आत्मन्येवात्मना तुष्ट) रहता है, इसीलिये (सुषुप्ति-काले सकले विलीने तमोविभूतः सुख-रूपमेति। कै० उ० में कहा है। तो यह न वहां सर्वथा लयता को पाता है न यह वहां अज्ञ बन जाता है किन्तु जैसे जल मग्न हुआ मनुष्य गोता लगाने पर मन ही मन प्रसन्न एवं जल के शीतलत्वादिगुणों का स्वानुभव यहीं किये रहता है परन्तु बाहर आने पर ही अपने आनन्दानुभव का परिचय अन्य को देता है इसी प्रकार सुषुप्ताभिमानी प्राज्ञ नाम्ना जीवात्मा को समझ लेना चाहिये। इसलिये प्राज्ञ अविद्या कल्पित न घटाकाश के समान है न स्वयं स्वकीय से अज्ञान है, किन्तु यह तो मकार मात्रा से युक्त हुआ जीव घन प्रज्ञ एवं ईश्वरानन्द में मग्न ऐसा मानना ही युक्तियुक्त एवं शास्त्र संमत होगा ॥२१॥

त्रिषु धामसु यस्तुल्यं सामान्यं वेत्ति निश्चित ।
स पूज्यः सर्वभूतानां वन्द्यश्चैव महामुनिः ॥२२॥

आगम प्र० की २२ वीं कारिका

अर्थ—जो पुरुष तीनों स्थानों में (बतलाई गयी) तुल्यता को निश्चय-पूर्वक जानता है वह महामुनि समस्त प्राणियों का पूजनीय और वन्दनीय होता है ॥२२॥

समीक्षा—समानता तो दो में होती है एक में कभी नहीं, और वह भी जान लेने के बाद होती है और जो एकता जान लेने के बाद होती है वह नैमित्तिक ही होती है तो जिस निमित्त से होती है तो उसी निमित्त के न रहने पर पुनः विभेदता या द्वैतता प्राप्त हो जायेगी, तो इस स्वाभाविक नियम का भी आप सबको ध्यान रखना चाहिये और आ० शंकर ने भी ओंकार में सभी मात्रादि के लय के बाद पुनः ओंकार से उनका निकलना माना है भाष्य में। जैसे सुषुप्ति प्राप्त पुरुष सदैव सुषुप्त बना नहीं रहता किन्तु पुनः प्रबुद्धता को प्राप्त कर लेता है इसी प्रकार ओम्कार को अकार उकार मकार मात्रा से विश्व तैजस प्राज्ञ नाम्ना जीवात्मा के विषय में जान लो, अथवा विस्तार से इस विषय को इस प्रकार से समझो कि ओंकार को तीनों मात्रा रूप धाम जो अकार उकार मकार कहाते हैं इन मात्रा के साथ क्रमशः विश्व को अकार से तैजस को उकार से प्राज्ञ मकार से मिला, समष्टि विराट् को हिरण्य गर्भ में, हिरण्य गर्भ को ईश्वर में, ईश्वर को (त्रिपादूर्ध्व उदैत् पुरुषः) जिसे वेद ने बताया है उसी मायातीत विशुद्ध अमृत ब्रह्म में ध्याना-कारिता की पवित्र भावना से मिला ओंकार के दीर्घ नादानुसन्धान युक्त, उपरोक्त भावनायुक्त एकत्व के परमार्थ का चिन्तन करता हुआ जो पारमार्थिक जीवनयापन करता है वही महामुनि श्रेष्ठतम सर्वपूज्य बन जाता है। पूज्य प्रातः स्मरणीय महर्षि दयानन्द सरस्वती जी महाराज भी इसी ओम् पवित्र को ध्यानस्थ कर समाधि में कई घण्टों रात्री में योगयुक्त लवलीन रहते थे, इसीलिये एवं अनेकों दिव्य गुणकर्म स्वभाव के वे महान् ब्रह्मनिष्ठ योगी ज्ञानी परोपकारी अखण्ड बाल ब्रह्मचारी होने से ही वे विराट् परिवार एवं भारतराष्ट्रोद्धार के आद्य मंत्रद्रष्टा गुरुतम गुरु हुये हैं यही उपरोक्त बातें आगे आने वाली कारिका में भी कहेंगे ॥२२॥

अकारो नयते विश्वमुकारश्चापि तैजसम् ।
मकारश्च पुनः प्राज्ञं नामात्रे विद्यते गतिः ॥२३॥

आगम प्र० की २३ वीं कारिको

अर्थ—अकार विश्व को प्राप्त कर देता है तथा उकार तैजस को और मकार प्राज्ञ को, किन्तु अमात्र में किसी को गति नहीं है ॥२३॥

समीक्षा—और तो सब बात ठीक, किन्तु अमात्र में क्यों किसी को भी गति नहीं क्या कारण है कुछ नहीं कहा बताया, परन्तु आचार्य श्री गुरु शंकर यहां इस (२३) वीं कारिका के भाष्य में यों कहते हैं कि (च० शब्द से नयते—प्राप्त करा देता है इस क्रिया का अनुवृत्ति होती है। तथा मकार का क्षय हो जाने पर मात्राहीन ओंकार में कोई गति नहीं होती यह इसका तात्पर्य है) ऐसा इन्हों का कहना है। तो ये हमें उचित नहीं जंचता, क्योंकि चकार से नयते इस क्रिया का आचार्य जी किसके लिये प्रयोग करते हैं क्योंकि अकार विश्व को तथा उकार तैजस को एवं मकार प्राज्ञ को प्राप्त करा देता है, तो दोनों चकार का तो ऊपर ही अर्थ आ चुका तो अब कौन सा च बाकी रह गया जो नयते को लक्ष्य करेगा? तथा आगे आचार्य जो कहते हैं कि (ओम्कार में मकार जो हल वर्ण है उसका लोप हो जाता है याने उसका क्षय मानकर उसके बीज भाव का भी क्षय हो जाने से मात्राहीन ओंकार में कोई किसी प्रकार की गति नहीं होती) तो हमारी इस पर यह आपत्ति या विरोध है कि आ० शंकर जी की ये कल्पना केवल कपोल कल्पित ही हैं, क्योंकि इस बात के लिये उन्होंने कोई शास्त्रीय प्रमाण नहीं दिये तो हम कैसे मान लेवें कि ओंकार जो अव्यय पद है, वह व्यय किस कारण से माना जायेगा? यदि कहें कि हम तो ओंकार की आखिरी मात्रा जो हल वर्ण का मकार है उसका लोप और क्षय कर रहे हैं तो ऐसा जो कहें तो भी उचित नहीं, क्योंकि अकार उकार मकार ये त्र्यक्षरात्मक ही ओंकार कहा जाता है न कि मकार रहित, और यदि किसी नियम या कारण से ओम् के मकार को निकाल ही दिया जायेगा तो ओंकार अक्षर कहने योग्य ही नहीं रहेगा, न ओम् ही कहा जायेगा, किन्तु (ओ) ही मात्र उच्चारित होगा, तो भला कोई (ओ) को भी (ओम्) कहेगा या मानेगा? ● (क्रमशः)

गतांक से आगे—

सन् ५७ में प्रजा विद्रोह के कारण ?

टैक्स कौन से लगाये गये ? (२६)

(ले० श्री स्वा० सच्चिदानन्द योगी, अध्यक्ष श्री नारायण स्वामी आश्रम, महामहिम पातञ्जलयोग साधना सघ आ० बा० आ० ज्वालापुर)

लेख क्रम बहुत लम्बा हो गया। पाठकों ने जान लिया है कि आक्षेपों में कोई दम नही। अहमन्यता-वश वृथा किये गये हैं। आक्षेपों का उद्देश्य सच्चाई की खोज नही। केवल वावदूकता सिद्ध करना है। सक्षेप में क्रमश: आक्षेपो की निराधारता लिखने है :—

१९ नवम्बर ७२ की आर्यमर्यादा में स्वामी पूर्णानन्द जी ने विचित्र आक्षेप किया है। "थियासोफिस्ट में १८ प्रसिद्ध स्थानों में यात्रा करते रहे यह सब उत्तर प्रदेश में ही है।' न कोई स्थान ऐसा ही जो एक दूसरे से इतनी दूरी पर हो जिसके लिये कई कई दिन यात्रा करनी पड़े।"

ठीक ! फिर यह यात्रा अठारह दिन में या ५८ दिन में हो गयी। दो मास में ही। दो साल कहा रहे ! इस से निश्चित है पूना प्रवचन दशम व्याख्यान के अनुसार—"महादेव कैलास के रहने वाले थे। कुबेर अलकापुरी के रहने वाले थे। यह सब इतिहास केदार खण्ड का वर्णन किया है। हम स्वय भी इन सब ओर घूमे हुए हैं।"—अर्थात् हिमालय कैलाश गौरीशकर शिखर पर और अलकनन्दा के स्रोत से आगे पुराणी नयी अलकापुरी भी घूमे हुए है।

दूसरी बात और भी विचित्र ही लिखी है—थियासोफिस्ट में १८ हरी स्थान हैं पर योगी के आत्म चरित्र में ११० स्थान। इसलिये योगी का आत्म चरित्र मनघड़न्त। श्री मान् जी ! पूना प्रवचन १६वे व्याख्यान में तो किसी भी स्थान का नाम नही दिया। ता क्या थियासोफिस्ट की जीवनी सर्वथा निराधार ही है। पूना प्रवचन में लिखा है—

"हरद्वार पहुचा वहां कुम्भ का मेला था वहा से हिमालय पहाड़ पर उस जगह पहुचा जहा से अलकनन्दा निकलती है । यह निश्चय कर मैं मथुरा में आया।"

उपदेशमञ्जरी-योगी-आ० २७८ पृ० पूना प्रवचन

इससे नो सिद्ध हो रहा है स्वामी जी हरद्वार से सीधे अलकनन्दा के स्रोत पर पहुचे कही ठहरे ही नही। गये भी नही। क्या इसी आपके तर्क से मान लिया जाये कि थियासोफिस्ट जीवनी शत प्रतिशत गप है। मनघड़न्त है।

तीनों जीवनियाँ सत्य हैं। कोई विरोध नही। सक्षेप विस्तार का भेद है। पहले यह दिखाया जा चुका है।

स्वामी जी ने लिखा अवश्य है, ठीक लिखा है :—थियासोफिस्ट जीवनी सब से अधिक प्रामाणिक है। फिर स्वामी जी प० भवानी लाल जी से तो मालूम कीजिये वह थियासोफिस्ट को प्रामाणिक नही मान रह :—"At Baroda learning from a Banaras woman that a meeting of the most learned scholars was to be held at a certain locality. I repaired there at once" – बड़ौदा में बनारस के रहने वाली स्त्री से जाना कि काशी में किसी स्थान विशेष पर परम विद्वान् पण्डितो की एक सभा होगी मैने उस विशेष स्थान की यात्रा आरम्भ कर दी। इसका अर्थ हमने किया कि विशेष स्थान का अभिप्राय बनारस से है। दूसरा पक्ष यह है कि स्वामी जी बड़ौदा के पास परिसर चाणोद कल्याणी में गये। चलो अभ्युपगम मिद्धान्त से यही मान लिया जाये कि वह बडौदा से चाणोद कल्याणी ही चले गये। आगे जो वाक्य है, उसका ऐसा अर्थ करने से अर्थ सगति नही बैठती। लिखा है :—

Visiting a personage known as Sacchidanand and Paramhans, with whom I was permitted to discuss upon various scientific and meta physical subjects. From him I learned also, that there were a number of great Sanyasis and Brahmcharis who resided at Chanod Kanyali. In consiquence of this, I repaired to that place of sancity on the Banks of the Nerbudah.

बड़ौदा से अभ्युपगम से माना चाणोद कल्याणी आ गये। वहां सच्चिदानन्द स्वामी परमहंस से अनेक विषयों पर चर्चा हुई। उनसे जाना क चाणोद कन्याली में बहुत से संन्यासी और ब्रह्मचारी रहते हैं, परिणामत नर्बदा के किनारे उस पवित्र स्थान को चल दिया।"

शका बड़ी स्पष्ट है, बड़ौदा से चाणोद कन्याली में आये फिर जाना और काणोद कन्याली ही चल दिये। उस स्थान पर जो पवित्र था। और नर्बदा के किनारों पर था। चाणोद में आकर चाणोद की बातें सुनना बेतुका है। वहां तो घूमघाम कर ही पहुंचेंगे। या सीधे ही योग सिद्धि से स्वामी सच्चिदानन्द परमहस के पास पहुच गये थे और चाणोद कन्याली तो है ही मिली हुई और है भी नर्बदा के एक ही किनारे पर, फिर Banks=किनारो पर यही बहुवचन का प्रयोग क्यों ? बात सर्वथा सुस्पष्ट है कि स्वामी सच्चिदानन्द परमहस चाणोद कन्याली में नही थे। बनारस मे थे। वहा पर उनसे सुन कर नर्बदा के दोनो किनारों पर खोजते खाजते शुद्ध चैतन्य चाणोद कन्याली पहुचे। पहली बार का 'Repaired= चल पड़ा' प्रयोग बनारस पहुंचने के लिये है दूसरी बार का नर्बदा की यात्रा के लिये, इस प्रकार थियासोफिस्ट जीवनी को ठीक नही समझा जा रहा। अगले लेख में यह दिखायेगे कि थियासोफिस्ट का हिन्दी मूल अप्राप्य है। जो प्राप्य है उनका अनुवाद यह थियासोफिस्ट जीवन नहीं है।

थियासोफिस्ट नवम्बर, दिसम्बर १८८० ई० मे छपी थी। थियासोफिस्ट की ये प्रतिया मिल जाये, इसके लिये बहुत सी लायब्रेरिया छानीं, नही मिला। १९०८ में प० दुर्गाप्रसाद जी ने इसे सत्यार्थ प्रकाश के अंग्रेजी अनुवाद में इसे छापा था। प० भारतेन्द्र नाथ जी जन ज्ञान वालों ने इस सत्यार्थ प्रकाश का सुन्दर सस्करण निकाला था। उसमें भी थियोसोफिस्ट वाला आत्म चरित्र नही था। श्री भारतेन्द्र जी के पास पहुंचा। उन्होंने कहा दे नही सकता। यहां बैठ कर सामने ही टाइप करा लो। ६०, ७० खर्च होंगे। मैं चुपचाप चला आया। साधु के लिये व्यय का प्रश्न था। अन्त में श्री नारायण स्वामी पुस्तकालय में अचानक हाथ लग गया। बड़ी प्रसन्नता हुई दुष्प्राप्य सामग्री मिल गई।

इस अंग्रेजी जीवनी से जब अन्य जीवनियों का मिलान किया तो बड़ा आश्चर्य हुआ। कोई भी हिन्दी का आत्म चरित्र ऐसा नही मिला जिसका अंग्रेजी अनुवाद थियासोफिस्ट हो। उसकी मूल प्रति हिन्दी में लिखाई थी। यह ऋषि की सही की हुई हस्ताक्षर की हुई तो कोई प्रति है ही नही। वह सुरक्षित न रही होगी या उससे भक्तों ने कुछ कुछ नोट कर लिया होगा। यदि वही होती थियासोफिस्ट अंग्रेजी से पूर्णतया मिलती। अंग्रेजी कराने के पोछे भी ऋषि ने अंग्रेजी की हिन्दी सुनी होगी। छपने पर भी सुनी होगी। अंग्रेजी अनुवाद के बारे में ऋषि का कोई लेख सन्देह उत्पन्न करने वाला नही मिलता।

हिन्दी के प्राप्त आत्म चरित्रो में निम्न बाते अन्यथा कही गई हैं :—

१. शीर्षक ही एक से नही। थियासोफिस्ट मे २४ शीर्षक हे :—

१. Education शिक्षा २. Vigil रात्रि जागरण ३. Reflection on Idolatry मूर्ति पूजा पर अश्रद्धा ४. Decision निर्णय ५. Renunciation सर्वस्व त्याग ६. Obstacles विघ्न ७. Flight घर का परित्याग ८. Joining the Holy order पवित्र ब्रह्मचर्य दीक्षा ९. Severance of family tie परिवार से सम्बन्ध विच्छेद १०. Convertion to Vedanta वेदान्ती बना ११. Study of Vedanta वेदान्त का अध्ययन १२. Fravels-persis of yoga यात्राय, योग की खोज १३. Visit to Tehri टिहरी को प्रस्थान १४. Wam marga of Indian Bacchanalism वाममार्ग या भारतीय मद्य-प्रियता १५. Visit to religious places धार्मिक स्थानों की यात्रा १६. Search of yogis (Clairvoyants) सिद्ध योगियों की खोज १७. Temptation of priest-craft महन्त बनाने का प्रलोभन १८ yogis of Joshi math (convent) जोशी मठ के योगी १९. Further search of clairvoyants सिद्ध योगियों कीआगे खोज २०. Books on yoga and Science योग की पुस्तके और विज्ञान २१. Practice of yoga योगाभ्यास से २२. Ferauds of Idolatry मूर्ति पूजा ढोंग २३. Forests of Nerbudah नर्बदा के जंगल २४. Forest life अरण्य जीवन।"

यह बात बड़ी स्पष्ट है जिस ऋषि के हिन्दी लेख का ये अनुवाद है, उसके शीर्षक तो यह कम से कम होने चाहियें परन्तु शीर्षक हिन्दी के नहीं मिलते। (क्रमश:) ●

गतांक के आगे —

योगी का आत्म चरित्र एक मनघडन्त कहानी

(लेखक—श्री स्वामी पूर्णानन्द जी सरस्वती-बड़ौत-जिला मेरठ)

"यत्सिद्धावन्यप्रकरणसिद्धिः सोधिकरणसिद्धान्तः।" अर्थात् जिस एक प्रकरण के सिद्ध होने पर दूसरे प्रकरण की सिद्धि हो जाती है, उसे अधिकरण सिद्धान्त कहते हैं।" तथापि हम तो इन झूठी कल्पनाओं को समूल नष्ट करना चाहते हैं, ऐसा न हो कि इन झूठी कल्पनाओ के कुछ अंकुर शेष रह जायें। सच्चिदानन्दजी की पार्टी ऋषिदयानन्द को सन् सत्तावन की क्रान्ति का सूत्रधार मानती है। परन्तु ऋषिदयानन्द के क्रान्ति युद्ध में सक्रिय भाग लेने से १ मास पूर्व उनकी क्या स्थिति थी? इस पर विचार कर लेना आवश्यक है। दीनबन्धु जी कल्पित दयानन्द के मुख से कहलाते हैं।—"मैं आबू छोड़कर हरद्वार के कुम्भ मेले में जाने के लिये तैय्यार होने लगा। वहां के बहुत साधक और संन्यासी एक साथ वहां जाने के लिये तैय्यार हो गये थे, "मैं भी उनके अन्दर सम्मिलित हो गया था" (यो० आ० च० पृ० १७७) इससे अगले पृष्ठ पर लिखा है।

"योग शिक्षा और योग साधनों में मैने ६ वर्ष बिताया था, लेकिन आगे और दूसरे योग सिद्ध महापुरुषों और तपस्वियों के सत्सग लाभ के लिये मेरे अन्दर प्रबल आग्रह हुआ। आबू पर्वत के साधुओं ने मुझे हरद्वार में होने वाले कुम्भ मेले में सम्मिलित होने के लिये परामर्श दिया था।" मैंने सभी से कृतज्ञता पूर्णभाव से विदाई लेकर मारवाड़, अजमेर, जयपुर, अलवर, दिल्ली और मेरठ आदि होते हुये पैदल हरद्वार की तरफ यात्रा शुरू की थी। रास्ता लगभग सत्तर योजन का था। मैं कम से कम पांच योजन रास्ता अतिक्रम करता था। अति सवेरे उठकर यात्रा शुरू करता था ·· मैं खाने के लायक चीजे लेता था, शेष चीजे गरीब दुःखियों को बांट देता था·· दिन हो या रात हो, निर्जन स्थानों में ही मै विश्राम करता था··· इसी रूप से मैं पुष्कर पहुंच गया था।" इस विवरण को पढ़कर यह कहावत याद आती है—सिर मुण्डाते ही औले पड़ गये। इसमें लिखा है कि आबू से हरद्वार की यात्रा सत्तर (७०) योजन के लगभग थी। अर्थात् आबू से हरद्वार का रास्ता ३५० (तीन सौ पचास) मील का था। देहली से हरद्वार तो कई बार आना जाना होता है। हम जानते है कि देहली से हरद्वार लगभग १४० मील होगा। और मैं पहले बतला चुका हूं कि दीन बन्धु जी ने कल्पित दयानन्द को मेरठ से दो चक्कर कटवाये थे। एक ८० मील का मेरठ से हस्तिनापुर और हस्तिनापुर से गढ़मुक्तेश्वर और वहां से फिर मेरठ। दूसरा ४० मील का मेरठ से बाल्मीकि का आश्रम (बलैनी) और परशुराम का जन्म स्थान (महादेव का पुरा) आना जाना। इस प्रकार से देहली से हरद्वार का रास्ता २६० मील हो जाता है। अब ३५० में २६० घटाये तो शेष रह गये ९० मील? अब पाठक स्वय विचारें कि क्या आबू से दिल्ली नब्बे मील ही मेरे हिसाब से सीधा नापने से ४५० मील पड़ता है। रास्ता चलते तो ५०० मील से कम नही पड़ सकता। अब आर्य सज्जन सोचें कि यह झूठ डवल है या पांचगुणा झूठ है? यह भी निश्चय करले कि इस झूठ को अपने गुरु बालब्रह्मचारी निर्दोष, निष्कलक महर्षि दयानन्द के सिर मढ़ना है या दीनबन्धु और सच्चिदानन्द की जोड़ी के सिर मढ़ना है। और यह भी सोच लें कि इससे पहले ६ वर्ष तक जो योग का अभ्यास किया था, क्या वह झूठ का अभ्यास करने के लिये था? मैं मानता हूं कि अन्धविश्वासियों को छोड़कर सतर्क आर्य सज्जन इस झूठी कहानी को दीनबन्धु और सच्चिदानन्द की मन घड़न्त कहानी ही कहेंगे।

दूसरा झूठ यह है कि आबू से तो बहुत से साधक और संन्यासी एक साथ हरद्वार जाने के लिये तैय्यार हो गये थे और दयानन्द भी उनके अन्दर सम्मिलित हो गया था, परन्तु इस लेख के आगे अगले ही पृष्ठ में आबू से दिल्ली तक की यात्रा में कोई भी साधक या सन्यासी दिखाई नहीं देता। केवल दयानन्द अकेला ही यात्रा करता है। वे आबू के साथी कहां अन्तर्धान हो गये? कुछ पता नहीं चलता? वास्तव में झूठ बोलने वाले को परमात्मा की ओर से यही दण्ड मिलता है कि उसकी स्मृति नष्ट हो जाती है।

तीसरी झूठ यह है कि आबू से हरद्वार की यात्रा का उद्देश्य तो यह था कि आगे दूसरे और योग सिद्ध महापुरुषों और तपस्वियो के सत्सग का लाभ होगा, परन्तु हुआ यह कि राजनीति की गहरी दलदल में फस गये, और जब तक कुम्भ का मेला रहा इसी दलदल मे फसे रहे। और कल्पित क्रान्ति नेताओं के साथ कल्पित प्रश्नोत्तर होते रहे। इनकी सत्यता को परखने के लिये हम सच्चिदानन्द जी की नियत की हुई एक कसौटी को ही आधार मानकर प्रश्नोत्तरों की परीक्षा करेंगे। योगी जी ने 'आर्य मर्यादा' के २८-१-७३ के अंक में वाघेर कौन? के शीर्षक से बाघेर को बिठूर का निवासी सिद्ध करने के लिये व्यर्थ का जोर लगाया है। उसमें किसी घटना की सत्यता के लिये कुछ कसौटियां रक्खी है। आप लिखते है:—"साथ ही यह भी विचारने की बात है। गम्भीरता से विचारने की बात है, कि सत्यार्थ प्रकाश सम्वत् १९३९ मे छपा अर्थात् ५७ की क्रान्ति के २५ वर्ष बाद। उस समय तक ५७ के गदर का कोई इतिहास भी नही छपा था। समाचार पत्र बहुत थोड़े थे। उनमें भी ५७ की क्रान्ति का कोई विस्तृत इतिहास नही भारतीय जी ने यह समय कहा देखा। इस-लिये इतिहास का प्रमाण मांग रहे है। प्रत्यक्ष पर उनका अटूट विश्वास नही" योगी जी ने गम्भीरता से विचार करने पर विशेष बल दिया है। यह बड़ी अच्छी बात है, वास्तव में मनुष्य को परिभाषा हो यह है—मत्वाकर्माणि सीव्यति जो अच्छी प्रकार मे विचार कर कर्मा को जोड़ता है, वह ही मनुष्य है। आपने इस बात पर भो बल दिया है कि जहा इतिहास और समाचार उपलब्ध न हो प्रत्यक्षों के द्वारा ही किसी घटना की सच्चाई को जाना जाता है। इस कसौटी को ध्यान में रखना चाहिये। क्योंकि इस कसौटी के आधार पर ही हम ऋषिदयानन्द और क्रान्ति नेताओं के परस्पर प्रश्नोत्तरों को परीक्षा करेंगे। योगी जी ने भवानी लाल जी को गम्भीरता से विचार करने का आदेश दिया है। बड़ी अच्छी बात है। परन्तु गम्भीरता से विचारने की आवश्यकता भवानीलाल जी को ही है, या सच्चिदानन्द जी को थी? 'परोपदेशे पाण्डित्यं सुकरं नृणम्' दूसरों को उपदेश देने के लिये पण्डिताई को वघारना तो बडा सरल है परन्तु स्वयं भी गम्भीरता से अपनी त्रुटियों को देखना दुष्कर कर्म है। दुःख है योगी जी के ऊपर यह कहावत सर्वथा फिट बैठती है। आपने इसी लेख में लिखा है। "हमें तो ऋषि वाक्य पर पूर्ण आस्था है।" अभी इस लेख को स्याही सूखने भी नही पाई थी कि अगले ही कालम में आप लिखते हैं—

"मूलराज ने पाटण के अन्तिम चावण्डा वंश को मारकर गुजरात का राज्य उससे छीन लिया। यह घटना वि० १०१७ की है। (९६० ई०)। आगे ओझाजी का राजपूताने का इतिहास पढ़िये—(यह मूल राज सोलङ्की) बाल्य अवस्था में ही राजा हुआ। सुल्तान शाह शाहाबु-द्दीन गोरी ने गुजरात पर चढाई की। आबू के नीचे लड़ाई हुई। सुलतान घायल हुआ। हार खाकर लौटा" योगी जी ओझा जी की इस बात को सत्य मानते है कि सुलतान शाहबुद्दीन गौरी ने सम्वत् १०१७ में गुजरात पर आक्रमण किया था, और आप इस बात पर भी बल देते है कि भवानी लाल जी को और सबको ही मानना चाहिये। परन्तु ऋषिदयानन्द जी ने तो अपने सत्यार्थ प्रकाश के ११ वे सम्मुल्लास के अन्त में लिखा है:—"राजा यशः पाल के ऊपर शाहद्दिन गौरी गढ़ गजनो से चढकर आया और यशःपाल को पकड़कर सम्वत् १२४९ साल में (सन् ११९२) प्रयाग के किले में कैद किया पश्चात् इन्द्र प्रस्थ में राज्य करने लगा। इस हिसाब से योगी जी सुलतान शाहबुद्दीन का भारत पर आक्रमण ऋषिदयानन्द और सब ही इतिहास कारों से २३२ वर्ष पहले मानते हैं। अर्थात् ऋषि-दयानन्द का लिखना गलत और ओझा जी का कथन ठीक अब पाठक स्वयं निश्चित करें कि योगी जी की आस्था ऋषि के वाक्य पर है, या ओझा जी के वाक्य पर मैं योगी जी के लेखों को पढ़कर यही निष्कर्ष निकालता हूं कि योगी जी किसी विषय पर भी गम्भीरता पूर्वक विचार नहीं करते। अतः उनके लेखों में पदे-पदे स्खलन होता है। इसी लेख में पृष्ठ ७ पर पढ़िये? आप लिखते हैं:—क्रमशः

सुधारकों से तो अपेक्षा करते हैं वशिष्ठ जैसा बन जाने की किन्तु स्वयं राम नहीं बनना चाहते

[लेखक—श्री नेत्रपाल शास्त्री श्रीनगर (काश्मीर)]

आर्यमार्तण्ड १ दिसम्बर (१९७२) के अंक में श्री प्रेमदेव भूषण एडवोकेट का आलोचनात्मक एक लेख प्रकाशित हुआ है जिसका शीर्षक है—"हमारे सुधारकों में सुधार की आवश्यकता है" क्योंकि लेखक महोदय एक वकील हैं इसलिये उन्होंने वकालत के अन्दाज में अपनी मनोवृत्ति के अनुरूप स्वपक्ष के प्रतिपादन में ही अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगा दी है। और विपक्ष में जो भी चित्र प्रस्तुत किया है वह उनकी दृष्टि में यथार्थ है तथ्यपूर्ण है और अन्तिम है। वकील हैं, इसलिये उन्होंने अपनी ओर से तो अपील की भी गुंजाइश नहीं छोड़ी।

भारतीय संविधान के अनुसार प्रत्येक नागरिक को अपने विचार व्यक्त करने की पूर्ण स्वतन्त्रता है। वह अधिकार वकील साहब को भी प्राप्त है। प्राप्त ही नहीं अपितु भारतीय नागरिकों को न्याय दिलाने वालों में से आप एक हैं।

यदि एक समालोचक को समालोच्य विषय का पूर्ण ज्ञान नहीं है तब उसकी समालोचना अधूरी ही नहीं अपितु वह निन्दा की कोटि में समझी जायेगी। एक बात और भी है, वह यह है कि समालोचक जिस मापदण्ड को आधार मानकर समालोचना करते हैं उनको भी अपने मापदण्ड पर पूरा उतरना चाहिये। यदि समालोचक अपने को मापने के लिये तो आठ ग्रह का और दूसरों को मापने के लिये अठारह ग्रह का गज रखता है तब वह समालोचक नहीं हो सकता। तो श्री प्रेमदेव भूषण एडवोकेट के लेख की समीक्षा करके देखें—कहां तक युक्ति संगत है :—

उपदेशक, भजनीक, पुरोहित, वानप्रस्थी तथा संन्यासी ये सभी सुधारक की श्रेणी में आते हैं। इनमें से अधिकांश मध्यम श्रेणी के ही हैं। इनकी भी दो श्रेणियां हैं, प्रथम श्रेणी तो स्वतन्त्र रूप से प्रचार करने वालों की है। द्वितीय श्रेणी में वे आते हैं जो आर्यसमाज अथवा आर्य प्रतिनिधि सभाओं के अधीन रहकर कार्य कर रहे हैं। जिनकी मासिक आय १०० रुपये से लेकर चार सौ रुपये तक है। इस वेतन को भी एक विचित्र कहानी है जिसको देखकर हंसी भी आती है और दुःख भी होता है। हंसी तो इसलिये आती है कि कुछ समाजों ने तो पुरोहितों के साथ यह शर्त लगाई हुई है कि उधर से दान लाओ और इधर से वेतन लो। कुछ समाजें पुरोहित की दक्षिणा में से आधा पहले रखा लेती है बाद में वेतन देती हैं। कुछ समाजों ने दक्षिणा पुरोहित की, दान आर्यसमाज का, वेतन के नाम पर कुछ नहीं। इस शर्त पर भी पुरोहित रक्खे हुए हैं। कतिपय समाजों में इस ढंग के पुरोहित भी रक्खे हुए हैं कि वे कार्य तो समाज और स्कूल में करते हैं और वेतन स्कूल से लेते हैं। दुःख इसलिये होता है कि वे समाजें कैसे अपने लक्ष्य तक पहुँचेंगी जिनकी आंखें पुरोहित की दक्षिणा पर ही लगी रहती हैं। दक्षिणा की बात यह है कि पूर्ण विचार विमर्श के उपरान्त, जिसमें समाज के अधिकारी भी सम्मिलित होते हैं, पांच रुपया या ग्यारह रुपया दी जाती है अथवा दिलाई जाती है। संस्कारविधि के अनुसार दो-तीन संस्कार तो करवाते हैं किन्तु उसके अनुसार दक्षिणा कोई नहीं देता।

गृहस्थी का जीवन अन्दर बाहर एक हो, धर्म का पालन करने वाला हो, उत्तम कर्मनिष्ठा और विश्वास के साथ किये गये कुपथ पर चलने से रोकने के लिये ही गृहस्थाश्रम में पुरोहित की आवश्यकता है। सन्मार्ग पर चलने वाला पुरोहित ही होता है इसलिये गृहस्थ में उसका सबसे ऊंचा स्थान होता है क्योंकि पुरोहित की उपस्थिति में कोई भी गृहस्थ व्यक्तिगत रूप से अथवा समष्टिगत रूप से सामाजिक धार्मिक तथा राष्ट्रिय मर्यादाओं को तोड़ने का दुस्साहस नहीं कर सकता। तमाशा देखिये—कोई भी आर्यसमाजी यह कभी नहीं कहता कि ये हमारे कुल-पुरोहित है। सब यही कहते हैं कि यह आर्यसमाज के पुरोहित या पण्डित हैं। वैसे पुरोहित का आर्यसमाज में इतना भी अस्तित्व नहीं है जितनी उड़द पर सफेदी। किसी एक के रुष्ट हो जाने पर उसको समाज से मक्खी की तरह निकाल कर फेंक देते हैं। तुरन्त ही समाचार पत्रों में विज्ञापन निकलवा देते हैं—"आवश्यकता है एक पुरोहित की। ऐसे पुरोहित की जो वेदों का प्रकाण्ड पण्डित आचार्य या शास्त्री, शास्त्रों का मर्मज्ञ, शास्त्रार्थ करने में दक्ष, कर्मकाण्ड में निपुण व्याख्यान वाचस्पति, साथ ही संगीतज्ञ भी हो, वेतन १५०) आवास के नाम पर न काम आने वाली एक कोठरी, बिजली, पानी मुफ्त, आवेदन करें अमुक स्थान के मंत्री के नाम। विज्ञापन में एक कमी रह जाती है—इतना और लिखना चाहिये—नृत्यकला तथा विदूषक कला में जो निपुण होगा उसको प्राथमिकता दी जायेगी। "चाटुकारिता" इस शब्द के लिखने की तो इसलिये आवश्यकता नहीं है, इस गुण के बिना कोई पुरोहित किसी भी समाज में रह ही नहीं सकता।

संस्कार से पूर्व की जितनी भी योजनारूप प्रक्रिया है उसमें पुरोहित से सम्मति लेनी आवश्यक नहीं समझी जाती, खाली संस्कार का दिन और समय नोट करा दिया जाता है। कार होते हुए भी पुरोहित जी को लेने कदापि नहीं जायेगी, कार जायेगी गाने वालों को लेने के लिये और पुरोहित जी को सामान के साथ रात्रि के एक बजे सर्दी के मौसम में घर पर पहुंच जाने की आज्ञा दे दी जाती है।

पुरोहित जी की दैनिक उपस्थिति मंत्री जी और प्रधान जी के घर जाने पर ही लगती है। मंत्री जी और प्रधान जी हो उपस्थिति लगायें—यह आवश्यक नहीं है। पण्डित जी की उपस्थिति उनका नौकर भी लगा सकता है।

प्रधान तथा मंत्री जी के दर्शनों का तो कभी कभी सौभाग्य मिलता है और जिस दिन सौभाग्य मिलता है तो इन शब्दों के साथ पण्डित जी का स्वागत होता है - पण्डित जी सुना है दैनिक तथा साप्ताहिक सत्संगों में उपस्थिति बढ़ नहीं रही है इस ओर जरा ध्यान दें और हाँ, पड़ौस की एक देवी हमारी पत्नी को कह रही थी—समाज में सफाई नहीं रहती है जब तक सेवक का प्रबन्ध नहीं होता तब तक सफाई का विशेष ध्यान रक्खें। देखो, हम अपने घर में भी तो सफाई करते ही हैं यदि झाड़ू न हो तो खजाञ्ची से एक रुपया लेकर बाजार से झाड़ू खरीद लेना।

परिवार नियोजन के नियमानुसार यदि दो-तीन बच्चे ही मान लिये जायें और दो, पति पत्नी इस प्रकार चार-पांच सदस्य होते हैं। यदि माता में से कोई एक या दोनों ही जीवित हुये तो ये हुए छः-सात व्यक्ति और एक सुधारक की मासिक आय है दो-तीन सौ रुपये। तब एक व्यक्ति के हिस्से में केवल इकतालीस रुपये ही आते हैं। इस कमरतोड़ महंगाई के जमाने में क्या इकतालीस रुपये में गुजारा हो सकता है? इसी सीमित आय में से उसने अपने बच्चों को शिक्षा देनी है। इस सन्दर्भ में इतना लिखना भी अनुचित नहीं होगा, कि आर्यसमाज का एक सुधारक अपना समस्त जीवन आर्यसमाज की सेवा में ही समाप्त कर देता है किन्तु उसके बच्चों को आर्यसमाज की संस्थाओं में निःशुल्क शिक्षा नहीं दी जाती और तो ओर गुरुकुलों में भी अपना बच्चा पढ़ाने के लिये धन देना पड़ता है।

मकान बनाना तो दूर की बात है, पूर्वजों के बने बनाये मकानों की मरम्मत भी नहीं कर पाते हैं। उनके बच्चों को टूटे फूटे मकानों में ही दिन गुजारने होते हैं।

आर्यसमाज के क्षेत्र में जितने भी वानप्रस्थी और संन्यासी हुये हैं दो चार को छोड़कर सबको ही अन्तिम समय में अपने परिवार वालों के पास जाना पड़ा है। वर्तमान में भी जितने वानप्रस्थी और संन्यासी हैं उनमें से अधिकांश का सम्बन्ध अपने परिवारों के साथ है। समाज में गुरुडम चलने का भी यही कारण है। जो इसमें निपुण हैं वे प्रत्येक रूप से सुखी हैं और समाज में उनकी मांग है।

कौन नहीं जानता है कि अब आर्यसमाज—आर्यसमाज नहीं रहे अपितु प्रच्छन्न रूप में राजनीतिक अड्डे बन चुके हैं। किसी समाज पर जनसंघियों का अधिकार है तो किसी पर कांग्रेसियों का। जो बचो हैं वे उनकी चौपाल बनी हुई हैं जो जन्म से ही भगवान् की ओर से अधिकारी बनकर आये हैं। जिसका परिणाम यह हुआ कि सुधारक भी

(शेष पृष्ठ ११ पर)

आर्यसमाज स्थापना शताब्दी—

कुछ विचारणीय सुझाव

(श्री सुरेन्द्र सिंह कादियाण W/Z 79 राजा पार्क शकूर बस्ती देहली, ३४)

१९७५ आने में कुछ विलम्ब नहीं है। कारण, हर क्षेत्र में हमारी गति अति मन्द है। कुछ महीने विचार के लिए चाहिएं, कुछ महीने इन विचारों के कांट-छांट के लिए चाहिएं, फिर कुछ महीने इन विचारों के क्रियान्वित करने के ढंग की खोज में व्यतीत होंगे, तत्पश्चात् साधन जुटाने में कुछ महीने लगेंगे और अन्त में हम देखेंगे १९७५ बीत गया है, १९७६ आंकड़े एकत्र करने में बीतेगा कि १०० वर्षों में देश-विदेश में कितने आर्यसमाज मन्दिर बने हैं, कितनी आर्य स्पेशल ट्रेन चली हैं, कितने आर्य महा सम्मेलन हुए हैं। आर्य समाज ने कितने सच्चे आर्य बनाये हैं, नेताओं की आपस में कितनी मुकदमेबाजी चली है, कितने गुरुकुल बन्द हो चुके हैं, कितनी डी.ए.वी. संस्थाएं पथभ्रष्ट हो चुकी हैं कितने आर्यसमाज दुकानदारी चला रहे हैं, कितनी प्रतिनिधि सभाएं विभाजित हो चुकी हैं, किन किन आर्यसमाजों में धूम्रपान और मद्यपान होता है कितने आर्य स्कूल-कालिजों की कैंटीन में अंडा मांस बिकता है—इसकी गणना न आज तक किसी ने की है और न ही कोई करना चाहेगा। तब १९७५ को हम शताब्दी वर्ष कैसे मानें? शताब्दी मनाने का अर्थ है गत सौ वर्षों का ईमानदारी से किया गया लेखा-जोखा, विश्लेषण। मेरा यह मानता नहीं है कि इन सौ वर्षों. में आर्य समाज निद्रा में पड़ा रहा है लेकिन उसकी धीमी प्रगति यह कहने को वाध्य अवश्य करती है कि वह पूरी तरह जागा भी नहीं है। महर्षि दयानन्द और स्वामी श्रद्धानन्द के पश्चात् हैदराबाद सत्याग्रह और हिन्दी आन्दोलन में आर्यसमाज न अंगडाई ली, गर्जना की हुंकार भरी लेकिन इसके बीच और बाद का समय किस प्रकार व्यतीत हुआ वह सर्वविदित है—नेतागिरि की प्रवृत्ति ने आज 'सार्वदेशिक' भी दो बना डाली हैं—मुकदमे बाजी चल रही है—बैंकों में खाते बन्द पड़े हैं—प्रचार की गति धीमी पड़ी है। मन्दिरों की गति विधियां औपचारिकता से ग्रसित हैं—कई समाजें तो ऐसी हैं जहां वेद उपलब्ध नहीं हैं— गिरजा घरों की भांति रविवार को ही समाजों का द्वार खुलता है इस पक्ष को यदि हम शताब्दी वर्ष में नजर अन्दाज करने का पाप कर्म करेंगे तो उस का परिणाम भंयकर निकलेगा। लज्जा के मारे यदि तपेदिक का रोगी यदि अपना रोग छिपायेगा तो वह मृत्यु का ही वरण करेगा। पिछले सौ वर्षों में आर्य समाज ने जो कीर्तिमान स्थापित किए हैं उन पर हमें गर्व हैं लेकिन गर्व में हमारा मस्तक इतना ऊंचा नहीं उठना चाहिए की हमारी आँखें धरती को देखना ही बन्द करदें। इन कीर्तिमानों की नींव धरती के वक्षस्थल में है और यह वक्षस्थल हमारे कर्मों से आज कलंकित हो रहा है नींव के कमजोर होने पर ये कीर्तिमान कितने दिन टिकेंगे? आर्यसमाज के उज्जवल पक्ष का मुझे स्मरण है, उसकी चर्चा मैं यहां नहीं करूंगा क्योंकि प्रत्येक दृष्टि से वह आर्यसमाज का उत्थान ही करेगा। मैं चाहता हूं आर्यसमाज के उस पक्ष पर ध्यान आकृष्ट कराना, जिसके रहते हमें स्थापना शताब्दी मनाने का कोई नैतिक अधिकार नहीं है। ये अभाव, देखने में सामान्य हो सकते हैं लेकिन ये खटकते हैं, अवरोध पैदा करते हैं और आर्य समाज को एक सम्प्रदाय बनाने में योगदान देते हैं। इन अभावों का मिटाना आवश्यक है, कुछ सुझाव प्रस्तुत हैं—अच्छे लगें तो स्वीकारों न अच्छे लगें तो कहीं जिक्र न करो—शताब्दी के समारोह में यदि ये कहीं खो जायें तो मैं गिला क्यों करूं?

यज्ञ मन्दिरों में क्यों?

न जाने कब से यह परिपाटी चली आ रही है कि यज्ञ-हवन आर्यसमाज मन्दिरों में ही होता है। विवाह या अन्य किसी संस्कार पर यजमान के गृह पर भी यह सम्पन्न होते हैं लेकिन साप्ताहिक सत्संग के अन्तर्गत होने वाला यह यज्ञ, प्रायः मन्दिर में ही होता है। मन्दिरों में इसका होना बुरा नहीं है लेकिन अच्छा भी कितना है? मन्दिरों में वही प्रवेश करेगा जो आर्यसमाजी होगा इससे मन्दिर एक सम्प्रदाय विशेष का गढ़ माना जायेगा, सार्वजनिक उपासना-गृह या किसी धर्म का प्रचारक कार्यालय नहीं। आर्यसमाज एक वृत्त के अन्दर सिमटता जा रहा है—इस स्थिति को दूर करने के लिये आवश्यक है कि इस परिपाटी में परिवर्तन किया जाय। हवन चाहे वह दैनिक हो या साप्ताहिक बजाय मन्दिर के आर्यसमाजियों के गृह पर होना चाहिए। इससे वैदिक धर्म मन्दिरों की घुटन से बाहर निकल कर घर परिवार मोहल्ले और नगर में फैलेगा विधर्मियों पर भी उसका यथेष्ट प्रभाव पड़ेगा। आर्यसमाज मन्दिर-सनातन धर्म मन्दिरों की लीख पर चलकर सफल नहीं हो सकते। आर्यसमाज के पास भगवान् की मूर्तियां नहीं है कि लोगों को आकृष्ट कर सकें इसलिये वेद भगवान् को स्वयं कष्ट उठाकर एक-एक घर का द्वार खटखटाना होगा। प्रायः देखा जाता है कि आर्यसमाजियों के साथ कोई विधर्मी मन्दिर में जाने से कतराता है, उसका यह संकोच हमें स्वयं दूर करना होगा—वह तभी सम्भव है जब यज्ञ-हवन मन्दिर के बजाय आबादी में हो। इससे आर्यसमाजियों में पारिवारिक प्रेम जैसा प्रेम भी उत्पन्न होगा, उनकी एकता भी स्थायी होगी और साथ साथ आस पड़ौस के लोगों पर भी वैदिक धर्म का प्रभाव पड़ेगा। मन्दिर के निमंत्रण पर भले ही विधर्मी वहां न जायें लेकिन पड़ौसी के नाते शिष्टाचारवश उसे आना ही पड़ेगा। उसका आना ही उसका आर्य बनना है क्योंकि वैदिक धर्म में यह विशेषता है कि वह सहज ही अपना प्रभाव डालता है। गृह यज्ञ पर वैदिक साहित्य का वितरण भी होना चाहिए वह चाहे पुस्तक हो या पुस्तिका। ये यज्ञ गृह स्वामी के निज व्यय पर होने चाहियें। समाज का प्रत्येक सदस्य बारी बारी से यह यज्ञ कराये, किसी समाज या व्यक्ति विशेष पर खर्च का भार डालना न्यायसंगत नहीं है प्रत्येक यज्ञ पर ५०) रु० के लगभग व्यय आता है जिसमें सामग्री, साहित्य, दान, प्रसाद आदि सभी का खर्चा शामिल है। यदि किसी समाज के ५० सदस्य हों तो कठिनाई से साल भर में एक व्यक्ति एक बार ही हवन करा सकता है। एक साल में ५०) रु० में यह पुण्य कमाना कोई ज्यादा कठिन कार्य नहीं है, गरीब से गरीब भी यह भार वहन करा सकता हैं। जब यह परिपाटी मन्दिरों को छोड़ घरों में प्रवेश करेगी तो जात पांत के बंधन भी टूटेंगे हरिजन बस्तियों में इसका प्रवेश अत्यंत लाभदायक रहेगा। यदि कोई सदस्य अत्यंत निर्धन हो तो यह भार समाज को वहन करना चाहिये लेकिन यह सावधानी अवश्य वरती जानी चाहिये कि किसी सभासद् का गृह यज्ञ से वंचित न रह जाय। ये यज्ञ रविवार और अन्य अवकाश दिवस पर होते रहने चाहियें। मासिक तिमाही, छमाही या वार्षिक यज्ञ मन्दिर में होने चाहियें।

फिल्मी तर्ज पर गाना क्यों?

फिल्मों का प्रभाव हमारे जीवन पर बुरी तरह पड़ रहा है। फिल्मी गीत तो रेडियो व ग्रामोफोन पर प्रसारित होकर घर घर पहुंच रहे हैं। घर में रेडियो न हो तो पड़ौस से आवाज आ जाती है। आर्यसमाज के प्रचारक अथवा भजनोपदेशक इस बीमारी को नये परिधान में सुसज्जित करके आर्य भाईयों में धकेल रहे हैं। वे फिल्मी गानों की तर्ज पर भजन बनाकर सुनाते हैं। भजन का कितना प्रभाव श्रोताओं पर पड़ता है यह मैं नहीं जानता लेकिन निश्चित रूप से यह बात कही जा सकती है कि ऐसे भजन सुनकर श्रोताओं को फिल्मी गाने का स्मरण हो जाता है। ऐसी स्थिति में भजन के प्रभाव को तर्ज नष्ट करती जाती है। बच्चों व महिलाओं पर तो इसका तुरन्त प्रभाव पड़ता है क्योंकि वे संवेदनशील अधिक होते हैं। आर्यसमाज मन्दिरों व जलसों में फिल्मी रिकार्ड चढ़ाना वर्जित होना चाहिये—देशभक्ति या भक्तिरस के रिकार्ड चढ़ाने में किसी को क्या आपत्ति हो सकती है। आर्यसमाज गम्भीर चिन्तनशील मनुष्यों का समाज रहा है, इसे अपने गौरव से वंचित नहीं करना चाहिये।

आर्यसमाज ज्ञान का केन्द्र बने?

आर्यसमाज मन्दिरों का निर्माण इस उद्देश्य से हुआ था कि वे ज्ञान का केन्द्र बनेंगे लेकिन हो यह रहा है कि मन्दिरों में भौतिकता का साम्राज्य फैल रहा है—ईंट और पत्थरों की भव्य ईमारत को मन्दिर की संज्ञा दी जा रही है। आर्यसमाज के उन प्रारम्भिक दिनों को याद करो जब कच्ची मिट्टी की घिरी दीवारो से एक छप्पर के नीचे यज्ञ-वेदी होती थी और उस वेदी पर जो वेदामृत टपकता था उसकी चर्चा नगर भर में होती थी, उसका प्रभाव अनुपस्थित लोगों पर भी पड़ता था।

(क्रमशः)

एक हजार रुपये का पुरस्कार—

वेद में मांस भक्षण नहीं है

[श्री स्वा० वेदानन्द वेदवागीश, महाविद्यालय गुरुकुल झज्जर (रोहतक)]

"सरिता मासिक पत्रिका के फरवरी (द्वितीय) १९७३ अंक ४२९ में श्री सुरेन्द्र कुमार शर्मा "अज्ञात" का एक लेख प्रकाशित हुआ है, लेख का शीर्षक है—"रक्त सने पृष्ठ बुद्ध और महावीर के" "अहिंसा परमो धर्म:" के देश में इतनी हिंसा क्यों ? लेखक के इस लेख में जनता के हित की बात दृष्टिगोचर नहीं होती। पाठकों को उनके लेख में धर्म ग्रन्थों पर कुठाराघात किया जाना प्रतीत होगा। लेखक अपने लेख को इस चालाकी से लिख रहा है कि वह स्वयं लेख के दोष से बच सके। अन्यथा अपने लेख का मोड़ वे दूसरे ओर भी कर सकते थे। वे कह सकते थे, आमिष भोजी लोगों ने कुछ धार्मिक ग्रन्थों में मांस मदिरा का प्रक्षेप किसी काल में बहुत किया है, इसलिये वे "रक्त सने पृष्ठ" बन गये। इनका शोधन करना आवश्यक है।

श्री सुरेन्द्रकुमार शर्मा "अज्ञात" ने सबसे पहले वेदों को ही अपनी लेखनी का विषय बनाया है। वेदों को भारतवर्ष में रहने वाले सभी आर्य वा सनातन धर्मी ईश्वर की वाणी मानते हैं और इस दशा में वेदों में मांस मदिरा का प्रतिपादन किया जाना एक अनोखी बात होगी।

श्री शर्मा जी के उल्लेख का उत्तर देने से पूर्व हम पाठकों को वह कसौटी देना चाहते हैं, जिसे वे भी स्वीकार करेंगे। वह यह है—मांस खाने वाला लेखक अपने ग्रन्थों में कभी भी मांस न खाने का प्रतिपादन नहीं करेगा, और इसी तरह मांस न खाने वाला मांस सेवन किये जाने की वकालत नहीं करेगा। कोई भी लेखक अपने प्रणयन में परस्पर विरोधी बातें नहीं लिखेगा। जब मानवकृतियों में यह नियम है, तब ईश्वर व ऋषि कृत ग्रन्थों में परस्पर एक दूसरी बात को काटने का प्रसंग कैसे उपस्थित हो सकता है। पशुपति—ईश्वर का नाम है, यजमानस्य पशून् पाहि, यजमान के पशु की रक्षा कर (देखिये यजु० १-१) मा हिंसीः तन्वा प्रजाः, शरीर से प्रजा को हिंसा मत कर। (देखिये यजु० १२-३२) स्वधिते मैनं हिंसीः, वज्र के समान ऐ अध्यापक इसकी हिंसा मत कर (देखिये यजु० ६-१५) घृतेनाक्तौ पशूंस्त्रायेथाम्—घृत चाहने और यज्ञ करने वालो गौ आदि पशुओं की रक्षा करो (देखिये यजु० ६-११) अभयं न पशुभ्यः—पशुओं के लिये अभय दान हो (देखिये यजु० ६-२२) द्विपादव चतुष्पात् पाहि—दो पैर वाले मनुष्यादि और चार पग वाले गौ आदि पशुओं की रक्षा कर (देखिये यजु० १४-८) अन्तकाय गोघातम्—गौहत्या करने वाले को यमलोक पहुंचाओ (देखिये यजु० ३०-१८) इमं मा हिंसीः द्विपादं पशुम्—इस दो पैर वाले पशु की हिंसा मत कर (देखिये यजु० १३-४७) स्वस्ति गोभ्यः—गौवों का कल्याण हो (देखिये अथर्व० १-३१-४) यूयं गावौ मेदयथाः कृशं तुम सब कमजोर गायों को पुष्ट करो (देखिये अथर्व० ४-२१-६) अनागौहत्या वे भीमा कृत्ये मा नो गामश्वं पुरुषं वधीः—निरपराधी की हत्या करना भयंकर है, इस कर्तव्य में गौ, घोड़े और पुरुष को मत मार (देखिये अथर्व० १०-१-२९) पशूनां सर्वेषां स्फाति गोष्ठे मे सविता करत्—गोशाला में मेरे सब पशुओं की वृद्धि ईश्वर करे। (देखिये अथर्व० १९-३१-१,५,६)

किन वस्तुओं के खाने का वेद विधान करता है वह भी सुनिये—व्रीहिमत्तं यवमत्तमथो माषमथो तिलम्—धान, जौ, उड़द और तिल खाओ (देखिये अथर्व० ६-१२-४०) य आमं मांसमदन्ति पौरुषेयं च ये क्रविः। गर्भान् खादन्ति केशवास्तानितो नाशयामसि जो पुरुष में और पशुओं का मांस तथा गर्भों को खाते हैं, उनको मैं नष्ट करूं (देखिये अथर्व० ८-६-२३) मा गामनागामदितिं वधिष्ट—निरपराध गाय को मत मारो (देखिये ऋ० ८-१०१-१५) किं ते कृण्वन्ति कीकटेषु गावो नाशिरं दुहे न तपन्ति धर्मम्—अनार्य प्रदेशों में तुम्हारी गौवें क्या करती हैं, वे न दूध ही दुहते हैं और ना ही घी बनाते हैं। ऐसे मनुष्यों का धन हर लो (देखिये ऋ० ३-५३-१४)

उदाहरण मात्र से ये इतने और इसी प्रकार के अन्य बहुत से प्रमाण होते हुये श्री सुरेन्द्रकुमार शर्मा "अज्ञात" की दृष्टि से ये सब अज्ञात हो गये, यह बड़े आश्चर्य का विषय है, इसी से उनकी भावना लोगों के सामने प्रत्यक्ष रूप में आ गई है। उनका लक्ष्य हिन्दुओं को उनके ग्रन्थों से घृणा कराना है, भला वे अपनी चेष्टा में कैसे सफल होंगे। उन्होंने अपने लेख में महर्षि दयानन्द पर भी आक्षेप किया है। हमने ऊपर जो यजुर्वेद के प्रमाण दिये हैं, उस पर श्री शर्मा जी उनका भाष्य उठाकर देखें तब उन्हें पता चलेगा कि वे किस दुनिया में रह रहे हैं। इसी आक्षेप पर हमने इन्हें एक हजार रुपये पुरस्कार देने को घोषणा है कि वे उनके किये भाष्य में मांस मदिरा सेवन और गोहत्या निकाल कर दिखावें।

श्री सुरेन्द्रकुमार शर्मा ने कालक्रम के अनुसार पहले वेदों का पर्यालोचन किया है उन्होंने ऋग्वेद १-२-१२ से १५ का उल्लेख किया है और कहा है कि इन मन्त्रों में शुनःशेप नामक पुरुष का वर्णन है, जिसे नरमेध में बलि चढ़ाने की तैयारी है। हम श्री शर्मा से कहना चाहते हैं कि वेदों में इतिहास नहीं है, इसकी जानकारी के लिये उन्हें इस प्रकार के उपलब्ध ग्रन्थों का अध्ययन करना चाहिये। इससे उनकी जानकारी बढ़ेगी, अन्यथा अज्ञान रूप पोखरों में ही गोते लगाते रहेंगे। तनिक इन मन्त्रों में आये शुनःशेप पर महर्षि दयानन्द का भाष्य देखें, वे लिखते हैं—शुनो विज्ञानवत इव शेपो विद्यास्पर्शो यस्य सः। श्वा शुपायी शवतेर्वा स्याद् गतिकर्मणः। निरुक्त ३-१८ शेपः शपतेः स्पृशति कर्मणः। निरुक्त ३-२१ विज्ञानवान् के समान जिसने विद्या का स्पर्श किया है, विद्या ग्रहण की है, वह शुनःशेप है। यह अर्थ करते हुये निरुक्त का प्रमाण भी दिया है। इसलिये मन्त्र में शुनः शेप कोई ऐतिहासिक पुरुष नहीं है। श्री सुरेन्द्रकुमार शर्मा शुनःशेप को ऐतिहासिक मनुष्य मानकर आगे जो कुछ लिख रहे हैं, वह सब अनर्गल है, वेद से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। हां ब्राह्मण ग्रन्थों का निर्माण ऋषि ब्राह्मणों ने किया है इसलिये वे ग्रन्थ ब्राह्मण कहलाये, वे वहीं तक प्रमाण कोटि में आते हैं, जहां तक वे वेदानुकूल हैं। ऋषि लोग मन्त्र बनाने वाले नहीं हैं, मन्त्रों के अर्थों का साक्षात् करने वाले हैं। उनकी व्याख्या करने की शैली आख्यान वा इतिहास रूप में करने की है। ऋषेर्दृष्टार्थस्य प्रीतिर्भवत्याख्यान संयुक्ता (देखिये १०-१०-९६) इसी बात को निरुक्त टीकाकार स्कन्दभाष्य स्वीकार करता है। एवमाख्यानस्वरूपाणां मन्त्राणां यजमाने नित्येषु च पदार्थेषु योजना कर्तव्या। एष शास्त्रे सिद्धान्तः। औपचारिको मन्त्रेषु आख्यानसमयः, परमार्थेन नित्य पक्ष इतिसिद्धम्। सब मन्त्र आख्यान स्वरूप नहीं हैं, किन्तु जो भी हैं, उन आख्यानस्वरूप मन्त्रों की योजना यजमानपरक और नित्य पदार्थों में कर लेनी चाहिये। यही शास्त्र में सिद्धान्त हैं। मन्त्रों में इतिहास आख्यान का सिद्धान्त गौण (औपचारिक) है (देखें निरुक्त स्कन्द टी २-७८)

औपचारिकोऽयं मन्त्रेषु आख्यानसमयो नित्यत्वविरोधात्। परमार्थेन तु नित्यपक्ष एवेति नैरुक्तानां सिद्धान्तः। मन्त्रों में इतिहास गौण है। उनमें इतिहास मानने से नित्यत्व से विरोध होगा। (क्योंकि मन्त्र ईश्वर प्रसूत होने से नित्य है) परमार्थ से तो नित्य पक्ष ही नैरुक्तों का सिद्धान्त है (देखें निरुक्तसमुच्चय पृ० ७१) इति वृत्तं परकृत्यर्थवादरूपेण यः कश्चिदाध्यात्मिक आधिदैविक आधिभौतिको वार्थः आख्यायते दिष्ट्युदिताविवक्षितस्वार्थः, तदर्थप्रतिपत्तृणामुपदेशपरत्वात्। अर्थ का बोध कराने के लिये परकृति को अर्थवाद रूप से आध्यात्मिक आधिभौतिक वा अधिदैविक उद्धृत करना इतिहास कहाता है। यह सब प्रकार का इतिहास नित्य है और उसमें इतिहास का अपना अर्थ विवक्षित नहीं होता। क्योंकि वह केवल अर्थ का दूसरों को बोध कराने हेतु होता है (देखें निरुक्त १०-२७ दुर्गाचार्य टीका पृ० ७४४) मनुस्मृति मनवर्थ-मुक्तावली टीका में श्री कुल्लूकभट्ट ने भी यही बात दर्शायी है (देखें अवतरणिका अ० १० श्लो० १०५)

सर्वेषां तु स नामानि कर्माणि च पृथक् पृथक्। वेदशब्देभ्य एवादौ पृथक् संस्थाश्च निर्ममे॥ वेद से ही सब नाम और कर्म आदि सृष्टि में लिये गये हैं (देखें मनु० १-२१) इससे वेदों का पूर्वत्व सिद्ध है और इतिहास (जो किन्हीं घटनाओं से बनता है) का अपरत्व। ऐतरेय ब्राह्मण में शुनःशेप की आई कथा में श्री सुरेन्द्रकुमार शर्मा को भ्रान्ति है।

(क्रमशः)

पुस्तक समालोचना

नाम पुस्तक-घरेलु औषध—हल्दी। लेखक स्वामी ओमानन्द सरस्वती प्रकाशक हरयाणा साहित्य संस्थान, गुरुकुल झज्जर (रोहतक) पृष्ठ सं० ५६, मूल्य ५० पसे।

समालोचना—लेखक महोदय आयुर्वेद के प्रसिद्ध विद्वान् हैं। इस पुस्तक में हल्दी के विषय में सब प्रकार की जानकारी दी गई है। प्रत्येक घर में हल्दी का रखना अत्यावश्यक है। इसमें २३ विषयों पर प्रकाश डाला गया है। गृहस्थ में यह वैद्य का काम देती है पुस्तक प्रकाशक से मिल सकती है कागज छपाई आदि उत्तम है।

२. "तपोभूमि" मासिक पत्रिका (मथुरा) का यह 'सुखी परिवार अंक है। इस पत्रिका के स्वामी श्री ईश्वरी प्रसाद प्रेम हैं। यह पत्रिका प्रायः विशेषाङ्कों के रूप में अपना प्रकाशन करती रहती है। इस विशेषाङ्क में दृष्टा दृष्टान्तों द्वारा परिवार का सुखी रखने के उपायों पर अच्छा प्रकाश डाला गया है यह अंक २६० पृष्ठों का है इस का मूल्य वार्षिक ६ रु० है। आर्य परिवारों के सुखी बनाने के लिये हर अंक का अध्ययन बहुत लाभदायक है। मंगवा कर पढ़ना चाहिये। —जगदेवसिंह सिद्धान्ती शास्त्री

स्वामी स्वतन्त्रानन्द विशेषाङ्क

पूज्य स्वर्गीय लोह पुरुष स्वामी स्वतन्त्रानन्द जो महाराज की स्मृति में आपने जो संस्मरण अङ्क निकाला है उसके लिये आपको बारम्बार बधाई हो। इतिहास प्रेमियों के लिये उसमें बड़ी ठोस व उपयोगी तथा नई पीढ़ी के लिये बड़ी प्रेरणाप्रद सामग्री है ओ३म् के झण्डे वाली कई घटनाएं भी बड़ी अनुपम हैं। सब उपदेशकों भजनीकों को उत्सवों पर प्रचार में सर्वत्र सुनानी चाहियें। स्वामी जी का कोई स्मारक आर्यसमाज ने नहीं बनाया। यह कृतघ्नता है। पाठकों को बतादें कि स्वामी जी महाराज के जीवन चरित्र 'वीर संन्यासी का दूसरा संस्करण एक वर्ष तक तयार हो जायेगा। ६०० से ८०० पृष्ठों तक होगा।

स्वामी जी महाराज के अलभ्य ऐतिहासिक चित्र उनके भक्त पं० जगन्नाथ जी के पास चण्डीगढ में हैं। उन सबका उपयोग उस पुस्तक में होगा। आपने बहुत सी सामग्री लुप्त गुप्त होने से बचा ली है। पुनः बधाई। —राजेद्र जिज्ञासु

आर्य युवक सभा हरयाणा का निर्वाचन

सभा के संरक्षक श्री पूज्य स्वामी ओमानन्द जी सरस्वती की अध्यक्षता में सर्वसम्मति से निम्न प्रकार सम्पन्न हुआ—

प्रधान—श्री मांगेराम जी आर्य एम० ए०। मन्त्री—श्री आचार्य दयानन्द जी एम० ए०। कोषाध्यक्ष—श्री पं० वेदव्रत जी शास्त्री। —देवदत्त भारतीय प्रचार मन्त्री

तपोवन में २३ से २९ अप्रैल तक साधना शिविर

वैदिक साधन आश्रम, तपोवन (नालापानी) जिला देहरादून में दिनांक २३ से २९ अप्रैल तक वैदिक साधना-शिविर का आयोजन किया जा रहा है।

तपोवन के इस वार्षिक साधना-शिविर में साधकगण दूर-दूर से बड़ी संख्या में पधारते हैं। यज्ञ की पूर्णहुति के दिन तो आश्रम में हजारों नर-नारियों का एक विशाल मेला लग जाया करता है। तपोवन देहरादून नगर से तीन मील की दूरी पर है। शिविर के अन्तिम दिन तो स्थानीय बस-सेवा की सुविधा आश्रम-द्वार तक उपलब्ध रहती है। अन्य दिनों में बस ६ फरलांग इधर छोड़ देती है। —देवदत्तबाली मंत्री, वैदिक साधन आश्रम तपोवन।

रामलाल कपूर ट्रस्ट एवं आश्रम का उत्सव

१४, १५ अप्रैल को मनाया जा रहा है। स्व० श्री पं० ब्रह्मदत्तजी जिज्ञासु के अन्तेवासियों (शिष्यों), भक्तों वा प्रेमीजनों को हम इस अवसर पर सादर सप्रेम निमन्त्रित कर रहे हैं।

यह उत्सव कई दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण होगा। पूज्य गुरुवर्य के निधन के पश्चात् ट्रस्ट के कार्यों में क्या प्रगति हुई, वाराणसी से प्रकाशनकार्य एवं विद्यालय के आने के पश्चात् क्या और किस रूप में कार्य हो रहा है, इसका सबको प्रत्यक्ष परिचय होगा। इसके साथ ही ट्रस्ट के कार्य की प्रगति में धन की कमी से जो गत्यवरोध उत्पन्न हो गया है, उसे कैसे दूर किया जाय, इस विषय पर आप सबके सुझाव अपेक्षित हैं। इस विषय में यहां स्वयं उपस्थित होकर परिस्थिति को जानकर ही आप महानुभाव सुझाव दे सकते हैं, और अपना क्रियात्मक सहयोग दे सकते हैं।

विशेष—आने वाले महानुभाव ऋतु के अनुसार उपयोगी वस्त्र साथ में लावें। कभी-कभी इन दिनों में रात में कुछ ठंड हो जाती है।

आने का सुविधा जनक मार्ग—ट्रस्ट वा आश्रम का स्थान दिल्ली से सवा बाईस मील पर जी० टी० रोड पर बहालगढ़ गांव के सामने रबड़ रिक्लेम फैक्ट्री के साथ है। देहली से बस से आने में विशेष सुविधा रहती है। सोनीपत जानेवाली बस में बहालगढ़ का टिकट लेकर बैठें। बहालगढ़ के चौराहे पर उतर कर देहली की ओर वापस दो फर्लांग चलने पर दायें हाथ की ओर आश्रम है। जो लोग रेल से आना चाहें, वे सोनीपत स्टेशन पर उतर कर मामा-भानजा-देहली बस अड्डे (इसी नाम से प्रसिद्ध है) पर रिक्शा से पहुंचें। वहां से बस टैम्पू या तांगे द्वारा बहालगढ़ पहुंच। —युधिष्ठिर मीमांसक संचालक, रामलाल कपूर ट्रस्ट

गुरुकुल कुरुक्षेत्र का सफल उत्सव

३० मार्च से १ अप्रैल तक हुआ। इस समय यज्ञ, नगर कीर्तन, संन्यासी, महात्माओं, उपदेशकों, प्रचारकों और नेताओं के भाषण और भजन हुए। ब्रह्मचारियों द्वारा, व्यायाम, आसन, प्राणायाम और बल के प्रदर्शन दिखाये गये। कुछ सम्मेलन भी हुए। कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के अनेक विद्वानों के सामयिक व्याख्यान हुये। शिक्षा सम्मेलन और धर्म सम्मेलन आदि उपयोगी कार्यों का आयोजन किया गया था। योगाभ्यास के सम्बन्ध में भी क्रियात्मक रीति पर प्रवचन हुआ। पृथक् पृथक् महानुभावों के शुभ नामों को देना सम्भव नहीं। अन्त में हरयाणा राज्य के मन्त्री पं० चिरंजो लाल ने गुरुकुल का निरीक्षण किया और सभी के साथ सहभोज में सम्मिलित हुये तथा गुरुकुल के कार्य को बढ़ाने के लिये आश्वासन दिया। गुरुकुल के आचार्य श्री राजेन्द्र पालजी का प्रयत्न सफल रहा। —निजसंवाददाता

आर्यसमाज देहरादून का चुनाव

निम्नलिखित पदाधिकारियों का चुनाव सर्वसम्मति से इस प्रकार हुआ। डाक्टर सोमनाथ ढींगरा एम० एस० सी० पी० एच० डी० प्रधान। श्री यशपाल आर्य मंत्री। श्री लक्ष्मीचंद जी कोषाध्यक्ष। श्री दिलीपसिंह जी पुस्तकाध्यक्ष —देवदत्त बाली

शोक समाचार

महाशय चिमन लाल जी, मन्त्री आर्यसमाज झज्जर का देहान्त हो गया उनका आर्यसमाज झज्जर और समाज नारनौल से विशेष सम्बन्ध रहा है। आर्यसमाज नारनौल उनके प्रति शोक प्रदर्शित करती है ईश्वर से प्रार्थना है कि दिवंगत आत्मा को शान्ति प्रदान करे और उनके शोक सन्तप्त परिवार को धैर्य धारण करने की शक्ति दे। —मन्त्री आर्यसमाज नारनौल

(पृष्ठ ८ का शेष)

तीन वर्गों में विभक्त हो गये हैं एक वर्ग कांग्रेसी विचारों का है, वह आर्यसमाज की वेदी से खुलकर जनसंघियों की आलोचना कर सकता है और करता है दूसरा वर्ग जनसंघी विचारों का है वह कांग्रेस की खुलकर आलोचना करते हैं, तीसरा वर्ग यह है जो न कांग्रेसी है और न जनसंघी विशुद्ध आर्यसमाजी हैं। उनको कोई नहीं पूछता। आर्यसमाज में अब न कोई सिद्धान्तों पर व्याख्यान देता है और न कोई सुनता है। वक्ता स्वतन्त्र है, स्वेच्छापूर्वक बोलने में। यह सब कुछ स्वाध्याय के अभाव में हो रहा है। मैं श्री प्रेमदेव भूषण एडवोकेट की बात तो नहीं कहता हूं उनका जीवन तो आदर्शमय होगा ही, मैं तो अन्य वकीलों की बातें करता हूं जो आर्यसमाजी हैं क्या वे जितने भी मुकद्दमे लेते हैं सब सच्चे होते हैं? क्या वे अदालत में सत्य ही बोलते हैं, सत्य के सिवाय और कुछ नहीं बोलते? यह मैं दृढ़ता के साथ कह सकता हूं कि यदि वे व्यवसाय में सत्य का पालन करें तो उनके ये कोठी, बंगले, कारें और अपार सम्पत्ति कभी नहीं बन सकती।

क्या आपने आर्यसमाज की पवित्र वेदी से नहीं सुना—कि धर्म पूर्वक धनोपार्जन करना चाहिये। धन कमाने के साधन उत्तम होने चाहियें! जैसा अन्न वैसा मन बनता है। सुना सभी ने है डाक्टर ने भी, एडवोकेट ने भी, व्यापारी ने भी, सरकारी गैर सरकारी कर्मचारी ने भी, स्वीकार भी करते हैं। फिर भी आर्यसमाजियों में भ्रष्टाचार है, मिलावट है, काला धन्धा है, तस्करी है, घूसखोरी है। अनाचार है। सदाचार का यह हाल है कि सिगरेटों की दुकान आर्यसमाजियों की है। शराब के ठेके आर्यसमाजियों के हैं। जिसका अपना कोई अस्तित्व नहीं, दूसरों के संकेतों पर ही जिसको चलना है अधिकारियों की प्रसन्नता पर ही जिसकी जीविका निर्भर है ऐसे अभाव तथा उपेक्षा में पला बढ़ा और जीवन में चला है, उस सुधारक का क्या सुधार करना चाहते हैं?

प्रत्येक आर्यसमाजी सुधारकों से तो अपेक्षा करते हैं कि वह वशिष्ठ जैसा आदर्श प्रस्तुत करें किन्तु स्वयं राम बनना नहीं चाहते।

स्मरण होना चाहिये जिस स्तर का समाज है आर्थिक दृष्टि से पुरोहित को भी उसी स्तर का होना चाहिये। दूसरे धार्मिक क्षेत्र में उसका स्थान सर्वोपरि होना चाहिये। तभी समाज चल सकता है। यह भी नहीं भूलना चाहिये, धन का महत्व हर युग में रहा है। और रहेगा। अन्तर इतना ही है, प्राचीन युग में विद्वान् पूज्यते सर्वत्र था और आज के युग में "सर्वे गुणाः काचन" में आ गये हैं।

कितनी उपहासजनक बात है कि आप पुरोहित को सब कुछ कह सकते हैं और पुरोहित आपको कुछ भी नहीं कह सकता।

इसलिये पहले राम बनो बाद में वशिष्ठ भी उत्पन्न हो जायेंगे।

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब द्वारा प्रकाशित और प्रचारित वैदिक साहित्य

१. बलिदान जयन्ती स्मृति ग्रन्थ—आर्य बलिदानों की गाथा मूल्य ४-५०
२. सोम सरोवर-वेदमन्त्रों की व्याख्या —पं० चमूपति एम. ए. ३-००
३. जीवन ज्योति-वेदमन्त्रों की व्याख्या " " ३-००
४. नीहारिकावाद और उपनिषदें " " ०-२५
५. Principles of Arya samaj " " १-५०
६. Glimpses of swami Daya Nand " " १-००
७. पंजाब का आर्य समाज पंजाब तथा हरयाणा के आर्यसमाज का इतिहास २-००
८. वैदिक सत्संग पद्धति सन्ध्या हवनमन्त्र अर्थ रहित विधि १-००
९. वेदाविर्भाव —आर्यमर्यादा का विशेषांक ०-६५
१०. यजुर्वेद का स्वाध्याय " " " ०-५०
११. वेद स्वरूप निर्णय —पं० मदनमोहन विद्यासागर १-००
१२. व्यवहारभानु —महर्षि स्वामी दयानन्द ०-५०
१३. स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश— " " ०-४०
१४. Social Reconstruction By Budha & Swami Daya Nand By. Pt. Ganga Prasad Upadhya M. A. २-००
१५. Subject Matter of the Vedas By S. Bhoomanad १-००
१६. Enchanted Island By Swami Staya Parkashanand १-००
१७. Cow Protection By Swami Daya Nand ०-१५
१८. वेद में पुनरुक्ति दोष नहीं है आर्यमर्यादा का विशेषांक २-००
१९. मूर्त्तिपूजा निषेध " " ०-५०
२०. धर्मवीर पं० लेखराम जीवन —स्वामी श्रद्धानन्द १-२५
२१. कुलियात आर्य मुसाफिर प्रथम भाग—पं० लेखराम की पुस्तकों का संग्रह ६-००
२२. " " दूसरा भाग " " ८-००
२३. मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र —कु० सुशीला आर्या एम. ए. ०-२५
२४. योगीराज कृष्ण " " " ०-१५
२५. गोकरुणा निधि —स्वामी दयानन्द सरस्वती ०-२०
२६. आर्यसमाज के नियम उपनियम ०-१०
२७. आर्य नेताओं के वचनामृत —साईदास भण्डारी ०-१२
२८. कायाकल्प —स्वामी समर्पणानन्द सरस्वती १-५०
२९. वैदिक धर्म की विशेषतायें —पं० हरिदेव सिद्धान्त भूषण ०-१५
३०. स्वतन्त्रानन्द लेखमाला —स्वा० स्वतन्त्रानन्द जी जीवनी तथा उनके व्याख्यान १-२५
३१. आत्मानन्द लेखमाला—स्वामी आत्मानन्द सरस्वतीकी जीवनी १-२५
३२. आर्यसमाज के सदस्यता फार्म —सैंकड़ा १०-००
३३. वैदिक गीता —स्वामी आत्मानन्द सरस्वती २-५०
३४. मनोविज्ञान तथा शिव संकल्प " " " ३-५०
३५. कन्या और ब्रह्मचर्य " " " ०-१५
३६. सन्ध्या अष्टाङ्गयोग " " " ०-७५
३७. वैदिक विवाह " " " ०-७५
३८. सुखी जीवन —श्री सत्यव्रत २-००
३९. एक मनस्वी जीवन —पं० मनसाराम वैदिक तोप १-५०
४०. छात्रोपयोगी विचारमाला —जगदेवसिंह सिद्धान्ती १-५०
४१. स्त्री शिक्षा —पं० लेखराम आर्य मुसाफिर ०-६०
४२. विदेशों में एक साल —स्वामी स्वतन्त्रानन्द २-२५
४३. वेद विमर्श —पं० भगवद्दत्त वेदालकार २-००
४४. वेद विमश —प० वेदव्रत शास्त्री २-००
४५. आसनों के व्यायाम " " " १-००
४६. महर्षि जीवन गाथा —स्वामी वेदानन्द वेदवागीश २-२५
४७. मास मनुष्य का भोजन नही—स्वामी ओमानन्द सरस्वती १-००
४८. वीर भूमि हरयाणा " " " ४-००
४९. चोटी क्यों रखें —स्वामी ओमानन्द सरस्वती ०-५०
५०. हमारा फाजिल्का —श्री योगेन्द्रपाल १-५०
५१. सत्संग स्वाध्याय —स्वामी ओमानन्द सरस्वती ०-५०
५२. जापान यात्रा " " " ०-७५
५३. भोजन " " " ०-७०
५४. ऋषि रहस्य —पं० भगवद्दत्त वेदालंकार २-००
५५. स्वामी श्रद्धानन्द जीवन परिचय १-२५
५६. मेरा धर्म —आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति ७-००
५७. वेद का राष्ट्रिय गीत " " " ५-००
५८. ईशोपनिषद्भाष्य —इन्द्र विद्या वाचस्पति २-००
५९. पं० गुरुदत्त विद्यार्थी जीवन —डा० रामप्रकाश १-३०
६०. वैदिक पथ —पं० हरिदेव सिद्धान्त भूषण २-००
६१. वैदिक प्रवचन —पं० जगत्कुमार शास्त्री २-२५
६२. ज्ञानदीप " " " २-००
६३. आर्यसमाज का सैद्धान्तिक परिचय ०-५५
६३. The Vedas ०-५०
६४. The Philosophy of Vedas ०-५०
६६. ईश्वर दर्शन " " १-५०
६७. श्वेताश्वरोपनिषद् " " ४-००
६८. ब्रह्मचर्य प्रदीप " " ४-००
६९. भगवत प्राप्ति क्यों और कैसे —स्वा० सत्यानन्द ०-६०
७०. आर्य सामाजिक धर्म " " ०-७५
७१. बोध प्रसाद —स्वामी श्रद्धानन्द ०-२५
७२. ऋषि दर्शन —पं० चमूपति एम. ए. ००-२५
७३. ऋषि का चमत्कार " " " ००-१२
७४. वैदिक जीवन दर्शन " " " ००-२०
७५. वैदिक तत्व विचार " " " ००-५०
७६. देव यज्ञ रहस्य " " " ००-३५
७७. स्वतन्त्रानन्द संस्मरणांक १-५०

सभी पुस्तकों का प्राप्ति स्थान

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब, गुरुदत्त भवन, जालन्धर (४२५०) टेलीफोन
" " " १५ हनुमान् मार्ग नई दिल्ली-१ " (३१०१५०)
" " " दयानन्द मठ रोहतक (हरयाणा) " (५७४)

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के लिए जगदेवसिंह सिद्धान्ती शास्त्री द्वारा सैनी प्रिंटर्स पहाड़ी धीरज, देहली में मुद्रित और १५ हनुमान् रोड, नई दिल्ली—१ से प्रकाशित

सत्य मर्यादा कवयस्ततक्षु (ऋग्वेद)

आर्यमर्यादा

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का मुखपत्र

१० वैशाख स० २०३०, दयानन्दाब्द १४९,
तदनुसार २२ अप्रैल १९७३ रविवार
सृष्टि स०-१९६०८५३०७३

वर्ष ५
अक २१

वार्षिक शुल्क स्वदेश मे १०) रुपये
" " विदेश मे २०) रुपये
एक प्रति का मूल्य ००-२० पैसे

सम्पादक – जगदेवसिंह सिद्धान्ती शास्त्री, पूर्व लोकसभा सदस्य (फोन ५१२१६३)

वेदमन्त्रार्थ-प्रवचन

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी विषय मे अगले मन्त्र मे कहा है ॥

तन् मित्रस्य वरुणस्याभिचक्षे सूर्यो रूप कृणुते द्योरुपस्थे ।
अनन्तमन्यद्रुशदस्य पाजः कृष्णमन्यद्धरित सम्भरन्ति ॥

—ऋ० १ ११५.५

पदार्थ—(तत्) चेतन ब्रह्म (मित्रस्य) प्राणस्य (वरुणस्य) उदानस्य (अभिचक्षे) सम्मुखदर्शनाय (सूर्य्य) सविता (रूपम्) चक्षुर्ग्राह्य गुणम् (कृणुते) करोति (द्यो) प्रकाशस्य (उपस्थे) समीपे (अनन्तम्) देशकालवस्तुपरिच्छेदशून्यम् (अन्यत्) सर्वेभ्यो भिन्न सत् (रुशत्) ज्वलितवर्णम् (अस्य) (पाज) बलम् (कृष्णम्) तिमिराख्यम (अन्यत्) भिन्नम् (हरित) दिश (सम्) (भरन्ति) धरन्ति ॥

अन्वय—हे मनुष्या यूय यस्य सामर्थ्यात मित्रस्य वरुणस्याभिचक्षे द्योरुपस्थे स्थित सन् सूर्योऽनेकविध रूप कृणुते। अस्य सूर्य्यस्यान्यद्रुशत्पाजो रात्रेरन्यत्कृष्ण रूप दिश सम्भरन्ति तदनन्त ब्रह्म सतत सेवध्वम् ॥

भावार्थ—यस्य सामर्थ्येन रूप दिनरात्रिप्राप्तिनिमित्त सूर्य श्वेतकृष्णरूपविभाजकत्वेनाहर्निश जनयति तदनन्त ब्रह्म विहाय कस्याप्यन्यस्योपासन मनुष्या नैव कुर्य्युरिति विद्वद्भि सततमुपदेष्टव्यम् ॥

भाषार्थ—हे मनुष्य तुम लोग जिसके सामर्थ्य से (मित्रस्य) प्राण और (वरुणस्य) उदान का (अभिचक्षे) समुख दर्शन होने के लिये (द्यो) प्रकाश के (उपस्थे) समीप मे ठहराया हुआ (सूर्य्य) सूर्य्यलोक अनेक प्रकार (रूपम्) प्रत्यक्ष देखने योग्य रूप को (कृणुते) प्रकट करता है (अस्य) इस सूर्य्य के (अन्यत) सबमे अलग (रुशत्) लाल आग के समान जलते हुए (पाज) बल तथा रात्रि के (अन्यत्) अलग (कृष्णम) काले काले अन्धकार रूप को (हरित) दिशा विदिशा (स भरन्ति) धारण करती है (तत्) उस परब्रह्म का सेवन करो ॥

भावार्थ—जिसके सामर्थ्य से रूप दिन और रात्रि की प्राप्ति का निमित्त सूर्य्य श्वेत कृष्ण रूप को विभाग से दिन रात्रि को उत्पन्न करता है उस अनन्त परमेश्वर को छोडकर किसी और की उपासना मनुष्य नही करे यह विद्वानो को निरन्तर उपदेश करना चाहिये ॥

—(ऋषिदयानन्द-भाष्य)

आवश्यक सूचना

आर्यमर्यादा सम्बन्धी सब पत्र व्यवहार १५ हनुमान् रोड, नई दिल्ली के पते पर करें। सम्राट् प्रेस के पते पर नही। अन्यथा कोई समाचार नहीं छपेगा। —सिद्धान्ती सम्पादक

नौविमानादिविद्याविषयः

हे मनुष्यो ! (आ नो नावा मतीनाम्) जैसे बुद्धिमान् मनुष्यो के बनाये नाव आदि यानो से (पाराय) समुद्र के पारावार जाने के लिये सुगमता होती है वैसे ही (आ०) (युञ्जाथाम्) पूर्वोक्त वायु आदि अश्वि का योग यथावत् करो। (रथम्) जिस प्रकार उन यानो से समुद्र के पार और वार मे जा सको (न) हे मनुष्यो ! आओ आपस मे मिलके इस प्रकार के यानो को रच जिनसे सब देश देशान्तर मे हमारा जाना आना बने ।।९।। ऋ० १ ४६ ७ ।। (कृष्ण नि०) अग्नि जलयुक्त (कृष्णम्) अर्थात् खैचने वाला जो (नियानम्) निश्चित यान है, उसके (हरय) वेगादि गुणरूप (सुपर्णा) अच्छी प्रकार गमन कराने वाले जो पूर्वोक्त अग्न्यादि अश्व हैं, वे (अपोवसाना) जल सेचनयुक्त वाष्प को प्राप्त होके (दिवमुत्पतन्ति०) उस काष्ठ लोहा आदि से बने हुए विमान का आकाश मे उडा चलते है (त आववृ०) वे जब चारो ओर से सदन अर्थात् जल से वेगयुक्त होते है तब (ऋतस्य) अर्थात् यथाथ सुख के देने वाले होत है (पृथिवी घृ०) जब जल कलाओ के द्वारा पृथिवी जल से युक्त की जाती है तब उससे उत्तम उत्तम भाग प्राप्त होते हैं ।। १०।। ऋ० १ १६४ ४७ ।।

—(ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका)

सत्यार्थप्रकाश (दशम समुल्लास)

क्या बिना देशदेशान्तर और द्वीप द्वीपान्तर मे राज्य वा व्यापार किये स्वदेश की उन्नति कभी हो सकती है ? जब स्वदेश म ही स्वदेशी लोग व्यवहार करते और परदेशी स्वदश मे व्यवहार वा राज्य कर तो बिना दारिद्रय और दु ख के दूसरा कुछ भी नही हो सकता। पाखण्डी लोग यह समझते है कि जो हम इनको विद्या पढावे और देशदेशान्तर मे जाने की आज्ञा देवगे तो ये बुद्धिमान् होकर हमारे पाखण्ड जाल मे न फसने से हमारी प्रतिष्ठा और जीविका नष्ट हो जावेगी इसलिये भोजन छादन मे बखेडा डालते है कि ये दूसरे देश मे न जा सके। हा, इतना अवश्य चाहिये कि मद्यमास का ग्रहण कदापि भूलकर भी न कर क्या सब बुद्धिमानो ने निश्चय नही किया है कि जो राजपुरुषो मे युद्ध समय मे भी चौका लगाकर रसोई बना के खाना अवश्य पराजय का हेतु है ? किन्तु क्षत्रिय लोगो का युद्ध मे एक हाथ से रोटी खाते जल पीते जाना और दूसरे हाथ से शत्रुओ को घोडे हाथी रथ पर चढकर वा पैदल होके मारते जाना अपनी विजय करना ही आचार और पराजित होना अनाचार है। इसी मूढता से इन लोगो ने चौका लगाते लगाते विरोध करते कराते सब स्वातन्त्र्य, आनन्द, धन, राज्य, विद्या और पुरुषार्थ पर चौका लगाकर हाथ पर हाथ धरे बैठे है और इच्छा करते है कि कुछ पदार्थ मिले तो पका कर खावे परन्तु वैसा न होने पर जानो सब आर्यावर्त्त देश भर मे चौका लगा के सर्वथा नष्ट कर दिया है। हा जहा भोजन कर उस स्थान को धोने, लेपन करने, झाडू लगाने, कूडा कर्कट दूर करने मे प्रयत्न करना चाहिये न कि मुसलमान वा ईसाइयो के समान भ्रष्ट पाकशाला करना ।।

—(ऋषि दयानन्द)

सम्पत्ति की हदबन्दी

(लेखक—श्री बाबू पूर्णचन्द एडवोकेट पूर्व प्रधान सार्वदेशिक सभा)

आजकल केन्द्रिय व राज्य सरकारें ग्रामीण क्षेत्रो मे जोतो की हदबन्दी व नगरा मे अन्य प्रकार की सम्पत्ति की हदबन्दी के लिये कानून बनाने मे तत्पर ह। काग्रस की ओर से समाजवाद की स्थापनार्थ इस पर बहुत बल दिया जा रहा है। हमे यह विचार करना है कि क्या इस प्रकार की नीनि विधान के अन्तर्गत समझी जा सकती है या न्याय के अनुकूल भी है।

गरीबी मिटाओ का नारा वडा आकर्षक है परन्तु क्या गरीबी मिटाने के लिये यह ही उचित साधन है कि जिनके पास नियत सीमा से अधिक है उनसे मम्पत्ति ले ली जाय और जिनके पास नही है या कम है उनमे बाट दी जाय। यह गरीबी मिटाओ की आड मे अमीरी मिटाओ का आधार तो नही।

मम्पत्ति सब के पास एक समान हो यह आवश्यक नही है। सम्पत्ति की मात्रा म और उसके रूप मे भिन्नता होना अनिवार्य है। सम्पत्ति का मात्रा मे और उसके रूप मे भिन्नता होना अनिवार्य है। इस प्रश्न पर जरा गम्भीरता से विचार होना चाहिये।

शक्ति और सम्पत्ति

शक्ति और सम्पत्ति का घनिष्ठ सम्बन्ध है। हर एक व्यक्ति की शक्ति भिन्न भिन्न प्रकार की है। किसी की मानसिक शक्ति बहुत प्रबल है, किसी का शारीरिक बल अधिक है। मानसिक बल और शारीरिक बल के अनुपात से पुरुषार्थ की मात्रा और रूप का निश्चय होता है और पुरुषार्थ के फलस्वरूप सम्पत्ति प्राप्त होती है या व्यक्ति के पास पाई जाती है। व्यक्तियो के पुरुषार्थ के अनुसार उनका वेतन उनकी मजदूरी, उनका आर्थिक लाभ निर्भर होता है और इस आर्थिक लाभ का ही रूप सम्पत्ति है। सम्पत्ति की मात्रा और रूप मे भिन्नता होना और कम ज्यादा होना एक नैसर्गिक नियम है। कर्म के सिद्धान्त का यह एक परिणाम है।

पुरुषार्थ और प्रारब्ध

पुरुषार्थ और प्रारब्ध का भी घनिष्ठ सम्बन्ध है। जाति, आयु और भोग प्रत्येक व्यक्ति को पूर्वजन्म के अनुसार प्राप्त होते है। कौनसी योनि मे जन्म होगा कितने दिन जीवित रहने की अवधि मानी जायेगी और भोग प्राप्ति के लिये कितनी और कैसी सामग्री प्राप्त होगी यह सब पूर्वजन्म के आधार पर भी निश्चित होता है। केवल वे ही कर्म प्रारब्ध के अन्तर्गत आते हैं जिनका फल उस जन्म मे नही मिला जहा वह किये गये थे और इस दृष्टि से प्रारब्ध और पुरुषार्थ एक हो चित्र के दो रूप हैं। किसी बालक का जन्म एक लखपति के यहा होता है और किसी का एक अपाहिज और कगाल के यहा। यह दैनिक नियम और कर्मफल से सम्बन्धित है। यह अकस्मात नही हो सकता और इस दृष्टि से सम्पत्ति की मात्रा का व्यक्तियो के पास कम या अधिक मात्रा म होना एक नैसर्गिक नियम मानना आवश्यक है। जब तक शक्ति की मात्रा मे भेद है उसक फलस्वरूप जो सम्पत्ति उपलब्ध होना है उसकी मात्रा मे भी भिन्नता कम या अधिक होना अनिवार्य है।

सम्पत्ति और विधान

विधान जो बनाया जाता है वह राष्ट्र की सुरक्षा और व्यक्तियो की सुरक्षा दोनो दृष्टिकोण स बनाया जाता है। व्यक्ति को सम्पत्ति रखने या प्राप्त करन या सग्रह करन का अधिकार दैनिक नियम और कर्मफल के अनुसार अनिवार्य रूप से सम्बन्धित है विधान निजी सम्पत्ति की सुरक्षा के लिये उसके छीनने और बटवारा करान के लिये नही। भारत क सविधान मे भी सम्पत्तिकी सुरक्षा एक आवश्यक अग है और इसकी मौलिक अधिकारो क अन्तर्गत माना गया है ओर निजी सम्पत्ति की सुरक्षा की अवहेलना किसी भी अर्थनीति के आधार पर उचित नही समझी या मानी जा सकती है।

क्या होना चाहिये

यदि निजी सम्पत्ति की सुरक्षा विधान का आवश्यक अग है और सम्पत्ति की मात्रा दैनिक नियम और कर्मफल से सम्बन्धित है जैसा ऊपर दर्शाया गया है तब प्रश्न यह होता है कि राष्ट्र की सुरक्षा के लिये कौनसा उपाय उचित होगा जिससे विधान का भी उल्लघन न हो और व्यक्ति के सम्पत्ति सम्बन्धी अधिकारो मे भी अनुचित रूप से हस्तक्षेप न हो और देश की आर्थिक परिस्थिति भी सुलझ जाय इस सब के लिये कौनसी विधि उपयोगी आवश्यक और सिद्ध हो सकती है।

सम्पत्ति और मनोविज्ञान

शक्ति और सम्पत्ति को लक्ष्य में रख कर मनोविज्ञान के आधार पर कुछ विचार करना भी आवश्यक है। गरीबी और अमीरी का भेद उस परिस्थिति मे बहुत खटकता है जब अमीरी और गरीबो मे मानसिक सन्तुलन मर्यादित नही होता।

भाव, अभाव, स्वभाव

आर्थिक दृष्टिकोण से केवल भाव अभाव को लक्ष्य मे रखकर कोई भी नीति सफलतापूर्वक निर्धारित नही की जा सकती है। भाव और अभाव किसी के पास होना, किसी के पास न होना, किसी के पास कम होना, किसी के पास अधिक होना यह ऐसे प्रश्न हैं जो मानव प्रकृति से सम्बन्धित है। उनकी अवहेलना नही हो सकती परन्तु स्वभाव मर्यादा बडी आवश्यक है। यदि नैतिक दृष्टिकोण से अमीरो मे दान और परोपकार की भावना का समावेश रहे और वे कृपणता और कजूसी को कुटेव से मुक्त रहे तो अमीरी राष्ट्र के लिये वरदान हो सकती है। समय पर दान करने और दान प्राप्त होने से और ईमानदारी से जीवन व्यतीत करने से अमीर और धनवान् प्रत्येक राष्ट्र के लिये एक मूल्यवान् अग हो सकते है और है। इसी प्रकार यदि स्वभाव की मर्यादा होगी तो जिसके पास कम है उनमे सतोष का समावेश रहेता और वे अपना गरीबी पर केवल रोष न प्रकट करते हुए पुरुषार्थ करने के लिये तत्पर रहेगे और उनमे सतोष उचित मात्रा मे पाया जायेगा और इस दृष्टिकोण से गरीबो और अमीरी को यदि देखा जाय तो उपाय सम्पत्ति का हदबन्दी नही, छीना झपटी नही, परन्तु अचूक उपाय चरित्र का गठन है और नैतिक आधार पर स्वभाव को मर्यादा है।

शक्ति सम्पत्ति और भक्ति

शक्ति और सम्पत्ति के प्रसग मे भक्ति पर भी विचार होना आवश्यक है। भक्ति से अभिप्राय केवल माला जपना कीर्तन करना, तिलक लगाना नही है। भक्ति का असली स्वरूप व्यवहारिक आस्तिकता है अर्थात ईश्वर को सत्ता और उसके बनाये हुए धार्मिक नियमो मे आस्था होना अति आवश्यक है। परन्तु भारत की प्रचलित राजनीति मे धार्मिक दृष्टिकोण या व्यावहारिक आस्तिकता का बहुत कम समावेश है बल्कि एक दृष्टि से उसकी हर प्रकार से अवहेलना की गई है। स्वराज्य प्राप्ति से पूर्व राष्ट्रिय गान मे उपर्युक्त भावना का उच्चारण होता था। ईश्वर का नाम लिया जाता था परन्तु स्वराज्य मिल जाने पर किग चले गये, अब कोई किंग नही है, जनता का राज्य है और जनता का उनके अधिकारा की प्राप्ति की भावना के साथ साथ कर्तव्य करने को भावना भी अत्यन्त आवश्यक है। कर्तव्य पालन की भावना क लिये ईश्वर को सत्ता मे विश्वास और धार्मिक मर्यादा का पालन करना सबसे अधिक आवश्यक और अचूक उपाय है और इसकी अवहेलना या उपेक्षा नही होनी चाहिये।

भारत का विधान और धार्मिक दृष्टिकोण

भारत क विधान मे राजनीति का सक्यूलर या धर्मनिर्पेक्ष कहा गया है। इसका अभिप्राय सम्प्रदायवाद मे सुरक्षा है, धार्मिक नीति को अवहेलना नही। भारत के विधान मे सत्यमेव जयते, पथ प्रदर्शक वाक्य है। यह धर्म का मौलिक रूप है। सत्य और धर्म पर्यायवाची है। इनका अभिप्राय एक ही है और भारत के विधान मे शपथ की प्रथा भी एक आवश्यक अग है। शपथ लेना और देना धर्म का एक अति आवश्यक अग और स्वरूप है और इसका हो यदि मनोवैज्ञानिक दृष्टि से प्रचार और पालन हो तो स्वभाव की मर्यादा बडी सुगमता से हो सकेगी और इसका परिणाम यह होगा कि साम्यवाद और समाजवाद के चक्कर से बच कर एक अचूक नैतिक आधार पर राजनीति राष्ट्र का आधार बन जायेगी और न केवल गरीबी अमीरी को वरन् अन्य अनेक समस्याय भी बडी सुगमता से हल हो जायगी। काग्रेस के इस समय राष्ट्र सचालन के लिये सबसे बलयुक्त पार्टी है। उसको अपनी नीति साम्यवाद के पक्ष मे इतनी नही है परन्तु प्रजातन्त्र के युग मे वोटो की सख्या का बडा प्रभाव रखती है और काग्रेस में दो दल हो जाने से जिस दल का राष्ट्र के निर्माण मे बहुमत है उसका अपने अधिकारो की सुरक्षा के लिये वोटो की सख्या बढाने की चिन्ता स्वाभाविक ही है और ऐसी परिस्थिति मे कम्युनिस्ट और युवा दल की बातो पर भी ध्यान देना आवश्यक हो जाता है और ऐसी परिस्थिति मे सम्पत्ति आदि की हदबन्दी की बाते जोर पकड जाती हैं। यदि गम्भीरता से ऊपर लिखी बाता पर ध्यान दिया जायेगा तो राष्ट्र की सुरक्षा भी हो सकेगी, नैतिक मर्यादा भी बढेगी और राष्ट्र मे जो अपराधो की बाढ आई हुई है उसमे भी रोक लग जायेगी।

सम्पादकीय—

१—गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय का उत्सव सम्पन्न

१२ से १५ अप्रैल ७३ तक पूर्ण सफलता से सम्पन्न हुआ। इस बार भारत की प्रधान मन्त्री श्रीमती इन्दिरा गान्धी ने दीक्षान्त भाषण हिन्दी में दिया और सब से पहिले ११३ स्नातक स्नातिकाओं और कुलपति श्री पं० रघवीर सिंह शास्त्री तथा कुलाधिपति प्रो० रामसिंह जी एम० ए० आदि के साथ चित्र खिचवाया। स्नातकों को प्रमाण पत्र दिये। यज्ञ वेदी पर बैठक कर स्वयं वेद मन्त्रों का उच्चारण किया और आहुतियां दीं। विश्वविद्यालय की ओर से मानद "विद्यामार्तण्ड की उपाधि प्रधान मन्त्री जी को सादर भेंट की गई उन्होंने गुरुकुल का सामान्य इतिहास बताते हुए संस्थापक स्वामी श्रद्धानन्द जी संन्यासी का बड़े सम्मान पूर्वक स्मरण किया और गुरुकुल को राष्ट्रिय संस्थाके रूप में बहुत उपयोगी बताया यह भी कहा कि राष्ट्रिय सस्थाओं को साम्प्रदायिक वातावरण और क्षेत्रिय भावना से दूर रहना आवश्यक है।बाद में कुलाधिपति, कुलपति और स्वामी सर्वानन्द जी सरस्वती नियन्त्रक और प्रबन्धक आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाबने जब स्नातक और स्नातिकाओं को आशीर्वाद दिया सभी नव स्नातकों ने प्रतिज्ञा पूर्वक आदर से शिर झुकाकर आशीर्वाद द्वारा अपने को कृत कृत्य माना। इनके अतिरिक्त अनेक पूज्य संन्यासी और विद्वानों के भाषण हुए इस अवसर पर वेद, आर्य और राष्ट्र सम्मेलन भी हुए। केन्द्रिय कृषि राज्य मन्त्री प्रो० शेरसिंह और उत्तर प्रदेश के मुख्य मन्त्री श्री कमला प्रसाद त्रिपाठी जी ने अपने भाषणों में संस्था की भूरि भूरि प्रशंसा की। अगले अंक में विस्तृत समाचार प्रकाशित किया जावेगा।

२—ऋषि दयानन्द को विषपान के षड्यन्त्र में दोषी कौन हैं?

हमें बताया गया है कि डा० श्रीराम शर्मा लेखक ने पंजाब विश्व-विद्यालय की ओर से जो यह लिखा कि ऋषि दयानन्द को विष नहीं दिया गया"—यह किस के संदेश पर लिखा है? सुना गया है कि पंजाब विश्व-विद्यालय के उपकुलपति ला० सूरजभान जी यह कहते हैं कि उन्होंने यह आदेश डा० शर्मा को नहीं दिया था, आपने अन्य पुस्तक लिखने को कहा था। आश्चर्य है कि डा० शर्मा ने किस के आदेश पर यह लेख लिखा? एक समस्या यह भी खड़ी हो जाती है कि जब उपकुल पति जी ने आदेश नहीं दिया तो उन्होंने हरयाणा राज्य के शिक्षा मन्त्री चौ० माडूसिंह मलिक को कैसे आश्वासन दिया कि इस पुस्तक को छपने से पूर्व जांच कराई जावेगी जिससे किसी सम्प्रदाय के विरोध में कोई बात प्रकाशित न की जा सके। यह मालूम पड़ता है उपकुलपति जी सहित डा० शर्मा और उसके साथियों ने षड्यन्त्र किया है। सुना गया है कि यह षड्यन्त्र होशियार-पुर में घड़ा गया है। इसकी पूरी जांच की जानी अत्यन्त आवश्यक है। यह भी पता चला है कि हरयाणा राज्य सरकार द्वारा प्रदत्त ५० हजार रुपये की राशि में से अनुमान ३७ हजार रुपये से कुछ अधिक खर्च हो चुका है। यह किस के आदेश पर दिया गया है। ढीठ और दोषी कौन है?

३—चौ० माडूसिंह शिक्षा मन्त्री से प्रतिनिधि मण्डल मिलेगा।

हमें पत्र मिला है कि हरयाणा राज्य का प्रतिनिधि मण्डल २१ अप्रैल १९७३ को रोहतक में उनके पधारने पर भेंट करेगा और इस सम्बन्ध में पूरी जांच करने का निवेदन करेगा। इस मण्डल ने मांगें की हैं कि उप कुलपति श्री ला० सूरजभान से कहा जावे कि डा० शर्मा को इस काम से हटाया जावे। समस्त आर्यसमाज ने यह प्रबल मांगे की है। भारत के अनेक आर्यसमाजों ने इस सम्बन्ध में प्रस्ताव स्वीकार किये हैं और उनकी प्रतियां समाचार पत्रों और उपकुलपति को भेजी गई हैं। जिन में कहा गया है कि यदि इस षड्यन्त्र की जांच करके इसको नष्ट नहीं किया गया तो आर्यसमाज में बड़ा आन्दोलन चलाया जावेगा।

४—क्या ऋषि दयानन्द को विष दिया गया?

इस सम्बन्ध में डा० महेन्द्रकुमार शास्त्री पूर्व उपप्रधानआचार्य आयुर्वेदिक कालिज बम्बई का आयुर्वेद की दृष्टि से एक महत्वपूर्ण लेख अंग्रेजी भाषा में हमें मिला है। लम्बा होने से इसका एक भाग इसी अंक के पृष्ठ ४ पर प्रकाशित किया गया है और शेष भाग क्रमशः अगले अंक में प्रकाशित किया जावेगा। इसको अंग्रेजी भाषाविद् विशेषतया आयुर्वेद शास्त्र के ज्ञाता ध्यान से मनन करने का अनुग्रह करें। इससे पता चलता है कि ऋषि दयानन्द को विष दिया गया था।

५—सिक्कम राज्य की स्थिति शान्त और सुरक्षित

सिक्कम राज्य की स्थिति को भारत सरकार ने ठीक समय पर संभाल लिया। इस पर चीन ने भारत सरकार पर आरोप लगाया है कि भारत सिक्कम पर अनधिकार रूप से प्रशासन संभाला है। चीन ने अनधिकार रूप से पाकिस्तान के साथ षड्यन्त्र करके भारत के पर्याप्त भाग पर कब्जा किया हुआ है। अपना दोष भारत के सिर पर मण्ढना इसी का नाम दुर्नीति है। सिक्कम तो भारत का संक्षिप्त राज्य है।

६—बैंकों से रुपया निकलवाने में सावधान !

जिन लोगों का बैंकों में हिसाब जमा होता है। उन्हें बैंक से सीलबन्द गड्डियों को भी वहीं खिड़की पर गिन लेना चाहिये। क्यों सीलबन्द गड्डियों में भी नोट कम बांधे जा सकते हैं। देहली में एक शिकायत ऐसी मिली है। शिकायत करने पर बैंक वाले ध्यान नहीं देते। अतः खिड़की पर गड्डियों में बन्द नोटों को गिन लेना चाहिये। परन्तु इसमें एक संकट है कि नोटों को गिनते समय कोई उचक्का गड्डी को झपट सकता है अतः अच्छा यह रहे कि अधिक रुपये निकलवाने वाले दो व्यक्ति साथ जाया करें।

७—भिनाय हाऊस अजमेर को आर्यसमाज ले

ऋषि दयानन्द जी का मोक्ष पद भिनाय हाऊस में हुआ था। वह अब एक मुसलमान ने खरीद लिया और वह उसमें सिनेमा बनाना चाहता है। "अभयघोष" हिन्दी साप्ताहिक अजमेर के सम्पादक श्री मूलचन्द आर्य ने पुनः आर्यसमाज से प्रबल मांग की है कि ऋषि स्मृति रूप भिनाय हाऊस को खरीदे अथवा सरकार द्वारा उसको सुरक्षित कराये। जैसे महात्मा गांधी स्मारक रूप में हरिजन बिरला हाऊस नई देहली में सरकार ने सुरक्षित कर दिया है। समस्त आर्यसमाज को इस समस्या पर गम्भीर विचार करना चाहिये।

८—श्री जगन्नाथ जी का फोन नम्बर बदला

प्रो० शेरसिंह केन्द्रिय कृषि राज्य मन्त्री के प्राइवेट सेक्रेट्री श्री जगन्नाथ के निवास स्थान का फोन नम्बर बदल गया है। अब नया नम्बर ६७१२४४ हो गया है। सम्बद्ध व्यक्ति नोट कर लेवें। इनके कार्यालय का नम्बर यथापूर्व ३८४५० है।

९—चण्डीगढ़, फाजिलका के बारे में निर्णय यथापूर्व

केन्द्रिय गृह राज्य मन्त्री श्री रामनिवास मिर्धा ने कहा कि पंजाब तथा हरयाणा के बीच विभाजन के पूर्व निर्णय में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। निर्णय के अनुसार जनवरी ७५ में चण्डीगढ़ पंजाब को और फाजिलका अबोहर क्षेत्र हरयाणा को मिल जावेंगे। २९ जनवरी ७० से प्रधान मन्त्री श्रीमती इन्दिरा गान्धी द्वारा क्षेत्रों के विभाजन का दिया निर्णय कायम है। जब तक दोनों राज्यों के मुख्य मन्त्रियों ने इस पर कोई आपत्ति नहीं की है और न ही केन्द्र की इस सम्बन्ध में कोई अन्य राय नहीं बनी है। निर्णय में कोई परिवर्तन नहीं होगा जब तक दोनों मुख्य मन्त्री ही निर्णय पर चर्चा करें। निर्णय को फिर से आरम्भ करने का कोई प्रश्न नहीं। हरयाणा के मुख्य मन्त्री ने नई राजधानी व स्थान के सम्बन्ध में अब तक कोई मांग प्रस्तुत नहीं की है। हरयाणा को दी जाने वाली अनुदान रशि के सम्बन्ध में भी कोई कार्यवाही नहीं हुई है।

—जगदेवसिंह सिद्धान्ती शास्त्री

मेरा नया निवास स्थान

आर्यसमाजों, संस्थाओं, आर्य जनों को सूचित किया जाता है कि मैंने अपना पुराना सरकारी क्वार्टर छोड़कर नये निवास स्थान का प्रबन्ध किया है। उसका पूरा पता निम्न प्रकार है:—

१४।२१ (ब्लाक नं १४ मकान नं० २१)
ईस्ट पटेल नगर,
नई दिल्ली—८

प्रार्थना है कि भविष्य में मेरी डाक उपरोक्त पते पर ही सब सज्जन भेजने की कृपा करें। टेलीफोन बदलने के लिए लिख दिया है। लग जाने पर नये फोन नम्बर की इसी भांति घोषणा कर दी जायेगी।

—रामनाथ भल्ला

Was Swami Dayananda Poisoned ?

(By Dr. M. K. Shastry. Ex Principal Poder Medical College Bombay-18)

In the feature "Was Swami Dayanand Poisoned", which appeared in the october 29, 1972 issue of the Illustrated weekly of India, Bombay, the author Shri B. K; Singh hurriedly arrived at the conclusion that Swami ji died a natural death. He seemed to have based his conclusion on the fact that as the Swami lived many days after his illness, which us alleged to be caused by poisoning, the allegation of poisoning proved false.

To all interests and purposes, this is not likely to be correct. My contention is that the above presumption is based on ignorance of medical knowledge on the Part of the author. All persons do not die immediately by poisoning. Death depends upon many factors.

Dosage, methods and route of administration, age and physical condition of the patient, etc. My contention is that Swami ji was given arsenic mixed with powdered glass and croton seeds During the illness, Swami ji showed all symptoms, which such misture is supposed to create.

Medical aspect and circumstantial evidence all go to prove the above contention. Firstly, let us look in to the medical aspects of the case.

Tne question "whether Swami Dayananda Sarswati was poisoned or not" can be categorically answered by discussing the signs and symptoms of the ailment which ultimately ended in his death, in the light of the science of Medical Jurisprudence and Toxicology. The science reveals the facts irrespective of the personality involved.

Swami ji's health was alright before the night of 29th September 1883, till he drank milk on that fateful night given to him by one of his cooks.

Few hours after taking this milk. he complained of nausea and vomited. He noticed pain in the epigastrium, and suspecting foul play, he took some emetic and vomited. From the next day, i.e. on 30th Sepiemcer 1383, symptoms of gastro—intestinal disturbances appeared, characterised by nausea, vomits, burning in the stomach, purging, and intense thirst. He also developed bronchitis, coughing and dyspnoea but these symptoms were brought under control by treatment while the gastro—intestinal symptoms persisted. On 2nd October 1883, one Dr. Alimaadankhan. duputed by Jodhpur Maharaja. administered some medicine, which instead of giving relief caused extensive pruging (more than thirty motions a day) which resulted in great weakness and exhaustion, Swami ji began to faint.

On 6th October 1883, the Swami ji told Dr. Alimardankhan "I feel intense burning sensation throughout the body, uneasiness, and feeling of faintness. These purgings should be stopped now." To which Dr's reply was "It is dangerous for your disease to stop them by medicine". They should cease themselves Vomitings and purgings as well as intense thirst and burning sensation persisted throughout the period of the disease. In addition, troublesome hiccough developed which also persisted till the end. Finally, Swami ji developed ulcers in the mounth, on the tongue, on the throat, and on the head and face. The urine became scenty and during last days its colour was dark.

If we submit these signs and symptoms to the scrutidy of the Soience of Toxicoloey, we find, that these are typical symptoms of arsenic poisoning, which was commonly used then as an ideal homicidal poison.

MEDICAL ASPECT

The following quotations are made from the National Textbook "A Simplified Textbook of Medical Jurisprudence and Toxicology, first edition of 1970". Written by Dr. C. K. Parikh, Honorary Professor of Medical Jurisprudence and Toxicology, Seth G. S. Medical College, Bombay and subsidised by the Government of India.

Symptoms of croton seeds or oil poisoning are :

"The seeds and oil are poisonous, the oil causes blistering externatly, and on ingestion, causes sever gastrointestinal irritation with burning pain in the abdomen, vomiting, powerful purging, and frequently a burning pain at the anus". (Page 643).

POWDERED GLASS

SYMPTOMS :—

When taken internally, powdered glass produces a sharp burning pain in the throat, stomach and abdomen. There is nausea and vomiting, the vomit being blood stained. There is generally constipation but some times diarrhoea with tenesmus and blood. In fatal cases, death may occur from shock, if stomach and intestines have deen perforated. Due to presence of silica which is radio opaque, glass pieces may cast a faint shadow on X-ray and this may help in diagnosis.

MEDICO LEGAL ASCEPTS :—

Glass must be powdered sufficiently well to prevent its detection by the victim. However, finely powdered glass is less destructive in its effect. Some times, glass is mixed with arsenic before adminstration. (Page 673-674)

PROPERTIES, Symptoms and course of Arsenic poisoning.

"In the powder form, arsenic may readily be mistaken for any white powder; It has no smell or taste—it has a peculiar property that inspite of it's heavy weight, it floats on the surface or adheres to the side of the vessel. However, it can be mixed in fatal dosage in all desrription "of food without exciting any comment :" (Page 596)

"Uuless the poison is given in a small amount and is a liquid state, the greator part of it may be lost by vomiting or diarrhoea. The bodily functione are at their lowest metabolic level during sleep and the action of a poison may be delayed if a person goes to sleep after taking it." (Page 532)

"The symptoms of arsenic poisoning are often initiated by nausea, faintness and burning felt in the stomach and epigastrium, which is increased by pressure."

"These are then followed by retching and vomiting, which becomes severe, continuous and persistent. The act of vomiting by "evacuating most of the poison, may save the patient's life !......The stools are tinged with blood; intense thirst is a constant feature; drinking accentuates the vomiting; painful cramps may develop due to dehydration of the tissues; and the urine may be supressed. In some cases. where the patient survives that initial attack (as in the case of Swami Dayanand), symptoms persist in lesser degree for some time; the patient becomes progressly weaker.—A patient who recovers from the effects of a first dose may die some days later from subacture poisoning, or some week later from chronic poisoning"

(Page 599, 600).

Almost all these symptoms persisted till the end in the case of Swami Dayanand Saraswati. There fore, one can reasonably conclude that the Swami's death was due to poisoning.

The circumstantial evidence

The following circumstantial evidence also support my point of view. The following narration is based on the Biography of Swami Dayanand, written by Late Pandit Lekhram, who himself met and discussed some points personally and collected material for Swami's First Biography just after his death and interviewed all living persons connected with Swami ji, there fore, his Book can be considered authentic as based upon firsthand information. (Hindi Edition 1971, Page 912 to 925).

In fact, the Swami ji was forwarned by his admirers and followers that he should cancel his proposed visit to Jodhpur as that place was citadel of orthodoxy, vested interests, and intoleradly people, and he might be harmed. But Dayanand did not heed to their advice and enteaties, because he thought that he as duty bound to visit such places to dispel the darkness and preach the truth to the people.●

(Continued next issue)

क्रमागत—

माण्डूक्य पर आचार्य गौडपाद कारिकाओं की समीक्षा (१४)

(ले० श्री स्वामी ब्रह्मानन्द जी आर्य त्रैतवेदान्ताचार्य, मु० ओंकार आश्रम, चान्दोद, बड़ौदा)

दूसरे ओं पाणिनी के मत से अव्यय पदों के अन्तर्गत होने से उसके मकार का क्षय या लोप भी नहीं हो सकता, क्योंकि वह अव्यय है किन्तु ओम् के पदान्त में मकार हल वर्ण होने से (मोनुस्वारः) मान्तस्य पदस्य अनुस्वरो हलिः स्यात् ॥ पा० सूत्र के अनुसार हलन्तम् का अनुस्वार अवश्य हो जाता है। सो प्रसिद्ध ही है। तो कहना यह है कि यदि ओंकार की मात्रायें आदि क्षय हो जाती तो वे फिर निकल कैसे आतीं? क्योंकि क्षय का मतलब ही नाश हो जाना होता है, तो नष्ट हुई वस्तु सजीव न कैसे हो जायगी? किन्तु ओंकार का दूसरा नाम अक्षर भी शास्त्रों में कहा गया है, तो कहना हमारा यह है, ओंकार अव्यय ही है इसलिये उसकी किसी भी मात्रा का कभी भी क्षय नहीं होता। देखो यदि जो क्षय ही मात्राओं का हो जाता तो वो मात्रायें ओंकार में से निकल कैसे आतीं? देखिये इसके प्रमाण में हम स्वयं आ० शंकर के भाष्य का ही प्रमाण पेश करते हैं लो पढ़ो। इसी मांडूक्य उ० की ग्यारहवीं श्रुति का—(विश्वतैजसो प्राज्ञेन प्रलयोत्पत्त्योः प्रवेशनिगमाभ्यां प्रस्थेनैव यथाः। यथोङ्कारसमाप्तौ पुनः प्रयोगे च प्रविश्य निर्गच्छत इवाकारोकारौ मकारे अपितेर्वा अपिति अप्यय एकी भावः। ओंकारो चारणे ह्यन्त्येऽक्षर एकीभूताविवाकारोकारौ। तथा विश्व तैजसौ सुषुप्तकाले प्राज्ञे। अतो वा सामान्यादेकत्वं प्राज्ञमकारयोः॥ शां० भा० मां० ११॥) अर्थात् आचार्य शंकर जी इन अकार उकार मकार एवं विश्व तैजस प्राज्ञ को एक दूसरे में प्रवेश करके एकत्त्व को प्राप्त कर सुषुप्ति एवं प्रलय काल में से पुनः इनका निकल आना मान रहे हैं। तो अब आप ही पाठकगण विचार कर कहें कि फिर इन प्राज्ञात्मा का और मकार आदि ओंकार की मात्रा का क्षय एवं लोप हुआ ये कैसे माना जाय? क्या ये भी कोई जादूगर का तमाशा है कि चाहा जब रुपया कलदार टन्न से निकाल दिया फिर उसे उड़ा दिया, यह नष्ट कर दिया। चलो खैर आगे बढ़ें ॥२३॥

ओङ्कारं पादशो विद्यात्पादामात्रा न संशयः।
ओङ्कारं पादशोज्ञात्वा न किंचिदपि चिन्तयेत् ॥२४॥
—आगम प्र० की २४ वीं कारिका

अर्थ—ओंकार को एक एक पाद करके जानें पाद ही मात्रायें हैं इसमें सन्देह नहीं। इस प्रकार ओंकार को पाद क्रम से जानकर कुछ भी चिन्तन न करे ॥२४॥

समीक्षा—यद्यपि ओंकार के पाद एवं मात्रायें ये दोनों एक रूप ही हैं इसके तीनों पाद में ही त्रिपदा गायत्री है और ओंकार के सहित गायत्री गुरुमंत्र का जप स्मरण सभी द्विजाति को करना परमधर्म है क्योंकि—

प्रणवं पितृरूपेण गायत्री मातरः स्मृताः।
पितरं यो न विजानाति स द्विजो वर्णसङ्करः॥

अर्थात् ओंकार रूपी पिता तथा गायत्री रूपी माता को जो जपोपासना के द्वारा उनके परम तत्त्व को जो द्विज नहीं जानता या जो इनकी आराधना उपासना नहीं करता वही असल में वर्णसंकर कहा जाने के योग्य है। भ० मनु ने तो ऐसे मनुष्य को द्विजों के कर्मों से बहिष्कृत करके शूद्रों की शृंखला में माना है। तो यहां तो इस कारिका में बड़े गुरु गौडपाद जी ने ओंकार के चिन्तन के विषय में बड़ी ही उत्तम सलाह दी है किन्तु हमारे अद्वैतवादी नवीन वेदान्ति भाई तो ओंकार से अधिक महत्त्व वे अपने तत्त्वमस्यादि चार महावाक्यों को ही देते हैं और उन्हीं कथित महावाक्यों के रटन से ही मुक्ति का मिलना मानते हैं ॥२४॥

पुञ्जीत प्रणवे चेतः प्रणवो ब्रह्म निर्भयम्।
प्रणवे नित्य-युक्तस्य न भयं विद्यते क्वचित् ॥२५॥
आगम प्र० की २५ वीं कारिका

अर्थ—चित्त को ओंकार में समाहित करे, ओंकार निर्भय ब्रह्म पद है। ओंकार में नित्य समाहित रहने वाले पुरुष को कहीं भी भय नहीं होता ॥२५॥

समीक्षा—ओंकार ही सब प्रकार के भय से मुक्त करने वाला है परन्तु लोगों को उनके पान्थिक गुरुओं के द्वारा दिये अवैदिक भगवन्नाम और कल्पित गुरुमंत्रों में ही अन्ध श्रद्धा जमी रहती है इसी प्रकार स्वयं लेखक भी (श्री कृष्ण गोविन्द हरे मुरारे हे नाथ नारायण वासुदेव) का संकीर्तन करता हुआ जबलपुर भेडा घाट के जंगल में से नर्मदा के किनारे किनारे चला जा रहा था और सायंकाल का भी बखत हुआ चला जाता था चलते बखत लोगों ने कहा भा था जंगल भयंकर है आप महाराज इस पगदण्डी को छोड़ सदर रोड से ही जावें, किन्तु लेखक चढ़ती जवानी की मस्ती में और उपरोक्त पौराणिक नामों के सहारे पर आखिर उसी पगदण्डी के मार्ग से बढ़ा चला जा रहा था कि जिस मार्ग से भक्त लोगों ने इनकार किया था, शाम संध्या पड़ने से किंचित् बन राज का मन में भय भी उत्पन्न होने लगा था, जिससे लेखक आगे पीछे अगल बगल झाड़ी की ओर बार बार ताकता जाता था और यह भी सोचता जाता था कि कहीं अचानक बन राज अथवा जामवन्त के वंशज आ ही निकलेंगे तो नर्मदा में कूदकर तैरकर उस पार हो जाऊंगा ऐसी मन में खुमारी और जरा बेपरवाही भी थी, अचानक पीछे की ओर निगाह गई तो एक भेड़िया पीछे लपका चला आता देखा उसे देख दण्डा ऊंचा उठा उसकी ओर पत्थर चलाया तो वह दूर तो भाग गया परन्तु पीछा ही किये रहा, ये जानवर दगाबाज होता है, लेखक जोर जोर से भगवन्नाम बोलता डण्डा हिलाता पत्थर पीछे बार बार फेंकता आगे बढ़ा चला ही जा रहा था कि अचानक नर्मदा की धारा की ओर से एक पट्टेदार सेर, जो पाडे को भी पीठ पर लाद ले जाता है ऐसा बड़ा शेर सूखे पत्तों में से पैर बढ़ाये लेखक के (मेरे) आगे से नीची निगाह किये बिना पूंछ उठाये करीब बीस पच्चीस गज की दूरी से ही सिर्फ ऐसा चला जाता देखा कि मानो वो लेखक की ओर नहीं देखने की शपथ खाकर ही निराश हुये अनजान सा न जा रहा हो। बस उसे देखते ही लेखक क्षणमात्र के लिये स्तम्भित रह गया, सभी चेष्टाओं से रहित हो गया, पैर ता मानो सीमेण्ट में जड़ दिये न हों, भगवन्नाम की रट ऐसी बन्द पड़ गई मानो मुंह को या जबान को किसी ने सी दिया न हो, नर्मदा के जल में कूदकर तैर जाने की बात जाने दो एक कदम भी आगे पीछे बढ़ने फिरने मुड़ने की हिम्मत ही हवा हो गई, क्या करूं उस क्षण कुछ भी समझ न पड़ा भगवत् प्रेरणा से कहो या पुण्य योग से मानो, लेखक के मुख से अचानक ओंकार का ऐसा उच्च स्वर से दीर्घ या लुप्तमान संज्ञायुक्त घंटनाद के समान ओंकार गुंजाया किया मानो, मैं उसी पूज्य प्राणाधार सर्व रक्षक सच्चिदानन्द घन परब्रह्म परमात्मा को अपनी रक्षा के लिये अचानक आर्तनाद से ओंकार नाम से बुला रहा हूं किन्तु भय के मारे आंखें तो निर्निमेष उसी शेर रूप नृसिंह भ० की ओर लगी हुई थी, हाथ से दण्ड कमंडलू भी छूटा सा जा रहा था। किन्तु बड़े ही आश्चर्य एवं आनन्द की लात तो यह हुई थी कि उस ओर उस शेर ने लेखक की ओर अपना शिर उठा के तो क्या किन्तु अपनी तिरछी निगाह से भी इस लेखक की ओर न देखा, और वह अपनी मस्तानी चाल से उसी पर्वत की ओर जब चला गया, तब लेखक के दम में दम आया, तो लेखक वहां से आगे की ओर ऐसा तो भागा कि मानो शिर पर अपने पैरों को ही लिये वायु वेग से न भागा जाता हो, याने करीब तीन माइल भागता हुआ और पीछे की ओर झांकता हुआ भेडा घाट रात्रि आठ बजे पहुंचा वहां के पंडे पुजारी लेखक को जानते थे कि ये यहां के मठधारी के गुरु हैं इन्होंने ही यहां एक ब्राह्मण के लड़के को मुसलमानों के हाथ से बचा शुद्ध कर मठधारी को सौंपा था, तो वे बोले स्वामी जी क्यों भागे चले आते हो, क्या कोई हिंसक जानवर तो नहीं दीख पड़ा, मैंने कहा उसी बात के कारण भागा आ रहा हूं। (क्रमशः)

गतांक से आगे—

सन् ५७ में प्रजा विद्रोह के कारण ?

टैक्स कौन से लगाये गये ? (२६)

(ले० श्री स्वा० सच्चिदानन्द योगी, अध्यक्ष श्री नारायण स्वामी आश्रम, महामहिम पातञ्जलयोग साधना संघ आ० बा० आ० ज्वालापुर)

थियासोफिस्ट में २४ शीर्षक हैं वहां पं० लेखराम जी के उद्धृत आत्म चरित्र में ४८ शीर्षक हैं। पृष्ठ २१ से ४३ तक। शीर्षक—स्वामी जी का स्वकथित जीवन चरित्र' ही है। यदि पं० लेखराम जी वाले जीवन चरित्र का थियासोफिस्ट को अनुवाद माना जाये तो यह शीर्षक संख्या दुगुनी क्यों। घटनायें भी दुगुनी हैं। सं० १९३१ विक्रमी में बम्बई से अहमदाबाद राजकोट में समाप्त होता है। नर्बदा तट तक ही मान लें तो भी ४० शीर्षक होते हैं। अतः सुतराम सिद्ध है, इस पण्डित जी के उपलब्ध लेख का थियासोफिस्ट अनुवाद नहीं। इसमें पूना प्रवचन भी मिला है, अपनी अटकल भी।

यही बात पण्डित भगवद्दत्त जी सम्पादित स्वकथित आत्म चरित्र में भी है। उन्होंने भी तीनों का सम्मिश्रण कर दिया है। भूमिका में विभिन्न कोष्ठक चिह्न देकर अलग अलग दर्शाने की बात लिखी है। परन्तु छपने में प्रूफशोधन में कोष्ठक की सावधानी छोड़ने से सब खिचड़ी हो गया है। अतः उसका अनुवाद थियासोफिस्ट जीवनी नहीं, न वही थियासोफिस्ट का अनुवाद है।

२. हिन्दी स्वकथित जीवन चरितों के शीर्षक संख्या नहीं मिलती वहां शीर्षक का भाषा अनुवाद भी नहीं मिलता। स्वनाम धन्य श्री पं० लेखराम जी ने शीर्षक बहुत लम्बे दिये हैं उनका विषय क्रम यह है :—

१. बचपन, वैराग्य, गृहत्याग व संन्यास यह मोटा शीर्षक है। जिनका थियासोफिस्ट में सर्वथा अभाव है।

आगे इस प्रकार विभाग किया है :—

१. मेरा वास्तविक उद्देश्य: देश सुधार व धर्म प्रचार

२. मौरवी (गुजरात) के एक समृद्ध औदिच्य ब्राह्मण के घर सं० १८८१ में मेरा जन्म।

३. पांच वर्ष की अवस्था में अक्षराभ्यास, कुलधर्म, रीतिनीति तथा मन्त्र श्लोक आदि की शिक्षा।

४. आठवें वर्ष में यज्ञोपवीत धारण के पश्चात् गायत्री तथा सन्ध्योपासन विधि की शिक्षा तथा शैव संस्कार का प्रयत्न।

५. दसवें वर्ष में शिव की पार्थिव पूजा; विधिवत् शिवरात्रि व्रत रखने के लिये पिता का आग्रह।

६. १४ वें वर्ष में यजुर्वेद कण्ठस्थ : शिवरात्रि का ऐतिहासिक व्रत।

७. चूहे की करतूत और पार्थिव पूजा के अविश्वास के अंकुर—मूर्ति पूजा में अविश्वास।

८. पिता से निश्शंक प्रश्नोत्तर तथा असन्तोष

सब ही शीर्ष सर्वथा भिन्न हैं। इसका अनुवाद या इसे अनुवाद नहीं कहा जा सकता। मूल कापी मानना सर्वथा भूल है। पण्डित लेखराम जी के सन्दर्भ के सारभूत अंश है।

३. भाव और वाक्य विन्यास भी भिन्न हैं :—

जन्म के विषय में थियासोफिस्ट का अनुवाद इस प्रकार है :—

"संवत् १८८१ वि० (तदनुसार १८२८ ई०) में काठियावाड़ प्रदेश मौरवी राज्य के अन्तर्गत एक कस्बे में औदीच्य ब्राह्मण परिवार में मेरा जन्म हुआ। मैं अब दयानन्द सरस्वती के नाम से प्रसिद्ध हूं। आरम्भ से ही मैं अपने पिता जी का नाम तथा उस कस्बे का नाम जिसमें हमारा परिवार रहता है, बताने से उपरत रहा हूं क्योंकि ऐसा करने के लिये मेरे कर्तव्य ने मुझे बाध्य कर रखा है।" इत्यादि।

पं० लेखराम जी के लेख देखिये, स्पष्ट हो जायेगा यह अनुवाद या मूल कुछ भी नहीं हो सकता : –

'संवत् १८८१ विक्रमी—ध्रांगधरा करके गुजरात देश में एक राज्य स्थान है। उसकी सीमा पर मच्छोकाहटा नदी के तट पर एक मोरवी नगर है। वहां संवत् १८८१ विक्रमी तदनुसार सन् १८२३ में मेरा जन्म हुआ मैं औदीच्य ब्राह्मण सामवेदी हूं परन्तु मैंने शुक्ल यजुर्वेद पढ़ा था।

थियासोफिस्ट में—'ध्रांगधरा, गुजरात, मच्छोकाहटा नदी के तट पर सन् १८२४,' बिल्कुल नहीं! यह अनुवाद में छोड़ नहीं जा सकते। और 'काठियावाड़ प्रदेश औदीच्य ब्राह्मण परिवार, मैं अब दयानन्द सरस्वती के नाम से प्रसिद्ध हूं। आरम्भ से मैं अपने पिता जी का नाम तथा उस कस्बे का नाम जिसमें हमारा परिवार रहता है बताने से उपरत कर रहा हूं। क्योंकि ऐसा करने के लिये मेरे कर्तव्य ने मुझे बाध्य कर रखा है।" यह थियासोफिस्ट में कैसे बढ़ा दिये जाते। इस प्रकार अधिकांश भेद ही है। अतः यह मूल और अनुवाद नहीं। इसमें पूना प्रवचन के भी अंश मिले हैं, और स्वतन्त्र ऊहा का भी समावेश है—"सब के सुधार का वह उत्तम कार्य, जिसके लिये मैंने अपने जीवन का अर्पण किया है और मेरा वास्तविक मिशन (उद्देश्य) है, जिसके बदले मैंने अपना जीवन बलिदान करने की कुछ चिन्ता नहीं की और अपनी आयु को भी तुच्छ जाना और जिसके लिये मैंने अपना सब कुछ बलिदान कर देना अपना मन्तव्य समझा है अर्थात् देश का सुधार और धर्म का प्रचार, वह देश यथापूर्व अन्धकार में पड़ा रह जाता" आदि सन्दर्भ न पूना प्रवचन में है न थियासोफिस्ट में।

४. थियासोफिस्ट में है—"autumm was setting in=ओटम का अर्थ :- autam=शरद् (V. S. Apte इंगलिश संस्कृत डिक्शनरी; Autum=The third season of the yea=शरद् ऋतु भार्गव डिक्शनरी एंगलोहिन्दो)

पं० लेखराम जी ने लिखा :—पतझड़ के आरम्भ में—पृष्ठ ३२

श्री स्वामी सत्यानन्द जी ने लिखा :—ग्रीष्म ऋतु के आरम्भ में—पृष्ठ ६३ यदि इस हिन्दी से अंग्रेजी अनुवाद किया जाता तो Close of the cold season या spring season किया जाता न कि autvmn ग्रीष्म का अनुवाद होता in the begining of summer. यह दोनों ही असंगत होते। क्योंकि Spent the four months of cold season= सर्दी के चार मास शिवपुरी में बिताये।

—यो० आ० पृ० ३२६ थियासोफिस्ट जीवनी

शीत के चार मास=कार्तिक, मार्गशीर्ष, पौष, माघ होते हैं। उससे पहले शरद् है दो मास। हेमन्त, शिशिर ४ मास का शीतकाल है।

अतः यह autumn भी यह बता रहा है कि मूल नहीं।

५. थियासोफिस्ट में है :—At Baroda learning from a Benaras woman that a meeting of the most learned scholars was to be held at certain locality—"

पं० लेखराम जी ने certain locality का अर्थ नर्बदा तट किया है। यह अनुवाद नहीं, उनका अपना अभिप्राय कहा जा सकता है। पर—'स्वकथित जीवन चरित' में लेखक का अभिप्राय संगत नहीं। इसे फिर स्वकथित नहीं कहा जा सकता। 'नर्बदा तट' का अनुवाद certain locality भी नहीं हो सकता। अतः यह सब मनः प्रसूत है। प्रामाणिकता थियासोफिस्ट की तो ऋषि प्रेषित और उनके काल में छप कर आ जाने से निभ्रान्ति है। उसे ही प्रमाण माना जा सकता है। उसके मुकाबले में अन्य को नहीं।

अगला वाक्य भी बड़ौदा से बनारस जाने की बात स्पष्ट कर रहा है। स्वामी सच्चिदानन्द जी बनारस के रहने वाले थे। यह देवेन्द्र बाबू, घासी राम जी, आत्म चरित्र सब ने ही माना है। बनारस में ही उन्होंने कहा— From him I learned that their was a number of great Sanyasis and Brahmcharis who resided at Chanod Kanyali. I consiquence I repaired there at once. स्वामी सच्चिदानन्द से पता चला कि बड़े बड़े महात्मा संन्यासी और ब्रह्मचारी चाणोद कन्याली में रहते हैं। परिणामतः मैं उधर ही चल पड़ा। यदि शुद्ध चैतन्य बड़ौदा से चाणोद गये होते और वहां स्वामी सच्चिदानन्द से मिले होते तो नदी तट से जाते हुए छोटे से चाणोद कन्याली को देखते ही तो जाते। फिर वहीं स्वामी सच्चिदानन्द जो को भी ढूंढ ढांढ कर ही पहुंचे होंगे। फिर चाणोद कन्याली से चाणोद कन्याली को एकदम चल दिये। ऐसा अर्थ कैसे किया जा सकता है। अतः यह सब थियासोफिस्ट का अनुवाद नहीं।

६. नर्बदा तट पर तीन वर्ष भ्रमण पृष्ठ ४० पर पं० लेखराम जी लिखते हैं—"नर्बदा तट पर तीन वर्ष यात्रा की और भिन्न भिन्न महात्माओं से सत्संग करता रहा।" (क्रमशः)●

गतांक के आगे—

योगी का आत्म चरित्र एक मनघडन्त कहानी

(लेखक—श्री स्वामी पूर्णानन्द जी सरस्वती-बड़ौत-जिला मेरठ)

"इतिहास पढ़ो भवानी लाल जी और भी रहस्य खुलेंगे। फरुखाबाद और बिजनौर की सीमाएं मिलती हैं। बिठूर बहुत दूर नहीं है।" पता नहीं योगी जी को किस चीज का नशा चढ़ा हुआ है कि आप फरुखाबाद और बिजनौर की सीमाएं मिली हुई बतलाते हैं? योगी जी! फरुखाबाद और बिजनौर के बीच चार जिले आते हैं—एटा, अलीगढ़, बुलन्दशहर और मेरठ। गंगा के उत्तर की ओर जाने से तीन जिले=शाहजहांपुर, बदायूं और मुरादाबाद। इसीलिये तो लोग कहा करते हैं—'शेख रे शेख आपा तो देख।'

यह लेख योगी जी की नियत की हुई कसौटी के प्रसंग में लिखा गया अतः हम योगी जी की कसौटी पर ही उपर्युक्त प्रश्नोत्तरी की परीक्षा करेंगे। पहले अजीमुल्ला खां के प्रश्न को लेते हैं।

"तृतीय सज्जन अजीमुल्ला खां ने कहा—महाराज जी! भारत के व्यापक प्रजा विद्रोह के बारे में आपका क्या अभिमत है?

मेरा अभिमत—मैंने जहां तक देखा है यह भविष्यत् गणविद्रोह का आभास मात्र ही है। यह विद्रोह साम्प्रदायिक नहीं है। इसमें धनी गरीब, कृषक प्रजा, शिक्षित अशिक्षित सब कोई सम्मिलित हैं। यह गण जागरण भारत की नयी जीवनी शक्ति से संजीवित करेगा। धर्म की भित्ति पर यह आन्दोलन जब तक रहेगा इसका भविष्यत् तब तक उज्जवल है। शिशु और नारियों पर जब तक आघात नहीं पहुंचेगा तब तक इसका स्वरूप धार्मिक ही रहेगा। इस गणजागरण में हिन्दू—मुसलमान सम्मिलित हो रहे हैं। दिल्ली के बादशाह और बिठूर के पेशवा—दोनों ही इसमें शामिल हैं। अगर हिन्दू जनता अंग्रेज को हटाकर पेशवा को राजा बनाना चाहे या मुसलमान जनता अंग्रेजों को हटाकर दिल्ली के बादशाह को ही भारत का बादशाह बनाना चाहे तब तो गणजागरण व्यर्थ बन जायेगा। पेशवा और बादशाह में प्रतिद्वन्द्विता ही है।

पंजाब का प्रबल पराक्रान्त सामरिक सिख सम्प्रदाय शायद पेशवा परिचालित इस आन्दोलन में भाग नहीं लेगा, बल्कि इसमें बाधा ही डालेगा। क्योंकि अंग्रेज और अफगान युद्ध में पेशवा ने दूसरे के राज्य हड़पने के लिये अंग्रेज को पांच लाख रुपये ऋण स्वरूप दिये थे। इसके बाद ही अंग्रेज युद्ध में पेशवा ने अंग्रेज पक्ष को एक हजार पदातिक सेना और एक हजार अश्वारोही सैन्य सहायता के लिये भेज दिये थे। पेशवा के इस गर्हित आचरण को शायद सिख लोग भूलेंगे नहीं।

नेपाल के सम्बन्ध में भी बात एक सी ही है। नेपाल की राजधानी के रक्षार्थ नेपाली लोगों ने अंग्रेजों के साथ प्राणपण से युद्ध किया था। भारतीय साधारण प्रजा से उस समय कुछ भी मदद नहीं मिली थी। नेपाली लोगों ने इस बात को भुलाया नहीं है।" (यो० आ० च० पृ० १९०—१९५)

इस सन्दर्भ में अजीमुल्ला खां का प्रश्न और कल्पित दयानन्द का उत्तर अविकल रूप से दे दिया। इस सम्बन्ध में सब से पहली बात तो यह है कि इस प्रश्नोत्तर का माध्यम कौन सी भाषा थी? क्योंकि अजीमुल्ला खां की भाषा तो उर्दू, फारसी, अंग्रेजी और फ्रैञ्च ही थी। और स्वामी जी की भाषा संस्कृत और गुजराती थी। उस समय स्वामी जी को उर्दू और फारसी तो क्या हिन्दी का भी कोई ज्ञान नहीं था। आबू से हरिद्वार तक पहुंचने में उनको १५—२० दिन लगे होंगे। इन १५-२० दिनों की यात्रा में तो उन्होंने हिन्दी नहीं सीख ली थी।

ऋषि दयानन्द जी ने सत्यार्थप्रकाश के द्वितीय प्रकाशन की भूमिका में पहले सत्यार्थ प्रकाश के सम्बन्ध में लिखा है जो कि सन् १८७५ में छपा था—"जिस समय मैंने यह ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश बनाया था, और उससे पूर्व संस्कृत भाषण करने, पठन पाठन में संस्कृत ही बोलने और जन्मभूमि की भाषा गुजराती होने के कारण से मुझको इस भाषा का विशेष परिज्ञान न था।" यह बात स्वामी जी उस समय की कहते हैं जब कि उन्हें २० वर्ष उत्तर प्रदेश और दूसरे हिन्दी भाषाभाषी प्रान्तों में भ्रमण करते हुए हो गये थे। इन २० वर्षों के पश्चात् भी स्वामी जी को हिन्दी का कोई विशेष परिज्ञान नहीं था तो उससे २० वर्ष पूर्व १५-२० दिन की यात्रा में हिन्दी का यह अभ्यास कहां से हो गया था कि वे उन लोगों से राजनीति की गम्भीर समस्याओं पर विचार विनिमय कर सकते? नाना साहब के साथियों और लक्ष्मीबाई आदि में से कोई ऐसा नहीं था कि वे संस्कृत या गुजराती भाषा को समझ सके। अतः प्रश्नोत्तर की बात सर्वथा कपोल कल्पित है।

दूसरी बात यह कि इस तथाकथित सम्मेलन से १५—२० दिन पूर्व स्वामी जो आबू में थे जहां उन्होंने ३ वर्ष योग साधना में बिताये थे, जहा उन्हें गुरुओं के आदेश के अनुसार सांसारिक बातों से सर्वथा अलिप्त रहना पड़ता है था, यहां तक कि पत्र पत्रिकाओं को पढ़ने या पत्र व्यवहार करने और आबू में आने वाले यात्रियों से सर्वथा अलग रहना पड़ता था। इसलिये देश के अन्दर होने वाले किसी भी आन्दोलन का उनको आभास तक भी नहीं था अतः १५—२० दिन की यात्रा से उन्हें देशव्यापी विद्रोह का आभास कहाँ से हो गया? जब कि वे जनता कि भाषा से परिचित भी नहीं थे। यह बात विशेष ध्यान देने योग्य है कि स्वामी जी का यात्रा मार्ग मारवाड़, अजमेर, जयपुर, और अलवर में होकर था, जहां देशी लोगों का राज्य था; वहां की जनता सर्वथा अनपढ़ थी वे अपने राज्य के शासक को ईश्वर के तुल्य समझते थे वे अपनी वर्तमान अवस्था में सन्तुष्ट थे। इसलिये उनके अन्दर विद्रोह की भावना का प्रश्न ही नही उठता।

तीसरी बात यह है कि सन् १८५५ से पहले कोई सगठन बना ही नहीं था तो हिन्दू मुसलमान किस में सम्मिलित हो रहे थे? सन् १८५५ से पहले बिठूर के पेशवा और दिल्ली के बादशाह का परस्पर कोई सम्पर्क नहीं था और न स्वामी जी के पास ऐसे स्रोत ही थे, जिनसे वे राजाओं, बादशाहों और नवाबों तथा जनता के नेताओं की गतिविधियों को जान सकें। सब इतिहास इस बात से सहमत हैं कि सन् १८५७ की क्रान्ति के सूत्रधार और संगठन कर्त्ता नाना साहब और इसके विश्वस्त सलाहकार अजीमुल्ला खां थे। अजीमुल्ली खां सन् १९५४ में नाना साहब के वकील बनकर लंडन गये और वे सन् १९५४ के अन्त में यूरोप के कई देशों मिस्र और टर्की होते हुए भारत लौटे थे। इसलिये १८५५ से पहले अर्थात् स्वामी दयानन्द के कुम्भ में पहुंचने से पहले संगठन का कार्य प्रारम्भ ही नहीं हुआ था तो उसके फल कहां से होते। वास्तव में बात यह है कि दीनबन्धु जी ने वीर सावरकर का इतिहास पढ़ा और उसमें जो घटनाये सन् १८५६-५७ में होनी लिखी थी दीनबन्धु जी ने उन्हें ऋषि दयानन्द के नाम से दो वर्ष पहले ही लिख दी। सावरकर के इतिहास में लिखा है:—Nana Sahib Bahadur Shah of Delhi, Moulvi Ahmadshah, Khan Bahadur khan and other leaders of 1857 felt this relationship, and so gathered round the flag of Swadesh leaving a side there enemity, now so unreasonable and stupid.

In short, the broad features of the Nana Sahib and Azimulah were that the Hindus and the Mohmedons should write and fight shoulder to shoulder for the Independence of their country and that, when freedom was gained the United states of India should be formed under the Indian rulers and princes."

अर्थात् नाना साहब, दिल्ली क बहादुरशाह, मौलवी अहमदशाह, खानबहादुरखां और सन् १८५७ के दूसरे नेताओं ने भारत माता के पुत्र होने के सम्बन्ध को अनुभव किया और इसीलिये वे स्वदेश के झण्डे चारों ओर को एकत्र हो गये और आपस की शत्रुता को छोड दिया क्योंकि अब वह शत्रुता निरर्थक और बुद्धि विरुद्ध ही थी। साराश यह है कि नाना साहब और अजीमुल्ला की नाति का विस्तृत रूप यह था कि हिन्दू और मुसलमानों को आपस में मिल जाना चाहिये और अपने देश की स्वतन्त्रता के लिये कन्धे से कन्धा मिलाना चाहिये, और जब स्वतन्त्रता प्राप्त हो जाए तो भारतीय शासकों और राजाओं के आधीन भारतीय संयुक्त राज्य की स्थापना करनी चाहिये।"

दीनबन्धु जी ने चालाकी से सावरकर के लेख में मौलवी अहमदशाह, खानबहादुर खां और १८५७, को निकाल दिया ताकि उसकी चोरी का पता न चले। मौलवी अहमदशाह और खानबहादुरखां अवध के अंग्रेजी राज्य में मिला लेने के पश्चात् अर्थात् १८५६ के पश्चात् विद्रोही बने थे।

१८५७ की क्रान्ति के लिये गुप्त सगठन समितियों की स्थापना का कार्य १८५५ के अन्त में नानासाहब और अजीमुल्ला ने प्रारम्भ किया। इसका उल्लेख सावरकर ने इस प्रकार से किया है:—

क्रमशः

गतांक से आगे—

एक हजार रुपये का पुरस्कार—

वेद में मांस भक्षण नहीं है

[श्री स्वा० वेदानन्द वेदवागीश, महाविद्यालय गुरुकुल झज्जर (रोहतक)]

उत्पति काल में सब मनुष्यों के बालक पशु समान ही होते हैं। उन्हें अच्छे बुरे का कोई विवेक नहीं होता। अवस्था प्राप्त होने पर विद्याध्ययन हेतु वे आचार्य की भेंट किये जाते हैं। उपाक्रम उपनयन संस्कार होता है। (बलि का अर्थ मारना ही नहीं होता, भेंट करना भी होता है) यज्ञ में बालकों को मारकर हवन करने का कहीं विधान नहीं है। हरिश्चन्द्र का लड़का आचार्य के पास जाने को तैयार नहीं हुवा, शुनः शेप हो गया। उसे अलग-अलग आचार्यों ने शिक्षित किया, और बुरे संस्कार रूप बन्धनों से वह मुक्त हो गया, उसके बन्धन खुल गये। ऐतरेय में उसका बांधा जाना भी लिखा है, और अलग अलग देवताओं के पास दौड़ना भी। भला बंधा हुवा आदमी दौड़ेगा कैसे? फिर देवताओं के पास जाने से उसके बन्धन क्रमशः खुले हैं। इस से स्पष्ट है कि यहां बालक को जीवन से अलग करके उसकी बलि देने का कोई वर्णन नहीं है। नटखट बालकों को ठीक ढंग पर लाने के लिये माता पिता अनेक प्रकार के उसे डर दिखाते हैं, तलवार भी दिखाई जा सकती है। मारने का अर्थ जीवन से वियुक्त करना ही नहीं है, ताडना देना, पीटना भी है, यही रूपक शुनः शेप के साथ ऐतरेय ब्राह्मण में प्रदर्शित है। ऐतरेय ब्राह्मण ऋग्वेद का व्याख्यान ग्रन्थ है और व्याख्या करने में व्याख्याकार की शैली अलग अलग होती है, उसने कथानक का आश्रय भी लिया जाता है। व्याख्या के इस प्रसंग में मूल वेद उठाकर देखिये हरिश्चन्द्र, रोहित आदि नाम नहीं हैं। अतः कथानक काल्पनिक है। ऋग्वेद ५-२-७ में शुनः शेप न आकर शुनश्चिच्छेपं आया है। शुनः और शेप के बीच में चित् शब्द डाला गया है। इससे और भी स्पष्ट हो जाता है कि शुनःशेप व्यक्ति विशेष नहीं है। और निरुक्त के अनुसार जैसा यौगिक अर्थ ऋषि दयानन्द ने दर्शाया है, ठीक है। ऐसे पाप बन्धन प्रायः सभी आदमियों के हैं और वरुण आदि अध्यापक ही खोलते हैं (जैसा कि मन्त्र में स्पष्ट है—

इमं मे वरुण सुधि हवमद्या च मृडय त्वामवस्युराके हे श्रेष्ठ अध्यापक जी। मेरा पाठ सुन लीजिये, और मुझे आज सुखी कर दीजिये, मैं आप से रक्षा चाहता हूं (प्रतिदिन विद्यार्थी का पाठ सुनना ही उसकी रक्षा है) अतः श्री सुरेन्द्रकुमार शर्मा की उक्तियां उचित नहीं हैं। जब हम आरम्भ में ही अहिंसा का प्रतिपादन वेद मन्त्रों द्वारा कर आये तब उससे विपरीत मन्त्रों में उल्लेख कैसे सम्भव है?

वेद में हिंसा प्रदर्शित करने के लिये शर्मा जी ने ऋग्वेद १०-८६-१४ मन्त्र उपस्थित किया है। इसमें आया उक्षा शब्द का अर्थ उन्होंने बैल ही ले लिया, या उन जैसों ने लिया, ठीक है जैसी समझ वा अध्ययन गति थी, वैसा किया, और अपनी इस अल्प मति के सहारे दूसरों की श्रद्धा उनके ग्रन्थों में से हटाना चाहते हैं, यह कैसे सम्भव है? एक मन्त्र में उक्षा दाधार पृथिवीम् उक्षा ने पृथिवी को धारण किया यदि यहां उक्षा का अर्थ बैल लें, तो क्या वैज्ञानिक अर्थ कहलायेगा। अतः अर्थ की योग्यता देखकर यहां उक्षा का अर्थ सूर्य करना होगा। सूर्य पृथिवी को अपने आकर्षण से धारण करता है और उक्ष (सेचने) वृष्टि द्वारा सिंचन करने से भी धारण करता है। इस प्रकार १०-८६-१४ में आया उक्षा शब्द रसवाली ऐसी औषधियों का वाचक है। १५, २० रसवाली ऐसी औषधियां हैं, जो हृदय वा शरीर की रग रग को तृप्त करने वाली हैं पीछे से इस सूक्त में वीरता का वर्णन चला आता है। और यह बड़ी उपहास्यद बात है कि एक व्यक्ति एक बार में १५-२० बैलों का मांस खा जाये। क्योंकि यहां मैं और साकम् शब्द आये हैं जो एक साथ एक व्यक्ति के आहार का निर्देश करते हैं। दूसरी इस प्रसंग में यह भी कह देना चाहते हैं कि मानव सृष्टि में दो प्रकार के मनुष्य हैं, वेद ने श्रेष्ठ पुरुषों को आर्य और उनसे उलटे चलने वालों को दस्यु नाम दिया है। देव और राक्षस इन दो भेदों से भी उन्हें पुकारा जा सकता है। ये सब जानते हैं कि रक्तपा, मांसादाः, पिशाचाः, कव्यादाः, राक्षसाः ये पर्यायवाची शब्द हैं, जिनका अर्थ है मांस खाने वाले, ये सब राक्षस हैं, जो जो मांस भक्षण में प्राणी पर दया नहीं करते। भला राक्षसों को ईश्वर कैसे अच्छा मान सकता है, और मांस खाने का विचार कैसे कर सकता है? इनके लिये तो (अथर्व० ८-४-२) मन्त्र में आया है ब्रह्मद्विषे क्रव्यादे घोरचक्षसे द्वेषो धत्त मनवायं किमीदिने वेद ब्रह्म, ब्राह्मण और ब्रह्मचारी से द्वेष करने वाले व्यक्ति के लिये, मांस भक्षण करने वाले के लिये, क्रूर दृष्टि वाले के लिये और कमीने के लिये अप्रीति धारण करो। जब वेद ऐसा कहता है तो वह मांस भक्षण का विधान कैसे कर सकता है।

ऋ० १०-८९-१४ मन्त्र भी अल्प बुद्धि के कारण गोहत्या में प्रस्तुत किया है, इसमें "शसने न गावः" पद देख कर अनर्थ कर दिया, क्योंकि निरुक्त का गहरा मनन नहीं है। सर्वेपि आदित्य रश्मयो गावः उच्यन्ते आदित्य सूर्य की सभी रश्मि गावः कही जाती हैं। सूर्य के किरण जैसे मेघ का हनन करते हैं, अथवा सन्ताप देते हैं, वैसे॥ (देखिये निरुक्त २-२-६), ऋ० ५-२९-७ में कहीं हिंसा का वर्णन नहीं है (देखें महर्षि दयानन्द भाष्य) मन्त्र का अर्थ इस प्रकार है अग्नि और सूर्य शीघ्र ही जगत् के मध्य में तीन भुवनों को प्रकाशित करता हुआ, तडागों का पान करता है। और मेघ का नाश करने के लिये वर्षाए गये ऐश्वर्य को पचाता है। वैसे मित्र, बुद्धि वा कर्म से मित्र के लिये सहित मनुष्य के बड़े पशुओं के तीन सैकड़ों की रक्षा करे। इस मन्त्र में "महिषाः और पचति" शब्दों को देख कर याद आ गई। और उसका पकाना भी, और उनकी हत्या करना पता नहीं, किस शब्द से निकाल लिया। वैदिक शब्दों के अर्थ लौकिक अर्थों के समान नहीं होते, यह शर्मा जी व उन जैसी बुद्धि रखने वालों को सोच लेना चाहिये। यदि ऐसा ही होता तो, यास्क ऋषि को निघंटु और निरुक्त बनाने की आवश्यकता न पड़ती। अपामुपस्थे महिषा अगृभ्णत (देखिये निरुक्त ७-७-२६) महिषा का अर्थ महान्तः महान् किया है। महति पूज्यति स्वपुरुषार्थेनेति महिषः महान् राजा वा (देखिये उणादि० महर्षि दयानन्द) इस की पुष्टि में देखिये निरुक्त १३-२-२६ और देखिये दिये गये ८-१२-८ वें मन्त्र में प्रयुक्त 'महिषा' का जयदेव जी विद्यालंकार ने महान् ही किया है। जब वेदों में मांस भक्षण का विधान ही नहीं है, तब गीता अ० ३ श्लोक १३ सर्वथा शुद्ध श्लोक हो जाता है। बाल्मीकि रामायण में अयोध्या कांड (सर्ग १०३ श्लोक ३०) श्लोक प्रक्षिप्त हैं। वे लोग वेद के महान् पंडित थे। वेद के विपरीत वे आचारण नहीं करते थे। माता सीता जी भी ऐसी ही थीं। माँस भोजी ही धार्मिक भी बनना चाहते हैं और मांस छोडना भी नहीं चाहते, ऐसे लोगों की ये लीलाएं हैं, जिन्होंने अवसर पाकर ऐसे श्लोक मिला दिये। जैसे लोग आज भी कुछ का कुछ कर रहे हैं।

यजुर्वेद अध्याय २१ मन्त्र ४३ में भी जो श्री शर्मा जी ने कथन किया है, वहां भी ऐसी कोई बात नहीं है, (देखिये महर्षि दयानन्द भाष्य) यहां किसी के अंग काटने का वर्णन नहीं है, अपितु चिकित्सा द्वारा अंगों से रोग निकालना लिखा है। पीलिया के रोगी को सब वस्तु जैसे पीली ही दीखती हैं, वैसे ही श्री सुरेन्द्र शर्मा को भी मांस भक्षण वा मांस को आहुतियां ही दीखती हैं। अपनी इस बुरी आदत में महर्षि दयानन्द को भी घसीटना चाहा है। मन्त्र उपस्थित किया है यजु० अ० १९ मं० २०। ऋषिदयानन्द के शब्द इस प्रकार हैं जो इस संसार में बहुत पशु वाला होकर होम करके हुत शेष का भोक्ता हैं, वेदवित् और सत्य क्रिया का कर्त्ता मनुष्य होवे, सो प्रशंसा को प्राप्त होता है। संस्कृत के शब्द इस प्रकार हैं योत्र बहुपशु हविर्भुक, वेदवित् सत्क्रियो मनुष्यो भवेत्, स प्रशंसामाप्नोति। यहां पशुओं का यज्ञ में डालना कहां लिखा है। यजमान बहुत पशु रखने वाला हो, ऐसा लिखा है। पशु वाला होगा तभी घृत आदि जो पदार्थ हवन में डाले जाते हैं, उपलब्ध कर सकेगा। हवन मन्त्रों में आता भी है घृतं तीव्रं जुहोतन घी को खूब तपा कर आहुति दो।

इसी प्रसंग में सत्यार्थप्रकाश का उल्लेख किया गया है, जिस सत्यार्थ प्रकाश से शर्मा जी ने वाक्यांश उद्धृत किये हैं और हवाला दिया है, वह सन् १८५७ में सर्व प्रथम छपा था वह सत्यार्थ प्रकाश अब उपलब्ध नहीं है और श्री शर्मा जी को भी नहीं मिला है, उन्हें ऋषि दयानन्द जी के विरोधी किसी व्यक्ति द्वारा लिखित "भावचित्रावलि" मिली है, उसके २८ पृष्ठ पर लिखे पाठ को श्री शर्मा जी ने उद्धृत किया है। अतः हम यह नहीं कह सकते कि उस सत्यार्थ प्रकाश में किस प्रकार की रचना है, हो सकता है भावचित्रावलि का लेखक भी श्री शर्मा जी के समान ही साधारण हिन्दी भी न समझ सका हो अथवा छपते छपते किसी मांस भक्षी ने अपनी लीला कर दी हो। दूसरी बात यह है कि सत्यार्थ प्रकाश का दूसरा संस्करण सन् १८८४ में छपा उसकी भूमिका में ऋषि दयानन्द ने स्पष्ट लिखा है हां जो छपने में कहीं कहीं भूल रही थी, वह निकाल, शोध कर ठीक करदी गई है। (क्रमशः)

आर्यसमाज स्थापना शताब्दी—

कुछ विचारणीय सुझाव

(श्री सुरेन्द्रसिंह कादियान w/z 79 राजा पार्क, शकूर बस्ती देहली)

गरीबी अनुकरणीय नहीं मानी जा सकती लेकिन उस गरीबी में हमारी जो साफ, पवित्र नीयत थी, संकल्प था, काम करने की लग्न व दृढ़ता थी उसे अमीरी यदि हड़पना चाहे तो हमारा गरीब रहना अच्छा है। भव्य भवनों का धर्म प्रचार से सम्बन्ध हो सकता है धर्म से नहीं, भौतिकता से सम्बन्ध हो सकता है आध्यात्मिकता से नहीं, दिखावे से सम्बन्ध हो सकता है, वास्तविकता से नहीं। कैसी विड़म्बना है कि कुछ भवनों पर आर्यसमाज मन्दिरों का सूचना-पट लगा है लेकिन न वहाँ प्रवचन होते हैं और न ही उनका कोई पुस्तकालय है,कभी कभी तो साल का साल पूरा निकल जाता है लेकिन वहाँ झाड़ू लगाने वाला नहीं पहुंचता। यह कपोल-कल्पित कथा नहीं है, हकीकत है, जिसे विश्वास न हो मेरे पास आएं। एक समाज ने लगभग १½ वर्ष पूर्व पुस्तकालय के लिए चन्दा एकत्र किया लेकिन आज तक उस समाज में एक भी पुस्तक नहीं रखा गया। ऐसी बात नहीं कि इस समाज के पास स्थानाभाव है, सच्चाई यह है कि इस समाज ने दुकानें किराये पर चढ़ा रखी हैं लेकिन पुस्तकालय के लिए भवन नहीं है और न ही शायद बनेगा। प्रवचन नित्य-प्रति नहीं हो सकते पुस्तकालय हो तो सदस्यों का सम्पर्क समाज से बना रहता है। विधर्मी भी वहां आ सकते हैं लेकिन जब कुछ होगा ही नहीं तो कौन आयेगा—समाज का विधान आर्यसमाज में नहीं है इसलिये इस कमी को पुस्तकालय दूर कर सकता है। ये पुस्तकालय रात्रि ८ बजे तक तो खुले रहने ही चाहिएं। इन पुस्तकालयों में आर्ष-साहित्य, विभिन्न आर्य पत्र-पत्रिकाएँ अवश्य होनी चाहिए,अन्य प्रकार का उच्चकोटि का साहित्य भी रखा जा सकता है।

व्यापार-वृत्ति पर रोक लगे

आर्यसमाज मन्दिर अपने सामर्थ्य अनुसार विशाल बन सकते हैं लेकिन उनका यह वैभव व्यापार क्यों करे। मन्दिर के भवनों को दुकानों में परिवर्तित करने पर रोक लगानी चाहिए,जनता का पैसा हक-हलाल का है लूट का नहीं कि उसे व्यापार या कमाई के कीचड़ में फेंका जाए। यह शिकायत आम है कि इस दुकानदारी के बिना आर्यसमाज का काम कैसे चलेगा—यदि ऐसी बात है तो मन्दिर को बन्द कर देना अच्छा है क्योंकि मन्दिर का अर्थ दुकानदारी करना नहीं है। दुकानदारी के बिना काम न चलने का सीधा अर्थ है आर्यसमाज का प्रभाव क्षीण हो चुका है, उसके पदाधिकारी निष्क्रिय हैं, उसके सदस्य स्वार्थभोगी हैं तब ऐसे निर्जीव समाज मन्दिर को जीवित रखने का ढोंग क्यों रचाया जावे? यह दुकानदारी, यह वैभव लोभी-स्वार्थी व्यक्तियों को आकर्षित करता है जिससे समाज का उतना भला नहीं होता जितना नुकसान हो जाता है। आपस की खींचतान व जूत-पजार से समाज की प्रतिष्ठा गिरती है। अब तक यह महामारी भयंकर रूप धारण कर चुकी है, सम्बन्धित पदाधिकारीयों को चाहिए कि इसकी पुनरावृत्ति भविष्य में न होने दें। कुछ आर्यसमाजों में पाठशालाएँ खोली जाती हैं— इसका पृथक् प्रबन्ध होना चाहिए। प्रत्येक आर्यसमाज में कम से कम एक कमरा अतिथियों के लिए सुरक्षित होना चाहिए ताकि संन्यासी-महात्मा आदि अपनी प्रचार-यात्रा के दौरान उसमें निवास कर सकें। प्रायः देखा जाता है कि समाजों के पास दुकानें तो हैं अतिथि-गृह नहीं हैं— इससे विवश होकर संन्यासियों को घरों में रात्रि- व्यतीत करनी पड़ती है जो कि उनकी प्रकृति-प्रवृत्ति के अनुकूल नहीं है।

तीर्थ यात्रायें बन्द हों

सनातनधर्मियों की बीमारी अब आर्यसमाजियों में भी आ घुसी है सुधार ने आत्मसमर्पण कर दिया है। टंकारा और अजमेर तो तीर्थ स्थल बन चुके हैं, अब और न जाने कहां कहां बनेंगे। इन तीर्थों पर स्पेशल ट्रेनें व मोटरें चलने लगी हैं। भावुक जनता को मूर्ख बनाने व ठगने के लिए आर्यसमाज में भी ये पाखण्डी आ घुसे हैं। अब ऐसी ही एक महायात्रा मारीशस की होने जा रही है। दयानन्द के इन भक्तों से कोई यह तो कहे कि सैकड़ों रुपयों को स्वाहा करने से अच्छा तो यह है कि इन रुपयों को वैदिक साहित्य खरीद कर मारीशसवासियों को उपहार भेजें देखते हैं कितने तैयार होते हैं। विदेश यात्रा को चस्क ने लोगों को दयानन्द का भक्त बना दिया है कुछ अतिरिक्त सुविधा दयानन्द के नाम पर मिल जाय तो कौन घाटे का सौदा रहा। मारीशस में होने वाला आर्य सम्मेलन स्वागत योग्य माना जा सकता है लेकिन इसे महज विराट् प्रदर्शन का रूप देना ठीक नहीं। आर्यसमाज का प्रभाव क्षीण होता जा रहा है, फिजूलखर्ची का मार्ग छोड़ कर हमें मितव्ययी बनना चाहिए। भव्य समारोहों से दो-चार दिन आर्यसमाज की चर्चा चलती है लेकिन अन्य आवश्यक कार्य ठप्प पड़ जाते हैं। आर्यसमाज यदि धार्मिक संघटन है, वैदिक धर्म का प्रचारक है तो उसे गम्भीरता से अपना मार्ग तय करना चाहिए। लम्बे-चौड़े भाषणों से कुछ नही बनता उपदेश धर्म के देना और अदालतों में मुकदमेबाजी करना-ये दोनों बातें एक दूसरे मे विपरीत है। संसार हमारे भाषणों से नही हमारे आचरण से आर्यसमाज की शक्ति को आंकेगा। धार्मिक मंच से भाषण देने का अधिकार निर्लोभी, निःस्वार्थी ज्ञानी, महात्मा, संन्यासियों को है नेताओं को नहीं। भाषण शैली और तिकड़मबाजी के बल पर ये स्वयंभू नेता अपना प्रभुत्व स्थापित किये हुए हैं। देर सवेर जनता जागेगी- अवश्य जागेगी-हम नहीं जानते कि इन मधुर भाषी वक्ताओं का क्या भविष्य होगा? तीर्थयात्राए बन्द हों, जोशीले भाषण बन्द हों, फिजूलखर्ची बन्द, दिखावा बन्द हो और जनता के धन पर जो खुली डकैती पड़ रही है वह बन्द हो तभी धर्म का मार्ग प्रशस्त होगा।

साहित्य-प्रकाशन प्रणाली

अधिकांशतः आर्यसमाजी ग्रंथों का प्रकाशन सार्वदेशिक, प्रतिनिधि सभाएं या कुछ प्रकाशन-संस्थाएं करती है। लेकिन आज स्थिति यह है कि ये सभी संघटन पुस्तिकाएं प्रकाशित करके ही संतोष की साँस लेते हैं। होना यह चाहिए कि वृहद्-ग्रंथों पर ही इन बड़े संघटनों को केन्द्रित करना चाहिए। ऊँचे-ऊँचे भवनों में कुछ नहीं धरा,मूल प्रयोजन है ज्ञान की श्रीवृद्धि। आर्यसमाज का लक्ष्य जायदाद बनाना नहीं धर्म प्रचार है। दो चार आर्यसमाजें मिलकर भी यह कार्य सम्पन्न कर सकती है। नीयत साफ हो, पवित्र संकल्प हो तो बड़ा काम भी छोटा दिखने लगता है। पं० लेखराम विरचित महर्षि दयानन्द जीवनी' को प्रकाशित करके आर्यसमाज नया बाँस ने एक अनुपम उदाहरण आर्यसमाज के समक्ष रखा है। जिस कार्य को हाथ में लेते हुए प्रतिनिधि सभाएं व सार्वदेशिक डरती थी उसे इस समाज ने पूरा करके अत्यंत प्रशंसनीय कार्य किया है। देश की आर्यसमाजें इस ठोस उपलब्धि से शिक्षा ग्रहण करें, वृहद् ग्रंथों का प्रकाशन न सही छोटी पुस्तकों का भार उन्हें अपने कंधों पर लेना चाहिए। एक ही नगर में कई कई आर्यसमाजें हैं, सभी को आपस में मिलकर यह मार्ग तय करना चाहिए। अलग अलग आर्यसमाजों का तात्पर्य यह नहीं है कि वे एक दूसरे से भिन्न हैं-उन्हें एकता बना कर कार्य करना चाहिए यह प्रकाशन लाभ की दृष्टि से नहीं प्रचार की दृष्टि से होना चाहिए। एक ही पुस्तिका की प्रतियों का तबादला दूसरी समाजों द्वारा प्रकाशित पुस्तिकाओं से करते रहना चाहिए ताकि भिन्न भिन्न लेखकों व विषयों की पुस्तकें सभी समाजों की शोभा बढ़ा सकें। उन पुस्तिकाओं का वितरण यज्ञ समाप्ति पर होते रहना चाहिए। देश में इन पुस्तिकाओं की एक बाढ़-सी आ जानी चाहिए। इससे वैदिक धर्म का प्रभाव क्षेत्र बढ़ेगा, समाजों में एकता व मैत्री स्थापित होगी, लेखकों को अपनी लेखनी का सदुपयोग करने का अवसर मिलेगा, नये लेखक भी इस से पैदा होंगे। नया खून धर्म को ढकोसला समझता है, इस चुनौती का सामना आर्यसमाज तभी कर सकता है जब उसके पास विपुल एवं ठोस साहित्य का भण्डार सुरक्षित हो। साम्यवादी क्रान्ति तभी सफल होती है जब घर-घर से बन्दूकें आग उगलती हैं—वैदिक धर्म की विजय सुनिश्चित है यदि आर्यसमाजियों का एक-एक घर वैदिक साहित्य का भण्डार बन जावे।

यह अत्यंत खेद का विषय है कि गत सौ वर्षों में आर्य-समाज अपना कोई दैनिक-पत्र नहीं निकाल सका है। 'वीर अर्जुन' इस कमी को दूर करता था लेकिन आज वह भी तेवर बदल रहा है। आर्यसमाज का अपना दैनिक होना चाहिए—पं० रघुवीर सिंह शास्त्री, श्री प्रकाशवीर शास्त्री, प्रो० रामसिंह, श्री सिद्धान्ती जी

(शेष पृष्ठ ११ पर)

आकाशवाणी से प्रसारित—

इनसे बचिए—अन्ध विश्वास वा रूढ़िवादिता

(लेखिका :—कुमारी सुशीला आर्या एम० ए० प्रवक्ता,
गान्धी कालेज, चरखी दादरी)

धनराज चौधरी की छः साल की बच्ची के कल से लापता होने की चर्चा ने सारे गांव में सनसनी सी फैलादी। आज लड़की को तो खोज निकाला गया लेकिन उसके कानों से सोने की बालियां और हाथ पैरों से चान्दी के कड़े गायब थे। हो न हो इन्हीं गहनों के कारण यह सारी मुसीबत खड़ी हुई। दादी मां के कानों में जब इस बात की भनक पड़ी तो उसने आगे से नादान बालकों को गहने न पहनाने की कसम उठाई। इसमें क्या सन्देह है कि गहने सिंगार भी हैं जंजाल भी। छोटे बच्चों के लिए ही नही बड़ों के लिए भी ये बहुत बार संकट को बुलावा देने वाले बन जाते हैं। फिर एक दो को छोड़ अधिक गहने पहनना आज के जमाने में रूढिवाद ही कहा जाएगा। वह समय बीत चुका जब लोग अपनी पूरी जमा पूंजी को सोने चान्दी के रूप में शरीर पर लादे फिरते थे। तब बात दूसरी थी आज दशा बदल चुकी है। अब तो गहने फैशन या सिंगार से परे फिजूल खर्ची में गिने जाते हैं। क्योंकि गहनों के घिसने से हमारा धन कुछ न कुछ घटता ही है जबकि इसी धन को बैंक में जमा कराने से देश के उद्योग धन्धों की बढ़ोत्तरी भी होती है और हमारा पैसा सवाया ड्योढा दुगुना तक हो जाता है इस प्रकार एक पंथ दो काज।

ऐसे ही कई रीतियां समय फेर बदल के साथ ऐसी रूढियां बन चुकी हैं जिनसे चिपके रहने से कोई लाभ नहीं, किसी हद तक हानि भले ही हो रूढिवादिता चाहे घरेलू जीवन में हो या खेती बाड़ी में उद्योग धन्धों में हो या व्यापार में देश और समाज के लिए अभिशाप ही है। पुरानी लकीरों को पीटते रहने से मनुष्य जिन्दगी की दौड़ में बहुत कुछ पिछड़ जाता हैं। समझदारी इसी में है कि बदलते जमाने के साथ हम अपना रहन सहन रीति रिवाज संस्कार परम्परा बदल डालें। अब आप देखिए, समय पलट रहा है और हम पुरानी मान्यताएं लिए बैठे रहें तो हमारा निर्वाह कैसे होगा। उदाहरण के लिए देहाती जीवन में एक कहावत है— धरती मेंह से मां बेटों से कभी तृप्त नहीं होती। बीस पचास साल पहले इस कहावत में सच्चाई थी किन्तु परिवार नियोजन की मांग के इस जमाने में हम दो या तीन बच्चे ही घर में अच्छे मानते हैं चाहे वे लड़के हों या लड़की या मिले जुले। हम दो हमारे दो का आदर्श सामने रख कर ही पति पत्नी न केवल अपना सुखी परिवार बसा सकते हैं साथ ही देश की बढती आबादी की समस्या को सुलझाने में भी सहयोग दे सकते हैं। दूधों न्हाओ पूतों फलो का आशीर्वाद पुराना हो चुका है। आज का आशीर्वाद होना चाहिए— छोटा परिवार सुखी परिवार। घर में छः सात आठ बच्चे पैदा करके उसे भगवान् की देन कह कर टाल देना अपने को झुठलाना होगा। भगवान् ने हमें बुद्धि पहले दी है सन्तान बाद में, हमें चाहिए कि रूढिवादिता की लपेट में न आकर समझ से काम लें।

रूढिवादिता से हमारा मतलब पुराने और हानिकारक रीति रिवाजों से है वैसे तो नया नौ दिन पुराना सौ दिन। अच्छी बातें पुरानी भी मानने में कोई बुराई नहीं। हम अपने परिवारों में ब्याह शादी, तीज त्यौहार पार्टी भोज मेल जोड़, मुंडन नामकरण सब करें ध्यान रखने की बात सिरफ इतनी है कि ऐसे किसी भी मौके पर चादर से बाहर पैर न पसारें। देखा देखी की धुन में जरूरत से ज्यादा खर्च करके हमें पीछे पछताना पड़े तो यह रूढिवाद कहलाएगा। चाहे शादी का मौका हो या गमी का ब्याह की चहल पहल हो या बड़े बूढ़े के स्वर्ग वास पर होने वाला काज, संभल कर चलने से लाभ ही लाभ है। सोचने की बात है कि कर्जा लेकर अगर हमने किसी ब्याह में ज्यादा रोशनी चमक दमक चका-चौंध का खेल दिखा दिया तो इस घड़ी भर की खुशी से क्या पल्ले पड़ा? एक बात और भी चाहे आपका खजाना भरा हो पर देश में जिन चीजों की कमी है—जैसे बिजली, चीनी—या जो भी समय पर हो—उसका खर्च कम ही करना चाहिए। फालतू खर्चों को कम करना इसलिए भी जरुरी है कि आज हमारी दूसरी आवश्यकताएं बहुत बढ़ नई हैं बच्चों की महंगी पढ़ाई, कपड़े, घर की सजावट के लिए फरनीचर दूसरे साज सामान घड़ी रेडियो, आदि। फिर संसार का रंग ढंग देखते हुए अपनी कमाई में से कुछ बचत करनी भी जरूरी है क्योंकि पहले समय की तरह आज सगे सम्बन्धी भी संकट पड़ने पर एक दूसरे की सहायता करते कुछ कम ही नजर आते हैं। यह नहीं आपस में प्रेम भाव नहीं रहा बल्कि महंगाई बढ़ने और रहन सहन के बदलते तौर—तरीकों के कारण ही किसी का अपना गुजारा ही मुश्किल से होता है।

इस रूढ़िवादिता के अतिरिक्त ग्राम्य जीवन की उन्नति का रास्ता रोकने वाली कुछ ऐसी मान्यताए भी आय दिन हमारे सामने आती रहती हैं जिनसे रत्ती भर भी लाभ की गुंजायश नहीं उलटे ये हमें बुरी तरह से उलझाए हुए है फिर भी अन्धविश्वास के कारण हम उन्हें मानते चले आ रहे हैं। शिक्षा के प्रचार से रूढ़िवाद और अन्धविश्वास का प्रभाव कुछ फीका जरूर हुआ है फिरभी बहुतों को इन्होंने जकड़ रखा है। नजर लगने की बात लीजिए। क्या मनुष्य क्या पशु कोई भी इस अभागी नजर से बच नहीं सकता। हमारी बड़ी बुढ़ियां तो यहां तक कहेंगी अरे बेटी क्या पूछती हो, नजर ता मरी पत्थर को भी फाड़ देती है। छोटे फूल से बच्चे और दुधारू पशु पर नजर का प्रभाव सबसे बढ़कर माना जाता है। इससे बचाने के लिए बच्चों को काला टीका लगाना या काला धागा बान्धना बात यहीं तक रहती तो ठीक था लेकिन जब ठंड के मारे नाक से पानी बह रहा हो या बच्चे को सूखा रोग ने घेर लिया हो फिर भी यह मान बैठना हो न हो नजर हो गयी है। कम्बख्त हंसता भी तो हुमक हुमक कर है। ऐसी नादानी की बातें अन्धविश्वास का जीता जागता नमूना है। इसी तरह गाय भैंस के दूध कम होने या हट जाने का सेहरा भी नजर के सिर बन्धता है और नतीजा यही कि बीमारी का इलाज कराने की सोची नहीं और नजर का असर हटाने के लिए आग में मिर्चें फेंकते रहे। या फिर टोने टोटके किए गंडे ताबीज बान्ध दिए और बीमारी कभी कभी जान लेवा बन गई। हमारी जच्चा बहनों को भी बहुत बार इन अन्धविश्वासों का शिकार होना पड़ता है। कुछ गांवों में इन काम के लिए सेंटर खुले हैं और दाइयों का अच्छा प्रबन्ध है लेकिन हर जगह तो ऐसा नहीं यही कारण है कि ये अन्धविश्वास वहां खूब खुल कर खेलते हैं। जच्चा की किसी भी तकलीफ को भूत प्रेत चुड़ैल छाया ऊपरली माता मसानी जाने किस किस का फिसाद कहा जाता है। और नहीं तो किसी को झाड़ फूंक के लिए बुला लिया। जच्चा दूसरे ब्याह से हो तो सौत के नाम का गहना धर दिया या किसी देवी देवता का 'सीधा' मिनस दिया। हमें भूलना न होगा कि बीमारी का देवी देवताओं से क्या सम्बन्ध?

शुभ अशुभ का चक्कर भी हमारे देहाती जीवन में काफी जोर शोर से चलता है। बच्चे की जन्मपत्री बनवाई दुर्भाग्य से उसके ग्रह अशुभ पाए गए। कई बार तो यहां तक नौबत आती है कि बालक को सारे घर पर भार बता दिया जाता है और इस ग्रह को टालने के लिए कलेजे के टुकड़े की बलि तक दे देने की घटनाएँ आज भी पढ़ने सुनने को मिलती हैं। और भी कुछ दिन किसी खास काम के लिए अशुभ हैं। कभी सिर नहीं धोना कभी कपड़े नहीं धोने भला सफाई के लिये भी कोई समय बुरा हो सकता है। हमसे पूछें तो जिस दिन शरीर या घर की सफाई कर ली जाए उससे बढ़ कर शुभ दिन भला कौन सा होगा। फिर एक बात और भी है—कर लिया सो काम भज लिया सो राम। यह नहीं कि शनिवार को यात्रा नहीं करनी चाहे नौकरी के लिए इन्टरव्यू है, या खेती के लिए सामान लेने जाना है। बहू को इस दिन विदा नहीं कराना बेटी को फलां दिन नहीं भेजना। कोई खास तारा डूब गया है इसलिए ब्याह शादी पर रोक लग गई ऐसे एक नहीं बहुत से अन्धविश्वास हैं। इनमें से एक 'छींक' भी है जिसकी अपनी न्यारी महिमा है इसका विधि विधान काफी लम्बा चौड़ा है—

(शेष पृष्ठ ११ पर)

आर्यसमाज झज्जर रोड, रोहतक का २६ वां वार्षिक उत्सव

२७, २८, २९ अप्रैल १९७३ को गत वर्षों की भांति बड़ी धूम-धाम से मनाया जा रहा है। जिसमें आर्यजगत् के उच्च कोटि के विद्वान् तथा साधु संन्यासी एवं भजनोपदेशक पधार रहे हैं। उत्सव से पूर्व वेदोपदेश का कार्य क्रम २३ अप्रैल से २६ अप्रैल तक रात्री को ८ से १० बजे तक हुआ करेगा। उत्सव में आमन्त्रित महानुभाव श्री स्वामी ओमानन्द जी सरस्वती, श्री स्वामी रामेश्वरानन्द जी सरस्वती, श्री जगदेवसिंह जी सिद्धान्ती, श्री प. शिवकुमार जी शास्त्री एम०पी०, श्री पं. समरसिंह वेदालंकार, प. निरंजनदेव जी वेदप्रचार अधिष्ठाता, श्री प. बलराज जी संगीताचार्य आर्यप्रतिनिधि सभा पंजाब, श्री मु शीलाल, धर्मपाल भजनोपदेशक, श्री पं. भगतराम जी, श्री धर्मेन्द्र शास्त्री डी०ए०वी० स्कूल, पं० सत्यप्रिय जी ब्राह्म महाविद्यालय हिसार आदि।

नोट:—२७-४-७३ को दो बजे (बाद दोपहर) नगर कीर्तन किया जावेगा।

२३ अप्रैल से कार्यक्रम:—प्रातः ७ बजे से ८ बजे तक भजन प्रवचन रात्रि ८ बजे से ९ बजे तक भजन। ९ बजे से १० बजे तक वेदोपदेश प्रतिदिन हुआ करेगा।

श्यामदास प्रधान—निवेदकः—जयपाल आर्यमन्त्री

आर्यसमाज सरायतरीन-हयातनगर का निर्वाचन

२५-३-७३ को निम्न प्रकार सम्पन्न हुआ—

प्रधान—श्री म० केशवदेव जी आर्य। कोषाध्यक्ष—श्री डा० बुद्धिप्रकाश जी आर्य। पुस्तकाध्यक्ष - म० प्यारे लाल जी आर्य।

—हरिश्चन्द आर्य

आर्यसमाज गुरुदासपुर का प्रस्ताव

८-४-७३ रविवार के सत्संग में सर्व सम्मति से पास हुआ कि यदि इस प्रकार की कोई पुस्तक प्रकाशित की गई जिसमें महर्षि दयानन्द के बलिदान के महत्व को कम करने के लिए षड्यन्त्र रचाया गया जो कि ऐतिहासिक तथ्यों के विरुद्ध हो तो आर्यसमाज उसे सहन न करेगा। और उसके विरुद्ध एक बड़ा आन्दोलन किया जायेगा।

— मूलचन्द मन्त्री

आर्यसमाज कोसली का निर्वाचन

प्रधान—श्री इन्द्रसिंह जी सूबेदार। मन्त्री—श्री श्यानारायण आर्य। कोषाध्यक्ष—रवीन्द्र कुमार।

—मन्त्री श्योनारायण आर्य

(पृष्ठ ९ का शेष)

आदि योग्य विचारशील आर्यनेता यदि प्रयत्न करें तो यह कार्य कठिन होने पर भी परिश्रम-साध्य है। इस से आर्य लेखकों को भी रोजगार मिल सकेगा और वैदिक धर्म का प्रचार भी सुगमता से होने लगेगा। १००-१०० रुपये के शेयर-होल्डर बना कर यह कार्य जल्दी ही पूरा हो सकता है जैसा-कि 'मदरलैंड' के व्यवस्थापकों ने किया था। यह कार्य १९७५ तक यदि सम्पन्न हो जाये तो सिर ऊँचा उठा कर हम कह सकते हैं कि आर्यसमाज ने कुछ किया है। आर्यसमाज की पुरानी पीढ़ी नयी पीढ़ी को आर्शीवाद दे जाती है तो आर्यसमाज की एक नही अनेक पीढ़ियाँ उन्हें साधुवाद देंगी। कुछ भी हो यह महान् कार्य सम्पन्न हो ही जाना चाहिए। इस कार्य के लिए १९७५ एक स्वर्ण अवसर है-आर्यजगत् अंगडाई लेने लगा है-लोगों ही की भावनाएं जाग्रत है-मौके का फायदा यदि आज नहीं उठाया तो कल हम पर हँसेगा। दिल्ली में १५० समाजें हैं, १००-१०० रुपये के शेयर होल्डर वे आसानी से बना सकती है-इस प्रकार १५ लाख रुपया केवल दिल्ली नगरी से एकत्र हो सकता है। देश की सभी समाजें अपना योगदान दें तो एक छमाही में समाचार पत्र निकालने के लिए अपेक्षित धनराशि आसानी से इकट्ठी हो सकती है। क्या आर्य नेता समय की नब्ज को पहचानते हुए कुछ करेंगे—समय की सुइयाँ पीछे नहीं हटा करतीं अवसर बार-बार नही आते इस वैतरणी को पार करना ही चाहिए। ए मेरे प्यारे कर्मठ आर्य-नेताओं जैसे भी हो इस कार्य को अवश्य अपने हाथ में लो दृढ संकल्प के समक्ष सभी बाधाएँ घुटने टेक जाती हैं देरी है तो बस तुम्हारे उठने को है—कहो उठोगे न? (क्रमशः)

(पृष्ठ १० का शेष)

छींकत न्हाइये छींकत खाइये छींकत रहिए सो।
छींकत बाट न चालिए चाहे सूरज सोने का हो॥

क्या खूब, छींकने पर अगर नहीं चले दिए तो सब बना बनाया मेल बिगड़ जाएगा। राह चलते किसी ने टोक दिया तो यात्रा बन्द। सच तो यह है कि ऐसे शुभ अशुभ का विचार करते करते समय चूक जाने से हमारा सोना भी मिट्टी बन जाता है।

हमारे देहात के कुछ खास आदमी 'सयाने' कहलाते है। आप का कोई भी चीज—पशु रुपया गहना खो जाए या चोरी चला जाए, किसी व्यापार में लाभ की बात हो या नौकरी मिलने की। ब्याह सगाई का फैसला हो या सन्तान का कि लड़का होगा या लडकी। चीजों के महंगे सस्ते सौदों की बात हो या खेती के होने न होने की इन सभी कुछ पूछा जा सकता है। हमारी दादियां और ताइयां बड़ी संख्या में इन सयानों से 'बूझा कराने' जाती हैं। और हैरानी की बात है कि ये कोई हरफनमौला या किसी खास फन के माहिर नही उन्ही गाव वालो में से मामूली आदमी होते है फिर भी 'बूझा' के चक्कर में जूए में जीत होने के विश्वास पर कुछ भोले भाई हजारों रुपयों से हाथ धो बैठते हैं और कुछ को ये गोलमोल फैसले देकर टरका देते हैं। ऐसे ही कुछ चलते फिरते नकली सयाने एक और तरह के भी हैं जिनके कारनामें समय समय पर अखबारों में भी छपते रहते है। ये है रुपयों को दुगुना करने वाले। अब आप जाने धन की आज बडी जरूरत है। लाख का मालिक भी दो लाख चाहता है। धन को दुगुना कराने के चक्कर में भाई बहिने सभी पड जाते है और होता यह है कि ये लोग हमारा असली माल भी लेकर नौ दो ग्यारह हो जाते है और हम हाथ मलते रह जाते हैं। विश्वास मानिए धन को दुगुना किसी जादू के डंडे से नही किया जा सकता है। उद्योग धंधे मे लगाने, बैंक में जमा कराने या खेती आदि पर खर्च करने मे जरूर सम्भव है। आप चाहें तो आजमा कर देख ले।

हमारी देहाती बहिनो में एक और अन्धविश्वास फल फूल रहा है चाहे जो भी हो पति देवता का नाम नही लेना। एक हमारी ताई जी चली हरद्वार नहाने सौभाग्य से हमारे ताउ जी का नाम हरद्वारी लाल था। महिलाओं की टोली की नेता ताई पुन्नी थी। स्टेशन पर टिकट लेने गई हरद्वार के सात टिकट चाहिएँ थे। बोली—ए बाबू जी गंगा जी की टिकट देना। यह तो शुक्र है बाबू जी जरा समझदार थे हरद्वार के टिकट दे दिए वरना क्या मजाल जो हमारी ताई जी स्टेशन का हरद्वार नाम ले लेती।

घरेलू जीवन में ही नही पशुओं और खेती बाड़ी के बारे में भी ऐसे कई अन्धविश्वास है। जैसे टिड्डियों को खेत खाने से रोकने के लिए उन्हे बान्धने का टोना करना। पशुओं में बीमारी फैलने पर घर घर की दीवारों पर गोबर लींपना। अपने बच्चो की रक्षा के लिए बहुत बहिनें दूसरो के बच्चों की हानि करने में भी इन्ही अन्धविश्वासो के कारण आनाकानी नही करती।

इन अन्धविश्वासो और रूढिवादिता का सब मे बडा कारण शिक्षा की कमी ही है यह ठीक है कि अच्छे पढे लिखे भाई बहिन भी इनमे फसते देखे जाते है जिसका कारण है उनके पीढ़ियों से बने संस्कार। इन बुराइयो से बचने के उपाय है—हर गाव में स्कूल खुले। पशुओं और मनुष्यो का इलाज के लिए प्रबन्ध हो। जच्चाओं के लिए सेंटर तथा परिवार नियोजन के केन्द्र हों। आसान भाषा में कुछ ऐसी पुस्तकें छाप कर गांवों में पढ़े लिखे लोगों तक पहुँचाई जाएं जिनमें सीधा सादा सुखी जीवन बिताने के ढग बताए जाएँ। पढ़े लिखे नई पीढ़ी के देहाती भाई बहिनो को नई रोशनी में आना होगा ताकि वे इन अन्धविश्वासो के खुद भी शिकार न हों अपने बड़े बूढ़ों को भी इस जाल से निकाले। तभी हमारा ग्राम प्रधान भारत सुखी होगा। अन्धविश्वास और रूढिवाद हमारे समय धन और बल का सही उपयोग नहीं होने देता इसे रोकना होगा। जिससे हमारा ग्रामीण जीवन सुखमय हो सके। ●

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब द्वारा प्रकाशित और प्रचारित वैदिक साहित्य

१. बलिदान जयन्ती स्मृति ग्रन्थ—आर्य बलिदानो की गाथा मूल्य ४-५०
२. सोम सरोवर-वेदमन्त्रो की व्याख्या —प० चमूपति एम. ए ३-००
३. जीवन ज्योति-वेदमन्त्रो की व्याख्या ,, ,, ३-००
४. नीहारिकावाद और उपनिषदे ,, ,, ०-२५
५. Principles of Arya samaj ,, ,, १-५०
६. Glimpses of swami Daya Nand ,, ,, १-००
७ पजाब का आर्य समाज पजाब तथा हरयाणा के आर्यसमाज का इतिहास २-००
८. वैदिक सत्सग पद्धति सन्ध्या हवनमन्त्र अर्थ रहित विधि १-००
९ वेदाविर्भाव —आर्यमर्यादा का विशेषाक ०-६५
१० यजुर्वेद का स्वाध्याय ,, ,, ,, ०-५०
११. वेद स्वरूप निर्णय —प० मदनमोहन विद्यासागर १-००
१२. व्यवहारभानु —महर्षि स्वामी दयानन्द ०-५०
१३ स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश— ,, ,, ०-४०
१४. Social Reconstruction By Budha & Swami Daya Nand By. Pt. Ganga Prasad Upadhya M. A. २-००
१५. Subject Matter of the Vedas By S Bhoomanad १-००
१६. Enchanted Island By Swami Staya Parkashanand १-००
१७. Cow Protection By Swami Daya Nand ०-१५
१८. वेद मे पुनरुक्ति दोष नही है आर्यमर्यादा का विशेषाक २-००
१९. मूर्त्तिपूजा निषेध ,, ,, ०-५०
२० धर्मवीर प० लेखराम जीवन —स्वामी श्रद्धानन्द १-२५
२१ कुलियात आर्य मुसाफिर प्रथम भाग—प० लेखराम की पुस्तको का सग्रह ६-००
२२ ,, ,, दूसरा भाग ,, ,, ८-००
२३ मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र —कु० सुशीला आर्या एम ए ०-२५
२४ योगीराज कृष्ण ,, ,, ,, ०-१५
२५ गोकरुणा निधि —स्वामी दयानन्द सरस्वती ०-२०
२६. आर्यसमाज के नियम उपनियम ०-१०
२७ आर्य नेताओ के वचनामृत —साईदास भण्डारी ०-१२
२८. कायाकल्प —स्वामी समर्पणानन्द सरस्वती १-५०
२९. वैदिक धर्म की विशेषताये —प० हरिदेव सिद्धान्त भूषण ०-१५
३० स्वतन्त्रानन्द लेखमाला —स्वा० स्वतन्त्रानन्द जी जीवनी तथा उनके व्याख्यान १-२५
३१. आत्मानन्द लेखमाला—स्वामी आत्मानन्द सरस्वतीकी जीवनी १-२५
३२. आर्यसमाज के सदस्यता फार्म —सैकड़ा १०-००
३३. वैदिक गीता —स्वामी आत्मानन्द सरस्वती २-५०
३४. मनोविज्ञान तथा शिव सकल्प ,, ,, ,, ३-५०
३५. कन्या और ब्रह्मचर्य ,, ,, ,, ०-१५
३६. सन्ध्या अष्टाङ्गयोग ,, ,, ,, ०-७५
३७. वैदिक विवाह ,, ,, ,, ०-७५
३८. सुखी जीवन —श्री सत्यव्रत २-००
३९. एक मनस्वी जीवन —प० मनसाराम वैदिक तोप १-५०
४०. छात्रोपयोगी विचारमाला —जगदेवसिंह सिद्धान्ती १-५०
४१. स्त्री शिक्षा —पं० लेखराम आर्य मुसाफिर ०-६०
४२. विदेशो मे एक साल —स्वामी स्वतन्त्रानन्द २-२५
४३. वेद विमर्श —पं० भगवद्दत्त वेदालंकार २-००
४४. वेद विमश —पं० वेदव्रत शास्त्री २-००
४५. आसनो के व्यायाम ,, ,, ,, १-००
४६. महर्षि जीवन गाथा —स्वामी वेदानन्द वेदवागीश २-२५
४७. मास मनुष्य का भोजन नही—स्वामी ओमानन्द सरस्वती १-००
४८ वीर भूमि हरयाणा ,, ,, ,, ४-००
४९. चोटी क्यों रखे —स्वामी ओमानन्द सरस्वती ०-५०
५० हमारो फाजिल्का —श्री योगेन्द्रपाल १-५०
५१. सत्संग स्वाध्याय —स्वामी ओमानन्द सरस्वती ०-५०
५२. जापान यात्रा ,, ,, ,, ०-७५
५३. भोजन ,, ,, ,, ०-७०
५४. ऋषि रहस्य —प० भगवद्दत्त वेदालंकार २-००
५५. स्वामी श्रद्धानन्द जीवन परिचय १-२५
५६. मेरा धर्म —आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति ७-००
५७. वेद का राष्ट्रिय गीत ,, ,, ,, ५-००
५८. ईशोपनिषद्भाष्य —इन्द्र विद्या वाचस्पति २-००
५९. पं० गुरुदत्त विद्यार्थी जीवन —डा० रामप्रकाश १-३०
६०. वैदिक पथ —प० हरिदेव सिद्धान्त भूषण २-००
६१. वैदिक प्रवचन —प० जगत्कुमार शास्त्री २-२५
६१. ज्ञानदीप ,, ,, ,, २-००
६२. आर्यसमाज का सैद्धान्तिक परिचय ०-५५
६३. The Vedas ०-[illegible]
६४. The Philosophy of Vedas ०-५०
६६. ईश्वर दर्शन ,, ,, १-५०
६७. श्वेताश्वरोपनिषद् ,, ,, ४-००
६८. ब्रह्मचर्य प्रदीप ,, ,, ४-००
६९. भगवन प्राप्ति क्यों और कैसे —स्वा० सत्यानन्द ०-६०
७०. आर्य सामाजिक धर्म ,, ,, ०-७५
७१. बोध प्रसाद —स्वामी श्रद्धानन्द ०-२५
७२. ऋषि दर्शन —प० चमूपति एम. ए. ००-२५
७३ ऋषि का चत्मकार ,, ,, ,, ००-१२
७४. वैदिक जीवन दर्शन ,, ,, ,, ००-२०
७५. वैदिक तत्व विचार ,, ,, ,, ००-५०
७६. देव यज्ञ रहस्य ,, ,, ,, ००-३५
७७. स्वतन्त्रानन्द सस्मरणाक १-५०

सभी पुस्तकों का प्राप्ति स्थान

आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब, गुरुदत्त भवन, जालन्धर (७२५०) टेलीफोन
,, ,, ,, १५ हनुमान् मार्ग नई दिल्ली-१ ,, (३१०१५०)
,, ,, ,, दयानन्द मठ रोहतक (हरयाणा) ,, (५७४)

आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब के लिए जगदेवसिंह सिद्धान्ती शास्त्री द्वारा सैनी प्रिंटर्स पहाड़ी धीरज, देहली में मुद्रित और १५ हनुमान् रोड, नई दिल्ली—१ से प्रकाशित

१७ वैशाख सं० २०३० वि०, दयानन्दाब्द १४९,
तदनुसार २९ अप्रैल १९७३ रविवार
सृष्टि सं०-१९६०८५३०७३

वर्ष ५ वार्षिक शुल्क स्वदेश में १०) रुपये
अंक २२ „ „ विदेश में २०) रुपये
एक प्रति का मूल्य ००-२० पैसे

सम्पादक—जगदेवसिंह सिद्धान्ती शास्त्री, पूर्व लोकसभा सदस्य (फोन ५१२१६३)

वेदमन्त्रार्थ-प्रवचन

अथ युद्धविषयमाह ।

अब युद्ध के विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ।

वीळुपत्मभिराशुहेमभिर्वा देवानां वा जूतिभिः शाशदाना ।
तद्रासभो नासत्या सहस्रमाजा यमस्य प्रधने जिगाय ॥

— ऋ० १.११६.२

पदार्थः—(वीळुपत्मभिः) बलेन पतनशीलैः (आशुहेमभिः) शीघ्रं गमयद्भिः (वा) (देवानाम्) विदुषाम् (वा) (जूतिभिः) जूयते प्राप्यतेऽर्थो याभिस्ताभिर्युद्धक्रियाभिः (शाशदाना) छेदकौ (तत्) (रासभः) आदिष्टोपयोजनपृथिव्यादिगुणसमूहवत् पुरुषः) (नासत्या) सत्यस्वभावौ (सहस्रम्) असंख्यातम् (आजा) संग्रामे (यमस्य) उपरतस्य मृत्योरिव शत्रुसमूहस्य (प्रधने) प्रकृष्टानि धनानि यस्मात्तस्मिन् (जिगाय) जयेत् ॥

अन्वयः—हे शाशदाना नासत्या सभासेनापती भवन्तौ यथा वीळुपत्मभिराशुहेमभिर्वा देवानां जूतिभिर्वा स्वकार्य्याणि न्यूहतुस्तथा तदाचरन् रासभः प्रधने आजा संग्रामे यमस्य सहस्रं जिगाय शत्रोरसंख्यान् वीरान् जयेत् ॥

भावार्थः—यथाग्निर्जलं वा वनं पृथिवीं वा प्रविष्टं सद्दहति छिनत्ति वा तथा अतिवेगकारिभिर्विद्युदादिभिः साधितैशस्त्रास्त्रैः शत्रवो जेतव्याः ।

भाषार्थ—हे (शाशदाना) पदार्थों को यथायोग्य छिन्न भिन्न करने हारे (नासत्या) सत्यस्वभावी सभापति और सेनापति आप जैसे (वीडुपत्मभिः) बल से गिरते और (आशुहेमभिः) शीघ्र पहुंचाते हुए पदार्थों से (वा) अथवा (देवानाम्) विद्वानों की (जूतिभि;) जिनसे अपना चाहा हुआ अपना काम मिले सिद्ध हो उन युद्ध की क्रियाओं से (वा) निश्चय कर अपने कामों को निरन्तर कर तर्क वितर्क से सिद्ध करते हों वैसे (तत्) उस आचरण को करता हुआ (रासभः) कहे हुए उपयोग को जो प्राप्त उस पृथिवी आदि पदार्थ समूह के समान पुरुष (प्रधने) उत्तम उत्तम गुण जिसमें प्राप्त होते उस (आजा) संग्राम में (यमस्य) समीप आये हुए मृत्यु के समान शत्रुओं को (सहस्रम्) असंख्यात वीरों को (जिगाय) जीतें ।

भावार्थः—जैसे अग्नि वा जल वन वा पृथिवी को प्रवेश कर उस को जलाता वा छिन्न भिन्न करता है वैसे अत्यन्त वेग करने हारे बिजली आदि पदार्थों से सिद्ध किये हुए शस्त्र और अस्त्रों से शत्रुजन जीतने चाहियें ।

—(ऋषिदयानन्द-भाष्य) ●

नौविमानादिविद्याविषयः

(द्वादश प्रधयः) इन यानों के भीतर बारह खम्भे रचने चाहियें, जिन में सब कलायन्त्र लगाया जाय, (चक्रमेकम्) उनमें एक चक्र बनाना चाहिये जिसके घुमाने से सब कला घूमें, (त्रीणिनभ्यानि) फिर उसके मध्य में तीन चक्र रचने चाहियें कि एक के चलाने से सब रुक जायं, दूसरे के चलाने सें आगे चलें और तीसरे के चलाने से पीछे चलें, (तस्मिन् साकं त्रिशता०) उनमें तीन तीन सौ (शंकवः) बड़ी बड़ी कीलें अर्थात् पेच लगाने चाहियें कि जिनसे उनके सब अंग जुड़ जायं और उनके निकालने से सब अलग अलग हो जायं, (षष्ठिर्न चलाचलासः) उनमें ६० (साठ) कला यन्त्र रचने चाहियें, कई एक चलते रहें और कुछ बन्द रहें, अर्थात् जब विमान को ऊपर चढ़ाना हो तब भापघर के ऊपर के मुख बन्द रखने चाहिये और जब ऊपर से नीचे उतारना हो तब ऊपर के मुख अनुमान से खोल देना चाहियें, ऐसे ही जब पूर्व को चलाना हो तब पूर्व के बन्द करके पश्चिम के खोलने चाहियें और जो पश्चिम को चलाना हो तो पश्चिम के बन्द करके पूर्व के खोल देने चाहियें, इसी प्रकार उत्तर दक्षिण में भी जान लेना । (न) उनमें किसी प्रकार की भूल न रहनी चाहिये । (क उ तच्चिकेत) इस महागम्भीर शिल्प विद्या को सब साधारण लोग नहीं जान सकते । किन्तु जो महाविद्वान् हस्तक्रिया में चतुर और पुरुषार्थी लोग हैं वे ही सिद्ध कर सकते हैं । इस विषय में वेदों के बहुत मन्त्र हैं, परन्तु यहां थोड़ा ही लिखने में बुद्धिमान् लोग बहुत समझ लेंगे ।११। (ऋ० १.१६४.४८) —(ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका) ●

सत्यार्थप्रकाश (दशम समुल्लास)

(प्रश्न) सखरी निखरी क्या है? (उत्तर) सखरी जो जल आदि में अन्न पकाये जाते हैं और जो घी दूध में पकाते हैं वह निखरी अर्थात् चोखी । यह भी इन धूर्तों का चलाया हुआ पाखण्ड है क्योंकि जिसमें घी दूध अधिक लगे उसको खाने में स्वाद और उदर में चिकना पदार्थ अधिक जावे इसीलिये यह प्रपञ्च रचा है नहीं तो जो अग्नि वा काल से पका हुआ पदार्थ पक्का और न पका हुआ कच्चा है जो पका खाना और कच्चा न खाना है यह भी सर्वत्र ठीक नहीं क्योंकि चणे आदि कच्चे भी खाये जाते हे । (प्रश्न) अपने हाथ से रसोई बनाके खावे वां शूद्र के हाथ की बनाई खावें ? (उत्तर) शूद्र के हाथ की बनाई खावें, क्योंकि ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य वर्णस्थ स्त्री पुरुष विद्या पढ़ाने, राज्य पालन और पशुपालन खेती व्यापार के काम में तत्पर रहें और शूद्र के पात्र तथा उसके घर का पका हुआ अन्न आपत्काल के विना न खावें, सुनो प्रमाण—

आर्याधिष्ठाता वा शूद्राः संस्कर्त्तारः स्युः ॥

आपस्तम्ब धर्म सूत्र । प्रपाठक २ । पटल २ । खण्ड २ । सूत्र ४ ॥

आर्यों के घर में शूद्र अर्थात् मूर्ख स्त्री पुरुष पाकादि सेवा करें । परन्तु वे शरीर वस्त्रों आदि से पवित्र रहें । आर्यों के घर मे जब रसोई बनावें तब मुख बांध के बनावें क्योंकि उनके मुख से उच्छिष्ट और निकला हुआ श्वास भी अन्न में न पड़े । आठवें दिन क्षौर नखच्छेदन करावें स्नान करके पाक बनाया करें आर्यों को खिला के आप खावें ॥

—(ऋषिदयानन्दः) ●

गतांक से आगे :—

वेद में मांस भक्षण नहीं है

लेखक :—स्वा० वेदानन्द वेदवागीश, महाविद्यालय गुरुकुल झज्जर (रोहतक)

इन शब्दों से प्रकाशित सत्यार्थ प्रकाश का कोई महत्व नहीं रहता। आश्चर्य यह है कि आज तक सत्यार्थ प्रकाश के अनेक संस्करण निकल चुके हैं शर्मा जी को उनमें से कोई नहीं मिला। उन्हें उनकी बनाई गो-करुणा निधि पुस्तक भी नहीं मिली। उन्हें यजर्वेद के १३ वें अध्याय में आये ४७ से ५२ तक मन्त्रों का भाष्य भी उनको देखने को नहीं मिला। मन में कोई अच्छी भावना होती, तो देखते। वे तो वेदों पर लांछन लगाकर हिन्दुओं को उनके धर्म ग्रन्थों से विमुख करना चाहते है। हम दोबारा फिर कहते हैं कि यदि श्री सुरेन्द्रकुमार शर्मा महर्षि दयानन्द के ग्रन्थों में से गौहत्या की जानी वैध है, निकाल कर दिखादें तो वे एक हजार रुपये पुरस्कृत किये जावेंगे।

श्री शर्मा जी को चाहिये कि यजर्वेद के ३१ वें अध्याय के कतिपय मन्त्रों का जो उन्होंने नर बलि दिये जाने में उल्लेख किया है, ऋषि दयानन्द द्वारा किये गये अर्थों को देखें, जिस से वे पथ प्रदर्शक बन सकें। यदि किन्हीं टीकाकारों ने अर्थों, का अनर्थ किया है, तो यह मन्त्र का दोष नहीं है, व्याख्याकर का दोष है। जैसा कि निरुक्त लिखता है......

नेष स्थाणोरपराधो यदेनमन्धो न पश्यति—यह खम्बे का दोष नहीं है जो उसे अन्धा नहीं देख पा रहा है (निरुक्त १-५-१६)।

शर्मा जी की एक भ्रान्ति हम और निकाल देना चाहते हैं—मांस व सुरा शब्द वेद में कही आया देखकर उन्हें भयभीत नही होना चाहिये और मांस प्रयुक्त शब्द सेवन किये जाने की ओर ही इंगित कर रहा है, यह एक दम मन से निकाल देना चाहिये शरीर है, तो उसके अवयव मांस आदि का उल्लेख भी आयेगा ही। देखना यह होगा कि यह शब्द किस लिये प्रयुक्त हुआ है। वैसे वेदों में दृष्टिगोचर होने वाले लौकिक शब्द लौकिक अर्थों के बोधक नहीं होते, यौगिक प्रक्रिया से उनके अनेक अर्थ हो जाते हैं। जैसे—मन्यते ज्ञायते अनेन तन्मांसम् मनेर्दीघश्च (देखिये उणादिकोण ३-६४) जिन पदार्थों के भक्षण से बुद्धि स्वच्छ वा ज्ञान वृद्धि हो, वह मांस है, जैसे बादाम छुहारा पिस्ता, दूध, मलाई दही आदि वृक्ष आदि का गूदा भी मांस कहलाता है! मांस माननं वा मानसं वा मनो अस्मिन् सीदतीति वा इस निर्वचन से मांस का अर्थ ज्ञान साधन चित्त अथवा मन जिस में प्रसन्न हो, है, बादाम छुहारे, लोंग, इत्यादि सब इसके अन्तर्गत आजाते हैं। (देखिये क्षेमकरण भाष्य अथर्व ६-७०-१) सुरा के लिये भी वही स्थल द्रष्टव्य हैं। अपूपों (मालपूओं) व मांस वाले चरु को वेदी पर लाओ। चरु जो विशेष आहुति के लिये बनाया जाता है, वह बादाम, छुहारा, किसमिश, इलायची, पिस्ता, घी, पीछे वाला हो, यह अभिप्रेत है। एक ओर तो माल पूए जैसी सुगन्धित सुन्दर वस्तु और दूसरी ओर शर्मा जी के कहे अनुसार लोक प्रसिद्ध मांस ये कैसे जचेंगे। इस की पुष्टि में देखिये वृहदारण्यकोपनिषद् ६-४१८ स्वामी नारायण, शिवशंकरकाव्यतीर्थ, आर्यमुनि भाष्य गीता प्रेस गोरखपुर, सायणाचार्य अथर्ववेद १८-४-४२ अपूपवान् मांसवान् २० इति अन्नवान्, २१ इति च मन्त्रयोर्मांसान्नदानं विहतम्। उपलक्षणमेतत्—क्षीरोदनदध्योदन तिलमित्र श्रधानादेः) यह दूध, दही, चावल, तिल मिश्रत धानादि का उपलक्षण है। श्री शर्मा जी आश्चर्य में पड़ जावेंगे, अब निरुक्त में वृक्ष इस शब्द का अर्थ है "धनुष" किया जाना पावेंगे। (देखिये निरु० २-८-६) गोपथ ब्राह्मण (३-१८) का संकेत कर श्री शर्मा जी ने पशु बलि दिये जाने का वर्णन किया है। इसके उत्तर में हमारा कहना है कि गोपथ ब्राह्मण अथर्ववेद से सम्बन्ध है। अथर्ववेद कांड १० सूक्त ९ में इन्हीं सब अंगों का वर्णन है, जो गोपथ में है। सैंकड़ों भोग्य पदार्थों को आद्र करने वाली गाय है, जिसका नाम शतोदना रक्खा गया है। १०-९-११,१२ में यह सर्वथा स्पष्ट है—घृतं प्रोक्षन्ती सुभगा देवी, देवान् गमिष्यति, पक्तारमघ्न्ये मा हिंसीः, दिवं प्रेहि शतोदने॥ ये देवा दिविषदो अन्तरिक्षसदश्च ये चेने भूम्यामधि। तेम्यस्त्वं धुक्षव सर्वदा क्षीरं सर्पिथोमधु। पक्ता का अर्थ गौ को सर्वथा पुष्ट कर समृद्ध बनाना है न कि हाड़ी में रखकर पकाना। जैसे सूर्य सभी वस्तुओं को पुष्ट करता है, वैसे यहां सभी लोग उस गौ को सेवा करने में कृत संकल्प है। गौ के प्रत्येक अंग को पुष्ट किया जाना आवश्यक अतः समझाने की दृष्टि से गौपथ ने पृथक् पृथक् अंगों का अलग-अलग ऋत्विक के लिये विधान कियन है। इस से यह भी ध्वनित होता है कि यदि गौ केश नख तक सर्वथा दृष्ट पुष्ट हो तो, अकेली ही बहुतों को घी, दूध से तृप्त कर सकती है। १३से२४ मन्त्र तक मन्त्र काअन्तिम वाक्य १२ बार यह आया है—आमिक्षां दुहृतां दात्रे क्षीरं सर्पिथो मधु। यहां गौ को चारा दाना देने वाले के लिये 'दात्र' शब्द का प्रयोग आया है, उसके लिये दूध,दही आमिक्षा सब कुछ देने वाली गौ है। अब ऐसे सीधे से अर्थ में श्री शर्मा जी ने गौपथ ब्राह्मण का आशय भी नहीं समझा हम मानते हैं कि श्री शर्मा जी को मांस से घृणा है और एक ब्राह्मण को होनो भी चाहिये किन्तु उन्हें यह तो सोचना चाहिये कि जब मैं ही हत्या किये जाने का पक्षपाती नहीं हूं, तव मेरे पूर्वज कैसे हो सकेंगे। उस समय संस्कृत राष्ट भाषा थी अब नहीं है भाषा में भी कालक्रम से अन्तर आता है, ऐसी स्थिति में हम संस्कृत के अल्पज्ञ क्या उनके भावों को समझ सकेंगे। अतः एक दम पूर्वापर पर विचार किये विना उलटे लेख लिख कर हिन्दू जनता को गुमराह करना उनके लिये शोभनीय नहीं है।

श्री शर्मा जी शतपथ (३-१-२-२१) का हवाला देते हुए लिखते हैं—पुरोहितों के इस पारस्परिक विवाद पर कि मांस बैल का खाना चाहिये कि गाय का; याज्ञवल्कय निर्णय देते हैं—दोनों में से जो नरम हो वह खा लेना चाहिये' शर्मा जी की इन पक्तियों को दृष्टिगत रखते हुवे शतपथ में से हमारे द्वारा उदृत किये जाने वाला पाठ देखें—और फिर श्री सायणाचार्य तब स्वयं निर्णय करें की शर्मा जी किस दिमाग के आदमी हैं। मूल पाठ इस प्रकार है—सधेन्वे चानुडुहश्च नाश्नीयात् धेन्वनडुहो वा इदं सर्वं विमृतस्ते देवा अबुवन् धेन्वनडुहो वा इदं सर्वं बिमृतो हन्त यदन्येषां वयसा वीर्यं तद्धेन्वडुहयोर्दधामेति स यदन्येषां वयषां वीर्यमासीत्, तद् धेन्वनदुहयोरदधुस्तस्माद् धेनुश्चैवानड्वांश्च भूयिष्ठं भुक्तस्तत् सर्वार्शयमिव यो धेन्व नदुहयोरश्नीया दन्तगतिरिव तं हाद्भुतमभिजनितोर्जायाये गर्मं निरवधीदिति पापमकदिति पापी कीर्तिस्तस्माद् धेन्वनडुहयोर्नाश्नीयात्, तदु होवाच याज्ञवल्क्यो अश्नाम्येवाम्यहमंसलं चेद् भवतीति इस उद्धृत पाठ में मांस शब्द कहीं नहीं आया और न ही कहीं विकल्पित वाक्य है कि गौ का या बैल का। और न कहीं नरम शब्द आया है। इस पर श्री सायणाचार्य जी का भाष्य भीउद्धृत कर देते हैं, जो कहते हैं कि यही विवाद यह चला है कि गो का दूध घी और बैल द्वारा की गई खेती से उत्पन्न अन्न खाया जाय वा नहीं? सामान्यतया जो जगत् का उपकार किया करते हैं, उनकी वस्तु का लोग सेवन नहीं किया करते। याज्ञवल्क्य ने निर्णय दिया कि शरीर बलवान् होता है तो मैं गो का दूध घी और बैल की कमाई खाता ही हूं और हम सब खावें। श्री सायणाचार्य के संस्कृत के शब्द इस प्रकार हैं—सधेन्वे वेति। धेनोः क्षीरादिकम्, अनडुहः सम्बन्धि कर्षणासाध्यामित्यर्थः। तदुभयं नाश्नीयात्, धेन्वनडुहयो सर्वजगदुपकारकत्वात् सदशनप्रतिषेध इत्यर्थः एतंदवोपपादयति - ते देवा इत्यादिना। अनयोः सर्वोपकारकत्वंविज्ञाय देवैः 'वयसाम्' अन्येषां च पशूनां' वीर्यं सारमादाय धेन्वनडुहयोः स्थापितत्वात् तदश्नतः तर्वाशिन भवति। तस्य च जायायाः गर्भसम्भवैसति तत् सर्वाशनं ते रेतोरूपेण परिणतं 'गर्मं' हिंस्यात्। तत् पापकीर्तिः स्यात् (तद्भयोरन्नं नाश्नीयात् तत्रयाज्ञवल्क्यपक्षमाह—वक्षुहोवाचेति। चेदिति यस्पादर्थं। यस्पादुभयाश्ने शरीरम् असलं'भवति'। तस्मादश्नाम्यहं' तयोरन्नमश्नीयामेवेत्यर्थं है।

इसी तारातम्य में महर्षि याज्ञवल्क्य के कुछ वचन और उद्धृत कर देते हैं—राजर्षि जनक ने महर्षि याज्ञवल्क्य से पूछा—याज्ञवल्क्य! क्या आप अग्नि होत्र जानते हैं? याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया—हां, सम्राट्! जानता हूं। क्या है? यही दूध ही। यदि दूध न हो तो किस से यज्ञ करें? धान और जौ से। धान और जौ न हों तो? जो अन्य औषधियां हैं उनसे अन्य औषधियां न हों तो किस से यज्ञ करें? जो जंगल की औषधियां हैं उनसे। जंगल की भी न हों तो फिर किस से करें? वनस्पति (फूल जिसमें नलकें जैसे गूलर आदि) से। और यदि वनस्पति भी न हो तो किस से रं?

(शेष पृ० १० पर)

सम्पादकीय—

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय में प्रधानमंत्री का दीक्षान्त भाषण

"विद्या के इस प्रसिद्ध केन्द्र के दीक्षान्त समारोह में भाषण करते हुए मुझे गौरव है। आपने जो सम्मान मुझे दिया, उसके लिये मैं आपकी आभारी हूं।

आधुनिक भारत के एक महान् निर्माता, स्वामी श्रद्धानन्द ने ७० वर्ष पूर्व, गंगा के किनारे इस गुरुकुल की स्थापना की थी। यह वह समय था, जब कुछ साहसी लोगों ने राष्ट्रिय भावना को जगाने के तरीकों पर गहराई से विचार किया। वे विदेशी हुकूमत के आगे कायर और दब्बू बनकर मुझे नहीं रहना चाहते थे, अंग्रेजों के बौद्धिक आधिपत्य से भी मुक्त होना चाहते थे। भारत के वैभव के प्रति फिर से जागृति के कारण उन्होंने ऐसे विश्वविद्यालयों की स्थापना करनी चाही, जो तक्षशिला और नालन्दा की तरह प्रसिद्ध हों। साथ ही, यह महसूस किया गया कि अंग्रेजों ने जो शिक्षा पद्धति चलाई, वह राष्ट्र और प्रकृति से हमें दूर ले जा रही थी।

इस समय एक ऐसी शिक्षा की खोज थी, जिसका सम्बन्ध हमारी आवश्यकताओं से हो—यही कारण था कि स्वामी श्रद्धानन्द ने इस गुरुकुल की स्थापना की, गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने विश्व भारती की और महात्मा गांधी के अनुयाइयों ने काशी और गुजरात विद्यापीठ और जामिया मिलिया की स्थापना की। स्वतन्त्रता संग्राम के लिये स्वयं सेवक तैयार करने में इन संस्थाओं की महत्वपूर्ण भूमिका रही है और उन्हें राष्ट्रिय भावना जगाने का गौरव प्राप्त है।

स्वामी श्रद्धानन्द और उनके सहयोगी अच्छी तरह जानते थे कि राष्ट्र के पुर्ननिर्माण का यह अर्थ नहीं कि प्राचीन को फिर से जागृत करने के प्रयास किये जायें, बल्कि पुरानी परम्परा की अच्छाईयाँ ग्रहण कर उन्हें आज के युग और परिस्थितियों के अनुकूल बनायें। सभी शिक्षा एक अर्थ में विकास और समावेश है। यह केवल पिछले ज्ञान का संचय करना नहीं है, भूतकाल की ओर देखना नहीं है, शिक्षा हरेक स्तर पर भविष्य की तैयारी है। भविष्य हमेशा नया है। बीता हुआ समय आने वाले समय में अपने को दोहराता नहीं। लेकिन पुराने ज्ञान, इतिहास और संस्कृति हमें वह प्रशिक्षण दृष्टिकोण और अनुशासन दे सकते हैं, जिससे व्यक्ति और समाज भविष्य का सामना करने में समर्थ होंगे।

नवीकरण सदा ही आवश्यक है, लेकिन ऐसे समय में खोज जरूरी है, जबकि तीव्र गति से मूलभूत परिवर्तन सारी दुनिया में हो रहे हैं।

अपनी संस्कृति व परम्परा से भली प्रकार परिचित होना आवश्यक है। इस दिशा में गुरुकुल संस्थाओं ने अच्छा कार्य किया है। लेकिन आधुनिक युग में किसी प्रकार की प्रगति के लिये यह आवश्यक है कि हम आजकल के विद्वानों और विद्या चाहे वे जहां भी हों, से सम्पर्क रखें।

साथ हीं, व्यक्ति को समुदाय में रहने की शिक्षा भी लेनी चाहिये। जैसा कि टायनबी ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "स्टडी आफ हिस्ट्री" में बतलाया है कि समाज केवल व्यक्तियों का समूह नहीं है, बल्कि सम्बन्धों का एक संघटन है। जिस राष्ट्र में विकास का काम इतने दिनों तक रुका रहा, जो विदेशी हुकूमत के आधीन रहा और आर्थिक रूप से पिछड़ा रहा, वहां यह स्वाभाविक था कि शिक्षित लोग ही अगुआ बनें। उन्हें ही परिवर्तन के लिये चाह उत्पन्न करने और समाज को ऊपर उठाने के साधन जुटाने दे। इसलिये यह आवश्यक था कि जो शिक्षा वे ग्रहण करें, उससे समाज के प्रति अपने दायित्व को पूरी तरह समझें।

अंग्रेजों ने भारत में जिस शिक्षा प्रणाली का विकास किया, उसकी बुनियादी कमजोरी यह रही कि उसमें समाज के प्रति व्यक्ति के दायित्व पर बल नहीं दिया गया, केवल व्यक्ति को निजी प्रगति पर बल दिया गया। इसी कारण ये शिक्षण संस्थायें, जिनका मैंने पहले जिक्र किया, सुधार लाने के लिये प्रयत्नशील हुईं।

इनकी ओर प्रसिद्ध शिक्षाविद् आकर्षित हुए और इनसे प्रसिद्ध छात्र भी निकले। लेकिन यह कहना गलत नहीं होगा कि कुछ समय के बाद ये अपनी मूल प्रेरणा खोने लगी और अन्य साधारण संस्थाओं के रास्ते पर चलने लगी। मैं समझती हूं कि आज समृद्ध होने और नौकरी पाने की इतनी अधिक इच्छा है कि इसे हम रोक नहीं सकते। इसलिये हरेक विश्वविद्यालय में विद्यार्थियों और शिक्षकों की मांग उन डिग्रियों के लिये रही है, जो दूसरे विश्वविद्यालयों की डिग्रियों के बराबर हों, जिससे वे कोई नुकसान उठाए बिना नौकरी की प्रतियोगिता में भाग ले सकें। वर्तमान प्रणाली से प्रयोग को प्रोत्साहन नहीं मिलता और उसकी जड़ जम नहीं पाती। लेकिन प्रयोग जब तक नहीं किया जाता, कोई परिवर्तन नहीं आ सकता। और जब तक कि शिक्षा नहीं बदलती, समाज भी नहीं बदल सकता। यही हमारी दुविधा है।

मुझे सभी प्रकार और देशों के लोगों से मिलने का अवसर मिलता है, वे अकेले आते हैं या टोलियों में—भारत के सभी प्रान्तों से और उनमें विद्यार्थी भी होते हैं। मैं देखती हूं कि कुछ विद्यार्थियों और शिक्षकों में वर्तमान शिक्षा प्रणाली से असन्तोष है। ये छात्र अपने कालेज से, अपने पाठ्यक्रम से, शिक्षा की सम्पूर्ण पद्धति से और जिस समाज में वे रहते हैं, उससे भी असन्तुष्ट हैं। फिर भी प्रवेश पाने के लिये नये कालेज और विश्वविद्यालय खोलने की तीव्र मांग रहती है। २५ वर्षों में विश्वविद्यालयों में विद्यार्थियों की संख्या दस गुनी हो गई है। उनका प्रमुख उद्देश्य नौकरी पाना है। नौकरी शिक्षा पर निर्भर है, इसलिये वे शिक्षा प्राप्त करना चाहते हैं, चाहे इसे पसन्द करें या नहीं।

असन्तोष कोई नई अवस्था नहीं है और न ही असन्तुष्ट होना बुरा है। परिवर्तन की चाह की भावना से इसका निकट सम्बन्ध है। बुरी परिस्थितियों से छुटकारा पाने के लिये यह जरूरी है कि हम पहले उनसे असन्तुष्ट हों। लेकिन अगले कदम उससे ज्यादा जरूरी है। यदि असंतोष की भावना को लग्न व धैर्य से रचनात्मक शक्ति में न बदला जाये, तो वह खतरनाक भी हो सकती है। वह व्यक्ति और समाज को निर्बल कर सकती है, खत्म कर सकती है। तोड़-फोड़ की भावना उन्हीं में होती है। जो असन्तोष का असली अर्थ न समझकर, उसका सतही व स्वार्थ रूप ही देख पाते हैं। आश्चर्यजनक तो यह है कि कभी कभी जिनके पास साधन है, वे अधिक शोर मचाते हैं और असन्तोष फैलाते हैं। एक कहावत है, उसके अनुसार—बजाए अन्धकार को कोसने के, एक छोटा सा दीप बेहतर है। छोटे छोटे दीपों से अन्धकार दूर हो सकता है।

हमारी शिक्षा प्रणाली अधिकतर नौकरी पाने योग्य क्षमता का विकास नहीं कर पाती। विचित्र है कि दूसरे पाठ्यक्रमों के अलावा इंजीनियरी, मैडिकल और व्यावसायिक पाठ्यक्रम भी नौकरियों की वास्तविक आवश्यकता से पूरा सम्बन्ध नहीं रखते। इस प्रकार 'शिक्षित' व्यक्ति को सभी जगहों पर फिर से प्रशिक्षित करने की जरूरत होती है या काम करते समय उन्हें स्वयं सीखने के लिये कहा जाता है।

मनुष्य का कर्म केवल कमाना और उत्पत्ति नहीं है। वह आर्थिक पशु से अधिक है। किसी व्यवसाय के लिये किसी व्यक्ति को तैयार करना निःसंदेह शिक्षा का महत्वपूर्ण कार्य लेकिन यह सम्पूर्ण कार्य का एक अंग मात्र है। इसका व्यापक उद्देश्य यह है कि मानव सभी प्रकार से ऊंचे स्तर का हो, गुणवान् और चरित्रवान् बने। उसमें भावनाओं का सन्तुलन हो, दायित्व की भावना हो, सक्षम हो। वे ज्ञान उत्पन्न करने में और अवसर बनाने में समर्थ हों और अपना हित समाज और देश के हित में देखें।

एक शताब्दी से अधिक जो शिक्षा प्रणाली रही है, उसमें उचित रूप से यह कार्य नहीं हो सका। यह अनुभव अधिकांश देशों का है। पिछले पच्चीस वर्षों में जो महान् परिवर्तन आये हैं, मैं उनका महत्व कम नहीं मानती, विशेष रूप से तकनीकी शिक्षा में प्रगति हुई है। इस शिक्षा ने अपनी कमियों के बावजूद नेतृत्व प्रदान किया जाता है। योग्य पुरुष और महिलायें—लेखक, वैज्ञानिक, इंजीनियर भी उत्पन्न किये हैं जो सीखने पर तुला हो, वह कैसी भी शिक्षा हो, या बिना शिक्षा के भी ज्ञान और क्षमता प्राप्त कर लेता है।

इसमें सन्देह नहीं कि सम्पूर्ण प्रणाली में परिवर्तन लाना है। इस पर काफी विचार विमर्श हुए हैं और कई अध्ययन पूरे हो चुके हैं। सभी परिवर्तन की बात करते हैं, लेकिन परिवर्तन तब तक नहीं आ सकता, जब तक कोई संतति कष्ट उठाने और कुछ बलिदान देने के लिये तैयार न हो।

यह कहना रिवाज सा हो गया है, कि हमारी शिक्षा का जीवन से सम्बन्ध नहीं है और शिक्षण संस्थायें राजनीति का अंग हो गई हैं। मैं इस बात में विश्वास नहीं करती, कि किसी सच्चे लोकतान्त्रिक समाज में राजनीति से बचा जा सकता है। लेकिन दुर्भाग्य है कि कालेजों और विश्वविद्यालयों में जो राजनीति है, वह बौद्धिक मुक्ति और उन्नति की राजनीति नहीं है, अक्सर तोड़ फोड़ की राजनीति है। यह कहना तो आसान है कि विश्वविद्यालय को राजनीति से अलग रखा जाय। क्या

(शेष पृष्ठ ४ पर)

पिछले अंक का शेष—

Was Swami Dayananda Poisoned ?

(By Dr M. K. Shastry. Ex Principal Poder Medical College Bombay-18)

As suual, Swami's criticism of social and religious superstition and exposing of fraud and deceit committed by the priestly class in the name of religion, aroused the ire of this class of people.

Generally, non hindus enjoyed and appreciated his criticism of Hinduism but resented when Islam and Christianity were criticised. Once, when the swami was criticising some shortcomings of Islam, Bhaiyya Fazullahakhan. Dewan of the state got excited and told the Swami, "Had it been Muslim Raj you would have been no where." To which the Swami ji's reply was "In that case. I (Dayanand) would have aroused some Rajput warriors and taught a lesson. "Another day in the same circumstances a muslim youth actually drew out his sword and tried to attack Swami ji but could not dare to do so Like Muslims, orthodox Hindus were also resentful and afraid of Swami ji's activities.

In such vitiated and tense atmosphere came the role of Nanhi jan, the favoured prostitute of the Maharaja, whom Swami scolded for unethical and improper relation. It came like a bolt from the blue for all disgruntled element who were afraid (1) of Swami's influence on the Maharaja, and (2) awakening of ignorant masses, resulting in losing of their position, prestige and livlihood. The elements, Hindus as well as Muslims combiened together to wipe out their common enemy—Swami ji—from the worldly existance. Thus, the fears of his admirers came true, and Swami was poisoned by these jealous people.

On September, 29th, 1985 Swami suffered from common cold. He took some home remedy but without any appreciable effect. This casual illness was considered God—sent opportunity by the conspirators to carry out their nefarious plan and they perpatuated it on that fateful night, which ultimately resulted in the death of the Swami.

The following points are also worth consideration in the matter. (1) How it was possible for a strange non—entity like kallu kahur cook to have remained untraced inspite of the best efforts of the state Authority after committing theft in Swami's camp, unless he was shielded by some influential persons. This would-be poison given to act without fear

(2) Why Dr. Alimardon khan was allowed to continued his treatment uninterrupted for more than a fortnight although his treatment was proving harmful to the Swami.

He administered some medicine on the pretext of throwing out harmful body material. This resulted in intense purgation, which worsened the condition of Swami ji.

Apparently, the Maharaja was either not properly informed or kept in dark by these very elements.

Answer to the points raised by the author

Some of the points raised by the author require attention. (1) "What intrigued people is that it took the Jodhpur ruler a fortnight to realise the sericusness of his master's ailment."

Indeed this is a point in favour of my submission. The conspirators were hightly placed influential people and wielded power in the state. These elements kept Maharaja either in the dark or ill informed He believed in the words of his faithful officials. There fore, he did not act wisely and did not i form outside world about Swami's illness trusting in his doctor's word. The people who know the working of princely state in old days can very well vouchsafe for such a behaviour.

(2) "He sent him to Mt. Abu not for competent medical advice, but for change of climate "

This passage is passage is against the fact of the case Actually, the news of Swami's serious ailment was broken out by a member of Ajmer Arya Samaj who went to Jodhpur on some business trip. Several of Ayra Samaj leaders rushed to Jodhpur and tnese people prevailed upon Swami ji to shift from Jodhpur to a better place. They decided to go to Mt. Abu for good climate and better treatment, although the Maharaja was relectant, for fear of getting a bad name There was nothing strange in such a move. Even now. T. B. Patients go to hill station for change of climate as well as for treatment.

(3) If Dayanand has thrown out the poison administered to him on previous occasions, why he could not do so again ?"

This reveals the actual working of authors malicious mind. There was no need of ejecting the poisonous material, when the poison titself was coming out by vomiting and diarrhoea. It is a fact that he was poisoned several times and was saved by his robust health and Yogic exeroises. But these attempts at poisoning undermined his health and he finally succumbed to arsenic poisoning.

(4) "Why Dayanand did not complain to Maharaja on his visit to him ?"

I will dvise the author to read the life of saints and big souls, to enlighten his mind I quote only one incident from the life of Dayanand. Once a devotee tahsildar of Anoop Shahar (U P) apprehened a culprit, who gave him poison in betel leave, and came to Swami to get a pat on his back for is good work Dayanand straightway told him that he had come to free tee people and not to put them in bondage Leave such things to God and the man was set free ●

शताब्दी आ रही

(पं० देवेन्द्रनाथ शास्त्री एम. ए १५, आर्य कुटीर, नई कालोनी, नरेला, दिल्ली-४०)

शताब्दी आ रही आर्यो, कहो कुछ काम करना है ?
अधूरा मिशन ऋषिवर का, उसे कब पूर्ण करना है ?
हो घर घर वेद पारायण, मनन ऋषि भाष्य भावों का।
बनेगा आर्य यह जीवन, यह पहला काम करना है॥
समस्या वर्ग संघर्षों की, बढ़ती जा रही दिन दिन।
सरल और साहसी जीवन से, इसको शान्त करना है॥
विलास और भोग का जीवन, नहीं आर्यत्व का साथी।
व्रती और संयमी होने से, ऋषि का ऋण उतरना है॥
शिथिल तुम हो गए, फिर देश पाखण्डों ने आ घेरा।
उठो खम ठोक कर, तुम ने ही इन का नाश करना है॥
दिलों को जीत लो, जनता की सेवा में लगा जीवन।
प्रजा से प्रेम ही परमात्मा से प्रेम करना है॥
बनाओ आर्य निज परिवार, मुहल्ला, ग्राम, नगरों को।
यही क्रम कार्य करने का तभी मंजिल पै चढ़ना है॥
भुला दो भेद भावों को, तुम्हें सौगन्द दयानन्द की।
प्रथा है प्रम की पावन, उसी से सब सँवरना है॥
बुरे शोषण का नाश होवे सबल सत्यार्थ प्रकाश होवे।
जगत् आर्य समाज होवे, यही प्रण पूर्ण करना है॥●

मेरा नया टेलीफोन नम्बर

आर्यसमाजों, शिक्षण संस्थाओं तथा आर्यजनों को आर्यमर्यादा के गत अंक में अपने बदले निवास स्थान की सूचना पृ० ३ के नीचे दी गई थी। मेरा नया टेलीफोन भी लग गया है। मैं नये निवास स्थान तथा नये टेलिफोन नम्बर की सूचना दे रहा हूं।—

(१) मकान १४/२१ ईस्ट पटेल नगर, नई दिल्ली-८
(२) टलिफोन नम्बर—५८६३३६ —रामनाथ भल्ला

(पृ० ३ का शेष)

सभी दल तैयार हैं कि वे विद्यार्थियों और शिक्षा के मामले में हस्तक्षेप न करें ? विद्यार्थी स्वयं इस मामले में, निश्चय ही पहल कर सकते हैं। नई पीढ़ी, पुरानी पीढ़ी से बुनियादी तौर पर भिन्न नहीं हो सकती—परन्तु इनमें एक महत्वपूर्ण भिन्नता है। युवा पीढ़ी आमतौर से आदर्शवादी होती है। आदर्शवाद केवल अच्छे विचार और मूल्य ही नहीं, बल्कि उन मूल्यों को बचाने के लिये साहस का नाम भी है। सभी नवयुवकों के लिये एक विशेष आदर्श की सिफारिश करना चाहूंगी, और वह है धैर्य और सभी धर्मों के प्रति समान आदर का भाव। कभी अपनी दृष्टि को संकीर्ण नहीं होने दें। इस समय हमारे सामने जोसबसे बड़े खतरे हैं, वह साम्प्रदायिकता और प्रान्तीयता के और छोटी बातों में फंस जाने के हैं। इन अवगुणों के विरुद्ध संघर्ष करना युवा भारत की जिम्मेदारी है—ताकि देश का और आप सबका भविष्य उज्ज्वल हो।

विद्या का अर्थ बौधिक विकास व चरित्र निर्माण तो है ही, इसके साथ ही वातावरण व आस पास की स्वच्छता, सुन्दरता और सुधार भी आवश्यक है। अब सब देशों के लोग समझ रहे हैं कि पेड़ पौधों और जीव जन्तु का भी प्राकृतिक सन्तुलन रखने में एक महत्वपूर्ण स्थान है। इन सबों की और पुरानी कला की सुरक्षा करनी है। मैं इन्हें शिक्षा का और नागरिक दायित्व का जरूरी अंग मानती हूं।

इस संस्था में आपकी कई परोक्षायें होती रहीं, लेकिन अब आप अपने पैरों पर खड़े होंगे और आपको और भी कठिन समस्याओं का सामना करना होगा। ये भी एक प्रकार की परीक्षायें हैं। सफल होना अच्छा है और मेरी शुभ कामना है कि आप सफलता प्राप्त करेंगे। परन्तु, किसी कारण असफल भी हुए तो उससे न डरना—न हताश होना चाहिये, क्योंकि वह भी एक अनुभव है जिससे सीख सकते हैं, जाने की एक सीढ़ी है जिस पर चढ़कर ऊँचा उठ सकते है।

गुरुकुल के स्नातकों और विद्यार्थियों को मेरी शुभ कामनायें।●

[समाचार देर से पहुंचने के कारण सम्पादकीय स्तम्भ में प्रकाशित किया गया है] —जगदेवसिंह सिद्धान्ती शास्त्री

क्रमागत—

माण्डूक्य पर आचार्य गौडपाद कारिकाओं की समीक्षा (१५)

(ले० श्री स्वामी ब्रह्मानन्द जी आर्य त्रैतवेदान्ताचार्य, मु० ओंकार आश्रम, चान्दोद. बड़ौदा)

उन्होंने कहा स्वामी जी दुस्साहस कर इधर से आये ठीक न किया, ये जंगल तो शेरों के लिये प्रसिद्ध है मैंने कहा भाई कुछ भी कहो मुझे तो उस प्रभु श्रेष्ठतं ओम् पवित्र नाम ने केवल एक बार के ही मात्र अचानक बिना इच्छा के उच्चारण मात्र से ही शेर की निगाहों से बचा लिया, इसका मैं बहुत ही आश्चर्य करता हूं और पूज्य प्रभु जगदीश्वर को कोटिशः धन्यवाद दे, मन में आज भी परमानन्द का अनुभव करता हूं और मुझे तो पाणिनी मुनि के (अव रक्षणे) धातु से ओं की सिद्धि सार्थक ही लगी है तभी से पौराणिक रामकृष्णादि नामों का स्मरण छोड़ एक अद्वितीय अक्षरात्मक ओम् एवं त्रिपदा गायत्री मंत्र में हो तब से श्रद्धा विश्वास रख इसी नाम एवं मंत्र की उपासना करता आ रहा हूं। ये घटना विक्रम संवत् १६७३ वें की है। यद्यपि उपनिषद् में कहा है कि—

ओंकारविन्दुसंयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनः।
कामदं मोक्षदं चैव ओंकाराय नमो नमः॥

अर्थात् जो बिन्दु सहित ओंकार का ध्यान स्मरण करते हैं उन ओंकारोपासकों को सम्पूर्ण ऐहिक कामना और अन्त में मोक्ष परं गति को देने वाला यह प्रभु का नाम है इसलिये ओं क्रतो स्मर॥ य० ४० अ० में भी कहा है कि धर्म कर्मनिष्ठ पुरुष तू अपने आत्म कल्याण के लिये तू हमेशा अनन्य भावना से ओंकार का स्मरण कर। किन्तु बड़े ही आश्चर्य एवं दुःख की बात है कि छान्दोग्य एवं बृहदारण्यक में जहां ओम्कार एवं गायत्री के उपासक को मिलने वाली मुक्ति को आचार्य शंकर ने देवलोक (ब्रह्मा जी के लोक की ही थर्ड क्लास की मुक्ति मानी है और उससे ही पुनरावर्तन भी माना है किन्तु अपने तत्त्वमस्यादि महावाक्यों की उपासना से (कैवल्यंपदमश्नुते) याने अनावर्तन जिससे पुनः कभी भी लौटकर मुक्तात्मायें नहीं आतीं ऐसा माना है, शारीरिक भाष्य में, परन्तु इतना अन्धेर कि जिस श्रुति से (ब्रह्मलोकमपि संपद्यते न च पुनरावर्तते) इस छान्दोग्य की और बृहदा० की श्रुति से वहां उ० भाष्य में आना कबूल करके वेदान्त दर्शन मोक्ष प्रकरण में आचार्य ने इन्हीं श्रुतियों का हवाला दे पुनरावर्तन से सर्वथा इनकार किया तो है। ये इनको भूल प्रमाद या फिर पक्षपात ही कहा जा सकता है किन्तु सिद्धान्त की दृष्टि से तो ये अद्वैतवादियों की करारी हार ही मानी जायेगी॥२५॥

प्रणवो ह्यपरं ब्रह्म प्रणवश्च परः स्मृतः।
अपूर्वोऽनन्तरोऽबाह्योऽनपरः प्रणवोऽव्ययः॥२६॥

आगम प्र० की २६ वीं कारिका

अर्थ—ओंकार ही परब्रह्म है और अपर ब्रह्म माना गया है, वह ओंकार अपूर्व (अकारण) अन्तर्बाह्य शून्य अकार्य तथा अव्यय है॥२६॥

समीक्षा—जब ओंकार ही अपर ब्रह्म और परब्रह्म है तो अविद्या जन्य क्यों अपर बनाते हो सब कुछ परापर ओंकार रूप ही मानो अविद्या या अज्ञान जन्य कुछ नहीं है ऐसा ही मानो॥ अद्वैतवादी तो बात बात में माया और अविद्या को ला धरते हैं और सब दृश्य मान पदार्थ को स्वप्नवत् मिथ्या एवं (चित्तमात्रमिदं द्वैतम्) स्वयं आप भी आगे इसी ग्रन्थ के अलात् शान्ति प्र० में बताते हैं याने वैदिक सांख्यवादियों में से निकल बौद्ध सिद्धान्तानुयाई बन बैठे हैं। न तावत् स्वत एव ब्रह्मण उभयलिंगत्वमुपपद्यते। नह्येकं वस्तुः स्वत एव रूपादि विशेषोतं तद् विपरीतं चेत्यवधारयितुं शक्यं विरोधात्॥ वे० द० शां० भाष्य अर्थात् परब्रह्म में स्वतः ही उभय लिंगत्त्व नहीं हो सकता, विरुद्धर्मों का संभव नहीं।

सर्वस्य प्रणवो ह्यादिर्मध्यमन्तस्तथैव च।
एवं हि प्रवणं ज्ञात्वा व्यश्नुते तदन्तरम्॥२७॥

आगम० प्र० की २७ वी कारिका

अर्थ—प्रणव हि सबका आदि मध्य और अन्त है। प्रणव को इस प्रकार जानने के अनन्तर तद्रूपता को प्राप्त हो जाता है॥२७॥

समीक्षा—यदि प्रणव ही सबका आदि है तो वो प्रणव फिर सब कुछ नहीं ये सिद्ध हुआ। क्योंकि जब आदि में ये सब नाम रूपात्मक प्रपंच न था तब इससे प्रथम प्रणव या ओंकार ही था और अब ये इस प्रपंच के विद्यमान काल में भी है, एवं ये प्रपंच के प्रकृति में उपशमन होने पर भी आखिर में प्रणव रूप परमात्मा इस प्रपंचात्मक जगत् के आदि मध्य अन्त में एक समान विद्यमान रहेगा ये ही बात सिद्ध होती है, तो इस कारिका से ये निष्कर्ष निकला कि एक तत्त्व वह है कि जो सर्वरूप होने वाला है और दूसरा तत्त्व वह है कि जो इस सर्प के आदि मध्य एवं अन्त में भी विद्यमान रहता है। तो इस प्रकार से प्रणव को और सब प्रपंच को जानने वाला तो तीसरा ही तत्त्व सिद्ध हो जाता है कि जिसे (अश्नुते तदनन्तरम्) आप गुरु जी कह रहे हैं तो अब तो आपकी ही कारिका से आपने स्वय हमारे साख्य मत का ही सिद्धान्त हेरफेर से मान लिया है। यह बड़े ही आनन्दाश्चर्य की बड़ी ही अच्छी बात कही। ईश्वर आपकी यह ऐसी पवित्र सुचिन्तक बुद्धि हमेशा बनाये रखें बस यही हम देखना चाहते हैं॥२७॥

प्रणवं ईश्वरं विद्यात्सर्वस्य हृदि सं स्थितम्।
सर्वव्यापिनमोङ्कारं मत्वा धीरो न शोचति॥२८॥

आगम प्र० की २८ वीं कारिका

अर्थ—प्रणव को ही सबके हृदय में स्थित ईश्वर जाने। इस प्रकार सर्वव्यापी ओंकार को जानकर बुद्धिमान् पुरुष शोक नहीं करता॥२८॥

समीक्षा—प्रणव ही ईश्वर है जो सभी के हृदयों में सर्वदा स्थित रहता है और सर्वव्यापक है ऐसा जो कहते मानते हों तो फिर परब्रह्म और ईश्वर का भेद क्यों करते हो? अद्वैत की प्रक्रिया में तो विद्योपाधि ईश्वर अर्थात् शुद्धसत्त्व प्रधान माया में जो ब्रह्म का प्रतिबिम्ब है तो उससे युक्त जो चैतन्य है वही ईश्वर कहा जाता है। ऐसा पंचदशी में विद्यारण्य और विचार सागर में निश्चलदास इसी प्रकार विचार चन्द्रोदय में पीताम्बर जी पण्डित कहते हैं। अद्वैत प्र० में स्वयं गौडपाद जी भी यही कहते हैं कि (सतोहि मायया जन्म युज्यते॥ अ० प्र० का० २७ वीं) अर्थात् सद् तत्त्व परमात्म तत्त्व का जन्म माया से हो सकता है। (अजायमानो बहुधा मायया जायते नु वै॥ अ० प्र० २४। का०) में भी यही ये बता रहे हैं कि जो स्वभाव से अजन्मा परमात्म तत्त्व है वही परम ऐश्वर्यमान ईश्वर अपनी माया शक्ति के द्वारा अनेकों बार जन्म लेता है। तो इन उपरोक्त कारिकाओं का पूर्ण रूप से तो उचित जवाब हम उसी अद्वैत प्रकरण में इन्हें देंगे, किन्तु हमें बताना यह है कि ये सब एक ही बेल को तूंबडियां हैं याने मायोपाधि से परब्रह्म का ईश्वर कार्यब्रह्म, हिरण्यर्भ, ब्रह्मा रूप में प्रगट होना या पैदा होना ये नवीन वेदान्ती भाई मानते हैं। और यहां आगम प्रकरण ओंकार ईश्वर सर्वव्यापक ब्रह्म इन तीनों को एक ही बतला रहे हैं॥२८॥

अमात्रोऽनन्त मात्रश्च द्वैतस्योपशम. शिव.।
ओंकारो विदितो येन समुनिर्नेतरो जन.॥२९॥

आगम प्र० की २९ वीं का०

अर्थ—जिसने मात्राहीन अनन्त मात्रा वाले, द्वैत के उपशम स्थान और मंगलमय ओंकार को जाना है वही मुनि है, और कोई पुरुष नहीं॥२९॥

समीक्षा—आचार्य गौडपाद जी से दो कदम आगे बढ़कर आचार्य श्री गुरु शंकर उपरोक्त कारिका के विषय पर भाष्य करते हुये विशेष रूपेण यों कहते हैं कि (नेतरोजनः शास्त्र विद पीत्यर्थः ओंकार विदितो येन····स एव महामुनिः॥ आ० प्र० शां० भा०) अर्थात् दूसरा पुरुष शास्त्रज्ञ होने पर भी मुनि नहीं है, किन्तु जिसने ओंकार को जान लिया है वही महामुनि है। तो हमारा कहना इस भाष्य पर यह है कि क्या कोई बिना वेदादि शास्त्रों को पढ़े सुने बिना भी क्या कोई ओंकार को जान सकता है? किन्तु कभी भी नहीं। (क्रमशः)

गतांक से आगे—

सन् ५७ में प्रजा विद्रोह के कारण ?

टैक्स कौन से लगाये गये ? (२७)

(ले० श्री स्वा० सच्चिदानन्द योगी, अध्यक्ष श्री नारायण स्वामी आश्रम, महामहिम पातञ्जलयोग साधना संघ आ० या० आ० ज्वालापुर)

यह बडौदा के पीछे चाणोद कल्याणो वाले प्रसंग से भिन्न ४० पृष्ठ पर लिखा है। चाणोद कल्याणी की बात ३२ पृष्ठ पर है। ४० पृष्ठ वाला प्रसंग थियासोफिस्ट में नहीं। अतः दोनों में अनुवाद का आधार आग्रेय भाव नहीं। इससे इतना स्पष्ट है। पण्डित लेखराम जी घटनाओं का सिलसिला बैठाना चाह रहे थे पर बैठ नहीं रहा था। पण्डित जी को यह आत्मचरित्र मिल जाता तो वे निस्सन्देह उछल पड़ते।

७. द्रोण सागर पर देह त्याग की इच्छा की बात पं० लेखराम जी ने पृ० ३६ पर लिखी है। स्वामी सच्चिदानन्द जी ने भी ऐसा ही लिखा है। थियासोफिस्ट में द्रोण सागर पर ऐसी कोई बात नहीं लिखी।

पूना प्रवचन में है पर अलकापुरी और अलकनन्दा स्रोत के उद्गम के समीप इस विचार का आना लिखा है। उपदेश मञ्जरी पृष्ठ ११६

इस प्रकार बहुत से प्रसंग हैं जिन से स्पष्ट है यह पूना प्रवचन के मूल नहीं हैं। इस प्रकार की त्रुटियों से रहित कोई मूल हो इसमें पूरा सन्देह है। अतः थियासोफिस्ट को ही परम प्रमाण मानकर निर्णय किया जाना चाहिये। हिन्दी मूल की दुहाई भ्रामक है

हस्तलेखों की प्रामाणिकता (२८)

श्री. पं दीनबन्धु जी शास्त्री को सार्वदेशिक ने हस्त लेखों को जांचने के लिये कलकत्ता से बुला भेजा। वे सब सामग्री को अटैची लेकर आगये। पूरे अधिवेशन तक रहे। अधिवेशन कई दिन चला। पर किसी को अवकाश ही नहीं मिला कि उसे परखता। पं. भवानी लाल जी भी उसमें आये हुए थे। समय तो तब मिलता जब ऋषि जीवनी के प्रति कुछ आस्था होती। लिखित प्रकाशित जीवनियों को ही केवल प्रामाणिक मानने वाले, इन से आगे और कुछ नहीं है इस धारणा वाले पं. दीनबन्धु की क्यों परवाह करते। पं. दीनबन्धु जी शास्त्री हैं, वेदाचार्य हैं। बी. ए. हैं। बिहार बंगाल प्रतिनिधि सभा में प्रतिनिधि रहे हैं। आजीवन अवैतनिक आर्यसमाज और ऋषि की अनुकरणीय सेवा की है। पर अहंवश उनकी और उनके घोर ४० वर्ष के वास्तविक अनुसन्धान की ओर ध्यान भी नहीं दिया। एक बार जीवनो के हस्तलेखों को देखने का कष्ट नहीं उठाया। बेचारे सैकड़ों रुपया व्यय कर वापिस लौट गये। अब उन हस्त-लेखों के परीक्षण की दुहाई दी जा रही है। कोई लेकर आये। श्री सेवा में घर पर लेजा कर दिखाये, और देखते ही आप मुंह घुमाकर कह दें यह सब बोगस है। और फिर समाचार पत्रों में मिल जुल कर घोषणा कर दे कि हमने परीक्षण कर लिया। जीवनी का हस्तलेख विश्वास योग्य नहीं है।

क्यों नही है साहब,

कोई हेतु को आवश्यकता नहीं। हमने निर्णय दे दिया। मानना होगा। सकृत् कृत्वाचार्या न निवर्त्तन्ते। आचार्य लोग एक बार ही लिखते हैं। वह प्रामाणिक है। कुछ कहने की गुंजाइश नहीं।

भला इस अंग्रेजी सरकार के पुराने दश भक्तों बिस्मल आदि के मुकदमों के फैसले को कौन दोहराये।

योगी के आत्मचरित्र के हस्तलेखों की प्रामाणिकता के विषय में १४५ पृष्ठ से १५१ पृष्ठ तक १६ बातें लिखी हैं। क्या उन्हें स्वोकार कर लिया गया है। उनका खण्डन भी कोई उपस्थित नहीं किया गया है। तब तो नई बाते विचारी भी जा सकती हैं। यदि २ और २ तीन हो रहने है तो ससार को कोई भी वैज्ञानिकता ४ सिद्ध नहीं कर सकती। हस्तलेखों को प्रामाणिकता में जनता के समक्ष ये बातें तर्क और प्रमाण हैं। जनता स्वयं निर्णय करे, ये स्वयभू निर्णायक तो अन्धेर पर उतरे हुए हैं:—

"१२ स्थानों से हस्तलेख महर्षिदयानन्द के मुख से निस्सृत आत्म-जीवनी के आभास मिल पाये हैं। उन सब को धारावाहिक रूप में हिन्दी में अनुवाद किया गया है।" ये आ. उत्तरार्ध पृ० ४८॥

१. क्या इन बारह स्थानों से कलकत्ते में जाकर पूछता की ! नहीं, तो फिर सम्मानित विद्वान् ब्राह्मण, अधिकारी पं० दीनबन्धु के वाक्यों पर विश्वास करना होगा। कलकत्ता आर्यसमाज के सभी वरिष्ठ वृद्ध पुराने आर्य इसका समर्थन करते हैं। उसको स्वीकार कीजिये। मेरी खोज का यही परमाण है, उसे स्वीकार कीजिये।

ये खोज के तीन स्रोत तो अप्रमाण आप को ही कोई क्यों प्रमाण मानें।

२. पं० दीन बन्धु ने ऋषि भक्ति से प्रेरित होकर ही ४० वर्ष जीवनी के दयानन्द का पगला बन कर और कहला कर जीवनी की खोज की है। इसी प्रकार कोई समय लगा खोज करे, सब तथ्य सामने आ जायेंगे। अब तो मार्ग प्रचलित है, खोज सरल होगी। मैदान में आईये घबराइये नहीं। बहुत सहयोगी मिल जायेंगे। पर यह घर बैठे तो कार्य न होगा। तप और त्याग करना होगा। या कोई कोई सभा इसके लिये आपके निमित्त कोई धनराशि निकाल दे तब हो। कुछ हो इस ब्राह्मण के तप को झुठलाया नहीं जा सकता।

३. अज्ञात जीवनी सारी की सारी पुराने बंगला लेखकों की लिखी है। बहुत पुरानी है। कागज भी पुराना है। पृष्ठ भी जीर्ण शीर्ण हैं। कुछ तो गलने भी लगे हैं। कहीं कहीं किसी कागज में दीमक भी लगो है।

दीमक लगे कागजों पर लिखा है यह स्वयं धोखा देनें वालों की मनो-वृत्ति हो सकती है, ब्राह्मणों की आर्य ब्राह्मणों की नहीं।

४. हस्तलेख में भिन्न प्रकार के कागज हैं। किसी स्थान से बहुत ही छोटे छोटे कागजों में विवरण है कोई बड़ों में १४०० से ऊपर कागज हैं। सब ही कागज एक ही काल के नहीं। एक ही ढंग के नहीं। बीच बीच में भक्तों ने उन्हें खराब हो जाने आदि के कारण पलटा होगा। दसियों प्रकार के कागजों की अलग अलग परीक्षा, अलग घर में जाकर करनी होगी, जहां से वे मिले हैं।

५. इन कागजों के लिखाये लगभग १०० वर्ष हो गये। सन् १८७३ में लिखाये थे। आज १९७३ है। घरों में कागज सुरक्षित भी नहीं रह पाते। पानी आदि लगने की असावधानी से कमजोर भी हो जाते हैं। जो सुरक्षित रहे वह ठीक रह जाते हैं।

६. ऋषिवर के कलकत्ता वास काल में एक बंगला भाषा की छोटी पुस्तक ऋषि को भेंट की गई थी। वह ऋषि के कलकत्ता में आगमन से पूर्व छपी थी। उसका कागज इस हस्तलेखों से नया है। ज्वालापुर में रख आया था। कागज की परख से क्या लेखों को पुराना माना जाये। या पुराने कागजों पर लिखा स्वीकार करें। भला उस समय लिखने वाले पुराने कागज लेकर क्यों लिखने बैठते। सब नये पर हो लिखे हैं।

७. कुछ हस्तलेख पुनः दोबारा लिखे गये हैं। एक एक पन्ने पर आरम्भ और मध्य में भिन्न भिन्न पृष्ठाङ्क हैं।

८. दो स्थलों की दो दो प्रतियां भी हैं। लेख मिलता है।

९. अक्षरों की बनावट १०-१२ प्रकार से अधिक है। भिन्न भिन्न भाग भिन्न हस्ताक्षर में हैं।

१०. पं० दीनबन्धु जी के हस्ताक्षर सब से निराले हैं। उनसे नहीं मिलते।

अब प्रश्न है इन हस्तलेखों की प्राचानता की जांच कराई जाये। हो सके तो कोई आपत्ति नहीं। पर जहां तक हमें मालूम है, हस्तलेखों के लिखने की तिथि से ही प्राचीन लेखों की परीक्षा होती है। कागजों की स्थिति बड़ी नाजुक है। ठीकरों, सिक्कों, लोहे, पत्थर अस्थि के टुकड़ों की आयु तो उनके घिसने, जीर्ण होने आदि से मालूम की जाती है। पर कागज के लिये ऐसी परीक्षा नहीं।

वेदों की प्राचीनता के लिये किसी पाण्डुलिपि को उस की आयु के लिये उपस्थित नहीं किया जा सकता। ऋग्वेद की ऋचायें पहरामिड्स में इण्टों पर छपी मिली हैं, जो सब से प्राचीन मानी जाती हैं, तो क्या वेद को १० सहस्र पुराना ही मानना होगा। प्राचीनता की परख का यह प्रकार नहीं हैं।

सत्यार्थ प्रकाश की प्रेस कोपी पर हमने शङ्का की थी। प्रेस में दो कोपी नहीं मिल रही हैं। उस पर प्रेस की स्याही आदि के निशान होंगे। जिन कागजों पर ऐसे चिह्न नहीं वह प्रेस कोपी नहीं। इसलिये ऋषि काल में ऋषि के समक्ष छपे दूसरे संस्करण को ही प्रामाणिक माना जा सकता है। श्री पं० भगवद्दत्त जी की खोज के अनुसार ५ हजार स्थलों में संशोधित किये हुये वर्त्तमान संस्करणों को नहीं। 'सत्यार्थ प्रकाश के संशोधन की समीक्षा का उत्तर न देकर, उससे चिढ़ कर आत्मचरित्र अज्ञात जीवनी पर ओछे प्रहार करना दो शिष्यों का एक ही गुरु को दूसरी टांग को लठियाना होगा। अतः सत्य को ग्रहण करने और असत्य को त्यागने में सदा उद्यत रहना चाहिये। (क्रमशः) ●

गतांक से आगे—

योगी का आत्म चरित्र एक मनघडन्त कहानी

(लेखक—श्री स्वामी पूर्णानन्द जी सरस्वती-बड़ौत-जिला मेरठ)

How to achieve this ideal was the one all - absorbing thought of every one in the palace of Brahmavarta. Two things were necessary for the success of this terrible war to be waged to win back freedom. The first thing was to create a possionate desire in Hindusthan for this ideal; the second was to make all the country rise simultaneavsly for the purpose of achieving it. To turn Indian mind in to the channels of freedom and to guide Indias hand to strike for freedom these to things it was necessary to accomplish, and this in such a manner that the company's Goverment should not suspect any thing while the scheme was yet unripe. Not for getting historical experience but guide by it. a secret organization was resolved upon and at once, started Brahmavarta……A little before 1856, Nana began to send missionaries all over India to imitiate people into this political ideal. In addition to sending missionaries to awaken the people, Nana also sent tried and able men to the different princes from Delhi to Mysore to fill their minds with the united states of India and to induce then to join in the revolution."

अर्थात्—ब्रह्मावर्त्त के महल में प्रत्येक व्यक्ति को यह चिन्ता व्याकुल कर रही थी कि यह उद्देश्य कैसे प्राप्त किया जाये। स्वतन्त्रता की वापसी के उद्देश्य के लिये भयंकर युद्ध की सफलता के लिये दो बातें आवश्यक थीं। पहली बात यह थी कि इस उद्देश्य के लिये हिन्दुतान में एक तीव्र और जोशपूर्ण इच्छा पैदा की जाये। दूसरी बात यह थी कि इसको प्राप्त करने के लिये सारा देश एक साथ उठ खड़ा हो।

भारत के मस्तिष्क की धारा को स्वतन्त्रता की ओर फेरने लिये और स्वतन्त्रता के लिये हाथ मारने के लिये पथ प्रदर्शन के लिये इन दो बातों को पूर्ण करना आवश्यक था। और यह भी इस रीति से करना कि कम्पनी की सरकार को उस समय तक जरा भी सन्देह न हो जब तक कि यह व्यवस्था पक्की न हो जाये। इतिहास के अनुभवों को भुलाना नहीं चाहिये, बल्कि उससे शिक्षा लेनी चाहिये। इस पर एक गुप्त संगठन का निश्चय किया गया। और एकदम ही उसको ब्रह्मावर्त्त में आरम्भ कर दिया…… सन् १८५६ से थोड़े ही समय पहले जनता को इस उद्देश्य के प्रति उकसाने के लिये नाना साहब ने सारे भारत में प्रचारक भेजने आरम्भ किये। इसके साथ ही नाना साहब ने विश्वस्त और योग्य व्यक्तियों को देहली से लेकर मैसूर तक के भिन्न भिन्न शासकों के पास भेजा ताकि वे उनके मस्तिष्कों में भारतीय संयुक्त राज्य की भावनाओं को भर सकें और उनको क्रान्ति में सम्मिलित होने के लिये प्रेरित कर सके।"

(Indian war of Independence P. 93)

इन उद्धारणों से यह सिद्ध होता है कि सन सत्तावन की क्रान्ति के सूत्रधार नाना साहब थे और उन्होंने यह कार्य अजीमुल्ला के मशवरे से सन १८५५ के अन्त में प्रारम्भ किया। किसी कार्य को आरम्भ करते ही तो वह कार्य पूरा नहीं हो जाता? उसमें समय और शक्ति लगती है। परन्तु दीनबन्धु जी ने तो सगठन के प्रारम्भ होने से पहले ही उसके फल दयानन्द के मुख से कहलवा दिये जिससे स्पष्ट होता है कि ये सब बातें दीन बन्धु जी की कल्पना मात्र हैं।

आगे दीनबन्धु जी ने अफगानिस्तान, पंजाब और नेपाल के साथ अंग्रेजों के युद्ध की बात स्वामी जी के मुख से कहलवाई है। इनमें नेपाल का युद्ध तो सन् १८१४-१६ में हुआ जबकि ऋषिदयानन्द का जन्म भी नहीं हुआ था और न उस समय तक नेपाल के युद्ध का इतिहास उपलब्ध हुआ था। अफगानिस्तान का पहला और दूसरा युद्ध सन् १८३९-४२ में हुआ इनका इतिहास जे० डब्लू० के सन १८५१ में लिखा। पंजाब के साथ अंग्रेजों का युद्ध १८४५-४६ और १८४९ में हुए। इन लड़ाइयों का इतिहास (The sikhs war) १८९७ में लिखे गये। इसलिये स्वामी जी ने ये इतिहास न पढ़े और न सुने। दीनबन्धु जी के लेखानुसार स्वामी जी १८४८ से १८५४ तक के ६ वर्ष के अन्दर योग शिक्षा और योग साधना में संलग्न थे इसलिये वे गुरुओं के आदेशों के अनुसार सांसारिक झंझटों से पृथक् रहते थे। ये सब बातें स्वामी जी के मुख से उन इतिहासों से लेकर कहलवाई गई हैं जो ऋषिदयानन्द की मृत्यु के बाद लिखे गये। उदाहरण के लिये सरकार के इतिहास को देखिये :—

In 1851, the Peshwa Bajiro II died. Let not a single tear be should for two death! For after losing his own kingdom is 1818, this blot in the escutchean of the Peshwa spent his time in helping to ruin the kingdoms of other kings! He saved considerably on the pension of eiqht lakhs of Rupees allowed to him by the Company. Later, when the English went to war with Afghanistan, he helped then with a wan of fifty lakhs out of his savings. Soon aftre, the English went to war with the Sikhnation of the Panjab……This Baji—this Peshwa of Shiwa ji and his descendants—spent money out of his own pocket and sent one thousand infantry and one thausand cavalry to the assistance of the English!··We have rather to thank the God of Death that suchatraitor—this Baji died before 1857." (P. 26)

सन् १८५१ में बाजीराव द्वितीय की मृत्यु हो गई। उसकी मृत्यु पर एक आंसू भी नहीं बहाना चाहिये। क्योंकि उसने सन् १८१८ में अपने राज्य को खोने के पश्चात् पेशवा के चिह्नवाली ढाल में कलंक रूपी इस बाजी राव ने अपना समय दूसरे राजाओं के नष्ट करने वाले अंग्रेजों की सहायता करने में लगाया। उसने उस धन में से जो उसे कम्पनी की ओर से ८ लाख रुपये वार्षिक पेंशन के रूप में मिलता था काफी धन बचाया था। इसके पीछे जब अंग्रेजों ने अफगानिस्तान के साथ युद्ध छेड़ा था। उसमें पचास लाख रुपये अंग्रेजों को ऋणरूप में देकर उनकी सहायता की थी। उसके थोड़े ही समय के पश्चात् जब अंग्रेजों ने पंजाब के सिक्खों के साथ युद्ध छेड़ा … इस बाजी राव ने जो शिवाजी का पेशवा और उसका उत्तराधिकारी था अपनी जेब से धन खर्च किया और अंग्रेजों की सहायया करने के लिये एक हजार पैदल सेना और एक हजार घुड़सवार सेना भेजी ……हम बाजीराव की मृत्यु पर भगवान् का धन्यवाद करते हैं। कि यह इस प्रकार का देशद्रोही बाजीराव सन १८५७ से पूर्व ही मर गया।"

पाठकगण! सावरकर के इस लेख को योगी के आत्मचरित्र केउस लेख से जो अजीमुल्ला के प्रश्न के उत्तर में ऋषिदयानन्द के मुख से कहलवाया है मिलाकर देखे? और निश्चय करें कि क्या दीनबन्धु जी का लेख सावरकर के लेख की नकल नहीं है? कई अन्ध विश्वासी यह कह सकते हैं कि सावरकर ने ही ऋषि दयानन्द के लेख की नकल की होगी? परन्तु यह तो असम्भव है क्योंकि ऋषिदयानन्द की तथा कथित अज्ञात जीवनी तो यत्रतत्र छपी पड़ी थी जो सन् १९७१ में प्रकाश में आनी शुरु हुई। और सावरकर की मृत्यु सन १९७१ से कई वर्ष पहले हो चुकी थी सावरकर का इतिहास सन् १९०९ में छपा था अर्थात् दीनबन्धु की अज्ञात जीवनी से ६० वर्ष पहले इसलिये ऋषिदयानन्द ने भी यह लेख सावरकर के इतिहास में से नकल नहीं किया अत: यह निश्चित है कि किसी तीसरे व्यक्ति ने सावरकर के इतिहास में से ये बाते चुराकर ऋषि दयानन्द के नाम से लिख दीं। वह व्यक्ति दीनबन्धु जी या उनका कोई सहयोगी ही हो सकता है! (क्रमश:) ●

आर्यसमाज स्थापना शताब्दी—२

कुछ विचारणीय सुझाव

(श्री सुरेन्द्रसिंह कादियाण w/z 79 राजा पार्क, शकूर बस्ती देहली)

हमारी शिक्षण संस्थाएँ

महर्षि दयानन्द ने गुरुकुल शिक्षा पद्धति का समर्थन सत्यार्थप्रकाश मे किया है। उन्होने स्पष्ट लिखा है कि बाल व बालिकाओ के पृथक् व दूर गुरुकुल होने चाहिय और बाल, बालिकाओ के गुरुकुल मे क्रमश स्त्री व पुरुष अध्यापको का प्रवेश न हो। ऋषिवर के इस आदेश की अवहलना करके डी ए वी सस्थाओ का श्री गणेश किया गया—हो सकता है इसका औचित्य रहा हो। लेकिन आज उनका क्या स्वरूप है? प० जगत्कुमार जी शास्त्री ने मुझे बताया है कि उन्होने अजमेर की डी ए वी सस्था की कैंटीन मे अडो का विक्रय होते देखा है, मास भी बिकता हो तो आश्चर्य नही। दिल्ली स्थित हसराज कालिज के छात्रावास मे एक दो वर्ष पहले यह विवाद चला था कि माँस परोसा जाय या नही। डी ए वी सस्थाओ मे धूम्रपान तो साधारण बात है—अध्यापक तथा प्रिसिपल तक इस कुटेव के शिकार हैं। वैदिक धर्म की शिक्षा इन सस्थाओ मे नही मिलती—आर्य विद्वानो की नियुक्ति इनमे नही होती। इन सस्थाओ मे सबसे बडा दोष यह आ गया है कि इनमे 'सहशिक्षा' का पदार्पण हो चुका है। यह ऋषि के मिशन से विश्वासघात है, वैदिक प्रणाली की अवमानना है—सहशिक्षा के दोषो से ये सस्थाएँ बच नही सकती। कोई बताये कि डी ए वी सस्थाए अन्य सस्थाओ अथवा स्कूल कालिजो के सभी दोष इसमे आ गये हैं। डी ए वी सस्थाओ के मुकाबिले क्या विशेषता रखती हैं। अन्य सस्थाओ अथवा स्कूल कालिजो के सभी दोष इसमे आ गये है। डी० ए० वी० सस्थाओ के व्यामोह ने गुरुकुल शिक्षा पद्धति की लोकप्रियता को भारी हानि पहुँचायी है। गुरुकुल पार्टी और कालज पार्टी का अस्तित्व आज भी बना हुआ है। जो आन्तरिक सघर्ष को हवा देता रहता है। गुरुकुल कागडी जैसी दो चार महान् सस्थाओ के कारण गुरुकुल प्रणाली आज कुछ जीवित है, नही तो छोटे छोटे गुरुकुल या तो स्कूल बन गये है या बन्द हो चुके है। मेरे गाँव के निकट स्वामी दर्शनानन्द जी महाराज ने गुरुकुल बिरालसी (मुजफ्फर नगर) की स्थापना की थी। दिवगत आर्य नेता ठा० यशपाल सिह जी के पिता जी ने अथक प्रयास से इस गुरुकुल की उन्नति की राह पर अग्रसर किया था। लेकिन यह गुरुकुल अब कुछ वर्षों से हाई स्कूल मे बदल चुका है। ऐसा न जाने कहा कहा हुआ होगा। गुरुकुलो का वातावरण भी आज कुछ बदल रहा है—मिशन स्कूलो की नकल अब वे भी धीरे धीरे करने लगे हैं। गुरुकुल कागडी मे तो विश्वविद्यालयो जैसा रग ढग आने लगा है। डी ए वी सस्थाए अब ऋषि की सस्थाए नही रही है और गुरुकुल कुछ कुछ डी ए वी सस्था बन रहे हैं अर्थात् डी ए वी सस्थाओ का पतन हो चुका है और गुरुकुल उस पतन की ओर अभिमुख है। इस स्थिति मे सुधार होना चाहिये। वेद विश्वविद्यालय की योजना और उसकी चर्चा प्राय आर्य विद्वानो व नेताओ मे होती रहती है लेकिन ठोस उपलब्धि अभी मिलती नहो दीखती। सभी को एक जुट होकर कार्य करना चाहिये। गुरुकुल कागडी के आधीन यदि देश के सभी गुरुकुल व डी ए वी सस्थाए हो जाये तो उस महान् उद्देश्य को प्राप्त करना सुगम होगा जिसे दृष्टि मे रखते हुए इन सस्थाओ की स्थापना की गई थी। एकता का ऐसा अनुपम उदाहरण यदि १९७५ से पूर्व दिया जाय तो आर्यसमाज स्थापना शताब्दी समारोह सफल हो जायेगा।

यज्ञोपवीत और शिखा

मेरी इच्छा इस प्रसग को उठाने की नही थी और मै जानता हूँ इसे उठाकर मै आर्य विद्वानो के कटाक्ष व आलोचना का शिकार बनूगा। लेकिन फिर भी मुझसे रहा नही गया, इसके कई कारण हैं। यज्ञोपवीत और शिखा धारण को नई पीढी के आर्यसमाजी कतई पसन्द नही करते, कुछ अपवाद भले ही मिल जाये। नई पीढी के अनेक समाजियो को मैं जानता हू जो या तो इनका धारण नही करते, करते भी हैं तो बुझे मन से लोगदिखावे के लिये—इसे मैं आडम्बर मानता हूं। इन समाजियो मे कुछ लेखक व विद्वान् भी हैं, जब इनसे कहा गया कि पत्र पत्रिकाओ मे इस पर चर्चा होनी चाहिये तो वे अपनी प्रतिष्ठा कायम रखने के लिये पहल करने से कतराते हैं। आर्यसमाज मे इन समाजियो के दर्शन प्राय होते हैं, वे यज्ञोपवीत व शिखा धारण भी नही करते और इसके विषय मे चर्चा भी उठाना नही चाहते। आर्य नेताओ व विद्वानो और सन्यासियो से यह बात छुपा नही है लेकिन न तो वे उन्हे टोकते है और न ही यज्ञोपवीत और शिखा की अनिवार्यता को समाप्त करते है। जो चीज व्यवहार मे नही आ रही उसकी अनिवार्यता का क्या औचित्य? गाँव के सीधे साधे लोग इन्हे धारण करते हैं लेकिन पढे लिखे नवयुवक इसे रूढिवाद का चिह्न समझते हैं और इसी कारण आर्यसमाज मे आने से कतराते हैं। नई पीढी को आमन्त्रित करने से पूर्व इस कठोर नियम मे परिवर्तन होना चाहिये—जब आज बिना जनेऊ चोटी के समाजी समाजो के सदस्य हैं तो नई पीढी को यह छूट देना सम्भव क्यो नही?

एक दूसरी बात यह देखने मे आती है कि यज्ञोपवीत और शिखा धारण करना किसी व्यक्ति के सदाचारी होने का प्रमाण-पत्र नही है। मैंने स्वय इन लोगो को धूम्रपान करते, अडे मास मदिरा का सेवन करते, भाग रगडते, सुल्फा पीते देखा है और ऐसे एक महाशय तो आर्यसमाज के मत्री रह चुके है। आर्यसमाज की ध्वज कीर्ति पर यह कलक है। 'आर्यमर्यादा' मे यह समाचार प्रकाशित हो चुका है कि जालधर के एक समाज मन्दिर मे कुछ लोगो को मदिरापान करते देखा गया है। यज्ञोपवीत और शिखाधारियो मे ऐसे ऐसे लोग मिलेंगे जिनके दुष्टकर्मों को देख कर सिर लज्जा से झुक जाता है और यही लोग आर्यसमाजो के पदाधिकारी बने बैठे हैं—मेरा कहने का भाव मात्र इतना है कि यज्ञोपवीत शिखा एक दिखावा मात्र रह गया है। बस औपचारिकता निभाने के लिए इसे धारण किया जाता है— अधिकाशत ऐसा ही हो रहा है। जो लोग इन्हे धारण करते हैं वे आर्यसमाजी हैं और जो नही करते वे प्रवेश के पात्र नही समझे जाते भले ही वे कितने ही सदाचारी, सच्चरित्र क्यो न हो, आर्यसमाज की प्रगति के लिए निष्काम भाव से सेवा करने वाले क्यो न हो, ऋषिवर दयानन्द के प्रति कितनी भी श्रद्धा क्यो न रखते हो—उन्हे कोई 'चास' नही मिलता कोई वारिष्ठता नही मिलती—धीगामुस्ती से प्रवेश कर जाये तो बात अलग है। मेरा विचार है जब तक सम्बधित नियम को बदल नही दिया जाता तब तक इन सत्यार्थियो को आर्यसमाज का सदस्यता फार्म नही भरना चाहिए। आर्यसमाज से बाहर रह कर भी ऋषि दयानन्द के मिशन को सफल बनाने का प्रयत्न हो सकता है। नियम के रहते प्रवेश करना आर्यसमाज के प्रति विश्वासघात है और एक सदाचारी किसी से विश्वासघात नही किया करता।

श्री ओम्प्रकाश जी त्यागी ने एक पुस्तक 'धर्म-चिन्तन' लिखी है जिसका प्रकाशन 'जन-ज्ञान' ने किया है। इस पुस्तक के पृष्ठ १३-१५ पर धर्म और मजहब मे अन्तर दिखाया गया है। क्रम स० ८ के अन्तर्गत लिखा गया है—"धर्म मे बाहर क चिह्नो का कोई स्थान नही। क्याकि धर्म लिगात्मक नही है। यथा—

न लिंग धर्मकारणम्

अर्थात् लिग धर्म का कारण नही है। परन्तु मजहब के लिये बाहरी चिह्नो का रखना अनिवार्य है।

हो सकता है उपरोक्त शब्द सिखो के पच ककार या सनातनियो के चन्दन से पुते मस्तक को ध्यान मे रखते हुए या मुसलमानो की दाढी मूछ की बनावट को देखते हुए, या ईसाइयो के गले मे लटकते 'क्रास' को देखते हुए लिखे गये हो। इस सम्बन्ध मे मैंने त्यागी जी से पत्र व्यवहार करते हुए लिखा कि क्या यज्ञोपवीत व शिखा भी बाहरी चिह्न नही हैं—क्या इससे वैदिक धर्म भी मजहब की कोटि मे नही आता। उनका कोई सतोषजनक उत्तर मुझे नही मिला— कभी उन्होने लिखा ससद् के कार्य मे व्यस्त रहने के कारण मुझे विस्तार से पत्र लिखने का अवकाश नही है, कभी उन्होने लिखा कि वह लेख मेरा नही, भारतेन्द्रनाथ जी का है, उन्ही से मागो। पुस्तक त्यागी जी की है, इस लेख के नीचे भारतेन्द्रनाथ जी का नाम नही है—तब हम किस से शका-समाधान कराये? आज त्यागी जी व भारतेन्द्र जी, दोनो ही अपनी अपनी पत्रिका निकाल रहे हैं—तब नही तो अब इस आपत्तिजनक लेख पर विस्तार से प्रकाश डाला जाना चाहिए। दूसरो के लिए जाल बुनते बुनते जो यह अपनी टाग फस गई है, इसे छुडाने का सद्प्रयास होना चाहिए। (क्रमश:)

भक्त भगवान् संवाद

(ले० श्री खेमचन्द्र यादव—डब्ल्यू १८, ग्रीन पार्क, नई दिल्ली)

गीता मे श्रीकृष्ण जी महाराज अर्जुन को बताते है कि सहस्रो व्यक्तियो मे से किसी एक को ही प्रभु की प्राप्ति की इच्छा जाग्रत होती है। और उनमे से भी कोई विरला ही इसके लिये प्रयत्न करता है और अन्त को तो कोई भाग्यवान् ही लाखो करोडो मे उस करुणामय भगवान् को पाने मे सफल होता है। वह भी एक दो जन्म मे नही, न जाने उस परम पद की प्राप्ति के लिये कितने जन्मो तक अथक अटूट श्रद्धा और उत्साह से जुटा रहना पडता है। मगर इतना अवश्य है कि जैसे ही किसी भाग्यवान् भक्त के हृदय मे ऐसी भावना जाग्रत होती है, प्रभु कृपा करके उसे मार्ग दिखाते है। और कठिन मजिल को सुगम बनाते जाते है। वह कैसे मार्ग दिखाते हैं वह कैसे सहारा देते हैं आइये इस पर कुछ विचार कर।

पूर्व जन्म के पुण्य कर्मो के प्रभाव से और वर्तमान जन्म के प्रयास से भक्त को प्रभु से प्रेम जगा है। उसकी लग्न सत्सग स्वाध्याय मे लगी है। उसने सुना और जाना कि वेद ईश्वर की वाणी है। उसी के द्वारा प्रभु मार्ग दिखाते हैं। यह धारणा मिथ्या है कि वेद कठिन है समझ मे ही नही आते। वेद तो अथाह हैं। पवित्र गगा कितनी है? प्यासे को पूरी गगा की आवश्यकता नही है वह तो अपनी जरूरत भर एक दो लोटा जल से ही तृप्ति प्राप्त कर लेगा श्रद्धा प्रेम और लग्न से जुट जाने पर वेद तो स्वय अपनी बात भक्त ही की भाषा मे प्रकट करना प्रारम्भ कर देता है। अपने सत्सग और स्वाध्याय से प्रकाश पाकर भक्त ने भगवान् से कहा—

इन्द्र क्रतु न आभर पिता पुत्रेभ्यो यथा।
शिक्षाणो अस्मिन्पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशमिहि ।।

हे बहुतो द्वारा समय समय पर सहाय के लिये पुकारे गये मेरे करुणामय भगवान्। तू हमे इस प्रकार शिक्षा दे, जैसे कि सासारिक पिता अपने नादान पुत्र को शिक्षा देता है। हे मेरे प्यारे पिता तेरी शिक्षा से हम वह ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं कि जिस पर चल कर हम तेरी ज्योति को तेरे प्रकाश को नही, नही तुझे ही पा जावे। हमे परम पद मिल जावे। बस और कुछ पाना शेष ही न रहे। मै अल्पज्ञ हू सच्चा मार्ग पा जाने मे मैं अपने को असमर्थ पा रहा हू। तू ही कृपा कर मेरे कल्याण हेतु सीधा मार्ग दिखा, मुझे ज्ञान दे, प्रकाश दे।

जब सासारिक पिता अपने बच्चे की प्रार्थना को नही ठुकरा सकते, तो भला पिताओ के पिता करुणासागर भगवान् अपने प्यारे अमृत पुत्र की हृदय से निकली सच्ची, सीधी और स्वाभाविक प्रार्थना को कैसे ठुकरा सकते है? वह तो दया के सागर है और इनका स्वभाव ही अपने अमृत पुत्र जीवो का परम कल्याण करना है। उन्हे परम पद प्राप्त कराना है। वह तो ठहरे परम दानी। प्रतिदिन प्रतिक्षण वह अपने अनुपम अलौकिक दान से भक्तो की झोलिया भर रहे हैं। यह सब कुछ होते हुये भी यह भक्त अपने भगवान् से भिक्षा नही पा रहा है। क्यो? भक्त नही समझ पा रहा है, मगर भगवान् तो अन्तर्यामी हैं वह देख रहे है कि भक्त का भिक्षापात्र अपवित्र है, दूषित है, उसमे तो विषैला मल लगा है। भला भक्त का भिक्षापात्र मे अपना अमृत रूप हलुवा डाल सकता है? भगवान् भक्त को सकेत करते है, आदेश देते है और पावन वचन यू कह रहे हैं—

एता एना व्याकर खिले गा विष्ठिता इव।
रमन्ता पुण्या लक्ष्मीर्या पापीस्ता अनीनशम् ।।

मेरे प्यारे वत्स! तू मेरा दान पाने से पहले उस बाधा को उस दीवार को बीच से हटा जो तूने स्वय ही बना रखी है और मेरे दान को तुझ तक नही जाने देती। चूकि तूने ही उसे चुना है, सजोया है, पाला है तू ही उसे हटा। वह दीवार है तेरे पास एकत्र हुई वह सम्पत्ति, जायदाद, मकानात, बैंक बैलेंस आदि आदि जो कि तूने अनैतिक जरिये से बटोरी है। देख भोला भाला, अशिक्षित ग्रामीण गौ चराने वाला व्यक्ति अपनी सहस्रों गौवों तक को भी अलग अलग जानता है, पहचानता है। भाई इसी प्रकार तू शान्ति से बैठ कर अपने पास एकत्र हुई सम्पत्ति की पडताल कर। और देख कि जो सम्पत्ति पाप की कमाई की है उसे तू अपने पास से पृथक् कर दे, उसे हटा दे। उसके हटने पर मेरे तेरे बीच की दीवार ढह जायेगी और मेरी दान रूपी धारा सीधी तेरे पास बिना रोक टोक के पहुच कर तेरी प्यास बुझा देगी, तुझे निहाल कर देगी।

भगवान् के इस आदेश के पाने पर भक्त ने अपने को टटोला। दूसरो को धोखा दिया जा सकता है, मगर अपने को ही कोई कैसे धोखा दे सकता है। गहराई से भीतर जब भक्त बैठा तो उसने पाया कि बहुत सी एकत्र हुई वस्तुओ मे पाप की कमाई का पैसा भी लगा है। मगर अब तो यह सब चीजें उसके अभिन्न अग बन चुकी हैं। इन्हे वह कैसे अलग कर सकता है? भला कोई अपना अग भी काटकर अलग कर सकता है, रागऊ से सासारिक मित्र और अपना ही मन यह भी समझाता है कि आगे पाप की कमाई नही करनी चाहिये और जो पास है उसको दान मे यज्ञ मे लगाते रहन मे और इस प्रकार उसका स्वामी बने रहने मे कोई दोष भी नही हैं।

भक्त जब सन्ध्या करने एकान्त मे बैठता है तो प्रण करता है कि वह अवश्य ही चाहे जो कुछ भी हो वह इस दूषित सम्पत्ति को हटाकर ही दम लेगा। मगर जैसे ही अपनो मे रमता है कारोबार मे लगता है तो यह धारणा ढीली ही नही पड जाती प्राय लुप्त सी हो जाती है। इस प्रकार यह द्वन्द्व युद्ध उसके भीतर चलता रहता है। अर्जुन महाभारत जीतने मे सफल हुआ मगर बेचारा देवासुर इस सग्राम मे फुटबाल बना हुआ है कभी देवो की ओर कभी असुरो की ओर झुक जाता है और युद्ध लम्बा होता चला जाता है। कोई भी कितना बडा डाक्टर क्यो न हो वह स्वय अपना आपरेशन नही कर सकता। उसे तो दूसरे डाक्टर का सहारा लेना ही पडेगा। भक्त थक गया है। अपने को असमर्थ पाकर अन्त को डाक्टरो के डाक्टर करुणामय भगवान् के दरबार मे पुकार मचाता है और कहता है—

या मा लक्ष्मी पतयालूरजुष्टा, अभिचस्कन्द वन्दनेव वृक्षम्।
अन्यत्रास्मत् [illegible], [illegible] ।।

हे मेरे प्यारे करुणामय पिता! मैंने जाच पडताल मे पाया कि बहुत सी मेरे पास एकत्र लक्ष्मी पाप की कमाई की है। वह मुझसे बुरी तरह चिपट गई है कि छुटाये नही छूटती। मेरे जीवन रस को चूस रही है। तेरी ओर आने मे दीवार बन कर खडी हो गई है। उसे अपने से हटाने मे मै अपने को नितान्त असमर्थ पा रहा हू। मेरे भगवान् तू कृपा कर इस चुडैल से पिड छुडा दे। तू ही इसे मेरे से दूर हटा दे।

भगवान् तो सर्वान्तर्यामी है सच्ची हृदय से निकली प्रार्थना को कैसे ठुकरा सकते है। यही नही वह तो सर्जनो के भी सर्जन हैं। भयानक से भयानक आपरेशन भी ऐसी कुशलता से सावधानी से करते है कि रोगी टूटने नही पाता। उसकी कुशलता और दयालुता पर पूर्ण विश्वास रखने वाला तो कैसा भी बडा (मेजर) आपरेशन क्यो न हो, क्लोफारम की या बेहोशी की आवश्यकता भी नही समझता। वह तो प्रसन्नता से उमग के साथ अपने भावी कल्याण पर निगाह रखकर प्रसन्नता मनाता है। आनन्दित होता है। अरे नाचता है ठुमकता है।

हा तो लीजिये रोगी की प्रार्थना पर सर्जन ने आपरेशन करना प्रारम्भ कर दिया है। देखो! वह देखो आज भक्त के भण्डार मे आग लग गई है। ओह हजारो का माल जल कर खाक हो गया है।

अरे और यह क्या? भक्त की दुधारू बीस सेर दूध देने वाली गौ को सर्प ने डस लिया और वह मर गई। यह लो और गजब, बस मे भक्त ज्यू ही चढने लगा बस चल दी और वह गिर पडा और उसकी टाग की हड्डी टूट गई। प्लास्टर चढा दिया गया है और वह तख्त पर पडे हैं। पैर मे ढाई किलो का बोझ भी लटका दिया गया है कि कही आगे टाग छोटा न हो जावे। इसी मुसीबत मे किसी भले मानुष ने उनकी जेब भी साफ कर दी और वह एक सहस्र रुपया गवा बैठे जिसे लेकर वह दूसरी गऊ लेने जा रहे थे। उन्हे जानने वाले सब हैरान है। वह सब जानते है कि वह सच्चे हैं भक्त हैं। उन पर यह आपत्ति पर आपत्ति कैसे? मगर भक्त तो खूब समझ रहा है कि उसके कुशल सर्जन ने आपरेशन करना प्रारम्भ कर दिया है। आपरेशन के समय कही कुशल और सच्चा सर्जन भी कभी कोई रियायत करता है? वह तो खूब दबा दबा कर सब मवाद बाहर करता है। रोगी भी कोई साधारण व्यक्ति नही है वह तो सच्चा आस्तिक और आर्य है उसका पग सुमार्ग पर उठ चुका है वह प्रसन्न है और उमग के साथ अपने प्यारे कल्याणकारक करुणामय सर्जन रूपी भगवान से कहता है—

नमोऽस्तुते निर्ऋते तिग्मतेजो, अयस्मान् विचृता बन्धपाशान्।
यमो मह्यपुनरित त्वा ददाति, तस्मै यमाय नमो अस्तु मृत्यवे ।।

ओ भारी विपद! आ आ मैं तेरा स्वागत करता हू। अरे कल्याणी मैं तुझे नमस्कार करता हू। मैं खूब जानता हू कि तुझे मेरे प्यारे पिता परमेश्वर ने मुझे उबारने के लिये मेरे बन्धन काट डालने के लिये ही भेजा है। अरी कल्याणी तू कसर मत छोड अपना पूरा प्रहार कर। ओ! मेरे करुणामय भगवान् मैं तुझे प्रणाम करता हू तेरी इस अनुपम कृपा के लिये।

भक्त के लिये शूल फूल बन गये है उसे कैसे रोना धोना वह तो प्रसन्न है। प्रभु की करुणा के साक्षात् दर्शन कर रहा है। इस मुसीबत मे भी उसके ऊपर सुख और शान्ति की वर्षा चारो ओर से हो रही है। जबकि दूसरे उसके दुःखो को देखकर परेशान हैं चिन्तित भी है। रोते भी है।

ओ मा आर्यसमाज! तू ऐसे ही भक्त पैदा कर।
भक्त और उसके भगवान् की जय।

सत्यार्थप्रकाश के सौ आदर्श वचन

(श्री पं० देवेन्द्रनाथ शास्त्री एम० ए०, १५ आर्य कुटीर, नरेला (दिल्ली)

दूसरा समुल्लास—

१. जैसे सन्तान जितेन्द्रिय, विद्या प्रिय और सत्संग में रुचि करें वैसा प्रयत्न करते रहें।

२. सदा सत्य भाषण और सत्य प्रतिज्ञा युक्त सबको होना चाहिये। किसी को अभिमान न करना चाहिये।

३. छल कपट व कृतघ्नता से अपना ही हृदय दुःखी होता है तो दूसरे की क्या कथा कहनी चाहिये।

४. क्रोधादि दोष और कटुवचन को छोड़ शान्त और मधुर वचन ही बोले।

५. जिस प्रकार आरोग्य विद्या और बल प्राप्त हो उसी प्रकार भोजन छादन और व्यवहार करें करावें।

६. जितनी क्षुधा हो उससे कुछ न्यून भोजन करें।

तीसरा समुल्लास—

७. सन्तानों को उत्तम विद्या शिक्षा गुणकर्म और स्वभाव रूप आभूषणों का धारण कराना माता पिता आचार्य और सम्बन्धियों का मुख्य कर्म है।

८. (पाठशालाओं में) सबको तुल्य वस्त्र खान पान आसन दिये जायें चाहे वह राजकुमार वा राजकुमारी चाहे दरिद्र के सन्तान हों, सबको तपस्वी होना चाहिये।

९. जब तक इस होम करने का प्रचार रहा तब तक आर्यावर्त देश रोगों से रहित और सुखों से पूरित था। अब भी प्रचार हो तो वैसा हो जाय।

१०. यह बड़ा कठिन काम है कि जो काम के वेग को थाँभ के इन्द्रियों को अपने वश में रखना।

११. ब्राह्मण भी अपना कल्याण चाहें तो क्षत्रियादि को वेदादि सत्य शास्त्र का अभ्यास अधिक यत्न से करावें।

१२. सब वर्णों के स्त्री पुरुषों में विद्या और धर्म का प्रचार अवश्य होना चाहिये।

१३. सब दानों से वेद विद्या का दान अतिश्रेष्ठ है।

१४. जिस देश में यथायोग्य ब्रह्मचर्य विद्या और वेदोक्त धर्म का प्रचार होता है वही देश सौभाग्यवान् होता है।

चौथा समुल्लास—

१५. जो अपने गोत्र वा माता के कुल में निकट सम्बन्ध की न हो उसी कन्या से वर का विवाह होना चाहिये।

१६. जिस देश में विवाह की विधि श्रेष्ठ और ब्रह्मचर्य विद्याभ्यास अधिक होता है वह देश सुखी और जिस देश में ब्रह्मचर्य विद्याग्रहणरहित बाल्यावस्था और अयोग्यों का विवाह होता है वह देश दुःख में डूब जाता है।

१७. जो माता पिता कभी विवाह करना विचारें तो लड़का लड़की की प्रसन्नता के बिना न होना चाहिये।

१८. जब से ब्रह्मचर्य से विद्या का न पढ़ना, बाल्यावस्था में पराधीन अर्थात् माता पिता के आधीन विवाह होने लगा तब से क्रमशः आर्यावर्त देश की हानि होती चली आई है।

१९. अब भी जो उत्तम विद्या स्वभाव वाला है वही ब्राह्मण के योग्य और मूर्ख शूद्र के योग्य होता है और वैसा ही आगे भी होगा।

२०. उत्तम धर्मात्मा पुरुषों के मार्ग में चलने से दुःख कभी नहीं होता।

२१. सत्पुरुषों को योग्य है कि मुख के सामने दूसरे का दोष कहना और अपना दोष सुनना, परोक्ष में दूसरे के गुण सदा कहना।

२२. जब तक मनुष्य दूसरे से अपने दोष नहीं कहता तब तक मनुष्य दोषों से छूटकर गुणी नहीं हो सकता।

२३. स्त्री का पूजनीय देव पति और पुरुष की पूजनीय अर्थात् सत्कार करने योग्य देवी स्त्री है।

२४. स्त्री और पुरुष को ध्यान रखना चाहिये कि वीर्य और रज को अमूल्य समझें। जो कोई इस अमूल्य पदार्थ को परस्त्री, वेश्या व दुष्ट पुरुष के संग में खोते हैं वे महामूर्ख होते हैं।

२५. जहां तक हो वहां तक अप्राप्त वस्तु की इच्छा, प्राप्त का रक्षण और रक्षित की वृद्धि, बढ़े हुए धन का व्यय देशोपकार करने में किया करें।

२६. तभी गृहस्थ आश्रम में सुख होता है जब स्त्री और पुरुष दोनों परस्पर प्रसन्न, विद्वान्, पुरुषार्थी और सब प्रकार के व्यवहारों के ज्ञाता हों।

पांचवां समुल्लास—

२७. जो सब वर्णों में पूर्ण विद्वान्, धार्मिक, परोपकार प्रिय मनुष्य है उसी का ब्राह्मण नाम है।

२८. जो संन्यासी सत्योपदेश और वेदादि सत्य शास्त्रों का विचार प्रचार नहीं करते तो वे भी जगत् में व्यर्थ भाररूप हैं।

२९. जो संन्यासी योग क्षेम से अधिक रखेगा तो चोरादि से पीड़ित और मोहित भी हो जायगा। ●

(पृ० २ का शेष)

जल से। जल भी न हो तो? तब श्रद्धा को अग्नि बनाकर सत्य की ही आहुति उस में डाले (श्रद्धापूर्वक सत्य का पालन करें) देखें।

शत० ११-३-१-२।

यज्ञ किये जाने के इन प्रश्न और उत्तरों में कहीं भी तो मांस का जिक्र नहीं आया। ऐसी स्थिति में महर्षियों पर मांस भक्षण वा यज्ञ में मांस डालने के दोष लगाना कैसी नीचता है।

नैरुक्त यास्क को तो शर्मा जी ने अक्ल के अन्धे तक कह दिया है, प्रतीत होता है, श्री शर्मा जी को संस्कृत वाङ्मय का किंचित् भी ज्ञान नहीं है, और लेखनी उठा बैठे ऐसे गम्भीर ग्रन्थों पर। जो व्यवहार एक साधारण व्यक्ति जानता है, शर्मा जी उससे भी शून्य हैं। एक डाक्टर बच्चे के फोड़े का वा अन्य रोगजनित शरीर भाग का आपरेशन करता है, अथवा ऐसी दवाई लगाता है, जो घाव आदि पर लगती है, बच्चे को कष्ट होता है, वह रोता है, बड़ों को भी दुःख होता है। अब यदि इसे हिंसा माना जावे तो क्या यह तर्क संगत होगा। अथवा सैनिक शत्रु से जूझ रहे हैं, दोनों ओर खूनखच्चर हो रहा है, देश के हित में क्या इसे हिंसा का नाम दिया जावेगा। अथवा शर्मा जी के यहां चोरी हो जावे, तो क्या चोर को दंड मिलने हेतु कोई कार्यवाही की जाना हिंसा होगी? छात्रों को अध्यापक उनके सुधार हेतु दंड दे, मारे, पीटे, धमकाये, क्या यह हिंसा होगी? बस इस प्रकार की अनुभूतियों में जो मूर्ख लोगों को हिंसा दीखती है, किन्हीं ने ये वाक्य बना दिये हैं—

'वेदिकी हिंसा हिंसा न भवति' वेद में कही हुई हिंसा हिंसा नहीं है। अब हम निरुक्त का वह स्थल भी उद्धृत कर देते हैं, जहां महर्षि यास्क के बजाय श्री शर्मा जी स्वयं ही अन्धे बन गये हैं—'ओषधे! त्रायस्वैनम् (निरुक्त १-५-१५ यजु० ४-१) स्वधिते मैनं हिंसीः (निरुक्त १-५-१५ यजु० ४-१) इत्याह हिंसन्। यह पूर्व पक्ष उपस्थित किया गया है, यास्क ने उत्तर दिया—आम्नायवचनादहिंसा प्रतीयेत। वेदवचन से यह हिंसा नहीं है।

वेद विरोधी वा जिज्ञासु ने प्रश्न किया है, यह कहते हुए कि वेद में कहा है इसकी हिंसा मत कर और फिर हिंसा की जा रही है। पूर्वपक्षी को प्रसंग का पता था, अतः यास्क के एक ही वाक्य से वह तो अवाक् हो गया। जिन्हें पता नहीं है हम उनके लिये महर्षि दयानन्द का भाष्य उपस्थित करते हैं—जैसे सोम लता आदि औषधिगण सब रोगों से रक्षा करता है, वैसे तू भी हम लोगों की रक्षा कर। रोग नाश करने में वज्र के समान होकर इस यजमान वा प्राणीमात्र को कभी मत मार। यहां यह दर्शाया गया है कि रोग निवारक दवाई दे, वह रोग को तो शमन करे, प्राण हरण न करे। यह अर्थ उपमालंकार से किया गया है। रोगी को औषधि दी ही जावेगी और सम्भवत वह पीडा भी अनुभव करे, किन्तु यदि उसका परिणाम उत्तम निकलता है, तो यह हिंसा नहीं कही जा सकती। और आज तक किसी ने इसे हिंसा माना भी नहीं है, यदि इसे हिंसा माना जावे, तो सब औषधालय बन्द हो जावें। न उस्तरे से किसी की हजामत बने। सब रोगी रहें, और केशधारी होकर जूवों से सिर खुजाते रहें। न कोई देश की रक्षा कर सके। सेना, पुलिस सब कुछ रखनी होगी। अब ऐसी सीधी सा बातें भी यदि शर्मा जी को नहीं सूझतीं, तो उन्हें अब हम क्या कहें। शास्त्र ने वहीं इसी प्रसंग पर कह दिया है— यह स्थाणु का अपराध नहीं है जो इसे अन्धा नहीं देख पाता है। यह पुरुष का ही अपराध है। वह ही पुरुष प्रसंसा का पात्र होता है, जो अनेक विद्याओं में पारंगत होता है। और यह पारगामिता विविध हस्तक्रिया कौशल से आती है।

महीधर आदि यदि शास्त्रों के रहस्य को नहीं समझ पाये, और शर्मा जी की भांति अनर्गल लिख गये, तो वे सब महर्षि यास्क की इसी कसौटी के अन्तर्गत आ जाते हैं। ●

किस देश में कितने भारतीय ?

भारतीय दूतावासों के अनुसार विदेशों में बसने वाले भारतीयों की संख्या निम्नानुसार है।

देश	संख्या	देश	संख्या
अफगानिस्तान	२०,०००	फिनलैंड	२८
अदन	२,०००	फ्रेंच गुयाना	२
अलजीरिया	१३२	फ्रांस	१,२००
अर्जेन्टाइना	१६०	घाना	१,७५०
आस्ट्रेलिया	३,१०८	जिब्राल्टर	१५०
आस्ट्रिया	१६५	ग्रैनेडा	९,५००
बहेरिन	५,५००	ग्रीस	१३
बारबेडोस	५१२	गुयाना	५
बेलजियम	३७७	गियाना	३,६४,०००
बोलविया	५	हांगकांग	७०००-८,०००
बोस्टवाना	४००	हंगरी	४५
ब्राजील	३००	इंडोनेशिया	३०,०००
फिजी	२,४१,०००	ईरान	१,१००
बर्मा	२,७२,०००	इटली	७६१
बुरन्डी	१७५	इराक	१२,५७०
कम्बोडिया	८०	आयरलैंड	१५०
केमरून	२०	जमैका	२७,९५१
कनेडा	२०,०००	जापान	१,१४१
सीलोन	१२,३४,१३६	जार्डन	३९
साइप्रस	८	केन्या	१,७२,६००
चिली	६३	कुवैत	२६,०००
कोलम्बिया	३४	लाओस	१,८००
केमरोस आइलैंड	८५	लेबनान	३६५
		लीरियूनियन	४३०
क्यूबा	३२	लिबिया	३३५
		मैडागास्कर	१६,०००
देमोही	२	मालवी	११,०००
डेनमार्क	२५६	मलेशिया	९,५०,०००
इथोपिया	४,५२०	माल्टा	१००
मौरिशस	५,२०,०००	स्वीडन	३३८
मैक्सिको	२०	स्विटजरलैंड	९००
मोरोको	५४०	सीरिया	१०
मसकाट	४,५००	तंजानिया	१,०२,०००
नीदरलैंड	२०२	थाईलैंड	१८,०१४
न्यूजीलैंड	६,१३०	ट्रिनीडाड टैबैगो	४,८०,०००
नाइजीरिया	३,६००	टोगो	४
नार्वे	३५	टोंगा	२६
पनामा	३६१	ट्रूशल स्टेटस	५,०००
फिलीपाइन्स	२,५१६	टुनिशिया	३०
पोलैंड	४७	टर्की	११
पीरू	१०	यु० ए० आर०	४५३
क्वेटार	२,०००	युगांडा	७६,३००
रूमानिया	१	यू० के०	२,७०,०००
रून्डा	४०	युरुगुआ	१
सऊदी अरेबिया	१०३५	यू० एस० ए०	३२,०६२
सेनगल	७३	यू० एस० आर०	८००
आइवरीकोस्ट	१	वैनजुला	१०००-५०००
जाम्बिया	२०	उत्तरी वियतनाम	८८
सीरियालीवन	४२५	दक्षिणी वियतनाम	२०००
सिंगापुर	१,३०,०००	पश्चिम जर्मनी	४,६८१
सोमालिया	१,३६०	सूरीनाम	१'१९,०००
दक्षिण रोडेशिया	८,१००	यमन (नार्थ)	२१
स्पेन	१,६००	यूगोस्लाविया	९६
सेंट विनसेंट	३,७०३	जामबिया	११,४५०
सूडान	२,५५०	जेयेरे	२,५००

आर्य महाविद्यालय किरठल (मेरठ)

वार्षिकोत्सव ८,९,१० जून ७३ को मनाया जावेगा इस समय आर्य-समाज के अनेक संन्यासी, उपदेशक और भजन प्रचारक पधारेंगे।

—चन्द्रप्रकाश शास्त्री एम. ए. मन्त्री

नेताजी को ४८ लाख रु० दान देने वाला आज याचक की श्रेणी में

कलकत्ता १७ अप्रैल। जिस व्यक्ति ने १९४३ में नेता जी सुभाष चन्द्र-बोस को भारत के स्वाधीनता संग्राम के लिए ४८ लाख रुपया (अपना सर्वस्व) न्यौछावर कर दिया था आज वह अकिंचन (गरीबी) की जिन्दगी व्यतीत कर रहा है।

श्री भूपेन्द्रपाल चौधरी और उनकी पत्नी श्रीमती ज्योत्स्नामयी चौधरी उस समय बर्मा में रहते थे। रंगून में उन्होंने नेताजी के आह्वान पर न केवल अपना सारा सोना अपितु सारी नकदी जो ४८ लाख रुपए की थी नेताजी के चरणों में अर्पित कर दी।

भाव विह्वल नेताजी ने जब इस दम्पती को अपने गुजारे के लिये इस धनराशि में से कुछ अपने पास रख लेने के लिये कहा तो इन्होंने यह कह कर कि "भारत मां की आवश्यकताएं उनकी आवश्कताओं से कहीं ज्यादा है" उसमें से कुछ भी लेने से इन्कार कर दिया। तब नेताजी ने सेवाओं की प्रशस्ति में आजाद हिन्द सरकार की ओर से उन्हें "सेवक ए हिन्द" का सर्वोच्च सम्मान प्रदान किया था।

इन आधुनिक भामाशाहों का पता तब चला जब श्रीमती चौधरी एक दिन अज्ञात ढंग से फ्रीडम फाइटर्स एसोसियेशन के दफ्तर में स्वाधीनता सैनिक की पेंशन के बारे में पूछताछ के लिये पहुंची। सौभाग्य से आजाद हिन्द सरकार के भूतपूर्व मंत्री श्री देवनाथ दास भी उस समय दफ्तर में मौजूद थे जिन्होंने इन महिला को तुरन्त पहिचान लिया और हृदय को छूने वाली उपयुक्त घटना सुनाई।

युद्ध की समाप्ति के पश्चात् ब्रिटिश सरकार ने बर्मा में चौधरी दम्पती की सारी सम्पत्ति कुर्क कर ली। १९४७ में जब वे भारत लौटे तो उनकी पैतृक भूमि चटगांव भारत विभाजन की भेंट चढ़ चुकी थी। तब से इनके पास आजीविका की कोई अच्छी व्यवस्था नहीं हो पायी।

इस उदार दम्पती ने तो देश प्रेम की वेदी पर अपना सर्वस्व होम दिया और जब उन्हें अपने जीवन यापन के लिये हाथ फैलाना पड़ रहा है। श्री चौधरी तो इस वेदना से अर्ध विक्षिप्त भी हो गए हैं।

एसोसियेशन जहां इस विषय में प्रधान मंत्री को लिख रहा है वहां उसने इस दम्पती के लिये एक "धन्यवाद कोष" की भी स्थापना की है। सहृदय व्यक्ति इस पते पर आर्थिक सहायता भेज सकते हैं : फ्रीडम फाइटर्स एसोसियेशन, ११ गवर्नमेण्ट प्लेस ईस्ट, कलकत्ता-१

—दैनिक हिन्दी हिन्दुस्तान से साभार १८-४-७३ का अंक

आर्य का लक्ष्य

मनन चिन्तन को न बिसारना, पतित जीवन शीघ्र उबारना।
परम लक्ष्य सदा दृढ़ आर्य का, असत का मल पक निवारना ॥१॥

कलह की न कुचाल पले कहीं, अनय का न कुकर्म फले कहीं।
सजग होकर वीर व्रती सुनो, विनय का न सुधर्म छल कहीं ॥२॥

निबल का अधिकार छिने नहीं, सबल का अति चार पले नहीं।
गाल पूरीत से परिवेश में, धवलिमा परिवार गलं नहीं ॥३॥

संभल जीवन दिव्य सँवार लो, वृहत अग्नि समस्त उभार लो।
नरक स्वर्ग विभेदन पालको, अवनि को ही स्वर्ग समझ लो ॥४॥

प्रचुरता नरता समवाय हो, सुजनता शिवतामय दया हो।
जगत् का अघ ओघ विनष्ट हो, प्रजा तर्क समेत उपाय हो ॥५॥

न जड़ता पशुता अव शेष हो, प्रबल पावनता मय वेश ही।
पनप ही न सके अनुदारता, सफल शक्ति मेरा यदि देश हो ॥६॥

(श्री भैरव दत्त शुक्ल, कसीर गंज नबीनगर सीतापुर)

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब द्वारा प्रकाशित और प्रचारित वैदिक साहित्य

१. बलिदान जयन्ती स्मृति ग्रन्थ—आर्य बलिदानो की गाथा मूल्य ४-५०
२ सोम सरोवर-वेदमन्त्रो की व्याख्या —प० चमूपति एम. ए. ३-००
३. जीवन ज्योति-वेदमन्त्रो की व्याख्या „ „ ३-००
४. नीहारिकावाद और उपनिषदे „ „ ०-२५
५. Principles of Arya samaj „ „ १-५०
६. Glimpses of swami Daya Nand „ „ १-००
७. पजाब का आर्य समाज पजाब तथा हरयाणा के आर्यसमाज का इतिहास २-००
८. वैदिक सत्सग पद्धति सन्ध्या हवनमन्त्र अर्थ रहित विधि १-००
९. वेदाङ्क —आर्यमर्यादा का विशेषाक ०-६५
१०. यजुर्वेद का स्वाध्याय „ „ „ ०-५०
११. वेद स्वरूप निर्णय —प० मदनमोहन विद्यासागर १-००
१२. व्यवहारभानु —महर्षि स्वामी दयानन्द ०-५०
१३. स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश— „ „ ०-४०
१४. Social Reconstruction By Budha & Swami Daya Nand By. Pt. Ganga Prasad Upadhya M. A. २-००
१५. Subject Matter of the Vedas By S. Bhoomanad १-००
१६. Enchanted Island By Swami Staya Parkashanand १-००
१७. Cow Protection By Swami Daya Nand ०-१५
१८. वेद मे पुनरुक्ति दोष नही है आर्यमर्यादा का विशेषांक २-००
१९. मूर्तिपूजा निषेध „ „ ०-५०
२०. धर्मवीर प० लेखराम जीवन —स्वामी श्रद्धानन्द १-२५
२१. कुलियात आर्य मुसाफिर प्रथम भाग—पं० लेखराम की पुस्तकों का संग्रह ६-००
२२. „ „ दूसरा भाग „ „ ८-००
२३. मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र —कु० सुशीला आर्या एम. ए. ०-२५
२४. योगीराज कृष्ण „ „ „ ०-१५
२५. गोकरुणा निधि —स्वामी दयानन्द सरस्वती ०-२०
२६. आर्यसमाज के नियम उपनियम ०-१०
२७. आर्य नेताओ के वचनामृत —साईंदास भण्डारी ०-१२
२८. कायाकल्प —स्वामी समर्पणानन्द सरस्वती १-५०
२९. वैदिक धर्म की विशेषताये —प० हरिदेव सिद्धान्त भूषण ०-१५
३०. स्वतन्त्रानन्द लेखमाला —स्वा० स्वतन्त्रानन्द जी जीवनी तथा उनके व्याख्यान १-२५
३१. आत्मानन्द लेखमाला—स्वामी आत्मानन्द सरस्वतीकी जीवनी १-२५
३२. आर्यसमाज के सदस्यता फार्म —सैकड़ा१०-००
३३. वैदिक गीता —स्वामी आत्मानन्द सरस्वती २-५०
३४. मनोविज्ञान तथा शिव सकल्प „ „ „ ३-५०
३५. कन्या और ब्रह्मचर्य „ „ „ ०-१५
३६. सन्ध्या अष्टाङ्गयोग „ „ „ ०-७५
३७. वैदिक विवाह „ „ „ ०-७५
३८. सुखी जीवन —श्री सत्यव्रत २-००
३९. एक मनस्वी जीवन —पं० मनसाराम वैदिक तोप १-५०
४०. छात्रोपयोगी विचारमाला —जगदेवसिंह सिद्धान्ती १-५०
४१. स्त्री शिक्षा —पं० लेखराम आर्य मुसाफिर ०-६०
४२ विदेशो में एक साल —स्वामी स्वतन्त्रानन्द २-२५
४३. वेद विमर्श —प० भगवद्दत्त वेदालकार २-००
४४. वेद विमश —प० वेदव्रत शास्त्री २-००
४५. आसनो के व्यायाम „ „ „ १-००
४६. महर्षि जीवन गाथा —स्वामी वेदानन्द वेदवागीश २-२५
४७. मास मनुष्य का भोजन नही—स्वामी ओमानन्द सरस्वती १-००
४८. वीर भूमि हरयाणा „ „ „ ४-००
४९. चोटी क्यों रखें —स्वामी ओमानन्द सरस्वती ०-५०
५०. हमारा फाजिल्का —श्री योगेन्द्रपाल १-५०
५१. सत्संग स्वाध्याय —स्वामी ओमानन्द सरस्वती ०-५०
५२. जापान यात्रा „ „ „ ०-७५
५३. भोजन „ „ „ ०-७०
५४. ऋषि रहस्य —प० भगवद्दत्त वेदालंकार २-००
५५. स्वामी श्रद्धानन्द जीवन परिचय १-२५
५६. मेरा धर्म —आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति ७-००
५७. वेद का राष्ट्रिय गीत „ „ „ ५-००
५८. ईशोपनिषद्भाष्य —इन्द्र विद्या वाचस्पति २-००
५९. प० गुरुदत्त विद्यार्थी जीवन —डा० रामप्रकाश १-३०
६०. वैदिक पथ —प० हरिदेव सिद्धान्त भूषण २-००
६५. वैदिक प्रवचन —प० जगत्कुमार शास्त्री २-२५
६१. ज्ञानदीप „ „ „ २-००
६२. आर्यसमाज का सैद्धान्तिक परिचय ०-५५
६३. The Vedas ०-५०
६४. The Philosophy of Vedas ०-५०
६६. ईश्वर दर्शन „ „ १-५०
६७. श्वेताश्वरोपनिषद् „ „ ४-००
६८. ब्रह्मचर्य प्रदीप „ „ ४-००
६९. भगवत प्राप्ति क्यो और कैसे —स्वा० सत्यानन्द ०-६०
७०. आर्य सामाजिक धर्म „ „ ०-७५
७१. बोध प्रसाद —स्वामी श्रद्धानन्द ०-२५
७२. ऋषि दर्शन —प० चमूपति एम. ए. ००-२५
७३. ऋषि का चत्मकार „ „ „ ००-१२
७४. वैदिक जीवन दर्शन „ „ „ ००-२०
७५. वैदिक तत्व विचार „ „ „ ००-५०
७६. देव यज्ञ रहस्य „ „ „ ००-३५
७७. स्वतन्त्रानन्द संस्मरणाक १-५०

सभी पुस्तकों का प्राप्ति स्थान

आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब, गुरुदत्त भवन, जालन्धर (४२५०) टेलीफोन
„ „ „ १५ हनुमान् मार्ग नई दिल्ली-१ „ (३१०१५०)
„ „ „ दयानन्द मठ रोहतक (हरयाणा) „ (५७४)

आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब के लिए जगदेवसिह सिद्धान्ती शास्त्री द्वारा सैनी प्रिटर्स पहाड़ी धीरज, देहली में मुद्रित और १५ हनुमान् रोड, नई दिल्ली—१ से प्रकाशित

७ ज्येष्ठ सं० २०३० वि०, दयानन्दाब्द १४९,
तदनुसार २० मई १९७३ रविवार
सृष्टि सं०-१९६०८५३०७३
वर्ष ५ वार्षिक शुल्क स्वदेश में १०) रुपये
अंक २५ „ „ विदेश में २०) रुपये
एक प्रति का मूल्य ००-२० पैसे

सम्पादक—जगदेवसिंह सिद्धान्ती शास्त्री, पूर्व लोकसभा सदस्य (फोन ५१२१६३)

वेदमन्त्रार्थ-प्रवचन

पुनस्तमेव विषयमेवाह ॥

फिर भी उसी विषय का उपदेश अगले मन्त्र में कहा गया है ॥

अनारम्भणे तदवीरयेथामनास्थाने अग्रभणे समुद्रे ।
यदश्विना ऊहथुर्भुज्युमस्तं शतारित्रां नावमातस्थिवांसम् ॥

—ऋ० १.११६.५

पदार्थः—(अनारम्भणे) अविद्यमानमारम्भणं यस्मिस्तस्मिन् (तत्) तौ (अवीरयेथाम्) विक्रमेथाम् (अनास्थाने) अविद्यमानं स्थित्यधिकरणं यस्मिन् (अग्रभणे) न विद्यते ग्रहणं यस्मिन् (समुद्रे) अन्तरिक्षे सागरे वा (यत्) यौ (अश्विनौ) विद्याप्राप्तिशीलौ (ऊहथुः) विद्युद्वायू इव सद्यो गमयेतम् (भुज्युम) भोगसमूहम् (अस्तम्) अस्यन्ति दूरी कुर्वन्ति दुःखानि यस्मिँस्तद्गृहम् (शतारित्राम्) शतसङ्ख्याकान्यरित्राणि जलपरिमाणग्रहणार्थानि स्तम्भनानि वा यस्याम् (नावम्) नुदन्ति चालयन्ति प्रेरते वा यां ताम् (आतस्थिवांसम्) आस्थितम् ॥

अन्वयः—हे अश्विनौ यद्यौ युवामनारम्भणेऽनास्थानेऽग्रभणे समुद्रे शतारित्रां नावमूहथुरस्तमातस्थिवांसम् भुज्युमवीरयेथां विक्रमेथां तत् तौ वयं सदा सत्कुर्याम ॥

भावार्थः—राजपुरुषैरालम्बविरहे मार्गे विमानादिभिरेव गन्तव्यं यावद् योद्धारो यथावन्न रक्ष्यन्ते तावच्छत्रवो जेतुं न शक्यन्ते । शतमरित्राणि विद्यन्ते सा महा विस्तीर्णा नौ विधातुं शक्यते । अत्र शतशब्दोऽसंख्यातवाच्यपि ग्रहीतुं शक्यते । अतोऽतिदीर्घाया नौकाया विधानमत्र गम्यते । मनुष्यैर्यावती नौ विधातुं शक्यते तावती निर्मातव्यैवं सद्योगामी जनो भूम्यन्तरिक्षगमनागमनार्थान्यपि यानानि विदध्यात् ॥

भाषार्थः—हे (अश्विनौ) विद्या में व्याप्त होने वाले सभा सेनापति (यत्) जो तुम दोनों (अनारम्भणे) जिसमें आने जाने का आरम्भ (अनास्थाने) ठहरने की जगह और (अग्रभणे) पकड़ नहीं है उस (समुद्रे) अन्तरिक्ष वा सागर में (शतारित्राम्) जिसमें जल की थाह लेने को सौ बल्ली वा सौ खम्भे लगे रहते और (नावम्) जिसको चलाते वा पठाते उस नाव को बिजुली और पवन के वेग के समान (ऊहथुः) बहाओ और (अस्तम्) जिसमें दुःखों को दूर करें उस घर में (आतस्थिवासम्) धरे हुए (भुज्यम्) खाने पीने के पदार्थ समूह को (अवीरयेथाम्) एक देश से दूसरे देश को ले जाओ (तत्) उन तुम लोगों का हम सदा सत्कार करें ॥

भावार्थः—राजपुरुषों को चाहिये कि निरालम्ब मार्ग में अर्थात् जिसमें कुछ ठहरने का स्थान नहीं है वहां विमान आदि यानों से ही जावें जब तक युद्ध में लड़ने वाले वीरों की जैसे चाहिये वैसी रक्षा न की जाय तब तक शत्रु जीते नहीं जा सकते जिसमें सौ बल्ली विद्यमान हैं वह फैलाव की नाव बनाई जा सकती है। इस मन्त्र में शत शब्द असंख्यातवाची भी लिया जा सकता है इससे अतिदीर्घ नौका का बनाना इस मन्त्र में जाना जाता है मनुष्य जितनी बड़ी नौका बना सकते हैं उतनी बड़ी बनानी चाहिये। इस प्रकार शीघ्र जाने वाला पुरुष भूमि और अन्तरिक्ष में आने जाने के भी लिये यानों को बनावे ॥

—(ऋषिदयानन्दभाष्य)

अथ पुनर्जन्मविषयः संक्षेपतः

(असुनीते०) हे सुखदायक परमेश्वर ! आप (पुनरस्मासु चक्षुः) कृपा करके पुनर्जन्म में हमारे बीच में उत्तम नेत्र आदि सब इन्द्रियां स्थापन कीजिये तथा (पुनः प्राणं०) प्राण अर्थात् मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, बल पराक्रम आदि युक्त शरीर पुनर्जन्म में कीजिये। (इह नो धेहि भोग०) हे जगदीश्वर ! इस ससार अर्थात् इस जन्म और परजन्म में हम लोग उत्तम उत्तम भोगों को प्राप्त हों। (तथा ज्योकपश्येम सूर्य्यमुच्चरन्तम्) हे भगवन् ! आपकी कृपा से सूर्यलोक, प्राण और आपको विज्ञान तथा प्रेम से सदा देखते रहें। (अनुमते मृडया नः स्वस्ति) हे अनुमने ! सबको मान देने हारे ! सब जन्मों में हम लोगों को (मृडय) सुखी कीजिये जिससे हम लोगों की स्वस्ति अर्थात् कल्याण हो ॥१॥ (पुनर्नो असु पृथिवी ददातु पु०) हे सर्वशक्तिमन् ! आपके अनुग्रह से हमारे लिये वारम्वार पृथिवी प्राण को, प्रकाश चक्षु को और अन्तरिक्ष स्थानादि अवकाशों को देते रहें। (पुनर्नः सोमस्तन्वं ददातु) पुनर्जन्म में सोम अर्थात् औषधियों का रस हमको उत्तम शरीर देने में अनुकूल रहे। तथा (पूषा०) पुष्टि करने वाला परमेश्वर कृपा करके सब जन्मों में हमको सब दुःख निवारण करने वाली पथ्य रूप स्वस्ति को देवे ॥२॥ —ऋ० अष्ट० ८। अध्याय०। वर्ग २३ ॥ मन्त्र १,२ ॥

—(ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका)

सत्यार्थप्रकाश (दशम समुल्लास)

भक्ष्याभक्ष्य दो प्रकार का होता है एक धर्मशास्त्रोक्त दूसरा वैद्यक शास्त्रोक्त, जैसे धर्मशास्त्र में :—

अभक्ष्याणि द्विजातानाममेध्यप्रभवाणि च ।। मनु० ५-५ ।।

द्विज अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य को मलीन विष्ठा मूत्रादि के संसर्ग से उत्पन्न हुए शाक फल मूलादि न खाना।

वर्जयेन्मधुमांसं च ।। मनु० २-१७७

जैसे अनेक प्रकार के मद्य, गांजा, भाग, अफीम आदि।

बुद्धिं लुम्पति यद् द्रव्य मदकारी तदुच्यते ।।

शार्ङ्गधर अ० ४। श्लोक २१ ।।

जो जो बुद्धि का नाश करने वाले पदार्थ हैं उनका सेवन कभी न करें और जितने अन्न सड़े, बिगड़े, दुर्गन्धादि से दूषित, अच्छे प्रकार न बने हुए और मद्य मांसाहारी म्लेच्छ कि जिनका शरीर मद्यमास के परमाणुओं से पूरित है उनके हाथ का न खावे जिसमें उपकारक प्राणियों की हिसा अर्थात् एक गाय के शरीर से दूध, घी, बैल, गाय उत्पन्न होने से एक पीढ़ी में चार लाख पचहत्तर सहस्र छः सौ मनुष्यों को सुख पहुंचता है वैसे पशुओं को न मारें, न मारने दें।

—(ऋषिदयानन्द)

आर्य समाज और आर्य समाजी

(लेखक बाबू पूर्णचन्द्र एडवोकेट पूर्व प्रधान सार्वदेशिक सभा—उ. प्र.)

(१)—महर्षि दयानन्द प्राचीन वैदिक धर्म (जो पांच हजार वर्ष से पूर्व सारे विश्व में प्रचलित था) उसको पुनः प्रचारित करना चाहते थे उनकी विचार धारा के दो मुख्य स्तम्भ थे एक ईश्वर का सच्चा स्वरूप और दूसरा ईश्वरीय ज्ञान वेद। इस उद्देश्य के लिये महर्षि ने आर्यसमाज की स्थापना की और यह घाषणा को कि आर्यसमाज कोई नवीन मत या धर्म नहीं है उसकी स्थापना केवल वैदिक धर्म के पुनः प्रचार के लिये है। उन्होंने अपनी मान्यताओं के सम्बन्ध में भी यह घोषणा की कि मैं किसी नवीन बात को नहीं मानता और न उसका प्रचार करता हूँ। प्राचीन महर्षि जिन बातों को मानते रहे हैं उनको ही मैं भी मानता हूँ।

(२) जब आर्यसमाज की स्थापना हुई तो उसमें प्रवेश के लिये कोई प्रतिबन्ध नहीं था केवल १८ वर्षीय आयु या १८ से अधिक की आयु होना आवश्यक था आयसमाज के स्थापना होते ही उसमें जिन सज्जनों ने प्रवेश किया उनके लिये कोई प्रवेश संस्कार नहीं था। केवल सभासदी के फार्म पर हस्ताक्षर करना पर्याप्त था। अनेकों पौराणिक हिन्दु आर्यसमाज के सदस्य बनें और कुछ जैनी और सिक्ख आदि भी। आर्यसमाज के प्रचार का उन पर प्रभाव पड़ा और उनके विचारों में बड़ा उत्तम परिवर्तन हुआ। उनका आचार भी बहुत ठीक हुआ और व्यवहार भी मर्यादित हुआ।

(३)—वैदिक धर्मी बनाने के लिये जो साधन महर्षि ने अपने अमर ग्रन्थ "सत्यार्थ प्रकाश" में आवश्यक बताया था अर्थात् शिक्षा, संस्कार यज्ञ और योग उनसे लाभ उठाने का अवसर बहुत कम को मिला। और इस रुकावट के होते हुए भी अनेकों आर्यसमाज में प्रवेश पाने वालों को वैदिक धर्म के रूप को समझने और उसके सांचे में अपने जीवन को ढालने का एक सुन्दर अवसर मिला।

(४)—आर्यसमाज के प्रचार से सारे धार्मिक जगत् में एक क्रान्ति फैल गई। ईश्वर निराकार है उसकी मूर्त्ति नहीं बन सकती न वह अवतार लेता है धर्म केवल मानने की चीज नहीं है उसका व्यवहारिक जीवन से सीधा सम्बन्ध है जैसा मानना है वैसा ही करना है और सबसे बड़ी बात यह हुई कि धार्मिक प्रश्नों के समझने में और समझाने में तर्क और बुद्धि का पूर्ण रूप से समावेश हो गया। सारे धर्मों में हल चल मच गई मान्यताओं में परिवर्तन होने लगा और चमत्कारों का अन्त हो गया।

(५)—ऐसी क्रान्ति के होते हुए भी आर्यसमाज में प्रवेश कुछ ऐसे सज्जनों का भी हो गया जो आर्यसमाज की विचार धारा से विशेष रूप से प्रभावित नही थे परन्तु उनको कुछ आर्य समाजियों ने वार्षिक निर्वाचन में अपने समर्थन के लिये सदस्य बनवा लिया और मेरा यह पक्का अनुभव है कि जो किसी कारण से बनाये जाते हैं, वे बिगाड़ते हैं जो स्वयं प्रसन्नता से समझ बूझकर बनते हैं वे बनाते हैं।

(६) ऐसी परिस्थिति में कुछ घुस पेठियों ने आर्यसमाज में अशान्ति का और दलबन्दी का वातावरण फैला दिया और इसमें सन्देह नहीं कि कुछ आर्य समाजियों में ऐसी त्रुटियां अवश्य हैं जिनके निराकरण की तुरन्त आवश्यकता है।

(७)—आर्य समाज की स्थापना शताब्दी १९७५ में मनाई जाने वाली है और हमें ऐसे अवसर पर आर्यसमाज के और वैदिक धर्म के असली स्वरूप को संसार के सम्मुख बल पूर्वक रखना है। जो त्रुटियां हैं उनको विचार गोष्ठियां करके या सम्मेलन बुलाकर उनको दूर कराने का यत्न अवश्य करना चाहिए। समाचार पत्रों में आर्यसमाज की आन्तरिक दशा की कटु आलोचना को एक दम समाप्त कर देना चाहिए। यह मर्सीया खुवानी और स्यापा बंद होना चाहिए। मैं यह मानता हूँ कि आलोचक महोदय अच्छी भावना से अलोचना करते हैं परन्तु उसका प्रभाव कभी बड़ा उल्टा हो जाता है। नवीन रक्त के लिए आर्कषण बहुत कम हो जाता है।

(८)—आर्य समाज को विशेष रूप से प्रगति शील बनाने के लिये दो उपाय बड़े आवश्यक हैं और विचारणीय हैं।—

(१)—आर्यसमाज का द्वार मनुष्यमात्र के लिये खुल जाना चाहिए [वैदिक नियमों के आधार पर—सम्पादक] महर्षि इसे विश्व व्यापी संस्था बनाना चाहते थे और सारे संसार में इसके माध्यम से वैदिक धर्म का प्रचार और वैदिक मर्यादा के अनुसार चक्रवर्ती राज्य की स्थापना चाहते थे जब १८७५ में आर्यसमाज और Theosphical Socity का मेल हुआ था तो विश्वभर के Theosophical Socity के सदस्यों को आर्यसमाज का अंग मान लिया गया था। और महर्षि ने इस पर बड़ा हर्ष प्रकट किया था। दो वर्ष तक Theosophical Socity का नाम The Theosophical Socity of the Arya Samaj रहा।

ऐसी स्थिति में अब आवश्यक हो उठा है कि स्थापना शताब्दी के उपलक्ष में आर्यसमाज में प्रवेश का अधिकार मनुष्य मात्र को दिया जाय जो आर्य समाज की मुख्य मान्यताओं को समझने और मानने के लिए तैयार हों। स्वामी श्रद्धानन्द जी का भी यही आदेश था।

(२)—आर्यसमाज का जन सम्पर्क बढ़ाने के लिये और राष्ट्र निर्माण के उद्देश्य से चरित्र निर्माण और पाखंड खंडनी सभाओं की स्थापना की जाय। महर्षि दयानंद ने गौ करुणा निधि में गोकृषि रक्षिणा सभाओं के लिये बड़ा बल दिया था आर्यसमाज वालों ने उस पर ध्यान नहीं दिया और गौ रक्षा के सम्बन्ध में अभी तक पूर्ण सफलता प्राप्त नहीं हुई। हर प्रकार के लोक सम्बन्धी और परलोक सम्बन्धी पाखंड फैल रहे हैं उनका उपचार केवल आर्यसमाज के द्वारा ही हो सकता है बाकी संस्थायें अपनी अपनी दल वन्दी में फैली हुई है। आर्यसमाज में भी ऊपर की ओर यह दलबन्दी का रोग चला है जन सम्पर्क के इस विशाल कार्य से अन्दर और बाहर सुधार हो सकेगा। दिल और दिमाग दोनों ठीक हो जायेंगे आर्यसमाज का असली स्वरूप सामने आ जायेगा। मेरठ के सम्मेलन में इन विषयों पर विचार होने की आशा है और उनकी कुछ रूप रेखा भी निर्धारित हो जायेगी सारे आर्य जगत् वालों को बल पूर्वक इनका समर्थन करना चाहिए और मेरठ सम्मेलन को सफल बनाना चाहिये।●

"वन्देमातरम्"

राष्ट्र गीत का अपमान क्यों?

(श्री अम्बादान आर्य, कवि कुटीर कुरड़ायाँ, (राज०)

दिया 'राष्ट्रगीत' दिव्य बंकिम कवीन्द्र ने जो,
भारतीय प्रजा का महान् मुक्ति मन्त्र था।
देश प्रेम मस्ती का निराला जोश जाग उठा,
जाति वर्ग भेद की जो गन्ध से जो स्वतन्त्र था।

'वन्दे मातरम्' एक क्रान्तीकारो एक शंखनाद,
हिलाई ब्रिटिश सत्ता शुद्ध हृदय यन्त्र था।
भने अम्ब कवि सारे भारत निवासियों का,
मिटाया एक महान् कष्ट जो कि एक तन्त्र था।

अन्न, वायु, जल जिस मिट्टी से शरीर बना,
होती रही रक्षा जहाँ भव्य धराधाम से।
पाया है पवित्र दूध, अंक में निःशंक रूप,
रखती समान भाव, जननी तमाम से।

स्वयं मातृभूमिका सुहाग नहिं गीत जिसे,
कृतघ्न होते सिद्ध गति बाम काम से।
जाना भला अम्ब उसे "मादरे वतन" —छोड़,
जिन्हें घृणा दृष्टि 'वन्दे मातरम्'—नाम से॥●

१ अन्न संकट में भी दलबन्दी का महारोग

इसमें सन्देह नहीं के राष्ट्र में सूखे के कारण अन्न की यथेष्ठ उपज नहीं हुई। इसलिये इस संकट को दूर करने में राजनीतिक दलबन्दी को काम में नहीं लाना चाहिये। विदेशों में भी राजनीतिक दल हैं, परन्तु प्राय एक प्रशासक दल और दूसरा विरोधी दल। दोनों में प्रशासन के काम में मत भेद हैं, परन्तु राष्ट्र के संकट काल में पार्टी बन्दी के आधार पर विचार नहीं किया जाता। हां यह विवाद अवश्य होता है कि एक पार्टी दूसरी पार्टी से राष्ट्रहित में अधिक सफलता प्राप्त करके प्रशासन की सत्ता को हाथ में ग्रहण करना चाहती है। परन्तु हमारे राष्ट्र में दुर्भाग्य से पार्टियों में पार्टियां पैदा होती हैं और परस्पर विरोध करती हैं।

सब जानते हैं कि किसान वर्ग ही अन्न उत्पादक समूह है। इसके पैदा किये अन्न से किसान और गैर किसान सभी का काम चलता है। अन्न के विना कोई वर्ग जीवित नहीं रहता। परन्तु देखा जा रहा है कि किसान के अन्न से सभी जनता का पालन करने के लिये प्रशासक वर्ग कुछ नियम बनाता है। जिस से अन्न की कमी से कोई भाग भूखा न रह सके। खेद है कि किसान से अन्न लेकर व्यापारी वर्ग स्टोर करके मंहगे दामों पर गैर किसानों को बेचता है। किसान को स्वयं कम मूल्य पर बेचने को विवश करता है कि अन्न का मूल्य वह कम लेवे। परन्तु वही व्यापारी वर्ग किसान को आवश्यक काम में आने वाली चीजों के दाम बहुत बढ़ाकर देना चाहता है, इससे वर्ग संघर्ष बढ़ता है। चोर बाजारी होती है। मंहगाई आकाश को जाती है, सरकारी और गैर सरकारी कर्मचारी मंहगाई को न सह कर अधिक वेतन की मांग करते हैं। सरकार सभी वर्गों में जीवन यापन का सन्तुलन करने का यत्न करती है। तब राजनीतिक दल भिन्न भिन्न वर्गों का पक्ष लेकर राष्ट्र में आपाधापी फैलाते हैं, किसान अन्न को घर में रख नहीं सकता, क्योंकि इसको बेचकर अपने सब काम चलाने होते हैं। सरकारी लगान आदि भी देने होते हैं। इस संकट में कुछ पार्टी किसान को विवश करती है कि अन्न को न बेचें। सरकार उनसे जबरदस्ती अन्न लेना चाहती है। तो वे दलीय लोग किसान के लाभ के नाम पर आन्दोलन खड़ा करते हैं। उन दलों का एक ही उद्देश्य राजनीतिक लाभ उठाकर शासन में घुसने का है। केवल भारतीय किसान संघ एक ऐसा दल है जो राजनीतिक दोष से लिप्त नहीं है। उसकी मांग वैधानिक है कि किसान को अन्न पैदा करने में जो खर्च पड़ता है उसके हिसाब से किसान को अन्न के दाम मिलने चाहियें, उसी ढंग पर किसान अन्न को बेचे और किसान को भी अन्य पदार्थों की उत्पति की दर के हिसाब से आवश्यक चीजें मिलनी चाहिये। यही एक सही मार्ग है। परन्तु राजनीतिक सत्ता के लोभी इस उत्तम सुझाव को नहीं मानकर वर्ग संघर्ष खड़ा करके परस्पर विद्रोह का वातावरण बनाते हैं। सरकार का कर्त्तव्य है कि भारतीय किसान संघ के उत्तम सुझाव के अनुसार अन्न संकट को दूर करे।

२ महामहिम राष्ट्रपति का श्रेष्ठ सुझाव

राष्ट्रपति श्री गिरि महोदय ने सुझाव दिया है। कि राष्ट्र में अन्नोत्पादन के लिये विदेशी खाद पर निर्भर न रहकर देशी खाद को काम में लाया जावे। भारत के पशु धन से खाद पुष्कल मात्रा में मिल जाता है। वह सस्ता होता है। उसमें दोष नही होता : इसके लिये आवश्यक है कि भारत के पशुधन को बढ़ाया जावे। पशु धन की वृद्धि पर घी, दूध और अन्न की वृद्धि होती रहती है। इस वृद्धि से अन्न की खपत कम हो सकती है। आशा है हमारी सरकार राष्ट्रपति महोदय के सुझाव पर आचारण करके राष्ट्र में अन्न संकट को दूर करेगी।

३ भारत की पड़ोसी देशों की भारी सहायता

बंगला देश नयपाल, श्री लंका, भूटान तथा अफगानिस्तान को पिछले तीन वर्षों में बढ़ा कर २ अरब ६२ करोड़ रुपयों की सहायता अनुदानों के रूप में दी हैं।

—जगदेवसिंह सिद्धान्ती शास्त्री

कुलपति श्री रघुवीरसिंह जी शास्त्री, प्रधान मन्त्री श्रीमती इन्दिरा गांधी को अनिन्दन पत्र भेंट कर रहे हैं

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के उत्सव के चित्र

भारत की प्रधान मन्त्री श्रमती इन्दिरा गांधी स्नातकों को उपाधियां दे रही हैं। श्री कुलपति पं० रघुवीरसिंह जो शास्त्री उनको प्रमाण पत्र प्रस्तुत कर रहे हैं। एक ओर प्रो० रामसिंह जी एम. ए. कुलाधिपति प्रधान मन्त्री के निकट खड़े हैं।

यज्ञ वेदी पर श्रीमती इन्दिरा गांधी यज्ञ कुण्ड में आहुतियां दे रही हैं। स्वयं मन्त्रोच्चारण भी कर रही हैं। उनके चारों ओर प्रमाण पत्र लेने वाले स्नातक तथा गुरुकुल के अधिकारी भी यज्ञकुण्ड पर उपस्थित हैं।

क्रमागत—

माण्डूक्य पर आचार्य गौडपाद कारिकाओं की समीक्षा (१८)

[ले०—श्री स्वामी ब्रह्मानन्द जी आर्य त्रैतवेदान्ताचार्य, मु० ओं० आश्रम, चान्दोद (बड़ौदा)]

स्वप्न जागरित स्थाने ह्येकमाहुर्मनीषिणः।
भेदानां हि समत्वेन प्रसिद्धेनैव हेतुना ।।५।।

वैतथ्य प्र० की ५ वीं कारिका

अर्थ—इस प्रकार प्रसिद्ध हेतु से ही पदार्थों में समानता होने के कारण विवेकी पुरुषों ने स्वप्न और जागरित अवस्थाओं को एक ही बतलाया है ।।५।।

समीक्षा—वे जिन्हें आप मनीषिणी मानते हैं वे असल में मनीषिणी नहीं अपितु मनस्वी याने मनमाने बकने वाले थे। क्योंकि जो बिना सोचे विचारे बगैर ही ऊट पटाँग बातें बनाता है वह मनस्वी नही तो और क्या ? अरे क्या, जाग्रत् जगत् का स्थूल शरीर ही क्या स्वप्न का सूक्ष्म शरीर कहा जा सकता है ? यदि नहीं तो फिर जाग्रत् स्वप्न के स्थूल एवं सूक्ष्म वासनामय भोग एक से ही हैं ये कैसे कहा और माना जा सकता है ? किन्तु कभी नहीं। तो उन्हें मिथ्या कहना मानना व्यर्थ है।

यदि जो फिर भी जाग्रत् स्वप्न की एकता मानते हों उनसे हम कहते हैं कि हमने भी गत रात्रि में ऐसा स्वप्न में देखा है कि अद्वैतवादी विद्वान् महापुरुषों की और गृहस्थ पंडितों की चल एवं अचल सम्पत्ति का बक्सीस पत्र हमारे नाम पर कर दिया है। तो लो कबूल मंजूर करो और जो जो हमारे इस लेख को पढ़ें वे उक्त अद्वैतवादी महानुभाव अपनी सम्पूर्ण चला चल सम्पत्ति का कब्जा हमें या हम त्रैतवादियों के हवाले फौरन कर देवें, अन्यथा कह देवें कि हम आ० गौडपाद जी के उपरोक्त फतवे को या व्यवस्था को वैसे सिद्धान्त का घोर बहिष्कार करते हैं ऐसा लिखित जवाब दे देवें हमें। अन्यथा सर्वथा (झूठे लेना झूठे देना झूठे भोजन झूठ चबैना) आपका सब कहना करना मानना झूठा ही समझा जायेगा। देखो प्रत्यक्ष व्यवहार में भी देखा जाता है कि जो सौ का या हजार का नोट झूठा जाली या बनावटी ही यह है, ऐसा जब जो जान लेता है वो मनुष्य उस बनावटी झूठे जाली नौट को तुरन्त लौटा देता या त्याग कर देता है, यदि बैंक मैनेजर ने ऐसा कह दिया हो तो। इसी प्रकार अद्वैताचार्य ने जब (माया मात्रमिदं द्वैतं) का ऐलान कर रखा है करीब पन्द्रह शताब्दियों से तो अब तो कम से कम अद्वैतवादियों ने अपने मठ मन्दिर घर जाजात का त्याग इन्हे मिथ्या जानकर हम वैदिकों के लिये दानरूपेण ही कर देना चाहिये, अन्यथा अद्वैतवाद की बात ही करना हम वैदिक त्रैतवेदान्तियों के सामने करना छोड़ देनी चाहिये ।।५।।

आदावन्ते च यन्नास्ति वर्तमानेऽपि तत्तथा।
वितथैः सदृशाः सन्तोऽवितथा इव लक्षिताः ।।६।।

वैतथ्य प्र० की छठी कारिका

अर्थ—जो आदि और अन्त में नहीं है अर्थात् अन्त में असद्रूप है, वह वर्तमान में भी वैसा ही है। ये पदार्थ समूह असत् के समान होकर भी सत् जैसे दिखाई देते हैं ।।६।।

समीक्षा—तब तो आप गुरु गौड जी और आपकी बनाई ये भ्रान्ति मूल के कारिकायें पहले न थे और अन्त में भी नहीं तो मध्य में भी मिथ्या मूलक ही सिद्ध हो गये न ? अरे आप अद्वैतवादी गुरु लोग तो इतने भोले भाले हो कि जिसको प्रथम स्वीकार करते हो उसे आगे चलकर इन्कार भी कर देते हो, देखो गुरुजी ? (अनादिमायया सुप्तो यदा जीवः प्रबुध्यते ।। १६। आगम प्र०) तथा (जीवं कल्पयते पूर्वं ततो भावान्पृथक्-विधान् ।। १६। वैतथ्य प्र०) में आपने ही आदि अनादि माया एवं जीव को और उसी प्रकार जीव एवं सभी भाववान् पदार्थों का सृष्टि के पूर्व में ही प्रभु परमात्मा की प्रेरणा से इनका प्रगट होना मान लिया है तो अब आप ही कहें कि आपकी उक्त (आदावन्ते च यन्नस्ति) वाली कारिका का आर्डिनेंस इन दोनों माया और जीवों को फिर कहां लागू करना पड़ता है ? माया जीव तो अनादि होने से अन्त रहित भी सिद्ध हो गये, तो अब आपको अपने परमार्थ ब्रह्मतत्त्व के सहित इन दोनों को भी असल में परमार्थ रूप ही मानने चाहिये। ये बात आपकी ही कारिकाओं से सिद्ध हो गई। किन्तु आप अद्वैतवादी चाहे भले दुराग्रह से न मानें किन्तु वेद भगवान् तो अपने जीव और जगत् कर्तृ माया—प्रकृति देवी को अनाद्यनन्त ही बता रहे है यथा (प्रथमजामृतस्यात्मनात्मानमभिसं विवेश ।। य० वे०) प्रथम जा से तात्पर्य पूज्य प्रभु द्वारा अमरधर्मा जीव रूप प्रजा से है उसे ही उसने शरीर सहित प्रगट कर स्वय उनमें आधे आधार रूप से वह उनमें सर्वत्र प्रकाशित हो गया। (याथा तथ्यतार्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्या ।। य० वे०। ८। ४०।। अपनी सनातन जीव रूप प्रजा को अनादि भोगार्थों का प्रदान पूज्य प्रभु करते हैं। तम आसीत्तमसा गूढमग्रे ।। ऋ० १० मं०) प्रलय के गहन अन्धकार में भी प्रथम से ही तमोमर्या प्रकृति विद्यमान रही हुई थी।

सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथा पूर्वमकल्पयत् ।। ऋ० वे०) सबके धाता विधाता परमात्मा ने पहली सृष्टि के समान ही सूर्य चन्द्रादि की सृष्टि की रचना करी है। इससे सृष्टि की अनादिता सिद्ध है क्योंकि यथापूर्व शब्द तभी चरितार्थ होगा, जबकि ईश्वर के प्राकृतिक कार्य को अनादि मान लिया जाय।

(पादोऽस्येहाभवत्पुनः ।। य० वे० पु० सू०) उस परमपुरुष परमात्मा का एक प्रकृति विकृति रूपपाद पुनः पुनः या बारम्बार प्रगट सर्गोपसर्ग रूप से होता रहता है। (पश्य देवस्य काव्यं न ममार न जीर्यति ।। अ० वेद) देवाधि देव महादेव के दिव्य काव्य वेदज्ञान अथवा क्रान्तदर्शी जीव सृष्टि को देखो जो न जूना कभी होता है न स्वभाव से नष्ट होता है ।।

इसलिये (सत्रा देव महानसि ।। य० वेद) वो तीनों की देव, आत्मा, प्रकृति, परमात्मा देव सबसे श्रेष्ठ अपने अपने गुण धर्मों में महान् हैं ।। तो इसीलिये (पूर्णमदः पूर्णमिदम् ।। बृ० उ०) अर्थात् वह पूज्य प्रभु परमात्मा जैसा अपने गुणधर्म स्वभाव में परिपूर्ण है वैसे ही यह माया और जीवरूप प्रजा भी अपने अपने गुणधर्म स्वरूप स्वभाव में परिपूर्ण हैं। तो जो आदि में होता है वही अन्त में भी देखा जाता है, तो ये तीनों ही त्रिकालातीत हैं ये बात हमने मूल वेदों से ही सिद्ध कर दी है। इसलिये उक्त आपकी कारिका का नियम उपरोक्त तीनों ही देवों को लागू न पड़ने से ये जीवात्मा माया और ईश्वर, ये तीनों ही अनादि परमार्थ सिद्ध हुये ।।६।।

सप्रयोजनता तेषां स्वप्ने विप्रतिपद्यते।
तस्मादाद्यन्तवत्त्वेन मिथ्यैव खलु ते स्मृताः ।।७।।

वैतथ्य प्र० की ७ वीं कारिका

अर्थ—स्वप्न में उन जाग्रत् पदार्थों की सप्रयोजनता में विपरीतता आ जाती है। अतः आदि अन्त युक्त होने के कारण वे निश्चय मिथ्या ही माने गये हैं ।।७।।

समीक्षा—यदि आप जाग्रत् स्वप्न इन दोनों ही अवस्था के प्राणी पदार्थों को जो यथार्थ में हैं तो जो उन्हें आप मिथ्या ही मानते हो तो फिर इन प्राणी पदार्थों के उपयोग करने का सर्वथा अपने शरीर और मन से तुम त्याग क्यों नहीं कर देते ? क्या कोई जिसे मिथ्या मानता है वह उस वस्तु का या उस प्राणी पदार्थों का संसर्ग भी करता है ? किन्तु आप उद्वैतवादी महानुभाव तो जिसे मिथ्या कहते हैं उसी का डटकर उपयोग करते रहते देखे जाते हैं। इससे तो आपकी करनी और कथनी की पृथकता जाहिर होती है। किन्तु (मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं महात्मनाम्) अर्थात् मनसा वाचा कर्मणा एकता जिसकी हो वही महात्मा माना जाता है।

तथा जो आपने उक्त कारिका में कहा कि स्वप्न में प्रयोजन के पदार्थों में विपरीतता आई देखी जाती है ऐसा आपने कहा है तो उन पदार्थों में विपरीतता आ जाना उनका स्वयं का धर्म है या अवस्था विशेष का, उनमें नैमित्तिक धर्म है यदि कहो कि पदार्थों का ही ऐसा विपरीत होना धर्म है तो फिर धर्मी के धर्म अवश्य चरितार्थ कभी न कभी होंगे ही, इसमें आश्चर्य ही क्या है। (क्रमशः) ●

गतांक से आगे—

सन् ५७ में प्रजा विद्रोह के कारण ?

नयी खोजों की सफलता से पुष्टि (२६)

(ले० श्री स्वा० सच्चिदानन्द योगी, अध्यक्ष श्री नारायण स्वामी आश्रम, महामहिम पातञ्जलयोग साधना संघ आ० बा० आ० ज्वालापुर सहारनपुर)

अध्ययन करने के उपरान्त मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा हूं कि इस अज्ञात जीवनी को अप्रामाणिक नहीं कहा जा सकता। अब तक ऋषि दयानन्द के जितने जीवन चरित्र प्रकाशित हुए हैं, उनके विरुद्ध इस जीवनी में कोई बात मेरे देखने में नहीं आई हां बहुत सी बातें और घटनाएं विशिष्ट हैं। ....

जिन बंगालो महानुभावों के यहां से हस्तलेख उपलब्ध हुए हैं उनकी नामावली भी इस अज्ञात जावनी में अंकित है। साथ ही हस्तलेखों की पृष्ठ संख्या भी उपस्थित की गयी है। बंगाली विद्वानों के साथ वेदों की अपौरुषेयता पर तीव्र मत भेद हो जाने के कारण इस जीवनी को प्रकाशित करने में उन्होंने उपेक्षा की।

इस अज्ञात जीवनी में सन् ५७ की क्रान्ति योगदान का उल्लेख है अतः ऋषि नहीं चाहते थे कि उनके जीवन काल में यह प्रकाश में आवे। ऋषि की गति विधि सम्बन्ध में ब्रिटिश पार्लियामेण्ट से भी लिखा पढ़ी हुई थी। विशेष निगरानी की जाने लगी थी।

ऋषि को जोधपुर में विष दिया गया।

उच्चाधिकारी की मन्त्रणा पर अज्ञात जीवनी में १४ विशेषतायें हैं। इनका कालमों में विद्वान् लेखक ने अविरोध का ऊहापहो किया है अन्त में लिखा है:—

इस आत्म चरित्र में २५० पृष्ठ की गवेषणा और १० परिशिष्ट जो अन्त में दिये हैं, उन से ऐतिहासिकता तथा भूगौलिकता की दृष्टि से प्रामाणिकता पर श्री स्वामी सच्चिदानन्द जी ने भारी परिश्रम करके जो प्रकाश डाला है वह स्तुत्य है। ग्रन्थ सङ्ग्राह्य एवं पठनीय है।

आर्य जगत् के उद्भटट विद्वानों की सम्मितियां

डा० हरिदत्त शास्त्री

'योगा का आत्मचरित्र'

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने यह आत्मचरित्र अपने भक्तों के आग्रह पर संस्कृत में सुनाया था। जिसका बंगभाषा में रूपान्तर श्री देवेन्द्रनाथ ठाकुर, एवं ईश्वर चन्द विद्यासागर जैसे प्रख्यात विद्वानों और सुधारकों ने किया उस बङ्गानुवाद का हिन्दी रूपान्तर आचार्य दीनबन्धु शास्त्री ने किया, प्रसङ्गवश श्री स्वामी सच्चिदानन्द सरस्वती योगी ने उत्तरा खण्ड की यात्रा की और उसका मार्ग वहीं खोज खोज कर चुना जो महर्षि दयानन्द सरस्वती का था। यद्यपि वे स्थान बुद्धि और चरण दोनों के अन्वेषण से मिले। तथापि यह निश्चित हो गया कि आचार्य दीनबन्धु शास्त्री ने जिन स्थानों का निर्देश ३६ वर्ष की अज्ञात जीवनी मे किया है वे यथार्थ हैं। इस के अनन्तर उक्त योगी जी ने दीनबन्धु शास्त्री के हिन्दी अनुवाद को गवेषणा एवं टिप्पणियों एवं परिशिष्टों से युक्त कर प्रकाशित कराया। जिससे ऋषि जीवनी का एक नया ही अध्याय संसार के समक्ष आया है।

इस आत्मचरित्र की पृष्ठ संख्या लगभग ५५० है, जिसमें पचास से ऊपर के चित्र हैं। मुझे तो इन चित्रों में से पृष्ठ संख्या ३५ का चित्र जिसमें एक नक्रेश्वर और योगेश्वर का सम्मेलन दिखाया गया है। अद्भूत मिलन को अंग्रेजी यात्री देख रहा है। गङ्गा के पुलिन पर चन्द्रिका की आभा नृत्य कर रही हैं। वह सब से अच्छा लगता है। इसका मतलब यह नहीं कि अन्य चित्रों में कोई कमी है। सब अपनी अपनी दृष्टि से उत्कृष्ट हैं, किन्तु 'भिन्नरुचिर्हि लोकः।' के अनुसार मेरे हृदय पर इसका अधिक प्रभाव है। अहिंसा सिद्धि का समाधान भी हृदयग्राही है।

इस महार्घता के दिनों में जो बढ़िया कागज लगाया है वह भी कल्पान्त स्थायी है। इस आत्मचरित्र से कम से कम यह तो स्पष्ट हो ही जाती है कि आज से लगभग एक सदी पूर्व महर्षि दयानन्द ने योगियों को खोज में जिस प्रकार टक्करें खायीं थी। हम जैसे उनेक अनुयायियों के लिये यह आत्मचरित्र मार्ग दर्शक है।

इस के मौलिक अनुसन्धाता विद्वद्वरेण्य श्री योगी जी ने जो कुछ आत्मानुभूत योग मार्ग को जो पग डण्डियां प्रदर्शित की हैं इससे इस आत्म चरित्र की उपयोगिता और भी बढ़ जाती है। एक प्रकार से यह आत्म चरित्र योग मार्ग के पथिक के लिये हेण्ड बुक है। यह कहने की आवश्यकता नहीं। कि इस के लेखन में और इस महान् अज्ञात अनुसन्धान कार्य में श्री स्वामी सच्चिदानन्द सरस्वती ने जो Revelation किया है वह अद्भूत और अतितराम् उपादेय है। इसके लिये आर्य जगत् ही क्या प्रत्येक महात्मा के चरित्र का प्रेमी व्यक्ति चिरकृतज्ञ रहेगा।

एक प्रकार से उनका ऋषि सम्बन्धी Thesis (अनुसन्धान निबन्ध) है। अर्थात् अनुसन्धान कार्य है, जिसे देखकर मुझे यह कहने के लिये विवश होना पडता है कि:—

स्वात्मानं प्रथमे वयस्यनुदिनं यो व्याकृतेः संस्कृतो,
प्रावुङ्क्ताथ च योगमार्ग निरतोऽप्राक्षीत्प्रभुं व्यापकम्।
प्राज्यं गार्हस्थ्यराज्यं सपदि विरहयन् पुण्यकार्यप्रयोगी,
भोगाल्लोकादुपरतमनाः सच्चिदानन्दयोगो।

इति सम्मनुते

११-८.७२ —डा० हरिदत्त शर्मा

(श्री अवनीन्द्र कुमार विद्यालंकार इतिहास सदन नई दिल्ली।)

'स्मृति अने संस्कृति'

(२०-११-७१ में)

—श्री नानजी कालिदास पहेत स्मृति ग्रन्थ में यह शरीर और जीवन उसका न राष्ट्र का है।

'(दयानन्द) मृत्यु का आलिङ्गन करने को सहर्ष प्रस्तुत था.....उस मरने का कोई हक नहीं दिया।......प्रश्न यह है दयान्द में यह परिवर्तन कैसे आया ?

'ऋषि की प्रकाशित आत्म कथा इसका उत्तर देती है। 'आबू में रहते हुए ऋषि ने योगाभ्यास से पतञ्जलि योग दर्शन में प्राप्त विभूतियां और सिद्धियां प्राप्त कर ली थीं। वह अन्न जल के बिना रह सकता था।

गुरुओं ने प्रसन्न होकर कहा योगविद्या अनन्त और अपार है। हमसे भी बहुत बड़े बड़े योगी बहुत संख्या में भारत वर्ष के वन जंगलों में, पहाड़ों पर्वतों, आश्रमों तपो वनों, पर्वत कन्दराओं और भूविवरों में रहते हैं। ये लोग चक्षुओं के अन्तराल में रहकर योग साधना और कठोर तपस्या कर रहे हैं किन्तु ये सब कुछ साधना मात्र साध्य वस्तु का नाम दूसरी है। उस एक मात्र साध्य वस्तु का नाम कैवल्य है। .....मोक्ष भी यदि नहीं मिले तो विभूतियों को जरूरत भी क्या है ? विभूतियां तुम्हारी दासी बनकर तुम्हारे आधीन होकर रहें। ये शक्तियां परार्थ के लिये या जीव सेवा में प्रयुक्त करो..... ॥ ४३१ पृ०

१८५७ का स्वातन्त्र्य संग्राम वस्तुतः जनता का उठाया था। वह इस आत्म कथा में कहीं निम्न बात से पुष्ट होती है—"अजमेर, मारवाड़ .....व्यक्त भगवान् देव ही लालकिले के सामने......देश की शोचनीय दुर्दशा पर विचार करते थे। ४३४ पृ.

पचास साल पहले १८०५ की पहले की बात है।

नदिया बंगाल......(१८२५) बंगाल बेरक पुर में छटी थी.....४३५

हरद्वार के कुम्भ मेले में ऋषि ने साधु लोगों से ब्रिटिश शासन का अन्त करने के लिये प्रेरणा दी.....४३६

गुरुवृजानन्द का दरवाजा दयानन्द ने तब खटखटाया था जब तान्त्या टोपे को अंग्रेजों ने फांसी दे दी। और ऋषि का और ऋषि की गठित नहीं संन्यासियों की सेना का कार्य समाप्त हो गया था।

इस कार्य के लिए दिन में ४० से ६० मील चलने वाले ऋषि से अधिक उपयुक्त व्यक्ति क्या कोई और हो सकता है।

स्वातन्त्र्य संग्राम का वीर सेनानी मिर्जापुर से वन ही नर्मदा घाटी में संन्यासियों की सेना का संगठन करने के लिये गया।.....इन संन्यासियों की घुड़सवार सेना ऋषि ने तैयार की। ऋषि का तान्त्या टोपे और नाना जी पेशवा और बिठूर से सम्पर्क बना रहा.........१० मई को मेरठ में स्वाधीनता संग्राम का शंखनाद किया गया.....संन्यासियों की घुड़सवार सेना लक्ष्मीबाई को सहायता के लिए और झांसी के किले की रक्षा के लिये कुछ देर में पहुंची.....

क्रमशः

गतांक के आगे —

योगी का आत्म चरित्र एक मनघडन्त कहानी

(लेखक—श्री स्वामी पूर्णानन्द जी सरस्वती-बड़ौत-जिला मेरठ)

The nawab of Lucknow and his Vizir were now residing near Calcutta: To all apearances Vizir of Lock now looked as if he was wasting his time in lukury, as a matter of fact, however, Vizir Ali nabi khan was as much absorbed in his dangrous Conspiracy near Calcutta as Nana Sahibe himself was. One can not help feeling wonder struck at the schemes—secret, Entensive, and daring which Ali Nabi khan was wearing to seduce the Sepoys in Bengal and to prepare them to join him at the right moment already determined upon," P.66

लखनऊ का नवाब और उसका वजीर अलीनक्खीखां अब कलकता के पास रह रहे थे वह अपने सब व्यवहारों में ऐसा दिखाई देता था कि वह आरामतलबी में अपने समय को नष्ट करता है। परन्तु वास्तविकता यह है कि वजीर अली नबी खां कलकत्ते में अपने भयंकर षड्यन्त्र में इतना ही तल्लीन था जितना कि नाना साहब स्वयं कोई भी व्यक्ति नबी खां को ऐसी स्कीम को देखकर विस्मयाकुल हुए विना नहीं रह सकता जो वह बंगाल के सिपाहियों को उकसाने के लिये और उन्हें इस बात के लिये तय्यार कर रहा था कि वे ठीक समय जो कि पहले ही निश्चित किया जा चुका था उसके साथ मिलसकें, वह स्कीम गुप्त, बड़ी विशाल और साहस पूर्ण थी। इस उद्धारण से यह स्पष्ट हा जाता है कि बंगाल की रेजीमेण्टों में रक्त कमल के प्रचार का कार्य नबीखां के द्वारा ही किया गया था, उसमें अजीमुल्ला खां का कोई हाथ नहीं था।

उपस्थित परित्यज्यनुपस्थितं यावत इति वाधित न्याय: ऐसे षड्यन्त्रकारी के होते हुये जो अपने काम में खूब निपुण है और जिका अवध के सिपाहियों में सर्वाधिक प्रभाव है अजीमुल्ला जैसे व्यक्ति को ठूस देना बुद्धिमत्ता नहीं। बंगाल में सिपाही और 'किसान दोनों लालकमल' की व्याख्या इस प्रकार से करते थे

'All is going to be red सब कुछ लाल होजायेगा। यह भी कहा जाता है कि क्रान्ति का दिन ३१ मई सन् १८५७ दिन रविवार इस लिये नियत किया गया था कि उस दिन सब अंग्रेज और ईसाई लोग अपने बच्चों सहित रविबार के दिन गिरजा घर में प्रार्थना में संलग्न होंगे। अत: उनके कतलेआम में क्रान्तिकारियों को अधिक सुविधा होगी। योगी जी और उनके साथी बड़े गर्व के साथ इस क्रूरतम और अत्यन्त नीचता पूर्ण षड्यन्त्र का आविष्कारक और प्रचारक ऋषिदयानन्द को मानते हैं। पहले दर्जे के झूट को भी ऋषि दयानन्द के सिर मढ़ा गया है। १८०६ में वैल्लौर में होने वाली चपातियों की घटना को जो नाना साहब के जन्म से कुल १८ वर्ष पहले हुई प्राचीन कहना झूठ है और फिर बहुत प्राचीन कहना डबल झूट और फिर बहुत ही प्राचनि तिगुना झूठ और फिर बहुत्त ही प्राचीन सनातन पद्धति कहना झूट की पराकाष्ठा है। यह अत्यन्त झूट बोलने वाला व्यक्ति क्या योगी कहला सकता है? आया पक्षपात छोड़ो पार्टी बाजी को लातमरो और प्यारे ऋषि की प्रतिष्ठा को बचाओ जिस दयानन्द ने संन्यास आश्रम की दीक्षा लेते हुए अपने पूज्य गुरु के सामने जल में खड़े होकर हाथ में जल लेकर तीनवार यह कहा हो 'मत्त: सर्वभूतेभ्यो भयमस्तु' मेरे से सर्व प्राणियों को अभय प्राप्त हो। जो अपनी बनाई हुई संस्कार विधि संन्यासी के कर्तव्यों के सम्बन्ध में लिखता हो।

"यो दत्त्वा सर्व भूतेभ्य: प्रव्रजत्यभयं गृहात्। तस्य तेजोमया लोका भवन्ति ब्रह्मवादिन:"

दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं, वस्त्रपूतं जलं पिबेत्। सत्यपूतां वदेद्वाचं मन: पूतं समाचरेत्"

क्लृप्तकेशनखश्मश्रु: पात्री दण्डी कुसुम्भवान् 'विचरेन्नियतो नित्य सर्व भूतान्यपीडयन्"

इन्द्रियाणां निरोधेन रागद्वेषक्षयेण च। अहिंसया च भूतानां अमृतत्वाय कल्पते"

दूषितो ऽपि चरेद्धर्मं यत्र तत्राश्रमें रत:। सम: सर्वेषु भूतेषु न लिङ्गं धर्मकारणम्"

जो सब भूत प्राणिमात्र को अभयदान देकर घर से निकालकर संन्यासी होता है उस ब्रह्मवादी अर्थात् परमेश्वर प्रकाशित वेदोक्त धर्मादि विद्याओं के उपदेश करने वाले संन्यासी के लिये प्रकाशमय अर्थात् मुक्ति का आनन्दमय लोक प्राप्त होता है। संन्यासी को चाहिये कि आंख से अच्छी तरह देखकर चले कपड़े से छान कर पानी पीवे। सत्य से पवित्र करके वचन बोले। मन को पवित्र करके आचरण करे। संन्यासी को चाहिये कि वह केश, नख और दाढ़ी मूछ कटवाता रहे (सच्चिदानन्द जी जरा इस दर्पण में अपने आप को देखें) जलपात्र, दण्ड और गेरवे वस्त्र रक्खे। और सदा नियम पूर्वक किसी को पीड़ा न देता हुआ विचरण करे। इन्द्रियों को विषयों से रोककर, रागद्वेष का क्षय करके और सब प्राणियों के प्रति अहिंसा के बर्ताव से मनुष्य व्यक्ति के योग्य होता है। संन्यासी को चाहिये कि चाहे कोई उसको दूषित या भूषित भी करे, परन्तु वह जिस किसी आश्रम में रहता हुआ (विशेषतया संन्यासी) सब प्राणियों को समान भाव से वर्ते। यह भी सोच लेना चाहिये कि लिंगमात्र से अर्थात् गेरवे वस्त्रों आदि से ही सन्यासी नहीं होता। यदि उसमें सत्यता नहीं है, वह कदापि संन्यासो नहीं हो सकता" ऋषिदयानन्द ने संन्यासी के लिये अहिंसा, समता, विश्वप्रेम, विश्वबन्धुत्व निष्पक्षता और सत्यता के ऊपर इतना बल दिया है। परन्तु सच्चिदानन्द जी ने ऋषिदयानन्द के सब व्रतों को भंग कर दिया। झूठ बोलना और बुलवाना, षड्यन्त्र करना और कराना, हिंसा करना और कराना, विदेशियों से घृणा करना और कराना दम्भ और पाखण्ड करना और कराना सब कुछ ऋषिदयानन्द के सिर मढ़ दिया। 'योगी का आत्मचरित्र' से योगी का सच्चरित्र प्रकट नही होता बल्कि योगी का दुश्चरित्र ही प्रकट होता है। सच्चिदानन्द जो कहते हैं कि कर्नल अल्काट को सच्ची बात इसलिये नहीं बताई कि वह विदेशी था! फिर यदि 'योगी का आत्मचरित्र' को आर्यसमाज सत्यमान कर अपना ले, तो आर्यसमाज को संसार के सामने खड़ा होकर यह कहने का अधिकार कैसे रह जाता है? कि दयानन्द जगत् गुरु था।

और आर्यसमाज के छटे नियम—संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है कि क्या गती होगी? सच्चिदानन्द की पार्टी एक ऐसी पार्टी है जो ऋषिदयानन्द को एक सम्प्रदाय विशेष का सुधारक ही मानती हैं वह उसके धर्म के सार्वभौमत्त्व पर विश्वास नहीं करती इसी लिए ऋषि दयानन्द के मुख से बार बार स्वधर्म और हिन्दुधर्म की रट लगवाते हैं, । अभी १५-२० दिन पहले समाधि से उठकर ऋषिवर आये और आते ही सच्चिदानन्द जी के कहने के अनुसार तलवार पकड़ने के लिए तय्यार हो गये। आगे चलकर घुड़सवार भी हो गये। इधर ऋषि दयानन्द के हाथ में जो संन्यास और योग की दीक्षा ले चुका था तलवार थमा दी उधर महात्मा गांधी ने न तो संन्यास की दीक्षा ली, न योग की दीक्षा ली और अन्त तक गृहस्थी रहा, परन्तु सत्य और अहिंसा के व्रत को ऐसी निष्ठा के साथ निभाया कि बड़ी से बड़ी परीक्षा आने पर भी अपने व्रत से नहीं डिगमिगाया। एक दो वर्ष नही बल्कि पूरे पचास वर्ष तक निभाया। यदि सच्चिदानन्द की बात पर आर्यसमाज आरूढ हो जाये तो महात्मा गान्धी के मुकाबले में दयानन्द का क्या मूल्य रह जाता है?

'योगी का आत्म चरित्र' का सन् ५७ से सम्बन्धित भाग अधिकतर सावरकर के इतिहास की नकल है' इसका एक स्पष्ट प्रमाण यह भी है कि दीनबन्धु जी ने 'विठूर' का नाम सब जगह 'ब्रह्मावर्त्त ही पुकारा है। और यह स्पष्टत: सावरकर की अपनी कल्पना है' किसी और इतिहास में 'विठूर' के स्थान पर 'ब्रह्मावर्त्त' शब्द नहीं आता है। सावरकर के इतिहास में यह शब्द कम से कम ५० बार आया है। यह तो हो नहीं सकता कि सावरकर जी ने यह शब्द ऋषि दयानन्द से सुना होगा! क्योंकि सावरकर जी का जन्म महर्षि के निर्माण पद प्राप्त करने के बाद में हुआ था। और ऋषि दयानन्द जी के किसी ग्रन्थ में विठूर का नाम ब्रह्मावर्त्त कहीं लिखा भी नहीं था। दीनबन्धुजी जी ने तो सावरकर जी की पौराणिक कल्पना की नकल करते हुए 'बिठूर का नाम 'ब्रह्मावर्त्त इस लिए लिखा है कि—"ब्रह्मा ने यहां यज्ञ किया था इसलिये इसका दूसरा नाम ब्रह्मावर्त्त (यो० पृष्ठ १९७) क्रमश:

आर्यसमाज स्थापना शताब्दी—२

कुछ विचारणीय सुझाव

(श्री सुरेन्द्रसिंह कादियाण w/z 79 राजा पार्क, शकूर बस्ती (देहली)

पाखण्ड-खण्डन यथावत् रहे

आज आर्यसमाज में ऐसे नेता पैदा हो गये हैं जो खंडनात्मक साहित्य को प्रकाशित करने की वर्जना करते हैं। निश्चत रूप से इन नेताओं का एक पाँव आर्यसमाज में और दूसरा राजनीति में रहता है, लोक-यश कमाने के लोभ में वे ऐसा आपत्तिजनक वक्तव्य दे देते हैं। जब तक पाखंड का बोलबाला है इसका खंडन यथावत् होता रहना चाहिए। चिन्तन से मुक्त धर्म-धर्म रह ही नहीं सकता। प्रत्येक धर्म, मजहब सम्प्रदाय ने प्रचलित सामाजिक कुरीतियों व धार्मिक बुराईयों की आलोचना की है तब यदि ये स्वयं इन बुराईयों के शिकार आज बन गए हैं तो उनका शुद्धिकरण होना चाहिए। यदि हम इन सम्प्रदायों से समझौता करना चाहते हैं तो उसका आधार 'सत्य' होना चाहिए। असत्य को आधार बनाकर धार्मिक सहिष्णुता का ढोंग रच कर, किया गया कोई भी समझौता कारगर सिद्ध न होगा। हमारी आलोचना व खंडन की शैली प्रभावी, गम्भीर, स्पष्ट, इतिहाससम्मत होनी चाहिए, उसका उद्देश्य कटाक्ष करना न होकर सुधार करना हो। आर्यसमाज सभ्य पुरुषों का समाज है, खंडन व आलोचना करते समय हमें सभ्यता के मानदंड स्थापित रखने चाहिएं। आर्य नेताओं को चाहिए कि गलत ब्यान देकर वे आर्य विद्वानों को हतोत्साहित न करें आलोचना व खंडन के नाम पर होने वाली उच्छृंखलता पर अवश्य अंकुश रखा जाना चाहिए। गंगाप्रसाद जी उपाध्याय की शैली का अनुकरण किया जा सकता है। पं० देव प्रकाश जी ने अपना ग्रंथ 'कुरआन परिचय' तीन भागों में प्रकाशित कराया है इन तीनों ही ग्रंथों की खंडन शैली अति उत्तम है, जो एक अनुकरणीय उदाहरण है। खंडनात्मक साहित्य के आलोचक विद्वानों को इस सच्चाई को हृदयंगम करना चाहिए कि आलोचना का अर्थ छींटाकशी नही है बल्कि धर्म-चिन्तन की एक निधि है। खंडन का अर्थ किसी मजहब व सम्प्रदाय को समूलतः नष्ट करना नहीं है बल्कि उसके अनुयायियों को अपने मजहव पर पुनर्विचार करने का निमंत्रण है। आर्यसमाज ने धर्म का खंडन आज तक नहीं किया, अधर्म का ही किया और आज विधर्मी भी सत्यार्थप्रकाश में महर्षि दयानन्द द्वारा की गई आलोचना को औचित्यपूर्ण मानने लगे हैं। अनेक सम्प्रदायों के धार्मिक ग्रंथों के भाष्य परम्परागत रास्ते को छोड़ कर होने लगे हैं। स्वामी वेदानन्द कृत 'सत्यार्थप्रकाश का प्रभाव' नामक पुस्तक से यह स्पष्ट हो रहा है। ऐसी स्थिति में खंडनात्मक साहित्य को उपेक्षा का विषय बनाना ठीक नहीं। अभी कुछ महीने पूर्व भारत सरकार ने एक कानून बनाया है कि किसी भी धर्म की अलोचना करना अपराध है। सरकार ने यह स्पष्ट नहीं किया कि वह धर्म किसे मानती है। सत्तारूढ़ दल के अनेक नेताओं ने संसद व उसके बाहर सार्वजनिक रूप से बालयोगेश्वर की निन्दा की है क्या यह उक्त कानून का उल्लंघन नहीं है? उत्तर प्रदेश विधान सभा के युवा विधायक श्री शिवानन्द नौटियाल ने सदन में बालयोगेश्वर व उसके मिशन के विरुद्ध जो कहा है क्या उसके कारण नौटियाल साहब भी उक्त कानून के अनुसार अपराधी नहीं ठहरते। आनन्द मार्गियों के गुरु श्री प्रभातरंजन सरकार के विरुद्ध जो अभियोग चल रहा है क्या वह उक्त कानून का सरासर उल्लंघन नहीं? एक व्यक्ति अपने धर्म के अनुसार नर-बली करता है—तब उसे उक्त कानून के मुताबिक अपराधी नहीं ठहराया जाना चाहिए। भारत सरकार ने सम्प्रदायों, संघटनों व पाखंड को धर्म मानकर क्या उक्त कानून नहीं बनाया! आर्यसमाज को इस परिवर्तित परिवेश में अब अपने खंडनात्मक साहित्य का सर्जन करना पड़ेगा अर्थात् अब आर्यविद्वानों को लेखक के साथ-साथ वकील भी बनना पड़ेगा ताकि अपने कर्त्तव्य का भी पालन कर सकें और कानूनी दांवपेंच से भी बच सकें। यह सुनिश्चित है कि आर्यसमाज पाखंड और अधर्म को मिटाने के लिए ही अस्तित्व में आया है। उसे इस मार्ग से विचलित करना किसी के लिए भी शोभनीय नहीं माना जाता। आर्यसमाज न किसी धर्म पर प्रहार करना चाहता है और न मिटाना चाहता है क्योंकि धर्म न तो मिट सकता है और नहीं उस पर प्रहार किया जा सकता है। आर्यसमाज की आलोचना व खंडन का लक्ष्य सदैव अधर्म व पाखंड रहा है लेकिन कोई विवेकशून्य मिथ्या श्रद्धालु भक्त इस अधर्म व पाखंड को ही धर्म मान बैठे तो उसका कोई उपचार न आर्यसमाज के पास है और न भारत सरकार के उक्त कानून के पास है।

राजनीति की चपेट से बचो

आर्यसमाज कोई राजनीतिक दल नहीं है—प्रत्येक आर्यसमाजी को छूट है कि किसी दल में शामिल हो सकता है। लेकिन इसका यह तात्पर्य नहीं कि वह दलगत राजनीति के लिए आर्यसमाज के मंच का प्रयोग करे। राजनीति में भाग लेना उसका व्यक्तिगत मामला है। राजनीति में जिस प्रकार के दांव पेंच चलते हैं वह सर्वविदित है और भारत की वर्तमान राजनीति तो अधिकांश रूप में भ्रष्ट हो चुकी है सो राजनीति की चपेट से आर्यसमाज को बचाए रखना जरूरी है। हरयाणा में आर्यसभा का निर्माण अपने आप में महत्वपूर्ण हो सकता है, उसके सिद्धांत व उद्देश्य औचित्यपूर्ण हो सकते हैं लेकिन आर्यसमाज को आधार मानकर इस दल का श्री गणेश करना कतई अनुचित है। आर्यसमाज के मचों पर इस दल को भाषण का विषय बनाना घोर आपत्तिजनक है। अकाली पार्टी के पदचिह्नों पर चल कर आर्यसभा भी आर्यसमाज के लिए संकट पैदा करेगी। अब भी बलराज मधोक 'राष्ट्रिय लोकतांत्रिक जनसंघ का श्री गणेश करते हुए कहते हैं कि आर्यसमाजियों का सहयोग इस दल के विकास में लिया जायेगा। मधोक साहब के राष्ट्रिय विचारों की मैं कदर करता हूं, आर्यसमाज के प्रति उनके हृदय में जो स्नेह है उसका मैं सम्मान करता हूँ महर्षि दयानन्द के प्रति उनकी जो श्रद्धा है उसका मैं आदर करता हूँ लेकिन राजनीति में आर्यसमाज को घसीटना न तो उनके लिए और न ही आर्यसमाज के लिए हितकर रहेगा। दल के सहयोग के लिए मुख्य रूप से आर्यसमाजियों का वर्णन करना उचित नहीं है क्योंकि इस से यह भ्रम उत्पन्न होना स्वाभाविक है कि मधोक साहब आर्यसमाज को राजनीति का मोहरा बनाना चाहते हैं। आर्यसमाज का अपना लम्बा रास्ता है जिसे तय करना अभी बाकी है—राजनीति के भंवर में फंस कर यह मंजिल अधूरी रह जायेगी। हम एक आर्यसंन्यासी को जानते हैं जो कांग्रेस के लिए काम करते हैं अब वे महात्मा यदि अन्य सभा की आलोचना करें तो उसका जनता पर क्या प्रभाव पड़ेगा? हमारे कहने का अभिप्राय मात्र इतना है कि आर्यसमाजी चाहे वह गृहस्थी हो या संन्यासी किसी भी दल के लिए आर्यसमाज के मंच का प्रयोग न करें। ऐसा होने से प्रतिस्पर्धा बढ़ती है, पारस्परिक सम्बंध बिगड़ते हैं, लोगों पर इसका बुरा प्रभाव पड़ता है और सघटन कमजोर होता है। आर्यसमाज रूपी गाय के थनों को कांग्रेस, जनसंघ, भारतीय क्रान्ति दल आदि दबोचे बैठें हैं और इसका परिणाम यह निकल रहा है कि जिस समाज मंदिर, जिस प्रतिनिधि सभा या सार्वदेशिक में किसी एक दल के लोगों का बहुमत है वहां दूसरों की दाल गलने नहीं दी जती। इस रोग का पनपना यदि इसी गति से जारी रहा तो आर्यसमाज का भविष्य अंधकारमय हो जायगा। कोई भी आर्यनेता जब आर्यसमाज की वेदी पर आता है तो उसे भूल जाना चाहिए कि वह राजनीतिक प्राणी है और किसी दल विशेष से सम्बंधित है। उसे स्मरण रखना चाहिए कि उसका प्रधान उद्देश्य आर्यसमाज के काम को ठोस रूप में आगे बढ़ाना है।

इस लेख को लिखने का मेरा प्रयोजन यही रहा है कि आर्यसमाज आत्मविश्लेषण करके अपनी शक्ति व अपनी स्थिति का यथार्थ बोध प्राप्त कर सके। जाने-अनजाने में जो त्रुटियां इस संघटन में आ गई हैं उनका सुधार होना चाहिए। किसी व्यक्ति विशेष को दोष देना मुझे अभीष्ट नहीं रहा है—सामान्य अवस्था को दृष्टि में रखते हुए ही मैंने उन दोषों को दिखलाने की चेष्टा की है ताकि उनका उन्मूलन ठीक ढंग से हो सके और आर्यसमाज निरन्तर समृद्धि को प्राप्त हो। आर्यसमाज धार्मिक क्रान्ति का अग्रदूत माना जाता है—इस क्रान्ति की ज्वाला में व्यक्ति का स्वार्थ भस्म हो, रूढ़िवाद भस्म हो, पाखंड भस्म हो—इसी इच्छा और कामना के साथ इस लेख को विराम देता हूँ।●

विचार वाटिका

(लेखक—प्राध्यापक राजेन्द्र 'जिज्ञासु' अबोहर)

महर्षि का विषपान

१—पंजाब विश्वविद्यालय के रिसर्च बुलेटिन में प्रिं० श्रीराम शर्मा का एक आपत्तिजनक लेख छप चुका है। जो आश्वासन लिखित व मौखिक विश्वविद्यालय की ओर से दिये गये थे उन आश्वसनों पर जिनको विश्वास था, वे भी अब इस लेख को देख कर दु:खी हैं। अब स्पष्ट हो गया कि यह विषैला प्रचार योजनाबद्ध ढंग से चला है।

सत्य का हनन करने पर तुले हुये प्रिं० शर्मा की एक और बात पाठकों के सामने रखते हैं। श्री पं० त्रिलोकचन्द्र जी शास्त्री ऊना गये। लौटकर बताया कि प्रिं० शर्मा कहते हैं कि श्री पं० लेखराम लिखित ऋषि जीवन चरित्र में विष दिये जाने की बात कोष्टों (Bracket) में है। हमारे पास इस पुस्तक का हिन्दी अनुवाद है। उर्दू की मूल पुस्तक का आदि व अन्त नहीं। अमृतसर जाकर पुस्तक देखी। सारे लक्ष्मणसर समाज को दिखाई। जहां जहां विष की चर्चा है कहीं भी कोष्टों का प्रयोग नहीं। हमने श्री पं० त्रिलोकचन्द्र जी को भी यह बात बतादी।

कितने अनर्थ की बात है कि पहले कहा गोपाल शर्मा की पुस्तक में विषपान की चर्चा नहीं। अब हम दिखाते हैं तो शर्मा जी जानबूझ कर किये गये पाप पर लज्जित नहीं हो रहे।

आर्य जन की सूचना के लिये निवेदन है कि हमारी खोज निरन्तर चल रही है। और भी प्रमाण मिल रहे हैं। अभी भी पं० मदन मोहन जी विद्यासागर ने एक सम्प्रदाय की पुस्तक का संकेत किया है। हम पुस्तक प्राप्त कर लेंगे। उसमें भी ऋषि को विष दिये जाने की स्पष्ट चर्चा है।

२—केरल में वैदिक धर्म प्रचार

१९६४ ई० में पं० नरेन्द्र भूषण जी ने केरल में वैदिक धर्म प्रचार का शुभ कार्य आरम्भ किया। अब दसवां वर्ष जा रहा है। अनेक संकट सहकर नरेन्द्र जो व उनके सहयोगियों ने वहां ऋषि सन्देश सुनाया है व सुना रहे हैं। प्राणघातक प्रहार हुये फिर भी वे आगे ही बढ़े। पूज्य स्वामी सर्वानन्द जी महाराज का इस कार्य में आरम्भ से ही मार्ग दर्शन व आर्शीवाद प्राप्त रहा। सब प्रकार की स्वामी जी ने सहायता दी व दिलाई। श्री डा० ओम्प्रकाश जी गुप्त हिसार व धूरी समाज का बड़ा योगदान रहा।

ईश कृपा से ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका का मलयालम अनुवाद अब छप गया है। आर्यसमाज शताब्दी के अवसर पर अहिन्दी भाषी लोगों में केरल वालों को यह सौभाग्य सबसे पहले प्राप्त हो रहा है कि महर्षि का एक ग्रंथरत्न उनकी भाषा में छप रहा है। इसके प्रकाशन के लिये वैदिक साहित्य संस्थान ने इसके लिये आर्थिक सहायता दी। श्री डा० ओम्प्रकाश जी गुप्त हिसार ने बड़ा पुरुषार्थ करके आर्थिक सहायता भिजवाई। जून मास में इस महान् ग्रंथ का विमोचन एक समारोह में होगा।

अब इसके पश्चात् मलयालम भाषा में सत्यार्थप्रकाश का प्रकाशन होगा। बहुत समय पूर्व मलयालम में सत्यार्थप्रकाश छपा था। श्री नरेन्द्र भूषण मलयालम के शीर्षस्थ लेखकों में से है। अत: ऐसे लेखनी के धनी और वैदिक सिद्धान्तों के विद्वान् द्वारा किया गया अनुवाद अधिक प्रामाणिक व उपयोगी होगा। इस दृष्टि से अनुवाद का कार्य फिर से करना होगा। इसमें और विद्वानों का सहयोग भी प्राप्त किया जायगा। स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज के केरलीय शिष्य श्री पं० नारायणदत्त जी ने एक पत्र मुझे लिखा है। आपने इस कार्य के लिये अपनी सेवायें समर्पित की हैं। स्मरण रहे मलयालम में ऋषि जीवन चरित्र आपने ही लिखा है। ईश कृपा से सत्यार्थप्रकाश भी केरल की भाषा में अगले वर्ष छपना आरम्भ हो जायेगा।

केरल में सुयोग्य युवक वैदिक धर्मी बन रहे हैं। ऋषि का मिशन वहां फूले फले। परस्पर प्रीति रीति से वहां के आर्य बन्धु कार्य करते हुये आगे बढें। यही हमारी कामना है। जून में केरल को यात्रा के पश्चात् पाठकों के सामने वहां को सारी स्थिति रखूंगा।

३—श्री भैरवसिंह जी जोधपुर

पाठकों को पहले बताया जा चुका है कि जोधपुर के श्री भैरवसिंह जी आर्य महर्षि के बलिदान के विषय में सर्वाधिक जानकारी रखते हैं। उन्होंने इस विषय पर बड़ी खोज की है। कई पाठकों ने उनके बारे में कुछ जानने की इच्छा प्रकट की है। श्री भैरवसिंह जी की आयु इस समय ६८ वर्ष की है। आप ने जोधपुर के एक प्रतिष्ठित परिवार में जन्म लिया। आपके परिवार का जोधपुर के राजघराना से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। आपके पूज्य पिता जी ठा० जयसिंह तथा पितामह कर्नल थानसिंह जोधपुर राज्य की सेना में अधिकारी थे। सर प्रतापसिंह व राव राजा तेजसिंह व किशोरसिंह इनके गृह पर आया जाया करते थे। राज्य के पुराने रिकार्ड में इन सम्बन्धों की चर्चा है।

ठा० थानसिंह जब अन्तिम दिनों रुग्ण हुये तो उनका इलाज राई का बाग पैलेस में ही हुआ। चिकित्सक जोधपुर का चापलूस डा० अली मर्दान ही था। भैरवसिंह जी के पूर्वजों का राजघराना से तो सम्बंध था ही। महर्षि को भी जोधपुर में इस परिवार ने निकट से देखा। अपनी कुल परम्परा में भी प्रत्यक्षदर्शी पूर्वजों से इतिहास के इस तथ्य को जाना कि महर्षि को शड्यन्त्र करके मारा गया।

श्री भैरवसिंह जी के नाना ठा० जगन्नाथ जी उदयपुर के राज्य के सामन्त थे। ठा० जी उन भाग्यशाली लोगों में से थे जिनको महर्षि के चरणों में बैठकर विद्या प्राप्ति का सौभाग्य प्राप्त हुआ। महर्षि जीवन चरित्र का सूक्ष्म अध्ययन करने वाले इस तथ्य को जानते हैं। जब ऋषिवर चित्तौड़ पधारे तो ठाकुर जगन्नाथ जी ही तब वहां के प्रशासक थे।

ठा० जगन्नाथ जी के सुपुत्र मेवाड़ राज्य की सेना के कमाण्डर थे।

मातृकुल से भैरवसिंह जी को महर्षि के बलिदान के ऐतिहासिक तथ्य की जानकारी मिली। आपने मैट्रिक किया। सेना में कैप्टिन बने। फिर नौकरी छोड़ कर जोधपुर आ गये। फिर सिविल की नौकरी की। जोधपुर राज्य के सरकारी रिकार्ड के इंचार्ज रहे। राजस्थान बनने पर जोधपुर का रिकार्ड आपने ही राजस्थान सरकार को सौंपा। राज्य के रिकार्ड में महर्षि के बारे में क्या क्या और कहां कहां वर्णन है इसका प्रामाणिक ज्ञान आपको है। आपका निश्चित मत है कि महर्षि को विष देने के लिये षड्यन्त्र में कई शक्तियों का हाथ है। ४८ वर्ष से आप जोधपुर राज्य में आर्यसमाज व महर्षि के प्रचार व प्रभाव विषय पर शोध कर रहे हैं। आपका शोध कार्य छपने पर आर्यसमाज के इतिहास सम्बन्धी विद्वानों को ठोस सामग्री मिलेगी। यह शोधकार्य अभी तो खर्च मांगता है। ऋषि भक्तों को इस ओर ध्यान देना चाहिये। कही देवेन्द्र बाबू की भांति श्री भैरवसिंह जी का कार्य भी अधूरा न रह जाय। ६८ वर्ष के वह हो चुके। कार्य अधूरा रह गया तो फिर इसे कोई और क्या पूरा कर पायगा।

उत्तर स्पष्ट है नहीं! नही! नही! ●

पूज्य शास्त्री जी का आर्शीवाद

आदरणीय सिद्धान्ती जी, सादर सप्रेम नमस्ते।

आपके नवीन कार्यक्रम के सम्बन्ध में आर्यमर्यादा में पढ़ा था। अपने जीवन सम्बन्धी योजना बद्ध कार्यों को आप जिस प्रकार निभा रहे हैं, वह प्रशंसनीय है और अन्यों के लिये अनुकरणीय है। प्रभु आपका मार्ग प्रशस्त करें।

—महेन्द्रप्रताप शास्त्री एम० ए० एम० ओ० एल०, कुलपति कन्या गुरुकुल महाविद्यालय हाथरस (अलीगढ़)

वैदिक-युग का ढकोसला

(लेखक—श्री पं० जगत्कुमार शास्त्री "साधु सोमतीर्थ" आर्योपदेशक सी-२/७३, अशोक विहार-२, देहली-५२)

१—हमारे देखते ही देखते पिछले दो तीन दशकों में "वैदिक युग" इस समस्त पद का प्रयोग बहुत अधिक होने लगा है। अब तो आर्य-सामाजिक पत्र पत्रिकाओं में छपने वाले वैदिक सिद्धान्त ज्ञान शून्य अधकचरे विद्वानों और एम० ए०, बी० ए० एवं शास्त्री पदवीधारी नये नये स्नातकों के लेखों में भी "वैदिक युग" पद को बहुत अधिक उछाला जाने लगा है। हमें जानना चाहिये कि "वैदिक युग" अंग्रेजी भाषा के "वैदिक एज" [VEDIC AGE] शब्द का अनुवाद है। इसी अर्थ में दूसरा प्रयोग "वैदिक काल" भी देखने में आता है। यह प्रयोग अत्यन्त भ्रमाक होने के साथ ही साथ वेदों के गौरव को घटाने वाला भी है।

२—बहुत से विदेशी विद्वानों और उनके भारतीय चेलों ने वैदिक साहित्य, वैदिक मन्तव्यों, वैदिक संस्कृति और वेदवाद से सम्बन्धित विभिन्न अंगों तथा उपांगों के विषय में राजनैतिक कारणों और साम्प्रदायिक संकीर्णताओं से प्रेरित होकर जो बहुत से लेख और ग्रन्थ लिखे हैं, उनमें "वैदिक एज' शब्द का प्रयोग किया गया है। अंग्रेजी भाषा के प्रचार प्रभाव तथा अनुवाद और अनुकरण प्रधान प्रशिक्षण, लेखन और चिन्तन प्रणालियों ने हिन्दी में भी "वैदिक युग" प्रयोग को अब खूब फैला दिया है।

३—विदेशियों और वैदिक धर्म के द्वेषियों ने अपने अपने देशगत अथवा सम्प्रदायगत हितों के संरक्षण और वर्चस्व प्रस्थापन के लिए अपने विशेष ढंग और गूढ़ अभिप्राय के अनुसार विभिन्न प्रसंगों में विभिन्न प्रकार के अर्थों में "वैदिक युग" को प्रयोगा है। कोई "वैदिक युग" का अभिप्राय बताता है वह समय, जब वेदों की रचना हुई या हो रही थी। इस विचार धारा के अनुसार हजारों वर्षों का वेद रचना काल माना जाता है और हजारों वर्षों में उत्पन्न होने वाले बहुत से ऋषियों को अजाकल के कवियों की तरह ही वेद मन्त्रों और वैदिक सूक्तों आदि का रचयिता बताया जाता है।

४—कुछ का कथन है "वैदिक युग' का अभिप्राय है वह सुदीर्घ काल जब भारतवासियों के पारिवारिक, सामाजिक और राष्ट्रिय जीवन में वैदिक सिद्धान्तों और वेद प्रसूत यज्ञ पद्धतियों एवं रीति नीतियों को अपेक्षाकृत अधिक महत्व और स्थान प्राप्त था। इस विचार वाले वैदिक ज्ञान की शुद्धता श्रेष्ठता, सर्वजनहितकारिता और सार्वकालिक एवं सार्वभौम व्यावहारिक उपयोगिता आदि का कुछ भी विचार न करके अपनी भाषाविज्ञान और गाथाविज्ञान विषयक असिद्ध और काल्पनिक कसौटियों के आधार पर मूल्यांकन के प्रपंच खड़े करते हैं, और वेदों को सदोष तथा नवीन ठहराते है।

५—कुछ तथाकथित विचारों का मत है कि वेदों में जिस समय की रीति नीतियों, इतिहास परम्पराओं और भूगोल खगोल की कतिपय घटनाओं के उल्लेख वा सकेत मिलते हैं, वही "वैदिक युग" था। इनके मतानुसार वेदों में अनित्य इतिहास के उल्लेख, रस्म रिवाजों के विवरण और असभ्य मानव समाज की विकासोन्मुख सभ्यता के संकेत स्वीकरे जाते हैं।

६—कहना न होगा कि "वैदिक युग" के ये और ऐसे ही अन्य भी कई निरूपण अथवा अर्थवाद अत्यन्त भंयकर, दूषित, अनुचित और भ्रामक हैं। हिन्दी में तथा अन्य भारतीय और अभारतीय भाषाओं में भी "वैदिक युग" प्रयोग की वृद्धि के साथ वेदों और वैदिक धर्म के विषय में घोर अनुचित, अयथार्थ तथा महाभ्रामक भाव शीघ्रता और तीव्रता के साथ फैलते जाते है। इसके फलस्वरूप वेदों की अपौरुषेयता और ईश्वरीयज्ञान वेद के सिद्धान्त की तो जड़ ही कट जाती है। वेदों के प्रति अश्रद्धा की वृद्धि होने पर वैदिक ज्ञान विज्ञान के महत्व पर भी पर्दा पड़ जाता है।

७—हमें यह मानने में इन्कार नही कि कुछ लोग ऐसे भी होंगे जो केवल देखा देखी के आधार पर ही "वैदिक युग" का प्रयोग करते होंगे और इस प्रयोग से फैलने वाली हानियों एवं परिपुष्ट होने वाली भ्रान्तियों से अनभिज्ञ भी होंगे। तथापि इस अज्ञ या मूढ़ "वैदिक युग" प्रयोग को उचित या अल्पहानिकर नहीं माना जा सकता। विगत एक हजार वर्ष के स्वतन्त्रता संघर्षों और दासता के अभिशापों ने हमें दिङ्मूढ़ सा बना दिया है। पहले अरबी फारसी के प्रसार और अब अंग्रेजी भाषा की भरमार से भारतवालों का मौलिक चिन्तन अधिक कुण्ठित, रुद्ध और क्षतिग्रस्त सा हो चुका है। अब सम्भाषण, लेखन, प्रकाशन में ही नहीं, अपितु खान पान, पहिरान, लोक व्यवहार, प्रकाशन, अनुशासन और चिन्तन में भी हम भारवाले अनुवादों = अनु + वादों = अनुकरणवादों से ही अपना सब काम चला रहे हैं। यह कैसी दयनीय स्थिति है? कैसी आत्मघाती प्रवृत्ति और सदोष मनोवृत्ति है? जिसके अनुसार दूषण भी भूषणवत् स्वीकारे और व्यवहारे जा रहे हैं। स्वतन्त्र भारत के नागरिक तथा नेता प्रणेता आत्मज्ञान, आत्मजागरण और गौरवपूर्ण आत्म स्थिति लाभ के लिये क्या कर रहे हैं? ●

ब्रह्मचर्य शिक्षण शिविर

आत्मशुद्धि आश्रम में श्री स्वामी ओमानन्द जी 'योगतीर्थ' आचार्य गुरुकुल सुन्दरपुर सिंहपुरा की अध्यक्षता में सातवें ब्रह्मचर्य शिक्षण शिविर का आयोजन ३ जून रविवार से ९ जून, शनिवार १९७३ तक हो रहा है, प्राणायाम आसन एवं कुश्तियों आदि के शिक्षक और योगाभ्यास के साधकों के लिये भी व्यवस्था की जा रही है। भाग लेने वाले थाली, लोटा, कटोरी, कापी, पैन्सल, कदानुसार लाठी (योगाभ्यासी लाठी न लाएं) दो लंगोट, तौलिया, ऋतु अनुसार बिस्तर एवं आवश्यकतानुसार घृत और तेल अवश्य साथ लेकर आयें। भोजन तथा स्थान का प्रबन्ध आश्रम की ओर से होगा। १३ वर्ष की आयु से ऊपर के विद्यार्थी एवं यौगिक क्षेत्र के पथिक अपना नाम और ५ रु० शिविर शुल्क ३० मई तक आश्रम के पते पर भेज देवें नहीं तो इस शुभ अवसर से वंचित रह जायेंगे। जनता के लाभार्थ प्रातः यज्ञोपरान्त ७ बजे मध्याह्न के पश्चात् २॥ बजे एवं रात्रि ८ बजे दैनिक उच्चकोटि के साधु संन्यासियों, नेताओं के प्रवचन व्याख्यान और आदर्श भजनोपदेशकों के मनोहर भजन भी हुआ करेंगे।

—संयोजक श्रीचन्द्र दत्त एम० ए०, व्यवस्थापक ब्र० धर्मवीर सन्तोषी

शताब्दी

चलना होगा बम्बई को शताब्दी चली आ रही है!

(कवि कस्तूर चन्द "घनसार" कवि कुटीर, पीपाड़ शहर राजस्थान)

होगा उचित विचार जहाँ, भारत में अब लौं कार्य किया।
बतलाना होगा शत वर्षों में, कितना आर्य ध्यान दिया॥
सौंपा था जो काम दयानन्द, आर्य जगत् में करने को।
वैदिक धर्म, पढ़ाने विद्या, अविद्या, पाखण्ड हरने को॥
मिलना सब का है मिजान, इस ओर ध्यान कर रही है॥१॥

रहे है कितने चल गुरुकुलें, पढ़ते स्नातक है कितने।
भविष्य में क्या, करना होगा, अवश्य सोचें हैं जितने।
सद्भावों से सभी बतावें, आर्य भाव से काम किया॥
ब्यौरा सभी बता देना है, आर्य कामों में ध्यान दिया।
भव्य-भावों को है ले साथ, ये खिलती कली आ रही हैं॥२॥

पहुंचादें घर घर सन्देशा, जागृत ज्योति जगाई स्वामी।
मनानी है शताब्दि तन धन से, सोचें कुशल कार्यगामी॥
अमृतावसर न मिलने का फिर, इस जीवन में फिर कभी भी।
न चूके भूले कर ये अवसर, बना ले पुरोगम अभी भी॥
वेदों की सुखद ज्योत्स्ना ये, बिछाती चली आ रही है॥३॥

बता देना है विश्व में, इस शताब्दी का प्रकाश प्यारा।
लगाना होगा ध्यान इस बार, तज कर निजी कार्य सारा॥
लाना है वही पूर्व का युग, जो ऋषियों ने बताया।
कार्यान्वित हो सभी कार्य जो, सही है ऋषि ने बताया॥
पिछड़े हुए सन्मार्ग को वह, बताती चली आ रही है॥४॥

करेंगे तन मन धन से होके, संलग्न काम रत हो इसमें।
है सभी की आन शान सही गौरवता बढ़ेगी यह जिसमें॥
आर्योत्थान की सच्ची है नींव, यही तो है अपनी प्यारी।
'घनसार' जो होगा नव कार्य्य, और हो नीति रीति सारी॥
जन जागृत करती चेताती, द्वेष हटाती आ रही हैं॥५॥

गतांक से आगे
ऐतिहासिक तथा भौगोलिक स्थिति —

पानीपत नगर

(श्री ला० रामगोपाल एडवोकेट, रेलवे रोड, पानीपत)

शिक्षा:—

देश के विभाजन से पहले इस नगर में किला पर नगर पालिका का केवल एक स्कूल था। इसको म्युनिसिपल बोर्ड अंग्रेजी उर्दू स्कूल कहते थे। इसके पश्चात् शमशुल उलमा मौलाना ख्वाजा इल्ताफ हुसैन हालो के पुत्र ख्वाजा सजाद हुसैन ने १६२६ में हाली मुस्लिम हाई स्कूल खोला, इसके पश्चात् १६७१ में पानीपत के जैन समाज ने अपने प्राईमरी स्कूल को हाई स्कूल तक बढ़ा दिया। यह स्कूल भी पानीपत में जी० टी० रोड पर स्थित है। सन् १६२३ में पुरानी तहसील के भवन में बालकराम हाई स्कूल खोला गया जो १६३१ में उच्च न्यायालय के निर्णय परिणाम स्वरूप बन्द कर दिया गया। सन् १६२२ में पुरानी आर्यसमाज ने आर्य कन्या प्राईमरी पाठशाला को स्थापना की और १६४५ में इसको हाई स्कूल बना दिया। इसके पश्चात् सरकार ने लड़कियों के लिए स्कूल खोला यह स्कूल बागचा मौहल्ला इनसार पानीपत में खोला गया और इसके पश्चात् कोठी काबड़ी बिल्डिंग में ले जाया गया जहां आजकल कचेहरी है १६५४ में लड़कियों के स्कूल को जी० टी० रोड पर लाया गया वहां वह अब स्थापित है। पुराने नगर के मध्य में वैष्णव भवन में एस० ए० हाई स्कूल की स्थापना सन् १६५६ में की गई बाद में इस स्कूल का स्थान जी० टी० रोड पर परिवर्तन किया गया और इसको कालान्तर में हायर सैकण्डरी स्कूल बना दिया गया और विभाजन के दिनों में मुसलमान भवन खेल के मैदान छोड़ कर पाकिस्तान चले गए इस लिये हाली स्कूल और प्राईमरी स्कूलों के द्वारा छोड़ी हुई सम्पत्ति आर्यप्रतिधि सभा पजाब को सौंप दी गई। सभा ने आर्य हाई स्कूल और प्राईमरी ब्रांच एक मार्च १६४८ को खोली। ३०-५-५४ में आर्य कालेज आरम्भ हुआ और स्कूल का एक हाल तथा दक्षिण में बना हुआ एक ब्लाक कालेज को दे दिया गया और इस समय आर्य हाई स्कूल हायर सैकण्डरी प्रणाली में तब्दील हो गया है। इस समय यह स्कूल शिक्षा विभाग द्वारा पूर्णतया स्वीकृत है नवीनतम शिक्षा प्रणाली के आधार पर छोटे बच्चों के लिये आर्यसमाज ने इस वर्ष आर्य भारती की स्थापना की। आर्य कन्या उच्च पाठशाला का अपना भवन है इस भवन का बहुत सारा भाग कस्टोडियन से खरीदा गया है। विभाजन के पश्चात् आई० बी० भातृ ट्रस्ट ने एक स्कूल और एक प्राईमरी स्कूल खोला। बाद में यह हाई से हायर सैकण्डरी बनाया गया कालेज भी खोला गया विभाजन के पश्चात् ही सनातन धर्म सभा ने एस० डी० कन्या हाई स्कूल खोला जो कि नगर के उत्तर में उसके अपने ही भवन में स्थित है। बच्चों की नई शिक्षा प्रणाली के आधार पर इसी स्कूल के सामने इसी सभा द्वारा एक और स्कूल खोला गया १६६० में सनातन धर्म सभा ने एस० डी० डिग्री कालेज खोला माता हरकौर ट्रस्ट ने माता हरकौर गर्ल्ज हाई स्कूल की स्थापना की यह स्कूल माडल टाउन पानीपत में एक हाई स्कूल का प्रबन्ध कर रखा है जिसम आठवी कक्षा तक यह शिक्षा और दसवीं कक्षा तक यहाँ केवल लड़कियों के लिये प्रबन्ध है। विरजानन्द समाज द्वारा भी एक कन्या पाठशाला चलाई जा रही है। इस पुराने नगर में एक खालसा पाठशाला भी है। और मौडल टाउन में खालसा समाज का खालसा माडर्न स्कूल है। इसके अतिरिक्त इस नगर में सोलह प्राईमरी स्कूल हैं। ये स्कूल पहले नगर पालिका द्वारा चलाये जाते थे परन्तु अब सरकार द्वारा चलाये जा रहे हैं। इस प्रकार नगर के तीनों कालेजों में विद्यार्थियों की संख्या लगभग ३६०० है। हायर सैकण्डरी स्कूल में विद्यार्थियों की संख्या ६००० से कम नही है। और पांच हजार (५०००) विद्यार्थी यहां के हैं पाँच हाई स्कूलों में शिक्षा पाते हैं। शिक्षा विभाग द्वारा स्वीकृत स्कूलों के अतिरिक्ति यहां कुछ कोचिंग सैण्टर भी है आर्यसमाज की यह चार संस्थाएं आर्य कालेज, और उच्चतर माध्यमिक वि० महिलाओं के लिये आर्य कालेज और आर्य कन्या उच्च पाठशाला (हाई स्कूल) बड़ा बाजार पानीपत की पुरानी समाज द्वारा नियंत्रित होते हैं। इस नगर के लड़के और लड़कियों के लिये तकनीकी शिक्षा का पूरा प्रबन्ध है। इस नगर में एक ओद्योगिक प्रशिक्षण संस्था है। मौडल टाउन में लड़के और लड़कियों के लिये भी औद्योगिक शिक्षा संस्था है। इसी तरह मौडल टाउन में एक स्कूल नेत्रहीन बालकों के लिये है। इसका प्रबन्ध सरकार द्वारा किया जाता है।

लोक सेवा कार्य.—

जी० टी० रोड़ के पूर्व में आर्य हायर सैकण्डरी स्कूल के सामने सिविल हस्पताल और ई० एस० आई० हस्पताल है। यह एक नये और सुन्दर भवन में है आर्य कालेज के सामने थोड़ा ही समय पहले एक नये ढग का बस संस्थान बनाया गया है। इसके अतिरिक्त नगर के मुख्य डाक तथा तार घर है और इसकी शाखाएं भी हैं। एक पशुओं का हस्पताल भी है। और बहुत बड़ी गौशाला भी है। जी० टी० रोड के पश्चिम में लोक निर्माण विभाग का निरीक्षण भवन और विश्राम गृह है। एवं एक टैली-फोन एक्सचेंज है तथा खादी आश्रम और एग्रो इण्डस्ट्रीज के दफ्तर हैं। यहां सरकार का क्वालिटी मार्किटोंग सेंटर भी है। पानीपत की जनता की आवश्यकताओं का देखते हुये हरयाणा राडवेज ने स्थानीय बस सेवा का प्रबन्ध भी किया है। शहर और ग्रामों के लोगों को इससे बहुत सुविधा हो गई है।

विभाजन से पहले इस नगर में केवल दो बैंक थे। पंजाब नैशनल बैंक और भारत बैंक परन्तु अब इस नगर में १६ बैंक है। पाच बैंक तो जी० टी० रोड पर ही हैं? १ पंजाब नैशनल बैंक २. युनाइटिड कामर्शिल बैंक, ३. दि लक्ष्मी कार्मशियल, बैंक, ४. ओरियण्ट बैंक आफ कोमर्स, ५. स्टेट बैंक आफ पटियाला, स्टेट बैंक औद्योगिक एरिया में है और इसका एक शाखा जी० टी० रोड पर तथा दूसरी मौडल टाउन में है। न्यू बैंक आफ इण्डिया असंध रोड पर है। और सैण्ट्रल बैंक आफ इण्डिया पुराने कचहेरी बाजार में है। पंजाब नेशनल बैंक ने अमर भवन चौक में एक नई शाखा खोली है इसके अतिरिक्त असन्ध रोड पर एक लैण्ड मारगेज बैंक है और सैण्ट्रल कोआप्रेटिव बैंक करनाल की एक शाखा को आप्रेटिव बैंक के नाम मे रेलवे रोड पर स्थित है। ●

वेद गोष्ठी सम्पन्न

श्री पं० उदयवीर जी शास्त्री की अध्यक्षता में "अग्नि, इन्द्र, वायु आदि देवता चेतन हैं अथवा अचेतन" विषय पर हुई। इस सम्बन्ध मे श्री जगदीश चन्द्र जी विद्यार्थी, श्री मदनमोहन विद्यासागर, आचार्य विश्वश्रवा जी, वैद्य पं० रामगोपाल जी शास्त्री, पं० युधिष्ठिर जी मीमासक ने प्रा० रामस्वरूप जी, अपने अपने विचार प्रकाशित किये, उपसंहार मे श्री अध्यक्ष महोदय ने अपने भाव को स्पष्ट किया कि वेद के शब्द रूढि नहीं, अपितु यौगिक हैं। प्रकरणानुसार मन्त्रों के अर्थों की संगति लगानो चाहिये। —दीनानाथ सिद्धान्तालङ्कार

कन्या गुरुकुल महाविद्यालय हाथरस (जि० अलीगढ़) उ०प्र०

१ जुलाई ७३ से नया वर्ष, कक्षा १ से बी०ए० स्तर तक की निःशुल्क शिक्षा। गुरुकुल पद्धति पर निःशुल्क छात्रावास। सबका सीधा सादा, एकसा रहन-सहन, कड़ा अनुशासन, नगर से दूर स्वास्थ्यप्रद जलवायु, सामान्य विषयों के अतिरिक्त संगीत, नैतिकता, गृह कार्यों की भी अनिवार्य शिक्षा। शुद्ध घी, दूध, नाश्ता (प्रातराश) सहित भोजन, शुल्क ३५ रु० मात्र। नियमावली मंगावें। —मुख्याधिष्ठात्री

संस्कार चंद्रिका का नया सस्करण प्रकाशित होगा

स्वर्गीय राजरत्न राजमित्र मास्टर आत्माराम जी के ग्रंथों के प्रकाशन की व्यवस्था हो रही है। सर्व प्रथम हम श्री आचार्य बृहस्पतिजी वृन्दावन के सहयोग से संस्कार चंद्रिका का प्रकाशन कर रहे हैं। संस्कारों पर आर्य महानुभावों से प्रार्थना है उनको जो भी शंकायें हैं। अथवा कुछ नवीन उन्होंने इस दिशा में शोध की हो हमें योगदान देकर उपकृत करें। —निवेदक आनंदप्रिय प्रधान गुजरात प्रान्तीय आर्य प्र० सभा बडौदा आत्माराम पथ बडौदा (गुजरात)

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब द्वारा प्रकाशित और प्रचारित वैदिक साहित्य

१. बलिदान जयन्ती स्मृति ग्रन्थ—आर्य बलिदानो की गाथा मूल्य ४-५०
२. सोम सरोवर-वेदमन्त्रों की व्याख्या —प० चमूपति एम. ए. ३-००
३ जीवन ज्योति-वेदमन्त्रो की व्याख्या " " ३-००
४. नीहारिकावाद और उपनिषदें " " ०-२५
५. Principles of Arya samaj " " १-५०
६ Glimpses of swami Daya Nand " " १-००
७. पजाब का आर्य समाज पजाब तथा हरयाणा के आर्यसमाज का इतिहास २-००
८. वैदिक सत्सग पद्धति सन्ध्या हवनमन्त्र अर्थ रहित विधि १-००
९. वेदाविर्भाव —आर्यमर्यादा का विशेषाक ०-६५
१०. यजुर्वेद अ० ३२ का स्वाध्याय " " " ०-५०
११. वेद स्वरूप निर्णय —प० मदनमोहन विद्यासागर १-००
१२. व्यवहारभानु —महर्षि स्वामी दयानन्द ०-५०
१३. स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश— " " ०-४०
१४. Social Reconstruction By Budha & Swami Daya Nand By. Pt Ganga Prasad Upadhya M. A. २-००
१५. Subject Matter of the Vedas By S. Bhoomanad १-००
१६. Enchanted Island By Swami Staya Parkashanand १-००
१७. Cow Protection By Swami Daya Nand ०-१५
१८. वेद मे पुनरुक्ति दोष नही है आर्यमर्यादा का विशेषाक २-००
१९. मूर्त्तिपूजा निषध " " ०-५०
२०. धर्मवीर प० लेखराम जीवन —स्वामा श्रद्धानन्द १-२५
२१. कुलियात आर्य मुसाफिर प्रथम भाग—प० लेखराम की पुस्तकों का सग्रह ६-००
२२. " " दूसरा भाग " " ८-००
२३. मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र —कु० सुशीला आर्या एम. ए. ०-२५
२४. योगीराज कृष्ण " " " ०-१५
२५. गोकरुणा निधि —स्वामी दयानन्द सरस्वती ०-२०
२६ आर्यसमाज के नियम उपनियम ०-१०
२७ आर्य नेताओ के वचनामृत —साईदास भण्डारी ०-१२
२८. कायाकल्प —स्वामी समर्पणानन्द सरस्वती १-५०
२९. वैदिक धर्म की विशेषताये —प० हरिदेव सिद्धान्त भूषण ०-१५
३०. स्वतन्त्रानन्द लेखमाला —स्वा० स्वतन्त्रानन्द जी की जीवनी तथा उनके व्याख्यान १-२५
३१. आत्मानन्द लेखमाला—स्वामी आत्मानन्द सरस्वतीकी जीवनी १-२५
३२. आर्यसमाज के सदस्यता फार्म —सैकड़ा१०-००
३३. वैदिक गीता —स्वामी आत्मानन्द सरस्वती २-५०
३४. मनोविज्ञान तथा शिव सकल्प " " " ३-५०
३५. कन्या और ब्रह्मचर्य " " " ०-१५
३६. सन्ध्या अष्टाङ्गयोग " " " ०-७५
३७. वैदिक विवाह " " " ०-७५
३८. सुखी जीवन —श्री सत्यव्रत २-००
३९. एक मनस्वी जीवन —प० मनसाराम वैदिक तोप १-५०
४०. छात्रोपयोगी विचारमाला —जगदेवसिह सिद्धान्ती १-५०
४१ स्त्री शिक्षा —प० लेखराम आर्य मुसाफिर ०-६०
४२. विदेशो मे एक साल —स्वामी स्वतन्त्रानन्द २-२५
४३. वेद विमर्श —प० भगवद्दत्त वेदालकार २-००
४४ वेद विमर्श —प० वेदव्रत शास्त्री २-००
४५. आसनो के व्यायाम " " " १-००
४६. महर्षि जीवन गाथा —स्वामी वेदानन्द वेदवागीश २-२५
४७. मास मनुष्य का भोजन नही—स्वामी ओमानन्द सरस्वती १-००
४८. वीर भूमि हरयाणा " " " ४-००
४९. चोटी क्यों रखें —स्वामी ओमानन्द सरस्वती ०-५०
५०. हमारा फाँजिल्का —श्री योगेन्द्रपाल १-५०
५१. सत्संग स्वाध्याय —स्वामी ओमानन्द सरस्वती ०-५०
५२. जापान यात्रा " " " ०-७५
५३. भोजन " " " ०-७०
५४. ऋषि रहस्य —पं० भगवद्दत्त वेदालंकार २-००
५५. स्वामी श्रद्धानन्द जीवन परिचय १-२५
५६ मेरा धर्म —आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति [illegible]
५७. वेद का राष्ट्रिय गीत " " " ५-००
५८. ईशोपनिषद्भाष्य —इन्द्र विद्या वाचस्पति २-०[illegible]
५९. प० गुरुदत्त विद्यार्थी जीवन —डा० रामप्रकाश १-३०
६०. वैदिक पथ —पं० हरिदेव सिद्धान्त भूषण २-००
६५. वैदिक प्रवचन —प० जगत्कुमार शास्त्री २-२५
६१. ज्ञानदीप " " " २-००
६२. आर्यसमाज का सैद्धान्तिक परिचय ०-५५
६३. The Vedas ०-५०
६४. The Philosophy of Vedas [illegible]-५०
६६ ईश्वर दर्शन प०जगत्कुमार शास्त्री १-५०
६७. श्वेताश्वरोपनिषद् " " ४-[illegible]
६८ ब्रह्मचर्य प्रदीप " " ४-००
६९ भगवन प्राप्ति क्यो और कैसे —स्वा० सत्यानन्द ०-६०
७० आर्य सामाजिक धर्म " " ०-७५
७१. बोध प्रसाद —स्वामी श्रद्धानन्द ०-२५
७२. ऋषि दर्शन —पं० चमूपति एम. ए. ००-२५
७३. ऋषि का चत्मकार " " " ००-१२
७४. वैदिक जीवन दर्शन " " " ००-२०
७५. वैदिक तत्व विचार " " " ००-५०
७६. देव यज्ञ रहस्य " " " ००-३५
७७. स्वतन्त्रानन्द संस्मरणाक ३-५०

सभी पुस्तकों के प्राप्ति स्थान

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब, गुरुदत्त भवन, जालन्धर (४२५०) टेलीफोन
" " " १५ हनुमान् मार्ग नई दिल्ली-१ " (३१०१५०)
" " " दयानन्द मठ रोहतक (हरयाणा) " (२७४)

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के लिए जगदेवसिह सिद्धान्ती शास्त्री द्वारा हैंकी प्रिंटर्स पहाड़ी धीरज, देहली में मुद्रित और १५ हनुमान् रोड, नई दिल्ली-१ से प्रकाशित

१४ ज्येष्ठ सं० २०३० वि०, दयानन्दाब्द १४९.
तदनुसार २७ मई १९७३ रविवार
सृष्टि सं०-१९६०८५३०७३

वर्ष ५ वार्षिक शुल्क स्वदेश में १०) रुपये
अंक २९ ,, ,, विदेश में २०) रुपये
एक प्रति का मूल्य ००-२० पैसे

सम्पादक–जगदेवसिंह सिद्धान्ती शास्त्री, पूर्व लोकसभा सदस्य (फोन ५१२१६३)

वेदमन्त्रार्थ-प्रवचन

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

यमश्विना ददथुः श्वेतमश्वमघाश्वाय शश्वदित्स्वस्ति ।
तद्वां दात्रं महि कीर्तेन्यं भूत् पैद्वो वाजी सदमिद्धव्यो अर्यः ॥

—ऋ० १.११६.६

पदार्थः—(यम्) (अश्विना) जलपृथिव्याविवाशु सुखदातारौ (ददथुः) (श्वेतम्) प्रवृद्धम् (अश्वम्) अध्वव्यापिनमग्निम् (अघाश्वाय) हन्तुमयोग्याय शीघ्रं गमयित्रे (शश्वत्) निरन्तरम् (इत्) एव (स्वस्ति) सुखम् (तत्) कर्म (वाम्) युवयोः (दात्रम्) दातुं योग्यं (महि) महद्राज्यम् (कीर्तेन्यम्) कीर्तितुम् (भूत्) भवति (पैद्वः) सुखेप प्रापकः (वाजी) ज्ञानवान् (सदम्) सीदन्ति यस्मिन् याने तत् (इत) एव (हव्यः) आदातुमर्हः (अर्यः) वणिग्जनः ॥

अन्वयः—हे अश्विना युवामयाश्वाय वैश्याय यं श्वेतमश्वं भास्वरं विद्युदाख्यं ददथुर्दत्तः। येन शश्वत् स्वस्ति प्राप्य वां कीर्तेन्य महि दात्रमिदेव गृहीत्वा पैद्वो वाजी सत् सदं रचयित्वार्यश्च हव्यो भूद् भवति तदिदेव विधत्ताम् ॥

भावार्थः—यौ सभासेनाध्यक्षौ वणिजः संरक्ष्य यानेषु स्थापयित्वा द्वीपद्वीपान्तरे प्रेषयतां तौ श्रियायुक्तौ भूत्वा सततं सुखिनौ जायेते ॥

भाषार्थः—हे (अश्विना) जल और पृथिवी के समान शीघ्र सुख के देने हारो सभासेनापति तुम दोनों (अघाश्वाय) जो मारने के न योग्य और शीघ्र पहुंचाने वाला है उस वैश्य के लिये (यम्) जिस (श्वेतम्) अच्छे बढ़े हुए (अश्वम्) मार्ग में व्याप्त प्रकाशमान बिजली रूप अग्नि को (ददथुः) देते हो तथा जिससे (शश्वत्) निरन्तर (स्वस्ति) सुख को पाकर (वाम्) तुम दोनों की (कीर्तेन्यम्) कीर्त्ति होने के लिये (महि) बडे राज्यपद (दात्रम्) और देने के योग्य (इत्) ही पदार्थ को ग्रहण कर (पैद्वः) सुख से ले जाने हारा (वाजी) अच्छा ज्ञानवान् पुरुष उस (सदम्) रथ को जिसमें बैठते हैं रच के (अर्यः) बणिया (हव्यः) पदार्थों के लेने के योग्य (भूत्) होता है (तत्, इत्) उसी पूर्वोक्त विमानादि को बनाओ ॥

भावार्थः—जो सभा और सेना के अधिपति वणियों की भली भाति रक्षा कर रथ आदि यानों मे बैठाकर द्वीपद्वीपान्तर में पहुचावे वे बहुत धनयुक्त होकर निरन्तर सुखी होते है ॥

—(ऋषिदयानन्दभाष्य)●

पुनर्जन्मविषयः

(पुनर्मनः पुनरात्मा) हे सर्वज्ञ ईश्वर! जब जब हम जन्म लेवें तब तब हमको शुद्ध मन, पूर्ण आयु, आरोग्यता, प्राण, कुशलता युक्त जीवात्मा, उत्तम चक्षु और श्रोत्र प्राप्त हो, (वैश्वानरोऽदब्ध) जो विश्व मे ईश्वर विराजमान है वह सब जन्मों मे हमारे शरीरो का पालन करे। (अग्निनः) सब पापों के नाश करने वाले आप हमको (पातु) दुरितादवद्यात) बुरे कामों और सब दुःखो से पुनर्जन्म में अलग रक्खें ॥३॥ (पुनर्मेत्विन्द्रियम्) हे जगदीश्वर! आपकी कृपा से पुनर्जन्म में मन आदि ग्यारह इन्द्रिया मुझको प्राप्त हो, अर्थात् सर्वदा मनुष्य देह ही प्राप्त होता रहे। (पुनरात्मा) अर्थात् प्राणों को धारण करने हारा सामर्थ्य मुझको प्राप्त होता रहे। जिससे दूसरे जन्म में भी हम लोग सौ वर्ष वा अच्छे आचरण से अधिक भी जीवें। (द्रविण) तथा सत्य विद्यादि श्रेष्ठ धन भी पुनर्जन्म मे प्राप्त होते रहे। (ब्राह्मणं च०) और सदा के लिये जो ब्रह्म वेद है उसका व्याख्यान सहित विज्ञान तथा आप ही में हमारी निष्ठा बनी रहे। (पुनरग्नयः) तथा सब जगत् के उपकार के अर्थ हम लोग अग्निहोत्र यज्ञ को करते रहें। (धिष्ण्या यथास्थाम) हे जगदीश्वर! हम लोग जैसे पूर्व जन्मो में गुण धारण करने वाली बुद्धि से उत्तम शरीर और इन्द्रिय सहित थे वैसे ही इस ससार में पुनर्जन्म में भी बुद्धि के साथ मनुष्य देह के कृत्य करने में समर्थ हो। ये सब शुद्ध बुद्धि के साथ (मैतु) मुझ को यथावत् प्राप्त हों। (इहैव) जिनमे हम लोग इस ससार मे मनुष्य जन्म को धारण करके धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को सदा सिद्ध करें। जिस करके किसी जन्म में हमको कभी दुःख प्राप्त न हो ॥४॥

(यजु० ४.१५ तथा अथर्व० ७६०१)।

—(ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका)●

सत्यार्थप्रकाश (दशम समुल्लास)

जैसे किसी गाय से बीस सेर और किसी से दो सेर दूध प्रतिदिन होवे उसका मध्य भाग ग्यारह सेर प्रत्येक गाय से दूध होता है, कोई गाय अठारह और कोई छः महीने तक दूध देती है उसका मध्य भाग बारह महीने हुए अब प्रत्येक गाय के जन्म भर के दूध से २४९६० (चौबीस हजार नौ सौ साठ) मनुष्य एक बार मे तृप्त हो सकते है। उसके छः बछिया और छः बछड़े होते है उनमें से दो मर जायें तो भी दश रहे उनमे से पाच वछियों के जन्म भर के दूध का मिलाकर १२४८०० (एक लाख चौबीस सहस्र आठ सौ) मनुष्य तृप्त हो सकते है। अब रहे ५ बैल वे जन्म भर में ५००० (पाच सहस्र) मन अन्न न्यून से न्यून उत्पन्न कर सकते हैं उस अन्न में से प्रत्येक मनुष्य तीन पाव खावे तो अढाई लाख मनुष्यों की तृप्ति होती है। दूध और अन्न मिलाकर ३७४८०० (तीन लाख चौहत्तर सहस्र आठ सौ) मनुष्य तृप्त होते है। दोनों सख्या मिलाकर एक गाय की एक पीढी में ४७५६०० (चार लाख पचहत्तर सहस्र छः सौ) मनुष्य एक बार पालित होते है और पीढ़ी पर पीढ़ी बढ़ाकर लेखा करे तो असख्यात मनुष्यो का पालन होना है इसमे भिन्न बैल गाड़ी सवारी भार उठाने आदि के कार्यों मे मनुष्यो के बडे उपकारक होते है।

—(ऋषि दयानन्द)●

सूखा अवर्षण दूर हो सकता है

(श्री पं० वीरसेन वेदश्रमी, वेदसदन, महारानी पथ, इन्दौर-१)

सूखा संकट किसने आमन्त्रित किया ?

अविद्या, अज्ञान एवं विपरीत कर्मों के कारण आज हमारे देश में अवर्षण—सूखा का संकट है। इसी से अन्न की, जल की, विद्युत् की कमी है। दारिद्र्य बढ़ रहा है। महंगाई चरम सीमा पर है। क्या देश में इस संकट का सामना करने की बुद्धि नहीं है ? हमारे देश में हजारों वैज्ञानिक हैं। क्या उनकी सामर्थ्य के यह परे की बात है ? देश की इस स्थिति ने स्पष्ट 'निर्णय' कर दिया है कि वैज्ञानिकों के पास इसका हल नहीं है। आस्ट्रेलिया, चीन आदि देश भी सूखे से पीड़ित हुए। वे इस विज्ञान में उन्नत हैं तो भी वे निश्चय से अपने देश को सूखे की विपत्ति से बचा नहीं सके।

वैज्ञानिकों के प्रयत्नों का ही यह परिणाम है

अनेक वर्षों से देश और विदेश के वैज्ञानिक इस देश में वर्षा कराने के अनेक प्रयत्न कर रहे हैं। परन्तु उत्तरोत्तर वर्षा का अभाव ही होता जा रहा है और परिणाम देश भुगत रहा है। ऐसा मालूम पड़ता है कि योजनाबद्ध कार्य इस देश को दुःखी, परद्रव्य, परबुद्धि, परप्रयत्नापेक्षित करने के लिये किया जा रहा है। अर्थात् हमारी बुद्धि हित अहित का भी विवेक करने में असमर्थ हो गई है जिससे अच्छाई के नाम पर हम ऐसे अविवेकपूर्ण कार्यों को पूर्ण विवेक एवं वैज्ञानिक मानकर कर रहे हैं और फल विपरीत भोग रहे हैं।

वैज्ञानिकों का अवैज्ञानिक प्रयत्न

हमारे देश में वैज्ञानिक प्रतिभा का अभाव है अतएव हमारे देश के वैज्ञानिक एवं नेतागण केवल विदेशियों के प्रयत्न एवं परामर्श को आंख मीचकर मानने और उसका अनुसरण करने में अपना गौरव समझते हैं और उसी का अनुकरण करने लगते हैं। विदेश के वैज्ञानिकों ने यहां आकर बादलों के स्तर पर नमक का महीन पाउडर—'चूर्ण' छिड़का जिससे नमक के कण द्रवीभूत होकर बादलों से वर्षा करा सकें। इसका कोई शुभ परिणाम नहीं हुआ। इससे तो केवल यही हो सकता है कि आकाश में जो जल है उसका बिन्दु रूप में परिणत करके पृथिवी पर ले आवे और इसके परिणामस्वरूप अन्तरिक्ष को जल से इतना शुष्क कर दे कि समुद्र से आई हुई जलपूर्ण वायुओं को उस आकाश में ठहरने, घनीभूत होने, बादल बनने एव बादलों को बरसने से भी वंचित कर दें। जैसे कोई १ रुपये के लिये लाखों का नुकसान कर दे, उसी के समान हमारे देश में वर्षा कराने के प्रयत्नों के नाम पर वास्तव में सूखे को निमन्त्रण का प्रयत्न हुआ है। वैदिक यज्ञ विज्ञान में वृष्टि रोकने के लिये नमक का प्रयत्न करने का आदेश है तथा इसके अनुसार कई बार अतिवृष्टि के अवसर पर वर्षा बन्द कराने में सफलता हमें प्राप्त हुई है। अतः हम अपने वैदिक यज्ञ विज्ञान के आधार पर यह निःसंकोच कह सकते हैं कि वर्तमान अवर्षण की स्थिति उत्पन्न करने में वैज्ञानिकों के ही प्रयत्न एक प्रमुख प्रभाव रखते हैं।

सूखा संकट के निमन्त्रितकर्त्ता राजनीतिज्ञ भी हैं

कभी कभी सभी ओर कभी कभी पार्टी विशेष के राजनीतिज्ञों की विचारधारायें देश की समस्याओं के समाधान के नाम पर अज्ञान और स्वार्थवश देश में संकटों का पर्वत खड़ा कर देती हैं। सूखे की स्थिति को भी राजनीतिक पार्टियों और साम्प्रदायिक दल वरद सुअवसर समझती हैं और जनता के कष्ट दूर करने के लिये नहीं अपितु अपना अर्थतन्त्र और पार्टीतन्त्र बलवान् बनाने का प्रयत्न करती हैं। जनता के दुःखों को दूर करने के नाम पर इतने दुःख बढ़ाये ही हैं। जंगलों का नाश, मरुभूमि का प्रसारण इनकी अविवेकपूर्ण नीतियों के कारण हुआ। मरुभूमि के प्रसारण को रोकने के नाम पर देश में कांटों के वृक्षों का वन इन ने लगाकर अन्न के लिये देश को पराश्रित बना दिया। इससे अन्तरिक्ष में भी मरुपन की वृद्धि हुई और आकाश में मेघों का कम संचय और वर्षने की कमी होती जा रही है।

अज्ञान और अनभिज्ञता का ही यह परिणाम है

अपने प्राचीन ग्रन्थ, विद्या आदि की उपेक्षा और अनभिज्ञता के कारण ये वैज्ञानिक और राजनीतिक जन सूखे का सामना करने चले हैं। अन्न का अभाव दूर करने का प्रयत्न कर रहे हैं। जल का संकट दूर करना चाहते हैं जमीन खोद कर पानी प्राप्त करके। अरबों रुपया इन गड्ढों को खोदने में, और मशीनें लगाने में लगा रहे हैं। पृथिवी के जलस्रोत वर्षा के अभाव से उत्तरोत्तर नीचे होते जाते हैं। फिर खुदाई, फिर और गहरी खुदाई, पानी और नीचे, और नीचे, और कम, और कम। पीने को भी बोतलों में पानी मिलेगा, क्यू लगाने पर, धक्के खाने पर, यदि यही चाल रही ? ऐसी स्थिति में क्या कोई और भी उपाय है, या हो सकता है ? हां हो सकता है, अवश्य उपाय है, सरल उपाय है। वर्षा के दाता प्रभु ने इस संकट को दूर करने का हमें उपाय तभी दे दिया था जब इस सृष्टि पर मानव को उत्पन्न किया था। वेद मानव मात्र का है। उसमें सूखे का उपाय बताया है—यज्ञ। गीता ने, शास्त्रों ने, ऋषि मुनियों ने, स्मृति और पुराणों ने, इतिहास ने भी इसी को अनुभवों से पुष्ट किया। परन्तु जानते और मानते हुए भी हमने उसे उपेक्षित कर दिया। न जानते हुए और न जानने की इच्छा करते हुए हमारे अहंकार ने उसे ठुकरा दिया। हम अपने अज्ञान और अहंकार का परिणाम भोग रहे हैं। जब तक हम वेद का आश्रय नहीं लेंगे हमारी समस्या हल नहीं होगी।

वर्षा कराने का सुगम उपाय यज्ञ है

यज्ञ द्वारा वृष्टि कराने की विद्या का वेद तथा वैदिक साहित्य में अनेक स्थानों पर उल्लेख है। अथर्ववेद काण्ड ४, सूक्त ५ मंत्र १६ में 'तन्वतां यज्ञं बहुधा विसृष्टाः' कहा है। अर्थात् अवर्षण की स्थिति में या जब वर्षा कराने की आवश्यकता हो तब बहुत से यज्ञ विविध प्रकार से करने चाहियें। अर्थात् वृष्टि निमित्त अन्तरिक्ष की स्थिति के अनुसार अनेक प्रकार के यज्ञ करने से वर्षा का यथोचित लाभ प्राप्त हो सकता है।

वर्षा की प्रक्रिया में अनेक यज्ञ

बादल होने की स्थिति में वर्षा कराने के लिये यज्ञ, बादल न होने की स्थिति में बादलों के निर्माण के लिये यज्ञ, सोम को पर्जन्य मंडल में नीचे लाने के लिये यज्ञ, इत्यादि प्रकार के अनेक यज्ञ वृष्टि यज्ञ की प्रक्रिया में आते हैं। यथावसर उनका उपयोग करना चाहिये। आज देश में भयंकर रूप से सूखा, काल अवर्षण के कारण है जिससे जल, अन्न, विद्युत् का अभाव होने से दुःख दारिद्रय की वृद्धि हो रही है। इसका निवारण यज्ञ से ही संभव है। करोड़ों या अरबों रुपयों को बांटने से समस्या का हल नहीं होगा।

यज्ञ से सोम और पर्जन्य

अथर्ववेद में वृष्टि यज्ञ की मूलभूत एक संक्षिप्त प्रक्रिया का निम्न मंत्र में सुन्दर रूप से वर्णन किया गया है—

केन पर्जन्यमन्वेति केन सोमं विचक्षणम्।
केन यज्ञं च श्रद्धां च केनास्मिन्निहितं मनः ॥ (१०।२।१९)

'केन' शब्द द्वारा इस मंत्र में प्रश्न के रूप में क्रमशः उत्तर की शृंखला भी है। अर्थात्—पर्जन्य, बादल किससे प्राप्त होते हैं ? इसका उत्तर इस मंत्र के आगे के प्रश्न वाक्य में ही है। किससे अद्भुत् सोम प्राप्त होता है ? अर्थात् अद्भुत् सोम ही से पर्जन्य, मेघ, बादलों का निर्माण होता है यह प्रथम प्रश्न का उत्तर भी है और द्वितीय प्रश्न भी है। इस द्वितीय प्रश्न का उत्तर कि सोम किससे बनता या प्राप्त होता है—तृतीय प्रश्न—केन यज्ञं च श्रद्धां च—में है। अर्थात् सोम तत्व का निर्माण यज्ञ से और श्रद्धा नामक सूक्ष्म जलों से सोम निर्माण प्रक्रिया होती रहती है और मानव प्रयत्नकृत यज्ञ प्रक्रिया से भी सोम का निर्माण होता है।

(क्रमशः)
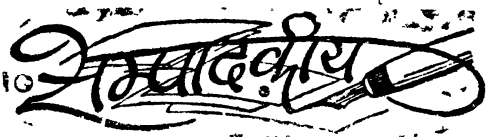
ऋषि दयानन्द के विष काण्ड की समस्या

यह निश्चित है कि प्रिं० श्रीराम शर्मा ने यह लिखा कि ऋषि को विष नहीं दिया गया था। इस लेख पर आर्यसमाज के क्षेत्र में हलचल मच गई। श्री शर्मा के इस मिथ्या पक्ष का विरोध ही नहीं, अपितु प्रबल खण्डन दयानन्द महाविद्यालय अबोहर के प्राध्यापक श्री राजेन्द्र जिज्ञासु एम० ए० बी० टी ने सर्वप्रथम सप्रमाण किया। श्री जिज्ञासु ने सिद्ध किया कि ऋषि को विष दिया गया था, अपने पक्ष में इन्होंने आर्यसमाजो अन्य मातावलम्बी, देशी विदेशी विद्वानों के अतिरिक्त प्रसिद्ध इतिहासज्ञों के प्रमाणों का ढेर लगा दिया। आर्यमर्यादा इन लेखों से भरा हुआ है। आर्यसमाज के अन्य पत्रों ने भी श्री जिज्ञासु के पक्ष को प्रोत्साहन दिया। श्री शर्मा बोखला गये, परन्तु अपने दुराग्रह पर अड़े रहे। प्रिं० भगवान् दास एम० ए० प्रधान आचार्य डी० ए० वी० कालिज ने श्री शर्मा को समझाया कि अपने मिथ्या पक्ष को छोड़ दीजिये, परन्तु श्री शर्मा उनको धमकी देने लगे। श्री जिज्ञासु के विरुद्ध डी० ए० वी० कालिज अबोहर के प्रिं० श्री नारायण दास ग्रोवर को शिकायती पत्र भी भेजा।

२. हमें विश्वस्त रूप से ज्ञात हुआ है कि पंजाब विश्वविद्यालय के उपकुलपति श्री ला० सूरजभान ने हरयाणा राज्य सरकार से स्वयं मांगकी कि ऋषि दयानन्दजी के जीवन वृत्त को अंग्रेजी भाषा में प्रकाशित करवाने के लिये पं० वि. वि. को दीजिये। हरयाणा सरकार के मुख्य मन्त्री चौ० बंशी लाल ने उपकुलपति जी की मांग को आदार पूर्वक स्वीकार किया और ५० हजार रु० की राशि उन्हें अर्पित कर दी। हरयाणा सरकार ने यह राशि देकर नहीं कहा किस व्यक्ति को लिखने का काम दिया जावे।

३. उपकुलपति महोदय ने इस काम पर श्री शर्मा को नियुक्त कर दिया। आर्य जगत् में बहुत शोर पड़ने पर हमने आर्यमर्यादा में चौ० बंशी लाल मुख्य मन्त्री को पत्र लिखा। उन्होंने वही पत्र हरयाणा राज्य के शिक्षा मन्त्री चौ० माड़ू सिंह मलिक को भेज दिया। हमने मुख्य मन्त्री महाशय का पत्र भी छाप दिया। पुनः चौ० माड़ू सिंह शिक्षा मन्त्री का पत्र हमें स्वीकृति का मिला। उसको को छाप दिया। शिक्षा मन्त्री ने उपकुल पति से इस सम्बन्ध में बातें कीं। उपकुलपति ने उन्हें आश्वासन दिया कि जीवन वृत्त में ऐसी कोई बात प्रकाशित नहीं की जावेगी। कि जिस पर किसी ओर से आपत्ति हो सके। हमने यह आश्वाशन भी छाप दिया। इस आश्वासन से सुप्रकट हो गया कि श्री शर्मा को उपकुलपति ने ऋषि जीवन वृत्त लिखने पर नियुक्त किया। श्री शर्मा अपने अड़ियल पक्ष पर डटे रहे।

४. आर्य जगत् के पूज्य संन्यासी महात्मा आनन्द स्वामी ने उपकुलपति से कहा कि श्री शर्मा को इस काम से हटा दिया जावे और श्री शर्मा को भी लिखा कि आप इस कार्य के अयोग्य हो, अतः स्वयं हट जाओ। परन्तु उपकुलपति ने पूज्य महात्मा जी का निर्देशन माना और श्री शर्मा ने अशिष्ट पत्र महात्मा जी को लिखा। हमने यह पत्र भी छाप दिया।

५. आर्यमर्यादा में श्री जिज्ञासु के प्रबल प्रमाण प्रकाशित होते रहे और इन्होंने अपने पक्ष की सिद्धि में एक पुस्तिका भी प्रकाशित कर दी।

६. हमने उपकुलपति महाशय को पत्र लिखा कि श्री शर्मा को आप हटा दीजिये। यह पत्र भी छाप दिया। परन्तु उपकुलपति ऐसे मौनी बन गये, मानो उन्हें कुछ पता ही नहीं। श्री शर्मा अपने पर लगे रहे। ४ अप्रैल ७३ को पता चला कि श्री शर्मा इस अपने कुकृत्य काम पर साढ़े सैंतीस हजार रुपये हरयाणा के पवित्र दान अथवा अनुदान का खर्च कर चुके हैं।

७. इस हलचल के पर्याप्त देर पर हमें एक पत्र चण्डीगढ़-२२ सेक्टर के मन्त्री का मिला कि अपनी सभा (आर्यप्रतिनिधि सभा पंजाब) के आर्यसमाजों को पत्र भिजवा देवें। डा० रामप्रकाश पी० एच० डी०, वि० वि० की सीनेट में इस सम्बन्ध में प्रस्ताव रखेंगे। हमने उन्हें उत्तर दिया कि आपने काम बहुत पीछे आरम्भ किया है, परन्तु अच्छा काम जब भी हो जावे तब ही उत्तम है।

८. तत्पश्चात् डा० रामप्रकाश पी० एच० डी० का प्रस्ताव सीनेट में प्रस्तुत हुआ और सर्वसम्मति श्री शर्मा के विरुद्ध निन्दा का प्रस्ताव स्वीकार हुआ। इस पर चण्डीगढ़ के उन्हीं मन्त्री ने हमें लिखा कि इस प्रस्ताव से "आर्यजगत् में हर्ष का लहर दोड़ जावेगी।" हमने उनका पत्र और प्रस्ताव की स्वीकृति का रूप भी छाप दिया। और हमने लिखा कि आर्यजगत् में हर्ष की लहर दौड़ना तो दूर रहा—यह उपकुलपति की कोरी चाटुकारिता है। तथा श्री डा० रामप्रकाश द्वारा प्रस्तुत प्रस्ताव निस्तेज है। इससम्बन्ध में उपकुलपति ने एक शब्द भी नहीं कहा कि श्री शर्मा से यह लेखन कार्य ले लिया जावेगा।

९. अब एक नई मांग उपकुलपति के मान को बचाने के लिये चलाई गई है कि हरयाणा से यह आन्दोलन चलाया जावे। क्यों जी ! हरयाणा ने तो ५० हजार रुपये की राशि उपकुलपति को झोली में डाल दी, उसका उत्तरदायित्व लेखक को नियुक्त करने का नहीं था। यह नियुक्ति उपकुलपति ने की है। यह मांग क्यों नहीं की जाती कि उपकुल श्री शर्मा को हटावें। चौ० माड़ू सिंह मलिक ने कोई आश्वासन नहीं दिया। ठीक है वह श्री शर्मा को हटाने का आश्वासन दे ही नहीं सकते।

१०. हम बड़े विनीत भाव से आर्यजगत् से निवेदन करना चाहते हैं कि हम सब मिलकर उपकुलपति से मांग करें कि वह श्री शर्मा को हटावें। यदि उपकुलपति इस मांग को पूरी नहीं करें तो इनके विरुद्ध आन्दोलन आर्यसमाज चलावे। हरयाणा सरकार ने अपना कार्य कर दिया। अब उपकुलपति को करना चाहिये। यदि वह नहीं करते तो दोषी हरयाणा सरकार नहीं किन्तु उपकुलपति हैं। इस मत में दो पक्ष हो ही नही सकते। आशा है--आर्यजगत् सत्य पक्ष को आगे लाकर कार्य करेगा। नहा तो श्री शर्मा का कुकृत्य का प्रकाशन होगा अथवा नहीं। इसको हम नहीं कह सकते यदि दुर्भाग्य से प्रकाशन हो गया तो उस प्रकाशन की क्या गति होगी, यह भविष्य के गर्भ में ही है।

मस्जिदों को खोज में हथियार मिले

पूना में दंगे के कारण "बन्दे मातरम्" का विरोध था। जब वहां जांच की गई तो मस्जिदों में गुप्त रखे गये हथियार पकड़े गये। बड़ी मात्रा में तेजाब, पैट्रोल और पटाखे मिले। बम्बई के लीगी नेता बनातवाला ने कहा कि यह नही हो सकता। पत्रकारों ने जब उनको कहा कि यदि ऐसा है तो आप क्या कहेंगे ? खेद है इतना होने पर भी मुस्लिम लीग के नेता दंगा करने वालों को बढ़ावा देते हैं। बनातवाला ने तो मस्जिदो की तलाशी का विरोध भी किया। सम्प्रदाय मतमतान्तर के नाम पर अनेक गुप्त काण्ड किये जाते हैं। यह एक बार की बात नही। अनेक बार की घटनाओं से सिद्ध होता है। भारत सरकार को चाहिये कि साम्प्रदायिक लोगों की ऐसी राष्ट्र घातक चालों को नष्ट करे।

खेद प्रकाश

आर्यमर्यादा के गत अंक के पृष्ठ ४ पर गुरुकुल कांगड़ी के उत्सव के दो चित्र प्रकाशित किये थे। खेद है कि दोनों चित्रों के ऊपर नीचे का विवरण उलट होकर छप गया। चित्र ठीक थे, परन्तु दोनों की भाषा ऊपर की नीचे और नीचे की ऊपर छाप दी गई। इसका हमें खेद है।

—जगदेवसिंह सिद्धान्ती शास्त्री

कर्त्तव्य की पुकार

(श्री पंडित जगत्कुमार शास्त्री "साधु सोमतीर्थ" आर्योपदेशक सी २।७३ अशोक विहार-२, देहली-५२)

१. महर्षि दयानन्द सरस्वती का देहान्त ३० अक्टूबर सन् १८८३ ई० को अजमेर नगर में दीपावली के दिन हुआ था। उस समय उनकी आयु ५९ वर्ष थी। महर्षि की मृत्यु से मानवता को जो आघात लगा था, उसकी कसक दूर दूर तक अनुभव की गई थी। वेद प्रचार, समाजसुधार, जन जागरण और वैदिक धर्म की पुनः प्रतिष्ठा के जो महान् कार्य महर्षि ने आरम्भ कर रखे थे, उनको सुव्यवस्था पूर्वक आगे बढ़ाने की कठिन समस्या बाल आर्यसमाज के सामने थी। यद्यपि भारत के कुछ नगरों में आर्यसमाज स्थापित हो चुके थे, परन्तु वे सब आरम्भिक अवस्थाओं में ही थे। आर्यसमाजों का कोई केन्द्रिय अथवा प्रतिनिधि संघटन उस समय तक विकसित न हो सका था। आर्यसमाजों के अन्तर्गत किसी प्रकार का संस्थावाद भी तब तक कहीं जन्मा न था।

२. महर्षि की रुग्णावस्था में सेवा सुश्रुषा और विचार विमर्श के लिये लाहौर से श्री पं० गुरुदत्त विद्यार्थी और आर्यसमाज लाहौर के मंत्री श्री जीवन दास जी अजमेर गये थे, वहां से वे नया प्रकाश, नया उत्साह, सबलतम शिवसंकल्प और वैदिक धर्म के प्रसार के लिये अपूर्व शक्ति प्राप्त करके लौटे थे। महर्षि के देहावसान के नौ दिन बाद ८ नवम्बर सन् १८८३ को लाहौर में शोक सभा हुई। महर्षि के अन्तिम समय और अन्त्येष्टि संस्कार आदि के समाचार सुनाये गये। महर्षि के स्मारक स्वरूप दयानन्द एंग्लो वैदिक कालिज की स्थापना का प्रस्ताव भी सर्वप्रथम वार उसी सभा में प्रस्तुत तथा स्वीकृत हुआ था। इसके लिये आठ हजार रुपये भी उसी समय एकत्र कर लिया गया था। उस समय के अनुसार यह एक बहुत बड़ी बात थी। यही आर्यसामाजिक चन्दा अभियान का सर्वप्रथमारम्भ था। और यही हमारे संस्थावाद विशेष रूप से स्कूल कालिज आदि शिक्षा सस्थाओं का बीजारोपण भी था। इसके अनुसार ही आर्यसमाज का आन्दोलन विकसित होता हुआ अपने वर्तमान स्वरूप को प्राप्त हुआ है।

३. कालिज की स्थापना के विचार से जनता को विशेष रूप से आकर्षित किया था। धन संग्रह के कार्य उत्साह पूर्वक हो रहे थे। कार्य को विशेष प्रगति तब मिली जब कि एक युवक ने आजीवन अवैतनिक रूप में कालिज की सेवा के लिये अपने आपको प्रस्तुत किया। उस युवक ने सन् १८८५ ई० में बी० ए० पास किया था और वह पंजाब भर में दूसरे स्थान पर आया था। यही युवक आगे चलकर प्रिंसिपल हंसराज और महात्मा हंसराज के रूप में प्रसिद्ध हुआ था। श्री लाला हंसराज जी बी० ए० तक श्री प. गुरुदत्त जी विद्यार्थी के सहपाठी रहे थे, जो कि एक महान् मेधावी छात्र थे और छोटी आयु में ही बड़े नेताओं में स्थान पा गये थे। उनके एक अन्य सहपाठी लाला लाजपत राय जी भी थे। इन तीनों के विशेष उत्साह और पारस्परिक सहयोग से ही डी० ए० वी० शिक्षा संस्थानों की आरम्भिक रूप रेखायें तैयार हुई थीं। आवश्यक साधन जुटाने में भी ये तीनों आगे आगे थे।

४. कालिज के लिये जो धन की अपील प्रकाशित की गई थी, उसमें लिखा था:—

'आर्यसमाज ने बहुत विचार तथा विमर्श के पश्चात् यह तजवीज सोची है कि उस महात्मा तथा ब्रह्मर्षि के स्मारक रूप में एक महाविद्यालय अर्थात् कालिज ऐसा बनाया जाये जिसमें संस्कृतभाषा का, उच्च कक्षा तक अध्ययन हो और वेदविद्या के ग्रन्थ भी पढ़ाये जायें। और इसलिये कि आजीविकोपार्जन तथा पाश्चात्य विद्याओं की प्राप्ति के लिये अंग्रेजी शिक्षा का होना भी आवश्यक है, उसमें अंग्रेजी शिक्षा भी उच्च कक्षा तक हुआ करे।" उसी अपील में आगे लिखा था:—"इस प्रकार के कालिज को दृढ़ आधार पर स्थित करने के लिये एह बृहद् राशी की आवश्यकता है, जिसके ब्याज अथवा लाभ से उसका सम्पूर्ण खर्च हमेशा के लिये निकलता रहे। इस राशी का अनुमान दस लाख रुपया दिया गया है।"

[आचार्य चमुपति कृत आर्यप्रतिनिधि सभा पंजाब का इतिहास पृष्ठ-४६]

५. इससे स्पष्ट है कि कालिज की योजना में संस्कृत और वेदविद्या को प्रथम तथा अंग्रेजी और पाश्चात्य विज्ञान को द्वितीय स्थान दिया गया था; परन्तु व्यवहार में कार्य संचालकों ने दूसरे उद्देश्य को प्राथमिकता दे दी थी, प्रथम उद्देश्य को दूसरा क्या कोई गौण स्थान भी न दिया गया था। इस प्रकार आर्य सामाजिक क्षेत्रों में फूट का यह पहला बीज बोया गया था।

६. श्री चमुपति जी आर्यप्रतिनिधि सभा पंजाब के इतिहास में पृष्ठ-४७ पर लिखते हैं:—"समाजों के उत्सवों पर पं० गुरुदत्त एम० ए० अपील किया करते थे। वे कहीं ब्रह्मचर्य, कहीं वेदवेदांग, कहीं आर्य संस्कृति कहीं प्राचीन शिल्प तथा विद्या इत्यादि इत्यादि के पुनरुद्धार के नाम पर कालिज के उज्जवल भविष्य की रोचक तस्वीरें खेंच खेंचकर लोगों की थैलियों के मुंह खुलवा लेते थे। देवियां अपने भुजाओं के अनन्त तथा चूड़ियां उतार उतार कर दे रही थीं।"

७. योजना के अनुसार १ जून सन् १८८६ को लाहौर में सर्वप्रथम डी० ए० वी० स्कूल स्थापित हुआ था। तब तक चौंसठ हजार रुपया एकत्र हो चुका था। श्री हंसराज जी की आजीवन सेवा का बहुमूल्य शाकल्य उस समय तक की मुख्य उपलब्धि थी।

८. पंजाब में आर्यप्रतिधि सभा की स्थापना ..... को हुई थी। डी० ए० वी० कालिज का आयोजन होने पर कालिज की प्रबन्ध समिति भी संघटित हो चुकी थी। कालिज के लिये रजिस्ट्री कराये गये स्मरण पत्र के अनुसार जो उद्देश्य बताये गये थे, उनका उल्लेख आर्य प्रतिनिधि सभा के इतिहास में पृष्ठ ५१ पर आचार्य चमुपति जी ने इस प्रकार किया है:—

१. स्वामी दयानन्द सरस्वती के स्मारक रूप में पंजाब में एक एंग्लो वैदिक कालिज संस्था स्थापित करना, जिसमें एक विद्यालय, एक महाविद्यालय और एक आश्रम सम्मिलित होंगे और जिसके उद्देश्य ये होंगे:—

(१) हिन्दी साहित्य के अध्ययन को प्रोत्साहित उन्नत तथा प्रचलित करना।

(ख) प्राचीन संस्कृति सहित्य और वेदों के अध्ययन को प्रोत्साहित तथा प्रचलित करना।

(ग) आंगल भाषा के साहित्य तथा विचारात्मक और क्रियात्मक विज्ञानों के अध्ययन प्रोत्साहित तथा प्रचलित करना।

२. जहां तक प्रथम उद्देश्य की उचित पूर्ति के साथ ऐसा करना असंगत न हो, दयानन्द एंग्लोवैदिक कालिज संस्था से सम्बद्ध शिल्प की शिक्षा के साधन जुटाना।

९. प्रथम तो कालिज विभाग में यही विचार था कि संस्कृत को ही मुख्य स्थान दिया जायेगा, परन्तु परिस्थितियों के कारण ऐसा कभी हो ही न सका। इसके विपरीत अंग्रेजो और पाश्चात्य ज्ञान विज्ञान का प्रशिक्षण बढ़ता चला गया। इसके परिणाम स्वरूप संस्कृत के प्रेमी भी कालिज से निराश और विक्षुब्ध होते चले गये। कालिज में विशेष कारण यह भी था कि श्री पं० गुरुदत्त जी विद्यार्थी एम० ए० का देहान्त मार्च सन् १८९० ई० में केवल २५ वर्ष की छोटी आयु में हो ही गया। उनके बाद संस्कृत और वेद की चिन्ता करने वाला तथा इनका साधिकार प्रशिक्षण देने वाला दूसरा कोई न था। जब लोगों का विरोध और विक्षोभ उभरता था, तब कालिज की प्रबन्ध समिति के अधिकारी उसे यह कह कर शान्त करते रहते थे कि हम शीघ्र ही उचित प्रबन्ध करेंगे। यही चक्कर चलता रहा। होते होते सन् १९११ आ गया। उस समय संस्कृत भाषा और वेद विद्या को उपेक्षा के कारण आर्य जनता का विरोध कालिज की प्रबन्ध समिति के प्रति बहुत उग्र हो उठा था।

१०. यहां दो बातों का उल्लेख पाठकों की जानकारी के लिए आवश्यक है। प्रथम यह कि कालिज की स्थापना के समय आर्यसमाज के कुछ प्रमुख नेता और कार्यकर्त्ताओं का यह विचार था कि सामान्य शिक्षा का प्रबन्ध करना आर्यसमाज का काम नहीं है। यह काम तो सरकार द्वारा अथवा सभी समुदायों की सम्मिलित शक्ति के आधार पर होना चाहिये। आर्यसमाज को अपनी शक्तियों का उपयोग केवल संस्कृत भाषा प्रसार, वेद प्रचार और वैदिक धर्म के पुनरुत्थान एवं अनुष्ठान तक ही सीमित रखना चाहिए। यह विचार सबल लेखों, पुस्तकों, भाषणों और सभा समितियों

शेष पृ० १० पर

क्रमागत—

माण्डूक्य पर आचार्य गौडपाद कारिकाओं की समीक्षा (१९)

[ले०—श्री स्वामी ब्रह्मानन्द जी आर्य त्रैतवेदान्ताचार्य, मु० ओं० आश्रम, चान्दोद (बड़ौदा)]

यदि किसी अन्य के निमित्त से उनमें विपरीत धर्म देखे जाना मानो तो फिर द्वैतापत्ति आपके मत से जायेगी नहीं। यदि पदार्थों में युगपद् विरुद्ध धर्मों का होना जो स्वाभाविक मानते हो तो फिर अग्नि में शीतलता आकाश में घन स्थूलता हवा में दृश्यता का होना क्या बतला सकोगे? यदि नहीं तो फिर पदार्थों में विरुद्धता स्वाभाविक युगपद मानना भी नहीं बन सकता। यदि अज्ञान को हेतु मानोगे तो अज्ञान अनादि और भावरूप सिद्ध होगा, यदि कहो हम अज्ञान को अनादि मानते हुये भी भाव अभाव दोनों से उसे मुक्त अनिर्वचनीय मानेंगे, तो ऐसा भी अज्ञान को मानना उचित न होगा, क्योंकि संसार में भावरूपता से ही कार्य का होना देखा जाता है अभाव में तो कार्य कारण भाव ही नहीं होता देखा जाता और अनिर्वचनीयता में तो नाम रूप ही या किसी प्रकार का गुण धर्म का संयोग ही सुना जाता है और आप लोग तो उसे अविद्या अज्ञान आदि नामों से सम्बोधित भी करते हो और अज्ञान का अज्ञान जन्य कार्य भी बतलाते हो तो फिर वह भाव से भाव रहित ही कहां अज्ञान अविद्या ही रही? वह तो अविद्या अस्मिता रागद्वेष प्रमादादि गुणधर्म स्वभाव जन्य सिद्ध हुई, इसलिये तुम्हारा अविद्या अज्ञान को अनिर्वचनीय और अद्रव्य मानना ही निरर्थक है।

तो कहना हमारा यह है कि जाग्रत् स्वप्न में पदार्थों में भेद होने का कारण मूल विद्या, अविद्या है विद्या का कार्य सर्वथा सत् और अविद्या का कार्य हमेशा ही असत् भ्रान्ति से भरा विपरीत ही होगा जैसे जाग्रत के मूल बिम्ब से प्रतिबिम्ब के गुणधर्म जुदे ही होते हैं यद्यपि बिम्ब के बिना प्रतिबिम्ब का अस्तित्त्व एक क्षण के लिये भी रहता नहीं। जैसे मूल भौतिक शरीर के बगैर छाया एक क्षण भी नहीं रह सकती उसी प्रकार जाग्रत् के प्राणी पदार्थों के सत्य संस्कारों के बिना स्वप्न कभी भी होते नहीं या आ ही नहीं सकते। तो मूल कहने का आशय यह है कि जो मुद्दल में भावरूप से यदि हम और हमारे भोक्तव्य पदार्थों का ही यदि अस्तित्व जो न होता तो हमें हमारे संस्कार रूप से प्राप्त होने वाले पदार्थ हमारी स्वप्नावस्था में जो कि अविद्या जन्य होने से विपरीत भाषते हैं वे सब हमें कभी भी नहीं भासते। किन्तु वहां पदार्थ ही नहीं, परन्तु पदार्थों का प्रतिबिम्ब ही है या आ० गौडपाद जी की भाषा में कहें तो वहां वस्तु तो नहीं किन्तु उनकी मात्रा हमारे चित्त में उपलब्धि ही है, या होती है। अर्थात् वस्तु के सहित जो या जहां उपलब्धि होती है उस अवस्था को लौकिक याने जाग्रत् कहा जाता है तथा जहां वस्तु तो नहीं किन्तु मात्र मन में उपलब्धि जन्य ज्ञान ही होता है ऐसी अवस्था तो शुद्ध लौकिक ही कहाती है जिसे कि स्वप्न के नाम से कहा जाता है। ऐसा अलात् शांति प्र० की ८७ वीं कारिका में गुरु गौडपाद जी कहते हैं। और छोटे गुरु आ० शंकर जी इसके भाष्य में ऐसा ही मानते हैं यथा (सवस्तु संवृति सत्ता वेस्तुना सह वर्तत इति सवस्तु तथा चोपलब्धि रूप लम्भस्तेन सह वर्तत इति सोपलम्भं च) तथा (अवस्तु संवृतेरप्यभावात् सोपलम्भं वस्तु वदुपलम्भनमुपलम्भोऽसत्यपि वस्तुनि तेन सह वर्तत इति सोपलम्भं च। शुद्धं केवल प्रविभक्तं जागरितात्स्थलाल्लौकिकं सर्वप्राणि-साधारणत्वादिष्यते स्वप्न इत्यर्थ ॥ ८७। शां० भा०) अब विज्ञ पाठक वृन्द स्वयं पूर्वापर क्रम को मिला देखें अर्थात् जब आचार्य शंकर और गौडपाद ही यहां वैतथ्य प्रकरण में स्वप्न के प्राणि पदार्थों को जगत् के समान बताकर फिर अलात् शान्ति प्रकरण में दोनों लौकिक और शुद्ध लौकिक बौद्धों की परिभाषा के नाम जाग्रत् स्वप्न का भेद बताकर उनका स्वयं भेद मान रहे हैं तो फिर यहां जाग्रत् के पदार्थों को मिथ्या स्वप्नवत् मानना ये इनकी धूर्तता नहीं तो प्रमाद तो अवश्य ही है। और यदि ये कहें कि हम तो संवृति सत्—(व्यवहारिक सत् को भी असत् ही मानते हैं तो फिर उसे संवृति सत् ही क्यों कहा? क्योंकि संवृति शब्द को अविद्या के अर्थ में बौद्ध लोग लेते हैं, वैसे ही ये हमारे नवीन वेदान्ति भाई भी इसे व्यवहारिक सत् कहते हैं। और व्यवहार को ये भी मिथ्या कहते मानते होने से फिर सत् की चरितार्थता ही कहाँ हुई? केवल (संवृति) ऐसा कह दिये होते? (सत्) ऐसा शब्द संवृति के साथ लगाने का तुम्हें हक नहीं। क्योंकि संवृति सत् कहो या "सच्चा चोर कहो" ये एक ही बात है। जैसे चोर कभी सच्चा नहीं होता, उसी प्रकार संवृति या अज्ञान कभी भी सच्चा ज्ञान नहीं कहा जा सकता, इसलिये तुम्हारी उपरोक्त वै० प्र० की ७ वीं कारिका का कथन सर्वथा परस्पर विरुद्धा-भास से भरा पूरा होने से अमान्य एवं बुद्धिमानों की दृष्टि में त्याज्य ही है ॥७॥

अपूर्वं स्थानि धर्मो हि यथा स्वर्गनिवासिनाम्।
तानयं प्रेक्षते गत्वा यथैवेह सुशिक्षितः ॥८।

वैतथ्य प्र० की ८ वीं कारिका

अर्थ—जिस प्रकार इन्द्रादि स्वर्ग निवासियों की सहस्र नेत्रादि, अलौकिक अवस्थायें सुनी जाती हैं उसी प्रकार यह स्वप्न भी स्थानी स्वप्न द्रष्टा आत्मा का अपूर्व धर्म है। उन स्वप्न पदार्थों को यह इसी प्रकार जाकर देखता है, जैसे कि इस लोक में किसी मार्ग विशेष के सम्बन्ध में सुशिक्षित पुरुष उस मार्ग से जाकर अपने अभिष्ट लक्ष्य पर पहुंचकर उसे देखता है ॥८॥

समीक्षा—हमें बड़ा ही आश्चर्य होता है कि अद्वैतवादी ये दोनों बड़े छोटे गुरु बात करते हैं समूचे जग मिथ्यात्व की, परन्तु ये लोग जब पौराणिक स्वर्ग और उसके सहस्र नेत्रधारी इन्द्रादि देवताओं का दृष्टान्त देते हैं तो मुझे इन भोले गुरु बाबाओं की ऐसी अदनी बुद्धि पर बड़ा ही तरस आता है। अरे जब आप अद्वैतवादी लोग सबको मिथ्यात्त्व का फतवा (करार) देते हो तो फिर उस कल्पित पौराणिक स्वर्गादि की सत्यता ही कैसी? फिर उसे अपूर्व कहते हो। चलो खैर, पर ये तो कहो कि जिसका दृष्टान्त दिया जाता है उसका इतिहास पहले से प्रसिद्ध होता है और जिसका इतिहास होता है वह फिर काल्पनिक ही कैसे? यदि नहीं तो फिर उसकी सत्यता में तुम्हें विश्वास है तभी तो आपने उन स्वर्ग निवासियों का दृष्टान्त दिया है। यदि इस स्वर्गादि में जब तुम्हें विश्वास है तो वो स्वर्ग भी तो भौतिक या सूक्ष्म जगत् का एक भाग ही कहा और माना जायेगा। तो जो युद्ध में मारे गये बाप से स्वयं इन्कार कर रहा हो और वही फिर अपने बाप के कटे शिर को ला बनायें और कहें कि देखो युद्ध में इस प्रकार शिर काट दिया जाता है जैसे हमारे बाप का दुश्मनों ने शिर काट फेंका है। तो उसका अपने बाप के मारे जाने से इन्कार करना भी वैसी बुद्धि का अजीब मनुष्य माना जायेगा जैसे कोई सेकचिल्ली बात करता हो, ऐसी बातें इस कारिका में गुरु बाबा की भोली भाली सी लगती हैं, अरे क्या ये ऐसी भी कोई दार्शनिकता की बुद्धि कही जायेगी? इधर तो समूचा जगत् ही बिल्कुल मिथ्या बतायें उधर स्वर्ग का प्रमाण बतावें ॥८॥

स्वप्नवृत्तावपि त्वन्तश्चेतसा कल्पितं त्वसत्।
बहिश्चेतो गृहीतंसद् दृष्टं वैतथ्यमेतयोः ॥९॥

वैतथ्य प्र० की ९ वीं कारिका

अर्थ—स्वप्नावस्था में भी चित के भीतर कल्पना किया हुआ पदार्थ असत् और चित से बाहर इन्द्रियों द्वारा ग्रहण किया हुआ पदार्थ सत् जान पड़ता है किन्तु इन दोनों का ही मिथ्यात्त्व देखा गया है ॥९॥

समीक्षा—यहां जाग्रत् एवं स्वप्न के पदार्थों के मिथ्या सिद्ध करने में दोनों ही अद्वैतवादी बड़े छोटे गुरु एक मतस्थ हैं। तो हम यहां आ० शंकर जी के ही भाष्य पर शंका उठाकर पूर्वपक्ष में पूछते हैं जब आप ही अपने भाष्य में यों कह और मान रहे हैं कि (स्वप्ने बहिश्चेतसा गृहीतं चक्षुरादि द्वारेणोपलब्धं घटादिसत्। इत्येवमसत्यमितिनिश्चितेऽपि सदसद्विभागो दृष्टः। उभयोरप्यन्तर्बहिश्चेतः कल्पितयोर्वैतथ्यमेव दृष्टम् ॥ शा० भा० वै० प्र०) अर्थात् स्वप्नावस्था में ही चित से बाहर चक्षु आदि इन्द्रियों द्वारा ग्रहण किये हुये घट पर आदि सत् होते हैं। इस प्रकार स्वप्न असत्य है ऐसा निश्चय हो जाने पर भी उसमें सत् असत् का विभाग देखा जाता है। (क्रमशः)●

गतांक से आगे—

सन् ५७ में प्रजा विद्रोह के कारण?

नयी खोजों की सफलता से पुष्टि (२९)

(ले० श्री स्वा० सच्चिदानन्द योगी, अध्यक्ष श्री नारायण स्वामी आश्रम, महामहिम पातञ्जलयोग साधना संघ आ० वा० आ० ज्वालापुर सहारनपुर)

हिसार और रोहतक के व्यापारी अश्वारोही ऋषि दयानन्द से ही ब्रिटिश सेना के आने की सूचना पाकर कलकत्ता जाने के बदले अपना माल ले वापस लौट आये। इसकी साक्षी देने वाले आज भी जीवित हैं। रोहतक के ही एक सज्जन ने इससे पहले योगी दयानन्द को मानसरोवर की ओर जाते हुये देखा था। "इसको दन्त कथा न मानना चाहिये, यह एक ऐतिहासिक सत्य है।" ४३७ पृ०।

..... प्रचण्ड ज्वालाओं के शान्त होने पर ऋषि ने गुरु विरजानन्द का आश्रय लिया। आश्रय की उस समय उसको बहुत जरूरत थी। व्याकरण और महाभाष्य का पुन: अध्ययन आरम्भ किया। "स्वातन्त्र्य" संग्राम का संन्यासी नेता इस प्रकार ब्रिटिश शासन की गिरफ्तारी में आने से बच गया। किन्तु ब्रिटिश शासन उसको सदा संशक दृष्टि से देखता रहा। ब्रिटिश सरकार ५७-५८ के स्वातन्त्र्य समर में ऋषि के लिये भाग को कभी भूली नहीं। उससे वह सदा भयभीत रही। उनको अपने हस्तकों द्वारा मरवाने का यत्न करती रही।" —४३७ पृ०।

मथुरावास वस्तुत: ऋषि दयानन्द का पाण्डवों के विराट् नगर में रहने के समान अज्ञातवास था। ..... ४३८ पृ०

गवेषणा अभूतपूर्व है

(श्री आचार्य प्रवर प० लक्ष्मी नारायण चतुर्वेदी एम० ए० साहित्याचार्य विद्या भास्कर, आयुर्वेद भास्कर, आचार्य गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर, हरद्वार)

'योगी का आत्मचरित्र' का हृदय निहित किया गया। योगी का रहस्य योग रहस्य के समान निगूढ था, जिसे ढूंढ निकालना भी किसी योग्य योगी के ही वस का था।

सौभाग्य से गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर के सुयोग्य स्नातकों में मूर्धन्य विद्वान्, महामनीषी, महाभाष्य, अष्टाध्यायी, दर्शन एवं उपनिषदों तथा वैदिक सिद्धान्तों एव वेदों के लब्ध प्रतिष्ठ सुप्रसिद्ध विबुध हैं श्री स्वामी सच्चिदानन्द जी सरस्वती योगी।

आपकी गवेषणा अभूतपूर्व है। इस ग्रन्थ की एक एक पंक्ति एक एक मुक्ता के समान अनेकानेक सुपरिचित विपश्चिज्जन जलनिधियों में गोते लगा लगाकर प्राप्त की है।

ग्रन्थ गत प्रत्येक शब्द अपने में इस प्रकार यथार्थ है जिस प्रकार किसी भी योगी का वास्तविक स्वरूप स्वयं में सत्य होता है।

स्वय अपने दादा जी से महर्षि के जिन चरित्रों को आज से ५० वर्ष पूर्व सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। आज उन्हें ग्रन्थ में सुप्रतिष्ठित देखकर अपार हर्ष को अनुभूति हुई है। ग्रन्थ में योगाभ्यासियों के लिये महर्षि ने स्वय अपने योग सम्बन्धी सब रहस्य प्रस्तुत किये हुये हैं।

आशा है विद्वन् समुदाय श्रद्धा और विश्वास के साथ इस निधि से अपने को गौरवान्वित करेगा।

मैं योगी जी महाराज के अथाह परिश्रम का अभिनन्दन करता हूं। इस पुस्तक का प्रत्येक आर्य सज्जन के घर रपना अत्यन्त आवश्यक है।

८-२-७२

उपादेयता से भरी पूरी है

कविराज योगेन्द्रपाल जी शास्त्री D. Sc. (A) आयुर्वेदाचार्य B. I. M. S. मुख्य सम्पादक—शक्ति सन्देश, कनखल।

आलोचना को पढ़कर मैं विवश हो गया, आद्योपान्त पढ़ूं। दैनिक क्रम इस ग्रन्थ को पढ़ने में बीता। मैं अब कह सकता हूं,—मेरे समय का सुन्दर सदुपयोग हुआ।

'योगी का आत्मचरित्र' नाम के अनुरूप और सर्वतोमुखी उपादेयता से भरी पूरी है। संग्रहणीय एवं पठनीय है। इससे योग सम्बन्धी गम्भीर ज्ञान का प्रगटीकरण हुआ है जिसकी खोज में आज योरुप भटक रहा है। अनेक प्रकरणों में नई स्थापनायें सामने हैं किन्तु ऋषि चरित्र की जितनी गहराइयों पर प्रकाश डाला जा सके, जितना अधिक अनुसन्धान हो उतना ही कम है। ग्रन्थ का स्वागत करता हूं। प्रयास को स्तुत्य मानता हूं। ८-२-७२

श्री वेदबन्धु जो (डबल एम० ए०), त्रिक्कन मंगल, कोटार करा, केरल।

'योगी का आत्मचरित्र' प्राप्त हुआ। मनोयोग के साथ पढ़ चुका हूं। यह कार्य अपूर्व और महत्त्व का हुआ। योगपथ में आपकी प्रगति विस्मय-जनक है। नहीं गीता की परिभाषा में "आश्चर्य" भी है। आपने तो अपना जीवन सफल बना लिया। १५-३-७२

गवेषणा सफल है

(श्री तेजपालसिंह जी—मुख्याधिष्ठाता गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर)

ग्रन्थ पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। बातचीत करने पर मुझे विश्वास हो गया। श्री स्वामी सच्चिदानन्द जी को योग सिद्ध है। महाविद्यालय के लिये यह महान् गौरव का विषय है। उन्होंने पातञ्जल योगदर्शन का अनुशीलन एवं क्रियात्मक अनुभूतियां प्राप्त की हैं। योग प्रसारार्थ इस दुर्लभ चरित्र का प्रकाशन किया है। यात्री बनकर महर्षि द्वारा की गई यात्रा को कसौटी पर परखा है, इतिहास भूगोल को यथार्थ पाया है। ५७ की क्रान्ति में ऋषि के भाग लेने को सफल पोषण गवेषणा से किया २५० पृष्ठ की गवेषणा उनके गहन अध्ययन व परिश्रम को पुष्ट करती है। स्वामी जी की इस महती योगसाधना रूप कृति को सभी आर्य परिवार विशेषकर महाविद्यालय के प्रेमी अवश्य पढ़ें और अपने पास सुरक्षित रखें ऐसी मेरी हार्दिक कामना है।

श्री स्वामी जी बधाई के पात्र हैं। ९-२-७२

एक एक पंक्ति खोज से पूर्ण है

श्री आत्मानन्द जी शास्त्री एम० ए०, कलकत्ता, बंगाल

योगी का आत्मचरित्र बड़े ध्यान से पढ़ा। ऐसा प्रतीत होता है जैसे महर्षि दयानन्द का साङ्गोपाङ्ग स्वरूप साक्षात्कार ग्रन्थ में प्रस्तुत हो गया है। एक एक पंक्ति न जाने कितनी खोज से प्रस्तुत की गई है। महर्षि के विभिन्न स्वरूप किसी भी अन्य जीवनी में देखने को नहीं मिले। महर्षि का छुपा हुआ महत्त्वपूर्ण परिचय अतीत की ओट में था। पता नहीं था वर्तमान ने इतनी तपस्या कहां कहां की थी जो उसे आज महर्षि के स्वरूप को प्रकट करने का श्रेय मिला है।

योग साधना का प्रकरण तो बड़ा ही अमूल्य है। साधकों के लिये तो साधना का वह दिव्य सोपान है। ग्रन्थ में दार्शनिकता, वैदिकता, उपनिषद् रहस्य तथा अनेकानेक वेदाङ्गों के गूढ तत्त्वों का भी निवेश हुआ है। छात्रों, गृहस्थों, वानप्रस्थों, संन्यासियों—सबके लिये ही उपादेय है। गागर में सागर भरा है। पूज्य स्वामी सच्चिदानन्द जी योगी ने जिस खोजपूर्ण संग्रह के लिये अकथनीय परिश्रम किया है उसके लिये उनका शतशत अभिनन्दन।

आर्य विद्वानों, योगियों, प्रसिद्ध समाचार पत्रों को प्रतिक्रिया (३१)

आर्यमर्यादा २५ जून १९७२ में पं० भवानीलाल जी महात्मा आनन्द स्वामी जी महाराज का समर्थन पढ़कर बोखला गये। उन्होंने लिख मारा—"अब रह जाते हैं महात्मा आनन्द स्वामी जी। जिन्होंने अपने ११-१०-७२ की सम्मति में अज्ञात जीवनी को 'ऋषि के जीवन पर लिखा गया अकाट्य गवेषणापूर्ण निबन्ध कहा है। वह कितना अकाट्य है यह तो पाठक समझ गये होंगे। महात्मा आनन्द स्वामी जी के प्रति असीम श्रद्धा रखते हुए भी मैं निवेदन करूं कि उनके द्वारा लिखित ग्रन्थों में अनेक सैद्धान्तिक स्खलन पाये जाते हैं। एक बार तो स्वामी रामेश्वरानन्द जी ने ऐसे प्रमादों की एक सूची बनाकर सार्वदेशिक सभा में विचारार्थ प्रस्तुत भी की थी। यह तो प्रसंगान्तर है (असीम श्रद्धा तो इसी से प्रसंगान्तर से प्रमाणित हो रही है)। महात्मा जी परोपकारिणी के सभा-के सभापति हैं वह शायद आगामी ऋषि मेले में सभा की साधारण सभा की अध्यक्षता करने पधारेंगे। मैं उनसे विनम्रतापूर्वक अनुरोध करता हूं इस अवसर पर वे मेरे द्वारा प्रस्तुत अज्ञात जीवनी की शंकाओं का समाधान करें और उसे अकाट्य सिद्ध करें। इत्यादि।" (क्रमश:)

गतांक के आगे--

योगी का आत्म चरित्र एक मनघड़न्त कहानी

(लेखक—श्री स्वामी पूर्णानन्द जी सरस्वती-बड़ौत-जिला मेरठ)

परन्तु दीनबन्धु जी के वकील सच्चिदानन्द जी लिखते हैं :—"नाना साहब और लक्ष्मीबाई तो ब्राह्मण वीर थे इसीलिए बिठूर का नाम ब्रह्मावर्त्त रक्खा गया था" (आर्यमर्यादा यों० आ० च० २८ जनवरी सन् १९७३) सच्चिदानन्द के कथनानुसार ब्रह्मावर्त्त नाम नाना साहब और लक्ष्मीबाई के कारण रक्खा गया न कि ब्रह्म की यज्ञस्थली होने क कारण। इस परस्पर के विरोध से सिद्ध हो गया कि ये दोनों झूठे हैं। वास्तविकता यही है कि दीनबन्धु जी ने सावरकर के इतिहास से चोरी करके उसको ऋषिदयानन्द के सिर मढ़ दिया।

तात्या टोपे के साथ भी ऋषि दयानन्द के प्रश्नोत्तर का प्रसंग भी दीनबन्धु जी ने दिया है। वह इस प्रकार है :—"चतुर्थ सज्जन तात्या टोपे ने पूछा"—महाराज जी! भारतवर्ष व्यापी जिस प्रजा विद्रोह का आभास आपकी नजर में आ गया है। उसके कारणों के बारे में आपका क्या अभिमत है?

मेरा अभिमत—इस सम्भाव्य प्रजा विद्रोह के मूल कारणों को हम भिन्न भिन्न श्रेणियों में विभक्त कर सकते हैं।—"धर्मनीतिक, समाजनीतिक, राजनीतिक, अर्थनीतिक, युद्धनीतिक और प्रत्यक्ष।" इन ६ कारणों की व्याख्या जो ऋषि दयानन्द के नाम से लिखी गई वह ढाई पृष्ठों में लिखी गई है। (देखिये यो० आ० च० पृष्ठ १९१ से १९४ तक)

इसके सम्बन्ध में सबसे पहला प्रश्न यह उठता है कि भारतवर्ष व्यापी प्रजा विद्रोह का आभास क्या चीज है? यह आभास क्या कोई पूछड़िया तारा है जो स्वामी जी को पलक झपकते ही दिखाई दे गया? या सारे भारत में फैली हुई बेचैनी है जिसको स्वामी जी ने देशव्यापी दौरा करके अपनी आंखों से देखा था? सच्चिदानन्द जी जरा अपनी 'प्रतिज्ञा' को स्मरण करके उत्तर दें? आपकी प्रतिज्ञा है—"बिना देखे खण्डन करना उनकी रीति नहीं।" यो० आ० च० पृ० ९८ योधी जी बतलायें कि सन् १८५५ से पहले स्वामी जी ने देशव्यापी दौरा कब किया था? और कितने मुसलमानों और हिन्दुओं को पादरियों द्वारा ईसाई बनाते देखा था? और यह भी बतायें कि स्वामी जी ने अंग्रेजों की धर्मनीति, समाजनीति, राजनीति, अर्थनीति और युद्धनीति का अध्ययन किस गुरु के चरणों में बैठकर किया था और इन विषयों में इतनी निपुणता प्राप्त कर ली थी कि वे अधिकार रूप से दूसरे—राजनीतिक नेताओं को उपदेश दे सकें? स्वामी जी की जीवनी से तो यह पता चलता है कि उन्होंने २२ वर्ष की आयु में ही नागरिक जीवन को छोड़कर अरण्य जीवन स्वीकार कर लिया था, और अपना जीवन महात्माओं, साधुओं, संन्यासियों और विरक्तों के सत्संग में रहकर और नदी नर्मदा के तट पर चाणोद कल्याणी और व्यास आश्रम के महान् योगी योगानन्द जी से योगविद्या को सीखने और अध्यात्म ग्रन्थों के अध्ययन से परमानन्द का पान करते रहे। तत्पश्चात् अहमदाबाद में दुग्धेश्वर मन्दिर में रहकर बड़े तप और निष्ठा के साथ स्वामी शिवानन्द जी और स्वामी ज्वालानन्द जी की देखरेख में योग का क्रियात्मक रूप से अभ्यास करते रहे वहां से जाकर आबू पर्वत पर तीन वर्ष तक और भी अधिक उग्ररूप से तप और निष्ठा के साथ योग साधना करते रहे। अतः उनके पास ऐसा कोई समय नहीं था कि वे इन राजनीतिक आदि विषयों का अध्ययन कर सकें। इसलिये यही मानना पड़ता है कि यह सब दीनबन्धु जी और सच्चिदानन्द जी का मिला जुला षड्यन्त्र है!

दीनबन्धु जी ने तात्या टोपे और ऋषि दयानन्द जी का जो काल्पनिक प्रश्नोत्तर लिखा है, उसमें तात्याटोपे के इस प्रश्न का कि भारतवर्ष व्यापी प्रजा विद्रोह के कौन से कारण हैं उत्तर देते हुये ऋषि दयानन्द के मुख से इस तरह कहलवाया है :—"समाजनीति कारण·····इनके लिये (अंग्रेजों के लिये) बड़ौदा के गायकवाड़ और हैदराबाद के निजाम देशी राजे, राजा राजेन्द्रलाल मित्र और सत्यव्रत सामश्रमी देशी पण्डित, डा० महेन्द्रलाल सरकार, गंगाधर कविराज ये सब देशी चिकित्सक हैं। राजा राममोहन राय और ईश्वरचन्द्र विद्यासागर भी देशी संस्कारक हैं और वेद उपनिषद् भी देशी ग्रन्थ हैं। उनके लिये भारत के सब कोई और सब कुछ घृणा के पात्र और घृणा की वस्तु हैं।" देखना यह है कि क्या वास्तव में यह सन्दर्भ ऋषि दयानन्द का कहा हुआ है? या दीनबन्धु जी का कपोल कल्पित है? यह बात अप्रैल सन् १८५५ में कही हुई बतलाई जाती है। इससे केवल एक मास पूर्व ही स्वामी जी आबू पर्वत से हरद्वार आये थे जहां वे ३ वर्ष से योगसाधना में संलग्न थे, और सांसारिक उलझनों से सर्वथा अलग रहते थे। आबू से पहले स्वामी जी के जीवन के २७ वर्ष गुजरात में ही बीते थे। इन २७ वर्षों में स्वामी जी ने गुजरात से बाहर एक कदम भी नहीं रक्खा। गुजरात भारत के ठेठ पश्चिम किनारे पर है और बंगाल ठेठ पूर्व में। इस प्रकार से गुजरात और बंगाल में लगभग १५०० मील का अन्तर है। उस समय तक यातायात के साधन पदयात्रा, घोड़ागाड़ी, बैलगाड़ी, ऊँट या नवका ही थे। उस समय रेलगाड़ी या मोटर इत्यादि का प्रचलन नहीं हुआ था। समाचार पत्रों का चलन भी नाम मात्र था। महापुरुषों की जीवनियां और इतिहास की पुस्तकें भी दुर्लभ थीं। ऐसी स्थिति में प्रश्न यह उठता है कि बंगाल के उपर्युक्त व्यक्तियों के साथ ऋषि दयानन्द का परिचय किस माध्यम से हुआ था। और स्वामी जी को इन बातों का विवरण कहां से मिल गया था कि अंग्रेज लोग बंगाल के उन विद्वानों को घृणा की दृष्टि से देखते हैं? घर से निकलकर दयानन्द की एक ही धुन थी कि कोई उसको मृत्यु पर विजय पाने का उपाय बतावे! इस धुन के कारण सांसारिक झंझटों से ये सर्वथा अलग रहते थे। केवल योगियों और सिद्ध पुरुषों का ही वे परिचय चाहा करते थे। बंगालियों की विद्वत्ता, चिकित्सा और संस्कार प्रियता की ओर उनकी रुचि नहीं थी।

यह भी विचारने की बात है कि उपर्युक्त विद्वानों में केवल बंगालियों का ही नाम क्यों है? महाराष्ट्र, गुजरात, राजस्थान, मद्रास और उत्तरप्रदेश के विद्वानों का नाम क्यों नहीं? और साथ ही यह भी प्रश्न उठता है कि बंगाल के सत्यव्रत सामश्रमी के जीवन की ऐसी कौन सी अलौकिक और चमत्कारिक घटना थी कि ९ वर्ष की आयु में ही उसके गम्भीर पाण्डित्य की छाप संसार के विद्वानों पर लग गई हो और अरण्यवासी ऋषि दयानन्द के कानों तक भी उसकी गूंज सुनाई दी हो? (याद रखना चाहिये कि सत्यव्रत सामश्रमी का जन्म २८ मार्च सन् १८४६ ई० का था अतः सन् १८५५ के अप्रैल मास तक उसकी आयु केवल ९ वर्ष की थी)।

उपरिलिखित प्रश्नों का गम्भीरतापूर्वक करने के पश्चात् एक सतर्क, पक्षपात रहित और सत्यान्वेषी सज्जन यही निष्कर्ष निकालेगा कि उपर्युक्त सन्दर्भ ऋषि दयानन्द प्रोक्त कदापि नहीं हो सकता। वह तो किसी ऐसे मस्तिष्क की कल्पना है जिसमें यह बू समाई हुई है कि बंगालियों के सिवाय सारा भारत अशिष्ट, असभ्य, उजड्ड और मूर्ख है।

यह कल्पना कौन से मस्तिष्क की है, इसको तो ठीक ठीक दीनबन्धु जी ही जानते हैं, परन्तु इसको प्रस्तुत करने वाले दीनबन्धु जी ही हैं, इसलिये प्रत्यक्षतः इस कल्पना की उपज दीनबन्धु जी की ही ठहराना न्याय संगत होगा!!

दीनबन्धु जी की दृष्टि में तो बंगालियों के सिवाय और कोई विद्वान् और विश्वास पात्र है ही नहीं। इसलिये दीनबन्धु जी ने अपने दृष्टिकोण को ऋषि दयानन्द का दृष्टिकोण बताकर प्रचरित करना चाहा है! और साथ ही ऋषि दयानन्द को आर्यसमाज की स्थापना के लिये बंगालियों का और विशेषतया ब्राह्मसमाजियों का और उसके संस्थापक राजा राममोहन का ऋणी होने का षड्यन्त्र रचा है। इसलिये स्वामी जी के मुख से ये शब्द कहलवाये हैं 'राजा राममोहन राय और ईश्वरचन्द्र विद्यासागर भी देशी सुधारक हैं।' गोया राजा राममोहन राय और ईश्वरचन्द्र विद्यासागर भारत के बहुत बड़े सुधारक थे और ऋषि दयानन्द जी उनको बहुत बड़े देशोद्धारक समझते थे। (क्रमशः)

श्री कादियाण जी के सुझावों पर विचार

(ले०—श्री खेमचन्द्र यादव—डब्ल्यू १८, ग्रीन पार्क—नई दिल्ली)

१३ मई १९७३ के आर्यमर्यादा में पृष्ठ ८ पर श्री सुरेन्द्रसिंह जी कादियाण द्वारा लिखित "कुछ विचारणीय सुझाव" शीर्षक के अन्तर्गत, आर्यसमाज के नेता व कर्णधारों के लिये कुछ सुझाव देश, समाज एवं मानवता के कल्याण हेतु अमल में लाये जाने के लिये प्रस्तुत किये गये हैं। लेख के अन्तिम तीन पैरा में जो विचार व्यक्त किये गये हैं, ठीक हैं, इन पर यदि हमारे नेता कुछ सोच समझकर अमल कर सकें तो बड़ा अच्छा रहे। आर्यसमाज का गौरव बढ़े और जो शिथिलता आर्यसमाज में आ गई है वह दूर हो और आर्यसमाज पुन: एक बार और मानवता के कल्याण का पुण्य कार्य कर सके। मगर लेख के प्रथम दो पैरा में जो विचार व्यक्त किये गये हैं, उनमें आर्यसमाज का कुछ हित होगा इसकी मुझे कुछ भी आशा नजर नहीं आती। उल्टे इससे आर्यसमाज का गौरव नष्ट होगा, उसका पतन होगा और आर्यसमाज उन प्रपंच और जालों के गहरे वनों की झाड़ियों में ऐसा उलझ जावेगा कि फिर वहां से वह निकल भी नहीं सकेगा स्वयं ही अपनी अन्तेष्टि कर बैठेगा। हो सकता है मेरे विचार ठीक न हों। यह मेरा अज्ञान और मिथ्या भय ही हो। इसी हेतु मैं अपने उन विचारों को आर्य विद्वानों के समक्ष रख रहा हूं। हो सकता है मैं ही अकेला ऐसे विचार रखने वाला न हूं, कुछ अन्य भाई बहिन भी मेरे विचारों से सहमत हों। तो ऐसी सूरत में श्री भाई कादियाण जी के सुझावों से सम्बन्धित तस्वीर का दूसरा पहलू भी सबके सामने आ जावेगा और उस दशा में विचारक किसी ठीक दशा को अपना सकने में सुगमता का अनुभव करेंगे।

मैं पाठकों से अनुरोध करूंगा कि वह कृपा कर श्री कादियाण जी का लेख 'आर्यमर्यादा' में पहले एक बार और पढ़ लें और विशेषकर लेख के प्रथम दो पैरा जो मेरे इस लेख से सीधा सम्बन्ध रखते हैं। मैं प्रथम लेख का दूसरा पैरा ले रहा हूं जो कि श्री कादियाण जी ने 'एक मंच तैयार करो' शीर्षक के अन्तर्गत दिया है।

पैरा के अन्त में सुझाव दिया गया है कि "......बुराइयों के विरुद्ध हमें डटकर खड़ा होना चाहिये यह उद्देश्य कैसे फलीभूत होगा? इसके लिये जरूरी है कि सभी सम्प्रदायों का एक संघटित मंच बने जो देश के प्रत्येक क्षेत्र में मिल जुलकर काम करे। अपने संस्थागत स्वार्थों की होली जलाकर हमें बुराई के विरुद्ध एक गुट होना चाहिये। बुराइयों के विरुद्ध प्रबल अभियान तभी सफल होगा जब हम एक होंगे। आर्यसमाज को इस काम के लिये आगे बढ़ना चाहिये।"

आदरणीय कादियाण जी के उपरोक्त सुझाव में दो बातें हैं। पहली बुराइयाँ जिनको मिटाना है। दूसरे वह सम्प्रदाय जिन्हें इन बुराइयों को मिटाने हेतु एक जुट होना है और एक मंच बनाना है। बुराइयां तो हैं समाज में फैला हुआ भ्रष्टाचार, रिश्वत, चोर बाजारी, मिलावट, धोखा धड़ी, कतल, लूट खसोट, व्यभिचार, अनाचार, झूठ आदि आदि अर्थात् नैतिक पतन। वह सम्प्रदाय, सजहब, मत, पंथ आदि आदि कौन कौन से हैं जिन्हें एक जुट होकर कंधा से कंधा मिलाकर इस नैतिक पतन रूपी राक्षस को मारना है लेख में उनका नाम तो नहीं दिया है मगर लेख के पैरा एक में इनका संकेत अवश्य मिलता है। उसके अनुसार वह सारे संघटन जो धर्म या मजहब के नाम पर चल रहे हैं और जो कि यदि न चेते और न सम्भले तो साम्यवाद उन सबको समाप्त कर देगा। अर्थात् ईसाई, मुसलमान, हिन्दू, सनातनधर्मी, आर्यसमाजी, सिक्ख, पारसी, जैन, बौद्ध, कबीर पंथी, ब्रह्मकुमारी, आनन्दमार्गी, राधा स्वामी, साईं बाबा वाले, बालयोगेश्वरी, हंसा वाले, गोकुलिये गोसाई आदि आदि—

आदरणीय कादियाण जी के लेख से जो मैं समझ सका हूं उसका कुछ विवरण मैंने यह ऊपर लिखा है। आर्यसमाज को दूसरे जो कुछ भी कहें या मानें मगर आज तक आर्यसमाज ने अपने को एक सम्प्रदाय नहीं माना है। उसके नियम और सिद्धान्त सभी मानव जाति के कल्याणहेतु हैं वह किसी एक देश, जाति या समाज के लिये नहीं हैं। न ही वह किसी काल विशेष के लिये हैं। आर्यसमाज के मूल सिद्धान्त जिनकी नींव पर यह भव्य भवन खड़ा है वह हैं—सत्य, अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह—

इनका दिग्दर्शन ऋषि दयानन्द सरस्वती ने अपने अमर ग्रन्थ सत्यार्थ-प्रकाश के ११ वें समुल्लास में बहुत उत्तमत्ता से किया है। एक जिज्ञासु सब सम्प्रदाय वालों के पास जाता है वह सब अलग अलग अपने अपने को अच्छा व सच्चा बताकर दूसरे सबको झूठा कहते हैं। अन्त को वह जिज्ञासु परेशान होकर किसी ब्रह्मनिष्ठ परमात्मा को जानने वाले गुरु के पास जाता है और वह गुरु उस जिज्ञासु को धर्म का रहस्य धर्म के मूल सिद्धान्त बताता है। वह मूल सिद्धान्त वह उपरोक्त वर्णित पांच यम हैं अर्थात् सत्य, अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह। इनकी मानवता के कल्याण के लिये सदैव आवश्यकता थी, है और रहेगी। सब इनको मानते हैं, चाहते हैं कोई भी इनका विरोध नहीं करता। आर्यसमाज की स्थापना इन्हीं सिद्धान्तों को सर्वत्र मान्य करा देने हेतु ऋषि दयानन्द सरस्वती ने की थी। यही मानव धर्म है, सनातन वैदिक धर्म है। जो दूसरे मत सम्प्रदाय मजहब या पंथ हैं उनके दो भाग हैं। एक तो वह है जो कभी किसी समय विशेष में किसी देश विशेष में किसी जाति विशेष के उद्धार कल्याण के लिये उनके दुःख दूर करने हेतु उस समय के अनुसार जो तहरीक किसी संत ने चलाई उससे उस जाति का देश का कल्याण हुआ। उस महात्मा के देहान्त के बाद स्वार्थी लोगों ने उस महात्मा को अवतार, पैगम्बर, सन्त भगवान् बता बताकर उसके लिये नाना प्रकार की कथा खड़ी कर करके अपनी दुकानें खड़ी कर लीं—मन्दिर, मठ, गुरुद्वारे, गुरुगृह आदि आदि बन गये, चढ़ावे आने लगे। खूब भोली भाली जनता की खोटे उस्तरे से हजामत बनने लगी। दूसरे वे हैं जो शिक्षित हैं बड़े बुद्धिमान् हैं और देखते हैं कि किस प्रकार छल फरेब से एक योजनानुसार जाल बिछाकर लोगों को गुरु, महात्मा, भगवान् और धर्म के नाम पर गुमराह करके अपनी जीविका खड़ी की जा सकती है। यह बीमारी अब बहुत जोर पकड़ रही है। दोनों प्रकार की दुकानों में भोली भाली जनता अज्ञान और अविद्या के कारण इन सम्प्रदाय मजहब वालों के जाल में फंस कर कष्ट भोग रही है। जिस नैतिक पतन का जिक्र लेख में किया गया है और जिसे मिटाने के लिये सब सम्प्रदायों को एक जुट हो जाने का सुझाव दिया गया है उस पतन को दोषों को फैलाने में उनको पनपाने में क्या इन मजहबों का सम्प्रदायों का हाथ नहीं है?

कहने को प्रत्येक सम्प्रदाय, मजहब खुलकर इन पांचों सिद्धान्तों की प्रशंसा करते हैं। मगर उन सिद्धान्तों की परिभाषा उनकी मान्यता अपनी अपनी एक एक अलग अलग हैं जैसे सत्य किसे कहते हैं—जो गुरु महाराज ने कहा या किसी किताब विशेष में लिखा है वह उनका सत्य है। अहिंसा क्या है—व्यक्ति विशेष को दुःख न देना। मगर गुरु के कहने पर या पैगम्बर के आदेश पर किसी को भी मौत के घाट उतारना स्वर्ग पाना है। इसी प्रकार प्रत्येक सिद्धान्त की उनकी अपनी अपनी अलग परिभाषा है उन्हीं को वे मानते हैं। उन्हीं का प्रचार करते हैं। यही कारण है भोली भाली जनता उनके चक्कर में फंसकर बहुत दुःख पा रही है। और नैतिकता का पतन दिन दूना रात चौगुना बढ़ता जा रहा है। जितने भी ये नये नये पथ फैलते जाते हैं उनके अपने अपने तरीके जनता को मूर्ख बनाकर अपना स्वार्थ सीधा करने को बढ़ते जा रहे हैं और अभी तो आगे खूब ही बढ़ेंगे। एक बात और मजे की है इनमें सबमें एक अलिखित समझौता है। वे एक दूसरे का खण्डन प्रायः नहीं करते। वे तो अब अधिकतर यह ही कहते हैं भाई सब मजहब सब सन्त सब गुरु सच्चे हैं। आजकल इसका फैशन भी हो गया है कि जो ऐसा कहता है वह देशभक्त, ईश्वरभक्त, शान्ति दूत समझा जाता है। महर्षि ने उसी प्रसंग मे सत्यार्थ-प्रकाश में जिज्ञासु से इन सम्प्रदाय वालों से प्रश्न भी कराया है कि जब यह सिद्धान्त सत्य अहिंसा आदि के ठीक हैं तो तुम इन्हें क्यों नहीं मानते? उन सम्प्रदाय वालों के मुंह से ऋषि ने जो उगलवाया है जो कटु सत्य कहलवाया है वह आज भी उतना ही सत्य है जितना कि उस समय था। ऋषि उनका उत्तर इस प्रकार देते हैं:—

"जब जिज्ञासु ने सबसे कहा कि तुम इसी प्रकार सब जनें एक मत हो सत्य धर्म की उन्नति और मिथ्या मार्ग की हानि क्यों नहीं करते हो? वे सब बोले जो हम ऐसा करें तो हमको कौन पूछे? हमारे चेले हमारी आज्ञा में न रहें, जीविका नष्ट हो जाय। फिर जो हम आनन्द कर रहे हैं सो सब हाथ से जाय। इसलिये हम जानते हैं तो भी अपने अपने मत का उपदेश और आग्रह करते ही जाते हैं। क्योंकि "रोटी खाइये शक्कर से, दुनियां ठगिये मक्कर से" ऐसी बात है। देखो! संसार में—

शेष पृ० १० पर

कुरीति निवारण

मांस अण्डों के सेवन से हानियां।

(ले० चौ० किशनाराम आर्य ललानियां बाया नोहर श्री गंगानगर [राजस्थान])

राम कृष्ण ऋषि महर्षियों की संतान में मादक और उत्तेजक नशों की तरह मांस और अंडों का सेवन दिन प्रति दिन बढ़ता जा रहा है। जिन घरानों में पहले मांस से घृणा थी आज वहां नर नारी बच्चे बूढ़े बड़े चाव से मांस मछली और अण्डों का प्रयोग कर रहे हैं। इसे कहते हैं मानव समाज का दुर्दिन। संध्या हवन रोजाना करने वाली ऋषि संतान आज गौ माता के खून से आर्यधरा को लाल होती देखकर कान तक नहीं हिलाती और विदेशी म्लेच्छों की तरह मूकपशु-पक्षियों का वधकर उनका मांस-हड्डी भक्षण कर रही है। सत्य कहा है—विनाश काले विपरीत बुद्धिः।

सत्यता की कसौटी पर जाँच (निष्पक्ष) तरीके से की जाये तो मानव के लिए मांसाहार निषिद्ध है और भारत तो गर्म देश है। इसलिए यहां के लोगों का वात नाड़ी संस्थान (नर्वस सिस्टम) शीत प्रधान देश वासियों की उपेक्षा अधिक तीव्र है। अतः भारतीयों को विदेशों की नकल करना स्वास्थ्य के लिए हानि कारक है।

मांस गर्म है। अप्राकृति खाद्य है पित और कफ प्रकृति वालों के लिए विष तुल्य है। मांस के साथ दूध, दही, शहद, सिरका, तेल, खीर, विल्व-गिरी, शर्बत, बर्फ आइसक्रीम, खीर, ककड़ी, तरबूज, मूली, तिल, गन्ना, और मसूर की दाल, खाने से स्वास्थ्य बिगड़ जाता है। मछली के मांस के साथ भी उपरोक्त वस्तुये खाने से रक्त और मस्तिक में बिगाड़ आ जाता है, फुलबहरी और कोढ़ होने का भय हो जाता है। बड़े नगरों का जल जहां नदी या समुद्र में गिरता है वहां वह नगर का गदा जल तमाम जल को गन्दा बना देता है। वहां भी मछली तथा गन्दे जल वाले तलाबों और पोखरों की मछलियां राज यक्ष्मा (तपेदिक) रोग को जन्म देती हैं। यह क्यों होता है क्यों कि मछली का मांस गर्मतर होता है, ज्यादा प्यास लगाता है पेट में शूल बढ़ाता है दुष्पाच्य है तामसिक है।

सब तरह के मांस में अनेक दुर्गुण तो स्वयम् ही होते हैं दूसरे इसको पकाते समय लाल मिर्च अनेक तरह के गर्म मसाले प्याज, लहसून, घृत और शलजम आदि बहुत खाये जाते हैं। जिससे यह मानव स्वास्थ्य के लिए भयंकर विष साबित हो रहा है। फिर भी अक्ल पर पत्थर पड़े हैं, सब जीवों में श्रेष्ठ प्राणी मनुष्य ही मांसाहारी गिद्ध, चील बाज, कौआ लोमड़ी, गीदड़, कुत्ता, बिल्ली, भेड़िया और दूसरे मांसाहारी पशु पक्षियों की तरह ही मांस की तरफ भाग रहे हैं। मेरा आखों देखा हाल है कि राजस्थान के पिछड़े वर्ग के लोग मरे पशुओं का जंगल में मरने पर वे डालने के बाद उनकी मिट्टी (मांस) भक्षण किया करते थे लेकिन आर्य समाज के प्रचार से जन जागृति का युग आया और लोगों ने इस बुराई का त्याग कर दिया। अब तो सांसी आदि घुमक्कड़ जातियों में यह भोंडा रिवाज रहा है।

१ (क)—जो मांस खाना है यह भी उन्हीं वाममार्गी टीका कारों की लीला है, इसलिए उनको "राक्षस" कहना उचित है, परन्तु वेदों में कही मांस खाना नहीं लिखा।" (ख)—"दयालु परमेश्वर ने वेदों में कहीं मांस खाने या पशु आदि के मारने की विधि नहीं लिखी।" (ग)—इसलिए यजुर्वेद के प्रथम ही मंत्र में परमात्मा की आज्ञा है कि (यजमानस्य पशून् पाहि) हे पुरुष तू इन पशुओं को कभी मत मार।" रक्षा कर।

(२)—मांस अण्डा आदि अभक्ष्य पदार्थ न खायें। जिसके पीछे कच्चा मांस खाने वाला बाघके समान (व्यसन लग जाता है, वह यज्ञ के अयोग्य और निस्तेज हो जाता है। उसके हाथ से यज्ञ का हवि न खावे। वह खेती बाड़ी गौ धनादि से भी वंचित हो जाता है।

महर्षि स्वामी दयानन्द जी महाराज के अमर ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश १० समुल्लास में लिखते हैं यथा" और मद्यमांस के प्रमाणुओं ही से पूरित हैं उनके हाथ का न खावें, इन पशुओं को मारने वालों को सब मनुष्यों की हत्या करने वाले जानियेगा। देखो ? जब आर्यों का राज्य था तब ये महोपकारक गाय आदि पशु नहीं मारे जाते थे तभी आर्यावर्त्त वा भूगोल देशों में बड़े आनन्द में मनुष्यादि प्राणी वर्तते थे, गाय बैल आदि पशुओं की बहुताई होने से अन्न रस पुष्कल प्राप्त होते थे, जब से विदेशी मांसाहारी इस देश में गौ आदि पशुओं को मारने वाले मद्यपानी राज्याधिकारी हुए हैं तब से क्रमशः आर्यों के दुःख की बढ़ती होती जाती है। सभी तरह का मांस जीवों को मारने पर मिलता है कुछ लोग यह दलील देते हैं कि जीव हिंसा पाप है। लेकिन क्रय देकर मांस खाने से पाप नहीं होता हमारे धर्म शास्त्रों ने १. मारने वाला, २. हत्यारों को पशु बेचने वाला, ३ मारने की सलाह देने वाला, ४. मांस बेचनेवाला, ५. मांस खरीदने वाला, ६. पकाने वाला, ७. परोसने और खाने वाला। शराब मांस मछली और मुद्रा पूरी कचौरी बड़े पकौड़ी और मातंगी विद्या में तो ये मांसाहारी मां को माता और बहन को बहन तथा बेटी को बेटी कहना भी भूल कर कुकर्म करने में पीछे नहीं रहते हैं। उन वाममार्गी लोगों ने वेदशास्त्रों स्मृतियों उपनिषदों और इतिहास में भी मांसाहार साबित करने में अपनी दलीलें पेश की हैं। लेकिन मांसाहार का ज्यादा प्रचार तो ऋषिवरदयानन्द जी के मतानुसार (गोकरुणानिधि में।)"सात सौ वर्ष के पीछे गवादि पशुओं को मारने वाले मांसाहारी विदेशी मनुष्य बहुत आ बसे हैं। वे उन सर्वोपकारी पशुओं के हाड़ या मांस तक भी नहीं छोड़ते हैं, मांसाहारियों तुम लोग जब कुछ काल के पश्चात् पशु न मिलेंगे तब मनुष्यों का मांस भी छोड़ेंगे या नहीं ?

हे परमेश्वर तू क्यों इन पशुओं पर दया नहीं करता ? क्या इन पर तेरी प्रीति नहीं क्या उनके लिए तेरी न्याय सभा बन्द हो गई। विश्व विश्रुत महर्षि की शिक्षा अंधों को आंख देनेवाली सोतों को जगाने वाली है।

मांस में तथा दूसरी रस रक्त मांस के अलावा मेद अस्थि मज्जा और वीर्य आदि धातुओं के सार नष्ट हो जाते हैं जिससे शरीर में निःसार मिट्टी ही शेष रहती है अगर मृतक शरीर में प्रोटिन शेष मान भी लें तो इस प्रोटीन की मानव शरीर को जरूरत कतई नहीं क्यों कि यह सार हीन तत्व यूरिक एसिड (मूत्राम्ल) के रूप में पेशाब के साथ निकल जाता है। इस नकली प्रोटीन का जिगर और गुर्दे पर व्यर्थ भार पड़ता है जिससे ये अवयव बेकार हो जाते हैं। मांसाहार से मनुष्य (मांस खानेवाले)की अतड़ियों में दुर्गन्धित विषैले टाकसीन पैदा हो जाते है। मांसाहारी की कब्ज को बड़े विरेचन भी काष्टशुद्धि नही करसकते और पशुओ के शरीर के टूटे फूटे रंग रेसे उनके खून के विकार और विजातीय द्रव्य सभी प्रकार के दोष मांस में होते हैं कई पशु अनेक बिमारियों के शिकार होते हैं। अगर मांस भोजी मारे जाने से पूर्व उन्हें देखते तो मांस के प्रति उनकी घृणा हो जाती। स्वस्थ पशु भी जब बेहद दूरी से भूखे प्यासे थके मांदे बूचड़ खाने में लाये जाते हैं तो हत्थे और हत्यारों के दर्शन मात्र से उनका खून सूख जाता है फिर मरते समय के अकथनीय दुःखों को देख तथा सहकर चीत्कार करके प्राण छोड़ते हैं इससे इन राक्षसी द्वारा दुःखद मौत मरे पशुओं के मांस से मांस वृद्धि हो। कोई बुद्धिमान् स्वीकार करेगा नही। बड़ा अनर्थ तो जब होता है तब मांस से होने वाली बीमारितों का पता नहीं लगता रोग कहां से शुरु हुआ है। इस प्रकार लाखों बहुमूल्य जानें मांस खाने से दुःख उठा रहे हैं तथा कितनी माताओं की गोद खाली हो गई तथा कितनी ही सौभाग्य पतियों के माग की रोली पुछ गई कितनी जानें अस्पतालों में पड़ी करुणाक्रंदन कर रही हैं। मांस ब्रह्मचर्य का खंडन करता है क्रोध और अनेक मनो विकार उत्पन्न करता है। दिमागी काम करने वालों के लिए मांस खाना अधिक बुरा है। स्वाद के लिए जो मांस खाते हैं उनको बुढ़ापे में दुःख देता है मासाहारी किसी भी अवस्था में मांस न खावें अगर उन्हें प्रोटिन से ही प्रेम है तो वे असली प्रोटिन प्राप्त करें दूध दही, छाछ, पनीर, मूंगफली, बादाम सूखे मेवों सोयाबीन, गेहूं, चना, मटर, दालों में अधिक और साग सब्जी और फलों में यह कम होती है। घी, तेल, शहद, खांड और साबूदाना में प्रोटीन होती ही नहीं बहम में पड़ क्यों अपने स्वास्थ्य रूपी अमूल्य धन को लुटा रहे हैं। ३५ साल के बाद प्रोटीन की जरूरत होती है। अगर मांस मनुष्य का भोजन नहीं है तो फिर खाया क्योंजाता है, क्यों कि यह ज्यादातर देखादेखी सीख लिया जाता है। दूसरे हमारे पुराण आदि ग्रन्थ जो वाममार्गी लोगों ने इसाई और इस्लाम आदि विदेशी विधर्मी म्लेच्छो के बहकाने रिश्वत लने वैदिक धर्म में से अपने शिष्य चुनने आदि षडयन्त्रों से बहक करके अपने ही पैरों कुल्हाड़ी मारने हेतु बनाये हैं और वे भी ऋषि महर्षियों के नाम तथा उनके कथनों की आड़ लेकर उनमें खुला मांसाहार लिखा है।

शेष पृ० १० पर

पृष्ठ ८ का शेष

सूधे सच्चे मनुष्य को कोई नहीं देता और न पूछता। जो कुछ ढोंग बाजी और धूर्त्तता करता है वही पदार्थ पाता है। (जिज्ञासु, जो तुम ऐसा पाखण्ड चला कर अन्य मनुष्यों को ठगते हो तुमको राजा दण्ड क्यों नहीं देता? (मत वाले) हमने राजा को भी अपना चेला बना लिया है। हमने पक्का प्रबन्ध किया है छूटेगा नहीं (जिज्ञासु) जब तुम छल से अन्य मतस्थ मनुष्यों को ठग उनकी हानि करते हो परमेश्वर के सामने क्या उत्तर दोगे? और घोर नरक में पड़ोगे, थोड़े जीवन के लिए इतना बड़ा अपराध करना क्यों नहीं छोड़ते? (मतवाले) जब ऐसा होगा तब देखा जायगा। नरक और परमेश्वर का दण्ड जब होगा अब तो आनन्द करते हैं। हमको प्रसन्नता से धनादि पदार्थ देते हैं कुछ बलात्कार से नहीं लेते, फिर राजा दण्ड क्यों देवे? इत्यादि प्रश्नों और उनके उत्तरों में बड़े विस्तार से इस विषय को लिखा है। ऐसा लगता है ऋषि साक्षात् भविष्य को देख रहे थे कि आर्यसमाज में भी जब शिथिलता आवेगी, आपाधापी मचेगी, तो वैदिक सच्चे सिद्धान्तों को आर्यसमाज भी निर्बल समझकर उन मत वालों के आगे घुटने टेक कर मानव के कल्याण का मार्ग उनकी सहायता से खोजे जाने के व्यर्थ के स्वप्न देखेंगे। कामधेनु को छांडिके छाया देती दुहाने का प्रयास करेंगे। तो उन भाइयों के जितने तर्क उस पक्ष में हो सकते हैं उन सबको एक एक कर उठाया है और उनका उत्तर दे दे कर ऐसे प्रयास की निरर्थकता को जताया है। पाठक गण कृपा कर इस उठाये गये प्रसङ्ग को सत्यार्थ प्रकाश में ध्यान पढ़ें और ऋषि के पैनी दृष्टि की झलक देख उसका रसस्वादन करें।

मैं ऊपर लिख चुका हूं कि इन सब मत वालों में दो दो वर्ग हैं। एक वह जो मजे लूट रहे हैं दूसरों की कमाई पर गुलछर्रे उड़ा रहे हैं, पुज रहे हैं वे और उन के एजेण्ट। दूसरे अज्ञान और अन्धकार में फंसी जनता जो इनके पाखण्ड में फंसकर अपना तन मन धन लुटा रही है। नाना प्रकार के कष्ट भोग रही है। भूत प्रेत जादू टोना, चुड़ैल चाण्डालनी, नरक और उसके दूत नाना प्रकार के चमत्कार जादूगिरी खूब धडल्ले से रात दिन चल रहे हैं। प्रथम वर्ग को समझाना और उन्हें राहे रास्ते पर बालू पेल कर तेल निकालने का प्रयास मात्र होगा।

जनता में अविद्या अज्ञान के अंधकार को मिटाकर सत्य उपदेश करके उन्हें सन्मार्ग पर लाया जाना सम्भव है, कठिन और कष्टप्रद अवश्य है। उसी के लिए महर्षिदयानन्द सरस्वती ने आर्यसमाज की स्थापना की थी मगर आज वह समाज जमीन जायदाद बेंक बैलेन्स आदि आदि सम्पत्ति इकट्ठा हो जाने के कारण चन्द स्वार्थी व्यक्तियों को निजी सम्पत्ति बन गया है। उसका स्वरूप भी अब शनैः शनैः उन्हीं सम्प्रदायों जैसा होता जा रहा है। विद्वान् जब स्वार्थी बनकर चालाकी और धूर्त्तता करेगा तो उससे ज्यादा खतरनाक ओर कोई नहीं हो सकता। सीधे सादे आर्य भाई बहिनों की भावनाओं को उभार उभार कर अब तो समाज में भी व्यापार चलने लगा है। दयानन्द के वस्त्रों की प्रदर्शनी मुख्य मुख्य स्थानों की यात्रा से उनके लिये स्पेशल गाड़ी और बसों का व्यवसाय दयानन्द की कथित चारपाई की परिक्रमा उनके जन्म स्थान पर माथा टेकना आये दिन के जलूस और मेले तमाशे सब इसी ओर संकेत कर रहे हैं।

ओ आर्यसमाज! तू अपने स्वरूप को निहार। तू ही अकेला विश्व में ऐसा है जो प्रत्येक बात को, सिद्धान्त को बुद्धि और तर्क पर कस कर मानने और मनाने का दावा करता है। जब कि दूसरे सब इसके नाम से भागते हैं, कांपते हैं। आर्य भाई बहिनो! अपने अपने निजी जीवन की गहराई से जांच करो, नित्य दिन में दो बार करो। और उसमें जो शिथिलता प्रमाद वश देश काल के प्रभाव से आ गई है उसे एक झटके में ही दूर करो। विश्वास रखो ईश्वर हमारे एक एक विचार को देख रहा है। इस प्रकार अपने को शुद्ध करो मांजो और फिर जुटो स्वाध्याय में। अनुपम कृपा कर ऋषि ने सत्यार्थप्रकाश में गागर में सागर भर दिया है। कुछ भी नहीं छोड़ा है। बीस बार जब ध्यान से इसे मनन कर लोगे तो तुम्हें ज्ञान के अनमोल मोती हाथ लग जावेंगे। बस उन का बांटना प्रारम्भ करदो दयानन्द के सैनिक बनकर। तुम ही हो अकेले जो अज्ञान अंधकार में फसी मानवता को ज्ञान का प्रसाद देकर धूर्त्तों के फंन्दों से बचा सकते हो। ओ मां आर्यसमाज! फिर एक बार अपनी गोद में दयानन्द, लेखराम, श्रद्धानन्द जैसे महामानव पाल पाल कर विश्व को दे ताकि वह दुःखी मानवता का उद्धार कर सकें।

श्री कादियाण जी के लेख के पैरा एक पर हम आगामी लेख में अपने विचार प्रस्तुत करेंगे। आशा है आर्य जगत् के विद्वान् नेता भाई बहिन आदरणीय श्रद्धेय श्री सुरेन्द्रसिंह जी कादियाण मेरे इन विचारों पर ध्यान देकर कृतार्थ करेंगे।

[विशेष मान्य लेखक के सुझाव विचारणीय हैं। वाद विवाद के लिये नहीं हैं। इसी प्रकार अन्य सज्जनों के सुझाव भी प्रकाशित किये जा सकेंगे। सम्पादक]

पृ० ९ का शेष

मांस मनुष्य का स्वाभाविक एवं रुचिकर खाद्य नहीं है, क्यों की छोटे बच्चे अपनी रुचि से मांस खाना पसंद नहीं करते वे तो अपने पूज्य लोगों के सिखाने से सीखते हैं।

प्रश्न—क्या मांसाहार से कोई बीमारी भी होती है?

उत्तर—मांसाहार से अनेक बीमारियां हो जाती हैं, जैसे मैली जिह्वा मुरझाया चेहरा, आँखों के नीचे घेर से, जिगर की खराबी, ८४ प्रकार की बात व्याधी, कब्ज पेशाब की बीमारियां (प्रमेह २० प्रकार के) आत्म शक्ति का ह्रास सिर एवं पेट दर्द, मधुमेह, ऊँचा ब्लड प्रेसर, गुर्दे खराब अपेण्डिसाइटीज' कैंसर, पेट के जख्म, अर्बुद पत्थरी त्वचा की अनेक बिमारियाँ अदृष्ट वर्ण (पीठ का फोड़ा)

अण्डा :—अण्डा मनुष्य को कामी और क्रोधी बनाता है। तामसिक है। ब्रह्मचर्य का खंडन करता है। तासीर में गर्म तर है। अध्यात्मिक चिंतन का वैरी है। मुर्गी के एक अंडे के बराबर एक आंवले में ताकत होती है। इसलिए आंवले को अण्डे का प्रतिनिधि आयुर्वेद ने माना है। आज जनता की जनता द्वारा बनी जन हितैषी सरकार भी मुर्गी मछली का प्रचार करने में प्रोत्साहन दे रही है। हमें फिर भी निरामिष भोजीबन अपने स्वास्थ्य की रक्षा अन्न, फल मेवा और दूध दही घृत, छाछ, तथा साग सब्जी से करनी है।

पृ० ४ का शेष

के वार्तालाप में वारम्वार प्रकट किया गया था; परन्तु बहुमत इसके विरुद्ध था। बाद में जब गुरुकुल खुलने लगे, तब दूसरी बार भी यह विचार उभरा था। दूसरी बार भी इस विचार को बहुमत द्वारा ठुकरा दिया गया था।

११. दूसरी उल्लेखनीय बात यह है कि जब पंजाब में आर्यसमाज का प्रसार होने लगा और डी० ए० वी० कालिज का संस्थापन संचालन किया गया, तब आर्यसिद्धान्तों और मन्तव्यों का प्रतिपालन विशेष दृढ़ता से न होता था। लोग प्रकट में तो आर्यसमाज के सिद्धान्तों को स्वीकार कर लेते थे, परन्तु मूर्तिपूजा, मृतक श्राद्ध जन्म पत्री, जन्म की वर्णव्यवस्था एवं जात पात आदि के बखेड़े से पूर्णतया अलिप्त न होते थे। बाल विवाह बहु विवाह और वृद्ध विवाह के दोषी भी आर्यसमाजों में स्थान पा जाते थे। कुछ लोग मांसाहारी अथवा माँसाहारियों से घनिष्ठ सम्पर्क रखने वाले भी थे। मांसाहारियों का यह कथन था कि हम मांसाहार का प्रसार नहीं करते, मांहार को वेद विरुद्ध भी समझते हैं, तथापि हम इसे छोड़ने में असमर्थ हैं। आर्यसमाज में जैसे मूर्तिपूजकों मृतक श्राद्धसम्पादकों आदि की उपेक्षा की जा रही है, वैसे ही मांसाहारियों की भी उपेक्षा कर दी जाये। कहना न होगा कि एक बड़ा समुदाय मांसाहारियों की उपेक्षा न कर सका।

१२ सन् १८९३ ई० के आर्यसमाज लाहौर के वार्षिउत्सव के अवसर पर मांसाहार की शिकायत ने उग्ररूप धारण कर लिया था। उसी का यह परिणाम निकला कि पंजाब के आर्यसमाजी दो भागों में बंट गये। शाकाहारी दल के नेता श्री महात्मा मुन्शी राम और श्री दुर्गाप्रसाद जी थे और माँसाहारी दल के नेता श्री लाला लालचन्द जी प्रधान डी० ए० वी० कालिज प्रबन्धक समिति तथा श्री हंसराज जी प्रिंसिपल डी० ए० वी० कालिज।

१३. दलबन्दियों के वे पुराने कारण अब पूर्णतया समाप्त हो चुके हैं। आचार विचार की दृष्टि से भी दोनों दलों में अब कोई भेद नहीं। गुरुकुलों का मूल्यांकन भी हो गया और रूप भी बदल गया। अब तो हमारा लाहौर और पंजाब भी राजनीति के नये सांचों में ढल गया। क्या अब समय नहीं आ गया है कि पंजाब के दोनों बड़े आर्यसमाजी दल सिर जोड़कर बैठें और मेल मिलाप के मार्ग पर चलकर संस्कृत भाषा, वेद प्रचार एवं आर्य जीवन यापन के लिये नये नये संकल्प धारण करें। आर्य समाज के भविष्य को पूर्ण सुरक्षित, सशक्त और उज्जवल बनाने के लिये नये और अधिक गम्भीर पग उठाय।

पुस्तक समालोचना

आगे लिखे ६ पुस्तक "सत्य प्रकाशन" बृन्दावन मार्ग, मथुरा द्वारा किये गये। ये सब प्रकाशक के पते पर मिल सकते हैं।

(१) उपासना रहस्य—लेखक डा० सत्यदेव शर्मा पृ० संख्या १४० सचित्र। मूल्य १ रु० ४० पैसे। इसमें उपासना के सम्बन्ध में ६ अध्यायों में विचार किया गया है।

(२) वैदिक स्वर्ग की झांकियां—प्रणेता श्री ईश्वरी प्रसाद"प्रेम एम० ए० सम्पादक तपोभूमि मासिक मथुरा। पृष्ठ संख्या १८० मूल्य १ रु० ५० पैसे' पुस्तक। गृहस्थाश्रम के पारिवारिक जीवन को सुखी बनाने के लिये उदाहरणसहित १८ झांकियाँ पर प्रकाश डाला गया है। उसमें गीत और भजनों का संग्रह भी कर दिया है।

(३) आर्यसमाज एक सरल परिचयलेखक ऊपर लिखित श्री "प्रेम" जी० एम० ए०। पृष्ठ सं० ६४, मूल्य ५० पैसे। इसमें आर्यसमाज के स्वरूप को सरल रीति से समझाया गया है।

(४) दादी पोती की बातें। लेखक श्री प्रेम जी ही। पृष्ठ सं० ४४, मूल्य ३० पैसे। इसमें कुरीतियों के निवारण पर अच्छा लिखा गया है।

(५) नव ग्रह समीक्षा—लेखक श्री वेदप्रकाश सुमन सि० शास्त्री। पृष्ठ सं० ४४, मूल्य ४० पैसे, इसमें मिथ्या फलित ज्योतिष के रूप में नवग्रहों की समीक्षा की गई है।

(६) भारत माँ की बेड़ियां। लेखक उपयुक्त श्री वेदप्रकाश सुमन। पृष्ठ सं० २४, मूल्य २५ पै० इसमें नरबलि आदि ८ कुरीतियों का खण्डन किया गया है।

आलोचना—इस प्रकार उपर्युक्त ६ पुस्तक बहुत उपयोगी हैं। कागज, छपाई, टाइटिल पेज आदि बहिरंग उत्तम है। आन्तरिक रूप तो श्रेष्ठ है ही। हम समझते हैं कि प्रत्येक आर्य गृहस्थ को इनको पढ़कर पूरा लाभ उठाना चाहिये। विद्यार्थी से लेकर वृद्ध तक सभी नर नारियों को अवश्य इसको खरीदना चाहिये। हम सभी लेखकों को बधाई देते हैं।

—जगदेवसिंह सिद्धान्ती शास्त्री सम्पादक

कन्या गुरुकुल हरद्वार कनखल में कन्याओं का प्रवेशारम्भ

प्राचीन आश्रम प्रणाली के आधार पर अखिल भारतीय रूप में संचालित कन्या गुरुकुल, हरद्वार के स्वस्थ, पवित्र, शान्त वातावरण में दसवीं पास कन्याओं को आचार्य श्रेणी पर्यन्त शुद्ध आयुर्वेद की उच्चतम शिक्षा दिलाने के लिये प्रवेश प्रारम्भ है। पंचवर्षीय कोर्स के अनुसार आयुर्वेद भिषक्, विशारद, शास्त्री, आयुर्वेदाचार्य परीक्षायें नि० भा० आयुर्वेद विद्यापीठ, दिल्ली की होने के नाते सम्पूर्ण भारत में रजिस्ट्रेशन के लिये मान्यता प्राप्त है। शिक्षा काल में कन्याओं को औषधि निर्माण सम्बन्धी सम्पूर्ण क्रियात्मक ज्ञान कराया जाता है। आश्रम निवास, खेलकूद, व्यायाम, संरक्षण एवं शिक्षा पर कोई शुल्क नहीं लिया जाता, केवल अनिवार्य सहायता राशि के नाम पर ४४)रु० मासिक व्यय देना होता है। संस्कृत हिन्दी विभागों में प्रारम्भिक शिक्षा के लिये छः वर्ष तक की छोटी कन्याओं का प्रवेश भी इन्हीं दिनों प्रारम्भ है। नियम व विवरण के लिये शीघ्र लिखिये। —आचार्य चन्द्रावती देवी शास्त्री

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब की सूचना

श्री पूज्य स्वामी सर्वानन्द जी रिसीवर आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब जालन्धर के मई मास के शेष दिनों का प्रोग्राम २६-२७ मई अमृतसर। मई मास के शेष दिनों में श्री पूज्य स्वामी जी दयानन्द मठ दीनानगर (गुरुदासपुर) में रहेंगे।

आर्यसमाज ललानियाँ का वार्षिक निर्वाचन

निम्न पदाधिकारी सर्व सम्मति से निर्वाचित किये गये।

प्रधान—श्री सूरजाराम कसवां। मंत्री—श्री हीराराम डूडी। पुस्तका-अध्यक्ष—किशनाराम। आर्य कोषाध्यक्ष श्री रामचन्द्र आर्य।

—हरिराम मन्त्री

पूज्य सिद्धान्ती जी का कार्य प्रशंसा के योग्य है।

आपने पिछले ५० वर्ष से ऊपर वेद प्रचार में लगाये हैं। आर्यमर्यादा के संपादकीय लेखों और विशेषाकों ने महर्षि स्वामी दयानन्द के प्रचारित कार्यों को बहुत कुछ पूरा कर दिया है। अभी अभी जो जगत् के देदीप्य मान सूर्य, त्यागी, तपस्वी, योगी, यति परोपकारी स्वामी स्वतंत्रानन्द संस्मरणाङ्क तथा पिछले विशेषांकों में से स्वामी श्रद्धानन्द, वेदार्विभाव, याजुर्वेद का स्वाध्याय, वेदस्वरूप निर्णय, व्यवहार भानु, स्वामन्तव्या मन्तव्य आर्योद्देश्यरतनमाला वेद में पुनरुक्ति दोष नहीं, वैदिक सत्संग-पद्धति, संध्याहवन मंत्र अर्थ सहित। मूर्तिपूजा निषेध आदि आर्यसमाज के इतिहास में अद्भुत क्रांति लाते हैं साथ ही देश के सच्चे इतिहास, धर्म शास्त्रों के मर्म को आर्यभाषा (हिन्दी) में मामूली पढ़े लिखों के लिये उपयोगी सामग्री प्रस्तुत करना। आर्य मर्यादा को देश के सस्ते, उपयोगी, उत्तम, जनहितैषी पत्रों में स्थान देना। मैं तो यही कहूंगा कि आप एक परोपकारी संन्यासी की तरह आ० म० द्वारा घर घर में नव चेतना एवं जागरण की लहर दौड़ा रहे हैं।

—चौ० किशनाराम आर्य मंत्री आर्यसमाज ललानियाँ जि० श्रीगंगानगर राजस्थान

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब वेद प्रचार विभाग के समाचार

१. नरवाना: - वार्षिकोत्सव हर प्रकार से सफल रहा कुछ स्वतंत्र महानुभावों के अतिरिक्त सभा की ओर से निम्न व्यक्ति पधारे:—स्वामी हरयाणानन्द जी, श्री निरंजनदेव जी, श्री हरिदेव जी, श्री मुंशीलाल, धर्मपाल, की मण्डली, तथा श्यामसिंह जी हितकर पधारे। इस अवसर पर ५०१)रुपये वेद प्रचार ४०) रु० दशांश और १०) रु० आर्यमर्यादा का चंदा।कुल ५५१) रु० प्राप्त हुए।

२. आर्यसमाज किशन गंज दिल्ली:—उत्सव पर पं० भक्तराम जी तथा श्री श्यामसिंह जी हितकर ने प्रचार किया १११) रु० वेद प्रचार में प्राप्त हुए।

३. नंगल टाऊन शिप:—वार्षिकोत्सव बड़ा सफल रहा सभा की ओर से श्री रामनाथ जी यात्री ने भाग लिया। और ७५) रु० वेद प्रचार में मिले।

४. सगरूर:—भूतपूर्व प्रधान जी का पिछले दिनां देहांत हो गया स्वामी सुकर्मानन्द जी महाराज ने समय अनुकूल प्रवचन दिये। ६१) रु० सभा को वेद प्रचार में प्राप्त हुये।

५. फिल्लौर:—आर्यसमाज के मंत्री श्री हेमन्त कुमार जी के पूज्य पिता के अंतिम शोक दिवस पर पं० निरंजनदेव जी तथा पं० बलराज जी के समय अनुकूल प्रवचन हुये। ५१)रु० स्वर्गीय के परिवार की ओर से वेद प्रचार में प्राप्त हुये।

शोक समाचार

(१) पंजाब के प्रसिद्ध परोपकारी सेठ श्री शिवचन्द्र जी की पूज्यमाता जी का देहान्त हो गया। सभा की ओर से सेठ जी के साथ हार्दिक सहानुभूति प्रकट करता हूं। परम पिता परमात्मा सेठ जी तथा उनके परिवार को इस कष्ट को सहन करने की शक्ति प्रदान करे।

(२) आर्यसमाज जाखल के प्रधान एवं प्रसिद्ध कार्यकर्त्ता लाला मोहनलाल जी गुप्त का इसी सप्ताह देहान्त हो गया। आपने आर्यसमाज की बहुत ही सेवा की। आपने स्वर्गीय पं० मनशाराम जी की पुस्तकें छाप कर आर्यसमाज के प्रति अगाध श्रद्धा का प्रमाण दिया। सभा की ओर से उनके सुपुत्रों एवं परिवार के अन्य बन्धुओं से हार्दिक सहानुभूति प्रकट करता हूं। —विनीत निरन्जनदेव वेद प्रचाराधिष्ठाता

(३) स्व० महाशय हंसराज (बरेटा) के बड़े भाई एवं म० हंसराज ट्रस्ट बरेटा के प्रधान महाशय मोहन लाल जी का देहावसन हो गया। महाशय मोहन लाल जी दानशील के साथ ही साथ कर्मठ समाज सेवक भी थे। ट्रस्ट की ओर से आर्य युवक समाज अबोहर को आर्थिक सहयोग भी दिलाते रहे।

मैं आर्य युवक समाज अबोहर की और से उनके शोक सहानभूति देते हुये परम पिता से प्रार्थना करता हूं कि वह उनके परिवार को धीरज तथा शान्ति देवे। —अशोक आर्य प्रकाशन मन्त्री

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब द्वारा प्रकाशित और प्रचारित वैदिक साहित्य

१. बलिदान जयन्ती स्मृति ग्रन्थ—आर्य बलिदानों की गाथा मूल्य ४-५०
२. सोम सरोवर-वेदमन्त्रों की व्याख्या —पं० चमूपति एम. ए. ३-००
३. जीवन ज्योति-वेदमन्त्रों की व्याख्या " " ३-००
४. नीहारिकावाद और उपनिषदे " " ०-२५
५. Principles of Arya samaj " " १-५०
६. Glimpses of swami Daya Nand " " १-००
७. पंजाब का आर्य समाज पंजाब तथा हरयाणा के आर्यसमाज का इतिहास २-००
८. वैदिक सत्सग पद्धति सन्ध्या हवनमन्त्र अर्थ रहित विधि १-००
९. वेदादिर्भाव —आर्यमर्यादा का विशेषाक ०-६५
१०. यजुर्वेद अ० ३२ का स्वाध्याय " " " ०-५०
११. वेद स्वरूप निर्णय —प० मदनमोहन विद्यासागर १-००
१२. व्यवहारभानु —महर्षि स्वामी दयानन्द ०-५०
१३. स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश— " ०-४०
१४. Social Reconstruction By Budha & Swami Daya Nand By. Pt Ganga Prasad Upadhya M. A. २-००
१५. Subject Matter of the Vedas By S. Bhoomanad १-००
१६. Enchanted Island By Swami Staya Parkashanand १-००
१७. Cow Protection By Swami Daya Nand ०-१५
१८. वेद मे पुनरुक्ति दोष नही है आर्यमर्यादा का विशेषांक २-००
१९. मूर्त्तिपूजा निषेध " " ०-५०
२०. धर्मवीर पं० लेखराम जीवन —स्वामी श्रद्धानन्द १-२५
२१. कुलियात आर्य मुसाफिर प्रथम भाग—पं० लेखराम की पुस्तकों का संग्रह ६-००
२२. " " दूसरा भाग " " ८-००
२३. मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र —कु० सुशीला आर्या एम. ए. ०-२५
२४. योगीराज कृष्ण " " " ०-१५
२५. गोकरुणा निधि —स्वामी दयानन्द सरस्वती ०-२०
२६. आर्यसमाज के नियम उपनियम ०-१०
२७. आर्य नेताओं के वचनामृत —साईदास भण्डारी ०-१२
२८. कायाकल्प —स्वामी समर्पणानन्द सरस्वती १-५०
२९. वैदिक धर्म की विशेषताये —प० हरिदेव सिद्धान्त भूषण ०-१५
३०. स्वतन्त्रानन्द लेखमाला —स्वा० स्वतन्त्रानन्द जी की जीवनी तथा उनके व्याख्यान १-२५
३१. आत्मानन्द लेखमाला—स्वामी आत्मानन्द सरस्वतीकी जीवनी १-२५
३२. आर्यसमाज के सदस्यता फार्म —सैकड़ा १०-००
३३. वैदिक गीता —स्वामी आत्मानन्द सरस्वती २-५०
३४. मनोविज्ञान तथा शिव सकल्प " " " ३-५०
३५. कन्या और ब्रह्मचर्य " " " ०-१५
३६. सन्ध्या अष्टाङ्गयोग " " " ०-७५
३७. वैदिक विवाह " " " ०-७५
३८. सुखी जीवन —श्री सत्यव्रत २-००
३९. एक मनस्वी जीवन —प० मनसाराम वैदिक तोप १-५०
४०. छात्रोपयोगी विचारमाला —जगदेवसिह सिद्धान्ती १-५०
४१. स्त्री शिक्षा —पं० लेखराम आर्य मुसाफिर ०-६०
४२. विदेशो मे एक साल —स्वामी स्वतन्त्रानन्द २-२५
४३. वेद विमर्श —पं० भगवद्दत्त वेदालकार २-००
४४. वेद विमर्श —प० वेदव्रत शास्त्री २-००
४५. आसनो के व्यायाम " " " १-००
४६. महर्षि जीवन गाथा —स्वामी वेदानन्द वेदवागीश २-२५
४७. मास मनुष्य का भोजन नही—स्वामी ओमानन्द सरस्वती १-००
४८. वीर भूमि हरयाणा " " " ४-००
४९. चोटी क्यों रखें —स्वामी ओमानन्द सरस्वती ०-५०
५०. हमारा फाजिल्का —श्री योगेन्द्रपाल १-५०
५१. सत्संग स्वाध्याय —स्वामी ओमानन्द सरस्वती ०-५०
५२. जापान यात्रा " " " ०-७५
५३. भोजन " " " ०-७०
५४. ऋषि रहस्य —पं० भगवद्दत्त वेदालंकार २-००
५५. स्वामी श्रद्धानन्द जीवन परिचय १-२५
५६. मेरा धर्म —आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति ७-००
५७. वेद का राष्ट्रिय गीत " " " ५-००
५८. ईशोपनिषद्भाष्य —इन्द्र विद्या वाचस्पति २-००
५९. प० गुरुदत्त विद्यार्थी जीवन —डा० रामप्रकाश १-३०
६०. वैदिक पथ —प० हरिदेव सिद्धान्त भूषण २-००
६५. वैदिक प्रवचन —प० जगत्कुमार शास्त्री २-२५
६१. ज्ञानदीप " " " २-००
६२. आर्यसमाज का सैद्धान्तिक परिचय ०-५५
६३. The Vedas ०-५०
६४. The Philosophy of Vedas ०-५०
६६. ईश्वर दर्शन प०जगत्कुमार शास्त्री १-५०
६७. श्वेताश्वरोपनिषद् " " ४-००
६८. ब्रह्मचर्य प्रदीप " " ४-००
६९. भगवन प्राप्ति क्यों और कैसे —स्वा० सत्यानन्द ०-६०
७०. आर्य सामाजिक धर्म " " ०-७५
७१. बोध प्रसाद —स्वामी श्रद्धानन्द ०-२५
७२. ऋषि दर्शन —पं० चमूपति एम. ए. ००-२५
७३. ऋषि का चत्मकार " " " ००-१२
७४. वैदिक जीवन दर्शन " " " ००-२०
७५. वैदिक तत्व विचार " " " ००-५०
७६. देव यज्ञ रहस्य " " " ००-३५
७७. स्वतन्त्रानन्द सस्मरणांक १-५०

सभी पुस्तकों के प्राप्ति स्थान

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब, गुरुदत्त भवन, जालन्धर (४२५०) टेलीफोन
" " " १५ हनुमान् मार्ग नई दिल्ली-१ " (३१०१५०)
" " " दयानन्द मठ रोहतक (हरयाणा) " (५७४)

आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब के लिए जगदेवसिह सिद्धान्ती शास्त्री द्वारा सैनी प्रिटर्स पहाड़ी धीरज, देहली में मुद्रित और १५ हनुमान् रोड, नई दिल्ली—१ से प्रकाशित

२१ ज्येष्ठ सं० २०३० वि०, दयानन्दाब्द १४६,
तदनुसार ३ जून १६७३ रविवार
सृष्टि सं०-१६६०८५३०७३

वर्ष ५
अंक २७

वार्षिक शुल्क स्वदेश में १०) रुपये
" " विदेश में २०) रुपये
एक प्रति का मूल्य ००-२० पैसे

सम्पादक -जगदेवसिंह सिद्धान्ती शास्त्री, पूर्व लोकसभा सदस्य (फोन ५१२१६३)

वेदमन्त्रार्थ-प्रवचन

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा गया है ॥

युवं नरा स्तुवते पज्रियाय कक्षीवते अरदतं पुरन्धिम् ।
कारोतराच्छफादश्वस्य वृष्णः शतं कुम्भाँ असिञ्चतं सुरायाः ॥

—ऋ० १.११६.७

पदार्थः—(युवम्) युवाम् (नरा) नेतारौ विनयं प्राप्तौ (स्तुवते) स्तुतिं कुर्वते (पज्रियाय) पज्रेषु पद्रेषु पदेषु भवाय (कक्षीवते) प्रशस्तशासनयुक्ताय (अरदतम्) सन् मागाविकं विज्ञापयतम् (पुरन्धिम्) पुरं बहुविधां धियम् (कारोतरात्) कारान् व्यवहारान् कुर्वतः शिल्पिन उ इति वितर्के तरति येन (शफात्) खुरादिव जलसेकस्थानात् (अश्वस्य) तुरंगस्येवाग्निगृहस्य (वृष्णः) बलवतः (शतम्) शतसंख्याकान् (कुम्भान्) (असिञ्चतम्) सिञ्चतम् (सुरायाः) अभिषुतस्य रसस्य ॥

अन्वयः—हे नरा युवं युवां पज्रियाय कक्षीवते स्तुवते विद्यार्थिने परन्धिमरदतम् । वृष्णोऽश्वस्य कारोतराच्छफात्सुरायाः पूर्णान् शतं कुम्भानसिञ्चतम् ॥

भावार्थः—आप्तावध्यापकौ पुरुषौ यस्मै शमादियुक्ताय सज्जनाय विद्यार्थिने शिल्पकार्य्याय हस्तक्रियायुक्तां बुद्धिं जनयतः स प्रशस्तः शिल्पी भूत्वा यानानि रचयितुं शक्नोति । शिल्पिनो यस्मिन् याने जलं संसिच्याधोऽग्निं प्रज्वाल्य वाष्पैर्यानानि चालयन्ति तेन तेऽश्वैरिव विद्युदादिभिः पदार्थैः सद्यो देशान्तरं गन्तुं शक्नुयुः ॥

भाषार्थः—हे (नरा) विनय को पाये हुए सभासेनापति (युवम्) तुम दोनों (पज्रियाय) पदों में प्रसिद्ध होने वाले (कक्षीवते) अच्छी सिखावट को सीखे और (स्तुवते) स्तुति करते हुए विद्यार्थी के लिये (पुरन्धिम) बहुत प्रकार की बुद्धि और अच्छे मार्ग को (अरदतम्) चिन्ताओं तथा (वृष्णः) बलवान् (अश्वस्य) घोड़े के समान अग्नि सम्बन्धी कलाघर के (कारोतरात्) जिससे व्यवहारों को करते हुए शिल्पी लोग तर्क के साथ पार होते हैं उस (शफात्) खुर के समान जल सींचने के स्थान में (सुरायाः) खींचे हुए रस से भरे (शतम्) सौ (कुम्भान्) घड़ों को ले (असिञ्चतम्) सींचा करो ॥

भावार्थः—जो शास्त्रवेत्ता अध्यापक विद्वान् जिस शान्तिपूर्वक इन्द्रियों को विषयों से रोकने आदि गुणों से युक्त सज्जन विद्यार्थी के लिये शिल्प कार्य्य अर्थात् कारीगरी सिखाने को हाथ की चतुराई युक्त बुद्धि उत्पन्न कराते अर्थात् सिखाते हैं वह प्रशंसायुक्त शिल्पी अर्थात् कारीगर होकर रथ आदि को बना सकता है शिल्पीजन जिस यान अर्थात् उत्तम विमान आदि रथ में जलघर से जल सींच और नीचे आग जलाकर भाफों से उसे चलाते हैं उससे वे घोड़ों से जैसे वैसे बिजुली आदि पदार्थों से शीघ्र एक देश से दूसरे देश को जा सकते हैं ॥

—(ऋषिदयानन्द भाष्य) ●

पुनर्जन्मविषयः

(आ यो धर्माणि०) जो मनुष्य पूर्व जन्म धर्माचरण करता है, (ततो वपूंषि कृणुषे पुरुणि) उस धर्माचरण के फल से अनेक उत्तम शरीरों को धारण करता और अधर्मात्मा मनुष्य नीच शरीर को प्राप्त होता है। (धास्युर्योनिं०) जो पूर्वजन्म में किये हुये पाप पुण्य के फलों को भोग करने के स्वभावयुक्त जीवात्मा है वह पूर्व शरीर को छोड़ के वायु के साथ रहता है। (पुन०) जल औषधि वा प्राण आदि में प्रवेश करके वीर्य में प्रवेश करता है तदनन्तर योनि अर्थात् गर्भाशय में स्थिर होके पुनर्जन्म लेता है। (यो वाचमनुदितां चिकेत) जो जीव अनुदित वाणी अर्थात् जैसी ईश्वर ने वेदों में सत्यभाषण करने की आज्ञा दी है वैसा ही (आचिकेत) यथावत् जानके बोलता है और धर्म ही में (ससाद) यथावत स्थित रहता है, वह मनुष्य योनि में उत्तम शरीर धारण करके अनेक सुखों को भोगता है और जो अधर्माचरण करता है वह अनेक नीच शरीर अर्थात् कीट, पतङ्ग, पशु आदि के शरीर को धारण करके अनेक दुःखों को भोगता है।५। —अथर्व० ५-१-२ ॥

ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका ●

सत्यार्थप्रकाश (दशम समुल्लास)

तथा गाय दूध में अधिक उपकारक होती है और जैसे बैल उपकारक होते हैं वैसे भैंसे भी है परन्तु गाय के दूध घी से जितने बुद्धि वृद्धि से लाभ होते हैं उतने भैंस के दूध से नहीं इससे मुख्योपकारक आर्यों ने गाय को गिना है। और जो कोई अन्य विद्वान् होगा वह भी इसी प्रकार समझेगा। बकरी के दूध से २५६२० (पच्चीस हजार नौ सौ बीस) आदमियों का पालन होता है। वैसे हाथी, घोड़े, ऊंट, भेड़, गदहे आदि से भी बड़े उपकार होते हैं। इसकी विशेष व्याख्या "गोकरुणानिधि" में की है। –टिप्पणी] देखो ! जब आर्यों का राज्य था तब यह महोपकारक गाय आदि पशु नहीं मारे जाते थे तभी आर्यावर्त्त वा अन्य भूगोल देशों में बड़े आनन्द में मनुष्य आदि प्राणी वर्त्तते थे क्यों कि दूध, घी बैल आदि पशुओं को बहुताई होने से अन्न, रस पुष्कल प्राप्त होते थे जब से विदेशी मांसाहारी इस देश में आके गौ आदि पशुओं के मारने वाले राज्याधिकारी हुए हैं तब से क्रमशः आर्यों के दुःख की बढ़ती होती आती है क्योंकि—

नष्टे मूले नैव फलं न पुष्पम् ॥
—वृद्ध चाणक्य अ० १०–१३ ॥

जब वृक्ष का मूल ही काट दिया जाय तो फल फूल कहां से हों ?

(ऋषिदयानन्द) ●

सूखा अवर्षण दूर हो सकता है

(श्री पं० वीरसेन वेदश्रमी, वेदसदन, महारानी पथ, इन्दौर-१)

यज्ञ के लिये श्रद्धा एवं संकल्प

मानवकृत प्रयत्नों में यज्ञ के लिये श्रद्धा—विश्वास भी आवश्यक है। अत: यह अर्थ भी-केन यज्ञं च श्रद्धां च शब्दों से प्रकट होता है। परन्तु प्रश्न रूप में जब यह उपस्थित होता है कि यज्ञ और श्रद्धा को कौन प्राप्त कराता है तो इसका उत्तर मंत्र के अंतिम वाक्य—केनास्मिन्निहितं मन: में ही है। अर्थात् मन ही श्रद्धा और यज्ञ का कारण है। परन्तु यहां पर भी प्रश्न की शृंखला ही है कि किसने यह मन इस मानव शरीर में रखा है। इसका भी उत्तर इसी प्रश्न में ही है कि केन अर्थात् प्रजापति ने इस शरीर में मन स्थापित किया है। क: प्रजापति को कहते हैं। अर्थात् प्रजापति अथवा परमेश्वर या ब्रह्म ने शरीर में मन को स्थापित किया है और उस मन में श्रद्धा को यज्ञ करने के लिये स्थापित किया है। अत: यज्ञ कार्य जो मनुष्य करता है वह ब्रह्म का, प्रजापति का, परमेश्वर का ही कार्य करता है।

परमात्मा ही यज्ञपति है

श्रद्धामय मन से जब यज्ञ के लिये यज मान संकल्प करता है तो वह परोक्ष रूप से परमात्मा का ही संकल्प होने से सबका एवं परमात्मा का भी प्रेमभाजन हो जाता है। इसलिये जो भी यज्ञ होता है वह परमात्मा का होता है। वही उसका परोक्ष रूप से यजमान या यज्ञपति होता है। इसी भाव को-एतं ते देव सवितर्यज्ञम् (यजु: अ० २। मं० १३) अर्थात् हे सविता देव, यह तेरा ही यज्ञ है जिसको हम कर रहे हैं इन शब्दों में प्रकट किया गया है।

सृष्टि यज्ञ एवं मानवकृत यज्ञ, दोनों से धूम निर्माण प्रक्रिया

पर्जन्य मेघों का निर्माण सोम से होता है। अर्थात् मेघ या घन जो घनीभूत पर्जन्य अवस्था है अपेक्षाकृत उसकी सूक्ष्म एव विरल अवस्था या पूर्वावस्था ही सोम की स्थिति है। इस प्रकार क साम के निर्माण की क्रिया सूर्य के प्राकृतिक ऋतु यज्ञों के द्वारा उत्पन्न धूम से स्वाभाविक रूप से तो होती ही रहती है, परन्तु मानवकृत प्रयत्नों यज्ञादि के द्वारा भी होती है। दोनों प्रकार के उपरोक्त यज्ञों से उत्पन्न धूम से उष्णता होती ही है। धूम, सोम एवं पर्जन्य में क्रमश: उत्तरोतर घनत्व, तापन्यूनता और आर्द्रता वृद्धि को प्राप्त होती जाती है।

प्रथम स्थिति में धूम

उष्णता के कारण धूम ऊर्ध्वगतिशील रहता है। उसमें से प्रकाश एवं ताप प्रवाहित होकर क्षीण होता है। वह ताप एवं प्रकाश का अवरोधक तब तक नही बनता जब तक उसमें ताप है। ताप एव प्रकाश के कारण उसमें पारदर्शक स्थिति रहती है। जैसे उष्ण घृत तरल रूप में होकर पारदर्शक होता है और वही जमा हुआ होने पर पारदर्शकता नहीं रहती है, उसी प्रकार धूम भी तरल, विरल, सूक्ष्म स्थिति में पारदर्शक ताप स्थिति के कारण रहता है।

द्वितीय स्थिति में धूम से सोम एवं तृतीय स्थिति में पर्जन्य

जब उसी धूम से उष्णता की न्यूनता होने लगती है तो पूर्वापक्षया वही शीतल होने से कुछ स्थूल तथा दृश्य स्थिति को प्राप्त होने लगता है। परन्तु पर्जन्य या मेघ स्थिति से आपेक्षाकृता सूक्ष्म एवं कुछ उष्ण होने के कारण वही सोम संज्ञक हो जाता है और जब इस सोम स्थिति में और भी घनत्व एवं शीतलता बढ़ जाती है तो वह स्पष्ट रूप में पर्जन्य मेघ या बादल स्थिति में प्रकट हो जाता है। इसमें भी जब और अधिक घनत्व एवं शीतलता की वृद्धि हो जाती है और वायु के आयतन से भी इसका आयतन भार अधिक हो जाता है तो वर्षा प्रारम्भ हो जाती है। अत: मानवकृत यज्ञों से उत्पन्न धूम से अतरिक्ष में सोम तत्त्व की वृद्धि होने से वृष्टि का हेतु माना गया है।

श्रद्धा तत्त्व का कार्य

इस सोम तत्त्व को जो तत्त्व आकाश में स्थिति करके पृथिवी की ओर गति करने के लिये बाधित करता है वह श्रद्धा नामक तत्त्व है। श्रद्धा वे "आप" अर्थात् अत्यन्त सूक्ष्म जलीय तत्त्व ही श्रद्धा है जो कि सोम से भी सूक्ष्म स्थिति में अंतरिक्ष में विद्यमान रहते हैं। जब यज्ञ से उत्पन्न धूम या सूर्य रश्मियों के ताप से उत्पन्न धूम अपने ताप की न्यूनता के कारण गति एवं वेग में शिथिल हो जाते हैं तो ये अंतरिक्षस्थ श्रद्धा के उस स्तर को भेदन नहीं कर पाते और ऊपर गति करने में असमर्थ हो जाते हैं।

हवि से सोम का पृथिवी मण्डल में अवतरण

अंतरिक्ष के जिस स्तर या प्रदेश में इन दोनों का सम्मिश्रण होता है वहां उस धूम या सोम को ठहरने का एवं एकत्र होने का अवसर प्राप्त हो जाता है। अब इसको गति देने वाला तत्त्व वायु ही होता है। इस प्रकार पृथिवी मण्डल का ताप और ऊपर की शीत लहर श्रद्धा के सूक्ष्म जलीय स्तर से वह धूम या सोम प्रभावित होकर अतरिक्ष में स्थित एवं एकत्र होता रहता है। उस सोम में यज्ञ की हवि का संयोग होने से घनत्व एवं भार की वृद्धि होने लगती है। इस से वह और अधिक नोचे की ओर गति करता है। अथर्ववेद (७। ९९। १) में यही बताया है कि "ध्रुवं ध्रुवेण हविषाव सोमं नयामसि" अर्थात् यज्ञ की हवियों से साम को पृथिवी मण्डल के उस स्तर पर अंतरिक्ष से और अधिक नीचे या निकट लाते हैं। जिसमें मेघों के बनने की प्रक्रिया होकर वर्षा द्वारा सबको जीवन, हर्ष एवं आनन्द प्राप्त हो सके।

श्रद्धा एवं संकल्प की वर्षा में कृतकार्यता

इस श्रद्धा तत्त्व को जो अत्यन्त सूक्ष्म जल है उनको सोम एवं पर्जन्य रूप में परिणत करने का कार्य मन की संकल्प शक्ति से प्रेरित होकर यज्ञ क्रिया द्वारा भी होता है। यह हमारा ऐच्छिक कार्य है। जब चाहें तब वर्षा का संकल्प करके यज्ञ करें वर्षा होगी। बिना संकल्प के तथा बिना यज्ञ के भी प्राकृतिक स्थितियों से अनुकूल स्थिति में वर्षा और प्रतिकूल स्थिति में अवर्षण होता है। इस स्थिति पर विजय यज्ञ के प्रति श्रद्धा एवं संकल्प के आधार पर प्राप्त की जा सकती है। संकल्प और क्रिया का सम्मिश्रण भी श्रद्धा है जो मन का विषय है यज्ञ के द्वारा ही सम्पन्न होता है। अर्थात् पर्जन्य निर्माण को एक प्रक्रिया प्राकृतिक रूप से श्रद्धा रूपी सूक्ष्म जलों के सोम में मिश्रित तथा परिणत होने से होती है और वह वर्षा का हेतु बनती है। इसी प्रकार दूसरी प्रक्रिया मानव कृत प्रयत्नों से संभव है। जब हम अपने मन एवं श्रद्धा से यज्ञ करते हैं तो उससे सोम तत्त्व की प्राकृतिक स्थिति में विशेष वृद्धि हो जाने से पर्जन्य निर्माण द्वारा शीघ्र एवं इच्छित समय में वर्षा हो जाती है।

यज्ञ का प्रधान तत्त्व 'अग्नि'

हवन यज्ञ बिना अग्नि के होता नहीं है, अत: वृद्धि यज्ञ में सर्वप्रथम आवश्यक तत्त्व अग्नि है। वही सारी अवर्षण, सूखा, जल, अन्न और विद्युत् की बाधाओं को दूर करने में समर्थ है। वही हमारे लिये अंतरिक्ष में महान् समुद्र को उत्पन्न करके वृष्टि करता है। इसलिये वृष्टि की कामना होने पर अग्नि का उपयोग लेना पड़ता है जो कि यज्ञ का प्रधान तत्त्व है तथा यज्ञ का आत्मा ही है।

यज्ञ अंतरिक्षस्थ बाधाओं को दूर कर वर्षा कराता है

अग्नि के इस वैज्ञानिक रहस्यमय गुण एवं प्रत्यक्ष स्पष्ट सत्य के कारण ही वेद ने कहा—

अग्ने बाधस्व विमृधो विदुर्गहापामीवामप रक्षांसि सेध।

अस्मात्समुद्राद्बृहतो दिवोनोपां भूमानमुप न: सृजेह॥

(ऋ० १०। ९८। १२)

अर्थात् हे अग्ने। तू प्रतिकूल परिस्थितियों, रोगों एवं विनाशक स्थिति या विनाशक तत्त्वों को दूर कर हमारी रक्षा कर। इस पार्थिव समुद्र से भी बड़े अंतरिक्षस्थ समुद्र से हमारे लिये जलों को प्रदान कर इस प्रकार यह मंत्र अग्नि के अन्तरिक्ष से वर्षा कराने की महान् सामर्थ्य और अवर्षण या सूखे की कठोर स्थिति के निवारण करने की सामर्थ्य को प्रकट कर रहा है। अत: वैदिक विज्ञान के अनुसार वर्षा के लिये यज्ञ में अग्नि प्रथम एवं प्रधान मुख्य तत्त्व है।

(क्रमश)

सम्पदकीय—

पूज्य श्री स्वामी सर्वानन्द सरस्वती जी रिसीवर आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का वक्तव्य

पंजाब विश्वविद्यालय तथा उपकुलपति श्री लाला सूरजभान जी को चाहिए कि श्री श्रीराम शर्मा से महर्षि दयानन्द का जीवन चरित्र का कार्य वापस ले लें।

कई मास से ऋषि दयानन्द जी महाराज को विष दिए जाने की पुष्टि में बहुत से लेख लिखे गये हैं। कई ऐसे नए प्रमाण भी सामने आए हैं, जो पहले नहीं पढ़े सुने थे। किन्तु प्रि० श्रीराम शर्मा जी अपनी हठ पर दृढ़ हैं। और वे अपनी सारी विद्या बुद्धि इसी बात के लिए लगा रहे हैं कि ऋषि दयानन्द जी को विष नहीं दिया गया। सारा आर्यजगत् और अनेक विद्वान् लेखक शर्मा जी की इस बात से अप्रसन्न हैं, तथा विरोध कर रहे हैं। ऐसी स्थिति में इस जीवन चरित्र को लिखने का क्या लाभ है? पंजाब विश्वविद्यालय के उपकुलपति जी ने जो पत्र ज्ञानी पिण्डीदास जी को लिखा है उससे यह प्रतीत होता है कि श्री शर्मा जी एक अनाधिकार चेष्टा कर रहे हैं। ऐसी स्थिति में पंजाब विश्वविद्यालय तथा उपकुलपति जी पर ही उत्तरदायित्व आता है। इन दोनों के प्रति जनता में बहुत बड़ा रोष तथा नाराजगी है। इस समय ठीक यही प्रतीत होता है कि यह जीवन चरित्र का कार्य श्रीराम शर्मा जी से वापस ले लिया जाए।

हस्ताक्षर
सर्वानन्द रिसीवर
आर्यप्रतिनिधि सभा पंजाब

पूज्य श्री स्वामी सर्वानन्द जी महाराज के वक्तव्य पर पंजाब के आर्यप्रतिनिधि सभा तथा आर्य प्रादेशिक सभा के जो सदस्य सीनेट में हों उन्हें मिलकर इस समस्या पर पूरा ध्यान देना चाहिए। पूज्य श्री महात्मा स्वामी आनन्द सरस्वती श्री महाराज भी ठीक इसी प्रकार का निर्देश उपकुलपति श्री सूरजभान जी पंजाब विश्वविद्यालय को पहिले ही दे चुके हैं। अपने वक्तव्य में पूज्य श्री स्वामी सर्वानन्द जी महाराज ने एक बात विशेष कही है कि पंजाब विश्व-विद्यालय भी इस समस्या पर उपकुलपति जी पर अपने विचार स्पष्ट रूप से प्रकट करे। विश्वविद्यालय की सीनेट के सदस्य पहिले ही श्री श्रीराम शर्मा के इस जघन्य कार्य की सर्वसम्मति से निन्दा कर चुके हैं। ऐसी अवस्था में श्री उपकुलपति जी से कहें कि श्री शर्मा से ऋषि जीवन के लेखन कार्य को तुरन्त वापस लेवें। क्योंकि इस जीवन की प्रामाणिकता कुछ नही रह गई है। हम आशा करते हैं कि सीनेट अपने कर्त्तव्य का पालन करके इस समस्या को सुलझावेगी।

२—ऋषि दयानन्द को विष दिया गया।

आर्यमर्यादा, के इसी अंक में श्री निहाल सिंह आर्य त्रिनगर देहली ने सर्वखाप पंचायत के महामन्त्री चौ० कबूलसिंह जी गांव शोरम)जि० मुजफ्फरनगर) से भेंट करके एक लेख प्रकाशित कराया है। इस लेख को पाठक महानुभाव ध्यान से पढ़ें। इससे स्पष्ट प्रमाण मिलता है कि ऋषि दयानन्द को विषय दिया गया था। साथ ही इसी सम्बन्ध में आर्यसमाज के विद्यावयोवृद्ध सफल प्रचारक पूज्य स्वामी भीष्म जी से की गई भेंट का विवरण भी लेखक ने दे दिया है। जिस समय महर्षि दयानन्द जी सरस्वती मुजफ्फरनगर में पधारे थे। उस समय चारों ओर के गांवों से सैकड़ों लोगों ने उनके दर्शन किए और उपदेश सुने। उन्हीं में चौ० नानकचन्द गांव शोरम का इसी लेख में वर्णन मिलता है। चौ० नानकचन्द स्वयं बड़े पहलवान भी थे और महर्षि दयानन्द जी की सेवा में १ वर्ष तक साथ रहे थे। इसका वृत्तान्त भी चौ० कबूलसिंह जी मन्त्री सर्वखाप पंचायत ने हमारे पास भेज दिया है। समयानुसार आर्यमर्यादा में उसका प्रकाशन किया जावेगा।

३—राष्ट्र में सर्वत्र अराजकता बढ़ रही है।

अत्यन्त आश्चर्य और दुःख की बात है कि भारत की जनता के सभी वर्गों, देशों, और सम्प्रदायों में निरन्तर अराजकता बढ़ रही है। सरकारी विभागों और कर्मचारियों में कर्त्तव्य पालन की भावना नष्ट होती जा रही है। अपने स्वार्थ को ही मुख्य मानकर चाहे जब जो विभाग उठता है और हड़ताल कर देता है। यह नहीं देखा जाता कि राष्ट्र की इस हड़ताल से कितनी हानि हो रही है। रेलवे की हड़ताल से अन्न राष्ट्र के भिन्न-भिन्न राज्यों में कैसे भेजा जा सकता है? पहिले श्रमिक वर्ग ही हड़ताल करने पर तैयार रहता था, परन्तु अब क्या? सभी लोग और सरकारी ड्यूटी पर तैनात काम छोड़ कर बैठ जाता है। मानो राष्ट्र के प्रति किसी विभाग का कुछ कर्त्तव्य ही नहीं है।

राष्ट्र के जीवन रक्षा के लिए दो प्रमुख विभाग हैं। आन्तरिक्ष रक्षा के लिये पुलिस और बाह्य रक्षा के लिए सेना। इन दोनों के पास हथियार भी सदा रहते हैं। उत्तर प्रदेश में राज्य पुलिस में जो घटना घटी है, इस दुर्घटना से राज्य सरकारों की ही नहीं, अपितु भारत सरकार को आंख खोल लेनी चाहिएँ। पुलिस के जवान डाकुओं की भांति हथियार लेकर अपने कर्त्तव्य को छोड़ कर चाहे जहां चले जाते हैं। इस से राष्ट्र की भीतरी रक्षा पर बहुत आघात पहुंचना अनिवार्य है। यदि ऐसे भयङ्कर राष्ट्र के घातक दोषों को बलपूर्वक अभी से नहीं रोका गया, तो राष्ट्र की स्वतन्त्रता पर भारी चोट लग सकती है। ऐसे कर्त्तव्यहीन कर्मचारी शत्रु देशों से गुप्त षड्यन्त्र करके राष्ट्र को पराधीनता की बेड़ियों में जकड़ा सकते हैं। खेद है कि ऐसे रक्षा के उत्तरदायो विभागों में देश के भिन्न-भिन्न राजनीतिक दल भी कुत्सित कार्य कर सकते हैं। अब रह गया सेना विभाग जिसके ऊपर राष्ट्र की बाह्य रक्षा का सर्वस्व उत्तरदायित्व है। यदि राष्ट्र के दुर्भाग्य से सेना के जवानों में भी ऐसे कुकर्मों की दुर्भावना जागरित हो जावे तो राष्ट्र का क्या होगा? कुछ भी नहीं कहा जा सकता। भगवान् ही रक्षक हो सकता है। परन्तु भगवान् भी उन्हीं की रक्षा करता है जो अपने कर्त्तव्य का दृढ़ता और राष्ट्र निष्ठा से पालन करता है।

सौभाग्य से हमारी सेना सुदृढ़ और राष्ट्र निष्ठ भक्ति का पूरा पालन करता है। जब अन्य विभागों पर विश्वास नहीं किया जा सकता, तो अपनी सेना को पूरे अधिकार देकर वैसे राष्ट्रघातक विभागों का पूरी तरह दमन करना अत्यन्त अनिवार्य है। सब प्रकार को हड़तालें आदि कानून से रोक देनी चाहिएँ। यदि कानून को वैसे दुष्ट लोग हाथ में लेने पर उतारू होते हैं, तो उनके प्रति एक ही उपाय है कि उनका कठोरता से दमन किया जाय। भय और दण्ड के बिना राष्ट्र की रक्षा नहीं हो सकती। राजनीति और कानून शान्ति में काम दे सकते हैं। अराजकता नहीं। अराजकता में कानून को हटा कर दण्ड का प्रयोग करना आवश्यक है।

उत्तर प्रदेशीय आर्यसमाज शताब्दी समारोह

मेरठ नगर में पूर्ण सफलता से सम्पन्न

मेरठ नगर के बाजारों में जुलूस बड़ी शान से निकाला गया। जुलूस में ट्रक, बस, कार, ट्रेक्टर तथा कई प्रकार की गाड़ियां चल रही थीं, आरम्भ से चल कर लौटते समय के दोनों किनारे निकट ही थे। दोनों किनारों का अन्तर तीन मील से कम न होगा। आर्य समाजों और संस्थाओं के नाम पट्ट लगे हुए थे। वैदिक धर्म और महर्षि दयानन्द की जय, आर्यसमाज अमर रहे के नारे गूंज रहे थे। बाजारों में पधारे यात्रियो का अनेक प्रकार के पेय पदार्थों से स्वागत किया। स्वागत करने वाले अपने सामने पेय पिलाये बिना आगे बढ़ने नहीं देते थे। ७ बजे प्रातः से १ बजे तक जलूस चला। सब यात्रियों के लिए भोजन में ऋषि लगर में उत्तम शुद्ध घी का प्रबन्ध था, यज्ञ शाला में वेद मन्त्रों की ध्वनि होती रही। पण्डाल बड़ा भव्य बनाया गया। कम से कम ५०-७० हजार श्रोता भाषण आदि हर समय सुनते रहते थे। अनेक प्रकार के सम्मेलत हुए। पूज्य सन्यासियों, उपदेशकों, भजनीकों और नेताओं के सफल भाषण हुए। पुस्तक प्रकाशकों की दूकानों पर बड़ी भीड़ रहती थी। वेद भाष्कर (महर्षि दयानन्द द्वारा रचित) की खरीद की बड़ी मांग थी। हमने भी जुलूस को सड़क के एक ओर से कार में बैठ कर देखा। आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश के सभी अधिकारी और सदस्य बधाई के पात्र हैं। अनेक उपयोगी प्रस्ताव स्वीकार किये गये। महा सम्मेलन में अध्यक्ष पूज्य स्वामी सत्यप्रकाश जी महाराज थे। बड़ी विशेषता यह रही कि सभी भेद भावों को त्याग कर आर्य नेता सम्मिलित हुए। विशेष विवरण अगले अंक में प्रकाशित किया जायेगा।

—जगदेवसिंह सिद्धान्ती शास्त्री

'भोग भय-चितानि से, आज ! मानव !! जल रहा है !'

[रचयिता :—अम्बावान आर्य कवि कुटीर, कुरड़ायां (राज०)]

सच्चरित्र विचार संयम त्याग का नहिं बोलबाला !
शोक तृष्णा अहंता का, छिलकता है पतन प्याला !!
परम उज्ज्वल वेद विधि का, सत्य-सूर्य ढल रहा है।
भोग-भय चितानि से, आज ! मानव !! जल रहा है ॥१॥
नीच निर्दई निरकुंश बन, भ्रष्ट पशुता-पाठ पढ़ते।
त्याग समता सदयता को, नित नये षड्यन्त्र घड़ते ॥
स्वावलम्बन शान्ति सुख का, उच्च हिमगिरि गल रहा है।
भोग भय चितानि से, आज ! मानव !! जल रहा है ॥२॥
द्वेष दम्भ-दुर्भावना की, बढ़ रही अति दुष्ट डायन।
बने ! दुर्गुण भव्य भूषन, फैशनेबिल नृत्य गायन ॥
पा वसन्त बहार भौतिकवाद, पादप फल रहा है।
भोग भय चितानि से, आज ! मानव !! जल रहा है ॥३॥
फूट परस्ती की भयावही, गर्जती काली घटाएँ।
क्लेश कलख करत केकी, छद्मता छाई छटाएँ ॥
दौर मादक द्रव्य का नित, घोर गति से चल रहा है।
भोग भय चितानि से, आज ! मानव !! जल रहा है ॥४॥
दुश्चरित्र उद्दण्डता, हठ, हर हृदय में वास करती।
लूट, हिंसा, दुष्टता, से, है समग्र विक्षुब्ध धरती ॥
वेषभूषा का भयंकर, भूत सबको छल रहा है।
भोग भय चितानि से, आज ! मानव !! जल रहा है ॥५॥
परस्पर सद्भाव प्रीति, भद्र भीत्ति गिर रही है।
जहर जीवन हो रहा है, नम्र लघुता न कहीं है ॥
क्या क्या कहें विपरीत गति का, चक्र अद्भुत चल रहा है।
भोग भय चितानि से, आज ! मानव !! जल रहा है ॥६॥
विषमता के जन्मदाता, विघ्न बाधा वरण करते।
स्वयं बहते बीच धारा, देख लघु अनुकरण करते ॥
किन्तु कहते 'त्रस्तजीवन', दनुजता बढ़ दल रहा है।
भोग भय चितानि से, आज ! मानव !! जल रहा है ॥७॥
प्रबल परिपक्व ठोस पत्थर, नींव में निर्द्वंद डाले।
सत्त्व, शुद्ध, संतोष, श्रद्धा, शील धृति सत्व सँभाले ॥
'अम्ब'—मानव का उद्देश्य, शान्ति-सुख संबल रहा है।
भोग भय चितानि से, आज ! मानव !! जल रहा है ॥८॥ ●

"वेद का प्रचार हो"

[ब्र० बलवीरसिंह, वैदिक साधन आश्रम, दयानन्दोपदेशक, महाविद्यालय (ज्वालापुर) यमुनानगर]

हे दयामय तुम दया करके दया हम पर करो।
और हमारे हृदय को तुम प्रेम से अपने भरो ॥
हम उन्नति की चर्म सीमा पर सदा आरूढ़ हों।
विचलित न सुपथ से कभी हों चाहे समक्ष तूफान हों ॥
दें वेद की फैला ध्वजा हम इस समस्त संसार में।
विश्व को प्रकाशित करें हम सुज्ञान के प्रकाश से ॥
दिव्य ज्योति दें जला हम ज्ञान की अन्धकार में।
दें भगा अज्ञान को हम वेद के सद्ज्ञान से ॥
लेकर ध्वजा हम वेद की कर में सदा आगे बढ़ें।
वेद के सुज्ञान का प्रचार विश्व में करें ॥
वेद का प्रचार सारे विश्व के घर घर में हो।
वेद पाठी हो यहाँ नर वेद उनके कर में हो ॥
राग ईर्ष्या द्वेष की इस दूर आँधी को करें।
प्रेम की गंगा बहाकर प्रेम रस में बाँध दें ॥
हैं विमुख जो धर्म से, सुज्ञान से, सुकर्म से।
ज्ञान वेदों का वह पाकर जीवन सफल अपना करें ॥
है प्रभो ! कामना "बलवीर" की ये पूर्ण हो।
सर्वत्र जो छाया हुआ है अविद्या तिमिर यह दूर हो ॥●

१—श्रेय और प्रेय

(ले०—श्री सत्यभूषण "वेदालंकार" एम० ए०)

इस विशाल अपार भव-पारावार को पार करने के लिये संसारी जनों के सम्मुख दो ही मार्ग हैं, श्रेय और प्रेय, कल्याण तथा भोग, निःश्रेयस और विषयासक्ति, आनन्द एवं बाह्य लौकिक सुख। श्रेय मार्ग पर विरले हो जन अग्रसर होते हैं, जबकि प्रेय मार्ग, (प्रीणातीति प्रयः,) जिससे ऊपरी प्रसन्नता प्राप्त हो) पर चलने वाले असंख्य मानवों में से कोई ही दृष्टिगोचर होता है। अतः उपनिषत्कार को कहना पड़ा।" क्षुरस्य धारा निहिता दुरत्यया, दुर्गं पदस्तत्कवयो वदन्ति। धर्म का रास्ता मुश्किल छुरी की तेज धारा है।

यमाचार्य ने नचिकेता से कहा, कि श्रेय और है, प्रेय और। दोनों पृथक् पृथक् मार्ग हैं। इनमें से जो श्रेय को ग्रहण करता है, कल्याण मार्ग का पथिक बन जाता है, उसका कल्याण हो जाता है, जो प्रेय को अपनाता है, वह अपने लक्ष्य से हट जाता है। "अन्यच्छ्रेयोऽन्यदुतैव प्रेयस्ते उभे नानार्थे पुरुषं सिनीतः। तयोः श्रेय आददानस्य साधु भवति। हीयतेऽर्थाद्य उ प्रेयो वृणीते।" यम नियम, अहिंसा, सत्य, शौच, सन्तोष आदि को साधना करना श्रेय मार्ग, मद्यमांस आदि सेवन, अनाचार, नास्तिकता अमर्यादित विषयभोग प्रेममार्ग है। राम श्रेय मार्ग पर चले, रावण प्रेय मार्ग पर चला। अब आप ही सोचिये, कि आप किस मार्ग को अपना रहे हैं। पाश्चात्य सभ्यता प्रेय मार्ग का प्रदर्शन करती है, जबकि वैदिक सभ्यता श्रेय मार्ग था। (क्रमशः) ●

२—महर्षि दयानन्द

उच्च ऋतम्भर प्रज्ञ महायोगी थे ऋषिवर कहलाये।
इस युग में उनके ही श्रम से वेद प्रकाशित हो पाये ॥
दिव्य ज्ञान था उनको बारह सहस्र मंत्र साक्षात् किये।
पूर्ण समाधि में स्थित होकर तप का अति अभ्यास किये ॥
विशद भाष्य उनका सम्पूरन यजुर्वेद पर मिलता है।
सप्तम मण्डल सूक्त तेहत्तर तक ऋग् का भी मिलता है ॥
कैसे वे अपूर्व योगी थे, दीर्घ समाधि लगाते थे।
अब्भक्षी औ वायु भक्षी थे, सिद्धि नहीं दिखलाते थे ॥
आडम्बर, पाखण्ड रहित थे, सच्चे साधु महात्मा थे।
ऋषि थे तथा महर्षि थे अति सिद्ध शुद्धमय आत्मा थे ॥
थे विदेश में भक्त अनेकों, किन्तु न सिद्धि दिखलाई।
पूछा सेठ साहब ने तो कुछ भी न बात थी बतलाई ॥
नहीं चाहता इन्द्रजाल की बातें यूं मैं दिखलाना।
यही लिखा कर्नल अल्काट को, कौतुक में मत बहकाना ॥
"धर्म दिवाकर" कलकत्ता मासिक वह पत्र उठा देखो।
लिखा हुआ उसमें है यह उस योगी का महत्व देखो ॥
अठारह घण्टों की वे अति दीर्घ समाधि लगाते थे।
थे अवतार जड़ भारत के, खुद को न योगी बतलाये थे ॥
(योगी का आत्मचरित के आधार पर)

[नोट—ऋग्वेद मण्डल ७ के ६१ वें सूक्त के इसी मन्त्र तक का भाष्य मिलता है। —सम्पादक]

शिक्षा बोर्ड हरयाणा हायर सै० भाग द्वितीय मार्च १९७३

आर्य उच्चतर मा० वि० पानीपत

विषय	छात्र संख्या	उत्तीर्ण छात्र संख्या	पास प्रतिशत	बोर्ड का प्रतिशत
विज्ञान वि०	४०	३०	७५%	४७-४२%
कला वि०	६४	३९	६०-९%	४४-०६%

वरिष्ठता :—(मैरिट) ९
सुखचन्द मिनोचा हरयाणा में द्वितीय स्थान अंक ८९६
रवीन्द्र कुमार :—हरयाणा में चतुर्थ स्थान

एस० डो० उ० मा० वि० पानीपत

विषय	छात्र संख्या	उत्तीर्ण छात्र संख्या	पास प्रतिशत	बोर्ड का प्रतिशत
विज्ञान	५७	२८	४९-१%	४७-४२%
कला	९७	३९	४०-२%	४४-०६%

वरिष्ठता :— (मैरिट) ७
हरयाणा में प्रथम विजय कुमार अरोड़ा अंक ८९७

संख्या उ० मा० वि० पानीपत

विषय	छात्र संख्या	उत्तीर्ण छात्र संख्या	पास प्रतिशत	बोर्ड का प्रतिशत
विज्ञान	४३	३०	६९-७%	४७-४२%
कला	३९	३२	८२%	३४-०६%

वरिष्ठता (मैरिट) ८
त्रिलोकी नाथ हरयाणा में तृतीय स्थान

उप०—लाभसिंह कादियान

क्रमागत—

माण्डूक्य पर आचार्य गौडपाद कारिकाओं की समीक्षा (२०)

[ले०—श्री स्वामी ब्रह्मानन्द जी आर्य त्रैतवेदान्ताचार्य, मु० ओं० आश्रम, चान्दोद (बड़ौदा)]

किन्तु चित्त से कल्पना किये हुये इन आन्तरिक और बाह्य दोनों ही प्रकार के पदार्थों का मिथ्यात्व देखा गया है। तो इस पर हमारा यह कहना है कि यदि आपके ही मन्तव्यानुसार चित्त से बाहर घट पटादि यदि सत्य हैं तो फिर किस हेतु से आप उन्हें आगे चल कर भाष्य में कह रहे हैं कि उन दोनों ही प्रकार के याने जाग्रत् स्वप्न के पदार्थों का मिथ्यात्व देखा गया है। ऐसा कैसे कह दिये भला ये भी कोई ईमानदारी है कि जिसे पहले सत्य बताना उसे ही दूसरे क्षण मिथ्या बताना ये कौन सी बुद्धि की बात है ? यही नहीं वेदान्त दर्शन के ॥ नाभाव उपलब्धेः। वे० द० २।२।२८ ॥ पर आ० शंकर जी देखो कैसे जाग्रत् के पदार्थों की सिद्धि करते है लो पढ़ो (न खल्वभावो बाह्यार्थस्याध्यवसतुं शक्यते । कस्मात् । उपलब्धेः। उपलभ्यते हि प्रतिप्रत्ययं बाह्योर्थः स्तम्भः कुड्यं घटः पट इति ॥ शां० भा०) अर्थात् विज्ञान से अतिरिक्त पदार्थों का अभाव नहीं हो सकता क्योंकि विज्ञान से अतिरिक्त पदार्थ यह घट यह पट है इत्यादि अनुभव से सिद्ध है ॥ लीजिये अब तो भोले शंकर के हो भाष्य का शंकर के पूर्वोक्त कारिका भाष्य का खण्डन हो गया। लो अद्वैतवादियो कहो अब शंकर जी के कौन से भाष्य पर हड़ताल करोगे कारिका वाले कि वे० दर्शन भाष्य पर ? अरे ऐसे तो दर्जनों स्थलों के शंकर जी के भाष्य को गीता, वि० स० नाम, उपनिषद्, वेदान्त आदि से निकालकर बता सकते हैं कि आ० शंकर अपने भाष्यों में जगत् के पदार्थों की वे सर्वथा सिद्धि करते हैं ॥९॥

जाग्रत् वृत्तावपि त्वन्तश्चेतसा कल्पितं त्वसत् ।
बहिश्चेतो गृहीतं सद्युतं वैतथ्यमनयोः ॥१०॥

वैतथ्य प्र० की १० वी कारिका

अर्थ—इसी प्रकार जाग्रदवस्था में भी चित्त के भीतर कल्पना किया हुआ पदार्थ असत् तथा चित्त से बाहर ग्रहण किया हुआ पदार्थ सत् समझा जाता है। परन्तु इन दोनों का ही मिथ्यात्व मानना उचित है ॥१०॥

समीक्षा—यदि चित्त के भीतर असत् और चित्त के बाहर का पदार्थ सत् समझा जाता है तो वही अपने आपके चित्त की कल्पना से हो उक्त प्रकार से समझा जाता होगा। तो आपने फिर किस प्रमाण से दोनों को ही मिथ्या मान लिया ? क्या अपने ही बावा वाक्यं प्रमाण से या कोई फिर शास्त्रीय प्रमाण से किन्तु इस विषय में कोई शास्त्र का प्रमाण तो न आपने न छोटे गुरु जी ने दिये। तो इससे मालूम होता है, ये कि तुम्हारी इस विषय में कोरी कपोल कल्पना ही है। और यदि यही बात है तो फिर तुझे भी यह हम कहें सो मान लेना चाहिये कि जो द्वैत मिथ्या तो फिर अद्वैत भी मिथ्या मानो। कहो क्यों ? इसीलिये कि द्वैत का निषेध कर अद्वैत की स्थापना करना ये भी किसी के चित्त ही की तो मात्र कल्पना है तो फिर अद्वैत भी मिथ्या हो जाता है ऐसे तो। फिर क्या करोगे ? इसलिये कल्पना करना भी वही सार्थक होगी जो भावरूप हो और वेदादि शास्त्र सम्मत हो। अन्यथा तो चित्त में अपने आपको भी मारकर दूसरे क्षण जी उठने की कल्पना हो जाती है। परन्तु कल्पनामात्र से कुछ नहीं होता न मरता, जीता किन्तु जो होता है वेदानुकूल ज्ञान से होता है। जैसा कि मनु जी भी कहते हैं कि (वेदो विहितो धर्मः) अर्थात् वेद ने जो बताया वही सिद्धान्त या धर्म है ॥१०॥

उभयोरपि वैतथ्यं भेदानां स्थानयोर्यदि ।
क एतान्बुध्यते भेदान्को वै तेषां विकल्पकः ॥११॥

वैतथ्य प्र० की ११ वीं कारिका

अर्थ—यदि जागरित और स्वप्न दोनों ही स्थानों के पदार्थों का मिथ्यात्व है तो इन पदार्थों को जानता कौन है और कौन इनकी कल्पना करने वाला है ? ॥११॥

समीक्षा—ये और देखो, गौड जी बावा की अकल का नमूना अपने ही कारिका बनाकर अपने से आप ही प्रश्न करते हैं। जब ब्रह्म ने ही अपने अलात् शान्ति प्र० में बौद्धमत खण्डन में जाग्रत् के पदार्थों को विज्ञान से पृथक् मान लिया हो तब तुम्हें क्या अधिकार है ऐसा प्रश्न करने का कि दोनों जगहों के पदार्थों का मिथ्यात्व है ॥११॥

कल्पयत्यात्मनात्मान मात्मा देवः स्वमायया ।
स एव बुध्यते भेदानिति वेदान्तनिश्चय ॥१२॥

वैतथ्य प्र० की १२ वीं कारिका

अर्थ - स्वयंप्रकाश आत्मा अपनी ही माया से स्वयं ही कल्पना करता है और वही सब भेदों को जानता है यही वेदान्त का निश्चय है ॥१२॥

समीक्षा - वेदान्त का निश्चय न कहो, अद्वैत या अद्वैतवादियों का ऐसा उपरोक्त प्रकार का निश्चय है, ऐसा कहो। यहां भाष्य में आ० शंकर भी कहते हैं कि रज्जु में सर्पादि के समान स्वय प्रकाश आत्मा याने परमात्मा पर ब्रह्म अपने में आप ही भ्रान्त बन जाता है और भेद रूप से कल्पना करता है। हम इनसे पूछते हैं कि, क्या अज्ञानी के समान ब्रह्म भी भ्रान्त है कि रस्सी को रस्सी न देख, उसे सर्प देखता है। यदि ऐसी ही बात है तो अद्वैतवादी का माना हुआ वो आत्मा फिर परब्रह्म परमात्मा ही नहीं किन्तु भ्रान्तात्मा हो मात्र है, जो जीवात्मा से कुछ भी विशेष योग्यता नहीं रखता। क्योंकि उसकी ही माया से वो स्वयं भ्रान्त हो अनेक बने तो फिर ऐसा कार्य कारण भाव वाला आत्मा नित्य ही कैसे होगा और माना जा सकता है ? हर्गिज नहीं। परन्तु वेद वेदान्त में तो सर्व भेद या त्रैत का ही सर्वत्र वर्णन है।

१. देखो (भेदः व्यपदेशाच्चान्यः) ॥१।१।२१॥

२. गुहां प्रविष्टवा आत्मनौ हितद्दर्शनात् ॥१।२।११॥

३. त्रयाणामेव चैवमुपन्यासः प्रश्नश्च ॥ वे० द० १।४।६॥

४. त्र्ययः केशिन ऋतुथा वि चक्षते संवत्सरे वपत एक एषाम्। विश्वमेको अभिचष्टे शचीभिर्ध्राजिरे कस्य ददृशे न रूपम् ॥ ऋ० १।१६४।४४॥

५ बालादेकमणीयस्कं उतेकं नैव दृश्यते । ततः परिष्वजीयसी देवता सा मम प्रिया ॥ अथर्व० १०।८।२५।

६. समाने वृक्षे पुरुषो निमग्नोऽनीशया शोचति मुह्यमानः ॥ मु० उ० ३।१।२॥

७. संयुक्तमेतत् क्षरमक्षरं च व्यक्ता व्यक्तं भरते विश्वमीशः। अनीशश्चात्मावध्यते भोक्तृभावाद् ॥ श्वे । उ० । १।८॥

८. द्वाविमौपुरुषौलोके क्षर चाक्षर एव च। क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते ॥ उत्तमः पुरुषस्त्वन्य परमात्मेत्युदाहृतः ॥ गी० अ० १५।१६।१७॥

९. प्रधान पुरुषेश्वरः ॥ अनु० पर्व० म० भा० ॥ अथप्रधान पुरुषव्यतिरिक्तः कोऽयमीश्वरो नामेति ॥ व्यास भाष्य० यो० द० ॥

१०. द्वी खगोह्यादि वृक्षः ॥ भाग० पु० १० स्कं०

नीचे क्रमांक अर्थ को पढ़ें और देखें त्रैतवाद का कैसा वेदान्त के प्रस्थान त्रय ग्रन्थों से एवं वेद पुराणों से कुल दश प्रमाण ही दिये हैं ग्रन्थ कार्य बढ़ने के कारण ॥

१. जीवात्मा से ब्रह्म का भेद प्रतिपादन श्रुति में किया होने से वह ब्रह्म आनन्द रूप है।

२. शरीर एवं संसार रूपी गुहा में जीवात्मा और परमात्मा ये दोनों का प्रवेश देखे जाने से त्रैत स्वतः सिद्ध है।

३. जीव ईश्वर प्रकृति इन तीनों के ही विषय में कथनोपकथन एवं प्रश्नोत्तर शास्त्रों में पाये जाने से तीनों की ही सत्यता अवश्य है।

४. ये तीनों ही स्वयं प्रकाशो जीवात्मा प्रकृति एवं परमात्मा अपने अपने गुणधर्म नियम में स्वकीय कार्य कर रहे अनुभव में आते हैं। इनमें से एक सृष्टिकाल में जगत् रूप बीज को डालता है, एक अपनी सम्पूर्ण शक्ति बुद्धि विचार एवं कर्म से संसार को द्विविध रूप से शक्ताशक्त भाव से चखता है या सेवन करता है, और एक तीसरे की तो गति मालूम पड़ती है किन्तु वह अचिन्त्य अव्यक्त ही स्वभाव से रहता है।

(क्रमशः)

गतांक से आगे—

सन् ५७ में प्रजा विद्रोह के कारण ?

(ले० श्री स्वा० सच्चिदानन्द योगी, अध्यक्ष श्री नारायण स्वामी आश्रम, महामहिम पातञ्जलयोग साधना संघ आ० या० आ० ज्वालापुर सहारनपुर)

महात्मा जी अभी अजमेर से लौटे तो मैं देहली में ही था। मैंने महात्मा जी से पूछा :—'महाराज जी ! अजमेर में कैसे बीती। भवानीलाल ने तो आड़े हाथों लिया होगा ?' महात्मा जी बोले अपने स्वाभाविक लहजे में—"नहीं मेरे प्यारे स्वामी जी। भवानीलाल जी आये थे। पर उन्होंने कुछ भी नहीं पूछा। मैंने ही उनसे कहा— भवानीलाल जी ! यह क्या खप मचा रखी है। बहुत हो गया। अब बन्द करो लेखों को। मैं स्वामी सच्चिदानन्द जी से भी कह दूगा। वह बन्द करेंगे। स्वामी जी ! अब लिखना बन्द करो। व्यर्थ समय क्यों नष्ट करते हो। साधना में लगो साधना में। मैंने भवानीलाल को भी कह दिया है।"

मैंने कहा ! महाराज जो लिखा जा चुका है उसे भेज देता हूं। आगे नहीं लिखूगा। जनता स्वयं निर्णय कर ले।

योगियों की सम्मतियां

विश्व विख्यात विश्व यात्री विश्व वेदोपदेशक श्री महात्मा आनन्द स्वामी सरस्वती के हृदयोद्गार।

महर्षि स्वामी दयानन्द जी सरस्वती के जितने जीवन चरित्र प्रकाशित हो चुके हैं सब अच्छे हैं परन्तु महर्षि की कठोर योग साधना के सम्बन्ध में अभी तक कुछ ज्ञात नहीं हुआ था। आर्यजगत् सच्चिदानन्द योगी का आभारी है कि उन्होंने बड़े परिश्रम से स्वामी दयानन्द की लगभग ३९ वर्षों की अज्ञात जीवनी प्रकाशित कर दी है जिसका नाम 'योगी का आत्मचरित्र' है। योग सम्बन्धी कितनी ही उलझनों को इसमें सुलझा दिया गया है और साथ ही योग के साथ सम्बन्ध रखने वाले जितने स्थल भिन्न भिन्न ग्रन्थों में आये है उनका विवरण भी दे दिया है और भारत के पहले स्वतन्त्रता युद्ध में महर्षि ने जो क्रियात्मक भाग लिया है उसका भी इसमें स्पष्ट वर्णन आ गया है। इस पुस्तक के पाठ से आप पर प्रगट हो जाएगा कि यह जीवनी स्वामी दयानन्द जी महाराज ने स्वयं लिखवाई। जो अभी तक गुप्त पड़ी थी इस पुस्तक का पाठ इतिहास की दृष्टि से, योग की दृष्टि से, भक्ति की दृष्टि से हर दृष्टि से पाठ करने वालों को लाभ होगा। पुस्तक का कागज, रूप छपाई अति सुन्दर है। मैं स्वामी सच्चिदानन्द योगी को बधाई देता हूं, उन्होंने इस ग्रन्थ को प्रकाशित करके अपना जीवन सफल कर लिया है। इस ग्रन्थ के पढ़ने से मुझे निश्चय हो गया है कि ऋषि दयानन्द की अज्ञात जीवनी (योगी का आत्मचरित्र) प्रामाणिक है इस पर आपत्ति करने का कोई कारण नहीं।

महर्षि दयानन्द अद्भुत तपस्वी सिद्ध योगी थे

"योगी का आत्मचरित्र" पढ़ा। यह ऋषि की जीवनी है जो अब तक ज्ञात न हो सकी थी। योग की साधना को योगी ही जान सकता है। योग का पूरा विशुद्ध क्रियात्मक जीवन इसमें आ गया है। इसके अध्ययन से पता चलता है महर्षि दयानन्द अद्भुत तपस्वी सिद्ध योगी थे। योग सिद्धियां उन्हें उपलब्ध थीं। उनके अनुयायियों को उस पर आचरण करना चाहिये।

लेखक ने भौगोलिकता का और गहन अध्ययन कर ऐतिहासिकता को अपनी गम्भीर गवेषणा से परिपुष्ट किया है। इस परिश्रम के लिये लेखक बधाई का पात्र है।

मेरा आशीर्वाद है उनका योग और योग प्रसार फले फूले।

योग निकेतन —योगेश्वरानन्द सरस्वती
ऋषिकेश। १३-४-७२

घटनायें सत्य एवं तथ्यपूर्ण हैं

श्री श्री १०८ श्री स्वामी सच्चिदानन्द जी सरस्वती योगी द्वारा लिखित 'योगी का आत्मचरित्र' नामक पुस्तक शुरू से अन्त तक पढ़ा। श्री स्वामी जी महाराज ने जो संकलन बहुत ही परिश्रम से किये वह अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण एवं सराहनीय हैं। यह पुस्तक योग के—नितान्त एकान्त साधना के जिज्ञासु के लिये सूर्य के समान काम करेगा। पूर्वापर अनुशीलन से ज्ञात होता है कि महर्षि दयानन्द सरस्वती महाराज की जीवन घटनायें सत्य एवं तथ्य पूर्ण हैं यही निष्कर्ष निकलता है।

सम्पूर्ण विश्व के लिये गौरव की बात है कि ऋषिराज स्वामी दयानन्द सरस्वती ने यह अज्ञात वृत्तान्त बंगाल के मूर्धन्य विद्वानों के सामने अमृत-रूप में बर्षाया।

स्वामी सच्चिदानन्द जी सरस्वती महाराज की गवेषणा एवं अन्वेषणा ने इस बात को परिपुष्ट कर दिया है कि महर्षि का अध्यवसाय निःसन्देह अभूतपूर्व था। अन्वेषक ने स्वयं यात्रा कर इस तथ्य को संगृहीत किया है। अपने जीवन को धन-धान्य बना लिया है। साथ ही सच्चे योगाभिलाषियों को सही मार्ग बतला दिया है।

योगाभ्यास शून्य व्यक्तियों की कटु समालोचना सारहीन है, इस पर ध्यान न देते हुए, इस पुस्तक को जगह जगह पर सूर्य की किरणों की तरह फैला देना चाहिये। मैं इस पुस्तक को पुस्तकालय में रखने की शोभा मानता हूं। ईश्वर से यही प्रार्थना है—ऐसे ऋषि भक्तों एवं विद्वानों को शक्ति और सामर्थ्य प्रदान करते रहें जिससे ऋषि कार्य पूरा होता रहे, तथा मार्गदर्शन भी मिलता रहे।

सेवक—स्वा० ओमानन्द सरस्वती एम० ए० बी० एड०, एम० डी० एच० योगाचार्य, खकनार, खण्डवा (म० प्र०)

दिनाङ्क ७-३-७२

स्वामी ब्रह्मानन्द जी आर्य त्रैतवेदान्ताचार्य ओंकार आश्रम, चांदोद कर्णाली (चाणोद कर्णाली) गुजरात।

श्रीमन्यमहामहिम विद्वद्वर्य आर्य शिरोमणि श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ योगीराज त्यागतपोनिष्ठ सनातन वेद धर्मनिष्ठ परमप्रेमास्पद श्री सच्चिदानन्द सरस्वती जी महाराज !

आपके द्वारा लिखे सभी ग्रन्थ योगमार्ग के गम्भीर अन्वेषण तथा श्रेष्ठतम योग प्रक्रिया पूर्ण हैं जिनमें समाधि तक सभी अंगों का बहुत ही मर्मस्पर्शी व्याख्यान है तथा अति उत्तम प्रक्रियाबद्ध वर्णन है। जो मुझे बहुत ही अद्भुत, अद्वितीय, आनन्दप्रद तथा उत्साहप्रेरक लाभ है। यद्यपि मेरे यहा योगदर्शन के अनेकों हिन्दी संस्कृत, गुजराती मराठी में भाष्य हैं एवं अन्य भी योग विषयक ग्रन्थ रखे और पढ़े हैं परन्तु आपके योग प्रक्रियाबद्ध लेखों को पढ़ने से पता चलता है कि आप सचमुच योगमार्ग के मर्मज्ञ एवं योगनिष्ठ विद्वान् है। यह हम आर्यों का परम सौभाग्य है पर आप जैसे महान् कोहिनूर की कदर तो योगशास्त्र के सच्चे विद्वान् और योगी पुरुष ही करेंगे। आज आर्यों में सच्चे विद्वानों और महापुरुषों की कदर बहुत कम हो गई है जिसका मुझे दुःख होता है।

उपसंहार (३२)

उपसंहार में यह निवेदन करना है कि 'योगी का आत्मचरित्र' की जो प्रतिक्रिया आर्य विद्वानों, योगियों, प्रसिद्ध पत्रों पर जो प्रतिक्रिया हुई वह आपने अध्ययन कर ली है। स्थाली पुलाकन्याय से बटलोई का एक दो चावल ही देखा जाता है परखा जाता है। यदि मध्य का एक भी चावल गल गया तो सब ही चावल गले माने जाते हैं। यदि कोई मूर्ख एक एक चावल को मसलकर देखेगा तो वह भात न रहकर चावल की लेही ही रह जायगी। मैंने ऋषि भक्ति के जोश में आकर सैंकड़ों बातों को प्रामाणिकता की कसौटी पर कसा। मुझे ठीक जंचे। मैंने 'योगी के आत्मचरित्र' की प्रामाणिकता उपलब्ध करने के लिये गोहाटी आसाम की यात्रा के अवसर पर कामाख्या, पाण्डुतीर्थ, उमानन्द शिव का मन्दिर आदि देखे। फोटो लिये। इतिहास लिये। काला पहाड़ ने कब कैसे कामाख्या तोड़ा सब जाना। इतिहास पढ़ा। आत्मचरित्र को प्रमाणित पाया। समाधान के लिये आत्मचरित्र में २५० पृष्ठ में बहुत कुछ गवेषणा लिखी। सैंकड़ों तीर्थों को पं० भवानीलाल जी आदि ने कपोल कल्पित कहा था। मजाक उड़ाया था। उन सैंकड़ों स्थानों के पते और बहुतों के फोटो दिये।

(क्रमशः)

गतांक के आगे--

योगी का आत्म चरित्र एक मनघड़न्त कहानी

(लेखक—श्री स्वामी पूर्णानन्द जी सरस्वती-बड़ौत-जिला मेरठ)

इसी बात को दीनबन्धु जी १८ वर्ष के बाद अर्थात् ३१ मार्च सन् १८७३ में ऋषि दयानन्द के मुख से कहलवाते हैं—"संस्कार पन्थी बंगाल की तरफ मेरा मानसिक आकर्षण स्वाभाविक ही था। राजा राममोहन राय का मूर्तिपूजा विरोधी आन्दोलन (सन् १७८७) ईसाई धर्म विरोध आन्दोलन (सन् १८२०) सतीदाह निषेध आन्दोलन (सन् १८२९), जनसाधारण के अन्दर आर्य धर्मप्रचार के लिये महर्षि देवेन्द्र ठाकुर के 'तत्त्वबोधिनी पत्र' का संस्थापन, और स्त्री शिक्षा के लिये विद्यालय—स्थापनादि का कार्य और महर्षि देवेन्द्र ठाकुर के द्वारा ऋग्वेद का बंगानुवाद प्रकाशन (सन् १८४१) आदि सर्वतोमुखी संस्कारादि के कारण बंगाल के प्रति मेरा आकर्षण पैदा हो गया था।" (यो० आ० च० पृ० २४१)

फिर अगले पृ० पर लिखा है—"बंगाल की शिष्टता हमारे लिये विस्मयकर थी, बहुत प्रान्तों से मुझे लाठी, पत्थर, गाली-गलौच, गदहे की शोभा यात्रा। कलंकारोपण और बार बार जहर मिले थे। मालूम होता है कि यहां के मनुष्य यह सब जानते ही नही।" काशी शास्त्रार्थ के विरोधी पक्ष के नेता कलकत्ते में हमसे सुहृद्भाव से मिलते है। हुगली शास्त्रार्थ के बाद विरोधी पं० ताराचरण तर्करत्न ने दोतल्ला—गृह में बातचीत में और सम्यक् मधुर व्यवहार में जो सौजन्य का परिचय दिया है उसको कभी मैं नही भूलूगा। हमारे विरोधी पण्डित महामहापाध्याय श्री महेशचन्द्र न्यायरत्न को ही मैंने उनके व्यवहार से मुग्ध होकर अपनी संस्कृत भाषा की वक्तृता को बंगला में अनुवाद करने को दिया था। कलकत्ता के समाज सुधारक, राष्ट्रसुधारक, साहित्यिक, वैज्ञानिक, दार्शनिक, ज्ञानी गुणी, साधु ईसाई, मुसलमान, राजा-महाराजा सभी से मुझे सम्मान और श्रद्धा प्राप्त हुई है।" ये तीन उद्धरण मैंने इसलिये दिये हैं कि पाठक इन उद्धरणों को सतर्क होकर पढ़े कि क्या कारण है कि स्वामी जी ने बंगालियों की विद्वता, सोजन्य और शिष्टता आदि पर तो इतना कुछ कहा है। परन्तु दूसरे प्रान्तों के सम्बन्ध में स्वामी जी ने एक पंक्ति भी नहीं कही? उत्तरप्रदेश में स्वामी जी ने लगभग २० वर्ष गुजारे परन्तु 'योगी का आत्मचरित्र' में कल्पित दयानन्द ने उत्तरप्रदेश को सौजन्य, शिष्टता और विद्वत्ता आदि के सम्बन्ध में एक पंक्ति भी नहीं लिखी, बल्कि कलकत्ता में जाकर भरपेट निन्दा ही की है। और बंगाल में कुल चार मास ही रहे, परन्तु बंगाल की शिष्टता, साजन्यता, राष्ट्र-सुधार, वैज्ञानिकता ओर विद्वत्ता पर इतना लट्टू हो गये कि बार बार उसकी प्रशंसा के पुल बाँधते रहे। और जन्मभर के लिये उसके शिष्टाचार को स्मरण करने का आश्वासन देते रहे। क्या दयानन्द जैसे समदर्शी महात्मा के लिये यह उचित है कि एक ही देश के भिन्न भिन्न भागों में इतना भिन्न भेद रक्खे कि एक को सिर पर उठा ले और दूसरे को नीचे पटक दे? नहीं, यह दयानन्द की नीति नही थी। ऋषिवर की नीति तो सदैव यही रही कि चाहे कोई उनका मान करे या अपमान करे, उनकी निन्दा करे या स्तुति करे; कोई पत्थर मारे या फूल बरसावे दयानन्द के मुख से तो सबके लिये आशीर्वाद ही निकलता था। तो फिर यह पक्षपात भरा व्यवहार किसकी ओर से हुआ? उत्तर है कि यह सब करामात दीनबन्धु जी की है।

दीनबन्धु जी प्रान्तीय भावनाओं से ओत प्रोत एक बंगाली सज्जन हैं। उनकी धार्मिक भावनायें ब्राह्मसमाज की शिक्षाओं से प्रभावित है। या यह कहो कि उनकी स्थिति आधा तीतर आधा बटेर वाली है। या यह भी कह सकते हैं कि 'गंगा गये गंगादास' 'जमना गये जमनादास।' इसका प्रमाण स्वयं दीनबन्धु जी देते हैं:—"दोनों समाजों में वेद की मान्यता के सम्बन्ध में वैषम्य अवश्य है। ब्राह्मसमाज के प्रवर्त्तक राजा राममोहनराय वेद को अभ्रान्त और अपौरुषेय नहीं मानते थे.....मैं भी ब्राह्मसमाज के आमन्त्रण पर चितपुर रोड के आदि ब्राह्मसमाज की बेहाला की ओर उल्टा डांगा साधारण ब्राह्मसमाज की वेदी से शास्त्र पाठ करता हूं।" इसकी पुष्टि श्री सच्चिदानन्द जी इस प्रकार करते है—"यह तो पं० दीनबन्धु जी का ४० वर्ष का अध्यवसाय एवं तीनों ब्राह्म-समाजों की वेदी पर व्याख्याओं से सम्पर्क तथा शान्ति निकेतन में वेद कथा करते रहने का प्रभाव है कि यह आत्मचरित्र उपलब्ध हो गया।" इस लेख के द्वारा सच्चिदानन्द जी ने दीनबन्धु जी की इस बात के लिये सराहना की है कि उन्होंने ४० वर्ष तक तीनों ब्राह्मसमाजों की वेदी से व्याख्यान देकर उनके साथ सम्पर्क बनाए रक्खा, परन्तु बाबू देवेन्द्रनाथ की जो कि ऋषि दयानन्द का मतवाला हो गया था और ऋषि दयानन्द की जीवनी की खोज में १० वर्ष तक जगह जगह मारा मारा फिरता रहा और प्रान्तीय भावना को अपने पास नहीं फटकने दिया और ब्राह्मसमाजियों के विरोध की भी परवाह नही की, सच्चिदानन्द जी निन्दा करते हुए लिखते हैं - "इस सब संघर्ष का अध्ययन कर देवेन्द्रबाबू ने ब्राह्मसमाज को आड़े हाथों लिया उन्होंने (ऋषिवर ने) पं० कृपाराम से पूछा कि आपने हमारे व्यर्थ चन्दा किन किन लोगों से एकत्र किया है?

पं० जी ने उन्हें चन्दे की सूची दिखाई तो उसमें केवल दो व्यक्तियों को छोड़कर शेष ब्राह्मसमाजी बंगाली थे। महाराज (दयानन्द) यह ज्ञात करके कुछ क्षुब्ध हुए, और कहा आप लोगों को इन (ब्राह्म-समाजियों) पर भरोसा नही करना चाहिये। ये लोग आज आपके मित्र हैं कल शत्रु हो जायेंगे।" (भ० द० च० पृ० ५३८) "पृ० ४२० पर ब्राह्मसमाजियों का अशिष्टाचार लिख मारा 'ब्राह्मसमाजियों ने व्यय के २५ रुपये तक ले लिये।' इतना तीखा प्रहार किया देवेन्द्रबाबू ने। फिर उनको कौन ब्रह्मसमाज सहयोग देता?" सच्चिदानन्द जी ने देवेन्द्रबाबू की केवल इसलिये निन्दा की कि उसने बंगाली ब्रह्मसमाजियों का पक्ष न लेकर ऋषिदयानन्द के साथ उनके अशिष्ट व्यवहार को साफ साफ खोलकर रख दिया और दीनबन्धु जी की सराहना इसलिये की कि वे ४० वर्ष तक अवैदिक और विधर्मी ब्रह्मसमाजियों की लल्लो-चप्पो करते रहे। इससे यह भी पता चलता है कि ये दोनों सज्जन उन ब्रह्मसमाजियों के एजेण्ट हैं जिनके ऊपर भरोसा न करने का ऋषिवर आदेश दे गये थे। और मैं दृढता के साथ कहता हूं कि दीनबन्धु जी ८० वर्ष तक वैदिक धर्म के कट्टर विरोधी ब्रह्मसमाजियों के साथ मिलकर षड्यन्त्र रचते रहे कि ऋषि दयानन्द और आर्यसमाज से ब्रह्मसमाजियों के अपमान का बदला लिया जाय। और इसी उद्देश्य से बनावटी पुराने लेख तैयार किये गये ताकि ऋषि दयानन्द जी को अपनी लेखनी से लिखी हुई और अपने मुह से कही हुई। और ऋषि दयानन्द के दीवानों शहीद अकबर पं० लेखराम के सारे परिश्रम को तथा देवेन्द्रबाबू, स्वामी सत्यानन्द जी आदि महापुरुषों के सब परिश्रम को नष्ट भ्रष्ट किया जा सके! और ऋषि दयानन्द को अवसरवादी, षड्यन्त्रकारी, दम्भी, पाखण्डी और झूठा सिद्ध किया जा सके।

जो यह कहा जाता है कि ऋषि दयानन्द जी जब कलकत्ते गये थे तो उन्होंने बंगालियों के शिष्टाचार से प्रभावित होकर अपनी सारी जीवनी और अपनी सब गुप्त बातें भी ब्रह्मसमाजी विद्वानों को लिखा दी थी तो इसके उत्तर में ऋषि दयानन्द जी के शब्द सुन लीजिये जो उन्होंने बंगाल से लौटने के एक वर्ष पश्चात् अर्थात् १२ जून सन् १८७४ में लिखने प्रारम्भ किये थे, क्योंकि पहला सत्यार्थप्रकाश १२ जून सन् १८७४ को लिखना आरम्भ किया था। उसके ११ वें समुल्लास में ऋषि दयानन्द ने ब्राह्मसमाज और प्रार्थना समाज की आलोचना की है उसमें लिखा है—इन लोगों में स्वदेश भक्ति बहुत न्यून है। ईसाइयों के आचरण बहुत से लिये हैं, खानपान विवाह आदि के नियम भी बदल दिये हैं। अपने देश की प्रशंसा वा पूर्वजों की बड़ाई करनी तो दूर रही उसके बदले पेटभर निन्दा करते हैं। व्याख्यानों में ईसाई आदि अंग्रेजों की प्रशंसा भरपेट करते हैं। ब्रह्मादि ऋषियों का नाम भी नहीं लेते। प्रत्युत ऐसा कहते हैं कि बिना अंग्रेजों के सृष्टि में आज पर्यन्त कोई भी विद्वान् नहीं हुआ। आर्यावर्त्ती लोग सदा से मूर्ख चले आये हैं। इनकी उन्नति कभी नहीं हुई। (क्रमशः)●

नई खोज पढ़िये—

"महर्षि दयानन्द का देहान्त विषपान से ही हुआ था"

(श्री निहालसिंह आर्य बी० ए०, ११९ रामपुरा–त्रिनगर, देहली-३५)

गतवर्ष हरयाणा राज्य सरकार ने महर्षि दयानन्द का जीवन चरित्र अंग्रेजी में लिखवाने के लिये पंजाब विश्वविद्यालय को पचास हजार रुपये दिये। यह बहुत श्रेष्ठ भावना है। इस कार्य के लिये यह आवश्यक था कि आर्यसमाज के सुयोग्य अनुभवो चार-पाच विद्वानों को यह लेखन कार्य समर्पण किया जाता जो महर्षि जी का जीवन यथार्थ रूप में प्रस्तुत करते। क्योंकि महर्षि दयानन्द के सम्पूर्ण जीवन की ठीक जानकारी आर्यसमाज को ही है। परन्तु पंजाब विश्वविद्यालय के उपकुलपति ने यह महान् कार्य एक अयोग्य व्यक्ति के हाथों में देकर बड़ी भारी भूल की है। श्री श्रीराम शर्मा ने महर्षि जी के वंश परिचय, जन्म स्थान, बाल्यकाल शिक्षा प्राप्ति एवं अन्य अनेक महान् कार्यों रचनाओं का उल्लेख न करके पहले पहले ही मृत्यु सम्बन्धी घटना की खोज की है, यह बात हास्यास्पद है क्योंकि जन्म, वृद्धि, युवावस्था, जरावस्था आए बिना मृत्यु किसको हो सकती है। श्री शर्मा जी ने लिख दिया कि महर्षि दयानन्द की मृत्यु विषपान से नहीं अपितु रोग के कारण हुई थी। यह उनकी बात सर्वथा निराधार तथ्यहीन एवं मिथ्या ही है। क्योंकि महर्षि जी के पूर्व लिखित सारे ही जीवनचरित्र विषपान काण्ड की साक्षी देते हैं। इन जीवनचरित्र लेखकों में कितने ही तो ऋषि जी के सामने विद्यमान थे और शेष ने सारे भारत का परिभ्रमण करके ऋषि जी की प्रत्येक घटना को सम्पर्कीय सज्जनों से पूछकर लिखा है। ऐसा लगता है कि श्री० शर्मा जी ने या तो ये जीवनचरित्र पढ़े ही नही या उनकी सर्वथा उपेक्षा कर दी। इसलिये इनके कथन का कोई मूल्य नहीं है। श्री० शर्मा जी ने केवल गोपालराव द्वारा लिखे जीवनचरित्र को ही प्रामाणिक माना है। [इस पुस्तक को मैंने आर्यसमाज नागौर मारवाड़) के पुस्तकालय में अनेक वर्ष पूर्व देखा था। वह लेथो प्रैस में छपा हुआ है। नागौर के प्रसिद्ध आर्य कार्यकर्त्ता श्री शिवकरण चौधरी और मारवाड़ किसानों के सुधारक नेता श्री मूलचन्द चौधरी मेरे साथ थे। दोनों जीवित हैं।—सम्पादक] परन्तु गोपालराव जी स्वयं ही महर्षि जी की तत्कालीन घटनाओं से अपरिचित थे जो कि ऋषि जी के कथन से ही प्रतीत होता है। इस विषय में उनका लिखा एक पत्र देखिये—

"पं० गोपालराव हरि जी आनन्दित रहो। आज एक साधु का पत्र मेरे पास आया। चित्तौड़ में वहां उदयपुराधीश से मेरा समागम केवल तीन बार ही हुआ। आपने प्रतिदिन दो बार लिखा है। ऐसे कार्यों के परिशोधन का अवकाश मुझे नहीं मिलता। जब आपको मेरा ठीक ठीक वृत्तान्त विदित ही नहीं है तो इसके लिखने में साहस कभी न कीजिये। थोड़ा सा भी असत्य मिल जाने से सम्पूर्ण निर्दोष कृत्य भी बिगड़ जाता है।" (दयानन्द सरस्वती) बैशाख शुक्ला द्वितीया सं० १९४०।

श्री० शर्मा जी के मिथ्या कथन से सारे ही आर्यजगत में एक प्रबल आन्दोलन मचा हुआ है क्योंकि महर्षि जी के महान् बलिदान को झुठलाना उनके महान् राष्ट्र उत्थान, वेदप्रचार परोपकार समाजसुधार को उपेक्षित करना अतिनिन्द्य अक्षम्य कृतघ्नता है। मनु जी महाराज ने कहा है "कृतघ्ने नास्ति निष्कृतिः।" अर्थात् कृतघ्नता का कोई प्रायश्चित नहीं है।

यद्यपि आर्यजगत् के सुयोग्य पण्डित श्री भवानीलाल जी भारतीय, सम्पूज्य स्वा० आनन्द स्वामी जी और आदरणीय राजेन्द्र जी जिज्ञासु ने ऋषि जी के विषपान काण्ड की पुष्टि में बहुत अधिक सम्पुष्ट प्रमाण दिये हैं फिर भी इस विषय में सर्वखाप पंचायत के इतिहास में से सम्माननीय मन्त्री श्री कबूलसिंह जी से जो तथ्य मिले हैं वे भी विषपान घटना को प्रमाणित करते हैं जो मुझे उनसे १८-५-७३ को प्राप्त हुए हैं।

१. श्री मन्त्री जी ने बताया कि शोरम के सय्यद आबिद अली मियां जी फारसी अरबी के बड़े विद्वान् थे। वे अध्यापक थे। हिन्दी भी जानते थे। उन्होंने सारे जीवन लड़के पढ़ाये। यह कई सौ बीघे के जमींदार भी थे। इन्होंने भूतपूर्व मन्त्री सर्वखाप पंचायत चौ० नानकचन्द के सम्पर्क से कई बार उर्दू का सत्यार्थप्रकाश पढ़ा था। इन्होंने मेरठ में स्वा० दयानन्द जी के दर्शन भी किये थे। अपनी श्रद्धा से स्वामी जी को पांच रुपये तथा फूल भी दिये थे। ये श्री नानकचन्द से आयु में बड़े थे। स्वामी जी में इनकी बड़ी श्रद्धा थी। सत्यार्थप्रकाश के पढ़ने से इनकी रुचि वैदिकधर्म की ओर बढ़ गई थी और इनके विचार बहुत सुधर गये थे। यह स्वामी जी को सर्वोत्तम मानते थे। जोधपुर में इनके रिश्तेदारों के रिश्तेदार नौकर थे। जब ये स्वामी जी के स्वर्गवास के बाद जोधपुर अपने रिश्तेदारों से मिलने गये तो इन्होंने अपनी श्रद्धा के कारण स्वामी जी के बारे में सत्य खोज की। ये वहां महीनों रहे थे। वहां लोगों ने इन्हें बताया कि बरतानिया हुकूमत ने नन्हींजान (जिसकी कंचनो जैसी जाति बताई थी जिसके वश में नाचने गाने का काम होता था) को आगे करके स्वामी जी को ऐसा तेज जहर दिलाया कि यदि हाथी को वह जहर दे दिया जाता तो आठ पहर भी जिन्दा नहीं रहता। स्वामी जी तो योगी थे। उन्होंने अपने योगबल से भीष्म पितामह के समान अपनी इच्छानुसार शरीर का त्याग किया था। यह सब बातें आबिद अली मियां ने अपनी तिबारी (पाठशाला) में शोरम के सब लोगों को बताई थीं। क्योंकि शोरम गांव के लोगों को स्वामी जी से विशेष सहानुभूति थी।

(२) शोरम गांव में तीन मुसलमान व्यापारी पीरा, बुद्धन और रजबी थे। ये तीनों व्यापारी और उनके साथ गांव के कुछ जाट, झीमर तथा कई अन्य व्यक्ति मिलकर सं० १९४० वि० में जोधपुर की रियासत में पर्वतसर के पशुओं के मेले में गये थे। ये वहां पशुओं की खरीद फिरोखत करके रुपया कमाते रहे। इन्हें वहां लोगों से पता लगा कि स्वामी दयानन्द जी महाराज को कुछ पापियों ने चिढ़कर जोधपुर में जहर दे दिया जब ये व्यापारी मेले से वापिस शोरम ग्राम में आये तो उन सब में आपस के लेन देन के रुपये पैसे में मनमुटाव (रोष) हो गया। इस मनमुटाव को दूर करने के लिये शोरों निवासी चौ० नरपतसिंह सु० चौ० घासीराम के पीपल वाले घेर में पंचायत हुई। पंचायत में उन व्यापारियों का फैसला करा दिया गया। फैसले के बाद जब पंचायत उठने ही वाली थी तो उन व्यापारियों में से कुछ लोगों ने यह कहा कि जिन स्वामी दयानन्द जी महाराज की सारे भारत में चर्चा चल रही है और जो कई बार मेरठ तथा हरद्वार में भाषण देकर अपना प्रचार करके गये थे। उन्हें किसी पापी ने जहर दे दिया। ऐसा हमें राजस्थान में जोधपुर राज में पता चला है। जबकि हम मेले ठेलों में व्यापार करते फिरते थे। हम नागौर की पीठ (मेले) में भी गये थे। यह पंचायत शोरों में जुमे (शुक्रवार) के दिन हुई थी। इसी सम्बन्ध में तीसरे ही दिन रविवार को शोरम की प्रसिद्ध चौपाल में बड़ी पंचायत हुई। पहले आर्यसमाज का हवन किया गया। इस ग्राम में हवन तो बहुत पहले से ही अमावस्या तथा पूर्णमासी के दिन होते रहते थे। अब स्वामी जी के प्रचार से आर्यसमाज का प्रचार हो गया था। शोरम के कई सज्जन स्वामी जी के शिष्य बन गये थे और मन्त्री कबूलसिंह जी के दादा पं० नानकचन्द जी (जो उस समय के मन्त्री तथा सौ ग्रामों के गुरु माने जाते थे) स्वामी जी के साथ एक वर्ष तक रहे थे। हवन के बाद सत्संग में चौ० नरपतसिंह ने एक सौ पचास रुपये लाकर पेश किया और नानकचन्द जी से कहा चूंकि आप स्वामी जी के शिष्य भी हो और साथ भी रहे हो। आपका सबसे पहला फर्ज है कि आप जोधपुर जाकर स्वामी जी का पता लाओ और किसी एक को और साथ ले जाओ। इसके बाद चौ० भरतसिंह सु० चौ० रामकला के यहां सहीराम वाले बाग की फसल की बिक्री की धरोहर रखी रहती थी जो सामाजिक सामूहिक कार्यों के लिये थी। यह बाग चौ० सहीराम और गुलाबसिंह के खानदान वालों का साझे का बाग था। और चौ० नानकचन्द के ही पाने के लोगों का था। चौ० भरतसिंह ने भी उनमें से एक सौ पचपन लाकर चौपाल में रख दिये। चौ० नानकचन्द जी की माता ने भी उन्हें बीस रुपये दिये। इस प्रकार (१५०+१५५+२०=३२५) सवा तीन सौ रुपये लेकर चौ० नानकचन्द और पं० शंकरलाल दोनों सोमवार को शोरम से चल दिये। (शेष पृष्ठ ९ पर)

(पृष्ठ ८ का शेष)

ये पहले अलवर फिर जयपुर फिर पुष्कर गये क्योंकि इन स्थानों में पं० शंकरलाल जी के मिलने वाले मित्र रहते थे। और वहां कुछ कार्य करते थे। ये गोधन दिवाली के दो दिन बाद पुष्कर पहुंचे थे। वहां लोगों से इन्हें पता चला कि स्वामी दयानन्द जी का दिवाली के दिन अजमेर में स्वर्गवास हो गया ये भी वहां से अजमेर पहुंचे। वहाँ आर्यसमाज में बहुत से लोग इकट्ठे हो रहे थे ये उन से मिले वहां पर स्वामी जी के स्वर्गवास का निश्चय हो गया तब इन्होंने बहुत शोक माना। वहां लोग स्वामी जी के किसी कार्य क्रम के लिये रुपये इकट्ठे कर रहे थे। इन्होंने भी वहां आर्यसमाज को इकावन रुपये दिये। फिर ये दोनों जोधपुर पहुंचे। वहां कई दिन तक रहे लोगों से सब जगह मिले और स्वामी जी के बारे में खूब पूछताछ छान बीन को। जोधपुर के लोगों ने उन्हें बताया कि "जगन्नाथ रसोईया" ने स्वामी जी को दूध में जहर दिया था। क्योंकि उस दिन स्वामी जी नेभोजन नहीं किया था। जहर देने में अंग्रेजों का हाथ था। उसमें इंग्लैंडतक अंग्रेजी राज के रेजीडेण्टों का हाथ था। वे कहते थे कि यह साधु अंग्रेजी राज के बहुत विरुद्ध हैं और इससे अंग्रेजी राज को बहुत खतरा है स्वामी जी को यह जहर कई प्रकार का मिलाकर दिया गया था। उन्होंने बताया कि इतना तेज जहर हाथी को दिया जाता तो आठ पहर में मर जाता परन्तु स्वामी जी ने योग बल से काफी दिनों के बाद अपनी इच्छा से भीष्मपितामह की तरह शरीर छोड़ा।

(३) १७-५-७३ को एक आर्यसमाज के वार्षिक उत्सव पर मुझे श्री स्वामी भीष्म जी मिल गये। ऋषि जी के विषपान सम्बन्धी कांड की जानकारी के लिये मैंने उनसे प्रार्थना की तो उन्होंने इस प्रकार वर्णन किया है।

जब मेरी अवस्था उन्नीस बीस वर्ष की थी तब मेरी माता ने मुझे कहा कि तुम स्वामी दयानन्द के दर्शन करके आओ। मैं घूमता फिरता अजमेर पहुंचा। ऋषि जी के देहावसान को सुनकर दाह स्थान पर पहुंचा। वहां स्वामी जी चिता को जलती हुई देख कर बहुत पश्चात्ताप किया। जोधपुर का राजा यशवन्त सिंह मुसलमानों जैसी दाढ़ी रखता था कुछ चंचल सा छोकरेपने में रहता था। उसका मन्त्री फैजुल्लखां उसके पास कलकत्ते से नन्ही जान वेश्या को लाया था फैजुल्ला खां ने उससे कहा कि यदि आप मुसलमान बन जाओगे तो सारे भारत के मुसलमान इकटठे हो कर आपका सम्मान करेंगे। यशवन्तसिंह मुसलमान बनने को तैयार भी हो गया था। एक कमरे में बनात भी बिछाई गई। बघने लाये गये। तारीख भी रख दी गई तीसरे दिन उसने मुसलमान बनना था। उसका छोटा भाई कर्नल प्रतापसिंह राज्य को सारी पुलिस तथा सेना का सेनापति था। उसने राजा से कहा कि स्वामी दयानन्द के आने में दस दिन ही रह गये हैं। हम उन्हें क्या मुंह दिखाएंगे। यहां राठौरों की गद्दी पर मुसलमान नहीं बैठ सकता परसों इस गद्दी पर राठौर ही बैठेगा। मैं तुम्हें और फैजुल्ला खां दोनों को नहीं रहने दूंगा। सर प्रताप सिंह के कथन से और आतंक से डर कर राजा मुसलमान नहीं बना। स्वामी भीष्म जी ने बताया कि जब मैं जोधपुर पहुंचा। तो वहां के सौ सौ वर्ष से भी बड़ी अवस्था के लोगों ने मुझे बताया कि स्वामी दयानन्द को जहर दिया गया था परन्तु डरते हुए कम बताते थे। अजमेर के परि जीने कहा था कि स्वामी जी को काला संखिया दिया गया था। उस जहर में काले सहित तीन जहर और चौथा कांच था। इस प्रकार स्वामी जो को चार विषों का मिश्रण दिया गया था। पीर जी ने कहा था कि यदि यह जहर हाथी को दिया जाता तो कुछ मिनटों में ही मर जाता। डा० न्यूटन ने रोकर कहा था कि यही महापुरुष है जो इस भयंकर विष के दारुण दुःख को चुपके से सहन किये हुए हैं। यदि इन्हें यह विष नहीं दिया जाता हो इनका शरीर तीन सौ वर्ष तक रहता।

स्वामी जी के विषपान कांड सम्बन्धी अनेक और प्रमाण मिल रहे हैं। जो भिन्न भिन्न स्थानों तथा पृथक् पृथक् सज्जनों के कथनों पर आधारित है क्या इन सभी सज्जनों ने मिलकर गुप्त बैठक में झूठ बोलने का निर्णय किया था? नहीं यथार्थ बात सभी जगह पाई जाती है। आर्यसमाज के अनेक विद्वान् संन्यासी तथा आर्यमर्यादा के यशस्वी पंडित शिरोमणि सम्पादक महोदय कई बार हरयाणा के शिक्षा मन्त्री तथा पंजाब विश्व विद्यालय के उपकुलपति से निवेदन कर चुके कि श्री० श्रीराम शर्मा इस कार्य में अयोग्य हैं अत: स्वामी जी का जीवन चरित्र उनसे न लिखाया जाए और हरयाणा राज्य का पवित्र धन नष्ट न किया जाए यदि ये लोग फिर भी नहीं मानते हैं यह इनका स्वार्थ तथा दुराग्रह ही है इसके परिणाम दुःखद होंगे। सारे आर्यजगत् को इस मिथ्यावाद को रोकने का डट कर विरोध करना चाहिये परमात्मा की कृपा से सत्य की हो विजय होगा।●

उपयोगी सुझाव

[पं० देवेन्द्रनाथ शास्त्री एम. ए. १५-आर्य कुटीर नरेला (दिल्ली)]

प्रसिद्ध वैदिक विद्वान् स्व० पं० बुद्धदेव जी विद्यालंकार (स्वा० समर्पणानन्द जी) के व्याख्यानानुसार यज्ञ =संघटन (यज्ञो वै विष्णुः) की चार भुजाएं चार आवश्यक वस्तुओं से सुशोभित होती हैं:—शंख, चक्र, गदा और पद्म। शंख=प्रचार, चक्र=प्रगति, गदा=शक्ति और और पद्म=लक्ष्मी=धनादि साधन के प्रतीक हैं। इन में मुख्य स्थान शंख अर्थात् प्रचार का है। प्रचार के साधन दो हैं—प्रेस (पत्र) तथा प्लेटफार्म (मंच)। आर्यसमाज ने अपने कार्य क्रम के लिये प्लेटफार्म या मच का पर्याप्त प्रयोग किया है। खण्डन, मण्डन, उपदेश, शास्त्रार्थ द्वारा वैदिक धर्म के प्रचार, प्रसार में बढ़ चढ़कर कार्य किया है, अब भी कर रहा है, यद्यपि उसको प्रगति यथापूर्व नहीं, जिसके अनेक कारण हैं। किन्तु दूसरे साधन प्रेस या पत्र पत्रिकाओं के विषय पर अपेक्षित ध्यान नहीं दिया जा रहा है। "आर्यमर्यादा" के पाठक प्रसिद्ध उत्साही आर्य लेखक श्री सुरेन्द्र सिंह जी कादियाण से भली भांति परिचित हैं। आप के "अवतारों की बाढ़" लेख माला तथा मुस्लिम पत्र "क्रान्ति" द्वारा वैदिक धर्म व आर्यसमाज पर की गई आलोचनाओं का मुंह तोड़ उत्तर उनको शक्ति के परिचायक हैं। "मर्यादा" के गतांकों में आर्यसमाज शताब्दी के उपलक्ष्य में कार्य प्रणाली पर विचार करते हुए आपने आर्यसमाज द्वारा दैनिक पत्र प्रकाशित करने का एक प्रेरणाप्रद उपयोगी सुझाव दिया है जिसे क्रियान्वित करने के लिये अकेले दिल्ली राज्य को १५० आर्यसमाजों द्वारा १००-१०० रु० के शेयर खरीदने के उपाय का उल्लेख किया है। आज के यान्त्रिक एवं प्रचार प्रधान युग में प्रेस या पत्र का कितना महत्त्व है यह सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं। प्रत्येक संघटन के एक या एक से अधिक दैनिक पत्र प्रकाशित हो रहे हैं। चाहे उनके पास विशाल भवन नहीं किन्तु वे पत्रों द्वारों प्रचार करने में सफल हैं। यह कटु सत्य स्वीकार करना पड़ेगा कि हम सत्य ज्ञानी, सत्यमानी होते हुए भो इस प्रतियोगिता में पिछड़ रहे हैं। हमारे नेताओं ने विशाल भवनों आर्यमन्दिरों, स्कूल कालेजों के निर्माण पर जितना ध्यान दिया व दे रहे हैं उसका शतांश भी प्रेस पर नहीं। स्वर्गीय महाशय कृष्ण के उर्दू पत्र "प्रकाश" ने तथा पश्चात् प्रताप (दैनिक) ने मुस्लिम बहुल राज्य पंजाब में अनेक व्यक्तियों को वैदिक धर्म एवं आर्यसमाज की ओर आकृष्ट किया था, यह सर्व विदित है। आज भारत के अनेक दैनिक पत्रों द्वारा मत मतान्तरों के प्रवर्तक महापुरुषों के विचारों का प्रतिदिन प्रचार, प्रसार किया जाता है किन्तु एकाध अपवाद छोड़कर क्या कभो ऋषि दयानन्द का कोई सर्वमान्य मानवता वादी वाक्य अथवा वैदिक वचन उन पत्रों में पढ़ने का मिलता है? सभाओं के जा गिने चुने साप्ताहिक पत्र प्रकाशित होते हैं, पूज्य श्री अमर स्वामी जी के कथनानुसार उनके कितने पाठक हैं, अथवा वे प्रधानों, मन्त्रियों के घरों में ही पड़े रह जाते हैं? "जन ज्ञान" मासिक के संस्थापक एवं "आर्यमित्र" लखनऊ के भूतपूर्व सम्पादक ओजस्वी लेखक श्री प० भारतेन्द्र नाथ जी ने अपने कार्यकाल में "आर्यमित्र" को दैनिक प्रकाशित करने का प्रबल प्रयत्न किया था। न जाने, किस कारण वह सफल नहीं हुए। यह प्रचार का युग है और प्रेस इसका सबसे सशक्त साधन है। आर्यसमाज की शताब्दी आ रही है। आर्यपत्रकारों का अभाव नहीं, आर्य लेखकों, समीक्षकों की कमी नहीं। केवल उन्हें संघटित, एकत्र, व्यवस्थित करने की आवश्यकता है। श्री कादियाण जी के सामयिक सुझाव के अनुसार यदि सर्व श्री प्रकाशवीर जी शास्त्री, रघुवीर सिंह जो शास्त्री, शिवकुमार जी शास्त्री, पूज्य स्वा० ओमानन्द जी सरस्वती, निर्भीक पत्रकार सिद्धान्ती जी, भारतेन्द्र नाथ जी का व्यवस्थापक सम्पादक मण्डल आर्यसमाज शताब्दी के कार्य काल में एक दैनिक आर्यपत्र प्रकाशित करने का संकल्प करले तो कुछ असम्भव नहीं। आर्य जनता अवश्य सहयोग देगी, लेने वाला होना चाहिये, अन्यथा समय हमें कभी क्षमा न करेगा। और हम पिछड़ जायेंगे।●

माननीय श्री स्वामी सच्चिदानन्द जी योगी से पुनर्निवेदन

(श्री सत्येन्द्र सिंह आर्य एम० ए० कार्यकर्ता आर्य समाज देहरादून)

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के सप्ताहिक मुखपत्र 'आर्यमर्यादा' में ११ मार्च के अंक में इसी वर्ष मैंने योगी जी से प्रार्थना स्वरूप कुछ पंक्तियाँ पृष्ठ ६ पर प्रकाशित कराई थीं। मैं इस प्रतिक्षा में था कि योगी जी अवश्य मेरे निवेदन की ओर ध्यान देंगे और उत्तर द्वारा अनुग्रहीत करेंगे। परोक्ष रूप में योगी जी ने उत्तर दिया, तदर्थ उनका अति धन्यवाद। 'आर्य मर्यादा' के विद्वान् सम्पादक श्री पं० जगदेव सिंह सिद्धान्ती शास्त्री जी ने योगी जी के द्वारा दिया गया वह उत्तर आर्यमर्यादा पत्र के ६ मई ७३ के अंक में सम्पादकीय लेख में ऋषि दयानन्द की अज्ञात जीवनी के सम्बन्ध में' शीर्षक के अन्तर्गत छाप दिया। स्वामी श्री सच्चिानन्द जी योगी के द्वारा दिये गये उत्तर के सिलसिले में मेरा यह उनसे पुनः नम्र निवेदन है कि आर्य समाज देहरादून की ओर से डा० भारतीय जी को एवम् योगी जी को निमन्त्रण यथा पूर्व है। वे कोई तिथि निर्धारित करके वहाँ पधारें एवम् प्रेमसहित इस विषय पर विचार विमर्श कर लेवें। डॉ० भारतीय जी की ओर से हमें उनकी यहाँ पधारने के लिए स्वीकृति भी प्राप्त है परन्तु योगी जी पता नहीं यहाँ आने से क्यों कतरा रहे हैं।

योगी जी ने यह भी लिखा है कि पहिले डाक्टर साहब शास्त्रार्थ के लिए तैयार नहीं थे—यह बात सरासर गलत है डॉ० साहब पहले भी सामने आने से योगी जी ही कतराते थे और अब भी योगी जी ही पीछा छुड़ाना चाह रहे हैं। पहले शास्त्रार्थ की बात योगी जी के एक निकट सम्बन्धी श्री पं० क्षितीश कुमार जी वेदालंकार के माध्यम से आरम्भ हुई थी जिन्हें योगी जी ने तोड़ मरोड़ कर प्रस्तुत कर दिया और यह घोषणा कर दी कि डाक्टर साहब शास्त्रार्थ के लिए तैयार नहीं। अबकी बार शास्त्रार्थ की बात आर्यसमाज देहरादून के अधिकारियों एवम् कार्यकर्ताओं के माध्यम से डॉ० भारतीय ने पुनः आरम्भ को। पहले की भांति अब पुनः सामने आने से योगी जी बचना चाह रहे हैं। डॉ० भारतीय तो अजमेर से देहरादून आने की स्वीकृति भी दे चुके और योगी जी ज्वाला पुर से देहरादून तक की तीस पंतीस मील को दूरी तय करने में ही असुविधा का अनुभव कर रहे हैं और यह लिख रहे हैं कि डॉ० भारतीय ज्वालापुर आ० वा० आश्रम में ही आ जावें। यदि योगी जी यह लिखते कि देहरादून उनको दूर पड़ेगा, वे बजाय देहरादून के कांगड़ी विश्वविद्यालय में पहुंचकर कुलपति श्री रघुवीर सिंह जी शास्त्री की उपस्थिति में डॉ० भरातीय से विचार विमर्श करने के लिए तैयार है तो भी बात कुछ विश्वास के नाम पर गले से नीचे उतरती। दूसरी बात योगी जो ने लिखी है कि अब शास्त्रार्थ की दुहाई की कोई तुक नहीं।" मैं योगा जी से पूछता हूं कि दुहाई में क्या न्यूनता आ गई। योगी जी जिस पुस्तक के ठीक होने का दावा कर रहे हैं उसके आपत्तिजनक स्थलों पर डॉ भारतीय के आक्षेप ज्यों के त्यों बने हुए हैं। डाक्टर साहब के एक भी आक्षेप का उत्तर आपसे नहीं बन पड़ा है। ऐसे में समन्वय का एक ही रास्ता पारस्परिक विचार-विमर्श शास्त्रार्थ रह जाता है। शास्त्रार्थ की तुक तो तब नहीं रहती जब डॉ० भारतीय के मूल आक्षेपों का कुछ उत्तर दे दिया जाता या पारस्परिक उत्तर प्रत्युत्तर के माध्यम से पुस्तक के आपत्तिजनक स्थलों के सम्बन्ध में कुछ संगति, तालमेल बैठ जाना।

मैं २५ अप्रैल बुद्धवार को देहरादून गया था और वहां समाज के मंत्री श्री यशपाल जी आर्य एवम् वरिष्ठ उप प्रधान श्री पं० तेजकृष्ण जी कौल से इसी विषय पर डेढ़ घण्टा बात हुई। आर्य समाज देहरादून की ओर से माननीय योगी जी एवम् डॉ० साहब को वहां पधार कर विचार विमर्श करने के लिए निमन्त्रण यथापूर्व है। श्री सिद्धान्ती जी ने स्वयं लिख दिया है कि अवश्य विचार विनिमय दोनों महानुभावों को करना उचित है और आर्य समाज देहरादून में यह चर्चा ठीक रहेगी।

देहरादून आर्य समाज का औचित्य इसलिए भी है कि एक सम्पन्न आर्यसमाज होने के नाते आगन्तुक विद्वान् महानुभावों के मार्ग व्यय, भोजन आदि की सम्यक् व्यवस्था सुगमता से हो जायेगी। इस सन्दर्भ में अपेक्षित बहुत सी पुस्तकें (refresence) के लिए वहाँ के आर्य पुस्तकालय में एवम् श्री पं० तेजकृष्ण जी कौल के विशाल निजी संग्रह में विद्यमान हैं। वहां पर श्री यशपाल जी आर्य एवम् कौल साहब तथा गु० कांगड़ी विश्वविद्यालय के पू० प्रवक्ता विद्वान् श्री पं० विश्वनाथ जी विद्यालंकार आदि महानुभाव निष्पक्ष सम्मति देने के लिए विद्यमान हैं। और भी जिस किसी विद्वान् की उपस्थिति विचार विनिमय के समय योगी जी एवम् भारतीय जी आवश्यक समझें उनको आर्य समाज देहरादून की ओर से सादर आमन्त्रित कर लिया जायेगा। परन्तु माननीय योगी जी कम से कम विचार विनिमय हेतु वहाँ पधारने के लिए अपनी स्वीकृति प्रदान करके तो अनुग्रहीत करें। ●

आर्यमर्यादा और इसके सम्पादक जी के प्रति शुभ कामनायें

आर्य सिद्धान्तों के धनी श्री जगदेवसिंह जी सिद्धान्ती, शास्त्री, सम्पादक "आर्य मर्यादा" महर्षि श्रीमदयानन्द सरस्वती के निर्भीक अनुयायी, अन्यतम भक्त और स्वाध्यायशील विद्वान् एवं सफल सम्पादक हैं।

आर्य प्रतिनिधि सभा, पंजाब का मुख पत्र "आर्यमर्यादा" वास्तव में आर्यजगत् का उच्च कोटिका पत्र है। और वस्तुतः यथानाम तथागुणः के अनुसार आर्य सिद्धान्तों, आर्य इतिहास पर प्रेरक स्तर पर विद्वतापूर्ण लेख प्रकाशित कर आर्यमर्यादाओं की रक्षा कर रहा है।

इसका संचालन और प्रकाशन भी सुव्यवस्थित ढंग से यथा समय होता है। किसी जटिल और शंकास्पद विषय के पक्ष व विपक्ष में लेख प्रकाशित कर "वादे वादे जायते तत्वबोधः" से सच्चा बोध कराता है। ज्ञान वर्द्धक, सचेतक, शोध सहायक लेखों और सामयिक सम्पादकीय लेखों से मार्ग दर्शन कराता हुआ प्रेरणा देता रहता है। इस प्रकार पत्रकार का दायित्व सफलतापूर्वक निभाने के लिये श्रद्धेय सिद्धान्ती जी हार्दिक बधाई के पात्र हैं।

आप द्वारा मुझे यह प्रेरक पत्र दो वर्षों से निःशुल्क मिल राह है इससे महर्षि श्रीमद्दयानन्द सरस्वती के जोधपुर निवास पर मेरे द्वारा किये जा रहे प्रामाणिक शोध कार्य में बहुत बड़ी सहायता मुझे मिल रही है। इस हेतु इस अमूल्य आवश्यक सहायता के लिये सम्माननीय सम्पादक जी का बहुत आभारी हूं। आशा करता हूं कि यह अमूल्य सहयोग यथापूर्व मिलता रहेगा जिससे मुझे अपने ऋषि की जोधपुर जीवनी शोध कार्य में सफलता मिलती रहेगी।

हरयाणा सरकार द्वारा पंजाब विश्वविद्यालय चण्डीगढ़ को ऋषि दयानन्द की जीवनी लिखने हेतु ५० हजार का अनुदान दिया गया। इस निमित उपकुलपति श्री लाला सूरजभान द्वारा नियुक्त श्री श्रीराम शर्मा के ऋषि के जोधपुर में विषपान से हुए बलिदान की समुज्वल कीर्ति को मिटाने के भीषण पट्यंत्र का जिस निर्भीकता व योग्पता से श्री राजेन्द्र जी जिज्ञासु की प्रामाणिक लेख माला एवं श्रद्धेय आनन्द स्वामी जी, श्री पिण्डीदास जी ज्ञानी आदि के लेखों से भण्डाफोड कर उसे असफल का दिया यह मान्य सिद्धान्ती जी का प्रशंसनीय एवं अनुकरणीय कार्य सर्वदा स्मरण रहेगा।

ईश्वर आपको सदा स्वस्थ, आनन्द, निर्भीक, जागरूक, उत्साह सम्पन्न रक्खे और दीर्घायु प्रदान करे, जिससे इसी प्रकार पावन प्रेरणा का प्रवाह चलता रहे।

शुभेच्छु
भैरवसिंह वर्मा आर्य
(केप्टिन जयसिंह कर्नल थानसिहोत)
भू० पू० केप्टिन तोपखाना चौगान उदयपुर स्टेट.
(मंत्री, नगर आर्यसमाज, जोधपुर)

सदस्य, आर्यप्रतिनिधि सभा राजस्थान, सदस्य महर्षि दयानन्द स्मृति भवन न्यास जोधपुर, संचालक महर्षि दयानन्द दिग्विजय मण्डल इसके द्वारा ऋषि जोधपुर जीवनी का प्रामाणिक शोध करना.

आर्य उप प्रतिनिधि सभा, देहरादून

वार्षिक निर्वाचन में निम्न अधिकारी निर्वाचित हुए। प्रधान—श्री कृष्ण-लाल। मंत्री—श्री अनूपसिंह। कोषाध्यक्ष—श्री देवदत्त बाली।

—अनूपसिंह मंत्री

आर्य समाज किशन गंज (मिल एरिया), दिल्ली

वार्षिक निर्वाचन निम्न प्रकार हुआ प्रधान—श्री ओमप्रकाश मल्हन। मन्त्री—श्रीमती कलावती आर्या। कोषाध्यक्ष— श्री हेतु राम जी टण्डन।

उत्सव सफलता पूर्वक सम्पन्न हुआ। अनेक संन्यासी, महात्मा, विद्वान् उपदेशक और भजनीक पधारें। जनता पर अच्छा प्रभाव रहा।

—प्रचार मंत्री

आर्यसमाज का उर्दू साहित्य—१

(श्री पं० जगतकुमार शास्त्री "साधु सोमतीर्थ" आर्योपदेशक सी-२/७३, अशोक विहार-२, देहली-५२)

१—आर्यसमाज का उर्दू साहित्य बहुत अधिक और प्रौढ़ है। आर्यसमाज के आरम्भिक काल में सुयोग्य विचारकों ने खण्डन मण्डन, सुधारात्मक, नीति और सिद्धान्तपरक सभी विषयों पर अत्यन्त शीघ्रता के साथ बहुत सी प्रसाद एवं प्रभावपूर्ण कृतियां प्रस्तुत की थीं। उनमें मौलिकता भी थी, लक्ष्य के प्रति ईमानदारी भी, आकार प्रकार की सुन्दरता एवं शुद्धता भी। ऐसी छोटी बड़ी पुस्तकों की गिनती मेरे अनुमान से कई हजार होगी। आर्यसमाज का जो कर्तृत्व और तेजस्वी स्वरूप उभर कर संसार के सामने आया था, तथा विकसित होता हुआ हम तक पहुंचा है, उसकी पृष्ठ भूमिका में हमारा उर्दू साहित्य ही है।

२—आर्यसमाज के आरम्भ काल का कुछ अंग्रेजी साहित्य भी है, कुछ हिन्दी और संस्कृत साहित्य भी; परन्तु उर्दू साहित्य सबसे अधिक है। उस समय पंजाब और उत्तर प्रदेश में सभी सरकारी काम काज उर्दू भाषा के माध्यम से ही होते थे। राजस्थान, मध्यप्रदेश, मध्यभारत और बिहार–बंगाल में भी उर्दू का अच्छा प्रचलन था। पंजाब और उत्तरप्रदेश में तो शिक्षा का आरम्भ ही उर्दू से होता था। यदि कहीं हिन्दी वा देवनागरी का प्रचलन था भी तो, वह गौण ही था और उसका क्षेत्र भी सीमित ही था। जनसाधारण के हृदयस्थल तक पहुंचने की क्षमता तो तब उर्दू में ही थी। यह ठीक है कि महर्षि दयानन्द जी उर्दू नहीं जानते थे; परन्तु आर्यसमाजों के सब कामों में उर्दू का अमल दखल खूब था। आर्यसमाजों और आर्यसामाजिक सभाओं संस्थाओं के कार्य विवरण उर्दू में लिखे जाते थे। प्रचार के लिये उर्दू के साप्ताहिक और मासिक पत्र अधिक उपयोगी समझे गये थे। सन्ध्या और हवन की पुस्तकें भी उर्दू में थीं और उनसे अर्थ एवं अनुष्ठान विधान ही नहीं; अपितु सन्ध्या मन्त्र, ईश्वर स्तुति, स्वस्तिवाचन, शान्तिकरण तथा हवन आदि में प्रयुक्त वेदमन्त्र भी उर्दू में अर्थात् फारसी लिपि में छपते थे। किसी किसी पुस्तक में मन्त्रों को उच्चारण की शुद्धता में सहायता के विचार से देवनागरी अक्षरों में भी साथ ही साथ, छपवा दिया जाता था, जो कि अधिकांश पाठकों के लिये कुछ विशेष उपयोगी भी न होता था। वह प्रायः छपाई में झंझट और पढ़ाई में उलझन बढ़ाने वाला ही समझा जाता था।

३—हिन्दी साहित्य रचना का भी अपना पृथक् स्थान और मान था, हिन्दी साहित्य का कोई संघटित विरोध कहीं न था; तथापि विशेष उपयोगिता उर्दू साहित्य की ही स्वीकारी जाती थी। क्योंकि प्रबल मांग थी, इसलिये उर्दू का साहित्य खूब लिखा गया, बारम्बार छपा और खूब बिका। उन दिनों के आर्यसमाजी पुस्तक प्रकाशक उर्दू में तो मौलिक पुस्तकें छपवाते ही थे, अपने व्यापारिक हित के लिये वे हिन्दी और अंग्रेजी की पुस्तकों के उत्तम उर्दू अनुवाद भी बहुत शीघ्रता के साथ प्रस्तुत कर देते थे। उर्दू में पौराणिक और सामान्य हिन्दू मतमतान्तरों—सिखों, जैनियों, राधास्वामियों, वेदान्तियों एवं कबीरपन्थियों आदि का साहित्य तो आर्यसमाज के साहित्य की सृष्टि से भी पूर्व ही उर्दू में खूब चल रहा था और आर्यसमाज की प्रतिस्पर्धा में भी अभी पिछले दिनों तक खूब चलता रहा है। ईसाइयों और मुसलमानों का उर्दू साहित्य तो चलता ही था और चलता ही है।

४—उर्दू क्या है ? और हिन्दी क्या ? उपयोगिता किसी की अधिक है ? सौन्दर्य किसमें अधिक है ? वैज्ञानिकता, निर्दोषता एवं परिपूर्णता किसमें है ? इन प्रश्नों का विवेचन यहाँ उचित नहीं। इतिहास विवेचक तो याथातथ्य स्थितियों को ही देखता विचारता है। आर्यसमाज के उर्दू साहित्य में एक नया और निर्णायक मोड़ तब आ गया था, जब श्री लाला मुंशीराम [बाद में अमर शहीद श्री स्वामी श्रद्धानन्द] और उनके साथियों ने "सद्धर्म प्रचारक" आदि समाचारपत्रों में संस्कृत निष्ठ और अरबी फारसी रहित उर्दू [फारसी लिपि में] लेखों का लेखन—प्रकाशन आरम्भ किया था। इसका आर्यसमाजियों और इतरजनों की बोलचाल की भाषा को बदलने में भी भरपूर हाथ रहा है। यह कोई अवांछनीय कार्य न था; तथापि परिवर्तनों और परिणामों का किसी को पहले से पता ही न चला। यही काम शोर मचाकर किया जाता, तो इसका विरोध भी हो सकता था। कुछ काल तक हिन्दी और उर्दू साथ साथ चले। बाद में हिन्दी को सुदृढ़ और अभिनन्दनीय आधार मिल गया। उर्दू साहित्य धीरे धीरे पिछड़ता गया। इस पर भी उर्दू में नव निर्माण और नव संस्कार धीमी गति से चलता रहा।

५—जब आरम्भिक शिक्षा में हिन्दी का प्रचलन बढ़ा और उर्दू का पठन-पाठन, प्रशिक्षण हटा अथवा कम हुआ, तब सहसा ही यह वर्तमान स्थिति उपजी कि उर्दू साहित्य का निर्माण और प्रचलन प्रकाशन एकदम बन्द हो गया अथवा यूं कहें कि लगभग बन्द हो गया। मैं जानता हूं कि आजकल आर्यसामाजिक क्षेत्रों में उर्दू के घोर विरोधी और हिन्दी के कट्टर हिमायती बहुत हैं; तथापि पुरानी पीढ़ियों के आर्यसमाजी, जिनकी संख्या मृत्यु के प्रहारों से निरन्तर ही कम होती जाती है, आज भी उर्दू के प्रेमी हैं। वे अपनी धार्मिक और मानसिक ज्ञान पिपासा को उर्दू के माध्यम से ही शान्त करते हैं। हिन्दी का सहारा लेने में वे अपने आपको असमर्थ पाते हैं। बूढ़े तोते तो टाँयं टाँयं ही किया करते हैं। नई बोली वे कम ही सीखते हैं।

६—इस नई परिस्थिति का एक अवश्यम्भावी परिणाम यह निकला है कि आर्यसमाज का सुविशाल, सुसम्बद्ध, बहुमूल्य और सर्वथा शुद्ध, सात्विक, पूर्णतया कल्याणकारी एवं सर्वहितकारी उद्देश्यों के आधार पर रचा गया उर्दू साहित्य भण्डार अब भारी खतरे में पड़ चुका है। उसके संरक्षण की ओर किसी का ध्यान हो नहीं है। उसको हिन्दी आदि इतर भाषाओं में अनुदित करने का कहीं कोई प्रस्ताव या संकल्प ही नहीं है। उसे ज्यों का त्यों सुरक्षित रखने की कोई योजना भी कहीं नहीं है। शायद उसके मूल्य और महत्व को आजकल तथाकथित अधिकारीवर्ग समझता भी नहीं है। कैसी शोचनीय स्थिति है। एक पुराने सेवक और आर्य प्रचारक के रूप में इस गम्भीर विषय को विचार के लिये आर्यजनता के सामने रखना मैंने उचित समझा है। (क्रमशः)

राष्ट्रियहित रक्तदान अभियान

तिथि १६-४-७३ को कर्मचारी राज्य निगम हस्पताल में यमुनानगर में उपदेशक महाविद्यालय शादीपुर आश्रम यमुनानगर के ब्रह्मचारीवर्ग अनथक कर्मवीर स्वा० वीर भद्र की अध्यक्षता में जिनके नाम तप तथा त्याग सुपात्र हैं—

श्री ईश्वरदत्त जी श्री स्नातन जी जगदीश चन्द्र जी श्री विद्यासागर जी श्री बलबीर सिंह जी हैं।

अपने पंच भौतिक शरीर से रक्तदान करके अपने देश हित सैनिकों के लिये साहस तथा वीरता का प्रमाण दिया है। सेवा के शुभ चिन्तक नवयुवक फौजी सीमा की रक्षा करके विश्व के इतिहास में अग्रसर होवें। तथा भारत का नाम उज्ज्वल करें। आगामी समय पर भी इस आश्रम के ब्रह्मचारी महान् योग के लिए अपना रक्तदान हेतु उत्सुक हैं।

—निज संवाददाता

आर्य समाज संगरूर का वार्षिक निर्वाचन

प्रधान—श्री भीमसेन बजाज। मन्त्री—श्री शिवराम महाजन। कोषाध्यक्ष—श्री प्रेम वल्लभ। पुस्तकाध्यक्ष—श्री देवराज।

—शिवराम महाजन आर्यसमाज संगरूर

आर्य कन्या महाविद्यालय बड़ौदा

आर्य कन्या महाविद्यालय, कारेली बाग बडौदा (गुजरात) के स्नातिका कोर्स में प्रथम वर्ष के केवल मासिक रुपये २५) देकर कन्या को प्रवेश मिल सकेगा।

यह कोर्स सरकार मान्य नहीं है। केवल आर्य सिद्धान्तों से प्रेम रखने वाली तथा महर्षि के सिद्धान्तों का प्रचार करने वाली बहिनों को प्रवेश मिल सकेगा। जिनकी इच्छा तीन वर्ष का कार्य करने की हो वे ही आवेदन पत्र दें। संस्था उत्तीर्ण स्नातिकाओं को सरकारी ग्रेज्युएट का वेतन देगी।

निवेदिका—आचार्या

भारतीय हिन्दू शुद्धि सभा, देहली

ग्राम कड़कड़ी (शाहदरा-देहली) में एक ईसाई परिवार की शुद्धि की गई।

—द्वारकानाथ प्रधान मन्त्री

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब द्वारा प्रकाशित और प्रचारित वैदिक साहित्य

१. बलिदान जयन्ती स्मृति ग्रन्थ—आर्य बलिदानों की गाथा मूल्य ४-५०
२. सोम सरोवर-वेदमन्त्रों की व्याख्या —पं० चमूपति एम. ए. ३-००
३. जीवन ज्योति-वेदमन्त्रों की व्याख्या „ „ ३-००
४. नीहारिकावाद और उपनिषदें „ „ ०-२५
५. Principles of Arya samaj „ „ १-५०
६. Glimpses of swami Daya Nand „ „ १-००
७. पजाब का आर्य समाज पजाब तथा हरयाणा के आर्यसमाज का इतिहास २-००
८. वैदिक सत्सग पद्धति सन्ध्या हवनमन्त्र अर्थ रहित विधि १-००
९. वेदादिर्भाव —आर्यमर्यादा का विशेषांक ०-६५
१०. यजुर्वेद अ० ३२ का स्वाध्याय „ „ „ ०-५०
११. वेद स्वरूप निर्णय —पं० मदनमोहन विद्यासागर १-००
१२. व्यवहारभानु —महर्षि स्वामी दयानन्द ०-५०
१३. स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश— „ „ ०-४०
१४. Social Reconstruction By Budha & Swami Daya Nand By. Pt Ganga Prasad Upadhya M. A. २-००
१५. Subject Matter of the Vedas By S. Bhoomanad १-००
१६. Enchanted Island By Swami Staya Parkashanand १-००
१७. Cow Protection By Swami Daya Nand ०-१५
१८. वेद मे पुनरुक्ति दोष नही है आर्यमर्यादा का विशेषांक २-००
१९. मूर्त्तिपूजा निषध „ „ ०-५०
२०. धर्मवीर पं० लेखराम जीवन —स्वामी श्रद्धानन्द १-२५
२१. कुलियात आर्य मुसाफिर प्रथम भाग—पं० लेखराम की पुस्तकों का संग्रह ६-००
२२. „ „ दूसरा भाग „ „ ८-००
२३. मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र —कु० सुशीला आर्या एम. ए. ०-२५
२४. योगीराज कृष्ण „ „ „ ०-१५
२५. गोकरुणा निधि —स्वामी दयानन्द सरस्वती ०-२०
२६. आर्यसमाज के नियम उपनियम ०-१०
२७. आर्य नेताओं के वचनामृत —साईदास भण्डारी ०-१२
२८. कायाकल्प —स्वामी समर्पणानन्द सरस्वती १-५०
२९. वैदिक धर्म की विशेषतायें —पं० हरिदेव सिद्धान्त भूषण ०-१५
३०. स्वतन्त्रानन्द लेखमाला —स्वा० स्वतन्त्रानन्द जी की जीवनी तथा उनके व्याख्यान १-२५
३१. आत्मानन्द लेखमाला—स्वामी आत्मानन्द सरस्वतीकी जीवनी १-२५
३२. आर्यसमाज के सदस्यता फार्म —सैकड़ा१०-००
३३. वैदिक गीता —स्वामी आत्मानन्द सरस्वती २-५०
३४. मनोविज्ञान तथा शिव संकल्प „ „ „ ३-५०
३५. कन्या और ब्रह्मचर्य „ „ „ ०-१५
३६. सन्ध्या अष्टाङ्गयोग „ „ „ ०-७५
३७. वैदिक विवाह „ „ „ ०-७५
३८. सुखी जीवन —श्री सत्यव्रत २-००
३९. एक मनस्वी जीवन —पं० मनसाराम वैदिक तोप १-५०
४०. छात्रोपयोगी विचारमाला —जगदेवसिह सिद्धान्ती १-५०
४१. स्त्री शिक्षा —पं० लेखराम आर्य मुसाफिर ०-६०
४२. विदेशो में एक साल —स्वामी स्वतन्त्रानन्द २-२५
४३. वेद विमर्श —पं० भगवद्दत्त वेदालंकार २-००
४४. वेद विमर्श —पं० वेदव्रत शास्त्री २-००
४५. आसनों के व्यायाम „ „ „ १-००
४६. महर्षि जीवन गाथा —स्वामी वेदानन्द वेदवागीश २-२५
४७. मांस मनुष्य का भोजन नहीं—स्वामी ओमानन्द सरस्वती १-००
४८. वीर भूमि हरयाणा „ „ „ ४-००
४९. चोटी क्यों रखें —स्वामी ओमानन्द सरस्वती ०-५०
५०. हमारा फाजिल्का —श्री योगेन्द्रपाल १-५०
५१. सत्संग स्वाध्याय —स्वामी ओमानन्द सरस्वती ०-५०
५२. जापान यात्रा „ „ „ ०-७५
५३. भोजन „ „ „ ०-७०
५४. ऋषि रहस्य —पं० भगवद्दत्त वेदालंकार २-००
५५. स्वामी श्रद्धानन्द जीवन परिचय १-२५
५६. मेरा धर्म —आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति ७-००
५७. वेद का राष्ट्रिय गीत „ „ „ ५-००
५८. ईशोपनिषद्भाष्य —इन्द्र विद्या वाचस्पति २-००
५९. पं० गुरुदत्त विद्यार्थी जीवन —डा० रामप्रकाश १-३०
६०. वैदिक पथ —पं० हरिदेव सिद्धान्त भूषण २-००
६५. वैदिक प्रवचन —पं० जगत्कुमार शास्त्री २-२५
६१. ज्ञानदीप „ „ „ २-००
६२. आर्यसमाज का सैद्धान्तिक परिचय ०-५५
६३. The Vedas ०-५०
६४. The Philosophy of Vedas ०-५०
६६. ईश्वर दर्शन पं० जगत्कुमार शास्त्री १-५०
६७. श्वेताश्वरोपनिषद् „ „ ४-००
६८. ब्रह्मचर्य प्रदीप „ „ ४-००
६९. भगवत प्राप्ति क्यों और कैसे —स्वा० सत्यानन्द ०-६०
७०. आर्य सामाजिक धर्म „ „ ०-७५
७१. बोध प्रसाद —स्वामी श्रद्धानन्द ०-२५
७२. ऋषि दर्शन —पं० चमूपति एम. ए. ००-२५
७३. ऋषि का चमत्कार „ „ „ ००-१२
७४. वैदिक जीवन दर्शन „ „ „ ००-२०
७५. वैदिक तत्व विचार „ „ „ ००-५०
७६. देव यज्ञ रहस्य „ „ „ ००-३५
७७. स्वतन्त्रानन्द संस्मरणांक १-५०

सभी पुस्तकों के प्राप्ति स्थान

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब, गुरुदत्त भवन, जालन्धर (४२५०) टेलीफोन
„ „ „ १५ हनुमान् मार्ग नई दिल्ली-१ „ (३१०१५०)
„ „ „ दयानन्द मठ रोहतक (हरयाणा) „ (५७४)

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के लिए जगदेवसिह सिद्धान्ती शास्त्री द्वारा सैनी प्रिंटर्स पहाड़ी धीरज, देहली में मुद्रित और १५ हनुमान् रोड, नई दिल्ली—१ से प्रकाशित

२८ ज्येष्ठ सं० २०३० वि०, दयानन्दाब्द १४९,
तदनुसार १० जून १९७३ रविवार
सृष्टि सं०-१९६०८५३०७३

वर्ष ५ वार्षिक शुल्क स्वदेश में १०) रुपये
अंक २८ „ „ विदेश में २०) रुपये
एक प्रति का मूल्य ००-२० पैसे

सम्पादक—जगदेवसिंह सिद्धान्ती शास्त्री, पूर्व लोकसभा सदस्य (फोन ५१२१६३)

वेदमन्त्रार्थ-प्रवचन

पुनस्तमेव विषयमाह ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

हिमेनाग्निं घ्रंसमवारयेथां पितुमतीमूर्जमस्मा अधत्तम् ।
ऋबीसे अत्रिमश्विना वनीतमुन्निन्यथुः सर्वगणं स्वस्ति ॥

ऋ० १.११६.८

पदार्थः—(हिमेन) शीतेनाग्निं (घ्रंसम्) रात्र्या दिनम (अवारयेथाम्) निवारयेतम् (पितुमतीम्) प्रशस्तान्नयुक्ताम् (ऊर्जम्) पराक्रमाख्यां नीतिम् (अस्मै) (अधत्तम्) पोषयतम् (ऋबीसे) दुर्गतभासे व्यवहारे (अत्रिम्) अत्तारम् (अश्विना) यज्ञानुष्टानशीलौ (अवनीतम्) अर्वाक् प्रापितम् (उत्) (निन्यथुः) नयतम् (सर्वगणम्) सर्वेगणा ऽ रस्तत् (स्वस्ति) सुखम् ॥

अन्वयः—हे अश्विना युवां हिमेनोदकेनाग्निं घ्रंसं चावारयेथामस्मै पितुमतीमूर्जमधत्तमृबीसेऽत्रिमवनीतं सर्वगणं स्वस्ति चोन्निन्यथुरूर्ध्वं नयतम् ॥

भावार्थः—विद्वद्भिरेतत्संसारसुखाय यज्ञेन शोधितेन जलेन वनरक्षणेन च परितापो निवारणीयः संस्कृतेनान्नेन बलं प्रजननीयम् । यज्ञानुष्ठानेन त्रिविधदुःखं निवार्य सुखमुन्नेयम् ॥

भावार्थः—हे (अश्विना) यज्ञानुष्ठान करने वाले पुरुषो तुम दोनों (हिमेन) शीतल जल से (अग्निम्) आग और (घ्रंसम्) रात्रि के साथ दिन को (अवारयेथाम्) निर्वारो अर्थात् बिताओ (अस्मै) इसके लिये (पितुमतीम्) प्रशंसित अन्नयुक्त (ऊर्जम्) बलरूपी नीति को (अधत्तम्) पुष्ट करो और (ऋबीसे) दुःख से जिसकी आभा जाती रही उस व्यवहार में (अत्रिम्) भोगने हारे (अवनीतम्) पीछे प्राप्त कराये हुए (सर्वगणम्) जिसमें समस्त उत्तम पदार्थों का समूह है उस (स्वस्ति) सुख को (अन्निन्थुः) उन्नति देओ ॥

भावार्थः—विद्वानों को चाहिये कि इस संसार के सुख के लिये यज्ञ से शोधे हुए जल से और वनों के रखने से अति उष्णता (खुश्की) दूर करें अच्छे बनाये हुए अन्न से बल उत्पन्न करें और यज्ञ के आचरण से तीन प्रकार के दुःख को निवार के सुख को उन्नति देवें ॥

—(ऋषिदयानन्द भाष्य) ●

पुनर्जन्मविषयः

(यजु० १९.४७)—(द्वे सृती०) इस संसार में हम दो प्रकार के जन्मों को (अशृणवम्) सुनते हैं। एक मनुष्य-शरीर का धारण करना और दूसरा नीच गति से पशु, पक्षी, कीट, पतङ्ग, वृक्ष आदि का होना। इनमें मनुष्य शरीर के तीन भेद हैं। एक पितृ अर्थात् ज्ञानी होना, दूसरा देव अर्थात् सब विद्याओं को पढ़ के विद्वान् होना, तीसरा मर्त्य अर्थात् साधारण मनुष्य-शरीर का धारण करना। इनमें प्रथम गति अर्थात् मनुष्य-शरीर पुण्यात्माओं और पुण्य पाप तुल्य वालों का होता है और दूसरा जो जीव अधिक पाप करते हैं उनके लिये है। (ताभ्यामिदं विश्वमेजत्समेति०) इन्हीं भेदों से सब जगत् के जीव अपने अपने पुण्य और पापों के फल भोग रहे हैं (यदन्तरा पितरं मातरं च) जीवों को माता और पिता के शरीर में प्रवेश करके जन्म धारण करना, पुनः शरीर का छोड़ना, फिर जन्म को प्राप्त होना वारम्वार होता है। जैसा वेदों में पूर्वापर जन्म के धारण करने का विधान किया है वैसा ही निरुक्तकार ने भी प्रतिपादन किया है ॥ (निरुक्त अ० १४, खं० ६) जब मनुष्य को ज्ञान होता है तब वह ठीक ठीक जानता है कि (मृतश्चाहं पु०) मैंने अनेक वार जन्म मरण को प्राप्त होकर नाना प्रकार के हजारह गर्भाशयों का सेवन किया है ॥१॥ (आहारा वि०) अनेक प्रकार के भोजन किये, अनेक माताओं के स्तनों का दुग्ध पिया, अनेक माता पिता और सुहृदों को देखा ॥२॥

—(ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका) ●

सत्यार्थप्रकाश (दशम समुल्लास)

(प्रश्न) जो सभी अहिंसक हो जायें तो व्याघ्रादि पशु इतने बढ़ जावें कि सब गाय आदि पशुओं को मार खायें तुम्हारा पुरुषार्थ ही व्यर्थ हो जाय? (उत्तर) यह राजपुरुषों का काम है कि जो हानिकारक पशु वा मनुष्य हों उनको दण्ड देवें और प्राण से भी वियुक्त कर दें। (प्रश्न) फिर क्या उनका मांस फेंक दें? (उत्तर) चाहे फेंक दे चाहे कुत्ते आदि मांसाहारियों को खिला देवें वा जला देवें अथवा कोई मांसाहारी खावे तो भी संसार की कुछ हानि नहीं होती किन्तु उस मनुष्य का स्वभाव मांसाहारी होकर हिंसक हो सकता है जितना हिंसा और चोरी विश्वासघात छल कपट आदि से पदार्थों को प्राप्त होकर भोग करना है वह अभक्ष्य और अहिंसा धर्मादि कर्मों से प्राप्त होकर भोजनादि करना भक्ष्य है जिन पदार्थों से स्वास्थ्य रोगनाश बुद्धिबलपराक्रमवृद्धि और आयु वृद्धि होवे उन तण्डुलादि गोधूम फल मूलकन्द दूध घी मिष्टादि पदार्थों का सेवन यथायोग्य पाक मेल करके यथोचित समय पर मिताहार भोजन करना सब भक्ष्य कहाता है। जितने पदार्थ अपनी प्रकृति से विरुद्ध विकार करने वाले हैं उन उनका सर्वथा त्याग करना और जो जो जिसके लिये विहित हैं उन उन पदार्थों का ग्रहण करना यह भी भक्ष्य है। (प्रश्न) एक साथ खाने में कुछ दोष है वा नहीं? (उत्तर) दोष है, क्योंकि एक के साथ दूसरे का स्वभाव और प्रकृति नहीं मिलती जैसे कुष्ठी आदि के साथ खाने से अच्छे मनुष्य का भी रुधिर बिगड़ जाता है वैसे दूसरे के साथ खाने में भी कुछ बिगाड़ ही होता है सुधार नहीं इसलिये—

नोच्छिष्टं कस्यचिद्दद्यान्नाद्याच्चैव तथान्तरा ।
न चैवात्यशनं कुर्यान्नोच्छिष्टः क्वचिद् व्रजेत् ॥—मनु० ॥ २-५६ ॥

न किसी को अपना जूठा पदार्थ दे और न किसी के भोजन के बीच आप खावे न अधिक भोजन करे और न भोजन किये पश्चात् हाथ पांव धोये बिना कहीं इधर-उधर जाय ॥

—(ऋषिदयानन्द) ●

गतांक से आगे—

सूखा अवर्षण दूर हो सकता है

(श्री पं० वीरसेन वेदश्रमी, वेदसदन महारानी पथ, इंदौर—१)

यज्ञ का द्वितीय प्रधान तत्त्व—घृत

उपरोक्त मंत्र के आधार पर दूसरा तत्व खोजने के लिये यह परिणाम ज्ञात होता है कि जो तत्व अग्नि की विशेष वृद्धि करने वाले हैं उनका उपयोग भी करना चाहिये। अग्नि की लपटों को जो बढ़ाने वाला, तथा थोड़ी सी भी अग्नि शिखा को ऊर्ध्व, उन्नत वा अंतरिक्ष की ओर जाने में सहायक हो परन्तु अंतरिक्ष को दुर्गन्धित न करने वाला, रूक्षता उत्पन्न न करने वाला तथा वर्षा कराने में भी सहायक हो उसका वृष्टि यज्ञों में प्रधान वा मुख्य रूप से प्रयोग करना चाहिये। ऐसा पदार्थ घृत ही है जिस से अग्नि अत्यन्त प्रचण्ड होती है, अंतरिक्ष को सुगंधित करता है, शुद्ध करता है, वातावरण में स्निग्धता भी भरता है तथा वृष्टि कराने में भी परम कहायक है।

घृत की धाराओं की हवि वृष्टि कराती है

घृत के वृष्टि कराने के इस महान् गुण को वेद ने निम्न मंत्र से स्पष्ट किया है।

घृतं पवस्व धारया यज्ञेषु देववीतमः।
अस्मभ्यं वृष्टिमापव। (ऋग्वेद ९।६८।१३)

अर्थात्—यज्ञों में अत्यन्त गति, कान्ति उत्पन्न करने वाली घृत की धाराओं से अग्नि को तृप्त करो जिससे वह हमारे लिये वृष्टि को प्रदान करे। अतः वृष्टि यज्ञों में अग्नि के पश्चात् अग्नि का सहयोगी या अग्नि का प्रधान द्रव ईन्धन या अग्नि की आत्मा एवं वृष्टि कार्य में परम सहयोगी पदार्थ घृत की धारा रूप में आहुतियां ही हैं।

अन्य सहायक हविद्रव्य—अन्नादि

अग्नि और घृत के अतिरिक्त अन्य स्नेह द्रव्य भी वृष्टि यज्ञ में सहायक हैं। स्नेह या स्नेह द्रव्यों के अतिरिक्त अन्न की भी आहुति आवश्यक है। अन्न घृत या स्नेह पदार्थ भी रहता है जो कि अप्रकट अवस्था में है तथा उसमें सोम अंश भी है। ये दोनों वर्षा कराने में अत्यन्त सहायक हैं। वर्षा कराने में इनकी उहयोगिता का वर्णन निम्न मन्त्र में बहुत स्पष्ट एवं सुन्दर शब्दों में है।

ये कीलानेन तर्पयन्ति ये घृतेन यो वा वयो मेदसा संसृजन्ति।
ये अद्भिरीशाना मरुतो वर्षयन्ति ते नो मुंचन्त्विहंसः॥

(अथर्व ४।२७।५)

अर्थात्—जल प्रपूरित वायुएं जो कि अन्न की आहुति के धूम्र से सम्मिश्रित होने से परिपुष्ट होती हैं, जो घृताहुति के धूम से सम्मिश्रित होने से सम्पुष्ट होती हैं अथवा जो अन्य स्नेहपूर्ण पदार्थों से पुष्ट होती हैं—वे वर्षा कराती हैं। वे हमें अवर्षण की बाधा, दुःख, क्लेश, पाप से दूर करें। इस प्रकार इस मन्त्र से अन्न और स्नेह युक्त पदार्थों का जलपूर्ण वायुओं—मानसून को हवाओं या मेघों में वर्षा कराने की सामर्थ्य प्रदान कराने का रहस्य ज्ञात होता है।

जल, दूध, दही की हवि

इस मन्त्र में अद्भिरिशाना—शब्द से यह भी प्रकट होता है कि दूध या जलीय तत्व प्रधान पदार्थों या जल दूध आदि की आहुतियों से भी पर्जन्य में वर्षण की क्रिया शीतलता उत्पन्न होना संभव है। क्योंकि बिना जलीय तत्व के रूक्ष द्रव्यों का या शुष्क हवि का सोम रूप में शीघ्र परिवर्तन नहीं हो सकता है तथा न उसका अपने समीपस्थ पृथिवी मण्डल के अन्तरिक्ष में निवास ही हो सकता है। आहुति के द्रव्यों को गुड़, शहद आदि मधुर द्रव्यों से मिश्रित जल, दूध, दही आदि से आर्द्र करके आहुति देना भी अत्यन्त उपयोगी है। वेद ने इस रहस्य को एक स्थान पर सोम के निमित्त निम्न प्रकार प्रकट किया है—पयः सोमो दधातु मे। सोमाय स्वाहा॥ (अथर्व।१९।४३।५) अर्थात्—सोम के निर्माण के निमित्त पय की आहुति अग्नि में प्रदान करनी चाहिए। पय का तात्पर्य शुद्ध, पेय, मधुर जल, अन्न, औषधि वनस्पति अथवा उनका मधुर रस या दाध अथवा इन सबसे निष्पन्न सार घृत या स्नेह पदार्थ ही है।

हविद्रव्य घृत से सिक्त हो

सब पयों का सारभूत पदार्थ घृत ही है। अतः यज्ञ की हवि को अच्छे प्रकार घृत से सिक्त करके आहुति देना सर्वश्रेष्ठ है। ऐसी घृत सिक्त आहुति द्रव्य से यज्ञ द्वारा सोम का निर्माण बलवत्तम होता है और अत्यन्त शीघ्र होता है। इस प्रकार के हविद्रव्यों से उत्पन्न सोम पृथिवी मण्डल के निकट के ही प्रदेश में रहकर अन्तरिक्षस्थ सोम एवं पर्जन्यों को आकर्षित कर वर्षा कराने में परम सहायक होता है। अतः घनत्व सम्पादन में यह उपयोगी होता है। जल का ही सार, रस और दूध है जो वृक्ष वनस्पति एवं अन्नादि से भी प्राप्त होते हैं। रस और दूध का ही सार घृत या स्नेह पदार्थ है। अतः जल का ही सार घृत है। इसीलिए घृत भी जल वाची है। जैसा कि—घृतमित्युदकनाम—निघण्टु में कहा है। घृत सिंचित सामग्री बहुत अधिक जल की आहुति का सोम निर्माण में प्रतिनिधित्व करती है। यह उपरोक्त कारणों से स्पष्ट ज्ञात हो जाता है—'घृतवद्भिश्च हव्यैः। (ऋ० ७।३।७) एवं—सं बर्हिरक्तं हविषा घृतेन—(अथर्व० ७।१०।३) इन मन्त्र वाक्यों से घृत तथा युक्त हवि का यज्ञ में प्रयोग करना ज्ञात होता है। घृत रूपी हवि से यज्ञाग्नि प्रचण्ड रूप से प्रदीप्त होती है। उससे सोम बनकर वर्षा होती है।

यज्ञ में मंत्र उच्चारण के साथ हवि प्रदान करें

घृत, पय दूध, अन्न आदि की हवि यज्ञ में मंत्र उच्चारण के साथ देवें। बिना मंत्र के उसे जला देने मात्र से हम यथोचित वर्षा का लाभ प्राप्त नहीं कर सकते। वेद मंत्र पूर्वक आहुति प्रदान करते हुए तथा अपने मन को भी उसी में लगाने के लिए निम्न मंत्र में आदेश है—

अग्निं घृतेन वावृधुः स्तोमेभिर्विश्वचर्षणिम्।
स्वाधीभिर्वचस्युभिः। (ऋ० ५।१४।६)

अर्थात्—इस अग्नि को घृत से बढ़ाते हैं और स्तोम मंत्रों के साथ क्योंकि वह विश्वचर्षणि है—सब में व्याप्त होकर उनके गुणों का प्रकाशक एवं वर्धक हैं। अतः स्वाधीभिः वचस्युभिः—अपने ज्ञान एवं मनोयोग पूर्वक वाणियों से अग्नि की स्तुति के मंत्रों के साथ आहुति देने से अग्नि की प्रचण्डता नियमित समय के अन्तरों से स्वाहा के समय होगी और मंत्रों के उच्चारण के समय प्रचण्डता में क्षीणता होगी जिससे अन्तरिक्ष में सोम विविध स्तरों में क्रमशः स्थान ग्रहण करता रहेगा।

वृष्टि यज्ञों में मंत्र ध्वनि से तत्वों पर प्रभाव

स्तुति मंत्रों का यज्ञ में प्रयोग करने से ध्वन्यात्मक प्रभाव तत्वों पर पड़ता है और उनसे अनुकूल प्रभाव प्राप्त करने में सुगमता होती है। वर्तमान वैज्ञानिकों ने कृषि में संगीत ध्वनि का प्रभाव उत्पादन वृद्धि में संगीत ध्वनि का प्रभाव उत्पादन वृद्धि में अनुभव किया ही है। परन्तु वेद तो—इन्द्राय साम गायत (सामवेद मं० ३८८) स्पष्ट कहता है कि 'पर्जन्याय प्रगायत' (अ० ७।१०२।१) पर्जन्य के लिए खूब गान करो। हमारे यहां पर्जण्य के लिए मेघमल्हार राग विख्यात ही है। अग्नि स्तोमेन बोधय (ऋ० ५।१४।१) अग्नि को स्तुति मंत्रों से जागृत, प्रबुद्ध एवं प्रवृद्ध करो। बृहदिन्द्राय गायत (यजु० २०।३०) इंद्र के लिये बृहत् साम का गान करो। उपास्मै गायता नवः पवमानायेन्दवे (साम० ६५१) हे मनुष्यो, इस बहने वाले या पवित्रकारक सोम के लिये समीप होकर गान करो इत्यादि अनेक मंत्र, ध्वनि का प्रभाव प्राकृतिक पदार्थों पर प्रकट करते हैं। अत मंत्रपूर्वक हवि प्रदान करने से वर्षा में बहुत लाभ होता है। वृष्टि यज्ञ के अवसरों पर सामूहिक रूप से उक्त स्वर में मंत्र की ध्वनि वर्षा कराने में सहायक होती है जैसे वर्षा में मेंढक जोर-जोर से बोलते हैं उसी सदृश ध्वनि का संकेत वृष्टि के लिए मंत्रों का करने का ऋग्वेद ७।१०३।१ में बताया गया है।

वृष्टि यज्ञ के लिए आहुति संख्या

वृष्टि यज्ञ के पदार्थ आदि के वर्णन के अतिरिक्त आहुतियों की भी संख्या इसमें महत्व रखती है। अन्तरिक्ष से वर्षा के लिए अनुकूल स्थिति होने पर कम संख्या में आहुति देने से शीघ्र वर्षा का लाभ हो जाता है। अतः ऐसे परिणामों को देखकर (दो) या (पांच) किलो अथवा १०-२० किलो घृत या हविद्रव्य से वृष्टि हो जायेगी यह निर्णय करना उचित नहीं है। उससे थोड़ी वर्षा हो जाने पर आगे वृष्टि में विलम्ब हो जाता है। अवर्षण की स्थिति होने पर एक लक्ष या सवा लक्ष आहुति का यज्ञ करना चाहिये। (शेष अगले अंक में)

आर्यसमाज शताब्दी समारोह (मेरठ) का घोषणा-पत्र

(श्री पं० प्रकाशवीर शास्त्री प्रधान आर्य प्र० नि० सभा उत्तर प्रदेश)

आर्यसमाज अपने जीवन के सौ वर्ष पूर्ण करने जा रहा है। उत्तर प्रदेश आर्यप्रतिनिधि सभा ने निरन्तर तीन वर्ष तक आर्यसमाज शताब्दी समारोह मनाने का निर्णय किया है। उसी श्रृंखला में हुये पहले अधिवेशन का समापन आज होने जा रहा है। हमारा यह सौभाग्य रहा जो इस ऐतिहासिक अधिवेशन की अध्यक्षता सुप्रसिद्ध वैदिक विद्वान् स्वामी सत्यप्रकास जी सरस्वती ने की। भारत के इस महान् सुपूत को विद्वत्ता के साथ साथ आर्यसमाज का स्नेह भी पैतृक वसीयत में मिला है। कुछ ही दिनों बाद स्वामी जी वैदिक धर्म के प्रचार के लिये अमेरिका और दूसरे यूरोपाय देशों की यात्रा पर जा रहे हैं। हमें विश्वास है जो सांस्कृतिक अभियान कभी स्वामी विवेकानन्द जी और स्वामी रामतीर्थ ने विदेशों में प्रारम्भ किया था उसे स्वामी सत्यप्रकाश जी जैसे सन्त और भी अधिक प्रभावशाली बनायेंगे। उन देशों में भारतीय संस्कृति की जो भूख आज जगी है उसको भी इन जैसे उच्च कोटि के संन्यासी ही तृप्ति कर सकते हैं।

उत्तर प्रदेश आर्य प्रतिनिधि सभा भारत का सबसे पुराना आर्य सामाजिक सघटन है। १८८६ में इसी मेरठ नगर में आर्य प्रतिनिधि सभा को नींव पड़ी थी। आज अब वह समय तो है नहीं जब हम अपनी पिछली सफलताओ का बखान करें। अब तो हमें आगे क्या करना है उसकी सक्षेप में चर्चा यहां मैं करना चाहता हूं। दूसरे शब्दों में हमारे भावी कार्यक्रमों की यह घोषणा भी है—

१. हमारी यह इच्छा है वैदिक साहित्य और मंच प्रचार के साथ-साथ जनसेवा के रचनात्मक कार्यों पर और अधिक बल दें। इसके लिए दयानन्द सेवाश्रमों की अधिक से अधिक स्थापना हम करना चाहते हैं। इन सेवाश्रमों द्वारा चिकित्सा, छात्रावास और पिछड़े तथा पर्वतीय क्षेत्रों में विद्यालय खोलने आदि की योजनायें हाथ में लेने का प्रस्ताव है। पारिवारिक दायित्वों से मुक्त उन व्यक्तियों को भी जो वानप्रस्थाश्रम का व्यावहारिक जीवन व्यतीत करना चाहते हैं इन सेवाओं द्वारा जनसेवा करने के लिए हम आमंत्रित करते हैं। ऐसे सेवाभावी महानुभावों में जो चाहेंगे उनकी वैयक्तिक जिम्मेदारियां हम अपने कंधों पर ले लेंगे जिससे अपने जीवन निर्वाह के लिए उन्हें परमुखापेक्षी न बनना पड़े। उनके लिए प्रारम्भ में एक प्रशिक्षण केन्द्र की भी व्यवस्था की जायगी। जहां उन्हें अपने दायित्वों से परिचित कराने के साथ-साथ उनकी रुचि का भी अध्ययन किया जा सके। दयानन्द सेवाश्रमों की इस योजना का प्रारम्भ भी अगले ही मास में नैनीताल जिले के भुवाली और रामगढ़ नामक स्थानों में शाखायें खोलकर हम कर रहे हैं। हमारी इच्छा है अगले दो वर्षों में उत्तर प्रदेश के हर जिले में कम से कम एक दयानन्द सेवाश्रम अवश्य स्थापित हो जाय जो जन-साधारण के लिए आर्यसमाज का विनम्र उपहार रहेगा।

२. प्रायः देखा गया है आर्यसमाजके वह कार्यकर्ता जिन्होंने अपना सारा जीवन वैदिक सिद्धान्तोंके प्रचार और प्रसार में लगा दिया। अपनी अंतिम अवस्था में अथवा रोगग्रस्त होने पर अपने को असहाय-सा अनुभव करते हैं। परिणामस्वरूप आर्य समाज का मंच अच्छे वक्ताओं और संन्यासियों से रिक्त-सा होता जा रहा है। जब तक दूसरे सामाजिक और सांस्कृतिक संघटनों में कार्य करने वाले व्यक्तियों के लिए अंतिम अवस्था में जीवन निर्वाह की उतनी कठिन समस्या नहीं रहती।

हम ऐसे समाजसेवी कार्यकर्ताओं के असमर्थ होने पर उनकी सेवा करने के लिए ऐसा कोष की स्थापना करेंगे। कोष को सभा सोसायटियों में प्रति वर्ष होने वाले परिवर्तनों से दूर रख कर किसी न्यास (ट्रस्ट) अथवा दूसरे वैध ढग से व्यय किया जायगा। यह न्यास भी इसी वर्ष स्थापित हो जायगा।

३. गुरुकुलों और डी. ए. वी. कालेजों के रूप में आर्यसमाज की कई सौ शिक्षण सस्थाएं उत्तर प्रदेश में चल रही हैं। इनमें स्नातकोत्तर महाविद्यालय से लेकर प्रारंभिक विद्यालय भी सम्मिलित हैं। उत्तर प्रदेश सरकार के बाद शिक्षा पर दूसरा सबसे अधिक बजट आर्यसमाज का ही बनता है। पर अब भविष्य में नई बदने वाली शिक्षण सस्थाओ के रूप में परिवर्तन करने का विचार है। यदि आर्य समाजों की समर्थ शाखाएं शिक्षण संस्थायें खोलने में ही रुचि रखती हैं तो स्कूल कालेजों के बजाय दयानन्द बाल मन्दिर खोलने की ओर अधिक ध्यान दें। छोटी आयु में जो संस्कार बालकों के मन पर छाप बनकर लग जायेंगे वह जीवन भर उनके साथ रहेंगे।

४. कुछ दिनों से यह भी गम्भीरता से अनुभव किया जा रहा है युवा पीढ़ी आर्यसमाज में बहुत कम जा रही है। वैसे यह शिकायत केवल आर्यसमाज की ही नहीं दूसरे भी सामाजिक और सांस्कृतिक संघटनों की है। भारत की इस युवा पीढ़ी के पश्चिम की ओर बढ़ते हुए पग कभी कभी तो पुरानी पीढ़ी की आलोचना और आक्रोश का भी विषय बन जाते हैं। लेकिन क्या कभी हमने उन्हें पश्चिम की उन हवाओं का वह विकल्प दिया कि वह उनसे प्रभावित न हों। अथवा यह जानने का यत्न किया क्यों वह उधर दौड़ रहे हैं। जबकि पश्चिम का युवक अपने घुटन भरे वातावरण से ऊब कर भारत की ओर उन्मुख हो रहा है। आर्यसमाज युवा पीढ़ी की समस्याओं के अध्ययन के लिये न केवल उच्चस्तरीय युवा अध्ययन केन्द्र ही स्थापित नहीं करेगा अपितु युवा सहयोगी मंडल भी स्थापित करने का विचार है। यह सहयोगी मंडल उनकी कठिनाईयों के निराकरण में यथाशक्ति सहायक होने के अतिरिक्त उनकी रुचि के अनुरूप कुछ रचनात्मक कार्यों में भी उनकी प्रतिभा और कार्यक्षमता का उपयोग करेंगे। बड़े नगरों और पर्वतीय केन्द्रों में कुछ युवा पर्यटन केन्द्र भी बनाने की योजना है जहां भारत के विभिन्न भागों से आकर युवक कुछ दिन रह सकें और पारस्परिक बन्धुत्व एवं राष्ट्रिय ऐक्य बढ़ाने में सहायक हो सके।

आर्यसमाज के संघटनों में भी युवा पीढ़ी का प्रतिनिधित्व भी घट रहा है। पहले आर्य कुमार सभाएं इस अभाव की पूर्ति करती थीं। आर्यसमाज में आने से पूर्व वह युवकों के लिये प्रशिक्षण केन्द्र भी बनी हुई थीं। कोई आर्यसमाज ऐसी नही थी जहां आर्यकुमार सभा न हो। पर अब वह बात नहीं रही। शताब्दी के अवसर पर फिर जहा आर्यकुमार और आर्यकुमारी सभाओं की स्थापना का अनुरोध हम कर रहे हैं वहां आर्यसमाजों से यह भी अपेक्षा करते हैं वह अपने सघटनों में नई पीढ़ी को आने का अधिक से अधिक अवसर प्रदान करें।

५. प्रचलित जात-पांत समाप्त करने के लिये अन्तर्जातीय वैवाहिक सम्बन्धों को प्रोत्साहन मिलना आवश्यक है। दुर्भाग्य से स्वतन्त्रता के बाद वह बुराई घटने के बजाय और बढ़ रही है। आर्यसमाज का दायित्व इस दिशा में दूसरे से कुछ अधिक है। हमें अपने संघटनों में ऐसे सदस्यों को और भी अधिक प्रोत्साहित करना चाहिये जो अपने व्यवहार में जात बिरादरी की उस बुराई से ऊपर उठें। आर्यसमाज के सदस्यों और आर्यसमाज से सम्बन्धित शिक्षण संस्थाओं के प्रचारकों को अपने नाम के साथ जातिवाचक शब्द का प्रयोग नहीं करना चाहिये। भविष्य में यदि कोई ऐसा करेगा तो उसके विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही की जा सकती है।

शेष पृ ४ पर

पंजाब तथा हरयाणा हाईकोर्ट ने प्रतिनिधियों के विरुद्ध श्री सोमनाथ मरवाहा की आपत्तियों का निर्णय कर दिया।

सभा का निर्वाचन ९-९-७३ को आर्य कालिज पानीपत में स्वामी सर्वानन्द जी रिसीवर की अध्यक्षता में होगा।

(विशेष प्रतिनिधि द्वारा)

चण्डीगढ़ दिनांक १-६-७३ आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का भीतरी संघर्ष जिसकी वस्तुस्थिति से आयजगत् भली प्रकार ये अवगत है उसका अन्त अब दिखायी देने लगा है। श्री बी० एस० ढिल्लों जज हाईकोर्ट ने ३ वर्ष की सतत सुनवाई के बाद इसे अन्तिम रूप दे दिया है। अर्थात् डा० हरिप्रकाश आदि की ओर से की गयी लगभग १०० आर्यसमाजों के प्रतिनिधियों की आपत्तियों का आज निर्णय कर दिया। इसके अतिरिक्त यह भी निश्चय कर दिया कि सभा का निर्वाचन आर्य कालिज पानीपत में ९-९-७३ को स्वामी सर्वानन्द जी रिसीवर सभा की अध्यक्षता में होगा तथा श्री आर० एस० फुलका उनके सहायक होंगे। निर्णय की प्रति मिलने पर विस्तार में प्रकाश डाला जावेगा। प्रो० रामसिह जी के वकील ने २९-७-७३ का निर्वाचन कराने का सुझाव रखा था। जज महोदय ५-८-७३ को कराने का विचार रखते थे परन्तु डा० हरिप्रकाश ने कहा कि वह सब १३-८-७३ के सम्मेलन के लिए मौरेशस जावेंगे। उनकी सुविधा को ध्यान में रख कर ही ९-९-७३ को निर्वाचन रखा है।

यह तो सब को पता ही है कि श्री वीरेन्द्र आदि ने ५-५-६८ को अवैध तथा अनधिकार चेष्टा से अम्बाला छावनी में निर्वाचन घोषित किया था उसके बाद बीसों अभियोग स्थान-स्थान पर चल पड़े। महात्मा आनन्द स्वामी जी तथा महात्मा आनन्द भिक्षु जी भी झगड़ा समाप्त कराने में असफल रहे। श्री वीरेन्द्र आदि का व्यवहार देख कर महात्मा आनन्द स्वामी जी ने सभा का सारा कार्य भार प्रो० रामसिह जी तथा उनकी अन्तरंग सभा पर वापस डाल दिया। इसके उपरान्त श्री वीरेन्द्र आदि श्री मरवाहा के उकसाने पर पंजाब हाईकोर्ट में चले गये। सभा को एक धार्मिक संस्था समझते हुए जस्टिस ढिल्लों ने हाईकोर्ट के तत्वावधान में सभा का निर्वाचन कराने की स्वयं जिम्मेदारी ली। सर्वप्रथम सम्बन्धित आर्यसमाजों का निर्णय किया। प्रो० रामसिह के वकिल ने विरोधी पक्ष की २६२ आर्यसमाजों पर आपत्ति करके उन्हें सभा से सम्बन्धित मान लिया। परन्तु श्री मरवाहा ने प्रो० रामसिह की सूचि की सब समाजों को चुनौती दी। श्री भल्ला द्वारा २१७ आर्यसमाजों का रिकार्ड दिखाने के बाद ४८३ आर्यसमाजों का सम्बन्ध स्वीकार हुआ। फिर जज महोदय ने दोनों पक्षों की सम्मति से श्री अजीत सिह साही, पूर्व डिप्टी कमिश्नर को ६-८-७१ को निर्वाचन कार्य के लिए रिटनिंग आफिसर नियुक्त किया। परन्तु श्री वीरेन्द्र पक्ष ने उसी दिन उन्हें अस्वीकार कर दिया तो श्री आर० एस० फुलका को रिटनिंग आफिसर नियुक्त किया गया। श्री फुलका ने ४८३ आर्यसमाजों को अपने अपने प्रतिनिधियों का निर्वाचन कराने के लिए लिखा। ४१२ आर्यसमाजों ने फार्म भर कर भेजे। श्री मरवाहा की ओर से १४१ आर्यसमाजों के प्रतिनिधियों तथा श्री रामसिह पक्ष की ओर से केवल ६६ आर्यसमाजों के विरुद्ध आपत्तियां की गई। डा० हरिप्रकाश ने ४–५ मास तक अपनी आपत्तियों का लिफाफा नहीं खोलने दिया। अन्त में वह आपत्तियां आर्यसमाजों तथा पार्टियों को भेजी गई जिनका उत्तर सितम्बर ७२ के आरम्भ तक आ गया। श्री फुलका ने दोनों पक्षों को सुनने, आवश्यक रिकार्ड देखने तथा अन्य जांच करने के बाद दिसम्बर ७२ में अपनी रिपोर्ट हाईकोर्ट को दे दी। डा० हरिप्रकाश आदि ने उक्त रिपोर्ट में स्वीकृत १०० समाजों के विरुद्ध हाईकोर्ट में अपीलें कर दी परन्तु प्रो० रामसिह के पक्ष की ओर से केवल १६ समाजों पर ही अपीलों का आग्रह किया गया। श्री सोमनाथ मरवाहा उपरोक्त १०० समाजों के प्रतिनिधि कटवाने की भावना से ८-१० दिन हाईकोर्ट में बहस करते रहे। प्रो० रामसिह जी के वकील श्री आनन्द स्वरूप जी ने भी उत्तर देने में ३–४ दिन लिये। इतने परिश्रम के बाद जज महोदय ने निर्णय कर दिया है जो निर्णय की प्रति के मिलने के बाद बताया जावेगा।

आर्यसमाज की जो शक्ति तथा धन इस अभियोग पर लगा है इससे समाज की बड़ी हानि हुई है। आशा है अब सब आर्य भाई हाईकोर्ट के निर्णय के अनुसार चलने की कृपा करेंगे तथा स्वामी सर्वानन्द जी को निर्वाचन कराने में सहयोग देंगे आर्यसमाज जिससे पुन: अपने शुभ कार्यों में लग कर अपने पूर्व गौरव को प्राप्त कर सकेगा।

पृ० ३ का शेष

६. विवाह संस्कार जो अब तक घरों में होते आये हैं वह आर्यसमाज मन्दिरों में हों तो एक नई और आदर्श परिपाटी प्रारम्भ होगी। भले ही स्वागत सत्कार आदि की रस्म घरों में हों पर संस्कार के लिये आर्यसमाज मन्दिर का ही प्रयोग ठीक है। इससे जहां विवाह के समय कई दूषित प्रथाओं को समाप्त करने में मदद मिलेगी वहां आर्यसमाज मन्दिरों का भी महत्व बढ़ेगा।

७. विवाह शादियों में लेन देन और दहेज की कुप्रथायें समाज को घुन बनाकर खा रही हैं। आर्यसमाज को इसका अपवाद होना चाहिये था। परन्तु कहीं कहीं उसके अपने सदस्यों में भी वह बुराई प्रवेश कर गई है। आर्यसमाज के प्रान्तीय और केन्द्रीय संघटन इसकी रोकथाम के लिये सख्ती से किसी सामाजिक दण्ड की भी व्यवस्था करें। अन्यथा हिन्दू समाज की बुराईयाँ दूर करने का दावेदार यह संघटन स्वयं उनका शिकार हो जायगा।

८. समर्थ समाजें अपने यहां पुरोहित की अवश्य व्यवस्था करें जो परिवारों में संस्कार आदि नियमित कराते रहें। जिन समाजों की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं है वह अशंकालिक पुरोहित की व्यवस्था कर सकते हैं। परन्तु पुरोहित को जो आर्थिक और सामाजिक प्रतिष्ठा मिलनी चाहिये उसका पूरा ध्यान रखा जाय।

९. आर्यसमाज के प्रकाशित पर अनुपलब्ध साहित्य के पुन: प्रकाशन की अगले दो वर्षों में जहां व्यवस्था की जायगी वहां नये, मौलिक और समयोचित साहित्य के सृजन और प्रकाशन को भी महत्व दिया जायगा।

१०. आर्यसमाज प्रारम्भ से ही मध्यम और अल्प आय वाले लोगों का संघटन है। अब तक देश में सामाजिक पिछड़ेपन को दूर करने में आर्यसमाज ने अपनी शक्ति का अधिक उपयोग किया। पर अब आर्थिक पिछड़ेपन को भी आंखों से ओझल नहीं किया जा सकता। इस दिशा में भी अब हम प्रयत्नशील होना चाहते हैं। शीघ्र ही इसकी एक व्यापक रूपरेखा प्रस्तुत की जायगी।

११. इस देश के पर्वतीय, पिछड़े और वनवासी क्षेत्रों की निर्धनता और अशिक्षा का लाभ उठाकर पराधीन भारत में उनकी सांस्कृतिक निष्ठा में भी सत्ता के सहारे परिवर्तन किया गया। देश के सीमावर्ती क्षेत्र विशेषत: उनका लक्ष्य रहे। आर्यसमाज अगले वर्षों में इन क्षेत्रों में प्रचार और सहयोग बढ़ाने की भी घोषणा करता है। जिससे हमारी राष्ट्रियता की यह सीमावर्ती भाग चुनौती न बन सकें। मदिरापान आदि की बुरी आदतें यों तो पूरे देश में ही बढ़ रही हैं, पर यह क्षेत्र जो उसका विशेष शिकार हो गये हैं। आर्यसमाज इस दिशा में भी सक्रिय पग उठायेगी।

१२. स्वाधीनता पच्चीस वर्ष बाद भी अभी तक हरिजन समस्या का कोई गौरवपूर्ण समाधान नहीं निकल सका। राजनीतिक दलों ने उसे सुलझाने की बजाय और उलझा दिया है। आर्यसमाज आगामी वर्षों में इसके लिये भी प्राथमिकता के आधार पर कुछ रचनात्मक योजनायें प्रारम्भ करने जा रहा है।

१३. आर्यसमाज शताब्दी का आगामी अधिवेशन कानपुर नगर में होगा। इसकी तिथियां बाद में घोषित की जायेंगी।

[विशेष—महत्वपूर्ण घोषणा होने के कारण इसको सम्पादकीय स्तम्भ में प्रकाशित किया गया है।][—जगदेवसिंह सिद्धान्ती शास्त्री]

क्रमागत—

माण्डूक्य पर आचार्य गौडपाद कारिकाओं की समीक्षा (२१)

[ले०—श्री स्वामी ब्रह्मानन्द जी आर्य त्रैतवेदान्ताचार्य, मु० ओं० आश्रम, चान्दोद (बड़ौदा)]

५. एक जो जीवात्मा है वह बाल को अणी से भी अत्यन्त सूक्ष्मतम है, और एक दूसरी माया प्रकृति तो परमाणु भूता होने से अदृश्य सी ही है तो उन दोनों से भी अत्यन्त ही सूक्ष्मात् सूक्ष्मतं विभुव्यापके स्वर परमात्मा देवता मुझे अत्यन्त ही प्रिय लगते हैं, क्योंकि वो सर्व सुखों का धाम है।

६. सर्वदा से समकालीन रहने वाले अनादि प्रकृति रूपी वृक्ष पर निमग्न हुआ पुरुष या अक्षर पुरुष जीवात्मा, असमर्थता के कारण शोक संतप्त सा विमूढ हुआ जब अपने पुण्य योग से अपने से अन्य आनन्देश्वर के दर्शन कर उसकी महान् महिमा रूप मोक्षपद को प्राप्त करता है तो शोक रूप मृत्यु से तर जाता है।

७. यह जो नैतिक योग ये प्रगट कार्यरूप से प्रगट होने वाला क्षरधर्मा एव स्वभाव से अक्षरा अव्यक्त परमाणुभूता प्रकृति है इसका पालन रक्षण जगदीश्वर कर रहा है किन्तु जो अनीश जीवात्मा है वह भोगाशक्त हो, बन्धन को प्राप्त होता रहता है।

८. इस लोक में क्षर अक्षर धर्म वाले जीवात्मा एवं प्रकृति विकृति है जो सब भूततत्त्व रूप है तथा उसमें सदा स्थित रहा होने से यह अविनाशी जीवात्मा कूटस्थ नाम से कहा जाता है। तथा उत्तम पुरुष तो इन दोनों से अन्य अर्थात् तीसरा ही है जो परमात्मा इस नाम से कहा जाता है ॥

९. प्रधान इसीलिये प्रकृति को कहा गया है महाभारत में कि जगत् रचना के कार्य में उपादान रूप से वही मूल प्रधान करण रूपा है, तथा स्थूल सूक्ष्म एवं कारण रूप तीनों शरीरों को हमेशा संसार में सेवन करने वाला होने से परब्रह्म परमात्मा ही ईश्वर नाम से कहा जाता है ॥

१०. इस आदि अनादि प्रकृति रूप विशाल वृक्ष पर अनादि काल से दो जीवात्मा, परमात्मा रूपी पक्षी बैठे हुये हैं ॥

११. **द्वे सुपर्णौ च सयुजौ समानं वृक्षमास्थितौ।**
एकोऽत्ति पिप्पलं स्वादु परोऽनश्नन् प्रपश्यति ॥

शिव पु० वायु स० ६-३०।

दो सदा साथ रहने वाले सुपर्ण अथवा चैतन्य धर्म वाले जीव एवं शिव सच्चिदानन्द घन परमात्मा सनातन माया प्रकृति वृक्ष पर अनादि काल मे बैठे हुये हैं। उनमें से एक जो जीवात्मा है वह इस प्रकृति के स्वादु शब्द स्पर्शादि पंच फलों को हमेशा खाता रहता है। परन्तु इससे अन्य जो शिव है वह उसे न भोक्ता हुआ इसका द्रष्टा साक्षी रहता है। ये उपरोक्त प्रमाणों से थोड़े में देकर हमने गुरु गौडपाद जी एवं आ० शंकर जी के द्वारा कहे या लिखी गई उक्त बात का निषेध किया है कि जो वे कह रहे हैं कि वही परब्रह्म परमात्मा अपनी माया में मोहित रज्जू में सर्पद्रष्टा के समान भ्रान्त बन अनेक रूप धारण करता है फिर वही अपने को जानता है। तो उस मायावादी सिद्धान्त के विरोध में ये प्रमाण देकर हमने ये उक्त वेदादि के प्रमाणों से थोड़े में ही बता दिया है कि माया सक्त जीव होता है शिव नहीं, इसलिये एक तत्त्व नहीं मूल तीन तत्त्व वेदादि शास्त्रों में बताये गये हैं इसलिये अद्वैत नहीं, त्रैतवाद ही सत्य एवं समीचीन सर्व शास्त्रानुमोदित हैं। ये सिद्ध हुआ ॥१२॥

विकरोत्यपरान्भावानन्तश्चित्ते व्यवस्थितान्।
नियतांश्च बहिश्चित्त एवं कल्पयते प्रभुः ॥१३॥

वैतथ्य प्र० की १३ वीं कारिका

अर्थ—प्रभु आत्मा अपने अन्तःकरण में वासना रूप से स्थित अन्य लौकिक भावों को नाना रूप करता है तथा बहिश्चित्त होकर पृथिवी आदि नियत और अनियत पदार्थों की भी इसी प्रकार कल्पना करता है ॥१३॥

समीक्षा—आपने कल्पक प्रभु आत्मा का जो ईश्वर है उसी मे सभी पदार्थों का या प्रपंच का कल्पक कहकर भी नियत और अनियत अर्थात् नियत तो उन्हें कहा कि जो पृथिव्यादि पचभूत है और अनियत उन्हें कहा जो केवल मांशिक वासनामय हैं, जैसे स्वप्न के मनोमय। तो मनोमय तो ठीक भला वैसे अनियत पदार्थों सृष्टि मानो ईश्वर ने अपने ही मन में, मन से करा दी, किन्तु जो दूसरे नियत पृथिव्यादि भूत तत्त्व हैं, वो उन प्रभु से कल्पित कैसे कहे या माने जा सकते हैं? उन्हें तो लौकिक शंकर जी महाराज कह रहे हैं भाष्य में और इन नियत पदार्थों से अनियत पदार्थों को मनोमय कहकर उपरोक्त पदार्थों से न्यारे करे दे रहे हैं तो उक्त लौकिक तो मन से बाहर प्रथम से ही मान लिये गये, फिर इनको भी उन अनियतों के साथ में जोड़कर उक्त द्विविध पदार्थों को कल्पित कह देना ये तुम्हारा कितना बड़ा प्रमाद है? चलो खैर, पर ये तो कहो कि तुम्हारा प्रभु आत्मा जिसे ईश्वर बताया गया है यहां तो वो सचमुच शरीरी है या अशरीरी यदि कहो शरीरी, तो (चेष्टेन्द्रियर्थाश्रयः शरीरम् ॥ न्याय० द०) अर्थात् चेष्टावृत्ति पंच विषय शब्द स्पर्श रूपरस गन्ध पंच ज्ञानेन्द्रियां और कर्मेन्द्रियां मन और बुद्धि इतने सबका जो आश्रय देने वाला हो उसे शरीर कहते हैं तो ये सब शरीर के सहित प्रथम से कैसे? क्योंकि अभी तो कल्पक ईश्वर की कल्पना ही नहीं हुई उससे पहिले उसका उपरोक्त शरीर का विद्यमान होना ही कैसा? यदि कहो ईश्वर का शरीर दिव्य या अलौकिक है। तो वो अलौकिक शरीर भावरूप है कि अभाव रूप? यदि कहो भाव रूप तो फिर अलौकिक ही कैसा? यदि कहो कि अभाव रूप तो अभाव रूप शरीर से भावरूप कार्य संसार की रचना न हो सकेगी। यदि कहो संकल्पमय शरीर है तो भी ठीक नहीं क्योंकि वेद में (अकायमव्रणमस्नाविरम्) अर्थात् स्थूल सूक्ष्म आदि सभी काया शरीरेन्द्रिय रहित उस प्रभु को कहा है और वहां के भाष्य में आ० शकर ने भी वैसा ही माना है। तो प्रभु ईश्वर तुम्हारा इस प्रकार निराकार सिद्ध हुआ, तो फिर उसके मन वा चित्त ही कैसा, जब चित्त ही नही तो कल्पना ही कैसी होगी, पदार्थों की, चाहे वे अनियत पदार्थ ही क्यों न कहे या माने जायें? फिर उसके अन्तःकरण की वासना की बात करना तो ये पूरा पागलपन है। अरे क्या प्रभु ईश्वर के लिये भी वही सम्मिलित पचतत्त्वों के सात्विक अंश मे उत्पन्न हुआ अन्तःकरण मानोगे न? तो फिर भी वही उपरोक्त बात आयेगी कि जब शरीर ही नही तो अन्तःकरण ही कैसा? और वासना तो पदार्थों की आसक्ति के कारण होती हैं तो क्या ईश्वर को भी मनुष्यवत् आप पापी प्रमादी आसक्त या विषयासक्त प्रमादी विषय वासना वाला मानोगे क्या? तो बस हो चुका तुम्हारे द्वारा ईश्वर के गुण धर्म कर्म का निरूपण तुमने तो उसे मुमुक्षु ज्ञानी एवं मुक्तामा की कोटि में भी बेचारे ईश्वर को न माना। अरे क्या ऐसे वासनावान् को ही क्या प्रभु समर्थ और ईश्वर सबका शासक नियन्ता कहो मानोगे? वाह रे बगाली बाबा गौडपाद, तुमने तो अपनी दार्शनिकता की मिट्टी ही पलीत कर दी और साथ ही समर्थ ईश्वर को भी मनुष्यवत् पामर वासनामय बना छोड़ा। किन्तु सच पूछा और कहा जाय तो, ये अद्वैतवादी गुरु लोग जो कुछ प्रभु ईश्वर आत्मा परमात्मा ब्रह्म परब्रह्म कहो वे लोग अपनी आत्मा जीव को ही मानते और जानते हैं तो जैसा जीव को समझा है वैसा ही वे बेचारे अद्वैतवादी लोग ईश्वर को भी मान बैठते हैं। याने यदि एक भैसा पाडा भी कभी ईश्वर की खोज करने चले तो वो अपने ही जैसा ईश्वर समझेगा, तो वैसा ही इनका हाल है। क्योंकि ऐसी बातों में कोई शास्त्र प्रमाण तो यहां दिये नहीं ॥१३॥

चित्तकालाहियेऽन्तस्तु द्वयकालाश्च ये बहिः।
कल्पिता एव ते सर्वे विशेषो नान्यहेतुकः ॥१४॥

वैतथ्य प्र० की १४ वीं का०

अर्थ—जो आन्तरिक पदार्थ केवल कल्पना काल तक ही रहने वाले हैं और जो बाह्य पदार्थ द्विकालिक हैं अर्थात् अन्योन्य परिच्छेद्य हैं वे सभी कल्पित हैं। उनकी विशेषता का, अर्थात् आन्तरिक पदार्थ असत्य हैं और बाह्य सत्य हैं इस प्रकार की भेद कल्पना का कोई दूसरा कारण नहीं है ॥१४॥ (क्रमशः)

शतांक से आगे—

सन् ५७ में प्रजा विद्रोह के कारण ?

(ले० श्री स्वा० सच्चिदानन्द योगी, अध्यक्ष श्री नारायण स्वामी आश्रम, महामहिम पातञ्जलयोग साधना संघ आ० बा० आ० ज्वालापुर सहारनपुर)

हम लेखों में भी सैंकड़ों उठाये गये आक्षेपों का इतिहास, भूगोल और यौगिक दृष्टिकोणों से समाधान किया। किसी समाधान के बारे में कोई आक्षेप आता तो अन्य प्रमाण निकलता। पर हो यह रहा है कि अनेक बार ऊहापहो करने पर भी खण्डन करने वालों में किसी न्यायानुमोदित वाद की दृष्टि नहीं लगती। अतः प्याज के छिलके उतार उतार कर फेंकने वालों को समझाना असम्भव है। प्याज में तो होते ही छिलके हैं वही खाने होते हैं। अतः यदि समालोचक लोग यह लिखें कि हमारी इतनी भ्रान्त धारणायें तो हट गयीं। शेष का समाधान चाहिये। आगे लिखना सार्थक हो सकता है। नहीं तो जिन्होंने भैंस की तीन टांग ही कहनी है। चार स्वीकार करने की कसम खा ली है। उनके लिये कुछ लिखना समय नष्ट करना है। यदि इतना लिखने से कोई भी समाधान नहीं हुआ तो कुछ भी लिखो उनका समाधान तो नहीं होगा। हां ! आर्य विज्ञपाठकों के सामने बहुत सी बातें आ गयीं। वह स्वयं निर्णय कर ही चुके हैं। उन्होंने मेरा उत्साह बढ़ाया है। यह संस्करण समाप्त सा ही है ऋषि भक्तों और आर्यमर्यादा और सिद्धान्ती जी का धन्यवाद। ऋषि-भक्त कुछ अन्य सम्मतियों को भी पढ़ लें। वाद के लिये सदा से आह्वान किया है। पर चैलेञ्ज दे देकर सब पीछे हटे हैं मैं कभी पीछे हटा नहीं। पीछे हटना ऋषि ने नहीं सिखाया। अस्तु। पढ़िये ! धन्यवाद।

स्वतन्त्र भारत साप्ताहिक परिशिष्ट रविवार १० सितम्बर, सन् १९७२

कहा जाता है कि पं० ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने महर्षि दयानन्द से एक समय यह अनुरोध किया था कि योग की साधना के बारे में जो कुछ उनके अनुभव में है उसे करीब करीब सब ही बोलने को कृपा करें क्योंकि किताबों में ज्ञान का रहस्य मिलता है साधना का रहस्य नहीं मिलता है। महर्षि ने ऐसा समझा जाता है कि अपने बंगाल प्रवास में विद्यासागर जी का अनुरोध स्वीकर कर उसका वर्णन किया था। किन्तु यह शर्त लगा दी थी कि मेरे जीवनकाल में यह आत्मचरित्र न छापा जाए। प्रस्तुत पुस्तक में ३१ पृष्ठों में महर्षि के आत्मचरित्र की प्रामाणिकता को सिद्ध किया है। आत्मचरित्र की ऐतिहासिकता, महर्षि के हिमालय के समस्त पर्वतीय स्थलों में घूमने आदि का प्रमाणिकता के साथ उल्लेख किया गया है।

योगी दयानन्द के विलायत में अनेक भक्त थे। एक बार सेण्ट साहब ने उनसे कहा था—"हमें कुछ योग सिद्धियाँ दिखाइये।"

योगी ने उनसे मना कर दिया था। महर्षि ने १४ जुलाई १८८० को करनल अलकाट को लिखा था सो ठीक है क्योंकि मैं इन इन्द्रजाल की बातों को देखना दिखाना नहीं चाहता। चाहे वे हाथ की चालाकी से हों चाहे योग की रीति से। क्योंकि योग का अभ्यास किए बिना किसी को भी उसका महत्त्व तथा उनसे सच्चा प्रेम कभो नहीं हो सकता वरन् संदेह और आश्चर्य में पड़ कर आडम्बर की परीक्षा और सब सुधार की बातों को छोड़कर कौतुक देखने को सब चाहते हैं उसके लिए साधना करना स्वीकार नहीं करते ......

क्योंकि जो मैं उसमें प्रवृत्त हो जाऊं तो सब मूर्ख और पण्डित यही कहेंगे कि हमको भी कुछ योग को आश्चर्य में सिद्धियाँ दिखलाइए जैसे अमुक को आपने दिखलाई।

प्रस्तुत पुस्तक में वेदों में योग उपदेश, उपनिषद् में योग विधान, न्याय दर्शन में योग साधन, वेदान्त दर्शन में योग साधना, श्रीमद्भागवत में योग साधना का उल्लेख कर इसे इस विषय के छात्र के लिए उपयोगी बना दिया गया है। प्रस्तुत पुस्तक महर्षि दयानन्द के प्रति भक्ति भाव रखने वालों के लिए उपयोगी होनी चाहिए। महर्षि से संबन्धित अनेक चमत्कारिक बातों का इसमें उल्लेख है।

पुस्तक की छपाई और गेटअप आकर्षक है। —क्षनक

वास्तव में महर्षि दयानन्द बीसवीं शती में सबसे बड़े समाज-सुधारक हुए। उन्होंने अन्धे गुरु स्वामी विरजानन्द से शिक्षा पाई थी। योगाभ्यास भी सीखा और किया। गुरुदक्षिणा में गुरु ने उनका पूरा जीवन ही मांग लिया। कहा कि भूले भटके लोगों में वेद के सिद्धान्तों का प्रचार करो।

महर्षि ने आर्य समाज नामक संस्था सस्थापित की। उसके दस नियम बनाये।

सत्यार्थ प्रकाश नामक एक ग्रन्थ सर्वसाधारण के लिये लिखा। आप के अधिकाँश सुशिक्षित हिन्दू समाज पर महर्षि के सिद्धान्तों की छाप है। उन्होंने वेदों के भाष्य किए तथा अन्य ग्रन्थ लिखे। अन्धविश्वासों के विरुद्ध बगावत की अनेक पौराणिक सिद्धान्तों और मूर्ति पूजा का खण्डन किया। एक ईश्वर सत्ता मानी।

गाण्डीव ८ जून १९७२ वाराणसी

इस पुस्तक में २४३ पृष्ठों में महर्षि दयानन्द का आत्मचरित्र का अर्थ है। अपने हाथ से लिखा हुआ या बोलकर लिखाया हुआ अपना जीवन चरित्र। पुस्तक में यह लिखा है यह ३९ वर्षों की अज्ञात जीवनी है, जिसे जीवित अवस्था में स्वामी जी नहीं छपाना चाहते थे।

मूल पुस्तक संस्कृत में बोली थी। पं० ईश्वरचन्द्र विद्यासागर आदि विद्वानों ने इसे बंगला में अनुवादित किया। हिन्दी अनुवाद पं० दीनबन्धु शास्त्री बी०ए० आचार्य ने किया। इस में परिशिष्ट का एक बड़ा भाग थियासोफिस्ट नामक मासिक पत्र से उद्धृत किया गया है। वह अंग्रेजी लिपि में है और हिन्दो अनुवाद भी।

उनकी कुछ छोटी बड़ी जीवनियां प्रकाशित हुई थीं, परन्तु आत्म-कथा नहीं। यह ग्रन्थ पहले पहल देखने में आया है।

आत्मकथा के अतिरिक्त इस में अन्य अनेक ज्ञातव्य बातें हैं। महर्षि के फुटकर प्रवचनों का भी संग्रह है। पुस्तक की तैय्यारी में सहयोगियों और सम्मतिदाताओं का सचित्र परिचय है।

कुछ अनुकथायें और चित्र अस्वाभाविक भी लगते हैं। ऐसी चमत्कारिक बातें महापुरुषों की जीवनियों में जोड़ दो जाती हैं जो आर्य सिद्धान्त के विरुद्ध हैं। स्वामी जी के लिए भालू द्वारा मधु का छत्ता लाना, मगर के साथ क्रीड़ा आदि ऐसे ही चित्र और कथायें हैं। इनके बारे में हम कुछ नहीं कह सकते।

पुस्तक विलक्षण है। इसमें सदेह नहीं, पहले कभी ऐसी पुस्तक देखने में नहीं आयी। कई कई घटनाएं इसमें प्रकाश में आई हैं, जिनके बारे में पहले की जीवनियों में पता नहीं चला था। पुस्तक पठनीय तथा संग्रहणीय है। —मयंक

वीर अर्जुन 'दयानन्द जोरदार आदमी था'—नेहरू

१३ फरवरी १९७२

स्वर्गीय जवाहरलाल नेहरू से एक बार किसी ने पूछा : 'स्वामी दयानन्द सरस्वती के बारे में आप की क्या राय है ?" श्री नेहरू ने अपनी विशिष्ट शैली में उत्तर दिया था, "जाहिर है, वह जोरदार इनसान थे।' प्रस्तुत पुस्तक उसो 'जोरदार इनसान' की आत्मकथा है। यह सन् १८७६ में संस्कृत में बोलो गयो थो। बगला में लिखी गई थी। और अब तक इसके प्रकाशित न होने का कारण यह था कि स्वामी जी ने इसे अपने जीवनकाल में प्रकाशित करने की अनुमति न दी थी। बाद में यह हस्त-लिखित रूप में बंगला में मिली। संस्कृत से बंगला में अनुवाद की योजना महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर और ईश्वरचन्द्र विद्यासागर सदृश महानुभावों ने बनाई थी। खोजकर हिन्दी में अनुवाद कलकत्ता के श्री दीनबन्धु शास्त्री ने किया। इस प्रकार इस आत्मकथा ने अनेक रूप बदले। इसे वर्तमान रूप में प्रस्तुत करने का श्रेय स्वामी सच्चिदानन्द सरस्वतो योगी को है। जो सन्यास ग्रहण से पूर्व आचार्य राजेन्द्रनाथ शास्त्री के नाम से जाने जाते थे। (क्रमशः)

गतांक के आगे---

योगी का आत्म चरित्र एक मनघड़न्त कहानी

(लेखक—श्री स्वामी पूर्णानन्द जी सरस्वती-बड़ौत-जिला मेरठ।

ब्रह्मसमाज की उद्देश्य की पुस्तक में साधुओं की संख्या में "ईसा" "मूसा" "मुहम्मद" 'नानक' और 'चैतन्य' लिखे हैं। किसी ऋषि महर्षि का नाम भी नहीं लिखा, भला जब आर्यावर्त्त में उत्पन्न हुए हैं और इसी देश का अन्न जल खाया पिया अब भी खाते पीते हैं, अपने माता पिता, पितामह आदि के मार्ग को छोड़ दूसरे विदेशी मतों पर अधिक झुक जाना, ब्राह्म-समाजी और प्रार्थना समाजियों का एतद्देशस्थ संस्कृत विद्या से रहित अपने को विद्वान् प्रकाशित करना, इङ्गलिश भाषा पढ़ के पण्डिताभिमानी होकर झटिति एक मत चलाने में प्रवृत्त होना, मनुष्यों का स्थिर और वृद्धि कारक काम क्योंकर हो सकता है? अंग्रेज, यवन, अन्त्यज आदि से भी खाने पीने का भेद नहीं करना। इन्होंने यही समझा होगा कि खाने पीने और जाति भेद छोड़ने से हम और हमारा देश सुधर जायेगा। परन्तु ऐसी बातों से सुधार तो कहाँ उलटा बिगाड़ होता है। इसी बात (वेदों को न मानने) से तुमको आर्यावर्त्तीय लोग अपना नहीं समझते और तुम आर्यावर्त्त की उन्नति के कारण भी नही हो सके।" स्वामी जी के इस लेख से स्पष्ट हो गया कि बंगाल में चार महीने तक भ्रमण करने के पश्चात् स्वामीजी के ऊपर बंगालियों की विद्वता, देश सुधार, शिष्टता और धार्मिकता का कोई प्रभाव नहीं हुआ, बल्कि यही उलटा प्रभाव पड़ा कि बंगाली अंग्रेजी पढ़कर अपनी विद्या का झूठा अभिमान करते हैं और खानपान आदि बातों में अंग्रेजों की नकल करके मूर्ख बने हुए हैं और आर्यावर्त्त के लोग उनसे घृणा करते हैं। पाठक अपनी बुद्धि से सोचें कि ऋषि ने जब स्वयं बंगाल में भ्रमण करते हुए बंगालियों के आचरणों को और विशेषत: ब्रह्मसमाजियों के वेदविरुद्ध प्रचार को अपनी आंखों से देख लिया था और कानों से सुन लिया था, तो ब्रह्मसमाजियों के ऊपर विश्वास करके वे अपने जीवन की कहानियां और क्रांतिकारी प्रोग्रामों को कैसे सुना सकते थे?

स्वामी दयानन्द के मुख से ईश्वरचन्द्र विद्यासागर के सम्बन्ध में कहलवाया है:—"मेरे परममित्र पण्डितप्रवर ईश्वरचन्द्र जी विद्यासागर से अनुरोध पत्र आया है।" ऋषि दयानन्द जी की ओर से ऐसी बात कहना सर्वथा झूठ है। ऋषि दयानन्द किसी मनुष्य को अपना परममित्र, परम-पूज्य और परमसहायक कहना कदापि सहन नहीं कर सकते थे। वे तो परमात्मा को ही अपना परममित्र, परमसहायक और परमपूज्य आदि शब्दों से सम्बोधित करते थे। महर्षि देवेन्द्र ठाकुर के शिष्टाचार के संबंध में इतना कहना पर्याप्त है कि उन्होंने सन् १८७० में प्रयाग में स्वामी जी को कलकत्ता आने के लिये निमन्त्रण तो दिया, परन्तु १६ दिसम्बर सन् १८७२ को स्वामी जी कलकत्ता पहुंचने पर 'चन्द्रशेखर बैरिस्टर उनको महर्षि देवेन्द्र ठाकुर के उद्यान में ठहराना चाहते थे परन्तु कृतसंकल्प न हुए'। पं० ईश्वरचन्द्र विद्यासागर के साथ स्वामी जी के घनिष्ठ प्रेम का कोई प्रमाण उनके जीवन चरित्र से नहीं मिलता। उनके एक दो बार साधारण रीति से मिलने का ही वर्णन मिलता है। वहां लिखा है:— "स्वामीजी को वस्त्र धारण करने का परामर्श बाबू केशवचन्द्र सेन और पण्डित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने दिया है।

(म० द० जी० च० पृ० २३२)

इससे कोई ऐसा भाव प्रकट नहीं होता कि ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ऋषि दयानन्द के परममित्र थे। ऋषि में यह गुण था कि वे उचित बात को सरलता से स्वीकार कर लेते थे, चाहे उस बात का कहने वाला साधारण सा व्यक्ति ही क्यों न हो?

बाबू केशवचन्द्र सेन की शिष्टता के सम्बन्ध में जीवन चरित्र में लिखा है:—"उन दिनों बाबू केशवचन्द्र सेन ने यज्ञोपवीत के विरुद्ध आन्दोलन कर रक्खा था।" (पृ० २५८) आगे लिखा है—"इनका नाम बाबू केशवचन्द्र सेन था। यह अंग्रेजी के बड़े ओजस्वी और प्रगल्भ वक्ता थे। यह दावा करते थे कि वह ईश्वर के प्रेरित और प्रेषित व्यक्ति हैं। वास्तव में वह अपना वही पद समझते थे और लोगों को समझाते भी थे कि जो पद ईसा का था। उनके विचार ईसाई धर्म्म के सिद्धान्तों की ओर अधिक झुके हुए थे।" (पृ० २६२)

फिर आगे लिखा है:—"कलकत्ते में नवद्वीप के पण्डितों ने एक दिन एक सभा की। उसमें केशवदेव बाबू स्वामीजी को गाड़ी में अपने साथ सवार करा कर ले गये। केशव बाबू सभा के विसर्जन होने से पहले ही चले गये थे। चलते समय स्वामी जी के लिए गाड़ी तक का प्रबन्ध नहीं किया गया। कुछ देर प्रतीक्षा के पश्चात् एक सज्जन ने प्रबन्ध कर दिया तब कहीं वह डेरे पर पहुंचे।" (पृ० २६६) इससे आगे लिखा है:— "कलकत्ते रहने के समय स्वामी जी को वैदिक पाठशालायें स्थापित करने की चिन्ता रहती थी, परन्तु कलकत्ते में किसी ने इस विषय में कोई उत्साह प्रदर्शन नहीं किया।" पाठकों को स्मरण रखना चाहिए कि स्वामी जी को कलकत्ते में आने का निमन्त्रण देने वाले और वैदिक पाठशालाओं की स्थापना में उत्साह प्रदर्शन करने वाले बंगाल के मूर्धन्य नेता महर्षि देवेन्द्र नाथ ठाकुर स्वयं थे, परन्तु कलकत्ते जाने पर ठाकुर साहब ने वैदिक पाठशालाओं की स्थापना के लिये कोई उत्साह नहीं दिखाया। ऊपर के सब उद्धरण बाबू देवेन्द्रनाथ के लिखे हुए म० द० जी० च० से उद्धृत किये गये हैं, जो स्वयं बंगाली था। बाबू केशवचन्द्र सेन की भारत के प्रतिनिष्ठा कैसी थी? और धार्मिक विश्वास क्या था? इसके सम्बन्ध फ्रांस के प्रसिद्ध विद्वान् लेखक रोम्योरोलां ने अपनी पुस्तक Prophets of new India (भारत के नये पैगम्बर) में लिखा है:—Keshawa Chandra Sen ran counter to the rising tide of national conceousness the feverish by awakening"। अर्थात् केशवचन्द्र सेन जातीय चेतना के उस उभरते हुए तूफान के विरुद्ध दौड़ा जो उस समय बड़ी तेजी के साथ उठ रहा था। ९ अप्रैल सन् १८७९ को केशवचन्द्र सेन ने कलकत्ता के टाउन हाल में एक व्याख्यान दिया था, जिसका शीर्षक था—'India asks, who is Christ?' (भारत पूछता है, ईसा कौन है?) इस व्याख्यान में केशव बाबू ने कहा:—"My christ! My sweet christ! The brightest jewel of my heart, the necklace of my soul. For twenty years have I cherisned him in this my miserable heart." मेरा ईसा, मेरा प्यारा ईसा, मेरे हृदय का सर्वाधिक चमकता हुआ हीरा, मेरे आत्मा का हार। मैंने बीस बरस से अपने इस सन्तप्त हृदय में उसको सजोया हुआ है।" रोम्यो रोलां ने परमहंस रामकृष्ण की जीवनी में केशवचन्द्र का इन शब्दों में वर्णन किया है:—"Christ had touched him, and it was to be his mision of life to introduce him to the Brahma Samaj? Keshawa not only accepted and adopted Christionity but extolled it with greatness and was enlighted with it. He called it the loftiest expresion of world's religions conceousness."

अर्थात् ईसा ने उसके अन्तस्थल को स्पर्श किया था, और केशवचन्द्रसेन के जीवन का यह लक्ष्य होना था कि वह ईसाइयत का ब्राह्मसमाज में प्रविष्ट कराये। केशव ने न केवल ईसाइयत को अंगीकार और धारण किया था प्रत्युत उस महत्व का उच्च स्थान दिया था। और वह स्वयं उस से आलोकित था। वह उसे संसार की धार्मिक चेतना का सर्वोच्च विचार मानता था।" रोम्यो रोलां ने इस पर प्रश्न किया है:—"Did any thing still seperates him from Christiontiy" क्या अब भी कोई चीज उसको ईसाइयत से पृथक् कर सकती है? फ्रेंक विलिङ्गटन ने "The Brahma Samaj and Arya Samaj" (ब्राह्मसमाज और आर्य समाज) नाम की पुस्तक में लिखा है:—Let India accept christ were the words of Keshwa Chandra sen one of the leaders of Brabma Samaj when be preached to a large congrigation at Calcutta in 1879. To Christion cars no words would be move welcomes".

क्रमशः

आर्यसमाज का उर्दू साहित्य–२

(श्री पण्डित जगत्कुमार शास्त्री "साधु सोमतीर्थ" आर्योपदेशक
सी–२। ७३, अशोकबिहार–२ देहली ५२)

आर्यसमाज के उर्दू साहित्य का पूरा पूरा विवरण यहां प्रस्तुत करना मेरा उद्देश्य नहीं है। यह तो एक बड़े ग्रन्थ वा शोध प्रबन्धु का विषय है। यदि कभी आर्यसमाज के साहित्य का कोई इतिहास लिखा जायेगा, तो उस में उर्दू के आर्यसमाजिक साहित्य वा समावेश किये बिना तो वह अधूरा ही रहेगा। यदि किसी आर्यसमाजी विद्वान् की हिन्दी और संस्कृत कृतियों का कुछ लेखा जोखा कोई कर भी ले, तथापि वह व्यक्तिश: विचार तो उर्दू कृतियों के विचार से ही पूर्ण होगा। हमें यह तथ्य ध्यान में रखना चाहिये कि आर्यसमाज के पहले पुस्तक लेखकों ने अपनी मौलिक रचनायें उर्दू में ही प्रस्तुत की थीं, और उनके हिन्दी अनुवादही हिन्दी पाठकों तक पहुंचे है। इसी प्रकार उनसे उत्तर कालके लेखकों ने अपनी कुछ पुस्तकें उर्दू में रची थी, कुछ हिन्दी में। उनमे से कुछ उर्दू पुस्तकों के हिन्दी अनुवाद, एवमेत्र हिन्दी पुस्तकों के उर्दू अनुवाद भी हुए थे। इस समय तक आर्यसामाजिक क्षेत्रों में ऐसे पुस्तक पाठक भी बहुत संख्या में तैयार हो गये थे, जा उर्दू और हिन्दी दोनों प्रकार के साहित्य के प्रेमी थे। वे दोनों धाराओं से बिना संकोच लाभ उठाते थे। वे जिज्ञासु और सिद्धान्त प्रेमी थे। भाषा या लिपि का आग्रह उन्हें न था।

२—आर्य समाज के इतिहास और क्रम विकास की पूरी कहानी भी आर्यसमाज के उर्दू साहित्य की सहायता से ही पुर्णतया जानी जा सकती है। यदि कोई उर्दू नहीं जानता, किसी से इस विषय में सहायता भी नहीं लेता और आर्यसमाज के उर्दू साहित्य की उपेक्षा करता है, तब तो वह आर्यसमाज के इतिहास लेखन, या स्वरूप निदर्शन एवं साहित्य विवेचन और मूल्यांकन में अधूरे भ्रामक और त्रुटिपूर्ण निष्कर्ष ही दर्शायेगा। ऐसे इतिहासकार के लिये तो यह भी आवश्यक है कि उर्दू पुस्तक संग्रह के साथ ही वह उस समय के साप्ताहिक और मासिक पत्र साहित्य से भी तथ्य संग्रह में आवश्यक सहायता प्राप्त करे। ज्यों ज्यों समय बीतता जाता है, त्यों-त्यों उर्दू का आर्यसमाजी साहित्य दुर्लभ होता जा रहा है। पुस्तकें तो जहाँ-तहाँ खोज करने पर कहीं मिल भी सकेंगी, परन्तु वह बहुमूल्य पुराना उर्दू पत्र-पत्रिका साहित्य तो इस समय भी दुर्लभ ही है। पंजाब के पुराने आर्यसमाजों और आर्य पुरुषों के घरों में उस बहुमूल्य पत्र-पत्रिका का समुदाय की सजिल्द फायलें कभी जहां तहाँ सुरक्षित थीं। खेद है कि भारत विभाजन काण्ड में ऐसे बहुत से साहित्य भण्डार और ज्ञान स्त्रोत नष्ट हो गये।

३—धर्मवीर श्री पं० लेखराम जी ने अपना सम्पूर्ण साहित्य उर्दू में ही रचा था। उनकी पुस्तकों के प्रथम-प्रथम संस्करण अधिक सुन्दर थे। जब उन्होने वीरगति प्राप्त को तो अत्यधिक उत्साह के वातावरण में उनकी ३३ पुस्तकों का संग्रह "कुलियात-ए-आर्य मुसाफिर" के नाम से निकला। इस संग्रह जितना बड़ा ही उनका सबसे बड़ा साहित्यक कारनामा उनके परलोकवास के बाद "महर्षिदयानन्द सरस्वती का जीवन चरित्र" के रूप मे प्रकाश में आया। धर्मवीर की मौत-कहानी बहुत शानदार है। उसका उत्तम प्रभाव सम्पूर्ण आर्यसमाजिक संसार पर पड़ा था। वीर लेखराम के साहित्य को पढ़ने की लालसा उन लोगों में भी खूब जागी थी, जो उर्दू नहीं जानते थे। अत: "कुलियात-ए-आर्य मुसाफिर" के कुछ अंश का खण्ड हिन्दी में प्रकाश पा गये। ऐसा होने पर भी सम्पूर्ण "कुलियाते-ए-आर्य मुसाफिर" आज तक कभी भी हिन्दी पाठकों को सुलभ न हो सका। विशेष परिताप की बात तो यह है कि कुछ अंश तो वारम्वार हिन्दी में प्रकाशे गये और कुछ अधिक महत्वपूर्ण अंश व ग्रन्थ की एकवार भी हिन्दी में अनुदित न हो सके, नहीं प्रकाशे गये। उनके–महर्षि दयानन्द सरस्वती के जीवन चरित्र को ही हिन्दी वालों के हाथों तक पहुंचने में लगभग ७० वर्ष लगे। प्रसन्नता की बात है कि आर्यसमाज नया बांस देहली ने इस चिरप्रतीक्षित कार्य को पूरा कर दिया है।

४—श्री स्वामी दर्शनानन्द जी, पूर्वनाम श्री पं० कृपाराम जी शर्मा नि:सन्देह आर्य समाज के बड़े लेखक थे। उनकी पुस्तकों की संख्या भी अधिक है और उनकी पुस्तकों के पृष्ठों का सर्वयोग भी सबसे अधिक है। उन्होंने अपने छोटे बड़े सब ग्रन्थ उर्दू में ही रचे थे। हिन्दी वालों को तो उनकी पुस्तकों के त्रिटीपूर्ण अनुवाद ही मिले। उनकी सब पुस्तकों के अनुवाद तो आज तक भी नहीं हुए। उनका एक बड़ा और अधिक मूल्य महत्वपूर्ण "वेदान्तविचार" ग्रन्थ अन्तिमवार लाहौर में श्री पं० वजीरचन्द शर्मा ने छपवाया था। हिन्दी में कभी छापा ही नहीं। यद्यपि स्वामी दर्शनानन्द जी की पुस्तकों का हिन्दी संसार में अच्छा आदर हुआ है और अब नये लोग यह भी नही जानते कि उनके मूल ग्रन्थ उर्दू में थे। ऐसा होने पर भी उनके ग्रन्थों के हिन्दी अनुवादों की भाषा परिमार्जित नहीं है। नकल पर नकल होती रही। परिमार्जित अनुवाद तो कराये ही किसी ने नहीं। उनके ग्रन्थों के अधिकतर अनुवादक या तो उर्दू में दुर्बल थे, या हिन्दी में। दोनों भाषाओं के मर्मज्ञ और लेखनाभ्यासी न होने के कारण वे उत्तम अनुवादक होते भी, तो कैसे होते? जो कुछ कर गये, इसके लिये उनका धन्यवाद। परिमार्जित नये अनुवाद अब अपेक्षित हैं।

५—अमरहुतात्मा स्वामी श्रद्धानन्दजी का एक ग्रन्थ सग्रह उनकी शहदत के बाद–"कुलियात-ए-संन्यासी" नाम से छपा था। उसका हिन्दी अनुवाद नहीं हुआ। उसका दूसरा खण्ड छापने की घोषणा की गई थी, वह छपाही नहीं। उनकी कुछ पुस्तकें हिन्दी में हैं, वे उर्दू में नहीं है। स्वामी जी उर्दू, हिन्दी और अंग्रेजी के भी लेखक थे। उन्हों ने महर्षि दयानन्द कृत "संस्कारविधि" और "ऋग्वेदादीभाष्य भूमिका" जैसे गूढ़ ग्रन्थों को भी उर्दू के चोले पहिना दिये थे।

६—श्री भक्त शहजादा राम जी की उर्दू पुस्तकें बहुत थीं ओर अधिक उपयोगी भी थीं। शायद ही कोई हिन्दी में हुई होगी। भक्त जी संन्यासी बनकर स्वामी सदानन्द कहलाये थे। श्री पीड़ाराम धवन, श्री राये ठाकुर दत्त धवन, श्री लाला लाजपतराय जी के पिता महता राधा किशन जी, श्री लाला लाजपतराय जी, कानपुर वाले प्रिंसिपल दीवानचन्द एम.ए. जी, कलम के धनी श्री मास्टर लक्षमण जी आर्योपदेशक, श्री महता जैमिनि, श्री स्वामी योगेन्द्र पाल, ब्रह्मचारी धर्मपाल बी० ए० भूततूर्व अब्दुल गफूर जो फिर मुसलमान भी हो गया था, की पुस्तकें उर्दू में ही रची गई थी। उनमें से कोई कोई ही हिन्दी में अनुदित हुई हैं। श्री पं० धर्म भिक्षुजी का साहित्य अब उर्दू में भी नहीं मिला, उसके हिन्दी अनुवाद हुए ही नहो। श्री पं० भोजदत्त जी आर्य मुसाफिर और श्री मुन्शी इन्द्रमणि जी के उर्दू ग्रन्थ अब नहीं मिलते। उनके हिन्दी अनुवाद नहीं हुए। श्री आचार्य चमुपति जी एम० ए० के "चौदहवीं का चान्द" "जवाहरजावेद" और वैदिक स्वर्ग" जैसे ग्रन्थ भी हिन्दी में अनुवादे नहीं गये। जालन्धर से श्री वजार चन्द जी विद्यार्थी के सम्पादन में निकलने वाला उर्दू का रसाला "आर्य मुसाफिर मैगजीन" बहुत शानदार था। हिन्दी वाले उसे क्या जाने? सब लेखकों और उनकी कृतियों के उल्लेख का अवकाश यहाँ नही। यह थोड़ा सा दिग्दर्शन करा दिया गया है।

७—आर्यसमाज के उर्दू साहित्य का सरक्षण और उस का हिन्दी वा अन्य भाषाओं में अनुवाद कौन करे? और कैसे? प्रश्न गम्भीर है। उत्तर भी कठिन है, जो कि थोड़े विस्तार वा स्पष्टिकरण की अपेक्षा रखता है। मेरे विचारानुसार साहित्य सरक्षण के गम्भीर पग दानोपजीवी सभा संस्थाओं द्वारा उठाये जायें। व्यक्तिगत संरक्षणों पर भरोसा न किया जाय। बूढ़े मरते हैं, तो उनके वारिस उनके ग्रन्थों को रद्दी में बेच देते हैं। अनुवादों के लिये भी व्यक्तिगतरूप में अपेक्षित काय होना कठिन है। किसी का सहयोग मिले, तो लिया जाये। अनुवादकों का अर्थदान वा सन्मान प्रदान द्वारा उत्साहित किया जाये। प्रकाशन व्यवस्था भी दानोपजीवी सभा संस्थायें ही करें। इस कार्य में पैसे के लोभी पुस्तक प्रकाशक हाथ न बटायेंगे। क्यों की दूसरे प्रकाशनों में कमाई अधिक है। अनुवादकों में कार्य विभाजन हो जाये तो उत्तम है। अभी कुछ लोग हैं जो इस काम को कर सकते हैं। आगे-आगे कठिनाइयाँ अधिक बढ़ेंगी। हानि सम्पूर्ण आर्यजगत् की होगी।

८—देर से हमारी सभा संस्थाओं का स्वास्थ्य कुछ बिगड़ा हुआ चला आ रहा है। कहीं अनार्यतत्व आकर बैठें हैं, कहीं विघ्न सन्तोषी समुदाय धमा चौकड़ी मचा रहे हैं, कहीं किराया खोरी या सूद खोरी की बीमारी है, कहीं इमारतें बढ़ाना या सामान्य शिक्षा फैलाना ही मुख्य ध्येय बन

शेष पृष्ठ ९ पर

भारतीय वीरांगनाएं—तारा (१)

(चौ० किशनाराम आर्य, मु० पो० ललानियां, जि० श्री गंगानगर)

(१) तारा (२) लाजवंती और (३) मैनावती। ९०० नौ सौ वर्ष की पराधीनता के समय में हमारे देश को स्वाधीन कराने के लिये भारत के स्वदेश भक्त वीरों ने जहां परवानों की तरह अपना सर्वस्व देशहित अर्पण करने में आगा पीछा नहीं देखा; वहां भारतीय देशभक्त वीरांगनाओं ने भी समय आने पर नर योद्धाओं से अग्रणी रहकर खूनो होली खेली, हंसते हंसते "धूं धूं" करती अग्नि की भेंट अपना तन अर्पण किया; और सतीत्व की रक्षा अपने शरीर को राख का ढेर बनाकर की। अस्त्र शस्त्र धारण कर युद्धों में दुश्मनों से दो दो हाथ किये। अपने स्वजनों को देश धर्म जाति के लिये हंस हंस कर बलिदान होने की शिक्षा दी। नारी जाति को ईश्वरीय ज्ञान वेदों में वीरांगना मानने का प्रमाण है। यथा "घातक आक्रान्ता शत्रु मुझे निर्बल को तरह अबला मानता है। मैं अबला नहीं हूं। मैं वीरांगना हूं। मैं वीर की अर्द्धांगिनी हूं। मृत्यु से न डरने वाले, प्राणों को हथेली पर रखने वाले, सैनिकों की मैं शुभचिंतक हूं। ऐश्वर्यशाली मेरा पति संसार में सर्वश्रेष्ठ है। ऋग्वेद ।। वीरांगना तारा—वीर भूमि (राजस्थान) की वीरांगनाओं को यशों गाथाओं से सारा राजस्थान गौरवशाली हुआ है। तारा के पिता सूरसेन जी राजस्थान के बदनौरगढ़ के यशस्वी प्रजापालक एवं शूरवीर शासक थे। तारा के पिता का राज्य अलाउद्दीन खिलजी ने छीन लिया था। बेचारे सूरसेन जी अपने परिवार तथा अपने शूरवीर देशभक्त वीरों सहित निर्वासितों का सा जीवन बिताने लगे। तारा धीरे धीरे १५ वर्ष की हो गई थी। उसे अपने पिता जी को महान् विपत्ति का पता चल गया। उसने अपने पिता जी से युद्ध की शिक्षा बड़े परिश्रम और लगन से प्राप्त की। क्योंकि यहां की वीर क्षत्राणियों के लिये उपदेश है कि—

"नहं पड़ौस कायर नरां, हेली बास सुहाय।
बलिहारी जिस देशड़े, माथा मोल बिकाय।।"

वीरांगना को कायरों के पास में बसना पसन्द नहीं वे तो उस देश पर बलिहार हैं, जहां आन मान और मर्यादा की रक्षा के लिये सिरों का मोल चलता है। देश धर्म और जाति की रक्षा के लिये वीर वीरांगनाएं हंसते हुए बलिदान होती हैं। इस वीरांगना तारा के यौवन, वीरता, धीरता और सौन्दर्य एवं सच्चरित्रता आदि अनेक गुणों की बड़ाई सुन अनेक युवक राजा और राजकुमार महाराजा सूरसेन जी के पास आने लगे। लेकिन जब तारा की कठोर प्रतिज्ञा कि "मेरे पिता का राज्य वापिस दिलाने वाला ही क्षत्रिय वीर मेरा पाणिग्रहण कर सकता है।" को सुनकर आगन्तुक उदास—निराश लौट जाते थे। क्योंकि अलाउद्दीन की असंख्य फौज का मुकाबिला करना था। आखिर सीसोदिया कुल कमल दिवाकर चित्तौड़ का राजकुमार पृथ्वीराज (निर्वासित) आया और तारा की उपरोक्त प्रतिज्ञा सुनकर बदनौरगढ़ के उद्धार का वचन देकर सूरसेन जी के पास ही रहकर अपने वचन को पूरा करने एवं बदनौर को आजाद कराने का सुअवसर ढूंढने लगा।

एक दिन उत्तम मौका देखकर अपने चुने हुए बांके रण कुशल ५०० पांच सौ योद्धाओं को साथ लेकर के पृथ्वीराज ने सूरसेन जी के चरणों का स्पर्श किया और विजयी होने के लिये आशीर्वाद लिया। और बदनौर उद्धार के लिये प्रस्थान किया। यह देख वीरांगना तारा भी आवश्यक युद्धोपयोगी अस्त्र शस्त्रों से सुसज्जित होकर साथ चल पड़ी। तारा उस समय मर्दाने भेष में सबसे अगुणी हो घोड़े पर सवार होकर चल रही थी। जिससे वीरों में स्फूर्ती का संचार हो गया था। क्यों नहीं यहां की क्षत्राणियों के लिये कहा है कि :—

"घोड़े चढ़णो सीखियो, भाभी किसड़े काम।
बंस सुणिजे पारको, लीजे हाथ लगाम।।"

वीरांगना ननंद अपनी वीरांगना भावज से कहती है कि हमने हमलावर का सामना करने के लिए ही तथा देश रक्षाहित ही घोड़े चढ़ना एवं युद्ध करना सीखा है। दुश्मन का धौंसा बज रहा है इसलिए घोड़े की लगाम हाथ पकड़ कर दुश्मनों से सिंह की तरह भिड़ जावें। और विजयी होवें।

उस दिन उलाउद्दीन की फौज के मुसलमान मोहर्रम (शिया मुसलमानों का ताजिया त्योहार) मना रहे थे। ताजियों के जनाजे के साथ मुसलमान "हा हुसेन, हा हुसेन" कहते रोते चिल्लाते अपनी छाती पीटते आगे बढ़ रहे थे। दुर्ग के ऊपर बैठा लाईलाहा (अलाउद्दीन की फौज का सेनापति) जनाजे का उठाना गढ़ के ऊपर बैठा देख रहा था। पृथ्वीराज और रण चंडी तारा गुप्त रूप से अपने सैनिकों को पीछे छोड़कर के आगे बढ़े। अफगान लाईलाहा को इस प्रकार निश्चिंत गढ़ पर बैठा देख पृथ्वीराज ने एक तीक्ष्णातीर से उस दुष्ट का काम तमाम कर दिया। और फुर्ती से पीछे मुड़े, अपने वीरों को बताये गये संकेत द्वारा शीघ्र हमले का बिगुल बजा दिया। वीरों ने तलवारें खड़काई, एक लिंग को जय, हर हर महादेव (पौराणिक जय घोष) लगाते क्षत्रियों ने खूनी फाग खेली। रक्त की नदियां बह गई। मुसलमानों को हथियार (उठाने का मौका भी नहीं मिला जो जहां था उसको वहीं समाप्त कर दिया गया। वीरांगना तारा ने अनेकों दुष्टों का संहार किया। बदनौर गढ़ पर सूरसेन जी का अधिकार हो गया। वीर बाला तारा को भीषण प्रतिज्ञा पूर्ण हुई उनके पूज्य पिताजी ने सिंहासनारूढ़ होते हो पहला शुभ कार्य यही किया। पृथ्वीराज और तारा का वैदिक रीति से विवाह कर दिया। ऐसी आदर्श भक्त माताओं के पथ प्रदर्शन से ही स्वाधीन हम हुए हैं। स्वतन्त्रता की रक्षा भी हम २५ सालों से करते आ रहे हैं आगे भी करते रहेंगे। ईश्वर भारत के प्रत्येक घर में वीरांगना तारा सदृश नारियां भेजे। यही हमारी प्रार्थना है। ●

हमारा मत वेद है

ऋषिदयानन्द सत्यार्थप्रकाश में प्रश्नोत्तर में निर्देश करते हैं—

१—(प्रश्न) तुम्हारा मत क्या है? (उत्तर) वेद अर्थात् जो जो वेद में करने और छोड़ने की शिक्षा की है उस उसका हम यथात् करना छोड़ना मानते हैं। जिस लिये वेद हमको मान्य है इसलिये हमारा मतवेद है। ऐसा ही मानकर सब मनुष्यों को विशेष आर्यों को ऐकमत्य होकर रहना चाहिये। तीसरा समुल्लास।

(२) जो परमात्मा वेदों का प्रकाशन करे तो कोई कुछ भी न बना सके इसलिये वेद परमेश्वरोक्त हैं और जो कोई किसी से पूछे कि तुम्हारा मत क्या है तो यही उत्तर देना कि हमारा मत वेद अर्थात् जो कुछ वेदों में कहा है हम उसको मानते हैं। —सप्तम समुल्लास।

(३) राजा शिवप्रसाद—आपका मत क्या है? स्वामी दयानन्द—वैदिक। राजा—आप वेद किसको मानते हैं। स्वामी—संहिताओं को। राजा—क्या आप ब्राह्मण ग्रन्थों को वेद नहीं मानते। स्वा० नहीं, क्योंकि जो ईश्वरोक्त है वही वेद होता है। जीवोक्त को वेद नहीं कहते।

—ऋषिदयानन्द निर्मित
भ्रमोच्छेदन पुस्तक

पृष्ठ ८ का शेष

चुका है, अनुपयोगी और हानिकारक संस्थानों को बन्द करके शक्तियों के अपव्यय को रोकने का नैतिकबल भी मौजूद नहीं है। यह सब कुछ होते हुए भी सामुदायिक हित का यह बड़ा काम किसी समुदाय द्वारा ही सम्पन्न हो सकता है। यदि कुछ नये हाथ आगे बढ़ें और इस सीमित उद्देश्य के लिये नये समुदाय संघटित हो सकें, तब भी उचित है। इस कार्य में मैं भी कुछ सहयोग कर सकता हूं। परन्तु किसी प्रकार की नौकरी करना मेरे वश में नहीं है। मेरी शक्तियां भी अब क्षीण होने लगी हैं। एक बार पहले भी मैंने इस कार्य में हाथ डाला था, परन्तु प्रतिस्पर्धा के भावों से प्रेरित होकर कुछ लोगों ने बाधायें डालकर हो रहे काम को बन्द करा दिया था। आर्थिक हानि के साथ ही मुझे भारी मानसताप भी सहन करने पड़े थे। ●

श्री कादियाण जी के सुझावों पर विचार—२

(ले० श्री खेमचन्द्र यादव—डब्ल्यू १८, ग्रीन पार्क नई दिल्ली)

श्री सुरेन्द्रसिंह जी कादियाण का वह लेख जिस पर हम अपने विचार व्यक्त कर रहे हैं, 'आर्य मर्यादा' के पृष्ठ ८ पर १३ मई १९७३ को प्रकाशित हुआ है। उस लेख के पैरा दो पर हम अपने विचार आर्यजगत् के समक्ष प्रस्तुत कर चुके हैं जिनको 'आर्यमर्यादा' दिनांक २७ मई में प्रकाशित किया गया है। वर्तमान लेख श्री कादियाण जी के लेख के पैरा एक से सम्बन्ध रखता है। पाठक महोदयों से निवेदन है कि वह श्री कादियाण जी के लेख का पैरा एक पुनः १३ मई के अंक में देख लें। श्री कादियाण जी ने अपने इस लेख में निम्न बातें कही हैं :—

(१) साम्यवाद सबसे खतरनाक आन्दोलन है, उसे यदि न रोका गया तो वह भारत के सब धर्मों, सम्प्रदायों, मतों, मजहबों को अग्नि की तरह भस्म कर देगा, यहां तक कि आर्यसमाज को भी।

(२) इस विपत्ति से बचने के लिये भारत भर के सब मजहबों, सम्प्रदायों, मतों, पंथों और धर्मों को एक मत होकर संघटित हो उससे मोर्चा समय रहते ही बनाकर उस पर अमल करके साम्यवाद को मिटाना चाहिये।

(३) आर्यसमाज इन मजहबों और सम्प्रदायों की एकता के लिये प्रथम आवश्यक पग उठावे, किसी कारण विशेष से ऐसा करना आर्यसमाज का कर्तव्य है।

(४) अब तक आर्यसमाज ने साम्यवाद का वह मुकाबला डटकर नहीं किया जो कि उसे करना चाहिये था।

उपरोक्त बातों को पूरी तरह समझने के लिये निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर यदि सामने आ जावे तो सब बात सरलता से समझ में आ सकेगी।

(क) साम्यवाद क्या है? उसने किन दोषों को जन्म दिया है, जो यदि न मिटाये गये तो सब कुछ मिट जायेगा।

(ख) मजहब, सम्प्रदाय, पंथ मत आदि आदि क्या हैं, उन्होंने किन किन गुणों को जन्म दिया है, जो साम्यवाद जनित दोषों को मेल से मिटा सकने में सफल हो सकते हैं।

(ग) धर्म क्या है? उससे पैदा हुये गुण या दोष क्या हैं?

(घ) उपरोक्त ख और ग वर्ग में आर्यसमाज का स्थान कहां है?

(ङ) आर्यसमाज ने ख और ग वर्ग की एकता के लिये क्या प्रयास किये।

(च) आर्यसमाज ने साम्यवाद की लहर को रोकने का प्रयास किया और उसका क्या फल रहा।

अब हम अपनी मति के अनुसार उपरोक्त प्रश्नों का समाधान पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करते हैं।

(क) जब मानव ने अग्नि और जल की शक्ति को खोज लिया तो उनकी सहायता से उसने ऐसे यन्त्र बना लिये कि उस एक यन्त्र से एक आदमी इतना सामान बना सकने में समर्थ हो गया कि जिस सामान को एक हजार आदमी उतने ही समय में बना पाते। इस बात को एक उदाहरण से स्पष्ट करता हूं—एक तीन सौ चार सौ व्यक्तियों का गांव है। उसमें सब व्यवसाय के आदमी आवश्यकतानुसार हैं। पशु भी हैं। स्वाभाविक मौत से दस पांच पशु साल में मरते ही रहते हैं। गांव के कुछ व्यक्ति उन मृत पशुओं का चमड़ा निकाल कर वहीं गांव में साल भर पकाने का कार्य करते हैं। इस व्यवसाय में उन्हें कोई पूंजी लगाने या फसाने की आवश्यकता नहीं है। उनका तैयार माल वहीं गांव में ही तुरन्त बिक भी जाता है। कुछ अन्य भाई उस तैयार चमड़े से गांव वालों के लिये जूते, चरस, मशक आदि बनाते हैं उन्हें भी अपने इस व्यवसाय में कोई पूंजी लगानी नहीं हैं। उनका तैयार माल भी गांव में ही हाथों हाथ बिकता जाता है। वह अपने इस व्यवसाय में व्यस्त ही रहते हैं। न कहीं भागना न दौड़ना न कोई विशेष झंझट व उलझन। कोई बेकार नहीं, भूखा नहीं।

जब मशीन बन गई तो उसके द्वारा एक ही दिन में हजार हजार पशु काटने की सुविधा हो गई। स्वाभाविक मौत से इतने पशु एक दिन में नहीं मरते तो पशु काटने का व्यवसाय जारी हुआ। उन मारे गये पशुओं की हड्डी, मांस, बाल, खाल आदि आदि के उपयोगी सामान बनाने के कारखाने बने। खाल पकाने का काम मशीन करने लगी, जूते बनाने का काम मशीन करने लगी, अब इन सब कामों को सौ आदमी इतना करने लगे जिसे पहले दस हजार कारीगर करते थे। तो इस प्रकार नौ हजार नौ सौ आदमी बेरोजगार हो गया। वह क्या करे? क्या खाये? यही नहीं मशीनों ने ऐसी ऐसी सस्ती आकर्षक चीजें भी बनाई जिनकी जीवन के लिये आवश्यकता तो थी नहीं, हां उनका कच्चा माल मशीन मालिक के पास था तो उसने वह वस्तुयें बना डालीं। पहले बिना जरूरत शौक के लिये मानव ने उनका उपयोग किया वह उसके जीवन के आवश्यक अंग बन बैठीं। मशीनों ने सामान इतना बना डाला कि उसकी खपत उस देश में गांव में, जवार में ही नहीं आस पास भी असम्भव हो गई। तो उस माल की खपत के लिये दूर दूर जाकर बाजार ढूंढे गये। व्यापार सुचारू रूप से चले तो उन बाजारों के देशों पर अपना शासन थोपना अनिवार्य हो गया। इससे साम्राज्यवाद का जन्म हुआ। मशीन या कारखाना लगाने को पैसा चाहिये। जिनके पास पैसा था वह एक हो गये पैसे ने पैसे को कमाया। उनकी ही मशीन उन्हीं का कारखाना उन्हीं का राज्य उन्हीं का व्यवसाय। यह कहलाया पूंजीवाद। इस पूंजीवाद के जन्म से पहले मानव की आवश्यकतायें अत्यन्त न्यून थीं। भूखे नंगे कम थे लगभग सब के करने को कुछ न कुछ काम था। मानव सन्तुष्ट, बेचैन न था, दैवी शक्ति, भगवान्, देवता आदि पर विश्वास करता था और अपनी इस दशा का कारण उसी शक्ति को मानता था। उसकी प्रसन्नता के लिये जप, दान, तप अपनी रुचि और मान्यतानुसार करता था। पूंजीवाद ने असन्तोष को जन्म दिया।

और और अधिक और और का बाजार गरम हुआ। सारी सम्पत्ति सिमिट सिमिट कर मानवों के पांच प्रतिशत के हाथ में आ गई। उसी का राज्य उसी का कानून। जनता सदा भुलावे में ही पड़ी रहे उसी के लिये पूंजी ने एक नये आन्दोलनों को जन्म दिया जिनको सेवा का त्याग का चोगा पहना कर जनता को भ्रमाने का काम वैज्ञानिक तौर पर सौंपा गया। इन आन्दोलनों के कार्यकर्त्ता जनता में सेवा व त्यागमूर्ति बन कर गये। उनके आराम की, उनके प्रसार व प्रचार को आगे बढ़ाने में पूंजी ने दिल खोलकर अपनी कमाई में से करोड़ों रुपया लगाया। पूंजीवाद के साम्राज्यवाद के बढ़ाने इन आन्दोलनों ने बहुत सहायता की। इस सब का फल यह हुआ कि संसार में बेरोजगार भूखे नंगों की संख्या बढ़ गई। पूंजी लगाने वाले बस पूंजी लगाकर अपने काम को चतुराई से ऐसा चलाने की उनके कामों में लगे मानव जी तोड़ काम करते मगर उस व्यवसाय का नाममात्र का लाभ ही उनके पल्ले न पड़ता। शेष सब मुनाफा सब लाभ पूंजी वाले का ही रहता है यह घपोल अधिक दिन तक न चल सका। उन व्यवसायों में काम करने वाले श्रमिकों को एक सूत्र में बांधे जाने की योजना बनी। भूखों ने समझा हमारे श्रम का लाभ पूंजी किस प्रकार हजम कर रही है। उनके आन्दोलनों के सामने पूंजी को घुटने टेकने पड़े। सुलह करनी पड़ी। और उनकी अधिक मजदूरी व सुविधा दी जाने लगी। यह बात यहां ही न रुकी। श्रमिकों को और आगे बढ़ाया गया, उन्हें आकर्षक नारे दिये गये। पूंजीपतियों के नाश से सब पूंजी श्रमिकों की, इस नारे ने उन्हें मोहित कर दिया। वह आगे बढ़े और कई देशों में पूंजीपति समाप्त हो गये। मार दिये गये, भगा दिये गये या लूट लिये गये। यह कहलाया साम्यवाद। जो करे सो खाये कोई दूसरे की कमाई पर गुलछर्रे न उड़ाये। समान काम करने वालों को समान वेतन व सुविधा मिलें।

इस आन्दोलन की पुश्त पर अवश्य ही प्रथम न्याय था, सत्य था। जिन्होंने जन्म दिया वह सच्चे थे उन्हों ने पूंजी की आपाधापी व लूट को समाप्त करने के लिये बड़ी बड़ी यातनायें सहीं। अन्त को उनका अन्याय से जूझ जाने का प्रयास सफल हुआ। वे सत्य पर थे, न्याय पर थे।

शेष अगले अंक में

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब

वेदप्रचार विभाग के समाचार

१. पठानकोट :-यहां का आर्यसमाज पंजाब के बड़े बड़े समाजों में से एक है। उत्सव बड़े उत्साह से मनाया गया। सभा की ओर से पूज्य स्वामी सर्वानन्द जी महाराज रिसीवर, स्वामी सुकर्मानन्द जी सरस्वती, पं० निरंजनदेव जी वे० प्र० अ०, पं० बलराज जी आर्य संगीत रत्न, तथा श्री हितकर जी की मण्डली शामिल हुये, ५०१) रु० वेदप्रचार में प्राप्त हुआ।

२. जालन्धर :—श्री सेठ शिवचन्द्र जी की पूज्य माता जी के देहान्त पर पं० निरंजनदेव जी वे० प्र० अ० श्री बलराज जी स्वामी सुकर्मानन्द जी श्री हितकर जी, तथा यात्री जी आदि के प्रवचन तथा भजन हुये २०१) रु० श्री सेठ जी ने वेदप्रचार में दान दिया।

३. जाखल :—आर्यसमाज जाखल के प्रधान मोहनलाल जी के देहान्त पर पं० निरंजनदेव जी तथा श्री पं० भक्तराम जी के प्रवचन हुए। ५१) रु० वेदप्रचार में मिले।

४. अखनूर :—जम्मू काश्मीर की प्रसिद्ध आर्यसमाज अखनूर का वार्षिकोत्सव बड़ी सफलता से सम्पन्न हुआ। सभा की ओर से श्री पं० बलराज जी, श्री हितकर जी तथा श्री स्वामी सुकर्मानन्द जी पधारे। ३००) रु० वेदप्रचार में प्राप्त किये।

५. जम्मू :—पिछले दिनों जम्मू की समाजों में स्वामी सुकर्मानन्द जी ने श्री हितकर जी की मण्डली सहित प्रचार किया कुछ दिन श्री यात्री जी ने प्रचार में भाग लिया। सभा को १००) रु० वेदप्रचार में प्राप्त हुए।

सभी समाजों तथा दानी महानुभावों का धन्यवाद।

—निरञ्जनदेव वेदप्रचाराधिष्ठाता

ऋषि दयानन्द कृत ऋग्वेद भाषा भाष्य का प्रथम भाग प्रकाशित हो गया

यह भाग ऋग्वेद के ६ मण्डल तक पूरा हुआ है। इसमें २०×३०/४ साइज के ६०० पृष्ठ हैं। दयानन्द संस्थान की मन्त्री—पं० राकेश रानी ने इसका प्रकाशन किया है। कागज, टाइप और मुद्रण उत्तम है। इस भाग की जिल्द बड़ी दृढ़, रंगीन और पक्की है। मूल्य ३१ रु० मात्र है। पुस्तक का बहिरंग भी अन्तरंग के ऋषि भाषा भाष्य के अनुरूप हो आकर्षक है। आरम्भ में संस्थान के अध्यक्ष पं० भारतेन्द्रनाथ साहित्यालंकार ने अपने सहयोगियों के प्रति आभार रूप अच्छे भाव प्रकट किये हैं। साथ ही ऋषि दयानन्द कृत ऋग्वेद भाष्य में दी गई भूमिका का प्रकाशन किया है। जनता में वेदप्रचार के पवित्र कार्य में इनका सारा परिवार लगा-हुआ है। इस उत्तम कृति के लिये हम इन्हें हार्दिक बधाई देते हैं और इनके परिवार के लिये साधुवाद। हमें आशा है कि इसी प्रकार शेष वेद भाषा भाष्य का अन्य तीन जिल्दें भी यथा समय प्रकाशित हो जावेंगी।—मिलने का पता—मन्त्री दयानन्द संस्थान, १५६७ हरध्यानसिंह मार्ग, करौल बाग, नई दिल्ली-५

—जगदेवसिंह सिद्धान्ती शास्त्री

कन्या गुरुकुल महाविद्यालय देहरादून

अनिवार्य आश्रम पद्धति पर चलने वाली अखिल भारतीय संस्था है। जो गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय से सम्बन्धित है। यहां पर प्रथम श्रेणी से बी० ए० (समकक्ष) विद्यालंकार तक निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था है। उच्च प्रशिक्षित शिक्षिका वर्ग छात्रावास, एवं पुस्तकालय की व्यवस्था है। छात्राओं के लिये पढ़ाई के अलावा चित्रकला, संगीत, विभिन्न प्रकार के खेल, सिलाई, कटाई गृहविज्ञान एवं साइन्स आदि के शिक्षण का भी उचित प्रबन्ध है।

१ जुलाई १९७३ से नवीन कन्याओं का प्रवेश आरम्भ है। प्रवेश के इच्छुक महानुभाव नियमावली मंगा लें। स्थान सीमित है। संस्कृत लेकर मैट्रिक उत्तीर्ण छात्रायें भी प्रथम वर्ष में दाखिल हो सकती हैं।

—दमयन्ती कपूर आचार्या

आर्यसमाज सांताक्रुज बम्बई

पदाधिकारियों का चुनाव निम्न प्रकार हुआ :—प्रधान—श्री अर्जुन भाई पटेल। मन्त्री—श्री सोमदत्त शर्मा। कोषाध्यक्ष—श्री इन्द्रबल मल्होत्रा। —मन्त्री

दयानन्द ब्राह्म महाविद्यालय हिसार

१ से २० जौलाई ७३ तक नवीन छात्रों का प्रवेश हो रहा है, उपदेशक बनने के इच्छुक संस्कृत सहित मैट्रिक उत्तीर्ण १७ वर्ष की आयु के छात्र शीघ्रातिशीघ्र निम्न पते पर पत्र व्यवहार कर अपना स्थान सुरक्षित कर लेवें, स्थान सीमित है।

—आचार्य दयानन्द ब्राह्म महाविद्यालय, (हरयाणा)

सत्यार्थप्रकाश की परीक्षाएँ

रविवार २ सितम्बर ७३ को वेद सप्ताह के उपलक्ष्य में सत्यार्थप्रकाश परीक्षाएँ समस्त देश में सम्पन्न होंगी। पाठ्यक्रम एवं नियमावलि के लिये परीक्षा सचिव आर्य युवक परिषद् एच-६४ अशोक विहार दिल्ली-५२ से पत्र व्यवहार करें। —प्रधान देवव्रत धर्मेन्दु

सदाचार शिक्षण शिविर

आर्य युवक सभा हरयाणा की ओर से आर्यसमाज जीन्द शहर में श्रीयुत स्वामी योगानन्द जी सरस्वती की अध्यक्षता में १८ जून से २४ जून १९७३ तक सदाचार शिक्षण शिविर का आयोजन किया जा रहा है। जिसमें उच्चकोटि के साधु, सन्यासी, विद्वान् तथा आर्य प्रतिनिधि सभा पञ्जाब के प्रसिद्ध भजनोपदेशक कुंवर श्यामसिंह हितकर पधार रहे हैं। १८ जून से यजुर्वेद ब्राह्म पारायण महायज्ञ प० वेदपाल जी शास्त्री की अध्यक्षता में प्रारम्भ होगा। जिसकी पूर्णाहुति २४ जून को प्रातःकाल होगी। व्यायाम प्रशिक्षण—प० मनुदेव जी की अध्यक्षता में नवयुवकों को योगासन, दण्ड, बैठक, लाठी, स्तूप-निर्माण, मलखम्ब आदि भारतीय व्यायाम का प्रशिक्षण दिया जाएगा। २४ जून को व्यायाम का विशेष प्रदर्शन होगा। जिसमें अनेक प्रकार के व्यायामों का प्रदर्शन किया जाएगा। प्राणायाम-प्रशिक्षण—श्री स्वामी ओमानन्द जी की अध्यक्षता में प्राणायाम का प्रशिक्षण दिया जायेगा। जिज्ञासु जनों को यौगिक क्रियायें भी सिखलाई जायेंगी।

विशेष :—(क) प्रवेशार्थी आर्यसमाज जीन्द शहर के पते पर अपना प्रार्थना-पत्र भेजे। प्रवेश शुल्क १०) रु० है। बाहर से आने वाले प्रवेशार्थियों का भोजन प्रबन्ध शिविर की ओर से होगा। ऋतु-अनुकूल वस्त्र साथ लावें। (ख) प्रवेशार्थी सैंडो बनियान, सफेद नेक्कर, लङ्गोट, सफेद जुराब, पी० टी० शूज, लाठी (कद अनुसार) घृत, कापी, पैंसिल आदि साथ लावें। —सयोजक—सुदर्शनदेव आचार्य

आर्य महाविद्यालय किरठल (मेरठ)

५३ वाँ वार्षिकोत्सव ता० ८, ९, १० जून १९७३ को समारोह पूर्वक मनाया जावेगा। जिसमें स्वा० धर्मानन्द जी, स्वा० ओमानन्द जी, पं० प्रकाशवीर जी शास्त्री, पं० शिवकुमार जी शास्त्री, पं० हरपालसिंह जी शास्त्री, प० जगदेवसिंह जी सिद्धान्ती, पं० रघुवीरसिंह जी शास्त्री कुलपति गुरुकुल कांगड़ी आदि विद्वान् महानुभावों को तथा श्री म० वीरेन्द्र जी 'वीर', पं० निरंजन प्रसाद जी तथा श्री खेमचन्द जी आदि प्रसिद्ध भजनोपदेशकों को निमन्त्रित किया गया है।

आवश्यक सूचना—१. विद्यार्य सभा का बृहद् अधिवेशन १० जून रविवार को प्रातः ७॥ बजे होगा। २, देहली तथा सहारनपुर की ओर से पधारने वाले महानुभाव रमाला उतरें, वहां से बस या तांगे द्वारा किरठल पधारें। ३. ऋतु के अनुकूल वस्त्रादि अवश्य लावें।

दर्शनाभिलाषी :—

चन्द्रप्रकाश शास्त्री एम० ए०	शिवपूजन शास्त्री
व्याकरणाचार्य—मन्त्री	व्याकरणाचार्य—प्रधानाचार्य

शोक समाचार प्रकाशन

आर्यसमाज नया बांस देहली के मंत्री एवं कर्मनिष्ठ कार्यकर्ता श्री धर्मपाल जी आर्य का हृदय-गति अवरुद्ध होने के कारण दिनांक २७-५-७३ को देहावसान हो गया। दिवंगत आत्मा के प्रति अपने मनोभाव प्रकट करने हेतु दिनांक ३-६-७३ रविवार को प्रातः १०-३० बजे मन्दिर आर्य समाज नया बांस में प्रोफेसर श्री रामसिंह जी एम० ए० की अध्यक्षता में एक शोकसभा का आयोजन किया गया। इस समय उनके शोक परितप्त परिवार एवं सम्बन्धी जनों के प्रति शोक सहानुभूति प्रकाशित की गई। परमेश्वर इनको धीरज देवे जिससे वज्र सम दुःख को सह सकें। भगवान् दिवंगतात्मा को न्यायानुसार उत्तम गति देवे।

शोक सन्तप्त

—दीपचन्द आर्य, प्रधान आर्य समाज

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब द्वारा प्रकाशित और प्रचारित वैदिक साहित्य

१. बलिदान जयन्ती स्मृति ग्रन्थ—आर्य बलिदानों की गाथा मूल्य ४-५०
२ सोम सरोवर-वेदमन्त्रों की व्याख्या —पं० चमूपति एम. ए. ३-००
३. जीवन ज्योति-वेदमन्त्रों की व्याख्या " " ३-००
४. नीहारिकावाद और उपनिषदें " " ०-२५
५. Principles of Arya samaj " " १-५०
६. Glimpses of swami Daya Nand " " १-००
७. पंजाब का आर्य समाज पंजाब तथा हरयाणा के आर्यसमाज का इतिहास २-००
८. वैदिक सत्संग पद्धति सन्ध्या हवनमन्त्र अर्थ रहित विधि १-००
९. वेदादिर्भाव —आर्यमर्यादा का विशेषांक ०-६५
१०. यजुर्वेद अ० ३२ का स्वाध्याय " " " ०-५०
११. वेद स्वरूप निर्णय —पं० मदनमोहन विद्यासागर १-००
१२. व्यवहारभानु —महर्षि स्वामी दयानन्द ०-५०
१३. स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश— " " ०-४०
१४. Social Reconstruction By Budha & Swami Daya Nand By. Pt Ganga Prasad Upadhya M. A. २-००
१५. Subject Matter of the Vedas By S. Bhoomanad १-००
१६. Enchanted Island By Swami Staya Parkashanand १-००
१७. Cow Protection By Swami Daya Nand ०-१५
१८. वेद में पुनरुक्ति दोष नहीं है आर्यमर्यादा का विशेषांक २-००
१९. मूर्त्तिपूजा निषेध " " ०-५०
२०. धर्मवीर पं० लेखराम जीवन —स्वामी श्रद्धानन्द १-२५
२१. कुलियात आर्य मुसाफिर प्रथम भाग—पं० लेखराम की पुस्तकों का संग्रह ६-००
२२. " " दूसरा भाग " " ८-००
२३. मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र —कु० सुशीला आर्या एम. ए. ०-२५
२४. योगीराज कृष्ण " " " ०-१५
२५. गोकरुणा निधि —स्वामी दयानन्द सरस्वती ०-२०
२६. आर्यसमाज के नियम उपनियम ०-१०
२७. आर्य नेताओं के वचनामृत —साईंदास भण्डारी ०-१२
२८. कायाकल्प —स्वामी समर्पणानन्द सरस्वती १-५०
२९. वैदिक धर्म की विशेषतायें —पं० हरिदेव सिद्धान्त भूषण ०-१५
३०. स्वतन्त्रानन्द लेखमाला —स्वा० स्वतन्त्रानन्द जी की जीवनी तथा उनके व्याख्यान १-२५
३१. आत्मानन्द लेखमाला—स्वामी आत्मानन्द सरस्वतीकी जीवनी १-२५
३२. आर्यसमाज के सदस्यता फार्म —सैंकड़ा १०-००
३३. वैदिक गीता —स्वामी आत्मानन्द सरस्वती २-५०
३४. मनोविज्ञान तथा शिव संकल्प " " " ३-५०
३५. कन्या और ब्रह्मचर्य " " " ०-१५
३६. सन्ध्या अष्टाङ्गयोग " " " ०-७५
३७. वैदिक विवाह " " " ०-७५
३८. सुखी जीवन —श्री सत्यव्रत २-००
३९. एक मनस्वी जीवन —पं० मनसाराम वैदिक तोप १-५०
४०. छात्रोपयोगी विचारमाला —जगदेवसिंह सिद्धान्ती १-५०
४१. स्त्री शिक्षा —पं० लेखराम आर्य मुसाफिर ०-६०
४२. विदेशों में एक साल —स्वामी स्वतन्त्रानन्द २-२५
४३. वेद विमर्श —पं० भगवद्दत्त वेदालंकार २-००
४४. वेद विमर्श —पं० वेदव्रत शास्त्री २-००
४५. आसनों के व्यायाम " " " १-००
४६. महर्षि जीवन गाथा —स्वामी वेदानन्द वेदवागीश २-२५
४७. मांस मनुष्य का भोजन नहीं—स्वामी ओमानन्द सरस्वती १-००
४८. वीर भूमि हरयाणा " " " ४-००
४९. चोटी क्यों रखें —स्वामी ओमानन्द सरस्वती ०-२०
५०. हमारा फाजिल्का —श्री योगेन्द्रपाल १-५०
५१. सत्संग स्वाध्याय —स्वामी ओमानन्द सरस्वती ०-५०
५२. जापान यात्रा " " " ०-७५
५३. भोजन " " " ०-७०
५४. ऋषि रहस्य —पं० भगवद्दत्त वेदालंकार २-००
५५. स्वामी श्रद्धानन्द जीवन परिचय १-२५
५६. मेरा धर्म —आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति ७-००
५७. वेद का राष्ट्रिय गीत " " " ५-००
५८. ईशोपनिषद्भाष्य —इन्द्र विद्या वाचस्पति २-००
५९. पं० गुरुदत्त विद्यार्थी जीवन —डा० रामप्रकाश १-३०
६०. वैदिक पथ —पं० हरिदेव सिद्धान्त भूषण २-००
६१. वैदिक प्रवचन —पं० जगत्कुमार शास्त्री २-२५
६१. ज्ञानदीप " " " २-००
६२. आर्यसमाज का सैद्धान्तिक परिचय ०-५५
६३. The Vedas ०-५०
६४. The Philosophy of Vedas ०-५०
६६. ईश्वर दर्शन पं० जगत्कुमार शास्त्री १-५०
६७. श्वेताश्वरोपनिषद् " " ४-००
६८. ब्रह्मचर्य प्रदीप " " ४-००
६९. भगवत प्राप्ति क्यों और कैसे —स्वा० सत्यानन्द ०-६०
७०. आर्य सामाजिक धर्म " " ०-७५
७१. बोध प्रसाद —स्वामी श्रद्धानन्द ०-२५
७२. ऋषि दर्शन —पं० चमूपति एम. ए. ००-२५
७३. ऋषि का चमत्कार " " " ००-१२
७४. वैदिक जीवन दर्शन " " " ००-२०
७५. वैदिक तत्व विचार " " " ००-५०
७६. देव यज्ञ रहस्य " " " ००-३१
७७. स्वतन्त्रानन्द संस्मरणांक १-५०

सभी पुस्तकों के प्राप्ति स्थान

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब, गुरुदत्त भवन, जालन्धर (४२५०) टेलीफोन
" " " १५ हनुमान् मार्ग नई दिल्ली-१ " (३१०१५०)
" " " दयानन्द मठ रोहतक (हरयाणा) " (५७४)

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के लिए जगदेवसिंह सिद्धान्ती शास्त्री द्वारा सैनी प्रिंटर्स पहाड़ी धीरज, देहली में मुद्रित और १५ हनुमान् रोड, नई दिल्ली—१ से प्रकाशित

४ आषाढ़ सं० २०३० वि०, दयानन्दाब्द १४६,
तदनुसार १७ जून १९७३ रविवार
सृष्टि सं०-१९६०८५३०७३
वर्ष ५ वार्षिक शुल्क स्वदेश में १०) रुपये
अंक २९ „ „ विदेश में २०) रुपये
एक प्रति का मूल्य ००-२० पैसे

सम्पादक - जगदेवसिंह सिद्धान्ती शास्त्री, पूर्व लोकसभा सदस्य (फोन ५१२१६३)

वेदमन्त्रार्थ-प्रवचन

पुनस्तमेव विषयमाह ।

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ।

परावतं नासत्यानुदेथामुच्चाबुध्नं चक्रथुर्जिह्मवारम् ।
क्षरन्नापो न पायनाय राये सहस्राय तृष्यते गोतमस्य ॥

ऋ० १.११६.९

पदार्थः—(परा) अवतम्) रक्षतम् (नासत्या) अग्निवायू इव वर्तमानौ (अनुदेथाम्) प्रेरयेथाम् (उच्चाबुध्नम्) उच्चा ऊर्ध्वं बुध्नमन्तरिक्षं यस्मिंस्तम् (चक्रथुः) कुरुतम् (जिह्मवारम्) जिह्मं कुटिलं वारो वरणं यस्य तम् (क्षरन्) क्षरन्ति (आपः) वाष्परूपाणि जलानि—(न) इव (पायनाय) पानाय (राये) धनाय (सहस्राय) असंख्याताय (तृष्यते) तृषताय (गोतमस्य) अतिशयेन गौः स्तोता गोतमस्तस्य ॥

अन्वयः—हे अग्निवायुवद्वर्तमानौ, नासत्याऽश्विनौ युवां जिह्मवारमुच्चाबुध्नमवतमनेन कार्य्यसिद्धिं चक्रथुः कुरुतम् । तं पराऽनुदेथां यो गोतमस्य याने तृष्यते पायनायापः क्षरन्नेव सहस्राय राये जायेतं तादृशं निर्मिमाथाम् ॥

भावार्थः—अत्रोपमालङ्कारः । शिल्पिभिर्विमानादियानेषु पुष्कलमधुरोदकाधारं कुण्डं निर्माय्याग्निना संचाल्य तत्रसंभारान् धृत्वा देशान्तरं गत्वाऽसंख्यातं धनं प्राप्य परोपकारः सेवनीयः ॥

भावार्थः—हे (नासत्या) आग और पवन के समान वर्तमान सभापति और सेना तुम दोनों (जिह्मवारम्) जिसको टेढ़ी लगत और (उच्चाबुध्नम्) उससे जिसमें ऊंचा अन्तरिक्ष अर्थात् अवकाश उस रथ आदि को (अवयम्) रक्खो और अनेक कामों की सिद्धि (चक्रथुः) करो और उसको यथायोग्य व्यवहार में (परा, अनुदेथाम) लगाओ जो (गोतमस्य) अतीव स्तुति करने वाले के रथ आदि पर (तृष्यते) प्यासे के लिए (पायनाय) पीने को (आपः) भाररूपजल जैसे (क्षरन्) गिरते हैं (न) वैसे (सहस्राय) असंख्यात (राये) धन के लिये अर्थात् धन देने के लिये प्रसिद्ध होता है वैसे रथ आदि को बनाओ।

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं० । शिल्पी लोगों को विमानादियानों में जिसमें बहुत मीठे जल की धार आवे ऐसे कुण्ड को बना आग से उस विमान आदि यान को चला उसमें सामग्री को धर एक देश से दूसरे देश को जाय और असंख्यात धन पाय के परोपकार का सेवन करना चाहिये ॥

—(ऋषिदयानन्दभाष्य)

पुनर्जन्मविषयः

(अवाङ्मुखः) मैंने गर्भ में नीचे मुख ऊपर पग इत्यादि नाना प्रकार की पीड़ाओं से युक्त होके अनेक जन्म धारण किये परन्तु अब इन महा दुःखों से तभी छूटूंगा कि जब परमेश्वर में पूर्ण प्रेम और उसकी आज्ञा का पालन करूंगा। नहीं तो इस जन्ममरण रूप दुःखसागर के पार जाना कभी नहीं हो सकता। तथा योगशास्त्र में भी पुनर्जन्म का विधान किया है। (स्वरस०) (सर्वस्य प्रा०)। हर एक प्राणियों की यह इच्छा देखने में आती है कि (भूयासमिति) अर्थात् मैं सदैव सुखी बना रहूं, मरू नहीं। यह इच्छा कोई भी नहीं करता कि (मा न भुवं) अर्थात् मैं न होऊं। ऐसी इच्छा पूर्वजन्म के अभाव से कभी नहीं हो सकती। यह अभिनिवेश क्लेश कहलाता है जोकि कृमिपर्यन्त को भी मरण का भय बराबर होता है। यह व्यवहार पूर्वजन्म की सिद्धि को जनाता है। तथा न्याय दर्शन के (पुनरु०) सूत्र और उसी वात्स्या० भाष्य में भी कहा है कि जो उत्पन्न अर्थात् किसी शरीर को धारण करता है वह मरण अर्थात् शरीर को छोड़ के पुनरुत्पन्न दूसरे शरीर को भी अवश्य प्राप्त होता है। इस प्रकार मर कर पुनर्जन्म लेने को "प्रेत्यभाव" कहते हैं।।।९।। (पातं० २। सूत्र ९।। न्याय० अं०। अ० १। सूत्र० १९।।) —ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका

सत्यार्थप्रकाश (दशम समुल्लास)

(प्रश्न) "गुरोरुच्छिष्टभोजनम्" इस वाक्य का क्या अर्थ होगा ? (उत्तर) इसका यह अर्थ है कि गुरु के भोजन के किये पश्चात् जो पृथक् अन्न शुद्ध स्थिर है उसका भोजन करना अर्थात् गुरु को प्रथम भोजन करा के पश्चात् शिष्य को भोजन करना चाहिये। (प्रश्न) जो उच्छिष्ट मात्रका निषेध है तो मक्खियों का उच्छिष्ट सहत बछड़े का उच्छिष्ट दूध, और एक ग्रास खाने के पश्चात् अपना भी उच्छिष्ट होता है पुनः उनको भी न खाना चाहिये। (उत्तर) सहत् कथनमात्र ही उच्छिष्ट होता है परन्तु वह बहुतसी औषधियों का सार ग्राह्य बछड़ा अपनी मां के बाहिर का दूध पीता है, भीतर के दूध को नहीं पी सकता इसलिये उच्छिष्ट नहीं परन्तु बछड़े के पिये पश्चात् जल से उसकी मां के स्तन को धोकर शुद्धपात्र में दोहना चाहिये और अपना उच्छिष्ठ अपने को विकार कारक नहीं होता देखो स्वभाव से यह बात सिद्ध है कि किसी का उच्छिष्ट कोई भी न खावे जैसे अपने मुख, नाक, कान, आंख, उपस्थ और गुह्यन्द्रियों के मलमूत्रादि के स्पर्श में घृणा नहीं होती वैसे किसी दूसरे के मलमूत्र के स्पर्श में होती है इससे यह सिद्ध होता है कि यह व्यवहार सृष्टि से विपरीत नहीं है इसलिये मनुष्यमात्र को उचित है कि किसी का उच्छिष्ट अर्थात् झूठा नहीं खाय। (प्रश्न) भला स्त्री पुरुष भी परस्पर उच्छिष्ट न खावें ? (उत्तर) नहीं क्योंकि उनके भी शरीरों का स्वभाव भी भिन्न है——(ऋषिदयानन्द)

सूखा अवर्षण दूर हो सकता है।

(श्री पं० वीरसेन वेदश्रमी, वेद सदन महारानी पथ, इन्दौर-१)

यदि वृष्टि अल्प आहुतियों से भी हो जावे तो भी शेष आहुतियां देना आवश्यक है जिससे अंतरिक्ष एवं द्युलोक के तत्वों की पुष्टि यथावत् हो सके और वे सामर्थ्यवान् बने रहें। जिस प्रकार किसी रोग की चिकित्सा प्रारंभ करने पर उसका लाभ थोड़ा-सा ही प्रतीत होने पर औषधि प्रयोग बन्द कर देने से असमर्थ शरीर पुनः रोगाक्रान्त हो जाता है और रोग गहरी जड़ पकड़ लेता है उसी प्रकार अपूर्ण आहुतियों के यज्ञ से इच्छित भावी परिणाम नहीं भी हो सकते हैं अर्थात् रुक सकते हैं।

वृष्टि यज्ञ के लिये आहुतियों की संख्या के बारे में वेद नें हमें बहुत ही स्पष्ट निम्न शब्दों में उपदेश किया है—

एतान्यग्ने नवतिर्नवत्वे आहुतान्यधिरथा सहस्रा।
तेभिर्वर्धस्व तन्वः शूरपूर्वी दिवो नो वृष्टिमिषतो रिरीहि॥
(ऋ० १०।९८।१०)

अर्थात्—हे अग्ने, इन ९९ सहस्र आहुतियों के रथ पर आरूढ़ होइये। और हे पराक्रमशील, उन आहुतियों से वृद्धि को प्राप्त होकर सूक्ष्मता तथा व्यापनशीलता से अंतरिक्ष एवं द्युलोक से हमारे लिये वृष्टि की अनुकूलता संपादन करके वृष्टि प्रदान कीजिये।

इस प्रकार वृष्टि यज्ञ के लिये ९९ हजार आहुतियां यज्ञाग्नि में प्रदान करने का उपदेश है। जिस यज्ञ में ९९ हजार आहुतियां होंगी तो उसमें सामान्य यज्ञ की एवं कुछ अन्य विशेष आहुतियां भी होनें से एक या सवा लाख आहुतियों की संख्या हो ही जावेगी।

वृष्टि यज्ञ में देवताओं का महत्व

वृष्टि यज्ञ में अग्नि, घृत, हविद्रव्य तथा आहुति संख्या के अतिरिक्त मंत्र एवं देवता का भी महत्व है। मंत्र का सम्बन्ध ध्वनि से है। ध्वनि का संबन्ध स्वर एवं गीत से है। स्वर एवं गीत का सम्बन्ध छंद से है। छंद का संबंध तत्व या शक्ति से तथा काल, सेवन, ऋतु आदि से है। इन सब का सम्बन्ध समस्त जगत् से है। जगत् दिव्य शक्तिमय होने से देवतामय है। ऐसी स्थिति में यज्ञ द्वारा वृष्टि की कामना के लिये किस देवता के मंत्रों का प्रयोग करना यह भी ज्ञान आवश्यक है।

वृष्टि यज्ञ के देवताओं की स्थिति

इन्द्र, सूर्य, वरुण, मित्रावरुण, मरुत, सोम, पर्जन्य, स्तनयित्नु विद्युत्, आपः इन्हीं देवों का प्रधान रूप से वर्षा से संबंध है। इनमें से इन्द्र और सूर्य का स्थान इन सबसे ऊपर है। वरुण और मैत्रावरुण का स्थान उससे बहुत नीचे है। सोम और मरुत का जो वृष्टि से विशेष संबधित है उनकी मैत्रावरुणके नीचे के प्रदेश में निकटस्थ स्थिति है और पर्जन्य स्तनयित्नु-विद्युत् की इनके भी निकटस्थ नीचे के प्रदेश में स्थिति रहती है, तथा उनका संबंध इनसे सबके पश्चात् की स्थिति में है। अंतरिक्ष एवं द्युलोक स्थित इन देवों के स्थानों के संबंध के साथ इनका कालकृत संबंध भी रहता है। इसी संबंध के कारण वर्षा की प्रक्रिया ऊपर से क्रमशः नीचे की ओर विकसित या निर्मित होकर आपः स्थिति तक प्राप्त हो जाती है।

इन्द्र एवं सूर्य के लिये त्रिष्टुप् एवं जगती छंदों से आहुतियां

मेघ न होने की स्थिति में या जब अवर्षण की स्थिति हो तब यही आवश्यक है कि यज्ञाग्नि में इंद्र एवं सूर्य देवता के मंत्रों से आहुति दी जावे। त्रिष्टुप् एवं जगती छंदों के मंत्रो से जिनका इंद्र या सूर्य देवता हो उनसे अत्यधिक आहुति दी जावे। सोमेन आदित्याः बलिनः (अथर्व-१४।१।२) सोम से सूर्य की रश्मियां बलवान् होती हैं और वर्षा के लिये तो और भी अधिक बलवान् होती हैं। इंद्र तो सोम-पान से बलिष्ठ एवं प्रसन्न होता है। वही प्रसन्न इंद्र वर्षा भी कराता है। अतः यज्ञ में सोम प्रधान तत्वों की आहुति देने से सूर्य एवं इंद्र तत्वात्मक शक्तियों से वर्षा कराने की प्रक्रिया उत्तरोत्तर विकसित होती जाती है।

इंद्र और सूर्य देवों की आहुतियों का लाभ

सूर्य एवं इंद्र के लिये आहुतियां विशेष देने से द्यु लोकस्थ सूर्य रश्मियां और उनसे उत्पन्न होने वाली विद्युत शक्ति जो इंद्र वाचक है उनसे वृष्टि के प्रारम्भिक मूलभूत कार्य ताप द्वारा धूम एवं सोम का पृथिवीस्थ वृक्ष वनस्पतियों। जलाशय एवं समुद्रादि से निर्माण तथा मरुतों द्वारा उनका धारण कार्य प्रारम्भ होने लगता है तभी पर्जन्य निर्माण होकर वर्षा होती है।

किस देवता के लिये कितनी आहुतियां

इंद्र देवता के लिये सर्वाधिक हवि वर्षा के निमित्त देने के लिये वेद निम्न मंत्र से उपदेश देता है:—

एतान्यग्ने नवतिं सहस्रा सम्प्रयच्छ वृष्ण इंद्राय भागम्
(ऋ० १०।९८।११)

अर्थात—जो पूर्वोक्त मत्र में ९९ सहस्र आहुतियाँ वृष्टि के लिये कही हैं उनमें ९० हजार आहुतियाँ वृष्टिकर्त्ता इंद्र देवता के लिये ही प्रदान करनी चाहियें। इद्र और सूर्य इनको अभिन्न ही यहां मानना चाहिये। भिन्न रूप से भी मानकर कार्य करना होता है। अर्थात् इंद्र शक्ति के लिये सोम पदार्थों की आहुतियाँ विशेष रूपसे देने के बाद, ९सहस्र आहुतियों से वरुण, मित्रावरुण, सोम, मरुत, पर्जन्य, स्तनयित्नु, विद्युत् एव आपः देवता को देनी चाहिये। इनके लिये त्रिष्टुप् छंद से लेकर गायत्री छंद के मंत्रों की आहुतियां जो उपरोक्त देवताओं को हो देनी चाहिये। तब वृष्टि यज्ञ की पूर्ण प्रक्रिया होती है। इस प्रक्रिया के अन्तर्गत् अंतरिक्ष की स्थिति के अनुसार कब और कहाँ से प्रक्रिया आरम्भ करनी है यह ज्ञात ब्रह्मा, आचार्य या ऋत्विजों को होना चाहिये।

वृष्टि यज्ञों से अनेक परीक्षण हमने किये हैं और उसी आधार पर हमें यह विश्वास है कि वर्तमान समय की अवर्षण की स्थिति को दूर करने में यज्ञ समर्थ है। इससे वृष्टि की समस्या हल होगी—अन्न होगा-जल होगा-विद्युत् होगी और देश समृद्ध बनेगा।

●

वेदविषयविचार:

अग्नेर्वैधूमोजायते धूमादभ्रमभ्राद् वृष्टिरग्ने र्वा एता जायन्ते तस्मादाह तपोजा इति॥ शत० का० ५॥ अ० ३॥

अस्यायमभिप्रायः। अग्नेः सकाशाद् धूमवाष्पौ जायेते। यदायमग्निर्वृक्षौषधिवनस्पतिजलादिपदार्थान्प्रविष्ट तान्संहतान् विभिद्य तेभ्यो रसं च पृथक् करोति। पुनस्ते लघुत्वमापन्ना वाय्वाधारेणोपर्य्याकाशं गच्छन्ति। तत्र यावान् जलरसांशस्तावतो वाष्पसंज्ञास्ति। यश्च निःस्नेहो भागः स पृथिव्यंशोऽस्ति। अत एवोभयभागयुक्तो धूम इत्युपचर्य्यंते। पुनर्धूमगमनान्तरमाकाशे जलसञ्चयो भवति। तस्मादभ्रं घना जायन्ते। अतोऽभ्रेभ्यो वृष्टिर्भवति। तस्माद्वृष्टेरोषधयो जायन्ते तेभ्योऽन्नमन्नाद्वीर्यं वीर्य्याच्छरीराणि भवन्ति—इति॥

भावार्थ—इसमें शतपथ ब्राह्मण का भी प्रमाण है, कि (अग्नेः) जो होम करने के द्रव्य अग्नि में डाले जाते हैं उनसे धुआं और भाफ उत्पन्न होते हैं, क्योंकि अग्नि का यही स्वभाव है कि पदार्थों में प्रवेश करके उन को भिन्न-भिन्न कर देता है, फिर वे हलके होके वायु के साथ ऊपर आकाश में चढ़ जाते हैं, उनमें जितना जल का अंश है वह भाफ कहाता है और जो शुष्क है वह पृथिवी का भाग है, इन दोनों के योग का नाम धूम है। जब वे परमाणु मेघमण्डल में वायु के आधार से रहते हैं फिर वे परस्पर मिल के बादल होके उनसे वृष्टि, वृष्टि से औषधि, औषधियों से अन्न, अन्न से धातु, धातुओं से शरीर और शरीर से कर्म बनता है॥

(—ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका)

पं० ईश्वरदयालु जी आर्य ७ न्यु रोड देहरादून से निवेदन

आर्यसमाज नवांशहर दोआबा (जि० जालन्धर) के श्री मन्त्री जी ने देहली के दैनिक हिन्दुस्तान के २५ मई ७३ के अंक के लोकवाणी स्तम्भ का एक कटिंग हमारे पास भेजने की कृपा की है। इस पत्र से स्पष्ट होता है कि आर्यसमाज के स्वाध्यायशील भाई सजग हैं। अस्तु

"उक्त अंक में मान्य पं० ईश्वरदयालु जी आर्य की एक मांग प्रकाशित हुई है। जिसमें उन्होंने लिखा है कि ऋषि दयानन्द के प्रसिद्ध ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश के ८ वें समुल्लास के "वसु" प्रकरण में तथा ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के जैसे महत्वपूर्ण ग्रन्थ के "प्रकाश्य प्रकाशक" प्रकरण में दिये यजुर्वेद अध्याय २२ के मन्त्र १० के भावार्थ में अशुद्धियां हैं। क्योंकि चारों वेदों और इन्हीं उक्त ग्रन्थों में ऐसे प्रमाण मिलते हैं जिनसे यह स्पष्ट होता है कि इन अशुद्ध स्थलों का संशोधन किया जावे।"

मान्य पण्डित जी से निवेदन है कि संशोधन कराने का ढंग उन्होंने अयथार्थ ग्रहण किया है। अपनी मांग को वे सार्वदेशिक धर्म आर्यसभा के सम्मुख रखते और वहां जो विचार होता तब अपने पक्ष के सम्बन्ध में अपने प्रमाण प्रस्तुत करते। एक राजनीतिक पत्र में ऐसी मांग रखने से यह प्रतीत होता है कि महर्षि दयानन्द के अनुयायियों की भी ऋषि के लेखों पर आपत्ति है। यदि धर्मार्थ सभा में नहीं रखनी थी तो आर्यसमाज के पत्रों में भेज देते। खैर हुआ जो हुआ। आदरणीय पण्डित जी से हमारा नम्र निवेदन है कि अपनी संशोधन की मांग को अपने पक्ष के साधक प्रमाणों के साथ 'आर्यमर्यादा'—१५ हनुमान् रोड, नई देहली में भेजकर कृतार्थ कीजिये। इस पत्र में आर्य विद्वानों के ऐसे परस्पर विवादग्रस्त लेख प्रकाशित होते रहते हैं। हम आदरपूर्वक इनके लेख प्रकाशित करेंगे और इस पर विचार प्रसंग चलाने के लिये पूज्य आर्य विद्वानों से प्रार्थना करेंगे तथा उभय पक्ष के लेखों को आदरपूर्वक प्रकाशित करेंगे। इस प्रकार स्वाध्यायशील आर्यबन्धुओं को यथेष्ट लाभ मिलेगा।

हमारा एक विचार और है कि ऋषियों के द्वारा प्रचारित और प्रकाशित ग्रन्थों के मूल भावों में संशोधन की माग करना तो दूर रहा, अपितु साधारण लेखक के लेख का भी संशोधन नहीं किया जा सकता। अपितु उस ग्रन्थ के उक्तस्थल पर आलोचक अपनी नीचे टिप्पणी में अपने विचार दे सकते हैं। इससे मूल लेख भी बना रहता है और टिप्पणीकार की अपनी सम्मति भी दी जा सकती है। इससे यह लाभ होता है कि हो सकता है कि किन्हीं के मत में मूल लेख शुद्ध जंचे और वह टिप्पणीकार के मत को अशुद्ध बतलाते हुए मूल लेख को ठीक सिद्ध करे। फिर ऋषियों के मूल मुख्य मन्तव्यों को अशुद्ध बतलाना हंसी खेल नहीं है। उनके मन्तव्यों पर गहन विचार करना अत्यन्त आवश्यक है। हमें पता है कि एक दो आर्यविद्वानों ने ऋषि के लेखों को अशुद्ध बतलाया और कालान्तर में उनको ठीक समझकर अपने दोष को स्वीकृत किया। आर्यसमाज में ऐसे लेखक महाशय भी हैं, जिन्होंने ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों में भारी कांट छांट कर डाली है। कुछ आर्य विद्वानों का मतभेद है कि एक पक्ष यह मानता है कि ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका और वेदभाष्य का केवल संस्कृत भाग ऋषिकृत है और आर्यभाषा ऋषि द्वारा रक्खे गये पण्डितों की कृति है। कुछ यह मानते हैं कि दोनों भाग संस्कृत और आर्यभाषा ऋषिकृत हैं। ऋषि बोलते जाते थे और पण्डित लोग लिखते जाते थे। पण्डित लोग पहिले स्वयं प्रूफ देखते थे और अन्तिम रूप से ऋषि उनका संशोधन करते थे। हस्तलेखों में अशुद्धियां कम होती थीं परन्तु प्रेस में छपे ग्रन्थों में अशुद्धियां छपना सामान्य बात है। अतः महत्वपूर्ण ग्रन्थों को प्रकाशित करवाने से पूर्व कई कई भिन्न भिन्न विद्वानों से प्रूफ शुद्ध कराये जाते हैं। मशीन पर छपते छपते भी कोई अक्षर-मात्रा निकल जाती है। यदि मशीन मैन को ध्यान हो गया तो वह वहां चाहे जो अक्षर और मात्रा फिट कर देता है वह कोई उस भाषा का ज्ञाता तो होता नहीं। अतः यदि कहीं छपने में भूल रह जावे तो उसका संशोधन करने में आपत्ति नहीं होती। परन्तु सिद्धान्त अथवा मन्तव्य में अशुद्धि को सहन नहीं किया जा सकता, न किया जाना चाहिये। परन्तु संशोधन की मांग करने वाले विद्वान् सज्जन को पूर्ण विचार करना होगा कि क्या यह अशुद्धि है? अन्यथा संशोधन के नाम पर सिद्धान्त अथवा मन्तव्य का पाठ भ्रष्ट कर देना भारी दोष है।

ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका के प्रकाश्य प्रकाशक प्रकरण में यजु० अ० २३, मंत्र १० पुनः इसी अध्याय के मन्त्र ४६ में भी आया है।

श्री पण्डित जी से प्रार्थना है कि ये मन्त्र दोनों जगह प्रश्न—उत्तर रूप में हैं। यह भी ध्यान रखना आवश्यक है मन्त्रार्थ करते समय देवता और छन्द पर भी विचार करना चाहिये। यहां दोनों जगह में देवता भेद भी है और छन्दोभेद भी है। अतः गम्भीरता से विचार करके लिखने में प्रवृत्त होना उचित है।

सत्यार्थप्रकाश के 'वसु' प्रकरण में भी जहां आपके पास आपके पक्ष को पुष्ट करने वाले मन्त्र होंगे—वहां दूसरे पक्ष के पास भी हो सकते हैं। अतः विचार चर्चा से उभय पक्ष को देखना आवश्यक होगा।

यह भी ध्यान रखना अनिवार्य है कि ऋषि दयानन्द ब्रह्मा से जैमिनि पर्यन्त कोटि के ऋषियों की पंक्ति के विद्वान् हैं। वेदमन्त्रार्थ द्रष्टा हैं। परमयोगी हैं। पूर्ण तत्ववेत्ता और महावैज्ञानिक हैं। उनके लिखे पर सामान्य कोटि के लेखक को बहुत आगा पीछा देखकर चलना होगा।

ऋषियों के प्रदर्शित अनेक स्थल ऐसे हैं जिन पर सामान्य दृष्टि से विचार करने में भयङ्कर भूल प्रतीत हो सकती है। सत्यार्थप्रकाश के नवम समुल्लास के आरम्भ में थोड़ा आगे चलकर ऋषि लिखते हैं—"देहेन्द्रिय अन्तःकरण और प्राणरूप साधनों से अच्छे बुरे कर्मों का कर्त्ता भोक्ता जीव सुख दुःख का भोक्ता है जीव कर्मों का साक्षी नहीं किन्तु कर्त्ता भोक्ता है। कर्मों का साक्षी तो एक अद्वितीय परमात्मा है जो कर्म करने वाला जीव है वही कर्मों में लिप्त होता है वह ईश्वर साक्षी नहीं।"

यहां ऊपर की पंक्ति से देखने पर यह मालूम होता है कि 'कर्मों का साक्षी तो एक अद्वितीय परमात्मा है' और साथ ही वाक्य के अन्त में लिखा है कि 'वह ईश्वर साक्षी नहीं।' यहां वाक्य की संगति न लगाये जाने पर विरोध प्रतीत होता है—एक जगह परमात्मा साक्षी है लिख दिया और दूसरी जगह तभी 'वह ईश्वर साक्षी नहीं।' यह लिख दिया। हमने केवल यह दिखाने के लिये यह वाक्य लिख दिया है कि ऐसे स्थलों पर पूर्ण विचार करना उचित है। ऋषि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश को अतिसरल आर्यभाषा में लिखा है परन्तु लेखन शैली संस्कृत ही है। ऐसे हम बहुत स्थल दिखला सकते हैं। संस्कृत भाषा के विचार करने पर तो बहुत सावधानता रखनी आवश्यक है।

आशा है आदरणीय पं० ईश्वरदयालु जी आर्य हमारे नम्र निवेदन पर यथोचित विचार करके कृतार्थ करेंगे और आर्यमर्यादा को अपने विचार भेजकर अनुगृहीत करेंगे। हम बहुत आभार मानेंगे॥

—जगदेवसिंह सिद्धान्ती शास्त्री ●

शुक्रनीति की एक झलक

(प्रा० भद्रसेन होशियारपुर (संस्कृत विश्व परिषद्)

संस्कृत साहित्य केवल प्राचीनतम होने के कारण ही विश्व में विशेष स्थान नहीं रखता, अपितु इसके साथ संस्कृत भाषा शब्द भण्डार की दृष्टि से भरपूर, गीत्यात्मक छन्दों के विचार से अपूर्व, भावगाम्भीर्य में और, अलंकारों की दृष्टि से अनूठी और विषय विवेचन में अनोखी है। जीवन व्यवहार से सम्बन्ध रखने वाला कोई भी ऐसा विषय नहीं है, जो इससे अछूता रहा हो अर्थात् हर विषय के सम्बन्ध में यहां सर्वांगपूर्ण विशाल साहित्य मिलता है। संस्कृत भाषा में जहां धार्मिक साहित्य की भरमार है वहां अध्यात्म, दर्शन, उपनिषद्, अर्थशास्त्र, पुराण, स्मृति और रामायण, महाभारत, राजतरंगिणी जैसे ऐतिहासिक ग्रन्थ भी हैं। इसके साथ बृहद् विमान शास्त्र, कामसूत्र, ज्योतिषशास्त्र, चिकित्साशास्त्र जैसे अपूर्व ग्रन्थ भी हैं। इतना ही नहीं आश्चर्य तो यह है, कि चौर्य तथा द्यूत सम्बन्धी भी ग्रन्थ हैं।

अन्य शाखा—उपशाखों की तरह संस्कृत वाङ्मय में नीतिशास्त्र का भी प्रतिष्ठित स्थान है। विदुर नीति, चाणक्यनीति, शुक्रनीति, भर्तृहरि शतक जैसे अनेक ग्रन्थ हैं। जिनमें वैयक्तिक और सामाजिक जीवन के सम्बन्ध में विविध प्रकार का सामान्य ज्ञान है। विशेष रूप से स्मृति ग्रन्थों की राजनीति का विस्तृत विवेचन उपलब्ध होता है। नीति के इन ग्रन्थों में प्राचीनता और विषय वर्णन की अपूर्वता के कारण शुक्रनीति का गौरवपूर्ण स्थान है। शुक्राचार्य की योग्यता को संस्कृत साहित्य में अनेक स्थानों पर आदर के साथ स्वीकार किया गया है।

शुक्रनीति चार अध्यायों में विभक्त हैं, प्रत्येक अध्याय में शतशः श्लोक हैं और चौथे में तेरह सौ से भी अधिक श्लोक हैं। जहां इस में राजनीति का विस्तार के साथ वर्णन है, वहाँ जीवन के अन्य पहलुओं का भी सुन्दर और अनोखा वर्णन प्राप्त होता है। इसी की एक झलक का दिग्दर्शन कीजिए, कि कितनी गहराई से जीवन को झांका है।

नयस्य विनयो मूलं विनयः शास्त्रनिश्चयात्।
विनयस्येन्द्रियजयस्तद्युक्तः शास्त्रमृच्छति ॥१। ९१॥

नीति (व्यवहार कुशलता) की जड़ विनय है और विनय (नम्रता, गुण ग्राहकता) शास्त्र के यथार्थ ज्ञान से होता है। विनय का आधार इन्द्रिय संयम है और संयमी ही शास्त्र के तत्त्व को प्राप्त करता है।

अतत्परनरस्यैव स्त्री-सुखाय भवेत्सदा।
साहाय्यिनी गृह्यकृत्ये तां विना नान्या विद्यते ॥१। ११४॥

जो नर, नारी का गुलाम नहीं या जो मनुष्य पर स्त्रियों में आसक्त नहीं, उसकी पत्नी उसके लिए सदा सुखदायक और गृह्य कार्य में परम सहायक होती है। संसार में पत्नी जैसा कोई सहायक नहीं है।

कर्मशीलगुणाः पूज्यास्तथा जातिकुले न हि।
न जात्या न कुलेनैव श्रेष्ठत्वं प्रतिपद्यते ।।२। ५५॥

व्यक्ति के कर्म, शील (स्वभाव), गुण ही पूज्य हैं, न कि जाति और कुल। किसी जाति या कुल में जन्म लेने मात्र से कोई श्रेष्ठ नहीं हो जाता।

एकः स्वादु न भुञ्जीत एकोऽर्थान्न विचिन्तयेत्।
एको न गच्छेदध्वानं नैकः सुप्तेषु जागृयात्।। ३। ५२॥

अकेला उत्तम भोजन न करे, अकेला समस्याओं पर विचार न करें। एकाकी मार्ग में न जाए और न ही सबके सो जाने पर अकेला जागता रहे। अर्थात् व्यक्तिवादी नहीं, समाजवादी बने तथा केवल स्वार्थ की ही चिन्ता न करो।

षड् दोषाः पुरुषेण हातव्या भूतिमिच्छता।
निद्रा तन्द्रा भयं क्रोध आलस्यं दीर्घसूत्रता ॥३। ५४॥

कल्याण चाहने वाले व्यक्ति को छः दोष छोड़ देने चाहियें। जैसे कि दिन में सोना, सुस्ती, डर, क्रोध, आलस्य और कार्य को टालना।

शत्रोरपि गुणा ग्राह्या गुरोस्त्याज्यास्तु दुर्गुणाः।
उत्कर्षो न वै नित्यः स्यान्नापकर्षस्तथैव च ॥३, ६५॥

गुण चाहे शत्रु के भी हों वे ग्राह्य हैं, और दुर्गुण चाहे गुरु के भी हों—वे छोड़ देने चाहियें। उत्थान-पतन सदा एक स्थिति में नहीं रहते।

यतते नैव कालेऽपि क्रियां कर्तुं च सालसः।
न सिद्धिस्तस्य कुत्रापि स नश्यति च सान्वयः ॥३।७०॥

सिर पर आ पड़ने पर भी जो कार्य नहीं करता, वह आलसी है। वह न तो कहीं सफल होता है और असफल होकर कुल या साथियों को भी ले डूबता है।

काले हितमिताहारविहारी विघसाशनः।
अदीनात्मा च सुस्वप्नः शुचिः स्यात्सर्वदा नरः ॥३।१०७॥

जो मनुष्य पर पुष्टि कारक—परिमित भोजन और स्वस्त्री से ही संभोग करता है।

विहारश्चैव स्वस्त्रीभिः। ११०॥

ईमारदारी=विघस—यज्ञशेष, पाप रहित की कमाई करता है। जो आत्मविश्वास और शुद्ध विचारों वाला है, वह सदा ही पवित्र रहता है।

एकशास्त्रमधीयानो न विद्यात् कार्यनिर्णयम्।
स्याद् बह्वागमः संवर्शी व्यवहारो महानतः ॥३। १७० ॥

जो एक ही शास्त्र जानता है, अर्थात् समस्या के एक ही पहलू को देखता है, वह सही निर्णय नहीं कर सकता। अतः प्रत्येक निर्णय तत्सम्बन्धी सारे पहलुओं से सोचने के बाद ही करना चाहिए और ऐसा निर्णय ही ठीक कहा जा सकता है।

अति सर्व नाशहेतु ह्यतोऽत्यन्तं विवर्जयेत् ॥३। २११॥

हर सीमा रहित कार्य, बात, व्यवहार नाश का कारण बनता है। अतः मर्यादा को न लांघे, सीमा हीनता से बचो।

धर्मतत्त्वमिदमिति नैव मन्येत बुद्धिमान् ॥३, २१५॥

यही धर्म का तत्त्व है, अन्य नहीं, ऐसा बुद्धिमान् कभी न माने। दुराग्रही न बने।

वक्तव्यं न तथा किञ्चिद् विनोदेऽपि धीमता।
वक्रोक्तिशल्यमुद्धर्तुं न शक्यं मानसम् ॥३। १।-२॥

हंसी में भी समझदार ऊँट पटांग न बोले, क्योंकि मन से कठोर वचन के शल्य (कांटे) को निकाला नहीं जा सकता है।

पारतन्त्र्यात्परं दुःखं न स्वतन्त्र्यात्परं सुखम्।
अप्रवासी गृही नित्यं स्वतन्त्रः सुखमेधते ॥३। ३१०॥

परतन्त्रता से बढ़कर कोई दुःख नहीं और स्वतन्त्रता से बढ़कर कोई सुख नहीं। जो गृहस्थी हर समय प्रवास में नहीं रहता और स्वावलम्बी है, वही सुख पाता है।

स्वकार्ये शिथिलो यः स्यात्किमन्ये न भवन्ति हि।
जागरूकः स्वकार्ये यस्तत्सहायाश्च तत्समाः ॥४। ५०॥

जो मालिक, नेता, अगुआ अपने कर्तव्य में ढीला है, उसके सहयोगी और कर्मचारी ढीले क्यों न होंगे? क्योंकि खरबूजे को देखकर खरबूजा रंग बदलता है। जो अपने कर्तव्य में सजग है, उसके सहयोगी भी वैसे ही हो जाते हैं।

यो जानात्यर्जितुं सम्यगर्जितुं न हि रक्षितुम्।
नातः परतरो मूर्खो वृथा तस्यार्जनश्रमः ॥४।५१॥

जो अच्छी प्रकार कमाना तो जानता है, परन्तु उसकी सम्भाल नहीं जानता। तो उससे बढ़कर कोई मूर्ख नहीं और उसका कमाना सम्भाल के विना बेकार ही है।

सदुपायैः सन्मन्त्रैः कार्यसिद्धिरथोद्यमैः।
भवेदल्पजनस्यापि किं पुनर्नृपतेर्नहि ॥४। ११२४॥

साधारण व्यक्ति भी सही ढंग, सही ज्ञान और परिश्रम से अपने कार्य में सफल हो जाता है, बड़ों की तो बात ही क्या?

आरम्भन्तस्य कुर्याद्धि यत्समाप्ति सुखं व्रजेत्।
नारम्भो बहुकार्याणामेकदैव सुखावहः ॥४। १३११॥

उसी कार्य को शुरू करे जिसे सरलता से पूरा कर सके। एकदम बहुत सारे कार्यों को शुरू न करे।

नारब्धितसमाप्ति तु विना चान्यं समाचेरत्।
सम्पाद्यते न पूर्वं हि नापरं लभ्यते यतः ॥४, १३१२॥

शुरू किये कार्य को पूरा किये विना दूसरा कार्य न करे। अन्यथा न पहला पूरा होता है और न ही दूसरा सिरे चढ़ पाता है।

कृती तत्कुरुते नित्यं यत्समाप्ति व्रजेत्सुखम् ॥४।१३१३॥

कुशल सदा वही करता है, जिसे सरलता से पूर्ण कर लेता।

इस प्रकार संस्कृत के एक-एक ग्रन्थ में जीवन सम्बन्धी महान् अनुभव भरे पड़े हैं। जरूरत है केवल संस्कृत लेखकों को प्रोत्साहित कर उनको पत्र पत्रिकाओं के माध्यम से जन तक पहुंचाने की। ●

गतांक से आगे --

योगी का आत्म चरित्र एक मनघड़न्त कहानी

(लेखक—श्री स्वामी पूर्णानन्द जी सरस्वती-बड़ौत-जिला मेरठ)

भारत को ईसा को स्वीकार कर लेना चाहिए' ये शब्द केशवचन्द्रसेन के थे जो भारतीय ब्रह्मसमाज के नेताओं में से एक था। उसने ये शब्द उस समय कहे जब वह सन १८७९ में कलकत्ते में एक बहुत बड़ी सभा में व्याख्यान दे रहा था ईसाई कानों के लिये इनसे अधिक स्वागत के योग्य और कौन शब्द हो सकते हैं ?" मैक्समूलर ने केशवचन्द्रसेन के सम्बन्ध में लिखा है :—"Believers of Keshwa Chandra Sen have fortifited the name thiests because their leader has been more and more inclined to the doctrine of christioncity". अर्थात् केशवचन्द्र सेन के अनुयायी अपने ब्राह्मनाम को गवां चुके हैं क्योंकि उनका नेता अधिक ईसाइयत के सिद्धान्तों की ओर झुक चुका है।" मैक्समूलर पाश्चात्य प्रभाव से आर्यसमाज के लोप की सम्भावना करता हुआ लिखता है :—"But it is different with the Brahma Samaj under Devendra nath Tagore and Keshawa Chandra Sen. They do not fear the west, on the contrary they welcome it." परन्तु देवेन्द्रनाथ ठाकुर और केशवचन्द्रसेन के नेतृत्व में ब्राह्मसमाज की अवस्था भिन्न है। वे पश्चिम (यूरोप) से भयभीत नहीं हैं, अपितु इसके विपरीत वे इसका स्वागत करते हैं। मैंने ये बहुत से उद्धरण इस लिये दिये हैं ताकि पाठक स्वामी दयानन्द के बंगाल में भ्रमण करने के समय बंगाल के नेताओं और विशेषतः ब्राह्मसमाज के नेताओं की उन भावनाओं और नीतियों का अच्छी प्रकार से निरीक्षण कर सकें जो उस समय स्वदेशभक्ति और स्वधर्म के प्रति उनके अन्दर काम कर रही थी ? यह सर्वविदित है कि ऋषि दयानन्द ने अपने पूज्य गुरु विरजानन्द के सामने अपने सर्वस्व को आर्यवर्त्त देश की सर्वतोमुखी उन्नति और शुद्ध वैदिक धर्म को विश्वभर में स्थापना के लिए होम देने की प्रतिज्ञा की थी। ऐसी अवस्था में जब कि ऋषि दयानन्द और बंगाली नेताओं की भावनाओं और आदर्शों में पूर्व और पश्चिम का अन्तर हो, ऋषिवर बंगालियों को अपनी ३९ वर्ष की जीवनी के सब भेद, यहां तक कि अपनी गर्दन को भी कैसे अर्पण कर सकते थे, अतः यह सूर्य के प्रकाश की तरह स्पष्ट है कि ऋषि दयानन्द ने बंगाली नेताओं के सामने अपनी तथाकथित 'अज्ञात जीवनी' बिलकुल नहीं सुनाई थी। यह तो दीनबन्धु जी और उसके साथियों का एक षड्यंत्र का पता एक दूसरे प्रकार से भी चल जाता है। वह यह कि इस तथा-कथित 'अज्ञात जीवनी' के उपसंहार में लिखते हुए दीनबन्धु जी ने लिखा है :—"१६ दिसम्बर, १८७२ को मैं कलकत्ता पहुंचा था, आज ३१ मार्च १८७३ है। अब हुगली और वर्धवान की तरफ भी मुझे जाना है। बहुत प्रान्तों से मुझे लाठी.........गदहे की शोभा यात्रा.........मिले थे ...... यहां के लोग यह सब जानते ही नहीं......काशी शास्त्रार्थ के विरोधी पक्ष के नेता कलकत्ते में हम से सुहृद भाव से मिलते हैं। हुगली शास्त्रार्थ के बाद विरोधी पं० ताराचरण तर्करत्न ने दोतल्ला—गृह में बातचीत में और सम्यक् मधुर व्यवहार में जो सौजन्य का परिचय दिया है......हमारे विरोधी पं० महामहोपाध्याय श्री महेशचन्द्र को ही मैंने उनके व्यवहार से बंगला के अनुवाद करने को दिया था।" इस सन्दर्भ में चार बातें सर्वथा झूठी है :—ऋषि दयानन्द द्वारा अंग्रेजी सन् और तारीखों का प्रयोग, २. बहुत प्रान्तों में......गदहे की शोभा यात्रा। सन् १८७२ तक किसी भी प्रान्त में ऋषि को अपमानित करने के लिये गदहे की शोभा यात्रा निकालने का वर्णन किसी जीवन चरित्र में नहीं आता। सन् १८७५ में पूना नगर में ऋषि के विरुद्ध गदहे की शोभा यात्रा का वर्णन है। अब दो वर्ष पहले ही कलकत्ते में उस घटना का वर्णन करना असम्भव है। ३. कलकत्ते से हुगली जाने के कई दिन बाद होने वाले शास्त्रार्थ की बात का आठ दिन पहले ही कलकत्ते में वर्णन करना सर्वथा असम्भव है। ४. श्री महेशचन्द्र न्यायरत्न को 'महामहोपाध्याय' को उपाधि अंग्रेजी सरकार की ओर से सन् १८८७ में दी गई, इसलिए सन् १८७३ में अर्थात् डिग्री मिलने से १४ वर्ष पहले ही ऋषि दयानन्द द्वारा कलकत्ते में महेशचन्द्र को 'महामहोपाध्याय' कहा जाना सर्वथा असम्भव है। इसलिये जिस संदर्भ में चार महा झूठ और असम्भावनाएँ मिली हुई हों, वह ऋषि दयानन्द का कहा हुआ कदापि नहीं हो सकता। सच्चिदानन्द जी ने हुगली के सम्बन्ध में कहे हुए झूठ को छुपाने के लिए एक टिप्पणी दी है। वे लिखते हैं :—"स्वामी जी के कलकत्ता वास के पश्चात् श्री हेमचन्द्र जी चक्रवर्ती योगाभ्यास के लिए १ वर्ष तक स्वामी जी के साथ ही रहे। उनकी विदाई के समय स्वामी जी ने उन्हें जो बताया था, उसमें मे कुछ अंश हेमचन्द्र जी के लेख का उनके गृह से श्री दीनबन्धु जी को बाद में प्राप्त हुआ।"

इसमें भी सच्चिदानन्द जी का कोरा गप्प ही है। क्योंकि हेमचन्द्र जी कलकत्ते के पश्चात् स्वामी दयानन्द जी के साथ कुल ५१ दिन रहे अर्थात् कानपुर २० अक्तूबर से ९ नवम्बर सन् १८७३ कुल २० दिन, लखनऊ १० नवम्बर से १९ नवम्ब्रर १८७३, कुल १० दिन। फर्रुखाबाद २० नगम्बर से १० दिसम्बर १८७३, कुल २१ दिन। सब मिलाकर ५१ दिन। हेमचन्द जी रुग्ण होकर फर्रुखाबाद से कलकत्ता चले गये (देखो अ० द० जी० च० पृष्ठ २८५ से २९१)। ५१ दिन को ३६५ दिन बताना महा झूठ है। दूसरा झूठ सच्चिदानन्द जी का यह है कि उन्होंने दीनबन्धु जी के झूठ को छुपाने का प्रयत्न तो किया, परन्तु झूठ छुप नहीं सका, क्योंकि यदि १ वर्ष के पश्चात् हेमचन्द्र जी के विदाई के समय फर्रुखाबाद में यह सन्दर्भ कहा होता तो उस समय 'यहां के लोग' शब्द का प्रयोग फर्रुखाबाद के लिये होता, कलकत्ते के लिये होता, कलकत्ते के लोगों के लिये नहीं। दूसरे 'कलकत्ते में हमसे सुहृदभाव मे मिलते हैं' शब्द न कहे जाते अपितु 'मिलते थे शब्द कहे जाते! तीसरे 'ताराचरण तर्क रतन ने ...सौजन्य का परिचय दिया है' शब्द न कहे जाते, बल्कि 'परिचय दिया था" शब्दों का प्रयोग किया जाता। उपरिलिखित प्रमाणों से मैंने सर्वथा स्पष्ट कर दिया है कि 'योगी का आत्मचरित्र' दीनबन्धु जी एण्ड को की एक मन घड़न्त कहानो ही नहीं है अपितु आर्यसमाज और ऋषि दयानन्द की प्रतिष्ठा को नष्ट करने का भयंकर षड्यन्त्र है।

१९ नवम्बर सन् १९७२ के 'आर्यमर्यादा' में मैंने अपनी लेखमाला प्रारम्भ की, जिसका उद्देश्य 'योगी का आत्मचरित्र' नाम की पुस्तक को एक मनघड़न्त कहानी सिद्ध करना था। मैंने इसके सम्पादक, गवेशक और पोषक स्वामी सच्चिदानन्द जी योगी के ऊपर पांच आक्षेप किये थे—आक्षेप नं० १. यह कि योगी जी ने अपने अनुसन्धान पृ० १३५ पर लिखा है—"इस यात्रा क्रम में थियोसोफिस्ट वाले सब स्थान आ गये हैं। वह संक्षिप्त है, यह आत्म चरित्र विस्तृत है।" मैंने 'योगी का आत्म चरित्र' से ११० स्थानों की और थियोसोफिस्ट से ३८ स्थानों की सूची देकर योगी जी मे पूछा था कि आप अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार 'योगी का आत्मचरित्र' में थियोफिस्ट के १८ स्थानों को दिखलाने की कृपा करें। ये स्थान ये हैं : रामपुर, काशीपुर, द्रोणसागर, सम्भल, मुरादाबाद, गढ़मुक्तेश्वर, गंगातट, फर्रुखाबाद, श्रीरामपुर, कानपुर, आक्षेप नं० २. यह कि यदि आप दोनों आत्मचरित्रों में कोई विरोध नहीं मानते तो इस विरोध का परिहार करें कि थियोसोफिस्ट के अनुसार स्वामी दयानन्द जी अप्रैल सन् १८५५ से निसम्बर सन् १८५७ तक अर्थात् २ वर्ष ८ मास तक उत्तर प्रदेश के अन्दर ही रहे और एक दिन के लिए भी उत्तर प्रदेश से बाहर नहीं गये। इसके विपरीत यो० श० च० के अनुसार स्वामी जी ने अप्रैल सन् १८५५ से दिसम्बर सन् १८५९ तक अर्थात् ४ वर्ष ८ मास तक केवल दो तीन मास उत्तरा खण्ड में लगाये। शेष साढ़े चार वर्ष तक उत्तर प्रदेश के मैदानी क्षेत्र में एक कदम तक नहीं रखा। योगी जी इसका समाधान 'योगी का आत्मचरित्र से करें ?

आक्षेप नं० ३. यह कि सच्चिदानन्द जो ने २१ मार्च सन् १९७१ के सार्वदेशिक में लिखा था कि 'मंगलपाण्डे ने २९ मार्च सन् १८५६ में दिल्ली के प्रेड मैदान में विद्रोह किया था, यह सर्वथा झूठ है। इसको सत्य सिद्ध करें।

क्रमशः

पिछले अंक का शेष—

श्री कादियाण जी के सुझावों पर विचार–२

(ले० श्री खेमचन्द्र यादव—डब्ल्यू १८, ग्रीन पार्क नई दिल्ली)

मगर उसके बाद दूसरों की कमाई पर दुनिया भर के ऐश व आराम उठाने वालों ने अब समय की हवा के रुख को पहचाना और अपना दूसरा चोगा श्रमिकों के सेवक व नेता का धारणकर आगे बढ़े। कारखाने, व्यवसाय, नहीं नहीं राज्य भी अब इनके हाथों आ गया। पूंजी ने जिस प्रकार अपने फैलाव व प्रसार के लिये उपाय किये थे वही अब अपनी कामयाबी के लिये इस नये जन्मे साम्यवाद को भी अपनाने पड़े। रात दिन कल कारखानों का विस्तार माल की तैयारी उसकी खपत के लिये बाजार और वहां अपने व्यवसाय के लिये अपना मनपसन्द राज्य। यही नहीं पूंजी की तरह इन्हें भी प्रचार व प्रसार के लिये नवीन नवीन सस्थायें दूर दूर देशों में जारी कीं और उनका काम उन्हीं देशवासियों को सौंपा गया उनको करोड़ो रुपये की सहायता से भर दिया गया। मगर सब छिपे छिपे साम्यवादी देशों में क्या व्यवसाय या राज्य श्रमिकों का हुआ? नहीं! वे ही कभी कुछ भी श्रम न करने वाले पूंजीपतियों की तरह इने गिने कुछ सहस्र आदमी। जो सबको अपने काबू में एक योजनानुसार किये है। पूजी ने जो जन्म बेकारी को, भूख को, परेशानी को दिया उतना तो नहीं मगर यह सब दोष इनमें भी व्यापे और बढ़े। मानव वहां का वहीं तेली के बैल की तरह कपटों के कोल्हू में पिस रहा है। यह समाधान रहा है। प्रश्न 'क' का संक्षेप रूप में।

(ख) सम्प्रदाय, मजहब, पंथ आदि क्या हैं। उनके भी अलग कारण हैं। किसी देश विशेष में, काल विशेष में अविद्या, अज्ञान, अन्याय, अभाव से पीड़ित जनता को उस समय के अनुसार किसी महात्मा या सन्त का उस समय के अनुसार उन दुःखों से राहत दिलाने का आन्दोलन। मगर बाद को उनके चालाक शिष्यों के द्वारा उनके जन्म व जीवन के साथ चमत्कार दैवी शक्ति आदि आदि लगा लगाकर उन्हें अवतार, गुरु या ईश्वर, दूत या पैगम्बर सिद्ध करना, उनके मठ, गुरुद्वारे आदि आदि बनाकर उनकी पूजा कराना, और उसके द्वारा भोलो भाली जनता के अज्ञान से लाभ उठाकर अपनी दुकान जारी रखना और दूसरों की कमाई पर गुलछर्रे उड़ाना। दूसरी प्रकार के वे नये मत हैं जिनमें कोई उच्च शिक्षा प्राप्त व्यक्ति अपने हाव भाव से एक जानी बूझी योजनानुसार अपने को सिद्ध घोषित करता है उसके ऐजेण्ट उसे चार चान्द लगाते हैं। वह और उसके दलाल खूब मौज उड़ाते हैं। जनता कष्ट भोगती है। कुछ पंथ पार्टी, पूंजीपति या दूसरी बड़ी बड़ी राजनीतिक दलों की हैं जो पर्दे की आड़ उन्हें धर्म, मजहब के नाम पर चलवाते हैं अपनी योजना को सुचारू रूप से चलाने के लिये जिसका संक्षेप से वर्णन 'क' पैरा में भी किया गया है। यूं कार्यप्रणाली से इनमें थोड़ा बहुत अन्तर भी है मगर उद्देश्य व लक्ष्य सबका एक ही है कि दूसरे कमावें और वह व उनके ऐजेण्ट कुछ भी न करते हुये पूजे जावें और सांसारिक सुख भोगें, गुलछर्रे उड़ावें। इसी सबके कारण आज भ्रष्टाचार, रिश्वत, व्यभिचार, धोखा-धड़ी, मिलावट, तस्कर व्यापार, कत्ल, लूटपाट चारों ओर बढ़े हैं। और इनके जन्मदाता ऊपर से इन्हें बुरा भी कहते हैं। कभी कभी इनकी रोकथाम के लिये हाथ पैर भी मारते हैं इस भय से कहीं इनकी चपेट में स्वयं भी समाप्त न हो जावें। इस सबसे जनता दुःखी है। वह अज्ञान अविद्या के गहरे गड्डे में पड़ी है।

(ग) धर्म क्या है? सत्य, अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह का प्रत्येक मानव का अपने लोक परलोक दोनों के सुधार के लिये ईमानदारी से पूर्णरूपेण पालन करना। इस पालन से मानव संसार में पूरा सुख भोगता है, शान्ति से रहता है। कभी अभाव व अन्याय का शिकार नहीं होता और अन्त को उसका परलोक भी उज्ज्वल बन जाता है। धर्म सब मानव मात्र का एक ही है। सब देशों का एक ही है और सब काल में इसका रूप एक ही रहता है। कभी बदलता नहीं। मजहब, सम्प्रदाय, मतमतान्तर इससे बिल्कुल अलग है वे बदलते रहते हैं बनते बिगड़ते रहते हैं। वे अनेक हैं और रहेंगे। उनमें समानता या एक मत सम्भव नहीं। प्रत्येक अपने को सच्चा और दूसरों को झूठा घोषित करता है। उनके गुरु, देवता, पैगम्बर, अवतार अलग अलग उनकी शक्ति वा देन जुदा जुदा। सत्य से नहीं उनके कहने से। अज्ञान के अन्धकार में इनको पनपने की अच्छी खुराक मिलती है।

(घ) आर्यसमाज की स्थापना महर्षि दयानन्द सरस्वती ने सत्य मानवधर्म जिसे वह वैदिक धर्म कहते थे के प्रसार और प्रचार के लिये की थी। जिसके मूल सिद्धान्त 'ग' परा में दिये गये हैं। महर्षि ने अपने अमरग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश के ११ वें समुल्लास में विस्तार से इस वैदिक धर्म के स्वरूप को खोलकर दर्शाया है। वहीं पर उस महामानव ने सम्प्रदाय-मजहबों और मतों का अन्तर भी दिखा दिया है। आर्यसमाज कोई सम्प्रदाय या मजहब या मत नहीं हैं। अगर कोई सज्जन आर्यसमाज का चोला पहनकर इसमें भी गुरु पूजा, दयानन्द पूजा, यात्रा, मेले, तमाशे, वस्त्रों आदि की पूजा का अपनी दुकान चलाने हेतु प्रचार प्रसार करता है तो वह दयानन्द के सिद्धान्तों पर कुल्हाड़ा चलाता है वह आर्यसमाजी नहीं है।

(ङ) आर्यसमाज ने 'ख' और 'ग' को मिलाने के क्या प्रयास किये? महर्षि दयानन्द सरस्वती ऐसा चाहते थे मानवता के कल्याण हेतु उन्होंने अपने जीवन में मेला चान्दपुर और दिल्ली दरबार के अवसर पर इसका प्रयास किया। उनका विचार था कि जो विद्वान् हैं वे ऊंच नीच समझकर मानवता के कल्याण को लक्ष्य में रखकर एकमत होकर धर्म के उन सिद्धान्तों को अपना लें जिनका कोई भी विरोध नहीं करता। जिन्हें सब अच्छा ही नहीं कहते बल्कि सब चाहते भी हैं और कामना व प्रयास करते हैं कि दूसरे उनके प्रति उन सिद्धान्तों का ईमान से पालन करें। वे यह सब समझ गये मगर एक बात उन्हें प्रत्यक्ष हो गई कि यदि हम इनको मान लेंगे तो हमारी वर्तमान दुकानदारी अपनी मौत ही मर जावेगी। इस नये वातावरण में उनको चल सकना असम्भव हो जावेगा। अतएव ऋषि अपने प्रयास में सफल न हो सके और अपनी पैनी दृष्टि से उसका कारण भी समझ गये। बस अब उनके सामने एक ही मार्ग था कि वह जनता के बीच जायें। सत्य का प्रकाश करें। छल प्रपंच की पोल खोलें और जनता के बीच अज्ञान के अन्धकार को हटा, उसे सीधा मार्ग दिखावें। इसी लक्ष्य की पूर्ति के लिये महर्षि दयानन्द सरस्वती ने 'आर्यसमाज' नामी संस्था की स्थापना की। उसके द्वार प्रत्येक नर नारी ने खोल दिये चाहे वह किसी रंग का हो, किसी देश का हो किसी भी समय का हो, इसका सदस्य हो सकेगा बस शर्त एक यह है कि वह सत्य मानव धर्म जिसे वह वैदिक धर्म कहते थे को माने अर्थात् सत्य अहिंसा आदि का पूर्णरूपेण अपने जीवन में पालन करे और दूसरों को प्रेरित भी करे। उसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु कई एक ग्रन्थ भी लिखे। जिनमें 'सत्यार्थ-प्रकाश' अनुपम ज्ञान का भण्डार है। इस ग्रन्थ में महर्षि ने गागर में सागर को भरा है। यह ग्रन्थ सदा ताजगी देता है जितना इसे जो मनन करता है जितनी गहरी डुबकी लगाता है उतना ही अनुपम प्रकाश पाता है। ज्ञान के अनुपम मोतियों से अपनी झोली भरता है। और उसी प्रकाश के प्रसाद को दूसरों को लुटाने लगता है बांटे बगैर रह ही नहीं सकता। ऋषि के पश्चात् केवल एक ही उद्देश्य की पूर्ति के लिये मानवता के पुजारी अजात शत्रु महात्मा गाँधी ने सबको एक मत करने का सराहनीय प्रयास किया। ईमानदारी से लग्न से धैर्य से किया। मगर नतीजा सबके सामने है। देश के टुकड़े हुये। लाखों बेघरबार हुये और लाखों को मौत के मुंह में जाना पड़ा। मां बहिनों की बेइज्जती हुई मगर वह एकता जिसका उन्होंने स्वप्न देखा था और दूर और दूर ज्यादा दूर हो गई। अब राजनैतिक पार्टी के आदमी चुनाव अवसर पर ऐसी एकता का राग अलापते हैं। वैमन्यस्यता और घृणा की खाई को और गहरा करके आगे बढ़ जाते हैं। हां उनका स्वार्थ सीधा हो जाता है वे वोट बटोर लेते हैं।

(च) आर्यसमाज ने साम्यवाद को रोकने के क्या प्रयास किये? आर्यसमाज ने साम्यवाद को राजनैतिक पार्टी ही समझा और आर्यसमाज सामूहिक रूप से राजनीति से अलग ही रहा। आर्यसमाज के सदस्य भारत की प्रायः सब ही राजनैतिक पार्टियों के सदस्य हैं। जब भी किसी पार्टी ने आर्यसमाज के किसी सिद्धान्त की आलोचना की तो आर्य समाज ने सदा उसका विरोध किया। (क्रमशः)

क्रमागत—

माण्डूक्य पर आचार्य गौडपाद कारिकाओं की समीक्षा (२२)

[ले०—श्री स्वामी ब्रह्मानन्द जी आर्य त्रैतवेदान्ताचार्य, मु० ओं० आश्रम, चान्दोद (बड़ौदा)]

समीक्षा—आप तो खुद ही उन पदार्थों भेद आन्तरिक और बाह्य द्विकालिक और कल्पना काल तक की अवधि देकर इनका भेद स्वयमेव कर दिये हैं और दूसरों के लिये इन्कार करते हैं जब तुमने ही सदसद् नाम देकर इनकी पृथक्ता मान ली है इस कारिका से पहले इस प्रकरण में और आगम प्र० में भी तब कौन मुंह से बातें मिथ्यात्व को बनाते हो। अरे द्विकालिक ही थोड़े देर के लिये वे बाह्य सही और क्षणिक पदार्थों का भेद फिर क्यों नहीं, ये प्रत्यक्ष भेद तो तुम्हीं मान रहे हो कि नहीं? पर ये तो बताओ कि उन्हें तुमने पहले नियत मानकर यहां द्विवकालिक कैसे मान लिया? इन्हें द्विकालिक तुमने किस प्रमाण से कह डाला? कोई शास्त्रीय प्रमाण तो दिये होते? परन्तु कपोल कल्पना में शास्त्रीय प्रमाण ही कहां मिल सकते हैं? इसीलिये आ० शंकर भी इस प्रकरण में कोई स्मृति का प्रमाण देने से प्रायः लाचार से जान पड़ते हैं किन्तु आखिर अपने परम गुरु की वकालत तो हाथ में ली मगर वे भी कोरे कल्पना की ही घुड़दौड़ लगाकर ही प्रतिपक्षियों को पीछे डालना चाहते हैं। परन्तु त्रैत सांख्यवादियों से जब पाला पड़ता है तब श्रुतियों का अर्थ मनमाना खींच तान करके या पौराणिक साहित्य का प्रमाण धर प्रायः वे वैदिकों से या सांख्यवादियों से अपना पल्ला छुड़ा आगे बढ़ते हैं परन्तु घर के एवं कुल परम्परा के मूल व वैदिक होने से यत्र तत्र अद्वैतवादियों के विरुद्ध बोल या लिख ही बैठते हैं जिसे देख उनके अद्वैतवादी बन्धु उन्हें मन हो मन कोसते हैं। देखिये जड़ चेतन का भेद स्वयं आ० शंकर अपने भाष्य में कर रहे हैं। (शब्दादि अविशेषेऽपि च भाव नाविशेषात् सुखादिविशेषोपलब्धेः ॥ वे० द० २।२।१॥) अर्थात् बाहरी और भीतरी भेदों का भी सुख दुःख मोहात्मक अन्वय नहीं हो सकता। सुख दुःख आदि तो मन में होते हैं। और उनके शब्द आदि बाहर होते हैं उनमें सुख दुःख की प्रतीति नहीं होती। किन्तु उनके निमित्त की प्रतीति होती है॥ देखे साहब ये है वैदिक मडक की बात। यहां कैसा बाहर के पदार्थों का यथार्थ वर्णन किया? इसका नाम है ईमानदारी। देखे वहां अन्तर बाह्य किसी को भी स्वामी जी ने क्षणिक या द्विकालिक अथवा मिथ्या कहा क्या? परन्तु शब्द स्पर्शादि को यथार्थ मान लिया है ॥१४॥

अव्यक्ता एव येऽन्तस्तु स्फुटा एव च ये बहिः।
कल्पिता एव ते सर्वे विशेषस्त्विन्द्रियान्तरे ॥१५॥

वैतथ्य प्रकरण की १५ वीं कारिका

अर्थ—जो आन्तरिक पदार्थ हैं वे अव्यक्त ही हैं और जो बाह्य हैं वे स्पष्ट प्रतीत होने वाले हैं। किन्तु वे सब हैं कल्पित ही। उनकी विशेषता तो केवल इन्द्रियों के ही भेद से है ॥१५॥

समीक्षा—इसका नाम है बौद्ध फिलासफी। नहीं तो बोलो भाई वैदिको? मिलेगा क्या उपरोक्त गुरु गौडपाद जी की बात के लिये प्रमाण? शास्त्रों में कहीं नहीं। परन्तु जरा बौद्धों की कारिका पढ़िये वहां से और देखिये (माया तु यत्प्रतीत्य बीजाख्यं कारणं भवति अंकुराख्यं कार्यं तच्चोभयमपि शान्तं स्वभावरहितं प्रतीत्य समुत्पन्नम्॥ नागार्जुनिय मा० कारिका वृत्ति पृ० १६० ॥) पूर्वान् विद्यते कोटिः संसारस्य न केवलम्। सर्वेषामपि भावानां पूर्वाकोटि न विद्यते॥ माध्य० का० । ११।८॥)

अर्थात् वह जो मायामय है वह मूल बीज कारण रूप हैं और उत्पन्न हुये जगत् के पदार्थ अंकुर कार्यरूप कहे जाते हैं परन्तु यह जो उभयात्मक कार्य कारण भाव है वह माया भ्रान्ति है, असल में तो वो स्वभाव से शान्त एवं सभी प्रकार के स्वभाव या धर्मों से रहित हैं अनुत्पन्न तत्त्व ही परमार्थ से हैं। तथा वस्तुतः संसार की ही पूर्वाकोटि जो कारण बीजभाव है सो कहीं कहीं विद्यमान नहीं है, बल्कि जगत् के सभी पदार्थों की भी यही दशा है अर्थात् किसी भी प्रकार के पदार्थ असल में हैं ही नहीं। तो अब पाठकगण आप स्वयं विचार कर देखें कि गौडपाद जी की फिलासफी, वैदिकों की ओर या बौद्धों की ओर मिली जुलती है? अस्तु हम गौड जी के मतानुयाईयों से पूछते हैं कि पदार्थों की विशेषता इन्द्रियों के ही भेद के ही कारण हैं ऐसा जो कहो तो इससे यही तो आशय है न कि इन्द्रियाश्रित पदार्थ हैं। तो ऐसी मान्यता ही भ्रान्ति मूलक है। क्योंकि जैसे चश्मे के आश्रय से कोई बंधे जूते के आश्रय चले, चिमटे से रोटी सेके तो क्या वो चश्मा थोड़ो देखता है जूता थोड़े हो चलता चिमटा थोड़े ही पकड़ता है वे सब तो स्वयं जड़ हैं किन्तु चश्मे वाला पढ़ता है जूते वाला चलता है चिमटे वाला पकड़ता है, देखो आज भी कोई किसी का डण्डे से सिर फोड़ दे तो डण्डा थोड़े ही पकड़ा जायेगा, किन्तु डण्डे वाला पकड़ा जायेगा। समझे? क्योंकि सम्पूर्ण इन्द्रियां और उनके अर्थों—भोगों का ज्ञान हम में है, न कि उन इन्द्रियादि में है। किन्तु उनमें जो चेतनता है यह हमारी खुद की ही है, न कि इन्द्रियों की है, तब वे सब भौतिक पदार्थों का अस्तित्व इन्द्रियों के आश्रित कैसे हुआ? इसलिये उक्त प्रकार का मन्तव्य सर्वथा अशुद्ध भ्रान्त एवं वेद विरुद्ध बौद्ध फिलासफी से लिया हुआ है ॥१५॥

जीवं कल्पयते पूर्वं ततो भावान् पृथक् विधान्।
वासानाध्यात्मिकांश्चैव यथाविद्यस्तथास्मृतिः ॥१६॥

वैतथ्य प्र० की १६ वीं कारिका

अर्थ—वह प्रभु परमात्मा सबसे पहले जीव की कल्पना करता है। उस जीव का जैसे विज्ञान होता है वैसी ही स्मृति भी होती है ॥१६॥

समीक्षा—आप शास्त्र विरुद्ध बोलते हैं। भला किस श्रुति शास्त्र में लिखा है कि वह प्रभु परमात्मा जीव को पैदा करता है? जीवात्मा परमात्मा एवं प्रकृति ये तीनों तो अनादि हैं। और आप अद्वैतवादियों की पुस्तकों में भी (षड् अस्माकं अनादयः) वाली कारिका तो प्रसिद्ध ही है (देख लो शंक्षेप सारिरक) और आपने भी आगम प्रकरण की सोलहवीं कारिका में माया के सहित जीवात्मा को अनादि माना है देखो? (अनादि मायया सुप्तो यदा जीवः प्रबुध्यते) फिर यहां वैतथ्य प्रकरण में जीव का पैदा होना कैसे मान लिया? क्या ये तुम्हारा प्रमाद नहीं है? मालूम होता है बुढ़ापे में तुम्हारी बुद्धि शठया गई या कुंठित हो गई है। और आगे अलात् शां० प्र० का० बाईसवीं में तो तुम कह रहे हो कि (स्वतो वापरतो वापि न किंचिद्वस्तु जायते। सदसत्सद्वापि न किंचिद्वस्तु जायते ॥२२॥ तो फिर यहां वैतथ्य प्रकरण में प्रभु परमात्मा से तुमने जीव की पैदाइस कैसे मान ली? अरे आप झूठे झूठे महा झूठे, या फिर निरे ठग हो। जो हम वैदिकों को बहकाने चले हो किन्तु तुम्हारी दाल यहां न गलेगी। और फिर लिखते हो कि उस जीव की जैसी विद्या वैसी ही स्मृति। तो वो बेचारा जीव तो अभी पैदा ही हुआ है, कि उसकी जैसी विद्या या विज्ञान वैसी स्मृति ऐसे कैसे तुमने कह दिया? अरे क्या जन्मते ही विद्या विज्ञान एवं स्मृति को वो क्या जन्म के पहले से ही क्या साथ लेकर आया था। कोई भी जन्मे बाद ही विद्वान् बनता है पहिले से तो नहीं। और इस बात से तो जीव का पुनर्जन्म हुआ ऐसा तुम मानते से लगते हो। तभी तो कहते तो कि जीव का जैसा विज्ञान वैसी ही उसकी स्मृति होती है। तो वैसी स्मृति तभी होगी कि जैसी कि विद्या होगी, तो विज्ञान की स्मृति पुनर्जन्म से सम्बन्ध रखती है। क्योंकि जैसी विद्या प्रथम गुरु से पढ़ी होगी, स्मृति भी उसे ही कहा जाता है कि पहले जो बात वस्तु एवं विद्या विज्ञान की तालीम किसी से उसने पहले से ही ले लिया हो? और विशेष ज्ञानादि का मिलना नैमित्तिक ही सबके लिये देखा जाता है, स्वाभाविक कभी भी नहीं। इस बात से भी जीव के जन्म कर्म एवं विज्ञान का प्रवाह अनादि माना जायेगा ॥१६॥

अनिश्चिता यथा रज्जुरन्धकारे विकल्पिता।
सर्पधारादिभिर्भावैस्तद्वदात्मा विकल्पितः ॥१७॥

वैतथ्य प्र० की १७ वीं कारिका

अर्थ—जिस प्रकार अपने स्वरूप से निश्चय न की हुई रज्जु अन्धकार में सर्प धारा आदि भावों से कल्पना की जाती है उसी प्रकार आत्मा में भी तरह तरह की कल्पनाएँ हो रही हैं ॥१७॥

(क्रमशः)

गतांक से आगे—

सन् ५७ में प्रजा विद्रोह के कारण?

(ले० श्री स्वा० सच्चिदानन्द योगी, अध्यक्ष श्री नारायण स्वामी आश्रम, महामहिम पातञ्जलयोग साधना संघ आ० बा० आ० ज्वालापुर सहारनपुर)

महर्षि दयानन्द की इस आत्मकथा को अज्ञात जीवनी का नाम दिया गया है। लेकिन महर्षि का अपना जीवन तो इतना खुला पृष्ठ है, जिसे लाखों लोगों ने पढ़ा है। प्रश्न उठता है कि महर्षि के जीवन का लक्ष्य क्या था? महर्षि के अनेक जीवन चरित्रों के तुलनात्मक अध्ययन करने वाला व्यक्ति इस परिणाम पर पहुंचता है कि उनके जीवन के दो मुख्य लक्ष्य थे। आध्यात्मिक क्षेत्र में योग द्वारा प्रभु का साक्षात्कार और सांसारिक क्षेत्र में स्वदेशी और स्वराज्य से भी आगे बढ़ कर संसार भर का शासन श्रेष्ठ पुरुषों के हाथ में लाना दोनों तो लक्ष्य किसी सामान्य व्यक्ति के बस के नही। लेकिन स्वामी दयानन्द सामान्य व्यक्ति नहीं थे। कार्य वा साधयेयं देहं वा पातयेयम्' का आदर्श सदा उनके सम्मुख रह के उनकी कष्ट-सहिष्णुता; अतुलनीय क्षमा का भाव ऐसा कि विष देने वाले को भी क्षमा ही नहीं किया, देश से चले जाने में भी सहयोग दिया ताकि मृत्यु दण्ड से भी बच जाये।

रणवीर एडिटर दैनिक मिलाप का पत्र

दिनांक १-२-७२

पूज्य स्वामी जी महाराज

आपके द्वारा संपादित और प्रकाशित 'योगी का आत्मचरित्र' मैंने आद्योपान्त पढ़ा। इसे प्रकाशित कराके आपने आर्यसमाज का ही नहीं देश का भी बहुत उपकार किया है। महर्षि दयानन्द का वास्तविक रूप इसी में है। उन्होंने जिस उद्देश्य से आर्यसमाज की स्थापना की उसका वास्तविक रूप इसी में है।। इसके लिए आपको जितनो बधाई दी जाए वह कम है।

आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि आज से पन्द्रह वर्ष पूर्व १९५७ में मैंने एक उपन्यास लिखा था—"आग का दरिया" यह उपन्यास सन् सत्तावन के स्वातन्त्र्य संग्राम से सम्बन्धित था। उसमें महर्षि दयानन्द और स्वामी विरजानन्द जी का वर्णन था। मैंने लिख दिया कि दोनों महापुरुष इस महाक्रान्ति में शामिल और इसके समर्थक तथा नेता थे। यह सब कुछ मैंने केवल कल्पना के आधार पर लिखा। कोई प्रमाण मेरे पास था नहीं। कल्पना का आधार केवल यह था कि महर्षि दयानन्द उस समय जिस आयु में थे उस समय वह इस महाक्रान्ति से प्रभावित हुए विना नही रह सकते थे और प्रभावित होने के बाद उसमें सम्मिलित हुए बिना नहीं रह सकते थे।

किन्तु अब मालूम होता है कि मैंने जिस बात को अपनी कल्पना समझा वह एक ऐतिहासिक तथ्य था। इसलिए भी इस पुस्तक को पढ़कर मुझे बहुत खुशी हुई।

और इसलिए मेरी इच्छा है कि "योगी का आत्मचरित्र" उर्दू में अनुवाद करके मिलाप में क्रमशः प्रकाशित करूं। यह क्रम मिलाप के "संडे एडीशन" में चलेगा। प्रति सप्ताह लगभग चार लाख आदमी इसे पढ़ेंगे। लेकिन ऐसा करने में मुझे पहले आपकी अनुमति चाहिए। आप आज्ञा दे दें तो मैं इसका अनुवाद शुरू करूं। पूज्य पिता जी (श्री आनन्द स्वामी जी सरस्वती) ने तो मुझे कहा कि मैं इसका अनुवाद तथा प्रकाशन आरम्भ कर दूं परन्तु आपकी अनुमति के बिना तो मैं ऐसा नहीं कर सकता। इसलिए यह प्रार्थना कर रहा हूँ। आपकी आज्ञा मिलने पर मैं काम शुरू करूंगा।

—विनीत चरण सेवक
रणवीर

अज्ञात जीवनी सर्वथा सत्य है

श्री क्षितीश कुमार विद्यालंकर—सम्पादक हिन्दुस्तान

बंग० भंग० आन्दोलन और स्वदेशी आन्दोलन के सुप्रसिद्ध नेता श्री विपिन चन्द्रपाल ने कभी कहा था—"महर्षि दयानन्द इस युग के अनन्य श्रेष्ठ महापुरुष थे। किन्तु खेद की बात है—कि आज तक उनकी अज्ञात जीवनी का उद्धार नहीं हुआ। उनकी यह बात बंगाल के ही एक युवक—दीन बन्धु के मन में चुभ गयी और उसने लगातार ४०।४५ वर्ष के परिश्रम के पश्चात् ऋषि दयानन्द की अज्ञात जीवनी का उद्धार किया।

ऋषि दयानन्द सन् १८७२ के दिसम्बर मास में कलकत्ता पहुंचे थे। वहां चार मास रहे थे। तब श्री ईश्वरचन्द्र, विद्यासागर और केशव चन्द्र सेन के आग्रह से उन्होंने अपना जीवन वृत्तान्त सुनाया था। और तभी वह लिपिबद्ध कर लिया गया था। ऋषि दयानन्द तब संस्कृत में ही बोलते थे। पण्डितों ने उसे बंगला लिपि में लेखबद्ध कर लिया था। दयानन्द यह आदेश दे गए थे कि मेरे जीवनकाल में यह विवरण प्रकाशित न हो। उसके दस साल बाद उनका स्वर्गवास हो गया।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् उक्त तथ्य की ओर ध्यान जाने पर पं० दीनबन्धु ने ऋषि दयानन्द के समकालीन बंगाली नेताओं के वंशधरों के घरों में जाकर उस सारी सामग्री का संकलन किया। कुछ पन्ने कहीं मिले और कुछ पन्ने कहीं मिले। सो भी जीर्णशीर्ण अवस्था में। उन सब का तारतम्य मिलाने पर ऋषि की पूरो जीवन कथा, जो स्वयं उन्होंने ही श्री मुख से सुनायी थी, तैयार हो गयी।

अब दो वर्ष पहले जब वह सारा विवरण प्रकाश में आया, तब बुद्धिजीवी वर्ग में तहलका सा मच गया, क्योंकि उसमें कुछ ऐसे तथ्य थे जो अब तक कहीं सामने नहीं आये थे। खासकर सन् १८५७ की राज्य क्रान्ति में उनके अभूतपूर्व योगदान की कथा तो सबको चौका देने वाली थी। इसके अतिरिक्त अवधूत के वेष में उनके समस्त भारत के भ्रमण और कठिन योग साधना वाले जीवन के अंश पर भी उस विवरण से अद्भुत प्रकाश पड़ता था। कुछ लोगों ने उसे कल्पना प्रसूत कह डाला। तब योगाभ्यास के प्रति सक्रिय निष्ठा रखने वाले वर्तमान सम्पादक श्री स्वामी सच्चिदानन्द सरस्वती 'योगी' ने उस अज्ञात जीवनी में वर्णित तथ्यों के सम्बन्ध में अन्वेषण प्रारम्भ किया। उसी अन्वेषण का परिणाम है यह ग्रन्थ।

जिस प्रकार उस बंगालो बन्धु ने अनेक वर्षों के परिश्रम के पश्चात् ऋषि के जीवन के अज्ञात पक्ष पर प्रकाश डाला था, उसी प्रकार सम्पादक ने प्रभूत परिश्रम करके सब तथ्यों का ऊहापोह किया है। उसका निष्कर्ष यह है कि वह अज्ञात जीवनी कपोल कल्पित नहीं, वरन् सर्वथा सत्य पर आधारित है।

इस प्रकार इस पुस्तक में दोहरे अनुसन्धान के परिणाम प्रकाशित हुए हैं। एक तरह से इसे अज्ञात जीवनी का आलोचनात्मक अध्ययन कहा जा सकता है।

पुस्तक के अन्त में दिये कई परिशिष्टों से पुस्तक उपयोगिता और प्रामाणिकता दोनों बढ़ी है। ऋषि ने जिन स्थानों और तीर्थों का भ्रमण किया उनका वर्तमान अता पता और ऋषि के जीवन काल में 'थियासोफिष्ट' नामक पत्रिका में छपे उनके जीवन वृत्त का भी तुलनात्मक विवेचन किया गया है। पुस्तक की छपाई सफाई उत्कृष्ट है, पर कहीं कहीं प्रूफ की अशुद्धियां अखरती हैं। —प्रकर मासिक मार्च ७२

भारतेन्द्र नाथ—दयानन्द संस्थान—सम्पादक जन ज्ञान

योगी का आत्मचरित्र ग्रन्थ स्वामी सच्चिदानन्द सरस्वती के श्रम का परिणाम है। आपने निरन्तर भ्रमण कर सार्वदेशिक साप्ताहिक में प्रकाशित सामग्री के आधार पर कलकत्ता जाकर जो सामग्री प्राप्त की वह ग्रन्थ में उपस्थित है। विद्वानों और इतिहास के जिज्ञासुओं के खोज के लिए जो सामग्री इसमें उपलब्ध है उससे ऋषि जीवन चरित्र के सम्बन्ध में मार्गदर्शन हो सकेगा ऐसा विश्वास है।

ग्रन्थ पर महर्षि दयानन्द का नाम लेखक के रूप में न होता और इसे आत्मचरित्र का रूप न दिया जाता तो ग्रन्थ का अन्वेषण के लिए अच्छा उपयोग हो सकता था।

आर्यसमाज के सर्वोच्च संघटन को ग्रन्थ के सम्बन्ध में एक समिति बनाकर इस संदर्भ में प्रामाणिक खोज करनी चाहिए। ऋषि का जीवन प्रकाश के लिए साधना की आवश्यकता अनुभव करता है। सामग्री प्रस्तुत करने के लिए स्वामी सच्चिदानन्द जी बधाई के पात्र हैं। क्रमशः

आर्य सभा की उच्छृंखलता

(श्री सुरेन्द्रसिंह कादियाण देहली)

मेरठ शताब्दी सम्मेलन अपने ही ढंग का सम्मेलन था। संयोजकों और उत्साही कार्यकर्ताओं ने उत्तम व्यवस्था का परिचय देकर यह सिद्ध कर दिया है कि आर्यसमाज अभी अपने यौवन पर है। जो विचार चार दिन के इस सम्मेलन में व्यक्त किये गये, जो महत्वपूर्ण प्रस्ताव यहां पारित हुए, जिन भावी योजनाओं की रूपरेखा यहां प्रस्तुत की गई उसने यह सिद्ध कर दिया है कि आर्यसमाज के हृदय में देशोत्थान की तड़प है, समाज सुधार की चिन्ता है, धार्मिक क्षेत्र में पनप रहे पाखण्डवाद के विरुद्ध आक्रोश है।

लेकिन आर्यसभा और उसके स्वयंभू नेताओं और उनके चन्द पिच्छलगुओं ने अपनी दूषित मनोवृत्ति के कारण इस सम्मेलन की महत्वपूर्ण उपलब्धियों पर तुषारपात करने का जो घृणित षड्यन्त्र रचा, जो भद्दा प्रदर्शन किया, अपनी जिन गली-सड़ी मान्यताओं का परिचय दिया। उसे न तो भुलाया जा सकता है और न ही सहन किया जा सकता है। आर्यसभा का यह छिछोरापन आर्यसमाज के लिये एक गम्भीर चुनौती है जिससे निपटने के लिये आर्य नेताओं को अभी से तैयारी करनी होगी।

पथभ्रष्टों का पेम्फलट

आर्यसभा के नेता कभी के मैदान हार चुके हैं हरयाणा में मुंह की खाकर अब वे हरयाणा के पड़ौसो राज्यों की ओर भाग रहे हैं, इन्होंने आर्य संन्यासियों को अपमानित किया है, आर्यजनता को पथभ्रष्ट किया है, सफलता से चल रहे आर्यसमाज के कार्यों में विघ्न डाला है महत्वपूर्ण प्रस्तावों की निन्दा की है। हरयाणा की जनता का लाखों रुपया ये आर्यसभाई नेता राजनीति की दल दल में नष्ट कर चुके हैं।

आर्यसभाईयों के दोनों मुख्य पादरियों श्री इन्द्रवेश अग्निवेश ने यह पर्चा २७ मई १९७३ को तीसरे पहर लोगों में वितरित किया। इसी दिन रात्रि को सभा स्थल में इन्होंने हुल्लड़बाजी की। आर्यजनता को गुमराह करने का यह ओछे से ओछा हथकण्डा था जो आर्यसभा ने अपनाया। मेरठ का सम्मेलन कोई राजनीतिक सम्मेलन नहीं था—सम्मेलन के बिभिन्न मंचों पर विभिन्न दलों के नेताओं ने जो विचार रखे उनमें दलगत राजनीति की गंध नहीं थी—फिर भी यह कुत्सित विचारों से परिपूर्ण पर्चा प्रकाशित हुआ। विशुद्ध संन्यासी और नेता तो आज केवल दो ही बचे हैं—अग्निवेश और इन्द्रवेश? इनकी बुद्धि का दिवाला इतनी बुरी तरह निकल चुका है, आर्यसभा के ये स्वयंभू नेता अपनी कारगुजारियों से भली भांति परिचित हैं। आर्यसमाज को 'संध्या एण्ड हवन प्राइवेट लिमिटेड कम्पनी' घोषित करने वाले ये आर्यसभाई आज आर्यसमाजियों को उपदेश देने लगे हैं। गत सौ वर्षों की आर्यसमाज की उपलब्धियों का महत्त्व इन तथाकथित नेताओं की दृष्टि में नगण्य है। महर्षि दयानन्द और वेद के नाम पर मार्क्सवादी साम्यवाद को प्रतिष्ठित करने का कुचक्र उन्होंने हरयाणा में चला रखा है।

सम्मेलन में उच्छृंखलता

२७ मई की रात्रि को मंच के पार्श्व से आर्यसभाइयों का एक जमघट खड़ा होकर चिल्लाने लगा कि अग्निवेश का भाषण होना चाहिये। अपनी बात मनवाने का यह तानाशाही या साम्यवादी तरीका इनका पुराना है। इस घिनौने प्रदर्शन से ऐसी अव्यवस्था फैली। जनता को शान्त करने के लिये श्री प्रकाशवीर शास्त्री को लगभग आध घण्टे तक माईक पर बोलना पड़ा।

श्री अग्निवेश का यह रवैया नया नहीं है। इस प्रकार की जोर जबरदस्ती का परिचय वे कई बार दे चुके हैं। गत वर्ष ही उन्होंने गुरुकुल कांगड़ी में आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश के वार्षिक अधिवेशन में इसी प्रकार की अड़ंगेबाजी से जनता में खलबली डालने का घृणित प्रयास किया था। दिल्ली की अनेक सभाओं में जबरदस्ती समय मांग कर उन्होंने मंचों को अपनी दलगत राजनीति का शिकार बनाया सार्वदेशिक के अलवर सम्मेलन को भी बिगाड़ा। इन आर्य सम्मेलनों में उन्हें आमन्त्रित नहीं किया जाता लेकिन फिर भी वे मंचों पर जा पहुंचते हैं और बोलने की जिद पकड़ते हैं। आर्यसभा को न सार्वदेशिक ने और न ही किसी प्रतिनिधि सभा ने अब तक मान्यता दी है फिर भी ये जबरदस्ती आर्यसमाज के मंचों पर क्यों जाते हैं। अब अपनी असफलता देखकर वे छटपटा रहे हैं।

आर्यसमाज का कर्त्तव्य

मेरठ शताब्दी सम्मेलन के प्रभाव को नष्ट करने वाले इस षड्यन्त्र पर आर्यजनता को गम्भीरता से विचार करना चाहिये। इस घिनौने काण्ड की पुनरावृत्ति भविष्य में न होने पाये इसका समुचित प्रबन्ध आर्यनेताओं को करना चाहिये। आर्यसमाजी मंचों से आर्यसभा के प्रचार पर प्रतिबन्ध लगाना आवश्यक है। आर्यसभाई नेता यदि जबरदस्ती और हंगामे का मार्ग अपनाते हैं तो उसका डटकर प्रतिरोध करना चाहिये। आर्य प्रतिनिधि सभाओं और सार्वदेशिक आर्यप्रतिनिधि सभा को उचित निर्देश देशभर की आर्यसमाजों को देने चाहियें ताकि वे इस तथाकथित राजनैतिक दल की विचारधारा और इसके कार्यकर्त्ताओं के हथकण्डों से सावधान रहें। बम्बई में होने वाले शताब्दी समारोह को इनके कुत्सित हथकण्डों से सुरक्षित रखने का उपाय अभी से आर्यसमाज को अवश्य करना चाहिये।●

अथ मन्तव्यामन्तव्य प्रकरणम्

१—तू इस संसार के बनाने वाले सच्चित् और आनन्दस्वरूप परमेश्वर को मानता है वा नहीं?

वह मनुष्य नास्तिक होने से स्वभाव से सृष्टि की उत्पत्ति को मानकर ईश्वर को नहीं मानता।

जो यह नास्तिक कर्त्ता क्रिया बनाने हारा और बनावट को इस जगत् में निश्चय करे तो अवश्य को माने।

जो इस सृष्टि में बने हुए पदार्थों की बनावट को प्रत्यक्ष देखता है, वे जैसे कारीगरी को देख के कारीगर को निश्चय करते हैं वैसे जगत् के बनाने वाले परमात्मा को क्यों न माने?

जहां श्रेष्ठ धर्मात्मा आस्तिक विद्वान् लोग पढ़ाने वाले और उपदेशक हों, वहां कोई भी मनुष्य नास्तिक कभी नहीं हो सकता।

२—किन कार्यों से मुक्ति होती है उस समय कहां वास करते और वहां क्या भोगते हैं? धर्मयुक्त कर्म उपासना और विज्ञान से मोक्ष होता है उस समय ब्रह्म में मुक्त जीव रहते और परम आनन्द का सेवन करते हैं। जीव मुक्ति को प्राप्त होके वहां सदा रहते हैं। अथवा कभी वहां से निवृत्त होकर पुनः जन्म और मरण को प्राप्त होते हैं?

मुक्ति को प्राप्त हुए जीव वहां सर्वदा नही रहते किन्तु जितना ब्राह्म-कल्प का परिमाण है उतने समय तक ब्रह्म में वास कर आनन्द भोग के फिर जन्म और मरण को अवश्य प्राप्त होते हैं।

ऋषिदयानन्द रचित संस्कृत वाक्य प्रबोध से संकलित किया गया है। यही भाव वेदभाष्य, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका और सत्यार्थप्रकाश आदि ग्रन्थों में प्रकाशित किये गये हैं।●

दयानन्दोपदेशक विद्यालय लाहौर-१

(श्री पण्डित जगत्कुमार शास्त्री "साधु सोमतीर्थ" आर्योपदेशक
सी–२१७३, अशोक विहार–२, देहली—५२)

१—महर्षि दयानन्द जन्म शताब्दि महोत्सव सन् १९२४ ई० में मथुरा नगर में बड़े समारोह के साथ सम्पन्न हुआ था। यूं तो विगत एक सौ वर्षों में आर्यसमाज के कई बड़े-बड़े उत्सव विभिन्न नगरों में हुए परन्तु; मथुरा महोत्सव अपने ढंग का एक ही था। कोई दूसरा महोत्सव उसकी बराबरी न कर सका। मथुरा-महोत्सव की तैयारीयां आर्यजगत् द्वारा कई वर्ष पहले से ही आरम्भ की गई थी। भारत के ही नहीं, अन्य देशों में स्थित आर्य-समाजी भी उस महोत्सव में बड़ी संख्या में एकत्र हुए थे। जन जागरण, नीति निर्धारण, साहित्य प्रकाशन, आत्म सुधार और नव निर्माण के कई गम्भीर पग तब आर्य जगत् ने आगे बढ़ाये थे।

२—मथुरा-महोत्सव में हरयाणा, पजाब और देहली का योगदान उपस्थिति और आर्थिक सहयोग आदि सभी दृष्टियों से सबसे बढ़-चढ़ कर था। इसका एक विशेष कारण यह भी था कि आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब ने मथुरा महोत्सव की सफलता के लिये श्री स्वामी सत्यानन्द जी महराज की अध्यक्षता में–"मथुरा जन्म शताब्दि महोत्सव, समिति" की स्थापना करके आर्य जनता को विशेष रूप से उत्साहित किया था। मथुरा से पंजाबी और हरयाणवी आर्यगण कुछ करके दिखाने और कुछ बन के दिखाने का संकल्प लेकर लौटे थे। वेद प्रचार के लिये वे अधिक से अधिक त्याग, तप और बलिदान करते हुए ऋषि-ऋण चुकाने, आर्यसमाज की शान बढ़ाने के लिये स्थायी महत्व का कोई बड़ा पग उठाना चाहते थे।

३—आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब ने अपने सन् १९२५ ई० के साधारण अधिवेशन में निश्चय किया कि लाहौर में–"दयानन्दोपदेशक विद्यालय की स्थापना की जाये। आर्योपदेशकों की मांग चारों तरफ से वृद्धि पर थी। हमारे पहले-पहले उपदेशक वे कुछ संन्यासी थे जो पौराणिकडम को छोड़ कर और आर्य सिद्धान्तों की सत्यता से आकर्षित होकर इधर आये थे। कुछ सद्गृहस्थ भी थे जो अपनी अन्तः प्रेरणा और साधना के बल पर धर्म प्रचार में अग्रसर हुए थे। उनमें से उस समय तक कुछ की जीवन लीला पूर्ण हो चुकी थी, कुछ बुढ़ापे की पकड़ में आ चुके थे। इसके फलस्वरूप कुछ अवांच्छनीय ओर उच्छृंखल तत्व भी आर्यसमाजी प्रचार क्षेत्रों में उभरने लगे थे। प्रशिक्षित आर्योपदेशकों के निर्माण और संवर्धन की तब महती आवश्यकता थी। भारत के विभिन्न भागों और विदेशों के लिये भी सुयोग्य उपदेशकों की जरूरत थी। कोई दूसरा उपदेशक विद्यालय तो सम्पूर्ण आर्य जगत् में कहीं था ही नहीं।

४—उपदेशक विद्यालय की स्थापना के विचार ने धर्म प्रेमी आर्य जनता को सदा ही आनन्दित, उत्साहित और आकर्षित किया है। जब डी. ए. वी. स्कूलों और कालिजों की स्थापना के अभियान चले थे, तब यही कहकर दान मांगा गया था कि "आर्योपदेशक तैयार होंगे।" और दान मांगने वाले थे, स्वयं श्री पं० गुरुदत्त विद्यार्थी एम. ए, ही। वे प्राचीन धर्म प्रधान जीवन के पुनरावर्तन के ऐसे मनोहर शब्द चित्र जनता के सामने प्रस्तुत करते थे कि लोग अपनी जेबें खाली कर देते थे और देवियां अपने आभूषण उतार-उतार कर भेंट कर देती थीं। स्कूल-कालिजों से निराश होकर जब गुरुकुलों के अनुक्रम चलाये गये, तब भी यही आशा कुछ अधिक दृढ़ता से दिलाई गई थी कि अब आर्योपदेशकों की प्राप्ति अवश्य ही होगी। पच्चीस वर्ष अब गुरुकुल परम्परा के भी व्यतीत हो चुके थे। परिणाम स्कूल कालिजों की स्थापना से भिन्न न थे। अतः अब जब उपदेशक विद्यालय की स्थापना का यह ठोस प्रस्ताव आर्य जनता के सामने आया, इसे शिरसा ग्रहण कर लिया गया। और असाधारण शीघ्रता के साथ सभी साधन जुटा दिये गये।

५—धनसंग्रह की विकट समस्या थी। आर्यप्रतिनिधि सभा पंजाब ने विद्यालय की स्थापना के लिये एक लाख रुपये की अपील की थी। श्री स्वामी सत्यानन्द जी महाराज ने धनसंग्रह का बीड़ा उठा लिया। चार मास के अल्पकाल में ही एक लाख रुपया मिल गया। धन की व्यवस्था होने पर २९ जनवरी सन् १९२५ ई० को बसन्त पंचमी के दिन गुरुदत्त भवन लाहौर के एक सुविस्तृत भूखण्ड में श्री स्वामी सत्यानन्द जी के ही करकमलों द्वारा दयानन्दोपदेशक विद्यालय की आधारशिला आरापित कर दी गई। जब आर्यप्रतिनिधि सभा पंजाब की ओर से प्रार्थना की गई, तब श्रद्धेय श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी ने दयानन्दोपदेशक विद्यालय के आचार्य पद को सुशोभित करना स्वीकार कर लिया। इसी प्रकार वेदादि शास्त्रों के महान् मर्मज्ञ और कई भाषाओं के ज्ञाता श्री स्वामी वेदानन्द जी [दयानन्दतीर्थ] ने भी विद्यालय के मुख्याध्यापक का पद स्वीकार कर लिया। सब तैयारियां पूरी होने पर २ अप्रैल सन १९२५ ई० श्रीराम नवमी के दिन आर्यप्रतिनिधि सभा पंजाब के आधीन दयानन्दोपदेशक विद्यालय लाहौर का शुभारम्भ हुआ था।

६—विद्यालय के मुख्य-उद्देश्य ये थे :—

(१) वैदिक-धर्म के प्रचारक, उपदेशक, सुशिक्षित तथा कार्यकुशल पुरोहित तथा धार्मिक सेवक तैयार करना।

(२) महर्षिदयानन्द प्रदर्शित पथानुसार वैदिक तत्त्वों और ग्रन्थों के सुगूढ़ आशयों का अनुसंधान करना।

(३) वैदिक सिद्धान्तों के ज्ञाता और मतमतान्तरों के मन्तव्यों में निपुण शास्त्रार्थ करने वाले पण्डित और वाद-प्रतिवाद में कुशल आर्यवीर तैयार करना।

७—विद्यालय में विद्यार्थियों के प्रवेश के नियम ये थे :—

(१) इस विद्यालय में वे ही विद्यार्थी लिये जायेंगे, जो आर्यसामाजिक विचारों में पक्के हों, और जिनके जीवन का मुख्य उद्देश्य वैदिक धर्म का प्रचार करना हो।

(२) एण्ट्रेंस से कम योग्यता का विद्यार्थी नहीं लिया जायेगा।

(३) जिसकी आयु १७ वर्ष से कम या २५ वर्ष से अधिक हो, वह, जो विवाहित हो, वह विद्यार्थी नहीं लिया जायेगा।

८—भारत में स्वराज्य के आगमन के साथ ही देश, विभाजन की जो दुर्घटना घटी, उससे सर्वाधिक क्षति आर्यसमाज को ही पहुंची। जब लाहौर भारत से छिन गया, तब लाखों पीडित शरणार्थियों के साथ ही हमारा उपदेशक विद्यालय भी भारत में आ गया। यहां आने के पश्चात् उसे पुनरपि समुचित रूप में चलाने के कई गम्भीर प्रयास हो चुके हैं, हो भी रहे हैं। उस लाहौर वाले प्यारे विद्यालय की तो अब याद ही शेष रह गई है, वह भी कुछ थोड़े आर्यपुरुषों के मन-मन्दिर में ही, जिनका उससे कुछ सम्पर्क था, और जिन्होंने उसे भली प्रकार देख था।

फिर रही है आज तक नज़रों में शक्ले आशियां।
मुद्दतें गुज़रीं चमन पर बिजलियां टूटे हुए।।

[क्रमशः]

महाविद्यालय गुरुकुल झज्जर (रोहतक)

महाविद्यालय गुरुकुल झज्जर (रोहतक) में प्रवेश आरम्भ है। इस गुरुकुल में स्कूल की पांचवीं कक्षा उत्तीर्ण छात्र प्रविष्ट किये जाते हैं। पाठ्यक्रम आचार्य तक का है, जिसे भारत सरकार, दिल्ली प्रशासन, महाराष्ट्र और हिमाचल प्रदेश ने मान्यता प्रदान की हुई है। आचार्य परीक्षा एम० ए० के समकक्ष है। इस गुरुकुल में पढ़ाई सदा बारहों महीने चलती रहती है। परीक्षा वर्ष में दो बार होती है और अवकाश कभी नहीं होता। ग्रीष्मकाल का अवकाश भी यहां नहीं दिया जाता। प्राय संस्कृत वाङ्मय के साथ आधुनिक विषय भी पढ़ाये जाते हैं। अनुशासन और सदाचार तो यहां के प्रमुख आकर्षण हैं ही।

—अमीलाल मुख्याधिष्ठाता

आर्यसमाज बिसौर खेड़ी (जि० रोहतक)

वानप्रस्थी श्री देवकरण जी द्वारा यजुर्वेद पारायण यज्ञ कराया गया। श्री वानप्रस्थी रामपत जी जयलाल जी का मनोहारी वेदप्रचार हुआ, स्वामी भीष्म जी, स्वा० धर्मानन्द जी तथा चौ० कबूलसिंह जी मन्त्री सर्वखाप पंचायत के प्रभावशाली धार्मिक तथा ऐतिहासिक प्रवचन हुए। ग्राम के लोगों ने उपदेश तथा यज्ञ कार्य में रुचि से भाग लिया। आर्य प्रतिनिधि सभा को एक सौ एक रुपये १०१) दिया गया।

—निहालसिंह आर्य अध्यापक

"हो धर्म का सहारा जीवन यह हमारा"

(ब्र० बलबीरसिंह "भ्राता" वैदिक, साधनाश्रम, दयानन्दोपदेशक, महाविद्यालय, यमुनानगर (खादीपुर) जिला अम्बाला (हरयाणा)

न सुमन जिसमें हो विकसित, वह चमन किस काम का।
न चन्द्रमा जिसमें हो मुखरित, किस काम की है वह निशा॥

है कूप लेकिन शुष्क है, किस काम का वह कूप है।
तन भी वह बेकार है, जो पड़ा निष्प्राण है॥

जिसमें सुगन्धि है नहीं, वह फूल भी बेकार है।
फल अगर लगता नहीं तो, वृक्ष भी बेकार है॥

जैसे प्रभु भक्ति के बिना, व्यर्थ जीवन है यह।
ठीक इनही की तरह, बिन धर्म के इन्सान है॥

संसार चाहे रूठे, या रूठ जाये राजा।
पर हो धर्म का सहारा, जीवन यह हमारा॥

प्रलोभन दे असंख्य, कोई अगर हमें।
दे चक्रवती राज्य भी, बदले में धर्म के॥

बाधायें चाहे कितनी, मग में खड़ी हुई हों।
तौंक हो गले में पैरों में बेड़ियाँ हों॥

हथकड़ियाँ हाथ में हों, यदि हिलना भी कठिन हो।
धर्म पर चलें हम "बलवीर" मुख धर्म से न मोड़े॥

पायें कष्ट लाखों पर, धर्म को न छोड़े।
चाहे ये सर हमारा, तलवार के लिये हो॥

आर्यसमाज नवांशहर का वार्षिक चुनाव

प्रधान—श्री देवेन्द्र कुमार जी तथा मन्त्री—श्री धर्मप्रकाश जी दत्त चुने गए। सभा ने सर्वसम्मति से प्रधान तथा मन्त्री को अधिकार दिया कि बाकी की अन्तरंग सभा का गठन करके प्रतिनिधि सभा के लिए डैलीगेट तथा आर्य शिक्षण संस्थाओं के पदाधिकारियों को मनोनीत कर दें।—मन्त्री आर्यसमाज नवां शहर

आर्यसमाज खरक कलां (जि० रोहतक)

प्रधान—श्री बिशनसिंह। मन्त्री—सूबेदार रघबीरसिंह। कोषाध्यक्ष—श्री कान्हासिंह। पुस्तकाध्यक्ष—सुरजबीराम।

—प्रधान आर्यसमाज

आर्यसमाज आर्यपुरा (रामस्वरूप हाल)

वार्षिक निर्वाचन निम्न प्रकार हुआ है—प्रधान—श्री चमनलाल। मन्त्री—श्री सुभाषचन्द्र। कोषाध्यक्ष—श्री गनेशीलाल।

—चमनलाल प्रधान

मेरा नया निवास स्थान

मैं अब अपने निजी मकान यश-निवास, आर्यनगर, पो० ज्वालापुर, जिला सहारनपुर, (उ० प्र०) में रहने लगा हूं। जो आर्यसमाजें और सज्जन मुझसे पत्र व्यवहार करना चाहें इसी पते से करें। पत्र मुझे मिल जाते हैं। —आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति भूतपूर्व उपकुलपति, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

आर्यसमाज बांकनेर (दिल्ली) का वार्षिक चुनाव

सर्वसम्मति से निम्न प्रकार से हुआ :—

प्रधान—श्री मांगेराम आर्य एम० ए०। मन्त्री—ओमप्रकाश आर्य एम० ए०। कोषाध्यक्ष—रामकरण जी एम० ए०। पुस्तकाध्यक्ष—प्रेमसिंह जी तथा अन्य अधिकारी एवं प्रतिनिधि।

—मन्त्री आर्यसमाज बांकनेर दिल्ली

आर्यसमाज माडल टाऊन रोहतक का चुनाव

प्रधान—श्री शिवचरण दास चावला। मन्त्री—श्री रवीन्द्रनाथ शर्मा। कोषाध्यक्ष—श्री गोपीचन्द बधवा। पुस्तकाध्यक्ष—श्री मा० उत्तमचन्द।

—रवीन्द्रनाथ शर्मा मन्त्री

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरद्वार

प्रथम जुलाई ७३ से वेद, कला तथा विज्ञान महाविद्यालयों में नवीन छात्रों का प्रवेश प्रारंभ हो रहा है जो ७ अगस्त तक चलेगा।

पाठ्यक्रम

विद्याविनोद (इण्टर)—प्रवेश योग्यता—संस्कृत सहित मैट्रिक या समकक्ष, अंग्रेजी सहित पूर्वमध्यमा, विद्याधिकारी, अंग्रेजी सहित विशारद (पंजाब)। अलंकार (स्नातक)—प्रवेश योग्यता—संस्कृत सहित इण्टर या समकक्ष, अंग्रेजी सहित उत्तर मध्यमा, विद्याविनोद, विशारद (पंजाब) अंग्रेजी में इण्टर सहित। वेदालंकार/विद्यालंकार उपाधि दी जाती है।

बी० एस-सी०—गणित तथा जीवविज्ञान वर्ग।

एम० ए०—वेद, संस्कृत, दर्शन, प्राचीन भारतीय इतिहास संस्कृति तथा पुरातत्व, हिन्दी, अंग्रेजी, गणित तथा मनोविज्ञान। प्रवेश योग्यता—बी० ए०, बी० एस-सी०, बी० काम, अलंकार, अंग्रेजी रहित शास्त्री, आचार्य आदि।

महिलायें तथा सैनिक व्यक्तिगत रूप से परिक्षा दे सकते हैं।

पी० एच० डी०=वेद, संस्कृत, हिन्दी तथा प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति तथा पुरातत्व में। प्रार्थनापत्र १६ अगस्त तक स्वीकार्य। योग्य छात्रों के लिये छात्रवृत्ति उपलब्ध।

सुसज्जित प्रयोगशालायें, छात्रावास, पुस्तकालय, चिकित्सालय, क्रीडांगन, एन० सी० सी० तथा तैराकी की सुविधायें उपलब्ध। उपाधियां भारत सरकार तथा देश के प्रमुख विश्वविद्यालयों द्वारा मान्यता प्राप्त। वेद विषयों में सभी को छात्रवृत्तियाँ। पी० एच० डी० आवेदन पत्र तथा नियमावली ५ रु०, अन्य प्रत्येक पाठ्यक्रम २ रु०, डाक व्यय २० पै०। अलंकार तक छात्रों का प्रवेश कन्या गुरुकुल, ६० राजपुर रोड, देहरादून में। अच्छी छात्रावास सुविधा। संपर्क करें।

डा० गंगाराम, कुलसचिव:

आवश्यकता है

१० वीं कक्षाओं तक के लिये तीन संस्कृत, एक हिन्दी, एक जीव-विज्ञान, एक गणित और एक भौतिक एवं रसायन विज्ञान अध्यापकों को। योग्य अनुभवी तथा प्रशिक्षित अध्यापकों को वरीयता दी जायेगी। वेतनमान उत्तर प्रदेश शिक्षा विभागानुसार। आवेदन-पत्र प्रमाण पत्रों की प्रतिलिपि सहित।

मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार (सहारनपुर) के पते पर २० जून १९७३ तक भेजें।

कर्मठ आर्य नेता महाशय दीवानचन्द का देहान्त

पूज्य महाशय दीवानचन्द जी आर्य का १२ मई, ७३ को अम्बाला में स्वर्गवास हो गया। महाशय जी ने अपना जीवन आर्यसमाज की सेवा एवं शुद्धि में गुजारा। पाकिस्तान बनने से पहले रावलपिंडी आर्यसमाज, डी० ए० वी० स्कूल तथा आर्य हास्पिटल में वर्षों तक सेवा की। सोमवार १४-५-७३ को एक शोकसभा अम्बाला की समस्त आर्य जनता की ओर से हुई जिसमें नेताओं ने अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की। उनके निधन के समाचार सुनकर पंडित प्रकाशवीर जी शास्त्री, पंडित शिवकुमार जी शास्त्री, संसद् सदस्य तथा श्री रामनाथ सहगल मन्त्री आर्य प्रादेशिक सभा ने उनके परिवार को सहानुभूति प्रदान की और उनकी सेवाओं की सराहना की। —निज संवाददाता

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब द्वारा प्रकाशित और प्रचारित वैदिक साहित्य

पुस्तक	लेखक	मूल्य
१. बलिदान जयन्ती स्मृति ग्रन्थ—आर्य बलिदानों की गाथा मूल्य		४-५०
२ सोम सरोवर-वेदमन्त्रो की व्याख्या	—प० चमूपति एम. ए.	३-००
३. जीवन ज्योति-वेदमन्त्रो की व्याख्या	" "	३-००
४. नीहारिकावाद और उपनिषदे	" "	०-२५
५. Principles of Arya samaj	" "	१-५०
६. Glimpses of swami Daya Nand	" "	१-००
७ पंजाब का आर्य समाज पजाब तथा हरयाणा के आर्यसमाज का इतिहास		२-००
८. वैदिक सत्सग पद्धति सन्ध्या हवनमन्त्र अर्थ रहित विधि		१-००
९. वेदादिर्माव	—आर्यमर्यादा का विशेषांक	०-६५
१०. यजुर्वेद अ० ३२ का स्वाध्याय	" " "	०-५०
११. वेद स्वरूप निर्णय	—प० मदनमोहन विद्यासागर	१-००
१२. व्यवहारभानु	—महर्षि स्वामी दयानन्द	०-५०
१३. स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश—	" "	०-४०
१४. Social Reconstruction By Budha & Swami Daya Nand	By. Pt Ganga Prasad Upadhya M. A.	२-००
१५. Subject Matter of the Vedas	By S. Bhoomanad	१-००
१६. Enchanted Island	By Swami Staya Parkashanand	१-००
१७. Cow Protection	By Swami Daya Nand	०-१५
१८. वेद मे पुनरुक्ति दोष नहीं है	आर्यमर्यादा का विशेषाक	२-००
१९. मूर्त्तिपूजा निषध	" "	०-५०
२०. धर्मवीर प० लेखराम जीवन	—स्वामा श्रद्धानन्द	१-२५
२१. कुलियात आर्य मुसाफिर प्रथम भाग—पं० लेखराम की पुस्तकों का संग्रह		६-००
२२. " " दूसरा भाग	" "	८-००
२३. मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र	—कु० सुशीला आर्या एम. ए.	०-२५
२४. योगीराज कृष्ण	" " "	०-१५
२५. गोकरुणा निधि	—स्वामी दयानन्द सरस्वती	०-२०
२६. आर्यसमाज के नियम उपनियम		०-१०
२७. आर्य नेताओ के वचनामृत	—साईंदास भण्डारी	०-१२
२८. कायाकल्प	—स्वामी समर्पणानन्द सरस्वती	१-५०
२९. वैदिक धर्म की विशेषताये	—प० हरिदेव सिद्धान्त भूषण	०-१५
३० स्वतन्त्रानन्द लेखमाला	—स्वा० स्वतन्त्रानन्द जी की जीवनी तथा उनके व्याख्यान	१-२५
३१. आत्मानन्द लेखमाला	—स्वामी आत्मानन्द सरस्वतीकी जीवनी	१-२५
३२. आर्यसमाज के सदस्यता फार्म	—सैकड़ा	१०-००
३३. वैदिक गीता	—स्वामी आत्मानन्द सरस्वती	२-५०
३४. मनोविज्ञान तथा शिव सकल्प	" " "	३-५०
३५. कन्या और ब्रह्मचर्य	" " "	०-१५
३६. सन्ध्या अष्टाङ्गयोग	" " "	०-७५
३७. वैदिक विवाह	" " "	०-७५
३८. सुखी जीवन	—श्री सत्यव्रत	२-००
३९. एक मनस्वी जीवन	—प० मनसाराम वैदिक तोप	१-५०
४०. छात्रोपयोगी विचारमाला	—जगदेवसिह सिद्धान्ती	१-५०
४१. स्त्री शिक्षा	—पं० लेखराम आर्य मुसाफिर	०-६०
४२. विदेशो में एक साल	—स्वामी स्वतन्त्रानन्द	२-२५
४३. वेद विमर्श	—पं० भगवद्दत्त वेदालंकार	२-००
४४. वेद विमर्श	—प० देवव्रत शास्त्री	२-००
४५. आसनो के व्यायाम	" " "	१-००
४६. महर्षि जीवन गाथा	—स्वामी वेदानन्द वेदवागीश	२-२५
४७. मास मनुष्य का भोजन नही	—स्वामी ओमानन्द सरस्वती	१-००
४८. वीर भूमि हरयाणा	" " "	४-००
४९. चोटी क्यों रखें	—स्वामी ओमानन्द सरस्वती	०-५०
५०. हमारा फाजिल्का	—श्री योगेन्द्रपाल	१-५०
५१. सत्संग स्वाध्याय	—स्वामी ओमानन्द सरस्वती	०-५०
५२. जापान यात्रा	" " "	०-७५
५३. भोजन	" " "	०-७०
५४. ऋषि रहस्य	—प० भगवद्दत्त वेदालकार	२-००
५५. स्वामी श्रद्धानन्द जीवन परिचय		१-२५
५६. मेरा धर्म	—आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति	७-००
५७. वेद का राष्ट्रिय गीत	" " "	५-००
५८. ईशोपनिषद्भाष्य	—इन्द्र विद्या वाचस्पति	२-००
५९. प० गुरुदत्त विद्यार्थी जीवन	—डा० रामप्रकाश	१-२०
६०. वैदिक पथ	—प० हरिदेव सिद्धान्त भूषण	२-००
६५. वैदिक प्रवचन	—प० जगत्कुमार शास्त्री	२-२५
६१. ज्ञानदीप	" " "	२-००
६२. आर्यसमाज का सैद्धान्तिक परिचय		०-५५
६३. The Vedas		०-५०
६४. The Philosophy of Vedas		०-५०
६६. ईश्वर दर्शन	प०जगत्कुमार शास्त्री	१-५०
६७. श्वेताश्वतरोपनिषद्	" "	४-००
६८. ब्रह्मचर्य प्रदीप	" "	[illegible]
६९. भगवन प्राप्ति क्यों और कैसे	—स्वा० सत्यानन्द	०-६०
७०. आर्य सामाजिक धर्म	" "	०-७५
७१. बोध प्रसाद	—स्वामी श्रद्धानन्द	०-२५
७२. ऋषि दर्शन	—प० चमूपति एम. ए.	००-२५
७३. ऋषि का चमत्कार	" " "	००-१२
७४. वैदिक जीवन दर्शन	" " "	००-२०
७५. वैदिक तत्व विचार	" " "	००-५०
७६. देव यज्ञ रहस्य	" " "	००-३५
७७. स्वतन्त्रानन्द सस्मरणाक		१-५०

सभी पुस्तकों के प्राप्ति स्थान

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब, गुरुदत्त भवन, जालन्धर (४२५०) टेलीफोन
" " " १५ हनुमान् मार्ग नई दिल्ली-१ "(३१०१५०)
" " " दयानन्द मठ रोहतक (हरयाणा) " (५७४)

आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब के लिए जगदेवसिह सिद्धान्ती शास्त्री द्वारा सैनी प्रिंटर्स पहाड़ी धीरज, देहली में मुद्रित और १५ हनुमान् रोड, नई दिल्ली—१ से प्रकाशित

११ आषाढ़ सं० २०३० वि०, दयानन्दाब्द १४९, तदनुसार २४ जून १९७३ रविवार
सृष्टि सं०-१९६०८५३०७३
वर्ष ५ अंक ३०
वार्षिक शुल्क स्वदेश मे १०) रुपये „ „ विदेश मे २०) रुपये
एक प्रति का मूल्य ००-२० पैसे
सम्पादक—जगदेवसिंह सिद्धान्ती शास्त्री, पूर्वलोकसभा सदस्य (फोन ५१२१६३)

वेदमन्त्रार्थ-प्रवचन

अथ विधिः सामान्यत उपदिश्यते ॥

अब सामान्य से विधि का उपदेश अगले मन्त्र मे किया गया है ॥

जुजुरुषो नासत्योत वव्रिं प्रामुञ्चतं द्रापिमिव च्यवानात् ।
प्रातिरतं जहितस्यायुर्दस्रादित्पतिमकृणुतं कनीनाम् ॥

—ऋ० १-११६-१०

पदार्थः—(जुजुरुषः) जीर्णाद्वृद्धात् (नासत्या) (उत) अपि (वव्रिम्) स्वीकर्त्तव्यम् (प्र अमुञ्चतम्) प्रमुञ्चेतम् (द्रापिमिव) यथा कवचम् (च्यवानात्) पलायमानात् (प्र, अतिरतम्) प्रतरेतम् (जहितस्य) हातुः (आयु:) जीवनम् (दस्रा) दातारौ (आत्) अनन्तरम् (इत्) एव (पतिम्) पालकं स्वामिनम् (अकृणुतम्) कुरुतम् (कनीनाम्) यौवनत्वेन दीप्तिमतीना ब्रह्मचारिणा कन्यानाम् ॥

अन्वय.—हे नासत्या राजधर्मसभापती युवा च्यवानाद् द्रापिमिव वव्रिं प्राऽमुञ्चतम् । दु खात् पृथक् कुरुतम् उतापि जुजुरुषो विद्यावयोवृद्धादाप्तादध्यापकात् कनीना शिक्षामकृणुतमात् समये प्राप्त एकैकस्या इदेवैकैक पति च । हे दस्रा वैद्याविव प्राणदातारौ जहितस्यायु प्राऽतिरतम् ॥

भावार्थ—अत्रोपमाल० । राजपुरुषोपदेशकैश्च दातृणा दु ख विनाशनीयम् । विद्यासुप्रवृत्ताना कुमारकुमारीणा रक्षण विधाय विद्यासुशिक्षे प्रादापनीये बाल्यावस्थामर्यादात् पञ्चविंशाद्वर्षात्प्राक् पुरुषस्य षोडशात् प्राक् स्त्रियाश्च विवाहं निवार्य्यात ऊर्ध्वं यावदष्टाचत्वारिंशं पुरुषस्य चतुर्विंशति वर्ष स्त्रियाः स्वयवर विवाह कारयित्वा सर्वेषामात्मशरीरबलमलकर्त्तव्यम् ॥

भावार्थ—हे (नासत्या) राजधर्म की सभा के पति तुम दोनो (च्यवनात्) भागे हुए से (द्रापिमिव) कवच के समान (वव्रिम्) अच्छे विभाग करने वाले को (प्रामुञ्चतम्) भलि भाति दु ख से पृथक करो। (उत) और (जुजुरुष) बुड्ढे विद्यावान् शास्त्रज्ञ पढाने वाले से (कनीनाम्) यौवनपन मे तेज धारिणी ब्रह्मचारिणी कन्याओं को शिक्षा (अकृणुतम्) करो (आत्) इसके अनन्तर नियत समय की प्राप्ति मे उनमे से एक एक (इत) ही का एक एक (पतिम्) रक्षक पति करो । हे (दस्रा) वैद्यो के समान प्राण के देने हारो (जहितस्य) त्यागी की (आयु) आयुर्दा को (प्रातिरम्) अच्छे प्रकार पार लो पहुचाओ ॥

भावार्थ —इस मन्त्र मे उपमाल० राजपुरुष और उपदेश करने वालो का दु ख दूर करना चाहिये विद्याओ मे प्रवृत्ति करते हुए कुमार और कुमारियो की रक्षा कर विद्या और अच्छी शिक्षा उनको दिलवाना चाहिये, बालकपन मे अर्थात् पच्चीस वर्ष के भीतर पुरुष और सोलह वर्ष के भीतर स्त्री के विवाह को रोक इसके उपरान्त अडतालीस वर्ष पर्यन्त पुरुष और चौबीस वर्ष पर्य्यन्त स्त्री का स्वयवर विवाह कराके सबके आत्मा और शरीर के बल को पूर्ण करना चाहिये ॥

—ऋषिदयानन्द भाष्य

पुनर्जन्मविषयः

इसमे अनेक मनुष्य ऐसा प्रश्न करते है कि जो पूर्वजन्म होता हे तो हम को उसका ज्ञान इस जन्म मे क्यो नही होना । (उत्तर) आख खोल के देखो कि जब इसी जन्म मे जो जो सुख दु ख तुमने बाल्यावस्था मे अर्थात् जन्म से पाच वर्ष पर्यन्त पाये हैं उनका ज्ञान नही रहता, अथवा जो कि नित्य पठन पाठन और व्यवहार करते हैं उनमे से भी कितनी ही बाते भूल जाते हैं, तथा निद्रामे भी यही हाल होता है कि अब के किये का ज्ञान नही रहता, जब इसी जन्म के व्यवहारो को इसी शरीर मे भूल जाते हैं तो पूर्व शरीर के व्यवहारो का कब ज्ञान रह सकता है। तथा ऐसा भी प्रश्न करते हैं। कि जब हमको पूर्व जन्म के पाप पुण्य का ज्ञान नही होता। और ईश्वर उनका फल सुख वा दु ख देता है इससे ईश्वर का न्याय वा जीवो का सुधार कभी नही हो सकता ? (उत्तर) ज्ञान दो प्रकार का होता है। एक प्रत्यक्ष और दूसरा अनुमानादि से जैसे एक वैद्य और दूसरा अवैद्य, इन दोनो को ज्वर आने से वैद्य तो इसका पूर्व निदान जान लेता है। और दूसरा नही जान सकता। परन्तु उस पूर्व कुपथ्य का कार्य जो ज्वर है वह दोनो को प्रत्यक्ष होने से वे जान लते हैं किसी कुपथ्य से ही यह ज्वार हुआ है अन्यथा नही। इसमे इतना विशेष है कि विद्वान् ठीक ठीक रोग के कारण और कार्यों को निश्चय करके जानता है और वह अविद्वान् कार्य्य को तो ठीक ठीक जानता है, परन्तु कारण मे यथावत निश्चय नही होता। वैसे ही ईश्वर न्यायकारी होने से किसी को बिना कारण से सुख वा दु ख कभी नही देता। जब हमको पुण्य पाप का कार्य्य सुख और दु ख प्रत्यक्ष है तब हमको ठीक निश्चय होता है कि पूर्व जन्म के पाप पुण्यो के विना उत्तम, मध्यम और नीच शरीर तथा बुद्ध्यादि पदार्थ कभी नही मिल सकते। इससे हम लोग निश्चय करके जानने है कि ईश्वर का न्याय और हमारा सुधार ये दोनो काम यथावत् बनत हैं। इत्यादि प्रश्नोत्तर बुद्धिमान लोग अपने विचार से यथावत् जान लेवे। मैं यहा इस विषय के बढाने की आवश्यकता नही देखता।

इति पुर्नजन्म विषय सक्षेप्त

सत्यार्थप्रकाश (दशम समुल्लास)

(प्रश्न) कहो जी मनुष्य मात्र के हाथ की हुई रसोई के खाने मे क्या दोष है ? क्योकि ब्रह्मण से लेके चाण्डाल पर्य्यन्त के शरीर हाड मास चमड़े के है और जैसा रुधिर ब्राह्मण के शरीर मे है वैसा ही चाण्डाल आदि के, पुन मनुष्य मात्र के हाथ की पकी हुई रसोई के खाने मे क्या दोष है ? (उत्तर) दोष है क्योकि जिन उत्तम पदार्थों के खाने पीन से ब्राह्मण और ब्रह्माणी के शरीर मे दुर्गन्ध आदि दोष रहित रजवीर्य उत्पन्न होता है वैसा चाण्डाल और चाण्डाली के शरीर मे नही, क्योकि चाण्डाल का शरीर दुर्गन्ध के परमाणुओ से भरा हुआ होता है वैसा ब्राह्मण आदि वर्णो का नही इसलिये ब्राह्मण आदि उत्तम वर्णों के हाथ का खाना और चाण्डाल आदि नीच भगी चमार आदि का न खाना । यथा जब कोई तुम से पूछे कि जैसा चमड़े का शरीर माता, सास, बहिन, कन्या, पुत्रवधू का है वैसा हीं अपनी स्त्री का भी है तो क्या माता आदि स्त्रियो के साथ भी स्वस्त्री के समान वर्त्तोगे तब हम को सकुचित होकर चुप ही रहना पडेगा। जैसे उत्तम अन्न हाथ और मुख से खाया जाता है वैसे दुर्गन्ध भी खाया जा सकता है तो क्या मल आदि भी खाओगे ? क्या ऐसा भी कोई हो सकता है ?

—(ऋषिदयानन्द)

श्री वीरेन्द्र जी आदि को श्री सोमनाथ मरवाहा, विश्वास दिलाते रहे कि हरयाणा के प्रतिनिधियों को कटवा दिया जावेगा, परन्तु वह असफल रहे और श्री वीरेन्द्र जी आदि को भी निराश कर दिया।

निर्वाचन की तारीख निश्चित हो गई है। अब उभयपक्ष को चाहिये कि चुनाव को शान्ति और न्यायपूर्वक होने देवें।

नई दिल्ली दिनांक १९-६-७३ पंजाब तथा हरयाणा हाईकोर्ट के निर्णय के बाद पंजाब सभा के स्वीकृत प्रतिनिधियों की स्थिति अब स्पष्ट हो गई है। १६-२-७३ के निर्णय के अनुसार ८८१ प्रतिनिधि स्वीकार हो गये थे जिनमें से लगभग ४८१ प्रतिनिधि प्रो० रामसिंह पक्ष के तथा ४०० श्री वीरेन्द्र पक्ष के हैं। इनके अतिरिक्त श्री सोमनाथ मरवाहा ने प्रो० रामसिंह पक्ष के १०० आर्यसमाजों के ५०८ प्रतिनिधियों के विरुद्ध हाईकोर्ट में अपील करके ८-१० दिन बहस द्वारा हरयाणा के इन प्रतिनिधियों को कटवाने का भरसक प्रयत्न किया। प्रो० रामसिंह पक्ष ने भी श्री फुलका द्वारा काटे प्रतिनिधियों की अपीलें की थीं। जज महोदय ने उन में से ४६० प्रतिनिधि और स्वीकार कर लिए हैं। इस भान्ति हाईकोर्ट द्वारा स्वीकृत १३४१ प्रतिनिधियों में से लगभग ९४१ प्रतिनिधि प्रो० रामसिंह पक्ष के हैं। प्रो० रामसिंह के प्रतिनिधियों के इस प्रबल बहुमत से श्री वीरेन्द्र तथा डा० हरिप्रकाश आदि बहुत निराश हैं।

२—आर्यसमाजों का सम्बन्ध जब हाईकोर्ट स्वीकार कर रही थी तब भी श्री सोमनाथ मरवाहा ने श्री वीरेन्द्र को आशा दिलाई थी कि वह हरयाणा की सब आर्यसमाजें कटवा देंगे और उसके बाद श्री वीरेन्द्र निश्चिन्त हो गये। परन्तु उसमें भी उन्हें असफलता मिली क्योंकि ४८३ आर्यसमाजों में से लगभग ७० प्रतिशत प्रो० रामसिंह पक्ष की निकलीं। स्मरण रहे कि पंजाब की भी सब बड़ी-बड़ी आर्यसमाजें प्रो० रामसिंह के ही साथ हैं। जब आर्यसमाजों द्वारा प्रतिनिधि निर्वाचित कराने का प्रश्न उठा तो उसमें भी श्री मरवाहा ने कई विघ्न डाले, अर्थात् प्रतिनिधि फार्म ठीक नहीं, फलां फलां पत्र में सूचना छपनी चाहिये आदि आदि। निर्वाचित प्रतिनिधियों के विरुद्ध साधारणतया आपत्ति सम्बन्धित आर्यसमाज का सदस्य ही कर सकता है परन्तु श्री मरवाहा के आग्रह पर हाईकोर्ट ने दोनों पक्षों को भी आपत्तियों के करने का अधिकार दे दिया। इस कारण श्री मरवाहा ने प्रो० रामसिंह की १४१ आर्यसमाजों के विरुद्ध १२५ पृष्ठ की आपत्तियां लिखा कर श्री फुलका को भिजवा दीं परन्तु प्रार्थना की कि जब तक इन सब समाजों का रिकार्ड चण्डीगढ़ न पहुंच जावे उन की आपत्तियां बन्द लिफाफे से निकाली न जावें। ५ मास उसी में नष्ट करा दिये। स्मरण रहे कि प्रो० रामसिंह पक्ष ने अपनी आपत्तियां खुली दीं ताकि कोई भी पढ़ ले। प्रो० रामसिंह पक्ष की ९ आर्यसमाजों का रिकार्ड श्री फुलका ने डा० हरिप्रकाश के साथ जाकर देखा। हाईकोर्ट के आदेशानुसार जब श्री फुलका ने जिला अम्बाला, पटियाला तथा जालंधर की श्री वीरेन्द्र पक्ष की १९ आर्यसमाजों का रिकार्ड देखना चाहा तो योजना के अनुसार १६ आर्यसमाजों ने रिकार्ड दिखाया ही नहीं। जो १० वर्ष का रिकार्ड हरयाणा की समाजों का डा० हरिप्रकाश देखना चाहते थे वही रिकार्ड उनकी समाज कबाड़ी बाजार अम्बाला छावनी का देखा गया तो उनकी मांग के अनुसार ४० प्रतिशत ठीक निकला। रिकार्ड न दिखाने से दो मास नष्ट हो गये अन्यथा श्री फुलका का मत दिसम्बर ७२ में निर्वाचन कराने का था।

३—दोनों पक्षों को सुनने के उपरान्त श्री फुलका ने सर्वप्रथम २१४ आर्यसमाजों के ७०५ उन प्रतिनिधियों की हाईकोर्ट को नवम्बर ७२ में रिपोर्ट दी जिनके विरुद्ध किसी ने आपत्ति नहीं की थी। उस रिपोर्ट के विरुद्ध आपत्ति करने के लिये एक सप्ताह का समय भी दिया परन्तु किसी ने आपत्ति नहीं की। ९-२-७३ को श्री मरवाहा ने कहा कि उपरोक्त समाजों में से ३८ समाजों पर तो उन्होंने आपत्तियां कर रखी हैं। यह ३८ समाजें पहली १४१ समाजों में की सूचि में नहीं थीं न उनके उत्तर समाजों से मांगे थे। श्री मरवाहा को सन्तुष्ट करने के लिए ३८ समाजों के १६५ प्रतिनिधियों की रिपोर्ट श्री फुलका से मांगी गई। इसमें भी श्री मरवाहा आदि ने कई विघ्न डाले जिस कारण ढाई मास नष्ट हो गये। श्री फुलका ने सब आपत्तियां रद्द करके १६५ प्रतिनिधि स्वीकार कर लिए। हाईकोर्ट ने श्री फुलका की उपरोक्त रिपोर्ट को मान लिया तथा १६५ प्रतिनिधि घोषित कर दिये।

४—तीन वर्ष से चल रहे इस झगड़े को जज महोदय शीघ्र समाप्त करना चाहते थे इसलिए चीफ जस्टिस की आज्ञा लेकर ७-५-७३ से प्रतिदिन अभियोग सुनने लगे। १०-५-७३ को जब दोपहर के बाद प्रो० रामसिंह के वकील श्री आनन्द स्वरूप बोले तो श्री मरवाहा को पासा पलटता दिखाई दिया। श्री मरवाहा ने सब से बड़ी आपत्ति यह कर रखी थी कि हरयाणा के सभासद् शतांश नहीं देते। उसी दिन दीवानहाल का प्रतिनिधि फार्म निकाल कर श्री आनन्द स्वरूप जी ने कहा श्री मरवाहा को एक लाख रुपये वार्षिक आय है जिस के अनुसार उन्हें कम से कम २५०) देने चाहियें परन्तु वह केवल ७२) वार्षिक देते हैं। ऐसे श्री वीरेन्द्र का बताया कि आय के अनुसार उन्हें भी २५०) वार्षिक देने चाहियें परन्तु यह केवल ६०) रुपये शुल्क देते हैं। इसके अतिरिक्त श्री मरवाहा की ५० आर्यसमाजों की सूचि बना कर दी जिनके सभासद् शतांश नहीं देते। पहले दिन की श्री आनन्द स्वरूप जी की बहस से श्री मरवाहा निराश हो गये तथा उसी रात दिल्ली चले गये।

५—अभियोग को प्रत्येक पग पर लम्बा कर श्री मरवाहा ने ३ वर्ष खराब कर दिये। पासा पलटता देखकर नये नये हथकण्डे चलाते रहे। जज महोदय १-६-७३ को (जब हाईकोर्ट डेढ़ मास के लिए बन्द होनी थी) निर्णय सुनाना चाहते थे। इसलिए २८-५-७३ से लगातार पेशियां लगाईं। परन्तु श्री मरवाहा ने दिल्ली से फोन करा दिया कि वह हृदय रोग के कारण दिल्ली के हस्पताल में पड़े हैं अतः अभियोग की तिथि जुलाई मास के अन्त में रखने के लिए कहा। जज महोदय नहीं माने और चण्डीगढ़ के वकील को दो दिन दिये तथा कहा कि वह केस को प्रस्तुत करें। श्री मरवाहा के हृदय रोग की सब को चिन्ता होना स्वाभाविक था। जज महोदय ने दुःख तो प्रगट किया परन्तु कहा कि श्री मरवाहा ने इस अभियोग को व्यक्तिगत केस बना कर अपनी प्रतिष्ठा का प्रश्न बना रखा है जिस कारण वह प्रायः आपे से बाहर हो जाते हैं। यही कारण है कि बीमार हुए हैं। उनको इस बीमारी की श्री रामनाथ जो भल्ला ने २८-५-७३ को ही फोन द्वारा श्री सिद्धान्ती जी को सूचना दी। उन्हें भी चिन्ता हुई तो उन्होंने आर्य जगत् के एक नेता को बताया जो एक अन्य आर्य नेता को लेकर श्री मरवाहा को देखने उनके घर गये। उन्हें यह देखकर सन्तोष हुआ कि श्री मरवाहा को न हृदय रोग था तथा न वह हस्पताल में दाखिल हुए अपितु साधारण रूप से अपना कार्य कर रहे हैं। हृदय रोग वाले को डाक्टर पहाड़ों पर नहीं जाने देते परन्तु श्री मरवाहा पहाड़ पर गये हुए है। श्री मरवाहा को पता था कि डेढ़ मास के न्यायालय के अवकाश के बाद जज महोदय डेढ़ दो मास का भी अवकाश साथ ले रहे हैं। यह पता लगा है कि निर्वाचन लटकाने की भावना से ही उपरोक्त फोन किया गया था।

६—३१-५-७३ को पेशी लगी तो निर्वाचन के प्रोग्राम पर बहस होने लगी। श्री आनन्दस्वरूप जी ने सुझाव दिया कि २९-७-७३ को निर्वाचन कराये जावें तो डा० हरिप्रकाश के वकील ने कहा कि बहुत लोग १३-८-७३ के सार्वदेशिक आर्य महा सम्मेलन में भाग लेने मौरेशस जावेंगे इसलिये सभा का निर्वाचन सितम्बर ७३ के अन्त में रखा जावे। श्री आनन्दस्वरूप जी ने कहा कि उक्त सम्मेलन में प्रान्तीय सभाओं के निर्वाचित प्रतिनिधि ही भाग ले सकते हैं। पंजाब सभा तो भग है अतः यह लोग किस रूप से जा रहे हैं। डा० हरिप्रकाश को शपथ दिलाकर पूछा। उन्हों ने कहा कि १५० लोग हरयाणा व पंजाब से वहां जावेंगे। परन्तु जाने वाले एक व्यक्ति का नाम भी न बता सके। उन्होंने कहा कि ७-७-७३ तक जाने वालों की सूचि बनेगी। वह यह न बता सके कि उनके पास्पोर्ट कब

शेष पृ० ४ पर

देहली नगर की अशान्ति और उसको दूर रखना

मैं सन् १९४५ में बाहर से आकर देहली में रहने लगा। इस से पूर्व १४-१५ वर्ष तक एक संस्कृत महाविद्यालय का अध्यापक तथा प्रबन्धक रहा। साथ ही सामाजिक कुरीतियों को दूर करवाने के लिये ग्रामीण क्षेत्रों में काम किया। मेरे मन में एक साप्ताहिक पत्र चालू करने की इच्छा हुई, अतः देहली में रहने का विचार किया। चौ० उमरावसिह पूर्व म्युनिसिपल कमिश्नर से पूर्व परिचय था। अतः उन्होंने मुझे स्थान दिया। मैं आज तक उसी मकान में रहता हूं। यह स्थान देहली के पहाड़ी धीरज, मोहल्ला जाटान कलां, गली घास मण्डी में है। मैंने साप्ताहिक हिन्दी पत्र निकाला। अपने तीन योग्य सहयोगियों को भी बाहर से बुला लिया। पत्र को चलाने के लिये हमने यह विचार किया कि निजी प्रेस आवश्यक है, इसको जानकर प्रेस भी लगाया जो कि अभी तक चालू है।

हमारे मकान की स्थिति यह है एक ओर बाड़ा हिन्दू राव, दूसरी तरफ कसाबपुरा और बस्ती हरफूलसिह है। सामने अनेक गलियाँ बाजार में पहुंचती हैं। पीछे की ओर थोड़े हिन्दू और अधिक मुसलमान बसते हैं। यद्यपि पहाड़ी धीरज में अनेक बिरादरियों के लोग रहते हैं, परन्तु मुसलमानों के अतिरिक्त हिन्दुओं में जाट, अहीर, सैनी, और जैनों का प्रभुत्व है। हिन्दुओं में हरिजन आदि अनेक बिरादरियां अपना धन्धा करती हैं। इस क्षेत्र का घेरा बाड़ा हिन्दुराव, बादुरगढ़ रोड, सदर बाजार, बारह टूटी, सदर थाना, ईदगाह और चमेलिया रोड तक सीमित है। इस घेरे से मिला हुआ पशुओं का कसाई खाना भी है। यह क्षेत्र की चर्चा इस लिये की है कि यहाँ समय समय पर साम्प्रदायिक झगड़े होते रहने की गुंजायश है। और यहां का साम्प्रदायिक दंगा देहली के उन सब स्थानों में फैल जाता है जहां हिन्दु मुसलमान दोनों की आबादी है।

हम अपने कार्य के लिये प्रायः इस क्षेत्र में जाते रहते हैं हिन्दु और मुसलमानों की गलियों के नुक्कड़ों पर ऐसे लोग खड़े रहते हैं। जिनका प्रायः रोजगार नहीं होता। ऐसे लोग दोनों सम्प्रदायों मे हैं। आपस में यह जूआ आदि भी खेलते रहते हैं। परस्पर झगड़ते रहते हैं, परन्तु जूआ आदि बुरे कर्म हैं अतः छिप कर किये जाते हैं। इन लोगों में बटमार, चाकू मार, जेबकतरे और अन्धेरे में बाहर से नगर में पहुंचने वालों को धोखा देकर उनका रुपया पैसा छीन लेते हैं।

दोनों सम्प्रदायों में एक अन्तर है। मुसलमानों पर मौलवियों का विशेष प्रभाव है। मस्जिदों में इकट्ठे होकर अपने सम्प्रदाय का भला बुरा सोचते हैं, तदनुसार काम करते हैं। हिन्दुओं में ऐसा कोई एक संघटन नहीं है। अधिक संख्यक लोग जैन समुदाय के हैं। इनसे थोड़े लोगों पर आर्यसमाज का प्रभाव है। अधिक लोग रूढ़िवादी हैं। अतः ये किसी एक संघटन के पीछे नहीं चलते। यह एक कारण है कि साम्प्रदायिक दंगा होने पर मुसलमान एक दिखाई देते हैं और हिन्दू बिखरे रहते हैं। मेरा यहां २८ वर्ष का अनुभव है कि दोनों सम्प्रदायों में अधिकतर लोग अपने धन्धे में लगकर बाल बच्चों का पेट पालते हैं। दंगा होने पर उनको सम्प्रदाय के नाम पर भड़काया जाता है। भड़काने वाले दूर हो जाते हैं और दंगा करने वाले फंस जाते हैं।

एक विकट समस्या देहली में और भी है कि यहां प्रशासन एक राजनीतिक दल के हाथ में नहीं है। कांग्रेस और जनसंघ दोनों की सत्ता यहां बनी हुई है। आये दिन दोनों दलों की तू तू मैं मैं होती रहती है। हम किसी भी राजनीतिक दल में सम्मिलित नहीं हैं। इस कारण निष्पक्ष रूप से हम इन पंक्तियों को लिख रहे हैं। दोनो दलों में राष्ट्रभक्त और सज्जन हैं, परन्तु राजनीतिक भेद के कारण जनता मे वोट मांगने पड़ते हैं, अतः अच्छे-अच्छे सज्जनों को भी ऐसे भाषण देने पड़ते है जिसमे जनता में पार्टी बन्दी का रोग फैलता रहता है। हमारा विचार है कि देहली में शान्ति बनाये रखने के लिये दल बन्दी के आधार पर आन्दोलन खड़े नही करने चाहियें। अपितु दोनों दलों के नेताओं को समय समय पर परस्पर मिल कर नगर की एकमात्र भलाई के लिए सम्मिलित कार्यक्रम बनाकर दोनों की ओर से सम्मिलित घोषणा की जावे कि जनता इस प्रकार चले। खेद है कि दलबन्दी के कारण उभयपक्ष एक दूसरे पक्ष के अच्छे कामों का भी विरोध करता रहता है। जनता ऐसी अवस्था में क्या करे? वह भी बंट जाती है। वर्तमान दंगे में भी दोनों राजनीतिक दल एक दूसरे पर दोषारोपण कर रहे हैं। खेद है कि पुलिस पर दोनों का प्रभाव पड़ना आश्चर्य कर नही। अत शान्त वातावरण बनाने में यह पहली एक बड़ी बाधा है। जनता में एक सर्वसाधारण धारणा सुनी जाती है कि साम्प्रदायिक दंगा होने में न्याय इसलिये नहीं मिल सकता क्योंकि कांग्रेस पार्टी मुसलमानों के वोट प्राप्त करने के लिये मुसलमानों के द्वारा किये गये अपराध पर आंखें बन्द कर लेती है। दूसरी यह धारणा भी चलती है कि जनसंघ हिन्दुओं का पक्ष लेकर चलता है क्योंकि हिन्दू बहु संख्यक होने से जनसंघ को वोट मिलने में सुविधा रहती है। हमारे विचार का प्रत्यक्ष रूप देहली के द्विधात्मक प्रशासन में देखा जा सकता है।

हमारा बहुत समय से यह विचार रहता आया है कि किसी भी राजनीतिक दल के नाम पर वोट न मांगे जावें। चुने जाने पर योग्य व्यक्तियों को प्रशासन में आगे लाया जावे। गत २८ वर्षों में देहली में रहते हुए भी हम गली मौहल्लों के लोगों से पृथक् ही है। किसी को यह कोई पता नही कि इनमें से दो व्यक्ति भारतीय लोकसभा क सदस्य भी रहे हैं। अपने लिये कुछ कहना अच्छा नही, परन्तु तथ्य कहने मे कुछ न कुछ भलाई हो सकती है। मैंने जब हरयाणा के जिला रोहतक तथा गुड़गावां के कुछ हलकों से लोकसभा का चुनाव लड़ा तो मेरे विपक्ष में ८ उम्मीदवार और थे। इनमें कांग्रेसी, जनसंघी, कम्युनिस्ट और बिरादरियों के नाम पर भी थे। परमात्मा की दया और भले लोगों के सहयोग से विजय हरयाणा लोकसमिति को मिली जिस का मैं उम्मीदवार था। जाट ३, अहीर २, ब्राह्मण एक, नाई एक, हरिजन १, शरणार्थी १, कुल नो थे, परन्तु जनता ने बिरादरियों के परोपगंडों पर सर्वथा ध्यान नही दिया।

यह एक उदाहरण दिया है। मेरे कुल ७ हजार रुपये पैट्रोल में लगे और कुछ नहीं। यदि हमारे सुझाव पर देहली के प्रबुद्ध महानुभाव विचार करके कार्य में लावें तो न केवल, इस क्षेत्र में, न केवल देहली नगर में, अपितु सारे राष्ट्र के अन्दर अच्छाई का मार्ग खुल सकता है।

एक प्रार्थना और है कि दगा जहां होता है वहा दोनों सम्प्रदायों के भले लोग तुरन्त उसको बन्द कराने में आगे आवे। अपने घरों में चुपचाप न बैठें। जिसका भी दोष हो दोनों सम्प्रदायों के नेता उसको निन्दा ही नहीं, अपितु राजदण्ड के लिये उसको स्वयं समर्पण कर देव। सम्भव हमारे निवेदन से कुछ जन कल्याण हो सके। हमने शुद्ध भावना से ये कुछ पंक्तियां लिखी है, इसी आधार पर इन पर विचार करना उचित है।●

रूस और भारत में दण्ड का अन्तर

मालूम हुआ है कि रूस के एक राज्य की राजधानी अजरबेजान में फलों के रस में मिलावट करके बेचा गया। इस अपराध पर एक को फांसी और दो को गोली मारी गई तथा षड्यन्त्र में सम्मिलित कइयों को लम्बी-लम्बी कैद का दण्ड दिया गया, परन्तु हमारे राष्ट्र में मिलावट करने वालों को क्या दण्ड दिया जाता है। यदि हमारे देश में भी ऐसा ही भयंकर दण्ड दिया जावे तो राष्ट्र में से सब प्रकार के अपराध दूर होने में देर नहीं लगे। सत्यार्थप्रकाश में ऋषि दयानन्द ने अपराध के के अनुसार कठोर दण्ड देना लिखा है, परन्तु हमारी सरकार ऐसा करने का साहस नहीं करती इसीलिये अनेक प्रकार के अपराध भारत में बढ़ते जा रहे हैं।

—जगदेवसिह सिद्धान्ती शास्त्री●

पृ० २ का शेष

बनेगे। श्री आनन्द स्वरूप जी ने स्वयं ही २६-८-७३ की तिथि का निर्वाचन के लिये सुझाव दिया परन्तु डा० हरिप्रकाश अपनी जिद पर रहे। फिर जज महोदय ने स्वयं ९-९-७३ निर्वाचन के लिए तिथि निश्चित कर दी। इस प्रकार डेढ़ मास निर्वाचन पीछे पड़ गया।

७—सभा का निर्वाचन कहाँ हो इसके लिए अम्बाला तथा पानीपत के सुझाव आये हुए थे। श्री आनन्द स्वरूप जी एडवोकेट ने कहा कि प्रतिनिधियों के लिए बहुत बड़ा स्थान चाहिए। पानीपत कालिज व स्कूल के पास ४०-५० कमरे तथा ३ हाल हैं परन्तु अम्बाला में केवल १०-१२ कमरे ही हैं। पानीपत संस्थानों के साथ १०० विघा मैदान है और चारों ओर खेत हैं परन्तु अम्बाला में यह सुविधा नहीं। पानीपत में ३ ट्यूबैल हैं। बस स्टैण्ड सामने और स्टेशन पीछे है परन्तु अम्बाला कालिज, स्टेशन और बस स्टैण्ड से दूर है। १४०० प्रतिनिधियों के भोजन आदि पर ५-६ हजार रु० व्यय होगा। डा० हरिप्रकाश आदि तो बार बार कह चुके हैं। कि उनके पास धन नहीं। ऐसी अवस्था में प्रतिनिधि भूखे प्यासे ही रहेंगे। उपरोक्त सब तथ्यों को दृष्टि में रखते हुए जज महोदय ने निश्चय किया कि अधिवेशन आर्य कालिज पानीपत में होगा। हालांकि डा० हरि प्रकाश आदि के लिए भी पानीपत ही निकट है परन्तु उन्हें दुःख यह है कि पानीपत प्रो० रामसिंह जी के बहुमत के लिए भी निकट हो गया।

८—हाईकोर्ट का १-६-७३ का निर्णय ११४ पृष्ठ का है। इसके प्रथम १० पृष्ठों में तो सभा के आपसी संघर्ष तथा अभियोगों का ब्यौरा दिया है। उसके अगले २२ पृष्ठों में हाईकोर्ट में अपील के आने के बाद ३ वर्ष की कार्यवाही का ब्यौरा दिया है। पृष्ठ ३३ से पृष्ठ ७८ तक श्री सोमनाथ मरवाहा द्वारा की गई आपत्तियों पर टिप्पणी करते हुए सब आपत्तियों को काट दिया है। आपत्तियां तथा उन पर जज महोदय का निर्णय किसी अगले अंक में दिया जावेगा ताकि आर्यसमाजों को जानकारी मिल सके। श्री मरवाहा ने इस बात पर बहुत बल दिया कि प्रतिनिधियों तथा सदस्यों की जाँच समाज में जाकर की जावे। जज महोदय ने लिखा है कि प्रतिनिधियों की अवधि के दो वर्ष समाप्त हो गये हैं अतः यदि वह उनके जांच पर लग जावें तो तीसरा वर्ष भी समाप्त हो जावेगा और न्यायालय की ३ वर्ष की मेहनत व्यर्थ ही जावेगी। उन्होंने इस माँग के पिछे निर्वाचन लटकाने की भावना अनुभव की। अतः श्री मरवाहा की उपरोक्त प्रार्थना अस्वीकार कर दी है।

९—डा० हरिप्रकाश ने १४० आर्यसमाजों की आपत्तियों के लिए एक ही हलफिया बयान देकर लिखा है, कि उन्हें सब आपत्तियों का पूरा व्यक्तिगत ज्ञान है और शेष जानकारी सभा के रिकार्ड से प्राप्त की है। जज महोदय ने लिखा है कि सब आर्यसमाजों का निर्वाचन नवम्बर ७१ में हुआ तथा यह सम्भव नहीं हो सकता कि डा० हरिप्रकाश एक मास के भीतर १४२ समाजों में जा सकते थे। (फिर विरोधी समाजें उन्हें रिकार्ड क्यों दिखाती) जज महोदय ने लिखा है कि सभा के दफ्तर में शराब व सिग्रेट पीने वालों का तथा मांस खाने वालों का कहां रिकार्ड होता है। सुप्रीमकोर्ट के कुछ निर्णायकों का हवाला देते हुए जज महोदय ने लिखा है कि डा० हरिप्रकाश को कहां से आपत्तियों का पता लगा उसका ब्योरा देना चाहिए था। उसके बिना हलफिया बयान का कोई मूल्य नही।

१०—जज महोदय ने लिखा है कि स्वामी सर्वानन्द जी माने हुए तथा प्रतिष्ठित आर्य नेता हैं तथा दोनो पक्षों का उन पर विश्वास है। कानून की दृष्टि में अन्तरंग सभा के सब अधिकार उनमें सीमित हैं। स्वामी जी का सारा जीवन आर्यसमाज के शुभ कार्यों पर लगा है। इसलिए उन्हें आर्यसमाज के विधि-विधान का भी पूर्ण ज्ञान है। स्वामी जी ही ९-९-७३ की बैठक का सभापतित्व करेंगे और श्री फुलका उनके सहायक होंगे। स्वामी जी ने जज महोदय को सूचित किया कि सभा के अधिवेशन तथा प्रतिनिधियों के भोजन व रहने आदि की समुचित सुविधाएं आर्य कालिज पानीपत में ही हो सकती हैं न कि अम्बाला में। इसी कारण जज महोदय ने ९-९-७३ को प्रातः ९ बजे सभा की बैठक आर्य कालिज पानीपत में स्वामी जी की अध्यक्षता में करने का आदेश दिया है। निर्वाचन हाथ खड़े करा कर अथवा आवश्यकता हो तो विभाजन करा कर होगा। निर्वाचन के सम्बन्ध में कोई आपत्तियां होंगी तो स्वामी जी उसी समय उनका निर्णय कर देंगे तथा अधिकारियों आदि की घोषणा कर देंगे। स्वामी जी तथा श्री फुलका घोषित अधिकारियों को सभा तथा संस्थानों का चार्ज दिलाएंगे। स्वामी जी द्वारा घोषित अधिकारियों व अन्तरंग सभा आदि को हाईकोर्ट अपने आदेश द्वारा स्वीकार करेगी। हाईकोर्ट द्वारा बनाई प्रतिनिधियों की सूचि की एक एक प्रमाणित प्रति स्वामी जी दोनों पक्षों को देंगे। प्रतिनिधियों आदि के सम्बन्ध में कोई पक्ष शुद्धि कराना चाहे तो वह ३०-६-७३ तक जायंट रजिस्ट्रार हाईकोर्ट को प्रार्थना पत्र देगा। प्रतिनिधि फार्म, श्री फुलका की रिपोर्ट तथा जज महोदय के निर्णय के आधार पर ही वह निर्णय करेंगे। अजेण्डा श्री फुलका सब प्रतिनिधियों को भेजेंगे।

११—जैसा कि आरम्भ में लिखा है लगभग १३४१ स्वीकृत प्रतिनिधियों में से प्रो० रामसिंह पक्ष के ९४१ प्रनिनिधि तथा श्री वीरेन्द्र पक्ष के अधिक से अधिक ४०० प्रतिनिधि होंगे। निर्वाचन का परिणाम श्री वीरेन्द्र को अभी दीखने लगा है। इस लिए उन्होंने सभा के विभाजन अथवा सर्वसम्मत निर्वाचन के लेख लिखने आरम्भ कर दिये हैं। अधिकारियों के निर्वाचन में प्रतिनिधि स्वतन्त्र हैं। अतः कोई व्यक्ति भी निर्वाचन से पूर्व श्री वीरेन्द्र को मिलकर सर्वसम्मत निर्वाचन का विश्वास नहीं दिला सकता। हाईकोर्ट के आदेशानुसार केवल अजैण्डा का विषय अर्थात् सभा के अधिकारियों आदि के निर्वाचन पर ही निश्चय होगा। विभाजन का विषय उस बैठक में नहीं आ सकता। श्री सोमनाथ मरवाहा का जादू भी काम न कर सका। श्री वीरेन्द्र को चाहिए कि अब प्रतिनिधियों को अपने कर्त्तव्य का पालन करने दें। स्वामी सर्वानन्द जी सभापति बनकर निर्वाचन करा देंगे। उन्हें अन्य किसी धर्मसंकट में डालने का प्रयास न किया जावे। जो पक्ष निर्वाचन में सफल हो वह दूसरे को नम्रता पूर्वक साथ रखने का प्रयत्न करे तथा जो असफल हो वह सफल पक्षको सहयोग का अश्वासन दे। इसी में आर्यसमाज का हित है। आशा है कि इतने संघर्ष तथा आर्थिक हानि के बाद श्री वीरेन्द्र वातावरण को शान्त रखने में स्वामी जी को सहयोग देंगे। इसी में सभा, समाजों तथा संस्थाओं का भला है। (विशेष प्रतिनिधि द्वारा प्राप्त)

१—आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब

आर्य समाजों से विनम्र प्रार्थना

सभी आर्य समाजों के अधिकारी महानुभावों से विनम्र प्रार्थना है कि जुलाई तथा अगस्त मास में वेद प्रचार की कथाएं आरम्भ होंगी। प्रायः अधिकारी महानुभाव रक्षा बन्धन तथा जन्माष्टमी के लिए ही आग्रह करते हैं जाहिर है कि इतनी समाजों में इन दो त्यौहारों पर ही उपदेशक महानुभावों का प्रबंध करना कठिन होता है। अतः सभा के निश्चयनुसार यह कार्यक्रम दो मास से भी अधिक समय तक चलता रहता है। अधिकारी महानुभावों को चाहिए कि इस सप्ताह के लिए अभी से तिथियां निश्चित कर के सभा को प्रबन्ध करने के लिए लिखें ताकि सभी समाजों में बारी बारी प्रचार हो सके, और कोई स्थान रिक्त न रहे।

२—शोक समाचार

अहमदिया सम्प्रदाय से शास्त्रार्थ करने वाले प्रसिद्ध महारथी पं० बिहारी लाल जी उप नाम "रब्बे कादियां" का पिछले दिनों देहान्त हो गया। किसी समाज के सदस्य न होते हुए भी आर्यसमाज के साथ आपका बड़ा लगाव था। आपके जीवन काल में १४ बार विरोधियों ने आप पर अभियोग चलाये। आपने कभी कोई वकील नहीं किया और लगभग सभी केसों में आप विजयी हुए।

१९६२ में, मैं और रब्ब जी दोनों ही कादियां के प्रसिद्ध केस में पशियां भुक्तते रहे। सरकार ने यह केस वापिस लिया। मैंने तो शिष्टाचार के नाते सरकार का धन्यवाद किया, परन्तु आपने जुबानी और लिखित रूप में धन्यवाद के स्थान पर सरकार को कड़ी आलोचना की। आपकी दिलेरी का सभी स्थानों पर सदा चर्चा रहा। समाजें उनके अभाव को अवश्य अनुभव करती रहेंगी। —निरञ्जनदेव, वेदप्रचाराधिष्ठाता

क्रमागत—

माण्डूक्य पर आचार्य गौडपाद कारिकाओं की समीक्षा (२३)

[ले०—श्री स्वामी ब्रह्मानन्द जी आर्य त्रैतवेदान्ताचार्य, मु० पो० आश्रम, वाल्वोद (बड़ौदा)]

समीक्षा—पूर्णात्मा का स्वरूपीय ज्ञान आप पूर्ण मानते हैं या अपूर्ण ? यदि कहो पूर्णात्मा का ज्ञान पूर्ण ही है। तो फिर उस पूर्णात्मा के पूर्ण ज्ञान में अपूर्णता क्यों फिर आयेगी ? अर्थात् जो स्वभाव से ही ज्ञान स्वरूप परमात्मा है तो उसके स्वभाव सिद्ध धर्मी के धर्म का अतिरेक कैसे होगा ? अर्थात् किसी भी प्रकार से नहीं होगा। यदि कहो माया अविद्या उसे एकांश से घर लेती है। जो ऐसा कहो तो भी ठीक नहीं क्योंकि आप परमार्थ में भी अज्ञान का होना मानते हैं यह सिद्ध हुआ, तब तो तुम्हारा माना हुआ परमार्थ भी नष्ट भ्रष्ट है, और वह तुम्हारा परमार्थ रूप परमात्मा भी माया रानी का गुलाम है वो चाहे जैसा उसे नचाये। अरे क्या ऐसा ही अद्वैतवादी का ब्रह्मात्मा कमजोर और मायारानी जुलमजोर है, तो फिर क्या पूछना (जहँ आशिक और माशूक रहें वहां शाह बजारी हैं बाबा)।

पर ये तो कहें कि माया अविद्या को आप परमार्थ रूप मानते हैं या अपरमार्थ ? यदि कहो परमार्थ से रहित, तब फिर वह तुम्हारी मानी हुई माया—भ्रान्ति परमार्थ में कैसे प्रवेश पा सकेगी ? हर्गिज नहीं, और फिर तुम्हीं कहो कि उस आत्म तत्त्व को भ्रान्त कौन बनायेगा ? कोई भी नहीं। तो फिर तुम्हारी इस सत्रहवीं कारिका का निशाना लगाना फैल गया या हुआ या नहीं ? इसलिये जो कहो या लिखो वो सोच समझ कर लिखो। और देखो भ्रान्ति का होना ये अल्पज्ञ का गुण है सर्वज्ञ परिपूर्ण परमात्मा का नहीं समझे ? ॥१७॥

निश्चितायां यथा रज्ज्वां विकल्पो विनिवर्तते।
रज्जुरेवेति चाद्वैतं तद्वदात्म विनिश्चयः ॥१८॥

वैतथ्य प्र० की १८ वीं का०

अर्थ—जिस प्रकार रज्जु का निश्चय हो जाने पर उसमें (सर्पादि का) विकल्प निवृत्त हो जाता है तथा यह रज्जु ही है ऐसा अद्वैत निश्चय होता है उसी प्रकार आत्मा का निश्चय है ॥१८॥

समीक्षा—आप हर जगह विवर्तवाद का ही प्रमाण ला धरते हैं किन्तु इतना भी नहीं सोचते कि ये दृष्टान्त तो एकदेशीय आत्मा जीव के लिये घट सकता है न कि सर्वज्ञ परिपूर्ण परमात्मा में तो जरा भी नहीं घटता। अरे यदि परमात्मा भी जिसके मत में भ्रान्त अज्ञानी बने तो फिर जीवों का अज्ञान ही कौन छुड़ावेगा ? इसलिये ये उपरोक्त लक्षण तो जीव के लिये तो लागू पड़ती है शिव के लिये बिल्कुल नहीं। अरे क्या ? रज्जु रूप ब्रह्म ही क्या रज्जु में संसार रूप सर्प को देखता है या देखने वाला अन्य भ्रान्त जीव मानते हो ? यही कहो कि जीव है। तो तुम्हारे मत में द्वैतापत्ति होगी। क्योंकि तुमने जीव को प्रथम से अनादि मानकर बाद में उसे भ्रान्ति का होना माना है। और जो आप ब्रह्म को ही सर्वाध्यास मानते हो तो फिर तुम्हारा उक्त अध्यासवाद का दृष्टान्त ही अशुद्ध हो जाता है। क्योंकि कहीं भी ऐसा नहीं देखा जाता कि अध्यस्त वस्तु का आश्रयदाता हो अध्यासी बन बैठता हो। परन्तु अध्यासी अध्यास एवं जिसमें अध्यस्त होवे, वो ऐसे तीन के बिना अध्यासवाद का द्रष्टान्त ही नहीं बनेगा, पूर्ण रूप से। अर्थात् अध्यासी जीव होगा, अध्यास्त वस्तु सर्परूप संसार होगा और अध्यस्त वस्तु का अधिष्ठान रज्जु रूप ब्रह्म होगा। तो इस प्रकार त्रिविध वस्तु की त्रिपुटी प्रथम से ही मान ली जायेगी तभी उक्त विवर्तवाद के दृष्टान्त की पूर्णता होगी, अन्यथा व्यभिचार दोष से तुम्हारा दृष्टान्त ग्रस्त माना जायेगा। तो उपरोक्त कथन का आशय हमारा यही मात्र है कि आप अद्वैतवादी महानुभाव तो रज्जु रूप अधिष्ठानी ब्रह्म को अध्यासी या सर्पाध्यासी बना बैठते हो ? इसीलिये हमारा तुमसे कहना है कि अधिष्ठारूप रज्जु ही क्या तुम्हारे मत में भ्रान्ति को प्राप्त करती है या भ्रान्त होने वाला कोई अन्य को आप लोग मानते हैं ? किन्तु हमारी इस बात का तुम्हारे यहां कोई जबाव ही नहीं है। तब तो गुरु गौड जी की उपरोक्त इस अठारहवीं कारिका पर कालोंच पोत देना चाहिये अथवा हड़ताल फेर देनी चाहिये ॥१८॥

प्राणादिभिरनन्तैश्च भावैरेतैर्विकल्पितः।
मायैषा तस्य देवस्य यया संमोहितः स्वयम् ॥१९॥

वैतथ्य प्र० की १९ वीं कारिका

अर्थ—यह जो इन प्राणादि अनन्त भावों से विकल्पित हो रहा है सो यह उस प्रकाशमय आतमदेव की माया ही है, जिससे कि वह स्वयं ही मोहित हो रहा है ॥१९॥

समीक्षा—आपने यहां प्राणात्मक प्रकृति को माया के अनन्त भाव माना है, तो अनन्त भाव वाली वस्तु तो वो होती है जिसका अन्त कभी न होवे, वो ही वस्तु अनन्त होती है। तो जिसका अन्त ही नहीं तो फिर वो माया भ्रान्त भी कभी नहीं होगी, ता ध्यान रहे, तुम्हें अपनी बात का। तथा तुमने यहां जादूगर की माया से ईश्वर को माया को मिलाया है और इससे उस ब्रह्म को भ्रान्त मोहित होने वाला कहा है तो ये भी तुम्हें ध्यान रखना चाहिये कि जैसे मायावी, जादूगर की माया या जादू से जादूगर स्वयं कभी भी भ्रान्त नहीं होता है, किन्तु अपने जादू से दूसरे देखने वालों को ही मोहित भ्रान्त बना देता है, उसी प्रकार ईश्वर को भी उसमी माया मोहित कभी नहीं करती, किन्तु जीवों को ही सदैव मोहित संसार में करती रहती है परन्तु ईश्वर को माया मोहित करती है ऐसा आपने माना है ऐसा ही आ० शंकर जी ने भी यहां भाष्य में मान रहे हैं और ईश्वर को भ्रान्त सिद्ध करने का कोई प्रमाण हाथ में आते न देखा तो (मम माया दुरत्यया॥ गी० अ० ७) का ही प्रमाण ला धरा, परन्तु वह तो जीवों को भ्रान्त करने के विषय में है, देखो आगे के दूसरे पद में श्री कृष्ण कहते हैं कि (मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥ गी० अ० ७॥) अर्थात् मेरे ईश्वर को जो लोग शरण ले लेते हैं सर्वतो भावेन वे ही इस दिव्य माया से तर जाते हैं। तो अब कहो कि इस श्लोक में जीवों को मोहित करने की बात है या ईश्वर को ? परन्तु (या बेईमानी आखिर तेरा ही सहारा) परन्तु ऐसे वीतराग पुरुषों को ऐसा मिथ्या व्यवहार करना या अपने सिद्धान्त की सिद्धि के लिये न लागू पड़ने वाला फालतू प्रमाण ला धरना ये योग्य नहीं। ऐसे ही यत्र तत्र श्रुतियों के प्रमाण भी प्रायः अर्थ को खींचतान कर ही किये हैं भाष्य में शंकर जी ने, तो इसीलिये पकड़े भी जाते हैं अर्थात् परस्पर विरोधाभास उनके भाष्य में पाया जाता है अस्तु ॥१९॥

प्राण इति प्राणविदो भूतानीति च तद्विदः।
गुणा इति गुणविदस्तत्त्वानीति च तद्विदः ॥२०॥
पादा इति पादविदो विषया इति तद्विदः।
लोका इति लोकविदो देवा इति च तद्विदः ॥२१॥
वेदा इति वेदविदो यज्ञा इति च तद्विदः।
भोक्तेति च भोक्तृविदो भोज्यमिति च तद्विदः ॥२२॥
सूक्ष्म इति सूक्ष्म विदः स्थूल इति च तद्विदः।
मूर्त इति मूर्तविदोऽमूर्त इति च तद्विदः ॥२३॥
काल इति कालविदो दिश इति च तद्विदः।
वादा इति वादविदो भुवनानिति तद्विदः ॥२४॥
मन इति मनविदो बुद्धिरिति च तद्विदः।
चित्तमिति चित्तविदो धर्मा धर्मौ च तद्विदः ॥२५॥
पंचविंशक इत्येके षड्विंश इति चापरे।
एक त्रिंशक इत्याहुरनन्त इति चापरे ॥२६॥
लोकांल्लोकविदः प्राहुराश्रमा इति तद्विदः।
स्त्रीपुंनपुसक लैंगाः परापरमथापरे ॥२७॥
सृष्टिरिति सृष्टिविदो लय इति च तद्विदः।
स्थितिरिति स्थितिविदः सर्वे चेहेतु सर्वदा ॥२८॥

वै० प्र० की बीस से अठ्ठाईस कारिकायें।२०।२१।२२।२३।२४।२५।२६।२७।२८। ● (क्रमशः)

गतांक से आगे—

सन् ५७ में प्रजा विद्रोह के कारण ?

प्रसिद्ध समाचार पत्रों की सम्मतियां (३३)

(ले० श्री स्वा० सच्चिदानन्द योगी, अध्यक्ष श्री नारायण स्वामी आश्रम, महामहिम पातञ्जलयोग साधना संघ आ० बा० आ० ज्वालापुर सहारनपुर)

An Autobiography of Swami Dayanand

Swami Dayananda Saraswati is world famous as the founder of Arya Samaj in India. This great swami there fore needs no introduction to our readers.

Now we are told that Swami Dayananda wrote an auto biography of his own in Sanskrit and instructed his fallowers not to publish the same before his death. Swami Sachdidanda Sarswati yogi traced this auto biagraphy and has now come forward with this valume, which incorporates the Hindi version of Swami Dayananda's autobiography together with the results of a research project which he under took in order to prove tne authentiaty of his autobiography for the benefit of the sceptics. The autobiogeaphy its eff contains a suecinct accout of Swami Dayananda's early life, his renunciation of all worldly belongings and his travels of Northern India meeling yogis and practicing yoga and preaching his mission in life which was to propogate Vedic principles and rites among his fallowers and devotees.

The Pioneer, Lucknow—20-4-72

.....The volume which in profusely Illustration with 16Tri. colour photos and numerous single coloured Illustiation and is brightly printed and artistically provided comprises of three broad section—One contrubuted by Swami Sachchidanand Saraswati yogi, compiler, giving the results of his in vestigations about the authenticity of the autobiography with foot note added by the Editor and the third giving the already published autobiographies of Swami Dayananda the updesh manjari which is based on a lecture that Swami Dayananda delivered at Poona, and the text of the autobiography which was publiched in English in the theosophist of November-December 1880.

There is no doubt that Swami Sachchidananda Saraswrti yogi has done signal service to Arya Sameji's to and millions of Swami Dayananda's followers and devotees by seeing this onerous and responsible job done so thoroughly and intelegently. we are confideont that the Arya Samajis's ann others who are in terested in the noble mission whieh Swami Dayananda propogated in his Satyarth Prakash and his discourses will whole heartedly welcome the publication of this valume which affords its readers a fairly comprihensive glimpse in to Swami Dayananda's life and his activiter during his life-time revealing some details whicc were hither to unknown or shrouded in mystery.

पूरी रिसर्च है

दैनिक मिलाप नई देहली

सच यह है कि महर्षि दयानन्द सन् सत्तावन की जंग आजादी के उन नेताओं में से थे जो पूरा इन्तिजाम कर रहे थे। जंगे आजादी के बहादुर जन्मदाता नाना साहब धुन्धु पन्त, झांसी की महारानी लक्ष्मी बाई क्रान्तिकारी फौज के बेखोफ जरनेल शहीद तान्त्या टोपे, नाना साहब के वजीर अजीमुल्लाह, बिहार के विक्रम सिंह और डमडम में जंगे आजादी के पहले शहीद श्री मंगल पांडे मुखतलिफ वक्तों पर महर्षि के करीब आये। उनसे जंगे आजादी के लिये प्रेरणा ली। और रहनुमाई करते रहे।

स्वातन्त्र्य संग्राम में सुसंगठित संगठन साधुओं का था।...सरकरदा साधुओं और फकीरों में स्वामी दयानन्द शामिल थे।

दो अनोखे साधन इस्तेमाल किये गये। १. चपाती २. कमल। इन दोनों तरीकों का इस्तेमाल करने का मशवरा स्वामी दयानन्द जी ने क्रान्ति के नेताओं को चण्डी के पहाड़ पर दिया था।

अब मालूम होता है कि यह तखील सौ फीसदी सच थी। मैं अपने जीवन की मोटी मोटा बातें लिखवा दूंगा। संस्कृत में बोलूंगा। बंगला में लिखा लें। इस जीवन चरित्र को मेरे मरने के बाद छापिये।

स्वामी दयानन्द ब्रह्म समाज वालों की मुखालफत की ब्रह्म समाजियों ने जीवन चरित्र को शाया करने की तरफ ध्यान नहीं दिया।

अब नैनीताल के स्वामी सच्चिदानन्द जी की कृपा से और पूज्य श्री आनन्द स्वामी जी की प्रेरणा से यह जीवन चरित्र हिन्दी में तरजुमा कर प्रकाशित किया गया है।

इस महापुरुष ने देश के कोने कोने को देखा उनका मकसद योगियों की तलाश करना था। दूसरा स्वातन्त्र्य संग्राम के लिये संगठित करना।

ऊपर के लेख में मैंने महर्षि दयानन्द के मुतालिक कई नई बातें लिखी हैं जो लोगों के सामने न आई थीं। इन सब बातों को देश के सामने रखने का सेहरा श्री स्वामी सच्चिदानन्द जी योगी महराज के सिर है जिन्हों ने बहुत मेहनत से महर्षि दयानन्द के खुद लिखाये जीवन का पता लगाया। इसके मुतालिक पूरी रिसर्च की। और योगी का आत्म चरित्र नाम से एक खूबसूरत किताब हिन्दी में शाया की। इस किताब में मुतअददपूर्ण हाथ की बनी रंगीन तस्वीरें भी दी गयी हैं। किताब की कीमत १५ रुपये (यह मिलाप सण्डे एडोशन १३-२-७२ चार कालमों का अत्यन्त संक्षेप है)

पं० शिवदयालु जी, पूर्व प्रधान मन्त्री आर्य प्रतिनिधि सभा, उत्तर प्रदेश पूर्व सम्पादक आर्य मित्र, पूर्व अध्यक्ष आर्य वानप्रस्थ आश्रम, ज्वालापुर।

योगी का आत्म चरित्र ध्यान पूर्वक पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। हस्तलेखों से बड़े परिश्रम से सम्पादित किया है। विस्तृत २५० पृ० की गवेषणा एवं अनेक आवश्यक उपयोगी परिशिष्ट भी दिये हैं। उन से इस जीवनी की ऐतिहासिकता भौगोलिकता तथा प्रामाणिकता पर भारी परिश्रम करके गहन गवेषणा कर जो प्रकाश डाला है वह स्तुत्य है।

योगी आत्म चरित्र सर्वथा सत्य है

बंग भंग आन्दोलन और स्वदेशी आन्दोलन के सुप्रसिद्ध नेता श्री विपिन चन्द्र पाल ने कभी कहा था महर्षि दयानन्द इस युग के अनन्य श्रेष्ठ महापुरुष थे। किन्तु खेद की बात है कि आज तक उनकी अज्ञात जीवनी का उद्धार नहीं हुआ। उनको यह बात बंगाल के हो एक युवक दीन बन्धु के मन में चुभ गयी। और उसने लगातार ४०-४५ वर्ष के परिश्रम के पश्चात् ऋषि दयानन्द की अज्ञात जीवनी का उद्धार किया।

ऋषि दयानन्द सन् १८७२ के दिसम्बर मास में कलकत्ता मास में कलकत्ता पहुंचे थे और वहां चार मास रहे थे। तब श्री ईश्वर चन्द्र विद्या सागर और श्री केशव चन्द्र सेन के आग्रह से उन्हों ने अपना जीवन वृत्तांत सुनाया था और तभी वह लिपि बद्ध कर लिया गया था। ऋषि दयानन्द तब संस्कृत में ही बोलते थे। पण्डितों ने उसे बंगला लिपि में लेख बद्ध कर लिया था। दयानन्द यह आदेश दे गए थे यह विवरण प्रकाशित न हो। उसके दस साल बाद उनका स्वर्गवास हो गया। (क्रमशः)

गतांक के आगे--

योगी का आत्म चरित्र एक मनघड़न्त कहानी

(लेखक—श्री स्वामी पूर्णानन्द जी सरस्वती-बड़ौत-जिला मेरठ)

आक्षेप नं० ४. यह कि योगी जी में दोगलापन है—एक ओर अनुसंधान के पृ० १०६ से १०८ तक स्वामी दयानन्द को काशीपुर से चाण्डाल गढ़ तक ले जाते हैं। उधर योगी का आत्मचरित्र की पुष्टि करते हैं जिसमें स्वामी दयानन्द उत्तर प्रदेश से बाहर ही घूमते हैं उत्तर प्रदेश के अन्दर एक कदम नहीं रखते।

आक्षेप नं० ५. यह कि तात्याटोपे जून सन् १८५८ से लेकर अप्रैल सन् १८५९ तक अर्थात् अपने जीवन के अन्तिम दिन तक नाना साहब के साथ कभी नहीं मिले तो नवम्बर सन् १८५९ में अर्थात् अपनी मृत्यु के ७ मास पीछे नाना साहब के साथ कन्या कुमारी में कैसे पहुंच गये?

आक्षेप नं० ६. यह कि थियोसोफिस्ट के अनुसार और सच्चिदानन्द के अनुसार भी स्वामी दयानन्द फरवरी-मार्च सन् १८५७ में कानपुर के आस पास घूम रहे थे तो यो० आ० च० के अनुसार बैरकपुर में गाय और सुअर की चरबी लगे हुए कारतूसों के आने के बाद धर्म संकट के कारण मंगलपाण्डे के क्षुब्ध होने पर उसको धर्म पर बलिदान होने के लिए आशीर्वाद देने के लिए फरवरी-मार्च सन् १८५७ को स्वामी जी बैरकपुर कैसे पहुंच गये? सावरकरके लिखने के अनुसार चरबी लगे कारतूस फरवरी सन् १८५७ में ही बैरकपुर रेजीमेंट में गये थे। उससे पूर्व नहीं। अब 'योगी का आत्म चरित्र' ऋषि दयानन्द के अपने हाथ से लिखे हुए थियोसोफिस्ट में छपे हुए आत्मकथा से सर्वथा विरुद्ध है।

मेरे लेखों का उत्तर सच्चिदानन्द जी ने 'आर्यमर्यादा' ११ व १८ मार्च सन् १९७३ में देने का ढोंग रचा है। जिनमें अप्रासंगिक और गौण बातों से पाठकों को सन्तुष्ट करने का प्रयत्न किया है। मेरे ६ आक्षेपों में से ५ आक्षेपों को तो छुआ तक नहीं। छटे आक्षेप को अपनी कल्पना के अनुसार घड़कर उसका उत्तर देने का नाटक रचा है। आपने उत्तर दिया है। यह कारतूस चरबी वाले ५७ में ही नहीं आये थे। भगवन्! इसका इतिहास है। पढ़िये—" फिर योगी जी ने पूरे दो कालम ऐतिहासिक उद्धरणों से भर दिये, जिनका मेरे प्रश्न से दूर का भी सम्बन्ध नहीं। मेरा प्रश्न कारतूसों के इतिहास के सम्बन्ध में नहीं था। मेरा प्रश्न क्या था? योगी जी आंख और मस्तिष्क को खोलकर पढ़िये! प्रश्न था। "इतिहास यह बतलाता है कि सैनिकों में चरबी लगी कारतूसों से उत्तेजना फरवरी सन् १८५७ में फैली।" मेरा इसमें जरा भी संकेत नहीं कि मैं भारत में कारतूसों के आने की कहानी को पूछूं? मैंने तो उन चरबी लगे कारतूसों का जिक्र किया था जो बैरकपुर छावनी में आ चुके थे। और जिनके कारण मंगलपाण्डे धर्म संकट में पड़कर इतने उत्तेजित हो गये थे कि अपने प्राणों का बलिदान करने के लिये तैय्यार हो गये थे। सावरकर के लिखने के अनुसार वे कारतूस फरवरी सन् १८५७ में आये थे। जिनसे मंगलपाण्डे धर्म संकट में पड़ गये थे। उससे पहले की कोई ऐसी घटना नहीं जिससे मंगलपाण्डे को उत्तेजना मिली हो। सावरकर के लेख की पुष्टि डा० सेन ने अपने इतिहास 'अठारह सौ सत्तावन' में पृष्ठ ५० में इस प्रकार से की है।

बरहमपुर में २६ फरवरी को विद्रोह हो चुका था, २९ मार्च को बरहमपुर में एक और गम्भीर घटना घटी जिससे पता चलता है कि भय और आशंका के कारण सिपाही किस सीमा तक हताश हो चुके थे। मंगल पाण्डे ३४ वीं इन्फेन्ट्री का एक नोजवान सिपाही था उसका अब तक का आचरण बहुत अच्छा था, किन्तु कुछ दिनों से वह हाल की घटी घटनाओं पर गम्भीरता पूर्वक विचार कर रहा था। कुछ ही दिनों पूर्व दूसरी नेटिव इन्फेन्ट्री ग्रिवेडिमर्स के दो सिपाहियों को राजद्रोह के षड्यन्त्र का अपराधी करार दिया गया था और उन्हें १४ वर्ष के कठोर परिश्रम का दण्ड दिया गया था.........धर्म के लिये १९ वीं नेटिव इन्फेन्ट्री ने अपना सब कुछ न्योछावर कर दिया था। स्पष्ट है कि सिपाहियों के बीच इन बातों का काफी प्रचार हुआ और यह मान लेना गलत न होगा कि मंगलपाण्डे इन सारी घटनाओं से काफी प्रभावित हुआ था।" इस प्रमाण से भी यही सिद्ध होता है कि २६ फरवरी सन् १८५७ की घटना से प्रभावित होकर ही मंगलपाण्डे ने २९ मार्च को विद्रोह किया था। योगी जी ने ऐतिहासिक प्रमाणों का ढेर तो लगा दिया परन्तु यह सिद्ध करने में सर्वथा असफल रहे कि सन् १८५७ से पहले चरबी वाले कारतूसों से मंगलपाण्डे या और सिपाही उत्तेजित हुए हों! इसलिये मेरे ६ आक्षेप या योगी जी के ६ झूठ उनके सिर पर रक्खे हुए हैं।

मेरा एक गौण सा आक्षेप यह भी था। कि स्वामी जी को धूनी रमाने वाला कहकर उनको दम्भी सिद्ध किया है। इसको मुख्य समझकर योगी जी ने उसके समाधान में आधा कालम भर मारा, परन्तु उसमें भी दो चार झूठ मिलाकर और भी जटिल बना दिया। योगी जी ने समाधान करते हुए स्वामी जी की उस अवस्था को अवधूत अवस्था बतलाया है। जो सर्वथा झूठ है। अवधूत अवस्था उसे कहते हैं कि जिसमें एक व्यक्ति सिवाय लंगोट के और कोई वस्त्र अपने पास न रक्खे और न ही कोई और वस्तु अपने साथ रक्खे। स्वामी जी की ऐसी अवधूत अवस्था सन् १८६७ से सन् १८७४ तक ७ वर्ष तक रही। उससे आगे या पीछे स्वामी दयानन्द की अवधूत अवस्था नहीं रही। स्वामी जी ने स्वयं १८७५ में पूना में व्याख्यान देते हुए कहा था—"(कुम्भ के अवसर पर सन् १८६७) फिर मेरे मन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि सारे जगत् से विरोध करके भी गृहस्थों से बढ़कर पुस्तक आदि का जंजाल रखना ठीक नहीं है। इसलिये मैंने सब कुछ छोड़कर केवल कोपीन (लंगोट) लगा लिया और मौन धारण किया। उस समय जो शरीर में राख लगाना शुरू किया था वह गतवर्ष बम्बई में आकर छोड़ा।" स्वामी जी के अपने कथन से बढ़कर उनके सम्बन्ध में और कौन सा प्रमाण हो सकता है? इसलिये सच्चिदानन्द जी का यह काला झूठ और मिलाकर ७ झूठ हो गये। स्वामी जी की स्वलिखित आत्म कथा से भी यह सिद्ध होता है कि उत्तराखण्ड की यात्रा में स्वामी जी वस्त्र धारण करते थे। देखिये—"१ (तुंगनाथ की यात्रा) कान्टों की तीखी वेदना से जिन्होंने मेरे शरीर के परिधान को तार तार कर दिया। २ (अलखनन्दा की यात्रा) मैंने शीघ्रता पूर्वक शरीर के ऊपरी भाग को विवस्त्र किया। जो भी वस्त्र मेरे पास थे उन्हें पैरों पर तलवों से, घुटने तक लपेट लिया। ३ (गढ़मुक्तेश्वर में शव परीक्षा) पुस्तकों को एक तरफ रखकर और वस्त्र उतार कर निश्चय पूर्वक नदी में कूद पड़ा। ४ (चाण्डाल गढ़ के पास नन्दी बैल की मूर्ति में घुसते हुए) मैंने वस्त्रों तथा पुस्तकों को उसकी पीठ पर रक्खा। ५ (नर्मदा के स्रोत की ओर जाते हुए) मैंने किसी प्रकार वस्त्र और चमड़ी के छेदन तथा रक्त स्राव एवं थकावट के मूल्य पर इस बाधा को पार किया।" इन पांच प्रमाणों से भी यही सिद्ध होता है कि स्वामी जी सन् १८६७ से पहले कभी अवधूत अवस्था में नहीं रहे। सच्चिदानन्द ने उपर्युक्त घटनाओं को पढ़ा तो अवश्य है, परन्तु उन्होंने जान पूछकर जगह जगह यह झूठ बोला कि सन् १८५५ से १८५९ तक स्वामी जी अवधूत अवस्था में रहे। जानपूछकर झूठ बोलना तो महा पाप है जो सच्चिदानन्द जी के सिर पर जमा बैठा है।

धूनी रमाने की प्रामाणिकता में आनन्द स्वामी जी का उदाहरण दिया है जो प्रमाण कोटि में नहीं आता, क्योंकि "आप्तोपदेशः शब्दः" स्वामी आनन्द जी को कोई भी विद्वान् आप्त नहीं मानता। आप उनको प्रमाण मानते रहें तो यह आपका स्वार्थ है।

'मनतुरा हाजी बिगोयम् तू मरा काजी बिगो' 'परस्परं प्रशंसन्ति अहोरूपमहो ध्वनिः' वाली बात है।

आपने धूनी रमाने में अपने आपको भी प्रमाण रूप में पेश किया है। अपने मुंह मियां मिट्ठू बनना तो कोई भी बुद्धि मत्ता नहीं मानेगा। आठवां झूठ भी अपने सिर पर रख लिया। ९ वां झूठ यह है कि आपने पौराणिक संन्यासियों को धूनी रमाने वाले बतलाया है। धूनी रमाने वाले वैष्णव सम्प्रदाय के बैरागी होते हैं। संन्यासी कभी धूनी नहीं रमाता चाहे वह आर्य समाजी हो या पौराणिक संन्यासी के लिये मनु ने लिखा है। — 'अनग्निरनिकेतः स्यात्' अर्थात् संन्यासी को अग्नि और गृह के बिना रहना चाहिये। क्रमशः

पिछले अंक का शेष—

श्री कादियाण जी के सुझावों पर विचार—२

(ले० श्री खेमचन्द्र यादव—डब्ल्यू १८, ग्रीन पार्क नई दिल्ली)

साम्यवाद के इस मौलिक सिद्धान्तों का आर्यसमाज के विद्वानों ने डट कर विरोध किया कि ईश्वर या धर्म सब ढकोसला है और सम्पत्ति पर व्यक्ति का कोई अधिकार ही नहीं बल्कि सब सम्पत्ति समाज या राष्ट्र की है। उनके प्रथम सिद्धान्त की आलोचना तो इस सीमा तक पहुंची है कि अब पहले की तरह साम्यवादी ईश्वर की सत्ता का उस सीमा तक विरोध नहीं करते जितना कि पहले करते थे। बुद्धि और तर्क जो आर्यविद्वानों ने जनता के सामने इस विषय पर रखे उनके आगे सबको झुकना पड़ा और अब तो बात चीत में साम्यवादी भी उस सत्ता के अस्तित्व को दबी जबान मानने को बाध्य होने लगे हैं। जहां तक उनके दूसरे सम्पत्ति वाले सिद्धान्त की बात है, आर्य विद्वानों ने वेदों एवं अन्य धार्मिक मान्य ग्रन्थों के प्रमाण प्रस्तुत करके सम्पत्ति पर व्यक्ति के अधिकार का प्रतिपादन किया है। जो कि नितान्त सत्य है। मगर आर्यसमाज के बाहर शिक्षित वर्ग में साम्यवादियों की तो बात ही छोड़िये इस का कोई अच्छा प्रभाव नहीं पड़ा। उलटे शिक्षित युवा वर्ग में तो वेदों के प्रति हीन भावना को ही जगाया है। वह शिक्षित वर्ग तो यह कहता है कि वेद तो शोषक वर्ग के बनाये जान पड़ते हैं जिन कीआड़ में उन का भय दिखाकर शोषित सिर न उठा सकें। उनकी बात सोलहों आना असत्य भी नहीं है। गलती यह हुई कि आर्य विद्वानों ने पहले जनता को या साम्यवादियों को यह न बताया कि वेद के मतानुसार सम्पत्ति है क्या? आम जनता तो सब यही जानती और मानती है कि जमीन-जायदाद-बाग- मकान जेवर नकद रुपया-बेंक बैलेन्स आदि जो भी जिसके पास है वह उसकी सम्पत्ति है। मगर वेद की निगाह में यह सम्पत्ति नहीं है। वेद सम्पत्ति को बहुत ऊंचा और विशेष स्थान मानव जीवन में देता है। उसे वह अर्थ के नाम से घोषित करता है। और मानव जीवन के चार महान् लक्ष्यों में से उसे द्वितीय स्थान पर रखता है। वे चार माहन् लक्ष्य हैं धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष। प्रत्येक को अपने जीवन से इन्हें प्राप्त करना है। अलग-अलग व्यक्ति को न कि समाज को या राष्ट्र को सामूहिक रूप में अर्थ क्या है? महर्षिदयानन्द स्वरचित सत्यार्थ-प्रकाश में लिखते हैं "अर्थ वह है कि जो धर्म ही से प्राप्त किया जाय और जो अधर्म से सिद्ध होता है उसको अनर्थ कहते हैं।" इस परिभाषा के अन्तर्गत तो जो केवल धर्म से ही अर्थात् नैतिक सरल और सत्य तरीके से विना किसी के सताये धोखा दिये ईमानदारी से कमाया गया है वही अर्थ है लक्ष्मी और सम्पत्ति है न कि वह सब सम्पत्ति चल और अचल जो कि किसी के भी पास है चाहे वह धर्म से कमाई गई हो या अधर्म से। आज यदि गहराई से देखा जाय जो सम्पत्ति लोगों के पास है उसमें से ९९ प्रतिशत सम्पत्ति अधर्म की कमाई की है। जो कि वेद की मान्यतानुसार सम्पत्ति की परिभाषा में आती ही नहीं वह तो अनर्थ है और जिसके पास है उसके नाश का कारण है। चाहे नाश आज हो चाहे दस दिन या साल दस साल बाद हो। आर्यसमाज से चूक हुई कि उस ने पहले सम्पत्ति को न बताया कि वह क्या है वेद किसको कहता है। अगर आज भी आर्य विद्वान वेद सम्पत्ति लक्ष्मी अर्थात् अर्थ किस को स्वीकारते हैं और उसके कमाने का जमा करने का क्या उपाय बताते है और कमाकर उसके व्यय करने का क्या आदेश देते हैं, जनता के समक्ष खोल कर रखे तो उन्हें इसके प्रचार की आवश्यकता नहीं होगी कि उस सम्पत्ति पर किसका अधिकार होना चाहिए। स्वतः ही सिद्ध हो जावेगा कि उसका अधिकारी और स्वामी कौन होता है और कौन होना चाहिए। यह तो दूरकी बात है कि राज्य समाज उस पर अधिकार करे उस तेजोमय सात्विक, ईमान वालो असली श्रम की कमाई पर ताला लगाने की आवश्यकता नहीं होगी। चोर भी उस पर अधिकार करने से हिचकिचायेगा। साम्यवादी ही नहीं विश्व का प्रत्येक बुद्धि रखने वाला आदमी उस पर व्यक्ति का ही अधिकार स्वीकारेगा। मैं अपने पूज्य आर्य विद्वानों से अति नम्रता से क्षमा चाहूंगा कि मैं ऐसा लिख रहां हू। छोटा मुंह बड़ी बात वाली बात चरितार्थ कर रहा हूं। हमारे प्रचार से शिक्षत समाज पर यह ही असर पड़ा कि आर्यसमाज और उनकी मान्यता प्राप्त धर्म ग्रन्थ सम्पत्ति पर व्यक्ति का अधिकार मानते हैं। आर्यसमाज और वेद पहले मानव को यह बाता ता है कि सम्पत्ति, लक्ष्मी अर्थ है क्या? इसके प्रकाश में आते ही सम्पत्ति का सच्चा स्वरूप सब के सामने आ जाता। मगर ऐसा न हो सका और भूल से हमारा प्रचार अर्थ अनर्थ को एक कर बैठा। और इससे शिक्षित समुदाय में वेदों की प्रतिष्ठा गिरी और आर्यसमज के गौरव को भी धक्का लगा कि वह भी पूंजीपति और गोलमाल करने वालों द्वारा पाली हुई एक संस्था है जो उनका प्रचार करती है।

अब विचार यह करना है कि वेद जिसे सम्पत्ति कहता है भारत के दूसरे सम्प्रदाय-मजहब और मत वाले केवल उसी को सम्पत्ति मान कर उसी पर व्यक्ति का अधिकार मानने को तैयार हैं और अधर्म-अनैतिकता की कमाई को अनर्थ नाश का कारण मानने को तैयार हैं। और वेद की आज्ञानुसार उस अनर्थ को अपने से जुदा करने को तैयार है जो उनके नाश का कारण बनने वाला है और क्या भविष्य में वह स्वयं और अपने चेलों से धर्म द्वारा ही अर्थ के उपार्जन की व्यवस्था करने को तैयार हैं। शायद वे ऐसा करने में असमर्थ होंगे। यदि वे ऐसा करते हैं तो उनका तो अस्तित्व ही समाप्त होता है वह तो स्वयं ही अपने को दफनाने का प्रयास करते हैं। उनका तो ध्येय यही है जैसा कि ऋषि लिखते हैं। "रोटी खाइये शक्कर से और दुनिया ठगिये मक्कर से"। जब ऐसा है तो साम्यवाद से निबटने के लिये आर्यसमाज उन का सहयोग कैसे प्राप्त करे और लाभ उठा सके जैसा कि आदरणीय कादियाण जी का सुझाव है। समझ में आने वाली बात नहीं जान पड़ती। ●

ईसाई पादरी आर्यसमाज को शास्त्रार्थ का लिखित चैलेंज देकर भी सामने नहीं आये

होम एण्ड हेल्थ सेवायें पूना के प्रतिनिधि प्रो० प्रताप सिंह फादर जीन्द में तीनमास तक ईसाइयत का प्रचार करते रहे तथा पुस्तकें बांटते रहे। उन्होंने आर्यसमाज के विरुद्ध मोर्चा लगाया और शास्त्रार्थ के लिये लिखित रूप में अनुरोध किया। जिसको आर्यसमाज ने तुरन्त स्वीकार कर लिया। १-६-७३ शास्त्रार्थ के लिये निश्चित हुई। आर्य जगत् के प्रसिद्ध शास्त्रार्थ महारथी श्री पं. शान्ति प्रकाश जी आर्यसमाज की प्रार्थना पर उक्त तिथि पर जीन्द शहर पहुंच गये। शास्त्रार्थ की घोषणा नगर में कर दी गई, रात को आर्यसमाज मन्दिर जीन्द शहर का प्रांगण जनता से ठसा ठस भर गया। किसान कालेज के प्रधानाचार्य चौ० हुक्मसिंह को अध्यक्ष नियुक्त किया गया। समय शास्त्रार्थ का ८ बजे रात्रि रक्खा गया था। श्री नगर पादरी जी काफी प्रतीक्षा करने पर भी वहाँ नहीं पहुंचे। पं० समर सिंह जी वेदालङ्कार अध्यक्ष हरयाणा वेद प्रचार मण्डल आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का इसी विषय पर प्रभाव शाली भाषण हुआ। ईसाई पक्ष की अनुपस्थिति में आचार्य पं० सुदर्शन देव जी एम० ए० ने ईसाई मत के कुछ ऐसे प्रश्न प्रस्तुत किये कि जनता ने उनको ही ईसाई पादरी समझ लिया। तदनन्तर आदरणीय पं० शान्ति प्रकाश जी ने उक्त प्रश्नों के उत्तर बाइबल और तौरेत के ही प्रमाणों से दिये, तथा वेदमन्त्रों- बाइबल और कुरआन की आयतों की ऐसी झड़ी लगा दी कि जनता उनसे अत्यन्त प्रभावित हुई रात के १२ बजे तक धर्म का प्रचार चलता रहा। अध्यक्ष जी ने पूज्य पण्डित शान्तिप्रकाश जी की योग्यता की बड़ी प्रशंसा की और अन्य विद्वानों का धन्यवाद किया। पण्डाल वैदिक धर्म के जयनाद से गूंज उठा। पादरी को खुली चुनौती देकर शास्त्रार्थ के द्वार खुले रक्खे गये। शान्ति पाठ के पश्चात् कार्यवाही समाप्त हुई।

कृष्णदेव शास्त्री प्रचार मन्त्री आर्यसमाज
जीन्द शहर (हरयाणा)

दयानन्दोपदेशक विद्यालय लाहौर—२

(श्री पं० जगत्कुमार शास्त्री "साधुसोमतीर्थ" आर्योपदेशक
सी-२/७३, अशोक बिहार-२, देहली-५२)

१—दयानन्दोपदेशक विद्यालय में यह भी विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब गुरुदत्त भवन लाहौर ने कई वर्ष पूर्व से ही आर्ष साहित्य और विभिन्न मत-मतान्तरों के धार्मिक साहित्य के तुलनात्मक अध्ययन को बढ़ावा देने के लिये, आर्यसमाजी उपदेशकों, पुरोहितों, अध्यापकों और कार्यकर्त्ताओं आदि को बढ़ावा देने तथा उनकी योग्यता का मानदण्ड स्थापित करने के लिये, तथा किसी नियमित विद्यालय के अभाव में स्वतन्त्र रीति से ही आर्योपदेशक और पुरोहित आदि तैयार करने के धार्मिक परीक्षाओं का एक विशेष प्रबन्ध कर रखा था। इसके अनुसार पांच उपाधियां परीक्षा पास करने वालों को दी जाती थीं—(१) सिद्धान्त विशारद, (२) सिद्धान्त रत्न, (३) सिद्धान्त भूषण, (४) सिद्धान्त शिरोमणि, और (५) सिद्धान्त वाचस्पति। इनमें पीछे-पीछे की उपाधियां उत्तरोत्तर अधिक योग्यता सूचक हैं।

२—इन परीक्षाओं की व्यवस्था सभा द्वारा प्रति वर्ष की जाती थी। अधिक तो नहीं, तथापि कुछ न कुछ भाई प्रति वर्ष इन परीक्षाओं में बैठा करते थे। ऐसा याद आता है कि आर्यमर्यादा के यशस्वी सम्पादक पूज्य भाई श्री आचार्य जगदेवसिंह जी सिद्धान्ती ने भी उसी अनुक्रम में सिद्धान्त भूषण परीक्षा पास की थी। जब उपदेशक विद्यालय खुला, तब सभा ने इन परीक्षाओं और उपाधियों को भी विद्यालय के नियमों में शामिल कर दिया। पाठविधि में परिवर्तन हुए थे, परन्तु उपाधियां यथापूर्व ही रहीं थीं। और, वे अब विद्यालय की प्रामाणिक उपाधियां बन गई थीं। परीक्षाओं में शामिल होने की स्वतन्त्रता भी समाप्त हो गई थी; तथापि नियमित विद्यालयों में परीक्षा केन्द्र खुल सकते थे।

३—विद्यालय में नये स्नातकों का समावर्तन संस्कार और दीक्षान्त उत्सव प्रतिवर्ष वैशाखी के दिन सम्पन्न हुआ करता था। विद्यालय के नये सत्र का आरम्भ भी वैशाखी से ही होता था। उस दिन पूज्य आचार्य श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज अपने सिर पर पगड़ी बांध कर उत्सव में भाग लिया करते थे। साधारणतया तो वे नंगे सिर ही रहते थे। पगड़ी धारण करके उनका स्वरूप और व्यक्तित्व सर्वथा नया सा ही बन जाता था। वह अधिक अच्छा भी लगता था। पूज्य आचार्य जी का पुष्ट पहलवानी शरीर और ऊंचा कद विशेष प्रभावशाली था।

४-विद्यालय के विद्यार्थियों के लिये उपदेशकोचित विशेष वेशभूषा निर्धारित थी—धोती, कुरता, सिर पर पगड़ी, कधों पर पाण्डित्य-परिचायक गलपट वा चादर, सब सफेद। सर्दियों में कोट भी पहिना जा सकता था। विद्यालय से बाहिर किसी कार्य वश विद्यार्थियों के जाने पर वेष विषयक नियम का पालन पूर्ण दृढ़ता से होता था। जब रविवार के दिन हमारा विद्यार्थी मण्डल दूरवर्ती आर्यसमाज मन्दिर बच्छोवाली के साप्ताहिक सत्संग में जाता और वापिस आता था, तब सड़कों और बाजारों में शोभनीय समां बन्ध जाता था। विद्यालय के विद्यार्थी संस्कारों और ग्राम प्रचार प्रसंगों में भी जाया करते थे। हमारा विद्यालय रामू के बाग के मार्ग में था। इसलिये अन्त्येष्टि संस्कार कराने के बुलावे तो प्रायः आया ही करते थे। आर्यसमाज अनारकली के उत्साही सभासद-एक श्री डाक्टर गिरधारी लाल जी थे। वे चिता तैयार कराके उस पर लेट जाते थे और देखा करते थे कि चिता ठीक बनी वा नहीं। इसके बाद ही वे मृतक की देह को चिता पर रखने देते थे। उनकी जिन्दादिली से लोगों के आंसू भी थम जाते थे।

५—विद्यालय में शोध और साहित्य निर्माण कार्य भी उत्साह से आरम्भ हुआ था। वेदामृत का दूसरा संस्करण संशोधित रूप में तैयार करके प्रकाशा गया था। पुराणालोचन ग्रन्थमाला में चार पुस्तकें भी छपी थीं—(१) भविष्य पुराण की आलोचना, (२) शिव पुराण की आलोचना, (३) गरुड़पुराण की आलोचना, और (४) कूर्मपुराण की आलोचना।

६—विद्यालय के माननीय मुख्याध्यापक श्री स्वामी वेदानन्द जी अपने पद पर चार वर्ष तक ही रहे, फिर स्वेच्छा से ही त्याग पत्र देकर जिला गुजरात के डींग नामक नगर में चले गये और वहां स्वतन्त्रता से साहित्य रचना करने लगे। इसके कई वर्ष बाद सभा की प्रार्थना पर श्री स्वामी जी पुनरपि विद्यालय में लौट आये थे और आचार्य बनाये गये थे। भारत विभाजन के समय श्री स्वामी जी ही आचार्य थे।

७—श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी ने पूरे दस वर्ष तक विद्यालय के आचार्य पद को सुशोभित किया। फिर वे एक दिन चुपचाप अचानक, किसी को पूर्व सूचना के विना ही विद्यालय को छोड़ कर चले गये थे। बाद में कारण पूछने पर उन्होंने कहा था कि मैंने केवल दस वर्ष तक ही आचार्य पद पर रहने का निश्चय किया था। सभा के माननीय अधिकारियों ने प्रयत्न किये थे कि किसी प्रकार श्री स्वामी जी विद्यालय में फिर लौट आयें, परन्तु वे न माने। वे तो धुन के धनी, बात के पक्के, स्पृहा-रहित, बेलाग महापुरुष थे। अनुशासन का पाठ कोई उनके जीवन से सीखे। विद्यालय से अवकाश लेकर उन्होंने प्रसिद्ध "दयानन्द-मठ" दीनानगर, में स्थापित किया था। उनके प्रस्थान के समय उपदेशक विद्यालय सुदृढ़ और उन्नत स्थिति में था।

८—श्री स्वामी जी की विदाई के पश्चात् विद्यालय का आचार्य पद कुछ समय तक विद्यालय के मुख्याध्यापक श्री पं० नरदेव जी सिद्धान्त-शिरोमणि, काव्यतीर्थ, मुंशी फाजिल को सौंपा गया था। माननीय पण्डित जी का पहला नाम श्री नन्दलाल था। आर्यविद्यालयों और गुरुकुलों में यह प्रायः देखा जाता है कि पहले नाम बदल दिये जाते हैं। इसी प्रकार श्री पं० शिवदत्त जी ने भी वर्तमान नाम पुराने नाम बिहारीलाल को छोड़कर ही धारा था। सिद्धान्त शिरोमणि होने के बाद श्री शिवदत्त जी ने पंजाब विश्वविद्यालय की अरबी भाषा की सर्वोच्च परीक्षा—"मौलवी फाजिल" भी सन्मान सहित पास कर ली थी। और विद्यालय में अध्यापन कार्य भी स्वीकारा था। श्री पं० नरदेव जी ने थोड़ी आयु पाई, शीघ्र ही मौत के प्यारे हो गये। उन्होंने बड़ी आयु में विवाह किया था। अपने पीछे वे एक पुत्री और पत्नी छोड़ गये थे।

९-थोड़े दिन तक श्री प० लोकनाथ जी तर्क वाचस्पति भी विद्यालय के आचार्य हुए थे। फिर कई वर्ष तक श्री पं० प्रियव्रत जी वेदवाचस्पति आचार्य रहे। ये कई वर्ष से विद्यालय के वेदाध्यापक भी चले आते थे। इनके समय में भी विद्यालय की स्थिति सुदृढ़ रही थी। जब श्री पं० प्रियव्रत जी गुरुकुल कांगड़ी के आचार्य होकर चले गये, तब श्री स्वामी वेदानन्द जी आचार्य बनाये गये और भारत विभाजन तक आचार्य पद पर रहे।

१०—भारत के प्रसिद्ध दार्शनिक और अर्थशास्त्री श्री पं० ईश्वरचन्द्र शर्मा, जो आज कल बम्बई में रहते हैं, विद्यालय के दर्शनाध्यापक थे। इन्होंने सन् १९३१ ई० में विद्यालय को अपनाया था। तब ये विद्या प्राप्त करके काशी से नये-नये ही आये थे। माननीय पण्डित जी विद्यालय में अध्यापन आरम्भ करने के थोड़े समय बाद ही विवाह-सूत्र में आबद्ध हुए थे। लाहौर के पण्डित मण्डल में इनका विशेष स्थान था।

११—विद्यालय में व्याकरण का प्रशिक्षण अष्टाध्यायी, काशिका और वेदांग प्रकाश के अनुसार होता था। सन् १९३१ ई० में ही जब विद्यालय के एक अध्यापक श्री पं० सूर्यदेव जी सिद्धान्त शिरोमणि स्वतन्त्रता-संग्राम में भाग लेने के विचार से त्यागपत्र दे गये, तब व्याकरणाध्यापक के रूप में श्री पं० सच्चिदानन्द जी पाणिनीय पधारे। वे श्री पं० ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु के मित्र और यू० पी० के निवासी थे। विद्यालय में आने के बाद ही इन्होंने विवाह किया था। स्वास्थ्य दुर्बल था। शीघ्र ही उनका देहान्त हो गया था। उत्तम विद्वान् थे।

१२—एक पक्के मुसलमान, उदार हृदय और हंसमुख सज्जन श्री मौलवी हसन जी विद्यालय में अरबी भाषा और इस्लामी साहित्य के प्रशिक्षक थे। इस पद पर वे चार-पांच वर्ष तक रहे थे। रहने वाले सम्भल जिला मुरादाबाद के थे। श्री नरदेव जी, श्री शिवदत्त जी और श्री सूर्यदेव जी का उल्लेख हो चुका है। स्मार्तसाहित्य, पौराणिक ग्रन्थ सिद्धान्त और ऋषि दयानन्द के ग्रन्थ पूज्य आचार्य श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी पढ़ाया करते थे। यह स्थिति मेरे समय की है।

●

आर्य युवको ! धोखे से बचो ?

(श्री मांगेराम आर्य एम० ए० प्रधान, आर्य युवक सभा हरयाणा)

८ जून के दैनिक नवभारत टाइम्स में श्यामराव उर्फ अग्निवेश का असत्य से भरपूर लेख पढ़ने पर मुझे अपना मौन तोड़ना पड़ा। उनके लेख के अन्तिम शब्द जो दूसरों के लिये कहे गये हैं वे वास्तव में श्यामराव पर ही ठीक बैठते हैं ···"धर्म और समाज के सुधारकों का नकाब पहन कर हमारे संघटन को गुमराह कर रहे हैं।" श्यामराव उर्फ अग्निवेश कौन-कैसे, क्या, हैं, यह निम्न पंक्तियों से पाठकगण अनुमान लगाने की कृपा करें। श्यामराव उर्फ अग्निवेश से उनके सम्बन्ध में मेरे और अन्य साथियों के कुछ प्रश्न हैं क्या वे स्पष्टीकरण कर सकते हैं ?

(१) २६-५-६८ को झज्झर में श्यामराव ने सार्वदेशिक आर्य युवक परिषद् की वार्षिक बैठक में मुझे बताया कि "मांगेराम जी, मैं कलकत्ता में ईसाई स्कूल में अध्यापक रहा हूं"—फिर अपने आपको प्रोफेसर क्यों कहलवाते हो ?

(२) ३-८-६९ के आर्यमर्यादा में मैंने अपने लेख में आपके "वैदिक आर्यसमाज के सिद्धान्त के विरोधी आचरण की पोल खोलते हुए वैदिक मान्यताओं का प्रचार करने के लिये निवेदन किया था जिस पर मेरे विरुद्ध अनुशासन भंग का आरोप लगाया गया, किन्तु फिर श्री इन्द्रदेव उर्फ इन्द्रवेश जी ने २७-९-६९ को मुझे ही समाधान लिखने को कहा था, अतः अब मैं क्यों न आपके विरुद्ध आर्य सिद्धान्तों की हत्या के आरोप में कुछ अनुशासनात्मक कार्यवाही करूं ?

(३) १०-१-७० के मेरे १५ प्रश्नों का तथा १०-१-७३ के मेरे पत्र का उत्तर भी क्यों नही ? (४) १४-६-७० को सम्पादक आर्यमर्यादा द्वारा दिये गये मूल्यवान सुझावों पर ध्यान क्यों नहीं दिया ? (५) श्री रणवीरसिह आर्य के पत्र "संन्यास दीक्षा और ढोंग" का उत्तर कब मिलेगा ? (६) ११-११-७० को आपने श्री पं० समरसिंह वेदालंकार, अध्यक्ष हरयाणा वेद प्रचार मंडल के साथ जीद में अनुचित और अशिष्ट व्यवहार क्यों किया ? (७) ६-१२-७० को श्री सत्यजीत आर्य द्वारा आर्य सभा के ढोंग के सम्बन्ध में पूछे गये २१ प्रश्नों का उत्तर क्यों नहीं दिया ? (८) १३-१२-७० को पं० समरसिंह वेदालंकार ने आपको शास्त्रार्थ के लिये खुली चुनौती" दी थी, १६ प्रकार के आपके ढोंग लिखे थे क्या उत्तर है ? (९) २०-१२-७० को प० युधिष्ठिर जी मीमांसक (वेदवाणी)—"आपने भारतीय राजनीति का अध्ययन नहीं किया है"। (१०) ३-१-७१ श्री समरसिह जी वेदालकार–श्यामराव उर्फ अग्निवेश "आर्य तो है नहीं, भले ही कुछ और हों" ? (११) २४-१-७१ को श्री समरसिह वेदालंकार—आर्य सभा—"अग्निवेश एण्ड को०, प्राइवेट लि० कम्पनी" (१२) ११-१-७१ को श्री बिशनलाल गोयल, उपप्रधान उचाना मडी (जींद) ने "इन्कलाव जिन्दाबाद आर्य सभा मुर्दाबाद का नारा" क्यों लगाया ? (१३) ३०-१-७१ को श्री नरेन्द्र जी ने सम्पादकीय लेख में—"आर्य सभा तथा आर्यसमाज का सीधा कोई सम्बन्ध नही" ? (१४) ९-११-७१ को गुंजोटी (महाराष्ट्र) में मराठवाड़ आर्य सम्मेलन में पंडाल में आग लगवाने की धमकी आपने क्यों दी थी ? (१५) १२-९-७१ प्रो० राजेन्द्र जिज्ञासु जी—"इन तथाकथित साधुओं की नामधारी आर्य सभा" ? (१६) १०-१०-७१ श्री इन्द्रदेव उर्फ इन्द्रवेश प्रधान हरयाणा आर्य सभा—"हमने आज तक वाणी तथा लेखनी से यह कभी नहीं कहा कि आर्य सभा सार्वदेशिक अथवा प्रान्तीय आर्य प्रतिनिधि सभाओं द्वारा बनाई गई संस्था है ? (१७) "आर्य शब्द की पुट देकर बारूद छिपाने का ढोंग है" ?—नत्थूराम आर्य सेवक मेला निरीक्षक रामराय जिला जींद। (१८) १७-१०-७१ "श्री श्यामराव के वेदवाद में अवैदिकता का खुला प्रचार"—श्री सत्येन्द्र सिंह जी एम० ए० धामपुर। (१९) २४-१०-७१ "तथाकथित आर्य सभा ढोंगियों का दल—रेत की दीवार"—प्रो० ओमकुमार आर्य शोलापुर। (२०) ३१-१०-७१ मेरे पत्रों को उत्तरों सहित प्रकाशित क्यों नहीं कराया ? (२१) १४-११-७१—सम्पादक आर्यमर्यादा "आर्य सभा है या चोर मंडली है" मूर्ख अधर्मी को संन्यास का लेना व्यर्थ और धिक्कार देने के योग्य है"। (२२) २१-११-७१ श्री अशोक आर्य, जयपुर—"आर्य सभा की बैठक में कहा गया कि—आर्य समाजियों को प्रसन्न करने के लिये कोई मंत्र-शंत्र भी बोल दिया करो"। (२३) २१-११-७१—श्री जगत्कुमार शास्त्री, साधु सोमतीर्थ"—आर्य सभा के रंगीले संस्थापक·····अवांछनीय तत्व·····आर्य समाज के हितैषी नहीं हो सकते" ? (२४) २८-११-७१—प्रो० ओमप्रकाश आर्य—"श्यामराव उर्फ श्री अग्निवेश का तो सारा कार्यकलाप ही मनगढ़न्त किस्सों और निराधार विज्ञापनबाजी पर आधारित है"। (२५) २६-१२-७१—श्री पं० सत्यप्रिय जी शास्त्री उपाचार्य ब्राह्म महाविद्यालय हिसार—"आर्य समाज की बरबादी का प्रोग्राम—आर्य सभा के जीवनदानी"। "श्यामराव मार्क्स को संसार का सर्वोत्तम अर्थशास्त्री मानता है"। (२६) आपने श्री वीरेन्द्र जी की कल्पित मीटिंगों में जाकर पूज्य आचार्य भगवान् देव जी वर्तमान स्वामी ओमानन्द जी महाराज सांप की तरह मुंडी रगड़ने की घोषणा किस बिरते पर की है ?

(२७) "आर्य समाज की १९ वर्ष के इतिहास में श्यामराव एण्ड कं० जैसा कोई फाड नहीं हुआ"—प्रो० राजेन्द्र जिज्ञासु। (२८) २७-२-७२ श्री रणवीरसिंह शास्त्री ("देव दयानन्द आर्य समाज एवं वेद के नाम पर जनता को गुमराह करने के लिए कुछेक फालतू बेकार नवयुवकों का संगठन आर्य सभा। स्टेज लीडर बंगाली अग्निवेश 'श्यामराव'।

(२९) सतीशकुमार शर्मा बीकानेर (राजस्थान) आदि आर्यों ने आर्य सभा क्यों छोड़ दी ? (३०) १९७१ में लोकसभा तथा १९७२ के विधान सभा के चुनाव में एक भी आर्य सभाई नहीं जीता क्या कारण था ? (३१) १८-६-७२—प्रो० राजेन्द्र जिज्ञासु—"स्वर्गीया तथाकथित आर्यसभा—श्रद्धांजलि" (३२) २५-६-७२—सम्पादक आर्य मर्यादा "आर्य सभा के नींबू निचोड़ नेता" (३३) रामराय के मेले में, सार्वदेशिक सभा के अलवर सम्मेलन में, उत्तर प्रदेश आर्य प्रतिनिधि सभा की वार्षिक बैठक में, आर्यसमाज शताब्दी समारोह मेरठ नगर में आपकी कम्पनी ने कालिमा से भरपूर जो कार्य किया है उसे समस्त आर्य जगत् जान चुका है। अतः आर्य युवकों ने निश्चय कर लिया है कि श्यामराव उर्फ अग्निवेश जैसे अवैदिक तत्व से आर्यसमाज की पवित्रता को बचाए रखने के लिये यथोचित प्रबन्ध के लिये सर्वदा तैयार रहना है। सार्वदेशिक सभा तथा सभी आर्य प्रतिनिधि सभाओं से मेरी अपील है कि वे सम्बन्धित सभी आर्य समाजों, संगठनों को परिपत्र द्वारा सूचित कर दें कि इस अनार्य श्यामराव एण्ड कम्पनी से सम्पर्क रखें। आर्य युवको ! 'आरोह तमसो ज्योतिः' (अथर्ववेद) अन्धकार से निकल कर प्रकाश में आओ। धोखे से बचो।●

विशाल संस्कृत सभा

आर्यसमाज साबुन बाजार लुधियाना में विशाल सभा हुई। अनेक सज्जनों ने नवमीं कक्षा में संस्कृत के पठन पाठन की नवीन व्यवस्था को दोषपूर्ण और हानिकारक बताया। सर्व सम्मति से निश्चय हुआ कि पंजाब शिक्षा विभाग के माननीय अधिकारी नवम कक्षा से ही संस्कृत पढ़ाने की व्यवस्था कर जनता में व्याप्त और विक्षोभ को दूर करे। सभी संस्कृत प्रेमियों से प्रार्थना है कि उदासीनता को त्याग कर आत्म गौरव की रक्षार्थ आन्दोलन कर। शिक्षा मन्त्री को प्रस्ताव स्वीकार करके भेजें।

पंजाब के वित्त मन्त्री, तथा भारत सरकार की सेवा में भी भेजें। प्रस्ताव की एक एक प्रति इस पते पर भी भेजें।

रणवीर शास्त्री मन्त्री पंजाब संस्कृत परिषद्
लुधियाना

आर्यसमाज गुरुकुल विभाग फिरोजपुर शहर का वार्षिक निर्वाचन

प्रधान—डा० साधु चन्द जी। मन्त्री—श्री हवनलाल मेहता। पुस्तकाध्यक्ष—श्री मनोहर लाल। कोषाध्यक्ष—श्री जगदीशचन्द्र आर्य।

—हवन लाल मेहता

आर्य समाज संघटन के सर्वोपरि हित के लिए उच्छृंखलता व अनुशासन भंग को पूरी शक्ति से दबा दिया जाए।

(आचार्य वैद्य नाथ शास्त्री धर्माधिकारी सार्वदेशिक धर्मार्य सभा दिल्ली का महत्वपूर्ण वक्तव्य)

पिछले दिनों आर्यसमाज के विशिष्ट महोत्सवों में कतिपय उच्छृंखल सत्वों ने अनुशासन हीनता का परिचय देते हुए सम्मेलनों में गड़बड़ उत्पन्न करने की कुचेष्टाएँ की हैं। जिस से आर्यसमाज जैसे पवित्र गौरवशाली संघटन की गौरव गरिमा को हानि पहुंचने की संभावना है। किसी भी दृष्टि से किसी को भी यह अधिकार नहीं दिया जा सकता कि वह किसी सम्मेलन के आयोजकों की इच्छा के विपरीत सम्मेलन में विघ्न डालने का प्रयास करें। आर्यसमाजों, आर्यप्रतिनिधि सभाओं व सार्वदेशिक सभा के अधिकारियों का कर्तव्य है कि वे समय रहते सावधान हों।

यह एक स्पष्ट तथ्य है कि आर्य समाज एक विशुद्ध धार्मिक संघटन है। उसका अपना राजनैतिक दर्शन है परन्तु उस की अपनी कोई एक-देशीय राजनीति नहीं है। अब तक का यही इतिहास पंरपरा और नीति रीति रही है। इस संघटन को किसी देश विशेष की राजनीति में घसीटना या संघटन को राजनैतिकरूप देना आर्यसमाज के लिए अत्यन्त हानिकर है।

यही कारण है कि कई बार आर्यसमाज के सामने राजनीति के प्रश्न उठाए गए और चाहा गया कि इसे राजनैतिक संघटन बना कर भारत की राजनीति में भी भाग लिया जाए। पर आर्यसमाज के नेताओं ने इस विचार से असहमति ही प्रगट की।

आर्यसमाज के सर्वोच्च संघटन सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा दयानन्द भवन दिल्ली ने भी इस सिद्धान्त का पूर्ण पालन किया और अब भी कर रही है।

यह बात हमें आंखों से ओझल नहीं करनी चाहिए कि आर्यसमाज-जिन उदात्त वैदिक सिद्धान्तों का प्रसारक है वे सार्वभौम हैं और किसी देश विशेष, काल विशेष व समुदाय विशेष के लिए नहीं हैं।

यदि आर्यसमाज को राजनैतिक रूप दिया जावे, जैसा कि इस समाज के सिद्धान्त से अपरिचित कुछ व्यक्ति सोचते हैं तो आर्य समाज का विश्व व्यापी रूप समाप्त हो जाएगा और जिस देश की राजनीति को आर्यसमाज अपनी राजनीति मानेगा उस देश के एक बहुत बड़े वर्ग, राजकीय कर्मचारियों के सहयोग से भी इसे वंचित होना पड़ेगा।

धर्म के विषय में जो अधिकार राजनीति के उपासकों को प्राप्त हैं, वही सरकारी कर्मचारियों को भी प्राप्त हैं। विश्व की संपूर्ण मानवता को भी वह प्राप्त हैं। ऐसे पवित्र धर्म को एक राजनैतिक पिटारी में बन्द करना सर्वथा अनुपयोगी, अनीति पूर्ण व धर्म और मानवता के साथ विद्रोह है।

दुर्भाग्य वश कुछ मन चले नवयुवकों ने कम्यूनिज्म की विचारधारा से दीक्षित होकर आर्यसमाज और महर्षि दयानन्द के नाम पर लोगों को बहकाने का कार्य आरंभ कर रखा है। और आर्यसभा के नाम से एक संघटन भी खड़ा किया है। यह कहना अनुचित न होगा कि इस आर्यसभा का न तो आर्यसमाज के सिद्धान्तों व ऋषि दयानन्द के आदर्शों से कोई संबंध है, न इसका आर्यसमाज के किसी संघटन से ही कोई लगाव है। इस के कर्णधार कहे जाने वाले समय समय पर जो विचार प्रगट करते रहे हैं उनसे ज्ञात होता है कि वे ऋषि दयानन्द को कम्यूनिस्ट समझते हैं। और उनके मंतव्यों की मनमानी उलटी व्याख्या करके लोगों को धोखे में डालते हैं।

सर्वत्र आर्यसमाज स्थापना शताब्दी के लिए तैयारियां की जा रही हैं। परन्तु आर्यसभा के लोग इस पवित्र अवसर पर उच्छृंखल अनैतिक व्यवहार द्वारा आयोजनों के मंच को जबर्दस्ती अपना मंच मानने का प्रयत्न करते रहे हैं। आर्यसभा के कर्णधारों ने अलवर, गुंजोटी, महाराष्ट्र गुरुकुल कांगड़ी में हुए उत्तरप्रदेश के वार्षिक अधिवेशन, मेरठ के महोत्सवों पर समारोहों में विघ्न डालने का जो कुत्सित प्रयास किया है वह प्रत्येक स्तर पर निन्दनीय है, और आर्यसमाज के लिए, इनकी भविष्य नीति का प्रतीक है। ये लोग पंडाल जला देंगे……झगड़े करा देंगे……हुल्लड़ मचा देंगे…… मारपीट करेंगे……ऐसी ऐसी धमकी देकर आर्यसमाज के समारोहों के मंच को हाथ में लेने की योजनाएं बनाते हैं।

इस उद्दडता को आर्यसमाजें आर्यप्रतिनिधि सभाएं, सार्वदेशिक आर्यप्रतिनिधि सभा, आर्य जनता समय रहते पूर्ण शक्ति से कुचल दें। तभी ऋषि दयानन्द के द्वारा स्थापित महान् आर्य समाज की वेदी को सुरक्षा हो सकेगी।

पुस्तक समालोचना

नाम पुस्तक-लवण। लेखक स्वामी ओमानन्द सरस्वती। प्रकाशक-हरयाणा साहित्य संस्थान गुरुकुल झज्जर (रोहतक) पृष्ठ संख्या ६८, साइज २०×३०/१६, मूल्य ५० पैसे। पुस्तक मिलने का पता-प्रकाशक का ही है।

आलोचना—लेखक महानुभाव आयुर्वेद शास्त्र के प्रसिद्ध ज्ञानी और अनुभवी लोकोपकारक वैद्य हैं। इस पुस्तक में लक्षण (घरेलु औषध) के सम्बन्ध में ४३ विषयों पर प्रकाश डाला गया है। पुस्तक प्रत्येक गृहस्थी को रखनी आवश्यक है। खान पान के सम्बन्ध में आवश्यक जानकारी इसमें दी गई है। घरेलु औषध ग्रन्थ माला का यह दूसरा पुष्प है। पहिले में "हल्दी" पदार्थ पर लिखा गया था। इन घरेलु काम में आने वाले पदार्थों से जहाँ अन्न के पकाने और उत्तम बनाने में सहायता मिलती है वहां यह औषध का काम भी देते हैं। मात्रा में इनका प्रयोग करने में यह औषध का काम देते हैं। पूज्य लेखक ने गृहस्थियों के प्रतिदिन में काम आने वाले पदार्थों पर अपने अनुभव सिद्ध प्रयोग लिख कर जनता का बड़ा कल्याण किया है। प्रत्येक घर में यह पुस्तक रखना अनिवार्य है। कागज छपाई आदि ठीक है। मूल्य सर्वथा ठीक रखा गया है।

—जगदेवसिंह सिद्धान्ती शास्त्री

असन्तोष प्रकट

पंजाब शिक्षा विभाग ने नौवीं कक्षा के पाठ्य क्रम में संस्कृत के विषय को शामिल नहीं किया। इस पर आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि उप सभा पंजाब की यह बैठक असन्तोष प्रकट करती है। आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि उप सभा पंजाब सरकार से अनुरोध करती है कि वह नौवीं कक्षा के नये पाठ्य क्रम में साईंस के विषय में विकल्प रूप में संस्कृत को स्थान दें ताकि जो बच्चे आर्ट्स पढ़ना चाहते हैं वे संस्कृत पढ़ें और जो साईंस पढ़ना चाहते हैं साईंस पढ़ें।

आर्यसमाज माडल टाऊन जालन्धर शहर

शोक प्रकाशन

दिनांक १४-६-७३ को ब्राह्म मुहूर्त ४ बजे प्रातः श्री पं० सुदर्शनदेव जी आचार्य के पिता श्री महाशय शिवदत्त जी वानप्रस्थी का स्वर्गवास हो गया। श्री वानप्रस्थी जी महर्षि दयानन्द के अनन्य भक्त, कट्टर आर्य-समाजी, वेद-धर्म के प्रचारक, दैनिक अग्निहोत्री थे। धूम्रपान, दहेज आदि कुरीतियों के कट्टर विरोधी थे। अतिथि सेवा बड़ी श्रद्धा से करते थे। सन् १९६२ से वीर सुमेर सिंह स्मारक आर्यसमाज नयाबास (रोहतक) में रहकर वेद-प्रचार करते रहे। आस पास के आर्य समाजों के उत्सवों में पहुंचते थे। खड़ताल पर भजन बोलते समय मस्ती में झूम जाते थे। आर्यसमाज के एक अथक प्रचारक के देहान्त से एक अपूर्णीय स्थान रिक्त हो गया। हम उनके सुपुत्र पं० सुदर्शन देव जी आचार्य एम० ए०, उनके परिवार के साथ सहानुभूति प्रकाशित करते हैं। परमात्मा दिवंगत आत्मा को उत्तमगति देवे।

—जगदेवसिंह सिद्धान्ती शास्त्री

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब द्वारा प्रकाशित और प्रचारित वैदिक साहित्य

१. बलिदान जयन्ती स्मृति ग्रन्थ—आर्य बलिदानो की गाथा मूल्य ४-५०
२ सोम सरोवर-वेदमन्त्रो की व्याख्या —पं० चमूपति एम. ए. ३-००
३. जीवन ज्योति-वेदमन्त्रो की व्याख्या " " ३-००
४. नीहारिकावाद और उपनिषदे " " ०-२५
५. Principles of Arya samaj " " १-५०
६. Glimpses of swami Daya Nand " " १-००
७. पंजाब तथा हरयाणा का आय समाज प्रि० रामचन्द्र जावेद २-००
८. वैदिक सत्सग पद्धति सन्ध्या हवनमन्त्र अर्थ रहित विधि १-००
९. वेदादिर्भाव —आर्यमर्यादा का विशेषाक ०-६५
१०. यजुर्वेद अ० ३२ का स्वाध्याय " " " ०-५०
११. वेद स्वरूप निर्णय —पं० मदनमोहन विद्यासागर १-००
१२. व्यवहारभानु —महर्षि स्वामी दयानन्द ०-५०
१३. स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश— " " ०-४०
१४. Social Reconstruction By Budha & Swami Daya Nand By. Pt. Ganga Prasad Upadhya M. A. २-००
१५. Subject Matter of the Vedas By S. Bhoomanad १-००
१६. Enchanted Island By Swami Staya Parkashanand १-००
१७. Cow Protection By Swami Daya Nand ०-१५
१८. वेद में पुनरुक्ति दोष नही है आर्यमर्यादा का विशेषाक २-००
१९. मूर्त्तिपूजा निषेध " " ०-५०
२०. धर्मवीर पं० लेखराम जीवन —स्वामी श्रद्धानन्द १-२५
२१. कुलियात आर्य मुसाफिर प्रथम भाग—पं० लेखराम की पुस्तकों का संग्रह ६-००
२२. " " दूसरा भाग " " ८-००
२३. मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र —कु० सुशीला आर्या एम. ए. ०-२५
२४. योगीराज कृष्ण " " " ०-१५
२५. गोकरुणा निधि —स्वामी दयानन्द सरस्वती ०-२०
२६. आर्यसमाज के नियम उपनियम ०-१०
२७. आर्य नेताओं के वचनामृत —साईदास भण्डारी ०-१२
२८. कायाकल्प —स्वामी समर्पणानन्द सरस्वती १-५०
२९. वैदिक धर्म की विशेषताये —पं० हरिदेव सिद्धान्त भूषण ०-१५
३० स्वतन्त्रानन्द लेखमाला —स्वा० स्वतन्त्रानन्द जी की जीवनी तथा उनके व्याख्यान १-२५
३१. आत्मानन्द लेखमाला—स्वामी आत्मानन्द सरस्वतीकी जीवनी १-२५
३२. आर्यसमाज के सदस्यता फार्म —सैकड़ा १-५०
३३. महान् दयानन्द —पं० शिवदयालु आर्य ०-७५
३४. दयानन्द चरित्र —पं० देवेन्द्रनाथ १-५०
३५. वैदिक सिद्धान्त —पं० चमूपति एम० ए० १-००
३६. मुक्ति के साधन —पं० मदनमोहन विद्यासागर १-००
३७. महापुरुषो के सग —श्री सत्यव्रत १-५०
३८. सुखी जीवन —श्री सत्यव्रत २-००
३९. एक मनस्वी जीवन —पं० मनसाराम वैदिक तोप १-५०
४०. छात्रोपयोगी विचारमाला —जगदेवसिंह सिद्धान्ती १-५०
४१. स्त्री शिक्षा —पं० लेखराम आर्य मुसाफिर ०-६०
४२. विदेशो मे एक साल —स्वामी स्वतन्त्रानन्द २-२५
४३. वेद विमर्श —पं० भगवद्दत्त वेदालंकार २-००
४४. वेद विमर्श —पं० वेदव्रत शास्त्री २-००
४५. आसनो के व्यायाम " " " १-००
४६. महर्षि जीवन गाथा —स्वामी वेदानन्द वेदवागीश २-२५
४७. मास मनुष्य का भोजन नही—स्वामी ओमानन्द सरस्वती १-००
४८. वीर भूमि हरयाणा " " " ४-००
४९. चोटी क्यों रखें —स्वामी ओमानन्द सरस्वती ०-५०
५०. हमारा फाजिल्का —श्री योगेन्द्रपाल १-५०
५१. सत्संग स्वाध्याय —स्वामी ओमानन्द सरस्वती ०-५०
५२. आसन मात्रा " " " ०-७५
५३. भोजन " " " ०-७०
५४. ऋषि रहस्य —पं० भगवद्दत्त वेदालंकार २-००
५५. महर्षि का विष अमर बलिदान—राजेन्द्र जिज्ञासु ०-६५
५६. मेरा धर्म —आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति ७-००
५७. वेद का राष्ट्रिय गीत " " " ५-००
५८. ईशोपनिषद्भाष्य —इन्द्र विद्या वाचस्पति २-००
५९. पं० गुरुदत्त विद्यार्थी जीवन —डा० रामप्रकाश १-३०
६०. वैदिक पथ —पं० हरिदेव सिद्धान्त भूषण २-००
६१. वैदिक प्रवचन —पं० जगत्कुमार शास्त्री २-२५
६२. ज्ञानदीप —पं० हरिदेव सिद्धान्त भूषण २-००
६२. आर्यसमाज का सैद्धान्तिक परिचय—स्व० अनुभवानन्द ०-५५
६३. The Vedas ०-५०
६४. The Philosophy of Vedas —Swami Satya Parkash ०-५०
६६. ईश्वर दर्शन पं ०जगत्कुमार शास्त्री १-५०
६७. श्वेताश्वरोपनिषद् " " ४-००
६८. ब्रह्मचर्य प्रदीप " " ४-००
६९. भगवत प्राप्ति क्यों और कैसे स्वा० सत्यानन्द ०-६०
७०. आर्य सामाजिक धर्म " " ०-७५
७१. बोध प्रसाद —स्वामी श्रद्धानन्द ०-२५
७२. ऋषि दर्शन —पं० चमूपति एम. ए. ००-२५
७३. ऋषि का चमत्कार " " " ००-१२
७४. वैदिक जीवन दर्शन " " " ००-२०
७५. वैदिक तत्व विचार " " " ००-५०
७६. देव यज्ञ रहस्य " " " ००-३१
७७. स्वतन्त्रानन्द संस्मरणांक १-५०

सभी पुस्तकों के प्राप्ति स्थान

१. आर्यप्रतिनिधि सभा पंजाब, गुरुदत्त भवन, जालन्धर(४२५०)टेलीफोन
२. " " " दयानन्द मठ रोहतक(हरयाणा) " (५७४)

आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब के लिए जगदेवसिह सिद्धान्ती शास्त्री द्वारा सैनी प्रिंटर्स पहाड़ी धीरज, देहली में मुद्रित और १५ हनुमान् रोड, नई दिल्ली—१ से प्रकाशित

१४ श्रावण सं० २०३० वि०, दयानन्दाब्द १४६, तदनुसार २९ जौलाई १९७३ रविवार
सृष्टि सं०-१९६०८५३०७३
वर्ष ५ वार्षिक शुल्क स्वदेश में १०) रुपये
अंक ३५ „ „ विदेश में २०) रुपये
एक प्रति का मूल्य ००-२० पैसे
सम्पादक - जगदेवसिंह सिद्धान्ती शास्त्री, पूर्वलोकसभा सदस्य (फोन ५१२१६३)

वेदमन्त्रार्थ-प्रवचन

पुनस्तमेव विषयमाह ॥
फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

शतं मेषान् वृक्ये चक्षदानमृज्राश्वं तं पितान्धं चकार।
तस्मा अक्षी नासत्या विचक्ष आधत्तं दस्रा भिषजावनर्वन् ॥

—ऋ० १.११६.१६

पदार्थः—(शतम्) शतसंख्याकान् (मेषान्) स्पर्द्धकान् (वृक्ये) वृकस्य स्तेनस्य स्त्रियै स्तेन्यै (चक्षदानम्) व्यक्तोपदेशकम् (ऋज्राश्वम्) सरलतुरङ्गम् (तम्) (पिता) प्रजापालको राजा (अन्धम्) चक्षुर्हीनम् (चकार) कुर्यात् (तस्मै) (अक्षी) चक्षुषी (नासत्या) सत्येन सह वर्त्तमानौ (विचक्षे) विविधदर्शनाय (आ) (अधत्तम्) पुष्येतम् (दस्रा) रोगोपक्षयितारौ (भिषजौ) सद्वैद्यौ (अनर्वन्) अनर्वणेऽविद्यमानज्ञानाय ॥

अन्वयः—यो वृक्ये शत मेषान् दद्यात् ईदृगुपदिशेद् यः स्तेनेषु ऋज्राश्व स्यात्त चक्षदानमृज्राश्व पितान्धमिव दुःखारूढ चकार। हे नासत्या दस्रा भिषजाविव वर्त्तमानावश्विनौ धर्मराजसभाधीशौ युवां योऽविद्यावान् कुपथगामी जारो रोगी वर्त्तते तस्मा अनर्वन्नविदुषे विचक्षे अक्षी व्यवहार-परमार्थ विद्यारूपे अक्षिणी आऽधत्तं समन्तात्पोषयतम् ॥

भावार्थः—ससभो राजा हिंसकान् चोरान् लंपटान् जनान् कारागृहेऽन्धानिव कृत्वोपदेशेन व्यवहारशिक्षया च धार्मिकान् संपाद्य धर्मविद्याप्रियान् पथ्योषधिदानेनारोग्यांश्च कुर्यात् ॥

भाषार्थः—जो (वृक्ये) वृकी अर्थात् चोर की स्त्री के लिये (शतम्) सैकडो (मेषान्) ईर्ष्या करने वालों को देवे वा जो ऐसा उपदेश करे और जो चारो मे सूधे घोड़ो वाला हो (तम्) उस (चक्षदानम्) स्पष्ट उपदेश करने वा (ऋज्राश्वम्) सूधे घोड़े वाले को (पिता) प्रजाजनो की पालना करने हारा राजा जैसे (अन्धम्) अन्धा दुःखी होवे वैसा दुःखी (चकार) करे। हे (नासत्या) सत्य के साथ वर्त्ताव रखने और (दस्रा) रोगों का विनाश करने वाले धर्मराज सभापति (भिषजौ) वैद्यजनों के तुल्य वर्त्ताव रखने वाले तुम दोनो जो अज्ञानी कुमार्ग से चलने वाला व्यभिचारी और रोगी है (तस्मै) उस (अनर्वन्) अज्ञानी के लिये (विचक्षे) अनेक विध देखने को (अक्षी) व्यवहार और परमार्थ विद्यारूपी आखो को (आ, अधत्तम्) अच्छे प्रकार पढा करो ॥

भावार्थः—सभा के सहित राजा हिसा करने वाले चोर कपटी छली मनुष्यो को कारागार में अन्धो के समान रखकर और अपने उपदेश अर्थात् आज्ञारूप शिक्षा और व्यवहार की शिक्षा से धर्मात्मा का धर्म और विद्या में प्रीति रखने वालो को उनकी प्रकृति के अनुकूल औषधि देकर उनको आरोग्य करे ॥

—(ऋषिदयानन्दभाष्य)●

नियोग विषयः

(इमा०) ईश्वर मनुष्यों को आज्ञा देता है कि हे इन्द्र! पते! ऐश्वर्ययुक्त! तू इस स्त्री को वीर्य दान दे के सुपुत्र और सौभाग्ययुक्त कर। हे वीर्यप्रद। (दशास्या पुत्रानाधेहि) पुरुष के प्रति वेद की यह आज्ञा है कि इस विवाहित वा नियोजित स्त्री में दश सन्तान पर्यन्त उत्पन्न कर अधिक नही। (पतिमेकादश कृधि०) तथा हे स्त्रि! तू नियोग में ग्यारह पति तक कर (अर्थात् एक तो उनमें प्रथम विवाहित और दश पर्यन्त नियोग के पति कर अधिक नहीं। इसकी यह व्यवस्था है कि विवाहित पति के मरने वा रोगी होने से दूसरे पुरुष वा स्त्री के साथ सन्तानो के अभाव में नियोग करे। तथा दूसरे को भी मरण वा रोगी होने के अनन्तर तीसरे के साथ कर ले। इसी प्रकार दशवे तक करने की आज्ञा है। परन्तु एक काल में एक ही वीर्य दाता पति रहे, दूसरा नहीं। इसी प्रकार पुरुष के लिये भी विवाहित स्त्री के मर जाने पर विधवा के साथ नियोग करने की आज्ञा है और जब वह भी रोगी हो वा मर जाय तो सन्तानोत्पत्ति के लिये दश स्त्री पर्य्यन्त नियोग कर लेवे ॥४॥ (ऋ० अ० ८। अ० ३) वर्ग २०। म० ४। अब पतियों की सज्ञा करते हैं (सोम प्रथमो विविदे) उनमें से जो विवाहित पति होता है उसकी सोम सज्ञा है क्योकि वह सुकुमार होने से मृदु आदि गुणयुक्त होता है। (गन्धर्वो विविद उत्तरः) दूसरा पति जो नियोग से होता है सो गन्धर्व सज्ञक अर्थात् भोग में अभिज्ञ होता है। (तृतीयो अग्निष्टे पतिः०) तीसरा पति जो नियोग से होता है वह अग्नि सज्ञक अर्थात् तेजस्वी अधिक उमर वाला होता है। (तुरीयस्ते मध्यजाः) और चौथे से लेके दशम पर्य्यन्त जो नियुक्त पति होते है वे सब मनुष्य सज्ञक कहाते है क्योकि वे मध्यम होते है ॥ (ऋ० ८। अ० ३। व० २०। म० ५॥ (अदेवृघ्न्य पतिघ्नी०) हे विधवा स्त्रि! तू देवर और विवाहित पति को सुख देने वाली हो। किन्तु उनका अप्रिय किसी पुरुष से मत कर और वे भी तेरा अप्रिय न करे। (एधि शिवा०) इसी प्रकार मङ्गल कार्य्यो को करके सदा सुख बढाते रहो। (पशुभ्यः सुयमा सुवर्चाः) घर के सब पशु आदि प्राणियों की रक्षा करके, जितेन्द्रिय होके, धर्मयुक्त श्रेष्ठ कार्य्यो को करती रहो। तथा सब प्रकार के विद्यारूप उत्तम तेज को बढाती जा। (प्रजावतो वीरसूः) तू श्रेष्ठ प्रजा युक्त हो। बडे बडे वीर पुरुषो को उत्पन्न कर। (देवृकामा) जो तू देवर की कामना करने वाली है, तो जब तेरा विवाहित पति न रहे वा रोगी तथा नपुसक हो जाय तब दूसरे पुरुष से नियोग करके सन्तानोत्पत्ति कर (स्योनमग्नि गार्हपत्य सपर्य्य) और तू इस अग्निहोत्र घर के कार्यों को सुखरूप होके सदा प्रीति से सेवन कर ॥६॥ अथर्व० का० १४। अनु० २। म० १८॥ इसी प्रकार से विधवा और पुरुष तुम दोनों आपत्काल में धर्म करके सन्तानोत्पत्ति करो और उत्तम उत्तम व्यवहारो को सिद्ध करते जाओ। गर्भहत्या वा व्यभिचार कभी मत करो किन्तु नियोग ही कर लो। यही व्यवस्था सबसे उत्तम है ॥

इति नियोग विषयः सक्षेपतः। —(ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका)●

सत्यार्थप्रकाश—उत्तरार्धः (अनुभूमिका)

इनमें से जो पुराणादि ग्रन्थों से शाखा शाखान्तर रूप मत आर्य्यावर्त्त देश में चले है उनका सक्षेप से गुणदोष, इस ११ वें समुल्लास में दिखाया जाता है इस मेरे कर्म से यदि उपकार न माने तो विरोध भी न करे क्योंकि मेरा तात्पर्य्य किसी की हानि वा विरोध करने में नही किन्तु सत्यासत्य का निर्णय करने कराने का है। इसी प्रकार सब मनुष्यो को न्याय दृष्टि से वर्त्तना अति उचित है मनुष्य जन्म का होना सत्यासत्य के निर्णय करने कराने के लिये है न कि वादविवाद विरोध करने कराने के लिये, इसी मतमतान्तर के विरोध से विवाद से जगत् में जो जो अनिष्ट

(शेष पहले कालम के नीचे)

फल हुए, होते हैं और होंगे उनको पक्षपात रहित विद्वज्जन जान सकते हैं जब तक इस मनुष्य जाति में परस्पर मिथ्या मतमतान्तर का विरोध वाद न छूटेगा तब तक अन्योऽन्य को आनन्द न होगा यदि हम सब मनुष्य और विशेष विद्वज्जन ईर्ष्या द्वेष छोड़ सत्यासत्य का निर्णय करके सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग करना कराना चाहें तो हमारे लिये यह बात असाध्य नहीं हैं। यह निश्चय है कि इन विद्वानों के विरोध ही ने सबको विरोध जाल में फंसा रक्खा है यदि ये लोग अपने प्रयोजन में न फंसकर सबके प्रयोजन को सिद्ध करना चाहें तो अभी ऐक्यमत हो जायें। इसके होने की युक्ति इस ग्रन्थ की पूर्ति में लिखेंगे। सर्वशक्तिमान् परमात्मा एकमत में प्रवृत्त होने का उत्साह सब मनुष्यों के आत्माओं में प्रकाशित करे ॥

अलमतिविस्तरेण विपश्चिद्वरशिरोमणिषु ॥ —(ऋषिदयानन्द)●

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब द्वारा प्रकाशित और प्रचारित वैदिक साहित्य

१. बलिदान जयन्ती स्मृति ग्रन्थ—आर्य बलिदानों की गाथा मूल्य ४-५०
२. सोम सरोवर-वेदमन्त्रों की व्याख्या —पं० चमूपति एम. ए. ३-००
३. जीवन ज्योति-वेदमन्त्रों की व्याख्या „ „ ३-००
४. नीहारिकावाद और उपनिषदे „ „ ०-२५
५. Principles of Arya samaj „ „ १-५०
६. Glimpses of swami Daya Nand „ „ १-००
७. पंजाब तथा हरयाणा का आय समाज प्रि० रामचन्द्र जावेद २-००
८. वैदिक सत्संग पद्धति सन्ध्या हवनमन्त्र अर्थ रहित विधि १-००
९. वेदादिर्भाव —आर्यमर्यादा का विशेषांक ०-६५
१०. यजुर्वेद अ० ३२ का स्वाध्याय „ „ „ ०-५०
११. वेद स्वरूप निर्णय —पं० मदनमोहन विद्यासागर १-००
१२. व्यवहारभानु —महर्षि स्वामी दयानन्द ०-५०
१३. स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश— „ „ ०-४०
१४. Social Reconstruction By Budha & Swami Daya Nand By. Pt. Ganga Prasad Upadhya M. A. २-००
१५. Subject Matter of the Vedas By S. Bhoomanad १-००
१६. Enchanted Island By Swami Staya Parkashanand १-००
१७. Cow Protection By Swami Daya Nand ०-१५
१८. वेद में पुनरुक्ति दोष नहीं है आर्यमर्यादा का विशेषांक २-००
१९. मूर्त्तिपूजा निषेध „ „ ०-५०
२०. धर्मवीर पं० लेखराम जीवन —स्वामी श्रद्धानन्द १-२५
२१. कुलियात आर्य मुसाफिर प्रथम भाग—पं० लेखराम की पुस्तकों का संग्रह ६-००
२२. „ „ दूसरा भाग „ „ ८-००
२३. मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र —कु० सुशीला आर्या एम. ए. ०-२५
२४. योगीराज कृष्ण „ „ „ ०-१५
२५. गोकरुणा निधि —स्वामी दयानन्द सरस्वती ०-२०
२६. आर्यसमाज के नियम उपनियम ०-१०
२७. आर्य नेताओं के वचनामृत —साईदास भण्डारी ०-१२
२८. कायाकल्प —स्वामी समर्पणानन्द सरस्वती १-५०
२९. वैदिक धर्म की विशेषतायें —पं० हरिदेव सिद्धान्त भूषण ०-१५
३०. स्वतन्त्रानन्द लेखमाला —स्वा० स्वतन्त्रानन्द जी की जीवनी तथा उनके व्याख्यान १-२५
३१. आत्मानन्द लेखमाला—स्वामी आत्मानन्द सरस्वतीकी जीवनी १-२५
३२. आर्यसमाज के सदस्यता फार्म —सैकड़ा १-५०
३३. महान् दयानन्द —पं० शिवदयालु आर्य ०-७५
३४. दयानन्द चरित्र —पं० देवेन्द्रनाथ १-५०
३५. वैदिक सिद्धान्त —पं० चमूपति एम० ए० १-००
३६. मुक्ति के साधन —पं० मदनमोहन विद्यासागर १-००
३७. महापुरुषों के सग —श्री सत्यव्रत १-५०
३८. सुखी जीवन —श्री सत्यव्रत २-००
३९. एक मनस्वी जीवन —पं० मनसाराम वैदिक तोप १-५०
४०. छात्रोपयोगी विचारमाला —जगदेवसिंह सिद्धान्ती १-५०
४१. स्त्री शिक्षा —पं० लेखराम आर्य मुसाफिर ०-६०
४२. विदेशों में एक साल —स्वामी स्वतन्त्रानन्द २-२५
४३. वेद विमर्श —पं० भगवद्दत्त वेदालंकार २-००
४४. वेद विमर्श —पं० वेदव्रत शास्त्री २-००
४५. आसनों के व्यायाम „ „ „ १-००
४६. महर्षि जीवन गाथा —स्वामी वेदानन्द वेदवागीश २-२५
४७. मास मनुष्य का भोजन नही—स्वामी ओमानन्द सरस्वती १-००
४८. वीर भूमि हरयाणा „ „ „ ४-००
४९. चोटी क्यों रखें —स्वामी ओमानन्द सरस्वती ०-५०
५०. हमारा फाजिल्का —श्री योगेन्द्रपाल १-५०
५१. सत्संग स्वाध्याय —स्वामी ओमानन्द सरस्वती ०-५०
५२. जापान यात्रा „ „ „ ०-७५
५३. भोजन „ „ „ ०-७०
५४. ऋषि रहस्य —पं० भगवद्दत्त वेदालंकार २-००
५५. महर्षि का विष अमर बलिदान—राजेन्द्र जिज्ञासु ०-६५
५६. मेरा धर्म —आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति ७-००
५७. वेद का राष्ट्रिय गीत „ „ „ ५-००
५८. ईशोपनिषद्भाष्य —इन्द्र विद्या वाचस्पति २-००
५९. पं० गुरुदत्त विद्यार्थी जीवन —डा० रामप्रकाश १-३०
६०. वैदिक पथ —पं० हरिदेव सिद्धान्त भूषण २-००
६१. वैदिक प्रवचन —पं० जगत्कुमार शास्त्री २-२५
६२. ज्ञानदीप —पं० हरिदेव सिद्धान्त भूषण २-००
६२. आर्यसमाज का सैद्धान्तिक परिचय—स्व० अनुभवानन्द ०-५५
६३. The Vedas ०-५०
६४. The Philosophy of Vedas —Swami Satya Parkash ०-५०
६६. ईश्वर दर्शन पं० जगत्कुमार शास्त्री १-५०
६७. श्वेताश्वरोपनिषद् „ „ ४-००
६८. ब्रह्मचर्य प्रदीप „ „ ४-००
६९. भगवत प्राप्ति क्यों और कैसे स्वा० सत्यानन्द ०-६०
७०. आर्य सामाजिक धर्म „ „ ०-७५
७१. बोध प्रसाद —स्वामी श्रद्धानन्द ०-२५
७२. ऋषि दर्शन —पं० चमूपति एम. ए. ००-२५
७३. ऋषि का चमत्कार „ „ „ ००-१२
७४. वैदिक जीवन दर्शन „ „ „ ००-२०
७५. वैदिक तत्व विचार „ „ „ ००-५०
७६. देव यज्ञ रहस्य „ „ „ ००-३५
७७. स्वतन्त्रानन्द संस्मरणांक १-५०

सभी पुस्तकों के प्राप्ति स्थान

१. आर्यप्रतिनिधि सभा पंजाब, गुरुदत्त भवन, जालन्धर (४२५०) टेलीफोन
२. „ „ „ दयानन्द मठ रोहतक (हरयाणा) „ (५७४)

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के लिए जगदेवसिंह सिद्धान्ती शास्त्री द्वारा सैनी प्रिंटर्स पहाड़ी धीरज, देहली में मुद्रित और १५ हनुमान् रोड, नई दिल्ली—१ से प्रकाशित

१४ श्रावण सं० २०३० वि०, दयानन्दाब्द १४९,
तदनुसार २९ जौलाई १९७३ रविवार
सृष्टि सं०-१९६०८५३०७३
वर्ष ५ वार्षिक शुल्क स्वदेश में १०) रुपये
अंक ३५ „ „ विदेश में २०) रुपये
एक प्रति का मूल्य ००-२० पैसे

सम्पादक - जगदेवसिंह सिद्धान्ती शास्त्री, पूर्वलोकसभा सदस्य (फोन ५१२१६३)

वेदमन्त्रार्थ-प्रवचन

पुनस्तमेव विषयमाह ॥
फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

शतं मेषान् वृक्ये चक्षदानमृज्राश्वं तं पितान्धं चकार।
तस्मा अक्षी नासत्या विचक्ष आधत्तं दस्रा भिषजावनर्वन् ॥

—ऋ० १.११६.१६

पदार्थः—(शतम्) शतसंख्याकान् (मेषान्) स्पर्धकान् (वृक्ये) वृकस्य स्तेनस्य स्त्रियै स्तेन्यै (चक्षदानम्) व्यक्तोपदेशकम् (ऋज्राश्वम्) सरलतुरङ्गम् (तम्) (पिता) प्रजापालको राजा (अन्धम्) चक्षुर्हीनम् (चकार) कुर्यात् (तस्मै) (अक्षी) चक्षुषी (नासत्या०) सत्येन सह वर्त्तमानौ (विचक्षे) विविधदर्शनाय (आ) (अधत्तम्) पुष्येतम् (दस्रा) रोगोपक्षयितारौ (भिषजौ) सद्वैद्यौ (अनर्वन्) अनर्वणेऽविद्यमानज्ञानाय ॥

अन्वयः—यो वृक्ये शतं मेषान् दद्याद् ईदृगुपदिशेद् यः स्तेनेषु ऋज्राश्वः स्यात्तं चक्षदानमृज्राश्वं पितान्धमिव दुःखारूढं चकार। हे नासत्या दस्रा भिषजाविव वर्त्तमानावश्विनौ धर्मराजसभाधीशौ युवां योऽविद्यावान् कुपथगामी जारो रोगी वर्त्तते तस्मा अनर्वन्नविदुषे विचक्षे अक्षो व्यवहार-परमार्थ विद्यारूपे अक्षिणी आऽधत्तं समन्तात्पोषयतम् ॥

भावार्थः—ससभो राजा हिंसकान् चोरान् लंपटान् जनान् कारागृहेऽन्धानिव कृत्वोपदेशेन व्यवहारशिक्षया च धार्मिकान् संपाद्य धर्मविद्याप्रियान् पथ्योषधिदानेनारोग्यांश्च कुर्यात् ॥

भाषार्थः—जो (वृक्ये) वृकी अर्थात् चोर की स्त्री के लिये (शतम्) सैकड़ों (मेषान्) ईर्ष्या करने वालों को देवे वा जो ऐसा उपदेश करे और जो चारों में सूधे घोड़ों वाला हो (तम्) उस (चक्षदानम्) स्पष्ट उपदेश करने वा (ऋज्राश्वम्) सूधे घोड़े वाले को (पिता) प्रजाजनों की पालना करने हारा राजा जैसे (अन्धम्) अन्धा दुःखी होवे वैसा दुःखी (चकार) करे। हे (नासत्या) सत्य के साथ वर्त्ताव रखने और (दस्रा) रोगों का विनाश करने वाले धर्मराज सभापति (भिषजौ) वैद्यजनों के तुल्य वर्त्ताव रखने वाले तुम दोनों जो अज्ञानी कुमार्ग से चलने वाला व्यभिचारी और रोगी है (तस्मै) उस (अनर्वन्) अज्ञानी के लिये (विचक्षे) अनेक विध देखने को (अक्षी) व्यवहार और परमार्थ विद्यारूपी आंखों को (आ, अधत्तम्) अच्छे प्रकार पढ़ा करो ॥

भावार्थः—सभा के सहित राजा हिंसा करने वाले चोर कपटी छली मनुष्यों को कारागार में अन्धों के समान रखकर और अपने उपदेश अर्थात् आज्ञारूप शिक्षा और व्यवहार की शिक्षा से धर्मात्मा का धर्म और विद्या में प्रीति रखने वालों को उनकी प्रकृति के अनुकूल औषधि देकर उनको आरोग्य करे ॥

—(ऋषिदयानन्दभाष्य)●

नियोग विषयः

(इमां०) ईश्वर मनुष्यों को आज्ञा देता है कि हे इन्द्र! पते! ऐश्वर्ययुक्त! तू इस स्त्री को वीर्य दान दे के सुपुत्र और सौभाग्ययुक्त कर। हे वीर्यप्रद। (दशास्यां पुत्रानाधेहि) पुरुष के प्रति वेद की यह आज्ञा है कि इस विवाहित वा नियोजित स्त्री में दश सन्तान पर्यन्त उत्पन्न कर अधिक नहीं। (पतिमेकादशं कृधि०) तथा हे स्त्रि! तू नियोग में ग्यारह पति तक कर (अर्थात् एक तो उनमें प्रथम विवाहित और दश पर्यन्त नियोग के पति कर अधिक नहीं। इसकी यह व्यवस्था है कि विवाहित पति के मरने वा रोगी होने से दूसरे पुरुष वा स्त्री के साथ सन्तानों के अभाव में नियोग करे। तथा दूसरे को भी मरण वा रोगी होने के अनन्तर तीसरे के साथ कर ले। इसी प्रकार दशवें तक करने की आज्ञा है। परन्तु एक काल में एक ही वीर्य दाता पति रहे, दूसरा नहीं। इसी प्रकार पुरुष के लिये भी विवाहित स्त्री के मर जाने पर विधवा के साथ नियोग करने की आज्ञा है और जब वह भी रोगी हो वा मर जाय तो सन्तानोत्पत्ति के लिये दश स्त्री पर्य्यन्त नियोग कर लेवे ॥४॥ (ऋ० अ० ८। अ० ३) वर्ग २०। मं० ४। अब पतियों की संज्ञा करते हैं (सोमः प्रथमो विविदे) उनमें से जो विवाहित पति होता है उसकी सोम संज्ञा है क्योंकि वह सुकुमार होने से मृदु आदि गुणयुक्त होता है। (गन्धर्वो विविद उत्तरः) दूसरा पति जो नियोग से होता है सो गन्धर्व संज्ञक अर्थात् भोग में अभिज्ञ होता है। (तृतीयो अग्निष्टे पतिः०) तीसरा पति जो नियोग से होता है वह अग्नि संज्ञक अर्थात् तेजस्वी अधिक उमर वाला होता है। (तुरीयस्ते मध्यजाः) और चौथे से लेके दशम पर्य्यन्त जो नियुक्त पति होते हैं वे सब मनुष्य संज्ञक कहाते हैं क्योंकि वे मध्यम होते हैं। (ऋ० ८। अ० ३। व० २०। मं० ५॥ (अदेवृघ्न्य पतिघ्नी०) हे विधवा स्त्रि! तू देवर और विवाहित पति को सुख देने वाली हो। किन्तु उनका अप्रिय किसी पुरुष से मत कर और वे भी तेरा अप्रिय न करें। (एधि शिवा०) इसी प्रकार मङ्गल कार्य्यों को करके सदा सुख बढ़ाते रहो। (पशुभ्यः सुयमा सुवर्चाः) घर के सब पशु आदि प्राणियों की रक्षा करके, जितेन्द्रिय होके, धर्मयुक्त श्रेष्ठ कार्य्यों को करती रहो। तथा सब प्रकार के विद्यारूप उत्तम तेज को बढ़ाती जा। (प्रजावती वीरसूः) तू श्रेष्ठ प्रजा युक्त हो। बड़े बड़े वीर पुरुषों को उत्पन्न कर। (देवृकामा) जो तू देवर की कामना करने वाली है, तो जब तेरा विवाहित पति न रहे वा रोगी तथा नपुंसक हो जाय तब दूसरे पुरुष से नियोग करके सन्तानोत्पत्ति कर (स्योनमग्निं गार्हपत्यं सपर्य्य) और तू इस अग्निहोत्र घर के कार्यों को सुखरूप होके सदा प्रीति से सेवन कर ॥६॥ अथर्व० कां० १४। अनु० २। मं० १८॥ इसी प्रकार से विधवा और पुरुष तुम दोनों आपत्काल में धर्म करके सन्तानोत्पत्ति करो और उत्तम उत्तम व्यवहारों को सिद्ध करते जाओ। गर्भहत्या वा व्यभिचार कभी मत करो किन्तु नियोग ही कर लो। यही व्यवस्था सबसे उत्तम है॥

इति नियोग विषयः संक्षेपतः। —(ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका)●

सत्यार्थप्रकाश—उत्तरार्धः (अनुभूमिका)

इनमें से जो पुराणादि ग्रन्थों से शाखा शाखान्तर रूप मत आर्य्यावर्त्त देश में चले है उनका संक्षेप से गुणदोष, इस ११ वें समुल्लास में दिखाया जाता है इस मेरे कर्म से यदि उपकार न मानें तो विरोध भी न करे क्योंकि मेरा तात्पर्य्य किसी की हानि वा विरोध करने में नहीं किन्तु सत्यासत्य का निर्णय करने कराने का है। इसी प्रकार सब मनुष्यों को न्याय दृष्टि से वर्त्तना अति उचित है मनुष्य जन्म का होना सत्यासत्य के निर्णय करने कराने के लिये है न कि वादविवाद विरोध करने कराने के लिये, इसी मतमतान्तर के विरोध से विवाद से जगत् में जो जो अनिष्ट

(शेष पहले कालम के नीचे)

फल हुए, होते हैं और होंगे उनको पक्षपात रहित विद्वज्जन जान सकते हैं जब तक इस मनुष्य जाति में परस्पर मिथ्या मतमतान्तर का विरोध वाद न छूटेगा तब तक अन्योऽन्य को आनन्द न होगा यदि हम सब मनुष्य और विशेष विद्वज्जन ईर्ष्या द्वेष छोड़ सत्यासत्य का निर्णय करके सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग करना कराना चाहें तो हमारे लिये यह बात असाध्य नहीं है। यह निश्चय है कि इन विद्वानों के विरोध ही ने सबको विरोध जाल में फंसा रक्खा है यदि ये लोग अपने प्रयोजन में न फंसकर सबके प्रयोजन को सिद्ध करना चाहें तो अभी ऐक्यमत हो जायें। इसके होने की युक्ति इस ग्रन्थ की पूर्ति में लिखेंगे। सर्वशक्तिमान् परमात्मा एकमत में प्रवृत्त होने का उत्साह सब मनुष्यों के आत्माओं में प्रकाशित करे॥

अलमतिविस्तरेण विपश्चिद्वरशिरोमणिषु ॥ —(ऋषिदयानन्द)●

श्रौत यज्ञ परिचय लेख सं० २

श्रौत यज्ञ सम्बन्धी कतिपय प्रारम्भिक सामान्य कर्मों का परिचय (२)

(लेखक—श्री पं० वीरसेन वेदश्रमी, वेदविज्ञानाचार्य, वेद सदन, महारानी पथ, इन्दौर-१)

अग्न्याधान से पूर्व दिवस का कर्म

(१) प्रायश्चित एवं वरण

अग्न्याधेय कर्म किस दिन करना हो उससे पूर्व के दिन यजमान एवं यजमान पत्नी प्रायश्चित आदि से चित्त को निर्मल कर आत्मपावनत्व सम्पादन करें। उपवास, ब्रह्मचर्य, सत्य भाषण, जप, यम-नियमादि का पालन चित्त को निर्मल करने के साधन हैं। इसी दिन कल होने वाले आधान कर्म का संकल्प भी सपत्नीक यजमान करे। अध्वर्यु, ब्रह्मा, होता और आग्नीध्र इन चार ऋत्विजों का भी वरण करें।

(२) अरणि निर्माण, सप्तमृत्तिका तथा सुवर्ण संग्रह

अध्वर्यु सर्व प्रथम दोनों अरणियों का विधिवत् निर्माण शमीवृक्ष के ऊपर उगे पीपल वृक्ष की एक शाखा को काट कर उसके दो भाग करके बनावे। तत्पश्चात् (१) बालू (२) ऊसर भूमि की मिट्टी (३) चूहे द्वारा खोदी हुई मिट्टी (४) दीमक की मिट्टी (५) क्षुद्र पाषाण, (६) सूवर द्वारा खोदी हुई मिट्टी और (७) तालाब की मिट्टी—ये सात प्रकार की मृत्तिकायें और (८) सुवर्ण—इनका संग्रह करे। इनका उपयोग अग्नि कुण्ड में स्थापन के लिए है।

(३) सप्त मृत्तिकाओं के कुण्ड में रखने का प्रकार

इस सप्त मृत्तिकाओं को एकत्र करके दो सम भागों में विभक्त कर दे। उसमें से एक भाग की मृत्तिका के दो सम भाग और कर दे। द्वितीय भाग में से विभक्त एक भाग की मृत्तिका गार्हपत्य कुण्ड में और दूसरे भाग की दक्षिणाग्निकुण्ड में रखे। अवशिष्ट आधे भाग के तीन सम भाग कर के आह्वनीय, सभ्य तथा आवस्थ्य कुण्ड में रखे।

(४) सप्त समिधावृक्षों से समिधा संग्रह एवं उसकी स्थापना

इसी प्रकार अध्वर्यु (१) पीपल (२) गूलर (३) पलाश (४) शमी (५) विकंकत (६) विद्युत पात से शुष्क वृक्ष का काष्ठ, (७) पद्म पत्र इनका भी संग्रह पूर्व दिवस में ही करे। कुण्ड में सप्त मृत्तिकाओं के स्थापित करने के उपरान्त उन पर इन यज्ञिय सप्त प्रकार के काष्ठों को रखे और इन काष्ठों के ऊपर सुवर्ण को रखा जाता है।

(५) वेदि एवं कुण्ड रचना प्रकार

आठ हाथ सम चतुरस्र भूमि को चार अंगुल गहरा खोद कर उसमें पानी भरे। जब पानी को मिट्टी सोख ले तब उसको लीप दे। तत्पश्चात् कुण्ड रचना निम्न प्रकार करे। आठ हाथ में से दो-दो हाथ चारों दिशाओं में छोड़कर शेष मध्यभाग में कुण्ड रचना करे। ईशान कोण में सभ्य, आग्नेय में आवस्थ्य, मध्य में आह्वनीय, पश्चिम में गार्हपत्य और नैऋत्य में दक्षिणाग्नि कुण्ड बनाने चाहियें।

सभ्य, आवस्थ्य एवं गार्हपत्य कुण्ड गोल, वृत्ताकार बनाये जाते हैं। इनमें गार्हपत्य १३ अंगुल व्यास का, आठ नौ अंगुल गहरा बनाना चाहिये। इसको जमीन के भीतर खोद कर या जमीन के ऊपर बनाना चाहिए। सभ्य और आवसथ्य १८ अंगुल व्यास के ८ अंगुल ऊंचे बनाने चाहिये। दक्षिणाग्निकुण्ड २१॥ अंगुल व्यास का अर्थ चन्द्राकार का ८ अंगुल ऊंचा बनावे। आह्वनीय समचतुरस्र २४×२४ अंगुल का ११ अंगुल ऊंचा बनावे।

(६) यजमान का क्षौर एवं वस्त्र

यजमान को क्षौरकर्म-शिर केश सहित बाल मुंडवा कर एवं नख कर्तन करके स्नान करके रेशमी धोती और रेशमी दुपट्टा धारण करने चाहियें। यजमान पत्नी का क्षौर कर्म नहीं होता है परन्तु नखादि कर्तन कर स्नानादि करके रेशमी साड़ी एवं रेशमी चादर धारण करनी चाहिये।

(७) अन्वाहार्य ओदन पाचन-एवं उसका विभाजन

अपराह्न में अध्वर्यु आवस्थ्य कुण्ड में से आधी अग्नि गार्हपत्य कुण्ड के पीछे के भाग में रखकर प्रज्वलित करके ४ ऋत्विजों के भोजन निमित्त चावलों को पकावे। उन पके हुए चावलों में से करछी से चावलों को निकाल कर उसी अग्नि में आहुति देवे। आहुति के पश्चात् शेष ओदन (पके चावल—भात) को ४ भागों में विभक्त करके चारों ऋत्विजों को देवे और कुछ उसी पात्र में भी अवशिष्ट रखे।

(८) ऋत्विजों द्वारा अन्वाहार्य या ब्रह्मोदन का भक्षण

जब ऋत्विजों को पूर्वोक्त भात-ब्रह्मोदन का विभाजन हो जावे तब अध्वर्यु अपने भाग को बायें हाथ में लेकर दक्षिण हाथ से पात्रस्य भात में घी डाल कर पीपल की इस समिधाओं से चलावे। चलाने के कारण समिधाओं पर कुछ चावल लगेंगे। चावल संयुक्त उन तीनों समिधाओं को उस अग्नि में रख देवे। तत्पश्चात् सब ऋत्विज् अपने अपने भाग का भोजन करें। इस अग्नि को समिधादि से रात्रि में भी प्रज्वलित रखे—बुझने न दें।

द्वितीय दिवस कृत

(१) अरणि प्रतपन

प्रातः उषाकाल में पूर्व दिवस प्रज्वलित अग्नि पर पूर्व दिवस लाई हुई अरणि को तपा कर, उस अग्नि की भस्माच्छादित रूप से शान्त करके यजमान के हाथ में अरणि को अध्वर्यु देवे। यजमान उस अरणि को अपने हाथ में ही रखे जब तक मन्त्र पूर्वक अरणि मन्थन की क्रिया प्रारम्भ न हो।

(२) अरणि मन्थन से अग्नि प्रकट करना एवं उसकी दक्षिणा

अरणि मन्थन के समय उसके समीप एक श्वेत अश्व बंधा रहना चाहिए और रथ का एक चक्र भी। पूर्व शमित अग्नि की भस्म को हटा कर उस पर पुनः भी अरणि को तपाना चाहिये। अरणि मन्थन से अग्नि के उत्पन्न होने पर यजमान अध्वर्यु को जिसने मन्थन करके प्रकट की है, उसको दक्षिणा में 'वर' देवे। 'वरं अध्वर्यवे दद्यात्'—वर का तात्पर्य याज्ञिक परिभाषा में चार गौ से है। जैसा कि संस्कार विधि के सामान्य प्रकरण में पात्र लक्षणों के अन्त में 'वरार्थं चतस्रो गावः' यह परिभाषा लिखी है। एक गौ की भी वर संज्ञा है। गौ के अभाव में उसका प्रतिनिधि द्रव्य ४ तोला सोना देना बताया है। आदित्येष्टि की अग्न्याधान की दक्षिणा धेनु है। जीवन-नूतन वत्सा प्रचुर दुग्धा गौ की धेनु संज्ञा है।

(३) मन्थ प्रकटित अग्नि का स्थापन

उस प्रकटित अग्नि को अध्वर्यु काष्ठादि से प्रवर्धित करके गार्हपत्य कुण्ड में स्थापित करे। यह कार्य उषाकाल में ही अध्वर्यु एवं यजमान ने कर लेना चाहिये। जब सूर्य का अर्धोदय ज्ञात हो जावे तब गार्हपत्य अग्नि को प्रज्वलित कर, उसमें से कुछ प्रदीप्त भाग को लेकर या आवसथ्य कुण्ड से लेकर दक्षिणाग्नि कुण्ड में अग्नि स्थापन करे। तत्पश्चात् गार्हपत्य कुण्ड में से अग्नि को लेकर आहवनीय कुण्ड में अग्नि स्थापन होती है। पुनः सभ्य और आवसथ्य में भी अग्नि स्थापन होती है। तब अध्वर्यु आदि ऋत्विज अश्व पर यज्ञ सामग्री को लादकर आह्वनीय के पूर्व देश में लाते हैं और ब्रह्मा उनके दक्षिण भाग में रथ चक्र को तीन बार चलाता है। अश्व और रथ चक्र सूर्य रश्मि एवं सूर्य द्योतक हैं। अर्थात् सूर्य की रश्मियां जब पृथिवी पर उषा को प्रकट कर रही हों तब यह क्रिया करनी चाहिये जिससे सौर अग्नि का इस अग्नि के साथ एकीकरण हो सके।

(४) अग्नि स्थानान्तर कर्म

पूर्वोक्त प्रकार से पंचाग्नियों का स्थापन होने पर सभ्य और आवसथ्य अग्नियों में कोई कर्म नहीं होता अपितु उनकी रक्षा ही की जाती है परन्तु अवशिष्ट आवहनीय, गार्हपत्य और दक्षिणाग्नि में ही कर्म होते हैं। अग्नि स्थापित करने के पश्चात् शमी और पीपल की ३-३ समिधाओं का तीनों अग्नियों में आधान होता है और अग्निहोत्र होता है तत्पश्चात् पूर्णाहुति होम होता है। यह सब घृत से ही होम होता है। पूर्णाहुति के पश्चात् अध्वर्यु को वर दिया जाता है। तदनन्तर प्रायश्चित होम होता है। इस प्रकार यजमान आहिताग्नि होता है और उसको आहिताग्नि के नियमों का पालन करना चाहिये। प्रधान रूप से श्रौताधान में यही कर्म है।

(क्रमशः)

सम्पादकीय—

(१) राष्ट्र में फैले सब प्रकार के अन्यायों को दूर करने के उपाय

राष्ट्र को सुखी, समृद्ध और सब जनों को प्रीति युक्त करने के कुछ उपाय आगे लिखे जाते हैं। इन उपायों को काम में लाने का उत्तरदायित्व राष्ट्रिय सरकार का है और जनता का कर्त्तव्य है कि उन उपायों पर आचरण करे।

(क) लोकसभा, राज्यसभा, विधान सभाओं के मन्त्रियों और सरकारी अधिकारियों तथा कर्मचारियों के वेतन एक दम इतने कम कर दिये जावें कि ५०० रुपये से अधिक वेतन (भत्ते आदि सहित) किसी को न दिया जावे।

(ख) इसी प्रकार जितने सरकारी विभाग हैं, उनके अधिकारियों के वेतन भी ५०० रु० से अधिक नहीं रहने दिये जावें : २०० रु० से कम पर कोई व्यक्ति कार्य पर न लगाया जावे।

(ग) व्यापार पर किसी प्रकार का अंकुश न लगाया जावे। खुले क्रय विक्रय की सबको छूट दी जावे।

(घ) पशुपालन पर पूर्ण बल दिया जावे। पशुओं की हत्या बन्द की जावे।

(ङ) खेती के काम आने वाले विदेशी खाद आदि कारखाने बन्द कर दिये जावें। विदेशी ट्रैक्ट्रों का आयात बन्द होवे।

(च) उद्योग धन्धों को चलाने की सभी को छूट दी जावे।

(छ) राष्ट्र की सुरक्षा के लिए जो धन्धे आवश्यक हों उनको ही सरकार स्वयं चलावे।

(ज) अन्न, वस्त्र और घरेलू काम में आने वाले सभी पदार्थों का उत्पादन जनता के व्यक्ति स्वतन्त्र रूप से कर सकें, उनको प्रबन्ध से रोका न जाय।

(झ) पढ़ाई में विदेशी भाषा, शिक्षा और सभ्यता तुरन्त रोक दी जावे।

(ञ) प्राथमिक स्कूल से लेकर विश्वविद्यालयों के अध्यापकों तक को वेतन के अतिरिक्त ट्यूशन की आज्ञा न दी जावे।

(ट) उच्चशिक्षा तथा पढ़ाई निःशुल्क दी जावे। इत्यादि अन्य उपायों को भी इनके अन्तर्गत समझ कर प्रयोग में लाया जावे।

इन उपर्युक्त उपायों का शुभ परिणाम

बाजार में एक दम नीचे बिकवाली होगी। कोई व्यक्ति ऊंचे मूल्य के पदार्थ खरीदने में समर्थ न हो सकेगा। सभी चीजों के दाम साधारण स्थिति में हो जावेंगे। विदेशों से अनावश्यक विलासिता के पदार्थ मंगवाने स्वयं बन्द हो जावेंगे। वस्त्र, लोहा, सीमेंट, ईंट, घी, दूध, चीनी और अन्न के दाम अपने आप गिर जावेंगे। देश में सब को सब पदार्थ सुलभ हो सकेंगे। गाय आदि पशुओं की वृद्धि होकर उनसे उत्पन्न दूध आदि पदार्थों के लिए सभी घरेलू पशु रख सकेंगे। गांव के लोग शहरों में दौड़ने की प्रवृत्ति से दूर हो जावेंगे। खेती के लिए पशुओं के गोबर आदि का खाद सुप्राप्य हो जावेगा। बैलों की वृद्धि से खेती करने के लिए ट्रैक्टरों की आवश्यकता नहीं रहेगी। मजदूरी के लिए कोई खाली नहीं रहेगा। अपने अपने स्थान पर यथा योग्य को धन्धा मिलेगा। देश से भुखमरी, भ्रष्टाचार, अनाचार और लूट खसोट दूर हो जावेगी।

राजनीति की ओर भागने की घुड़ दौड़ भी कम हो जावेगी। क्योंकि सदस्यों तथा मंत्रियों को प्रलोभन के साधन नहीं मिल सकेंगे।

सैनिकों और उनके परिवारों का भरण पोषण सरकार करेगी। उनके परिवारों को काम देगी।

राजनीति में नेतागिरी की इच्छा भी बहुत कम हो जावेगी। २५ वर्ष तक शिक्षा में रखा जावे। ५० वर्ष की आयु के पश्चात् उन व्यक्तियों की योग्यता के अनुसार काम दिया जावे। ७५ वर्ष के पश्चात् राष्ट्र को उन्नत करने के प्रचार और प्रसार में इनको लगाया जावे। विद्यार्थी, शिक्षक विवाद समाप्त हो जावेंगे।

इत्यादि उपायों पर हमने संक्षेप से अपने विचार प्रकट किये हैं। पूज्य विद्वान् महानुभाव इनका पूरी भांति सुधार कर सकते हैं। मुद्रा स्फीति, महंगाई सब प्रकार के भ्रष्टाचार दूर हो जावेंगे।

जनता में परस्पर प्रीति बढ़ेगी। साम्प्रदायिक मन मुटावों को सिर उठाने का अवसर नहीं मिल सकेगा।

ये सभी उपाय राष्ट्र की गृह्य नीति कहला सकेंगे। विदेशी नीति सरकार यथा समय चलावे। राष्ट्र के काम में लगे सभी महानुभावों के परिवार के भरण पोषण का कार्य उनका परिवार सभी के समान करता रहेगा।

उपर्युक्त बातें शेखचिल्ली की भांति नहीं समझनी चाहियें। देखिये—ऋषि दयानन्द वेदभाष्य में उपदेश देते हैं—ब्रह्मचारी, वानप्रस्थी और संन्यासी राजकार्य में सक्रिय भाग नहीं ले सकते। वे राष्ट्र की उन्नति में शिक्षा ग्रहण, शिक्षा दान और प्रचार प्रसार द्वारा उपयोगी हो सकते हैं। राज्य कार्यों में केवल गृहस्थ ही भाग ले सकते हैं। ऋषि का उपदेश एक ऐसा बहुमूल्य सूत्र है कि जिससे प्रत्येक राष्ट्र का कल्याण हो सकता है।

आज राष्ट्र की दुरवस्था कैसी है, इसका पता हम सबको है, इस पर लिखने का प्रयोजन इन पंक्तियों में नहीं रखा है। आशा है राष्ट्र हितेच्छु इन बातों पर हृदय से विचार करेंगे।

(२) भारत पाकिस्तान वार्त्ता इस्लामाबाद में

श्री परमेश्वर नारायण हक्सर के नेतृत्व में भारत का प्रतिनिधि मण्डल इस्लामाबाद पहुंच गया है। दोनों देशों के प्रतिनिधियों की बातों का परिणाम अगले अंक में दिया जा सकेगा, हमारी भावना है कि दोनों देशों की जनता के हित के लिये यह वार्ता सफल होवे। परन्तु केवल भावना से कार्य नहीं चल सकता जब तक कि दोनों पक्षों में स्वार्थ त्याग करके दोनों देशों के जन हित का कार्य आगे न बढ़ाया जावे। विश्व के राष्ट्रों को ज्ञात है कि भारत सदा समझौता करने में पहल करता आ रहा है। इस का प्रबल प्रमाण यह दिया जा चुका है कि वर्तमान युद्ध में भारत ने युद्ध बन्द करने की एक तरफा घोषणा कर दी और पाकिस्तान का जीता हुआ क्षेत्र स्वयं छोड़ दिया था। यह भारत की सद्भावना को प्रकट अवश्य करता है, परन्तु राजनीतिक के सक्रिय नियमों से मेल नहीं खा सकता। ऋषि दयानन्द सत्यार्थप्रकरण में कहते हैं कि शत्रु को जीतना धर्म और हार खा जाना अधर्म है। भारतीय राजनेताओं को इन नियमों को ध्यान में रखना अनिवार्य है। हथेली दोनों हाथों से ही बज सकती है—एक हाथ से नहीं।

(३) बंगला देश में रहे पाकिस्तानियों को भी इंसानियत याद आई

इन्हों ने अन्तर्राष्ट्रिय रेडक्रास को सयुंक्त रूप से पत्र भेज कर अपील की है "कि हमारी समस्या को पाकिस्तानी युद्ध बन्दियों और सिविलयनों की समस्या से कम महत्वपूर्ण न समझा जाय। इन्होंने यही पत्र लन्दन, काठमाण्डू, रंगून, भारत स्थित स्विस दूतावास और बंगला देश स्थित भारतीय उच्च आयुक्त को भी भेजा है। इस पत्र में इन्होंने लिखा है कि हम भी आखिरकार इंसान हैं और हमारे साथ भी वही सहानुभूति दिखाई जानी चाहिये जैसा कि पाकिस्तानी युद्ध बन्दियों तथा भारत में कैद पाक सिविलयनों के साथ दिखाई जा रही है। हमारे ऊपर भी रहम किया जावे, यह हमारी अपील है। यह भी अपील में कहा है कि हम पाकिस्तान की इस दलील को नहीं मानते कि हमारे पाकिस्तान में पहुंचने पर वहां बोझ पड़ेगा, जब कि हम केवल २॥ लाख हैं और पाकिस्तान में ५ लाख बंगाली हैं। दोनों अपने-अपने देशों में जाना चाहते हैं। बंगला देश को बने दो वर्ष हो गये परन्तु पाकिस्तान ने हमारी उपेक्षा ही नहीं की है बल्कि विश्व का ध्यान हमारी ओर से हटाने का भी प्रयत्न किया है इन्हीं ने भारत और बंगला देश के प्रति कृतज्ञता भी प्रकट की है।" ठीक है सभी इंसान बराबर होते हैं परन्तु अपने अपने कर्मों पर ध्यान रखना भी आवश्यक होता है। इन पाकिस्तानियों ने भी, पाकिस्तानी सेना ने जो अत्याचार बंगला देश की जनता पर किये थे, उस में इन का भी पूरा हाथ था। फिर भी खुदा के नाम पर इंसानियत याद आ गई। भारत और बंगला देश इतना होने पर भी इन्हें पाकिस्तान भेजने को तैयार है, परन्तु पाकिस्तान ही इन के मार्ग में बाधक बना हुआ है। खुदा से प्रार्थना करो कि भुट्टो के दिल में खुदा इंसानियत पैदा करे।

—जगदेव सिंह सिद्धान्ती शास्त्री

'सिद्धान्त चर्चा' (२)

(ले० पं० महामुनि जी शास्त्री विद्या प्रभाकर आचार्य गु० कु०
विद्यापीठ हरयाणा भैंसवाल, जिला : सोनीपत)

मैं यह नहीं कह सकता यह शब्द वहाँ कैसे प्रवेश पा गया। मैं इस पर कोई और विशेष बात न कहता हुआ केवल इतना कह सकता हूं कि जनेऊ उतारने वाली बात मान्य नहीं हो सकती। यज्ञोपवीत कर्त्तव्य पालन याद दिलाने के लिए है। यह अंकुश है और स्मृति चिह्न भी है। यदि यज्ञोपवीत उसका उतार लिया जावेगा तो धार्मिक मर्यादा के पालन के लिए उनको निरंकुश छोड़ देना होगा। यज्ञोपवीत को उपनयन कहते हैं। जिसका अभिप्राय यह हो सकता है कि यह आंख की सहायता के लिए ऐनक है। यदि ऐनक लगी रहने पर भी भूल होती है तो ऐनक लगाने वाले को चेतावनी देनी होगी। ऐनक उतार कर कहना कि जाओ, मरो, ठोकरें खाओ, कुछ मर्यादा के अनुकूल प्रतीत नहीं होता।"

उत्तर—जिस प्रकार सत्य बोलना, भूखे प्यासे को अन्न-जल देना, रोगी को सेवा करना, आपत्तिग्रस्त की सहायता करना मार्ग भ्रष्ट को सन्मार्ग पर आरूढ़ करना, विद्या पढ़ाना, दुर्गुण छुड़ाकर सद्गुणों से विभूषित करना, अग्निहोत्र करना आदि कर्म स्वयं अपने आप में पुण्यजनक कर्म होने से धर्म है, इनके समान यज्ञोपवीत (जनेऊ) धारण करना अपने आप में पुण्यजनक कर्म नहीं है। यह तो जिस बालक को हम श्रेष्ठ गुण कर्मों से विभूषित कर आर्य बनाना चाहते हैं अथवा जो आर्य (श्रेष्ठ पुरुष) है, उसका परिचायक (बोधक) चिह्न है। जिस प्रकार पुलिस के सिपाही की वर्दी उनके कार्य की सूचक है, यदि सिपाही वर्दी धारण करके भी अपने कर्त्तव्य का पालन नहीं करता तो वह जनता की आलोचना का विषय बनता है, वर्दी रहित होने पर प्रजा का आलोच्य नहीं रहता, परन्तु जब उसके अधिकारियों को यह ज्ञात होता है कि अमुक सिपाही बिना वर्दी के अपना कार्य करता है तो उसको वर्दी धारण के लिए सतर्क किया जाता है तथा यदि वर्दी धारण करके भी अपने कार्य को सुचारु रुप से नहीं करता तो अधिकारो उसे दण्डित करते हैं और उस कार्य के लिए सर्वथा अयोग्य सिद्ध होने पर उसकी वर्दी छीनकर उस कार्य से पृथक् कर देते हैं। अथवा जिस प्रकार से कोई संन्यासी वा संन्यासि-मण्डल किसी संन्यासाश्रम के अभिलाषी व्यक्ति को योग्य समझकर संन्यासाश्रम में दीक्षित कर संन्यासी के काषाय वस्त्रादि चिह्नों से विभूषित करता हैं, यदि आगे चलकर किन्हीं कारणों से वह नवदीक्षित संन्यासी अपने संन्यासधर्म से पतित हो जावे तो उसको संन्यासाश्रम में दीक्षित करने वाले गुरु को या संन्यासी-मण्डल को कहकर उनकी आज्ञा से राजा (शासक) को अधिकार है कि वह उसे संन्यासी के चिह्नों रहित करके साधारण जनों के समान बना देवे। इससे उसका भी भला होगा और संन्यासाश्रम भी बदनाम न होगा।

इसी प्रकार जो भी व्यक्ति द्विज होकर भी द्विजोचित सभी कर्त्तव्यों को तिलाञ्जलि देकर विपथगामी हो जावे तो उसको भी द्विज-चिह्न से रहित करके द्विज-श्रेणी से पृथक् कर देने में क्या हानि है? इससे दूसरों को भी शिक्षा मिलेगी। यदि एक को दण्ड नहीं दिया गया तो अन्यों को कैसे दिया जा सकता है इससे नियम पालने वाले और नियम भंग करने वाले समान हो जावेंगे, ऐसी अवस्था में शनैः-शनैः नियम भंग करने वालों की संख्या बढ़ जावेगी क्योंकि किसी प्रकार के भय विना प्रजा मर्यादा पर स्थित नही रह सकती। इसलिये दण्ड अवश्य होना चाहिए।

राजनीति का यह नियम है कि जिस अपराध पर जितना अधिक कठोर दण्ड होगा और उसका जितना दृढ़ता से न्यायानुसार पालन किया जावेगा वह अपराध उतना ही शीघ्र बन्द होगा। स्व० स्वामी स्वतन्त्रतानन्द जी महाराज ने एक बार अपने व्याख्यान में सुनाया था कि वे (या अन्य कोई महाशय) जर्मन देश की रेल में यात्रा कर रहे थे, उन्होंने वहां कोई टिकट चैकर नहीं देखा तथा न किसी को टिकट बिना यात्रा करते देखा, इस पर उन्होंने (यात्रा करने वाले ने) जर्मनवासियों से पूछा कि क्या यहां टिकट चैकर नहीं होते? उन्होंने (एक जर्मन ने) उत्तर दिया कि 'टिकट चैकर' यहां भी होते हैं परन्तु वे, कभी-कभी जब उचित समझते हैं, आते हैं और जब किसी को बिना टिकट यात्रा करते पाते हैं तो उसे चलती गाड़ी से बाहिर धक्का दे देते हैं। यहां की सरकार का यही नियम है, इस लिए यहां बिना टिकट कोई यात्रा नहीं करता' वहां की सरकार के नियम को आप जैसे सहृदय (दयालु स्वभाव) सज्जन अत्यन्त क्रूर नियम बतावेंगे क्योंकि स्वल्प से अपराध पर इतना भयङ्कर दण्ड देना कि जिससे मनुष्य अपने जीवन से ही हाथ धो बैठे। परन्तु वहाँ की सरकार ने नियम बना दिया है और वहां की प्रजा ने उसे स्वीकार कर लिया, इस पर आपको और हम को क्या आपत्ति हो सकती है। दूसरी घटना स्वामी स्वतन्त्रतानन्द जी महाराज ने अपने देश की सुनाई थी। वे (वा पूर्वोक्त कोई सज्जन) एक बार रेल में यात्रा कर रहे थे। उनके पास में एक अच्छे पढ़े लिखे सज्जन बैठे थे। टिकट चैकर ने उनसे टिकट दिखाने को कहा। उन्होंने कहा कि मेरे पास टिकट नहीं है। चैकर ने पूछा 'कहां से बैठे हो? उन्होंने सत्य-सत्य बता दिया कि अमुक स्थान से बैठा था, चैकर ने हिसाब लगाकर कहा कि इतने पैसे निकालिए उन्होंने उतने ही पैसे निकालकर दे दिए। चैकर के चले जाने पर पास बैठे एक सज्जन ने पूछा, 'आप सभ्य पुरुष दीखते हैं फिर भी आप टिकट लेकर क्यों नहीं बैठे? उस सज्जन ने उत्तर दिया, मैं प्रायः यात्रा पर रहता हूं, मैंने अपना नियम बिना टिकट यात्रा करने का ही बना रखा है, इसके लिए मैं न झूठ बोलता हूं तथा न कहीं छिपने का प्रयत्न करता हूं, जब कभी पकड़ा जाता हूं तो उचित दण्ड अदा कर देता हूं। ऐसा करते हुए जब मैं वर्ष के अन्त में यात्रा करते हुए वास्तविक रेल भाड़े में और जो दण्ड रुपमें पैसे दिये गए होते हैं, सबका हिसाब करता हूं तो मैं बचत में रहता हूं। इसलिए ही बिना टिकट यात्रा करता हूं इससे सिद्ध होता है कि सरल दण्ड से अनियमितता दूर नहीं होगी।

पञ्चमहायज्ञविधि में सन्ध्योपासना विधि के पश्चात् 'अथाग्निहोत्र-सन्ध्योपासनयोः प्रमाणानि अर्थात् अब सन्ध्योपासना और अग्नि होत्र करने में प्रमाण लिखते हैं। इस प्रकरण में मनुस्मृति के 'न तिष्ठति तु यः पूर्वां नोपास्ते यश्च पश्चिमाम्। स शूद्रवद्‌बहिष्कार्यः सर्वस्माद् द्विजकर्मणः।' इस श्लोक का हिन्दी अनुवाद करते हुए स्वामी जी ने लिखा है—

"(न तिष्ठति तु) जो मनुष्य नित्य प्रातः और सायं सन्ध्योपासना को नहीं करता उसको शूद्र के समान समझकर द्विजकुल से अलग करके शूद्रकुल में रख देना चाहिए। यह सेवा कर्म किया करे और उसके विद्या का चिह्न यज्ञोपवीत भी न रहना चाहिए, इससे सब मनुष्यों को उचित है कि सब कामों को मुख्य जानकर पर्वोक्त दो समयों में जगदीश्वर की उपासना नित्य करते रहें। इति अग्निहोत्रसन्ध्योपसनप्रमाणानि॥"

इसी लिए इस लेख को प्रकरण विरुद्ध तो नहीं कह सकते। जनेऊ उतारने की बात स्वामी जी के जीवन चरित्र (स्वामी सत्यानन्द जी द्वारा लिखित) 'श्रीमद्‌यानन्दप्रकाश' में भी एक स्थान पर आयी है। भक्त व्यक्ति ने आकर स्वामी जी से निवेदन किया कि मैंने इतने मनुष्यों को जनेऊ दिया है, इस पर स्वामी जी महाराज ने प्रश्न किया कि उतारे कितनों के हैं? इस पर उस भक्त महाशय ने आश्चर्य से कहा, 'क्या महाराज, जनेऊ उतारा भी जाता है? इस पर स्वामी जी ने कहा, 'हां जो मनुष्य यज्ञोपवीत धारण करके भी उसके नियम विरुद्ध आचरण करे उसका उतारा भी जाता है। 'आजकल भी उपाधियां देने वाले विश्व-विद्यालय, जो उपाधिधारी अपने किसी कर्मविशेष से उस उपाधि को कलंकित कर दे वे उससे अपनी उपाधि छीन लेते हैं। 'अस्तु किमधिक-लेखनेन' इस विषय में अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं।

राजर्षि मनु शासक थे। उन्होंने अपने समय में नियम बनाए, उनको तात्कालिक द्विणमडल ने स्वीकार किया इसलिए उन नियमों का मनुजी ने प्रजा से पालन करवाया। वर्त्तमान काल में उसी परिपाटी का महर्षिदयानन्द जी महाराज ने समर्थन किया, उस पर आपको क्यों आपत्ति है? यदि आप और आपका समाज वर्त्तमान में अपने आप को उस दण्ड के योग्य नहीं समझते या उस दण्ड को कठोर दण्ड समझते हैं तो अन्य कुछ उससे सरल दण्ड निश्चित कर लीजिए, इससे आपको कौन रोकता है? मनु-प्रोक्त दण्ड को भी पुस्तकों में लिखा रहने दीजिए। (क्रमशः)

क्रमागत—

माण्डूक्य पर आचार्य गौडपाद कारिकाओं की समीक्षा (२८)

[ले०—श्री स्वामी ब्रह्मानन्द जी आर्य त्रैतवेदान्ताचार्य, मु० ओं० आश्रम, चान्दोद (बड़ौदा)]

याने दृष्टान्त तब बनता है जब उसका दर्शन (प्रत्यक्ष) अनुभव हो चुका हो। तो ये तुम्हारी (जडवत्) की उक्ति बड़ी नमूनेदार है, इसी बात से पता चल गया कि आप लोग अद्वैत वादि मन में जड जगत् की भी भावना तो लिये रहते हैं और ऊपर ऊपर से शिवोऽहम्। सच्चिदानन्दोहम्। नित्य शुद्ध-बुद्ध मुक्त स्वरूपोहम्। ब्रह्मं वाहमस्मि। अहं ब्रह्माऽस्मि की रटन तो जीभ से करते हो। परन्तु जड़ जगत् का सर्वथा स्मरण बना रहता है तभी तो (बहु धाम सभा रहि जोगिजती। विषया हरि लीन्ह गई विरतो॥ तपसी धनवन्त दरिद्रगृही। कलि कौतुक जात न बात कही। (रामायण तु.) (कुशलाब्रह्म वार्तायां वृत्तिहीनाः सुरागिनाः॥ याज्ञ० स्मृ०) अर्थात् कलियुग में ऐसे संन्यासी प्रायः होंगे जो ब्रह्मज्ञान छांटने में बड़े कुशल होंगे परन्तु मन से तो वे विषयानुरागी ही होंगे यदि मानो निवेश से ही जो यदि अद्वैत की सिद्धि होना आप मानते हो तो तुम्हारा अद्वैत इस प्रकार नैमित्तक ही हुआ। और जो नैमित्तिक है वह स्वाभाविक ही नहीं और जो अद्वैत स्वभाव सिद्ध है ही नहीं तो ऐसी हुई या मिली अद्वैतता अवश्य कभी न कभी उसी साधन के शिथिल पड़ जाने पर पुनः यही स्वाभाविक द्वैतता या अनेकता में परिणत हो जायेगी। जैसे कोई तांबे आदि के पात्र पर काठ लगने या मैला होने पर उस पात्र को ले उसे खटाई लगा मिट्टी से मलता धोता पानी रहेगा तभी तक थोड़े समय तक के लिए वह पात्र या वर्तन में विशुद्धता या चकाचक चमकीलापन रहेगा फिर धोरे धोरे वह पात्र उसी मैले गन्दे कालेपन को अपने आप कुदरती धारण कर लेगा। यह नियम अटल है तो आत्यैक्य कर फिर छूट जायेगा ॥३६॥

निस्तुतिर्निर्नमस्कारो निःस्वधाकार एव च।
चलाचलनिकेतश्च यतिर्यादृच्छिको भवेत् ॥३७॥

वैतथ्य प्रकरण की ३७वीं कारिका

अर्थ—यति को स्तुति नमस्कार और स्वधाकार पैत्रकर्म से रहित हो चला-चल—शरीर और आत्मा में ही विश्राम करने वाला होकर या-दृच्छिक—अनायास लब्ध वस्तु द्वारा सन्तुष्ट रहने वाला हो जाना चाहिए ॥३७॥

समीक्षा– ये भी बात खूब विचित्र कही कि यदि संन्यासी किसी को भी नमस्कार एवं स्तुति न करे। तो क्या पूज्य परमात्मा देव और अपने से पूज्य ज्येष्ठ बड़ील, गुरुजनों को भी नमस्कार और स्तुति न करे। तो भला क्यों न करे? कुछ न लिखा यहां। और नमस्कारादि जो वो यति अपने से पूज्यों को यदि कर ही देगा तो क्या वो नरक में पतित होगा और स्तुति न करे बड़े लोगों की या प्रभु को तो क्या उनकी निन्दा उपहास अपमान किया करे। किन्तु (पर उपदेश कुशल बहुतेरे। जे आचरहीं ते नर न घनेरे) और गौड जी गुरु आप भी तो यति स्वरूप हैं तो फिर आपने ही इस उपरोक्त नियमों के पालन नहीं किये थे तो दूसरों को आप क्या उपदेश देते हो? देखो स्तुति तुम्हारे पूज्य को ज्ञेया भिन्नेन संबुद्धस्तं वन्दे द्विपदां वरम् ॥१॥ अलात् शां० प्र० अर्थात् जो हस अद्वय वादियों का परम ज्ञेय उपासनीय है और जो सर्वज्ञ है ऐसे दो पैरों वाले अर्थात् शरीर धारी गौतम बुद्ध को हम नमस्कार करते हैं और अब उन गौतम बुद्ध की स्तुति भी सुन लो—

दुर्दर्श मति गम्भीर मजं साम्यं विशारदम्। बुद्ध्वापदमनानत्वं नमस्कुर्मोयथा बलम् ॥१००॥ अलात् शां० प्र०। अर्थ जो दुर्दर्श जिसका दर्शन भी प्रति पक्षी को बड़ी मुश्किल से हो सके जो बड़ा गम्भीर विचार वाला और अज या अजन्मा ही अपने को मानने कहने वाला अथवा बकरे जैसा सीधा साधा याने जो लड़ाकू भी नहीं सबको एक समान मानने वाला याने जात पात का भेद भाव तोड़ तुड़वा कर जो संघ समाजवादी, जो ऐसा कार्य कुशल जान कर मैं गौड़ पाद उसे अपने विद्या बलयुक्त जो प्राप्त उनकी कृपा से हुआ है तो उसी का बल से यथाशक्ति बार बार नमस्कार करता हूं। तो देखे न पाठकगण? ये ऐसे छिपे गुरु हैं जो बुद्ध की स्तुति एवं सिद्धान्त से आदि अन्त में दो दो बार नमस्कार से संपुट करते हैं। कहिये? फिर भोले भाले यतियों को कहते हैं कोई बड़ीलों पूज्यों को नमस्कार न करो, स्तुति न करो, बड़ों की सेवा न करो, अरे जिसने हमारा पालन पोषण और गुण ज्ञान दिया उनकी सेवा श्रद्धा अधर्मी बनाने का उल्टा उपदेश करते हैं और पुरुषार्थ प्रयत्न जो मिले उसी में सन्तोषी बना रखने की बात करते हैं तो बड़े बड़े यह क्यों तुम्हारे प्रशिष्यों ने या शंकर आदि ने बनवा डाले? जब वे ही तुम्हारी आज्ञानुवर्ति नहीं हुए तो दूसरे क्या होंगे ॥३७॥

तत्त्वमाध्यात्मिकं दृष्ट्वा तत्त्वं दृष्ट्वातु बाह्यतः।
तत्त्वीभतस्तदारामस्तत्त्वद प्रच्युतोभवेत् ॥३८॥

वैतथ्य प्रकरण की ३८वीं कारिका

अर्थ—फिर वहाँ विवेकी पुरुष आध्यात्मिक तत्व को देख कर और बाह्य तत्व का भी अनुभव कर तत्वीभूत और तत्व में ही रमण करने वाला होकर तत्व से च्युत न हो ॥३८॥

समीक्षा—आपने यहां बाह्य और आध्यात्मिक ऐसे द्विविध तत्व स्वयं स्वीकार कर लिये हैं तथा तीसरा तत्व वह भी मान लिया है कि जो उन तत्वों में रमण करने वाला है। तो त्रैतवाद आप स्वयं मानते चले जा रहे हैं तो फिर तुम्हारी अद्वैत की सिद्धि करना ही व्यर्थ है। समझे गुरु जी! और कहना यह है कि जो जिन बाह्य या आभ्यान्तर आध्यात्मिक गृह में रमण करता है। वह उन घरों से जुदा देखा जाता या अनुभव में आता है। तो कितना भी और कैसे भी घर में वह मुमुक्षु रमण करे किन्तु रमण करने एवं करवाने वाले ये दोनों न कभी एक थे न हैं न होंगे ही। क्योंकि लोक से भी देखा जाता है कि क्रीड़ा स्थल और उसमें क्रीड़ा करने वाला ये दो तत्व न्यारे ही हैं।

गौडपादीय कारिकान्तर्गत वैतथ्य प्रकरण की समीक्षा पूर्ण हुई॥

गौडपादीय कारिकान्तर्गत अद्वैत प्रकरण की समीक्षा

उपासनाश्रितो धर्मो जाते ब्रह्मणिवर्तते।
प्रागुत्पत्तेरजं सर्वं तेनासौ कृपणः स्मृतः ॥१॥

अद्वैत प्रकरण की पहली कारिका

अर्थ—उपासना का आश्रय लेने वाला जीव कार्य ब्रह्म में ही रहता है। अर्थात् उसे ही अपना उपास्य मानता है और समझता है कि उत्पत्ति से पूर्व ही सब अज अर्थात् अजन्मा ब्रह्म स्वरूप था इसलिये वह कृपण (दीन) माना गया है ॥१॥

समीक्षा—उपासना करने वाला कार्य ब्रह्म को ही पाता है तो आप कार्य ब्रह्म और कारण ब्रह्म अथवा आप तटस्थ लक्षण युक्त ब्रह्म जो ईश्वर है जो उत्पत्ति स्थिति प्रलय कर्ता है। वह तटस्थ ब्रह्म या कार्य ब्रह्म अद्वैतवादियों के यहां कहा गया है। और कारण ब्रह्म को सच्चिदानन्द स्वरूप लक्षण माना है अथवा मायोपाधि ब्रह्म ईश्वर कहाता है तथा मायातीत ब्रह्म शुद्ध तुरीय शिव कहलाता है परब्रह्म। ऐसा ये मानते हैं। (द्वावेव ब्रह्मणो रूपं मूर्तं चामूर्त्तं चेति)। इस उपनिषदीय श्रुति का प्रमाण देकर दो मूर्त और अमूर्त या साकार निराकार ऐसे इस प्रकार के द्विविध ब्रह्म का होना बतलाते हैं। अर्थात् दो परमात्मा भगवान्। तो हमारा कहना यह है कि इनसे पूछना चाहिए कि जो वस्तु अथवा तत्व स्वभाव या स्वरूप से ही निराकार है वही अपने स्वभाव के विरुद्धधर्माश्रयी याने साकार कैसे होगा? कहो कि मायोपाधि से तो भी ठीक नहीं। क्योंकि उस ब्रह्म तत्व को तो (माया प्रपंचात् परम्) अथवा (प्रपंचोप समं शान्तं शिवं) उसे बताया है। यदि इस पर भी वे यों कहें कि (मायिनं तु महेश्वरम्) भी तो कहा है अथवा (उमा सहायां परमेश्वरं प्रभुम्) भी तो कहा है। हां तो इन्कार ही कौन कर रहा है। परन्तु इन उपनिषदीय श्रुतियों में ऐसा तो कहीं नहीं कहा कि माया सहित और माया रहित ब्रह्म जुड़े-जुड़े हैं। यदि आप (द्वावेव ब्रह्मणो रूपं) वाली श्रुति का प्रमाण पेश करें तो भी उचित नहीं क्योंकि ये श्रुति परब्रह्म का नहीं किन्तु महद् ब्रह्म या प्रकृति के दो स्वरूप का ही वर्णन करती है।

क्रमशः

अंक से आगे—

योगी का आत्मचरित्र एक मनघड़न्त कहानी

(लेखक श्री स्वामी पूर्णानन्द जी सरस्वती, बड़ौत जि० मेरठ)

इसका कारण है 'चोर की दाढी में तिनका'। योगी जी हृदय से 'थ्योसोफिस्ट के आत्मचरित्र' के विरोधी हैं, इस बात को वे कई बार अपने लेखों में प्रकट भी कर चुके हैं। जिनको हम अपने पिछले लेख में सिद्ध कर चुके हैं। परन्तु कट्टर आर्यसमाजियों के आक्रोश से बचने के लिये उनको यह कहना पड़ता है कि तीनों आत्मचरित्रों में कोई विरोध नहीं है। योगी जी बार-बार संक्षेप और विस्तार की बात को कहकर पाठकों की आंखों में धूल झोंकना चाहते हैं। परन्तु सजग आर्य समाजी इस धोखे में नहीं आ सकता वह जानता है कि संक्षेप, विस्तार और विरोध शब्दों का क्या अर्थ होता है ? 'योगी का आत्मचरित्र' को विस्तार नहीं कह सकते। इसको ऋषिदयानन्द की जीवनी में भारी हेर फेर का नाम देना चाहिये। २८ मई सन् १९७३ के हिन्दुस्तान में लिखा है:—"बिहार मन्त्री-मण्डल में भारी हेर फेर -१० नए मन्त्री आयेंगे ७ मन्त्री जायेंगे। यही बात दीन बन्धुजी ने 'योगी का आत्मचरित्र' में की है कि थ्योसोफिस्ट में से १८ स्थानों को निकाल दिया और ९० को भर दिया। योगी को तिल का ताड़ बनाने का एक बहाना मिल गया और वह इस तरह की थ्योसोफिस्ट के अंग्रेजी लेख में जिसको हम ऊपर लिख चुके हैं, एक शब्द 'a Benares women' शब्द आ गया है। इस शब्द के दो अर्थ हो सकते हैं। एक अर्थ है 'बनारस बाई' और दूसरा अर्थ है 'बनारस की रहने वाली एक स्त्री।' इन में से योगी जी ने दूसरे अर्थ को लेकर तिल का ताड़ बना डाला है। सच्चिदानन्द जी करते हैं कि 'स्वामी दयानन्द जी बड़ोदा से काशी ही गये, चाणोद नहीं' इस में तर्क देते हैं कि वह स्त्री काशी के रहने वाली थी अतः उसने काशी में होने वाली सभा का ही जिक्र किया था, और स्वामी सच्चिदानन्द परमहंस भी काशी के रहने वाले थे इसलिये उनका मिलना काशी ही में हो सकता था अतः स्वामी जी अवश्य काशी ही गये थे।' परन्तु योगी का यह तर्क लंगड़ा क्योंकि सच्चिदानन्द योगी जी अपना पता 'अध्यक्ष श्री नारायण स्वामी आश्रम नैनीताल' लिखते हैं तो क्या वे सब बातें नैनीताल की ही कहते हैं ? और क्यों न नैनीताल में ही मिल सकते हैं और जगह नहीं ? तो उत्तर होगा कि ऐसी बात नहीं, बल्कि योगी जी दूसरे स्थानों की बातें भी कह सकते हैं और दूसरे स्थानों में आजा सकते हैं और मिल भी सकते हैं। वास्तव में योगी जी 'वाक्छल' करने में बड़ निपुर्ण हैं। वाक्छल की परिभाषा गौतम ऋषि ने इस प्रकार की है:—"अविशेषाभिहितेऽर्थे वक्तुरभिप्रायादर्थान्तरकल्पना वाक्छलम्।" अर्थात् साधारण बात (जिसके कई अर्थ हो सकते हैं) के कहने पर कहने वाले के अभिप्राय से उलटे अर्थ की कल्पना करना वाक्छल है। ऐसा ही वाक्छल योगी जी ने किया है, क्योंकि ऋषि दयानन्द का अभिप्राय तो योगियों की खोज थी, न की काशी में जाकर भिन्न-भिन्न मतों के लगभग दो सौ ग्रन्थ पढ़ने की। जिन के पढ़ने में १५-२० वर्ष लग जावें और 'धोबी का कुत्ता घर का न रहे न घाट का' वाली कहावत चरितार्थ हो जावे। इसलिये ऋषि दयानन्द स्वामी सच्चिदानन्द जी से मिलकर झट चाणोद पहुंच गये थे जैसा कि मैंने ऊपर लिखा दिया है।

सच्चिदानन्द की बात मानने से तो ऋषिदयानन्द के जीवन का उद्देश्य और सारा प्रोग्राम ही नष्ट हो जाता। इसी कारण से ऋषिदयानन्द के जीवनी लिखने वाले किसी भी विद्वान् ने ऋषि का बड़ोदा से काशी जाकर पढ़ना नहीं माना।

काशी जाने में क्या असम्भावनाए हैं ? पहली बात तो यह है कि आज से १२५ वष पूर्व बड़ोदा से काशी जाना अत्यन्त दुष्कर था। उस काल में यातायात के कोई साधन नहीं थे। बड़ोदा से मिर्जापुर तक सतपुड़ा और विन्ध्याचल के पहाड़ों का सिलसिला चलाया गया है जो विकट बनों से भरा हुआ था उसको पार करने में लगभग एक हजार मील लगते थे और कई महीनों में काशी पहुंचा जा सकता था। उसके लिये 'I repaired thether atonce' (मैं वहां पर फौरन पहुंच गया) की बात कही ही नहीं जा सकती थी। दूसरे काशी में रहकर अनेक पण्डितों से अनेक सम्प्रदायों के लगभग २०० ग्रन्थों को पढ़ने में कम से कम १५-२० वर्ष लग सकते हैं। व्याकरण के आठ ग्रन्थ कात्यायन का वार्तिक, वाक्य प्रदीप, काशिका, न्यास पदमञ्जरी, सिद्धान्त कौमुदी, प्रक्रिया कौमुदी मुग्ध बोध जैसे अनार्ष और जटिल ग्रन्थों को दो दो तीन-तीन बार पढ़ने में कम से कम दस वर्ष लगजाते हैं। ऋषि दयानन्द ने स्वयं सत्यार्थप्रकाश के तीसरे समुल्लास में इनको दुरुहता का वर्णन किया है और लिखा है अष्टाध्यायी और महभाष्य जैसे आर्य ग्रन्थों के पढ़ने से तीन वर्ष में जितना ज्ञान होता है उनका इन अनार्ष ग्रन्थों के पढ़ने से ५० वर्ष में भी नहीं हो सकता। ६ दर्शन भाष्य सहित कई गुरुओं से कई-कई बार पढ़ने और ११२ उपनिषदों के पढ़ने में गुरुओं के मुख से कम से कम तीन वर्ष ५० के लगभग स्मृतियों के पढ़ने में १ वर्ष। जैनियों के श्वेताम्बर और दिगम्बरों के जटिल ग्रन्थ, बौद्धों के महायान और हीनयान के अनेक ग्रन्थ और तान्त्रिकों के अनेक ग्रन्थ और क्रिया व चर्या में कम से कम तीन वर्ष। इस हिसाब से १७ वर्ष तो काशी ही में बीत जाते हैं और स्वामी जी की आयु काशी में ही ४० वर्ष की हो जाती है। इसके पश्चात् नर्मदा के उत्पत्ति स्थान अमर कंटक से चाणोद तक कम से कम १०० पौराणिक तीर्थों की यात्रा का वर्णन है जिसमें दीनबन्धु जी को पौराणिक गप्पों को को कहने का खूब अवसर मिला है और इस यात्रा के अन्त में दीन बन्धु जी ने लिखा:—"मैं पूछ पाछ करके चाणोद पहुंच गया। मेरी अवस्था उस समय २३ या २४ वर्ष की थी।" पाठक जरा विचार करें कि दीनबन्धु जी और सच्चिदानन्द जी स्वामी जी की यात्रा बड़ौदा से आरम्भ कराते हैं, उस समय उनकी आयु २३ वर्ष की थी वहां से एक हजार मील की यात्रा करके काशी पहुंचे, वहां २०० ग्रन्थ पढ़े फिर नर्मदा के किनारे पर पहुंचे और १०० तीर्थों की खूब खाक छानी, नरबलि का शिकार भी हुए। भूख के मारे जंगल में कई दिन पड़े रहे आखिर रीछ ने दया करके शहद का छत्ता लाकर दिया तो बच गये नहीं तो मर ही जाते, टांग टूटने में कई दिन तक गढ़े में गिर गये अनेक अद्भुत चमत्कार हुआ। परन्तु सबसे अधिक चमत्कार यह हुआ कि ऋषि की आयु वही २३, २४ वर्ष की हो रही। पाठक स्वयं सोचलें कि योगी जी ये बातें जागृत अवस्था की करते हैं या स्वप्नावस्था की ?

अपनी झूठी कल्पना को सत्यसिद्ध करने के लिये सच्चिदानन्द जी 'सत्य के लिये प्राणों की आहुति देने वाले शहीद सादिक पण्डित लेखराम जी' की गवाही देते हैं आपने लिखा है:—"बड़ौदा से बनारस ही गये थे' इस विषय में १३वें लेख में ७ प्रमाण दिये हैं और १९ वें लेख में पं० घासी राम जी के हिन्दी 'दयानन्द चरित्र' पूरे तीन उद्धारण दिये हैं। इन १० प्रमाणों की विद्यमानता में वह निर्विवाद सत्य है ऋषि बड़ौदा से बनारस गये थे।" इन प्रमाणों में से पहले पं० लेखराम जी प्रमाण आर्यमर्यादा ३-१२-७२ का देते हैं:—"पृ० ३८ पर आर्य मुसाफिर लिखते हैं—१९१८ की नर्बदा की दूसरी यात्रा थी' हमारा प्रश्न यही है कि पहली नर्बदा यात्रा कब की। उत्तर सुस्पष्ट है—पहली यात्रा बड़ौदा के बाद बनारस होकर नर्बदा की यात्रा की।" योगी जी का यह कितना घृणित झूठ है कि आप ही प्रश्न करते हैं और आप ही उत्तर देकर, उस उत्तर को पं० लेखराम के सिर मढते हैं। प० लेखराम जी से यदि प्रश्न किया जाता है कि पहली नर्बदा यात्रा कब की ? तो उत्तर पं० लेखराम जी ने यह दे दिया था :—नर्बदा तट तथा आबू पर्वत पर अनेक सच्चे योगियों से योग की शिक्षा—चाणोद कल्याणी में प्रथम बार सच्चे दीक्षित विद्वानों से अध्ययन-बड़ोदा में एक बनारस की रहने वाली बाई से मैंने सुना कि नर्मदा तट पर बड़े-बड़े विद्वानों की एक सभा होने वाली है। यह सुनकर मैं तुरन्त उस स्थान को गया, पहुंचने पर एक सच्चिदानन्द परमहंस से भेंट हुई और उनसे अनेक प्रकार की शास्त्र विषयक बातें हुईं·····फिर उन्हीं से ज्ञात हुआ कि आजकल चाणोद कल्याणी जो नर्बदा नदी के तट पर स्थित है) में बड़े उत्तम विद्वान् ब्रह्मचारी और संन्यासियों की एक मण्डली रहती है। यह सुनकर उस स्थान को गया।" पृ० २१ इसको पढ़कर पाठक सोचें कि पं० लेखराम ने योगी जी की पुष्टि की है, या उसके झूठ का भांडा फोड़ा है ? इसमें स्पष्ट लिखा है कि स्वामी जी बड़ोदा से चाणोद ही गये। इस से आगे योगी जी फिर पाठकों को धोखा देने का प्रयत्न करते हैं। आप लिखते हैं :—(क्रमशः) ●

बड़े बेआबरू होकर तेरे कूचे से हम निकले

(वेश-द्वय की कारस्तानी, एक प्रत्यक्षदर्शी की जुबानी)

(श्री सत्येन्द्रसिंह आर्य एम. ए. सी. ए. आई. आई. बी. धामपुर)

उत्तर प्रदेश के प्रसिद्ध नगर मेरठ में मई १९७३ के अन्तिम सप्ताह में आर्यसमाज शताब्दी कार्यक्रम के अन्तर्गत एक अप्रत्याशित रूप से विशाल समारोह का आयोजन किया गया। समारोह के आयोजन कर्त्ता महानुभाव एवम् ऋषि मिशन में रुचि रखने वाली मेरठ की जनता बधाई और धन्यवाद के पात्र हैं। दूर-दूर से लोगों ने समारोह में पहुंचकर आर्य विद्वानों एवम् राष्ट्र नेताओं के विचार सुने और लाभ उठाया। इस आयोजन में वक्ता एवम् श्रोता के रूप में आमंत्रित बहुत सज्जन पधारे। परन्तु वेश-द्वय एक ऐसी वस्तु है जो बिन बुलाये आर्य समाजो आयोजनों में उपस्थित रहती है। इन वेश-द्वय (श्यायराव और इन्द्रदेव) को आयोजक बुलाते इसलिए नहीं कि ये उत्सव और आयोजन में विघ्न डालने वाले तत्व हैं, उसमें किसी भी रूप में सहयोग करने वाले नहीं। आर्यसमाज और ऋषि दयानन्द से इस नास्तिक मण्डली को कितना सरोकार है—यह तो कोई बताने वाली बात नहीं रह गयो। प्रत्येक जागरूक आर्य सज्जन अब इस बात को भली प्रकार समझ गये हैं। मैं तो इनके ढोंग को तब से जानता और समझता हूं जब इनके प्रभाव में प्रो० राजेन्द्र जिज्ञासु जैसे विचारशील आर्य लेखक और भाई अनूपसिंह जी जैसे सुयोग्य आर्य युवक आये हुए थे। पिछले महीने "नवभारत टाइम्स दैनिक" में एक दिन सम्पादक के नाम पत्र वाले स्तम्भ में श्री अनूपसिह जी का स्पष्टीकरण श्री श्यामराव जी के सम्बन्ध में पहली बार देखने में आया परन्तु मन प्रसन्न हो गया कि चलो हमारे एक और साथी को सत्य का पता चल गया जैसे दो वर्ष पूर्व माननीय जिज्ञासु जी को चला था। मेरी तो इस श्यामराव एण्ड कम्पनी के सम्बन्ध में सम्मति तभी से अच्छी नहीं जब ये कलकत्ता से इधर उत्तर पश्चिम क्षेत्र में पधारे थे। इनके क्रियाकलापों एवम् विचारों को देखते हुए जब मैंने अपनी सम्मति डा० भवानीलाल भारतीय को एवं कई अन्य आर्य नेताओं को लिखी तो वे मेरी बात से सहमत निकले। मात्र एक प्रो० 'जिज्ञासु' एवं माननीय श्री अनूपसिंह जी एम. ए. ऐसे होते थे जो मेरी सम्मति को ठीक नहीं समझते थे। अस्तु।

जिस प्रकार श्री श्यामराव जी अपने दल बल सहित बिन बुलाये ही आर्य महा सम्मेलन अलवर में, और उत्तर प्रदेशीय आर्य प्र० स० के अधिवेशन में हरद्वार पहुंचे थे ठीक उसी प्रकार ये श्रीमान् ? आयोजन में विघ्न डालने के लिये कृत-संकल्प होकर मेरठ पहुंचे। मेरठ में आर्य समाज शताब्दी कार्यक्रम के अन्तर्गत यह प्रथम समारोह सुप्रसिद्ध आर्यनेता और आ. प्र. सभा उत्तरप्रदेश के प्रधान श्री पं. प्रकाशवीर जी शास्त्री के सफल नेतृत्व में आयोजित किया गया। श्री पं. नरेन्द्र पं. जगदेवसिंह सिद्धान्ती शास्त्री, ला० रामगोपाल जी शाल वाले प्रभृति नेता जहाँ आमंत्रित हों वहां बिन बुलाये पहुंचने वाले वेश-द्वय का वही हाल हुआ जो गंगा स्नान के मेले में चक्की रहाने वाले का होता है। ये श्री श्यामराव जो आयोजनों में बिन बुलाये पहुंच कर किस प्रकार व्याख्यान के लिए समय प्राप्त करना चाहते हैं—यह मैं पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करना चाहता हूं। इनका तरीका यह है कि ये आयोजनों में अपने दस पांच कम्युनिस्ट साथियों सहित पहुंचते हैं और अपने उन साथियों को यह निर्देश दिया हुआ होता है कि वे श्रोतागणों के बीच में पांच-पांच दस-दस गज के फासले पर सारे पण्डाल में बैठ जावें। जब किसी आर्य नेता या विद्वान् का भाषण होने को होता है तो इनके ये पढ़ाये हुए कम्युनिस्ट साथी इन श्री श्यामराव के आदेशानुसार बीच में उठकर खड़े होते हैं और जोर जोर से शोर मचाकर कहते हैं "हम तो स्वामी अग्निवेश जी का भाषण सुनेंगे, आप अग्निवेश जी का भाषण कराइएगा।" ऐसा ही मेरठ के समारोह में हुआ। योजना बद्ध कार्यक्रम के अनुसार श्यामराव जी के साथी श्रोतागणों के मध्य बैठ गये और एक आमंत्रित विद्वान् नेता के व्याख्यान के बीच में खड़े होकर शोर मचाना आरम्भ करदिया कि श्यामराव जी का व्याख्यान कराइएगा। संयोजक के नाते श्री पं० प्रकाशवीर जी शास्त्री को माईक पर आकर इन लोगों को सीधा करना पड़ा। श्री शास्त्रीजी ने कहा कि उत्सव को बिगाड़ने की नीयत से आने वाले आप लोगों की अपेक्षा उत्सव की सफलता और सुरक्षा चाहने वाले यहां अधिक संख्या में विद्यमान हैं इसलिये इन शोर मचाने वालों एवं मचवाने वालों का हित इसी में है कि या तो शांत बैठकर ये कार्यक्रम सुनें या फिर यहां से जहाँ चाहें वहाँ चले जायें? जब श्यामराव जी ने देखा कि यहां स्थिति अनुकूल नहीं है और आगे बढ़ने पर बन्द होने का नम्बर आ जायेगा तो वहाँ से ऐसे अन्तर्ध्यान हो गये जैसे गधे के सिर से सींग आज तक लापता हैं।

मैं श्यामराव जी एवं इनके साथियों से एक प्रश्न पूछता हूं कि आप लोगों को जहां बुलाया नहीं जाता वहां आप लोग जाते ही क्यों हैं। देहात में रहने वाले अनपढ़ व्यक्ति भी यह कहने का स्वाभिमान रखते हैं कि बिन बुलाये तो भगवान् के यहां भी न जाय परन्तु ये श्यामराव जी पढ़े लिखे होकर भी बिना बुलाये ही आयोजनों में जा विराजते हैं। ऐसा क्यों? दूसरा प्रश्न इनके समर्थकों से है कि जिस आयोजन में इनका नाम आमंत्रित वक्ता महानुभावों में नहीं है उनमें इनका कोई समर्थक पहुंचकर इनके व्याख्यान की आशा या प्रयत्न करे तो वह मूर्खता है जैसे कांग्रेस के किसी समारोह में कोई संघ समर्थक पहुंचें और वह आशा या प्रयास करे कि यहां भाषण श्री अटल बिहारी वाजपेयी का कराया जाय तो उसे मूर्ख तो कहा ही जायेगा साथ ही साथ उसे धक्के देकर बाहर भी निकाल दिया जायेगा। मैं श्यामराव जी के समर्थकों से पूछता हूं कि भाई जब कांग्रेस के समारोह में वाजपेयी जी को भाषण नहीं हो सकता तो यहाँ आर्यों के समारोह में इन कम्युनिस्ट विचारों वाले श्यामराव जी का कैसे हो सकता है। यदि आपको श्यामाराव जी के भाषण सुनने का बहुत अधिक उतावलापन है तो पल्ले से पैसा खर्च करके आयोजन करो और श्री श्यामराव जी के दो चार क्या सौ पचास भाषण कराओ जिससे सुनते सुनते स्वयं भी कानों पर हाथ रख जाओ। पर यदि समझदारी से काम न लिया और श्री श्यामराव जी एवम् उनके साथी अन्य लोगों के आयोजनों में पहुंच कर धींगामुस्ती करने का सिलसिला जारी रखेंगे तो उसी तरह बेइज्जत हो कर निकलना पड़ेगा जैसे मेरठ में हुआ।

एक बात और पाठकों की जानकारी के लिए मैं प्रस्तुत करना चाहता हूं। एक सज्जन मुझसे कहने लगे कि जब श्री श्यामराव जी आर्य नहीं हैं तो इन्हें आर्यों के गढ़ हरयाणा में प्रश्रय कैसे मिल गया। इसका कारण था आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब के संगठन में पारस्परिक फूट और हरयाणा के आर्यों का भोलापन। प्रो० रामसिंह जी के गुट के विरुद्ध प्रयोग में लाने के लिये एक बार तो सहारा इन्हें दिया श्री वीरेन्द्र जी एवं उनके साथियों ने। एवं भोलेपन में श्री इन्द्रदेव जो को वजह से कृपा मिल गई हरयाणा वासियों की। पर अब तो वहां से भी इनके पैर उखड़ गये। यह आर्यों की आपसी फूट का ही परिणाम था कि श्री श्यामराव जी ने हरयाणा में श्री पं० समरसिंह वेदालंकार के साथ दुर्व्यवहार करने का दुस्साहस किया था। अब वहां भी लोग इनकी वास्तविकता को समझ गये हैं और इनसे सावधान हैं। जहां आर्यों में एकता हो वहां तो ये पहुंचते ही नहीं और पहुंचे भी हैं तो इनसे कुछ बनता बिगड़ता नहीं। जिससे पुरुषार्थ करके कमाया खाया न जाय वह किसी न किसी बहाने खाने का धंधा करता है। स्वामी दयानन्द और आर्य समाज का नाम लेकर ऐसा ही श्री श्यामराव जी ने किया वरना वैसे न वैदिक विचार धारा को मानते हैं और न इनका इससे कुछ वास्ता। अच्छा हो कि आर्य समाजों एवं सभाओं के अधिकारी ८-७-७३ के लिए प्रकाशित आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के साप्ताहिक मुखपत्र 'आर्यमर्यादा' में भाई श्री अनूपसिंह जो एम. ए. का लेख पढ़ें और इस ढोंगी कम्पनी के किसी भी सदस्य (वेश-द्वय) को किसी आयोजन में कदापि न बुलाये। ●

अज्ञात जीवनी-सिद्धान्त पक्ष की बात (२)

(ले० डा० भवानीलाल भारतीय अजमेर)

गत लेख में मैंने इस विषय की चर्चा की है कि अज्ञात जीवनी की जिस कल्पनिक पृष्ठभूमि का निर्माण पं० दीनबन्धु जी ने किया वे स्वयं ही उसमें फंस गये हैं। योगी जी तो एक ऐसे मुदई के वकील बन गये हैं जिसका मुकद्दमा बड़ा कमजोर है। अपने एक लेख में मेरे ही शब्दों का प्रयुक्त करते हुये वे लिखते हैं कि "भारतीय जी ने इस सम्पूर्ण आलोचना में एक ही सत्य बात लिखी है कि वे योग का क. ख भी नहीं जानते।" इसे उन्होंने व्यंगपूर्वक उद्धत किया है। मैं इसे स्वीकार करता हूं परन्तु साथ ही यह भी कहना चाहता हूं कि योगी जी को भी स्वामी दयानन्द की जीवनी का क, ख का भी पता नहीं है। वे आलोचना और चर्चा करते हैं बंगाल में स्वामी दयानन्द के निवास और कार्य की, जब कि उन्हें बंगाल के महापुरुषों का कैसा विचित्र ज्ञान है उसकी बागनी देखिये।

(१) १० सितम्बर ७२ के अपने लेख में वे लिखते हैं—क्या भारतीय जी के अनुसार महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर, पं० ईश्वरचन्द्र विद्या सागर, श्री ब्रह्मानन्द, श्री केशवचन्द्र सेन ने ऋषि की वाणियों को लिपि बद्ध नहीं कराया? कोई योगी जी से पूछे ये ब्रह्मानन्द कौन हैं? उन्हें इस बात का पता नहीं कि केशवचन्द्र सेन को ही देवेन्द्रनाथ ने 'ब्रह्मानन्द' की उपाधि से विभूषित किया था। वे उनका पृथक् उल्लेख कर अपने इतिहास ज्ञान के पिछड़े पन को प्रकट करते हैं।

(२) अपनी इस लेखमाला के एक लेख में तो योगी जी ने और भी विचित्र बात लिख दी। आप यह लिख बैठे कि कलकत्ता में जब स्वामी जी ने अपने ही मुख से यह बातें सुनाई तो श्रोताओं ने बंगाल के राजा राम मोहन राय, केशवचन्द्र सेन आदि सब ही थे। अपने ४ फरवरी ७३ के लेख में योगी जी लिखते हैं—"उनके जीवन काल में प्रकाशित करने का प्रश्न ही नहीं उठता। ऋषिवर १८७३ अप्रैल में, काशी विजय के पीछे कलकत्ता में चार मास रहे थे। तब जीवनी लिखाई थी। और बंगाल के मूर्धन्य नेताओं को प्रभावित किया था। जिन में राजा राम मोहन राय, चन्द्रसेन आदि सब ही थे।"

योगी जी! यदि आप में तनिक भी गैरत बाकी है तो मात्र इस मिथ्या पंक्ति के कारण ही लज्जा अनुभव कीजिये अज्ञात जीवनी की थोथी वकालत से उपराम हो जाइये। श्रीमन् आपको यही पता नहीं कि राजा राम मोहन राय जिस समय १८३३ ई. में स्वर्ग वासी हुये उस समय तो दयानन्द मात्र ८ वर्ष के बालक ही थे। आपके निराले योग का ही यह चमत्कार है कि आपने १८३३ में मरे राजा राम मोहन राय को जीवित कर ही नहीं किया अपितु ४० वर्ष पश्चात् उसे दयानन्द की इस अज्ञात जीवनी का वर्णन सुनाने के लिये परलोक से बुला कर कलकत्ता में उपस्थित भी कर दिया। जिस आदमी को ऐसी स्थूल बातों का भी ज्ञान न हो वह दयानन्द की जीवनी की तिथियां संवतों तथा घटनाओं के पौरवापर्य को समझने में कैसे समर्थ हो सकता है।

पुनः मैं प्रसंग पर आता हूं। अपने प्रथम लेख में योगी जी लिखते हैं दिन बन्धु जी १९३३ में अजमेर में श्री दयानन्द निर्माण अर्ध शताब्दी के अवसर पर दिये गये अपने भाषण में उस अज्ञात जीवनी की चर्चा की थी यह योग जी ने भी लिखा है और इधर आर्य संसार के मई जून ७३ के अंक में स्वयं दीनबंधु जी ने भी यह लिखा है कि १९३३ में उत्सव के तीसरे दिन उन्होंने महर्षि की गुप्त और लुप्त जीवनी का भाषण दिया था जब वे कहते हैं तो ठीक ही होगा परन्तु पं० दीनबंधु जी की याददाश्त को ताजा करने के लिये यहाँ मैं निर्वाण अर्द्ध शताब्दी के प्रकाशित विवरण के पृ. ६३ पर प्रकाशित उनके भाषण के संक्षेप को यथावत् उद्धृत करता हूं। इस उद्धरण से तो यह कथमपि सिद्ध नहीं होता कि पं० दीनबंधु जी ने जो व्याख्यान दिया था उसमें स्वामी जी के लुप्त जीवन चरित्र की कोई चर्चा रही होगी। विवरण में यह लिखा गया है—

"आज रात्रि को (१७ अक्टूबर १९३३) पं० दीनबंधु जी का व्याख्यान हुआ जिसका सार यह है जितना आर्यसमाज का प्रचार उत्तर भारत में हुआ है उतना कहीं भी नहीं हुआ। लगभग उसी समय ही बंगाल में ब्राह्म समाज तथा प्रार्थना समाज (पाठक नोट करें पं० दीनबंधु जी गलती पर हैं। प्रार्थना समाज का प्रादुर्भाव महाराष्ट्र में हुआ न कि बंगाल में) का प्रादुर्भाव हुआ किन्तु उनके द्वारा हिन्दु जाति का विशेष उपकार नहीं हुआ। बंगाल में अभी थोड़े ही समय में आर्यसमाज का कार्य प्रारम्भ हुआ है और उसे वहां सफलता भी मिल रही है। यदि हम पूरी लगन से बंगाल में वैदिक धर्म का प्रचार करें तो हमें वहाँ पूरी सफलता मिल सकती है। अतः हमारा कर्त्तव्य है कि हम बंगाल में पूरी लगन वाले आर्य विद्वानों को भेज कर वहाँ वैदिक धर्म का प्रचार करावें।" श्रीमद्दयानन्द निर्वाण अर्द्ध शताब्दि महोत्सव अजमेर का विवरण पृ.६३

मेरे इस कथन पर पं० दीनबंधु जी कहेंगे कि मैंने अपने उस ४ वर्ष पूर्व दिये गये भाषण में निश्चय ही स्वामी जो लुप्त व गुप्त जीवन चरित्र की चर्चा की थी। हो सकता है विवरण प्रस्तुत कर्त्ता उस विषय का उल्लेख करना भूल गया हो। मेरा निवेदन है कि किसी भी भाषण का संक्षेप कर्त्ता अपने सार संक्षेप में उस भाषण के मूल और प्रधान विषय का उल्लेख करना कभी नहीं भूलेगा। क्या इस विवरणकार को इस बात का पता नहीं था कि पं० दीनबंधु के भाषण का विषय क्या था? खैर इस पर बहस करने से कोई लाभ नहीं। पं० इन्द्रजी अपने आर्यसमाज के इतिहास के पृ. १७८ पर दीनबंधु जी के भाषण देने का तो उल्लेख किया है पर यह कहीं नहीं लिखा कि वे स्वामी जी की 'गुप्त और लुप्त जीवनी' पर बोले।

इसी लेख में योगी जी का कहना है कि १९२५ ई० में जब मथुरा में ऋषि की जन्म शताब्दी मनाई उस समय भी आर्य-नेताओं ने इस अज्ञात जीवनी के बारे में विचार विमर्श किया था।" मैंने सार्वदेशिक सभा के तत्कालीन मंत्री डा. केशव शास्त्री द्वारा सम्पादित श्रीमद्दयानन्द जन्म-शताब्दी वृत्तान्त जो २५० पष्ठों का बड़े आकार का ग्रन्थ है आद्योपान्त देख डाला। उसमें मुझे यह गंध कहीं नहीं मिली कि मथुरा में स्वामीजी इस अज्ञात जीवनी की कोई चर्चा हुई हो। यदि योगीजी प्रमाण बतायें तो उचित होगा। इसी प्रकार १९२६ में टंकारा में जो जन्म शताब्दी मनाई गई उसका विचार भी बम्बई आर्य-प्रतिनिधि सभा द्वारा १९३० ई० में श्री विजयशंकर मूलशंकर द्वारा सम्पादित कराकर प्रकाशित किया गया था। इस ११२ पृष्टों की पुस्तक में भी अज्ञात जीवनी का कहीं उल्लेख नही है और उस समय के व्याख्यानों में यह किसी ने नहीं कहा कि अज्ञात जीवनी के इस अनुसंधान कार्य को प्रोत्साहन दिया जाय। इसके विपरीत उस शताब्दी में तो पं० देवेन्द्र नाथ मुखर्जी द्वारा किये गये अनुसंधानों को ही पुष्ट किया गया। उक्त सम्मेलन में दयानन्द के बालसखा इब्राहीम तथा उनकी बहिन प्रेमबा के पौत्र पोपट राबल ने उपस्थित होकर जो बातें स्वामी जी के बाल्यकाल के सम्बन्ध में कहीं वे देवेन्द्र नाथ के जीवन चरित्र से भी मेल खाती हैं परन्तु अज्ञात जीवनी में स्वामी जी की जो बाल्यवस्था की लीलायें वर्णित की गई हैं उनसे कतई मेल नहीं खाती। सिद्ध हुआ कि १९२५,२६ तथा ३३ में पं० दीनबंधु ने अज्ञात जीवनी की चर्चा उठाई, इसका कोई पुष्ट प्रमाण नहीं मिलता, मिलता हो तो बतायें, हम स्वीकार करेंगे।

मैं पहले ही लिख चुका हूं इन्द्र जी रचित आर्यसमाज के इतिहास में अज्ञात जीवनी की कहीं चर्चा नहीं है। इन्द्रजी ने अपने इतिहास में जिस खोज की चर्चा की है वह अज्ञात जीवनी की चर्चा नहीं अपितु पं० हेमचन्द्र चक्रवर्ती की पांच मास की डायरी का उल्लेख है। इस डायरी को निश्चय ही पं० दीनबंधुजी ने खोजा था और इसका श्रेय उन्हें मिलना ही चाहिये मैं अपने पूर्वलेखों में हेमचन्द्र चक्रवर्ती की डायरी की प्रामाणिकता को बार-बार स्वीकार कर चुका है। बात यह है कि दीनबंधु जी के खोज की सीमा यदि इस डायरी तक ही रहती तो उचित था। इसके आधार पर अज्ञात जीवनी की प्रामाणिकता की नींव खड़ा करना धोखाधड़ी है। बात यह है कि दीनबंधु जी हेमचन्द्र की डायरी तथा अज्ञात जीवनी को गड्डमड्ड करना चाहते हैं। वे एक की प्रामाणिकता से दूसरी की प्रामाणिता सिद्ध करना चाहते हैंजब कि तथ्य यह है कि डायरी प्रामाणिक है और अज्ञात जीवनी कल्पित।

(शेष पृ० ६ पर)

पृ० ८ का शेष

अब इन्द्र जी के शब्द ध्यान से पढ़िये—"यह तो स्वामी दयानन्द जी के पांच मासों के बंगाल वास का वर्णन संक्षेप में कई लेखक (स्वामी जी के प्रसिद्ध जीवनी लेखकों से अभिप्राय है) दे देते हैं पर अभी नई खोज के आधार पर इस पंचमासिक वास का कुछ अधिक विवरण देना आवश्यक है। ध्यान रहे कि यह नई खोज स्वामी जी के बंगाल प्रवास के ५ मास की है न कि उनके जन्म से लेकर कलकत्ता आने तक के ४९-५० वर्षों के अधिकांश जीवन को जैसा कि अज्ञात जीवनी के लेखक का दावा है। अपनी बात को स्पष्ट करते हुए इन्द्र जी आगे लिखते हैं—"आदि ब्राह्मसमाज के उपदेशक हेमचन्द्र चक्रवर्ती की एक डायरी 'दयानन्द प्रसंग' नाम से अभी मिला है। उससे स्वामी दयानन्द के बंग वास के प्रभाव की व्यापकता स्पष्ट हो जाती है।" इसी दयानन्द प्रसंग की खोज दीनबंधु जी ने की। अत: इन्द्र जी ने आगे लिखा, "बंगाल के आर्यसमाज के पं० दीनबंधु शास्त्री को भी नवीन खोज का श्रेय देना चाहिये।'

पृ० ८५ आर्यसमाज का इतिहास भाग १

अब पाठक ध्यान से विचार करें यह 'नई खोज' कौन सी है? दयानन्द प्रसंग या अज्ञात जीवनी इन्द्र जी ने यह कहीं नहीं लिखा कि यह नई खोज जिसके लिए वे पं० दीनबंधु जी को श्रेय देना चाहते हैं वर्तमान में प्रकाशित अज्ञात जीवनी है यदि अज्ञात जीवनी से ही उनका अभिप्राय होता तो वे उसके Contents की चर्चा अवश्य करते या कम से कम इतना ही लिखते कि पं० दीनबंधु ने उस जीवनी को खोज निकाला है या खोज रहे हैं जो स्वामी जी की अद्यतन अज्ञात जीवन घटनाओं को प्रकाशित करेगी। इन्द्र जी ने ऐसा कुछ नहीं लिखा। अत: योगी जी का यह लिखना दम्भ मात्र है कि आर्य समाज के इतिहास में अज्ञात जीवनी का ऊल्लेख हुआ है।

'दयानन्द प्रसंग' ही वह सामग्री थी जो क्षितीन्द्रनाथ ठाकुर की दृष्टि में आई और जिसे दीनबंधु जी ने 'दयानन्द प्रसंग' के नाम से अनूदित किया। इस पुस्तक का हिन्दी में अनुवाद स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी ने किया था। आर्य के ऋषि बोधांक में यह 'दयानन्द प्रसंग' समग्रत: उद्धृत किया गया है। वहां उसके हिन्दी अनुवादक (स्वामी स्वतंत्रानन्द जी) की निम्न टिप्पणी भी प्रकाशित हुई है "दयानन्द प्रसंग के लेखक पं० हेमचन्द्र चक्रवर्ती आदि ब्राह्म समाज के प्रचारक हैं। १६ दिसम्बर १८७२ से भी हेमचन्द्र जी ने दयानन्द प्रसंग नाम से महर्षि के कई महीने की डायरी लिखी। दयानन्द जी बंगाल में पांच महीने तक रहे थे। हस्तलिखित संक्षिप्त डायरी से उक्त चार महीनों का विवरण मिलता है। आदि ब्राह्मसमाज के जीर्ण खाता पत्रों के भीतर से यह हस्तलिखित डायरी अकस्मात् स्वर्गीय आचार्य क्षितीन्द्र मोहन (नाथ?) ठाकुर की दृष्टि में आई। उन्होंने उस डायरी को पं० दीनबंधु जी को दिखाई। पं० दीनबंधु जी ने उस डायरी को पूरी नकल कर लिया था, यह उसी का अनुवाद है।"

इधर तो दयानन्द प्रसंग के उद्धार के लिये क्षितीन्द्र नाथ ठाकुर तथा दीनबंधु जी को श्रेय मिला, परन्तु दीनबंधु जी इन्हीं क्षितीन्द्र नाथ को अज्ञात जीवनी के अन्वेषण का प्रस्तोता बताते हुए आर्य संसार के मई जून ७३ के अंक में लिख दिया—"विभिन्न व्यक्तियों के घरों में छिन्न-भिन्न और परस्पर संगति हीन रूप में यह (अज्ञात जीवनी का मसाला) मौजूद था। श्री क्षितीन्द्र नाथ ठाकुर ने मेरी दृष्टि को इस ओर आकृष्ट किया।' अब इसे पं० दीनबंधु ही स्पष्ट करें कि ठाकुर महाशय ने उनका ध्यान दयानन्द प्रसंग की ओर आकृष्ट किया था।" या विभिन्न घरों से प्राप्त अज्ञात जीवनी की ओर।

परन्तु मैं तो यहां इतने स्पष्ट प्रमाण प्रस्तुत कर रहा हूं जिससे स्पष्ट हो जायगा कि पं० दीनबंधु ने दयानन्द प्रसंग को ही खोजा था और उसी की प्रशंसा पं० इन्द्र जी तथा पं० भगवद्दत जी ने की थी। कलकत्ता आर्य समाज के मुख पत्र आर्य संसार के दिसम्बर १९६७ में प्रकाशित विशेषांक के पृष्ठ १५१ को देखिये। आर्य समाज कलकत्ता पूर्व सूत्र (सम्पादक संकलित) शीर्षक लेख में लिखा गया है—"हाल ही में स्वामी जी के चार महीने बंगाल में रहने का पूरा विवरण क्षितीन्द्रनाथ जी के घर से मिला है। उसका प्रकाशन भी आर्यसमाज कलकत्ते की तरफ से १९५४ ई० में दयानन्द प्रसंग के नाम से किया गया है। स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी ने इसका हिन्दी अनुवाद किया था। पं० भगवद्दत्त जी और प्रो. इन्द्र जी विद्यावाचस्पति ने अपने ग्रन्थों में इस दयानन्द प्रसंग पर हर्ष प्रकट किया है।" योगी जी तथा आर्य संसार के सम्पादक पं० उमाकान्त उपाध्याय जी उक्त पंक्तियों पर ध्यान दें। इन्द्र जी ने हर्ष किस खोज पर प्रकट किया, दयानन्द प्रसंग के अन्वेषण पर या इस कल्पनाप्रसूत अज्ञात जीवनी की खोज पर पं० इन्द्र जी के हर्ष प्रकट करने का तो कोई प्रश्न ही नहीं उठता, क्योंकि उनका स्वर्गवास अज्ञात जीवनी के अवतार के पूर्व ही १९६३ में हो गया था। अत: उन्हें यह स्वीकार कर लेना चाहिये कि 'दयानन्द प्रसंग' का ही उल्लेख आर्यसमाज के इतिहास में किया गया है। आर्य संसार के हीरक जयन्ती के विशेषांक में भी दीनबंधु जी का जो लेख प्रकाशित हुआ है उसमें भी उपर्युक्त पंक्तियां लिखी गई हैं। इन्हें 'दयानन्द जीवनी साहित्य' में पृ० २३ पर पण्डित युधिष्ठिर जी ने उद्धृत किया है। अब पाठक समझ लें कि दयानन्द प्रसंग को भुला कर अज्ञात जीवनी का प्रचार करना कहां तक उचित है? (क्रमश:)

नास्तिक समय मतिभ्रष्ट

(श्री कवि कस्तूरचन्द 'घनसार' कवि कुटीर पीपाड़ शहर (राज०)

प्रलयकार है उमड़ाये घन, बूंद-बूंद जिसकी अङ्गार॥
जलने लगे सभी है जिसमें, समुच्छेद-सा रहा कुभाव!
जगह-जगह शत्रु करते चलते, गरल गहन-सी फूंक दबाव!!
व्यस्त हुए व्यापन्न जन क्षुधित, लगा रहे दु:ख वन में दौड़!
रहा अभाव विश्वस्त किसका, मिली एकसी खबर जोड़!!
सम्भ्रम वने लोग जन-भावुक, बढ़ते चले कनिष्ट लबार!
प्रलयकार है उमड़ाये घन, बूंद-बूंद जिसकी अङ्गार!!

भ्रष्टाचार बौछार दु:खद-सी, तड़ित दमकती रहे कुनीति।
व्यभिचारिणी डायन घर-घर, रही दिखाती है मन्द प्रीति॥
स्वार्थ प्रेत लगा जन-जन को, वायस वाक् बने हैं लोग।
सठ-पलटन को प्रमत्त बनकर, मोषक बन-बन करते भोग॥
निकृष्ट निनाद गर्जना करते, संघर्ष अहर्निश चले अपार!
प्रलयकार है उमड़ाये घन, बूंद-बूंद जिसकी अङ्गार॥ २॥

मेघिर काज देखते टक-टक, बेअदबी करते अपमान!
सत्क्रिया को समेट रखी है, निर्जल निर्थक बने निदान॥
चण्ट-चाटु चटखोरा बन कर, कलित कर्म की करे मजाक!
कुकर्म कर्दम समझे उज्वल, आम उखाड़ बोहते आक॥
ताण्डव नृत करें है नित ही, राज्य नीति का नया शृङ्गार।
प्रलयकार है उमड़ाये घन, बूंद-बूंद जिसकी अङ्गार॥ ३॥

गह-गह निर्दय नदियां चलती, विलासता का धरके वेग।
नीरव यमनि अधर्म की फिर, तस्कर लूटे ले करे तेग॥
करे आलाप स्वार्थी मायूर, मधुर-मधुर है मन में ओर।
उल्लू सीधा करते उल्लू, रहा भयङ्कर उनका शोर॥
भये भयातुर दीन विचारा, कान न देते करे पुकार।
प्रलयकार है उमड़ाये घन, बूंद-बूंद जिसकी अङ्गार॥ ४॥

कुकर्म कुहरा सदन सदन में, घुस कर किया आच्छादित रूप।
निर्धारित सद्धर्म निरावर्ण, किया सु साध्य श्रुति अनुरूप॥
विश्व-वियत घन घोर एक-सा, बृहत् गिरि-कण एक समान।
'घनसार' रखे अब किसका गौरव, अन्तरिक्ष तक एक वितान॥
चमकेंगे कब द्योत प्रभाकर, निकर न्याय की दे ललकार।
उमड़ाये हैं प्रलयकार घन, बूंद-बूंद जिसकी अङ्गार॥ ५॥

सत्यार्थप्रकाश के सौ आदर्श वचन (३)

[पं० देवेन्द्रनाथ शास्त्री एम० ए०, १५ आर्य कुटीर, नरेला (दिल्ली)]

समुल्लास ६—

१. एक को स्वतन्त्र राज्य का अधिकार न देना चाहिये किन्तु राजा जो सभापति तदधीन सभा, सभाधीन राजा, राजा और सभा प्रजा के आधीन और प्रजा राजसभा के आधीन रहे।

२. जब तक मनुष्य धार्मिक रहते हैं तभी तक राज्य बढ़ता रहता है और जब दुष्टाचारी होते हैं तब नष्ट भ्रष्ट हो जाता है।

३. प्रशंसनीय धार्मिक पुरुषों को राजसभा के सभासद् और जो उन सबमें सर्वोत्तम गुणकर्म स्वभाव युक्त महान् पुरुष हो उसको राजसभा का पतिरूप मान के सब प्रकार से उन्नति करें।

४. जो जितेन्द्रिय कि अपनी इन्द्रियों (जो मन प्राण और शरीर प्रजा है) इसको जीते बिना बाहर की प्रजा को अपने वश में स्थापन करने को समर्थ कभी नहीं हो सकता।

५. प्रजा के धनाढ्य, आरोग्य, खानपान आदि से सम्पन्न रहने पर राजा की बड़ी उन्नति होती है।

६. यह बात ठीक है कि राजाओं के राजा किसान आदि परिश्रम करने वाले हैं और राजा उनका रक्षक है।

७. जो तेरे हृदय में अन्तर्यामी रूप से परमेश्वर पुण्य पाप का देखने वाला मुनि स्थित है उस परमात्मा से डरकर सदा सत्य बोला कर।

८. सर्वदा शरीर और आत्मा के बल को बढ़ाते रहना चाहिये।

९. राजा और राजपुरुषों को अति उचित है कि कभी दुष्टाचार न करें किन्तु सब दिन धर्म न्याय से वर्त्त कर सबके सुधार का दृष्टान्त बनें।

समुल्लास ७—

१. हे मनुष्य, तू अन्याय से किसी के धन की आकांक्षा मत कर। उस अन्याय को त्याग और न्यायाचरण रूप धर्म से अपने आत्मा से आनन्द को भोग।

२. स्तुति का फल यह है कि जैसे परमेश्वर के गुण हैं वैसे गुण कर्म स्वभाव अपने भी करना। जैसे वह न्यायकारी है तो आप भी न्यायकारी होवे।

३. अपने पुरुषार्थ के उपरान्त प्रार्थना करनी योग्य है।

४. अपने आत्मा को परमेश्वर की आज्ञानुकूल समर्पित कर देवे।

५. जो परमेश्वर की स्तुति प्रार्थना नहीं करता वह कृतघ्न और महामूर्ख भी होता है। क्योंकि जिस परमात्मा ने इस जगत् के सब पदार्थ जीवों को सुख के लिये दे रक्खे हैं उसका गुण भूल जाना ईश्वर ही को न मानना कृतघ्नता और मूर्खता है।

समुल्लास ८—

१. अल्प विद्यायुक्त, स्वार्थी, इन्द्रियाराम पुरुषों की लीला संसार का नाश करने वाली है।

२. आर्य नाम धार्मिक, विद्वान्, आप्त पुरुषों का है।

३. कोई कितना ही करे परन्तु जो स्वदेशी राज्य होता है वह सर्वोपरि उत्तम होता है। अथवा मतमतान्तर के आग्रह रहित अपने और पराये का पक्षपात शून्य प्रजा पर पिता माता के समान कृपा, न्याय और दया के साथ विदेशियों का राज्य भी पूर्ण सुखदायक नहीं।

४. जीव कर्म करने में स्वतन्त्र परन्तु कर्मों के फल भोगने में ईश्वर की व्यवस्था से परतन्त्र है। (क्रमशः) ●

भारत सरकार से प्रबल मांग की जाय

प्रत्येक वर्ष की भाँति, इस वर्ष भी राष्ट्रीय रक्षा एकेडेमी के जुलाई ७४ में आरम्भ होने वाले ५२ वें कोर्स में प्रवेश के लिए उम्मीदवारों के चयन हेतु दिसम्बर, ७३ में संघ लोक सेवा आयोग द्वारा जल, थल और वायु सेना के लिए एक सम्मिलित परीक्षा ली आएगी। परीक्षा में निर्धारित २५० अंक के अंग्रेजी विषय के अतिरिक्त ४०० अंक के सामान्य ज्ञान के प्रश्न और २५० अंक के गणित के प्रश्न-पत्र होंगे। सामान्य ज्ञान और गणित के प्रश्न-पत्रों के उत्तर परीक्षा के नियमानुसार अंग्रेजी में दिए जाने अनिवार्य हैं। उक्त परीक्षा में हायर सैकेण्डरी या उसके समकक्ष योग्यता के परीक्षार्थी बैठ सकते हैं।

अब भारत के प्रायः सभी स्कूलों में शिक्षा और परीक्षा का माध्यम हिन्दी तथा क्षेत्रीय भाषाएं हो चुकी हैं। संघ लोक सेवा आयोग द्वारा इस समय भारतीय प्रशासनिक सेवा तथा अनेक अखिल भारतीय स्तर की उच्च सेवाओं में भरती के लिये जो परीक्षायें ली जाती हैं उनमें सामान्य ज्ञान तथा प्रस्ताव (निबन्ध) के प्रश्न-पत्रों के उत्तर हिन्दी में दिए जाने की सुविधा रहती है। अतः राष्ट्रीय रक्षा एकेडेमी की परीक्षा के लिए भी सामान्य ज्ञान तथा गणित के प्रश्न-पत्रों के उत्तर हिन्दी में भी दिए जाने की सुविधा प्रदान कराने की कृपा की जावे। अनेक विश्वविद्यालयों में हायर सैकेण्डरी के स्तर तक अंग्रेजी को एक अनिवार्य विषय न रखकर केवल ऐच्छिक विषय बना दिया है। न्याय की दृष्टि से यह भी आवश्यक है कि अंग्रेजी विषय के विकल्प में हिन्दी विषय का भी विकल्प रहे।

२-यदि सामान्य ज्ञान और गणित के प्रश्न-पत्रों में हिन्दी के विकल्प की सुविधा न दी गई और अनिवार्य अंग्रेजी विषय में हिन्दी विषय को विकल्प नहीं दिया गया तो उक्त रक्षा एकेडेमी परीक्षा के द्वार केवल अंग्रेजी माध्यम से शिक्षा देने वाले कुछ पब्लिक स्कूलों के विद्यार्थियों के लिये खुले रहेंगे और उन गरीब किसानों, मजदूरों तथा मध्यम श्रेणी के लोगों के बच्चों के लिए जो सरकारी अथवा निजी स्कूलों में हिन्दी माध्यम से शिक्षा प्राप्त करके निकलते हैं बंद हो जायेंगे। अतः इन सभी दृष्टियों से अनुकूल विचार करके शीघ्र ही आदेश भारत सरकार देवे।

विशेषः—शिक्षित सज्जनों और विशेष कर सैनिक शिक्षा दिलाने के इच्छुक महानुभावों को आगे लिखे पत्तों पर अपनी मांग भेजें।

१. श्री बाबू जगजीवन राम, रक्षा मंत्री भारत सरकार नई दिल्ली
२. श्री विद्याचरण शुक्ल, रक्षा राज्य मंत्री, नई दिल्ली।
३. श्री उमाशंकर दीक्षित, गृह मंत्री, नई दिल्ली। [सम्पादक] ●

"वही हमारा आर्य समाज"

(श्री राधेश्याम श्रीवास्तव 'आर्य' एडवोकेट ३५ राणाप्रताप मार्ग लखनऊ-१)

जिसने महिमण्डल को फिर से वेदों का संदेश दिया।
भ्रमित जनों को मार्ग दिखा कर, पावनतम उपदेश दिया।
जिसके संस्थापक थे ऋषिवर दयानन्द से विज्ञाता।
जो आगे बढ़ बना देश का गौरव-मण्डित भाग्य विधाता।

मनुष्यता संपूरित जो है सत्य-अहिंसा जिसकी साज।
सत्य-शिवं-सुन्दरता जिसमें वही हमारा आर्य समाज॥

लेखराम-श्रद्धानन्द जैसे मिले इसे हैं बलिदानी।
भारत के इतिहास पृष्ठ पर जिनकी अंकित हुई कहानी।
जिसके अमर सपूतों ने है तोड़ा भारत मां का बन्धन।
जिसने नष्ट किया भारत की अबलाओं का दारुण क्रन्दन।

हर्षित सा है पूर्ण किया उसने जीवन शत वर्ष आज।
सत्य-शिवं-सुन्दरता जिसमें वही हमारा आर्य समाज॥

भूले भारत के जनगण को जिसने मार्ग दिखाया है।
वैदिक संस्कृति पुरा काल की पुनः खींच कर लाया है।
जिसने भूमण्डल भर के अज्ञान तिमिर को ललकारा।
बीच भंवर में फंसी मनुषता को नूतन मिल गया सहारा।

ढोंगी-ठग मुल्लाओं का सब जिसने खोल दिया है राज।
सत्य-शिवं-सुन्दरता जिसमें वही हमारा आर्य समाज॥

आर्य समाज बढ़े उन्नति पर स्वर्ग बनेगी वसुन्धरा।
कण कण प्रमुदित होगा निश्चय हर्षित होगी दिव्य धरा।
बढ़ो! सपूतों!! ओ३म् ध्वजा सारे जग में लहराना है।
शांति-सफलता-समृद्धि के संगीत हमें अब गाना है।

दृगउन्मेष कर रहीं दिशाएं जाग उठा है अब गिरिराज।
सत्य-शिवं-सुन्दरता जिसमें वही हमारा आर्य समाज॥ ●

आर्यसमाज अजमेर का ऐतिहासिक पत्र

महर्षि दयानन्द जी को विष देने से रुग्ण होने पर सभी जगह दुःखद समाचार पहुंचे। तब जि० मुजफ्फरनगर के शोरम गांव ने चौ० नानक चन्द पहलवान और पं. शंकरदास को ठीक जानकारी लाने के लिए अजमेर भेजा। जब वे दोनों अजमेर पहुंचे तब तक ऋषि का स्वर्गवास हो चुका था और दाहसंस्कार भी किया जा चुका था। उनको भारी दुःख हुआ। तब उन्होंने ५१ रु० आर्यसमाज को दाह सामग्री निमित्त दान दिये। उसकी रसीद उनको दी गई—उसकी मूल प्रति सर्वखाप पंचायत के मंत्री चौ० कबूलसिंह गांव शोरम के पास सुरक्षित थी। उन्होंने हमें प्रकाशनार्थ आर्यमर्यादा के कार्यालय में भेजी। उसकी शुद्ध प्रतिलिपि हम आगे प्रकाशित कर रहे हैं—

आदरणीय पं० चौ० नानकचन्द व पंडित शंकरदास निवासी ग्राम शोरम, तहसील बुढाना जिला मुजफ्फरनगर सूबा आगरा व अवध से ५१) दान हेतु मिले। आप देव दयानन्द का व्यौरा पता लेने अजमेर आये थे। यह धन देव दयानन्द के अन्तिम संस्कार में जो केसर कस्तूरी चन्दन सामग्री आई थी। उस खाते में जमा कर लिया है, तिथि कार्तिक सुदी चौथ सम्वत १६४० विक्रमी। आपका ग्राम धन्यवाद का पात्र हैं जिसके लोगों ने देव दयानन्द की पीड़ा की खबर लेने आपको अजमेर भेजा। हमें भी दुःख है कि आपको देव दयानन्द के दर्शन नहीं हो सके। धन प्राप्त कर्त्ता आर्यसमाज का सभासद लाला जेठमल अजमेर निवासी।

संवत् १६४० कार्तिक सुदी चौथ।

पुस्तक समालोचना—

(१) नाम पुस्तक—चिकित्सा भास्कर (पूर्वार्ध-उत्तरार्द्ध) ग्रन्थ कर्त्ता श्री चौ० हरिसिंह चिड़ी निवासी। पृष्ठ सं० २६४, मूल्य ४ रुपये। प्रकाशक—श्री वेदव्रत शास्त्री आयुर्वेदाचार्य अध्यक्ष आचार्य प्रकाशन, दयानन्द मठ रोहतक (हरयाणा) द्वितीय संस्करण।

आलोचना—

चौ० हरिसिंह जी वैद्य जो कि इस ग्रन्थ के लेखक हैं, वृद्ध अनुभवी जन हितैषी सज्जन हैं। इस पुस्तक में पूर्वार्द्ध में ३२ और उत्तरार्द्ध में ११ विषयों पर प्रकाश डाला गया है। प्रत्येक रोग की ओषधि, ओषधि के बनाने की विधि, ओषधि के गुण, ओषधि का अनुपान और विशेष ओषधि में वर्णित पदार्थ के बनाने की रीति तथा रोगी को देने के लिए मात्रा भी बताई गई है।

इस पुस्तक से रोगी और वैद्य भी अच्छा लाभ उठा सकते हैं। कागज छपाई आदि उत्तम हैं। मूल्य उचित रखा गया है। आशा है सब ही लोग इसको खरीद कर आयुर्वेद के प्रचार को योग देंगे। पुस्तक ऊपर लिखे प्रकाशक के पते से मिल सकती है।

(२) नाम पुस्तक—श्री दयानन्दर्षिचरितम्। लेखक—श्री विद्यानिधि शास्त्री व्याकरणाचार्य, प्रकाशक—हरयाणा साहित्य संस्थान, गुरुकुल झज्जर (रोहतक)। पृष्ठ संख्या १३६, मूल्य दो रुपये। प्रथम संस्करण।

समालोचना—इस चरित्र के प्रणेता संस्कृत साहित्य के प्रकाण्ड विद्वान् हैं। हरयाणा राज्य स्थित गुरुकुल भैंसवाल (सोनीपत) के प्राध्यापक हैं। संस्कृत भाषा पर इनका अधिकार है। इस पुस्तक को पढ़ने से पूर्व लेखक महोदय का "ग्रन्थकर्त्तुरावेदनम्" संस्कृत भाषा विज्ञों को अवश्य पढ़ना चाहिए। इससे इनकी विद्या का स्पष्ट द्योतन हो जाता है। गद्य रचना में साहित्य के अनुप्रास, माधुर्य, ओज, प्रसाद और वीर भाव आदि गुणों का समावेश किया गया है। महर्षि दयानन्द के जीवन वृत्त को देववाणी में लिख पंडित समाज में ऋषि कीर्ति का सुप्रचार और प्रसार करते हुए अपने जीवन को भी धन्य कर लिया है। पुस्तक सब ढंगों से पठनीय, मननीय और ग्रहण करने योग्य है। हम लेखक महानुभाव का इस उत्तम कृति के लिए आभार और आदर प्रकट करते हैं। पाठकों की सुविधा के लिए आरम्भ में ही शुद्धाशुद्धिपत्र भी लगा दिया है। कागज छपाई आदि बहिरंग भी अन्तरङ्ग के समान ही स्वच्छ है। हम संस्कृत भाषा के अनुरागियों से विनम्र निवेदन करते हैं कि पुस्तक से अवश्य स्वयं लाभ उठावें तथा अन्यों को लाभ ग्रहण करने के लिए खरीद कर प्रेरित करें। पुस्तक ऊपर लिखे प्रकाशक के पते से मिल सकती है। मूल्य कम ही रखा गया है।

—जगदेवसिंह सिद्धान्ती शास्त्री

दिल्ली गुरुकुल दयानन्द वेद विद्यालय में भयंकर चोरी और सर्वनाश

जब कि मैं शताब्दी समारोह मेरठ गया हुआ था वहां से मैं लखनऊ गया। ३० जून को वापस गुरुकुल पहुंचा तो देखा कि कमरों के किवाड़ें तोड़-तोड़ कर गुण्डे चोरों ने सब कमरों से बर्तन, सब सन्दूक, सब कपड़े आदि उठा लिये और वेदमन्दिर के विशाल पुस्तकालय से हजारों ग्रन्थ ले गये। वैदिक युग की कई हजार प्रतियां लेकर रद्दी में बेची गईं जो लिफाफे बनकर यूसुफ सराय बाजार में बिक रहे हैं।

मेरा परिवार छुट्टियों में गुरुकुल आया हुआ था उनका भी सब सामान वहीं था। वे अपनी बहन के घर गई थीं। विदेश से अपने लड़के से पांच हजार रुपया सब भाई बहनों के इंजीनियरिंग डाक्टरी आदि में दाखिले के लिए मंगाया था वह वेद मन्दिर में सुरक्षित स्थान में रखा था वह भी गया।

गुरुकुल के विरोधियों ने गुरुकुल से चोरी आदि अपराध में दो वर्ष से निकाले हुए गुण्डे लड़कों को जबरदस्ती गुरुकुल में जमाया था वे चारों लड़के ही वहां थे। उनके नाम है—वृद्धिचन्द्र उर्फ अनूपकुमार देवश्रवाः सुभाष, रन्तिदेव। ये गुरुकुल के नाम पर स्वयं मांगते खाते हैं, जब मैं गुरुकुल पहुंचा वृद्धिचन्द्र ने एक खत मेरे हाथ पर रखा जिस में लिखा था कि हम लोगों ने सब सामान चुरा कर अपने पास रखा है गुरुकुल छोड़ दो तो वापिस दे देंगे। पुलिस ने यह केस कोर्ट में भेज दिया है। लड़के सब भाग गये। —आचार्य विश्वश्रवाः व्यास एम. ए. वेद मन्दिर ९९ बाजार मोतीलाल बरेली।

वेद सृष्टि के आदि में आये (एक प्रश्न)

इसमें क्या प्रमाण है ?

महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने तथा आर्य समाज के विद्वानों ने इस बात के बहुत प्रमाण दिये कि वेद ईश्वरीय ज्ञान है। पर वेद सृष्टि में आये यह बात युक्ति संगत सिद्ध की है। कोई शब्द प्रमाण इस विषय में अभी सम्मुख नहीं आया। यही बात आर्य समाज करौल बाग की वेद-गोष्ठी में डा. रामस्वरूप जी ने कही थी जिसको सबने बुरा मनाया था।

सब के आग्रह करने पर मुझे भी एक ही प्रमाण स्फुरित हुआ जो मैंने वहां कहा था। मैं आशा करता हूं स्वाध्यायशील आर्य विद्वान् आर्य-मर्यादा में वे प्रमाण प्रस्तुत करेंगे जिन शब्द प्रमाणों से यह प्रकट हो कि वेद आदि सृष्टि में आये।

युक्तियाँ और तर्क तो इस सम्बन्ध में बहुत है उन्हें लिख कर वृथा पिष्ठ पेषण न करें। केवल शब्द प्रमाण और उन प्रमाणों के जो अर्थ वे समझते हों सो करें, जिससे वह सब सामग्री सब विद्वानों के काम में आ सके। —निवेदक आचार्य विश्वश्रवाः व्यास एम. ए.

भारतीय हिन्दू शुद्धि सभा देहली

ग्राम रतन पुर (जि० मुरादाबाद) में १०३ ईसाई पुरुष, स्त्री बच्चों को शुद्ध करके हिन्दुओं में मिलाया गया।

—द्वारकानाथ सहगल प्रधान मन्त्री

आर्य समाज (गुरुकुल विभाग) गुरुदासपुर

अगले वर्ष के लिए निम्न अधिकारी सर्वसम्मति से चुने गए।

प्रधान—श्री ओमप्रकाश जी शर्मा। मंत्री—श्री वेद प्रकाश नन्दा। कोषाध्यक्ष—श्री वीरेन्द्र विज। पुस्तकाध्यक्ष—श्री अशोक कुमार।

—जितेन्द्र उप प्रधान।

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब द्वारा प्रकाशित और प्रचारित वैदिक साहित्य

१. बलिदान जयन्ती स्मृति ग्रन्थ—आर्य बलिदानों की गाथा मूल्य ४-५०
२. सोम सरोवर-वेदमन्त्रों की व्याख्या —पं० चमूपति एम. ए. ३-००
३. जीवन ज्योति-वेदमन्त्रों की व्याख्या " " ३-००
४. नीहारिकावाद और उपनिषदें " " ०-२५
५. Principles of Arya samaj " " १-५०
६. Glimpses of swami Daya Nand " " १-००
७. पंजाब तथा हरयाणा का आर्य समाज प्रि० रामचन्द्र जावेद २-००
८. वैदिक सत्संग पद्धति सन्ध्या हवनमन्त्र अर्थ रहित विधि १-००
९. वेदाविर्भाव —आर्यमर्यादा का विशेषांक ०-६५
१०. यजुर्वेद अ० ३२ का स्वाध्याय " " " ०-५०
११. वेद स्वरूप निर्णय —पं० मदनमोहन विद्यासागर १-००
१२. व्यवहारभानु —महर्षि स्वामी दयानन्द ०-५०
१३. स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश— " " ०-४०
१४. Social Reconstruction By Budha & Swami Daya Nand By. Pt. Ganga Prasad Upadhya M. A. २-००
१५. Subject Matter of the Vedas By S. Bhoomanad १-००
१६. Enchanted Island By Swami Staya Parkashanand १-००
१७. Cow Protection By Swami Daya Nand ०-१५
१८. वेद में पुनरुक्ति दोष नहीं है आर्यमर्यादा का विशेषांक २-००
१९. मूर्त्तिपूजा निषेध " " ०-५०
२०. धर्मवीर पं० लेखराम जीवन —स्वामी श्रद्धानन्द १-२५
२१. कुलियात आर्य मुसाफिर प्रथम भाग—पं० लेखराम की पुस्तकों का संग्रह ६-००
२२. " " दूसरा भाग " " ८-००
२३. मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र —कु० सुशीला आर्या एम. ए. ०-२५
२४. योगीराज कृष्ण " " " ०-१५
२५. गोकरुणा निधि —स्वामी दयानन्द सरस्वती ०-२०
२६. आर्यसमाज के नियम उपनियम ०-१०
२७. आर्य नेताओं के वचनामृत —साइंदास भण्डारी ०-१२
२८. कायाकल्प —स्वामी समर्पणानन्द सरस्वती १-५०
२९. वैदिक धर्म की विशेषतायें —पं० हरिदेव सिद्धान्त भूषण ०-१५
३०. स्वतन्त्रानन्द लेखमाला —स्वा० स्वतन्त्रानन्द जी की जीवनी तथा उनके व्याख्यान १-२५
३१. आत्मानन्द लेखमाला—स्वामी आत्मानन्द सरस्वतीकी जीवनी १-२५
३२. आर्यसमाज के सदस्यता फार्म —सैंकड़ा १-५०
३३. महान् दयानन्द —पं० शिवदयालु आर्य ०-७५
३४. दयानन्द चरित्र —पं० देवेन्द्रनाथ १-५०
३५. वैदिक सिद्धान्त —पं० चमूपति एम० ए० १-००
३६. मुक्ति के साधन —पं० मदनमोहन विद्यासागर १-००
३७. महापुरुषों के संग —श्री सत्यव्रत १-५०
३८. सुखी जीवन —श्री सत्यव्रत २-००
३९. एक मनस्वी जीवन —पं० मनसाराम वैदिक तोप १-५०
४०. छात्रोपयोगी विचारमाला —जगदेवसिंह सिद्धान्ती १-५०
४१. स्त्री शिक्षा —पं० लेखराम आर्य मुसाफिर ०-६०
४२. विदेशों में एक साल —स्वामी स्वतन्त्रानन्द २-२५
४३. वेद विमर्श —पं० भगवद्दत्त वेदालंकार २-००
४४. वेद विमर्श —पं० वेदव्रत शास्त्री २-००
४५. आसनों के व्यायाम " " " १-००
४६. महर्षि जीवन गाथा —स्वामी वेदानन्द वेदवागीश २-२५
४७. मांस मनुष्य का भोजन नहीं—स्वामी ओमानन्द सरस्वती १-००
४८. वीर भूमि हरयाणा " " " ४-००
४९. चोटी क्यों रखें —स्वामी ओमानन्द सरस्वती ०-५०
५०. हमारा फाजिल्का —श्री योगेन्द्रपाल १-५०
५१. सत्संग स्वाध्याय —स्वामी ओमानन्द सरस्वती ०-५०
५२. जापान यात्रा " " " ०-७५
५३. भोजन " " " ०-७०
५४. ऋषि रहस्य —पं० भगवद्दत्त वेदालंकार २-००
५५. महर्षि का विष अमर बलिदान—राजेन्द्र जिज्ञासु ०-६५
५६. मेरा धर्म —आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति ७-००
५७. वेद का राष्ट्रिय गीत " " " ५-००
५८. ईशोपनिषद्भाष्य —इन्द्र विद्या वाचस्पति २-००
५९. पं० गुरुदत्त विद्यार्थी जीवन —डा० रामप्रकाश १-३०
६०. वैदिक पथ —पं० हरिदेव सिद्धान्त भूषण २-००
६५. वैदिक प्रवचन —पं० जगत्कुमार शास्त्री २-२५
६१. ज्ञानदीप —पं० हरिदेव सिद्धान्त भूषण २-००
६२. आर्यसमाज का सैद्धान्तिक परिचय—स्व० अनुभवानन्द ०-५५
६३. The Vedas ०-५०
६४. The Philosophy of Vedas —Swami Satya Parkash ०-५०
६६. ईश्वर दर्शन पं० जगत्कुमार शास्त्री १-००
६७. श्वेताश्वरोपनिषद् " " ४-००
६८. ब्रह्मचर्य प्रदीप " " ४-००
६९. भगवत प्राप्ति क्यों और कैसे —स्वा० सत्यानन्द ०-६०
७०. आर्य सामाजिक धर्म " " ०-७५
७१. बोध प्रसाद —स्वामी श्रद्धानन्द ०-२५
७२. ऋषि दर्शन —पं० चमूपति एम. ए. ००-२५
७३. ऋषि का चमत्कार " " " ००-१२
७४. वैदिक जीवन दर्शन " " " ००-२०
७५. वैदिक तत्व विचार " " " ००-५०
७६. देव यज्ञ रहस्य " " " ००-३१
७७. स्वतन्त्रानन्द संस्मरणांक १-५०

सभी पुस्तकों के प्राप्ति स्थान

१. आर्यप्रतिनिधि सभा पंजाब, गुरुदत्त भवन, जालन्धर (४२५०) टेलीफोन
२. " " " दयानन्द मठ रोहतक (हरयाणा) " (५७४)

आर्य्योद्देश्य रत्नमाला

(१) ईश्वर-जिसके गुण, कर्म, स्वभाव और स्वरूप सत्य ही है जो केवल चेतनमात्र वस्तु है तथा जो अद्वितीय, सर्वशक्तिमान्, निराकार, सर्वत्र व्यापक, अनादि और अनन्त आदि गुण वाला है और जिसका स्वभाव अविनाशी, ज्ञानी, आनन्दी, शुद्ध, न्यायकारी, दयालु और अजन्मादि है, जिसका कर्म जगत् की उत्पत्ति, पालन और विनाश करना तथा सर्वजीवों को पाप पुण्य के फल ठीक ठीक पहुंचाना है उसको ईश्वर कहते हैं।

(२) धर्म-जिसका स्वरूप ईश्वर की आज्ञा का यथावत् पालन और पक्षपात रहित न्याय सर्वहित करना है जो कि प्रत्यक्षादि प्रमाणों से सुपरीक्षित और वेदोक्त होने ससे ब मनुष्यों के लिए यही एक मानना योग्य है उस को धर्म कहते हैं।

(३) अधर्म—जिसका स्वरूप ईश्वर की आज्ञा को छोड़ कर और पक्षपात सहित अन्यायी हो के बिना परीक्षा कर के अपना ही हित करना है जो अविद्या, हठ, अभिमान, क्रूरता आदि दोष युक्त होने के कारण वेद विद्या से विरुद्ध है और सब मनुष्यों को छोड़ने के योग्य हैं वह अधर्म कहाता है।

(४) पुण्य—जिसका स्वरूप विद्यादि शुभ गुणों का दान और सत्य भाषणादि सत्याचार का करना है उसको पुण्य कहते हैं।

(५) पाप—जो पुण्य से उल्टा और मिथ्याभाषणादि करना है उसको पाप कहते हैं।

—ऋषि दयानन्द

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के लिए जगदेवसिंह सिद्धान्ती शास्त्री द्वारा सैनी प्रिंटर्स पहाड़ी धीरज, देहली में मुद्रित और १५ हनुमान् रोड, नई दिल्ली-१ से प्रकाशित

६ कार्तिक सं० २०३० वि०, दयानन्दाब्द १४९,
तदनुसार २१ अक्टूबर १९७३ रविवार
सृष्टि सं०-१९६०८५३०७३

वर्ष ५ | वार्षिक शुल्क स्वदेश में १०) रुपये
अंक ४७ | „ „ विदेश में २०) रुपये
एक प्रति का मूल्य ०-२० पैसे

सम्पादक—जगदेवसिंह सिद्धान्ती शास्त्री पूर्वलोकसभा सदस्य (फोन ५१२१६३)

वेदमन्त्रार्थ-प्रवचन

पुनरत्र राजधर्ममाह ॥

फिर यहां राजधर्म का उपदेश अगले मन्त्र में दिया गया है ॥

युवं श्यावाय रुशतीमदत्तं महः क्षोणस्याश्विना कण्वाय ।
प्रवाच्यं तद् वृषणा कृतं वां यन्नार्षदाय श्रवो अध्यधत्तम् ॥

—ऋ० १.११७.८

पदार्थः—(युवम्) युवाम् (श्यावाय) ज्ञानिने (रुशतीम्) प्रकाशिकां विद्याम् (अदत्तम्) दद्यातम् (महः) महतः (क्षोणस्य) अध्यापकस्य (अश्विना) बहुश्रुतौ (कण्वाय) मेधाविने (प्रवाच्यम्) प्रकर्षेण वक्तुं योग्यं शास्त्रम् तत् (वृषणा) बलिष्ठौ (कृतम्) कर्त्तव्यं कर्म (वाम्) युवयोः (यत्) (नार्संदाय) नृषु नायकेषु सीदति तदपत्याय (श्रवः) श्रवणम् (अध्यधत्तम्) उपरि धरतम् ॥

अन्वयः—हे वृषणाऽश्विना युवं युवां महः क्षोणस्य सकाशाच्छ्यावाय कण्वाय रुशतीमदत्तम् । यद्वां युवयोः प्रवाच्यं कृतं श्रवोऽस्ति तन्नार्संदायाध्यधत्तम् ॥

भावार्थः—सभाध्यक्षेण यादृश उपदेशो धीमतः प्रति क्रियते तादृश एव सर्वलोकाधीशायोपदिशेत् । एवमेव सर्वान् मनुष्यान् प्रति वर्त्तितव्यम् ॥

भाषार्थः—हे (वृषणा) बलवान् (अश्विना) बहुत ज्ञान विज्ञान की बातें सुने जाने हुए सभा सेनाधीशो (युवम्) तुम दोनों (महः) बड़े (क्षोणस्य) पढ़ाने वाले के तीर से (श्यावाय) ज्ञानी (कण्वाय) बुद्धिमान् के लिये (रुशतीम्) प्रकाश करने वाली विद्या को (अदत्तम्) देवो तथा (यत्) जो (वाम्) तुम दोनों का (प्रवाच्यम्) भली भान्ति कहने योग्य शास्त्र (कृतम्) करने योग्य काम और (श्रवः) सुनना है (तत्) उसको तथा (नार्संदाय) उत्तम उत्तम व्यवहारों में मनुष्य आदि को पहुंचाने हारे जनों में स्थित होते हुए के लड़के को (अध्यधत्तम्) अपने पर धारण करो ॥

भावार्थः—सभाध्यक्ष पुरुष से जिस प्रकार का उपदेश अच्छे बुद्धिमानों के प्रति किया जाता हो वैसा ही सब लोकों के स्वामी के लिये उपदेश करें ऐसे ही सब मनुष्यों प्रति के वर्ताव करना चाहिये ॥

—(ऋषिदयानन्द-भाष्य)●

सत्यार्थप्रकाश ११वां समुल्लास

अहं भैरवस्त्वं और भैरवीह्यावयोरस्तु सङ्गमः ।

चाहे कोई पुरुष वा स्त्री हो इस ऊट पटांग वचन को पढ़ के समागम करने में वे वाममार्गी दोष नहीं मानते अर्थात् जिन स्त्रियों को छूना नहीं उनको अति पवित्र उन्होंने माना है जैसे शास्त्रों में रजस्वला आदि स्त्रियों के स्पर्श का निषेध है उनको वाममार्गियों ने अति पवित्र माना है । सुनो इनका श्लोक अंड बंड :—

रजस्वला पुष्करं तीर्थं चाण्डाली तु स्वयं काशी चर्मकारी प्रयागः स्याद्रजकी मथुरा मता । अयोध्या पुक्कसी प्रोक्ता ।—रुद्रयामल तन्त्र

इत्यादि, रजस्वला के साथ समागम करने से मानो पुस्कर का स्नान, चाण्डाली से समागम में काशी की यात्रा, चमारी से समागम करने से मानो प्रयाग स्नान, धोबी की स्त्री के साथ समागम करने में मथुरा यात्रा और कंजरी के साथ लीला करने से मानो अयोध्या तीर्थ कर आये मद्य का नाम धरा "तीर्थ" मांस का नाम "शुद्धि" और "पुष्प" मच्छी का नाम "तृतीया" "जलतुम्बिका" मुद्रा का नाम "चतुर्थी" और मैथुन का नाम "पंचमी" इसलिये ऐसे नाम धरे हैं कि जिससे दूसरा न समझ सके । अपने कौल, आर्द्रवीर, शाम्भव और गण आदि नाम रक्खे हैं और जो वाममार्ग मत में नहीं हैं उनका "कंटक" "विमुख" "शुष्कपशु" आदि नाम धरे हैं और कहते हैं कि जब भैरवी चक्र हो तो उसमें ब्राह्मण से लेकर चाण्डाल पर्य्यन्त का नाम द्विज हो जाता है और जब भैरवी चक्र से अलग हों तब सब अपने अपने वर्णस्थ हो जावें । भैरवी चक्र में वाममार्गी लोग भूमि वा पट्ट पर एक विन्दु त्रिकोण चतुष्कोण वर्तुलाकार बनाकर उस पर मद्य का घड़ा रख के उसकी पूजा करते हैं फिर ऐसा मन्त्र पढ़ते है "ब्रह्म शापं विमोचय" हे मद्य तू ब्रह्मा आदि के शाप से रहित हो एक गुप्त स्थान में कि जहां सिवाय वाममार्गी के दूसरे को नहीं आने देते वहां स्त्री और पुरुष इकट्ठे होते हैं वहां एक स्त्री को नङ्गी कर पूजते और स्त्री लोग किसी पुरुष को नगा कर पूजती हैं पुनः कोई किसी की स्त्री कोई अपनी वा दूसरे की कन्या कोई किसी की वा अपनी माता, भगिनी, पुत्रवधू आदि आती है । (क्रमशः)

—(ऋषिदयानन्द)●

अथ वर्णाश्रमविषयः संक्षेपतः

अब वर्णाश्रम विषय लिखा जाता है । इसमें यह विशेष जानना चाहिये कि प्रथम मनुष्य जाति सबकी एक है, सो भी वेदों से सिद्ध है । इस विषय का प्रमाण सृष्टि विषय में लिख चुके हैं । वर्णों के प्रतिपादन करने वाले वेदमन्त्रों की जो व्याख्या ब्राह्मण और निरुक्तादि ग्रन्थों में लिखी हैं वह यहां भी लिखते हैं । वेदरीति से इनके दो भेद हैं, एक आर्य्य और दूसरा दस्यु । इस विषय में यह प्रमाण है कि (विजानीह्यार्य्यान् ये च दस्यवो०) अर्थात् इस मन्त्र से परमेश्वर उपदेश करता है कि हे जीव ! तू आर्य्य अर्थात् श्रेष्ठ और दस्यु अर्थात् दुष्ट स्वभावयुक्त डाकू आदि नामों से प्रसिद्ध मनुष्यों के ये दो भेद जान के ले । तथा (उत शूद्रे उत आर्य्ये) इस मन्त्र से भी आर्य्य ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और अनार्य्य अर्थात् अनाड़ी जो कि शूद्र कहाते हैं ये दो भेद जाने गये हैं । तथा (असुर्या नाम ते लोका०) इस मन्त्र से भी देव और असुर अर्थात् विद्वान् और मूर्ख ये दो ही भेद जाने जाते हैं । और इन्हीं दोनों के विरोध को देवासुर सग्राम कहते हैं । ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चार भेद गुण कर्मों से किये गये हैं (वर्णो०) इनका नाम वर्ण इसलिये है कि जैसे जिसके गुणकर्म हों वैसा हो उसको अधिकार देना चाहिये । (ब्रह्म हि ब्राह्मण०) ब्रह्म अर्थात् उत्तम कर्म करने से उत्तम विद्वान् ब्राह्मण होता है । (क्षत्रं हि०) परमेश्वर (बाहू०) बल वीर्य्य के होने से मनुष्य क्षत्रिय वर्ण होता है, जैसा कि राजधर्म में लिख आये हैं ॥

—(ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका)●

महा-प्रयाण

(लेखकः—श्री पं० वीरसेन वेदश्रमी, वेद-सदन, महारानी पथ इन्दौर १, म० प्र०)

उस दिवाली के अवसर पर देव दयानन्द के मुखमण्डल पर से एक अपूर्व ज्योति चारों ओर आलोकित हो रही थी सैकड़ों दीपों की ज्योति से जो तेज एवं सौन्दर्य विकसित नहीं हो सकता था, वह आज उनकी दिव्य देह से छलक रहा था। कुछ ही क्षणों में अजमेर नगर में यह समाचार सर्वत्र व्याप्त हो गया। जनता महर्षि के दिव्य दर्शनों को प्राप्त करने के लिए उमड़ पड़ी।

महर्षि के कमरे में एक दिव्य गंध बह रही थी—एक दिव्य तेज प्रसारित हो रहा था और एक दिव्य ध्वनि—ओ३म् तरत्समन्दी धावति धारा सुतस्यान्धसः। तरत्समन्दी धावति॥ इस साम मन्त्र की गति कर रही थी। महर्षि मौन थे। परन्तु उनके चित्र में इस मन्त्र की अव्यक्त ध्वनि वहां के वातावरण के समष्टि चित्त में गति कर रही थी। वहां का वातावरण शान्त था, स्तब्ध था।

मन्त्र का दिव्य भाव दर्शकों को प्रभावित कर रहा था। अनायास ही भक्त गणों के हृदय में—तरत्समन्दी धावति—के भाव प्रस्फुटित होने लगे। आज देव दयानन्द भक्ति में निमग्न हैं, देह के दुःखों को सर्वथा भुलाकर संसार सागर से तरकर प्रभु की ओर ही अतिवेग से, अगाध गति से बढ़े चले जा रहे हैं। आज उनकी यह मुक्ति की ही ओर आरोहण है।

भक्त-गण देव दयानन्द की दशा देखकर चकित हो रहे थे और उनसे कुछ वार्तालाप करने के लिए अधीर भी हो रहे थे। कुछ अपनी सेवा एवं भेंट अर्पण करने के उत्सुक थे। महर्षि के ओष्ठों पर कुछ शुष्कता अनुभव कर किसी ने साहसकर पूछा—"हे भगवन्! प्यास! प्यास!!!" भक्त दौड़े—पानी लाए—गिलास और लोटों में जल प्रस्तुत किया। देव दयानंद ने उन सबकी ओर देखा। परन्तु किसी का जल ग्रहण नहीं किया।

भगवान् दयानन्द बोले—आज इस जल की प्यास नहीं है। आत्मा की प्यास तो इससे नहीं बुझेगी—और कहने लगे—अपां मध्ये तस्थिवांसं तृष्णा विदज्जरितारम् मृडा सुक्षत्र मृडय॥ मैं प्रभु-भक्ति रूपी जलों के मध्य में खड़ा हूं— प्रभु की स्तुति एवं उपासना में निमग्न हूं। परन्तु अभी तृप्ति नहीं हो रही है। मैं तो उसी भक्ति की प्यास से व्याकुल हूं। आज की प्यास शान्त नहीं हो रही है। वह तो बढ़ती ही जा रही है। आज तो उसी प्रभु के पूर्ण मिलन से ही तृप्ति होगी—अन्यथा नहीं।

चिंतातुर भक्त वैद्य और डाक्टरों को बुलाने लगे। ऋषि ने कहा—मेरा वैद्य मेरे पास है। मेरा डाक्टर मुझ में विद्यमान है। आज तो उस अविनाशी ईश्वर के हाथ में मैंने अपनी नाड़ी दे दी है। वह तो काया-कल्प करने की सामर्थ्य रखता है। यह देह तो नश्वर है। विषजन्य रोगों ने इसे असमर्थ बना दिया है। सामर्थ्यवान् प्रभु ने इस देह को अब त्यागने की सामर्थ्य—उर्वारूकबन्धनात्—प्रदान की है। आर्यसमाज रूपी—उर्वारूक दशांगुल—(दस नियमोंवाला) मधुर फल आज सर्वत्र देश में अपनी दिव्य मधुर गन्ध प्रसारित कर रहा है। आज उसकी मनोहारी गंध से सब उसकी ओर आकृष्ट हो रहे हैं। उसको मैं आप सबको प्रदान कर चुका हूं। यही मेरे जीवन का फल—परिणाम है। अब प्रभु से प्रार्थना कर रहा हूं—मृत्योमुक्षीय मा अमृतात्—मृत्यु माध्यम से इन भव-बन्धनों से मुक्त होकर अमृतमय प्रभु को प्राप्त कर उससे पृथक् न होऊं। हे प्रभु! इष्णन इषाण—मेरी कामना तेरी कामना हो जावे। ऐसा सोचकर देव दयानन्द पुनः परमात्मा में समाहित चित्त हो गए और मन्त्र द्वारा प्रभु से कहने लगे। ओ३म् यदग्ने स्यामहं त्वं, त्वं वा घा स्या अहम्। स्युष्टे सत्या इहाशिषः। अर्थात् हे प्रकाशस्वरूप, ज्योतिर्मय परमात्मन्। मेरी कामना आपकी कामना हो जावे या आपकी कामना मेरी हो जावेंतो आपकी कृपा से आपके सब आशीर्वाद सफल, सत्य हो जावेंगे। मैंने अपने वेद सम्बन्धी कार्य एवं कामनाओं को पूर्ण करने के लिए आपको अर्पित कर दी है। अब यह देह भी आपके समर्पित है। आपकी इच्छा पूर्ण हो—यह कहकर देव दयानन्द शान्त हो गए—परम शान्त हो गए।

वाणी प्राण में, प्राण मन में, मन चित्त में, चित्त तेज में क्रमशः विलीन होते हुए और देव दयानन्द का सूक्ष्म शरीर स्थूल देह को त्याग कर उत्तरोत्तर ज्योतियों को प्राप्त कर हम से सदा के लिए अदृश्य हो गया। सबके नेत्रों से अश्रुधाराएं प्रवाहित होने लगी। ●

"शत-शत दीपक जला ज्ञान के!"

[श्री राधेश्याम 'आर्य' एडवोकेट भगवत भक्त आश्रम मोती महल पुल, लखनऊ-१]

दीपावलि संदेश दे रही, आओ दीप जलाएं।
अन्धकार में भटक रहे मानव को मार्ग दिखाएं॥

वेदों के इस दिव्य देश में फैला आज अंधेरा,
दानवता के तत्वों का ही होता आज बसेरा,
जाने पुनरपि कब आएगा सत्यं-शिवं सबेरा?
छिन्न-भिन्न हो जाएगा सब तिमिर जाल का घेरा,
शत-शत दीपक जला ज्ञान के, जग ज्योतिर्मान कराएं।
अन्धकार में भटक रहे मानव को मार्ग दिखाएं॥

भ्रातृभाव समता समृद्धि के जाग्रत हो प्रतिमान,
फिर से गूंजे इस धरती पर देवगुणों का गान॥
लोभ मोह मद मत्सर छूटे, दूर हटे अभिमान,
जन-जन को फिर मिले यहां पर सच्चा न्याय महान्,
त्याग तपस्या दया प्रेम के अमर तत्व अपनाएं।
अन्धकार में भटक रहे मानव को मार्ग दिखाएं॥

ज्ञान उषा की नवल रश्मियों से जग हो आह्लादित,
शीतलता शुचि मिले उन्हें जो रहे अभी तक शाषित,
नष्ट प्राय हों तत्व सभी वे, जिनसे नर अभिशापित,
प्रमुदित हो धरती का कण कण, मनुष्यता हो हर्षित,
भूमण्डल पर मनुज मात्र को बन्धन मुक्त कराएं।
अन्धकार में भटक रहे मानव को मार्ग दिखाएं॥ ●

आर्य विद्या परिषद् पंजाब

आर्य विद्यालयों के मुख्यअध्यापकों व मुख्यअध्यापिकाओं के नाम आवश्यक परिपत्र

यह तो आपको पता ही है कि आर्य विद्या परिषद् पंजाब ने अपने अन्तर्गत सभी स्कूलों। कन्या पाठशालाओं में वैदिक शिक्षा बालक, बालिकाओं के चरित्र बल का सुदृढ़ करने के लिये धर्म शिक्षा पर विशेष पाठ्य-क्रम अनिवार्य रूप से निर्धारित किया हुआ है। इसी आधार पर परिषद् द्वारा प्रतिवर्ष जनवरी मास में धर्म शिक्षा की परीक्षाओं का आयोजन होता है तथा परीक्षा में सर्वाधिक अंकों से उत्तीर्ण छात्रों को पारितोषिक भी दिये जाते हैं। हमारे स्कूलों के छात्र। छात्राएं वैदिक धर्म और आर्य-समाज के सिद्धान्तों तथा मन्तव्यों को भलि भांति समझें और उसे संसार में चरितार्थ भी करें-इसी भावना से आगामी १६ जनवरी १९७४ को परिषद् ने धार्मिक परीक्षाएं निश्चित की हैं। अतः आपसे निवेदन है कि आप अपनी पाठशाला की ५ वीं, ८ वीं तथा १० वीं कक्षा के सब छात्रा छात्राओं को क्रमशः धर्म प्रवेशिका, धर्माधिकारी एवं धर्मज्ञानी परीक्षाओं में अवश्य प्रविष्ट कराने तथा पाठ्य क्रम पढ़ाने की तयारी अभी से आरम्भ कर दें।

निर्धारित पाठ्य-क्रम की सूची सभी सम्बन्धी विद्यालयों को भेजी है। आशा है, आपका सहयोग परिषद् को अवश्य प्राप्त होगा।

—सर्वानन्द
आफिशियल रिसीवर आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब

सम्पादकीय—

१. वैश्य वर्ण का पर्व दिवाली

यद्यपि सभी पर्व मनुष्य मात्र के लिये समान होते हैं, क्योंकि इनका सम्बन्ध सभी से है, परन्तु जैसे श्रावणी पर्व विशेष रूप से ब्राह्मण वर्ण के साथ है और विजयादशमी का क्षत्रिय वर्ण से है, वैसे ही दिवाली का पर्व वैश्य वर्ण के साथ विशेष रूप से सम्बद्ध है। यह पर्व भीमूल रूप में प्राकृतिक है, पश्चात् ऐतिहासिक घटनाओं का सम्पर्क इस पर्व से भी जुड़ गया है।

इस समय श्रावणी की फसल पक कर तैयार हो जाती है। कृषक जनता फसल को काट कर अन्न घरों में लाते हैं। साथ ही आषाढ़ी की फसल बोई जाती है। व्यापारी लोग अन्न संग्रह करके गैर किसानों को पहुंचाते हैं। परस्पर लेन देन होता है। ईख की पिलाई भी आरम्भ हो जाती है। किसान लोग व्यापारी और श्रमिक लोगों को गन्ने की भेंट देते हैं। व्यापारी लोग किसान को रुई और सरसों का तेल भेंट करते हैं, जिससे किसानों के बालक प्रकाश सारे गांव में फैलाते हैं तथा श्रमिक लोग मिट्टी के छोटे छोटे सकोरे बना कर तेल डालने के लिए बालकों को देते हैं। प्रकाश फैलाने का मुख्य प्रयोजन यह है कि दिवाली की अमावास्या को रात्रि का अन्धकार शेष सभी अमावास्यों की रात्रि से अधिक गहन होता है।

इसी समय किसान अपने गौ आदि पशुओं का श्रृंगार मोर के पंख द्वारा पट्टे बना कर करते हैं तथा व्यापारी लोग वर्ष भर का आय व्यय का हिसाब तैयार करते हैं। अति प्राचीन काल में वर्ष का आरम्भ इसी समय से माना जाता था। यह पर्व उत्साह और प्रसन्नता का माना जाता है। जाड़े की ऋतु में किसान ईख से गुड़, शक्कर आदि तैयार करते हैं और गेहूं, चणा, सरसों आदि की आषाढ़ी की फसल की रक्षा करते हैं। कपास के तैयार हो जाने से जाड़े के रजाई आदि वस्त्र तैयार किये जाते हैं। सार यह है कि इस ऋतु में वैश्य वर्ग पूरी तरह काम में जुटा रहता है। किसान, व्यापारी और श्रमिक तीनों एक साथ बन्धे हुए हैं। यदि ये तीनों वर्ग परस्पर के हितों का ध्यान रक्खें तो बहुत से आर्थिक विवाद दूर हो सकते हैं। परन्तु राजनीतिक दल इनमें द्वेष भाव की आग भड़का कर देश के वातावरण को विषाक्त कर देते है।

इस पर्व के साथ आर्य जाति के अनेक महापुरुषों के ऐतिहासिक जीवन की घटनाएं जुड़ी हुई हैं। उन महापुरुषों के जीवन से भी आर्य जाति बहुत शिक्षा ले सकती है। महर्षि दयानन्द की मोक्ष प्राप्ति की रात्रि भी यही दिवाली की अमावास्या है। कुटिल आचरण के दुष्ट लोगों ने षड्यन्त्र करके ऋषि को भयंकर विष दिया था। उससे ऋषि के शरीर की नस नाड़ियों में विष का प्रसार हो गया था। इतने पर भी ऋषि अपने योगाभ्यास द्वारा ईश्वर की उपासना करते थे। अन्त समय उन्होंने ईश्वर से हार्दिक प्रार्थना करते हुए अपने भाव प्रकट किए हैं प्रभो! तूने अच्छी लीला को—इस वचन का अभिप्राय यही था कि ऋषि ने अपने प्राणों को प्राणी मात्र के कल्याण में ईश्वर के अर्पण किया हुआ था। निज का कोई प्रयोजन नहीं रह गया था, अतः ऋषि ने प्रभु को समर्पण कर दिया—यही मोक्ष प्राप्ति का सर्वोच्च लक्ष्य को द्योतित करता है।

आर्य समाज का यह विशेष सौभाग्य है कि इसके प्रवर्तक आदित्य संज्ञक अखण्ड ब्रह्मचारी थे। वेदार्थ द्रष्टा थे। अद्वितीय वैज्ञानिक थे। पूर्ण योगी थे। संसार के अनेक समाजों का ऐतिहासिक वृत्त हमारे सामने है, ऐसा महापुरुष जिस समाज को मिला। वह आर्यसमाज ही है।

क्या ही अच्छा हो कि हम सब आर्य लोग महर्षि के बताये वैदिक सिद्धान्तों और आर्ष मन्तव्यों का अनुसरण करके अपना और दूसरों का कल्याण कर सकें, इससे बढ़ कर और क्या शिक्षा हम इस पर्व को मनाते हुए ले सकते हैं। ऋषि प्राणिमात्र के कल्याण दाता थे। हमें भी इसी भावना को हृदय में रखकर अपने मार्ग पर चलना चाहिये। केवल ऋषि जीवन की घटनाओं को उच्च घोष से गुंजाना पर्याप्त नहीं है, अपितु तदनुसार आचरण करने में ही हमारी वैयक्तिक, सामाजिक, आर्थिक और आत्मिक उन्नति हो सकती है। परमेश्वर हम पर दया करे कि हम इस उन्नति के मार्ग पर चल सकें।

२—आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का पुनर्निर्वाचन

जैसा कि आर्य मर्यादा के गत अंक में प्रकाशित किया जा चुका है कि इस निर्वाचन के सम्बन्ध में पंजाब हरयाणा हाईकोर्ट के मान्य जज महोदय १९ अक्टूबर को अपना निर्णय देंगे। उसी के अनुसार चुनाव की प्रक्रिया वर्ती जावेगी। इस अंक पर तारीख २१.१०.७३ होगी, परन्तु इस का प्रकाशन १६ अक्टूबर ७३ मंगलवार की रात्रि तक हो जावेगा, अतः अगले अंक में ही निर्वाचन की पद्धति को प्रकाशित किया जा सकेगा। उभय पक्ष अपने अपने कार्यक्रम में संलग्न हो चुके हैं। परस्पर समझौते की कुछ चर्चा चली थी, परन्तु खेद से कहना पड़ता है कि चर्चा का परिणाम सफल नहीं हो सकता।

३—मान्य श्री जावेद जी का सुझाव

इन्होंने पर पक्ष को एक सुझाव दिया है कि वह श्री स्वामी इन्द्रवेश के राजनीतिक दल से स्पष्ट बातें कर लेवें कि उनका रवैया आगे क्या होगा? श्री जावेद जी के सुझाव पर उस पक्ष को विचार करना आवश्यक है। इस समय तो वह पक्ष दूसरे पक्ष के विरोध करने तक सीमित है। परन्तु इसके परिणाम पर अब ध्यान नहीं दे रहे हैं। आशा है कि दूसरा पक्ष इनके सुझाव पर समय से पूर्व विचार करे। यदि वह कार्य हो जावे, तो दोनों पक्ष पर्याप्त निकट आ सकते हैं। एक राजनीतिक दल का साथ देकर वह पक्ष आर्य समाज के भीतर उस विघटन को पैदा कर रहा है कि जिस दल को केवल आर्य नाम के साथ लगे होने के कारण वह समर्थन दे रहा है। उसको आर्यसमाज द्वारा सामूहिक मान्यता न तो सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा देहली ने दी है और न भारत की किसी आर्य प्रतिनिधि सभा ने दी है। परपक्ष में सार्वदेशिक सभा का सत्तारूढ़ दल ही है। यह दल स्वयं अपनी मान्यता का स्पष्ट विरोध कर रहा है। इसका एक ही कारण हम यह समझते हैं कि स्वार्थ में इस तथ्यता को नहीं ग्रहण कर रहा है। श्री जावेद जी के सुझाव पर यदि परपक्ष विचार करे तो आर्य समाज का सामूहिक भविष्य उज्वल हो सकता है। अन्यथा उसकी वह गति होगी कि जिस टहनी पर वह पक्ष बैठा है उसी को कुल्हाड़े से काट रहा है। इसका दुष्परिणाम यही होगा कि आर्य समाज के दोनों पक्ष नष्ट हो जावेंगे। एक कहावत इस पर पूर्ण रूप से घटती है कि किसी बणजारे ने अपने बालक के प्राण बचाने वाले अपने कुत्ते को मार डाला था, इस भ्रान्ति में कि उसके बच्चे को कुत्ते ने खा लिया, क्योंकि उसके मुंह पर खून लगा हुआ था। परन्तु कुत्ते को मार कर जब बालक को देखा तो बालक खेल रहा था और उसके पास खून में लथपथ एक हिंस्र जीव पड़ा था। इसको देख देख ही कर बणजारा रोया। परन्तु अब क्या हो सकता था। सस्कृत के एक कवि ने लिखा है, कि बिना बिचारे किसी काम को तुरन्त नहीं करना चाहिए। भगवान् की दया होवे तो उभय पक्ष श्री जावेद जी द्वारा सुझाव को गम्भीरता को जान कर उक्त आर्य सभा नाम राजनीतिक दल के षड्यन्त्र से बचें।

अरब देशों और इजरायल में युद्ध

यह युद्ध अधिक फैलता जा रहा है। दोनों पक्ष इसमें बुरी तरह उलझे हुए है। मिश्र ने सिनाई प्रदेश में पर्याप्त प्रगति की है। नहर स्वेज के पूर्वी भाग पर मिश्र ने अधिकार कर लिया है, सीरिया में इजरायल काफी आगे बढ़ा हुआ है, परन्तु अब गति कुछ मन्द पड़ गई है, अमेरिका ने इजरायल को शस्त्रास्त्र भेजने आरम्भ कर दिये हैं, उसका नौ भेड़ा भूमध्य सागर से ईजरायल की ओर चल रहा है। रूस ने अरब देशों की सहायता करने की घोषणा कर दी है। इस प्रकार यह युद्ध एक क्षेत्र से बढ़ कर अन्यत्र भी फैल सकता है। यह कहा जाने लगा है कि इजरायल के पास अणुबम हैं। इससे वह अति संकट के समय हो काम में ला सकेगा। इस बम को मार में सीरिया (दमिश्क) और काहिरा (मिश्र) भी आ सकते हैं। यदि यह युद्ध आगे चला तो रूस और अमेरिका भी इसमें विरुद्ध कैम्प में जा सकते हैं। चीन तमाशा देख रहा है। भारत ने कहा है कि इजरायल उन प्रदेशों को खाली कर दे जो उसने अरबों से छीने थे। तभी शान्ति होने की सम्भावना है। सारे अरब देश इस समय एक जगह हो चुके हैं। अतः कहा नहीं जा सकता कि युद्ध का क्या परिणाम निकले।

—जगदेवसिंह सिद्धान्ती शास्त्री

क्रमागत :—

माण्डूक्य पर आचार्य गौडपाद कारिकाओं की समीक्षा (३७)

(ले०—श्री स्वामी ब्रह्मानन्द जी आर्य त्रैतवेदान्ताचार्य मु० ओं० आश्रम, चान्दोद (बड़ोदा)

भूततोऽभूततो वापि सृज्यमाने समा श्रुतिः।
निश्चितं युक्तियुक्तश्च यत्तद्भवति नेतरत् ॥२३॥

अद्वैत प्रकरण की २३ वीं कारिका

अर्थ—पारमार्थिक अथवा अपारमार्थिक, किसी भी प्रकार की सृष्टि होने में श्रुति तो समान ही होगी। अतः उसमें जो निश्चित और युक्ति युक्त मत हो, वही श्रुति का अभिप्राय हो सकता है अन्य नहीं ॥२३॥

समीक्षा—सभी श्रुतियां सृष्टि रचना विषय में सर्वत्र समान ही हैं अर्थात् चारों वेद सभी उपनिषदें, प्रकृति एवं परमात्मा के संयोग से ही सृष्टि की रचना होना मानती हैं और बिना उपादान को लिये बगैर कोई भी निमित्त कारण या चेतन पुरुष कभी किसी काल में भी कुछ किंचित् मात्र भी बना नहीं सकता। देखो जैसे संसार में हम आप सब देखते और अपनी बुद्धि से अनुभव भी हमेशा करते हैं कि सुथार, कुंभार, लोष्टकार कुंभकार, स्वर्णकार, रसोइया, सिलाट आदि कारीगर ये सब अपने अपने गुणकर्म कारीगरी में निराले ही हैं, किन्तु इनमें से एक भी ऐसा नहीं है, जो काष्ठ लोष्ठ मिट्टी सुवर्ण शिला अन्न आदि को जो कि ये सब सर्वथा सत्य परमार्थ भावरूप है, तो इन वस्तुओं को जो प्रथम से लाकर जो अपने उपयोग में न लेवें, तो वो कोई भी किसी वस्तु को कभी तीन काल में भी कोई कुछ किंचित् किंचिन्मात्र भी कुछ इच्छित पदार्थ बना न सकेंगे। यह प्रत्यक्ष ही है, इसी प्रकार परमात्मा भी जो माया—प्रकृतिरूप उपादान की जो वो सन्निधि न करे या उसे अपनी शक्ति प्रदान न करे तो कभी भी सृष्टि की रचना वो न कर सके। ये तो युक्तियुक्त बात को और ऐसे समीचीनमत को सभी सृष्टि विषयक श्रुतियां वेदोपनिषद् में सर्वत्र बता रही हैं जिसे हम पहिले के प्रकरणों में बतला आये हैं, तो भी थोड़े में पुनः बतलाते हैं, यथा—(सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथा पूर्वम् कल्पयत्। दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो स्वः॥ ऋ०वे०)

अर्थ—विधाता परमात्मा देव ने पूर्व रचित सृष्टि के जैसे ही सूर्य चन्द्र पृथिवी अन्तरिक्ष की रचना की है।

(यदन्तर्वेद्यथैष भूमाऽपरिमितो यो बहिर्वेदि॥ ऐ० ब्रा० ८।५।)

अर्थ—यह भूमा आनन्द स्वरूप ब्रह्म ही अव्याकृत प्रकृति की संसार रूप वेदी के बाहर भीतर विद्यमान है।

(सतो बंधुमसति निरविन्दनम्॥ ऋ० वे० १।१२९।३॥)

अर्थ—उस केवल सद्रूप प्रकृति का बन्धु रूप परमात्मा रक्षक है जिसे ज्ञानीजन अपना स्वामी अन्तर्यामी जानकर उससे संबन्ध जोड़ते हैं।

(अदितिः पुरुषो दिश पतिः॥ तै० ब्रा० ॥३।११।६।३॥)

अर्थ—जिसका कभी आदि अन्त नहीं वही अदिति प्रकृति कहाती है तथा जो सदा सर्वत्र उसके अन्दर बाहर की दिशोपदिसाओं में विभूरूप से रहकर रक्षण धारण पालन कर रहा होने से वही प्रभु परमात्मा उसका पति पालक कहाता है।

(प्रकृतिभ्यः परंयच्च तदचिन्त्स्य लक्षणम्॥ वे० द० १ पा० २७ सूत्र शां० भाष्य कारिका)

अर्थात् जो प्रकृति से भी श्रेष्ठ एवं सूक्ष्मतम है उस ऐसे परमात्मा को तर्क की तुला से नहीं तोलना चाहिये क्योंकि वह तो अचिन्त्य अव्यक्त लक्षण वाला कहा गया है। ऐसा आचार्य शंकर कहते हैं। तो हमने उपरोक्त कुछ प्रमाणों से प्रकृति को परमात्मा के समान भावरूपा कार्यरूपा यहां बताकर ये सिद्ध करा है कि ये भौतिक सृष्टि काल्पनिक नहीं है किन्तु सर्वथा सत्य परमार्थरूपा प्रकृति एवं परमात्मा के संयोग से हुई-हुई यथार्थ ही है। तथा (स वाह्याभ्यान्तरोह्यजः) वाली श्रुति का प्रमाण देकर यहां के भाष्य में आ० शंकर गौड जी की वकालत करते हैं और अन्य सृष्टि विषयक श्रुतियों को अविद्या जन्य बतलाते हैं तो फिर शंकर जी के द्वारा दी गई ये और सभी तुम्हारे द्वारा दी गई श्रुतियां भी अविद्यामयी हो गई। क्योंकि नीम की एक डाली तो मीठी और बाकी की सभी कड़वी होवें ऐसा तो हो नहीं सकता। या तो सब श्रुतिमात्र को अविद्या जन्य मान लो या फिर सबको विद्या ज्ञानरूप मान लो। यदि तुम्हारे द्वारा दी गई श्रुति सत्य हैं तो हम वैदिकों के द्वारा दी गई श्रुतियां जो सृष्टि विषयक हैं वे ही क्यों अविद्यावत् हो जायेंगी? हम कभी भी ऐसा तुम्हारे बाबा वाक्यं को बुद्धि एवं सृष्टि नियम विरुद्ध होने से बात को नहीं मान सकते। अरे एक श्रुति यदि (स बह्यान्तरोह्यजः) कह रही है तो दूसरी श्रुति क्या (अजायमानो बहुधा विजायते) नहीं कह रही है? परन्तु आप अद्वैतवादी गुरु लोग तो (कहीं की ईंट कहीं का रोड़ा, भानुमति ने कुन्बा जोड़ा) के अनुसार किसी भी श्रुति के पूर्वापर संबन्ध प्रसंग आशय को समझे विचारे बगैर ही श्रुति सूत्र श्लोकों का प्रमाण ला धरते हैं। तो देखो अब इस मु० २।१।२॥ की जो आपने (स वाह्याभ्यान्तरोह्यजः) वाली श्रुति दी है वह तो परमात्मा को आकाश के समान सर्वत्र सबमें व्यापक होने से उस प्रभु को अजन्मा बतला रही है। जैसा कि (अजस्येकपादः) ऋग्वेद में परमात्मा को अजन्मा ही बताया है जिसके एक पाद वा अंश में विश्वभुवन रहे हुए हैं ऐसा कहा है वेद में। परन्तु जहां (अजायमानो बहुधा विजायते॥ य० वे०) में कहा है, सो यह श्रुति जीव के लिए परिच्छिन्न एक देशीय होने से माया वा देह संयोग से इस अजन्मा स्वभाव वाले जीवात्मा को जन्मा हुआ अनेक योनियों में माना जाता है तो इस प्रकार श्रुतियों को समझ कर (उनके आशय को मिला देख कर फिर अर्थ करना चाहिये। न कि शब्दमात्र से किन्तु—(शब्दार्थस्य प्रसंगो अर्थोवलीयसि) इस शास्त्रीय नियम के अनुसार ही अर्थ सर्वत्र करना, कहना मानना, मनवाना आप सबको चाहिये। क्योंकि अज तो जीव एवं शिव दोनों ही को तथा माया—प्रकृति को भी अजा और अज कहा है॥ देखो श्वेताश्वतरउपनिद् आदि में ॥२३॥

नेह नानेति चाम्नायादिन्द्रो मायाभिरित्यपि।
अजायमानो बहुधा मायया जायते तु सः।।२४॥

अद्वैत प्र० की २४ वीं कारिका

अर्थ—नेह नानास्ति किंचन, इन्द्रोमायाभिः पुरु रूप ईयते तथा अजायमानो बहुधा विजायते, इन श्रुति वाक्यों के अनुसार वह परमात्मा माया से ही उत्पन्न होता है ॥२४॥

समीक्षा—आपकी दर्जन डेढ दर्जन अपनी षदीय श्रुतियां कुछ ऐसी रजी हुई हैं जिन्हें आप दोनों बड़े छोटे गुरु और अद्वैतवादी नवीन वेदान्ती महापुरुष प्रायः हर जगह ये ही इन्हीं गिनी श्रुतियों का प्रमाण ला धरते हैं इन विचारों को अपने अद्वैत सिद्धि एवं जग मिथ्यात्त्व के लिये और कोई प्रमाण ही नहीं मिलते? यदि थोड़ी देर के लिये हम (नेह नाना०) वाली श्रुति के अर्थ को इन गुरुओं के मन्तव्यानुसार मान भी लेवें तो फिर इन्द्रो मायाभी तथा (अजायमानो०) से स्वयं ब्रह्म का अनेक रूप में परिणत होना तो आप स्वयं स्वीकार रहे हो फिर भले ही माया के द्वारा ही सही किन्तु फिर भी तुम्हारी नाना भेद की कल्पना का उच्छेद तो न हुआ, अर्थात् माया के द्वारा भी तो बना ही रहा और माया भी, मायावी को लगी ही रही। तभी तो इन्द्रो माया भी पुरुरूप ईयते और (अजायमानो बहुधा विजायते) बना ही रहा। फिर (नेह नाना) वाली तुम्हारी श्रुति की चरितार्थता ही कहां हुई? हां तुम अद्वैतवादी लोग माया ब्रह्म को लगना मानते हो और हम वैदिक लोग माया का जीव को लगना (बँधना) मानते हैं। परन्तु शास्त्र तो उस ब्रह्म को (माया प्रपंचात् परम्) (अक्षरात्परतः परः (तमसः परस्तात्) कहते हुये हमारे ही पक्ष में गवाह देते हैं तथा स्वामी संपत् गिरि जी जी म० जो अद्वैतवादी और स्वामी दयानन्द जी म० सरस्वती के सहपाठी थे, वे भी शिव को (शुद्धोबुद्धो मुक्तो नित्यस्त्वं देव) कहते हैं। अब आचार्य श्री गुरु शंकर के भाष्य को भी पढ़िये (यथा च कारणं ब्रह्मत्रिषु कालेषु सत्वं न व्यभिचरति एवं कार्यमपि जगत्। त्रषु कालेषु सत्त्वं न व्यभिचरति॥ वे० द० २।१।१६॥) अर्थात् जैसे कारण ब्रह्म तीनों कालों में सत्य है इसी प्रकार ये कार्य जगत् भी तीनों कालों में सत्य है। अब लीजिये गुरु गौड जी? यहां तो अब तुम्हारे प्रशिष्य ने ही ही तुम्हें धत्ता बता दिया, अब तुम्हारी (नेह नानास्ति किंचन) की श्रुति का लेबल आ० शंकर जी के मुंह पर लगा आवो, लट्ठ के जोर पर समझे? (क्रमशः)

राष्ट्र आँखे खोले—

ईसाइयों का प्रचार-तन्त्र (५)

(श्री सुरेन्द्रसिंह कादियाण W/Z-७९ राजा पार्क शकूरबस्ती, दिल्ली-३४)

पुराना और नया धर्म अर्थात् ओल्ड व न्यू टेस्टामेंट एक ही जिल्द में भी उपलब्ध है लेकिन वे निःशुल्क नहीं मिलते। इस बाईबिल को 'धर्म-शास्त्र' नाम से बाइबिल सोसायटी आफ इण्डिया २० महात्मा गाँधी रोड बंगलोर ने हिन्दी में प्रकाशित किया है जिसका मूल्य दस रुपये है लेकिन यह मूल्य पुस्तक पर कहीं अंकित नहीं है। सन् १९६९ में यह ग्रन्थ १० हजार की संख्या में छपा था, सम्भव है इस से पहले व बाद में भी छपा हो। इस पुस्तक में ओल्ड टेस्टामैण्ट १३३८ पृष्ठों में और न्यू टेस्टामैण्ट ३९६ पृष्ठों में प्रकाशित हुआ है-टाइप बहुत बारीक है अन्यथा पृष्ठ संख्या इससे लगभग दोगुणी होती। विश्व पुस्तक मेले में हमने इस ग्रंथ के अंग्रजी व पंजाबी संस्करण भी देखे थे, अन्य भाषाओं में भी यह प्रकाशित हुआ होगा। आपको ईसाई धर्म सम्बन्धी ट्रेक्ट इलाहबाद, कलकत्ता, नई दिल्ली, बम्बई, बंगलोर, मद्रास और सिकन्दाबाद स्थित बाइबिल सोसायटी व किसी भी मसीह गिरजे व संस्था से उपलब्ध हो सकता है। Institute for Homc study Dc Nobili College Poona—१४ अर्थात् गृह अध्यापन सस्था-डी नोबिली कालेज-पूना-१४ ने अब अन्य प्रकार के ट्रेक्ट निकालने शुरु किए हैं जो बाईबिल के भाग नहीं है लेकिन ईसाइयत का प्रचार करते हैं। स्वार्थी पुत्र, भगवान् का रचनात्मक प्रेम, ईश्वर का पुनः आह्वान, भगवान् हमारे पास आते हैं, शिक्षक ख्रीस्त, ख्रीस्त भले गडेरिए, ख्रीस्त महान् प्रेमी, ख्रीस्त हमारे जीवन, ख्रीस्त और मैं, ख्रीस्त को मेरा उत्तर आदि ख्रीस्त-मिलन सीरीज़ की पुस्तिकाए इस संस्था ने प्रकाशित की हैं। इसके अतिरिक्त इसी संस्था ने सी. एक्का की माँ-बाप और बच्चे, के० वा० साहू की ख्रीस्त की दुलहिन और आइए, हम प्रार्थना करें, अरुण कुमार की आधुनिक प्रार्थनाएं व ख्रीस्तानन्द की क्या धर्म सचमुच आवश्यक है आदि पुस्तकें प्रकाशित की हैं तथा कुछ अन्य प्रकाशनाधीन हैं। ये पुस्तकें निःशुल्क प्राप्त हो सकती हैं। 'दी वोईस आफ दी मारटायरस' (परिवर्तित नाम: लव इन एक्शन सोसायटी) जिसका गठन रोमानिया के रेवरेड रिचर्ड वूमरेण्ड, एक सुप्रसिद्ध ईसाई प्रचारक ने किया है। इन महाशय की प्रसिद्ध पुस्तक 'दी टार्चर्ड फार क्राइस्ट' उन्नीस बड़ी भारतीय भाषाओं में अनूदित हो चुकी है। अब इसी नाम से मासिक पत्रिका का प्रकाशन भी मार्च १९७६ से शुरु हो गया है। इस संस्था का मुख्यालय त्रिवेन्द्रम्, केरल में बनाया गया है। दिल्ली व नागपुर में इसकी शाखाएं स्थापित हो चुकी हैं। इस संस्था की विशेषता यह है कि यह अपना साहित्य साम्यवादी देशों से पीड़ित मसीहों को दृष्टि में रख कर लिखती है ताकि साम्यवाद का घिनौना रूप और ईसाइयत का उज्जवल पक्ष जनताजनार्दन के समक्ष रखा जा सके। वूमरेण्ड महोदय एक दो बार भारत भ्रमण कर चुके हैं और उन्हें अपने मिशन में काफी सफलता प्राप्त हुई है। हमारा कहने का तात्पर्य यह है कि ईसाइयों के साहित्य प्रकाशन व वितरण की उत्तम व्यवस्था है और लाखों रुपये का साहित्य वे मुफ्त बाँट देते हैं। दूसरी ओर हमारी स्थिति दयनीय है। इसमें सन्देह नहीं कि आर्यसमाज के विद्वानों ने ईसाई-प्रचार निरोध के लिये प्रभावशाली ट्रेक्ट लिखे हैं व उनका उत्तम प्रकाशन हुआ है। शुद्धि आन्दोलन के अन्तर्गत लाखों ईसाई बने हिन्दुओं को पुनः हिन्दू धर्म में लाया गया है। लेकिन मानना पड़ेगा कि ईसाई साहित्य की जो बाढ-सी आ गई है उसे रोकने के लिए अधिक सुदृढ़ बाँध बाँधने की आवश्यकता है। ईसाइयत में अधिकाधिक पढ़े-लिखे लोगों को दीक्षित करने का यह अनुपम उपाय है। कुछ ईसाई संस्थाएं जिनमें बाइबिल सोसायटी आफ इण्डिया, बंगलोर तथा Institute for Home study पूना प्रसिद्ध है इस प्रकार का पत्राचार पाठ्यक्रम चला रहा है। एक पत्र में या निर्धारित फार्म भर कर भेजने से आपका नाम रजिस्टर्ड हो जायेगा और आपको बाइबिल के पाठ उक्त संस्था भेजना शुरु कर देगी। इन पाठों के अन्त में एक प्रश्नावली दी होती है जिसका उत्तर इन पाठकों के आधार पर ही देना होता है। पाठ व सम्बन्धित ट्रेक्ट आपको निःशुल्क प्राप्त होंगे। विशेष स्थिति में पाठ लौटाने का व्यय संस्था स्वयं वहन करती है। इन के लगभग परीक्षा-पत्र भर कर भेजने से आपको बाइबिल-स्नातक का सुनहरी प्रमाण-पत्र घर बैठे मिल जायेगा। न कालेज-प्रोफेसर की जरूरत, न रुपये-पैसे की आवश्यकता मुफ्त में घर बैठे अल्प समय में यदि आप स्नातक बन जायें तो हानि क्या है। मजे की बात यह है कि परीक्षाओं का ९९ प्रतिशत परिणाम फल निकलता है—फेल होने की बहुत कम सम्भावना है। जो एक प्रतिशत विद्यार्थी फेल होता है वह पाठों को बीच में ही छोड़ देने वाला होता है। भला इसमे सस्ती व मजेदार पढ़ाई आपको और कहां मिल सकती है। स्नातक का सर्टिफिकेट तो प्रारम्भिक स्तर है अब तनिक आगे पढ़िए और ईसाइयत का लुतफ उठाइये। स्नातक होने के पश्चात् डिग्री प्राप्त कराने के लिए आपको पूना मे निमंत्रण प्राप्त होगा। पूना तक आने-जाने का मार्ग व्यय और भोजन तथा आवास का प्रबन्ध स्वयं मिशन करेगा आपको सिर्फ जाने का कष्ट उठाना पड़ेगा। पूना पहुंचने पर आपकी भेंट बड़े-बड़े पादरियों से कराई जायेगी और सम्पन्न घरानों से आपको भोजन के निमंत्रण मिलेंगे। यह जाल आपको पूर्णतया ईसाइयत के रंग में रंगने के लिए फैलाया जाता है। इसी बीच आपकी परीक्षा भी होती रहेगी कि भविष्य में आप उनके काम आ सकने हैं अथवा नहीं। ईसाइयत के प्रति थोड़ी-सी भी शंका या अविश्वास आपने प्रकट किया तो याद रखें लाख सर पटकने पर भी आपको डिग्री नहीं मिलेगी। मधुर भाषी और सुन्दर मुखड़े वाली युवतियां आपको अपने व्यवहार से इतना प्रभावित कर लेंगी कि वास्तव में ईसाइयत के बारे में न आपकी शंका रहेगी और न अविश्वास। दुर्भाग्य से यदि आप आर्यसमाजी हैं तो आपको न स्नातकी मिल सकती है न डिग्री क्योंकि उनके यहां तर्क-वितर्क को महापाप समझा जाता है और ऐसा होने पर आपको शैतानियत के सर्टिफिकेट से अधिक और कुछ नहीं मिल सकता। यदि आप जैसा वे चाहते हैं वैसे बन जाते हैं तो आपको नौकरी भी मिल सकती है और छोकरी भी। बम्बई-पूना आदि की सैर आपको फ्री कराई जा सकती है। विशेष योग्यता प्रमाणित हो जाने पर आपको विदेश-यात्रा की सुविधा भी प्रदान की जा सकती है। इन पाठ्यक्रमों की विशेषता यह है कि सेवा, प्रेम, अहिंसा, दया, सहिष्णुता, पवित्रता, सच्चाई, आदि सार्वभौम धर्म की दुहाई देकर ईसाइयत का इंजैक्शन आपके मस्तिष्क में लगाया जाता है। अपने जिस विकृत स्वरूप के कारण ईसाइयत के पाँव पश्चिम से उखड़ चुके हैं उसकी तनिक भी चर्चा आपको इन पाठों में नहीं मिलेगी। सेवा-प्रेम-अहिंसा आदि के पीछे जो भयानक षड्यंत्र भारतीयता को समूलतः नष्ट करने के लिए रचा हुआ है उसकी किंचित भी झलक आपको इन पाठों में नहीं मिलेगी। हजारों हिन्दू इन बाइबिल पत्राचार पाठ्यक्रमों के जाल में फंस कर स्वधर्म त्याग चुके हैं और हजारों हो इस चक्कर में गिरने को तैयार बैठे हैं। क्या हम उन्हें बचा पायेंगे ?

८. आध्यात्मिक शिविर

ईसाइयों के प्रचार-तन्त्र में आध्यात्मिक शिविर (Theological camp) भी प्रमुख स्थान रखते हैं। अमरीकी धन पर चलने वाली U.S. Educational Foundation in India नामक संस्था इन शिविरों को लगाती है जिनका नेतृत्व अमरीकी प्रोफेसर व विद्वान् करते है। इन शिविरों में मुख्यतः प्रोफेसर व अध्यापकों को ही आमन्त्रित किया जाता है। इन शिविरों में भारत का भविष्य बनाने वाले शिक्षाविदों व शिक्षकों को पाश्चात्य संस्कृति का पाठ पढ़ाया जाता है, पश्चिमी ढग के सामाजिक आचरण पर चलने की प्रेरणा दी जाती है और पश्चिम के अर्थ तन्त्र से उन्हें अवगत कराया जाता है। इसके साथ-साथ ईसाई धर्म की धाक उन पर जमाने की चेष्टा की जाती है। यह कार्य अत्यन्त चालाकी व खूबसूरती से किया जाता है जैसे कोई जेबकतरा जेब काट जाता है और पता तक नहीं चलने देता। तीन माह तक चलने वाले इन शिविरों में खान-पान, रहन-सहन, वेश-भूषा, बोल-चाल, आचार-विचार, उठना-बैठना, मिलना-बिछुड़ना आदि सब में आपको पश्चिमी ढंग की झलक मिलेगी, पाश्चात्य सभ्यता का रंग छाया मिलेगा, अंग्रेजियत के दर्शन होंगे। भारतीय नाम की यदि आपको कोई वस्तु नजर आयेगी भी तो वह होगी इन शिविरों में भाग लेने वाले भारतीयों की काली चमड़ी इसी प्रकार के

(शेष पृ० ६ पर)

पृ० ५ का शेष

आध्यात्मिक शिविर अन्य ईसाई संस्थाओं द्वारा भी लगाये जाते हैं लेकिन उनमें ईसाइयों को ही आमंत्रित किया जाता है। इन शिविरों में पश्चिमी ढंग की सभ्यता के गीत तो गाये ही जाते हैं इसके अतिरिक्त ईसाइयत के प्रचार के नये-नये ढंग भी सिखाये जाते हैं, विरोधियों द्वारा निरुत्साहित प्रचारकों में नवीन स्फूर्ति भरी जाती है और उन्हें अपने कर्त्तव्य का बोध कराया जाता है। ईसाई धर्म की आंशिक अच्छाइयों को बढ़ा-चढ़ा कर प्रस्तुत करना इन शिविरों की अपनी विशेषता है। प्रचार-कार्य में थके-हारे प्रचारकों के मस्तिष्क को ताजा बनाने के लिए इन शिविरों का अपना महत्व है। इन शिविरों का एक लाभ यह भी है प्रचारकों का पारस्परिक सम्बंध बढ़ता है, एक दूसरे की समस्याओं को समझने व उनका समाधान निकालने का अवसर मिलता है तथा उनमें सामूहिक चेतना एव उत्साह का संचार होता है।

९, प्रशिक्षण केन्द्र

गत पक्तियों में हम आध्यात्मिक शिविरों और बाईबिल पत्राचार पाठ्यक्रम के बारे में लिख चुके हैं कि कैसे वे लोगों को ईसाइयत में दीक्षित करते हैं। लेकिन ईसाइयत को सुदृढ़ आधार प्रदान करने के लिए देश में ५७ प्रशिक्षण केन्द्र ईसाइयों ने खोल रखे हैं जहां लोगों को प्रचारक व पादरी बनाया जाता है। इस प्रकार का भारत में सबसे बड़ा केन्द्र बम्बई में है। अमरीका, इंग्लैंड व अन्य यूरोपीय देशों में भी इस प्रकार के प्रशिक्षण केन्द्र स्थापित किये गए हैं जहाँ भारत आदि देशों के लिए पादरियों को तैयार किया जाता है। इन प्रशिक्षण केन्द्रों में भारत के भूगोल, परिस्थिति, भाषा, रीति-रिवाज, आदत, अन्धविश्वास, वेशभूषा, धर्म विश्वास, चरित्र आदि के बारे में विद्यार्थी को पूर्ण ज्ञान प्राप्त कराया जाता है। ईसाइयत के आंशिक धर्म को व्याख्या सहित कैसे बढ़ा-चढ़ा कर प्रस्तुत किया जाना चाहिये इसका अभ्यास उन्हें कराया जाता है। हिन्दू धर्म के विशेषकर पुराणों के अवैज्ञानिक एवं हास्यास्पद स्थलों की शिक्षा भी उन्हें दी जाती है। पाश्चात्य विद्वानों के आपत्तिजनक वेद भाष्य का ज्ञान भी उन्हें कराया जाता है ताकि ईसाई विरोधी संस्थाओं से वे लोहा ले सकें। इसके अतिरिक्त उनको अनेक हथकंडों से परिचित कराया जाता है जिससे ईसाइयत फैलाने में सुविधा मिलती है। विरोधियों के प्रचार पर कैसे कुठाराघात करना है, उनके विरोध को कैसे शांत करना है, उनके तर्क को कैसे काटना है, मैदान छोड़ कर कैसे भागना है—आदि का प्रशिक्षण भी यहां दिया जाता है। इन प्रशिक्षण केन्द्रों से निकल कर पादरी व प्रचारक जब जनता के बीच पहुंचते हैं तो अपने व्यवहार से ऐसा सिद्ध करते हैं जैसे वे उनके बीच वर्षों से रह रहे हैं, उनके चिर-परिचित हैं। बाईबिल में वर्णित धार्मिक अंशों और चमत्कारों से वे लोगों को प्रभावित करते हैं। आवश्यकता पड़ने पर धन व धमकी का सहारा भी वे लोग ले लेते हैं।

१०. विदेशी प्रभाव व सहायता

ईसाइयत का जो विस्तृत जाल हमारे देश में फैला हुआ है वह विदेशी सहायता और प्रभाव के कारण ही सम्भव हो सका है। ईसाइयत के प्रचार में पोप की इतनी रुचि नहीं जितनी कि विदेशी सरकारों की है। ये सरकारें ईसाइयत की आड़ में अपने राजनैतिक स्वार्थ को पूर्ण करने के लिए प्रतिबद्ध हैं। यही कारण है कि ईसाइयों की ओर से इतना धन भारत नही पहुंचता जितना कि इन सरकारों की ओर से भेजा जाता है। जनवरी १९५० से जून १९५४ तक २९.२७ करोड़, जनवरी १९५६ से अप्रल १९५६ तक ३.७० करोड़, जनवरी १९५७ से जनवरी १९५९ तक ३१.६३ करोड़, जनवरी १९५९ से जुलाई १९६१ तक १७.८३ करोड़ अर्थात् ११ वर्षों में ९०.४३ करोड़ रुपया ईसाइयत के प्रचार के लिए विदेश से भारत में आया है। लोकसभा में उपगृहमंत्री श्री विद्याचरण शुक्ल ने एक प्रश्न के उत्तर में कुछ वर्ष पूर्व बतलाया था कि जनवरी १९६४ से सितम्बर १९६७ तक ८३.५६ करोड़ रुपया इसी काम के लिए बाहर से यहां पहुंचा है। दिसम्बर १९७२ में राज्यसभा में यह रहस्योद्घाटन हुआ था कि गत दो वर्ष में विदेशी पादरियों को ८१ करोड़ रुपये की सहायता विदेशी गिरजों से प्राप्त हुई है। यह उस धन के आंकड़े हैं जिनका सरकार को पता है। इसके अतिरिक्त खाद्यान्न, औषधियों तथा अस्पतालों के समान के रूप में कितनी विदेशी सहायता ईसाइयों को मिली है इसका कुछ ब्यौरा नहीं है। अवैध रूप से सरकार की आँखों में धूल झोंक कर जो काला धन स्वर्ण के बिस्कुट आदि के रूप में पहुंचता है उसका भी आज तक किसी को हिसाब मालूम नहीं है।

दस देशों के लगभग ७-८ हजार पादरी भारत में सक्रिय हैं। विदेशी धन इन्हीं पादरियों के हाथों में पहुंचता है जिसे वे अपनी इच्छानुसार योजनाबद्ध ढंग से व्यय करते हैं। इन विदेशी पादरियों ने अपने प्रचार क्षेत्र बांट रखे हैं ताकि आसानी से कम खर्च में ईसाइयत को फैलाया जा सके। अमरीकी पादरी पटना, जमशेदपुर और दार्जिलिंग में, स्पेनी पादरी बम्बई में, इटालियन पादरी कर्नाटक में, फ्रांसीसी पादरी मद्रास, मदुराई और त्रिचनापल्ली में, जर्मन पादरी पूना व बेलगांव में, बेल्जियम पादरी बंगाल व उत्तर प्रदेश में, स्विटजरलैंड के पादरी पूना व बेलगांव में तथा ब्रिटेन, केनेडा और हालेंड के पादरी अन्य स्थानों पर सक्रिय हैं। इन विदेशी मिशनरियों की विशेषता यह है कि वे आपस में लड़ते-झगड़ते नहीं, एक दूसरे के कार्य में हस्तक्षेप नहीं करते, किसी के मार्ग में बाधा नहीं पहुंचाते। यह विशेषता ईसाई विरोधी संस्थाओं में दृष्टिगोचर नहीं होती—अपनी अपनी उन्नति से वे संतुष्ट हो जाते हैं और एक दूसरे को गिराकर आगे बढ़ने की प्रवृत्ति से आक्रान्त हैं। इस स्थिति का विदेशी मिशनरी पूरा फायदा उठाते हैं।

अमेरीका के लगभग ४५७ रेडियो स्टेशनों से प्रति रविवार को भारत आदि देशों की दयनीय स्थिति का झूठा व अनर्गल प्रचार करके लोगों को ईसाइयत के प्रचार के लिए धन आदि की सहायता देने के लिए प्रेरित किया जाता है। इन रेडियो स्टेशनों से भारत के परम्परागत धर्म व संस्कृति के बारे में मिथ्या व त्रुटिपूर्ण प्रचार किया जाता है। फरवरी १९५३ में अमेरीकन ब्राडकास्टिंग कंपनी के प्रोग्राम 'हायर आफ डिसीजन (निर्णय का घंटा) में यह गर्वोक्ति श्रोतागणों को सुनाई पड़ी कि The old Hindu religion must go. अर्थात् बूढ़ा हिन्दू धर्म समाप्त होना चाहिए। अमेरीकी टेलीविजन पर तो यहां तक दिखाया जाता है कि भारत के निवासी नग्न, असभ्य, शराबी, अफीमची आदि हैं जिनका उद्धार ईसाइयत द्वारा ही सम्भव है। इन विशेष प्रोग्रामों का दिखाने का प्रयोजन यही रहता है कि अमेरीकी जनता को पुष्कल दान देने के लिए उत्साहित किया जा सके। टेलीविजन के माध्यम से भारत में ईसाई बने बन्धुओं की भेंट वार्ताएं प्रस्तुत करके ईसाइयत को अधिकाधिक सहायता देने के लिए वातावरण तैयार किया जाता है। भारत में ईसाइयत की प्रगति के अतिशयोक्तिपूर्ण विवरण वहां प्रस्तुत किए जाते हैं। भारत-विरोधी प्रचार सामग्री जो कि इन रेडियो व टेलीविजन केन्द्रों से प्रसारित होती है भारत से ही तैयार होकर जाती है। जबलपुर रेलवे स्टेशन के निकट १५ सिविल लाइन्स में स्थित तथा ऐम्पायर सिनेमा के पास ही सड़क के किनारे जो भवन है उसी में ईसाई-प्रचार के लिए फिल्में तैयार होती हैं जिनमें भारतीयों की दुर्दशा का चित्रण होता है। इस संस्था का नाम ही The christian Association for Radio & Auto-visual service है। एशिया में सबसे बड़ी धार्मिक फिल्में और फिल्म-स्ट्रिप्स लायब्रेरी इस संस्था के पास हैं। इन फिल्मों को दिखाने वाले बहुमूल्य उपकरण इसके पास हैं। अदीस आबाबा रेडियो स्टेशन से रात्रि को जो 'संगम' कार्यक्रम प्रसारित होता है वह इसी संस्था द्वारा तैयार किया होता है।

अमरीका में एक अन्तर्राष्ट्रीय ईसाई मिशन की स्थापना कुछ वर्ष पूर्व हुई है जिसका नाम 'विंग्स आफ हीलींग' है। इस संस्था के प्रमुख संचालक डा० थोमस वायट और आर. जी. होक्स्ट्रा हैं। इन दोनों महानुभावों ने एक सार्वजनिक अपील प्रचारित करके अमेरीकी नागरिकों से आग्रह किया है कि उनकी संस्था को अधिकाधिक धन देकर ईसाइयत के हाथ मजबूत करें ताकि हम कम से कम एक अरब व्यक्तियों को ईसाई बना कर कम्यूनिस्टों से लोहा ले सकें। संसार भर के देशों में अपनी 'इनजेक्शन टीम्स' भेजने हेतु इस संस्था ने करोड़ों रुपया संग्रहीत कर लिया है।

क्रमशः

मन-सम्बन्धित स्पष्टीकरण

[लेखक—पं० ओमप्रकाश जी शास्त्री, विद्याभास्कर खतौली, जि० मुजफ्फरनगर]

३० सितम्बर के "आर्यमर्यादा" साप्ताहिक पत्र में श्री पं० दीना नाथ जी सिद्धान्तालंकार का एक लेख मेरे २३ सितम्बर के उक्त पत्र के अंक में प्रकाशित संक्षिप्त लेख के सम्बन्ध में प्रकाशित हुआ है। मैंने विद्वान् लेखक के इस लेख को बड़े ध्यान से पढ़ा। वैसे मैं इस विषयक विवाद में पड़ना नहीं चाहता था, और न अब चाहता हूं। परन्तु उत्पन्न विवाद को समाप्त करने की दृष्टि से ही मैंने उक्त संक्षिप्त पंक्तियां लिखी थीं सम्प्रति सिद्धान्तालंकार जी के इस लेख के प्रकाशित हो जाने के बाद यह लेख लिखना भी आवश्यक हो गया है। आशा है सिद्धान्तालंकार जी इस पर विचार करेंगे।

विवाद का आधार श्री स्वा० रामेश्वरानन्द जी महाराज द्वारा लिखित "सन्ध्याभाष्य" मैंने नहीं देखा है। उस पर श्री आदरणीय सिद्धांती जी की समालोचना तथा श्री पं० जी का उसकी पुष्टि में लिखा लेख मैंने अवश्य पढ़े थे। संभवतः इसी कारण श्री पं० जी ने "आभ्रान् पृष्ठः केदारान् (?) (कोविदारान्) आचष्टे" के अनुसार मेरे लघु लेख को प्रकरण विरुद्ध समझ लिया है। श्री स्वामी रामेश्वरानन्द जी ने संकल्प सूक्त के क्या अर्थ किये हैं, यह तो मुझे विस्तार से ज्ञात नहीं, परन्तु मैं उनके इस विचार से सहमत हूं, कि उक्त सूक्त में मन के जो विशेषण दिये गये हैं, वह भौतिक अतएव करण रूप जड़ मन के नहीं हो सकते। अच्छा होता, कि श्री स्वा. दयानन्द जी के भाष्य को इस विवाद में न लाकर श्री सिद्धान्तालंकार जी स्वतन्त्र रूप से इन मन्त्रों पर विचार करते। इस प्रकार के विवादों मे पूर्वाग्रह, प्रायः विचार में बाधक हो जाता है। और उससे अनेक भ्रान्तियां उत्पन्न हो जाती हैं। फिर भी महर्षि दयानन्द जी महाराज के भाष्यों तथा भावार्थों वाली जो पंक्तियां श्री पं० जी ने अपने लेख में उद्धृत की हैं—उनसे भी एतद् विषयक विवाद की समाप्ति या समाधान नहीं हो सकता।

आपने ऋषि भाष्य का "श्रोत्र आदि इंद्रियों को प्रवृत्त करने हारा" "संकल्पविकल्पात्मक मन" आदि जो पंक्तियां लिखी है। उन पर क्या शंका नहीं उठ सकती, कि क्या जड़ मन किसी प्रवृत्ति या संकल्प विकल्प का स्वतन्त्रतः निमित्त कर्त्ता हो सकता है? यदि ऐसा हो तो फिर शरीर में जीव की क्या स्थिति होगी? और उन प्रवृत्तियों और संकल्प विकल्पों का उत्तरदायी जीव होगा, या जड़ मन? इसी प्रकार लेख के (ग) भाग में "ज्योतिषां इन्द्रियाणां सूर्यादीनां च ज्योति ..." इत्यादि जो पंक्तियां आपने उद्धृत की हैं उनसे भी मन एक कर्ता तथा निमित्त कारण के रूप में प्रकट होता है, करण के रूप में नहीं। इसके अतिरिक्त "अमृतं और अन्तरमृतम्" शीर्षक के (क) भाग में जो पंक्तियां आपने उद्धृत की है, उनमें "आत्मा का साथी होने से (मे मनः) के सम्बन्ध में मेरा इतना ही निवेदन है, कि "क्या आत्मा का साथी होने मात्र से भौतिक मन जिसको आप जड़ मानते है, नाश रहित भी हो सकता है? जब कि प्रत्येक उत्पन्न वस्तु विनाशी अथवा अनित्य होती है। इन पंक्तियों को उद्धृत करके, तो आप "वदतो व्याघात" निग्रह स्थान में स्वयं फंस जाते हैं। एक तरफ तो मन को जड़ भी माने, और फिर उसे जीव का साथी होने से नाश रहित भी माने। यह कैसे सभव है? आशा है, आप इन शकाओं पर गभीरता तथा स्वतन्त्रता से विचार कर इनका समाधान करने की कृपा करेंगे। इसके बाद "वेद में मन कर्त्ता के रूप में नहीं" शीर्षक के नीचे लिखी आपकी पंक्तियों से ऐसा आभास होता है, कि विद्वान् आपका हृदय भी उक्त विशेषणों को देख कर दर्शन तथा वेद वर्णित मन के पार्थक्य को अनुभव करता है।

सम्प्रति भी मेरा यह विचार है, कि उक्त "संकल्प सूक्त" में जिस मन का वर्णन किया गया है, वह चाहे आत्मा का स्पष्ट और सीधे रूप में पर्यायवाची न हों, किन्तु वह फिर भी जीवात्मा के मनन रूप गुण का उद्बोधक हैं। गुण का वर्णन द्रव्य का ही वर्णन होता है, इसी दृष्टि से पूर्व लेख का वह शीर्षक लिखा गया था। उस लेख का मुख्य उद्देश्य यह ही था कि उक्त सूक्त में भौतिक करण रूप जड़ मन का वर्णन नहीं है। क्योंकि उक्त सूक्त में आये मन के प्रायः सभी विशेषण किसी चेतन सत्ता के लिए संभव है, जड़ वस्तु के नहीं। ऐसा न मानने पर इस लेख में उपरिवर्णित शंकाओं का समाधान विद्वान् लेखक को करना होगा। भौतिक अन्तःकरण के रूप में प्रसिद्ध मन को मैं भी जड़ ही मानता हूं। अतएव विनाशी तथा अनित्य भी।

अपने इस विचार की पुष्टि में मैं श्री स्वा० दर्शनानन्द जी महाराज के "मुक्ति से पुनरावृत्ति" नामक ट्रैक्ट की पंक्तियां अविकल्प रूप में उद्धृत कर रहा हूं—जो इसी विवाद को दृष्टि में रखते हुए समन्वय रूप में उक्त स्वामी जी महाराज ने लिखी हैं।

"बहुत से लोग यहां पर यह प्रश्न करेंगे, कि तुमने मुक्ति में मन का नाश माना है, परन्तु बादरायण जो व्यास जी के पिता हैं, वह मुक्ति में मन का अभाव मानते हैं, "अभावं बादरिराह"। किन्तु जैमिनि आचार्य मुक्ति में मन का भाव मानते हैं, और व्यास जी तो अभाव और भाव दोनों ही मानते हैं। इसका क्या कारण है? किन्तु इस विरोध के होने पर भी तुम केवल अभाव मानते हो, जब कि ऋषियों में परस्पर विरोध है, तो इसको यथार्थ किस प्रकार माना जा सकता है? विदित रहे कि मन दो प्रकार का माना गया है, एक नित्य दूसरा अनित्य। जिस ऋषि ने नित्य मन को लेकर विचार किया है, उसको मन का भाव मानना पड़ा है और जिसने अनित्य मन का विचार किया, उसने मुक्ति में मन का अभाव माना। महर्षि कणाद ने वैशेषिक दर्शन में मन को नित्य कहा है:—

तस्य द्रव्यत्वं नित्यत्वं च वायुना व्याख्याते।

अर्थ—उसका अर्थात् मन का द्रव्य होना और नित्य होना वायु के समान व्याख्यान किया गया है। जिस प्रकार वायु द्रव्य और नित्य है, उसी प्रकार मन भी नित्य है। दूसरी ओर महर्षि कपिल जी सांख्य दर्शन में मन को प्रकृति का बता कर अनित्य बताते हैं। देखो सांख्य दर्शन अ. १ सूत्र ७१।

"महदाख्यमाद्यं कार्यं तन्मनः।

अर्थ—महत् नामी प्रकृति का पहिला कार्य (मन) है, उसके अनित्य होने में क्या संशय हो सकता है। इस पर विचार करते हुए एक ओर से ध्वनि उठती है, क्योंकि वेद मन्त्र (संकल्प सूक्त) में मन को "अमृत" बताया है, इससे मन को नित्य ही मानना यथार्थ है, दूसरी ओर से ध्वनि उठती है, उसका यह अर्थ नही हो सकता। क्योंकि छान्दोग्योपनिषद् में मन की उत्पत्ति इनसे मानी गई है:—

"अन्नमशितं त्रेधा विधीयते, तस्य यः स्थविष्ठो धातु स्तत् पुरीषंभवति, यो मध्यमस्तन्मांसं, योऽणिष्ठ स्तन्मनः।

अर्थ—जो अन्न खाया जाता है, वह तीन प्रकार का हो जाता है, उसका जो सबसे स्थूल भाग है, वह मल होकर निकल जाता है, जो मध्यम (सामान्य) भाग है वह मांस बनता है, जो सबसे सूक्ष्म होता है, वह मन बन जाता है। इससे स्पष्ट प्रकट होता है, कि मन अनित्य है। मूर्ख लोग जो मन की वास्तविकता को नहीं जानते, वे ऐसे अवसरों पर विचार करते है, कि शास्त्र में विरोध है, इसलिए कोई शास्त्र प्रमाण नहीं हो सकता। ऋषि भी परस्पर विरुद्ध सम्मति रखते हैं, इसलिए उनकी बात का सत्य होना आवश्यक नहीं है। परन्तु यह सब विचार अनभिज्ञता के कारण से है, शास्त्रों की एक विषय में एक ही सम्मति है। परन्तु जहां विषय ही दो हों, वहां दो मत होना आवश्यक है। मन दो हैं, एक मनन शक्ति, जो कि जीवात्मा का स्वाभाविक गुण है, दूसरा मन कारण है, जो कि जीव के बाहरी इन्द्रियों से कार्य लेने का साधन है। क्योंकि जीवात्मा का गुण है, वह भी नित्य है। दूसरा मन करण, अन्न से वा प्रकृति से बनता है, इसलिये वह अनित्य है। व्यास जी के पिता बादरा ने मन जो बाह्यज्ञान का साधन है, उसका विचार किया, अतः उसका मुक्ति में अभाव बतलाया। क्योंकि मुक्ति में कोई अनित्य द्रव्य साथ नही रह सकता। जैमिनि जी ने मनन शक्ति का विचार किया, उन्होंने मुक्ति में इसका (मन का) होना आवश्यक समझा, क्योंकि मनन शक्ति जीवात्मा

(शेष पृ० ११)

'मन' आत्मा का गुण नहीं, वह द्रव्य है अतएव 'जड़' है

(श्री स्वामी पूर्णानन्द सरस्वती- आ० स० बड़ौत- मेरठ)

२६ अगस्त सन् १९७३ के 'आर्यमर्यादा' में पूज्य गुरुवर श्री स्वामी रामेश्वरानन्द जी महाराज का 'मन' के सम्बन्ध में एक लेख प्रकाशित हुआ है। 'मन' के सम्बन्ध में उक्त स्वामीजी ने अपना मन्तव्य इस प्रकार से लिखा है:—"मेरी मान्यता वही है कि मन जड़ और चेतन दोनों नहीं अपितु जीव आत्मा की शक्ति गुण है।" अर्थापत्ति से उक्त स्वामी जी की मान्यता यह है कि 'वैशेषिक दर्शन में मन को जो द्रव्य कहा गया है, वह सिद्धान्त गलत है। और सांख्य दर्शन में जो मन को प्रकृति जन्य पदार्थ कहा गया है वह भी गलत है'। उक्त स्वामी जा महर्षि दयानन्द जी को भी अपनी मान्यता का पृष्ठ पोषक लिखते हैं। इसके प्रमाण स्वरूप उन्होंने महर्षिदयानन्द लिखित सत्यार्थ प्रकाश के नवम और सप्तम समुल्लासों के कुछ लेख उद्धृत किये हैं। और ऋषि दयानन्द कृत यजुर्वेद भाष्य के ३४ वें अध्याय के तीसरे मन्त्र के भाषा भाष्य को उद्धृत किया है। अतः हम उपर्युक्त तीनों प्रमाणों की परीक्षा करना अपना कर्तव्य समझते हैं।

पहले नवम समुल्लास के उद्धरण को लेते हैं। उक्त स्वामी जी ने लिखा है:— 'शृण्वन् श्रोत्रं भवति इस शतपथ वचन का अर्थ करते हुए महाराज ने लिखा है कि मोक्ष में भौतिक संग नहीं रहता मोक्ष में जीवात्मा के साथ अपने शुद्ध स्वाभाविक गुण रहते हैं। संकल्प विकल्प के समय मन निश्चय के अर्थ बुद्धि, स्मरण के लिये चित्त, अहंकार के लिये अहंकार रूप जीवात्मा अपनी स्वशक्ति से मुक्ति में होता है।" इस उद्धरण में स्वामी रामेश्वरानन्द जी ने सत्यार्थ प्रकाश के 'होजाता है' के स्थान में 'होता है' लिखकर ही गलती खाई है। यदि उक्त स्वामी जी अपनी गलती का सुधार करलें तो उनकी यह मान्यता भी बदल जायेगी कि 'मन जीवात्मा की शक्ति गुण है'। 'होजाता है' पद का अर्थ ही यह है कि बन्धावस्था में जो इन्द्रिय, और अन्तःकरणचतुष्टय जीवात्मा के भोग साधन थे मोक्षवस्था में नहीं रहते। बल्कि जीवात्मा इच्छा होने पर स्वशक्ति से मोक्षानन्द के भोग के लिये स्वयं साधन रूप अपने संकल्प मात्र से होता है बन्धावस्था और मोक्षावस्था में यही तो अन्तर है कि बन्धनावस्था में जीवात्मा प्रकृति-जन्य पदार्थों का भोग प्रकृति जन्य इन्द्रियों और अन्तःकरणों के द्वारा करता है और मुक्तावस्था में ब्रह्मानन्द का भोग अपनी शक्ति से करता है। बन्धनावस्था में जीवात्मा की शक्ति पराधीन होती है और मोक्षावस्था में स्वतन्त्र। बन्धावस्था में इन्द्रियाँ और अन्त.करण प्रकृति जन्य होने के कारण निष्क्रिय और जड़ होते हैं परन्तु जीवात्मा के सानिध्य से उनमें क्रियाशीलता और चैतन्य सा प्रतीत होता है, परन्तु वास्तविक कर्त्ता तो जीवात्मा ही होता है अतः भोक्ता भी वही होता है। जैसा कि कठोपनिषद् में कहा है। 'आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मणीषिणः' आत्मा इन्द्रियों और मन के साथ मिलकर भोक्ता होता है।

अब सप्तम समुल्लास के उद्धरण को लेते हैं। स्वामी रामेश्वरानन्द जी ने लिखा है:—"तथा सत्यार्थ प्रकाश समुल्लास ७ में इच्छा, द्वेष, प्रयत्न दुःख, ज्ञान, प्राण, अपान, निमेष, उन्मेष, जीवन, मन, गति, इन्द्रिय, अन्तविकार, क्षुधा, तृषा, हर्ष, शोक, आदि युक्त होना जीवात्मा के गुण परमात्मा से भिन्न है। तथा पांच प्राण पाँच ज्ञानेन्द्रियां, पाच सूक्ष्मभूत, मन, बुद्धि, इन सतरह तत्त्वों का समुदाय सूक्ष्म शरीर माना जाता है। इसके भौतिक अभौतिक भेद से दो भेद हैं। अभौतिक शरीर, स्वाभाविक जीव के गुण रूप है। इसी से जीव मुक्ति मे सुख भोगता है। इससे भी यह सिद्ध है कि मन बुद्धि आदि जीव के गुण हैं।" उक्त स्वामी जी के इस लेख को पढ़कर यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि प्रशंसित स्वामी जो ने सत्यार्थ प्रकाश को देखकर यह उद्धरण नहीं लिखा अपितु अपनी स्मृति से ही इसको लिखा है। अन्यथा वे इतनी बड़ी भूल न करते। इतना बड़ा सन्दर्भ सारा का सारा सत्यार्थ प्रकाश के ७ वें समुल्लास का नहीं है अपितु इसमें आधा सन्दर्भ सत्यार्थप्रकाश के सातवें समुल्लास का है, और आधा नवम समुल्लास का है इनके विषय भी भिन्न भिन्न हैं। सातवें समुल्लास में जीवात्मा के लिगों का वर्णन है और नवम समुल्लास के सन्दर्भ में सूक्ष्म शरीर का वर्णन है। सत्यार्थप्रकाश को देखे बिना लिखने से यह भूल रह गई है कि उक्त स्वामी जी ने जीवात्मा के वैशेषिकोक्त लिंगों के नाम तो लिख दिए हैं, परन्तु उन नामों पर महर्षिदयानन्द जी की व्याख्या या मत लिखना भूल गये। पाठक जरा सत्यार्थप्रकाश के उस असली लेख को पढ़ें। वह इस प्रकार से हैं:—

"(इच्छा) पदार्थों की प्राप्ति की अभिलाषा (द्वेष) दुःखादि की अनिच्छा (प्रयत्न) पुरुषार्थ बल (सुख) आनन्द (दुःख) विलाप अप्रसन्नता (ज्ञान) विवेक पहिचानना ये तुल्य हैं परन्तु वैशेषिक में (प्राण) प्राण वायु को बाहर निकालना (अपान) प्राण को बाहर से भीतर लेना (निमेष) आंख को मीचना (उन्मेष) आंख को खोलना (मन) निश्चय स्मरण और अहंकार करना (गति) चलना (इन्द्रिय) सब इन्द्रियों को चलाना (अन्तर् विकार) भिन्न भिन्न क्षुधा, तृषा, हर्ष, शोकादि युक्त होना ये जीवात्मा के गुण परमात्मा से भिन्न हैं। उन्हीं से आत्मा की प्रतीति करनी।" ऋषि दयानन्द के इस लेख को पढ़ने से पता चलता है कि इस लेख में स्वामी जी ने न्याय दर्शन के १।१।१० और वैशेषिक दर्शन के ३।२।४। सूत्रों में कहे हुए जीवात्मा के १४ लिंगों की व्याख्या की है। इनमें इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुःख, और ज्ञान ये छः आत्मा के गुण हैं और शेष आठ आत्मा के कर्म हैं जिन में प्राण वायु को बाहर, भीतर करना, आंखों को मींचना, खोलना, निश्चय, स्मरण, और अहंकार करना, चलना, सब इन्द्रियों का चलाना, भिन्न भिन्न क्षुधा, तृषा, हर्ष शोकादि युक्त होना सम्मिलित हैं। ऋषिवर ने यह जो लिखा है—"ये जीवात्मा के गुण परमात्मा से भिन्न हैं।" इसमें गुण का अर्थ विशेषण या विशेषता (अलग पहचान) के हैं। ऋषि दयानन्द जी महाराज ने स्वयं उपयुक्त सूत्रों की व्याख्या तीसरे समुल्लास में भी की है। उसमें स्वामी जी ने लिखा है:—

"ये सब आत्मा के लिंग अर्थात् कर्म और गुण हैं।" चूंकि उपयुक्त १४ लिंग वैशेषिक दर्शन में कहे गये हैं इसलिये 'गुण' और 'कर्म' के लक्षणों को भी ऋषिवर गुणों की गणना इस प्रकार करते हैं:—"रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, संख्या, परिणाम, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, बुद्धि सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, गुरुत्व, स्नेह, संस्कार, धर्म, अधर्म, और शब्द ये चौबीस गुण कहाते हैं" (सत्यार्थप्रकास तृतीय समुल्लास)। इन चौबीस गुणों में पूज्य स्वामी जी स्वयं देखलें कि इन में प्राण, अपान, निमेष, उन्मेष, जीवन, मन, गति, इन्द्रिय और अन्तर्विकार कहां लिखे हैं? इसलिये यह स्पष्ट है कि प्राणापानादि और मन तथा इन्द्रियों को जीवात्मा का गुण मानना स्वामी रामेश्वरानन्द जी का अपना निजी मत है, ऋषि दयानन्द जी का यह मत नहीं। ऋषि दयानन्द जी का यह मत है कि 'मन' द्रव्य है। तृतीय समुल्लास में ऋषि ने स्वयं लिखा है:—"पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, दिशा, काल, आत्मा, और मन ये नव द्रव्य हैं" और चूंकि मन आत्मा से अतिरिक्त द्रव्य है इस लिये जड़ भी है।

अब तीसरे प्रमाण को लेते हैं। उक्त स्वामी जी लिखते हैं:—"वस्तुत मन बुद्धि प्राणादि सब जीव के साथी शक्ति गुण हैं इस सम्बन्ध में मैं केवल एक मन्त्र यजुर्वेद अध्याय ३४, मन्त्र ३ को उपस्थित करता हूं। इससे स्पष्ट हो जायेगा कि मन जड़ नहीं अपितु जीव का गुण है। यत् प्रज्ञानभृत० --पदार्थ—हे जगदीश्वर आपके ज्ञापन से यत् जो प्रज्ञानम् ज्ञान का उत्पादक बुद्धि रूप उत और चेतः स्मृति का साधन, धृति धैर्य रूप, और लज्जादि कर्मों का कारण प्रजासु मनुष्यों के अन्तः करण में आत्मा का साथी होने हे अमृतम् नाश रहित ज्योतिप्रकाश स्वरूप यस्मात् जिसके ऋते बिना किञ्चन–कुछ भी। कर्म–काम। न–नहीं। क्रियते–किया जाता है। तत् वह में (मेरा) जोव का। मनः मन सब कर्मों का साधन रूप। शिवसकल्पम्–कल्याण कारी परमात्मा में इच्छा रखने वाला अस्तु (हो)। भावार्थ हे मनुष्यो! जो अन्तः करण बुद्धि, चित्त, मन, वाला (मनवाला भावार्थ में नहीं हैं) अहंकार रूपवृत्ति वाला होने से चार प्रकार से भीतर प्रकाश करने प्राणियों के सब कर्मों का साधक अविनाशी मन है। उसको न्याय और सत्याचरण में प्रवृत्त करके पक्षपात अन्याय अधर्माचरण से निवृत करो। इससे स्पष्ट हो गया है कि मन, बुद्धि, चित्तादि जीवात्मा के साथी हैं। और साथी गुणी का गुण ही होता है।"

इस सारे सन्दर्भ में एक शब्द भी ऐसा नहीं जिससे मन बुद्धि आदि का

(शेष पृ० १० पर)

महर्षि दयानन्द के राजनीतिक भाव

(जगदेवसिंह सिद्धान्ती द्वारा संकलित)

(२९) जो इन्द्र यम सूर्य अग्नि वरुण और धनाढ्य के गुणों से युक्त विद्वानों का प्रिय विद्या का प्रचार करने वाला सबको सुख देवे, उसी को राजा मानना चाहिये ।। मं० ३२

(३०) सभापति राजा अपने राज्य के उत्कर्ष से सब जनों को विद्या आदि शुभ गुण और कर्मों में सुशिक्षित करके निरालस्य करता रहे, जिससे वे पुरुषार्थी होकर धनादि पदार्थों को निरन्तर बढ़ावें ।। मं० ३३

(३१) जैसे ईश्वर सर्वसुहृत् पक्षपात रहित है, वैसे सभापति राज्य-धर्मानुवर्त्ति राजा होकर प्रशंसनीय की प्रशंसा, निन्दनीय की निन्दा, दुष्टों को दण्ड, श्रेष्ठ की रक्षा करके सबका अभीष्ट सिद्ध करो ।। मं० ३७

(च) अध्याय ७ के—

(३२) सभाध्यक्ष को चाहिये कि सूर्य्य और चन्द्रमा के समान श्रेष्ठ गुणों को प्रकाशित और दुष्ट व्यवहारों को शान्त करके श्रेष्ठ व्यवहार से सज्जन पुरुषों को आह्लाद देवे ।। मं० १६

(३३) प्रजा पुरुष राज्य कर्म में जिस राजा का आश्रय करें, और वे प्रजाजन उस न्यायाधीश के प्रति अपने अभिप्राय को शंका समाधान के साथ कहें, राजा के नौकर चाकर भी न्यायकर्म ही से प्रजाजनों की की रक्षा करें ।। मं० १७

(३४) राजा और विद्वानों को योग्य है कि वे निरन्तर राज्य की उन्नति किया करें क्योंकि राज्य की उन्नति के विना विद्वान् लोग सावधानी से विद्या का प्रचार और उपदेश भी नहीं कर सकते और न विद्वानों के संग और उपदेश के विना कोई राज्य की रक्षा करने के योग्य होता है, तथा राजा प्रजा और उत्तम विद्वानों की परस्पर प्रीति के विना ऐश्वर्य की उन्नति और ऐश्वर्य की उन्नति के विना आनन्द भी निरन्तर नहीं हो सकता ।। मं० २०

(३५) जैसे चन्द्रलोक सब जगत् के लिये हितकारी होता है, और जैसे राजा सभा के जन और प्रजाजनों के साथ उनके उपकार के लिये धर्म के अनुकूल व्यवहार का आचरण करता है, वैसे ही सभ्य पुरुष और प्रजाजन राजा के साथ वर्त्तें। जो उत्तम व्यवहार गुण और कर्म का अनुष्ठान करने वाला होता है, वही राजा और सभा पुरुष न्यायकारी हो सकता है, तथा जो धर्मात्मा जन है वही प्रजा में अग्रगण्य समझा जाता है। इसी प्रकार ये तीनों परस्पर प्रीति के साथ पुरुषार्थ से विद्या आदि गुणों और पृथिवी आदि पदार्थों से अखिल सुख को प्राप्त हो सकते हैं ।। मं० २१

(३६) सब विद्याओं को जानने वाले विद्वान् को योग्य है कि राज्य व्यवहार में सेना के वीर पुरुषों को रक्षा करने के लिये अच्छी शिक्षायुक्त, शस्त्र और अस्त्र विद्या में परमप्रवीण यज्ञ के अनुष्ठान करने वाले वीर पुरुष को सेनापति के काम में नियुक्त करे और सभापति और सेनापति को चाहिये कि परस्पर सम्मति करके राज्य और यज्ञ को बढ़ावें ।। मं० २२

(३७) प्रजाजनों को उचित है कि सकल शास्त्र का प्रचार होने के लिये सब विद्याओं में कुशल और अत्यन्त ब्रह्मचर्य के अनुष्ठान करने वाले पुरुष को सभापति करें, और वह सभापति भी परमप्रीति के साथ सकल शास्त्र का प्रचार करता रहे ।। मं० २३

(३८) जैसे सत् पुरुष धनुर्वेद के जानने वाले परोपकारी विद्वान् लोग धनुर्वेद में कही हुई क्रियाओं से यानों और शस्त्रास्त्र विद्या में अनेक प्रकार से अग्नि को प्रदीप्त कर शत्रुओं को जीता करते हैं, वैसे ही अन्य सब मनुष्यों को भी अपना आचरण करना योग्य है ।। मं० २४

(३९) सभापति राजा को योग्य है कि सत्य न्याययुक्त प्रिय व्यवहार से सब सेना और प्रजा के जनों की रक्षा करके उन सभों को उन्नति देते और अति प्रबल वीरों को सेना में रक्खे, जिससे बहुत सुख बढ़ाने वाले राज्य से भूमि आदि लोकों के सुख को प्राप्त होवे ।। मं० २९

(४०) सभाध्यक्ष राजा को चाहिये कि यथोचित समय को प्राप्त होकर श्रेष्ठ राज्य व्यवहार से प्रजाजनों के लिये सब सुख देता रहे और प्रजाजन भी राजा की आज्ञा के अनुकूल व्यवहारों में वर्त्ता करें ।। मं० ३०

(४१) अकेला पुरुष यथोक्त राज्य शासन नहीं कर सकता, इस कारण श्रेष्ठ पुरुषों का सत्कार करके राज्य कार्य्यों में युक्त करे, वे भी यथायोग्य व्यवहार से राजा का सत्कार करें ।। मं० ३१

(४२) राजधर्म में सब काम सभा के आधीन होने से विचार सभाओं प्रवृत्त राजवर्गी जनों में से दो तीन, वा बहुत सभासद् मिलकर अपने विचार से जिस अर्थ को सिद्ध करें, उसी के अनुकूल राजपुरुष और प्रजाजन अपना वर्त्ताव रक्खें ।। मं० ३२

(४३) सब विद्वानों को उचित है कि न्यायाधीशों की न्याययुक्त सभा से जो आज्ञा हो कभी उल्लङ्घन न करे, वैसे वे राजसभा के सभासद् भी वेदज्ञ विद्वानों की आज्ञा का उल्लङ्घन न करें। जो सब गुणों से उत्तम हों, उसी को सभापति करें और वह सभापति भी उत्तम नीति से समस्त राज्य के प्रबन्धों को चलावे ।। मं० ३५

(४४) प्रजाजनों को योग्य है कि जो सर्वोत्तम, समस्त विद्याओं में निपुण, सकल शुभ गुणयुक्त विद्वान् शूरवीर हो उसको सभा के मुख्य काम में स्थापन करें, और वह सभा के सब कामों में स्थापित किया हुआ सभापति सत्यन्याययुक्त धर्म्म कार्य से प्रजा के उत्साह को उन्नति करें ।। मं० ३६

(४५) जैसे जीव प्रेम के साथ अपने मित्र वा शरीर की रक्षा करता है, वैसे ही राजा प्रजा की पालना करे—राजा को चाहिये कि युद्ध की सामग्री जोड़ और शत्रुओं को मारकर प्रजा, को सुख, धर्मात्माओं को निर्भयता और दुष्टों को भय देवे ।। मं० ३७

(४६) सभा और सेनापति आदि मनुष्यों को चाहिए कि उत्तम से उत्तम पदार्थों के भोजन से शरीर और आत्मा को पुष्ट और शत्रुओं को जीतकर न्याय की व्यवस्था से सब प्रजा का पालन किया करे ।। मं० ३८

(४७) ईश्वर का आश्रय करके कोई भी मनुष्य प्रजा की रक्षा नहीं कर सकता। जैसे ईश्वर सनातन न्याय का आश्रय करके सब जीवों को सुख देता है, वैसे ही राजा को भी चाहिए कि प्रजा को अपनी न्याय व्यवस्था से सुख देवे ।। मं० ३९

(४८) जब युद्ध कर्म में चार वीर अवश्य हों, उनमें से एक को वैद्यक शास्त्र की क्रियाओं में चतुर सब की रक्षा करने तथा दूसरा सब वीरों को हर्ष देने वाला उपदेशक, तीसरा शत्रुओं का अपमान करने वाला और चौथा, शत्रुओं का विनाश करने वाला हो, तब समस्त युद्ध की क्रिया प्रशंसनीय होती है। मं० ४४

(४९) सभापति राजा को चाहिए कि प्रजा सेना के पुरुषों को अपने पुत्रों के तुल्य प्रसन्न रखे और परमेश्वर के तुल्य पक्षपात छोड़कर न्याय करे। धार्मिक सभ्यजनों की तीन सभा होनी चाहियें। उनमें से एक राज सभा जिस के आधीन राज्य के सब कार्य चलें और सब उपद्रव निवृत्त रहें। दूसरी विद्या सभा जिस से विद्या का प्रचार अनेक विधि किया जावे और अविद्या का नाश होता रहे। और तीसरी धर्म सभा जिसमें धर्म को उन्नति और अधर्म की हानि निरन्तर की जाय। सब सलोगों को उचित है कि अपने आत्मा और परमात्मा को देखकर अन्याय मार्ग से अलग हों, धर्म का सेवन और सभासदों के साथ समयानुकूल अनेक प्रकार से विचार करके सत्य और असत्य के निर्णय करने में प्रयत्न किया करें ।। मं० ४५

(छ) अध्याय ८ के—

(५०) प्रजाजनों को चाहिए कि जो विद्वान् इन्द्रियों का जीतने वाला धर्मात्मा पुत्र पिता जैसे अपने पुत्रों को वैसे प्रजा की पालना करने में अति चित्त लगाए हुए और सबके लिए सुख करने वाला पुरुष हो उसी को सभापति करें और राजा और प्रजाजन कभी अधर्म के कामों को न करे। जो किसी प्रकार कोई करे तो अपराध के अनुकूल प्रजा को और राजा को दण्ड देवे, किन्तु कभी अपराधी को दण्ड दिये बिना न छोड़े और किसी निरपराधी को नियोजन पीड़ा न देवे। उसे इस प्रकार सब कोई न्याय मार्ग से धर्माचरण करते हुए अपने अपने प्रत्येक कामों को चिन्ता में रहें जिससे अधिक मित्र उदासीन और शत्रु न हों और विद्या तथा धर्म के मार्गों का प्रचार करते हुए सब लोग ईश्वर की भक्ति में परायण होकें सदा सुखी रहें। मं० २३

(५१) प्रजा सेना और सभा के मनुष्य सभाध्यक्ष से ऐसे कहें कि आप को शत्रु इस के विनाश और राज्य भर में न्याय रखने के लिये घोड़े आदि सेना के अगों को अच्छो प्रकार शिक्षा देकर आनन्दित और बलवाले रखने चाहिएं, फिर हम लोगों के वृत्र पत्रों को सुनकर राज्य और ऐश्वर्य की भी रक्षा करनी चाहिए ।। म० ३४

शेष पृ० १० पर

(पृ० ८ का शेष)

गुण होना सिद्ध होता है 'स्वामी रामेश्वरानन्द जी ने साथी होने' को हेतु मानकर मन को आत्मा (गुणी) का गुण बतलाया है। परन्तु यह हेतु नहीं अपितु 'सव्याभिचारी हेत्वाभास' है या वैशेषिक के शब्दों में अतिव्याप्ति दोष है। क्योंकि आत्मा के साथी उसके गुण ही नहीं अपितु कर्म भी उसके साथी हैं और ईश्वर और प्रकृति भी उसके साथी हैं। इसलिये स्वामी जी का यह हेतु असिद्ध हो गया। वास्तव में स्वामीदयानन्द जी के सिद्धान्तों के आलोक में ही उनके भाष्य को समझने का प्रयत्न करना चाहिये। स्वामी दयानन्द जी ने सत्यार्थप्रकाश के नवम समुल्लास में सूक्ष्मशरीर का वर्णन करते हुए सूक्ष्मशरीर में सतरह तत्त्व बतलाकर कहा:—

"यह सूक्ष्मशरीर जन्म मरण आदि में भी जीव के साथ रहता है।" इसीलिये महाराज ने मन को अपूर्व और अविनाशी कहा, क्योंकि वह स्थूल शरीर के बनने से पहले भी था और इस स्थूल शरीर के नाश होने के पश्चात् भी जो सूक्ष्मशरीर का अंग बनकर शेष रहता है। परन्तु मुक्तावस्था में यह सतरह तत्त्वों से बना शरीर भी अपने अपने कारणों में लय हो जाता है और आत्मा अपनी स्वशक्ति से सम्पन्न ब्रह्मानन्द को भोगता है। अब हम यह बतलाते हैं कि यजुर्वेद के जो शिवसंकल्प के मन्त्रों में मन का वर्णन आता है वह मन को द्रव्य ही सिद्ध करता है। गुण नहीं। किसी पदार्थ को लक्षण और प्रमाणों से ही सिद्ध करना चाहिये, केवल प्रतिज्ञामात्र से कोई बात सिद्ध नहीं होती। महर्षिदयानन्द जी महाराज ने स० प्र० तृ० समु० में वैशेषिक दर्शन के हवाले से द्रव्य के ये लक्षण किए हैं:—

"जिसमें क्रियागुण और केवल गुण रहते हैं उसको द्रव्य कहते हैं। इनमें पृथिवी, जल, तेज, वायु, मन, और आत्मा ये छः द्रव्य क्रिया और गुण वाले हैं।" शिव संकल्प के छः मन्त्रों में मन का सबसे पहला लक्षण क्रिया ही है। पहले मन्त्र में लिखा है:—"(दूरङ्गमम्) दूर जाने, मनुष्यों को दूर तक ले जाने वा अनेक पदार्थों का ग्रहण करने वाला।" इन्द्रियों को प्रवृत्त करने वाला। जाग्रत अवस्था में दूर दूर भागता है। सोते हुए का उसी प्रकार भीतर अन्तःकरण में जाता है" इत्यादि अनेक बार मन्त्रों में मन को क्रियावान कहा गया है। मन के बिना कोई भी कर्म नहीं किया जा सकता। कर्म पांच प्रकार के हैं:—"ऊपर को चेष्टा करना,संकोच करना, फैलाना, आना, जाना, घूमना, आदि इनको कर्म कहते हैं।" (स० प्र० तृ० समु) ये सब कर्म मन के दिखलाये गए हैं। इन सब ही मन्त्रों में मन को शिवसंकल्प वाला होने की प्रार्थना है। शिवसंकल्प का अर्थ ऋषि ने इस प्रकार किया:—"कल्याणकारी धर्म विषयक इच्छा वाला" इच्छा गुण है और गुण द्रव्य में रहता है इसलिए मन द्रव्य है, क्योंकि इसमें इच्छा रूपी गुण रहता है। इन सब ही मन्त्रों में मन के अन्दर आठ गुण रहते हैं—संख्या, परिणाम, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, और संस्कार। चूंकि स्वामी जी के भाष्य में मन के आश्रय ये सात क्रियाएं और आठ गुण दिखलाये हैं। इसलिये क्रिया गुणवत् और समवायी कारण होने से मन द्रव्य है, अतः जड़ है। क्योंकि चैतन्य केवल आत्मा का गुण है।

शिवसंकल्प के मन्त्रों में आये हुए 'मन' को गुण इसलिये भी नहीं कह सकते, क्योंकि स्वामी दयानन्द जी के सिद्धान्त के अनुसार उसमें गुण के लक्षण नहीं घटते। गुण के लक्षण महाराज ने इस प्रकार से किए हैं:—

गुण उसको कहते हैं कि जो द्रव्य के आश्रय रहे। अन्य गुण का धारण न करे, संयोग और विभाग में कारण न हो (अनपेक्षः) अर्थात् एक दूसरे की अपेक्षा न करे।" (स० प्र० तृ० समु०) जैसे गुण द्रव्य के साथ समवाय (अटूट) सम्बन्ध से रहता है वैसे ही मन इन्द्रियों और आत्मा के साथ समवाय सम्बन्ध से नहीं रहता है अपितु संयोग सम्बन्ध से रहता है। दूसरे जैसे गुण दूसरे गुणों को धारण नहीं करता वैसे मन नहीं है अपितु मन आठ गुणों का धारण करने वाला है। जैसा कि मैं ऊपर लिख चुका हूं। तीसरे 'गुण' संयोग विभाग में कारण नहीं होता मन संयोग विभाग में कारण होता है। इसलिये मन गुण से विलक्षण पदार्थ है अर्थात् द्रव्य अथवा प्रकृति का विकार जड़ (अचेतन) तत्त्व है। इति ●

पृ० ६ का शेष

(५२) राजा राज्य कर्म में विचार करने वाले जन और प्रजाजनों को यह योग्य है कि प्रशंसा करने योग्य विद्वानों से विद्या और उपदेश पाकर उपकार सदा किया करें॥ मं० ३५

(५३) प्रजा के बीच अपनी-अपनी सभाओं सहित राजा होने के योग्य दो होते हैं, एक चक्रवर्त्ती अर्थात् एक चक्र राज्य करने वाला और दूसरा माण्डलिक कि जो मण्डल का ईश्वर हो। ये दोनों प्रकार के राजाजन उत्तम उत्तम न्याय, नम्रता, सुशीलता और वीरता आदि गुणों से प्रजा की रक्षा अच्छे प्रकार करें। फिर उन प्रजाजनों से यथा योग्य राज्य कर लेवें और सब व्यवहारों में विद्या की वृद्धि, सत्य वचन का आचरण करें। इस प्रकार धर्म अर्थ और कामनाओं से प्रजाजनों को सन्तोष देकर आप सन्तोष पावें। आपत्काल में राजा प्रजा को तथा प्रजा राजा की रक्षा कर परस्पर आनन्दित हों॥ मं० ३७

(५४) राजा आदि सभ्य जनों को उचित है कि जब मनुष्यों में उत्तम-उत्तम विद्या और अच्छे अच्छे गुणों को बढ़ाते रहें, जिससे समस्त लोग श्रेष्ठ गुण और कर्म प्रचार करने में उत्तम होवें॥ मं० ३८

(५५) राजपुरुषों को यह योग्य है कि भोजन वस्त्र और खाने-पीने के पदार्थों से बल को उन्नति देवें किन्तु व्यभिचार आदि दोषों में कभी न प्रवृत्त होवें और यथोक्त व्यवहारों से परमेश्वर की उपासना करें॥ मं०३९

(५६) जो खोटे काम करने वाला पुरुष अनेक प्रकार से अपने बल की उन्नति देकर सब को दुःख देना चाहे, उसको राजा सब प्रकार से दण्ड दे। यदि फिर भी वह अपनी अत्यन्त खोटाइयों को न छोड़ें तो उसको मार डाले अथवा नगर से दूर निकल बन्द रक्खें॥ मं० ४४

(५७) इस संसार में मनुष्य सब जगत् की रक्षा करने वाले ईश्वर तथा सभाध्यक्ष को न भूलें किन्तु उनकी अनुमति में सब कोई अपना-अपना बर्त्ताव रक्खें। प्रजा के विरोध से कोई राजा भी अच्छी ऋद्धि को नहीं पहुंचता और ईश्वर वा राजा के बिना प्रजाजन धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के सिद्ध करने वाले काम भी नहीं कर सकते, इससे प्रजाजन और राजा ईश्वर का आश्रय कर एक दूसरे के उपकार में धर्म के साथ अपना बर्ताव रक्खें॥ मं० ४६

(५८) सभाजन और प्रजाजनों को चाहिये कि जिसकी पुण्य प्रशंसा सुन्दर रूप विद्या न्याय विनय शूरता तेज अपक्षपात मित्रता सब कामों में उत्साह आरोग्य बल पराक्रम धीरज जितेन्द्रियता वेदादि शास्त्रों में श्रद्धा और प्रजापालन में प्रीति हो उसी को सभा का अधिपति मानें॥ मं० ४९

(५९) राजा राजपुरुष सभासद् तथा अन्य सब सज्जनों को उचित है कि पुरुषार्थ अच्छे-अच्छे नियम और मित्रभाव से धार्मिक वेद के पारगन्ता विद्वानों के मार्ग पर चलें क्योंकि सज्जनों के संग और उनके तुल्य आचरण किये बिना कोई विद्या धर्म सबसे प्रीतिभाव और ऐश्वर्य को नहीं पा सकता है॥ मं० ५०

(६०) जब तक राजा आदि सभ्यजन वा प्रजाजन सत्य धैर्य वा सत्य से जोड़े हुए पदार्थ वा सत्य व्यवहार में अपना बर्त्ताव न रक्खें, तब तक राजा और राज्य के सुख नहीं पा सकते और जब तक राजपुरुष तथा प्रजा पुरुष पिता और प्रभु के तुल्य परस्पर प्रीति और उपकार नहीं करते तब तक निरन्तर सुख भी प्राप्त नहीं हो सकता॥ मं ५१

(६१) जब तक सब की रक्षा करने वाला धार्मिक राजा वा आप्त विद्वान् न हो, तब तक कोई भी मनुष्य विद्या और मोक्ष के साधनों का अनुष्ठान करके निर्विघ्नतः से उनके सुख पाने योग्य नहीं हो सकता और न मोक्ष सुख से अधिक कोई सुख है॥ मं०५२

(६२) जब तक सभापति और सेनापति प्रगल्भ हुए सब कामों में अग्रगामी न हों, तब तक सेना वीर आनन्द से युद्ध में प्रवृत्त नहीं हो सकते और इस काम के बिना कभी विजय नहीं होता। तथा जब तक शत्रुओं को निर्मूल करने हारे सभापति आदि नहीं होते, तब तक प्रजा का पालन नहीं कर सकते और न प्रजाजन सुखी हो सकते हैं॥ मं०५३ (क्रमशः)

पृ० ७ शेष का

की नित्य है, वह जीव से पृथक् हो ही नहीं सकती। व्यास जी ने दोनों का निर्णय कर दिया, कि मन करण का तो मुक्ति में अभाव होता और मनन शक्ति का भाव होता है। कणाद जी ने उपचार से मनन शक्ति विशिष्ट आत्मा को वैशेषिक में मन के नाम से द्रव्य माना और नित्य बतलाया। कपिल ने मन करण को प्रकृति का कार्य बतलाया, और वेद मन्त्रों (संकल्प सूक्त स्थित) में नित्य मनन शक्ति के "अमृत" की उपाधि दी, और छान्दोग्योपनिषद में बाह्य ज्ञान के साधन मन को अन्न से उत्पन्न होने वाला बतलाया है। क्योंकि विषय दो थे।

उपर्युक्त पंक्तियां अपने में स्पष्ट हैं। और यह सिद्ध करती हैं, कि यह विवाद आज से पूर्व भी उठा, और तात्कालिक विद्वानों ने इस प्रकार उसका समाधान वा समन्वय किया। इस समन्वय दृष्टि से ही मैंने अपना पूर्व लेख लिखा था :

अन्त में माननीय लेखक महोदय से निवेदन है, कि उन्होंने मेरे पूर्व लेख में अंकित उक्त सूक्त के पूर्व मन्त्र यस्मिनृच:......आदि मन्त्र में आये मन के इस विशेषण के सम्बन्ध में कुछ नहीं लिखा, जिसमें वेदों का ज्ञान "जिसमें प्रभु ने दिया।" यह वर्णित है। क्या उस जड़ मन में वेदों के ज्ञान को ग्रहण करने की योग्यता तथा क्षमता संभव है, जो जड़ होने के कारण न स्वाभाविक ज्ञान युक्त है और न वह नैमित्तिक ज्ञान ग्रहण करने में सक्षम है? वेदों के ज्ञान-ग्रहण की शक्ति और योग्यता चेतन आत्मा में ही संभव है। अत: उक्त सूक्त में वर्णित मन चेतन ही संभव है, जड़ नहीं। उसे फिर चाहे मन अथवा आत्मा किसी भी नाम से पुकारा जाये। ●

आर्य समाज रादौर (कुरुक्षेत्र) हरयाणा

ब्रह्मा कुमार (?) एवं कुमारियां भाग गई।

आर्य समाज रादौर (कुरुक्षेत्र) की ओर से 'ब्रह्मा कुमारियों की चित्र प्रदर्शनी के विरोध स्वरूप 'ब्रह्मा कुमारी निरोध सम्मेलन पूर्ण सफल हुआ। आर्य समाज की ओर से इस प्रदर्शनी से पूर्व ही विज्ञापन बटवाँ कर उन्हें शास्त्रार्थ हेतु बुलाया गया था। शहर एवं आस पास देहात में यह विज्ञापन "ब्रह्मा कुमारी मत एक पाखण्ड' से लोगों को सावधान कर दिया गया था। ध्वनि विस्तारक यन्त्र द्वारा बार-बार उन्हें शास्त्रार्थ की ललकार दी गई। मनोरंजक बात यह थी दोनों मच आमनेसाम ने थे। २० गज का भी अन्तर न था।

२ बजे सम्मेलन शुरु हुआ। 'पण्डित महेन्द्रपाल जी आर्य प्रचारक' द्वारा अपने कार्यक्रम में उन्होंने इन्हे ललकारा। कई ब्रह्मा कुमार शास्त्रार्थ के लिए आए (बाहर से इसी उद्देश्य के लिए आए थे) पं० जी के एक दो प्रश्नों को सुन कर ही निरुत्तर हो शास्त्रार्थ से भाग खड़े हुए। स्त्रियों पुरुषों व बच्चों ने वैदिक धर्म के जय नादों मे वातावरण को गुंजा दिया। श्री राधेश्याम जी आर्य मन्त्री आर्य समाज रादौर के व्याख्यान से उनमें खलबली मची। व्याख्यान में ही एक ब्रह्माकुमार ने आकर प्रश्न उत्तर किए। परन्तु कुछ ही क्षणों में भाग खड़ा हुआ। श्री राधेश्याम जी ने उन्हें शास्त्रार्थ के लिए फिर ललकारा परन्तु इस बार कोई भी नहीं आया। शहर के लोगों में से एक पर भी वह अपना प्रभाव न जमा सके। तीव्र आलोचना देख व अपना कार्य सफल न होते देख समय से पूर्व ही मंच उठा कर भाग गए।

—जयदेव चौधरी एम. ए० प्रधान आर्य समाज रादौर

लोक सम्पर्क विभाग, हरयाणा शासन (चण्डीगढ़)

सैनिक स्कूलों में प्रवेश हेतु अनुसूचित जातियों एवं कबीलों के बच्चों को रियायतें

सैनिक स्कूलों में प्रवेश पाने के लिये अनुसूचित जातियों एवं कबीलों के बच्चों की अधिक से अधिक संख्या में इन स्कूलों में प्रवेश पाने के लिये सरकार ने निर्णय किया है कि वर्ष १९७३-७४ के दौरान सैनिक स्कूलों को प्रवेश परीक्षा में अनुसूचित जातियों एवं कबीलों के विद्यार्थियों को केवल दो पेपरों में २५% एवं शेष के दो पेपरों में ३२% एव कुल मिलाकर सारे पेपरों में ३२% अंक ही लेने पड़ेंगे जबकि बाकी परीक्षार्थियों को मैरिट के हिसाब से ही प्रवेश मिल सकेगा।

"आर्यसमाज बड़ा बाजार पानीपत का वार्षिकोत्सव

२-३-४ नवम्बर १९७३ को होगा।

श्री प्रकाशवीर जी शास्त्री प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश पं० शिवकुमार जी शास्त्री संसद सदस्य, पं० रघुवीरसिंह जी शास्त्री कुलपति गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, पं० रामदयालु जी शास्त्री तर्क शिरोमणि अलीगढ़, प्रो० रत्नसिंह जी एम. ए. गाजियाबाद, प्रो० रामसिंह जी एम. ए. पं० हरपाल जी शास्त्री आदि पधारेंगे। उत्सव से पहले श्री पण्डित रामदयालु जी शास्त्री की ता: २०-१०-७३ से वेद कथा होगी। उच्चकोटि के गायकों को भी बुलाने का प्रबन्ध किया जा रहा है। यह सम्मेलन धार्मिक और अध्यात्मिक जगत् के लिए अनुपम अवसर होगा। केवल वेद सम्बन्धी गवेषणात्मक व्याख्यान उत्सव की विशेषता होगी। पानीपत के आस-पास के ग्रामों में वेद प्रचार की योजना शीघ्र चालू की जा रही है। वेद सम्बन्धी अपनी शंकाओं को निवारण करने के लिये जनता सादर निमन्त्रण करते हैं। —ठाकुरदास बत्रा प्रचार मंत्री आर्यसमाज बड़ा बाजार पातीपत

आर्यसमाज खरोटी सुलतानपुर का वार्षिक चुनाव

प्रधान: - श्री जगराम जी आर्य। उप.:—श्री शेरसिंह ।। मन्त्री:— श्री बंशीधर जी। कोषाध्यक्ष:—डा. सुलतानसिंह। पुस्तकाधक्ष :— श्री गोकलचन्द। मन्त्री आर्य सभा

विवाह में समाज सुधार

श्री रामजीदास गगरेट निवासी (श्री होशियारपुर) ने अपने सुपुत्र के विवाह में किसी प्रकार की कुरीति नहीं होने दी बारात में केवल ५ व्यक्ति थे, दहेज नहीं लिये। केवल दो रुपये अन्य मिलनी और शगन में १-१ रुपया लिया। इसका बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ा। आशा है आर्यसमाज के नेता इस आदर्श विवाह का अनुकरण करेंगे।

—ज्ञानसिंह वर्मा मन्त्री आर्यसमाज तलवाड़ा

REMINDER

J. (Civil)-12

PROCIAMATION REQUIRING ATTENDANCE OF DEFENDANT

(Order 5, rule 20 of the Code of Civil Procedure)

IN THE COURT OF Shri M. A. KHAN, D. J S,
Sub Judge 1st Class,
Room No. 44, Tis Hazari, Delhi

SUIT NO. 6563/30—1.6.73

At The Motor General Finance ... ...Plaintiff
of against

1. Shri Prem Chand Jaiswal S/o Sh. Jai Krishan Parshad Motor Transporter Village Kegumeha P. O Patilar Distt. Camparan Bihar)
2. Sh Vishnu Parshad S/o Dukhi Parshad Village & P. O. Bhelaba Via Rexaul Distt. Champaran (Bihar).

...Defendant

WHEREAS you are intentionally evading service of summons it is hereby notified that if you shall not defend the case on the 20th day of October, 1973 the day fixed for the final disposal, it will be heard and determined ex parte

GIVEN under my hand and the seal of the court, this 26th day of September, 1973.

Signed

(*SEAL*) Sub Judge 1st Class, Delhi.

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब द्वारा प्रकाशित और प्रचारित वैदिक साहित्य

१. बलिदान जयन्ती स्मृति ग्रन्थ—आर्य बलिदानो की गाथा मूल्य ४-५०
२ सोम सरोवर-वेदमन्त्रो की व्याख्या —प० चमूपति एम. ए. ३-००
३. जीवन ज्योति-वेदमन्त्रो की व्याख्या " " ३-००
४ नीहारिकावाद और उपनिषदें " " ०-२५
५. Principles of Arya samaj " " १-५०
६. Glimpses of swami Daya Nand " " १-००
७. पजाब तथा हरयाणा का आर्य समाज प्रि० रामचन्द्र जावेद २-००
८. वैदिक सत्सग पद्धति सन्ध्या हवनमन्त्र अर्थ रहित विधि १-००
९. वेदाविर्भाव —आर्यमर्यादा का विशेषाक ०-६५
१०. यजुर्वेद अ० ३२ का स्वाध्याय " " " ०-५०
११. वेद स्वरूप निर्णय —प० मदनमोहन विद्यासागर
१२. व्यवहारभानु —महर्षि स्वामी दयानन्द १-००
१३. स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश— " " ०-४०
१४. Social Reconstruction By Budha & Swami Daya Nand By. Pt Ganga Prasad Upadhya M. A. २-००
१५. Subject Matter of the Vedas By S. Bhoomanad १-००
१६. Enchanted Island By Swami Staya Parkashanand १-००
१७. Cow Protection By Swami Daya Nand ०-१५
१८. वेद मे पुनरुक्ति दोष नही है आर्यमर्यादा का विशेषाक २-००
१९. मूर्त्तिपूजा निषेध " " ०-५०
२०. धर्मवीर प० लेखराम का जीवन —स्वामी श्रद्धानन्द १-२५
२१. कुलियात आर्य मुसाफिर प्रथम भाग—पं० लेखराम की पुस्तकों का संग्रह ६-००
२२. " " दूसरा भाग " " ८-००
२३. मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र —कु० सुशीला आर्या एम. ए. ०-२५
२४. योगीराज कृष्ण " " " ०-१५
२५. गोकरुणा निधि —स्वामी दयानन्द सरस्वती ०-२०
२६. आर्यसमाज के नियम उपनियम ०-१०
२७ आर्य नेताओ के वचनामृत —साईदास भण्डारी ०-१२
२८. कायाकल्प —स्वामी समर्पणानन्द सरस्वती १-५०
२९. वैदिक धर्म की विशेषताये —प० हरिदेव सिद्धान्त भूषण ०-१५
३० स्वतन्त्रानन्द लेखमाला —स्वा० स्वतन्त्रानन्द जी की जीवनी तथा उनके व्याख्यान १-२५
३१. आत्मानन्द लेखमाला—स्वामी आत्मानन्द सरस्वतीकी जीवनी १-२५
३२ आर्यसमाज के सदस्यता फार्म —सैंकड़ा १-५०
३३. महान् दयानन्द —प० शिवदयालु आर्य ०-७५
३४ दयानन्द चरित्र —प० देवेन्द्रनाथ ८-५०
३५. वैदिक सिद्धान्त —प० चमूपति एम० ए० १-००
३६. मुक्ति के साधन —प० मदनमोहन विद्यासागर १-००
३७ महापुरुषो के सग —श्री सत्यव्रत १-५०
३८. सुखी जीवन —श्री सत्यव्रत २-००
३९. एक मनस्वी जीवन —प० मनसाराम वैदिक तोप १-५०
४०. छात्रोपयोगी विचारमाला —जगदेवसिह सिद्धान्ती १-५०
४१ स्त्री शिक्षा —प० लेखराम आर्य मुसाफिर ०-६०
४२ विदेशो मे एक साल —स्वामी स्वतन्त्रानन्द २-२५
४३ वेद विमर्श —प० भगवद्दत्त वेदालकार २-००
४४. वेद विमर्श —प० वेदव्रत शास्त्री २-००
४५ आसनो के व्यायाम " " " १-००
४६. महर्षि जीवन गाथा —स्वामी वेदानन्द वेदवागीश २-२५
४७. मास मनुष्य का भोजन नही—स्वामी ओमानन्द सरस्वती १-००
४८. वीर भूमि हरयाणा " " " ४-००
४९. चोटी क्यों रखें —स्वामी ओमानन्द सरस्वती ०-५०
५०. हमारा फाजिल्का —श्री योगेन्द्रपाल १-५०
५१. सत्संग स्वाध्याय —स्वामी ओमानन्द सरस्वती ०-५०
५२ जापान यात्रा " " " ०-७५
५३. भोजन " " " ०-७०
५४. ऋषि रहस्य —प० भगवद्दत्त वेदालकार २-००
५५. महर्षि का विष पान – अमर बलिदान—राजेन्द्र जिज्ञासु ०-६५
५६. मेरा धर्म —आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति ७-००
५७. वेद का राष्ट्रिय गीत " " " ५-००
५८ ईशोपनिषद्भाष्य —इन्द्र विद्या वाचस्पति २-००
५९. प० गुरुदत्त विद्यार्थी जीवन —डा० रामप्रकाश १-३०
६०. वैदिक पथ —पं० हरिदेव सिद्धान्त भूषण २-००
६५. वैदिक प्रवचन —प० जगत्कुमार शास्त्री २-२५
६१. ज्ञानदीप —प० हरिदेव सिद्धान्त भूषण २-००
६२ आर्यसमाज का सैद्धान्तिक परिचय—स्व० अनुभवानन्द ०-५५
६३. The Vedas ०-५०
६४. The Philosophy of Vedas —Swami Satya Parkash ०-५०
६६. ईश्वर दर्शन प० जगत्कुमार शास्त्री १-००
६७. श्वेताश्वरोपनिषद् ०-५ " " ४-००
६८. ब्रह्मचर्य प्रदीप " " ४-००
६९ भगवन प्राप्ति क्यो और कैसे स्वा० सत्यानन्द ०-६०
७०. आर्य सामाजिक धर्म " " ०-७५
७१. बोध प्रसाद —स्वामी श्रद्धानन्द ०-२५
७२. ऋषि दर्शन —प० चमूपति एम. ए. ००-२५
७३. ऋषि का चमत्कार " " " ००-१२
७४. वैदिक जीवन दर्शन " " " ००-२०
७५. वैदिक तत्व विचार " " " ००-५०
७६. देव यज्ञ रहस्य " " " ००-३५
७७. स्वतन्त्रानन्द सस्मरणाक १-५०

सब पुस्तकों के प्राप्ति स्थान—

१. आर्यप्रतिनिधि सभा पंजाब, गुरुदत्त भवन, जालन्धर (४२५०) टेलीफोन
२. " " " दयानन्द मठ रोहतक (हरयाणा) " (५७४)

आर्योद्देश्य रत्नमाला

(७७) जीव का स्वरूप-जो चेतन अल्पज्ञ, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुःख और ज्ञान गुण वाला तथा नित्य हैं वह जीव कहाता है।

(७८) स्वभाव-जिस वस्तु का जो स्वाभाविक गुण है जैसे कि अग्नि में रूप और दाह अर्थात् जब तक वह वस्तु रहे तब तक उसका वह गुण भी नही छूटता इस लिये इसको स्वभाव कहते हैं।

(७९) प्रलय-जो कार्य जगत् का कारण रूप होना अर्थात् जगत् का करने वाला ईश्वर जिन जिन कारणो से सृष्टि बनाता है कि अनेक कार्यों को रच के यथावत् पालन करके पुन. कारण रूप करके रखता है उसका नाम प्रलय है।

(८०) मायावी-जो छल कपट स्वार्थ में ही प्रसन्नता, दम्भ, अहंकार, शठतादि दोष है और जो मनुष्य इनसे युक्त हो वह मायावी कहलाता है।

(८१) आप्त-जो छलादि दोष रहित, धर्मात्मा, विद्वान् सत्योपदेष्टा, सब पर कृपा दृष्टि से वर्तमान होकर अविद्या, अन्धकार का नाश करके अज्ञानी लोगों के आत्माओ मे विद्या रूप सूर्य का प्रकाश सदा करे उसको आप्त कहते हैं।

(८२) परीक्षा-जो प्रत्यक्षादि आठ प्रमाण, वेदविद्या, आत्मा की शुद्धि और सृष्टि क्रम से अनुकूल विचार के सत्यासत्य को ठीक ठीक निश्चय करना है उसको परीक्षा कहते हैं।

—(महर्षि दयानन्द)

आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब के लिए जगदेवसिह सिद्धान्ती शास्त्री द्वारा सैनी प्रिंटर्स पहाड़ी धीरज, देहली में मुद्रित और १५ हनुमान् रोड, नई दिल्ली-१ से प्रकाशित

१३ कार्तिक सं० २०३० वि०, दयानन्दाब्द १४६,
तदनुसार २८ अक्टूबर १९७३ रविवार
सृष्टि सं०-१९६०८५३०७३

वर्ष ५ वार्षिक शुल्क स्वदेश में १०) रुपये
अंक ४८ „ „ विदेश में २०) रुपये
एक प्रति का मूल्य ००-२० पैसे

सम्पादक - जगदेवसिंह सिद्धान्ती शास्त्री पूर्वलोकसभा सदस्य (फोन ५१२१६३)

वेदमन्त्रार्थ-प्रवचन

अथ विद्युदादिजगन्निर्मातृ ब्रह्मैवोपास्यमित्युपदिश्यते ॥

अब बिजुली आदि पदार्थरूप संसार का बनाने वाला परमेश्वर ही उपासनीय है यह विषय अगले मन्त्र में कहा गया है ॥

एतानि वां श्रवस्या सुदानू ब्रह्माङ्गूषं सदनं रोदस्योः।
यद्वां पज्रासो अश्विना हवन्ते यातमिषा च विदुषे च वाजम् ॥

—ऋ० १.११७.१०

पदार्थः—(एतानि) कर्माणि (वाम्) युवयोः (श्रवस्या) श्रवस्स्वन्नादिषु साधूनि (सुदानू) शोभनदानशीलौ (ब्रह्म) सर्वज्ञं परमेश्वरम् (आङ्गूषम्) अङ्गूषाणां विद्यानां विज्ञापकमिदम् (सदनम्) अधिकरणम् (रोदस्योः) पृथिवी सूर्ययोः (यत्) (वाम्) युवयोः (पज्रासः) विज्ञापयितॄणि मित्राणि (अश्विना हवन्ते) आददति (यातम्) प्राप्नुतम् (इषा) इच्छया (च) प्रयत्नेन योगाभ्यासेन च (विदुषे) प्राप्तविद्याय (च) विद्यार्थिभ्यः (वाजम्) विज्ञानम् ॥

अन्वयः—हे सुदानू अश्विना वां युवयोरेतानि श्रवस्या कर्माणि प्रशंसनीयानि सन्त्यतो वा पज्रासो यद्रोदस्योः सदनमाङ्गूषं ब्रह्म हवन्ते यच्च युवा यातं तस्य वाजमिषा च विदुषे सम्यक् प्रापयतम् ॥

भावार्थः—सर्वैर्मनुष्यैः सर्वाधिष्ठानं सर्वोपास्यं सर्वनिर्मातृ ब्रह्म यैरुपायैर्विज्ञायते तैर्विज्ञायान्येभ्योऽप्येवमेव विज्ञाप्याखिलानन्द आप्तव्यः ॥

भाषार्थः—हे (सुदानू) अच्छे दान देने वाले (अश्विन) सभा सेनाधीशो (वाम्) तुम दोनों के (एतानि) ये (श्रवस्या) अन्नादि पदार्थों में उत्तम प्रशंसा योग्य कर्म हैं इस कारण (वाम्) तुम दोनों (पज्रासः) विशेष ज्ञान देने वाले मित्र जन (यत्) जिस (रोदस्योः) पृथिवी और सूर्य के (सदनम्) आधाररूप (आङ्गूषम्) विद्याओं के ज्ञान देने वाले (ब्रह्म) सर्वज्ञ परमेश्वर को (हवन्ते) ध्यान मार्ग से ग्रहण करते (च) और जिसको तुम लोग (यातम्) प्राप्त होते हो उसके (वाजम्) विज्ञान को (इषा) इच्छा और (च) अच्छे यत्न तथा योगाभ्यास से (विदुषे) विद्वान् के लिये भलीभान्ति पहुंचाओ ॥

भावार्थः—सब मनुष्यों को चाहिये कि सबका आधार सबको उपासना के योग्य सबका रचने हारा ब्रह्म जिन उपायों से जाना जाता है उनसे जान औरों के लिये भी ऐसे ही जनाकर पूर्ण आनन्द को प्राप्त होव ॥

—(ऋषिदयानन्द-भाष्य)●

सत्यार्थप्रकाश ११वाँ समुल्लास

(गताङ्क से आगे)—पश्चात् एक पात्र में मद्य भरके मांस और बड़े आदि एक थाली में धर रखते हैं उस मद्य के प्याले को जो कि उनका आचार्य्य होता है वह हाथ में लेकर बोलता है कि "भैरवोऽहम्" "शिवोऽहम्" मैं भैरव वा शिव हूं कहकर पी जाता है फिर उसी झूठे पात्र से सब पीते हैं और जब किसी की स्त्री वा वेश्या नङ्गी कर अथवा किसी पुरुष को नंगा कर हाथ में तलवार दे के उसका नाम देवी और पुरुष का नाम महादेव धरते हैं उनके उपस्थ इन्द्रिय की पूजा करते हैं तब उस देवी वा शिव को मद्य का प्याला पिलाकर उसी झूठे पात्र से सब लोग एक एक प्याला पीते फिर उसी प्रकार क्रम से पी पी के उन्मत्त होकर चाहे कोई किसी की बहिन, कन्या वा माता क्यों न हो जिसकी जिसके साथ इच्छा हो उसके साथ कुकर्म करते हैं कभी कभी बहुत नशा चढ़ने से जूते, लात, मुक्कामुक्की, केशाकेशी, आपस में लड़ते हैं किसी किसी को वहीं वमन होता है उनमें जो पहुंचा हुआ अघोरी अर्थात् सबमें सिद्ध गिना जाता है वह वमन हुई चीज को भी खा लेता है अर्थात् इनके सबसे बड़े सिद्ध की ये बातें हैं।—(क्रमशः) —(ऋषिदयानन्द)●

वर्णाश्रमविषयः

अब आगे चार आश्रमो का वर्णन किया जाता है। ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास ये चार आश्रम कहाते हैं। इनमें पांच वा आठ वर्ष की उमर से अड़तालीस वर्ष पर्य्यन्त प्रथम ब्रह्मचर्य्याश्रम का समय है। इसके विभाग पितृयज्ञ में कहेंगे। वह सुशिक्षा और सत्यविद्यादि गुण ग्रहण करने के लिये होता है। दूसरा गृहाश्रम जो कि उत्तम गुणों के प्रचार और श्रेष्ठ पदार्थों की उन्नति से सन्तानों की उत्पत्ति और उनको सुशिक्षित करने के लिये किया जाता है। तीसरा वानप्रस्थ जिससे ब्रह्मविद्यादि साक्षात् साधन करने के लिये एकान्त में परमेश्वर का सेवन किया जाता है। चौथा संन्यास जो कि परमेश्वर अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति और सत्योपदेश से सब संसार के उपकार के अर्थ किया जाता है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों पदार्थों की प्राप्ति के लिये इन चार आश्रमों का सेवन करना सब मनुष्यों को उचित है। इनमें से प्रथम ब्रह्मचर्य्याश्रम जो कि सब आश्रमो का मूल है उसके ठीक ठीक सुधरने से सब आश्रम सुगम और बिगड़ने से नष्ट हो जाते हैं। इस आश्रम के विषय में वेदों के अनेक प्रमाण हैं, उनमें से कुछ यहां भी लिखते हैं। (आचार्य्य उ०) अर्थात् जो गर्भ में बस माता और पिता के सम्बन्ध में मनुष्य का जन्म होता है वह प्रथम जन्म कहाता है और दूसरा यह है कि जिसमें आचार्य्य पिता और विद्या माता होती है। इस दूसरे जन्म के न होने से मनुष्य को मनुष्यपन नहीं प्राप्त होता। इसलिये उसको प्राप्त होना मनुष्यों को अवश्य होना चाहिये। जब आठवें वर्ष पाठशाला में जाकर आचार्य्य अर्थात् विद्या पढ़ाने वाले के समीप रहते हैं तभी से उनका नाम ब्रह्मचारी वा ब्रह्मचारिणी हो जाता है क्योंकि वे ब्रह्म वेद और परमेश्वर के विचार में तत्पर होते हैं। उनको आचार्य्य तीन रात्रि पर्य्यंत गर्भ में रखता है। अर्थात् ईश्वर की उपासना धर्म परस्पर विद्या के पढ़ने और विचारने की युक्ति आदि जो मुख्य मुख्य बात हैं वे सब तीन दिन में उनको सिखाई जाती है। तीन दिन के उपरान्त उनको देखने के लिये अध्यापक अर्थात् विद्वान् लोग आते हैं ॥१॥

अथर्व० कां० ११।सू० ५।मं० ३॥

(इयं समित्०) फिर उस दिन होम करके उनको प्रतिज्ञा कराते हैं कि जो ब्रह्मचारी पृथिवी, सूर्य्य और अन्तरिक्ष इन तीनों प्रकार की विद्याओं को पालन और पूर्ण करने की इच्छा करता है सो इन समिधाओं से पुरुषार्थ करके सब लोकों को धर्मानुष्ठान से पूर्ण आनन्दित कर देता है ॥२॥ मं० २॥

(पूर्वो जातो ब्र०) जो ब्रह्मचारी पूर्व पढ़ के ब्राह्मण होता है वह धर्मानुष्ठान से अत्यन्त पुरुषार्थी होकर सब मनुष्यों का कल्याण करता है ॥ (ब्रह्म ज्येष्ठ०) फिर उस पूर्ण विद्वान् ब्राह्मण को जो कि अमृत अर्थात् परमेश्वर की पूर्ण भक्ति और धर्मानुष्ठान से युक्त होता है देखने के लिये सब विद्वान् आते हैं ॥ मं० ३ ॥

—(ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका)●

चातुर्मास्य याग

(ले० श्री पं० वीरसेन वेदश्रमी, वेदसदन, महारानी पथ, इन्दौर–१)

(१) सांवत्सरिक पक्ष

चार चार महीनों में इनका अनुष्ठान होता है। परन्तु इनमें से चतुर्थ यज्ञ और प्रथम यज्ञ फाल्गुन मास में होते हैं। अतः ४ चातुर्मास्य याग १ वर्ष में सम्पन्न होते हैं। इन यागो के नाम और अनुष्ठान का समय क्रमशः निम्न प्रकार है:—

(१) वैश्वदेव पर्वः—यही प्रथम चातुर्मास्य याग है। यह फाल्गुन पूर्णिमा को करना चाहिये।

(२) वरुण प्रवास पर्वः—यह द्वितीय चातुर्मास्य याग है जो कि फाल्गुन पूर्णिमा के ४ मास पश्चात् अषाढ़ी पूर्णिमा को करना चाहिये।

(३) साकमेघ पर्वः—यह तृतीय चातुर्मास्य याग है जो कि अषाढ़ी पूर्णिमा के पश्चात् कार्त्तिकी पूर्णिमा को करना चाहिये।

(४) शुनासीरीय पर्वः– यह चतुर्थ चातुर्मास्य याग है जो कि फाल्गुन शुक्ला प्रतिपदा अथवा फाल्गुन शुक्ला चतुर्दशी को रोकना चाहिये।

इस प्रकार १वर्ष के संवत्सर काल में चातुर्मास्य याग के चार पर्वों का अनुष्ठान किया जाता है। यह सांवत्सरिक क्रम या पक्ष है। पूर्णमासी को इनका अनुष्ठान होने से इनकी पर्व संज्ञा है।

(२) पंचाह पक्ष

जो यजमान सांवत्सरिक क्रम से चातुर्मास्य याग करने में असमर्थ हों तो वे इन चारों यागों को पांच दिन में भी सम्पन्न कर सकते हैं। इस प्रकार सम्पन्न किये गये चातुर्मास्य याग को पंचाह-याग कहते हैं। यही पंचाह पक्ष है। इसका अनुष्ठान फाल्गुन, अषाढ़, या कार्तिक मास के शुक्ल पक्ष में एकादशी से प्रारम्भ करके पूर्णिमा पर्यन्त चारों पर्व यागों को निम्न प्रकार व क्रम से करना चाहियेः—

(१) प्रथम दिवस एकादशी को वैश्वदेव-पर्व याग करे।

(२) द्वितीय दिवस द्वादशी को वरुण (प्रघास) पर्व याग करे।

(३) तृतीत और चतुर्थ दिवस अर्थात् त्रयोदशी और चतुर्दशी को साकमेघ पर्व याग करे।

(४) पंचम दिवस अर्थात् पूर्णिमा को शुनासीर-पर्व याग करे।

(३) एकाह पक्ष

यदि किसी को सांवत्सरिक एवं पंचाह पक्ष से भी चातुर्मास्य यागों को करने की सुविधा न हो तो वर्ष में एक ही दिन में किसी भी फाल्गुण अषाढ़, या कार्तिक की पूर्णिमा को चारों पर्व यागों का अनुष्ठान कर सकते है। यही 'एकाह-पक्ष' है।

पारायण पक्ष

यदि एकाह पक्ष में एक ही दिवस में चारों यागों का अनुष्ठान किन्हीं कारणों से सम्पन्त होना संभव न हो तो इन यागों के मन्त्रों का पाठ, आवृत्ति या पारायण भी करना मान्य किया गया है। अर्थात् किसी भी प्रकार से किसी न किसी रूप में चातुर्मास्य यागों का अनुष्ठान कर लेना चाहिये।

––चातुर्मास्य यागों के ३ प्रमुख प्रकार––

चातुर्मास्य यागों को त्रिविध लक्ष्य भेदों से तीन प्रकार का माना गया है। यथा—(१) ऐष्टिक (२) पाशुक (३) सौमिक

(१) ऐष्टिक पक्ष—इस पक्ष के अनुसार इन चातुर्मास्य यागों का प्रतिवर्ष पूर्व प्रदर्शित क्रम से अनुष्ठान करना होता है और इनसे आगे होने वाले यज्ञों को नहीं किया जाता है। यावज्जीवन या पांच वर्ष तक इन्हीं का अनुष्ठान करना होता है। इस प्रकार इष्टि करने को ऐष्टिक-पक्ष माना है। इन इष्टियों का पर्व यागों का सम्बन्ध संवत्सर उसके अन्तर्गत ऋतुओं तथा प्रकृति और उससे उत्पन्न पदार्थों, वृक्ष, वनस्पति अन्नादि की पुष्टि, समृद्धि, जलवायु, ताप, रश्मियों आदि से सम्बन्धित है।

(२) पाशुक पक्षः—इस पक्ष के अनुसार जिस यजमान का यह लक्ष्य हो कि मुझे राजसूय, अश्वमेधादि करते हैं। वे पाशुक पक्ष को अंगीकार कर चातुर्मास्य यागों के अनन्तर पाशुक सोमयाग करके राजसूय, अश्व-मेधादि यज्ञों का अनुष्ठान करते हैं। इसका सम्बन्ध प्रजापालन, पशुसमृद्धि राष्ट्रोन्नति, राष्ट्र की विविध प्रकार की समृद्धि की कामना से है।

(३) सौमिक पक्ष :—इस पक्ष के अनुसार चातुर्मास्य यागों का अनुष्ठान उन यजमानों को करना चाहिये जो सृष्टि के सूक्ष्म रहस्यों का, आत्मा व परमात्मा का ज्ञान प्राप्त कराने के इछुक हैं और योगाभ्यास द्वारा परमानन्द स्वरूप, सच्चिदानन्दमय ब्रह्म के आनन्द की प्राप्ति करना चाहते हैं। तथा सृष्टि के सूक्ष्म जीवन तत्व इन्द्र की पुनर्जीवन प्रदान करने के वैज्ञानिक रहस्य को जानना चाहते हैं। ऐसे यजमान सौमिक चातुर्मास्यों के अनन्तर सोम याग, वाजपेय एवं सौमामणि यागों में प्रवेश के अधिकारी होते हैं।

–वर्णभेद से चातुर्मास्यों के अधिकारी–

पूर्वोक्त तीनों प्रकारों के ऐष्टिकादि चातुर्मास्यों के अधिकारी भी वर्णभेद से पृथक्-पृथक् हो जाते हैं। व्यावहारिक भाषा में ब्राह्मण ही सौमिक चातुर्मासों का अधिकारी होता है, ब्रह्म ज्ञानादि का उसका लक्ष्य होने से। क्षत्रिय का लक्ष्य राज्य पालन, प्रजा रक्षादि होने से वही पाशुक चातुर्मास्यों का अधिकारी है तथा ऐष्ठिक चातुर्मास्यों का वैश्य से सम्बन्ध कृषि आदि से होने से है। शूद्र का सम्बन्ध तीनों वर्णों से होने से वे स्व-स्व स्वामी यजमान के यज्ञ में पूषा दैवत्य सम्बन्ध से यज्ञ फल के अधिकारी हो जाते हैं।

उपर्युक्त कारणों से अर्थात् लक्ष्य एवं अधिकारी भेद से सौमिक एवं पाशुक चातुर्मास्यों का ऐष्टिक चातुर्मास्य यागों से कुछ परस्पर भेद तो जाता है। ऐष्टिक चातुर्मास्य स्वतन्त्र याग हैं परन्तु पाशुक एवं सौमिक अन्य आगे के यागों से सम्बन्धित होते हैं। पाशुक में उन देवता सम्बन्धी पशुओं का ज्ञान करना आवश्यक हो जाता है जिनका सौमामणि, रजसूय एवं अश्वमेधादि यज्ञों में संग्रह, संवर्धन, पालन, रक्षणादि को आवश्यकता राष्ट्र के हित में होती ही। सौमिक यागों में विचित्र सामगानों का उपयोग होता है। आगे के लेख में ऐष्टिक चातुर्मास्यों का वर्णन होगा। ●

हमारा–भ्रमण

(चौ० कबूलसिंह जी सर्वखाप पंचायत सोरम—मुजफ्फरनगर)

हमने अपने ४ साथियों के साथ जमना के पच्छमी भाग हरयाणा की खापों के प्रसिद्ध गावों की यात्रा की। इस यात्रा में हमने पुराने आर्य-समाज के प्रेमी भाइयों से मिलकर बात-चीत की है। उन से बात-चीत करने का जो हमें सार प्राप्त हुआ है उससे एक विचार मिला है के इस समय देश भारत में दिन प्रति दिन जनता के चरित्र में गिरावट आ रही है। इसकी रोक थाम तभी हो सकती है यदि आर्यसमाज का नया वर्ग त्यागी बनकर देश में देव दयानन्द जी महाराज के बताये मार्ग पर सर्वत्र प्रचार करें। दिल्ली के चारों तरफ के क्षेत्र में आर्यसमाज को अवश्य प्रचार करना चाहिये। जमना के पूर्व में हम खाप बालियान में एक पंचायत समाज सुधार के वास्ते जल्दी करेंगे। किसान को खेत की जुताई करनी पड़ती है। जिससे खेतों को बड़ा बल मिलता है। वैसे ही इसको आर्य प्रचार की बड़ी आवश्यकता है। इसके प्रचार का प्रभाव गावों में बड़ा पड़ता है। हम अपने इलाके की सब खापों में घूम कर लोगों के विचार जो लिये हैं। उनका यही नतीजा निकला है। और हर खाप में आर्य-समाज की विचार धारा फैलाने के वास्ते बड़ी बड़ी पंचायत हों। जिसमें हर कुल और बिरादरी के लोगों में पंचायतों के नाम और पुराना संगठन आज तक बना हुआ है। इस पर लोगों की पुरानी श्रद्धा बनी हुई है। अब हमारे पास पत्र पर पत्र आ रहे हैं कि समाज में बढ़ते हुए भ्रष्टाचारों को रोको। और आर्यसमाज के प्रचार से देश का कल्याण हो सकता है।

श्री सिद्धान्ती जी के प्रति जनता में बहुत आदर है। मेरा और मेरे साथियों का ३ मास का भ्रमण का जो फल है वह जनता की विचार धारा है। भारत देश की जनता इस वक्त तंग है। इसका भला आर्यसमाज से होगा और इससे देश का बड़ा हित होगा। आपके प्रेमी सेवक— ●

आर्यसभासद और प्रतिनिधि

(लेखक:— बाबू पूर्णचन्द एडवोकेट पूर्व प्रधान सार्वदेशिक सभा)

महर्षि दयानन्द ने आर्यसमाज का संघटन प्रजातन्त्र पद्धति पर किया है। उनकी धारणा थी कि आर्यसमाज का कार्य सबकी सम्मति से हो केवल कुछ व्यक्तियों पर ही न छोड़ा जाय और इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये उन्होंने वार्षिक निर्वाचन की विधि निश्चित की जिससे वर्ष के अन्त में इस बात की पड़ताल होती रहे कि कौन सा सदस्य आर्यसमाज के उद्देश्य की पूर्ति के लिये योग्य है। और महर्षि ने आर्यसमाज के विधान में सबसे महत्वपूर्ण बात यह सम्मलित की, कि आर्य सभासद् बनने के लिये सदाचार की आवश्यकता पर बल दिया। संसार की राजनीति में अनेक प्रकार के विधान हैं। सम्मत्ति का अधिकार कहीं शिक्षा पर है, कहीं आयु पर, कहीं सम्मति पर है और कहीं पर इनमें से तीनों पर या किसी एक पर सम्मति के लिये सदाचार की शर्त आर्यसमाज के विधान में सबसे अधिक विचारणीय है।

सदाचार की व्याख्या बड़ी विस्तृत है केवल कुछ खाने या न खाने पर या न पीने पर निर्धारित नहीं। सदाचार सारे जीवन के विचार, आचार और व्यवहार से सम्बन्धित है।

महर्षि ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'व्यवहारभानु' में व्यवहार की पवित्रता पर बड़ा बल दिया है और बड़े सुगम और आकर्षक ढंग से व्यवहारों की पवित्रता को समझाया।

इस दृष्टि से आर्यसमाज के आर्य सभासद् का बड़ा आवश्यक कर्त्तव्य यह हो जाता है कि वह आर्यसमाज के प्रबन्ध और निर्वाचनों में अपनी सम्मति का प्रयोग बड़ी इमानदारी से करे। पक्षपात से मुक्त हो और किसी दलगत राजनीति या पार्टीबाजी से प्रभावित न हो।

आर्य सभासदों में से जो प्रांतीय सभा के लिये प्रतिनिधि हो जाते हैं, उनका उत्तरदायित्व और भी बढ़ जाता है। उनका कर्तव्य हो जाता है कि वे न केवल अपने समाज की रक्षा करें परन्तु उनके लिये यह भी आवश्यक हो जाता है कि वे सारे प्रान्त की सामाजिक व्यवस्था के लिये धर्म और ईमानदारी से अपनी सम्मति का प्रयोग करें।

प्रांतीय सभाओं में से जो प्रतिनिधि सार्वदेशिक सभा के लिये निर्वाचित होते हैं उनका उत्तरदायित्व और भी बढ़ जाता है। सार्वदेशिक सभा के सदस्य या अधिकारी के लिये दलबन्दी या किसी गुट्ट में सम्मलित होना या उसका पक्षपाती बने रहना बड़ा आपत्तिजनक है।

प्रजातन्त्र में प्रजा की सम्मति से सारा काम होता है। सम्मति का महत्व बढ़ जाता है सम्मति हाथ उठाकर दी जाती है या लिख कर। दोनों सूरतों में सम्मति हाथ या Hand के प्रयोग से प्रगट की जाती है। हाथ के प्रयोग के लिये Head और Heart दोनों स्वस्थ होने चाहियें। बुद्धि शुद्ध हो और पवित्र हो। हृदय में कोई पक्षपात लोभ या लालच या द्वेष नहीं होना चाहिये। समझकर पवित्र मन से यदि सम्मति दी जायेगी तो उसका प्रभाव बड़ा उत्तम होगा।

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के निर्वाचन का प्रश्न वर्षों से विवाद का विषय बना हुआ है।

सार्वदेशिक सभा में यह प्रश्न आया, कुछ निर्णय हुआ परन्तु नियम पूर्वक निर्वाचन की व्यवस्था न हो सकी। न्याय सभा में विषय गया, वहां भी नियमपूर्वक निर्वाचन कराने की ओर ध्यान नहीं दिया जा सका। अब वर्षों से न्यायालय में मामला चल रहा है। उच्च न्यायलय High-Court में विधिपूर्वक निर्वाचन के लिये उपाय किये जा रहे हैं।

आर्यसमाज एक धार्मिक संस्था है। इसका लक्ष्य राजनीति को धर्म का रूप देना है। किसी दलगत राजनीति में आर्यसमाज सम्मलित नहीं हो सकता। आर्य महासम्मेलन का सर्वमान्य प्रस्ताव राजनीति के सम्बन्ध में स्वीकार हो चुका है।

यदि कुछ व्यक्ति समुदाय बनाकर या कोई नई नाम की सभा बना कर आर्यसमाज को राजनीति में घसीटना चाहें या आर्यसमाज के सहारे राजनीति से लाभ उठाना चाहें तो उनके प्रभाव से हरएक सभासद् को और आर्यसमाज के सदस्य को सावधान रहना चाहिये।

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के कुछ नेताओं ने निर्वाचन को धर्म युद्ध का नाम दिया है। यदि धर्म युद्ध कहकर कोई धार्मिक मर्यादा का उल्लंघन हो तो बड़े दुःख की बात होगी।

आर्यसमाज के प्रचार और प्रगति की दृष्टि से पंजाब प्रांत बड़ा प्रमुख प्रांत रहा है। समाजों की संख्या और संस्थाओं की संख्या उल्लेखनीय रही है। ऐसे प्रगतिशील प्रांत में निर्वाचन के प्रश्न का उलझा रहना बड़े दुःख की बात है। पंजाब प्रांत के साथ उत्तर प्रदेश का भी स्थान बड़ा ऊंचा है। इस प्रांत में भी निर्वाचन सम्बन्धी विवाद का विष फैल गया है। यदि अतिशीघ्र इस ओर ध्यान न दिया गया तो दशा अधिक चिन्ताजनक हो जायेगी। समाज की स्थापना शताब्दी सन् १९७५ में मनाई जाने वाली है। बहुत थोड़ा समय रह गया है। सबको मिलकर आर्यसमाज के प्रवेश प्रचार और प्रबन्ध के विषय को सुलझाना है। मैं पंजाब प्रांत के आर्य सभासदों एवं सम्मति दाताओं से अपने साठ साल से अधिक अनुभव के आधार पर निवेदन करता हूं कि वे निर्वाचन में अपनी सम्मति का प्रयोग शुद्ध धार्मिक भावना से करें। किसी भी नेता कार्यकर्त्ता या प्रचारक के प्रभाव में न आयें। सबसे अच्छा यह होगा कि सब संगठित होकर स्वामी सर्वानन्द जी को सब अधिकार देकर आर्य प्रतिनिधि सभा का अधिकार दे दें। वे official receiver न रहकर धार्मिक व्यवस्थापक बना दिये जायें। और एक वर्ष के लिये सब अधिकार उनको सौंप दिये जायें।

मैं यह लेख आर्यसमाज के उत्थान की दृष्टि से लिख रहा हूं। किसी के पक्ष या विपक्ष में नहीं। झगड़ा परिस्थिति का है छोटी सी बात बढ़ते-बढ़ते एक भयंकर प्रश्न बन गई है। आर्यसमाज के नाम और काम को चक्कर में डाल दिया है। आर्यसमाज के सदस्य का कर्त्तव्य है कि वह आर्यसमाज की रक्षा और व्यवस्था के लिये प्रयत्न करें। ईश्वर का नाम लेकर सम्मति का प्रयोग करना चाहिये। दलबन्दी के आधार पर नहीं। ओ३म् शांति ●

[आदरणीय लेखक महानुभाव के वचन आर्यसमाज के हित के लिये हैं; अतः हम इस लेख को सम्पादकीय स्तम्भ में प्रकाशित कर रहे हैं, इस से आर्य प्रतिनिधि पंजाब के सभी प्रतिनिधि महाशय सामयिक उठा सकेंगे।
—सम्पादक]

सभा के निर्वाचन की तिथि व स्थान का निर्णय २६.१०.७३ को घोषित होगा

(पत्र प्रतिनिधि द्वारा)

चण्डीगढ दि० १९-१०-७३:—आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के आगामी निर्वाचन के सम्बन्ध में दोनों पक्षों की ओर से हाईकोर्ट चण्डीगढ में दिये गये विधि विधान पर आज बहस हुई तथा निर्णय २६-१०-७३ के लिये सुरक्षित रखा गया। उसी दिन निर्वाचन के स्थान, तिथि व अन्य बातों का पता लगेगा।

पश्चिम एशिया में युद्धविराम

रूस और अमेरिका के सम्मिलित प्रयत्न से इजरायल और मिश्र में युद्ध विराम हो गया है। सुरक्षा परिषद् में उनके द्वारा रखे प्रस्ताव को दोनों देशों ने स्वीकार कर लिया है। अब आगे स्थायी वार्तालाप किया जावेगा। जिससे अरब राष्ट्र और इजरायल के मध्य सीमाओं का ऐसा निर्धारण किया जा सके जिससे दोनों पक्ष सांस ले सकें। वैसे संसार में स्थायी शान्ति न कभी रही और न आगे रह सकती है। बलवान् दुर्बल को दबाते आये हैं, कभी एक पक्ष का पलड़ा भारी और कभी दूसरे पक्ष का भारी होता रहता है। चीन ने इस वार्त्ता में सुरक्षा परिषद् में भाग नहीं लिया। सम्भवतः वह रूस और अमेरिका में युद्ध देखना चाहता था जिससे अपने तेज को आगे बढ़ाकर रूस और अमेरिका के बराबर पहुंच सके। फिर भी विराम का स्वागत सर्वत्र किया गया है।

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के नेता भी विचारें

जब रूस और अमेरिका परस्पर विरोधी भी समझौते पर पहुंच सकते हैं तो क्या आर्य प्रतिनिधि सभा के उभय-पक्षों से यह आशा नहीं की जा सकती? बीच में विघ्न डालने वाले राजनीतिक तत्व को नगण्य करने पर हमारी सम्मति में निष्पक्ष रूप से पारस्परिक बार्त्तालाप से ऐसा होना असम्भव नहीं है।

— जगदेवसिंह सिद्धान्ती शास्त्री

आर्य भावना के सुलभ लाभ

तन्तोष के क्षण

(लेखक श्री देवनारायण भारद्वाज, मंत्री आर्य समाज अलीगढ़)

घर पर विशेष समारोह की वेला। विद्युत् सज्जा से जगमगाते भवन में विवाहोत्सव की धूम। सायंकालीन भोजन के उपरान्त सभी बराती एक स्थान पर बैठ कर वार्तालाप में व्यस्त हो गये। इधर उधर की बातों के बाद गोष्ठी सुन्दर मोड़ पर आ गई। वेदव्रत ने बतलाया कि एकबार वे अपनी बैठक में लेख लिख रहे थे। लेख की भाव-भूमिका में वे पूर्णतया अटके हुये थे। एकदम भोर का समय था—सड़क पर मनुष्यों का आवागमन भी बहुत कम था। वे सामने सड़क की ओर टकटकी लगाये देखते भी जाते थे और लेख के विषय-सन्दर्भ को सोचते भी जाते थे। इतने में एक लड़का बैठक से लगभग १५ मीटर की दूरी पर बेहोश होकर गिर गया। लेख के चिन्तन को तो वे भूल गए; किन्तु अब सोचने यह लगे कि इस लड़के की सहायता के लिए उसके पास जायें अथवा नहीं। विचारों की भ्रम भंगिमा को एक ओर छोड़ते हुए दौड़ कर उस लड़के के पास सर्व प्रथम पहुंच गये। उसको मिर्गी आदि किसी रोग का दौरा पड़ा था। यह कोई उपचार तो जानते नहीं थे; किन्तु इन्होंने उस लड़के को नाली आदि में गिरने से बचाया-उसको संभाला। तब तक और भी अनेक व्यक्ति वहां पर आ चुके थे। एक ने लड़के को पहचान लिया। उसके मां-बाप को सूचना दी। मां-बाप ने दौड़कर लड़के का उपचार किया और उसको साथ घर ले गए।

घटना तो सताप्त हो गई; किन्तु वेदव्रत जी ने उस समय होने वाली अपने मस्तिष्क की ऊहापोह का विश्लेषण किया—वह बहुत ही प्रेरणा परिपूर्ण है। उन्होंने कहा कि उस समय मेरे सामने अनेक प्रश्न आ खड़े हुए। लेख की सहज प्रवाहित शृंखला को भंग करें या नहीं। इस लड़के को कुछ हो गया तो हम कहां न्यायालय या जनता के सामने साक्षी या प्रमाण देते फिरेंगे। फिर सबसे बड़ी बात यह कि हम कोई उपचार भी तो नहीं जानते हैं, जो इसकी चिकित्सा कर सकें। पर इन सभी संकल्प-विकल्पों पर विजय पाकर मैं उसके निकट पहुंच गया। जो भी बन पड़ी उसकी सहायता की। कुछ ही देर बाद जब वहां अन्य व्यक्ति पहुंच जाते, तब मैं यदि पहुंचता तो मात्र दर्शक के रूप में ही होता; किन्तु जब कर्तव्य भावना से सर्वप्रथम मैं वहां पहुंचा—इससे मुझको पर्याप्त सन्तोष हुआ।

वेदव्रत जी की बात समाप्त होते ही धर्मव्रत जी ने अपना प्रसंग छेड़ दिया। वह बोले कि मैं अपनी एक यात्रा के मध्य रेलवे स्टेशन पर पहुंचा। पूर्णमासी का दिन—गंगा स्नानार्थियों की अपार भीड़। सहसा एक ग्रामीण महिला जोर से चिल्ला पड़ी "हमारी ऊषा कहां"। अरे किधर चली गई मेरी लड़की।" जोर से रोते हुए वह यही सब कहती जा रही थी। लगभग ५ वर्ष की उसकी कन्या कुछ ही मिनटों में खो गई थी। अब वह रोते हुए लड़की के लिए निर्धारित सभी पर्यायवाची शब्दों का उच्चारण करके अपनी वेदना प्रकट कर रही थी। "कहां है मेरी बेटी, मेरी धी कहां, मेरी कन्या खो गई, हाय मेरी लाड़ली चली गई, मेरी पुत्री कहाँ छिप गई—अब मैं क्या करू" जैसे वाक्य वातावरण में पीड़ा को साकार कर रहे थे। मैंने सुना तो बड़ा कष्ट हुआ। उसको सान्त्वना देने के लिए कुछ शब्द कहे तथा अभी खोज कराते हैं—यह कहकर जब मैं कुछ आगे बढ़ा तो थोड़ी दूर पर एक व्यक्ति रोती हुई बालिका को गोद लिये आ रहा था। यही वह लड़की थी जो खो गई थी। मां-बेटी के मिलन का वह दृश्य देखकर मुझे सन्तोष हुआ—उसका वर्णन करना मेरे लिये कठिन है।

किसी गोष्ठी में जब एक सन्दर्भ छिड़ता है तो दूसरा प्रसंग उठते देर नहीं लगती। धर्मव्रत जी के बाद कर्मव्रत जी ने भी अपनी बात सुनाई। वह बोले एक बार वार्षिकोत्सव के अवसर पर आर्य समाज मन्दिर में बहुत से विद्वान् तथा महात्मा पधारे हुए थे। बारी-बारी से परिवारों में उनके भोजन का क्रम चलता था। हमारे घर में भी भोजन का आयोजन था। विशेष तत्परता व उत्साह के साथ अनेक प्रकार के स्वादिष्ट व्यंजन बनाये गये थे। मध्याह्न काल को ही सन्त—विद्वत्मण्डली भोजन के लिये निमन्त्रित थी। सभी को हाथ धुला कर आसनों पर बैठाया गया तथा थालियां परोस दी गयीं। आनन्द के साथ सभी आगन्तुकों ने भोजन किया। ये महानुभाव अभी उठ नहीं पाये थे, कि बाहर भिक्षा मांगने की आवाज सुनी गई। वयोवृद्ध भिक्षुक एक रोटी की मांग कर रहा था। कर्मव्रत जी ने उसको बैठने को कहा। जब सभी आगन्तुक मधुर शुभ-कामना एवं आशीर्वाद देकर विदा हो गए तो कर्मव्रत जी ने उस भिक्षुक को भरपेट स्वादिष्ट भोजन कराया तथा जल पिलाया। इस वृद्ध को भोजन कराने में जो आनन्द कर्मव्रत जी को आ रहा था वह अवर्णनीय है। एक एक ग्रास के बाद चेहरे पर आने वाली चमक-चमत्कार का रूप धारण करती जाती थी। अन्त में तृप्त होने पर उसकी भाव विभोर आंखों ने जो मौन आशीर्वचन कहे, उनको कर्मव्रत जी का हृदय स्पष्ट सुन रहा था। पहले प्रतिष्ठित आगन्तुकों को भोजन कराके कर्मव्रत जी ने यश कमाया था, किन्तु बाद में इस वास्तविक अतिथि को तृप्त कराके उनको सच्चा सन्तोष हुआ।

वेदव्रत, धर्मव्रत तथा कर्मव्रत की वार्ता को सुनने के बाद देवव्रत जी भी भला कहां चुप रहने वाले थे। उन्होंने बताया कि वह एक बार बाजार कपड़ा क्रय करने गए। आधुनिक साज-सज्जा में दमकती दुकान पर बड़ी भीड़ देखकर वह एक बेंच पर चप्पल निकाल कर बैठ गए। पैरों के हिलने डुलने पर कोई वस्तु उनके पैरों से टकराई। उन्होंने देखा-तो नोटों की एक मोटी गड्डी पड़ी पाई। उन्होंने धीरे से उस गड्डी को उठा लिया और उठाते हुए किसी प्राणी ने उनको देख भी नहीं पाया। गड्डी को प्राप्तकर देवव्रत जी के मस्तिष्क में विचारों का तूफान आ गया। कभी विचार आये कि चलो इस भीड़ से निकल चलें किसने देखा है मुझे गड्डी उठाते; कभी यह डर आये कि कहीं पकड़े न जायें। इसी प्रकार के अनेक विचार मन में मंडरा रहे थे। किन्तु पता नहीं—उनको क्या हुआ, कि वह सहसा चिल्ला पड़े और सारी भीड़ का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट कर लिया—और बोले कि मुझको एक नोटों की गड्डी मिली है—आप किसी की हो तो विवरण बताकर प्राप्त करलें। पर सभी चुप। अब देवव्रत जी और भी चिन्तित कि इस गड्डी का क्या करें। अन्त में वह उसी दुकानदार को वह गड्डी देकर चल दिये। लोगों ने उनका खूब यशगान किया। थोड़ा ही आगे बढ़े थे—कि बाजार में एक वृद्ध दम्पति रोते हुए आ रहे थे। यकायक देवव्रत जी की भेंट उनसे हो गई। उन्होंने बताया कि अपनी कन्या के विवाह के लिए अपने एक निकट सम्बन्धी से रुपये उधार लाया था और कपड़े क्रय करना चाहता था, किन्तु पता नहीं वे रुपये कहां गिर गए। देवव्रत जी दम्पति को दुकान पर ले गये तथा उनके रुपये दिला दिये। रुपयों की वह गड्डी पाकर उस दम्पति को जो सुख हुआ, तथा जो भाव भंगिमा उसकी मुखमुद्रा पर प्रस्फुटित हुई—उसको देखकर देवव्रत जी को अपार सन्तोष हुआ।

श्री देवव्रत, श्री धर्मव्रत, श्री कर्मव्रत और श्री देवव्रत जी ने अपने जीवन की घटनाओं से यह प्रमाणित किया कि उनको परोपकार में अत्यन्त सुख मिलता है। यह सहोदर चारों भाई अपने यशस्वी पिता आर्यव्रत के पुत्र हैं। पिता ने इनके बाल्यकाल से ही इनमें धार्मिक भावनाओं को कूट कूट कर भरा था। पिता जी जब सत्संग में जाते थे, तब इनको साथ ले जाते थे। घर पर भी धार्मिक साहित्य पढ़ने को देते थे, समय-समय पर धार्मिक चर्चा भी करते रहते थे; और सम्मिलित परिवार सन्ध्या-यज्ञ का भी आयोजन करते थे। इस प्रकार बच्चों पर कलुषित सामाजिक वातावरण का यदि कोई प्रभाव पड़ता था—तो स्वयमेव धुलता रहता था। इसीलिए तो यह चारों भाई पृथक्-पृथक् व्यवसाय करते हुए भी और एक दूसरे से दूर रहते हुए भी हृदय से एक हैं। जब ये दूसरों के दुःख में दुःखी और दूसरों के सुख में सुखी होते हैं; तो अपने माता-पिता तथा परिवारी जनों के लिए ये क्या कुछ नहीं करते होंगे।

दूसरी ओर आप भगतराम जी से मिलिये। जीवन भर मन्दिर में पूजा-प्रसाद चढ़ाते रहे। अपने मात्र दोनों पुत्रों पर जी भर प्यार लुटाते रहे। दोनों पुत्रों को सारी सुख सुविधायें दीं, किन्तु सत्संग व धर्माचरण की ओर कभी प्रेरित नहीं किया। दोनों पुत्र युवक हो गये। उनके विवाह हुए और सन्तानें भी हुयीं। इन पुत्रों में अपने माता-पिता के प्रति आ-

(शेष पृ० ११ पर)

क्रमागत :—

माण्डूक्य पर आचार्य गौडपाद कारिकाओं की समीक्षा (३८)

(ले०—श्री स्वामी ब्रह्मानन्द जी आर्य त्रैतवेदान्ताचार्य मु० ओं० आश्रम, चान्दोद (बड़ोदा)

अब रही (इन्द्रो मायाभिपुरुरूप ईयते) की बात तो वे श्रुति माया के द्वारा शरीर धारण करना इन्द्र को वतलाती है तो शरीरेन्द्रिय प. वान् हमेशा जीवात्मा ही देखा जाता है न कि परमात्मा, क्योंकि (चेष्टेन्द्रिय-अर्थाश्रय: शरीरम् न्या० द०)अर्थात् इन्द्रिय मन आदि की जहां चेष्टायें हों तथा गन्द स्पर्शादि अर्थभोगों का जो ग्राहक एवं आश्रयदाता हो उसे शरीर कहा जाता है तो ऐसा शरीर लक्षण वाला तो जीव ही देखा जाता है न कि शिव परमात्मा, क्योंकि परमात्मा तो शरोर संसार से भी बड़ा होने से वह शरीरी नहीं हो सकता, देखो आ० शंकर भी ऐसा कहते हैं (नन्वीश्वरोपि शरीरे भवति 'सत्यम्' शरीरे भवति न तु शरीर एवं भवति, ज्यायान् पृथिव्या ज्यायान्तारक्षात् आकाशवत् सर्वगतश्च नित्य: व्यापित्वश्रवणाद् । जीवस्तु शरीरे एवं भवति, तस्य भोगाधिष्ठानाच्छ-रीरादन्यत्र वृत्त्यभावात् ॥ वे० द० १।२।३।। शां० भाष्य)

अर्थात् जीव को (शारीर) शरीर वाला कहते हैं। ईश्वर को नहीं। इस पर प्रश्न करते हैं कि जब ईश्वर भी शरीर में रहता है तो वह भी शारीर क्यों नहीं ? इसका वे उत्तर देते हैं। यह ठीक है कि ईश्वर शरीर में रहता है। परन्तु केवल शरीर में ही है ऐसा नहीं। श्रुति में कहा है कि वह पृथ्वी से भी बड़ा है। अन्तरिक्ष से भी बड़ा है। आकाश के समान व्यापक है नित्य है। इसके विरुद्ध जीव तो केवल शरीर में ही है। शरीर से बाहर उसकी वृत्ति (ज्ञान) नहीं। अत: जीव ही (शारीर है) है ईश्वर नहीं ।। लीजिये इस (इन्द्रोमायाभी) वाली श्रुति किस के लिये जीव के लिये या ईश्वर के लिये लागू पड़ती है, तुम्ही सोच लो ? इसलिये हमारा मत तो यही पहले से है कि इस श्रुति में इन्द्र पद इन्द्रियवान् जीवात्मा के लिये है, क्योंकि वह शरीर से सम्बन्ध रखती है, श्रुति इसीलिये है तथा (अजायमानो) भी जीव के लिये है क्योंकि (अनेक योनिमापन्ना) तो जीव के लिये ही प्रसिद्ध है और शिव तो (अजन्मानोलोका) कहाता है ।।

संभूतेरपवादाच्च संभव: प्रतिषिध्यते ।
कोन्वेनं जनयेदिति कारणं प्रतिषिध्यते ।।२५।।

अद्वैत प्र० की २५ वीं कारिका

अर्थ—श्रुति में सम्भूति (हिरण्यगर्भ) की निन्दा द्वारा कार्य वर्ग का प्रतिषेध किया गया है तथा इसे कौन उत्पन्न करे इस वाक्य द्वारा कारण का प्रतिषेध किया गया है ।। २५ ।।

समीक्षा—आपने संभूति का अर्थ हिरण्य गर्भ और इसमें शंकर ने कार्य ब्रह्म, अर्थ कर डाला अर्थात् ईश्वर, सो बड़ा अनर्थ किया है ईशोपनिषद् १४ में भी आ०-शंकर, संभूति का अर्थ असभूति लेते हैं तो क्या प्रमाण कि असंभूति के अकार का लोप हो गया है। ऐसे तो चाहे जो मन माना लोप और आगम करके कार्य करण के अनुसार कोई भी पंडित अपना प्रयोजन सीधा कर लेगा। किन्तु व्याकरण के आगम या लोप के लिए भी कोई हेतु कारण शास्त्रीय मर्यादा को तो होना ही चाहिए न। परन्तु बिना प्रमाण के कौन तुम्हारी बात को मानेगा ? हां तो संभूति का अर्थ है कार्य जगत् और असंभूति का अर्थ है प्रकृति। तो संभूति की शास्त्र में निन्दा तो नहीं स्तुति की गई है, समझे, देखो (संभूत्याऽमृतमश्नुते ।। १४ ईश, उ. प्र. अ. ४. अर्थात् कार्य जगत् या शरीर संसार को पाकर ही जीव हशमो अमृत मोक्ष पद्र को (ज्ञानयोग: व्यवस्थित:) युक्त हो प्राप्त करता है, ऐसा श्रुति में वतलाया गया है। जो हमारे पुण्य पुरुषार्थ एवं परमात्मा की कृपा से जब कार्य कारण भाव वाला शरीर संसार मिला तभी तो हम ये, शम दम उपरति श्रद्धा तप ध्यान ज्ञान उपासना कर इस शरीर से संसार में जीवन्मुक्त और अन्त में अमृत पद के पाने वाले बनते हैं जो ऐसा कार्य जगत् एवं शरीर न मिलता तो कैसे मुमुक्षता को प्राप्त कर मोक्षाधिकारी बनते ? इस प्रकार जो ये संभूति कार्य कारण भाव से युक्त है उसकी निन्दा नहीं किन्तु प्रशंसा ही वैदिक साहित्य में की गई है। हां निन्दा तो तुम अद्वैतवादी महानुभव और बोद्ध लोग इस शरीर संसार की भरपेट निन्दा करते रहते हो। जैसे देखो (को वास्ति घोरो नरक: स्वदेह: ।। प्र. म. र. माला) तथा (द्वारं किमेकं नरकस्य नारी) यहां शंकर जो स्त्री पुरुष दोनों के शरीर को घोर नरक का द्वार बतला रहे हैं और कहा हमारे आर्ष शास्त्र तो (दुर्लभो मानुषो देहो देहिनाम् ।। ध. शा) गो स्वामी जी की रामायण में—

(बड़े भाग्य मानुष तन पावा, सुर दुर्लभ सदग्रन्थन गावा)
(कुलं पवित्र जननी कृतार्था वसुन्धरा पुण्यवती च तेन)
इस लिए नरक के द्वार तो (त्रिविधंनरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मन—
काम: क्रोधस्तथालोभस्तमादेतं त्रयं त्यजेद ।। गीता. अ. १६ ।।

तो इस शरीर संसार रूप संभूति की निन्दा कहीं भी शास्त्रों में नहीं की गई। किन्तु इनका सेवन पूजन (सत्कार उपकार करना तो कहा है। जैसे (अभिराष्ट्रेवर्ध्यताम् ।। अर्थात् राष्ट्रोन्नतिमें ही अपनी आपकी उन्नति समझनी चाहिए स्वस्ति साम्राज्य भोज्यं परमेष्ठ्यंराज्यं महा-राज्याधिपत्यमयंरी ये आरण्यक के वचन हैं) ऐसी वेदिक आज्ञा है देश-भक्तयात्म: त्यागेन संमानहि सदाभव:) (सर्वं पर वशं दु:खं सर्वं आत्म-वसंसुखाद ।। तनु.) ये सब संभूति की उपासना की बातें हैं। समझे गुरु जी ? आप किस चक्कर में पड़ें हैं ? इस लिए न संभूति को कही वेद में हिरण्यगर्भ कहा है न कहीं उसकी उपासना या उपसेवन की निन्दा की है किन्तु (त्यक्तेन भुंजीथा:) की आज्ञा अवश्य देकर (कुर्वन्नेवेह कर्माणि) कहा है। तो देखो हम तुम सबको जो शरीर संसार न मिलता तो ये उपरोक्त विधि से संभूति की उपासना कैसे करते ? और (मुक्तिमिच्छ-सिचेत्तात विषयान् विषवत्। क्षमार्जवंदया शौच सत्यं पीयूषवत् पिव) चाणक्य ।। की उपरोक्त आज्ञा का पालन बिना देह हम कैसे पालन धारण करते ।। २५ ।।

स एष नेतिनेतीति व्याख्यातं निह्नुते यत: ।
सर्वमग्राह्यभावेन हेतुना प्रकाशते ।। २६ ।।

अद्वैत प्र० की २६वीं कारिका

अर्थ—क्योंकि सएषनेति नेति (वह यह आत्मा नहीं है यह नहीं है) इत्यादि श्रुति आत्मा के कारण अग्राह्यत्व के कारण (उसके विषय में) पहले बतलाये हुवे सभी भावों का निषेध करती है अत: इस (निषेधरूप) हेतु के द्वारा ही अजन्मा आत्मा प्रकाशित होता है ।। २६ ।।

समीक्षा—यदि आप (नेति नेति) से यह अर्थ लेते हो की उस आत्म-तत्त्व से दूसरा और कुछ भी नहीं है ऐसा कहते हो तो फिर ऐसा क्यों कहते हो कि उससे बाहर भीतर कुछ नहीं है ? यदि सत्यमेव आत्मा के अतिरिक्त कुछ है ही नहीं तो उससे बाहर भीतर कुछ नही है। ऐसा क्यों कहा आपने ? क्योंकि किसी की अपेक्षा से बाहर और फिर किसी की अपेक्षा से भीतर हो सकता है न की अपने ही आप मे आत्मा बाहर भीतर कहां जाता आता है। तो कोई भी अपने राष्ट्र, देश, नगर या घर के अन्दर ही होता है या फिर बाहर रहा होता है। तो आपने उस आत्मतत्त्व को (स बाह्याभ्यान्तरमजमात्मतत्त्वं प्रकाशते स्वयमेव) तो इस शांकर भाष्य का जवाब आप स्वर्ग से आकर देंगे या आप श्री के पदासीन अन्य आधुनिक अद्वैत आदि कोई महानुभाव जवाब देंगे ? ये आप सोच समझ विचार लेवें। तथा अन्यत्त्व की भ्रान्ति जीव को पहले हुई कि—श्रुति पहले प्रगट हुई ? या भ्रान्त और श्रुति युगपद् प्रगट हुवे थे। और ऐसी अनेकत्त्व की भ्रान्ति का भोक्ता वही (एकमेवाद्वितीयम्) है या फिर कोई उसके अतिरिक्त अन्य है। और भ्रान्ति को किसी का धर्म मानते हो या धर्मी ? और यदि श्रुति पहले हुई कहो तो भी उचित नही क्योंकि ज्ञाता वा ग्राहक की अपेक्षा से ज्ञान का आना, देना लेना होता है। यदि कहो भ्रान्त पहले हुवा, पीछे श्रुति का उसके लिये प्रागट्य हुवा। तो श्रुति ने पहले कैसे जाना कि यह आत्मा वह नहीं है जिसे ये अज्ञानी नहीं जानता। यदि कहो परमात्मा, तो वह सबको जानता है इसलिये श्रुति से उसने बोध दिया कि यह आत्मा वह नहीं है, तो नानात्त्व का बोध उसे अनादि काल से था, तभी तो कहा की यह आत्मा वह नहीं है, तो इस प्रकार के मंतव्य, से सिद्ध हुवा कि नानात्त्व अनादि और स्वाभाविक और ऐसा नानात्त्व का ज्ञान भी अनादि है। तो उसका निषेध अब किसी के निमित्त से किया गया है तथा जो नैमित्तिक होता है वह नाशवान भी होता है, तो अद्वैत नैमित्तिक होने से नाशवान् भी हुआ, ये तुम्हें मान लेना चाहिए। (क्रमश:) ●

राष्ट्र आंखें खोलें—

ईसाइयों का प्रचार तन्त्र (६)

ऐसा कुछ सुनने में आया था कि भारत के लगभग ७०० ईसाई चर्चों ने इस संघटन से अपील की थी कि भारत में भी उनको अपने प्रचारक भेजने चाहिएं। विग्स आफ हीलींग की भांति ही एक अन्य संस्था रोमानिया के रेवरेण्ड रिचर्ड वूमरेण्ड की ओर से भारत में स्थापित हो चुकी है जिसका नेतृत्व इस समय पी. पी. जौब कर रहे हैं जो इस संस्था के अध्यक्ष हैं। इस संस्था का नाम 'दी वोईस आफ दी मारटयरस' है जिसका प्रधान कार्यालय नई दिल्ली में है और उसकी पांच शाखाएं अन्य शहरों में है। संस्था के नाम पर ही इस संस्था का पत्र प्रकाशित होता है जो भारत की आठ से अधिक भाषाओं में निकलता है। पादरी वूमरेड १४ वर्ष तक कम्युनिष्टों की जेल में यातनाएं सहते रहे हैं इसलिए उनको बात में गम्भीर सच्चाई झलकती है। कम्युनिष्ट विरोधी आन्दोलन का जो सूत्र-पात उन्होंने किया है और जो तथ्य व आँकड़े वे प्रस्तुत करते हैं और जिन भीषण साम्यवादी अत्याचारों का विवरण वे देते हैं उनके प्रति आकृष्ट होना, उनके प्रति सहानुभूति रखना स्वाभाविक माना जा सकता है। अन्याय और शोषण यदि कहीं होता है तो मनुष्य होने के नाते हमें उसका निराकरण करने के लिए आवश्यक रूप से कटिबद्ध होना चाहिए। लेकिन यह सम्पूर्ण प्रयास और दौड़ धूप उस समय व्यर्थ नजर आने लगती है जब इसका उद्देश्य किसी सम्प्रदाय विशेष के निहित स्वार्थों को पूर्ण करना होता है।

निश्चित रूप से यह संस्था साम्यवाद विरोधी जनभावना को एक सूत्र में गठित करना चाहती है लेकिन ईसाइयत का प्रचार भी उसके कार्यक्रम का प्रधान अंग है। साम्यवादी अत्याचारों से अपने धर्मभाइयों को परित्राण दिलाने हित इस संस्था ने भारतीयों से दान देने की जो अपील की है वह कुछ सन्देह पैदा करता है। दान में प्राप्त धन भारत में ईसाइयत के प्रचार का मुख्य साधन नहीं रखेगा इसकी गारण्टी कौन दे सकता है। धर्म के कारण यदि किसी को संकट में फंसना पड़ता है तो सभी धार्मिक लोगों का यह कर्त्तव्य हो जाता है कि संकटग्रस्त प्राणी को मुक्त कराये लेकिन जब मजहब या सम्प्रदाय की चारदीवारी में खड़े होकर सहायता की गुहार लगाई जाती है तो हमें पहले रुक कर उस पर विचार करना पड़ेगा। लाखों रुपये का मसीही साहित्य तस्करी के रूप में साम्यवादी देशों में पहुंचाया जा रहा है—गैर-ईसाइयों से प्राप्त धन का यह दुरुपयोग नहीं तो और क्या है—दूसरे के धन पर अपने मजहब का प्रचार नैतिक दृष्टि से एक गिरा हुआ काम है। साम्यवाद विरोधी अभियान का गठन यदि विशुद्ध धार्मिक आधार पर चलाया जाता तो निश्चित रूप से सफलता मिलती अब चूंकि इसका आधार ही ईसाइयत है इस कारण उसकी विफलता की आशंका है। कुछ भी हो इस संस्था को विदेशी सहायता तो मिल ही रही है। भारतीय यदि इस संस्था को दान नहीं देते तो भी वह जीवित अवश्य रहेगी क्योंकि साम्यवाद विरोधी लोकतंत्रीय सरकारों के संकेत पर यह संस्था प्रच्छन्न रूप से नाच रही है। साम्वाद विरोधी अभियान के परिप्रेक्ष्य में ईसाइयत का प्रचार ईसाई प्रचारतन्त्र का एक नया तरीका है जिससे सावधान रहना आवश्यक है। विदेशी सरकारों व पादरियों की इस गहरी चाल को जितनी जल्दी समझ लिया जाय उतना ही अच्छा है।

कुछ तो संविधान में वर्णित धर्मनिरपेक्षता के कारण और भारत सरकार ईसाइयत की अवैध प्रचार गतिविधियों पर न तो दृष्टि रखती है और न ही उस पर प्रतिबन्ध लगाने की स्थिति में है। विदेशी ईसाई-राष्ट्र भारत को कर्ज के रूप में भारी धन देते रहते हैं। उस धन से प्राप्त ऋण की अधिकांश मात्रा भारत में ईसाइयत के प्रचार प्रसार में लगा दी जाती है। अमरीका के पी० एल० ४६० के अन्तर्गत प्राप्त ऋण इसी प्रकार व्यय होता रहा है। १९५९-६२ तक भारत को ऋण रूप में लगभग ५ अरब डालर अमरीका से मिले हैं। अमरीका दूतावास से प्रकाशित 'अमेरीकन रिपोर्टर' ने १-११-६३ के अंक में सगर्व लिखा है कि—"यदि पांच अरब डालर के नोटों को रुपये-रुपये के नोटों में बदल लिया जाए और उनको सिलसिले वार बिछाया जाये तो उनकी लम्बाई दो लाख मील होगी। दूसरे शब्दों में उनसे कश्मीर से कन्याकुमारी तक एकसौ पंक्तियां बन जायेंगी।" आगे लिखा है—"यदि इसी राशि को १००-१०० रुपये के नोटों के रूप में ऊपर नीचे रखें तो उनकी ऊंचाई ७४,००० हजार फुट होगी।" भारत जैसे विकासशील राष्ट्र इतनी भारी रकम प्राप्त करके उसी हालत में पहुंच जाते हैं जैसे कोई कर्जदार भारी रकम लेकर कर्जा देने वाले की आगे अपने को हीन व असहाय समझता है कर्जदार हमेशा ही हीनता की भावना से ग्रसित रहता है और अपने लेनदार के शोषण व अन्याय को सहने पर बाध्य रहता है भारत अमरीका का कर्जदार है अमरीकी पादरी भारत में सबसे अधिक हैं जिनके सिर पर अमरीकी सरकार का हाथ है इसलिए उनके विरुद्ध कोई कार्यवाही करने में हमारी सरकार हिचकती है। नियोगी कमेटी की तथ्यपूर्ण रिपोर्ट को रद्दी की टोकरी में फेंकने का यही कारण है। विदेशी पादरियों के खिलाफ जब भी कोई कदम उठाने की बात हमारी सरकार सोचती है तो बाहरी देशों के जबरदस्त विरोध के कारण उसे रुकने पर विवश होना पड़ता है। लोकसभा व राज्य सभा में अनेक वार ईसाइयों की राष्ट्रविरोधी गतिविधियों पर चर्चा-बहस-तीखी झड़पें हुई हैं लेकिन हमारी सरकार जैसे कुछ भी करने में असमर्थ है। पादरी फेरर की महाराष्ट्र में अराष्ट्रीय गतिविधियों को देखकर और विपक्ष की उत्तेजना को ध्यान में रखते हुए उसे देश से निर्वासित होने के आदेश देने पड़े। लेकिन कुछ समय उपरान्त विदेशी प्रभाव के कारण वही फेरर फिर भारत लौट आया। महाराष्ट्र में न सही अन्य प्रान्तों में आने-जाने व प्रचार करने की उसे खुली छूट है। विदेशी प्रभाव के बल पर ही विदेशी पादरी अधार्मिक कार्यों में सक्रिय भाग लेते हैं और खुले आम धन के बल पर लोगों का धर्म बदलवाते हैं। सरकार उनके विरुद्ध कुछ नहीं करती जब कोई विरोध व आलोचना करने खड़ा होता है तो वह टस से मस होती है—फाइल एक मेज से दूसरी मेज पर पहुँच जाती है—सम्बन्धित अधिकारी तक आदेश पहुँचते पहुँचते महीनों गुजर जाते हैं। यह तो न करने वाली बात हुई। सरकार की इस विवशता को हृदयगम करते हुए हमें ईसाइयत को रोकने व उसकी राष्ट्रविरोधी हरकतों पर अंकुश लगाने का स्वयं प्रयत्न करना होगा। सरकार विवश है विवश रहेगी क्योंकि विदेशी ऋण से मुक्त होने की स्थिति में वह अभी नहीं है इसलिए हमें ही कमर कसकर तैयार होना पड़ेगा।

ईसाइयों का सर्वोच्च प्रधान पोप है जो इटली के रोम नगर के एक सुरक्षित स्थान 'वैटिकन-सिटी' में स्थापित एक भव्य-प्रसाद में निवास करता है। इसी उपनगर में ईसाइयत का अन्तर्राष्ट्रीय कार्यालय है जो आखिल भूमण्डल के ईसाइयों का नेतृत्व करता है, उन्हें निर्देश देता है और उनकी सुविधाओं का सदैव ध्यान रखता है। पोप का स्थान बहुत ऊँचा है। ईसा मसीह के पश्चात् उसी का पद है। आध्यात्मिक व आधिभौतिक जगत् में वही ईसाइयों का गुरु है। उसके आदेश की अवहेलना करने का साहस किसी कैथोलिक ईसाई को नहीं होता। ईसाई-राष्ट्र पोप का पूर्ण सम्मान देते हैं। कुछ सदी पूर्व तो राजाओं की गरदन पोप के हाथ में रहा करती थी। अब वैसी स्थित तो नहीं है लेकिन पोप का अपना महत्व आज भी बना हुआ है। कारण ईसाइयत और गैर-ईसाई राष्ट्रों में ईसाई-राष्ट्रों के स्वार्थों में गुप्त समझौता हो चुका है। अपने स्वार्थ के कारण ईसाई-राष्ट्रों के राष्ट्राध्यक्ष पोप की अधीनता स्वीकार करते हैं। गैर ईसाई देशों को कितनी सहायता मिलनी चाहिए इसका निर्णय उस देश में ईसाइयत की स्थिति का अच्छी तरह अध्ययन करने के पश्चात् किया जाता है और इस सारे खेल में पोप व उसके प्रतिनिधि अपनी विशेष भूमिका निभाते हैं। पोप के दूत लगभग प्रत्येक देश में रहते हैं जो उस देश में ईसाइयों के अधिकारों की रक्षा करते हैं और वहाँ की राष्ट्रीय सरकार पर अपना दबदबा बनाये रखते हैं। विदेशी ऋण का रौब गालिब करके वे ईसाइयों के

(शेष पृ० ७ पर)

(पृ० ६ का शेष)

हितों का रक्षण करते हैं। पोप का भारतीय दूत नई दिल्ली स्थिति अशोक होटल के सामने संगमरमर की एक आलीशान कोठी में निवास करता है। इस दूत को भारत स्थित विदेशी सरकारों के राजदूतों जैसा ही सम्मान हमारी सरकार देती है। विशेष अधिकार व सुविधाएं उसे प्राप्त हैं। पोप के अतिरिक्त अन्य ईसाई संघटनों के महन्तों के दूत भी यहाँ रहते हैं। ये सभी दूत उस समय साक्रिय हो जाते हैं जब कोई ईसाई विरोधी कानून पर चर्चा होती है या उसे पास करने का समय आता है। बारी बारी से ये सरकार के कान खींचते है और विदेशी सहायता तत्काल रुकवाने का भय दिखाते है। राष्ट्रीय हितों को ध्यान में रखते हुए सरकार को उनके समक्ष झुकना पड़ता है।

हमारे धर्म व संस्कृति को नष्ट करने के उद्देश्य से विदेशी सरकारों ने एक नया रास्ता निकाला है जो भारत में ईसाइयत के प्रसार में सहायक बन रहा है। भारत में उत्पन्न अनेक आधुनिक अवतारों को अपने देश में आमंत्रित कर ये विदेशी सरकारें उनको ब्लैक मेल करती हैं। बालयोगेश्वर, प्रभातरंजन सरकार, तथा इसी प्रकार के अन्य संगठनों के मुखिया या तो विदेश जाकर धन प्राप्त करते हैं या यहीं बैठे धन मंगवाते हैं। बालयोगेश्वर काण्ड जो कि पालम हवाई अड्डे पर हुआ उससे सब परिचित हो चुके हैं। समाचार पत्रों में यह भी समाचार प्रकाशित हुआ था कि बालयोगेश्वर की माता इस काण्ड से कुछ दिन पूर्व ही चुंगी अधिकारियों की आँखों में धूल झोककर लाखों रुपये का सोना भारत लाने में सफल हो चुकी है। इस अपार धनराशि से हिन्दू धर्म के विरुद्ध प्रचार किया जाता है, नये-नये संघटन बनाकर राष्ट्रीय एकता को जातीय एकता को और सामूहिक धर्म को खंडित करने के प्रयास होते हैं। इन अवतारों के कारनामों व वचनों से हिन्दू धर्म कलंकित होता है और लोगों की श्रद्धा परम्परागत हिन्दू धर्म में नहीं रहती। धर्म व मनुष्य में जब शून्य की स्थिति पहुँच जाती है तो ईसाइयों को अपने करतब दिखाने का अवसर मिल जाता है। इन अवतारों के साथ अनेक विदेशी अनुयायी आते हैं जो तस्करी करते हैं गुप्तचरी करते हैं, राष्ट्रविरोधी आन्दोलनों की नींव रखते हैं, और विशेष रूप से ईसाइयत के लिए छुपे रूप से काम करते हैं। विदेशी एजेण्टों को निर्विघ्न रूप से आने-जाने व अपना निर्धारित लक्ष्य पूर्ण कराने के लिए इन अवतारों का सहारा ढूंढ़ा जा रहा है। पैसे के लालच में, यश के लोभ में और नाम कमाने की धुन में ये तथाकथित अवतार विदेशी राष्ट्रों के मोहताज बन जाते हैं और प्रच्छन्न रूप से ईसाइयत के मोहरे बनने पर विवश होते हैं।

विदेश से ईसाइयत के प्रचार-प्रसार के लिये एक नया तरीका और ढूंढ निकाला गया है। पादरियों व संस्थाओं को विदेशी लोगों व सरकारों की आर्थिक सहायता मिलती ही है अब यह भी देखने में आ रहा है कि ईमानदारी और उत्साही प्रचारक को भी वे लोग धन आदि का दान देते हैं ताकि वह अपने ढंग से प्रचार कर सकें। पिछले दिनों २ अगस्त १९७३ के नवभारत टाइम्स में एक ऐसा ही समाचार पढ़ने को मिला। श्री रोचुंगा पुडेट नामक सज्जन ने जो कि 'मणिपुर का बाइबल वाला' नाम से प्रसिद्ध है दिल्ली के निकटवर्ती क्षेत्रों में ईसाइयत के प्रचार का बाड़ा उठाया है। अपने पांव जमाने के लिये उन्होंने देहाती बस्तियों में पीने के पानी की व्यवस्था करने का संकल्प लिया है। आयानगर, भाटी और मंगला गावों में तीन नलकूप, हैंड पम्प और कुओं के लिये उन्होंने अपने अमरीकी मित्रों से लगभग १ लाख रुपया एकत्रित किया है। श्री पुडेट ने सरल भाषा में 'लिविंग बाइबल' (जीवंत बाइबिल) लिखी है और विश्वभर में जिन-जिन व्यक्तियों के पास टेलीफोन है उनको यह पुस्तक निःशुल्क भेजने की दृढ़ इच्छा उन्होंने व्यक्त की है। उक्त पुस्तक की एक-एक प्रति वे श्रीमती इंदिरा गाँधी और शेख मुजीबुर्रहमान को भेज चुके हैं। दुनिया भर में करोड़ों टेलीफोन होंगे-इस प्रकार करोड़ों की संख्या में बाईबिल का निःशुल्क वितरण कोई सामान्य बात नहीं है। इतनी भारी संख्या में पुस्तक का छपना करोड़ों रुपये से ही सम्भव होगा और यह धन उन्हें अमरीका आदि देशों से मिलेगा। गत वर्ष इसी कार्य के लिये उन्होंने अमरीका यूरोप से ३५ लाख डालर एकत्र किये थे। यह पुस्तक अनेक भाषाओं में छप चुकी है। इसका अंग्रेजी संस्करण हमने 'विश्व पुस्तक प्रदर्शनी' में देखा था जिसका आकर्षक आवरण, उत्तम छपाई व अच्छा कागज था और बरबस ही ग्राहकों का ध्यान इस ओर खिंच जाता था। किसी एक ही व्यक्ति की ईमानदारी व कर्त्तव्य निष्ठा पर इतनी अगाध श्रद्धा रखते हुए धनादि की जनता द्वारा सहायता देना कम ही देखने में आता है। चूंकि ईसाइयों की बाइबिल में अटूट आस्था है इसलिये वे इसके प्रचार-प्रसार को अपना ही कार्य समझ कर इसके लिये हर प्रकार की सहायता देने का प्रयास करते हैं। काश ! इसी प्रकार की भावना हमारे हृदय व मस्तिष्क को आन्दोलित कर पाती।

११—प्रच्छन्न ईसाई-संघटन

'दी वोईस आफ दी मारटयरस' नामक संस्था का उल्लेख हम गत उपशीर्षक के अन्तर्गत कर चुके हैं, जिसकी स्थापना रूमानिया के वूमरेण्ड महोदय ने की है और 'कम्युनिष्ट विरोधी अभियान' की आड़ में ईसाइयत का प्रचार किया जा रहा है। इसी प्रकार का एक अन्य संघटन भी सक्रिय है जो मम्युनिस्ट विरोधी आन्दोलन को जन्म देकर ईसाइयत का प्रचार कर रहा है इसका नाम मारेल रिआर्मामेंट है जिसकी स्थापना १९५३ में भारत में हुई। अमरीका से प्रतिवर्ष करोड़ों रुपया इस संस्था को दान स्वरूप मिलता है। इस संस्था का मुख्यालय पश्चिमी जर्मनी में है। १९५४ में इस संघटन का एक प्रतिनिधि मण्डल भारत सरकार का अतिथि बनकर आया था। कान्स्टीट्यूशन क्लब व रीगल सिनेमा में महीनों ये लोग अपना जश्न मनाते रहे। अनेक नवयुवक इन रंगीले कार्यक्रमों से प्रभावित हुए और इसके सदस्य बने। खुले रूप में ईसाइयत के बारे में उन्होंने कुछ भी प्रचार नहीं किया लेकिन यह सब ईसाइयत के लिये ही हो रहा था। अब इस संघटन की महानगरों में शाखाएं स्थापित हो चुकी हैं। छोटे-छोटे नगरों में भी इसकी उपशाखाएं खोलने के प्रयास हो रहे हैं। इसके सदस्यों को प्रचारार्थ या भ्रमणार्थ विदेश यात्रा पर संघटन के व्यय पर ही भेजा जाता है। विदेश-यात्रा का प्रलोभन भारतीय नवयुवकों का हृदय डुला देता है और वे अपने को ईसाइयत के चंगुल में फँसा पाते हैं।

'यंग मेन क्रिश्चियन एसोसिएशन' और 'यंग वूमैन क्रिश्चियन एसोसिएशन' ये दोनों ही संघटन सेवा के आधार पर अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर स्थापित किये गये थे। भारत में भी अनेक नगरों में इनकी शाखाएं स्थापित हो चुकी हैं। आरम्भ में इन संस्थाओं ने प्रशसनीय कार्य किया जिसमें धर्मप्रचार की गंध न थी लेकिन अब तो इनकी काया ही पलट हो रही है। अब इन शाखाओं को प्रचार-केन्द्र बनाने के प्रयास होने लगे है। इन संघटनों के क्लबों तथा होटलों में और अन्य समारोहों व आयोजनों में खुले रूप से ईसाइयत का निनाद सुनाई पड़ता है। सुशिक्षित लोगों का यह समुदाय बरबस ही नौजवानों का हृदय मोड़ लेता है। इसके भव्य समारोहों में एक बार जाने की देर है कि फिर जीवन भर यह चस्का जाता नहीं। पाश्चात्य ढंग की बोल-चाल खान-पान रहन-सहन में जो आधुनिकता और प्रगति और समृद्धि के दर्शन पाते हैं वे नवयुवक हजारों की संख्या में इन संघटनों के सदस्य प्रतिवर्ष बनते जा रहे हैं। धीरे-धीरे इन नई भेड़ों के जिस्म पर ईसाइयत की ऊन बढ़ने-फूलने लगती है।

'यूनाइटेड स्टेट एज्युकेशनल फोण्डेशन इन इण्डिया' आदि प्रच्छन्न ईसाई संघटनों का उल्लेख हम गत उपशीर्षक के अन्तर्गत कर चुके हैं। आध्यात्मिक शिविरों की चर्चा भी हमने गत पंक्तियों में की है। निर्मला-केनेडी-सेण्टर का वर्णन भी हमने किया था। ये सभी प्रच्छन्न ईसाई संघटन हैं जो दिखाई देने में भले प्रतीत होते हैं लेकिन उनका उद्देश्य भयानक है जो भारतीयता को नष्ट करके रहेगा। इन सब की चर्चा चूंकि हम पहले ही कर चुके हैं सो यहां अधिक लिखना अपेक्षित नहीं।

(क्रमशः)

मन के सम्बन्ध में कुछ विचार

(आचार्य प्रियव्रत वेद वाचस्पति, भूतपूर्व उपकुलपति, कांगड़ी विश्वविद्यालय)

१—आर्यमर्यादा के पिछले कई अङ्कों में कई आर्य विद्वानों के मन के सम्बन्ध में विचार प्रकाशित हुए हैं। प्रश्न यह है कि मन आत्मा से पृथक् है तो उसका स्वरूप क्या है। पुराने सभी दर्शनकारों ने मन को आत्मा से पृथक् माना है और उसे जड़ माना है। ऋषि दयानन्द ने भी मन को आत्मा से भिन्न और जड़ ही माना है।

२—आर्यमर्यादा में जो विचार चल रहा है उसमें श्री स्वामी रामेश्वरानन्द जी महाराज का मत है कि मन आत्मा से भिन्न नहीं है। मन आत्मा के ही मनन अर्थात् चिन्तन, विचार और संकल्प-विकल्प करने वाले गुण का नाम है। इस प्रकार मन आत्मा का ही एक गुण या शक्ति है और उसे एक प्रकार से आत्मा ही कहा जा सकता है। आत्मा से भिन्न मन नामक पदार्थ की सत्ता स्वामी रामेश्वरानन्द जी महाराज नहीं मानते। मेरा अपना विचार भी वही है जो कि आदरणीय स्वामी जी का है।

३—दर्शनकारों ने एक अन्तरिन्द्रिय या अन्तःकरण के रूप में मन की जो कल्पना की है उसके दो हेतु है। एक तो यह कि दर्शनकार आत्मा को विभु मानते हैं। विभु आत्मा का चक्षु आदि सभी इन्द्रियों के साथ सम्बन्ध है। पर आत्मा को सभी इन्द्रियों के विषय का ज्ञान एक साथ नहीं होता। उसे बारी-बारी से इन इन्द्रियों के विषय का ज्ञान होता है। इसका कोई कारण होना चाहिए। वह कारण है मन। मन जब किसी इन्द्रिय के साथ संयुक्त होकर आत्मा के साथ संयुक्त होता है तभी आत्मा को उस इन्द्रिय के विषय का ज्ञान होता है। मन अणु है वह पर्याय या बारी-बारी से इन्द्रियों के साथ सयुक्त होता है। इसी कारण विभु आत्मा को विभिन्न इन्द्रियों के विषयों का ज्ञान पर्याय से होता है। मन को पृथक् मानने में दूसरा हेतु दिया जाता है कि बाह्य विषयों के ज्ञान के लिए तो बाह्यकरण अर्थात् चक्षु आदि बाह्य इन्द्रियां हैं, इसी प्रकार सुख, दुःख, काम-द्वेष, इच्छा, स्मृति आदि आन्तरिक विषयों के ज्ञान के लिए कोई अन्तःकरण या आन्तरिक इन्द्रिय भी होनी चाहिए। वह अन्तःकरण या आन्तरिक इन्द्रिय मन है। सुख-दुःख आदि के अनुभव काल में जब मन आत्मा के साथ संयुक्त होता है तभी आत्मा को इनका अनुभव होता है जैसेकि बाह्य इन्द्रियों के मन द्वारा आत्मा के साथ सयुक्त होने पर आत्मा को बाह्य विषयों का ज्ञान होता है।

४—आत्मा के सम्बन्ध मे ऋषि दयानन्द की मान्यता दूसरे दर्शनकारों से भिन्न है। वे आत्मा को विभु नहीं मानते। वे आत्मा को अणु मानते हैं। और साथ ही वे आत्मा को चेतन मानते हैं और उसे सभी प्रकार की मानसिक शक्तियों से युक्त मानते हैं। ऋषि ने लिखा है कि मोक्ष में सूक्ष्म शरीर, जिसमें मन भी एक घटक के रूप में रहता है, आत्मा के साथ नहीं रहता। केवल आत्मा की अपनी स्वाभाविक शक्तियाँ ही मोक्ष में आत्मा के साथ रहती हैं। मन के बिना ही आत्मा अपनी इन स्वाभाविक शक्तियों के द्वारा मोक्ष के सुख को भोगता है, लोक लोकान्तरों में विचरण करता है और इच्छानुसार अनेक प्रकार के विषयों का ज्ञान और अनुभव करता रहता है।

५—जब आत्मा अणु है तो इस तर्क में कोई बल नहीं रह जाता कि क्योंकि आत्मा को इन्द्रियों के विषय का ज्ञान पर्याय से होता है इस लिए मन की कल्पना करनी चाहिए। आत्मा स्वयं अणु है और उसमें अपनी गति भी है। वह जब जिस इन्द्रिय के विषय को ग्रहण करना चाहता है तभी उस इन्द्रिय के साथ संयुक्त होकर उस इन्द्रिय के विषय को ग्रहण कर लेता है। इसमें मन को बीच में लाने की कोई आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। मन स्वयं तो चेतन है नहीं, वह तो जड़ है। उसका काम तो इन्द्रियों को आत्मा के साथ जोड़ना मात्र है। इन्द्रियों के विषयों का ज्ञान तो चेतन आत्मा अपनी स्वाभाविक शक्ति के कारण करता है। आत्मा को चेतन और अणु मानने पर मन नामक एक जड़ पदार्थ को अलग से मानने की आवश्यकता नहीं रह जाती। इसी भाँति सुख-दुःख आदि आन्तरिक विषयों के अनुभव के लिए भी अलग से एक जड़ पदार्थ मन की कल्पना करने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। सुख-दुख आदि की अनुभूतियाँ आत्मा की अपनी अनुभूतियाँ हैं। इन्हें मन तो अनुभव करता नहीं, आत्मा ही इन्हें अनुभव करता है। चेतन आत्मा अपनी स्वाभाविक शक्ति के कारण इनका अनुभव करता है। अतः इन अनुभूतियों के लिए आत्मा से भिन्न मन की कल्पना करने की क्या आवश्यकता है?

६—श्री स्वामी रामेश्वरानन्द जी महाराज का कहना है कि पुराने दर्शनकारो ने आत्मा से भिन्न एक जड़ मन की भी कल्पना कर रखी है, उसी के प्रभाव में आकर ऋषि दयानन्द ने भी आत्मा से भिन्न एक जड़ मन को मान लिया है। मेरे विचार में भी कुछ ऐसी ही बात लगती है। जब ऋषि आत्मा को विभु न मानकर अणु मानते है और उसे चेतन एवं सब प्रकार की स्वाभाविक मानसिक शक्तियों से युक्त मानते हैं तो फिर अलग से एक जड़ पदार्थ मनको मानने की आवश्यकता नहीं रह जाता।

७—जैसा कि श्री स्वामी रामेश्वरानन्द जी महाराज का मत है, मन को आत्मा का हो एक गुण या शक्ति मानना चाहिए। और वेदादि शास्त्रों में जहाँ-जहाँ मन शब्द का प्रयोग हुआ है। वहाँ उसका अर्थ आत्मा का मनन गुण या इस गुण से उपलक्षित आत्मा करना चाहिये। इस प्रसग में श्री स्वामी रामेश्वरानन्द जी महाराज ने वेद के शिवसङ्कल्प सूक्त का उल्लेख करते हुए लिखा है कि उसमें प्रयुक्त मन शब्द का अर्थ जड़ मन नहीं हो सकता। वहाँ उसका अर्थ मनन गुण वाला आत्मा ही हो सकता है, जड़ मन नहीं। शास्त्रार्थ महारथी श्री पं० ओम्प्रकाश जी शास्त्री ने भी अपने लेख में शिवसङ्कल्प सूक्त के मन शब्द के सम्बन्ध में यही बात कही है। शिवसङ्कल्प सूक्त के मन्त्रों में वर्णित मन की महिमा को देखकर आपाततः यही लगता है कि यहां मन का अर्थ चेतन आत्मा है, जड़ मन नहीं। अनेक आर्य विद्वान् यहाँ मन का अर्थ आत्मा ही लेते हैं। इस प्रसङ्ग में माननीय श्री पं० दीनानाथ जो सिद्धान्तालङ्कार ने अपने लेख में श्री पं० ओम्प्रकाश जी शास्त्री के मत की आलोचना करते हुए लिखा है कि इस सूक्त के मन्त्रों की व्याख्या करते हुए ऋषि दयानन्द ने वहाँ प्रयुक्त मन शब्द का अर्थ मन ही किया है। उनका यह लिखना सत्य है। ऋषि ने वहाँ मन शब्द का अर्थ मन ही किया है। परन्तु हमें यह भी ध्यान में रखना होगा कि उस सूक्त के वर्णन जड़ मन पर नहीं घट सकते। तो इसका समाधान कैसे होगा? हमारे विचार में यदि शिवसङ्कल्प सूक्त के मन का अर्थ आत्मा का मननात्मक गुण या सामर्थ्य कर लिया जाये तो ऋषि का किया हुआ मन शब्द का अर्थ मन भी बना रहता है, और, जिन विचारकों का यह मत है कि सूक्त में वर्णित बातें जड़ मन में नहीं घट सकती उनका भी समाधान हो जाता है। मन का अर्थ आत्मा का मननात्मक गुण या सामर्थ्य कर लेने पर इस सूक्त के मंत्रों की ऋषि द्वारा की गई व्याख्या की भली भाँति सगति लग जाती है। और तब ऋषि के भाष्य में जड़ मन को स्वीकार न करने वाले विचारकों के मत में परस्पर कोई विरोध नहीं रह जाता। स्थान और समय के अभाव के कारण यहाँ इस सूक्त के ऋषि के भाष्य के मन शब्द की आत्मा के मननात्मक गुण से आधार पर व्याख्या और संगति नहीं दिखायी जा सकती। कोई भी विचारशील पाठक वैसा कर सकता है। ऋषि ने वेद भाष्य में कई स्थानों पर मन शब्द का अर्थ "मनन शोलं सङ्कल्प विकल्पात्मकम्" और "शुद्धविज्ञानम्", आदि भी किया है। "मननशीलता और संकल्पविकल्पात्मकता" तो चेतन आत्मा के ही गुण हो सकते हैं जड़ मन के नहीं। इसी भाँति "शुद्धविज्ञान वाला" तो चेतन आत्मा ही हो सकता है जड़ मन नहीं।

८—इस प्रसङ्ग में हम अपना एक स्वतन्त्र निजी विचार भी आर्य विद्वानों के विचारार्थ उपस्थित् करना चाहते हैं। जैसा कि ऊपर की पंक्तियों में दिखाया गया है आत्मा को अणु और चेतन स्वीकार करने की अवस्था में प्रचलित धारणा वाले मन को मानना तो अनावश्यक प्रतीत होता है। इन्द्रियों और आत्मा को जोड़ने के लिए करण या साधन के रूप में मन के स्थान में मस्तिष्क को स्वीकार करना चाहिए। इन्द्रियों के द्वारा जब कोई विषय देखा या जाना जाता है। तो यह प्रक्रिया होती है कि अपने ऊपर पड़ने वाले विषयों के प्रभाव को इन्द्रियाँ अपने को

शेष पृ० ११ पर

महर्षिदयानन्द के राजनीतिक भाव

(जगदेवसिंह सिद्धान्ती द्वारा संकलित)

(अ) यजुर्वेद अध्याय ९ के—

(६३) न्याय से प्रजा का पालन करना और विद्या का दान करना ही राजपुरुषों का यज्ञ करना है ॥ मं० १

(६४) राजा को चाहिए कि अपने नौकर प्रजा पुरुषों को शरीर और आत्मा के बल को बढ़ाने के लिए ब्रह्मचर्य ओषधि विद्या और योग्याभ्यास के सेवन में नियुक्त करे, जिससे सब मनुष्य रोगरहित होकर पुरुषार्थी होवें ॥ मं० ३

(६५) हे राज सम्बन्धी स्त्री पुरुषो ! आप लोग अभिमान रहित और निर्मत्सर अर्थात् दूसरों की उन्नति देख कर प्रसन्न होने वाले होकर विद्वानों के साथ मिल के राज धर्म की रक्षा किया करो तथा विमानादि यानों में बैठ के अपने अभीष्ट देशों में जा जितेन्द्रिय हो और प्रजा को निरन्तर प्रसन्न करके श्रीमान् हुआ कीजिये ॥ म० ८

(६६) राजा को चाहिए कि शरीर और आत्मा के पूर्ण बल को पा और शत्रुओं के जीतने में श्येन पक्षी और वायु के तुल्य शीघ्रकारी हो के, अपने सब सभासद् सेना के पुरुष और सब नौकरों को अच्छे शिक्षित बल तथा सुख से युक्त कर, धर्मात्माओं की निरन्तर रक्षा करे और सब राजा प्रजा के पुरुषों को चाहिए कि इस प्रकार के हो शत्रुओं को जीत के परस्पर प्रसन्न रहें ॥ मं० ९

(६७) राजा और प्रजा के सब पुरुषों को चाहिए कि परस्पर विरोध को छोड़ ईश्वर, चक्रवर्त्ति राजा और समग्र विद्याओं का सेवन करके, सब उत्तम सुखों को प्राप्त हों और दूसरों को प्राप्त करावे ॥ मं० १०

(६८) राजा को ऐसा प्रयत्न करना चाहिए कि जिससे राज्य में वेद विद्या का प्रचार और शत्रुओं पर विजय सुगम हो और उपदेशक तथा योद्धा लोग ऐसा प्रयत्न करें कि जिससे राज्य में वेदादि शास्त्र पढ़ने पढ़ाने की प्रवृत्ति और अपना राजा विजय रूपी आभूषणों से सुशोभित होवे कि जिससे अधर्म का नाश और धर्म की वृद्धि अच्छे प्रकार स्थिर होवे ॥ मं० ११

(६९) राजा, उसके मन्त्री नौकर और प्रजा पुरुषों को उचित है कि अपनी प्रतिज्ञा और वाणी को कभी असत्य होने न दें, जितना कहें उतना ठीक-ठीक करें। जिसकी वाणी सब काल में सत्य होती है, वही पुरुष राज्याधिकार के योग्य होता है। जब तक ऐसा नहीं होगा तब तक उन राजा और प्रजा के पुरुषों का विश्वास नहीं हो सकता और वे सुखों को नहीं बढ़ा सकता म० १२

(७०) योद्धा लोग सेनाध्यक्ष के सहाय और रक्षा से ही शत्रुओं को जीत और उनके मार्गों को रोक सकते है, और इन अध्यक्षादि राजपुरुषों को चाहिए कि जिस दिशा से शत्रु लोग उपाधि करते हों, वहीं जाके उनको वश में कर ॥ मं० १३

(७१) सेनापति से रक्षा को प्राप्त हुए वीर पुरुष घोड़ों के समान दौड़ते हुए शत्रुओं को शीघ्र मार सकते हैं, सेनापति उत्तम कम करने हारे अच्छे शिक्षित वीर पुरुषों के साथ ही युद्ध करता हुआ प्रशंसित होता हुआ विजय को प्राप्त होता है, अन्यथा पराजित ही होता है ॥ मं० १४

(७२) जो वीर पुरुष नीलकण्ठ, श्येन पक्षी और घोड़े के समान पराक्रमी होते है, उनके शत्रु लोग सब ओर से विलीन हो जाते हैं ॥ मं० १५

(७३) श्रेष्ठ प्रजा पुरुषों को पालने में तत्पर और रोगों के समान शत्रुओं के नाश करने हारे राजपुरुष ही सब को सुख दे सकते हैं, अन्यथा नहीं ॥ मं० १६

(७४) जो ये राजपुरुष हम लोगों से कर लेते हैं, वे हमारी निरन्तर रक्षा करें, नहीं तो न लें, हम भी उनको कर न देवें। इस कारण प्रजा की रक्षा और दुष्टों के साथ युद्ध करने के लिये ही कर देना चाहिए, अन्य किसी प्रयोजन के लिए नहीं यह निश्चित है ॥ मं० १७

(७४) राजपुरुषों को चाहिए कि वेदादि शास्त्रों को पढ़ें और सुन्दर शिक्षा से ठीक ठीक बोध को प्राप्त होकर, धर्मात्मा विद्वानों के मार्ग से चलें। अन्य मार्ग से नहीं, तथा शरीर और आत्मा का बल बढ़ने के लिये वैद्यक शास्त्र से परीक्षा किये और अच्छे प्रकार पकाये हुए अन्नादि से युक्त रसों का सेवन कर, प्रजा की रक्षा से ही आनन्द को प्राप्त होवे। और प्रजा पुरुषों को चाहिए कि अपने धर्मों से इन राजपुरुषों को निरन्तर प्रसन्न रक्खें ॥ मं० १८

(७५) शिष्ट मनुष्यों को योग्य है कि सब विद्याओं की चतुराई रोगरहित और सुन्दर गुणों से शोभायमान पुरुष को राज्याधिकार देवे। उसकी रक्षा करने वाला वैद्य ऐसा प्रयत्न करे कि जिससे इसके शरीर बुद्धि और आत्मा में रोग का प्रवेश न हो। इसी प्रकार राजा और वैद्य दोनों सब मंत्री आदि भृत्यों और प्रजा जनों को रोगरहित करे। जिससे राज्य के सज्जनों के पालने और दुष्टों के ताड़ने में प्रयत्न करते रहे, राजा और प्रजा के पुरुष परस्पर पिता पुत्र के समान सदा वर्तें ॥ मं० २३

(७६) हे मनुष्य लोगो ! मूल राज्य के बीच सनातन राजनीति को जानकर जो राज्य की रक्षा करने में समर्थ से उसी को चक्रवर्त्ती राजा बनाओ और जो कर न देने वालों से कर दिलावे वह मन्त्री होने के योग्य होवे, जो शत्रुओं को बान्धने में समर्थ हो उसे सेनापति नियुक्त करो और जो विद्वान् धार्मिक हो उसे न्यायाधीश वा कोषाध्यक्ष करो ॥ म० २४

(७७) ईश्वर सबको उपदेश करता है कि हे मनुष्य लोगो कि तुम जो प्रशसित गुण कर्म स्वभाव वाला राज्य की रक्षा करने में समर्थ हो उसको सभाध्यक्ष करके अल्पनीति से चक्रवर्त्ती राज्य करो ॥ म० २५

(७८) ईश्वर सबसे कहता है कि राजा आप धर्मात्मा होकर सब न्याय के करने वाले मनुष्यों को विद्या धर्म बढ़ाने के लिए निरन्तर प्रेरणा करे जिससे विद्या धर्म की बढ़ती से अविद्या और अधर्म दूर हो ॥ म० २७

(७९) ईश्वर उपदेश करता है कि राजा प्रजा और सेना के मनुष्यो से सदा सत्य प्रिय वचन कहे, उनको धन दे, उनसे धन ले, शरीर और आत्मा का बल बढ़ा और नित्य शत्रुओं को जीत कर धर्म से प्रजा को पाले ॥ मं० २८

(८०) मनुष्यों को योग्य है कि ईश्वर में प्रेमी, बल पराक्रम पुष्टियुक्त चतुर, सत्यवादी, जितेन्द्रिय, धर्मात्मा, प्रजा पालन में समर्थ, विद्वान् को अच्छे प्रकार परीक्षा कर सभा का स्वामी करने के लिए अभिषेक करके राजधर्म की उन्नति अच्छे प्रकार नित्य किया करे ॥ मं० ३०

(८१) जो राजा सब प्रजाओं को अच्छे प्रकार बढ़ाले तो उसको भी प्रजा जन क्यों न बढावे, और जो ऐसा न करे तो उसको प्रजा भी कभी न बढ़ावे ॥ मं० ३१

(८२) जो राजा सबका पोषक, जिसकी सब दिशाओं में कीर्त्ति सभा के कामों में चतुर, पशुओं का रक्षक और वेदों का ज्ञाता हो उसी को प्रजा और सेना के सब मनुष्य अपना अधिष्ठाता बनाकर उन्नति देवें ॥ मं० ३२

(८३) राजपुरुषों को चाहिए कि सब प्राणियों मे मित्रता से अच्छे प्रकार शिक्षा कर इन प्रजा जनों को उत्तम गुणयुक्त विद्वान् करे। जिसमे ये ऐश्वर्य के भागी होकर राजभक्त हों ॥ मं० ३३

(८४) हे राजन् सभाध्यक्ष ! जब आप सब ओर से उत्तम विद्वानो से युक्त होकर सब प्रकार की शिक्षा को प्राप्त, सभा का करनेहारा, सेना का रक्षक, उत्तम सहाय से युक्त होकर सनातन वेदोक्त राजधर्म नीति से प्रजा का पालन करे तो इस लोक और परलोक में सुख ही को प्राप्त होवे जो इस कर्म से विरुद्ध करेगा तो तुझको भी न होगा कोई भी मनुष्य मूर्खों के सहाय से सुख की वृद्धि नहीं कर सकता और न कभी विद्वानों के अनुसार चलने वाला मनुष्य सुख को छोड़ देता है, इससे राजा सर्वदा विद्या धर्म और अल्प विद्वानो के सहाय से राज्य की रक्षा किया करे। जिसकी सभा वा राज्य में पूर्ण विद्या युक्त धार्मिक मनुष्य सभासद् वा कर्मचारी होते हैं और जिसकी सभा वा राज्य में मिथ्यावादी, व्यभिचारी, अजितेन्द्रिय, कठोर वचनों के बोलने वाले, अन्यायकारी, चोर और डाकू आदि नहीं होते, और आप भी इस प्रकार का धार्मिक होता है, वही पुरुष चक्रवर्त्ती राज्य करने के योग्य होता है, इससे विरुद्ध नहीं ॥ मं० ३५

(शेष पृ० १० पर)

(पृ० ९ का शेष)

(८५) हे राजा आदि मनुष्यो ! तुम लोग धार्मिक सुशील विद्वान् होकर सब दिशाओं में स्थित, सब विद्याओं के जानने वाले आप्त विद्वानों को परीक्षा और सत्कार के लिए सब विद्याओं को प्राप्त होवेंगे, तब ये तुम्हारे समीप आके तुम्हारे साथ सङ्ग, करके धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि करावेंगे। जो देश देशान्तर द्वीप द्वीपान्तर में जाकर विद्या, नम्रता, अच्छी शिक्षा और काम की चतुराई को ग्रहण करते हैं, वे ही सबको अच्छे सुख प्राप्त कराने वाले होते हैं ॥ मं० ३६

(८६) राजा आदि सभा सेना के स्वामी लोग अपनी दृढ़ विद्या और अच्छी शिक्षा से युक्त सेना से स्वयं अजय होकर शत्रुओं से जीतते हुए भूमि पर उत्तम यश का विस्तार करें ॥ मं० ३७

(८७) प्रजा जनों को चाहिये कि अपने बचाव और दुष्टों के निवारणार्थ विद्या और धर्म की प्रवृत्ति के लिये अच्छे स्वभाव विद्या और धर्म के प्रचार करने हारे वीर जितेन्द्रिय सत्यवादी सभा के स्वामी राजा का स्वीकार करें॥ मं० ३९

(८९) हे राजा और प्रजा के मनुष्यो ! तुम जो जो विद्वान् माता और पिता के अच्छे प्रकार सुशिक्षित, कुलीन, बड़े उत्तम-उत्तम गुण कर्म और स्वभाव युक्त, जितेन्द्रियादि गुण युक्त, ४८ वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य से पूर्ण विद्या से सुशील, शरीर और आत्मा के बलयुक्त, धर्म से प्रजा का पालक, प्रेमी, विद्वान् हो, उसको सभापति राजा मानकर चक्रवर्त्ती राज्य का सेवन करें। मं० ४०

(फ) यजुर्वेद अध्याय १० के—

(९०) मनुष्यों को चाहिए कि विद्वानों के सहाय से जल वा प्राणों की परीक्षा करके उससे उपयोग लेवें। शत्रुओं को निवृत्त करके प्रजा के साथ गुणों के समान प्रीति से वर्त्तें, और इन जल तथा प्राणों से उपकार लेवें ॥ मं० १

(९१) जो राजपुरुष दुष्ट प्राणियों को जाति, प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष श्रेष्ठ पुरुषों का सत्कार करके राज्य के अधिकार और शोभा को देता है वही चक्रवर्त्ती राजा होने के योग्य है ॥ मं० २

(९२) जो राज्य के अधिकारी पुरुष और उनकी स्त्रियां हों, उनको चाहिए कि अपनी उन्नति के लिए दूसरों की उन्नति को सहके, सब ममुष्यों को राज्य के योग्य करें और आप भी चक्रवर्त्ती राज्य का भोग किया करें ऐसा नहीं कि ईर्ष्या से दूसरों की हानि करके अपने राज्य का भला करें ॥ मं० ३

(९३) हे स्त्री पुरुषो ! जो सूर्य के समान न्याय और विद्या का प्रकाश कर सबको आनन्द देने, गौ आदि पशुओं की रक्षा करने, शुभ गुणों से शोभायमान बलवान् अपने तुल्य स्त्रियों से विवाह और संसार का पोषण करने वाले स्वाधीन हैं, वे ही औरों के लिये राज्य देने और अन्य सेवन करने को समर्थ होते हैं, अन्य नहीं ॥ मं० ४

(९४) हे राजा आदि पुरुषो ! तुम लोग इस जगत् में कन्याओं को पढ़ाने के लिए शुद्ध विद्या की परीक्षा करने वाली स्त्री लोगों को नियुक्त करो। जिससे ये कन्या लोग विद्या और शिक्षा को प्राप्त होके चुनाव हुई प्रिय वर पुरुषों के साथ स्वयंवर विवाह करके वीर पुरुषों को उत्पन्न कर ॥ मं० ६

(९५) राजा को चाहिये कि अपने राज्य में प्रयत्न के साथ सब स्त्रियों को विदुषी और उनसे जो उत्पन्न हुए बालक हों, उनको विद्यायुक्त धाइयों के आधीन करे कि जिससे किसी के बालक विद्या अच्छी शिक्षा के बिना न रहें, और स्त्री भी निर्बल न हो ॥ मं० ७

(९६) जो राजा विद्या को प्राप्त हुआ क्षत्रिय कुल को बढ़ावे, उसका तिरस्कार शत्रुजन कभी नहीं कर सकते ॥ मं० ११

(९७) जो राजपुरुष राजनीति से वैश्यों की उन्नति करें, वे ही लक्ष्मी को प्राप्त होवें ॥ मं० १२

(९८) हे पुरुषो ! जैसा धार्मिक विद्वान् अपने को जो इष्ट है उसी को प्रजा के लिये भी इच्छा करें जैसा प्रजा के जन राजपुरुषों की रक्षा करें वैसे राज पुरुष भी प्रजाजनों की निरन्तर रक्षा करें ॥ मं० १५

(९९) मनुष्यों को चाहिये कि जो शान्ति आदि गुण युक्त जितेन्द्रिय विद्वान् पुरुष हो, उसको राज्य का अधिकार देवें और उस राजा को चाहिये कि राज्याऽधिकार को प्राप्त हो अति श्रेष्ठ होता हुआ विद्या और धर्म आदि के प्रकाश करने हारे प्रजा पुरुषों को निरंतर बढ़ावें ॥ मं० १७

(१००) जो उपदेशक और राजपुरुष सब प्रजा की उन्नति किया चाहें तो प्रजा के मनुष्य राजा और राजपुरुषों की उन्नति करने को इच्छा क्यों न करें। जो राजपुरुष और प्रजापुरुष वेद और ईश्वर की आज्ञा को छोड़ के अपनी इच्छा के अनुकूल प्रवृत्त होवें, तो इनकी उन्नति का विनाश क्यों न हो ॥ मं० १८

(१०१) विद्वानों को चाहिये कि राजा और प्रजा पुरुषों को धर्म और अर्थ की सिद्धि के लिए सदा शिक्षा देवें। जिससे वे किसी को पीड़ा देने, रूप राजनीति से विरुद्ध कर्म न करें। सब प्रकार बलवान् होके शत्रुओं को जीतें जिससे कभी धन-सम्पत्ति की हानि न हो ॥ मं० २१

(१०२) राजा और प्रजा के पुरुषों को योग्य है कि राजा के साथ अयोग्य व्यवहार न करें तथा राजा भी इन प्रजाजनों के साथ अन्याय न करो वेद और ईश्वर की आज्ञा का सेवन करते हुए सब लोग एक सवारी एक बिछोने पर बैठें और एक सा व्यवहार करने वाले हों और कभी आलस्य प्रमोद वा ईश्वर और वेदों की निन्दा रूप नास्तिकता में न फंसें ॥ मं० २२

(१०३) राजा और राज पुरुषों को प्रजा के हित, प्रजा पुरुषों को राज पुरुषों के सुख और सब की उन्नति के लिए परस्पर वर्तना चाहिये ॥ मं० २३

(१०४) राजाओं की स्त्रियों को चाहिए कि सब स्त्रियों के लिए न्याय और अच्छी शिक्षा देवे और स्त्रियों का न्याय आदि पुरुष न करें क्योंकि पुरुषों के सामने लज्जित और भययुक्त होकर यथावत् बोल वा पढ़ नहीं सकतीं ॥ मं० २६

(१०५) जैसे चक्रवर्त्ति राजा चक्रवर्त्ती राज्य की रक्षा के लिए न्याय की गद्दी पर बैठ के पुरुषों का ठीक ठीक न्याय करे, वैसे ही नित्य प्रति राणी लोग स्त्रियों का न्याय करें। इससे क्या आया कि जैसा नीति विद्या और धर्म से युक्त पति हो, वैसा ही स्त्री को भी होना चाहिए ॥ मं० २७

(१०६) सब मनुष्यों को चाहिए कि जैसा पुरुष सब दिशाओं में कीर्त्ति युक्त, वेदों को जानने, धनुर्वेद और अथर्ववेद की विद्या में प्रवीण, सत्य करने और सब को सुख देने वाला धर्मात्मा पुरुष होवे, उसकी स्त्री भी वैसी ही होवे। उनको राजधर्म में स्थापन करके बहुत सुख और बहुत सी शोभा को प्राप्त हों ॥ मं० २८

(१०७) हे राजा और प्रजा के पुरुषो ! तुम लोग सूर्य और प्रसिद्ध विद्युत् अग्नि के समान वर्त्तं, पक्षपात छोड़' एक जन्म में मध्यस्थ होकर न्याय करो। जैसे यह अग्नि सूर्य के प्रकाश में और वायु में सुगन्धित द्रव्यों को प्राप्त करो, वायु जल और औषधियों की शुद्धि द्वारा सब प्राणियों को सुख देता है वैसे ही न्याय युक्त कर्मों के साथ आचरण करने वाले होके सब प्रजाओं को सुख युक्त करेगा ॥ मं० २९

(१०८) जो मनुष्य सूर्यादि गुणों से युक्त, पिता के समान रक्षा करने वाला हो वह राजा होने के योग्य है और जो पुत्र के समान वर्त्ताव करे वह प्रजा होने योग्य है ॥ मं० ३०

(१०९) जैसे खेती करने वाले लोग परिश्रम के साथ अनेक फलों को उत्पन्न और रक्षा करके भोगते और असार को फेंकते हैं और जैसे ठीक ठीक राज्य का भाग राजा को देते हैं वैसे ही राजा आदि पुरुषों को चाहिए कि अलावा परिश्रम से इनकी रक्षा न्याय के आचरण से ऐश्वर्य को उत्पन्न कर और सुपात्रों के लिये देते हुए आनन्द को भोगें ॥ ३२

(११०) दुष्टों को दण्ड और श्रेष्ठों की रक्षा के लिये ही राजा होता है। राज्य की रक्षा के बिना किसी चेष्टावान् नर की कार्य में प्रवृत्ति कभी नहीं हो सकती और न प्रजा जनों के अनुकूल हुए बिना राज्य पुरुषों की स्थिरता होती है इस लिए वन के सिंहों के समान परस्पर सहायी होके एक दूसरे की रक्षा में सहायता करते हैं। वैसे सब राजा और प्रजा के मनुष्य सदा आनन्द में रहें ॥ मं० ३३

(क्रमश:)

पृ० ४ का शेष

सम्मान प्रारम्भ से ही बस कहने भर को था। जब विवाह हुआ-तो, जो स्नेह था—उसका आधा रह गया; और प्रत्येक सन्तान के बाद और भी कम होता जाता है। माता-पिता के प्रति सम्मान और स्नेह की कड़ियाँ—प्रत्येक सन्तान के आगमन पर टूटती जाती है। दोनों पुत्रों का व्यवसाय एक—उसमें भी बटवारा हो गया और एक घर को भी बीच के दीवाल खींच कर दो में बदल दिया गया। माता-पिता स्वयं खिंचे फिरते हैं। किसी दिन एक के यहाँ भोजन करते हैं तो किसी दिन दूसरे के यहाँ। अपने जीवन की यह दशा देखकर भगतराम जी ने मन्दिर की मूर्ति के पूजा-प्रसाद का ढकोसला तो बन्द कर दिया और अपने मित्र आर्यव्रत की प्रेरणा पर आर्यसमाज मन्दिर तथा उसके सन्ध्या-यज्ञ तथा सत्संग में जाना निश्चित किया यहाँ "कर्म प्रधान विश्व रचि राखा" की वार्तायें सुनकर उनमें साहस बढ़ने लगा। वे समझने लगे कि मेरे पुत्र जो व्यवहार करते हैं उसका कारण मैं स्वयं हूं। मैंने आरम्भ से बच्चों में आर्य संस्कार नहीं डाले। अब अपने घर में भगतराम जी तो आर्य विचारों के व्यक्ति थे, किन्तु शेष सारा परिवार इससे विपरीत। भगतराम जी अपनी चरम वृद्धावस्था में जब रुग्ण हुए और उन्हें यह दिखाई देने लगा कि वे अब बचेंगे नहीं, तो एक दिन उन्होंने आर्य समाज के पुरोहित तथा श्री आर्यव्रत जी को बुलाकर लड़खड़ाती अश्रुपूरित ध्वनि में बड़ी ही हार्दिक गहराई से अपने यह अन्तिम शब्द कहे "मेरी अन्त्येष्टि वैदिक रीति के अनुसार करा देना—मैं उत्पन्न पौराणिक हुआ, किन्तु अन्त आर्य सा हो मेरा"।

श्री आर्यव्रत और उनके मित्र भगतराम जी के जीवनों से हमको तुलनात्मक उपदेश मिलता है। घोर गर्मी में यदि कोई शीतल जल के स्नान का आनन्द लेना चाहता है, और पानी केवल हाथों पर ही डालता है, तो उसे पूर्ण आनन्द नहीं मिलेगा। पूर्ण आनन्द के लिए उसे स्वयं को जल से सराबोर करना होगा। यदि जीवन रूपी वृक्ष को धर्म-जल से सिंचित करना है, तो वृक्ष की पत्तियों को भिगोने से काम नहीं चलेगा; अपितु वृक्ष की जड़ में जल का प्रवाह करना होगा। यह सही है कि आज का युग भोग प्रधान भौतिक युग है और आध्यात्मिक मान्यतायें मौन होती जा रही हैं। इस युग में भी आप अपने को सन्तुष्ट और सुखी रख सकते हैं—आर्य सत्संग एवं धर्माचरण द्वारा। अन्धकार ज्यों-ज्यों गहरा होगा, त्यों-त्यों तेज प्रकाश की आवश्यकता होगी। आखों की दृष्टि-शक्ति जिसकी जितनी मन्द होगी—उसको उतनी अधिक शक्ति का चश्मा लेना पड़ेगा। इसी प्रकार भौतिकता एवं अधार्मिकता का जितना भयंकर आक्रमण होगा; उससे बचाव के लिए उतनी ही सबल धार्मिकता का सहारा लेना होगा। श्री भगतराम जी का जीवन भी आर्यव्रत जी के समान मंगलमय आनन्दप्रद हो सकता था; यदि उन्होंने भी उसी भाँति अपने परिवार का निर्माण किया होता। आर्यव्रत जी ने प्रारम्भ में ही यजुर्वेद के १२वें अध्याय के ३९-४०वें मन्त्रों का मनन व अनुसरण किया था, जिससे वे आज भी सुखी हैं, उनका परिवार भी सुखी है, जबकि भगतराम जी इससे वंचित रह गये। आर्य सत्संगों में जाने पर यही तो वेदामृत का अमूल्य प्रसाद मिलता है।

> पुनरासद्य सदनमपश्च पृथिवीमग्ने।
> शेषे मातुर्यथोपस्थेऽन्तरस्याᳮ शिवतमः॥ ३९॥
>
> पुनरूर्जा निवर्त्तस्व पुनरग्नऽइषायुषा।
> पुनर्नः पाह्यᳮ हसः॥ ४०॥ यजुर्वेद अ० १२

इन मन्त्रों का महर्षि दयानन्द के अमूल्य शब्दों में बहुमूल्य भावार्थ पढ़िये। पुत्रों को चाहिए कि जैसे माता अपने पुत्रों को सुख देती है वैसे ही अनुकूल सेवा से अपनी माताओं को निरन्तर आनन्दित करें और माता-पिता के साथ विरोध कभी न करें और माता-पिता को भी चाहिए कि अपने पुत्रों को अधर्म और कुशिक्षा से युक्त कभी न करें।

जैसे विद्वान् माता-पिता अपने सन्तानों को विद्या और अच्छी शिक्षा से दुष्टाचारों से पृथक् रक्खें वैसे ही सन्तानों को भी चाहिए कि इन पिताओं को बुरे व्यवहारों से निरन्तर बचावें। क्योंकि इस प्रकार किये बिना कोई मनुष्य धर्मात्मा नहीं हो सकता। ●

पृ० ८ का शेष

मस्तिष्क से जोड़ने वाली नाड़ियों में एक प्रकार के स्पन्दनों के द्वारा भेजती हैं। आधुनिक मनोविज्ञान में इन नाड़ियों को सेंसरी नर्व (Sensory Nerves) कहते हैं। फिर ये नाड़ियाँ अपने इन स्पन्दनों को मस्तिष्क में भेज कर वहाँ स्पन्दन पैदा करती हैं। फिर मस्तिष्क में रहने वाला आत्मा मस्तिष्क के इन स्पन्दनों की व्याख्या करके उन्हें इन्द्रियों के रूप में समझ लेता है। जैसे कि दूरदर्शन (Television) मंत्र के दूर स्थित प्रेषक यंत्र द्वारा आकाश (Ether) में विद्युत् से पैदा किये गये रूप के स्पन्दनों या अतिसूक्ष्म अणु जैसी तरंगों को दूरदर्शन यंत्र का ग्राहक यंत्र रूप के रूप में दिखा देता है, कुछ उसी प्रकार की प्रक्रिया तब होती है जब इन्द्रियों और मस्तिष्क की सहायता से आत्मा इन्द्रियों के विषयों का ज्ञान करता है। हमें मस्तिष्क को ही ज्ञान का केन्द्र मानना चाहिए और उसी में आत्मा की स्थिति माननी चाहिए। हमारी पांचों ज्ञानेन्द्रियां मस्तिष्क के अति निकट स्थित हैं जिनको सेंसरी नर्व मस्तिष्क से जोड़ती हैं। जब हम अपनी विचार प्रक्रिया पर ध्यान देते हैं तब हमें विचार प्रक्रिया सिर में ही होती हुई प्रतीत होती है। आजकल के पाश्चात्य मनोवैज्ञानिकों और शरीर रचना तथा शरीर क्रिया विज्ञान के विद्वानों ने मस्तिष्क को ही ज्ञान का केन्द्र स्वीकार किया है। उन्होंने परीक्षणों द्वारा यह भी निश्चित कर लिया है कि मस्तिष्क का कौन सा प्रदेश किस इन्द्रिय के विषय-ज्ञान का केन्द्र है। मस्तिष्क के अमुक प्रदेश को काट दिया जाये अथवा वह किसी रोग से विकृत या नष्ट हो जाये तो अमुक इन्द्रिय के विषय का ज्ञान नहीं होगा ऐसा इन पाश्चात्य विद्वानों ने निश्चित रूप से सिद्ध कर दिया है। इस लिए हमें मस्तिष्क को ही ज्ञान का केन्द्र और उसी में आत्मा की स्थिति स्वीकार करनी चाहिए। आधुनिक पाश्चात्य विद्वानों में परीक्षण-सिद्ध अन्वेषणों के आधार पर हमें अपने पुराने प्रचलित दार्शनिक मन्तव्यों का पुनरावलोकन करते रहना चाहिए। स्मृति के सम्बन्ध में प्रचलित विचार यह है कि जब मन का जो कि अन्तःकरण है, आत्मा के साथ सम्बन्ध होता है तभी आत्मा को पूर्वानुभव की स्मृति होती है। हम देखते हैं कि आते रुग्ण होने की अवस्था में और वृद्धावस्था में स्मृति कमजोर पड़ जाती है मन को अणु और निरवयव माने तो किसी प्रकार की कमी या क्षीणता आ नहीं सकती। निरवयव आत्मा में भी किसी प्रकार की क्षीणता नहीं आ सकती। तो फिर रुग्णावस्था में और वृद्धावस्था में स्मृति दुर्बल क्यों पड़ जाती हैं? इसका समाधान मस्तिष्क को ज्ञान का केन्द्र मानने पर ही हो सकता है। जैसे रुग्णावस्था और वृद्धावस्था में सारा शरीर ही दुर्बल पड़ जाता है उसी प्रकार शरीर का अंग मस्तिष्क भी दुर्बल पड़ जाता है। मस्तिष्क के दुर्बल हो जाने के कारण उस पर पड़े हुवे पूर्वानुभव के चिह्न या संस्कार भी मन्द पड़ जाते हैं और इसी लिये उनके आधार पर आत्मा की स्मृति भी मन्द पड़ जाती है। मस्तिष्क को शरीर के भीतर होने के कारण उसे अन्तःकरण भी कहा जा सकता है और वह मन की भांति जड़ भी है। हाँ, वह अणु नहीं है प्रत्युत परिछिन्न परिमाण वाला है।

इस प्रकार जैसा कि ऊपर प्रदर्शित किया गया है प्रचलित मान्यता के अनुसार मन को मानने की तो आवश्यकता नहीं है, उसके स्थान पर इन्द्रियों और आत्मा का सम्बन्ध जोड़ने वाले माध्यम के रूप में मस्तिष्क को स्वीकार कर लेना चाहिए। ●

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब द्वारा प्रकाशित और प्रचारित वैदिक साहित्य

आर्योद्देश्य रत्नमाला

(८३) आठ प्रमाण—प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द, ऐतिह्य, अर्थापत्ति, सम्भव और अभाव ये आठ प्रमाण हैं। इन्हीं से सब सत्यासत्य का यथावत् निश्चय मनुष्य कर सकता है।

(८४) लक्षण—जिससे जाना जाय, जो कि उसका स्वाभाविक गुण है, जैसे कि रूप से अग्नि जाना जाता है, उसको लक्षण कहते हैं।

(८५) प्रमेय—जो प्रमाणों से जाना जाता है, जैसे कि आंख का प्रमेय रूप अर्थ है जो कि इन्द्रियों से प्रतीत होता है, उसको प्रमेय कहते हैं।

(८६) प्रत्यक्ष—जो प्रसिद्ध शब्दादि पदार्थों के साथ श्रोत्रादि इन्द्रिय और मन के निकट सम्बन्ध से ज्ञान होता है; उसको प्रत्यक्ष कहते हैं।

(८७) अनुमान—किसी पूर्व दृष्ट पदार्थ के एक अंग को प्रत्यक्ष देखने के पश्चात् उसके अदृष्ट अंगों का जिससे यथावत् ज्ञान होता है; उसको अनुमान कहते हैं।

(८८) उपमान—जैसे किसी ने किसी से कहा कि गाय के तुल्य नील गाय होती है; उसको उपमान कहते हैं।

(८९) शब्द—जो पूर्ण आप्त परमेश्वर और आप्त मनुष्य का उपदेश है; उसी को शब्द प्रमाण कहते हैं।

—(महर्षि दयानन्द)

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के लिए जगदेवसिंह सिद्धान्ती शास्त्री द्वारा सैनी प्रिंटर्स पहाड़ी धीरज, देहली में मुद्रित और १५ हनुमान् रोड, नई दिल्ली—१ से प्रकाशित

२७ कार्तिक सं० २०३० वि०, दयानन्दाब्द १४६,
तदनुसार ११ नवम्बर १९७३ रविवार
सृष्टि सं०-१९६०८५३०७३
वर्ष ५ वार्षिक शुल्क स्वदेश में १०) रुपये
अंक ५० „ „ विदेश में २०) रुपये
एक प्रति का मूल्य ००-२० पैसे

सम्पादक—जगदेवसिंह सिद्धान्ती शास्त्री पूर्वलोकसभा सदस्य (फोन ५१२१६३)

वेदमन्त्रार्थ-प्रवचन

पुनस्तमेव विषयमाह ।।

फिर उसी विषय का उपदेश अगले मन्त्र में किया गया है ।।

कुह यान्ता सुष्टुतिं काव्यस्य दिवो नपाता वृषणा शयुत्रा ।
हिरण्यस्येव कलशं निखातमुदूपथुर्दशमे अश्विनाहन् ।।

—ऋ० १.११७.१२

पदार्थः—(कुह) कुत्र (यान्ता) गच्छन्तौ (सुष्टुतिम) प्रशस्तां स्तुतिम् (काव्यस्य) कवेः कर्मणः (दिवः) विज्ञानयुक्तस्य (नपाता) अविद्यमानपतनौ (वृषणा) श्रेष्ठौ कामवर्षयितारौ (शयुत्रा) यौ शयून् शयानान् त्रायस्तौ (हिरण्यस्येव) यथा सुवर्णस्य (कलशम्) घटम् (निखातम्) मध्यावकाशम् (उत्) (ऊपथुः) वपतः (दशमे) (अश्विना) (अहन्) दिने ।।

अन्वयः—हे यान्ता नपाता वृषणा शयुत्राऽश्विना युवाम् दशमेऽहन् हिरण्यस्येव निखातं कलशं दिवः काव्यस्य सुष्टुतिं कुहोदूपथुः ।।

भावार्थः—अत्रोपमलं० । यथा धनाढ्याः सुवर्णादीनां पात्रेषु दुग्धादिकं संस्थाप्य प्रपच्य भुञ्जानाः स्तूयन्ते तथा शिल्पिनावेतद्विद्या न्यायमार्गेषु प्रजाः संवेश्य धर्म-न्यायोपदेशैः परिपक्वाः संसाध्य राज्यश्रीसुखं भुञ्जानौ प्रशंसितौ कुह स्याताम् । धार्मिकेषु विद्वत्स्वित्युत्तरम् ।

भाषार्थः—हे (यान्ता) गमन करने (नपाता) न गिरने (वृषणा) श्रेष्ठ कामनाओं की वर्षा कराने और (शयुत्रा) सोते हुए प्राणियों की रक्षा करने वाले (अश्विना) सभासेनाधीशो तुम दोनों (दशमे) दशवें (अहन्) दिन (हिरण्यस्येव) सुवर्ण के (निखातम्) बीच में पोले (कलशम्) घड़ा के समान (दिवः) विज्ञानयुक्त (काव्यस्य) कविताई की (सुष्टुतिम्) अच्छी बड़ाई को (कुह) कहां (उदूपथुः) उत्कर्ष से बोते हो ।।

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं० । जैसे धनाढ्य जन सुवर्ण आदि धातुओं के बासनों में दूध घी दही आदि पदार्थों को धर और उनको पका कर खाते हुए प्रशंसा पाते हैं वैसे दो शिल्पी जन इस विद्या और न्याय मार्गों में प्रजाजनों का प्रवेश करा कर धर्म और न्याय के उपदेशों से उनको पक्के कर राज्य और धन के सुख को भोगते हुए प्रशंसित कहां होवें इसका यह उत्तर है कि धार्मिक विद्वान् जनों में होवें ।।

—(ऋषिदयानन्द-भाष्य)

आवश्यक निवेदन

१२-१०-७३ के राज धर्म में जो लेख छपा है उसमें जो आरोप श्री नवाबसिंह सभामणक पर लगाए गए हैं वह असत्य हैं । ५० प्रवेश पत्रों पर मेरे कोई जाली हस्ताक्षर नहीं किए गए हैं । सभा के समस्त कर्मचारी मेरे आदेशानुसार सभा का कार्य कर रहे हैं किसी भी पक्ष के उम्मीदवार का कोई कार्य नहीं कर रहे । जो यह समाचार १२-१०-७३ के राजधर्म में छपा है बिल्कुल मिथ्या और सारहीन है ।

(ह०) सर्वानन्द
आफिशियल रिसीवर आर्यप्रतिनिधि सभा पंजाब
५-११-७३

अथ गृहाश्रमविषयः

(यद् ग्रामे०) गृहाश्रमी को उचित है कि जब वह पूर्ण विद्या को पढ़ चुके तब अपने तुल्य स्त्री से स्वयंवर करे और वे दोनों यथावत् उन विवाह के विषयों में चलें जो कि विवाह और नियोग के प्रकरणों में लिख आये हैं । परन्तु उनसे जो विशेष कहना है सो यहां लिखते हैं । गृहस्थ स्त्री पुरुषों को धर्म उन्नति और ग्रामवासियों के हित के लिये जो जो काम करना है, तथा (यदरण्य) वनवासियों के साथ हित और (यत्सभायाम्) सभा के बीच में सत्य विचार और अपने सामर्थ्य से संसार को सुख देने के लिये, (यदिन्द्रियेन) जितेन्द्रियता से ज्ञान की वृद्धि करनी चाहिये सो सो काम अपने पूर्ण पुरुषार्थ के साथ यथावत् करें । और (यदेनश्चकृ०) पाप करने की बुद्धि को हम लोग मन, वचन और कर्म से छोड़कर सर्वथा सबके हितकारी बनें ।।९।। परमेश्वर उपदेश करता है कि (देहि मे०) जो सामाजिक नियमों की व्यवस्था के अनुसार ठीक ठीक चलना है यही गृहस्थ की परम उन्नति का कारण है जो वस्तु किसी से लेवें अथवा देवें सो भी सत्य व्यवहार के साथ करें । (नि मे देहि, नि ते दधे) अर्थात् मैं तेरे साथ यह काम करूंगा और तू मेरे साथ ऐसा करना, ऐसे व्यवहार को भी सत्यता से करना चाहिये (निहारं च हरासि, मे नि०) यह वस्तु तू मेरे लिये दे वा तेरे लिये मैं दूंगा इसको भी यथावत् पूरा करें । अर्थात् किसी प्रकार का मिथ्या व्यवहार किसी से न करें । इस प्रकार गृहस्थ लोगों के सब व्यवहार सिद्ध होते हैं । क्योंकि जो गृहस्थ विचारपूर्वक सबके हितकारी काम करते हैं उनकी सदा उन्नति होती है ।।१०।। यजुर्वेद अध्याय ३ । मंत्र ४५, ५० ।।

—(ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका)

सत्यार्थप्रकाश ११वां समुल्लास

उड्डीस तन्त्र आदि में एक प्रयोग लिखा है कि एक घर में चारों ओर आलय हों उनमें मद्य के बोतल भर के धर देवे इस आलय से एक बोतल से पीके दूसरे आलय पर जावे उसमें से भी पी तीसरे और तीसरे में से पी के चौथे आलय में जावे खड़ा खड़ा तब तक मद्य पीवे कि जब तक लकड़ी के समान पृथिवी में न गिर पड़े फिर जब नशा उतरे तब उसी प्रकार पीकर गिर पड़े पुनः तीसरी बार इसी प्रकार पी के गिरे व उठे तो उसका पुनर्जन्म न हो अर्थात् सच तो यह है कि ऐसे ऐसे मनुष्यों का पुनः मनुष्य जन्म होना ही कठिन है किन्तु नीचे योनि में पड़कर बहुकाल पर्यन्त पड़ा रहेगा । वामियों के तन्त्र ग्रन्थों में यह नियम है कि एक माता को छोड़ के किसी स्त्री को भी न छोड़ना चाहिये अर्थात् चाहे कन्या हो भगिनी आदि क्यों न हो सबके साथ संगम करना चाहिये । इन वाममार्गियों में दश महाविद्या प्रसिद्ध हैं उनमें से एक मातङ्गी विद्या वाला कहता है कि "मातरमपि न त्यजेत्" अर्थात् माता को भी समागम किये विना न छोड़ना चाहिये और स्त्री पुरुष के समागम समय में मन्त्र जपते हैं कि हमको सिद्धि प्राप्त हो जाय ऐसे पागल महामूर्ख मनुष्य भी संसार में बहुत न्यून होंगे !!! जो मनुष्य झूठ चलाना चाहता है वह सत्य की निन्दा अवश्य ही करता है । देखो वाममार्गी क्या कहते हैं वेदशास्त्र और पुराण ये सब सामान्य वेश्याओं के समान हैं और जो यह शांभवी मार्ग की मुद्रा है वह गुप्त कुल की स्त्री के तुल्य, इसलिये इन लोगों ने केवल वेदविरुद्ध मत खड़ा किया है पश्चात् इन लोगों का मत बहुत चला तब धूर्तता करके वेदों के नाम से भी वाममार्ग की थोड़ी थोड़ी लीला चलाई ।। अर्थात्—

—सत्यार्थप्रकाश

श्रौतयज्ञ परिचय लेख न० ७—

(२) वरुण प्रघासपर्व—(चातुर्मास्य याग)

(ले० श्री प० वीरसेन वेदश्रमी, वेद सदन महारानी पथ, इन्दौर-१)

चतुर्मास्य यागो मे यह दूसरा याग है। वैश्वदेव पर्व के अनुष्ठान के अनन्तर चार मास व्यतीत होने पर अषाढ़ी पूर्णिमा को इस वरुण प्रघास याग का अनुष्ठान करना चाहिए।

नवप्रधान याग

वैश्वदेव पर्व के आठ यागो में से प्रथम याग (१) अग्नि के लिये अष्टाकपाल पुरोडाश याग (२) सोम के लिए चरु से याग (३) सविता के लिए अष्टाकपाल या द्वादश कपाल पुरोडाश से याग (४) सरस्वती के लिए चरु से याग और (५) पूषा के लिये आटे के चरु से याग—ये समान ही है।

इनके अतिरिक्त चार याग (१) इन्द्राग्नि के लिये द्वादश कपाल पुरोडाश याग (२) वरुण के लिए आमिक्षा (फटे दूध का गाढा भाग) से याग (३) मरुत् के लिए आमिक्षा से याग और (४) प्रजापति के लिए (एक कपाल पुरोडाश से याग होता है। इस प्रकार ९ याग इस वरुण प्रघास पर्व में होते हैं।

वैश्वदेव पर्व से इसकी विशेषता

(१) इस पर्व मे गार्हपत्य एव दक्षिणाग्नि वेदियो के अतिरिक्त एक आहवनीय वेदी के स्थान पर उत्तर वेदी और दक्षिण वेदी रूप से दो और आहवनीय वेदिया होती हैं। एक वेदि के अधिक होने से एक ऋत्विज् भी अधिक होता है जिसे प्रतिप्रस्थाता कहा जाता है। शेष ऋत्विज् वैश्वदेव पर्व के समान ही होते है

(२) दक्षिणवेदि मे प्रतिप्रस्थाता सप्तम याग को जो मरुदेवता के लिए आमिक्षा से होता है उसे वह करता है। शेष आठ याग उत्तर वेदी में अध्वर्यु दारा किए जाते हैं।

(३) इस याग मे जो जो अगभूत याग प्रयाजादि है उनका अनुष्ठान उत्तर और दक्षिण दोनो वेदियो में होगा। अध्वर्यु उनको उत्तर वेदी में समन्त्रक और प्रतिप्रस्थाता दक्षिण वेदी में अमन्त्रक करता है। दक्षिण वेदि की अधिकता के कारण इसके लिए जुहू, उपभृतादि पात्र भी अधिक बनाने होते है।

पुराडोश चरु, आमिक्षा का निर्माण दर्शपौर्णमास एव वैश्वदेव पर्ववत् विधिपूर्वक करे। प्रजापति देवता के लिए पुराडोश याग और श्रावण से कार्तिक पर्यन्त मासो के नभ, नभस्य, इष एव ऊर्ज इन चार मास नामों से पुरोडाश के चारो और घृत की आहुति देकर पूर्ववत् स्विष्टकृत याग, इडा भक्षण अनुयाजादि यथाविधि अनुष्ठान करके अवभृतेष्टि किसी जल-स्थान में जहाँ यज्ञान्त करना हो वहा वाजिन् (फटे दूध का तरल अश) [कर्मकाण्ड मे पयस्या को भी आमिक्षा माना है। यह महर्षि दयानन्द और कोश ग्रन्थो के अनुसार लिखा है] से ६ या १० आहुतियां देकर यजमान एव यजमान पत्नी स्नान करे। यजमान का वपन (क्षौरकर्म) भी पूर्ववत् होता है।

—इति वरुण प्रघासाः

(३) साकमेध पर्व (चातुर्मास्ययाग)

साकमेध का समय

चातुर्मास्य यागो मे यह तृतीय याग है। इसका समय कार्तिक पूर्णिमा है। यह दो दिन में किया जाता है, अतः कार्तिक शुक्ला चतुर्दशी और पूर्णिमा इन दो दिनो मे सम्पन्न होता है।

साक मेध पर्व में चार कर्म

इसमें निम्न चार कर्म प्रधान रूप से होते हैं —(१) अनीकवत्यादि इष्टिया एव क्रीडनीयेष्टि (२) महाहवि इष्टि (३) पितृयज्ञ और (४) त्र्यम्बकेष्टि। इनका निम्न प्रकार अनुष्ठान होता है।

अनीकवत्यादि तीन इष्टियाँ

१. प्रथम दिवस अनीकवत्यादि तीन इष्टियाँ होती हैं। प्रातःकाल प्रथम इष्टि अनीकवान् अग्नि देवता के लिए अष्टाकपाल पुरोडाश से होती है। इसे ही अनीकवतीष्टि कहते हैं

२. द्वितीय इष्टि मध्याह्न में सान्तपन मरुद्देवता के लिए चरु हवि से होती है अतः यह सान्तपनेष्टि कहाती है। और—

३. तृतीय इष्टि सायकाल गृहमेधीयेष्टि, गृहमेधीय मरुद्देवता के लिये खीर (दूध में पके चावल) चरुहवि से होती है। गृहमेधीयेष्टि के लिए पायस (खीर) बनानें के लिए यजमान के पास जितनी गौवे हों उन सब को दुह कर उसमें पर्याप्त चावल पकाना चाहिए जिससे समस्त गृहजन उसको खा सकें। यह भोजन चतुर्दशी की रात्रि में होता है।

इन इष्टियों में आघार, प्रयाज, अनुयाज, सामिधेनी आदि अंगभूत यागों के अनुष्ठान की आवश्यकता नहीं होती है। केवल आज्यभाग, अवघातादि कर्म तथा स्विष्टकृत् याग होते हैं।

क्रीडनीयेष्टि

द्वितीय दिवस पूर्णिमा को उषा के प्रादुर्भाव के समय स्नानादि से निवृत होकर यजमान अपने गृह में स्थित बैल का नाम लेकर बुलावे। उस नाम को सुन कर, बैल प्रतिशब्द करने पर, पूर्णादर्वीनामक होम अग्नि होत्र से पूर्व करके क्रीड़नीयेष्टि होती है। यह सूर्योदय काल में की जाती है। क्रीडावान् मरुद्देवत के लिए सप्तकाल पुरोडाश हविद्रव्य से याग होता है। यहा तक प्रथम कर्म है।

महाहवि नामक इष्टियां

यह भी द्वितीय दिवस का कर्म है। इसमें आठ याग होते है—

१. अग्नि देवता के लिए अष्टकपाल पुरोडाश याग
२. सोम देवता के यिए चरुहविद्रव्य से याग
३. सविता देव के लिए अष्टाकपाल या द्वादश कपाल पुरोडाश से याग
४. सरस्वती के लिए चरुहविद्रव्य से लाग
५. पूषा के लिए आटे के चरु से याग

इस प्रकार पांच याग वैश्वदेव पर्व तुल्य होते हैं और—

६. इद्राग्नी देवत्य याग द्वादश कपाल पुरोडाश से
७. महेन्द्र देवता के लिए चरुद्रव्य से याग—और
८. विश्वकर्मा सम्बन्धी एक कपाल पुरोडाश से याग

पूर्व और उत्तर के सामान्य कर्म

उपर्युक्त प्रधान ८ यागों से पूर्व के सामान्य कर्म, [अग्नि प्रणयनादि, आघार, आज्य भाग, प्रयाज करने चाहिए और प्रधान याग के बाद उत्तर के सामान्य कर्म—स्विष्टकृत् याग, इडाभक्षण, अनुयाजादि वैश्वदेव पूर्ववत् ही होंगे। वैश्वकर्मण याग के एक कपाल पुरोडाश याग के समय मार्गशीर्ष से फाल्गुन मास पर्यन्त सह, सहस्य, तप और तपस्य इन मास नामो को उच्चारित करके पुरोडाश के चारो ओर घृत की आहुति देवे। इस प्रकार महाहविः नामक कर्मपूर्ण होता है। ये महाहवि इष्टिया उत्तरवेदि में होती है।

महापितृ यज्ञ

इस महापितृ यज्ञ के लिए दक्षिण वेदि भी बनानी पड़ती है। पूर्व के कृत्य उत्तर वेदी में होते हैं। यह पितृयेष्टि या महापितृ यज्ञ दक्षिण वेदी में ही किया जाता है। यह वेदी अन्य वेदियों से भिन्न होती है। अर्थात् जो वेदिया पहले बताई गई हैं वे ऊपर से जितनी लम्बी चौड़ी होती हैं उतनी ही नीचे भी लम्बी चौड़ी होती हैं। परन्तु यह वेदी ऊपर से चौड़ी और नीचे से संकुचित होती है। इसमें दक्षिणाग्नि कुण्ड से अग्नि लेकर स्थापित होती है और उसी में आहवनीय कर्म पितृयज्ञ सम्बन्धी होते हैं। इस पितृयेष्टि या महा पितृयज्ञ में तीन याग होते हैं:-

१. सोम पितृमान् देवता के लिए षट् कपाल पुरोडास से याग
२. बर्हिषद् पितर के लिए भुने हुए धानों से याग—और
३. अग्निष्वात्त पितर के लिए मन्थ से याग होता है। मृतवत्सागौ के के दूध में भुने जौ का चूर्ण मिश्रित करने को मन्थ कहते है।

यवों से धान, पुरोडाश एवं मन्थचूर्ण

इन यागों के लिए यथाविधि यवों को समन्त्रक ग्रहण कर उन्हें खांडकर, तुषों से पृथक् कर धान और मन्थ निमित्त यवों को पृथक् करके

(शेष पृ० ४ पर)

सम्पादकीय—

महर्षि दयानन्द के राजनीतिक भाव

अध्याय १२ से—

(१४१) जैसे घोड़ों पर चढ़े वीर पुरुष शत्रुओं को जीत विजय को प्राप्त होके आनन्द करते हैं वैसे श्रेष्ठ ओषधियों के सेवन और पथ्याहार करने हारे जितेन्द्रिय मनुष्य रोगों से छूट आरोग्य को प्राप्त हो के नित्य आनन्द भोगते हैं ॥ मं० ७७

(१४२) सेनापति से शिक्षा को प्राप्त हुए राजा के वीर पुरुष अत्यन्त पुरुषार्थ से देशान्तर में जा शत्रुओं को जीत के राज्य को प्राप्त होते हैं। मं० ८०

(१४३) राज पुरुषों को नित्य पराक्रम बढ़ाके शत्रुओं से विजय को प्राप्त होना चाहिये ॥ मं० ११२

अध्याय १३ से—

(१४४) जो राजकुल की स्त्री पृथिवी आदि के समान धीरज आदि गुणों से युक्त हो तो वे ही राज्य करने के योग्य होती हैं ॥ मं०

(१४५) राजा आदि मनुष्यों को चाहिये कि वसन्त ऋतु में घोड़ों को शिक्षा दे और रथियों को रथों पर नियुक्त करके शत्रुओं को जीतने के लिये यात्रा करें ॥ मं० ३६

(१४६) सेनापति आदि राजपुरुषों को चाहिए कि बड़े सेना के अंग युक्त रथ वाले के समान घोड़े आदि सेना के अवयवों को कार्यों में संयुक्त करें। और सभापति आदि को चाहिए कि न्यायासन पर बैठ कर धर्मयुक्त न्याय करें ॥ मं० ३७

(१४७) जिन जंगली पशुओं से ग्राम के पशु खेती और मनुष्यों की हानि हो उनको राजपुरुष मारें और बन्धन करें ॥ मं० ४६

(१४८) हे राज पुरुषो ! तुम लोगों को चाहिए कि जिन बैल आदि पशुओं के प्रभाव से खेती आदि काम जिन गौ आदि से घी दूध आदि उत्तम पदार्थ होते हैं और जिनके दूध आदि से सब प्रजा की रक्षा होती है उनको कभी मत मारो और जो जन इन उपकारक पशुओं को मारें उनको राजा आदि न्यायाधीश अत्यन्त दण्ड देवें और जो जंगल में रहने वाले नीलगाय आदि प्रजा की हानि करें वे मारने योग्य हैं ॥ मं० ८९

(१४९) हे राजन् ! जिन भेड़ आदि के रोम और त्वचा मनुष्यों के सुख के लिए होती हैं और जो ऊंट भार उठाते हुए मनुष्यों को सुख देते हैं उनको जो दुष्ट जन मारना चाहें उनको संसार के दुःखदायी समझो और उनको अच्छे प्रकार दण्ड देना चाहिये ॥ मं० ५०

अध्याय १४ से—

(१५०) स्त्रियों को चाहिये कि युद्ध में भी पतियों के साथ स्थिर रहें ॥ मं० ३

(१५१) जो सुन्दर स्वभाव आदि गुणों को ग्रहण करते हैं वे विद्वानों के प्यारे होके सबके अधिष्ठाता होते हैं और जो सबके ऊपर अधिकारी हों वे मनुष्यों में पिता के समान वर्तें ॥ मं० २५

अध्याय १५ से—

(१५२) राजा आदि न्यायाधीश सभासदों को चाहिये कि गुप्त दूतों से प्रसिद्ध और अप्रसिद्ध शत्रुओं को निश्चय करके वश में करें और किसी धर्मात्मा का तिरस्कार और अधर्मी का सत्कार भी कभी न करें जिससे सब सज्जन लोग विश्वास पूर्वक राज्य में बसें। मं० १

(१५४) राजा को चाहिए कि पुरुषार्थ करने से पराधीनता छुड़ा के स्वाधीनता का निरन्तर स्वीकार करें ॥ मं० ५

(१५५) राजाओं से रक्षा प्राप्त हुए वैश्य लोग अग्न्यादि विद्याओं के लिए और अपने राजपुरुषों के लिये सम्पूर्ण धन धारण करें ॥ मं० ३०

(१५६) मनुष्यों को चाहिये कि राजा न्याय के प्रकाश और अन्याय की निवृत्ति का हेतु है ऐसा जानें ॥ मं० ३७

(१५७) राजा अच्छी शिक्षा बलयुक्त सेनाओं से शत्रुओं को जीत के सुखी होता है ॥ मं० ४६

(१५८) विद्वान् मनुष्यों को चाहिये कि राज्य में विद्या और बल को धारण कर शत्रुओं को जीत के प्रजा के मनुष्यों का सुख से उपकार करें। मं० ५१

(१५९) प्रजापालक पुरुषों को चाहिये कि सब प्रजाओं को विद्या और अच्छी शिक्षा के ग्रहण में नियुक्त करें और प्रजा भी स्वयं नियुक्त हों इसके बिना कर्म उपासना ज्ञान और ईश्वर का यथार्थ बोध कभी नहीं हो सकता ॥ मं० ६

(१६०) राजा और प्रजा के जन राजधर्म से युक्त ईश्वर के समान वर्त्तमान न्यायाधीश सभापति को निरन्तर उत्साह देवें, ऐसे ही सभापति इन प्रजा और राज के पुरुषों को भी उत्साही करें ॥ मं० ६१

(१६१) जैसे रक्षा करने से घोड़े पुष्ट होकर कार्य सिद्ध करने में समर्थ होते हैं वैसे ही न्याय से रक्षा की हुई प्रजा सन्तुष्ट होकर राज्य को बढ़ाती है ॥ मं०

अध्याय १६ से—

(१६२) जो राज्य किया चाहें वे हाथ पांव का बल, युद्ध की शिक्षा तथा शास्त्र और अस्त्रों का संग्रह करें ॥ मं० १

(१६३) शिक्षक लोग शिष्यों के लिये धर्मयुक्त नीति की शिक्षा दें और पापों से पृथक् करके कल्याण रूपी कर्मों के आचरण में नियुक्त करें ॥ मं० २

(१६४) राजपुरुषों को चाहिए कि युद्ध विद्या को जान और शास्त्र-अस्त्रों को धारण करके मनुष्य आदि श्रेष्ठ प्राणियों को क्लेश न देवें वा न मारें किन्तु मंगलरूप आचरण से सबकी रक्षा करें ॥ मं० ३

(१६५) राजा आदि सभासद् लोग सब के अधिष्ठता मुख्य धर्मात्मा जिसने सब रोगों वा औषधियों की परीक्षा ली हो उस वैद्य को राज्य और सेना में रखके बल और सुख के नाशक रोगों तथा व्यभिचारिणी स्त्री और पुरुषों को निवृत्त करावें ॥ मं० ५

(१६६) हे मनुष्यो ! जो राजा अग्नि के समान दुष्टों को भस्म करना, चन्द्र के तुल्य कोष्ठों को सुख देता, न्यायकारी, शुभलक्षण युक्त और जो इसके तुच्छ भृत्य राज्य में सर्वत्र बसें विचरें वा समीप में रहें उनका सत्कार करके उनसे दुष्टों का अपमान तुम लोग कराया करो ॥ मं० ६

(१६७) जो दुष्टों का विरोधी श्रेष्ठों का प्रिय दर्शनीय सेनापति सब सेनाओं को प्रसन्न करे वह शत्रुओं को जीत सके ॥ मं० ७

(१६८) सभापति आदि राजपुरुषों को चाहिये कि अन्नादि पदार्थों से जैसा सत्कार सेनापति का करें वैसा ही सेना के भृत्यों का भी करे ॥ मं० ८

(१६९) सेनापति आदि राजपुरुषों को चाहिए कि धनुष्य से बाण चलाकर शत्रुओं को जीतें और शत्रुओं के फेंके हुए बाणों का निवारण करें ॥ मं० ९

(१७०) युद्ध की इच्छा करने वाले पुरुषों को चाहिये कि धनुष की प्रत्याञ्चा आदि को दृढ़ और बहुत से बाणों को धारण करें सेनापति आदि को चाहिये कि लड़ते हुए अपने भृत्यों को देख के यदि उनके पास बाण आदि युद्ध के साधन न रहें तो फिर भी दिया करें ॥ मं०१०

(१७१) विद्या और अवस्था में वृद्ध उपदेशक विद्वानों को चाहिये कि सेनापति आदि को ऐसा उपदेश करें कि आप लोगों के अधिकार में जितना सेना आदि बल है उससे सब श्रेष्ठों की सब प्रकार रक्षा किया करें और दुष्टों को ताड़ना दिया करें ॥ मं० ११

(१७२) राज और प्रजा जनों को चाहिये कि युद्ध और शास्त्रों का अभ्यास करके शस्त्रादि सामग्री सदा अपने समीप रक्खें उन सामग्रियों से एक दूसरे की रक्षा और सुख की उन्नति करें ॥ मं० १२ ॥

(१७३) राजपुरुष साम, दाम, दण्ड और भेदादि राजनीति के अवयवों के कृत्यों को सब ओर से जान पूर्णशस्त्र अस्त्रों का संचय कर और तीक्ष्ण करके शत्रुओं में कठोरचित्त और अपनी प्रजाओं में कोमलचित्त सुख देने वाले निरन्तर। मं० १३

(१७४) सेनापति आदि राज्याधिकारियों को चाहिये कि अब यज्ञ और योद्धा दोनों को शस्त्र देवें शत्रुओं से निःशङ्क अच्छी प्रकार युद्ध करावें ॥ मं १४॥

(१७५) योद्धा लोगों का चाहिए कि युद्ध के समय वृद्धों, बालकों, युद्ध से हटने वालों, ज्वानों, आर्यों योद्धाओं के माता पितरों, सब स्त्रियों, युद्ध के देखने वा प्रबन्ध करने वालों और दूतों को न मारें किन्तु शत्रुओं के सम्बन्धी मनुष्यों को सदा वश में रक्खें ॥ मं० १५ ॥

(१७६) राजपुरुषों को चाहिये कि अपने वा प्रजा के बालकों, कुमार और गौ, घोड़े आदि वीर उपकारी जीवों की हत्या न करें ॥ मं० १६ ॥

—संकलयिता जगदेवसिंह सिद्धान्ती शास्त्री (क्रमशः)

अश्मन्वती रीयते

(ले० श्री सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०, ग्रीनपार्क नई दिल्ली)

ससार को विभिन्न दृष्टिकोणो से विद्वान् देखते हैं। कोई इसे सघर्ष स्थान, कोई मृगमरीचिका और कोई स्वप्न एव मिथ्या मानते हैं, पर वैदिक दृष्टिकोण इन सबसे विलक्षण है। अथव० का० १२, सू० १, मत्र २६ मे ससार को किस रूप मे प्रस्तुत किया है, आइये, हम इस पर विचार कर। मत्र इस प्रकार है 'अश्मन्वती रीयते सरभध्व वीरयध्व प्रतरता सखाया। अत्रा जहीत ये असन् दुरेवा अनमीवानुत्तरेमाभिवाजान्॥

(अश्मन्वती) पत्थरो भरी, पथरीली ससार रूपी नदी (रीयते) चल रही है (सरभध्व) मिलकर साहस करो (वीरयध्व) पराक्रम करो और इस प्रकार (सखाय) हे मित्रो! (प्रतरत) इस नदी को भली भाति, उत्तम रीति से तर जाओ। ये जो (दुरेवा) बुरे व्यवहार, आचरण (असन्) हो उनको (अत्र) यही (जहीत) छोड (जाओ) अनमीवान् रोग-रहित (वाजान्) अन्न आदि योग्य पदार्थों की (अभि) ओर (उत्तरेम) हम सब तैर कर जावे।

इस मत्र मे मृत्यु पर विजय प्राप्त करने का, मृत्यु को जीतने का, मृत्यु जय बनने का वर्णन है।

वेद मे ससार को एक पथरीली नदी माना गया है, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गध पचविषय पत्थर हैं अथवा काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, अहकार षड्दोष पत्थर है। जो साहसी और पराक्रमी मानव होते हैं, वे इन विषयो वा षड्दोषो के बन्धन मे न फस कर इस नदी को तर जाते हैं। मान लीजिए, कि आप मे दान करने का भाव पैदा हुआ, पर उसी समय लोभ अथवा कृपणता नामक विकट शत्रु ने पत्थर के रूप मे आपका मार्ग अवरुद्ध कर दिया। आप मे परोपकार समाज सेवा की भावना उद्भुत हुई, किन्तु तत्क्षण स्वकीय सम्बन्धियो के मोह अथवा अहकार ने पत्थर बनकर बाधा खडी कर दी। आप सदा प्रसन्न रहना चाहते हैं, पर क्रोध ने आपकी आशाओ पर तुषारपात कर दिया। सयमित जीवन बिताना चाहते हैं पर काम वा मद (मद्य मास आदि सेवन) ने आप को तामसिक जीवन के गर्त मे धकेल दिया। अत वेद का उपदेश है, कि आप पराक्रम कीजिये। तामसिक जीवन की वृत्तियो, आलस्य, प्रमाद आदि को झकझोर कर बुरे आचरणो को छोडकर सन्मार्ग पर आरूढ हूजिये। अहिंसा, सत्य, अस्तेय आदि यम नियमो को धारण कर, विवेक को जागृत कर जब आप कर्त्तव्य-पथ पर अग्रसर होगे, तो इस पथरीली नदी को सहज ही तैर जायेगे। अकेले ही नही समष्टि रूप मे साहस, पराक्रम दिखाइये, फिर मजिल, लक्ष्य दूर नही है।

"पाषाणो से भारी नदी यह जग है,
इसे भुलाना मत।
होकर यू निश्चेष्ट, प्रमादी,
सात्विक भाव भुलाना मत।
उठो, खडे हो, साहस और,
पराक्रम अपना दिखलाओ।
बुरे आचरण छोड यही,
ससार नदी को तर जाओ॥

(पृ० २ का शेष)

शेष यवो को पीस कर दक्षिणाग्नि के समीप षट् कपालो के ऊपर पुरोडास पकावे पृथक् किए हुए अर्थात् अवशिष्ट यवो को भून कर उसमें से आधा भाग बर्हिषद पितृयाग की आहुति के लिए और शेष आधे का चूर्ण करके मन्थ बनाना चाहिए जो कि अग्निष्वात पितृयाग के लिए होता है भुने यवों की धान सज्ञा है।

सामान्य कर्म

महा पितृ याग मे चार प्रयाज और दो अनुयाज होते हैं जो कि पूर्व इष्टियो मे सामान्य कर्म हैं। इसी प्रकार स्विष्टकृत् याग भी होता है परन्तु इसमें उसका कव्य वाहन अग्नि देवता है। इसमें यज्ञ शेष भक्षण के स्थान पर उसका केवल आघ्राण ही किया जाता है और उसके तीन पिण्ड बनाकर वेदी के पूर्व, पश्चिम एव दक्षिण कोण में रखे जाते हैं।

(४) त्र्यम्बकेष्टि

इसमें रुद्र देवता के लिये सब कृत्य अमन्त्रक करने चाहिए। एक कपाल पर हो चार पुरोडास पकाकर, तीन पुरोडाशो का थोडा—थोडा अश लेकर होम करते हैं और चौथे पुरोडाश को चूहे के बिल मे फेंक देते है। शेष पुरोडाश भागो को छीके मे रखकर किसी सूखे वृक्ष पर टाग देते हैं।

॥ इति साकमेध पर्व ॥

(४) शुनासीर पर्व (चातुर्मास्य याग)

चातुर्मास्य यागो मे यह चौथा पर्व याग है। साकमेध पर्व याग की समाप्ति के अनन्तर फाल्गुन मास मे यह शुनासीरीय याग किया जाता है। वायु और आदित्य निमित्त होता है। यह प्रयोजन भेद से फाल्गुन शुक्ला प्रतिपदा या फाल्गुन शुक्ला चतुर्दशी को भी किया जाता है।

प्रधान दश याग

इस पर्व मे १० याग होते हैं जिनमे से प्रथम के पाच याग वैश्वदेव पर्व के समान होते हैं और शेष पाच विशेष हैं—

१ अग्नि के लिये अष्टकपाल पुरोडाश से याग
२ सोम के लिये चरु द्रव्य से याग
३ सविता के लिये अष्टकपाल या द्वादश कपाल पुरोडाश से याग
४ सरस्वती के लिये चरु द्रव्य याग
५ पूषा के लिये आटे के चरु द्रव्य से याग
(ये उपरोक्त पाचो याग वैश्वदेव पर्व के ही हैं)
६ इन्द्राग्नि के लिये द्वादश कपाल पुरोडाश से याग
७ वैश्वदेवो के लिये पय से याग
८ शुनासीर इन्द्र के लिये द्वादश कपाल पुरोडाश से याग
९ वायु के लिये पय या चरु से याग
१० सूर्य के लिये एक कपाल पुरोडाश से याग

इसमे नव प्रयाज और नव अनुयाज वैश्वदेव पर्व के ही समान होते हैं। साकमेध और शुनासीर पर्वों मे अवभृथ स्नान नहीं होता है। वैश्वदेवपर्व एव वरुण मे अवभृथ स्नान नही होता है।

॥ इति चातुर्मास्यानि ॥

आग्रयणेष्टि (नवान्नेष्टि)

शारदी नवान्नेष्टि

नवीन अन्न आने पर शरत् एव वसन्त ऋतु मे नवान्नेष्टि की जाती है। शरत् में कार्तिक पूर्णिमा या अमावस्या को या उपर्युक्त शुभ दिवस में पूर्वाह्न मे इसका अनुष्ठान करे। उस शरद् कालीन नवान्नेष्टि में चार याग होते हैं—

१ अग्नि देवता के लिये पुराने चावलो से बने अष्टकपाल पुरोडाश याग
२ इन्द्राग्नि देवो के लिये नये चावलो से बने द्वादश कपाल पुरोडाश से याग
३ विश्वदेवो के लिये नये चावलो से दूध में पके चरु से याग
४ द्यावापृथिवी के लिये नये चावलो से बने एक कपाल पुरोडाश से याग

यदि श्यामाक अन्न से भी नवान्नेष्टि शरद् में करनी हो तो उसी से चरु बनाकर सोम देवता के लिये आहुति के लिए आहुति देवे। परन्तु श्यामाक नए ही होने चाहिए। यदि केवल नव श्यामाक से ही यज्ञ करना हो तो पूर्वोक्त चार देवताओं के लिए आहुति न देकर केवल सोम देवता के लिए ही आहुति देनी चाहिए।

(२) वासन्ती नवान्नेष्टि

वसन्त ऋतु में नवान्नेष्टि करने पर नए ही यवों का उपयोग करना चाहिए। इसमें तीन याग होते हैं:—

१ इन्द्राग्नि देवों के लिए नए जौ से द्वादश कपाल पुरोडाश से याग
२ विश्व देवों के लिए नए जौ से दूध मे बने चरु से याग
३ द्यावापृथिवी के लिए नए जौ से बने एक कपाल पुरोडाश से याग

शेष सामान्य कर्म पूर्व प्रकृतिवत् होते हैं। आग्रयणेष्टि अर्थात् नवान्नेष्टि के पश्चात् ही नवान्न का सेवन करें।

॥ इत्याग्रयणेष्टि ॥

क्रमागत :—

माण्डूक्य कारिकाओं पर आचार्य गौडपाद की समीक्षा (४०)

(ले० श्री स्वामी ब्रह्मानन्द जी आर्य त्रैतवेदान्ताचार्य मु० ओं० आश्रम, चान्दोद (बड़ोदा)

समीक्षा—आप या तो भोले हैं या फिर पागल। अरे जब आपने ही पिछली सत्ताविसवीं कारिका में (सतो हि मायया जन्म युज्जते······) अर्थात् सद् वस्तु का जन्म माया से ही हो सकता है तो फिर बंध्या स्त्री पुरुष को क्या आप असद् वस्तु मान रहे हैं ? अरे वो भी तो जीती जागती तुम्हारे ही समान शरीर धारी सद् वस्तु रूप प्राणात्मा स्त्री है, तो उसको भी माया से लड़का पैदा होना क्यों नहीं माना तुमने यहां ? ये तो तुम्हारे मत में विषमता आ गई। एक सद्वस्तु का तो जन्म होना माना, दूसरे का नहीं। तो क्यों नहीं ? जो वस्तु और जिसको उपयोग में लिया जावे प्रत्यक्ष ही, तो उसे ही तो सत्य कहा जाता है, फिर सत्य सत्य में भेद ही कैसा ? यदि तुम्हारी माया जो ब्रह्म को जन्माने में समर्थ हो सकती है तो फिर बन्ध्या क्यों पुत्र नहीं जन्मा सकती ? ये तो ऐसी अद्वैत वादी की बात ही (अन्धेर नगरी बेबूज राजा) कैसी लगती है। अरे असद् वादी हों या सत् कार्यवादी या अद्वैतवादी कोई भी बिना उपादान के वस्तु पैदा हो ही नहीं सकती, यही मत सत् कार्यवाद का सुनिश्चित है, समझे गुरु जी। और इसी का नाम है सत् तत्व। तो हम तो असत् मानते ही नहीं। हम वैदिक सांख्यवादी लोग तो सत् कार्यवादी हैं। अर्थात् मिट्टी में घट का मात्र अदर्शन ही मानते हैं, किन्तु मिट्टी में घट अपने स्वकीय गुण धर्म सदैव ही विद्यमान है, नहीं तो कुंभार अपनी जीवन भर की शक्ति से भी घटको कभी निकाल नहीं सकता। यदि जो कुंभार की कल्पना विद्या शक्ति से ही जो मिट्टी का घड़ा पैदा करना मानते हो तो वे कपड़ा, कुर्सी, रोटी रुपया भी निकलवा बतायें ? किन्तु घड़े से विधर्मी वस्तु का निकलना मिट्टी में कभी संभव ही नहीं। इसीलिए हमारे भगवान् कपिल महामुनि जी का सत् कार्यवाद सर्व श्रेष्ठतम् एवं समीचीन और सृष्टि नियमानुसार ही है। परन्तु अद्वैतवादी का माया विवर्तवाद तो सर्वथा मिथ्यावाद है क्योंकि ये तो जैसा शास्त्र विरुद्ध है वैसा ही बुद्धि और विज्ञान (सृष्टि नियम विरुद्ध भी है ॥ २८ ॥

यथा स्वप्ने द्वया भासं स्पंदते मायया मनः।

तथा जाग्रद् द्वया भासं स्पंदते मायया मनः ॥ २९ ॥

अद्वैत प्र० की २९वीं कारिका

अद्वयं च द्वया भासं मनः स्वप्ने न संशयः।

अद्वयं च द्वया भासं तथा जाग्रन्न संशयः ॥ ३ ॥

अद्वैत प्र० की ३०वीं कारिका

अर्थ—जिस प्रकार स्वप्न काल में मन माया से ही द्वैताभास रूप से स्फुरित है उसी प्रकार जाग्रत् काल में भी वह माया ही द्वैताभास रूप से स्फुरित होता है ॥ २९ ॥

अर्थ—इसमें सन्देह नहीं, स्वप्नावस्था में अद्वय मन ही द्वैत रूप से भासने वाला है, इसी प्रकार जाग्रत काल में भी निः सन्देह अद्वय मन ही द्वैत रूप से भासता है ॥ ३० ॥

समीक्षा—ये तुम्हारी पूरी हुड हुडाट गप्प है, और आ० शंकर जी की भी क्यों कि जब स्वयं शंकर जी अपने पंचीकरण नामक पुस्तक में और स्वामी विद्यारण्य जी अपनी पंचदशी के तत्व विवेक प्र० में तथा १८—१९—२०वें श्लोक में क्रमशः यों कह रहे हैं कि (तमः प्रधान प्रकृतेस्तद्भोगायेश्वराज्ञया। वियत्पवनतेजोऽम्बुभुवो भूतानिजज्ञिरे ॥ सत्वांशैः पंचभिस्तेषां क्रमाद्धीन्द्रियपंचकम्। श्रोत्रत्वगक्षिरसनघ्राणाख्यमुपजायते ॥ तैरन्तः करणं सर्वैर्वृत्तिभेदेन तद् द्विधा। मनो विमर्श रूपं स्याद् बुद्धिः स्यान् निश्चयात्मिका ॥ अर्थात् उन सब भौतिक भोगों के लिए ईश्वर की आज्ञा से हम प्रधान प्रकृति में से आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी नामक पांचभूत हुवे। फिर उन आकाशादि पांचभूतों के पृथक् पृथक् सत्वांश से क्रमशः श्रोत्रादि पंच ज्ञानेन्द्रिया हुई। फिर उन पांचो भूतों के सम्मिलित सत्वांश से एक अन्तःकरण नामक पदार्थ उत्पन्न हुवा, वो अन्तःकरण नामक पदार्थ उत्पन्न हुवा, वो अन्तःकरण अपने वृत्ति भेद के कारण दो प्रकार का होता है, एक तो विमर्श रूप शंकल्प विकल्पात्म होने से मन कहाता है, और दूसरी निश्चयात्मिका बुद्धि रूप से कहा जाता है ॥

तो अब आप अद्वैत वादि गुरु जरा कहें कि इस प्रकार से तो तुम्हारा उक्त कथन है कि (स्वप्नवत् जाग्रत में भी माया से ही द्वैत मन में भासता है) ये कथन उपरोक्त कारिकाओं का मुख्य आशय हैं तो हमारा कहना तो तुम गुरु जनों से यही है कि जब ईश्वर की प्रेरणा से प्रेरित होकर तमो मयि प्रकृति से क्रमशः पंचतत्व हुवे, उसके बाद पंच ज्ञानेन्द्रियां पृथक् सत्वांश से हुई, फिर सम्मिलित सत्वांश से अन्तःकरण हुवा, उसमें का एक अनिश्चित स्वभाव का मन हुवा है, तो इससे तो ईश्वर प्रकृति के संयोग से मन आदि सृष्टि का होना माना गया और आप गौडपाद जी तो सीधे मन मन की माया से सृष्टि का होना मान रहे हैं तो इनमें से ये झूठे हैं, शंकर, विद्यारण्य या आप स्वयं ही झूठे हैं, इसे आप लोग अद्वैतवादी समझ लेवें ?

यद्यपि अस्मायियं जगद्बिम्बविरचनागुरुतरसंरम्भेवाभाति तथापि परमेश्वरस्य लीलैव केवलेयम्। अपरिमिति शक्तित्वात् ॥ वे० द० २।१।३३) अर्थ—यद्यपि जगत् की रचना हमको बड़ी भारी तैयारी का फल प्रतीत होती है, तो भी ईश्वर के लिए यह लीला के समान (खल ही) है, क्योंकि ईश्वर की शक्ति अपरिमित है ॥ देखिये, शंकर जो ये जगत् को ईश्वर की शक्ति के द्वारा रचा मान रहे हैं यहां कि गौड जी के कहे मुताबिक जीवन के मन की स्वप्नवत् जगत् की रचना है ? अब गौडजो की बात भी जरा सुन पढ़लो, जो वे आ० प्र० में कह आये हैं—(सर्वं जनयतिप्राणश्चेतोंऽशून्पुरुषः प्रथक् ॥ ६। आ० प्र० अर्थात् सभी सद्भाव रूप पदार्थों को प्राण नम्ना प्रकृति पैदा करती है, और परम पुरुष परमात्मा, अपने अंशभूत जीवों को पृथक् रूप से प्रगट करता है। अब गौड जी स्वर्ग से आकर अपनी इन दुतरफी बातों का जवाब देवें, कि ये आगम प्र० की छुट्टी कारिका की बात खरी (सच्ची) है कि अद्वैत प्र० की २९-३०। वाली कारिकाओं की बातें खरी ? मालूम होता है गहरी दूधिया विजया (भंग) छान चढ़ाकर ही गौड जी गुरु ने ये अपनी कारिकायें लिखने बैठते थे। क्यों नहीं (लड्डू खिलावनि भंग है, तरनतारिणी गंग) बस लिखे जाय, जी में आये कौन देखता है ? ॥२९-३०॥

मनो दृश्यमिदं द्वैतं यत्किंचित् सचराचरम्।

मनसो ह्यमनीभावे द्वैतं नैवोपलभ्यते ॥ ३१ ॥

अद्वैत प्र० की ३१वीं कारिका

अर्थ—यह जो कुछ चराचर द्वैत है, सब मन का दृश्य है। क्योंकि मन का अमनीभाव (संकल्प सून्यता) हो जाने पर द्वैत की उपलब्धि नहीं होती ॥३१

समीक्षा—ये भी तुम्हारी गपाष्टक में की एक महान् गप्प है। क्योंकि मन स्वयं प्रकृति विकृति का एक कार्य विशेषण है, और जो स्वयं कार्य होता है, वह किसी का कारण वा जनक नहीं होता। अरे घर भी क्या अपने उपादान मिट्टी एवं कुंभकार का कल्पक वा जनक हो सकता है क्या ? कभी नहीं। तब जड़ मन से समूचे जड़ जगत् एवं चैतन्य जोवों की उत्पत्ति संकल्प मात्र से कैसे हो जायेगी ? और जो अद्वैतवादि महानुभाव अपने गुरु गौड जी की इस गप्प को सत्य समझते होवें, उन्होंने अपने सम्पूर्ण मठ मन्दिर आश्रम मालमत्ता को अपने शिष्यों सहित, हम वैदिकों के हवाले विधिवत् कर करके अपने पवित्र आंशिक संकल्प मात्र से दूसरे मठ मन्दिर आदि तैयार कर देवें तब तो हम भी गुरु गौड जी की समाधि पर मंत्र पुष्पांजली कर उन्हें और उन्हीं के अनुयायीयों को बधाइयां देंगे। अन्यथा झुठाई की गर्त में गौड जी तब तक पड़े ही रहेंगे। (क्योंकि नहीं असत्यसमपातक पूजा) इन्होंने इस भ्रांत धारणा से अनेक भोले मनुष्यों को गुमराह किया है, तो इस झुठाई का प्रायश्चित उन्हें करना ही होगा। क्योंकि गौड जी ने भी स्वयं जाग्रत के पदार्थों को स्वप्न के समान नहीं माना है, देखो उनके अलात् शां० प्र० की ८७वीं कारिका को वहां वे कहते हैं कि (वस्तु और उपलब्धि इन दोनों के सहित जो द्वैत (जाग्रत्) है उसे लौकिक कहते हैं। तथा जो द्वैत वस्तु के बिना केवल उपलब्धि सहित (मात्र) ही है, उसे शुद्ध लौकि स्वप्न कहते हैं)। (क्रमशः) ●

राष्ट्र आंखें खोले—

ईसाइयों का प्रचार तन्त्र (८)

(श्री सुरेन्द्रसिंह कादियाण w/z ७९ राजा पार्क शकूरबस्ती, दिल्ली-३४)

१५—मूर्तिपूजा व जन्त्र मन्त्र

ईसाई-मत में मूर्तिपूजा का विधान नहीं है। लेकिन प्रारम्भ से ही इस मत के प्रचारकों ने विविध प्रकार के ढंग अपना कर ईसाइयत का प्रचार व प्रसार किया है। ऐसा करते हुए उन्होंने नैतिक मानदण्डों को ही नहीं तोड़ा वरंच ईसाइयत के मूलभूत सिद्धान्तों का भी उल्लंघन किया है। मूर्तिपूजा एक इसी प्रकार का हथकंडा है जो ईसाइयों ने विशेषतः भारत में अपनाया हुआ है। यद्यपि तुलुस (Toulouse) नगर में धार्मिक अवशेषों को पूजा जाता था। इस नगर के निवासियों के पास ईसा मसीह के सात प्रधान शिष्यों की सूखी हड्डियां थीं, हेरोद् द्वारा मारे गए बहुत से छोटे बच्चो की अस्थियां थीं, कुमारी मेरी के वस्त्र का एक टुकड़ा था और सन्त कहलाने वाले बहुत से लोगों के कमाल थे। इन सब अवशेषों को तुलुस निवासी श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे, उनसे प्रेरणा लेते थे, विशेष उत्सवों पर सामूहिक रूप से उनकी पूजा होती थी। बाद में आने वाले समय में यह अंधश्रद्धा समाप्त होती गई लेकिन वह समूलतः नष्ट नहीं हुई बल्कि किसी न किसी नवीन रूप में बनी रही। भारत में ईसाइयों द्वारा मूर्तिपूजा को प्रोत्साहन देना इसी क्रम का उपक्रम भी अब चलने लगा है। श्री जगत्कुमार जी शास्त्री ने ईसाइयत सम्बन्धी एक ट्रेक्ट में इस पर चर्चा करते हुए लिखा है।

"ईसाई प्रचारक अनेक प्रकार की विचित्र रीतियों से लोगों को यह विश्वास दिलाते हैं कि यदि कोई व्यक्ति ईसाई बन जाएगा, तो भूत-प्रेत उसे नहीं सतायेंगे। कांसी, पीतल या कागज की ईसा की छोटी-बड़ी मूर्तियो और बाइबिल के वचन भूत बाधा को हटाने के नाम पर लोगों के गले में तथा घरों में लगाये, टांगे जाते हैं। इनके बड़े विलक्षण लाभ बताये जाते हैं। कहते है इनके प्रभाव से परीक्षा में सफलता, मुकदमे में जीत और दुकान में लाभ प्राप्त होते हैं। आयु बढ़ती है। बेटा मिलता है। पति वश में हो जाता है। पत्नी वश में हो जाती है। घर में सांप-बिच्छू नहीं आते। रोग नहीं सताते, आदि-आदि।"

आदिवासी क्षेत्रों में तो अब बड़े बड़े मन्दिर के ढंग के गिरजाघर बनने लगे हैं, और इनमें मरियम की प्रतिमा का पूजन होता है। साधारणतया शिशु रूप में ईसा मसीह माता मरियम की गोद में दिखाए जाते हैं ताकि दोनों का पूजन एक साथ होता रहे। इन मूर्तियों के समक्ष दीपक अनवरत रूप से जलता रहता है। इन मूर्तियों पर पुष्पादि अर्पित किए जाते हैं। ईसाई पादरी चरणामृत के रूप में भक्तों को पानी देते हैं। गण्डे ताबीज व मन्त्र जन्त्र आदि का पाखण्ड भी इन पादरियों द्वारा रचा जाता है। मरियम माता नारियों में विशेष लोकप्रियता प्राप्त कर रही हैं। ईसाई प्रचारकों ने इन भोली स्त्रियों में भ्रान्ति फैला रखी है कि मरियम की कृपा से बाझ औरतों तक के बच्चे हो जाते हैं।

बम्बई की 'बान्द्रा हिल' नामक पहाड़ी पर दुर्गावती का एक छोटा-सा मन्दिर था। सन्त फ्रांसिस जेवियर ने इस मन्दिर को नष्ट कर दुर्गा को पिटारे में बन्द कर वहीं धरती में गड़वा दिया था और Lady Mount Marry की स्थापना की थी। यह समाचार सुनकर जब शिवाजी ने 'बान्द्रा हिल' की ओर कूच किया तो पादरियों ने लेडी माउण्ट मेरी की प्रतिमा 'माहिम' (बम्बई का उपनगर) स्थित माइकेल चर्च में स्थापित करदी शिवाजी की वापसी पर फिर इस मूर्ति को बान्द्रा हिल पर प्रतिष्ठित किया गया। यह पहाड़ी समुद्र के किनारे रमणीक स्थल है और लोगों को बरबस ही अपनी ओर आकर्षित कर लेता है। लेडी माउण्ट मेरी चर्च भारत भर के चर्चों में अद्वितीय है और लाखों रुपया व्यय कर इसे भव्य रूप प्रदान किया गया है। मन्दिर तक पहुंचने के लिये लगभग १०० सीढियां पार करनी पड़ती हैं। आधी चढ़ाई चढ़ने पर एक समतल चबूतरे पर 'क्रास' का चिह्न अंकित है। कभी इस स्थान पर एक छोटी सी मस्जिद थी। इस प्रकार हम देखते हैं कि मन्दिर व मस्जिद को मिटा कर ईसाइयों ने इस पहाड़ी पर जबंदस्ती अधिकार जमा कर एक भव्य गिरजाघर की स्थापना की है इस चर्च के निकट ही Father Agnals Asharm है और पास में ही १९५४ में रोम से आयातित Our Ashram Lady Fatima का गोलाकार आकर्षक स्थल है। अनेक प्रकार की संस्थाएं व प्रशिक्षण गृह इस विशाल चर्च की देखरेख में चल रहे हैं। सितम्बर के द्वितीय सप्ताह में इस चर्च पर भव्य समारोह का आयोजन किया जाता है मोमबत्तियां, नारियल आदि की भेंट देवी पर चढ़ाई जाती है, जिससे लाखों रुपया चर्च के कोष में पहुंचता है। सभी धर्मों की साधारण जनता इस भव्य मेले में उपस्थित होती है और [illegible] के [illegible] होकर लेडी माउण्ट मेरी तथा शिशु रूप ईसा मसीह की पूजा-अर्चना करती है। सितम्बर माह का यह विख्यात मेला हमने स्वयं अपनी आंखों से देखा है जो कई दिन तक चलता है। मेरठ को नौचन्दी, सहारनपुर के गगूल व देवबन्द की काली पर जो भारी मेले उत्तर भारत में लगते हैं वैसा ही आकर्षण बान्द्रा हिल के मेले का है और उसी उत्साह व उमंग से मनाया जाता है। वास्तव में यह चर्च मूर्ति पूजा का भारी गढ़ है जो सामान्य रूप से आम जनता को प्रभावित करता है।

उपरोक्त पंक्तियों से स्पष्ट हो जाता है कि ईसाइयत ने बाईबल की मूलभूत मान्यताओं के विरुद्ध जाकर मूर्तिपूजा का ढोंग अपनी प्रचार-प्रणाली में सम्मिलित कर लिया है। बाईबल विरुद्ध इस पाखण्ड को रोम का पोप भी देख रहा है और अन्य ईसाई संगठन भी देख रहे हैं लेकिन जानबूझ कर इसके विरुद्ध कोई भी मुंह से एक शब्द नहीं निकलता। रोम का पोप आज भी एक प्रभावशाली व्यक्ति है और उसकी धाक भारत-भर के ईसाई पादरियों पर गालिब है लेकिन मूर्तिपूजा के सम्बन्ध में, लगता है उसका समर्थन प्राप्त कर लिया गया है। अन्यथा ईसाइयत के रक्षण में सर्वेसर्वा पोप इस पाखण्ड को किसी भी शर्त पर अपनी स्वीकृति प्रदान न करता। सनातन धर्मी जनता द्वारा तैयार वातावरण से ईसाइयों ने एक प्रकार से समझौता कर लिया है। धार्मिक पूजा का मिलता-जुलता स्वरूप ईसाइयों ने भी तैयार कर लिया है। इस सबका उद्देश्य है भोले भाले हिन्दुओं को ठगना और उन्हें पथभ्रष्ट करके ईसाई बनाना। किसी आर्यसमाजी को ईसाई बनाना ईसाई-प्रचारकों के लिए लोहे के चने चबाने वाली बात है लेकिन सनतानी हिन्दू उनके जाल में इतने जल्दी और इतनी भारी संख्या में फंसते हैं जैसे किसी मछियारे के जाल में मछलियां आ घिरती हैं। मूर्तिपूजा, जन्त्र-मन्त्र, गण्डे-ताबीज आदि में सनातनधर्मी हिन्दू ही आस्था रखते हैं और वे ही ईसाइयों के कुचक्र का शिकार बनते हैं।

१६—पौराणिक पात्रों पर आक्षेप

पुराणों ने जितनी सहायता ईसाई प्रचारकों को ईसाइयत के स्थापनार्थ पहुंचाई है, वैसी सहायता स्यात् ही किसी अन्य घटक ने पहुंचाई हो। हिन्दू देवी देवताओं के पुराणकथित चरित्रों के विलासपूर्ण, स्थूल वासनायुक्त, व्यभिचारपूर्ण, धूर्ततापूर्ण आचरण पर गम्भीर आक्षेप लगा कर ईसाई विद्वानों ने हिन्दुओं के हृदय में अपने धर्म के विरुद्ध अनास्था के बीज बो दिए। आर्यसमाज ने अपने प्रचुर साहित्य व प्रचार द्वारा सनातनियों को जगाने का भारी प्रयास किया लेकिन मतवादी दुराग्रह के कारण पौराणिक जन न पहिले सत्य को ग्रहण कर सके और न आज कर रहे हैं। फलतः ईसाई प्रचारक आज भी पुराणों के तथाकथित देवी-देवताओं को लेकर हिन्दू धर्म पर कीचड़ उछाल रहे हैं और ईसाइयत के लिए मार्ग प्रशस्त कर रहे हैं।

जब हम भागवत पंचम स्कन्ध १६ वें अध्याय में प्रियव्रत के रथ के पहियों के खुदने से सात समुद्रों का बनाना, बीच में सात द्वीपों की स्थापना, जम्बुद्वीप का एक लाख योजना का विस्तार, पहाड़ों के राजा १ लाख योजन ऊंचे सुमेरु पर्वत, हाथी के समान जामुन के बेगुठली वाले फलों के अधिक ऊंचाई से गिरने व टूटने के कारण जम्बू नदी का जन्म मेरु के बीच सबसे ऊपर दस हजार योजन बड़ी समधरातल स्वर्णमयी ब्रह्मपुरी आदि का वर्णन पढ़ते हैं तो पुराणों के रचनाकार की बुद्धि पर हंसी भी आती हैं और तरस भी।

(शेष पृ० ७ पर)

(पृ० ६ का शेष)

इस वैज्ञानिक युग में भी अन्धश्रद्धा के वशीभूत होकर इन अवैज्ञानिक [illegible] पर विश्वास करना ज्ञानार्जन के कपाट बन्द कर देता है। ईसाई प्रचारक व विद्वान् हिन्दू धर्म की इस कमजोरी को जानते हैं और जब वे प्रचार के लिये हिन्दूओं में पहुंचते हैं तो इसी कमजोर ठिकाने पर तीव्र प्रहार कर हिन्दुओं की श्रद्धा व [illegible] को धराशायी बना देते हैं। पुराणों में से अवैज्ञानिक घटनाओं को ढूंढ-ढूंढ कर वे ढेर लगा देते हैं और हिन्दुओं से प्रश्न करते हैं कि क्या तुम्हारा हिन्दू धर्म है?

ईसाई प्रचारक कहते हैं कि मुक्ति केवल ईसा की शरण में जाकर मिलेगी। जिस राम की पत्नी अपहृत कर ली गई थी वह क्या मुक्ति प्रदान कर सकता है। कुछ वर्ष पूर्व डा० सेम्युअल ने 'महासमन्द' में इसी प्रकार के विचार प्रकट किए थे। 'गुरु परीक्षा' 'राम परीक्षा' 'चन्द्र लीला', और 'सच्चा मजहब कौनसा है'। ये ईसाइयों द्वारा प्रकाशित कुछ ट्रेक्ट व पैम्फलेट हैं जिनमें राम,कृष्ण को ही नहीं वरंच मुहम्मद साहब को भी निन्दा का पात्र बनाया गया है। गुरु परीक्षा के पृष्ठ ४ पर लिखा है—"राम-कृष्ण मुक्तिदाता नहीं हो सकते क्योंकि सब के सब......बुराइयों के वश में लिप्त थे।" पृष्ठ ५ पर लिखा है—"वह (कृष्ण) चोर....था। उसने कंस के निरपराध धोबी का घात किया ऐसे देवताओं पर आसरा रखना बड़ी मूर्खता है।" पृष्ठ ८ पर लिखा है—"देवता से लेकर ब्राह्मण सब के सब पाप के आधीन हैं।" इसी पुस्तक के पृष्ठ ३४ पर लिखा है—"राम.. पापी था। आप मर गया और फिर नहीं जी उठा।" इसी प्रकार 'सच्चा मजहब कौन-सा है' नामक पुस्तक में मुहम्मद साहब की निन्दा की गई है।

पादरी ओवबाह पी० पाल० जो.टो. यन बालोद गहन, धर्मतरी मध्य प्रदेश ने एक पुस्तक 'धर्म सिद्धान्त प्रकाश' शीर्षक से लिखी है। इस पुस्तक में पौराणिक देवी-देवताओं को कुकर्मी महापापी, वेद मंत्रों में कहानियों की कल्पना और नियोग आदि का भद्दा मजाक उड़ाया गया है। इस पादरी ने मनुस्मृति पर भारी आक्षेप लगाया है और आर्यों। द्वारा गोमांस भक्षण की बात कही गई है। उदाहरणतः इस पुस्तक के पृष्ठ ७ पर निम्न पंक्तियां पढ़ने को मिलती है।

(क) जब शिव जलन्धर दैत्य को युद्ध में नहीं हरा सका क्योंकि स्त्री पतिव्रता थी, तब भगवान् ने उस स्त्री को भ्रष्ट कर दिया जिसमें शिव जी की जय हो सके।

(ख) नारद मुनि के श्राप से जब विष्णु जी ने उसको शील निधि नाम के एक राज्य की पुत्री मोहनी के स्वयंवर के समय धोखा दिया।

(ग) जगन्नाथ के हाथ-पांव कटे हुए हैं। हिन्दू इस बात को मानते हैं कि उसकी यह दशा उसके इन बुरे कामों के कारण हुई जो उसने कृष्ण होकर किए थे।"

मनुस्मृति के विषय में पृष्ठ २२-२३ पर लिखा गया है।" मनु जी ने शास्त्र में लिखा है कि व्यभिचार किया जा सकता है यदि स्त्री तैयार है।"

पृष्ठ ३८ पर ये पादरी मोहदय फरमाते हैं—"गाय की पूजा तो नहीं होती थी पर लोग गाय का मांस मधुपर्क खाते थे।"

पृष्ठ ४ पर लिखा है—"परमेश्वर के बारे में हिन्दू शास्त्रों में जो बातें हैं वे एक राय की नहीं, मीमांसा और वेदान्त परमेश्वर पर विश्वास नहीं करते कि परमेश्वर सर्जन और संहार करता है।"

इसी पुस्तक के पृष्ठ ६ पर हम देखते हैं—"परमेश्वर का प्रधान गुण है पवित्रता। क्या त्रिदेव में यह गुण पाया जाता है न इनका चरित्र इतना घिनौना और लज्जा पूर्ण है कि यह उचित नहीं।"

वेद, दर्शन व मनुस्मृति पर जो आक्षेप पादरी महोदय ने लगाये हैं वे उनके अज्ञान, भ्रान्ति और अविवेक के परिचायक हैं। ऋषिदयानन्द समर्थित प्राचीन व शुद्ध वेदाध्ययन प्रणाली का सहारा लेकर पादरी महोदय की मान्यता को निरस्त करना कुछ भी कठिन नहीं। साम्प्रदायिक मनोमालिन्य युक्त दुराग्रह हृदय व मस्तिष्क से किये गये अंग्रेजी भाष्यों के बल पर पादरी महोदय झूठ को दो कदम और आगे बढ़ाना चाहते हैं। दर्शन शास्त्रों का आपस में कहीं भी विरोध नहीं है—दयानन्द कृत ग्रन्थों से यह बात स्पष्ट हो जाती है। इसमें सन्देह नहीं कि मनुस्मृति आदि में प्रक्षिप्त अंश बाद में मिलाये गए हैं और वह भी लालची ब्राह्मणों व धूर्त मुस्लिम व ईसाई विद्वानों द्वारा। आर्य समाजी विद्वानों ने उन अंशों को ग्रन्थों से बाहर निकालने का सत्प्रयास किया है और कुछ को अप्रमाणित घोषित कर दिया है—धींगामुश्ती से नहीं वरंच तर्क के बल से, ज्ञान-विज्ञान का आधार लेकर। जहां तक पौराणिक पक्ष की बात है आर्यसमाज स्वयं उसकी आलोचना करता है। वस्तुस्थिति यह है कि पुराण हिन्दू धर्म का वास्तविक प्रतिनिधित्व नहीं करते और न ही प्राचीन आर्य धर्म का ये पुराण आधार हैं। हिन्दू धर्म जिसे वास्तव में आर्य धर्म कहना कहीं अधिक युक्तिसंगत है, का आधार वेद, दर्शन, ब्राह्मण, उपनिषद् हैं। पुराणों का रचना काल तो बहुत बाद का है और ब्रिटिश काल तक उनमें संशोधन व परिवर्तन होते रहे हैं। ये पुराण न तो विज्ञान सम्मत हैं और न धर्म सम्मत। उनका रचियता कोई ऋषि नहीं है बल्कि अनेक धूर्त ब्राह्मणों ने उनकी रचना भिन्न-भिन्न कालों में की है। पौराणिक स्थलों पर आक्षेप करने से हिन्दू धर्म का दृढ़ किला ढह नहीं सकता सकता क्योंकि उसकी नींव बहुत मजबूत है। ऋषि दयानन्द जी महाराज ने तो उसे और अधिक सुदृढ़ बना दिया है।

कुछ अन्य घृणित पुस्तकें भी ईसाई प्रचार केन्द्रों ने प्रकाशित की हैं जिनमें पौराणिक पात्रों विशेषकर कृष्ण के चरित्र पर कीचड़ उछाल कर उन्हें व्यभिचारी परस्त्रीगामी और धूर्त-कपटी बतलाया गया है। इसमें ईसाई लेखकों का इतना दोष नहीं जितना कि पांचरात्र, भागवत व वासुदेव आदि सम्प्रदायों के प्रचारकों व लेखकों का है या फिर भागवत व ब्रह्मवैवर्त जैसे पुराणों के रचयिताओं का है। जयदेव के 'गीत गोविन्द' और 'गोपाल सहस्रनाम' में तो सर्वत्र ही कृष्ण के परदारगामी स्वरूप का चित्रण किया गया है। ब्रह्मवैवर्त पुराण में राधा-कृष्ण के सभोग का अत्यंत घृणाजनक एवं अश्लील वर्णन है। भागवत में भी परस्त्रीगमन के स्पष्ट सकेत वर्णित हैं। विद्यापति और चण्डीदास ने तो राधा-कृष्ण पर स्वच्छन्दतापूर्वक लिखा है और उनके विलसमय एव शृंगार प्रधान जीवन का चित्र अपनी कविता में उतारा है। कवि भिखारीदास ने भी ऐसी ही खिलवाड़ उस महापुरुष के चरित्र से की है। ईसाइयों ने केवल इतना किया है कि इन अश्लीय ग्रन्थों से उद्धरण ले-लेकर हिन्दू धर्म की धज उड़ाने का प्रयास किया है। कृष्ण के बारे में इन ईसाई विद्वानों का निम्न मत है।

बिशप कोल्डवैल ने अपनी एक पुस्तक में लिखा है—"श्रीकृष्ण के जीवन के विषय में जो कथाएं पुराणों में बताई जाती हैं, इनका हिन्दू युवकों के चरित्र का नाश करने और उनकी कल्पनाओं को भ्रष्ट करने में सबसे बड़ा भाग है।"

रेवरेण्ड मर्रे मिकल, एम०ए० ने अपनी पुस्तक Letter to Indian Youths. में एक जगह लिखा है "ब्रह्मा इन्द्र, कृष्ण आदि देवों के जो इतिहास विशेषतया पुराणों में वर्णित हैं, वे किसी भी शुद्ध, पवित्र मन के व्यक्ति के लिये घृणाजनक हैं। मैं उनके निन्दनीय कार्यों के वर्णन से अपने पृष्ठों को कलंकित करने का साहस नहीं कर सकता। यदि ऐसे कार्य जो इन देवों के द्वारा किए गए माने जाते हैं, मनुष्यों ने किए होते तो हम में से प्रत्येक भय और लज्जा के मारे स्तब्ध हुए बिना नहीं रहता।"

T.A.M. Gerbier नामक एक कैथोलिक पादरी 'Dialogues on Hiudu Religion पुस्तक में हिन्दू देवताओं की छीछालेदर करने के पश्चात् कृष्ण के बारे में लिखा है," कृष्ण किसी स्त्री को एकान्त में पाकर उसका पीछा करता और किसी विविक्त स्थान को देखकर वहा उस स्त्री से अपनी काम की वासना शान्त करता........ कृष्ण के कार्य चाहे कितने ही घृणास्पद क्यों न हों, हिन्दू लोग अपनी अनगिनत असभ्यतापूर्ण कविताओं में उनका वर्णन करते नहीं लजाते। क्या यह आश्चर्यजनक नहीं है कि वे एक ऐसे व्यक्ति को ईश्वर मान कर पूजते हैं जो अनेक अपराधों का अभियुक्त है। कृष्ण के दुराचार और हत्याओं के कृत्य विश्व में विख्यात हैं।" (क्रमशः)

आर्योपदेशक के अनुभव—(५)

धर्म-संकट

(ले०—पं० जगत्कुमार शास्त्री "साधुसोमतीर्थ" आर्योपदेशक
सी-२।७३, अशोक-विहार फेज-२, देहली-५२)

१—गर्मी के दिन थे। भोजनोपरान्त दुपहरे बाजार गया था। वहां एक परिचित महाशय मिले, बड़ी गरम जोशी से मिले। कभी वे और मैं लाहौर में एक ही मकान में रहते थे। बोले :—

"मैं तो आपको ही खोज रहा था। दीवान हाल के पते से मैंने आप को एक पत्र भी लिखा था। शायद मिला होगा।"

२—"पत्र तो कोई नहीं मिला। कहिये क्या बात है?" मैंने कहा।

३—"आपको मेरे लड़के का विवाह-संस्कार करवाना है।" उन्होंने बात स्पष्ट की।

४—उत्तर में मैंने कहा—"यह तो बड़ी प्रसन्नता की बात है। संस्कार मैं करवा दूंगा। तारीख-पता मुझे नोट करवा दीजिये। बरात कहां जायेगी?"

५—उनका उत्तर असुविधा जनक मिला। बोले :—

"विवाह आज ही है। बरात लेकर के ही तो मैं यहां आया हूं। संस्कार आज रात को ही है। आपको अभी मेरे साथ लक्ष्मीनगर चलना होगा। वहां ही बेटी वाला रहता है। वहां ही बरात ठहरी है। मैं तो आपको खोजने और लेने ही आया था। सो आप मिल ही गये। अब तो आपको विवाह-संस्कार करवाने के बाद ही छोड़ूंगा।

६—दिन के लगभग बारह बजे थे। हमारी बातें देहली के चांदनीचौक में एक मोड़ पर हो रही थीं। कड़ाके की धूप थी—झुलसाने वाली। बातों का क्रम पूरा करने के लिए हम एक दुकान के छप्पर के नीचे जा खड़े हुए थे। और क्या, छप्पर ही उसे कहना चाहिये। जब कभी कोई इस प्रकार अचानक ही मुझे किसी संस्कार के लिए बुलाता है, तो मैं प्रायः इन्कार कर देता हूं। मैं ऐसे ढंग को पण्डित-पुरोहित वर्ग के लिए अपमानजनक समझता हूं। लोग संस्कारों के अवसर पर ही खोजने लगते हैं। वे शायद ऐसा समझते हैं—"क्या है? रस्म ही तो पूरी करनी है। घटिया-बढ़िया जो मिलेगा। उसी से काम चला लेंगे। कमी भी क्या है? एक ढूंढो, हजार मिलते हैं।"

७—जब मैं किसी संस्कार कराने के निमन्त्रण को स्वीकार करता हूं, तो विधि-विधान, समय आदि की सब बातें तय कर लेता हूं। हां, दक्षिणा मैं तय नहीं करता। जो पहिले ही दक्षिणा तय नहीं कर लेते वे पण्डित घाटे में रहते हैं। यह भी मैं जानता हूं। फिर भी मैं दक्षिणा तय नहीं करता। मैं इसे उचित नहीं समझता। कभी-कभी तो दिन-रात दौड़-भाग करके इतने पैसे भी नहीं मिलते कि सवारी में बैठ कर घर वापिस लौटा जा सके। संस्कार के बाद तो लोग प्रायः टरखाने और पीछा छुड़ाने की ही चालें चलने लगते हैं। कभी-कभी दक्षिणा उधार भी हो जाती है। दान भाड़ा, दक्षिणा। बाद में कौन देता-लेता है?

८—मैंने कहा—"क्या संस्कार सायंकाल में भोजन से पहिले हो सकेगा?" वे बोले—"हां—हां, क्यों नहीं, आप जैसे चाहें और जब चाहें वैसा ही होगा। बहुत अच्छा रहेगा। गो-धूली-वेला में संस्कार होगा, तो देखने वालों में प्रचार भी होगा। फिर खा-पीकर लोग आराम भी ठीक प्रकार से कर सकेंगे समागत लोग सुविधा पूर्वक लौट भी सकेंगे।"

९—मैंने फिर कहा—"वैदिक विधि-विधान तो आप जानते ही हैं। संस्कार के सामान की सूची लिख देता हूं, मंगवा रखना। मैं समय पर आ जाऊंगा। पता बतला दीजिये।"

१०—वे बोले—"लेकर तो मैं आपको अपने साथ ही जाऊंगा। कोई बहुत जरूरी काम हो तो उसे झट-पट कर लीजिये। बेटी वाला बहुत पक्का पुराना आर्य समाजी है। सामान सब तैयार मिलेगा। सामान की तैयारी तो बेटी वालों का ही काम होता है। उनके पुरोहित जी भी तो आयेंगे ही। हमारी तरफ से आप होंगे।"

११—बाजार गया तो था मैं कपड़े बदलकर ही; परन्तु कुरता पाजामा पहिन कर। मैंने कहा—"सायंकाल अभी दूर है। घर जाकर, कपड़े बदलकर, पुस्तक लेकर सूचना देकर, समय पर आऊंगा। आप चिन्ता न करें। पता मुझे बतला दें।"

१२—वे बोले—घर पर सूचना देनी क्या जरूरी है। भोजन के बाद तो आप घर लौट ही आयेंगे। "संस्कारविधि" मेरे पास है। वहां आपको दे दूंगा। थोड़े पैसे तो आपके पास होंगे ही। एक धोती-तौलिया यहां बाजार से अपनी पसन्द का खरीद लीजिए। उनका दाम मैं आपको वहां चल कर दे दूंगा। मैं रुपये साथ नहीं लाया। सुना है देहली में जेबकतरे बहुत होते हैं। बस, अब आपका कोई बहाना न चलेगा। आपको मेरे साथ ही चलना होगा।"

१३—उनका ढंग आकर्षक भी था, आग्रहपूर्ण भी। मुझे मानना पड़ा। खादी-भंडार से पांच रुपये वाली एक सबसे सस्ती धोती और एक रुपये वाला एक छोटा-सा तौलिया खरीद कर मैं उनके साथ हो लिया। डेढ़-दो घंटे खड़े-खड़े देहली की बस देवी की इन्तजार में कटे। चार बजते-बजते हम लक्ष्मी नगर जा पहुंचे। "लक्ष्मी नगर" नई देहली में छोटे क्लर्कों की एक सरकारी बस्ती है। नई देहली तो है ही क्लर्कों का शहर। "कहीं की ईंट कहीं का रोड़ा, भानमती ने कुन्बा जोड़ा।" यही हाल है, हमारी नई देहली का। बस के दो टिकट भी मुझे अपने पैसों से ही खरीदने पड़े थे। बेटे का बाप तो जेबकतरों के डर से जेबें खाली करके ही घूम रहा था।

१४—ठिकाने पर पहुंच कर फिर पैसे दे देने की बात उसने कही थी। ऐसी छोटी-छोटी बातों को फिर कौन याद रखता है? वह तो बहुत व्यस्त आदमी—बेटे का बाप।

१५—बेटी वाले ने अपने किसी मित्र के क्वार्टर का एक कमरा खाली करवा लिया था और उसे ही बरात-घर बना डाला था। एक ही दिन की तो बात थी। रात को तो खुली हवा में ही बरातियों को रहना-सोना था, और दूसरे दिन विदा हो जाना था।

१६—बरात घर में पहुंच कर मैंने स्नान कर लिया। पाजामा उतार कर धोती-धारण कर ली। बरातियों की बातें मुझे कर्णकटु प्रतीत होने लगीं। बराती तो होते ही आधे पागल हैं। भले-भले लोग भी बराती बन कर बहकने लगते हैं। बरात घर के आस-पास घूम-फिर कर मैंने बहुत बेचैनी से संस्कार आरम्भ करने की प्रतीक्षा में वह समय बिताया। यह समझने में देर नहीं लगी कि मैं एक गलत जगह पर आ गया हूं। मगर अब क्या हो सकता था। किसी भी यजमान के घर पर जाकर प्रत्येक पुरोहित का हाल प्रायः कैंच-कबूतर जैसा ही हो जाता है।

१७—संस्कार के लिए निर्धारित समय हो चुका था। बेटे वाले को ढूंढ कर मैंने कहा—"समय हो गया है।" वह बोला—सो तो ठीक है। क्षमा करें। बेटी वालों का कहना है कि थोड़ा-सा अन्धकार बढ़ जाने पर ही सब काम ठीक रहेगा, तब रोशनी का चमत्कार भी बहुत दर्शनीय हो जायेगा। भोजन के बाद संस्कार तुरन्त ही आरम्भ कर देना। देर-सबेर तो आपके ही आधीन है।"

१८—मैं मन मसोस कर रह गया। राम कथा बढ़ाने से क्या लाभ? आगे का वृत्तान्त संक्षेप में इस प्रकार है—"वह राजपूत बरादरी का विवाह था। विवाह का मध्यस्थ गायब हो गया था। मध्यस्थ की गैर-हाजरी में विवाह की विशेष-विशेष शर्तों को पूरा करना कठिन हो गया था। बेटी वाले गरीब थे। दोनों पक्षों को एक दूसरे पर भरोसा न था। विवाह-संस्कार से तो उन विशेष शर्तों का कोई सीधा सम्बन्ध न था; तथापि दोनों ही पक्ष घोर ग्रामीण और रूढ़ीवादी थे। दोनों ही यह समझते थे कि बाद में उन शर्तों को पूरा न कराया जा सकेगा। दोनों ही सशंक थे। साधारणतया तो पण्डित-पुरोहितों को विवाह सम्बन्धों की विशेष शर्तों का कुछ पता ही नहीं चलता। परन्तु उस दिन मुझे कुछ-कुछ पता चल गया था। शर्तों का उल्लेख मैं नहीं करता। विज्ञजन तो बिना लिखे भी समझेंगे ही।

१९—मध्यस्थ जी महाराज का कुछ भी पता न चला। वातावरण विषाक्त हो गया। बरातियों को घुटन सी-भी हो रही थी, विक्षोभ भी उत्तेजनायें और सहमी-सहमी चिन्तायें उनके चेहरों पर खेल-खेल जाती थीं। आस-पास के बाबु-बबुआयनों की छोटी-छोटी मण्डलियां बरातियों और घरातियों के विषय में ही काना-फूसियों का आनन्द लूट रही थीं।

शेष पृष्ठ ९ पर

पृष्ठ ८ का शेष

२०—अब "धर्म-संकट" अपनी चरम-सीमा पर आ पहुंचा, तब न जाने किसने ? कैसे ? एक मध्यम-मार्ग खोज निकाला। बरात का जलूस बिल्कुल फीका रहा। रिवाज पूरा हो गया। दस बजे। इधर बरात को भोजन मिला। उधर विवाह-संस्कार होने लगा। शायद यही वह मध्यम-मार्ग भी था।

२१—बारह बजे संस्कार पूरा हो गया। आशीर्वाद देकर मैंने शान्ति पाठ पढ़ा। बेटे वाले ने पांच रुपये दक्षिणा दी। मैंने धोती-तौलिये वगैरा के मूल्य का संकेत किया। "वगैरा" शब्द का अर्थ था बस का किराया। वह लुटा-लुटा सा बोला—"इस समय तो सब कुछ इसी में समझ लें। फिर कभी कहीं कसर निकल जायेगी।" मुझे समझना पड़ा।

२२—बेटी वाला बोला—"आपका बहुत धन्यवाद, पण्डित जी ! आपने बहुत अच्छा संस्कार करवाया। मैंने तो आज पहिली बार ही आर्य समाजी ढंग का विवाह-संस्कार देखा। अपना पता बताते जाना। जरूरत होने पर अब तो हम आपको ही बुलवाया करेंगे। बुरा न मानना, वर पक्ष के पुरोहित को दान-दक्षिणा देने का हमारे रजपूती परिवार में परम्परा से निषेध है। नहीं तो चार रुपये कोई बड़ी बात न थी।

२३—रात के दो बजे थे। न मेरे करने का कोई काम था, न सोने का कोई इन्तजाम। मैंने विदा मांगी। मिल गई। चला सोचा—कहां जाऊं ? घर आठ-नौ मील था। सवारी कोई न थी। यदि खोजने पर टैक्सी मिल भी जाती, तो सात-आठ रुपये का खर्च होता। घर वालों और गली मोहल्ले वालों को जगाना भी पड़ता। मैंने पास ही विनय नगर में एक मित्र के घर का मार्ग पकड़ा।

२४—वर्ष-डेढ़ वर्ष के बाद मैं वहां गया था—अचानक और बेवक्त। क्वार्टर वही था। क्वार्टर के बाहिर कई खाटें बिछी थीं और उन पर स्त्रियां-बच्चे, तथा कई पुरुष सोये पड़े थे। किसी-किसी खाट पर तो दो-दो पुरुष भी सोये थे, गहरी नींद में बेसुध। मैंने धीरे से अपने मित्र का नाम पुकारा—दूर से ही।

२५—कुछ सोने वालों ने करवट बदली। एक जनानी आवाज आई कौन है ? कोई पंजाबन थी। मेरा मित्र तो पंजाबी नहीं है। यह कौन है ? सोचने के साथ ही मैंने कहा—"मैं हूं।" एक आदमी उठ कर मेरे पास आया। बोला—"कौन है तू ?" पंजाबी था। मैंने संक्षेप में सब कुछ बताया। वह बोला—"इस नाम का कोई बाबू यहां नहीं रहता। यह तो भल्ला साहेब का क्वार्टर है। सोना है, तो सो जाओ। सवेरे चले जाना।" जान-पहचान न होने पर भी उनका व्यवहार सौजन्यपूर्ण था,

२६—अपनी खाट लाकर उसने मेरे सामने डाल दी। पानी भी पिलाया। मैं लेट गया। पानी का लोटा कटोरी से ढक कर वह मेरे पास रख गया। फिर वह न जाने कहां जाकर सोया ? मुझे नींद कुछ आई, कुछ न आई। अब दिन निकलने वाला था। आस-पास के क्वार्टरों में तो सन्नाटा था; परन्तु मेरे क्वार्टर में हल-चल आरम्भ हो गई। मैं अर्ध-निद्रा में लेटा रहा।

२७—एक देवी आई। बोली—"उठो भाई ! मुंह-हाथ धो लो। चाय पी लो। सब लोग काम पर जाने वाले हैं। आप भी तैयार हो जाओ।"

२८—हाथ-मुंह धोकर मैंने चाय का प्याला थाम लिया। थाली में एक परौठा मेरे सामने रखा था। वह एक ही हमारी चार रोटियों के बराबर था। चाये के साथ मैंने नमकीन परौंठा खाना-आरम्भ कर दिया। उन अनजान लोगों की इस अचानक और अप्रत्याशित कृपा के लिए मैं मन ही मन में उनकी सराहना भी कर रहा था। संस्कार घर से तो भूखा ही लौटा था।

२९—रात को जो सज्जन मिले और खाट बिछा गये थे, वे एक हाथ में चाये का प्याला और दूसरे में परौठे वाली अपनी थाली लेकर आये। नमस्ते, नमस्ते हुई। वे भी मेरे पास ही खाट पर बैठ कर खाने-पीने लगे। मैंने पूछा—

"आप किस दफ्तर में काम करते हैं ?"

३०—वे बोले—"हम तो शरणार्थी हैं। जब ना पाकिस्तान बना तभी आकर देहली देखनी पड़ी थी। "हम किसी दफ्तर में काम नहीं करते। तीन भाई और तीन लड़के मिलाकर हम सब छः मर्द हैं, जो सड़कों के किनारे बैठकर या घूम-फिर कर नारियल की गिरी बेचने का काम करते हैं। मेरी पत्नी है और दो लड़कियां। दोनों भाई विवाहित हैं। सब देवियां भी काम में हमारी सहायता करती हैं।"

३०—मैं—यदि यह बात है, तो यह सरकारी क्वार्टर आपको कैसे मिल गया ?

वह—यह हमने भल्ला साहेब से किराये पर ले लिया है, जिनको यह मिला है। वे किसी दफ्तर में नौकर हैं। सब चलता है। यद्यपि हमें इसका बहुत अधिक किराया देना पड़ता है; परन्तु यह हमारे काम के ठिकानों के कुछ समीप है। इसीलिये अधिक किराया देकर भी हम यहां रहते हैं।

३१—मैं—क्या नारियल की गिरी के साथ कोई दूसरा सौदा भी आप बेचते हैं।

वह—नहीं।

३२—मैं—देवियां आपके काम में क्या सहायता करती हैं ?

वह—खाना पकाना, घर की सफाई और कपड़े धोना तो करती ही हैं, दो पहर के समय जाकर नियत स्थान पर हमको बेचने के लिये आवश्यक माल और दोपहर का भोजन भी दे आती हैं। बात-चीत कर आती हैं। उधर से साग-सब्जी और घर के लिये आवश्यक सामान भी ले आती हैं। घर पर वे नारियल के रेशे से रस्सी भी बांटती हैं। हमने रस्सी बाटने की मशीन लगा रखी है। देखोगे ?"

३३—मैंने मशीन देखने की इच्छा और उत्सुकता प्रगट की। चाये पीकर हम अन्दर गये। कमरों में बोरियों में भरे हुए नारियलों से बड़े-बड़े चट्टे लगे थे। नारियल के रेशे और नारियल की कटोरियां (हड्डियां) जहां-तहां पड़ी थीं। क्वार्टर के अन्दर फैक्टरी जैसा दृश्य था। अच्छा था। श्रद्धा उपजती थी। घर-गृहस्थी का सब सामान उत्तम था। बिस्तर और वस्तु सबके उत्तम थे। देवियों ने मोटे-मोटे जेवर भी पहिन रखे थे। किसी ने मुझे नमस्ते की। कोई एक तरफ हट गई। एक लड़की ने नारियल का रेशा कूटकर दिखलाया, जिससे कि रस्सी तैयार की जाती है। फिर एक देवी ने छोटे-से चरखे जैसी मशीन को पांव से चलाकर, रस्सी बांट कर दिखलाई। रस्सी साफ, सुन्दर और मजबूत थी।

३४—मैंने पूछा—"इस रस्सी के काम में आमदनी कैसी है ?

वह बोला—"मेहनत के पैसे हैं, बुरे नहीं हैं। नारियल का रेशा तो हमें मुफ्त में ही खूब मिल जाता है। पहिले हम इसे फेंक देते थे, या जला डालते थे। इसका कोई ग्राहक तो था ही नहीं। मगर अब हमें ठीक मार्ग मिल गया है। नारियल की कटोरियों का उपयोग ईन्धन के रूप में हो जाता है।

३५—मैं—नारियल आप कहां से खरीदते हैं ?

वह—हमने मद्रास की तरफ इन्तजाम कर रखा है। वहां गोदाम भी है। माल रेल से आता रहता है।

३६—मैं—क्या आप यहां दुकानदारों के पास भी कच्चा नारियल बेचते हैं ?

वह—नहीं, हमें तो अपनी जरूरत भर माल ही बड़ी मुश्किल से मिलता है।

३७—देखते ही देखते वे दो भाई और तीन लड़के नाश्ता करके अपने अपने काम पर चले गये। उनके कन्धों पर बड़े-बड़े थैले झूल रहे थे। थैलों में नारियल थे और एक-एक थाली व एक-एक गिलास थे। गिलास पानी के लिए। थाली नारियल की गिरी को सजा-दिखाकर बेचने के लिये।

३८—वे पैदल-पैदल जा रहे थे। मस्त-चाल, सुडोल शरीर, हंस-मुख चेहरे। कपड़े क्लर्कों जैसे। उसने पुकार कर कहा—"मैं भी आता हूं। कल वाले स्थान पर ही।" यह उसकी सूचना थी, जाने वालों के लिए। फिर वह मेरी तरफ मुड़ा। बोला—"हौजखास में पांच सौ गज का प्लाट ले लिया है। ईश्वर की कृपा से अगले साल में किरायेदारी की लानत से छुटकारा हो जायेगा। कभी फिर भी आना, मिलना, दर्शन देना।"

वैदिक परिवार व्यवस्था ही सच्चे सुख का साधन है

(ले० चौ० किशनाराम आर्य मु० पो० ललानियां जि० श्री गंगानगर राजस्थान)

अगर निष्पक्ष कहा जाय तो मानव समाज के दुःखी होने का महान् कारण वेदों की आज्ञा में न चलना ही है। वर्णव्यवस्था और आश्रम व्यवस्था के लोप होने से वैदिक परिवार व्यवस्था का लोप हो गया। "वसुधैव कुटुम्बकम्" सारा संसार ही एक परिवार है के आदर्श सिद्धान्त को हमने भुला दिया है। अगर हम मानव समाज को सुखी बनाना चाहते हैं तो हम फिर से वैदिक परिवार व्यवस्था को कायम कर हम इस धराधाम को फिर से स्वर्ग बना सकते हैं। अगर हम पुरुषार्थ करेंगे तो वेद के अनुसार "हे मनुष्य सदा याद रख, पुरुषार्थ तेरे दाहिने हाथ में रहता है और विजय बायें हाथ में रहती है। अथर्ववेद ७।५०।८ ईश्वर के अमृत पुत्र और पुत्रियो! अपने कर्त्तव्य को पहचानो! सुप्रभात की सुनहरी वेला है। पाखंड से आलस्य से और अविद्या तथा कुविद्या से मुख मोड़ो प्रथम ब्रह्मचर्य आश्रम का पालन करके गुरुकुलों में पढ़ो पूर्णविद्वान् बन करके गृहस्थाश्रम में प्रवेश कर "मनुर्भव जनया दैव्यं जनम् ॥" (ऋग्वेद १०।५३।६) अर्थात् मनुष्य बनो और दिव्य सन्तान उत्पन्न करो। क्योंकि विवाह विलास के लिए नहीं है, अपितु दिव्य सन्तानों के निर्माण के लिए है। माता को वीर प्रसु (वीरसुः) होना चाहिए। एक वीर माता के लिए वेद में कहा गया है। "मम पुत्रा शत्रुहणोऽथो में दुहिता विराट्। उताहमस्मि संञ्जया पत्यौ मे श्लोक उत्तमः॥ ऋग्वेद १०।१५९।३॥

अर्थ:—मेरे वीर पुत्र शत्रु का संहार करने वाले हैं, मेरी पुत्रियां विशेष रूप से तेजस्वी हैं। मैं स्वयं विजयशीला हूं। मेरे पूज्य पतिदेव की कीर्ति उत्तम है॥ वेद आज्ञा के अनुसार श्रेष्ठ संतान उत्पन्न करने के लिये नारी (पत्नी) का पतिव्रत धर्म पालन और पति का पत्नीव्रत धर्म पालन तथा बेटे बेटियों का माता पिता का आज्ञाकारी होना जरूरी है। मर्यादा में बंधे रहने से ही आदर्श समाज की स्थापना हो सकेगी।

अथर्ववेद में भी दो ऋचाएं हमें मर्यादा में बंधे रह कर चलने का उपदेश देती हैं। यथा "पुत्र माता पिता का अनुव्रती (अनुसरण करने वाला) और स्नेह में रखने वाला हो। श्रेष्ठ मन वाला है, पत्नी पति के साथ निष्कपट प्रेम करने वाली हो। सोम्य स्वभाव और मीठी बोली बोलने वाली हो। भाई भाई, बहिन, तथा भाई बहिन भी आपस में किसी तरह का बैर भाव न रखें। सभी समान गुण, कर्म और स्वभाव वाले हों। आपस में सुखप्रदवाणी बोलें।

आपसी लड़ाई झगड़ों को मिटाने का इससे सुन्दर उपदेश हमें कहां मिल सकेगा। परिवार के सभी सदस्य अपने ऐब (त्रुटियों) को छुपाने के लिए झूठ फरेब छल कपट का सहारा लेकर अपने दोष दूसरों के मत्थे मढ़ना छोड़ कर उपरोक्त वेदाज्ञा के अनुकूल प्रेम से चलना सीखें तो आज समाज में जो बुराइयां हैं वे अतिशीघ्र हमारा पीछा छोड़ देंगी। असंख्य योनियों में श्रेष्ठ प्राणी फिकर को छोड़ आगे बढ़ वेद कहता है। उत्क्रामातः पुरुष मावपत्था मृत्योः पड्वीशमवमुञ्चमानः। माच्छित्था अस्माल्लोकादग्नेः सूर्यस्य संदृशः॥ (अथर्ववेद ८।१।४) अर्थात् हे पुरुष! उठ खड़ा हो, आगे बढ़ उन्नति कर, नीचे मत गिर, अवनति की ओर मत जा। यदि मृत्यु भी तेरे मार्ग में आकर खड़ी हो जावे तो भी प्रवाह मत कर, मौत की बेड़ियों को काटता हुआ आगे बढ़। संसार के विघ्न बाधाओं से घबरा कर अपने इस शरीर रूपी लोक से वियुक्त मत हो, आत्म हत्या मत कर सर्वत्र प्रभु की ज्योति का दर्शन करो।

अनेक कुरीतियां मानव समाज को अवनति की तरफ ले जा रही हैं। कुरीति निवारण के लिये आर्यसमाज विश्व व्यापी प्रचार कर रहा है। लेकिन फिर भी सूर्योदय होने पर उल्लू की तरह आंखें मींचे वैज्ञानिक उन्नति का दम भरने वाला मानव उन्नति (आर्यसमाज) के सार्वभौम (वैदिक) सिद्धान्तों से दूर भागे जा रहा है। ईश्वर पथ भ्रष्ट भाई बहिनों का मार्ग दर्शन (पथप्रर्शन) करें। और विदेशी विवाह विच्छेद (तलाक) जैसी घृणित कानून का भूल कर भी सहारा न लें। इससे तो मनुष्य समाज का सर्वनाश हो रहा है। ●

वही युगपुरुष देव महर्षि दयानन्द था

(पं० वासुदेव शर्मा 'वसु' विद्यावाचस्पति, आर्यसमाज माडल टाउन, रोहतक)

किसने फिर से वेदों का प्रचार किया था।
किसने वैदिक धर्म का पुनरुद्धार किया था।
नारी को समता का दर्जा किसने दिलाया।
नीच जनों को किसने फिर से गले लगाया॥
कहो कहो, वह कौन देश का दर्दमन्द था?
और कौन! बस वही महर्षि दयानन्द था॥

स्वतन्त्रता का कहो किसने उद्घोष किया था।
देश धर्म हित पहले किसने जोश दिया था।
भारत माँ का दर्द प्रथम था किसने जाना।
किसने पहले देश की हालत को पहचाना।
बोलो अगनित तारों में वह कौन चन्द था?
और कौन! बस वही जगद् गुरु दयानन्द था॥

किसने रोते आर्य जाति के आंसू धोये।
विष वृक्षों को काट अमर फल किसने बोये॥
किसने सतरह बार पिया हंसकर विष प्याला।
किसे उपाधि दी जनता ने 'वेदों' वाला॥
बोलो ऐसा कौन यहां पर विश्व वंद्य था।
और कौन! बस वही युगपुरुष दयानन्द था॥

कौन पताका लिए ओ३म् का दर दर डोला।
आर्य हमारा नाम है, था यह किसने बोला॥
गोरक्षा हित किसने था आन्दोलन छेड़ा।
किसने परली पार किया था धर्म का बेड़ा॥
बोलो किसने प्रथम किया पाखण्ड खण्ड था।
और कौन! बस वही अमर सुत दयानन्द था॥

किसने सींचा हृदय रक्त से वृक्ष धर्म का।
किसने फूंका मंत्र विश्व में यज्ञ कर्म का।
मिटी जा रही थी गरिमा जब यहां की सारी।
नर के पांवों की जूती होती जब नारी॥
किसने तब यह मार्ग नाश का किया बन्द था?
और कौन! बस वही महर्षि दयानन्द था॥

●

आर्यप्रतिनिधि सभा पंजाब जालन्धर
(वेदप्रचार विभाग के समाचार)

१. दयानन्द मठ घण्डरा (कांगड़ा)—यह मठ पूज्य स्वामी सर्वानन्द जी महाराज द्वारा पहाड़ी क्षेत्र में प्रचारार्थ खोला गया है। मठ का वार्षिकोत्सव बड़ी धूमधाम से सम्पन्न हुआ। हजारों व्यक्तियों ने लंगर में भोजन पाया। श्री मुनि जी, श्री सोमवीर जी शास्त्री तथा आर्यसमाज पठानकोट के अधिकारियों ने इसमें पूरा पूरा सहयोग दिया। श्री श्यामसिंह हितकर मण्डली ने इसमें भाग लिया। १०१) रु० वेदप्रचार में मिला।

२. श्रद्धानन्द बाजार (अमृतसर)—पंजाब की प्रसिद्ध समाज है उत्सव पर श्री पं० हरिदेव जी, श्री निरंजनदेव जी वे० प्र० अ०, श्री रामकिशोर जी वैद्य एवं पं० सत्यव्रत जी शामिल हुए। श्री विद्याभूषण तथा श्री ओम्प्रकाश आर्य दो भजनोपदेशकों ने भी इसमें भाग लिया। ५००) रु० वेदप्रचार में प्राप्त हुआ।

३. पुतलीघर, अमृतसर—आर्यसमाज का वार्षिकोत्सव बहुत सफल रहा। श्री श्यामसिंह हितकर मण्डली ने अपने भजनों से खूब आनन्दित किया २००) रु० वेदप्रचार में मिला।

४. जण्डियाला गुरु—यहां श्री सत्यव्रत जी आर्योपदेशक तथा श्री सत्यपाल जी भजनोपदेशक ने कुछ दिन खूब अमृत वर्षा की १०१) रु० वेदप्रचार में प्राप्त किये।

५. दीनानगर—आर्यसमाज का दीपावली के शुभावसर पर विशेष कार्यक्रम बहुत सफल रहा। इसमें श्री पं० सत्यव्रत, पं० निरंजनदेव वे० प्र० अ०, श्री शांतिप्रकाश जी महोपदेशक ने भाग लिया श्री विद्याभूषण और श्यामसिंह हितकर मण्डली के मनोहर भजन होते रहे। ३००) रु० वेदप्रचार में मिला।

६. कपूरथला—आर्यसमाज का वार्षिकोत्सव बड़ा सफल रहा। उत्सव एवं कथा में श्री पं० समरसिंह जी वेदालंकार, श्री ओम्प्रकाश जी आर्य, श्री रामकिशोर जी वैद्य तथा श्री सत्यव्रत जी शामिल हुए। इनके अतिरिक्त श्री विद्याभूषण और हरिश्चन्द्र की मण्डली के मनोहर भजन होते रहे। समाज की ओर से २५१) रु० वेदप्रचार निधि में मिले।

७. बस्ती गुजां जालन्धर—दीपावली पर श्री हरिश्चन्द्र मण्डली का कार्यक्रम हुआ। १५) रु० भेदप्रचार में मिले।

८. फगवाड़ा—पंजाब की प्रसिद्ध आर्यसमाज फगवाड़ा का वार्षिकोत्सव बड़ा सफल रहा उत्सव में श्री ओम्प्रकाश जी आर्य, श्री सत्यपाल एवं श्री विद्याभूषण जी पधारे। ५००) रु० वेदप्रचार में मिले।

९. बैंक फील्ड गंज लुधियाना—आर्यसमाज का वार्षिकोत्सव बड़ी सफलता से सम्पन्न हुआ उत्सव पर श्री रामकिशोर जी वैद्य श्री सत्यव्रत जी, श्री महेन्द्रपाल भजनोपदेशक एवं श्री रामचन्द्र वर्मा पधारे। ३००) रु० वेदप्रचार में प्राप्त हुआ।

१०. साबुन बाजार लुधियाना—दीपावली पर पं० निरंजनदेव जी का भाषण हुआ। २५) रु० वेदप्रचार में प्राप्त किये।

११. राजपुरा टाऊन शिप—एक सप्ताह श्री रामशिकोर वैद्य एवं श्री महेन्द्रपाल जी का कार्यक्रम चलता रहा १५१)रु० वेदप्रचार में मिले।

१२. सोहना—आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव पर श्री पं० रामकिशोर जी वैद्य ने भाग लिया। श्री महेन्द्रपाल, अमरसिंह जी ने अपने मनोहर भजनों से जनता को आनन्दित किया। ३००) रु० वेदप्रचार में मिले।

१३. नारायण गढ़ दीपावली के शुभावसर पर श्री पं० भक्तराम जी का कार्यक्रम चलता रहा ५१) रु० वेदप्रचार में मिले।

१४. बरनाला—श्री यात्री जी ने एक सप्ताह आर्यसमाज में कथा रूप में प्रचार किया १०१) रु० वेदप्रचार में प्राप्त किया।

१५. हांसी—पं० समरसिंह जी वेदालंकार समाज का० वि० के उत्सव पर पधारे १२५) रु० प्राप्त किये। सभी समाजों का, सभा की ओर से हार्दिक धन्यवाद।

—निरञ्जनदेव वेदप्रचाराधिष्ठाता

आर्यसमाज मोती चौक, रेवाड़ी (हरयाणा)

वार्षिकोत्सव १६ से १८ नवम्बर को बड़े उत्साह पूर्वक मना रहा है।

—मन्त्री लीलाधर

कवित्त

(ब्रह्मचारी विद्यासागर शास्त्री प्रथमवर्ष
वैदिक साधन आश्रम यमुनानगर)

थोड़ा समय निकालकर जो, ईश्वर के गुण गावेगा।
भवसागर से पार उतरकर, जग में यश को पावेगा ॥ १ ॥
दुनिया एक स्थली है, कोई आता कोई जाता है।
होगा जीवन सफल उसी का, जो प्रीति प्रभु से लगायेगा ॥ २ ॥
सूर्य रश्मियाँ प्रतिदिन चमकें, मानव को ये जताती हैं।
जैसे द्योदित हम होते हैं, वैसे तू भी होवेगा ॥ ३ ॥
पक्षीगण चहचहा रहे हैं, ईश्वर के गुण गा रहे हैं।
तू भी भज ले "ओ३म्" नाम, फिर वर्ष शतायु होवेगा ॥ ४ ॥
प्रतिदिन "जीवेम शरदः शतम्" का पाठ यदि तू करता है।
"ईशावस्यमिदं सर्वं", ऐसा अगर तू मानेगा ॥ ५ ॥
जीवन व्यर्थ चला जाता है, मानव फिर तू रोता है।
ये यदि अमूल्य घड़ियाँ बीत गईं, तू अन्त समय पछतावेगा ॥ ६ ॥
निन्दा स्तुति छोड़ दे मूरख, ईश्वर गुण नित गाया कर।
"सागर" सफल बना ले जीवन, नहिं अन्तकाल फिर रोवेगा ॥ ७ ॥
अर्णव वीचि उठी जब जल से, हमें वह क्या सन्देश सुनाती है।
उठ जाग ! सुबह और शाम जो, परमात्मा को ध्यावेगा ॥ ८ ॥ ●

आर्यसमाज के विरुद्ध कम्युनिष्ठ सक्रिय

अजमेर "आर्यसमाज शिक्षा सभा" एक महत्वपूर्ण सरकार से रजिस्टर्ड विशाल सोसाइटी है जिसके अन्तर्गत दयानन्द पोस्ट डिग्री कालेज, टीचर्स ट्रेनिंग कालेज, दो हायर सेकण्डरी तथा एक सैकण्डरी हाई स्कूल तथा कई मिडिल एवं प्राथमिक स्कूल सुचारू रूप से चल रहे हैं। इनमें से डी० ए० वी० स्कूल जैसी कुछ संस्थायें तो लगभग ८० वर्ष से अपना शिक्षण कार्य गौरवपूर्ण ढंग से कर रही हैं। परन्तु विगत कुछ वर्षों से कालेज के कर्मचारियों में छद्मवेषी कुछ अनभिलषित तत्वों का प्रवेश दुर्भाग्य से हो गया है जो प्रच्छन्नरूप से संस्थाओं के हितचिन्तन के स्थान पर उनका अहित करने में ही अपनी कारगुजारी समझते हैं परन्तु जब अधिकारियों को उनके कम्युनिष्ट टाइप के हथकंडों का एवं हानिकारी षड्यन्त्रों का पता चला और उनमें से कुछ के विरुद्ध जब अनुशासनात्मक कार्यवाही की गई तो उन्होंने आर्यसमाज तथा उसकी संस्थाओं के विरुद्ध एक तथाकथित कर्मचारी संघ बनाकर संस्थयाओं की व्यवस्था भंग करने उन्हें बदनाम करने और कर्मठ अधिकारियों पर कीचड़ उछालने का नियमित अभियान चला रखा है। जो सर्वथा निन्दनोय है जिसका उद्देश्य यह प्रतीत होता है कि आर्यसमाजी अधिकारियों से इन संस्थाओं को येन केन प्रकारेण अलग करके कम्युनिस्टों के हाथों में उन्हें सौंप दिया जावे। शायद उन्हें पता नहीं कि आर्यसमाज एक सार्वदेशीय विशाल सार्वभौम संस्था है जिसने निजाम जैसे दुर्दम्य शासकों के दांत खट्टे कर दिये थे। हमारी शिक्षा सभा की इन संस्थाओं में लगभग ३०० कर्मचारी हैं वे सब अपना कार्य बड़े मनोयोग से एवं सहयोग से करते हैं। विघ्नकारी ऐसे केवल १०-५ व्यक्तियों से समस्त आर्य भाई सावधान एवं सतर्क रहें।

—डा० सूर्यदेव शर्मा एम० ए०, मंत्री आर्यसमाज अजमेर।

देवनागरी में पता लेखी मशीन

अब देवनागरी में पता लिखने वाली मशीनें भी बनने लगी हैं। डाकतार महानिदेशालय ने निश्चय किया है कि इन मशीनों को पहले लखनऊ, भोपाल, पटना, जयपुर, अम्बाला तथा शिमला क्षेत्रों के टेलीफोन बिलों पर देवनागरी में पते लिखने के लिए मंगाया जाए। बाद में अन्य मण्डलों में भी इस योजना को लागू किया जायेगा। दिल्ली दुग्ध योजना ने तथा कई नगरों के बिजली संस्थानों ने भी ये मशीनें मंगाई हैं। विभिन्न क्षेत्रों में ऐसे अनेक कार्यालय होंगे जहाँ बिलों पर अथवा पत्रों पर या पत्रिकाओं और पैकिटों पर पते मशीन द्वारा अंग्रेजी में लिखे जा रहे होंगे। सम्बन्धित कार्यालयों को देवनागरी पता लेखी मशीन मंगाने का सुझाव दिया जाये तो उससे भारतीय भाषाओं के प्रचार की दिशा में काफी प्रगति संभव हो सकेगी।

जगन्नाथ—संयोजक, राजभाषा कार्य केन्द्रीय सचिवालय हिन्दी परिषद् एक्स वाई-६८, सरोजिनी नगर, नई दिल्ली-२३।

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब द्वारा प्रकाशित और प्रचारित वैदिक साहित्य

१. बलिदान जयन्ती स्मृति ग्रन्थ—आर्य बलिदानों की गाथा मूल्य ४-५०
२. सोम सरोवर-वेदमन्त्रों की व्याख्या —पं० चमूपति एम. ए. ३-००
३. जीवन ज्योति-वेदमन्त्रों की व्याख्या „ „ ३-००
४. नीहारिकावाद और उपनिषदें „ „ ०-२५
५. Principles of Arya samaj „ „ १-५०
६. Glimpses of swami Daya Nand „ „ १-००
७. पंजाब तथा हरयाणा का आर्य समाज
प्रि० रामचन्द्र जावेद २-००
८. वैदिक सत्संग पद्धति सन्ध्या हवनमन्त्र अर्थ रहित विधि १-००
९. वेदाविर्भाव —आर्यमर्यादा का विशेषांक ०-६५
१०. यजुर्वेद अ० ३२ का स्वाध्याय „ „ „ ०-५०
११. वेद स्वरूप निर्णय —पं० मदनमोहन विद्यासागर
१२. व्यवहारभानु —महर्षि स्वामी दयानन्द १-००
१३. स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश— „ „ ०-४०
१४. Social Reconstruction By Budha & Swami Daya Nand By. Pt. Ganga Prasad Upadhya M. A. २-००
१५. Subject Matter of the Vedas By S. Bhoomanad १-००
१६. Enchanted Island By Swami Staya Parkashanand १-००
१७. Cow Protection By Swami Daya Nand ०-१५
१८. वेद में पुनरुक्ति दोष नहीं है आर्यमर्यादा का विशेषांक २-००
१९. मूर्तिपूजा निषेध „ „ ०-५०
२०. धर्मवीर पं० लेखराम का जीवन —स्वामी श्रद्धानन्द १-२५
२१. कुलियात आर्य मुसाफिर प्रथम भाग—पं० लेखराम की पुस्तकों का संग्रह ६-००
२२. „ „ दूसरा भाग „ „ ८-००
२३. मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र —कु० सुशीला आर्या एम. ए. ०-२५
२४. योगीराज कृष्ण „ „ „ ०-१५
२५. गोकरुणा निधि —स्वामी दयानन्द सरस्वती ०-२०
२६. आर्यसमाज के नियम उपनियम ०-१०
२७. आर्य नेताओं के वचनामृत —साईंदास भण्डारी ०-१२
२८. कायाकल्प —स्वामी समर्पणानन्द सरस्वती १-५०
२९. वैदिक धर्म की विशेषतायें —पं० हरिदेव सिद्धान्त भूषण ०-१५
३०. स्वतन्त्रानन्द लेखमाला —स्वा० स्वतन्त्रानन्द जी की जीवनी तथा उनके व्याख्यान १-२५
३१. आत्मानन्द लेखमाला—स्वामी आत्मानन्द सरस्वतीकी जीवनी १-२५
३२. आर्यसमाज के सदस्यता फार्म —सैंकड़ा १-५०
३३. महान् दयानन्द —पं० शिवदयालु आर्य ०-७५
३४. दयानन्द चरित्र —पं० देवेन्द्रनाथ १-५०
३५. वैदिक सिद्धान्त —पं० चमूपति एम० ए० १-००
३६. मुक्ति के साधन —पं० मदनमोहन विद्यासागर १-००
३७. महापुरुषों के संग —श्री सत्यव्रत १-५०
३८. सुखी जीवन —श्री सत्यव्रत २-००
३९. एक मनस्वी जीवन —पं० मनसाराम वैदिक तोप १-५०
४०. छात्रोपयोगी विचारमाला —जगदेवसिंह सिद्धान्ती १-५०
४१. स्त्री शिक्षा —पं० लेखराम आर्य मुसाफिर ०-६०
४२. विदेशों में एक साल —स्वामी स्वतन्त्रानन्द २-२५
४३. वेद विमर्श —पं० भगवद्दत्त वेदालंकार २-००
४४. वेद विमर्श —पं० वेदव्रत शास्त्री २-००
४५. आसनों के व्यायाम „ „ „ १-००
४६. महर्षि जीवन गाथा —स्वामी वेदानन्द वेदवागीश २-२५
४७. मांस मनुष्य का भोजन नहीं—स्वामी ओमानन्द सरस्वती १-००
४८. वीर भूमि हरयाणा „ „ „ ४-००
४९. चोटी क्यों रखें —स्वामी ओमानन्द सरस्वती ०-५०
५०. हमारा फाजिल्का —श्री योगेन्द्रपाल १-५०
५१. सत्संग स्वाध्याय —स्वामी ओमानन्द सरस्वती ०-५०
५२. जापान यात्रा „ „ „ ०-७५
५३. भोजन „ „ „ ०-७०
५४. ऋषि रहस्य —पं० भगवद्दत्त वेदालंकार २-[illegible]
५५. महर्षि का विष पान—अमर बलिदान—राजेन्द्र जिज्ञासु ०-६५
५६. मेरा धर्म —आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति ७-००
५७. वेद का राष्ट्रिय गीत „ „ „ ५-[illegible]
५८. ईशोपनिषद्भाष्य —इन्द्र विद्या वाचस्पति २-००
५९. पं० गुरुदत्त विद्यार्थी जीवन —डा० रामप्रकाश १-३०
६०. वैदिक पथ —पं० हरिदेव सिद्धान्त भूषण २-००
६५. वैदिक प्रवचन —पं० जगत्कुमार शास्त्री २-२५
६१. ज्ञानदीप —पं० हरिदेव सिद्धान्त भूषण २-००
६२. आर्यसमाज का सैद्धान्तिक परिचय—स्व० अनुभवानन्द ०-५५
६३. The Vedas ०-५०
६४. The Philosophy of Vedas —Swami Satya Parkash ०-५०
६६. ईश्वर दर्शन पं० जगत्कुमार शास्त्री १-००
६७. श्वेताश्वरोपनिषद् „ „ ४-००
६८. ब्रह्मचर्य प्रदीप „ „ ४-००
६९. भगवत प्राप्ति क्यों और कैसे स्वा० सत्यानन्द ०-६०
७०. आर्य सामाजिक धर्म „ „ ०-७५
७१. बोध प्रसाद —स्वामी श्रद्धानन्द ०-२५
७२. ऋषि दर्शन —पं० चमूपति एम. ए. ००-२५
७३. ऋषि का चमत्कार „ „ „ ००-१२
७४. वैदिक जीवन दर्शन „ „ „ ००-२०
७५. वैदिक तत्व विचार „ „ „ ००-५०
७६. देव यज्ञ रहस्य „ „ „ ००-३५
७७. स्वतन्त्रानन्द संस्मरणांक १-५०

सब पुस्तकों के प्राप्ति स्थान—

१. आर्यप्रतिनिधि सभा पंजाब, गुरुदत्त भवन, जालन्धर (४२५०) टेलीफोन
२. „ „ „ दयानन्द मठ रोहतक (हरयाणा) „ (५७४)

आर्योद्देश्य रत्नमाला

(९६) पुराण—जो प्राचीन ऐतरेय, शतपथ ब्राह्मण आदि ऋषि, मुनि कृत सत्यार्थ पुस्तक हैं, उन्हीं को पुराण, इतिहास, कल्प, गाथा और नाराशंसी कहते हैं।

(९७) उपवेद—जो आयुर्वेद वैद्यक शास्त्र, जो धनुर्वेद शस्त्र विद्या, राजधर्म, जो गन्धर्व वेद गान शास्त्र और अर्थवेद जो शिल्प शास्त्र है; इन चारों को उपवेद कहते हैं।

(९८) वेदाङ्ग—जो शिक्षा, कल्प, व्याकरण निरुक्त, छन्द और ज्योतिष आर्ष सनातन शास्त्र है; इनको वेदाङ्ग कहते हैं।

(९९) उपांग—जो ऋषि-मुनिकृत मीमांसा, वैशेषिक, न्याय, योग, सांख्य और वेदान्त छः शास्त्र हैं; इनको उपांग कहते हैं।

(१००) नमस्ते—मैं तुम्हारा मान्य करता हूं ॥

वेदरामाङ्कचन्द्रेऽब्दे विक्रमार्कस्य भूपतेः।
नभस्य सितसप्तम्यां सौम्ये पूर्तिमगादियम् ॥

श्रीयुत महाराजा विक्रमादित्य जी के १९३४ के संवत् में श्रावण महीने के शुक्ल पक्ष ७ सप्तमी बुधवार के दिन स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने आर्य्य भाषा में सब मनुष्यों के हितार्थ यह आर्योद्देश्य रत्नमाला पुस्तक प्रकाशित किया। ●

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के लिए जगदेवसिंह सिद्धान्ती शास्त्री द्वारा सैनी प्रिंटर्स पहाड़ी धीरज, देहली में मुद्रित और १५ हनुमान् रोड, नई दिल्ली—१ से प्रकाशित

१८ मार्गशीर्ष सं० २०३० वि०, दयानन्दाब्द १४९, तदनुसार २ दिसम्बर १९७३ रविवार
सृष्टि सं:-१९६०८५३०७३

वर्ष ६ वार्षिक शुल्क स्वदेश में १०) रुपये
अंक १ „ „ विदेश में २०) रुपये
एक प्रति का मूल्य ००-२० पैसे

सम्पादक - जगदेवसिंह सिद्धान्ती शास्त्री पूर्वलोकसभा सदस्य (फोन ५१२१६३)

वेदमन्त्रार्थ-प्रवचन

पुन: राजधर्ममाह ॥
फिर राजधर्म विषय में अगले मंत्र में कहा है ।

युवं वृकेणाश्विना वपन्तेषं दुहन्ता मनुषाय दस्रा ।
अभि दस्युं बकुरेण धमन्तोरु ज्योतिश्चक्रथुरार्याय ॥

—ऋ० १.११७.२१

पदार्थ—(युवम्) यवादिकमिव (वृकेण) छेदकेन शस्त्रास्त्रादिना (अश्विना) सुखव्यापिनौ (वपन्त) (इषम्) (दहन्ता) प्रपूरयन्तौ (मनुषाय) मननशीलाय जनाय (दस्रा) दुःखविनाशकौ (अभि) (दस्युम्) (बकुरेण) भासमानेन सूर्य्येण तम इव (धमन्ता) अग्निं संयुञ्जानौ (उरु) (ज्योतिः) विद्याविनयप्रकाशम् (चक्रथुः) (आर्य्याय) अर्य्यस्येश्वरस्य पुत्रवद्वर्त्तमानाय ॥

अन्वयः—हे दस्राश्विना युवां मनुषाय वृकेण यवमिव वपन्तमेषं दुहन्ताऽऽर्य्याय बकुरेण ज्योतिस्तम इव दस्युमभिधमन्तोरु राज्यं चक्रथुः कुरुतम् ॥

भावार्थ—अत्र लुप्तोपमालं० । राजपुरुषैः प्रजाकण्टकान् लम्पटचोरानृतपरुषवादिनो निरुध्य कृष्यादिकर्मयुक्तान् प्रजास्थान् वैश्यान् संरक्ष्य कृष्यादिकर्माण्युन्नीय विस्तीर्णं राज्यं सेवनीयम् ॥

भाषार्थ—हे (दस्रा) दुःख दूर करने हारे (अश्विना) सुख में रमे हुए सभासेनाधीशो तुम दोनों (मनुषाय) विचारवान् मनुष्य के लिए (वृकेण) छिन्न भिन्न करने वाले हल आदि शस्त्र अस्त्र से (युवम्) यव आदि अन्न के समान (वपन्ता) बोते और (इषम्) अन्न को (दुहन्ता) पूर्ण करते हुए तथा (आर्य्याय) ईश्वर के पुत्र के तुल्य वर्त्तमान धार्मिक मनुष्य के लिए (बकुरेण) प्रकाशमान सूर्य ने किया (ज्योति) प्रकाश जैसे अन्धकार को वैसे (दस्युम्) डाकू दुष्ट प्राणी को (अभि, धमन्ता) अग्नि से जलाते हुए (उरु) अत्यन्त बड़े राज्य को (चक्रथुः) करो ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में लुप्तोपमालङ्कार है। राजपुरुषों को चाहिए कि प्रजाजनों में जो कण्टक लम्पट चोर झूठा और कठोर बोलने वाले दुष्ट मनुष्य हैं उनको रोक खेती आदि कामों की उन्नति कर अत्यन्त विस्तीर्ण राज्य का सेवन करें ॥

—(ऋषिदयानन्द-भाष्य)

सत्यार्थप्रकाश का ११ वां समुल्लास

बाइस सौ वर्ष व्यतीत हुए कि एक शङ्कराचार्य्य द्रविड़ देशोत्पन्न ब्राह्मण ब्रह्मचर्य्य से व्याकरण आदि सब शास्त्रों को पढ़ कर सोचने लगे कि अहह ! सत्य आस्तिक वेदमत का छूटना और जैन नास्तिक मत का चलना बड़ी हानि की बात हुई है इस को किसी प्रकार हटाना चाहिये। शङ्कराचार्य्य शास्त्र तो पढ़े ही थे परन्तु जैन मत के भी पुस्तक पढ़े थे और उनकी युक्ति भी बहुत प्रबल थी उन्होंने विचारा कि इनको किस प्रकार हटावें निश्चय हुआ कि उपदेश और शास्त्रार्थ करने से ये लोग हटेंगे ऐसा विचार कर उज्जैन नगरी में आये वहां उस समय सुधन्वा राजा था जो जैनियों के ग्रन्थ और कुछ संस्कृत भी पढ़ा था वहाँ जाकर वेद का उपदेश करने लगे और राजा से मिल कर कहा कि आप संस्कृत और जैनियों के भी ग्रन्थों को पढ़े हो और जैन मत का मानते हो इसलिये मैं आपको कहता हूं कि जैनियों के पण्डितों के साथ मेरा शास्त्रार्थ कराइये इस प्रतिज्ञा पर जो हारे सो जीतने वाले का मत स्वीकार करले और आप भी जीतने वाले का मत स्वीकार कीजियेगा। यद्यपि सुधन्वा राजा जैन मत में थे तथापि संस्कृत ग्रन्थ पढ़ने से उनकी बुद्धि में कुछ विद्या का प्रकाश था इसके मन में अत्यन्त पशुता नहीं छाई थी क्योंकि जो विद्वान् होता है वह सत्यासत्य की परीक्षा करके सत्य का ग्रहण और असत्य को छोड़ देता है। जब तक सुधन्वा राजा को बड़ा विद्वान् उपदेशक नहीं मिला था तब तक सन्देह में थे कि इनमें कौनसा सत्य और कौनसा असत्य है जब शङ्कराचार्य्य की यह बात सुनी और बड़ी प्रसन्नता के साथ बोले कि हम शास्त्रार्थ कराके सत्यासत्य का निर्णय अवश्य करावेंगे। जैनियों के पण्डितों को दूर दूर से बुलाकर सभा कराई उसमें शङ्कराचार्य्य का वेद मत और जैनियों का वेद विरुद्ध मत था अर्थात् शङ्कराचार्य्य का वेद मत स्थापन और जैनियों का खण्डन और जैनियों का पक्ष अपने मत का स्थापन और वेद का खण्डन था। शास्त्रार्थ कई दिनों तक हुआ ॥

—(ऋषिदयानन्द)

अथपञ्चमहायज्ञविषयः संक्षेपतः

अत्र पञ्च महायज्ञ अर्थात् जो कर्म मनुष्यों को नित्य करने चाहियें उनका विधान संक्षेप से लिखते हैं। उनमें से प्रथम एक ब्रह्मयज्ञ कहाता है, जिसमें अङ्गों के सहित वेद आदि शास्त्रों का पढ़ना पढ़ाना तथा सन्ध्योपासना अर्थात् प्रातःकाल और सांयकाल में ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना सब मनुष्यों को करनी चाहिये। इसमें पठन-पाठन की व्यवस्था तो जैसी पठन-पाठन विषय में विस्तार पूर्वक कह आये हैं वहां देख लेना तथा सन्ध्योपासक और अग्निहोत्र का विधान जैसा पंचमहायज्ञ विधि पुस्तक में लिख चुके हैं वैसा जान लेना अब आगे ब्रह्मयज्ञ और अग्निहोत्र का प्रमाण लिखते हैं, (समिधाग्नि०) हे मनुष्यो ! तुम लोग वायु, ओषधि और वर्षा जल की शुद्धि से सब के उपकार के अर्थ-घृतादि शुद्धवस्तुओं और समिधा अर्थात् आम्र वा ढाक आदि काष्ठों से अतिथिरूप अग्नि को नित्य प्रकाशमान करो। फिर उस अग्नि में होम करने के योग्य पुष्ट, मधुर, सुगन्धित अर्थात् दुग्ध, घृत, शर्करा, गुड़, केशर कस्तूरी आदि और रोगनाशक जो सोमलता आदि सब प्रकार से शुद्ध द्रव्य हैं उन का अच्छी प्रकार नित्य अग्निहोत्र करके सबका उपकार करो ॥१॥ यजुर्वेद अ० ३. मं० १ ॥ (अग्निदूत) अग्निहोत्र करने वाला मनुष्य ऐसी इच्छा करे कि मैं प्राणियों के उपकार करने वाले पदार्थों को पवन और मेघ मण्डल में पहुंचाने के लिये अग्नि को सेवक की नाई अपने सामने स्थापन करता हूं। क्यों वह अग्नि रूप अर्थात् होम करने के योग्य वस्तुओं को अन्य घर में पहुंचाने वाला है। इससे उसका नाम हव्यवाट् है। जो उस अग्निहोत्र को जानना चाहें उनको उपदेश करता हूं कि वह अग्नि उस अग्निहोत्र कर्म में पवन और वर्षाजल की शुद्धियों से (इह) इस संसार में (देवान् २॥) श्रेष्ठ गुणों को पहुंचाता है ॥

—ऋग्वेदादिभाष्य-भूमिका

सम्पादकीय—

महर्षि दयानन्द के राजनीतिक भाव

(२४०) जैसे पुरुष सूर्य्य के समान दूरस्थ होकर भी न्याय से सब व्यवहारों को प्रकाशित कर देता है और जैसे दूरस्थ सत्यगुणों से युक्त सत्यपुरुष प्रशंसित होता है वैसे ही राजपुरुषों को होना चाहिये ।। मं० ७२

(२४१) जो मनुष्य आकाशस्थ सूर्य और पृथिवी में प्रकाशमान सब पदार्थों में व्यापक विद्युद्रूप अग्नि का विद्वानों से निश्चय कर कार्य्यों में संयुक्त करते है वे शत्रुओं से निर्भय होते हैं ।। मं० ७३ ।।

(२४२) प्रजा के मनुष्यों को योग्य है कि राजपुरुषों की रक्षा से और राजपुरुष प्रजाजनों की रक्षा से परस्पर सब इष्ट कामों में प्राप्त हों। मं० ७४ ।।

(२४३) सभा और सेना के अधिष्ठाताओं का दो कर्म अवश्य कर्त्तव्य हैं एक विद्वानों का पालन और उन के उपदेश का श्रवण, दूसरा युद्ध में मरे हुये के सन्तान स्त्री आदि का पालन, ऐसे आचरण करने वाले पुरुषों के सदैव विजय धन और सुख की वृद्धि होती है ।। मं० ७७

अध्याय १९से–

(२४४) इस जगत् में किसी मनुष्य को योग्य नहीं है कि जो श्रेष्ठ रस के बिना अन्न खावे, सदा विद्या शूरवीरता बल और बुद्धि की वृद्धि के लिये महौषधियों के रसों का सेवन करना चाहिये ।। मं० ५

(२४५) जो राजपुरुष कृषि आदि कर्म करने राज्य में कर देने और परिश्रम करने वाले मनुष्यों को प्रीति से रखते और सत्य उपदेश करते हैं वे संसार में सौभाग्य वाले होते हैं ।। मं० ६ ।।

(२४६) जो राजा प्रजा के सम्बन्धी मनुष्य बुद्धि, बल, आरोग्य और आयु बढ़ाते हुए ओषधियों के रसों को सदा सेवन करते हैं और प्रमादकारी पदार्थों का सेवन नहीं करते वे इस जन्म और परजन्म में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को सिद्ध करने वाले होते हैं ।। मं० ७ ।।

(२४७) गृहस्थ लोग वेद विज्ञान ही से पृथिवी के राज्य-भोग की इच्छा और उसकी सिद्धि को प्राप्त होवें ।। मं० २९

(२४८) जैसे सब कन्याओं को पढ़ाने के लिये पूर्ण विद्यावाली स्त्रियों को नियुक्त कर के सब बालिकाओं को पूर्ण विद्या और सुशिक्षायुक्त करें वैसे ही बालकों को भी करें, जब ये सब पूर्ण युवावस्था वाले हों तभी स्वयंवर विवाह करावे ऐसे राज्य की वृद्धि को सदा किया करें ।। मं० ४४

(२४९) जहां बहुदर्शी अन्नादि ऐश्वर्य से संयुक्त सज्जनों से सत्कार को प्राप्त एक धर्म ही में जिन की निष्ठा हो उन विद्वानों की सभा सत्य न्याय को करती है उसी राज्य में सब मनुष्य ऐश्वर्य और सुख में निवास करते हैं ।। मं० ४५ ।।

(२५०) जो विद्वानों की अनुमति से राज्य को बढ़ाने की इच्छा करते हैं वे अन्याय की निवृत्ति करने और राज्य को बढ़ाने में समर्थ होते हैं ।। मं० ७५ ।।

(२५१) जैसे धर्मपत्नी पति की सेवा करती है और जैसे राजा साम दाम आदि से राज्य के ऐश्वर्य को बढ़ाता है वैसे ही विद्वान् योग के उपदेशक की सेवा कर योग के अङ्गों से योग की सिद्धि को बढ़ाया करें ।। मं० ६४ ।।

अध्याय–२० से

(२५२) स्वामी और भृत्यजन परस्पर ऐसी प्रतिज्ञा करें कि राजपुरुष प्रजापुरुषों और प्रजापुरुष राजपुरुषों की निरन्तर रक्षा करें जिससे सबके सुख की उन्नति होवे ।। मं० ।।१।।

(२५३) जो धर्मयुक्त गुण कर्म स्वभाव वाला न्यायाधीश सभापति होवे चक्रवर्त्ति राज्य और प्रजा की रक्षा करने का समर्थ होता है अन्य नहीं ।। मं० २ ।।

(२५४) सब मनुष्यों को योग्य है कि इस जगत् में धर्मयुक्त कर्मों का प्रकाश करने के लिये शुभगुण कर्म और स्वभाव वाले जन बने राज्य-पालन करने के लिये अधिकार देवें ।। मं० ३ ।।

(२५५) जो सब मनुष्यों के मध्य में अति प्रशंसनीय होवे वह सभापतित्व के योग्य होता है ।। मं० ४ ।।

(२५६) जो राज्य में अभिषिक्त राजा होवे सो शिर आदि अवयवों का शुभ कर्मों में प्रेरित रक्खे ।। मं० ५ ।।

(२५७) जो राजपुरुष ब्रह्मचर्य्य और धर्माचरण से पथ्य आहार करने, सत्यवाणी बोलने, दुष्टों में क्रोध का प्रकाश करने हारे आनन्दित हो अन्यों को आनन्दित करते हुए पुरुषार्थी सबके मित्र बलिष्ठ होवें वे सर्वदा और सुखी रहें ।। मं० ६ ।।

(२५८) राजपुरुषों को योग्य है कि आत्मा, अन्तःकरण और बाहुओं के बल को उत्पन्न कर सुख बढ़ावें ।। मं० ७ ।।

(२५९) जो अपने अंगों के तुल्य प्रजा को जाने वही राजा सर्वदा बढ़ता रहता है ।। मं० ८ ।।

(२६०) जो सब अंगों से शुभ कर्म करता है सो धर्मात्मा होकर प्रजा में सत्कार के योग्य उत्तम प्रतिष्ठित राजा होवे ।। मं० ९ ।।

(२६१) जो राजा अप्रिय को छोड़ न्याय धर्म से समस्त प्रजा का शासन सब राज कर्मों में चार रूप आंखों वाला अर्थात् राज्य के गुप्त हाल को देने वाले ही जिसके नेत्र के समान वैसा हो मध्यस्थ वृत्ति से सब प्रजाओं का पालन कर कराके निरन्तर शिक्षा को बढ़ावे वही सबका पूज्य होवे ।। मं० ।।१० ।।

(२६२) जो मनुष्य सूर्य के समान न्याय और विद्या दोनों के प्रकाश करने हारे जिनकी सत्कृत हर्ष और पुष्टि से युक्त सेना वाले प्रजा की पुष्टि दुष्टों का नाश करने हारे हों वे ही राज्याधिकारी होवें ।। मं० ४७ ।।

(२६३) वे ही पुरुष राज्य करने के योग्य होते हैं जो दूरस्थ और समीपस्थ सब मनुष्यादि प्रजाओं को यथावत् समीक्षण और दूत भेजने से रक्षा करने और शूरवीर का सत्कार भी करते हैं ।। मं० ४८ ।।

(२६४) जो युद्ध विद्या में कुशल बड़े बलवान् राजा और धन की वृद्धि करने हारे उत्तम शिक्षा युक्त हाथी और घोड़ों से युक्त कल्याण हो के आचरण करने हारे हों वे ही राजपुरुष होवें ।। मं० ४९ ।।

(२६५) जो विद्या विनय से युक्त होके राजपुरुष प्रजा की रक्षा करने हारे न हों तो सुख की वृद्धि भी न होवे ।। मं० ५१ ।।

(२६६) मनुष्यों को उसकी संमति में रहना उचित है जो पक्षपात रहित और न्याय से प्रजापालन में तत्पर हो ।। मं० ५२ ।।

(२६७) जब शत्रुओं के विजय की जावे तब सब ओर से अपने बल की परीक्षा कर पूर्ण सामग्री से शत्रुओं के साथ युद्ध करके अपना विजय करें जैसे शत्रु लोग अपने को वंश न करें वैसा युद्धारम्भ करें ।। मं० ५३ ।।

(२६८) जैसे राजपुरुष प्रजा की रक्षा करें वैसे राज पुरुषों की प्रजाजन भी रक्षा करें ।। मं० ५४ ।।

(२६९) ऐश्वर्य के बिना राज्य, राज्य के बिना राज्य लक्ष्मी और राज्य लक्ष्मी के बिना भोग प्राप्त नहीं होते इसलिये नित्य पुरुषार्थ करना चाहिये ।। मं० ७२ ।।

अध्याय–२० से

(२७०) जैसे विद्वान् लोग विद्या दान से और उपदेश से सबको सुखी करते हैं वैसे ही राजपुरुष रक्षा आत्मदान से सुखी करें ।। मं० ११ ।।

(२७१) जो मनुष्य लोग विद्या से अग्नि शान्ति से विद्वान् पुरुषार्थ से बुद्धि और न्याय से राज्य को प्राप्त होवे ऐश्वर्य को बढ़ाते हैं वे इस जन्म और परजन्म में सुख को प्राप्त होते हैं ।। मं० ३९ ।।

(२७२) संसार के पदार्थों की विद्या सत्य वाणी और भली भांति रक्षा करने हारे राजा को पाकर पशुओं के दूध आदि पदार्थों से पुष्ट होते है ।। मं० ४२ ।।

(२७३) जैसे धार्मिक राजा दुष्ट पर क्रोध करता है वैसे दुष्टों के प्रति अप्रीतिकर अच्छे उत्तम जनों से प्रेम को धारण करना ।। मं० ५६ ।।

अध्याय–२२ से

(२७४) जो मनुष्य उत्तम पशुओं को मारने की इच्छा करते हैं वे सिंह के समान मारने चाहियें और जो इन पशुओं की रक्षा करने की इच्छा करते हैं वे सब की रक्षा करने के अधिकार देने योग्य हैं ।। मं० ५

अध्याय–२३ से

(२७५) जो राजा प्रजा पिता और पुत्र के समान अपना बर्त्ताव वर्ते तो धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष फल की सिद्धि का यथावत् प्राप्त हों जैसे राजा प्रजा के सुख और बल बढ़ावें वैसे प्रजा भी राजा के सुख और बल की उन्नति करें ।। मं० २० ।।

(२७६) हे राजन् ! जो विषय सेवा में रमते हुए जन वा वैसी स्त्रि व्यभिचार को बढ़ावें उनको प्रबल दण्ड से शिक्षा देनी चाहिये ।। मं० २१

(शेष पृ० ३ पर)

(पृष्ठ २ का शेष)

(२७७) यदि राजा न्याय से प्रजा की रक्षा न करे और प्रजा से कर लेवे तो जैसे जैसे प्रजा नष्ट हो वैसे राजा भी नष्ट होता है। यदि विद्या और विनय से प्रजा को भली भांति रक्षा करे तो राजा और प्रजा सब ओर वृद्धि को पावें ॥ मं० २२ ॥

(२७८) राजा कभी झूठी प्रतिज्ञा करने और कटुवचन बोलने वाला न हो तथा न किसी को ठगे जो यह राजा अन्याय करे तो आप भी प्रजा जनों से ठगा जाय ॥ मं० २३ ॥

(२७९) जो माता पिता पृथिवी और सूर्य के तुल्य धैर्य और विद्या से प्रकाश को प्राप्त न्याय से राज्य को पाल कर उत्तम लक्ष्मी वा शोभा को पाकर प्रजा को सुशोभित कर अपने पुत्र का राजनीति से युक्त करें वे राज्यकरने के योग्य हों ॥ मं० २४ ॥

(२८०) सत्य न्याय से सत्य असत्य को अलग कर न्याय करने हारा राजा नित्य बढ़ता है ॥ मं० २६ ॥

(२८१) प्रजा जन राजपुरुषों को उन्नति दें और अधर्म के आचरण से डरें ॥ मं० २७ ॥

(२८२) राजा और राजपुरुष थोड़े भी करके लाभ में न्याय पूर्वक प्रीति के साथ वर्त्तें और यदि दुःख को दूर करने वाली प्रजा के थोड़े बहुत उत्तम काम की प्रशंसा करें तो वे दोनों प्रजा जनों को प्रसन्न कर अपने में उन से प्रीति करावें ॥ मं० २८ ॥

(२८३) राजा प्रजा के स्त्री पुरुष विद्या से नम्रता को पाकर सुख को ढूंढे ॥ मं० २९ ॥

(२८४) जो राजा पशु के समान व्यभिचार में वर्त्तमान प्रजा की पुष्टि को नहीं करता वह धनाढ्य शूद्र कुल की स्त्री जो कि जार कर्म करती हुई दासी है उसके समान शीघ्र रोगी होकर अपनी पुष्टि का विनाश करके धन हीनता से दरिद्र हुआ करता है इससे राजा न कभी ईर्ष्या और न व्यभिचार का आचरण करें ॥ मं० ३० ॥

(२८५) राजा और राजपुरुष पर स्त्री और वेश्यागमन के लिये पशु के समान अपना वर्त्ताव करते हैं उनको सब विद्वान् शूद्र के समान जानते हैं जैसे शूद्र पूर्ण जन श्रेष्ठों के कुल में व्यभिचारी होकर सबको वर्ण संकर कर देता है वैसे ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य शूद्रकुल से व्यभिचार करके वर्ण संकर के निमित्त होकर नाश को प्राप्त होते हैं ॥ मं० ३१ ॥

अध्याय २४ से—

(२८६) जो प्रजा की रक्षा के लिये चतुराङ्गिणी अर्थात् चारों दिशाओं में रोकने वाली सेना और जितेन्द्रियता का अच्छे प्रकार आचरण करते हैं वे धनवान् और कान्तिमान् होते हैं ॥ मं० २९ ॥

अध्याय २५ से—

(२८७) मनुष्यों का भुजाओं का बल, अपने अंग की पुष्टि, दुष्टों को ताड़ना और न्याय का प्रकाश आदि काम सदा करने चाहियें ॥ मं० ६ ॥

(२८८) जो घोड़े आदि उत्तम पशुओं का मांस खाना चाहें वे राजा आदि श्रेष्ठ जनों को रोकने चाहियें, जिससे मनुष्यों का उद्यम सिद्ध हो ॥ मं० ३४

(२८९) जो जितेन्द्रिय और ब्रह्मचर्य से वीर्यवान् घोड़े के समान अमोघ वीर्य पुरुषार्थ से धन पाये हुये न्याय से राज्य को उन्नति देके वे सुखी होवें ॥ मं० ४५ ॥

अध्याय २६ से—

(२९०) जैसे सूर्य के साथ चन्द्रमा रात्री को सुशोभित करता है वैसे उत्तम राजा से प्रजा प्रकाशित होती है और विद्वान् शिल्पी जन सर्वोपयोगी कार्यों को सिद्ध करता है ॥ मं० ७ ॥

(२९१) हे प्रजाजन! जो तुम्हारे लिये सुख देवे, दुष्टों को मारे महान् ऐश्वर्य को बढ़ावे वह तुम लोगों के सदा सत्कार करने योग्य है ॥ मं० १० ॥

(२९२) जैसे गौयें प्रतिदिन अपने अपने बछड़ों को पालती हैं वैसे ही प्रजाजनों की रक्षा करने वाला पुरुष प्रजा को नित्य रक्षा करे और प्रजा के लिये धन और अन्न आदि पदार्थों से सुखों को नित्य बढ़ाया करें ॥ मं० ११ ॥

(२९३) जैसे रानी सुख पहुंचाती और बहुत धन देने वाली होती है वैसे ही राजा के समीप में सब लोग धन और अन्य उत्तम उत्तम वस्तुओं को पावें ॥ मं० १२ ॥

(२९४) विद्वान् मनुष्यों को योग्य है कि सब सामग्री से विद्या वर्धक व्यवहार को सदा बढ़ावें और न्याय से प्रजा की रक्षा किया करें ॥ मं० १४ ॥

अध्याय २७ से—

(२९५) हे राजन्! आप ऐसे उत्तम विनय को धारण कीजिए जिस से प्राचीन वृद्ध जब आप को बड़ा माना करें राज्य में अच्छे नियमों को प्रवृत्त कीजिये जिससे आप और आपका राज्य विघ्न से रहित होकर सब ओर से बढ़े और प्रजाजन आपको सर्वोपरि माना करें ॥ मं० ४ ॥

(२९६) सभापति राजा सदा ब्रह्मचर्य से दीर्घायु, सत्य धर्म में प्रीति रखने वाले मंत्रियों के साथ विचार कर्त्ता अन्य राजाओं के साथ अच्छी सन्धि रखने वाला, पक्षपात को छोड़ न्यायाधीश सब शुभ लक्षणों से युक्त हुआ दुष्ट व्यसनों से पृथक् होके धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का धीरज शान्ति अप्रमाद से धीरे धीरे सिद्ध करें ॥ मं० ५ ॥

(२९७) जो दुष्ट आचारों के त्यागी कुत्सितजनों के रोकने वाले अज्ञान तथा अदान को पृथक् करने और दुर्जनों से पृथक् हुए, सुख दुःख के सहने और वीर पुरुषों की सेवा से प्रीति करने वाले गुणों के अनुकूल जनों का ठीक सत्कार करते हुए न्याय से राज्य पालें सदा सुखी होवें ॥ मं० ६ ॥

(२९८) जो राजा वा राजपुरुष प्रजाओं को सन्तुष्ट कर मंगलरूप आचरण करने और सब विद्याओं से युक्त न्याय में प्रसन्न रहते हुए प्रजा की रक्षा करें वे सब दिशाओं में प्रवृत्त कीर्त्ति वाले होवें ॥ मं० ७ ॥

(२९९) जो राजसभा का उपदेशक है वह इन राजादि को दुर्व्यसनों से पृथक् कर और सुशीलता को प्राप्त कराके बड़े ऐश्वर्य की वृद्धि के लिये प्रवृत्त करें ॥ मं० ८ ॥

(३००) जो पुरुष इस प्रकार अग्नि के बड़प्पन को जाने सो अति धनी होवे ॥ मं० १५ ॥

(३०१) हे सेना और सभा के पति! तुम दोनों सूर्य्य के तुल्य न्याय और अभय के प्रकाशक शिल्पियों का संग्रह करने और सत्य का प्रचार करने वाले होओ ॥ मं० ३७ ॥

अध्याय २८ से—

(३०२) जो राजा लोग स्वयं राज्य के न्याय मार्ग में चलते हुए प्रजाजनों की रक्षा करें वे पराजय को न प्राप्त होते हुए शत्रुओं को जीतने वाले हों ॥ मं० २ ॥

(३०३) जैसे राजा और राजपुरुष पिता के समान प्रजाओं का पालन करें वैसे ही प्रजा इनको पिता के तुल्य सेवें जो आप्त विद्वानों की अनुमति से सब काम करें वे भ्रम को नहीं पावें ॥ मं० ३

(३०४) जो राज और प्रजा के जन आपस में अनुकूल वर्त्त के सभा से प्रजा का पालन करें वे उत्तम प्रशंसा को पाते हैं ॥ मं० ४

(३०५) जो मनुष्य न्याय के साथ प्रशंसित गुण वाले सूर्य्य के तुल्य प्रशंसित होके विज्ञान के योग्य वस्तुओं को जान के स्तुति, बल, जीवन, धन, जितेन्द्रियपन और राज्य को धारण करते हैं वे प्रशंसा के योग्य होते हैं ॥ मं० २६

(३०६) जैसे पढ़ने उपदेश करने और परीक्षा लेने वाले स्त्री पुरुष प्रजाओं में विद्या और श्रेष्ठ उपदेशों का प्रचार करें वैसे राजा इनकी यथावत् रक्षा करे इस प्रकार राजपुरुष और प्रजापुरुष आपस में प्रसन्न हुए सब ओर से वृद्धि को प्राप्त हुआ करें ॥ मं० ४१

(३०७) हे विद्वान् मनुष्यो! जैसे राजपुरुष राजपुरुषों को रक्षा करते हैं वैसे वर्त्त के ऐश्वर्य की उन्नति करनी चाहिये ॥ मं० ४३

अध्याय २९ से—

(३०८) शत्रुओं को रोकने में वेगवान् श्येन पक्षी के तुल्य वीर पुरुषों की सेना वाले दृढ़ ढीठ होओ यदि ऐसे करो तो सब कर्म तुम्हारे प्रशंसित होवें ॥ मं० १२—(संकलयिता जगदेवसिंह सिद्धान्ती शास्त्री) ● (क्रमशः)

"शराब खाना खराब"

शराब देश के लिए लानत है। Drinking is a great curse to the community, country and coming generations. आज शराब का हर जगह बोल बाला है। हर वृद्ध व जवान इसका मतवाला होता चला जा रहा है। हालत यहा तक हो गई है कि घरों के अन्दर देवियां भी इसको पीकर आनन्द लेना चाहती हैं। पीने वाले इस विष को शरीर में डाल कर नशे में घूमकर इससे आनन्द की आशा रखते हैं परन्तु वास्तविकता यह है कि शराब-खाना खराब से आनन्द की बजाय पछताता, शर्मिन्दगी व कष्ट ही मिलते हैं। शराबी शराब के नशे में क्या-क्या नहीं कह जाता और क्या क्या नहीं करता। नशे में चूर उसका दिल व दिमाग बेकार हो जाता है शराब अक्ल बाहर। When are is in wit is out. जिससे शराबी अपनी बदमस्ती में अशिष्टाचार, बतमीजी व बेहूदगी का शर्मनाक प्रदर्शन करके सोसायटी में अपमानित व बदनाम होता है। वो समझता है कि वो शराब पी रहा है परन्तु यह बात वास्तविकता से कोसों दूर है: वास्तविकता यह है

At the first cup a man drinks wine.

At the second cup wine drinks wine.

At the third cup wine drinks man. (Anon)

जब कभी किसी जाति के बुरे दिन आते हैं तो अक्ल मारी जाती है—

"विनाशकाले विपरीत-बुद्धि :"

इतिहास इस बात की साखी देता है कि किसी देश की अवनति व गिरावट व विनाश से पूर्व कुदरत उस देश व गवर्नमेंट से बुद्धि छीन लेती है। बुद्धि के पथभ्रष्ट होने से सरकारें, जातियां व देश रसातल को चले जाते हैं। उनका नामो-निशान तक भी संसार से सदा के लिए मिट जाया करता है।

पूज्य महात्मा गांधी जी ने फरमाया था कि "जो राष्ट्र शराब की आदत का शिकार है उसके सामने विनाश मुंह फाड़े खड़ा है। इस बुराई के कारण कितने ही साम्राज्य मिट्टी में मिल गये। रोमन साम्राज्य के पतन का एक कारण यह भयंकर बुराई मद्यपान की थी। मैं मद्यपान को चोरी, यहाँ तक कि वेश्या वृत्ति से भी अधिक निन्दनीय मानता हूं। मैं आपसे देशवासियों के साथ मिलकर शराब की दुकानों को समाप्त करने में योग देने को कहता हूं।" सैनिका के शब्दों में "शराब पीना अपने आप मोल लिया हुआ पागलपन है।" सादी ने कहा है कि "शराबखाना वो स्थान है जहां पागलपन बिकता है। याद रखिये! कि आप शराब नहीं पीते बल्कि शराब आपको पीती है आपके जीवन को समाप्त करती जाती है।

गिलासों में जो डूबे फिर न उभरे जिन्दगानी में।
हजारों बह गये इन बोतलों के बन्द पानी में॥

कुरान शरीफ में शराब पीने को हराम समझा गया है हजरत मोहम्मद साहिब का यहां तक कहना है कि अगर शराब की एक बूंद जमीन पर पड़ जाये तो उस जमीन में उस स्थान के कुएं का पानी पीना भी हराम है। इस्लाम धर्म का प्राचीन स्वर्णीय इतिहास बताता है कि हजरत उमर ने अपने राज्य में शराब पीने, पिलाने और बेचने पर कड़ा प्रतिबन्ध रखा था। इस सम्बन्ध का अपराध करने वाले को पचास कोड़े लगाने का दण्ड घोषित हो चुका था। एक बार खलीफा साहिब हजरत उमर का पुत्र "अबू शहेंमा" दुर्भाग्य से मद्यपान का शिकार हुआ तो उसी समय कोमल शरीर वाले राजकुमार को यह कठोर दण्ड दिया गया। जल्लाद के दस कोड़े लगते ही बालक का शरीर लहू लुहान हो गया और उसके प्राण निकल गये और उस "अबू शहेंमा" के बलिदान से शराब का प्रयोग इस्लाम में शदा के लिए बन्द हो गया।

अथर्ववेद के छठे काण्ड में एक मन्त्र आया है जिसका अर्थ है कि मांस, शराब, जुआ व पर स्त्री व परपुरुष गमन से मन पतित, मलीन व अपवित्र होता है। मिलटन ने कहा है कि "दुनिया की सारी सेनायें मिल कर भी इतने इन्सानों को और सम्पत्ति का नाश नहीं कर सकतीं जितनी शराब पीने की आदत।"

मुझे इस गुस्ताखी व बेअदबी व साफ बयानी के लिए क्षमा किया जाये कि आज हमारी सरकार इस शराब जैसी नामुराद बीमारी व लानत को उन्नति देकर राष्ट्र को यकीनन गिरावट की ओर ले जा रही है जिससे दिन ब दिन भ्रष्टाचार व अनाचार देश में बढ़ता ही चला जा रहा है। आज तक राष्ट्र पिता बापू जी महात्मा गांधी के यह जोरदार शब्द कानों में गूंज रहे हैं कि "यदि स्वतन्त्रता मिलने पर मुझे भारतवर्ष का आधे घंटे के लिए भी राज्य मिल जाये तो मैं पहला काम शराब की बन्दिश का करूंगा।" कहाँ यह उनकी प्रबल पवित्र इच्छा व कहाँ यह शराब का अपवित्र व विषभरा प्रचार। मैं समझता हूं कि हमारी सरकार पूज्य बापू जी के साथ पूरा मखौल कर रही है इसलिए अब समय है कि देश के भाग्य की मालिक यह सरकार प्राचीन इतिहास के जातियों के विनाश से सबक लेकर शीघ्र संभले। और देश भर में शराब को बन्द करके देश को विनाश से बचाये। अन्यथा यह आने वाली पीढ़ियां सरकार को इस गलत व निन्दनीय व विनाशकारी नीति के लिए कदापि क्षमा न करेंगी। और उस वक्त हाथ मल कर यह कहना पड़ेगा:

जब खजाना लुट गया फिर होश में आए तो क्या,
वक्त रेहलत दस्ते हसरत मल के पछताए तो क्या।

प्रेम भिक्षु वानप्रस्थी
पुरोहित आर्य समाज श्री निवासपुरी नई दिल्ली-२४

आर्यमर्यादा के लिये—

मंगल कामना

(श्री पं० देवेन्द्रनाथ शास्त्री एम० ए०, १५, आर्य कुटीर, नरेला (दिल्ली)

सुमर्यादया दीप्तिमासादयन्ती,
सुदीप्त्या तमोऽज्ञानजं नाशयन्ती।
पदैः शोभनैश्चन्द्रिकां स्मारयन्ती,
सदा पत्रिकेयं सुकीर्तिं तनोतु॥१॥

सुसम्पादकोऽस्याः शतायुश्च भूयात्,
दृढा लेखनी सुप्रभावा च भूयात्।
विना पक्षपातं विचार-प्रचारे,
समर्थः स शक्तः शिवं वै तनोतु॥२॥

भवेदार्यसिद्धान्त-रक्षा-प्रकारः,
भवेन्मानसे पाठकानां सुधारः।
अविद्याऽतिमिथ्याऽन्धविश्वासभूमौ,
सुविज्ञान-बीजानि नित्यं तनोतु॥३॥

वहेत् स्नेहधारा समाजे जनानाम्,
दहेद् द्वेष-कीटान् सुसौहार्दवह्निः।
सुवेदप्रचारे सुकर्मप्रसारे,
नवं साहसं पत्रिकेयं तनोतु॥४॥

तपोज्ञानमूर्तिः स "सिद्धान्तिवर्यः"
इयं पत्रिका वेदसन्देशदात्री।
तया वै स धन्यः सुधन्याऽथवा सा,
मुदं सज्जनानां द्वयं सन्तनोतु॥५॥

क्रमागत :—

माण्डूक्य कारिकाओं पर आचार्य गौडपाद को समीक्षा (४३)

(ले० श्री स्वामी ब्रह्मानन्द जी आर्य त्रैतवेदान्ताचार्य मु० ओं० आश्रम, चान्दोद (बड़ोदा)

अर्थात् सुषुप्ति और उत्क्रान्ति (मृत्यु) में दोनों जीव और परमेश्वर का भेद माना गया है। (उत् क्रान्तिगत्या गतोनांश्रवणात् परिच्छिन्नोऽअणु परिमाजो जीव इति। बृ० उ० ४।४।६।।) अर्थ—श्रुति में दिया है कि जीव निकलता है जाता है और फिर लौटकर आता है, इससे सिद्ध है कि जीव अणु परिमित स्वरूप है। (उपचितापचित गुणत्वं हि सति भेद व्यवहारे सगुणे ब्रह्मण्यु पपद्यते न निर्गुणे परस्मिन् ब्रह्मणि ।। वे० द० ३।३।१२।। शां० भा०) अर्थ बढ़ना घटना तो सगुण ब्रह्म में हो सकता है, निर्गुण ब्रह्म में नहीं।। परन्तु तुमने ब्रह्म में विषमता तो मान ली फिर सगुण होय चाहे निर्गुण और जोव को अणु मानकर भेद और जन्म भी मान लिया है फिर कहां ब्रह्म में समता शांत भाव अजत्व रह ।।३८।।

अस्पर्श योगोवै नाम दुर्दर्शः सर्वयोगिभिः।
योगिनो बिभ्यति ह्यस्मादभये भयदर्शिनः ।।३९।।

अद्वैत प्र० की ३९ वीं कारिका

अर्थ—सब प्रकार के स्पर्श से रहित यह अस्पर्श योग निश्चय ही योगियों के लिये कठिनता से दिखाई देने वाला है। इस अभयपद में भय देखने वाले योगी लोग इससे भय मानते हैं ।।३९।।

समीक्षा—स्पर्श करना होता है अपने से अन्य वस्तु का वा प्राणि का, तो जो बड़ी कठिनता से दिखाई देता है तो द्रष्टा से पृथक् भी हुआ तो अस्पर्श नाम जो योग है, जो सब प्रकार के स्पर्श से रहित है, तो फिर आप दोनों गुरुओं ने भी अब तक किसी भी हालत में किसी भी प्रकार से उसका स्पर्श नहीं किया होगा, तभी तो तुमने ऐसा उसे कहा और लिखा, तो फिर अविवेकियों को तो उसके स्पर्श की तो क्या, भय कारक भी होवे तो क्या आश्चर्य। यदि कहो कि हम तो ब्रह्म के योग को या स्पर्श की बात कर रहे हैं, तो ठीक वह तो (ॐ खं ब्रह्म) वेद में कहा गया है अर्थात् वह सर्वरक्षक सच्चिदानन्द घन ब्रह्म तो आकाश के समान सबमें ओत प्रोत है, या सबके अन्दर बाहर व्यापक होने से न वो किसी को छोड़ सकता न कोई उससे छूट हो सकता, होने से वह प्रभु तो स्वतः सबको स्पर्श किया हुआ सदैव से है, और सब उससे स्पर्श किये हुये ही हैं, तो उसके स्पर्श की और भय की बात करना ही व्यर्थ है ।।३९।।

मनसो निग्रहायत्तमभयं सर्व योगिनाम्।
दुःखक्षयः प्रबोधश्चाप्यक्षया शान्तिरेव च ।।४०।।

अद्वैत प्र० की ४० वो कारिका

अर्थ—समस्त योगियों के अभय दुःख क्षय प्रबोध और अक्षय शान्ति मन के निग्रह के ही आधीन हैं ।।४०।।

समीक्षा—अब आपकी उस कारिका को तो जरा इस कारिका से मिला देखो (न निरोधो न चोत्पत्ति न बध्ये न च साधकः)। ये परस्पर विरोधाभास से परी पूरी कारिकायें तुमने बुढौती में अपनी बुद्धि का दिवाला निकालने के लिये ही लिखो हैं मालूम पड़ता है। परन्तु तुम तो बौद्धों के अनुयायी न ठहरे? आखिर (दिल्ली टूटी तो क्या नौ लाख घोड़ों से भी गई?) हां तो ये चालीस वीं कारिका जो वैतथ्य प्र० में ३२ वें नम्बर की है उसे निकाल फेंकिये। और ये ऐसी ईमानदारी से सीधे योगपद्धति से ज्ञानयुक्त मन को कर नैमित्ति मोक्ष शान्ति की साधना का प्रतिपादन कीजिये, क्योंकि (मन एव मनुष्याणां कारणं बन्ध मोक्षयोः) शास्त्र में बताया है सो सही मार्ग है इसे हम भी मानते हैं ।।४०।।

उत्सेक उदधेर्यद्वद् कुशाग्रेणैक बिन्दुना।
मनसो निग्रहस्तद्वद् भवेद परि खेदतः ।।४१।।

अद्वैत प्र० की ४१ वीं कारिका

अर्थ—जिस प्रकार उद्विग्नता छोड़कर कुशा के अग्र भाग से एक एक बूंद द्वारा समुद्र को उलीचा जा सकता है उसी प्रकार सब प्रकार की खिन्नता का त्याग कर देने पर मन का निग्रह हो सकता है ।।४१।।

समीक्षा—यहां कुशाग्र से एक एक बूंद कर उलीचना दरिया के जल का कितने काल में हो पायेगा, इसका और मनुष्य की आयु के परिसीमित काल का भी कुछ विचार किया कि ऐसे भी भंग की तरंग में आकर लिख मारा? तथा खिन्नता या खेद के त्याग से नहीं किन्तु (अभ्यास वैराग्याभ्यांतन्निरोधः ।। यो० द०) और भ० कृष्ण भी पतञ्जलि की बात का अनुमोदन करते हैं यथा कहते हैं कि (अभ्यासेनतु कौन्तेय वैराग्येनच गृह्यते ।। गीता०) अभ्यास अथवा योगाभ्यास एवं ज्ञान वैराग्य के द्वारा ही मन को निग्रह करना चाहिये। ता भी मन को साधना में, गौड जी का तात्पर्य होने से हम इसे माने लेते है सिद्धान्त की दृष्टि से ।।४१।।

उपायेन निगृह्णीयात् विक्षिप्तं कामभोगयोः।
सुप्रसन्नं लये चैव यथा कामो लयस्तथा ।।४२।।

अद्वैत प्र० की ४२ वीं कारिका

अर्थ—काम्य विजय और भोगों में विक्षिप्त हुवे चित्त का उपायपूर्वक निग्रह करे, तथालयावस्था में अत्यन्त प्रसन्नता को प्राप्त हुये चित्त का भी सयम करे, क्योंकि जैसा (अनर्थक) काम है वैसा ही लाभ भी है ।।४२।।

समीक्षा—योग के नियमों से ही, जो के मन, वस करना है, किन्तु योग तो अष्टांग कहा जाता है यथा (यम नियमाऽऽसन प्राणायाम प्रत्याहारधारणा ध्यान समाधयोऽष्टाङ्गानि ।।२।२८।। यो० द०) अर्थ यम नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि, ये आठ अंग या (साधन) योग के कहे हैं। (अहिंसा, सत्यऽस्तेय ब्रह्मचर्याऽपरिग्रहाः यमाः ।।२।३०।। यो० द०) अर्थ—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, और अपरिग्रह, ये यम कहाते हैं। (शौच सन्तोष तपः स्वाध्यायेश्वर प्रणिधानानि नियमाः ।। २।३२।। यो० द०) अर्थ—शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान, ये नियम हैं। तो ये उपरोक्त विधि मे क्रमशः योगांगो का इस प्रकार तो वर्णन किया नहीं, सीधे समाधि की बात करने लगे, किन्तु इतना भी न सोचे कि कामादि का तो यम के नियमों मे ब्रह्मचर्य के पालन की बात आ ही गई है, तो जो कामी होगा, यह तो समाधि क्या आसनों और प्राणायामों का भी अधिकारी नही है, सभी भोगों का त्याग भो यम नियम के अन्दर ही सन्तोष तप के अन्दर आ ही जाता है, तो इसे समाधि के वर्णन में कथन करना, ये बात से पता चलता है कि आप गौड जी योग क्रिया के रहस्य को विधिवत् या यथाक्रम करना करवाना भी नही जानते, नहो तो समाधि में मन का लगाने की बात कभी न करते। क्योंकि (ध्यान निर्विषयं मन. ।।) निर्विषयता की अवस्था जब मन में आती है तभी ध्यान लगना कहाता है, तो ये अवस्था तो मन की समाधि से पूर्व ही मन को प्राप्त हो जानी है? तथा आचार्य शंकर जी यहां के भाष्य में मन के लय का अर्थ (लीयतेऽस्मिन्निति सुषुप्तोलयस्तस्मिँल्लये च) ऐसा अर्थ करते हैं तो क्या ध्यान समाधि में क्या गाढनिद्रा (सुषुप्ति) की नींद में खर्राटे लेना सोना होता है क्या? प्रत्याहार एवं धारणा के बीच अवस्था को है कि जो काषाय दोष कि विक्षेप के कारण उत्पन्न होती है जिसे (तन्द्रा) नाम से कहा जाता है, उसमें मन के चले जाने को लय (मन का लय उसमें लीन) हो जाना कहा जाता है, तो स्वा० शंकराचार्य जी ने लय का अर्थ ही सुषुप्ति कर डालते हैं सो योग के मन विरुद्ध भी है। यद्यपि सुषुप्ति मे भी मन लय (लीन) होता है, परन्तु यहां तो सुषुप्ति का प्रसंग ही नहीं है, यहां तो योग का प्रसंग है, तो प्रसगानुकल अर्थ करना ही समीचीन होता है। ऐसे तो मूर्छा में भी मन लीन हो जाता है तो क्या यहां भी क्या सुषुप्ति अर्थ लेंगे क्या? धन्य है गुरु जी! क्या ऐसे ही योग से आपने पर काया प्रवेश किये थे? यहां की योगपद्धति को पढ़ने से तो हमें नहीं लगता कि आप पर काया प्रवेश की शक्ति सम्पन्न योगी होंगे, आप दोनों गुरुजन! हां, ध्यान धारणा संपन्न भले ही होंगे, चलो खैर, आप लोग तो योगविद्या को भी अविद्या जन्य मानते हैं, यहां इतना मान लिया ये ही बड़ी गनीमत है कि यहां तुम्हारी मिथ्यात्व की तलवार न चली, योग पर नहीं तो इसका भी खण्डन कर धरते ।।४२।।

(शेष पृष्ठ ६ पर)

(पृ० ५ का शेष)

दुःखसर्वमनुस्मृत्य काम भोगान्निवर्तयेत ।
अजं सर्व मनुस्मृत्य जातं नैं बतु पश्यति ।।४३।।

अद्वैत प्रकरण की ४३वीं कारिका

अर्थ—सम्पूर्ण द्वैत दुःखरूप है—ऐसा निरन्तर स्मरण करते हुवे चित्त को काम जनित भोगों से हटावे। इस प्रकार निरन्तर सब वस्तुओं को अजन्मा ब्रह्म रूप स्मरण करता हुआ फिर कोई जात पदार्थ नहीं देखता। ४३।।

समीक्षा—जो जिससे जितना डरता और दुःख मानता है उतना ही वो उसे डराता और दुःख देता रहता है। देखो जो अज्ञानी लोग मरे, गड़ों को भूत प्रेत, शैतान चुडैल साकन डाकन मान ऐसी सृष्टि नियम विरुद्ध कल्पना किये करवाये रहते हैं उन्हें ही हमेशा डराते भय बताते दुःख देते रहते हैं, दूसरों को नहीं क्योंकि (यादृशी भावनायस्य सिद्धिर्भवति तादृशी ।।मं० शा०।।) अर्थात् जिसकी जैसी भावना या विश्वास होता है उसे वैसा ही सुभा शुभ फल सुख दुःख मय मिलता है। तो यदि आप लोग अद्वैतवादी संपूर्ण द्वैत संसार को यदि दुःख एवं भयरूप ही मानते रहेंगे तो वैसा ही फल पायेंगे। और जो जिसे अपना विरोधो मानता है और उसका विरोध करता है कि यह हमें दुःखदाई है, इसे मत मानो, तो भी कोई किसी के मानने या न मानने से या दुःखदाई समझने से, क्या वो उसका विरोधी उसे छोड़ थोड़े ही देगा? कभी भी नहीं। देखो ऐसा सुना जाता है कि कबूतर बिल्ली से ऐसा डरता है कि उसे देखकर वो तुरन्त अपनी आंखें ही बन्द कर लेता है, डर और दुःख के मारे, वो कबूतर तो शायद यही समझकर आंखें बन्द कर लेता होगा कि ये बिल्ली मेरे लिये दुखदाई है तो जो उसे मैं देखूंगा ही नहीं, तो वो मुझे छोड़ देगी, मगर क्या उसके ऐसा विचार करने से वो बिल्ली उसे क्या छोड़ देती है? कभी नहीं, उल्टे ऐसा करने से वो उसे अदबदा कर जल्दी ही झड़प लेती है, अर्थात् छोड़ती नहीं धर दबाती है। वो चाहे उसको भले न माने। इसी प्रकार आप अद्वैत वादी लोग, भले ही द्वैत प्रपंच से डरते रहो और उसे न भी मानो, या विपरीत मानो और उसकी ओर धिक्कार की दृष्टि से देखो, या भय एवं दुःख दीनता भरी दृष्टि से देखो, परन्तु तुमने उसे धिक्कारा है, तो वह भी तुम्हे दुखदाई फल देगा ही। परन्तु हम वंदिकों के पूर्वज ऋषि मुनि तो हमेशा अपने पूज्य यज्ञेश्वर हो इस प्रकार प्रार्थना एवं भावना करते थे कि (निकामे निकामे नःपर्जन्यो अभि वर्षतु फलवत्योनः ओषधयः पच्यन्तां योग.क्षेमो नः कल्पताम् ।।य० वेद) अर्थात् यज्ञरूप पूज्य प्रभु परमात्मन् आप हम सब पर कृपा करके हमारी कामनानुरूप समय समय पर अमृतमय जल वर्षण किया करें जिससे उत्तमोत्तम इच्छित अन्नादि फल फूलमयी ओषधिया पक कर हमें मिला करे, एवं ऐहिक तथा पारलोलिक प्रेय श्रेय मय योग (प्राप्ति) तथा क्षेम हमारे सहित हमारे सभी इच्छित प्राणि पदार्थ, मम सुख शान्ति का समुचित रक्षण भी करते रहे। देखो ऐसी सर्वेश्वय की सर्वतोमुखी एव सर्वहितकारी भावना युक्त उपासना स्तुति प्रार्थना हम वैदिकों की होती थी, तो यहाँ वहाँ सदा सर्वत्र सुखी रहते, और रखते थे। और सैकड़ों वर्षों तक आरोग्य आनन्दमय शान्ति स जीवित भी रहते थे, परन्तु आप अद्वैतवादी महापुरुष तो हमेशा इस शरीर संसार को धिक्कारते रहते हो, इसीलिए दीर्घ जीवी भी नहीं होते, और जो ज्यादा दिनों जिन्दे भी रहते हैं तो रोगी दुःखी शोकी सन्तापी ही बने प्रायः दीखते हैं. मानो ये एक प्रकार से तुम्हे माया देवी की ही श्राप न लगी हो? देखो आ० श्री गुरु शंकर भर जवानी में बत्तीस वर्ष में ही दिवंगत हो गये, विवेकानन्द भी जवानी में मर गये, रामतीर्थ जल मग्न अचानक जवानी में हो गये, रामकृष्ण जी परमहंस भी कैंसर रोग से उतरती जवानी में, परलोक वासी होना पड़ा, स्वामी शंकर चैतन्य, भारती जैसे प्रखर वेदान्तनिष्ठ, भरी जवानी में चले गये, जो हम लोगों के सहपाठी थे इत्यादि। तो कहना हमारा यह है कि संपूर्ण चराचर प्रपंच ब्रह्मरूप नहीं है, किन्तु जीव और जड़ प्रकृति का भी आप हम सब अनुभव करते तो हैं ही फिर चाहे जो इन्कार करें किन्तु इन्कार भी उसी का होता है जिसका प्रथम से अस्तित्व बाहर देख लिया होता है, तथा मन में भी उसका वो अस्तित्व इन्कार करने वाले के अन्दर संस्कार रूप से विद्यमान होते ही हैं तभी वो उससे इन्कार. या स्वीकार कह सकता है, अन्यथा नहीं ।।४३।।

लये संबोधयेच्चित्तं विक्षिप्तं शमयेत्पुनः ।
सकषायं विजानीयात्समप्राप्तं न चालयेत् ।।४४।।

अद्वैत प्रकरण की ४४वीं कारिका

अर्थ—चित्त (सुषुप्ति) लीन होने लगे तो उसे आत्मविवेक में नियुक्त करे, यदि विक्षिप्त हो तो उसे पुनः शान्त करे और (यदि इन दोनों के बीच की अवस्था में रहे तो उसे) सकषाय-रागयुक्त समझे। तथा साम्यावस्था को प्राप्त हुये चित्त को चंचल न करे ।।४४।।

समीक्षा—यहां विशेष कुछ इस विषय में हमें नहीं कहना है, क्योंकि हमने इससे पिछली कारिका पर कह आये हैं किन्तु आ० श्री शंकर अपने यहां के भाष्य में यों कह रहे हैं कि (चित्तं मन इत्यनर्थान्तरम्) अर्थात् चित्त और मन ये कोई भिन्न पदार्थ नहीं है। तो किससे ये दोनों भिन्न नहीं हैं? क्या ये आपस में भिन्न नहीं हैं, या जीवात्मा से भिन्न नहीं हैं? यदि आपस में भिन्न नहीं हैं ऐसा कहते हो तो चित्त और मन दोनों का लक्षण पंचीकरण में जुदा क्यों किया माना है तुमने? यदि जीवात्मा से भिन्न नहीं हैं जो ऐसा कहो तो फिर अपने आप के लिए समझाना सिखाना मनाना यगाने की बात हो कैसो? जो आप लोग इस प्रसंग में कारिका एवं भाष्य रूप से लिख कर प्रसंग चला रहे हैं। तो समझाना सिखाना मन लगवाने को बार बार कहना अपने से अन्य के लिये ही होता है। तो आपकी उक्त बात युक्ति तर्क एवं सृष्टि नियम विरुद्ध भी है। तथा सुषुप्ति से प्रथम मन तन्द्रा में पाने कुछ बाहर के ज्ञान में कुछ निद्रा, प्रथमा अवस्था में जाकर मन अपने सस्कारों को स्वप्न रूप में देखता है, किन्तु इसके बाद हो वो अवस्था इसे प्राप्त हो जाती है कि (सुषुप्ति काले सकले विलीने तमो विभूतः सुखरूपमेस्ति ।।कै० उ०) अर्थात् वहां भी नहीं रहा जाता लय हो जाने से क्योंकि सभी इन्द्रिय अन्तःकरण की वृत्तियां विलीन हो जाती हैं, तो ऐसी अवस्था में गया हुवा मन ही नहीं तो फिर किसे संबोधन, सावधान एवं समाहित करते हो। अर्थात् ये प्रसंग ही तुम्हारा युक्तियुक्त नहीं है। अरे क्या, नींद में घोरते हुवे को भी सिखामन और सावधानता का बोध दिया और वैराग्य सिखाया जा सकता है? पर कभी नहीं ।।४४।।

नास्वादयेत् सुखं तत्र निसङ्गः प्रज्ञयाभवेत् ।
निश्चलं निश्चरच्चित्तमे की कुर्यात् प्रयत्नतः ।।४५।।

अद्वैत प्रकरण की ४५वीं कारिका

अर्थ—उस साम्यवस्था में (प्राप्त होने वाले) सुख का आस्वादन न करे बल्कि विवेकवती बुद्धि के द्वारा उससे निःसंग रहे। फिर यदि चित्त बाहर निकलने लगे तो उसे प्रयत्न पूर्वक निश्चल और एकाग्र करे ।।४५।।

समीक्षा—ये कितनी विचित्र बात है कि सत्यावस्था पहुंचे हुए मन को आनन्दानुभव ध्यान लगने की अवस्था तक होता हो नहीं और होने पर भी लगे सुखनुभव तो फिर वा मन सुख को छोड़ कर जायेगा भी क्या? किन्तु कभी नहीं, देखो बच्चों को मा की गोद में खेलने और दूध पोने से आनन्द आ रहा हो उसे हटावे। वहां से वा हटेगा हो क्यों और जबरन हटाओगे तो रोवेगा, तड़फेगा और दौड़ कर इधर मा के तरफ ही जायेगा, क्योंकि उसे वहीं सुख मिल रहा है, इसी प्रकार यदि उसे वहां ध्यानकारिता में सुख मिलेगा तो, वो भला क्यों उसे त्याग कर बाहर होगा ब्रह्म ध्यान से? परन्तु ये तो उसके विपरीत ही उट पटांग लिख मार रहे हैं कि यदि चित्त बाहर निकलने लगे तो उसे प्रयत्न (बल) पूर्वक रोके और सुख का आस्वादन भी न करने दे, तो गुरु जी जिस अवस्था में चित्त तुम्हारा बार बार ध्यानाकारिता से निकल भागता हो अपने अपने आप तो बहुत ध्यान धारणा ही है, न उसे वहां आनन्द ही मिलता है। आप तो व्यर्थ ही सुखास्वादन की बात कर भोलों को वा अयोगियों को यहां मात्र बहकाने हैं तथा न मन न चित्त ही ब्रह्म साक्षात्कार करता है, किन्तु अपने ही आमस्वरूप में जब ध्यानावस्थित यह जीव होता है, तभी आनन्द एवं शान्ति को योगी पाता है, तो आप किस चक्कर में पड़े हैं? देखो वह तो (अवांगमनसगोचरः) कहा गया है। (यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतम् तदेव ब्रह्म त्वंविद्धिनेदं यदिदमुपासते ।।कै० उ०) अर्थात् जो मन के मननता का विषय ही नहीं किन्तु मन भी जिसकी कृपा से मनन शीलता को प्राप्त करता है उसे तू मुमुक्षु ब्रह्म जान इसलिए ज्ञानी जन ये जल थल वा जड मन से उसे नहीं पाते, न उनमें उस प्रभु की उपासना करते हैं। क्रमशः ●

आर्यसमाज का शास्त्रार्थ—युग १

(लेखकः—श्री पण्डित जगत्कुमार शास्त्री "साधु सोम तीर्थ" सी—२।७३, अशोक—विहार—२, देहली—५२)

१—आर्यसमाज के इतिहास का वर्गीकरण कई प्रकार से किया जा सकता है। एक दीर्घकाल व्यापो आयोजनों समावेश संस्था—युग में किया जा सकता है। इसी प्रकार प्रचार—प्रगतियों से सम्बन्धित एक बड़े काल-खण्ड को आर्यसमाज का शास्त्रार्थ-युग भी कहा जा सकता है।

२—आर्यसमाज का शास्त्रार्थ-युग महर्षि दयानन्द के उपदेश-प्रवाह के साथ, आर्यसमाज की वैधानिक स्थापना से कई वर्ष पहले ही आरम्भ हो गया था। आरम्भ में श्री महर्षि जी शास्त्रार्थ-समर के एक ऐसे प्रबल-योद्धा थे, जो अपने प्रबल प्रमाणों और अकाट्य तर्कों से संसार के मूसाई, ईसाई मुहम्मदी, पौराणि प्रभृति सभी प्रति पक्षियों के छक्के छुड़ा देते थे। देखने सुनने वालों पर वैदिक-धर्म की सत्यता की अमिट छाप लगा देते थे।

३—पौराणिकों पर तो इतना अधिक आतंक छा गया था कि उस समय के बड़े-बड़े बिद्वान् भी महर्षि के सामने आने से इन्कार कर देते थे। उनमें इतना नैतिक बल नहीं था कि सार्वजनिक रूप से महर्षि के पक्ष की सत्यता को स्वीकार कर लेते। ऐसा करने में उन्हें अपनी अप्रतिष्ठा के साथ ही, अपनी आजीविका का सँकट भी दिखाई देता था पौराणिक रुढ़ियों, भ्रष्ट कहानियों और सृष्टि क्रम से विरुद्ध ढकोसलों को वेदनाकूल सिद्ध करना सम्भव ही नहीं।

४—महर्षि दयानन्द जी को अपने कार्यों में बहुत ही शीघ्रता के साथ जो असाधारण सफलता, प्रसिद्धि और सत्यशील जिज्ञासु वर्गों में आत्मीयता एवं सहायता मिली, उसका रहस्य भी यही है कि अपने प्रवचनों तथा शास्त्रार्थों के द्वारा महर्षि ने अपने पक्ष की सत्यता, वेदनाकूलता एवं अपने संकल्पों की पवित्रता भली प्रकार प्रमाणित कर दी थी।

५—जब लोगों ने देखा कि महर्षि दयानन्द कोई नया मत-पथ चलाने वाले नहीं; अपितु सत्य सनातन वैदिक-धर्म के पुनरुद्धारक मात्र ही हैं, तब आवश्यक साधन भी महर्षि को सुलभ हो गये और सहयोगी भो। इसके परिणाम स्वरूप महर्षि ने अपने विशाल साहित्य और पवित्र वेद-भाष्य के महान कार्य भी आरम्भ कर दिये। प्रवचनों और शास्त्रार्थों के उपक्रम भी साहित्य रचना के साथ चलते रहे।

६—महर्षि दयानन्द के जीवन काल में ही भारत के प्रायः सभी बड़े नगरों में जीवित, जागृत आर्यसमाज स्थापित हो गये थे। उनका वेदनाद भारत की सीमाओं को लांघ कर विदेशों में भो जा पहुंचा था। जर्मन वालों से उनका गम्भीर पत्र-व्यवहार होने लगा था। मैक्समूलर उनके वेद-भाष्य का ग्राहक बना था। अमेरिका की थ्योसोफिकल सोसाइटी ने आर्य-समाज को शाखा होना स्वीकारा था थ्योसोफिकल सोसाइटी के संस्थापक कर्नल आल्काट और मेडम ब्लेवेटस्की. महर्षि जी की शिष्यता स्वीकार करके भारत पधारे थे।

७—जब जोधपुर के विषपान-काण्ड के बाद अजमेर में महर्षि दयानन्द का देहान्त हुआ, तब उनका एक नौकर क्लर्क, शिष्य एव प्रूफरीडर इटावा निवासी भीमसेन आशा करने लगा कि आर्यसमाज वाले अब उसे महर्षि का उत्तराधिकारी मान लेंगे। परन्तु वह यह न समझ सका कि गुरुडम या मठाधीश के लिये आर्यसमाज आन्दोलन में कोई अवकाश ही नहीं। और कि आर्यसमाज का संगठन एवं कार्य विस्तार प्रजातान्त्रिक रीति नीति के आधार पर सुप्रतिष्ठित है।

८—पहले-पहले आर्यसमाजिक क्षेत्रों में भीमसेन को अच्छा सन्मान मिला था। उनके कई ग्रन्थ, टीका-टिप्पण और उनका मासिक-पत्र "आर्य सिद्धान्त" खूब अपनाये जा रहे थे। जब भीमसेन को महर्षि का उत्तराधिकारी न मिला, तो वह आर्यसमाज के विरुद्ध विषवमन करने, मृतक श्राद्ध और यज्ञों में पशुवध, मांसाहार का समर्थन करने लगा और आर्य-समाज से निकल गया।

९—भीमसेन आर्यसमाज का विरोधी बन गया। पौराणिक उसे उछालने और आर्यसमाज के सम्मुख शास्त्रार्थों में खड़ा करने लगे। पौराणिकों में अपनी दुकानदारी जमाने और आर्यसमाजियों से उलझने के लिये अपना नया मासिक-पत्र-"ब्राह्मण सर्वस्व" नाम से निकाला। वह घमण्डो कहा करता था कि मैं आर्यसमाज का नाम निशान मिटा दूंगा। दुष्ट चिन्तन के कारण वह स्वयं ही उपहास का पात्र बना और विनष्ट हो गया।

करें तप, त्याग, यज्ञ व्रत नियम,
फिरें या वेद-शास्त्र गाते।
जो होते दुष्टभाव के विप्र,
नहीं वे सिद्धि को पाते॥

१०—पं० भीमसेन जो निर्लज्जतापूर्ण मौखिक और लिखित आक्रमण आर्यसमाम पर किये उनके युक्ति-प्रमाण संयुत मुंहतोड़ उत्तर देने में मेरठ निवासी श्री पं० तुलसीराम स्वामी सबसे आगे रहे। एक प्रकार से वे थे तो भीमसेन के शिष्य ही; परन्तु उन्होंने शास्त्रार्थों में भी और अपने मासिक—पत्र "वेदप्रकाश द्वारा भी भीमसेन के सभी वार विफल कर दिये।

११—पं० तुलसीराम स्वामी उत्तम संघठन कर्त्ता और प्रौढ़ विद्वान् एवं सुप्रसिद्ध आर्य साहित्यकार थे। उनके भास्कर प्रकाश, मनुस्मृति, भाष्य, सामवेदभाष्य आदि ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं। आर्यजगत् ने आर्यप्रतिनिधि सभा के प्रधान पद पर प्रतिष्ठित करके उनकी सराहना की थी। जब आर्यसमाज में बाबू पार्टी और पण्डित पार्टी के विवाद उभरे थे, तब पण्डित पार्टी के नेता श्री तुलसीराम स्वामी ही थे।

१२—महर्षि दयानन्द जी के निर्वाण के पश्चात् पौराणिक-मडल की ओर से आर्यसमाज का विरोध करने वाले कुछ पण्डितों के नाम इस प्रकार हैं:—विद्यावारिधि पं० अम्बिकाप्रसाद व्यास, जगत्प्रसाद वाममार्गी भारतधर्म महामण्डल वाराणसी के संस्थापक दयानन्द बी० ए०, आलाराम उदासीन जो पहले आर्यसमाज का उपदेशक भो रह चुका था, सनातन धर्म सभा आन्दोलन के प्रवर्तक झज्जर जि० रोहतक निवासो पं० दीनदयाल शर्मा।

१३—पौराणिक विरोधियों के दूसरे दल में महामहोपाध्याय पं० गिरधर शर्मा चतुर्वेदी, थानेसर के श्री पं० गरुड़ध्वज, कैथल के पं० आत्माराम, कौलके पं० लक्ष्मीचन्द्र, फिल्लोर के पं० श्रद्धाराम, कालूराम शास्त्री (अन्धा) श्रीकृष्ण शास्त्री, दीनानाथ शास्त्री, मुरारीलाल शास्त्री राजनायण "अरमान" जोकि पहले आर्य समाजी तथा श्री स्वामी दर्शनानन्द जी का क्लर्क भी रह चुका था, मुरारीलाल शास्त्री और माध्वाचार्य शास्त्री शामिल हैं।

१४—महर्षि दयानन्द के दूसरे बागी शिष्य पं० अखिलानन्द को भी पौराणिक के उक्त दूसरे दल में हो गिनें। वे संस्कृत भाषा के उत्तम कवि गुरुकुल कांगड़ी में अध्यापक और "दयानन्द दिग्विजय" नामक श्रेष्ठ महाकाव्य के प्रणेता थे। वे आशा करते थे कि स्वामो श्रद्धानन्द जी के बाद गुरुकुल कांगड़ी का आचार्य पद उनको हो मिलेगा। जब वह पद आचायरामदेव जी को मिला, तब वे बौखला गये और आर्यसमाज विरोधो पौराणिकों में जा मिले।

१५—आर्यसमाज की ओर से पौराणिकों, ईसाइयों मुहम्मदियों, जैसे जैनियों और अहमदियों के साथ शास्त्रार्थ करने वाले कुछ प्रमुख सज्जनों के नाम इस प्रकार हैं:—

(क) मुनिवर श्री पं० गुरुदत्त एम० ए० श्री पं० गणपति शर्मा, श्री स्वामी नित्यानन्द जी, श्री स्वामी अच्युतानन्द जी, श्री स्वामी मुनीश्वरानन्द जी (विहार वासी) श्री स्वामी शंकरानन्द जी (गुजराती) श्री पं० शिवशंकर शर्मा काव्यतीर्थ. श्री महात्मा मुन्शीराम जी (अमरशहीद) श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी, धर्मवीर श्री पं० लेखराम जी आर्य मुसाफिर, श्री मास्टर आत्माराम जो अमृतसरी, श्री पं जगन्नाथ जी निरुक्तरत्न, श्री पं० जे० पी० चौधरी काव्यतीर्थ, श्री स्वामी दर्शनानन्द जी, श्री पं० तुलसीराम स्वामी, महामहोपाध्याय श्री पं० आर्य मुनि जी, श्री पं० मुरारीलाल शर्मा, श्री पं० रामचन्द्र जी देहलवी, श्री पं० देवेन्द्रनाथ जी शास्त्री।

शेष पृष्ठ ८ पर

पृष्ठ ७ का शेष

(ख) श्री पं० बुद्धदेव विद्यालंकार, श्री पं० बुद्धदेव मीरपुरी, श्री पं० बुद्धदेव (धारवाले) श्री पं० लोकनाथ जी, श्री पं० धर्मभिक्षु जी श्री पं० शान्तिप्रकाश जी सिद्धान्त भूषण, श्री स्वामी कर्मानन्द जी, श्री पं० विद्यानन्द मन्तकी श्री पं० मन्साराम जी शास्त्री "वैदिकतोप श्री ठाकुर अमर सिंह आर्य मुसाफिर, श्री पं० कालीचरण जी आलिम फाजिल, श्री चिरंजीलाल "प्रेम," श्री स्वामी रुद्रानन्द जी, श्री आचार्य विश्वश्रवा जी, श्री पं० व्यासदेव शास्त्री, पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति, श्री प० बिहारीलाल जी शास्त्री। श्री पं० धर्मदेव जी विद्यावाचस्पति।

१६—मुसलमान शास्त्रार्थ कर्त्ताओं में मौलाना सनाउल्ला अतमृसरी और अरबी विद्यालय फतहपुरी देहली के मौलाना खुदाबख्श विशेष स्मरणीय है। दोनों सज्जन बारम्बार शास्त्रार्थों में आते रहे और इस्लामी मन्तव्यों की नई-नई तावीलें करते रहे। श्री सनाउल्ला अहले हदीस सम्प्रदाय के थे। कादयानी और लाहौरी पार्टियों के अहमदियों, से भी शास्त्रार्थ हुआ करते थे उनमें विषय घूम फिर कर मिर्जा गुलाम अहमद कादयानी को भविष्यवाणियों, पुस्तकों मन्तव्यों आदि से जुड़ जाता था। वातावरण में कटुता भी आ जाया करती थी। धर्मवीर पं० लेखराम आर्य मुसाफिर की हत्या अहमदियों के षड्यन्त्रों का ही परिणाम थी।

१७—ईसाई भाई पहले-पहले तो शास्त्रार्थों के लिये आने लगे थे। फिर उन्होंने नीति बदल ली। उन्हें यह विदित हो गया कि न तो ईसाई-मत आर्यसमाज के तर्कों के सामने ठहर सकता है और न ही आर्यसमाज (वैदिक-धर्म) की सत्यता को चुनौती दी जा सकती है। चुपचाप और तरह-तरह से गरीबों और भोले भाले लोगों का ईसाई बनाना ही ईसाइयों का मुख्य लक्ष्य है। पादरी स्काट, पादरी आर्थर, पादरी अब्दुलहक, पादरी अहमद मस्तीह इनके मुख्य शास्त्रार्थ कर्त्ता रहे।

१८—शास्त्रार्थ-युग में आर्यसमाज एवं जनसाधारण को बहुत से लाभ सहज में ही प्राप्त होते रहे। इस युग में आर्यसमाज का प्रभाव खूब बढ़ा प्रायः प्रत्येक शास्त्रार्थ आर्यसमाज के मन्तव्यों की सत्यता की स्थायी छाप लगाने वाला होता था। जनता का मनोरंजन भी होता था, बौद्धिक विकास भी। उन दिनों स्वाध्याय और अपने तथा दूसरों के धार्मिक ग्रन्थों को पढ़ाने की प्रवृत्ति भी खूब बढ़ी थी। नये-नये प्रमाणों की खोज परिश्रम पूर्वक होती थी। नये ग्रन्थ भी खूब लिखे और छपवाये गये थे। बहुत से शास्त्रार्थों के विवरण भो पुस्तक रूप में छपवाये गये थे।

१९—कुछ शास्त्रार्थ लिखित भी होते थे। यह कार्य कुछ कठिन और असुविधापूर्ण था। तथापि इस मार्ग को इसलिये अपनाना पड़ा था कि कुछ प्रतिपक्षी शास्त्रार्थों में कही हुई बातों से फिर जाया करते थे। शास्त्रार्थों में कभी-कभी निर्णायक भी मनोनीत कर लिये जाते थे और वे अन्त में मौखिक या लिखित रूप में अपने निर्णय घोषित कर देते थे।

२०—कभी कभी आर्य विद्वान् कुछ विषयों पर आपस में भी शास्त्रार्थ करने लगते थे। वृक्षों में जीव है, या नहीं? इस विषय पर श्री पं० गणपति शर्मा और श्री स्वामी दर्शनानन्द जी वृक्षों में जीव स्वीकारते ही न थे। ऐसा एक दूसरा शास्त्रार्थ लाहौर में श्री महात्मा हंसराज जी की अध्यक्षता में "वेदों में इतिहास" विषय पर स्वर्गीय श्री पं० विश्वबन्धु शास्त्री, एम० ए०, एम०, ओ-एल० के साथ श्री पं० ब्रह्मदत्त जी, श्री आचार्य विश्वश्रवा जी और श्री पं० भगवद्दत्त जी बी० ए० का लिखित रूप में हुआ था। इस शास्त्रार्थ की तीन प्रतिलिपियां तैयार कराई गई थी। उनमें से एक होशयारपुर में और दूसरी सोनीपत में सुरक्षित बताते हैं उनका प्रकाशन अभी हुआ ही नहीं। आचार्यविश्वबन्धु जी वेदों में इतिहास बताते थे। शास्त्रार्थ में उनके मुख्य प्रतिपक्षी श्री पं० विश्वश्रवा जी थे। "अकाल मृत्यु" के विषय में आर्य विद्वानों का एक पुराना विवाद चला आ रहा है।

२१—शास्त्रार्थों को देखने सुनने के लिये जनसाधारण, प्रतिष्ठित विद्वान् और सरकारी अधिकारी आदि बड़ी संख्या में पधारा करते थे। महीनों पहले से तैयारियां होती थीं। कई बार पक्ष-विपक्ष में लम्बे-लम्बे पत्र व्यवहार भी चलते थे और तरह-तरह के शर्तनामे भी लिखे जाते थे। कभी-कभी तो पत्र व्यवहारों को लम्बा करके, अनुचित शर्तें पेश करके और शास्त्रार्थ को टाल कर ही आर्यसमाज के प्रतिपक्षी अपना मान बचाया करते थे। शास्त्रार्थों में कभी-कभी हाथापाई के झगड़े-झमेले भी होने लगते थे। कहना न होगा कि हुल्लड़ मचाकर पराजय को छिपाया जाता था। चुनौतियों और उत्तेजनाओं के वातावरण फिसादो की रोकथाम के सरकारी इन्तजाम भी हुआ करते थे।

२२—शास्त्रार्थों से जनता की तार्किक शक्ति का विकास तो हुआ हो है, अवैदिक मत-मतान्तरवादियों ने अपने धार्मिक ग्रन्थों के उल्लेखों को बदलने, अर्थवादों एवं अलंकारों के सांचों में ढालने के प्रयास भी खूब किये हैं तथापि स्वपनों, भविष्यवाणियों, अन्धविश्वासों और जादू टूने के नाम पर प्रचलित टोटकों वा षड्यन्त्रों पर आधारित मत-पन्थों का खोखला पन खुलकर जनता के सामने आ चुका है। यह बात भो कुछ अंशों में सत्य है कि दूसरों को जगाने के बाद आर्य समाज खुद सो गया है।

२३—जब शास्त्रों के अनुक्रम चल रहे थे, तब आर्य समाजों के साधारण सभासद् भी अपनी सूझबूझ लगन, स्वाध्यायशीलता और परिपक्व धार्मिक दृढ़ता के आधार पर किसी भी विषय पर शास्त्राथ करने को सन्नद्ध रहते थे। उन दिनों में वकीलों जैसे फीस खोर और विज्ञापन पन्थो शास्त्रार्थ महारथी तो थे हो नहीं। कभी-कभी ऐसा भो देखने में आता था कि चुनौती अथवा आवाहन प्राप्त करके साधारण आर्य सभासद् विपक्षियों के बड़े-बड़ों से जा टकराते और यशस्वी बनते थे। इसके साथ ही घबराहट एवं जल्दी में कभी-कभी दूर के विद्वानों को भी शीघ्रता से बुलाया और बहुत-सा धन खर्च किया जाता था। शास्त्रार्थ-युग से कुछ फीसखोरों और पेशेवर लोगों ने अनुचित लाभ भी उठाया था।

२४—पौराणिकों से होने वाले शास्त्रार्थों में मूर्त्तिपूजा, अवतारवाद, मृतक श्राद्ध, वर्णव्यवस्था, विधवा विवाह, वेदों में इतिहास, ब्राह्मण ग्रन्थों का वेदत्व, मांसाहार, यज्ञों में पशुवध, पुराणों की अवैदिकता, छूत अछूत आदि मुख्य विषय होते थे। बाद में एक नया विषय यह भी जुड़ा था कि "महर्षि दयानन्द के ग्रन्थ वेदानुकूल हैं, या नहीं?" इसे स्वीकार किये बिना पौराणिक शास्त्रार्थ के लिये तैयार ही न होते थे। दुर्जनतोष न्याय से आर्य पुरुष उनकी इस अनुचित माँग को प्रायः मान लिया करते थे। तो आर्य विद्वान् भी झूटे को उसके घर तक पहुंचाते ही थे। समझदार श्रोताओं के सामने "दूध का दूध, पानी का पानी" स्पष्ट होता था।

२५—ईसाइयों और मुसलमानों से होने वाले शास्त्रार्थों में पुनर्जन्म, पापों की क्षमा, जीवात्मा और प्रकृति की अनादिता, पैगम्बरवाद, दूत-पूतवाद, क्या कुरान ईश्वरीय ज्ञान है? क्या बाईबिल ईश्वरीय ज्ञान है? क्या वेद ईश्वरीय ज्ञान है? क्या गोवध आवश्यक है? इत्यादि विषय होते थे। चमत्कारों तथा करामाती मुसलमान फकीरों, सुधारकों, नये-पुराने तथा कथित नबियों आदि से सम्बन्धित प्रसंग भी साथ जुड़ जाते थे।

२६—शास्त्रार्थों की परम्परा को बन्द करने-करवाने में मुख्य हाथ कांग्रेसियों, कांग्रेसी आर्य समाजियों, हिन्दूसभाई आर्यसमाजियों और सरकार से नानाविध लाभ उठाने वाले आर्यसमाजियों का था। वे कहते थे कि शास्त्रार्थों से जनता में फूट फैलती है, साम्प्रदायिक सद्भावों के संवर्धन में बाधा पड़ती है और साम्प्रदायिक फिसादों का अन्देशा बढ़ता है। शास्त्रार्थों को स्वराज्य-प्राप्ति में बाधा भी कह दिया जाता था। कुछ लोगों के कोमल भावों पर चोट लगने की बात भी कही जाती थी। ये सब हेतु भ्रान्तियों, हेत्वाभाषा और ना समझो पर ही आधारित थे। पौराणिक, ईसाई और मुसलमान भी पर्दे की आड़ में रहकर इन प्रयासों में शामिल हो जाते थे। वे समझते थे कि इस प्रकार उनके मनों की पोल न खुलेगी और उनके विद्वानों को मान रक्षा भी हो जायेगी।

आर्यसमाज के वर्चस्व को बढ़ाने के लिये यह आवश्यक प्रतीत होता है कि शास्त्रार्थ-परम्परा को यथापूर्व ही चलाया और आगे बढ़ाया जाये। इस कार्य में आर्यसमाज का वर्तमान नेतृत्व कुछ बाधक भी हो सकता है।

राजस्थान के वीर—स्वदेश भक्त वीरवर गोकुला

(लेखक—चौ० किशनाराम आर्य गांव ललानियां जिला श्री गंगानगर राजस्थान)

७५४ साल १मास १७ दिन स०प्र० के अनुसार मुसलमानी शासन भारतवर्ष में रहा। इस पराधीनता केसमय में हमारी प्राणों से प्यारी-"सुजला सफला शस्य श्यामला,, मातृ भूमि पर जुल्मों की कसर नहीं रही। देश को स्वाधीन कराने के लिये हमारे देश भक्त वीरों ने अपना तन, मन, धन एवं सर्वस्व अर्पण करने में मुंह नहीं मोड़ा। मुगल बादशाह औरंगजेब के अत्याचारों से देश के प्रत्येक कौने में हाहाकार मच गया। दीन के नाम पर मंदिर ध्वंस किये जाते थे। कहीं चोटी जनेऊ कतर-कतर कर राम कृष्ण ऋषि महर्षियों की संतान वैदिक धर्म छुटा इसलाम मजहब में जबरदस्ती धकेली जा रही थी इन्कार करने पर गर्दन उड़ाई जाती थी। हमारी मां बहिनों की इज्जत खतरे में थी, दुध मुंह बच्चे संगीनों पर टांगे जाते तलवार के घाट उतारे जाते या दीवारों में चुन दिये जाते थे। हिन्दुओं (आर्यों) पर जजिया कर लगाया गया। उन्हें चर्खे पर चढ़ाया गया। एक दिन, एक महीना, एक साल नहीं सालों पर साल गुजरने लगे। फिर अत्याचार से असंतोष, असंतोष से एकता और एकता से अत्याचारी के विरोध में, विरोध (विद्रोह) विद्रोह से आजादी खून पर तैर कर आती है। आखिर यह सत्य भी हुआ है देशभक्त वीरों ने खूनी फाग खेलनी शुरू कर दी। इसमें राजस्थानी (वीर भूमि के) वीर आगे आये। शांति से जीवन बिताने वाले ब्रज भूमि के शूरवीर देशभक्त जाटों ने अत्याचारी (औरंगजेबी) शासन को जड़मूल से उखाड़ फेंकने के लिये संगठित हो मथुरा के फौजदार (हाकिम) अत्याचारी मुर्शिद कुली खाँ को घरकर मार डाला। बादशाह औरंगजेब जो धूर्त्तता में पारंगत था उसने (अब्दुलनवी) को मथुरा का हाकिम बनाकर भेज दिया। अब्दुलनवी के अत्याचारों से ब्रज कांपउठा। तिलपत केरहने वाले वीरवर गोकुला को जाटों ने अपना नेता चुना। गोकुला ने अपने वीरों को औरंगजेबी राज्य की नींव उखाड़ फेंकने के लिये आवाहन किया; और बात की बात में हजारों वीरों ने देश पर मर मिटने की शपथ ली वीरवर गोकुला ने रण बांकुरे योद्धाओं की एक फौज लेकर के सादाबाद की मुगल छावनी को तहस-नहस कर डाला। इस शानदार विजय से गोकुला की शक्ति खूब बढ़ गई। बादशाह औरंगजेब ने भयभीत हो; चर्चा चलाई कि अगर जाट लोग अपनी लूटमार बंद करदें तो उन्हे क्षमा कर दिया जायेगा। किन्तु गोकुला और उनके साथी वीर तो देश धर्म और देश के लिये हंसते हंसते बलिदान होने की प्रतिज्ञा करके सर पर कफन बांधकर अपने घरों से निकले थे। वीरों के मुगल छानियों पर धावे होते रहे। आखिर सन् १६७० ई० में एक बड़ी भारी फौज लेकर औरंगजेब (खुद) ने जाटों को दबाने के लिये धावा बोल दिया तिलपत से २० मील की दूरी पर वीरवर गोकुला २० हजार वीरों की फौज लेकर औरंगजेब से भिड़ गया। मथुरा के आत्याचारी हाकिम अब्दुलनवी और चार हजार मुगल सैनिकों को वीर जाटों ने धराशाही कर दिया। मुगल सेना के पैर उखड़ने ही वाले थे और जाटों को विजय मिलने वाली थी। लेकिन सहायता के लिये नई सेना आ गई। जाटों के सामान, और हथियारों की तीन गाड़ियां लूट ली गई। जाटों ने जीत के लक्षण न देखकर अंतिम हमला कर दिया। जाट क्षत्रियों में स्त्री पुरुष का दर्जा हमेशा से ही बराबर का रहा है। इसलिये इस युद्ध में नारियों ने भी मर्द योद्धाओं के साथ युद्ध के जौहर दिखाये थे। किन्तु इसी बीच उनके वहाँ दो सरदार वीरवीर गोकुला और उदयसिंह गिरफ्तार कर लिये गये। इस आजादी के युद्ध में जहां तीन हजार ब्रज के शूरमा धराशाही हुए वहाँ चार हजार मुगल मारे गये। जाट वीर युद्ध से हट गये। गोकुला और उनके साथी उदयसिंह को आगरे लाया गया। गोकुला के साथियों को भयभीत करने के लिये उस विभूति के शरीर के टुकड़े टुकड़े कर डाले गये। जिस समय उस देशभक्त वीर के जोड़ खोले जा रहे थे। उस समय दर्शक हिचकियां भर कर रोते थे, किन्तु वह देश दीवाना वीर निश्चल और प्रसन्नचित्त था। उसे जंजीरों से जकड़ कर कुल्हाड़ों से काट डाला गया किन्तु उसकी यह जिद न गई कि "छोड़ देने पर फिर विद्रोह की आग जला दूंगा। गोकुला के स्वदेश भक्त वीरवर साथी उदयसिंह ने भी अपने साथी गोकुला की तरह ही हंसते-हंसते शाहदत पाई वीरभूमि (राजस्थान) के वीर मर मिटना पसंद करते हैं। जैसा कि—

सुत मरियो हित देश रै, हरख्यो बंधु समाज।
माँ नहँरखी जनम दिन, जतरी हरखीआज।।

पुत्र मात्री भूमि की रक्षा में काम आया, यह देखकर सभी बंधु-बाँधुओं को खुशी हुई। स्वयं माता तक को इस घटना से आज (पुत्र की वीरता और देश भक्ति का विचार कर) जितनी प्रसन्नता हुई उतनी उसके जन्म दिन भी नहीं हुई होगी। राजस्थान में देश धर्म पर मरना हो सफल मौत माना है। धन्य धन्य धरती धन्य धन्य उसकी

वीरवर राजाराम

वीरों का खून व्यर्थ नहीं जाता। यह अटल सिद्धान्त है गोकुला और उनके वीर साथी उदयसिंह के प्राण आहुति के १५ साल बाद वीरवर राजाराम नें ब्रज के जाटों का नेतृत्व संभाला। वीरवर राजाराम सिनसिनवार के रामजी चाहर से मिला जिन के पास एक सोगर का बड़ा किला था उस दुर्ग में आवश्यक अस्त्र शस्त्रों का संग्रह किया गया जंगलों में गुप्त फौजी छावनियां कायम कीं। उसने अपनी फौज को अफसरों के अनुशासन में रहने हंसते हसते दुःखों का सामना करने आदि को उत्तम शिक्षा दी। सबसे पहले मुगलों को दण्ड देने के लिये आगरे पर हमला कर दिया। आगरे पर वीर जाटों का झंडा गड़ गया सड़कें बन्द हो गई। मुगल हाकिम शफीखाँ को किले में घेर लिया और सिकन्दरे पर आक्रमण कर दिया। इसके कुछ दिन बाद धौलपुर के पास अगरखां तूरानी को जा घेरा और उसके घोड़े गाड़ियां और दूसरा सामान भी छीन लिया। अगरखां तूरानी और उसका दामाद इस लड़ाई में काम आये। मई सन् १६६८ ई० में सफदरजंग ने राजाराम का मुकाबला किया, और हार खा कर मैदान से भाग गया। फिर सफदरजंग ने अपने बेटे आजमखां को मुकाबिले के लिये भेजा। आजमखां के आने से पहले वीरवर राजाराम ने अपने घोड़ों की बाग (लगामें) सिकंदरे की तरफ मोड़ दीं। और मुगलों के ४०० आदमियों को जहन्नुम रशीद कर दिया (काट डाला) और शाइस्तखां जो कि आगरे का इस समय मुगल बादशाह औरंगजेब का बनाया सूबेदार था उसके इधर आने से पूर्व ही अकबर बादशाह की कबर को खोद डाला। अकबर की अस्थियों का दाह कर्मकर(डाला) वीर राजाराम ने वीरवर गोकुल और उदयसिंह की शहादत का बदला लेने के लिये ही कबर की लूट कराई थी इससे औरंगजेब का महान् अपमान भी हुआ कबर में रखे सोने चांदी के बर्तनों चिराग और दूसरे सामान के हाथ तक नहीं लगाया।

वीरवर राजाराम के नाम से मुगल कांपने लगे। उन पर इस वीर की धाक बैठ ग। इस देश भक्त वीर की मृत्यु दो जगह के युद्धों मे हुई बताई जाती है। एक जब शेखावतों, और चौहानों में लड़ाई हुई। तो चौहानों ने राजा राम को सहायता के लिये बुलाया और इसी युद्ध में एक मुगल सैनिक की गोली से मृत्यु हो गई। दूसरे सिनसिनी पर जब बेदार वक्त में ने चढ़ाई की तो वह युद्ध में मारा गया। उसी वीर की मृत्यु का समय सभी इतिहासों में सन् १६८८ ई० बताया है। राजस्थानी वीरों ने देशहित मरना ही श्रेष्ठ माना है यहां के वीरों की यही मर्यादा है।

जैसे कहा है कि—जिण पायो मानस जनम, फिर धन पायों लाख। पायो मरण न देश हित, पायौ सरब नहाक।। मानव जन्म पाकर के लाखों की संपति भी जोड़ ली, किन्तु देश-हित के लिये मरण का सुअवसर वह नहीं पा सका तो उसका मानव जन्म और धन-सम्पत्ति का संग्रह सब व्यर्थ ही गया समझना चाहिये।

वीरवर वृद्ध केसरी भज्जासिंह—वीरवर राजाराम के वीरगति पाने के पश्चात् उनके वृद्ध पिता भज्जासिंह जी जाटों के सरदार बने। औरंगजेब ने बेटे से बाप को लड़ाया और भाई से भाई को यही नीति उन छलिया बादशाह ने यहां चली। आमेर के राजा बिशनसिंह को मथुरा का फौजदार बना दिया कुछवाहा सरदार स्वन्तत्रता प्रिय जाटां का दमन करने पर राजी हो गया। उस देश द्रोही ने सिनसिनी के किले को

(शेष पृ० ११ पर)

हिन्दुस्तान अभी तक भाषा के क्षेत्र में अपने को स्वतन्त्र नहीं कर पाया है

भारत के स्वतन्त्र होने पर उच्च अधिकारियो, राष्ट्र निर्माताओ राजनीतिज्ञो और जनसाधारण सभी का ध्यान भाषा की ओर आकर्षित हुआ। वैधानिक रूप से हिन्दी को "राष्ट्रभाषा" के सिहासन पर आसीन किया गया। क्योकि यही भाषा सर्वाधिक बोली और समझी जाती है। दक्षिण के कुछेक अपवादो को छोडकर, हिन्दी का समस्त भारत मे प्रभत्व है। भारत की लगभग दो तिहाई जनता इसका प्रयोग करती है। जिन भू-भागो की यह मुख्य भाषा नही है, वहा भी इसका व्यवहार होता है।

हिन्दी मे राष्ट्रभाषा के सभी गुण विद्यमान है। उसे राष्ट्रभाषा का पद उचित मिला है। वह इस उच्च पद की एकमात्र अधिकारिणी है। हिन्दी की बराबरी दूसरी भाषा नही कर सकती। राष्ट्रभाषा मे राष्ट्र की धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक तथा सांस्कृतिक सभी विचारधाराए प्रतिबिम्बित होता है जो वर्तमान तथा भावी सन्तान को अनुप्राणित करती है। हिन्दी सस्कृत की पुत्री होने के कारण उसके सभी अग सस्कृत के जीवन रस से निर्मित तथा परिपुष्ट है।

इतना सब कुछ होते हुए भी हिन्दी को भारत मे अभी तक समुचित स्थान प्राप्त नही हो पाया है। इसका सबसे बडा कारण है—हमारा शासक वर्ग। वास्तव मे, शासक वर्ग मे, अधिकाशत वे लोग है जो अग्रेजी शिक्षा की उपज है, उनके हृदय मे और मस्तिष्क मे अभी तक अग्रजी का मोह कूट कूट कर भरा है। अभी तक अंग्रेजी ने ही भारतीयो का पिण्ड नही छोडा है जबकि सरकार ने एक और भाषा जिसका जन्म लगभग १५२६ पन्द्रह सौ छब्बीस मे मध्यकालीन भारत मे हुआ था स्कलो म प्रवेश करा दिया है। प्रत्येक व्यक्ति जानता है जो उत्तर प्रदेश मे हुआ था और हो रहा है। राष्ट्रभाषा बन जाने पर भी हिन्दी का कोई मूल्य नही रहा। उर्दू को आज उसके सामने उच्च स्थान प्राप्त है, प्राप्त नही बल्कि दिया गया है। सरकार कहती है—चाहे किसी स्कूल मे उर्द पढने वाले छात्र हो या न हो, अध्यापक अवश्य रखा जाएगा। उसको दूसरे अध्यापको की भाति ही मासिक वेतन मिलता रहेगा। क्या ऐसे शब्द कभी हिन्दी के प्रति भी कहे गये थे ?

राष्ट्रभाषा होकर भी हिन्दी अभी तक "अगर मगर" की स्थिति मे फसी हुई है। स्वतन्त्रता के छब्बीस वर्ष पश्चात् भी व्यावहारिक रूप मे, हिन्दी की स्थिति "निश्चित" नही हो पाई है। विभिन्न प्रकार के भाषायी आन्दोलन, विरोध तथा हडतालो आदि के चगुल से हिन्दी निकल नही पा रही है। शोक तथा लज्जा की बात है कि अभी तक पत्र व्यवहार, लिखाई पढाई, बोलचाल मे उसका आश्रय लिया जा रहा है। यह हमारी हीनत्व भावना का द्योतक है। रूसी राजदूत का यह कथन कितना सत्य है कि "मैं भारत मे आकर हिन्दी को भूलता जा हूं।" कारण यह कि हिन्दुस्तान अभी तक भाषा के क्षेत्र मे अपने को स्वतन्त्र नही कर पाया है। अग्रेजी के प्रति इतना मोह शायद अग्रेजो मे भी नही होगा जितना भारतीय अग्रेजो मे मिलता है।

किन्तु आज आवश्यकता विरोध भाव को बढाने की नही, वरन् समाप्त करने की है। यदि तटस्थ होकर विचार किया जाए तो पता चलेगा कि हिन्दी की उपेक्षा के कारण हिन्दी विरोधी और हिन्दी हितैषी दोनो ही है।

वास्तव मे "हिन्दी समस्या" कोई समस्या नही है। स्वार्थ के कारण बलपूर्वक उसे समस्या बना दिया है। कुछ हो, अब हमे हाथ पर हाथ रखे नही बैठा रहना चाहिये और तन, मन, धन से हिन्दी के प्रचार तथा प्रसार मे जुट जाना चाहिये। प्रत्येक को हिन्दी के अध्यापन, शोध और समीक्षा की ओर विशेष ध्यान देना चाहिये। हम जो कुछ लिखे हिन्दी मे लिख। पत्र व्यवहार भी हिन्दी मे ही कर।

हिन्दी मे इतनी सरलता है कि दूसरे देश का निवासी उसे आसानी से समझ और सीख सकता है और उसमे अपने विचार प्रकट कर सकता है। हिन्दी भाषा का विस्तार बहुत अधिक है। हिन्दी मे शब्दो की भी कमी नही है। यदि किसी विषय का भाव व्यजक शब्द नही भी प्राप्त है तो वह हिन्दी की जननी अर्थात् सस्कृत से लिया जा सकता है। अथवा उसकी सहायता से बनाया जा सकता है। अत हिन्दी से अधिक समर्थ कोई भाषा नही जिससे आज तक भारत का हित साधन हुआ हो।

अत प्रत्येक भारतवासी को हिन्दी से प्रेम होना चाहिये और अपनी भाषा पर गर्व होना चाहिये। भारत को भाषा के क्षेत्र मे स्वतन्त्र होना चाहिये क्योकि हिन्दी स्वतन्त्र भारत की राष्ट्रभाषा है और राष्ट्रिय एकता तथा देश की अखण्डता राष्ट्रभाषा पर ही निर्भर होती है।

लेखक—विद्यार्थी सत्यपाल आर्य बी० ए० आर्ष गुरुकुल टटेसर जौन्ती, दिल्ली-४१

हर्ष समाचार

महाकवि मेधाव्रताचार्य के काव्य पर डा० सुशीला आर्या को राजस्थान विश्वविद्यालय द्वारा डाक्टर आफ फिलासफी की उपाधि प्रदान—

आर्यजगत् को यह जानकर अपार प्रसन्नता होगी कि आर्यसमाज की प्रमुख लेखिका एव विदुषी कुमारी सुशीला आर्या एम० ए० प्रवक्ता गाधी कालेज चरखी दादरी को 'महाकवि मेधाव्रताचार्य के कवित्व एव व्यक्तित्व' विषय पर पी० एच० डी० की उपाधि राजस्थान विश्वविद्यालय ने प्रदान की है। विदुषी लेखिका ने अपने शोध प्रबन्ध मे दयानन्द दिग्विजय दयानन्द लहरी आदि काव्यो के रचयिता सस्कृत के इस सिद्ध कवि आचार्य मेधाव्रत के समग्र साहित्य का विभेद अनुशीलन किया है।

शोध प्रबन्ध डा० ब्रह्मानन्द जी शर्मा सस्कृत विभागाध्यक्ष राजकीय महाविद्यालय अजमेर के निर्देशन मे लिखा गया तथा डा० भवानीलाल जी भारतीय ने भी समय समय पर अपने सुझाव दिये। —सवाददाता

शुभ समाचार

आर्यसमाज के ख्यातनामा लेखक एव विद्वान् डा० भवानीलाल भारतीय को राजस्थान विश्वविद्यालय ने पी० एच० डी० उपाधि हेतु शोधकार्य का निर्देशक नियुक्त किया है। डा० भवानीलाल भारतीय अनौपचारिक रूप से अब तक आर्यसमाज विषयक शोध कार्यों का मार्गदर्शन करते रहे हैं। अब शोध छात्र उन्हें अपना विधिवत् निर्देशक बनाकर उनके मार्गदर्शन का लाभ प्राप्त कर सकते हैं।

गुरुकुल कागडी विश्वविद्यालय मे वे पहले से ही शोध कार्यों के लिये निर्देशक है। —सवाददाता

अजमेर में ऋषि मेला समारोह पूर्वक सम्पन्न

प्रतिवर्ष की भाति इस वर्ष भी आनासागर स्थित ऋषि उद्यान में ऋषि मेला हर्ष एव उल्लास के वातावरण मे सम्पन्न हुआ। अनेक विद्वानो के भाषण हुए। स्वामी गगेश्वरानन्द जी ने वेद पुस्तक भेंट की। परोपकारिणी सभा का अन्तरङ्ग सभा का और त्रैवार्षिक निर्वाचन भी सम्पन्न हुआ। पूज्य महात्मा आनन्द स्वामी जी प्रधान चुने गये।

—डा० भवानीलाल स० मन्त्री

आर्य युवक परिषद्, दिल्ली

स्वामी दयानन्द सरस्वती द्वारा रचित अमर ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश की रचना शताब्दी भी मनाई जाए। आर्य युवक परिषद्, दिल्ली प्रदेश द्वारा सदैव की भाति सितम्बर ७४ मे आयोजित सत्यार्थप्रकाश की परीक्षाओ के अधिक से अधिक परीक्षा केन्द्र स्थापित करके भारी संख्या मे भाग लेकर सत्यार्थप्रकाश का प्रचार करें।

—मागेराम आर्य एम० ए०, प्रचार मन्त्री, आर्य युवक परिषद्, दिल्ली

मैं नेता हूँ

(विद्यार्थी योगेश्वरसिंह)

मैं नेता हू मैं नेता हू।
कुछ करने धरने का नाम नही, बातो से नैया खेता हू।
इधर उधर आने जाने को, मोटर पर चढ लेता हू॥
मैं नेता हू

जनता को बहकाने को, लम्बा भाषण दे लेता हू।
हडतालो और जुलूसो मे, झण्डे लेकर मैं चलता हू॥
मैं नेता हू

फौजी सेना जब आती है, आसू और बन्दूको मे।
जनता को आगे करके मैं, पीछे की राह पकडता हू॥
मैं नेता हू

मँहगाई और गरीबी को, हटाने का निश्चय लेता हू।
तेल कोल से जलती जनता को, बहका कर पैसा लेता हू॥
मैं नेता हू

स्वार्थ सिद्धि के चक्कर मे, छात्रो का साथ पकडता हू।
राजनीति का पाठ पढाकर, हडतालो को करवाता हू॥
मैं नेता हू

ससद् मे आने जाने का, खद्दरधारी बन जाता हू।
उत्सव और मुशायरो मे, जनता पर रोब जमाता हू॥
मैं नेता हू

वोट के अवसर आने पर, मैं पैरो तक पड लेता हू।
जब विजय हाथ मे आती है, जनता को हाथ दिखाता हू॥
मैं नेता हू

खुफिया और पुलिस स डरता, मार से मैं घबराता हू।
पेपर और अखबारो मे, सरकार की निन्दा करता हू॥
मै नेता हू

यह सरकार निकम्मी है, तो यह सरकार बदलनी है।
का बीज देश मे बोकर के, क्रान्ति का रूप दे लेता हू॥
मैं नेता हू

रोजगारी का लोभ बढाकर, खाली को साथ ले लेता हू।
बडे रईस घरो मे भो मैं, नेता जी कहलाता हू॥
मैं नेता हू

पेपर मेरे प्राण हैं दैनिक, रईसो के घर जब जाता हू।
अपना नाम सुनाकर उनको डट करके नाश्ता करता हू॥
मैं नेता हू

'सत्यप्रकाश' हेतु इस जग मे, लम्बा फर्रा रच लेता हू।
केवल आगे की बात मै करता, वर्तमान को तनिक न सुनता हू॥
मै नेता हू

निन्दा मेरा मेन काम है, चगली से काम चलाता हू।
जनता को धोखा देकर के, अपना स्वार्थ सिद्ध करता हू॥
मै नेता हू

आर्यप्रतिनिधि सभा पंजाब के वेदप्रचार विभाग के समाचार

१ गत दो मास से पजाब हरयाणा, दिल्ली तथा हिमाचल मे सभा के उपदेशक एव भजनोपदेशक महानुभाव लगातार कार्य पर है। कथाओ उत्सवो, आदि की भरमार चल रही है। सभा के सभी उपदेशक प्रचारक एव मण्डलियो ने जो परिश्रम किया ह, उसकी जितनो भी प्रशसा की जाए, कम है। अनेक समाजो ने सभा के प्रबन्ध की प्रशसा की है। अधिक कार्य होने के कारण कई समाजो मे पूरे कार्यकर्त्ता नही भेजे जा सके। प्रत्येक स्थान का विवरण देना कठिन है। अत सक्षिप्त रूप से जो धनराशि वेदप्रचार मे प्राप्त हुई है, उसो का उल्लेख किया जा रहा है —

१. ऊधमपुर १०१) रु०, २ कठुआ ५०) रु०, ३ जालन्धर छावनी ५१) रु०, ४ भार्गव कैम्प जालन्धर ५१) रु०, ५ झज्जर ५१) रु०, ६. सोनीपत १०१) रु०, ७ आर के पुरम दिल्ली ३३) रु०, ८ अमर कालोनी दिल्ली ५००) रु०, ९ राजेन्द्र नगर दिल्ली ३००) रु० १० देवनगर दिल्ली ३००) रु०, ११ बल्लभगढ २५१) रु०, १२ जवाहर नगर पलवल १००) रु०, १३ पानीपत १०५) रु०, १४ जीन्द शहर ५०१) रु०, १५. फिरोजपुर फिरका १५१) रु०, १६ गोहाना ३००) रु०, १७ चण्डीगढ १००) रु०, १८ सगरूर १२१) रु०, १९ हासी ५१) रु०, २० होशियारपुर ५१) रु०, २१ टाण्डा १०१) रु०, २२ शिमला १७५) रु०, २३ सागा ९८) रु०, २४ सिहोटी ६४) रु०, २५ राजलुगढी १५०) रु०, २६ बीकानेर छोटी ४१) रु०, २७ मनिमाटू ५०) रु०, २८ हिसार ७५) रु०, २९ फरमाना ५४) रु०, ३० खरककला ७३) रु०, ३१ आर्य विद्यालय दादरी १०१) रु०, ३२ शाहबाद मारकडा ७५) रु०, ३३ नयानगल २१) रु०, ३४ कच्चा बाजार अम्बाला छावनी १०१) रु०, ३५ छोटा माडल टाऊन यमुनानगर ५००) रु०,

इन स्थानो के अतिरिक्त अनेक अन्य स्थानो पर भो प्रचार हुआ है और हो रहा है। मेला कपालमोचन पर सभा ने प्रचार की बडो सुन्दर व्यवस्था की। विवाह सस्कारो पर सभा को लगभग ७०० रुपया दान मे प्राप्त हुआ। अधिक राशि प० धर्मदेव जो द्वारा प्राप्त हुई। जो कुल ५६७ रुपये है। सभा को ओर से सभी समाजो का हार्दिक धन्यवाद। इसके साथ ही एक बार पुन अपने साथी उपदेशक एव भजनोपदेशक भाइयो का हार्दिक धन्यवाद करता हू, जिन्होने कही से भी कोइ शिकायत नही पहुचने दी। उत्सवो का कार्यक्रम सारा दिसम्बर मास चलेगा।

—निरजनदेव अधिष्ठाता वेदप्रचार

२ इसी प्रकार हरयाणा वेदप्रचार मण्डल के समाचार

१ ओचन्दा (दिल्लो) दावानचन्द हस्पताल की जयन्ता—१०१ रुपये। २ खेडी जट रोहतक ३३ रु०। ३ गन्नोर (सोनोपत) ६२ रुपये। ४ मेला कपालमोचन के अवसर पर अनेक आयसमाजा के प्रचारार्थ पूरा सहयोग धन से दिया। ५ रानीलापिलाना २० रुपये। ६ इमलौटा स्वरूपगढ, समसपुर ५८ रुपये। ७ राठीवास (भिवानी) ८१ रुपये। ८ आय विद्यालय चरखो दादरा १५६ रुपये। ९ रामपुर कुण्डल ८३ रुपये। १० मोती चाक रेवाडी १५१ रुपये। ११ सानापत नगर निवार्णोत्सव १०० रुपये। १२ लीलाढ १०१ रुपये।

—बनवारीलाल आर्य उपाध्यक्ष

हरयाणा के जिन आर्यसमाजो ने अपने यहा अभी तक वार्षिक उत्सव अथवा प्रचार का कार्यक्रम नही बनाया है वे यथाशाघ्र प्रचार योजना बनाकर हरयाणा वेदप्रचार मण्डल दयानन्द मठ रोहतक स्थित कार्यालय से सम्पर्क कर अथवा पत्र व्यवहार करक तिथिया नियत करवाने का कष्ट कर। सभा के प्रभावशालो उपदेशक प० समरसिह जा वेदालकार अध्यक्ष हरयाणा वेदप्रचार, प० रामकिशोर जा वद्य और प० धर्मदेव आर्य के अतिरिक्त प्रसद्ध भजन मण्डलिया प० मुशालाल जा, प० हरिश्चन्द जो, प० जयलाल जा ओर कुवर श्यामसिह हितकर आदि का सुन्दर प्रबन्ध किया जावेगा।

—बनवारीलाल उपाध्यक्ष हरयाणा वदप्रचार कायालय
दयानन्दमठ रोहतक

(पृ० ९ का शेष)

ध्वस कर देने का लिखित प्रतिज्ञा बादशाह से का। एक बडो मुगल और राजपूती सेना चल पडा ४ महोने मे सिनसिनी के गढ तक पहुची रास्ते म जाटो ने इस सेना के नाक मे दम कर दिया फिर एक महीना तक सिनसिनी गढ का घरा डाले पड रहे। हमलावरा ने सुरग लगाई। जाटा न लग जाने पर किले की तरफ का द्वार पत्थरो से भर दिया। जब सुरग मे किला उडाने हेतु आग लगाई तो उलटा राजपूतो और मुगल सेना का नुक्सान हुआ। दूसरी सुरग मे आमेर का देश द्राह। बिशनसिह और मुगल सेना पति बेदारब्रख्त सफल हुए, । किला इनके हाथ आ गया। वोर जाटा ने किले से बहार निकल कर मुगल और राजपूतो पर हमला कर दिया तोपो के गोलो के सामने बढने हुए अपने को समाप्त कर दिया। इस युद्ध मे २०० मुगल और ७०० राजपूत ता परवाना रखते हुए भी मार डाले गये। यह घटना सन् १६९० ई० की है। इस लडाई मे १५०० जाट वीरो ने वीर गति पाई। वीरवर भज्जासिह ता इस भयकर युद्ध मे वीर गति पा गये लेकिन उन वृद्ध सरदार की शाहदत का बदला जाटो ने शीघ्र ही ले लिया। वीर ब्रजराज के नतृत्व मे २०० जाट वोरो ने सिनसिनो गढ पर कब्जा कर लिया। यह वोर ब्रजराज भी वीर भज्जासिह के परिवार का ही वीर था। अगर आमेर का कछवाहा राजा बिशनसिह ब्रज के जाटा के साथ मिल जाता तो इतिहास के पृष्ठ दूसरी तरह लिखे जाते आय जाति की फूट ने हमेशा नीचा दिखाया। अब भी इससे पाछा न छुडा पाये है। ईश्वर हमे सुबुद्धि द। ●

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब द्वारा प्रकाशित और प्रचारित वैदिक साहित्य

१. बलिदान जयन्ती स्मृति ग्रन्थ—आर्य बलिदानो की गाथा मूल्य ४-५०
२ सोम सरोवर-वेदमन्त्रो की व्याख्या —प० चमूपति एम. ए. ३-००
३. जीवन ज्योति-वेदमन्त्रो की व्याख्या „ „ ३-००
४. नीहारिकावाद और उपनिषदे „ „ ०-२५
५. Principles of Arya samaj „ „ १-५०
६ Glimpses of swami Daya Nand „ „ १-००
७. पजाब तथा हरयाणा का आर्य समाज प्रि० रामचन्द्र जावेद २-००
८. वैदिक सत्सग पद्धति सन्ध्या हवनमन्त्र अर्थ रहित विधि १-००
६. वेदाविर्भाव —आर्यमर्यादा का विशेषाक ०-६५
१०. यजुर्वेद अ० ३२ का स्वाध्याय „ „ „ ०-५०
११. वेद स्वरूप निर्णय —प० मदनमोहन विद्यासागर
१२ व्यवहारभानु —महर्षि स्वामी दयानन्द १-००
१३. स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश— „ „ ०-४०
१४. Social Reconstruction By Budha & Swami Daya Nand By. Pt Ganga Prasad Upadhya M A. २-००
१५. Subject Matter of the Vedas By S. Bhoomanad १-००
१६. Enchanted Island By Swami Staya Parkashanand १-००
१७. Cow Protection By Swami Daya Nand ०-१५
१८. वेद मे पुनरुक्ति दोष नही है आर्यमर्यादा का विशेषाक २-००
१६. मूर्त्तिपूजा निषेध „ „ ०-५०
२०. धर्मवीर प० लेखराम का जीवन —स्वामा श्रद्धानन्द १-२५
२१. कुलियात आर्य मुसाफिर प्रथम भाग—पं० लेखराम की पुस्तकों का संग्रह ६-००
२२. „ „ दूसरा भाग „ „ ८-००
२३. मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र —कु० सुशीला आर्या एम. ए. ०-२५
२४. योगीराज कृष्ण „ „ „ ०-१५
२५. गोकरुणा निधि —स्वामी दयानन्द सरस्वती ०-२०
२६. आर्यसमाज के नियम उपनियम ०-१०
२७. आर्य नेताओ के वचनामृत —साईदास भण्डारी ०-१२
२८. कायाकल्प —स्वामी समर्पणानन्द सरस्वती १-५०
२६ वैदिक धर्म की विशेषताये —प० हरिदेव सिद्धान्त भूषण ०-१५
३०. स्वतन्त्रानन्द लेखमाला —स्वा० स्वतन्त्रानन्द जी की जीवनी तथा उनके व्याख्यान १-२५
३१ आत्मानन्द लेखमाला—स्वामी आत्मानन्द सरस्वतीकी जीवनी १-२५
३२ आर्यसमाज के सदस्यता फार्म —सैकड़ा १-५०
३३. महान् दयानन्द —प० शिवदयालु आर्य ०-७५
३४. दयानन्द चरित्र —प० देवेन्द्रनाथ १-५०
३५. वैदिक सिद्धान्त —प० चमूपति एम० ए० १-००
३६. मुक्ति के साधन —प० मदनमोहन विद्यासागर १-००
३७. महापुरुषो के सग —श्री सत्यव्रत १-५०
३८. सुखी जावन —श्री सत्यव्रत २-००
३६. एक मनस्वी जीवन —प० मनसाराम वैदिक तोप १-५०
४०. छात्रोपयोगी विचारमाला —जगदेवसिंह सिद्धान्ती १-५०
४१. स्त्री शिक्षा —प० लेखराम आर्य मुसाफिर ०-६०
४२. विदेशो मे एक साल —स्वामी स्वतन्त्रानन्द २-२५
४३. वेद विमर्श —प० भगवद्दत्त वेदालकार २-००
४४. वेद विमर्श —प० वेदव्रत शास्त्री २-००
४५. आसनों के व्यायाम „ „ „ १-००
४६. महर्षि जीवन गाथा —स्वामी वेदानन्द वेदवागीश २-२५
४७ मास मनुष्य का भोजन नही—स्वामी ओमानन्द सरस्वती १-००
४८. वीर भूमि हरयाणा „ „ „ ४-००
४६. चोटी क्यों रखें —स्वामी ओमानन्द सरस्वती ०-५०
५०. हमारा फाजिल्का —श्री योगेन्द्रपाल १-५०
५१. सत्संग स्वाध्याय —स्वामी ओमानन्द सरस्वती ०-५०
५२. जापान यात्रा „ „ „ ०-७५
५३ भोजन „ „ „ ०-१०
५४. ऋषि रहस्य —पं० भगवद्दत्त वेदालंकार २-००
५५. महर्षि का विष पान—अमर बलिदान—राजेन्द्र जिज्ञासु ०-६५
५६. मेरा धर्म —आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति ७-००
५७. वेद का राष्ट्रिय गीत „ „ „ ५-००
५८. ईशोपनिषद्भाष्य —इन्द्र विद्या वाचस्पति २-००
५६. प० गुरुदत्त विद्यार्थी जीवन —डा० रामप्रकाश १-३०
६०. वैदिक पथ —प० हरिदेव सिद्धान्त भूषण २-००
६५. वैदिक प्रवचन —प० जगत्कुमार शास्त्री २-२५
६१. ज्ञानदीप —प० हरिदेव सिद्धान्त भूषण २-००
६२. आर्यसमाज का सैद्धान्तिक परिचय—स्व० अनुभवानन्द ०-५५
६३. The Vedas ०-५०
६४. The Philosophy of Vedas —Swami Satya Parkash ०-५०
६६. ईश्वर दर्शन प० जगत्कुमार शास्त्री १-००
६७. श्वेताश्वरोपनिषद् „ „ ४-००
६८ ब्रह्मचर्य प्रदोप „ „ ४-००
६६. भगवन प्राप्ति क्यो और कैसे —स्वा० सत्यानन्द ०-६०
७०. आर्य सामाजिक धर्म „ „ ०-७५
७१. बोध प्रसाद —स्वामी श्रद्धानन्द ०-२५
७२. ऋषि दर्शन —प० चमूपति एम. ए. ००-२५
७३. ऋषि का चत्मकार „ „ „ [illegible]
७४. वैदिक जीवन दर्शन „ „ „ [illegible]
७५. वैदिक तत्व विचार „ „ „ ००-५०
७६. देव यज्ञ रहस्य „ „ „ ००-३५
७७. स्वतन्त्रानन्द सस्मरणाक १-५०

सब पुस्तकों के प्राप्ति स्थान—

१. आयप्रतिनिधि सभा पजाब, गुरुदत्त भवन, जालन्धर (४२५०) टेलीफोन
२. „ „ „ दयानन्द मठ रोहतक (हरयाणा) „ (५७४)

आर्य समाज स्थापना शताब्दी के उपलक्ष में

आपकी सेवा में हमारी कृति

महर्षि दयानन्द सरस्वती का बढिया आर्ट पेपर पर २०"×१५" इंच में आकर्षक चार रगों में लुभावना पद्मासन सन्ध्या वाला चित्र (जो बाजार मे अप्राप्त है) मूल्य केवल १।।) मात्र, एवं १००) प्रति सैकड़ा

इस अवसर तक महर्षि जी का पद्मासन-चित्र हर आर्य समाजी अथवा गैर-आर्यसमाजी हिन्दू परिवारो को सुशोभित करे और मानव मात्र महर्षि जी की प्रेरणाओ पर चल कर जीवन को समृद्ध, उपयोगी एवं परोपकारी भी बनावे—ऐसा आर्य-भाइयों का निश्चय होना चाहिए।

विशेष :—

५०० या इससे अधिक चित्र क्रय करने वाले महानुभावों को चित्र पर लगने वाला पैकिंग तथा रेल, ट्रान्सपोर्ट व्यय से मुक्ति। आप भी हमसे मंगवा कर अन्यों को हजारों की संख्या में वितरित करे। प्रचार का सस्ता, सुगम साधन।

तुरन्त आदेश भेजें। चित्र वी० पी० से भेज दिए जाएंगे।

—व्यवस्थापक
दयानन्द चित्रशाला
पी० ३६ बी, हरिजन कालोनी,
भोलानाथ नगर एक्सटेन्शन,
शाहदरा दिल्ली-३२

आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब के लिए जगदेवसिंह सिद्धान्ती शास्त्री द्वारा सैनी प्रिंटर्स पहाड़ी धीरज, देहली में मुद्रित और १५ हनुमान् रोड, नई दिल्ली—१ से प्रकाशित

गुरुकुल
आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का मुखपत्र

२ पौष सं० २०३० वि०, दयानन्दाब्द १४९,
तदनुसार १६ दिसम्बर १९७३ रविवार
सृष्टि सं०-१९६०८५३०७३
वर्ष ६ वार्षिक शुल्क स्वदेश में १०) रुपये
अंक ३ „ „ विदेश मे २०) रुपये
एक प्रति का मूल्य ००-२० पैसे

सम्पादक – जगदेवसिंह सिद्धान्ती शास्त्री पूर्वलोकसभा सदस्य (फोन ५१२१६३)

वेदमन्त्रार्थ-प्रवचन

अथाध्यापककृत्यमाह ॥

अब अध्यापक का कृत्य अगले मन्त्र में कहा है ॥

हिरण्यहस्तमश्विना रराणा पुत्रं नरा वध्रिमत्या अदत्तम् ।
त्रिधा ह श्यावमश्विना विकस्तमुज्जीवस ऐरयतं सुदानू ॥

—ऋ० १.११७.२४

पदार्थः—(हिरण्यहस्तम्) हिरण्यानि सुवर्णादीनि हस्ते यस्य यद्वा विद्यातेजांसि हस्ताविव यस्य तम् (अश्विना) ऐश्वर्यवन्तौ (रराणा) दातारौ (पुत्रम्) त्रातारम् (नरा) नेतारौ (वध्रिमत्याः) वर्धिकाया विद्यायाः (अदत्तम्) (दद्यातम्) (त्रिधा) त्रिभिः प्रकारैर्मनोवाक्शरीरशिक्षाभिः सह (ह) किल (श्यावम्) प्राप्तविद्यम् (अश्विना) रक्षादिकर्मव्यापिनौ (विकस्तम्) विविधतया शासितारम् (उत्) (जीवसे) जीवितुम् (ऐरयतम्) सुदान्) सुष्ठुदानशीलाविव वर्त्तमानौ ॥

अन्वयः—हे रराणा नरा अश्विना युवा हिरण्यहस्त वध्रिमत्याः पुत्र मह्यमदत्तम् । हे सुदानू अश्विना युवा तं श्यावं विकस्तं जीवसे ह किल त्रिधोदैरयतम् ॥

भावार्थः—अध्यापकाः पुत्रानध्यापिकाः पुत्रींश्च ब्रह्मचर्येण सयोज्य तेषां द्वितीयं विद्याजन्म सपाद्य जीवनोपायान् सुशिक्ष्य समये पितृभ्यः समर्पयेयुः । ते च गृह प्राप्यापि तच्छिक्षां न विस्मरेयुः ॥

भाषार्थः—हे (रराणा) उत्तम गुणों के देने (नरा) श्रेष्ठ पदार्थों की प्राप्ति कराने और (अश्विना) रक्षा आदि कर्मों में व्याप्त होने वाले अध्यापको तुम दोनों (हिरण्यहस्तम्) जिसके हाथ में सुवर्ण आदि धन वा हाथ के समान विद्या और तेज आदि पदार्थ हैं उस (वध्रिमत्याः) वृद्धि देने वाली विद्या की (पुत्रम्) रक्षा करने वाले जन को मेरे लिये (अदत्तम्) देओ । हे (सुदानू) अच्छे दानशील सज्जनों के समान वर्त्तमान (अश्विना) ऐश्वर्ययुक्त पढ़ाने वाले तुम दोनों उस (श्यावम्) विद्या पाये हुए (विकस्तम्) अनेको प्रकार शिक्षा देने हारे मनुष्य को (जीवसे) जीवन के लिए (ह) ही (त्रिधा) तीन प्रकार अर्थात् मन वाणी और शरीर की शिक्षा आदि के साथ (उद् एरयतम्) प्रेरणा देओ अर्थात् समझाओ ॥

भावार्थः—पढाने वाले सज्जन पुत्रों और पढ़ाने वाली स्त्रियाँ पुत्रियो को ब्रह्मचर्य नियम में लगा कर इनके दूसरे विद्या जन्म को सिद्ध कर जीवन के उपाय प्रकार सिखाय के समय उनके माता पिता को देवे और वे घर को पाकर भी उन गुरुजनों की शिक्षाओं को न भूले ॥ —(ऋषिदयानन्द-भाष्य)

पञ्चमहायज्ञविषयः

(सूर्य्यो ज्यो०) जो चराचर का आत्मा प्रकाश स्वरूप और सूर्य्यादि प्रकाशक लोकों का प्रकाश करने वाला है उसकी प्रसन्नता के लिये हम लोग होम करते हैं ॥१॥ (सूर्य्यो वर्चो०) सूर्य्य जो परमेश्वर है वह हम लोगो को सब विद्याओं का देने वाला और हमसे उनका प्रचार करने वाला है, उसी के अनुग्रह से हम लोग अग्नि होत्र करते है ॥२॥ (ज्योति सूर्य्यं) जो आप प्रकाशमान और जगत् का प्रकाश करने वाला सूर्य्य अर्थात् ससार का ईश्वर है उसकी प्रसन्नता के अर्थ हम लोग होम करते है ॥३॥ (सजूर्देवेन) जो परमेश्वर सूर्य्यादि लोकों मे व्याप्त, वायु और दिन के साथ ससार का परम हित कारक है वह हम लोगो को विदित होकर हमारे किये हुए होम को ग्रहण करे । इन चार आहुतियो से प्रातः-काल अग्नि होत्री लोग होम करते है ॥४॥ अब सायकाल की आहुति के मन्त्र कहते है (अग्निर्ज्यो०) अग्नि जो ज्योति. स्वरूप परमेश्वर है उसकी आज्ञा मे हम लोग परोपकार के लिये होम करते है । और उसका रचा हुआ यह भौतिक अग्नि इसलिये है कि वह उन द्रव्यो को परमाणु रूप करके वायु और वर्षाजल के साथ मिला के शुद्ध करदे । जिससे सब ससार को सुख और आरोग्यता की बुद्धि हो ॥१॥) अग्नि वंर्चो०) अग्नि परमेश्वर वर्च्चे अर्थात् सब विद्याओ का देने वाला और भौतिक अग्नि आरोग्यता और बुद्धि का बढ़ाने वाला है। इसलिये हम लोग होम से परमेश्वर की प्रार्थना करते हैं । यह दूसरी आहुति है । तीसरी मौन होके प्रथम मन्त्र से करनी और चौथी (सजूर्देवेन०) जो अग्नि परमेश्वर की सूर्यादिसे व्याप्त, वायु और रात्रि के साथ ससार का परमहितकारक है। वह हमको विदित होकर हमारे किये हुए होम का ग्रहण करे ॥ यजुर्वेद अध्याय३॥ मन्त्र ९। १०॥

—(ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका)

सत्यार्थप्रकाश का ११ वां समुल्लास

इतने में दो जैन ऊपर से कथन मात्र वेदमत और भीतर से कट्टर जैन अर्थात् कपट मुनि थे शङ्कराचार्य उन पर अति प्रसन्न थे उन दोनों ने अवसर पाकर शङ्कराचार्य को ऐसी विषयुक्त वस्तु खिलाई कि उनकी क्षुधा मन्द हो गई अर्थात् शरीर में फोड़े फुन्सी होकर छः महीने के भीतर शरीर छूट गया सब निरुत्साही हो गये और जो विद्या का प्रचार होने वाला था वह भी न हो पाया जो उन्होंने शारीरिक भाष्यादि बनाये थे उनका प्रचार शङ्कराचार्य के शिष्य करने लगे अर्थात् जो जैनियों के खण्डन के लिये ब्रह्म सत्य जगत् मिथ्या और जीव ब्रह्म की एकता कथन की थी उसका उपदेश करने लगे, दक्षिण में शृंगेरी, पूर्व मे भूगोवर्धन, उत्तर मे जोसी और द्वारिका मे सारदामठ बांधकर शङ्कराचार्य के शिष्य महन्त बन और श्रीमान् होकर आनन्द करने लगे क्योकि शङ्कराचार्य के पश्चात् उनके शिष्यो की बड़ी प्रतिष्ठा होने लगी ।

अब इसमें विचारना चाहिये कि जो जीव ब्रह्म की एकता जगत् मिथ्या शङ्कराचार्य का निज मत था तो वह अच्छा मत नही और जो जैनियो के खण्डन के लिये उस मत का स्वीकार किया हो तो कुछ अच्छा है । नवीन वेदान्तियो का मत ऐसा है (प्रश्न) जगत् स्वप्नवत्, रज्जु मे सर्प, सीप में चान्दी, मृगतृणिका मे जल, गन्धर्व नगर इन्द्रजालवत् यह ससार झूठा है, एक ब्रह्म ही सच्चा है । (सिद्धान्ती) झूठा तुम किसको कहते हो ? (नवीन) जो वस्तु न हो और प्रतीत होवे । (सिद्धान्ती) जो वस्तु ही नही उसकी प्रतीति कैसे हो सकती है । (नवीन) अध्यारोप से (सिद्धान्ती) अध्यारोप किसको कहते है ? (नवीन) "वस्तुन्यवस्त्वारोपणमध्यासः" "अध्यारोपापवादाभ्या निष्प्रपञ्च प्रपञ्च्यते ॥" पदार्थ कुछ भी हो उसमें अन्य वस्तु का आरोपण करना अध्यास अध्यारोप और उनको निराकरण करना अपवाद कहाता है इन दोनों से प्रपञ्च रहित ब्रह्म में प्रपचरूप जगत् विस्तार करते हैं (सिद्धान्ती) तुम रज्जू को वस्तु और सर्प को अवस्तु मानकर इस भ्रम जाल में पडे हो क्या सर्प वस्तु नही है ? जो कहो कि रज्जु में नहीं तो देशान्तर मे और उसका सस्कार मात्र हृदय में है कि वह सर्प अवस्तु नही रहा वैसे ही स्थाणु में पुरुष, सीप में चान्दी की व्यवस्था समझ लेना और स्वप्न में भी जिन का मान होता है । वे देशान्तर में हैं और उनके संस्कार आत्मा मे भी है । इसलिये वह स्वप्न भी वस्तु में अवस्तुओ में आरोपण के समान नही ॥ —(ऋषि दयानन्द)

आर्य समाज में मार्क्सवादियों की घुसपैठ

"प्रसिद्ध विद्वान् वैद्य गुरुदत्त द्वारा संचालित पत्रिका विश्ववाणी से उद्धृत"
—श्री विनायक आर्य

मार्क्स, एंजिल्स, लेनिन व स्टालिन के विकृत मस्तिष्क की उपज 'समाजवाद' का ढिंढरा पीटने, समाजवाद स्थापित करने में होड़ लगाने में भारत के सभी राजनीतिक दल तो सक्रिय हैं ही किन्तु गत कुछ दिनों से आर्यसमाज के मंच से भी 'समाजवाद' की बातें सुनाई देने लगी है। कांग्रेस ने कम्युनिस्टों की तरह देश में समाजवाद स्थापित करने के लिए सम्पत्ति के सरकारीकरण को ओर कदम बढ़ाया ही था, किन्तु अब आर्यसमाज के कुछ कथित 'युवा नेताओं' ने 'आर्यसभा' नामक एक नई संस्था बनाकर कांग्रेस से भी दो कदम आगे बढ़कर 'आर्यसमाजवाद' अथवा 'वैदिक समाजवाद' की स्थापना का लक्ष्य घोषित कर समस्त सम्पति ही नहीं अपितु शिक्षा जैसे महत्वपूर्ण विषय का भी सरकारीकरण करने के राग अलापने आरंभ कर दिये हैं।

प्रारंभ में जब इस संस्थाके संस्थापकों ने देश में आर्यसमाज के प्रचार व प्रसार को आवश्यकता के प्रति जोश के साथ गतिविधियाँ प्रारम्भ की तो देश के अनेक वरिष्ठ आर्यसमाजी नेताओं को आशा बँधी थी कि इन कर्मठ युवकों के हृदय में महर्षि दयानन्द सरस्वती व आर्यसमाज के अधूरे लक्ष्य को पूरा करने के लिए एक आग है तथा उसे पूरा करने के लिए समर्पण की भावना है। परिणामस्वरूप स्वामी समर्पणानन्द जी, आचार्य भगवान्देव जी, श्री प्रकाशवीर शास्त्री, महात्मा आनन्द स्वामी सरस्वती प्रभृति आर्यसमाजी नेताओं ने इन युवकों को आगे लाने का प्रयास किया। इसके बाद उन्होंने हरयाणा के कुछ युवकों को साथ लिया तथा गाँव-गाँव जाकर धन-संग्रह आदि करने के कुछ ही दिनों बाद इन युवकों ने 'हिन्दू' धर्म तथा हिन्दुत्व आदि के विरुद्ध जैसे एक अभियान ही छेड़ दिया। इन्होंने अपने भाषणों में कहना प्रारंभ कर दिया कि 'हिन्दू धर्म पाखण्ड का नाम है तथा कोई भी आर्यसमाजी अपने को हिन्दू न कहे। उनके इस अभिमान से देवतास्वरूप भाई परमानन्द, स्वातन्त्र्य-वीर सावरकर, लाला लाजपतराय आदि आर्य नेताओं से प्रेरणा लेने वाले आर्यसमाजी बन्धुओं के हृदय में शंका हुई कि ये अवश्य ही किसी हिन्दू विरोधी षड्यन्त्र के अन्तर्गत इस आन्दोलन को चला रहे हैं। देवतास्वरूप भाई परमानन्द जी, लालालाजपतराय, स्वामी सत्यदेव परिव्राजक, स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज आदि महान आर्य नेताओं ने हिन्दू धर्म की महत्ता पर अनेक ग्रन्थ लिखे थे तथा वे आर्यसमाज को हिन्दुत्व तथा हिन्दू जाति के रक्षक के रूप में ही देश के सामने लाये थे।

नक्सली चेहरा प्रकट

हिन्दू विरोधी अभियान के साथ-साथ इन कथित आर्य सभाइयों ने अचानक अपने भाषणों में मार्क्स, एंजिल्स से लेकर लेनिन, स्टालिन व माओत्सेतुंग तक की प्रशंसा करनी प्रारंभ की तो इनका वास्तविक रूप सामने आने लगा। हरयाणा के ग्रामों में जाकर इन्होंने भोले-भाले किसानों को लूट-मार तक करने, छात्रों को हिंसात्मक उत्पात मचाने तथा सबकी सम्पत्ति पर बलात् कब्जा कर लेने के उत्तेजक भाषण प्रारंभ कर दिये। 'मार्क्सवाद' से ही भारत का कल्याण होगा जैसी बातें आर्यसमाज व आर्यसभा के मंच पर प्रारंभ कर दी गयीं। अन्त में महर्षि दयानन्द सरस्वती ने मार्क्स से प्रेरणा ली थी जैसी बेसिर-पैर की बातें भी उनके मुख से सुनी जाने लगीं। इन सब बातों को देखकर आर्यसमाज के नेताओं का माथा ठनका। तब इन आर्य नेताओं ने बार-बार यह घोषणा की कि ये लोग प्रच्छन्न कम्युनिस्ट ही नहीं अपितु नक्सली हैं तथा आर्यसमाज में फूट डालकर उस पर कब्जा करने के उद्देश्य से यह किसी षड्यंत्र के अन्तर्गत कार्य कर रहे हैं।

गत वर्ष दिल्ली में देश के कुख्यात नक्सलवादियों ने गांधी शान्ति प्रतिष्ठान में युवा क्रान्ति सम्मेलन किया तो आर्यसभा के स्वयंभू नेता स्वामी अग्निवेश तथा इन्द्रवेश मंच पर उपस्थित थे। इन दोनों ने स्पष्ट रूप से देश में सशस्त्र क्रान्ति व हिंसा का आह्वान किया तथा 'समाजवाद' ही नहीं अपितु 'कम्युनिज्म की स्थापना के लिए 'वर्ग संघर्ष' को आवश्यक बताया।

सुभद्रा जोशी से साँठगाँठ

इन दोनों कथित 'आर्य संन्यासियों' की प्रारम्भ से ही कुख्यात हिन्दू विरोधी व कम्युनिस्ट तत्त्वों से साँठगाँठ रही है। श्रीमती सुभद्रा जोशी व उनकी 'साम्प्रदायिकता विरोधी (?) समिति' से भी उनका निकट का सम्बन्ध रहा है। श्रीमती जोशी की, हिन्दू विरोधी मासिक पत्रिका "सैक्युलर डेमोक्रेसी" के अक्टूबर अंक में स्वामी इन्द्रवेश का चित्र सहित इण्टरव्यू प्रकाशित हुआ है। उन्होंने स्वयं वहां जाकर इण्टरव्यू दिया है। अपने को आर्यसमाजी बताकर आर्यसमाजियों को भ्रमित करने वाले स्वामी अग्निवेश इन्द्रवेश इस इन्टरव्यू में कहते हैं—

वेदों में स्पष्ट आदेश है कि आवश्यकता से अधिक संपत्ति को बलपूर्वक वापस लिया जा सकता है। वैदिक व्यवस्था व्यक्तिगत संपत्ति को मान्यता नहीं देती। वह उत्पादन से समस्त साधनों को राज्य (सत्ता) के आधीन (यानी) राष्ट्रीयकरण रखने के पक्ष में है। इस मार्ग में जो भी अवरोध पैदा होंगे उन्हें दूर करने के लिए अहिंसा व हिंसा दोनों का इस्तेमाल किया जा सकता है। हम समस्त व्यक्तिगत संपत्ति का राष्ट्रीयकरण चाहते हैं। शोषण समाप्त करना चाहते हैं। स्वाभाविक है कि सामंतवादी एवं पूंजीवादी शक्तियाँ हमारे मार्ग में आएँगी, उनसे निपटने के लिए का भी सहारा लेना पड़ेगा। क्योंकि किन्हीं परिस्थितियों में हिंसा अपरिहार्य विकल्प बन जाती है। हमारे शत्रु भी तो हमें कुचलने के लिए हिंसा का प्रयोग करते हैं तो फिर कमजोर वर्ग (शोषित किसान मजदूर) क्यों पीछे रहें।

"जहाँ तक मनुष्य के भौतिक विकास और आर्थिक विषमता की समाप्ति का प्रश्न है हम मार्क्सवाद से दूर नहीं हैं। मार्क्सवाद के सर्वहारा की भाँति हम कमेरा वर्ग (मजदूर किसान) की सत्ता स्थापित करना चाहते हैं।

"वैदिक समाजवाद को केवल दो वर्गों में आर्य और दस्यु या कमेरा और लुटेरा या शोषित और शोषक। हमारा उद्देश्य बिलकुल साफ है— हम किसी तथाकथित हिन्दू, मुसलमान, ईसाई आदि पर कोई नया संप्रदाय या मजहब नहीं थोपना चाहते। हम दुनिया के समस्त शोषकों पर श्रमिकों (सर्वहारा) का शासन अवश्य थोपना चाहते हैं।

"ऐसी स्थिति में मुसलमान या ईसाई या अन्य संप्रदाय के व्यक्तियों से घृणा या दुराभाव का प्रश्न ही नहीं उठता। अतः उनके शुद्धिकरण की कोई आवश्यकता नहीं।

"हिन्दुओं को यह भी चाहिए कि वे मस्जिदों के सामने बाजा न बजायें और न ही नाच-गाना करें। बिना इन बातों के भी काम चल सकता है। शोषण रहित समाज को स्थापना के लिए यह जरूरी है कि हम इन विचारों से ऊपर उठें।"

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने मुसलमानों व ईसायों की सत्यार्थ प्रकाश में आलोचना करते हुए इन्हें आर्यसमाज का घोर शत्रु बताया है। उन्होंने शुद्धि का आह्वान किया। बाद में भाई परमानन्द जी, स्वामी श्रद्धानन्द जी, स्वामी दर्शनानन्द जी, आर्य मुसाफिर पंडित लेखराम आदि आर्य नेताओं ने शुद्धि-अभियान चलाकर लाखों मुसलमानों. ईसाइयों को हिन्दू बनाया। स्वामी श्रद्धानंद ने तो शुद्धि के कारण अपना बलिदान तक दिया। किन्तु ये कथित 'आर्य संन्यासी' शुद्धि को निरर्थक बताते हुए कांग्रेसियों की तरह मुस्लिम तुष्टीकरण का परिचय दे रहे हैं। उनकी दृष्टि में वैदिकधर्मी हिन्दुओं तथा वेदों से हमाम गर्म करनेवाले मुसलमानों व ईसाइयों में कोई अन्तर ही नहीं हैं यदि वैदिकधर्मियों व मुस्लिम और ईसाइयों को समान मान लिया जाये तथा शुद्धिकरण आदि को निरर्थक करार दे दिया जाये तो फिर आर्यसमाज की आवश्यकता ही क्या है?

'सैक्युलर डेमोक्रेसी' को दिये गये इण्टरव्यू में वे राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ व जनसंघ को प्रतिक्रियावादी व पूंजीवादी दल बताते हैं किन्तु उनकी दृष्टि में श्रीमती सुभद्रा जोशी व हजारों हिन्दुओं को मुसलमान बनने की प्रेरणा देने वाली उनकी 'साम्प्रदायिकता विरोधी कमेटी' संभवतः राष्ट्रीय है।

(शेष पृष्ठ ४ पर)

सम्पादक-क्रमागत

महर्षि दयानन्द के राजनीतिक भाव

यजुर्वेद अध्याय ३१ से—

(३४५) हे राजा आदि मनुष्यो ! जैसे ईश्वर के न्याय आदि गुण, व्याप्ति, कृपा, पुरुषार्थ, सत्य रचना और सत्य नियम हैं वैसे ही तुम लोगों के भी हों जिसे तुम्हारा उत्तरोत्तर सुख बढ़े ॥ मं० २२

(३४६) जैसे अग्नि में होम किया द्रव्य तेज के साथ ही सूर्य को प्राप्त होता और सूर्य जलादि को आकर्षण कर वर्षा करके सब की रक्षा करता है वैसे राजा प्रजाओं से करों को ले, दुर्भिक्ष काल में फिर वे श्रेष्ठों का सम्यक पालन और दुष्टों को सम्यक् ताड़ना देकर प्रगल्भता और बल को प्राप्त होता ॥ मं० ११

(३४७) सभापति राजा को चाहिये कि अच्छे परीक्षित मन्त्रियों को स्वीकार कर उनके साथ सभा में बैठ विवाद करने वालों के बचन सुनके उन पर विचार कर यथार्थ न्याय करें ॥ मं० १५

(३४८) मनुष्यों को चाहिये कि जो सब विद्वानों में गम्भीर बुद्धि वाला सब मनुष्यों में माननीय प्रजा की रक्षा आदि राजकार्य को स्वीकार करके सब सुखों का दाता और वेदादि शास्त्रों का जानने वाला शूरवीर हो उसी को राजा करें ॥ मं० १६

(३४९) धार्मिक विद्वान् राजपुरुषों को चाहिये कि अधर्म को छोड़ धर्म में प्रवृत्त हों परमेश्वर की दृष्टि में विविध प्रकार की रचना देख अपनी और दूसरों की रक्षा कर ईश्वर का धन्यवाद किया करें ॥ मं० १७

(३५०) जैसे सूर्य के उदय होते अन्धकार निवृत्त हो के प्रकाश के होने में सब लोग आनंदित होते हैं वैसे ही धर्मात्मा राजा के होने पर प्रजाओं में सब प्रकार से स्वस्थता होती है ॥ मं० २०

(३५१) मनुष्यों को चाहिये कि राज्य की उन्नति से जगत् को प्रकाशक सुन्दरता आदि गुणों से युक्त अति बलवान् विद्वान् शूर पूर्ण अवयव वाले मनुष्य को राज्य में अभिषेक करें और राजा प्रजाओं में सुख धारण करें ॥ मं० २१

(३५२) जो सूर्य के तुल्य सुशिक्षित वाणियों को प्रकट करने वाले अग्नि बलों वैसे दुष्ट शत्रुओं को मारने, दिन जैसे रात्रि को निवृत्त करे वैसे छल कपटता और अविद्या रूप अन्धकार आदि को नवृत्ति करते और बल को प्रकट करते हैं वे अच्छे प्रतिष्ठित राजपुरुष होते हैं ॥ मं० २६

(३५३) राजपुरुषों को चाहिये कि सभाध्यक्ष राजा से ऐसा कहें कि हे सभापते ! आप को बिना सहाय से कुछ राज कार्य न करना चाहिये किन्तु आप को उचित है कि सज्जनों की रक्षा और दुष्टों के ताड़न में अस्मदादि के सहाय युक्त सदैव रहें शुभाचरण सें युक्त अस्मादि शिष्टों की सम्मति कोमल बचनों से सब प्रजाओं को शिक्षा करें ॥ मं० २८

(३५४) जो लोग राज भक्त दुष्टहिंसक एक बार में फल फूल देने और सब को कारण करने वाली भूमि के दुहने को समर्थ होवें वे राज्य कार्य करने के योग्य होते हैं ॥ मं० २८

(३५५) हे राजादि मनुष्य विद्वानों से उत्तर बुद्धि का वाणी ग्रहण करते हैं वे सत्य के अनुकूल हुए आप आनान्दित हाके औरों को प्रसन्न करते हैं ॥ मं० २९

(३५६) हे राजादि मनुष्यो ! जैसे सूर्य वृष्टि द्वारा जीवों के जीवन पालन को करता है उसके तुल्य उत्तम गुणों से महान् हो के न्याय और विनय से प्रजाओं की निरन्तर रक्षा करें ॥ मं० ३०

(३५७) जैसे राजा और राजपुरुष जिस प्रकार के व्यवहार से प्रजाओं में वर्ते वैसे ही भाव से इन प्रजा लोग भी वर्तें ॥ मं०३२

(३५८) राजादि मनुष्यों को चाहिये कि सूर्य के प्रकाश को तुल्य विमान आदि यान संग्राम वाहनादि को उत्पन्न कर न्यायादि अनेक व्यवहारों को सिद्ध करें ॥ मं० ३३

(३५९) जो राजपुरुष विद्या के प्रकाशक होवें तो सब को आनन्द देने को समर्थ होवें ॥ मं० ३६

(३६०) जो राजपुरुष पदार्थों की स्तुति करने वाले श्रेष्ठों के रक्षक दुष्टों के ताड़क युद्ध में प्रीति रखने वाले में मेघ के तुल्य पालक प्रशंसा के योग्य हैं वे सब को सेवन करने योग्य होते हैं ॥ मं० ५०

(३६१) प्रजापुरुषों को राजपुरुषों से ऐसे प्रार्थना करनी चाहिये कि:—हे पूज्य राजपुरुष विद्वान् तुम सदैव हमारे अविरोधी कपटादि हित और भय के निवारक होओ। चोर व्याघ्रादि और मार्ग पर शोधे से गढ़े आदि से हमारी रक्षा करो ॥ मं० ५१

(३६२) जो सभा और सेना के अध्यक्ष पक्षपात को छोड़ बल को बढ़ा के शत्रुओं को जीतते हैं वो सुख देने वाले होते हैं ॥ मं० ६१

(३६३) जो स्वयं ब्रह्मचर्य से शरीरात्म बल युक्त विद्वान् हुआ दुष्टों के प्रति कठिन स्वभाव वाला श्रेष्ठ के विषय भिन्न स्वभाव वाला होता हुआ बहुत उत्तम सभ्यो से युक्त धर्मात्मा हुआ न्याय और विनय से राज्य की रक्षा करें वह सब और से बढ़े ॥ मं० ६४

(अध्याय ३३ से)

(३६४) हे राजन् ! जैसे आप हमारे रक्षक और वर्द्धक हैं वैसे हम लोग भी आप को बढ़ावें, सब हम लोग प्रीति से मिलके दुष्टों को निवृत्त करके श्रेष्ठों को धनाढ्य करें ॥ मं० ६५

(३६५) जो राजपुरुष अधर्मयुक्त कार्यों के निवर्त्तक सुखों के उत्पादक और युद्ध विद्या में कुशल होवें शत्रुओं को जीतने में समर्थ हों ॥ मं० ६६

(३६६) जिस राजपुरुषों की हृष्ट पुष्ट युद्ध की प्रतिज्ञा करती हुई सेना हो वे सर्वत्र विजय को प्राप्त होवे ॥ मं०६७

(३६७) जिस देश में पूर्ण विद्या वाले राज कर्मचारी हों वहां सब की एक मति होकर अत्यन्त सुख बढ़े ॥ मं० ६८

(३६८) प्रजाजनों को राजपुरुषों से ऐसा सम्बोधन करना चाहिये कि तुम लोग हमारे सन्तान, धन, और पदार्थों की रक्षा से नवीन ऐश्वर्य को प्राप्त कराने पर हमको पीड़ा देने हारे दुष्टों से दूर रक्खें ॥ मं० ६९

(३६९) जो पवित्र आचरण करने वाले राजप्रजा के हितैषी वि[illegible]ान युक्त पुरुष वीरों की सेना से शत्रुओं को विदीर्ण करते हैं उनको प्राप्त होकर राजा आनन्दित होवे। राजा जैसा अपने लिये आनन्द चाहे वैसे राज प्रजाजनों के लिये भी चाहे ॥ मं० ७०

(३७०) जिस राजा के सब आर्य राजरक्षक और आज्ञापालक हैं जो धनादि कर का अदाता शत्रु उससे भी जिन आपने धनादि का ग्रहण किया वे आप सबसे उत्तम शोभा वाले हों ॥ मं० ८२

(३७१) जो राजादि राजपुरुष विद्वानों के सग में प्रीति करने वालेर साहसी सत्यगुण, कर्म, स्वभावों से युक्त बुद्धिमान् के राज्य में अधिका को पाये हुये संगत न्याय और विनय से युक्त कामों को करें उनको आकाश सदृश कीर्ति विस्तार को प्राप्त होती है ॥ मं० ८३

(३७२) राजाओं की योग्यता यह है कि सब प्रजा के सन्तानों की ब्रह्मचर्य, विद्यादान और स्वयं विवाह कराके और डाकुओं से रक्षा करके उन्नति करें ॥ मं०८४

(३७३) जैसे वर्त्तमान वर्त्ताव से राजा प्रजाओं में चेष्टा करता है वैसे ही भाषा से प्रजा राजा के विषय में वर्ते। ऐसे दोनों मिलके सब न्याय के व्यवहार को पूर्ण करें ॥ मं० ८५

(३७४) वैसे ही राज प्रजा पुरुष प्रयत्न करें जैसे सब मनुष्य आदि प्राणी प्रसन्न मन वाले होकर पुरुषार्थी हों ॥ मं० ८६

(३७५) जो शमदमादि गुणों से युक्त राजपुरुष और प्रजाजन इष्ट सुख की सिद्धि के लिये यत्न करें वे अवश्य समृद्धिमान् होवें ॥ मं० ८७

(३७६) जो राज प्रजाजन सबको विद्या और उत्तम शिक्षा से सुशोभित करें सर्वत्र नहर आदि के द्वारा जल पहुंचावें श्रेष्ठों को न मार के दुष्टों को मारें वे जीतने वाले हुए अमोल लक्ष्मी को पाकर निरन्तर सुख को प्राप्त होवें ॥ मं० ८८

(३७७) जो राजपुरुष सब प्राणियों के हित के लिये विद्वानों का सत्कार कर इनसे सत्योपदेश का प्रचार करा सृष्टि के पदार्थों को जान और सब अभीष्ट सिद्ध कर संग्रामों को जीतते हैं वे उत्तम कीर्ति और बुद्धि को प्राप्त होते हैं ॥ मं० ९१

(शेष पृष्ठ ४ पर)

"वेदों में व्यक्ति के वैभव का विधान"

(स्वामी रामेश्वरानन्द सरस्वती आचार्य गुरुकुल घरौण्डा-करनाल)

प्रिय पाठक वृन्द !

यह तो सर्वसाधारण आर्यसमाजी भी जानते हैं कि मानव के सफलता की कुञ्जी केवल चार पदार्थ हैं।

(१) धर्म-धर्म से (२) धन-धन से (३) भोग-धन से भोग नाम धन का सदुपयोग (४) मोक्ष।

यदि ये चार पदार्थ इस जीवन में प्राप्त हो गये तब जीवन सफल है, और यदि इन चारों में से एक की भी न्यूनता रहेगी तब जीवन असफल है।

इस लिये प्रत्येक आर्य समाजी दो काल संध्या समय ईश्वर समर्पण करता हुआ धर्म-अर्थ-काम और मोक्ष के प्राप्ति की प्रार्थना करता है।

प्रश्न—ये इन्द्रवेश और अग्निवेश यह क्यों कहते हैं कि वेदों में व्यक्ति के वैभव का विधान नहीं है ?

उत्तर—ये प्रच्छन्न कम्युनिष्ट हैं क्योंकि कम्युनिज़म में न केवल व्यक्ति के धन वैभव का ही अपहरण होता है अपितु व्यक्ति के सर्व स्वातन्त्र्य का अपहरण होता है।

प्रश्न—हम कैसे मानें कि वेदों में व्यक्तिगत वैभव का विधान है ?

उत्तर—क्या आप आर्य हैं।

प्रश्न—हाँ हम सब आर्य है ?

उत्तर—तब क्या आप प्रातः काल यजुर्वेद के ३४ वें अध्याय के प्रातरग्निं आदि मन्त्रों का पाठ प्रातः नहीं करते और क्या उनमें यह स्पष्ट नहीं लिखा ? प्रातर्भगं पूषणं:—प्रातःकाल पुष्टिकारक भोग को प्राप्त हों एवं ब्रह्मणस्पति-धन को। क्या बिना धन के भी भोग प्राप्त हो सकता है ? क्या मन्त्र ३५ वें में यह नहीं लिखा कि—प्रातर्जितं भगमुग्रं हुवेम वयम्-कि हम प्रातः समय अपने पुरुषार्थ से प्राप्त उत्कृष्ट ऐश्वर्य को प्राप्त करें वैसे तुम भी प्राप्त करो। और क्या मन्त्र ३६वें में यह विधान नहीं है कि—भग प्रनो जनय गोभिरश्वैर्भग प्र नृभिर्नृवन्तः स्याम—हे ऐश्वर्य युक्त पुरुषार्थ के प्रति प्रेरक ईश्वर आप गौ आदि पशुओं घोड़े आदि सवारियों और नायक कुल निर्वाहक मनुष्यों के साथ हमें प्रकट कीजिए। तथा मन्त्र ३७ में उतेदानीं भगवन्त स्यामोतप्रपित्व—इस मन्त्र में यह स्पष्ट विधान है कि वर्तमान समय और पदार्थों की प्राप्ति में और भविष्यत् काल में तथा दिनों के मध्य में समस्त ऐश्वर्य से युक्ति हो तथा मन्त्र ३८ वें में - भग एव भगवाँ अस्तु—यह स्पष्ट है कि—सेवनीय प्रशस्त ऐश्वर्य युक्ति होवे उस ऐश्वर्य युक्त ऐश्वर्य—शाली ईश्वर के साथ समग्र ऐश्वर्ययुक्त हैं—इसके भावार्थ में स्पष्ट कहा है—हे मनुष्यो। तुम जो समस्त ऐश्वर्य से युक्त परमेश्वर है उनके साथ सिद्ध तथा श्रीमान् हो तथा यजुर्वेद के १८वें अध्याय में मनुष्यों के समस्त ऐश्वर्य का विधान है अर्थात् गौ आदि पशु—सोने-चाँदी-हीरे-जवाहरात् एवं भूमि राज्य सब प्रकार के धन-धान्य का विधान है यदि ये पदार्थ मनुष्य के अपने व्यक्तिगत न होते तो वेदों में उनकी रक्षा का विधान क्यों होता। यजुर्वेद के प्रथम मन्त्र में ही—यजमानस्य पशून् पाहि—अर्थात्, हे राजन्। यजमान के गौ-घोड़े आदि पशुओं की रक्षा कर यह विधान क्यों है ? यजुर्वेद के ४० वें अध्याय के प्रथम मन्त्र में ही यह क्यों लिखा हैं ? मा गृध कस्य स्विद्धनम्—किसी के धन को क्या—उसके धन को लेने की भी इच्छा न कर। इसी प्रकार यजुर्वेद अध्याय ३५ मन्त्र १५ में स्पष्ट विधान है 'इमं जीवेभ्यः परिधिं दधामि मैषांनु गादपरो अर्थ मेतम्' ईश्वर कहता है मैं जीवों के लिये व्यवस्था करता हूँ। कि कोई किसी के द्रव्य को ग्रहण न करे, बलात् किसी के धन का अपहरण करना चोरी-डाका है। अतः वेद में व्यक्ति के वैभव का विधान है इसी कारण आर्यसमाज के नियमों में व्यक्ति को व्यक्तिगत उन्नति का स्वातन्त्र्य है। केवल सामाजिक सर्वहितकारी नियम में परतन्त्र रहना चाहिये प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र हैं। और यदि उसके पास धन नहीं है तब पांचों यज्ञों को कैसे करेगा तथा ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य को दान करने का विधान है जो दान नहीं करता, वह ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य नहीं हो सकता, यदि व्यक्ति के समीप अपना धन नहीं है तो वह दान कैसे करेगा—अत एव इन्द्रवेश आदि आर्यसमाज में प्रविष्ट होकर पथभ्रष्ट अर्थात् कम्युनिष्ट बनाना चाहते हैं।

"ऐसे लोगों से सदा सावधान रहें"

(शेष पृष्ठ २ का)

इन दोनों 'स्वामियों के उपरोक्त विचारों से यह स्पष्ट हो जाता है कि आर्यसमाज के सिद्धान्तों से उनका किंचित भी सम्बन्ध नहीं है। वे समस्त सम्पत्ति व शिक्षा के सरकारीकरण के हामी हैं। यदि उनका आर्यसमाज पर अधिकार हो जाये तो वे देश-भर के समस्त डी० ए० वी० कालेजों तथा आर्य-नेताओं व जनता द्वारा खून-पसीने की कमाई से संग्रहित करोड़ों की सम्पत्ति का क्षण-भर में ही सरकारीकरण कर क्या आर्य समाज को दिवालिया नहीं बना डालेंगे ?

आर्य समाज के कतिपय नेता इन प्रच्छन्न कम्युनिस्टों के भ्रमजाल में फँसकर अथवा स्वार्थान्धितावश इन स्वयंभू आर्यसभाई नेताओं को आर्य-समाज मंच पर आरूढ़ कराने के लिए अनथक प्रयास कर रहे हैं। वे यदि समय पर न चेते तो ये आर्यसभाई उनकी भी वही गति करेंगे जो मार्क्सवादी देशों में पहली पंक्ति करती आ रही है। हमें खेद इस बात का नहीं कि उनकी दुर्गति होगी, (वह तो होनी चाहिए) अपितु इससे आर्य समाज का मंच भ्रष्ट हो जायेगा और फिर उस भ्रष्ट मंच को शुद्ध करना सहज नहीं रह जायेगा। आर्यसमाजी अभी भी चेत कर उससे पूर्व इन आर्य-सभाइयों की दुर्गति करें यही सबके लिए श्रेयकर है।

(पृष्ठ ३ का शेष)

(३७८) जो मनुष्य धार्मिक न्यायाधीशों वा धनाढ्यों से मित्रता करते हैं वे यशस्वी होकर सब दुःख निवारण के लिये सूर्य के तुल्य होते हैं॥ मं० ६५

अध्याय ३४ से—

(३७९) हे विद्वन् राजन् ! जिस अधिकार में हम लोग स्थापित करे उस अधिकार को धर्म और पुरुषार्थ से यथावत् सिद्ध कीजिये॥ मं० १५

(३८०) जिस राजा वा सेनापति के उत्तम स्वभाव से राजपुरुष सेनाजन और प्रजा पुरुष प्रसन्न रहें और जिनकी प्रसन्नता में राजा प्रसन्न हो व दृढ़ विजय उत्तम निश्चल ऐश्वर्य और अच्छी प्रतिष्ठा होवी है॥ मं० २०

(३८१) जो अध्यापक उपदेशक वा राजपुरुष सुशिक्षित वाणी अग्नि आदि की तत्त्व विद्या पुरुष का ज्ञान और सभ्यता सब के लिये देवें वे सबको सत्कार करने योग्य हों॥ मं० २१

(३८२) जो मनुष्य जैसे ओषधि रोगों को वैसे दुःखों को दूर लेते हैं प्राणों के तुल्य बलों को प्रकट करने तथा जो राजपुरुष सूर्य जैसे रात्रि को जैसे वैसे अधर्म और अविद्या के अन्धकार को निवृत्त करते हैं वे जगत् के पूज्य क्यों नहीं हों ? ॥ मं० २२

(३८३) राजादि विद्वानों को चाहिये कि कपट आदि दोषों को छोड़ शुद्ध भाव से सबके लिये सुख की चाहना करके पराक्रम बढ़ावें और जिस कर्म से दुःख की निवृत्ति तथा सुख की वृद्धि इस लोक परलोक में हो उसके करने में निरन्तर प्रयत्न करें॥ मं० २३

(३८४) सभाधीश आदि विद्वान् लोग जैसे पृथिवी आदितत्त्व सब प्राणियों की रक्षा करते हैं वैसे बढ़े हुए ऐश्वर्य से दिन रात सब मनुष्यों को बढ़ावें॥ मं० ३०

(३८५) जिसके अधिकार में पृथिवी आदि पदार्थ हों वही सब के ऊपर राजा होवे। जो राजा होवे शस्त्र अस्त्रों से शत्रुओं का निवारण कर निष्कण्टक राज्य करे॥ मं० ६६ [अध्याय ३५ से]

(३८६) जैसे सूर्य आदि रूप से अग्नि बाहर भीतर रहकर सब की रक्षा करता है वैसे ही राजा पिता के तुल्य बचाव करता हुआ पुत्र के समान इन प्रजाओं की निरन्तर रक्षा करे॥ मं० १७

क्रमशः..........

क्रमागत :—

माण्डूक्य कारिकाओं पर आचार्य गौडपाद को समीक्षा (४५)

(ले० श्री स्वामी ब्रह्मानन्द जी आर्य त्रैतवेदान्ताचार्य मु० ओं० आश्रम, चान्दोद (बड़ोदा)

किन्तु किन नामों से करें तो जो मन में था वो गुरु गौड जी के मुख में आया। अर्थात् गौतमबुद्ध कि जिनकी फिलासफी (तत्त्वज्ञान) दिल दिमाग में काम कर रहा था उन्हीं का नाम रखने का विचार हुआ किन्तु (गौतमबुद्ध) ऐसा पूरा जो रखेंगे तो बौद्धानुयाई तो खुश होंगे किन्तु वैदिक सनातनी आलम नाराज हो जायेगा इसलिये केवल (बुद्ध) ही उनका नाम यहां इसलिये संक्षेप से रखा कि जो द्विअर्थक होने से अपने पकड़े भी न जायें और बौद्धानुयायीयों को ऐसा नाम बतलाकर खुश रखें परन्तु फिर सोचा कि बुद्ध शब्द का अर्थ ज्ञान या ज्ञानी भी होता है कोई परमात्मा अर्थ न ले लेवें इसलिये (द्विपदांबरम्) रख दिया जिससे शरीर धारी दो पैरों वाला भी समझमें आजावे और अपने पकड़ने में भी न आ सकें प्रतिपक्ष विद्वानों से। किन्तु चालाकी और चोरी की बात सूक्ष्म बुद्धि के चिन्तकों से क्या कभी छिप भी सकती है? कभी नहीं। देखो काशी के माने हुये विद्वान् गोपीनाथ जी कविराज ने भी इसी श्लोक से गौतम बुद्ध ही सिद्ध किया है देखो तल्याण का विशेषाँक योगाँक जो हमारे पास भी रखा है। परन्तु इसमें किसी की गवाही की क्या जरूरत है इस अलात् शां. प. के अन्त की सौवीं कारिका को मिलाकर पढ़ देखो स्वयं आप को उपरोक्त अर्थ खुल जायेगा। जो वहां से फिर अपने इष्ट प्रिय व गौतमबुद्ध को तीसरी बार नमस्कार किया है। तो भी आप कहें कि बुद्ध का अर्थ तो ज्ञानी परमात्मा भी होता है तो (नैतद् बुद्धे न भाषित्) का फिर क्या अर्थ करेंगे आप यहां भी परमात्मा लेंगे क्या? इस पद का तो अर्थ कल्याण वालों ने भी बुद्ध देव ही लिया है और ये भी बताया है कि ये गौड जी का सिद्धान्त बौद्ध सिद्धान्त नहीं है किन्तु औपनीषदीय दर्शन हैं। तो बुद्ध शब्द इस प्रकरण में देना और बुद्ध शब्द को लेकर ही बार बार नमस्कार करना और बुद्ध फिलासफी के शब्दों का ही जो उनके प्रक्रिया के शब्द हैं जैसे (धर्मधातु) (सर्वधर्मा)। (लौकिक) (शुद्धलौकिक) और (लोकोत्तर) ऐसे ऐसे नाम बौद्ध प्रक्रिया के प्रायः हर जगह इस चौथे प्र० में ठोंस कर लिखना ये क्या बतला रहा है? अर्थात् जो मन में होता है वही मुख में या (बोलने में) आता है तो ये उपरोक्त इनकी बातें खास रहस्य को ली हुई हैं। तो अन्त में हम फिर से बतला देना चाहते हैं कि जो (ज्ञेया भिन्ने संबुद्धस्तं बन्दे) को बन्दना करना ही व्यर्थ है क्योंकि जो (ज्ञेयाभिन्न) नेउसे मानते हो तो ज्ञेयरूप हो वो तुम्हारी ही आत्मा यानें तुम वही अपने को मानते हो तो फिर वे (तं वन्दे) की वन्दगी करना तो द्वैत में होती हैं तो क्या कोई अपने ही आपको भी वन्दना कर करता है। और तुम ने तो वैतथ्य प्रकरण में साफ लिख भी आये हो कि नमस्कारा दि. शिष्टाचार भी संन्यासी न करे लेखो (निस्तुर्तिर्निनस्कारो ॥ ३७। वै० प्र०) को पढ़ देखो? और गौड जी तो संन्यासियों के आ० कहे जाते हैं जो कहते हैं उसके विरुद्ध अदबदा कर जहां तहां लिख मारते हैं जिससे इनके भोले अनुयाईयों को शरमाना और चुप कर जाना पड़ता है अर्थात् ऐसी ऐसी बुद्धि विरुद्ध लिखी हुई गौड जी की बातों का आखिर वे बिचारे जवाब ही क्या देंगे? कुछ भी युक्ति युक्त समाधान दे सकते ॥१॥

अस्पर्शयोगो वै नामः सर्व सत्त्व सुखो हितः ।
अविवादोऽविरुद्धश्च देशितस्तं नमाम्यहम् ॥२॥

अद्वैत. शा प. की २ की. कारिका

अर्थ (शास्त्रों में) जिस संपूर्ण प्राणियों के लिये सुखकर हितकारी निर्विवाद और अविरोधी अस्पर्शयोग का उपदेश किया गया है उसे मैं नमस्कार करता हूं ॥२॥

समीक्षा-ये उपरोक्त कथन भी युक्ति युक्त नहीं क्योंकि (भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यग् सतं परं पुरुषमुपैति दिव्यम् ॥ भ. गीता अ. ८॥) तथा (वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवरणं तमसः परस्तात् ॥ य० वे०) और ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परंतप ॥ गी० अ० ११) एवं (परमं साम्यमुपैति ॥ उ०) ये सब श्रुति स्मृतियां क्या बतला रही हैं तुम्हारा ब्रह्म एवं ब्रह्मज्ञान अस्पर्श योग कहना ही युक्त नहीं क्योंकि (सुखेन ब्रह्म सं स्पर्शः ॥ भ० गी०) कहा गया है तो उसे अस्पर्श योग नाम देना तुम्हारा मिथ्या मूलक है। सबके लिये सत्त्व एवं सुखकारी होता तो दुनिया में सभी सुखी और ज्ञानी देखे जाते किन्तु जो ब्रह्मनिष्ठ हैं वे ही परं सुख के भागी और सच्चे ज्ञानी है। दूसरे सब त्रिविधतापसे संतपित हैं तो ऐसा सर्वत्र यहन देखे जाने से तुम्हारी ये कल्पना भी मिथ्यामूल कही है क्योंकि पाखंडियों को उपरोक्त बातें रुचिकर भी नही लगती तो सबके लिये हितकार कहना भी योग्य नही केवल मुमुक्ष के लिये कह सकते हो। ब्रह्म एवं ब्रह्मज्ञान के विषय में तो बड़े ज्ञनियों में आरण्यक एव उपनिषद् काल से विवाद चला आ रहा है फिर क्यों इन्कार करते हो? यदि तुम्हारे अद्वैत शास्त्र से भी कहो तो हम वैदिक सांख्य वादियों के साथ तो तुम्हारे सिद्धान्त पर पूरा विवाद चल रहा है। तथा तुम्हारे अद्वैतियों के मत में तो ज्ञाता ज्ञान ज्ञेय इन तीनों का तो अभिन्न तुम दोनों बड़े छोटे गुरु जगह जगह एक ही लिख और मान रहे हो फिर इस अभिन्न ज्ञान को तुम्हारे द्वारा नमस्कार करना ही कैसा? क्या ये इस प्रकार की नमस्कार पूर्वक स्तुति को उपासना क्या भेद नहीं सिद्ध कर रही है? अरे नमस्कार करना ही था तो ग्रन्थ के आदि में किये या लिखे होते तो हम भी मानते। परन्तु ये सब तुम्हारी फक्त बोद्ध फिलासफी को ही रूपान्तर से प्रशसा है ॥२॥

भूतस्य जातिमिच्छन्ति वादिनः केचिदेव हि ।
अभूतस्या परे धीरा विवदन्तः परस्परम् ॥३॥

अद्वैत. शा प्र. की ३री कारिका

अर्थ—उनमें से कोई कोई दूसरे बुद्धिशालो परस्पर विवाद करते हुये असत्यपदार्थ की उत्पति स्वीकारते हैं ॥३॥

समीक्षा—और तुम लोग अद्वैत वादी नहीं विवाद करते हो द्वैतवादियों से और आपस में भी अद्वैतवादि सैद्धान्तिक विरोध नही, रखते क्या? पं० वाचस्पति मिश्र जीव को अज्ञान होना मानते हैं परन्तु आप और विद्यारण्य तो स्वम् ब्रह्म को ही अज्ञान मानते हो। तो क्या ये विरोध नहीं? यदि आप सब जो समकाल होता तो क्या उक्त विषय है परस्पर विरोध न होता और क्या विवाद न चलता? तथा आज भी अद्वैतवादियों के जो विशेष ग्रन्थ हैं क्या उनमें परस्पर आपस में विरोधाभास नहीं है क्या? अरे दूसरों की तो जाने दो तुम्हारे इस कारिका ग्रन्थ में एवं आ० श्री गुरु शंकर जो के भी भाष्य ग्रन्थों में क्या परस्पर विरोधाभास नहीं पाया जाता? तो पहले आप अपनों को और अपने ग्रन्थों को तो देखो? बाद में दूसरों को दोष दिखाना समझे! गुरुजी ॥३॥

भूतं न जायते किंचिदभूतं नैव जायते ।
विवदन्तोऽद्वया ह्यावमजातिं ख्यापयन्ति ॥४॥

अद्वैत. शां प्र. की ४थी. कारिका

अर्थ—किन्हीं का मत है कोई सद्वस्तु उत्पन्न नही होती और (कोई कहते हैं—) असद् वस्तु का जन्म नहीं होता इस प्रकार परस्पर विवाद करने वाले ये अद्वैतवादि अजाति (अजातवाद) को ही प्रकाशित करते हैं ॥४॥

ख्याप्यमानामजातिं तैरनु मोदामहे वयम् ।
विवदामो न तैः सार्धमविवादं निबोधत ॥५॥

अद्वैत शां प्र. की ५वीं कारिका

अर्थ—उनके द्वारा प्रकाशित की हुई अजाति का हम भी अनुमोदन करते हैं। हम उनसे विवाद नहीं करते अतः उस निर्विवाद (परमार्थ दर्शन) को हमसे अच्छी तरह समझलो ॥५॥

समीक्षा—अजी नहीं गुरुजी! हम वैदिक सांख्यवादि एवं शैवन्याय वैशेषिक कभी भी उक्त ढंग से अद्वैतवादि न कभो थे न हैं और न होंगे

(शेष पृष्ठ ६ पर)

(पृ० ५ का शेष)

ही समझें ? तुम्हारी व्यंगोक्ति को हम अच्छी प्रकार समझ रहे हैं। य दि आप कहें कि हम सत्यकार्यवादी हैं सत्कारण वादी नहीं। अर्थात् कार्य का अस्तित्व कारण में मानते हैं कारण का कार्य में नहीं तो भी ठीक नहीं क्योंकि (अनन्यत्व) के अर्थ. आ. शंकर ने किये हैं वे फिर गल्त ठहरेंगे। यदि आप कहें कि हम कारणवादी हैं तो ब्रह्म के अभिन्न निमित्त उत्पादान कारण मानने से तो ब्रह्म की चेतनता, आनन्दता, नित्य अखंता, शुद्धता, स्वतन्त्रतादि, ब्रह्म के स्वकीय गुण, धर्म स्वभाव, स्वरूपता इस जगत् में भी आजानी चाहिये थी और जगत् में कोई एक भी पदार्थ जड़ ज्ञान शून्य, आनन्द शून्यादि देखने में फिर आना ही चाहिये था। और यदि भिन्न भिन्न कारणों के परिणाम और संख्या को भी कार्य रूप देखना चाहते हो तो ये ब्रह्म से उत्पन्न हुये ये सभी पदार्थ एक, एवं विभु होना चाहिये था क्योंकि परब्रह्म परमात्मा तो एक और विभु है। यदि आप कहो कि हम तो कारण के गुणों को कार्य में आना ही चाहिये, ऐसा जरूरी नहीं मानते। हम तों विलक्षणता के पक्षपाती हैं। तो फिर (सत्यं ज्ञानमनंत ब्रह्म) से ये नाम रूपात्मक मिथ्या जगत् की उत्पत्ति मानने के लिये फिर माया वा अविद्या की क्या जरूरत है ? बस एक ब्रह्म रूप कारण से उसी में से विपरीत गुण धर्म वाले विलक्षण जगत् का उत्पत्ति हो जायेगी। और मकड़ी के तन्तु के जाल को तानकर समुद्र पर, पुल बना सभी लोग भवपार हो जायेंगे। तो आप इस प्रकार अजाति को अनुमोदन नहीं छेदन करते हो और जाति तो समान प्रसवता में होती देखी जाती है तथा समानता तभी होगी जब एक नही अनेक होंगे तो अब आप स्वयं ही अजाति मान लिये होने से अनेक अजायमान तुम्हारे मत में सिद्ध हो गये। और फिर कहते हो कि उस निर्विवाद परमार्थ को तुम हम से समझलो। तो ये इस प्रकार से कहना तुम्हारी विद्या का मात्र तुम्हें गर्व है, जो ऐसा हम साख्यों का सिखाने चले हो तो हम तो तुम अद्वैतवादी नवीन वेदान्ति से अत्यन्त ही जून हैं जो हमने वेदपुरुष परमात्मा के वेद रूप ज्ञान को गुरु मंत्र रूप से परमर्षि भगवान् कपिल की परम्परा से तत्त्व ज्ञान को सीखते समझते ही चले आ रहे हैं। ये तो हमारी परंपरा में एक वार्षगण्य नामक आचार्य ही ऐसा अपवाद रूप निकला है जिसके कार हम लोगों में फूट पड़ गई, और इसी कारण साख्यों की प्राचीनता में शिथलता एवं अनीश्वरता की लहर आ घुसी, जिसका हउवा तुम सब नवीनों ने उड़ा हम लोगों को नीचा गिराना चाहा किन्तु आज भी हमारी तत्त्वज्ञान की फिलासफी भी ऐसी है कि जिसे तुम लोग भी छिपी जबान हमारे ही सिद्धान्त रूप शास्त्रों से बौद्धादि से लड़कर अपना बचाव करते हो देखो आ० शंकर का भाष्य यत्र तत्र इन्हीं बातों से भरा पड़ा है। तुम्हारे अविद्या कार्य एवं एक तत्त्ववाद की उनके आगे एक भी नहीं चलती, फिर कौन मुंह ले हमारे गुरु बनने चले हो ? किसी समय आप भी (गौडपाद जी) भी तो हमी साख्यों के शिष्य एवं अनुपाई थे देखो सांख्य पर गौड पाद भाष्य ॥५॥

अजातस्यैव धर्मस्य जातिमिच्छन्ति वादिनः।
अजातो ह्यमृतो धर्मो मत्यतां कथमेष्यति ॥६॥

अद्वैत. प्र. शां की ६ठी. कारिका

अर्थ—वे वादी लोग अजात वस्तु का ही जन्म होना स्वीकार करते हैं। किन्तु जो पदार्थ निश्चय ही अजात और अमृत है वह मरण शीलता को कैसे प्राप्त हो सकता है ॥६॥

समीक्षा—हम भी तो यही पूछते हैं कि आ० प्र० की छठी कारिका से आपने भी तो अजात परमपुरुष (चेतों ऽशू पुरुषः पृथक्) से चेतन अंत रूप जीवों का पृथक् पैदा होना कैसे वहां मान लिये हैं पहले अपने आपसे तो पूछें फिर हम जवाब देवें ? जब आप जवाब दे देंगे तभी हम से भी उक्त विषय का करारा जवाब ले लेना समझें ! गुरुजी ! अरे ये कारिका तो तुम्हें स्वर्ग में भी जाकर हैरान करेगी। और भी सुनो (जीवं कल्पयते पूर्वं ततोभावान् पृथक् विधान ॥१६॥ वैतथ्य प्र०) कहो गुरुजी ! ये तुम्हारा अजन्मा प्रभु कैसा जीव भाव से पैदा हुआ पूर्व में जरा बतायेंगे। यदि नहीं बता सको तो इन तुम्हारी कारिकाओं के नाम ले मत्थे पर हाथ धर अब स्वर्ग में बैठे बैठे रोते रहो समझे। और (न निरोधोनचोत्पति) वाली कारिका के नाम की माला वहीं बैठे हुये फेरते रहो, तो तुम्हारा अजन्मा परमार्थ तत्त्व अपने आप सिद्ध भी हो जायेगा और बुद्ध भी समझे नहीं होय तो हम वैदिकों के पास चले आना ॥६॥

न भवत्यमृतं मर्त्यं न मर्त्य ममृतं तथा।
प्रकृते रन्यथाभावो न कथंचिद्भविष्यति ॥७॥
स्वभावेना मृतो यस्य धर्मो गच्छति मर्त्यताम्।
कृतके नामृतस्तस्य कथंस्थास्यति निश्चलाः ॥८॥

अलात प्र की ७वी कारिका और ८वीं का०

अर्थ—मरण रहित वस्तु कभी मरणशील नहीं हो सकती और मरणशील मरणहीन नहीं हो सकती, क्योंकि किसी के स्वभाव का विपर्यय किसी प्रकार होनें वाला नहीं है ॥७॥

अर्थ—जिसके मत में स्वभाव से ही मरण हीन धर्म मरणशीलता को प्राप्त हो जाता है, उसके सिद्धान्तानुसार कृतक-(जन्म) होने के कारण वह अमृत निश्चल (चिरस्थाई) कैसे रह सकता है ? ॥८॥

समीक्षा—आगम प्रकरण की छठी कारिका में आपके विद्यमान पदार्थ जो प्रकृति पुरुष हैं, उन्हीं दोनों से प्राणिपदार्थों की उत्पत्ति होना मान आये हैं, फिर वैतथ्य प्र० की सोलहवीं कारिका में (जीवंकल्पयते पूर्व ततो भावान्पृथक् विधान ॥ अर्थात् प्रभु स्वयं अपने ही आपको जीव रूप से कल्पना करता है और फिर इसके बाद सभी भौतिक पदार्थों की कल्पना पृथक् पृथक् करता है। ऐसा कहकर आगम प्र० की छठो कारिका के भी विरुद्ध लिख मारा, फिर अद्वैत प्र० की तीसरी कारिका में वैतथ्य प्र० की उपरोक्त सोहलवीं का० के विरुद्ध (आत्मा ह्याकाशवज्जो वैघंटाकाशै रिवोदितः) कहकर आकाश एवं मिट्टी के दृष्टान्तों से घटाकाश तथा घड़ों के पैदा होने के समान् आत्मा का घट वत् पैदा हो जाना माना है, अर्थात् वही आत्मा निमित्त कारण भी और वही उपादान भी और वही साधारण कारण भी मानकर वैतथ्य प्र० के भी विरुद्ध, यहां दो प्रकार का उपादान कारण आकाश और मिट्टी का प्रमाण दे आत्मा का वैसा घटवत् अपने ही आप बन जाना मान बैठे हैं। फिर आगे इसी अद्वैत प्र० की १८ वीं कारिका में (अद्वैत परमार्थो हि, द्वैतं तद्भेद उच्यते) कहकर गौड जी गुरु अद्वैत को ही द्वैतरूप में परिणत हुआ मान लिये हैं, तो ये इनका कार्य कारण भाव का मानना भी सिद्ध कर रहा है और स्वयं ब्रह्म को विकृत याने अमृत से मृत, धर्मा भी, बता रहा है, और फिर इसी प्र० को इकतीस वीं, कारिका में (मनोदृष्यमिदं द्वैतं, यत्किंचित् सचराचरम्) सब जाग्रत स्वप्न का श्रृष्टा, केवल मन को ही बतलाकर उपरोक्त सभी अपने मतों का विरोध या खण्डन स्वयं कर रहे हैं। तथा अद्वैतवादी तो कार्य ब्रह्म और कारण ब्रह्म मानकर नित्य को अनित्य, अकार्य को कार्य अमृत से मृत मान रहा है, तो फिर कौन मुंह ले आप दोनों गुरुजन, हम वैदिकों के आगे बातें करते हों ? की अमृत मृत कैसे हो सकता है, यदि ऐसा होगा तो वह निश्चय ही कैसे रहेगा ? तो उपरोक्त जवाब आप हम द्वैत वादियों से क्या ले रहे हैं, आपके मन में तो आप जगह जगह, ऐसा ही मानते चले आ रहे हैं, कहीं प्रकृति पुरुष के नाम से कहीं प्रभु परमात्मा के नाम से तो कहीं आत्मा के नाम से कहीं तो मन के तो हीं चित्त के नाम से तो अद्वैत ब्रह्म के नाम से तो कहीं गुरु गौड जी ? अद्वैत ही अपने द्वैत कैसे हो गया, और अमृत से मृत हुआ द्वैत मृत कैसे दीख रहा है, प्रत्यक्ष तुम्हारा ब्रह्म, जरा ईमानदारी से तो कहना ? कि दूसरे सामने वालों को ही बुद्ध बनाने चले हो। जब वो उसकी प्रकृति विरुद्ध नहीं हो सकता, न कर सकता है, तो अद्वैत से द्वैत होना ये उसकी प्रकृति विरुद्ध नहीं हुआ क्या ? कि जिसे आपने स्वयं मान लिये हों

सांसिधिकी स्वाभाविकी सहजा अकृता च या।
प्रकृतिः सेति विज्ञेया स्वभावं न जहाति या ॥९॥

अलात् शान्ति प्र० की ९ वीं कारिका

अर्थ—जो उत्तम सिद्धि द्वारा प्राप्त स्वभाव सिद्ध सहजा और अकृता तथा कभी भी अपने स्वभाव का परित्याग नहीं करती वही प्रकृति है ऐसा जानना चाहिये ॥९॥ (क्रमशः)

इस्लामी परिवार-विधान

(श्री पण्डित जगत्कुमार शास्त्री "साधुसोमतीर्थ"
सी-२।७३, अशोक-विहार-२, देहली-५२)

१—अंग्रेजी भाषा में "मुहम्मडन" (Mohammadan) शब्द का प्रयोग मुसलमान, मुसलमानी-मत, इस्लाम और इस्लामी-मत आदि शब्दों के प्रचलित अर्थों में ही खूब होता है। अन्य मतस्थ विद्वान ही नहीं; अपितु मुसलमान भी अपने लेखन,प्रकाशन, सम्भाषण आदि में इस"मुहम्मडन" शब्द का प्रयोग गम्भीरता और शिष्टता के नाते प्रसन्नता पूर्वक किया करते हैं। इसके अनुगामी मूसाई, ईसा के अनुयायी ईसाई और मुहम्मद अनुगत मुहम्मदी। यदि मूसा का मूसाइयों से, ईसा को ईसाइयों से मुहम्मद को मुहम्मदियों से पृथक् कर दिया जाये, तो इन-इन मतों का अस्तित्व ही समाप्त हो जाये।

२—संस्कृत और हिन्दो के पुराने साहित्य में जो "यवन" पद प्रयोग आया है, वह मुख्यतया मुहम्मदियों के लिये ही है। अब साहित्य में "यवन" पद का प्रयोग कम ही होता है। तत्कालीन परिस्थियों के कारण "यवन" पद के साथ घृणा और तिरस्कार व अवज्ञा और शत्रुता पूर्ण भाव भी भारतीयों की भावनाओं में प्रति ध्वनित होने लगे थे, जिनका विदेशी आक्रमणकारी और अत्याचारी के प्रति होना किसी भी आक्रान्त एवं पीड़ित देश या समुदाय में होना स्वाभाविक ही है।

३—सार्थकता की दृष्टि से तो "मुहम्मदी" "मुहम्मदी-मत" या "मुहम्मडन" शब्दों का प्रयोग हो मुसलमानों के लिये भारतीय बोलियों= भाषाओं में होना चाहिये। परन्तु उर्दू अर्थात् लशकर की भाषा के प्रचार और सहचार से "मुसलमान," "मुसलमानी-मत" और "इस्लाम" शब्दों का व्यवहार अधिक होता है। ये शब्द वास्तविकता से तो दूर हैं, फिर भी चलते हैं। "कुरानी" या "कुरानी-मत" शब्दों से भी वस्तुस्थिति को दर्शाया जा सकता है, क्योंकि सैंकडों कबीलों, नस्लों, जातियों, उपजातियों, साम्प्रदायिक विधिविधानों, देशों और विश्वासों में विभक्त सभी "मुहम्मदी" भाई महात्मा मुहम्मद और उनकी "कुरान" नामक किताब से ही प्रेरणा प्राप्त करके अपने लोक व्यवहारों को चलाते हैं। यह बात दूसरी है कि कुरानी लेखों के अर्थों तथा मुहम्मद के जीवन की घटनाओं [हदीसों] के अर्थों के विषय में मुहम्मदो विद्वान् परस्पर झगड़ते ही रहते हैं।

४—जब भारत की संविधान सभा द्वारा भारत का वर्तमान संविधान तैयार किया जा रहा था, तब उसमें एक धारा [संख्या-४४] यह भी सुनिश्चित हुई थी :—

"राज्य का प्रयत्न होगा कि पूरे देश में नागरिकों के लिये समान सिविल-कोड [परिवार-विधान] हो।"

५—अंग्रेजी के "मुहम्मडन-पर्सनल-ला" और "हिन्दू-पर्सनल-ला" शब्दों का प्रयोग पारिवारिक व्यक्तियों के पारिवारिक व्यवहारों का विधान, इस अर्थ में ही आजकल किया जा रहा है। उक्त धारा [४४] के अनुसार हिन्दुओं के लिये विवाह, दायभाग, मन्दिर-प्रवेश, अच्छूतपन निवारण आदि-आदि के लिये यह सिविल-कोड स्वतन्त्रता प्राप्ति के प्रथम चरण में ही तैयार करके लागू किया जा चुका है।

६—भारतीय संविधान की धारा-४४ के अनुसार मुसलमानों, ईसाइयों, पारसियों आदि के लिये समान रूप से व्यवहृत होने वाला समानसिविल-कोड तैयार होना अभी भी शेष है। इस विषय में ईसाइयों का अपना पृथक् कोड है। मुसलमानों का अपना, पारसियों का अपना। सिख, जैन और बौद्ध मतवादियों पर कुछ अंशों में तो हिन्दू-परिवार-विधान ही लागू होता है; साथ ही कुछ बातों के लिये इनके अपने-अपने पृथक् विधान भी सरकार ने बना रखे हैं।

७—यह बात बड़े खेद, आश्चर्य स्थायी साम्प्रदायिक मनोमालिन्य की है कि हमारे धर्मनिर्पेक्ष, प्रजातन्त्रवादी, नवचेतना सम्पन्न, आधुनिकता के अभिमानी तथा स्वतन्त्र भारत के संविधान की विद्यमानता में भारत की केन्द्रिय सरकार में सत्तारूढ़ दल के प्रबल बहुमत में होने पर भी, अभी तक भी यहां भारतीय नागरिक के पृथक्-पृथक् साम्प्रदायिक सरिवार-विधानों के रूप में भारतवासियों में स्थायी फूट, बैर-विरोध, राग-द्वेष, मनोमालिन्य, भेदभाव, आपाधापी और दुराव के घातक तत्त्व एवं उपकरण मौजूद हैं, जिनके कारण भारत की बाल स्वतन्त्रता भी खतरे में है, नागरिकों का पारस्परिक सहयोग, सद्भाव भी कठिन है।

८—समान-परिवार-विधान की मांग के विरोध में—"धर्म कार्यों में हस्ताक्षेप" की जो लंगड़ी दलीलें पहले कट्टर पन्थो हिन्दू दिया करते थे, वे ही सब अब कट्टर पन्थी मुसलमानों की ओर से दी जा रही हैं। समान कोड के मार्ग में अब सब से अधिक बाधायें मुसलमानों की तरफ से डाली जा रही हैं। हिन्दुओं और ईसाइयों आदि के सिविल कोड प्रथमतः तो पर्याप्त सुधरे हुए ही हैं, दूसरे वे नये-नये आवश्यक परिवर्तनों, सुधारों आदि के विरुद्ध भी नहीं हैं। अब तो सभी हिन्दू, ईसाई, पारसी आदि एक समान भारतीय सिवल-कोड के इच्छुक भी हैं।

९—भारत के सभी नागरिकों के लिये, भारतीय संविधान की धारा—४४ के अनुसार जैसा आवश्यक था, वैसा कोई गम्भीर प्रयास भारत को केन्द्रिय सरकार, किसी प्रादेशिक सरकार या भारतीय जनता की ओर से न हुआ है, न ही हो रहा है, न ऐसा होने के लक्षण हैं। कभी-कभार ऐसी आवाज सुनाई देती है कि भारतीय संविधान की धारा—४४ के अनुसार भारत के सभी नागरिकों के लिये एक समान सिविल-कोड तैयार किया जाये। बस मुसलमानों की नींद खराब करने के लिये इतना ही बहुत हो जाता है। वे अंगारों पर लोटने लगते हैं, गालियों और धमकियों पर उतर आते हैं, झगड़े-फिसाद फैला देते हैं। भारत राष्ट्र के शत्रुओं के षड्यन्त्रों में भी शामिल हो जाते हैं।

१०—भारत के सर्वोच्च न्यायालय के एक माननोय न्यायाधीश न्यायमूर्त्ति श्री वाई० वी० चन्द्रचूड़ महोदय ने बम्बई में एक अवसर पर कहा कि-भारत के सभी नागरिकों के लिये विवाह का समान विधान हमारो राष्ट्रीय एकता के लिये एक विशेष महत्वपूर्ण पग होगा।" तब भारत के मुसलमान उन्हें कोसने लगे। पंजे झड़कर इनके पीछे पड़ गये।

११—महाराष्ट्र राज्य के एक मुसलमान मन्त्री अन्तोले ने एक बार महाराष्ट्र को विधान सभा में यह घोषणा की थी कि—

"राज्य सरकार बहु-पत्नी-प्रथा (Polygamy) के विरुद्ध कानून लागू करने के लिये केन्द्रीय सरकार से दृढ़तापूर्वक अनुरोध करेगी, और देश के सभी वर्गों के नागरिकों को उसके अनुसार आचरण करने के लिये विवश करेगी।" इस पर मुसलमानों ने उनके विरुद्ध भी भारी हल्ला आरम्भ कर दिया था। यहाँ तक कहा गया कि अन्तोले तो मुसलमान ही नहीं है।

१२—जब भारत की केन्द्रीय सरकार द्वारा संचालित, मुसलमानी सम्प्रदायवाद के पुराने गढ़ अर्थात् मुस्लिम विश्वविद्यालय अलीगढ़ के प्रबन्ध में पिछले दिनों कुछ सुधार किये गये, तब भारत के विभिन्न नगरों में अशान्ति एवं खून खराबी को भड़काकर भारत के कट्टरपन्थी मुसलमानों ने अपनी दूषित एवं राष्ट्र विरोधी मनोवृत्ति का बहुत ही भद्दा परिचय दिया था। उसी घटना क्रम का संकेत करते हुए एक मौलवी ने लिखा था :—

"सरकार को यह समझ लेना चाहिये कि मुस्लिम-पर्सनल-ला की समस्या यूनिवर्सिटी जैसी समस्या नहीं है। जब तक यहां शासन लोकतान्त्रिक ढांचे पर चलता रहेगा, यह कदापि सम्भव न हो सकेगा कि सरकार मुल्लिम जनमत से नजरें चुरा कर कुछ कथित वकीलों के सहारे उसे खत्म कर सके। और, अगर सरकार ने यह ढिठाई दिखाई, तो उसे यह सौदा काफी महंगा पडेगा, ऐसा उसे मन में बैठा लेना चाहिये।"

१३—भारत के मुसलमानों की बहुत बड़ी संख्या अशिक्षित, धर्मान्ध भोलो, शोघ्र ही भड़क उठने वाली, धर्मभीरू, आर्थिक दृष्टि से दुर्बल, शिक्षा में अधिक पिछड़ी हुई और पेशेवर मुल्लाओं, मौलवियों, मजावरों आदि के कहे में चलने वाली है। जो शिक्षा और आर्थिक दृष्टि से सुसम्पन्न और उन्नत मुसलमान थे, वे हिन्दू और मुसलमान जनसंख्या के आधार पर देश का बटवारा कराकर और अपना पृथक् स्वतन्त्र देश पाकिस्तान बनाकर सन् १९४७ ई० में यहां से पाकिस्तान चले गये थे। उन्होंने अपनी वाणी, लेखनी और अपने आचरण से भी यह सुस्पष्ट कर दिया था कि इस देश को उन्होंने कभी अपना देश समझ ही न था।

१४—जब वे यहां थे, तब आये दिन अशान्ति फैलाया करते थे, इस्लामी जीवन-पद्धति के नाम पर ही उन्होंने पृथक् देश की मांग की थी और

(शेष पृष्ठ ८ पर)

(पृष्ठ ७ का शेष)

हिन्दुओं के पास-पड़ौस में रहने से इन्कार किया था। जब उनकी वह अत्यन्त अनुचित मांग भी स्वीकार करली गई थी, तब से ही उन्होंने अपने चेलों, जासूसों, रिश्तेदारों एवं भारतीय और अभारतीय षड्यन्त्र-कारियों, कूटनीतिज्ञों तथा भारत के शत्रुओं के साथ मेल मिलाप बढ़ाकर कई प्रकार के भारत विरोधी अभियान चला रखे हैं। कश्मीर का कज़िया भी इसी सिलसिले की पहली कड़ी है। भारत के संविधान की धारा ४४ के अनुसार समान सिविल-कोड का विरोध भी उसी सिलसिले की एक अन्य कड़ी है। बंगला देश के जन्म को पाकिस्तान के मुसलमानों कीआत्मघाती नीति का परिणाम भी कह सकते हैं, पाकिस्तान के नहले पर भारतीय दहला भी। भारत का मुसलमान बंगला देश के जन्म पर प्रसन्न नही है।

१५—सभी नागरिकों के लिये समान—सिविल कोड के विरोधी मुसलमानों का कथन है कि भारतीय संविधान ने अल्प संख्यक होने के नाते हमें जो अधिकार एवं संरक्षण प्रदान कर रखे हैं, उन्हें हम कभी छोड़ेंगे ही नही, उन्हें हम छोड़ सकते ही नहीं। सविधान की यह धारा—४४, जो सभी नागरिकों के लिये समान—सिविल—कोड बनने पर हमारे संविधान प्रदत्त विशेष अधिकारों तथा संरक्षणों का हनन होगा। यह धारा मुसलमानों के हितों, अधिकारों, सरक्षणों आदि से टकराने वाली तलवार के समान है। अतः इस धारा को भारत के संविधान में से निकाल दिया जाये। यदि निकाला न जाये, निरस्त कर दिया जाये। और हमें सरकार की ओर से सुस्पष्ट विश्वास दिलाया जाये कि भविष्य में कभी भी समान—सिविल—कोड का प्रश्न उठाया ही नही जायेगा। उनका कथन यह भी है कि सरकार के नेताओं, सचालकों, मन्त्रियों आदि की बातों का हमें कोई विश्वास नहीं है; क्योंकि ये लोग तो जल्दी-जल्दी बदलते रहते हैं और झांसेबाजी से काम निकालकर तोताचश्मी भी किया करते हैं।

१६—भारतीय संविधान के मौलिक अधिकारों के वह अनुबन्ध, जिस की आड़ में सुधार विरोधी मुसलमान अपने अभियान चलाया करते हैं, इस प्रकार है:—

"तमाम लोगों को समान रूप से अन्तरात्मा की स्वतन्त्रता होगी और अपने धर्म को स्वतन्त्रता पूर्वक अपनाने, उस पर अमल करने और उसका प्रमाण करने का भी अधिकार होगा।" [भारतीय संविधान धारा—२५]

१७—संविधान की धारा—२५ के अधिनियम —२ में यह भो स्पष्ट कहा गया है:—"किसी आर्थिक, राजनीतिक या धर्मनिर्पेक्ष काम पर, जिसका सम्बन्ध धार्मिक रस्म-रिवाज से हो, पाबन्दी लगाना, या उसे उचित रीति से संचालित करने पर कोई प्रतिबन्ध न होना, जैसे कि विवाह आदि में दहेज या लेन देन पर प्रतिबन्ध लगाना, समाज सुधार के लिये सार्वजनिक, सामाजिक हिन्दू संस्थाओं के द्वार सभी के लिये खोलना।"

१८—इससे स्पष्ट है कि धारा २५ और धारा ४४ में कोई टकराव नहीं। टकराव की सूरत तो तब बनती है, जब सुधार विरोधी मुसलमान अपने रस्म-रिवाजों, लेन देन, आर्थिक हानि लाभ, तथाकथित धर्मपुस्तकों के अदलने बदलने वाले उल्लेखों और उनके विभिन्न व्यक्तियों द्वारा किये गये विभिन्न प्रकार के अर्थवादों के प्रतिपादनों एवं नीति-निर्देशों को भी किसी साधारण से सामायिक लाभ के लिये बेबदल, अटल धार्मिक सिद्धान्त कहने लगते हैं और युक्ति-प्रमाण को छोड़कर हठधर्मी पर उतर आते हैं।

१९—हठ और दुराग्रह के मार्गो पर चलकर, अंग्रेजों के शासन-काल में मुसलमानों को बेशुमार अनुचित लाभ हुए थे। भारतीय स्वतन्त्रता के आगमन से पूर्व जब कांग्रेस और मुस्लिम लीग में पारस्परिक समझौते के लिये, पेचदार बातों के लम्बे लम्बे चक्कर चलते थे, तब कांगेस निरन्तर ही मुसलमानों को येनकेन प्रकारेण तुष्ट रखने की नीति को अपनाती एवं मुस्लिम लीग के सामने अनुचित सीमा तक झुक जाती थी। ऐसा करते हुए हिन्दुओं को अधिकाधिक दबाने और हिन्दू हितों को ठेस पहुंचाने हिन्दुओं की धार्मिक भावना को ठेस पहुंचाने आदि में भी संकोच न करती थी। स्वदेशभक्त और स्वन्त्रता के प्रेमी हिन्दू मन मसोस कर कांग्रेस के इस अनुचित रंग ढंग को सहन कर लेते थे।

२०—यह तो जग जाहिर ही है कि हठ और दुराग्रह के निर्लज्ज मार्ग को अपनाकर ही कट्टर पन्थी मुसलमानों ने भारत देश का विभाजन करवाया और पाकिस्तान बनवाया था। कोई एक भी समस्या इस रीति से सुलझ नहीं सकी। इसके कारण लाखों लोग बरबाद हुए, भारी मार-काट मची, अधिक उग्र और नई नई समस्यायें पैदा हुई और पाकिस्तान एवं भारत में स्थायी शत्रुता के अत्यन्त अवांछनीय दृश्य सामने आये। १५।८।४७ से आज तक युद्ध और तनाव की सी स्थितियाँ मौजूद हैं। देश-विभाजन की प्रतिक्रिया से पाकिस्तान और भारत अभी तक भी प्रभावित चले आते हैं। स्वतन्त्र बंगला देश के जन्म से तो पाकी नेता अभिनेता इतने अधिक बौखलाए हैं कि भारत पाक संघर्ष को एक हजार साल पुराना कहने में भी लजाते नहीं।

२१—सभी जानते हैं कि परिस्थितियां इतनी अधिक बिगड़ चुकी थीं कि देश विभाजन की मांग को स्वीकारे बिना अंग्रेजों के बन्धन से छूटना स्वतन्त्रता को प्राप्त करना किसी भी अन्य प्रकार से भारत के लिये सम्भव ही न था। यह आशा की गई थी कि स्वतन्त्रता के आगमन के साथ ही मुसलमान भी अपना ढंग बदलेंगे। पाकिस्तानी उधर अपने नये देश को उन्नत करेंगे और इधर भारत के मुसलमान अपने पड़ौसियों के साथ देश हित के सभी कार्यों में कन्धे से कन्धा मिलाकर चलेंगे। यह भी समझा गया था कि झगड़ालू और फिसादी मुस्लिम तत्त्व भारत को छोड़कर जा चुका है और भारत में रहने वाले मुसलमानों ने शांति, सहयोग, सद्भाव और भारत प्रेम के मार्ग को चुन लिया है।

२२—खेद है कि ऐसी कोई आशा पूरी नहीं हुई। भारतोय मुसलमानों ने किसी स्वस्थ और परिवर्तित मनोवृत्ति का परिचय नहीं दिया। पाक भारत संघर्षों में भारतीय मुसलमानों का सामूहिक रुख अत्यन्त संदिग्ध रहा है। बंगला देश के जन्म से भारत के मुसलमानों ने दुःख ही माना। भारतीय मुसलमान रिश्ते नाते के निकट सम्बन्धों में पाकिस्तानियों से आबद्ध है। अतः पाकिस्तान से भारतीय मुसलमानों की सहानुभूति स्वाभाविक ही हैं। क्या भारत उनकी सहानुभूति की आशा न करे?

२३—जो मुसलमान सज्जन मुसलमानों के सिविल कोड में सुधार और आवश्यक परिवर्तनों का विरोध करते हैं, एवं जो भारत के सभी नागरिकों के लिये एक समान सिविल कोड बनाने के विरुध हैं, उनके विषय में यह नतीजा सहज में ही निकाला जा सकता है कि उनकी नीयत साफ नहीं है। वे अपने मजहब को खतरे में बतलाकर "और मैं न मानूं" की रट लगा कर अपने भारत विभाजन से पहले के मार्ग पर ही चल रहे हैं। मुसलमानों को इस आत्मघाती नीति का परिणाम अच्छा न होगा। क्योंकि हिन्दुओं और अन्य भारतीय नागरिकों में मुसलमानों के इस अनुचित रुख की प्रतिक्रिया प्रतिकूल ही हो रही है और वह किसी दिन विस्फोटक रूप धारण कर सकती है। जो मुस्लिम लीगी फितने अब फिर नये सिरे से जगाये जा रहे हैं, वे भारतीय नागरिकों के लिये चिन्ता का कारण है। कोई स्वदेश भक्त उनकी उपेक्षा कैसे कर सकता है?

२४—आर्थिक और शैक्षणिक क्षेत्रों में पिछड़े हुये होने पर भी भारत के मुसलमान इस बात को समझते हैं कि कांग्रेस हो, या जनसंघ, अथवा भारत का कोई भी अन्य राजनैतिक दल, सभी सत्ता प्राप्ति के लिये मुसलमानों के वोटों को प्राप्त करना चाहेंगे और वे किसी भी रूप में मुसलमानों के वोटों की उपेक्षा न कर सकेंगे। प्रशासन की प्रचलित प्रजातान्त्रिक प्रणाली में भारतीय मुसलमानों के वोटों का बहुत अधिक महत्व तो है ही। स्वतन्त्र भारत में कांग्रेस दल को निरन्तर ही केन्द्र और राज्यों में सत्तारूढ़ बनाये रखने का रहस्य मुसलमानों के वोटों में ही छिपा है। मुस्लिम वोटों की इस चमत्कार पूर्ण भूमिका के लिये अब भारत के साम्प्रदायिक मुसलमान अपना मुंह मांगा मूल्य प्राप्त करना चाहते हैं। विभिन्न दल एक दूसरे से बढ़कर मुस्लिम वोटों की बोली लगा रहे हैं। भविष्य में ऊँट किस करवट बैठेगा यह कहना कठिन है। मण्डी का माल बनकर बिकने को तैयार रहना किसी के लिये भी उचित नहीं, वह हिन्दू हो, या मुसलमान, दल हो, या कोई विशेष व्यक्ति। (क्रमशः)

इतिहास के ओझल पृष्ठों से —

देश और धर्म पर प्राणाहुति देने वाले ये अमर बलिदाता

(पं० वासुदेव शर्मा 'वसु' विद्यावाचस्पति, पुरोहित, आर्यसमाज मांडल टाऊन. रोहतक)

१— गाथा नयपाल के प्रसिद्ध आर्य वीर अमर शहीद शुक्रराज शास्त्री की है। उस काल में राणा वंश का शासन था। उनकी तानाशाही प्रवृत्ति, पाखण्ड, उद्दण्डता एवं अंग्रेजों के प्रति भक्ति सर्वविदित थी। जब श्री शास्त्री जी गुरुकुल सिकन्दराबाद में शिक्षा प्राप्त कर रहे थे, तो वहां की सरकार ने इनके पिता जो को राष्ट्र द्रोही घोषित कर जेल में डाल दिया था, क्योंकि वे आर्य धर्म का प्रचार करते थे, पर इनके पिता जी जेल के कैदियों में भी आर्यसमाज के सिद्धान्तों का प्रचार करते थे। जब श्री शास्त्री जी गुरुकुल के स्नातक बनकर स्वदेश पहुंचे तो इनके प्रचार से वहां का शासक दल भयभीत हो गया तथा इनको आपने मार्ग से दूर करने का अवसर देखने लगा। अतंतः एक दिवस इन्हें धोखे से पकड़कर नयपाल के मुख्य शासक 'शमशेर' के सामने पेश किया गया। शास्त्री जो ने आते ही नमस्ते किया। शासक इस पर क्रोध से आग-बबूला होकर बोला—शास्त्री ! तुम हर बात पर शरारत करते हो। यहां एक हाथ से सलाम करने का सरकारी आदेश है, तुमने दोनों हाथों से नमस्ते करके गुस्ताखी की है, जिसकी सजा तुमको शीघ्र ही दी जायेगी। फिर कहा— नयपाल के इतिहास में एक यही व्यक्ति ऐसा है जो तूफान मचाकर उथल पुथल कर सकता है ! तब बिना मुकदमा के ही उनको फांसी की सजा दे दी। जनता विद्रोह न कर दे, इस आशंका से शास्त्री जी को नयपाल से भारत आने वाली सड़क पर खड़े एक वृक्ष से रस्सी बाँध कर रात्रि को बारह बजे फांसी पर लटका दिया गया। आठ घण्टे तक इनकी लाश वृक्ष पर ही लटकती रही। इनकी छाती पर एक तख्ती लिखकर लटका दी गई थी, जिसमें यह वाक्य अंकित था "यह सारे देश को भड़काने वाला क्रान्तिकारियों का गुरु आर्यसमाजी होने के कारण ही ऐसे दण्ड का भागी था।" आर्यवीर की वीरता देखिये, जब ईंटों पर खड़ा करके फाँसी का फन्दा इनके गले में कस दिया तब इस साहसी आर्यवीर ने अपने पैरों से स्वयं ही ईंटों को परे सरकाकर मृत्यु का आलिंगन किया था। फांसी का यह स्थान आज भी उसी सड़क पर भारत नयपाल को सीमा पर 'पचली घाट' नाम से प्रसिद्ध है, जो सभी को प्रेरणा दे रहा है।

२—आज भारत की सरकार देशभक्तों का ताम्रपत्रों द्वारा सन्मान कर रही है, पर जो सच्चे देशभक्त रहे हैं आज वे इस सरकार की दृष्टि में देशभक्त नहीं हैं। आज भी उन देशभक्तों का परिवार उपेक्षित है। कोई उन वीरों को अथवा उन देशभक्तों के परिवारों को यह भी पूछने नहीं आता कि "आपका क्या हाल है। किसी कवि ने ठीक ही कहा है:—

जो वतन पर निसार होते हैं, उनको कफन नहीं होता।
माने जाते हैं वो वतनपरवर, जिनमें दर्दे वतन नहीं होता ॥
उनकी तुरबत पर एक दिया भी नहीं, जिनके खून से जले चिरागे वतन।
जगमगाते हैं मकबरे सदा उनके, जो शहीदों के बेचते थे कफ़न ॥

आर्यसमाज लोहगढ़ अमृतसर के सभासद् एवं भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम के प्रसिद्ध नेता महाशय रतनचन्द जी को आज इतिहास विस्मृत कर रहा है। मैं गत दिनों अमृतसर के जलियां वाले बाग को देखने गया, वहां के व्यवस्थापक से जब मैंने म० रतनचन्द के बारे में जानकारी चाही तो उन्होंने अत्यंत उपेक्षा से उत्तर दिया कि "मुझे पता नहीं"।

जलियां वाले बाग के काण्ड से पूर्व अमृतसर में मार्शल ला के विरोध में एक विशाल जलूस महाशय रतनचन्द जी के नेतृत्व में निकला। इनके साथ डा० सत्यपाल और चौ० बुग्गामल भी थे। जलूस में उपस्थित जब समुदाय ने अंग्रेजों के विरोध में नारा बुलन्द किया तब गोराशाही पुलिस ने झुंझलाकर अत्याचार आरम्भ किये। नवजात बच्चों को सड़कों पर पटक कर मारा जाने लगा। लोगों पर लाठियां बरसाई गई और भी अन्य अत्याचार हुए। पुलिस ने जलूस के नेताओं की धर पकड़ आरम्भ करदी। म० रतनचन्द जी पकड़े गये। इनके घर का सारा सामान पुलिस ले गई। उनकी पत्नी को जिसकी गोदी में नवजात शिशु था घर से धक्के देकर तथा घसीटकर बाहर कर दिया गया पुलिस ने माता की गोद से उस मासूम बच्चे को झटक कर दूर फेंक दिया और इनके मकान पर तालाबन्दी करदी। महाशय जी को हथकड़ी बेड़ियों से जकड़कर ट्रिब्यूनल के सामने पेश किया गया। प्रथम तो फांसी का दण्ड मिला पर पं० मदन मोहन मालवीय और पं० मोतीलाल नेहरू के प्रिवी कौन्सिल में अपील पर फांसी का कारावास के रूप में बदल दिया गया और अण्डमान भेज दिया गया। जब अण्डमान चले गये तब इनकी पत्नी व बच्चे का भार आर्यवीरों ने अपने ऊपर लिया, लड़के को गुरुकुल में पढ़ाया, आज वह लड़का काम पर लग रहा है। १२ फरवरी १९६५ को उनके घर पर पूज्य आचार्य सत्यप्रिय शास्त्री, दयानन्द ब्राह्म महाविद्यालय मिले और उन्होंने महाशय जी से पूछा कि आप "आर्यसमाज की ओर आकृष्ट हुए ?" महाशय जी ने जो अपने सहज स्वभाव में उत्तर दिया वह आज मानव समुदाय हेतु प्रेरणा देने वाला है —"आपने कहा—आर्यसमाज का राष्ट्रीय स्वरूप हो मेरे आकर्षण का कारण था। यही कारण है कि मैं आज भी अपने को आर्यसमाजो तथा दयानन्द का पट्ट शिष्य कहने में गौरव अनुभव करता हूं।" आज जबकि ब्रिटिश काल में एक घण्टे को भी जेल काटने वाले कांग्रेसियों ने राजनैतिक पीड़ित सहायक फण्ड से लाखों के वारे न्यारे किये, तब भी भारत को स्वाधोनता के लिये अपने यौवन को उठती उमंगों को कुचल कर मृत्यु को आमंत्रित करने वाला यह आर्यवीर स्वतन्त्र भारत में निर्धनता को अवस्था में अपने दिन गुजारता हुआ मरा। महाशय जी ने पं० सत्यप्रिय जी शास्त्रो से कहा—"पं० जी ! हमने अपने तप त्याग के चैक भुनाने के लिये अण्डमान की नारकीय यातनायें नहीं सही थीं। परन्तु स्वतन्त्र भारत में इन अहिंसावादी थोथे शासकों ने हमारी कीर्ति को भी चुरा लिया है।" सन् १९५७ में भारत के राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद जब जलियां वाले बाग का उद्घाटन करने आये थे जहां कांग्रेस के तथाकथित नेता और अंग्रेजों के चमचे मंच पर आसीन होकर अपना चित्र खिचवा रहे थे, वहां यह आर्य क्रान्तिकारी वीर दर्शकों के मध्य जमीन पर बैठा था। किसी नेता को इतना नहीं हुआ कि मार्शल ला के सबसे बड़े अभियुक्त एवं देश के सच्चे प्रेमी को मात्र मञ्च पर बिठाने का ही समान दिया जाय। काश ! कि आज को राष्ट्रिय सरकार इनके परिवारों की ओर तनिक ध्यान देकर अपने पापों का प्रयाश्चित कर पाती।

३—भारत को स्वतन्त्र कराने एवं राष्ट्रीय क्षेत्र में कूदकर अपना सर्वस्व अर्पण करने वाले देश के नौनिहालों में हम राजा महेन्द्रप्रताप को पाते हैं। आपने ही अपनी भूमि का एक बड़ा विशाल हिस्सा बाग सहित आर्यसमाज को दान दिया था, जिसमें विश्वविद्यालय वृन्दावन जैसी गुरुकुल एवं विशाल राष्ट्रिय शिक्षा संस्था का निर्माण आर्यसमाज ने किया आर्यसमाज के सन्त स्वामी सोमदेव जिनका शिष्य प्रसिद्ध क्रान्तिकारी रामप्रसाद बिस्मिल था, आप भी उन्हीं स्वामी जी के शिष्यों में एक थे। आगरा की एक सभा में आपने पूज्य स्वामी जी के ओजस्वी विचारों को सुना। आप इनमें बहुत ही प्रभावित हुए। आपने वहीं पर स्वामी जी के चरणों को स्पर्श किया और स्वामी जी को अपनी कोठी पर ले गये। उसी समय से आपने स्वामी जी को अपना गुरु स्वीकार किया। ऐसे ही अलमस्त आर्य संन्यासियों के चरणों में बैठकर आपने स्वाधीनता के तराने सीखे। इसी स्वाधीनता को मस्ती के कारण आपको अपने राज्य से भी हाथ धोने पड़े। अचानक एक दिवस रात्री के बारह बजे आपने देश त्याग का विचार कर लिया। अभी अभी आपका विचार हुआ था। आपने अपनी पत्नी को समझाते हुए कहा—देवी ! हमें अपनी यह जवानी यूंही विषय भोगों में ही समाप्त नहीं कर देनी चाहिये। यह अलभ्य जवानी विषय भोग के लिये नहीं मिली है। आज परतंत्रता की बंधनों से जकड़ी भारत माता देश की जवानियों को निहार रही है। यदि आज मेरी जवानी देश की सेवा में लगे तो निश्चय जानो, मेरा और तुम्हारा दोनों का जन्म सफल है। देवी ने नम्रता से पूछा —मेरे देव बाहर से कब लोटोगे ? उत्तर में उन्होंने कहा—देवी ! पता नहीं कब लौटूं ? जिन्दा लौटता भी हूं कि नहीं। इतना कहकर चल दिये रूपोश होकर भारत के बाहर। राजा साहब निरन्तर ३१ वर्षों तक सोमाप्रान्त में डेरा डाले पड़े रहे और स्वाधीनता हेतु जो तोड़ प्रयत्न करते रहे। आप एक सेना

(शेष पृष्ठ १० का)

सृष्टि सम्वत्

श्री पं० राजवीर शास्त्री, सम्पादक "दयानन्द-संदेश"

निवेदन है कि "सृष्टि सम्वत्" विषय में तीन लेख "परोपकारी" पत्र में पं० काशीनाथ जी शास्त्री, गोंदियां के छपे थे। उनका हमारे पास पत्र आया कि इस विषय में पक्ष विपक्ष के लेख सब एकत्र छप जावें तो विचारकों को सुविधा होगी। इस विषय की उपयोगिता और पं० जी के सुझाव को उत्तम समझ कर सत्यासत्य निर्णयार्थ हमने अपने "दयानन्द सन्देश" के फरवरी अङ्क को "सृष्टि सम्वत् विशेषाङ्क" बनाने का निश्चय किया है। इस विषय में अनेक बार लेख निकल चुके हैं। आर्यसमाज में इस विषय में दो विचार उचित नहीं लगते। सृष्टि सम्वत् १९७२९४९०७३ मानने वाले विद्वानों के लेखों में कुछ प्रश्नों के उत्तर नहीं हैं। अतः सत्यासत्य निर्णयार्थ निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर आवश्यक है।

१. सृष्टि उत्पत्ति और वेदोत्पत्ति काल एक ही है या भिन्न भिन्न ?

२. आपका माना हुआ सृष्टि सम्वत् (१९७२९४९०३) मानव का गिना हुआ है या नहीं ? अर्थात् ऐतिहासिक है या नहीं ?

३. मानवोत्पत्ति से पूर्व का सृष्टि प्रारम्भ होने का काल सप्रमाण कितना है ?

४. ब्राह्म दिन का (१००० चतुर्युगी का) अन्तिम दिन मानव देखेगा उस समय तक मानव और वेद बने रहेंगे महर्षि की इस मान्यता को आप मानते हैं या नहीं ?

५. ऋषि का भुक्त भोग्य काल शब्दों के लिखने का क्या अभिप्राय है ? अथवा क्या ये शब्द निष्प्रयोजन हैं।

६. (क) मन्वन्तरों के बीच के सन्धि काल में यह सृष्टि मानव और वेद रहते हैं या नहीं ? (ख) उस समय सृष्टि की क्या अवस्था होती है ? सप्रमाण उत्तर देने की कृपा करें।

७. मन्वन्तर १४ होते हैं और सष्टि उत्पत्ति और प्रलय समय की दोनों सन्धि आप सृष्टि उत्पत्ति काल में गिन कर १५ गणना क्यों कहते हैं ?

८. (क) आप सन्धि कालों को जोड़कर ९९४ चतुर्युगी को एक सहस्त्र चतुर्युगी बनाते हैं फिर यह क्यों नहीं कहते कि एक कल्प में ९९४ चतुर्युगी और १५ सन्धि होती है। एक सहस्र चतुर्युगी होती है, यह वेद और ऋषियों के ग्रन्थों में क्यों कहा ? (ख) चतुर्युगी शब्द का व्यवहार सत्युग आदि शब्दों के मिलने के कारण हुआ है यदि सन्धि काल अलग होता तो पञ्चयुगी क्यों नहीं कहाती ? (ग) एक चतुर्युगी में कितने वर्ष होते हैं और ९९४ चतुर्युगी में कितने वर्ष होंगे गणित का अवश्य उत्तर दें। (घ) मनु जी ने मन्वन्तर में ७१ चतुर्युगी मानी है वहां सन्धि और सन्ध्यांश का कथन क्यों नहीं ?

इन सब प्रश्नों के उत्तर क्रमशः अवश्य देने की कृपा करें जिससे सत्यासत्य निर्णय में सहायता मिले। इस विषयक जिन विद्वानों के लेख पत्रिकादि में निकले हैं उनके पते एवं लेख देने की कृपा करें। कोई अन्य युक्ति व प्रमाण हो तो वह भी लिखें अन्य विद्वानों से भी इस विषयक लेख के लिए प्रार्थना है आशा है विद्वज्जन सत्यासत्य निर्णय में पूरे सहायक होगें। कृपया लेख और प्रश्नों के उत्तर "दयानन्द-सन्देश" कार्यालय २ एफ कमला नगर दिल्ली—७ के पते पर ३१ दिसम्बर तक भेजने की कृपा करें जिससे पत्रिका में उचित सन्निवेश किया जा सके। ●

डा० महावीर जी आचार्य एम० ए० पी० एच० डी०

पाणिनि की अष्टाध्यायी पर आधुनिक भाषा विज्ञान की दृष्टि से शोधप्रबन्ध प्रस्तुत किया जिस में यह बतलाया कि पाणिनि आज भी भाषा विज्ञानियों को क्या योगदान दे सकते हैं। शोधप्रबन्ध का विद्वानों तथा विज्ञान के क्षेत्र में भरपूर आदर हुआ। दिल्ली विश्वविद्यालय ने उसी समय से इन्हें पाणिनि पतञ्जलि आदि वैयाकरणों के ग्रन्थों पर शोध करने वाले शोधछात्रों का निर्देशक नियुक्त कर रखा है और एम. ए. के छात्रों को भाषा विज्ञान तथा अष्टाध्यायी आदि पढ़ाने के लिये भी विश्वविद्यालय में सहकृत कर रखा है। हम डा० साहिब को बधाई देते हैं। डा० महावीर साहिब गुरुकुल झज्जर (रोहतक) के उच्चकोटि के स्नातक हैं।

—संपादक

हम एक हैं

कौन कहता है कि हम अलग अलग हैं ? नहीं हम सब आर्य भाई एक हैं। हमारा निराकार ईश्वर पूर्ण है। वह मालिक सर्वशक्तिमान् उसकी प्रजा जीवात्मा व जड़ प्रकृति उसके साथ हमेशा रहते हैं। प्रलय में सूक्ष्म रूप में प्रकृति (परमाणु) व सुषुप्ति दशा में जीव उसी ओंकार प्रभु के साथ रहता है।

वही समय पर प्रकृति से विशाल जगत् बनाकर अपनी महिमा को दर्शाता है। हमको कर्मानुसार शरीर प्रदान कर हमारा उपकार कर हमारी रक्षा किया करता है।

हमारे लिये आदि सृष्टि में ही हमारे धर्म अर्थ काम मोक्ष के साधन रूप चारों वेदों को अग्नि वायु आदित्य अंगिरा नामक ऋषियों के आत्मा में प्रकाशित कर हम सब को ज्ञान प्रदान करता है। हम ही वर्तमान सृष्टि में संसार को ज्ञान दे उनके गुरु कहलाये। अपनी शक्ति का प्रदर्शन कर संसार को सुखी बनाया।

अब हम दुष्ट दुर्योधन की बेईमानी से अपना सर्वस्व खो बैठे। वाम मार्गियों की दुष्टता से अपने वैदिक ज्ञान को भ्रष्ट कर चुके थे। हमने ही अपने स्वार्थ के वशीभूत होकर छुआ छूत जात पांत ऊंच नीच व एक ईश्वर की जगह हजारों देवी देवों की जड़ मूर्ति बना उन पर तन मन धन अर्पण करने लगे थे। हमारा ही एक बेईमान भाई जयचन्द बिना ही सोचे विचारे शाहबुद्दीन गौरी को बुलाकर पृथ्वीराज को पकड़ा कर हमें गुलामी की जंजीरों में जकड़ा दिया। हमारे १० करोड़ भाई मुस्लिम बन हमें ही सताने लगे। अंग्रेज यहां व्यापार को आये व हमारी फूट से लाभ उठा हमारे मालिक बन ईसाइयत का प्रचार करवाय व हमारे एक करोड़ भाई ईसाई बन गये। किन्तु धन्य है एक बालक १४ वर्ष का मूलशंकर ईश्वर की खोज कर अपने जीवन को सच्चाई पर बलिदान कर हमें पुनः हमारा गौरव वेद ज्ञान का शुद्ध भाष्य कर हमें दे गया। व हमारा आर्यसमाज स्थापित कर हमें चक्रवर्ती राज्य करने की योग्यता प्रदान कर गया है। अब हम सब आर्य एक हैं और एक रहेंगे। हां हममें अधिकार लिप्सा हो जाने से व अपने आर्य भाईयों से द्वेष करने से हममें फूट दृष्टिगोचर हो रही है। वह हम निकाल देंगे व एक होकर संसार का कल्याण कर वेदों का डंका बजा सब असत्य व वेद विरुद्ध पंथी को लोगों के हृदय से निकाल एक वैदिक अमृत का पान करा देंगे। इसलिये कौन कहता है कि हम अलग अलग हैं नहीं हम सब एक हैं।

अब हम समस्त आर्य जनता से प्रार्थना करते हैं कि आप लोग अपने नेताओ व विद्वानों को एक जगह प्रेम से बुलाकर उन्हें संगठित करा देवें। आज हमारे बीच ऐसे ऐसे विद्वान् हैं व कार्यकर्त्ता हैं जो संसार भर का वैदिक संदेश देने की शक्ति रखते हैं।

हम इनको प्रेम से संगठित कर ऋषि दयानन्द महाराज के छोड़े अधूरे कार्य को आगे बढ़ाकर संसार में वेदों का डंका बजाकर सुखी बनादें व अपने कर्त्तव्य का पालन कर ऋषि ऋण से अनृण हो जायें।

—गंगाप्रसाद आर्य, अवैतनिक उपदेशक बल्हारशाह (बल्लारपुर), जि० चान्दा (महाराष्ट्र)

(पृ० ९ का शेष)

'आर्य सेना' के नाम से निर्मित कर भारत पर आक्रमण करके भारत को स्वतन्त्र कराना चाहते थे, परन्तु उपयुक्त सहायता की कमी के कारण आप यह योजना क्रियान्वित नहीं कर सके। तत्कालीन शासक अंग्रेजों ने आपको विद्रोही करार देकर आपकी समस्त चलाचल सम्पत्ति को जप्त करलिया। यह है स्वतन्त्र भारत में देशभक्ति का पुरस्कार तथा स्वातन्त्र्य समर में अपने सर्वस्व की आहुति देने वाले आर्यवीरों के अमर बलिदान का मूल्य।

इस प्रकार भारतीय स्वातन्त्र्य संग्राम में अपना सर्वस्व होमने वाले आर्यवीर क्रान्तिकारियों की यदि मात्र नामावली ही सुनाई जाय तो कई पृष्ठ भर सकते हैं। ऐसे अनगिनत स्वतन्त्रता प्राप्ति हेतु अपना जीवन होमने वाले आर्यवीर हैं। जिन्होंने महर्षि दयानन्द एवं आर्यसमाज से ही प्रेरणा लेकर स्वतन्त्रता प्राप्ति अपना जीवन का लक्ष्य बनाया और हंसते हंसते बलिवेदी पर चढ़ गये। प्रस्तुत लेख में मैंने तीन आर्यवीरों के संक्षिप्त परिचय को उद्धरित करने का प्रयास किया है, इस भाव से कि भारतीय इतिहासकार जब भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम का इतिहास लिखें तो ऐसे असंख्य वीरों को अपनी दृष्टि से ओझल न करें। काश ! इतिहासकार इस ओर भी अपनी दृष्टि रखें और निष्पक्षता कायम करें। ●

योगिनी देवी का स्वर्गवास

श्री ब्रह्मचारी सदाराम जी आर्य ग्राम लहारहेड़ी (रोहतक) की पूज्य माता का दिनाङ्क ३. १२. ७३ को लगभग १०० वर्ष की आयु में स्वर्गवास हो गया। अगले दिन प्रातः १० बजे सब सम्बन्धियों तथा पास के गांव नीलोठी, दिसौर खेड़ी, दहकोरा इत्यादि के बहुत से आर्य सज्जनों के पधारने पर वैदिक विधि से दाह संस्कार किया गया जिसमें शरीर के वजन बराबर १ टीन शुद्ध देशी घी और एक बोरी सामग्री की आहुति दी गई।

श्री ब्र० सदाराम जी आर्य ने अपनी पूज्य माता देवी अन्नकौर की पुण्य स्मृति में आर्य कन्या पाठशाला लोहारहेड़ी का मुखद्वार बनवाने का संकल्प किया।

"माता जी के जीवन की कुछ विशेष घटनायें"—

१. वह बहुत ही परोपकार प्रिय थीं, पास पड़ोस की स्त्रियां अपने नन्हें २ बच्चों को उनके पास छोड़ कर खेतों में दिन भर कार्य करती थीं, और माता जी उनको दिन भर अपने घर से दूध पिलाती और उनका स्वच्छता रखती थीं।

२. वह इतनी ईमानदार थी कि पास पड़ोस के घरों की चाबियां भी उन्हीं के पास रहती थीं।

३. योग दर्शन के यम नियमों को वह नाम से भले ही न जानती हों परन्तु जीवन में उनका पालन पूर्णतया करती थी, वह किसी को कठोर वचन नहीं बोलती थी और किसी भी प्राणी को पीड़ा नहीं देती थी।

४. वह कभी झूठ नहीं बोलती थी और सच्चे व्यक्ति का बड़ा हित करती थी।

५. वह चोरी को बहुत बुरा समझती थी, और जब वह सयानी हुई और समझने लगी तब से जीवन भर कभी चोरी नहीं की, बल्कि बच्चों को कोई वस्तु कहीं से पड़ी मिल जाती, और वह घर में ले आते तो वह उस वस्तु को कूँएं पर पानी भरते समय गाँव की स्त्रियों में बता देती थीं, और जिसकी वस्तु, होती थी उसको दे देती थी।

६. उनका स्वभाव झगड़ालू नहीं था वह अपने पड़ोसियों से और कूँआं जोहड़ आदि स्थानों पर कभी झगड़ा नहीं करती थीं, गाँव में उनका सभी छोटे बड़ों के साथ समता का व्यवहार था।

७. माता जी पवित्रता का सदा ही बड़ा ध्यान रखती थी, चूल्हा लीप कर और स्नान करके जीवन बिताती थी।

८. वह अतिथियों की सेवा सत्कार बड़े प्रेम से करती थी, अनेक बार देर से आने पर रात्रि में भोजन बना कर खिलाती थी, विशेष कर गुरुकुल वाले और आर्य समाज के उपदेशक तो उनको बहुत याद करते हैं।

९. धर्म और ईश्वर भक्ति उनकी विशेष रुचि थी, वह सदा ही, गरीबों को भोजन वस्त्र आदि से सेवा करती थी।

१०. वह नित्यप्रति प्रातःसायं आसन पर बैठ कर काफी देर तक प्रभु भजन करती थी।

"योगाभ्यास सम्बन्धी घटनायें"—

माताजी आरम्भ गायत्री मन्त्र और ओ३म् का माला द्वारा जाप करती थी, एक वर्ष पश्चात् जब उनको 'अजपा' जाप सिद्ध हो गया तो उन्होंने माला को छोड़ दिया, माला से वह गिनती करती थी और कई हजार का प्रति दिन जाप करती थी। वह प्रति दिन रात्रि में १-१½ बजे उठ कर नित्य कार्यों से निवृत्त हो अपने ध्यान अभ्यास में बैठ जाती थी, और प्रातः ६ बजे उठती थी। अभ्यास दृढ़ होने पर उनको योगासन और प्राणायाम स्वतः ही होने लग गये थे, जिनसे उनकी झुकी हुई कमर सीधी हो गई। उस समय माताजी सात्विक और अल्पाहार करती थी।

ध्यान अभ्यास के अधिक पक्का होने पर उनको सिद्ध पुरुषों के दर्शन होने लग गये थे, और आखिर में तो खुली आँखों दिन में भी अनेक बार सिद्ध महात्माओं के उनको दर्शन होते थे और उनसे वार्त्तालाप भी होता था। यह अधिकतर उस समय की घटनायें हैं जब माता जी अपने पुत्र ब्र० सदाराम आर्य के पास २/२८ पंजाबी बाग दिल्ली, पूज्य पण्डित भगवद्दत्त जी वैदिकरिसर्चस्कार की कोठी में रहती थी। पूज्य पण्डित जी एवं सारा ही परिवार माता जी का बड़ा आदर करता था, और अपने सम्बन्धी को जब वह ध्यान में बैठी होती थी, तो बड़ी श्रद्धा से उनके दर्शन करवाते थे। उनको माता जी की बहुत सारी घटनाओं का अच्छी तरह ज्ञान है।

अभ्यास काल में माता जी का स्वास्थ्य बड़ा उत्तम हो गया था, यही कारण है कि १०० वर्ष के लग-भग आयु होने पर भी कभी चारपाई पर पेशाब और टट्टी नहीं फिरी, शरीर रोगी नहीं हुआ, ज्वरादि भी उनको नहीं हुआ। अन्त समय में जब वह दूध पी कर लेटी हुई थी, तब बिना किसी प्रकार के कष्ट के बड़ी सुविधा और शान्ति से उनका स्वर्गवास हुआ। भगवान् से प्रार्थना है कि श्री ब्र० सदाराम जी आर्य तथा उनके पारिवारिक जनों, सम्बन्धियों, मित्रों को सान्त्वना देवें और पूज्य माता जी को आत्मा की उत्तम गति प्रदान करें।

—देवकरण वानप्रस्थी
आर्य समाज मन्दिर लोहारहेड़ी
जि. रोहतक (हरयाणा)

हमने स्वयं पंजाब बाग, देहली में कई बार उनको प्राणायाम में और ध्यान में स्थित देखा था। गाँव में ही उनकी वृद्धावस्था में दर्शन किये। दिसम्बर ७३ को मैं जीन्द से चल कर रात्रि के १२ बजे देहली लौटा था। रात्रि में बस के कारण शरीर अस्वस्थ था। मुझे स्वर्गवास की सूचना दोपहर के पश्चात पहुंचाई गई। वरना खेद है उनके दाह कार्य के समय हुंच न सका। मैं आर्य मर्यादा के सभी पाठकों की ओर से श्री ब्रह्मचारी सदाराम जी के स्वस्थ परिवार से शोक संवेद प्रकट करता हूं।

[—जगदेव सिंह सिद्धान्ती शास्त्री—सम्पादक]

आर्य समाज बराड़ (अम्बाला)

१-१-७४ से १३-१-७४ तक वैदिक प्राकृतिक चिकित्सालय का उद्घाटन और यजुर्वेद ब्रह्म पारायण यज्ञ समरोह से मनाया जावेगा। इस अवसर पर आर्यसमाज के अनेक प्रसिद्ध विद्वान् संन्यासी महात्मा उपदेशक पधार रहे हैं। समीपस्थआर्य जन पधार कर शोभा बढ़ावें और सहयोग देवें।

संयोजक—हरिराम आर्य, अधिकारी लोक सम्पर्क विभाग अम्बाला।

हिन्दी प्रेमी केन्द्रीय सरकारी कर्मचारियों से अपील

आप सभी को यह विदित है कि भारत सरकार ने कर्मचारियों को अपना सरकारी कामकाज हिन्दी में करने की छूट काफी समय पूर्व दे दी थी। समय समय पर हिन्दी के प्रयोग को बढ़ाने के लिये विभिन्न आदेश भी जारी होते रहे हैं। जिनके फलस्वरूप अब पहले की अपेक्षा हिन्दी में सरकारी कामकाज अधिक मात्रा में होने लगा है

कर्मचारियों को हिन्दी में काम करने की प्रेरणा देने की दृष्टि से केन्द्रीय सचिवालय हिन्दी परिषद् विगत कई वर्षों से सरकारी कामकाज में हिन्दी के प्रयोग की मात्रा के आधार पर हिन्दी व्यवहार प्रतियोगिता के नाम से एक प्रतियोगिता का आयोजन कर रही है। जिसमें अनेक आकर्षक पुरस्कार आदि दिये जाते हैं। इस वर्ष भी यह प्रतियोगिता १६ अक्तूबर से १५ दिसम्बर ७३ तक की अवधि में आयोजित की गई है। इस दो मास की अवधि में कर्मचारियों के द्वारा हिन्दी में किए गए कार्य की मात्रा के आधार पर कर्मचारियों को विभिन्न पुरस्कार दिए जायेंगे। सभी हिन्दी प्रेमी केन्द्रीय सरकारी कर्मचारियों से सानुरोध प्रार्थना है कि वे जिस काम में भी नियुक्त हों उसी में हिन्दी का प्रयोग करके नियमानुसार अपने प्रतिदिन के काय का विवरण रखते जाएं और बाद में एकत्रित करके परिषद् कार्यालय एक्स वाई ६८, सरोजिनी नगर, नई दिल्ली २३ को भेज दें।

विगत वर्षों में यह देखने में आया है कि इस प्रतियोगिता के आधार पर बहुत बड़ी संख्या में कर्मचारी अपना-अपना सरकारी कामकाज हिन्दी में करते रहे हैं परन्तु या तो वे प्रतिदिन के कार्य का विवरण नियमानुकूल नहीं रख पाते हैं या रखते हैं तो परिषद् को नहीं भेज पाते हैं और इन दोनों ही स्थितियों में उनके द्वारा किया गया कार्य प्रकाश में नहीं आ पाता। जब कष्ट सहकर भी वे सरकारी नीति का अनुपालन करके अपने राष्ट्रीय दायित्व को पूर्ण रूप से निभाने के लिये इतना कार्य करते हैं तो विवरण भेजने में भी पीछे न रहें। इस वर्ष वे सभी अपना-अपना विवरण परिषद् को अवश्य भेजेंगे, ऐसी आशा है। विशेष जानकारी के लिए परिषद कार्यालय से सम्पर्क कर लें।

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब द्वारा प्रकाशित और प्रचारित वैदिक साहित्य

१. बलिदान जयन्ती स्मृति ग्रन्थ—आर्य बलिदानों की गाथा मूल्य ४-५०
२. सोम सरोवर-वेदमन्त्रों की व्याख्या —पं० चमूपति एम. ए. ३-००
३. जीवन ज्योति-वेदमन्त्रों की व्याख्या „ „ ३-००
४. नीहारिकावाद और उपनिषदें „ „ ०-२५
५. Principles of Arya samaj „ „ १-५०
६. Glimpses of swami Daya Nand „ „ १-००
७. पंजाब तथा हरयाणा का आर्य समाज प्रि० रामचन्द्र जावेद २-००
८. वैदिक सत्संग पद्धति सन्ध्या हवनमन्त्र अर्थ रहित विधि १-००
९. वेदाविर्भाव —आर्यमर्यादा का विशेषांक ०-६५
१०. यजुर्वेद अ० ३२ का स्वाध्याय „ „ „ ०-५०
११. वेद स्वरूप निर्णय —पं० मदनमोहन विद्यासागर
१२. व्यवहारभानु —महर्षि स्वामी दयानन्द १-००
१३. स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश— „ „ ०-४०
१४. Social Reconstruction By Budha & Swami Daya Nand By. Pt. Ganga Prasad Upadhya M. A. २-००
१५. Subject Matter of the Vedas By S. Bhoomanad १-००
१६. Enchanted Island By Swami Staya Parkashanand १-००
१७. Cow Protection By Swami Daya Nand ०-१५
१८. वेद में पुनरुक्ति दोष नही है आर्यमर्यादा का विशेषांक २-००
१९. मूर्त्तिपूजा निषेध „ „ ०-५०
२०. धर्मवीर पं० लेखराम का जीवन —स्वामी श्रद्धानन्द १-२५
२१. कुलियात आर्य मुसाफिर प्रथम भाग—पं० लेखराम की पुस्तकों का संग्रह ६-००
२२. „ „ दूसरा भाग „ „ ८-००
२३. मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र —कु० सुशीला आर्या एम. ए. ०-२५
२४. योगीराज कृष्ण „ „ „ ०-१५
२५. गोकरुणा निधि —स्वामी दयानन्द सरस्वती ०-२०
२६. आर्यसमाज के नियम उपनियम ०-१०
२७. आर्य नेताओं के वचनामृत —साईंदास भण्डारी ०-१२
२८. कायाकल्प —स्वामी समर्पणानन्द सरस्वती १-५०
२९. वैदिक धर्म की विशेषतायें —पं० हरिदेव सिद्धान्त भूषण ०-१५
३०. स्वतन्त्रानन्द लेखमाला —स्वा० स्वतन्त्रानन्द जी की जीवनी तथा उनके व्याख्यान १-२५
३१. आत्मानन्द लेखमाला—स्वामी आत्मानन्द सरस्वतीकी जीवनी १-२५
३२. आर्यसमाज के सदस्यता फार्म —सैंकड़ा १-५०
३३. महान् दयानन्द —पं० शिवदयालु आर्य ०-७५
३४. दयानन्द चरित्र —पं० देवेन्द्रनाथ १-५०
३५. वैदिक सिद्धान्त —पं० चमूपति एम० ए० १-००
३६. मुक्ति के साधन —पं० मदनमोहन विद्यासागर १-००
३७. महापुरुषों के संग —श्री सत्यव्रत १-५०
३८. सुखी जीवन —श्री सत्यव्रत २-००
३९. एक मनस्वी जीवन —पं० मनसाराम वैदिक तोप १-५०
४०. छात्रोपयोगी विचारमाला —जगदेवसिंह सिद्धान्ती १-५०
४१. स्त्री शिक्षा —पं० लेखराम आर्य मुसाफिर ०-६०
४२. विदेशों में एक साल —स्वामी स्वतन्त्रानन्द २-२५
४३. वेद विमर्श —पं० भगवद्दत्त वेदालंकार २-००
४४. वेद विमर्श —पं० वेदव्रत शास्त्री २-००
४५. आसनों के व्यायाम „ „ „ १-००
४६. महर्षि जीवन गाथा —स्वामी वेदानन्द वेदवागीश २-२५
४७. मांस मनुष्य का भोजन नहो—स्वामी ओमानन्द सरस्वतो १-००
४८. वीर भूमि हरयाणा „ „ „ ४-००
४९. चोटी क्यों रखें —स्वामी ओमानन्द सरस्वतो ०-५०
५०. हमारा फाजिल्का —श्री योगेन्द्रपाल १-५०
५१. सत्संग स्वाध्याय —स्वामी ओमानन्द सरस्वती ०-५०
५२. जापान यात्रा „ „ „ ०-७५
५३. भोजन „ „ „ ०-७०
५४. ऋषि रहस्य —पं० भगवद्दत्त वेदालंकार २-००
५५. महर्षि का विष पान—अमर बलिदान—राजेन्द्र जिज्ञासु ०-६५
५६. मेरा धर्म —आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति ७-००
५७. वेद का राष्ट्रिय गीत „ „ „ ५-००
५८. ईशोपनिषद्भाष्य —इन्द्र विद्या वाचस्पति २-००
५९. पं० गुरुदत्त विद्यार्थी जीवन —डा० रामप्रकाश १-३०
६०. वैदिक पथ —पं० हरिदेव सिद्धान्त भूषण २-००
६१. वैदिक प्रवचन —पं० जगत्कुमार शास्त्री २-२५
६१. ज्ञानदीप —पं० हरिदेव सिद्धान्त भूषण २-००
६२. आर्यसमाज का सैद्धान्तिक परिचय—स्वा० अनुभवानन्द ०-५५
६३. The Vedas ०-५०
६४. The Philosophy of Vedas —Swami Satya Parkash ०-५०
६६. ईश्वर दर्शन पं० जगत्कुमार शास्त्री १-००
६७. श्वेताश्वरोपनिषद् „ „ ४-००
६८. ब्रह्मचर्य प्रदीप „ „ ४-००
६९. भगवत प्राप्ति क्यों और कैसे स्वा० सत्यानन्द ०-६०
७०. आर्य सामाजिक धर्म „ „ ०-७५
७१. बोध प्रसाद —स्वामी श्रद्धानन्द ०-२५
७२. ऋषि दर्शन —पं० चमूपति एम. ए. ००-२५
७३. ऋषि का चत्मकार „ „ „ ००-१२
७४. वैदिक जीवन दर्शन „ „ „ ००-२०
७५. वैदिक तत्व विचार „ „ „ ००-५०
७६. देव यज्ञ रहस्य „ „ „ ००-३५
७७. स्वतन्त्रानन्द संस्मरणांक १-५०

सब पुस्तकों के प्राप्ति स्थान—

१. आर्यप्रतिनिधि सभा पंजाब, गुरुदत्त भवन, जालन्धर (४२५०) टेलीफोन
२. „ „ „ दयानन्द मठ रोहतक (हरयाणा) „ (५७४)

आर्य जनता से महात्मा आनन्द स्वामी जी सरस्वती की अपील

स्वामी रामेश्वरानन्द जी सरस्वती को पूरा समर्थन दिया जाये

आर्यसमाज के सर्वमान्य संन्यासी महात्मा आनन्द स्वामी जी ने अपने एक वक्तव्य में आर्य जनता से अपील की है कि वह अपनी शक्ति से आर्यसमाज के सर्वोपरि हित के लिये स्वामी रामेश्वरानन्द जी का समर्थन करें।

आपने अपने एक वक्तव्य में कहा है कि स्वामी इन्द्रवेश जी के विचार वैदिक विचारधारा के विरुद्ध और नक्सलवादियों के निकट हैं अतः नक्सलवाद के विष प्रभाव से आर्यसमाज को बचाने के लिये फूट पार्टीबाजी और झगड़ालू तत्त्वों को समाप्त करने के लिये स्वामी रामेश्वरानन्द जी को आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का प्रधान निर्वाचित कराया जाए।

आपने कहा कि अच्छा तो यही था कि उन्हें पूर्व निश्चयानुसार सर्वसम्मति से प्रधान निर्वाचित किया जाता किन्तु स्वामी इन्द्रवेश के वचन भंग के कारण चुनाव की अशोभनीय स्थिति खड़ी हो गई है। अब उचित और आवश्यक है कि स्वामी रामेश्वरानन्द जी को सभी का पूर्ण समर्थन प्राप्त हो।

मेरा हार्दिक आशीर्वाद उनके साथ है।

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के लिए जगदेवसिंह सिद्धान्ती शास्त्री द्वारा सैनी प्रिंटर्स पहाड़ी धीरज, देहली में मुद्रित और १५ हनुमान् रोड, नई दिल्ली—१ से प्रकाशित

१६ पौष सं० २०३० वि०, दयानन्दाब्द १४९,
तदनुसार ३० दिसम्बर १९७३ रविवार
सृष्टि सं०-१९६०८५३०७३

वर्ष ६ वार्षिक शुल्क स्वदेश में १०) रुपये
अंक ५ „ „ विदेश में २०) रुपये
एक प्रति का मूल्य ००-२० पैसे

सम्पादक—जगदेवसिंह सिद्धान्ती शास्त्री पूर्वलोकसभा सदस्य (फोन ५१२१६३)

वेदमन्त्रार्थ-प्रवचन

अस्यादौ विद्वत्स्त्रीपुरुषौ किं कुर्य्यातामित्युपदिश्यते ॥

इस सूक्त के प्रथम मन्त्र में विद्वान् स्त्री पुरुष क्या करें यह उपदेश किया गया है ॥

आ वां रथो अश्विना श्येनपत्वा सुमृळीकः स्ववां यात्वर्वाङ् ।
यो मर्त्यस्य मनसो जवीयान् त्रिबन्धुरो वृषणा वातरंहाः ॥

—ऋ० १.११८.१

पदार्थः—(आ) (वाम्) युवयोः (रथः) (अश्विना) शिल्पविदौ दम्पती (श्येनपत्वा) श्येन इव पतति (सुमृडीकः) सुष्ठुसुखयिता (स्ववान्) प्रशस्ताः स्वे भृत्याः पदार्था वा विद्यन्ते यस्मिन् (यातु) गच्छतु (अर्वाङ्) अधः (यः) (मर्त्यस्य) (मनसः) (जवीयान्) (त्रिबन्धुरः) त्रयो बन्धुरा अधोमध्योर्ध्वं बन्धा यस्मिन् (वृषणा) बलिष्ठौ (वातरंहाः) वात इव रंहो गमनं यस्य ॥

अन्वयः—हे वृषणाऽश्विना वां यस्त्रिबन्धुरः श्येनपत्वा वातरंहा मर्त्यस्य मनसो जवीयान् सुमृडीकः स्ववान् रथोऽस्ति सोऽर्वाङ्ङायातु ॥

भावार्थः—स्त्रीपुरुषौ यदेदृशं ज्ञानं निर्मायोप युञ्जीयातां तदा किं तत्सुखं यत् साद्धुं न शक्नुयाताम् ॥

भाषार्थः—हे (वृषणा) बलवान् (अश्विना) शिल्प कामों के जानने वाले स्त्रीपुरुषो (वाम्) तुम दोनों को (यः) जो (त्रिबन्धुरः) त्रिबन्धुर अर्थात् जिसमें नीचे बीच में और ऊपर बन्धन हों (श्येनपत्वा) बाज पखेरू के समान जाने वाला (वातरंहाः) जिसका पवन के समान वेग (मर्त्यस्य) मनुष्य के (मनसः) मन से भी (जवीयान्) अत्यन्त धावने और (सुमृडीकः) उत्तम सुख देने वाला (स्ववान्) जिसमें प्रशंसित भृत्य वा अपने पदार्थ विद्यमान हैं ऐसा (रथः) रथ है वा (अर्वाङ्) नीचे (आ, यातु) आवे ॥

भावार्थ—स्त्री पुरुष जब ऐसे ज्ञान को उत्पन्न कर उपयोग में लावें तब ऐसा कौन सुख है जिसको वे सिद्ध नहीं कर सकें ॥

—(ऋषिदयानन्द-भाष्य)

सत्यार्थप्रकाश का ११ वां समुल्लास

(नवीन) अधिष्ठान के विना अध्यस्त प्रतीत नहीं होता जैसे रज्जू न हो तो सर्प का भी भान नहीं हो सकता जैसे रज्जू में सर्प्प तीन काल में नहीं है परन्तु अन्धकार और कुछ प्रकाश के मेल में अकस्मात् रज्जू को देखने से सर्प का भ्रम होकर भ्रम से कंपता है जब उसको दीप आदि से देख लेता है उसी समय भ्रम और भय निवृत्त हो जाता है वैसे ब्रह्म में जो जगत् की मिथ्या प्रतीति हुई वह ब्रह्म के साक्षात्कार होने में जगत् की निवृत्ति और ब्रह्म की प्रतीति हो जाती है जैसी कि सर्प की निवृत्ति और रज्जू की प्रतीति होती है। (सिद्धान्ती) ब्रह्म में जगत् का भान किसको हुआ ? (नवीन) जीव को (सिद्धान्ती) जीव कहां से हुआ ? (नवीन) अज्ञान से (सिद्धान्ती) अज्ञान कहां से हुआ और कहां रहता है ? (नवीन) अज्ञान अनादि और ब्रह्म में रहता हैं। (सिद्धान्ती) ब्रह्म में ब्रह्म का अज्ञान हुआ वा किसी अन्य का और वह अज्ञान किसको हुआ ? (नवीन) चिदाभास को। (सिद्धान्ती) चिदाभास का स्वरूप क्या है ? (नवीन) ब्रह्म, ब्रह्म को ब्रह्म का अज्ञान अर्थात् अपने स्वरूप को अपने आप ही भूल जाता है। (सिद्धान्ती) उसके भूलने में निमित्त क्या है ? (नवीन) अविद्या। (सिद्धान्ती) अविद्या सर्वव्यापी सर्वज्ञ का गुण है वा अल्पज्ञ का ? (नवीन) अल्पज्ञ का। (सिद्धान्ती) तो तुम्हारे मत में विना एक अनन्त सर्वज्ञ चेतन के दूसरा कोई चेतन है वा नहीं ? और अल्पज्ञ कहां से आया ? हां, जो अल्पज्ञ चेतन ब्रह्म से भिन्न मानो तो ठीक है जब एक ठिकाने ब्रह्म को अपने स्वरूप का अज्ञान फैल जाय जैसे शरीर में फोड़े की पीड़ा सब शरीर के अवयवों को निकम्मा कर देती है। इसी प्रकार ब्रह्म भी एक देश में अज्ञानी और क्लेशयुक्त हो तो सब ब्रह्म भी अज्ञानी और पीड़ा के अनुभव युक्त हो जाय ॥

—(ऋषिदयानन्द)

पितृयज्ञविषयः

अब तीसरा पितृयज्ञ कहते हैं। उसके दो भेद हैं। एक तर्पण और दूसरा श्राद्ध। उनमें से जिस कर्म करके विद्वान् रूप देव, ऋषि और पितरों को सुख युक्त करते हैं सो तर्पण कहाता है तथा जो उन लोगों की श्रद्धापूर्वक सेवा करना है उसी को श्राद्ध जानना चाहिये। यह तर्पण आदि कर्म विद्यमान अर्थात् जीते हुए जो प्रत्यक्ष हैं उन्हीं में घटता है मरे हुओं में नहीं। क्योंकि मृतकों का प्रत्यक्ष होना असम्भव है। इसलिये उनकी सेवा नहीं हो सकती। तथा जो उनके लिये कोई कोई पदार्थ दिया चाहे वह भी उनको नहीं मिल सकता। इससे केवल विद्यमानों की ही श्रद्धापूर्वक सेवा करने का नाम तर्पण और श्राद्ध वेदों में कहा है क्योंकि सेवा करने योग्य और सेवा करने वाले इन दोनों ही के प्रत्यक्ष होने में यह सब काम हो सकता है दूसरे प्रकार से नहीं। सो तर्पण आदि कर्म से सत्कार करने योग्य तीन हैं देव, ऋषि और पितर। देवों में प्रमाण (पुनन्तु०) हे जातवेद परमेश्वर ! आप सब प्रकार से मुझे पवित्र कीजिये और जो आपके उपासक आपकी आज्ञा पालने हैं अथवा जो कि विद्वान् ज्ञानी पुरुष कहाते हैं वे मुझको विद्या दान से पवित्र करें और आपके दिये विशेष ज्ञान वा आपके विषय के ध्यान से हमारी बुद्धियां पवित्र हों। तथा (पुनन्तु विश्वा भूतानि) सब संसारी जीव आपकी कृपा से पवित्र होकर आनन्द में रहें। यजु० अ० १९। मं० ३९ ॥ (इयं वा०) दो लक्षणों के पाये जाने से मनुष्यों को दो संज्ञा होती हैं। अर्थात् एक देव और दूसरी मनुष्य। उनमें भेद होने के सत्य और झूठ दो कारण हैं। (सत्यमेव) जो कोई सत्य भाषण, सत्य स्वीकार और सत्य कर्म करते हैं वे देव तथा जो झूंठ बोलने, झूंठ मानते और झूंठ कर्म करते हैं वे मनुष्य कहाते हैं। इसलिये झूठ को छोड़कर सत्य को प्राप्त होना सबको उचित है। इस कारण से बुद्धिमान् लोग निरन्तर सत्य ही कहे, माने और करें। क्योंकि सत्यव्रत आचरण करने वाले जो देव हैं वे तो कीर्त्तिमानों में भी कीर्त्तिमान् होके सदा आनन्द में रहते हैं परन्तु इससे विपरीत चलने वाले मनुष्य दुःख को प्राप्त होकर सब दिन पीड़ित ही रहते हैं इससे सत्यधारी विद्वान् ही 'देव' कहाते हैं ॥ शत० कां० १। अ० १। ब्रा० १। कं० ४, ५ ॥ शत० कां० ३। अ० ७। ब्रा० ३। कं० १० ॥ (तं यज्ञं) इस मन्त्र का व्याख्यान सृष्टि विद्याविषय में कर दिया है (अथ यदेवा०) जो सब विद्याओं को पढ़ के औरों को पढ़ाता है वह ऋषि कर्म कहाता है। और उससे जितना कि मनुष्यों पर ऋषियों का भरण हो उस सबकी निवृत्ति उनकी सेवा करने से होती है ॥ यजु० ३१-९ ॥ इससे जो नित्य विद्या दान, ग्रहण और सेवा कर्म करता है वही परस्पर आनन्द कारक है और यही व्यवहार (निधिगोप०) अर्थात् विद्या का रक्षक है ॥ शत० कां० १। अ० ७। ब्रा० २। कण्डिका ३॥ (अथार्षेयं प्रक्र०) विद्या पढ़के सबको पढ़ाने वाले ऋषियों और देवों की प्रिय पदार्थों से सेवा करने वाला विद्वान् बहु पराक्रमयुक्त होकर विशेष ज्ञान को प्राप्त होता है। इससे आर्षेय अर्थात् ऋषि कर्म को सब मनुष्य स्वीकार करें ॥ शत० कां० १। अ० ४। ब्रा० २। कं० ३ ॥

—(ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका)

आर्यसमाज के निःस्वार्थ सेवी एवं दृढ़व्रती बलिदानियों के कतिपय जीवन संस्मरण :-

नभोमंडल के ये सितारे

(ले० पं० श्री वासुदेव शर्मा 'वसु' विद्यावाचस्पति, स्नातक द० ब्रा० महाविद्यालय हिसार, पुरोहित आ० स० मा० टा० रोहतक)

१. मुलतान में प्लेग फैल गई। प्रत्येक स्थान पर आर्यसमाज के नि.स्वार्थ सेवक पहुंच गये। मुलतान में प्लेग का वेग बढ़ा तो नगर के कई भाग वीरान हो गये। आर्य समाज के महान् आत्मा पं० रलाराम जी के साथ कई आर्यवीर वहां राहत के कार्य में लगे हुए थे। श्री खुशहालचन्द जी (आद्य महात्मा आनन्द स्वामी) भी उन्हीं के साथ उन दिनों थे। चारों ओर हो नगर सूना लगता था। प्लेग के भय ने लोगों को इतना आतंकित किया कि पति पत्नी को छोड़कर चला गया, पत्नी पति को। भाई ने भाई को छोड़ दिया और पुत्र ने पिता को। एक मुहल्ले से कुछ सेवक यह सूचना लाये कि एक लाला जी अमुक स्थान पर रुग्ण हैं, प्लेग हो गई है। लाला जो को छोड़कर घर के सभी लोग इसलिए भाग गये हैं कि कहीं हमें भी प्लेग न हो जाय। उन्हीं दिनों पादरी स्टोक्स भी वहाँ कार्य कर रहे थे। पं० रलाराम जी ने जब लाला जी का यह हाल सुना तो अपने मित्रों से बोले—"चलो हम लाला जी के पास चलें।" प० रलाराम जी के साथ कुछ आर्यवीर जब लाला जो के घर पर पहुँचे तो देखा कि बेचारे लाला जी की दशा अतीव चिन्ताजनक है। पं० रलाराम जी को प्लेग के रोगी देखते-देखते पर्याप्त अनुभव हो गया था। लाला जो की गिल्टी बहुत पक गई थी। वह चमक रही थी। पं० जी उसे देखकर बोले—"बिना आपरेशन के यह व्यक्ति बचेगा नहीं। दौड़कर जाओ और किसो डाक्टर को बुला लाओ।" लाला खुशहालचन्द जी ने कहा—पं० जी! इस समय डाक्टर कहाँ से मिलेगा? पं० जी ने कहा—यदि डाक्टर नहीं तो किसी नाई को ही बुला लाओ। पुनः लाला खुशहालचन्द जी ने कहा—"पंडित जी, इस समय कोई नाई भी नहीं मिलेगा। सब लोग तो नगर छोड़कर भाग गये हैं यहाँ आयेगा ही कौन?" पं० जी ने कहा—अच्छा भाई घर में ही देखो, कोई चाकू छुरी मिल जाय। आर्यवीरों ने घर में सर्वत्र खोजा, पर वहाँ चाकू या छुरी भी नहीं मिलो। अंततः आर्यसमाज के इस निष्काम सेवक ने कहा—"अच्छा स्प्रिट तो तुम्हारे पास है। इससे इस गिल्टी को स्वच्छ कर दो।" एक आर्यवीर ने रुई को स्प्रिट में भिगोया गिल्टी को साफ कर दिया। पंडित रलाराम जी की दाढ़ी पर्याप्त लम्बी थी। प्रथम उन्होंने एक हाथ मे अपनी लंबी दाढ़ी को ठीक किया और नीचे झुके। अपने दांतों से ही उन्होंने उस गिल्टी को काट दिया और फिर दबाकर फोड़ के समस्त मवाद को बाहर निकाला। ऐसे थे निष्काम सेवा की भावना वाले वैदिक धर्म रूपी स्तम्भ के नीव के पत्थर।

२. यह घटना अभी अभी रोहतक के प्रसिद्ध आर्यसमाज के कार्यकर्ता एवं आर्य पारिवारिक सत्संग सभा के प्रधान लाला गणेश दास जो [illegible] की है। परिवार के सभी सदस्य कट्टर पौराणिक, आस पास के रहने वाले तथा पड़ौसी भी आर्य समाज एवं दयानन्द के कट्टर विरोधी। घर में मात्र एक व्यक्ति वेद का मानने वाला एवं आर्य। अकस्मात् प्लेग की एक लहर चली और आर्यवीर को जीवन संगिनी पत्नी की मृत्यु हो गई। पास पड़ोस एवं जात बिरादरी के लोग एकत्रित हुए। सबने एक स्वर से कहा कि यदि अन्तिम संस्कार सनातनी विधि से (पौराणिक) होगा, तब हम सब अर्थी उठा कर श्मशान जा सकते हैं, अन्यथा कोई साथ नहीं जायगा। आर्यवीर अड़ गया। दृढ़ता भरे स्वरों में अपने समस्त जात बिरादरी वालों के ललकारते हुए कहने लगा—आप हमारे साथ दाह संस्कार में जायें वा न जायें अन्तिम संस्कार वैदिक रीति से ही होगा। अब एक ओर परिवार के सभी सदस्य, गांव एवं मुहल्ले के सभी लोग और एक ओर यह दयानन्द का सैनिक आर्यवीर। दोनों में ठन गई। शाम होने को आई लाश पड़ो है, पर कोई झुकने का नाम नहीं लेता था। अंततः वह आर्य वीर 'उठा सर्वप्रथम श्मशान में उसने समिधा, घी, सामग्री एवं अन्य आवश्यक सामान पहुँचाया। फिर घर आकर एक हाथ में 'संस्कार विधि' ली और अपने कंधे पर अपनी पत्नी की लाश को डाल एक हाथ से उसे पकड़ वैदिक मान्यताओं पर दृढ़ विश्वास रखने वाला यह दयानन्द का दीवाना चल पड़ा वेदमंत्रों का उद्घोष करते हुए अंतिम संस्कार करने श्मशान की ओर दुनियाँ ने दांतों तले अपनी ऊंगली दबाकर आर्यवीर के इस दृश्य को देखा। एक ओर सारा गांव एक ओर यह अकेला वीर, पर इसने आर्य सिद्धान्त का त्याग नहीं किया। क्या आर्यवीर के इस अनुपम साहस के द्वारा उन तथाकथित आर्यों को एक चुनौती नहीं है? जो बात बात पर आर्य सिद्धान्त का त्याग करते हैं और मानों ऋषियों के गले पर छुरी चलाते हैं। मुझे खेद है कि मैं उस आर्यवीर का नाम विस्मृत कर गया।

३. यह घटना मान्य प्राध्यापक श्री राजेन्द्र 'जिज्ञासु' अबोहर ने २. १. १९७२ को अपने एक व्याख्यान में आर्य समाज हिसार में बताई। श्री भाई वंशीलाल जी वकील अभी नये-नये वैदिक धर्मी बने थे। एक दिन घर में महर्षि दयानन्द की जय बोल दी। घर के सभी सदस्य पौराणिक विचारों के थे। उनके पिता जी ऋषि दयानन्द के कट्टर शत्रु और पौराणिक थे, अपने पुत्र द्वारा लगाये गये ऋषि के जय घोष को सहन न कर सके। अभी भो कई ऐसे पौराणिक गृह है जहाँ कब्रों की पूजा, गंडे ताबीज, नास्तिकता आदि चल सकते हैं, वेद शास्त्रों की निन्दा भी धर्म विरुद्ध नहीं, पर दयानन्द का नाम लेना महापाप जाना जाता है। भाई जी के पिता श्री भोलानाथ जी ऋषि दयानन्द की जय सुन कर बड़े तिल मिलाए और अपने पुत्र को आँख दिखाते हुए कहा घर में ऐसा नहीं चलेगा। हठ वाले पिता का पुत्र भी तो हठी ही था, पुनः ऋषि दयानन्द की जय सारे घर में गुञ्जा दी। पिता ने इस पर क्रोधित होकर जूता दे मारा। जूता खाकर पुत्र ने और तेजी से ऋषि दयानन्द को जय बोली। पिता ने फिर जूता मारा। पुत्र ने पुनः ऋषि दयानन्द का जय घोष किया और अपने पौराणिक पिता की चुनौती स्वीकार को फिर क्या था-पिता पुत्र का competiton आरम्भ हो गया। पुत्र का जय घोष और पिता का पुरस्कार रूप में जूता। अंततः जब भाई जी की माता जी को यह पता लगा तो वह भागी-भागी आई और पुत्र को खींच कर अलग किया, तब कहीं जाकर यह कर्म बंद हुआ। भोले भोलानाथ को तब क्या पता था कि यही वंशीलाल एक दिन महर्षि दयानन्द की सेना का सेनापति बन कर तेरे नाम को अमर बना देगा।

४. भाई वंशीलाल श्याम लाल वैदिक नियमों के पालन में एवं अपने दृढ़ निश्चय के कितने पक्के थे, इसके लिए निम्न घटना पठनीय है। भाई वंशी लाल श्यामलाल छोटी आयु में ही पितृस्नेह से वंचित हो गये। परिवार की देख भाल इनके ननिहाल वाले किया करते थे। भाई जी की छोटी बहन गंगाबाई के विवाह की चर्चा चली। दोनों भाइयों ने यत्न किया कि कोई आर्यवर मिले। यत्न किया और धारूर में एक नारायण प्रसाद नामक आर्य युवक खोज लिया। विवाह का सम्पूर्ण दायित्व भाई जी के मामा श्री दत्तात्रेय प्रसाद वकील गुलबर्गा पर था। उस समय इनके मामा जी का विचार पौराणिक था। विवाह संस्कार भी गुलबर्गा में ही होना था। सब सगे सम्बन्धियों ने एक स्वर से कहा कि विवाह पौराणिक रीति से होगा इन दोनों भाईयों ने कहा कि विवाह वैदिक विधि से होगी। दोनों भाई अभी युवक ही थे। अंततः भाई जो के मामा माणिक प्रसाद व दत्तात्रेय प्रसाद की बात मानो गई। निश्चित हो गया कि विवाह पौराणिक पद्धति से होगा। श्याम लाल जी व वंशीलाल जी ने इसका कड़ा विरोध किया और अपनी छोटी एवं प्रिय बहन के विवाहोत्सव में सम्मिलित नहीं हुए, उस दिन ये दोनों दृढ़ प्रतिज्ञ गुलबर्गा भी नहीं गये। आज इस घटना के मूल्य को आंकना बड़ा कठिन है। इन्हीं दृढ़ भावना के धनी दोनों भाइयों ने आर्य समाज एवं वैदिक धर्म के प्रचार-प्रसार को बल प्रदान किया उसका सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है।

वैदिक धर्म हित अपना सर्वस्व होमने वाले आर्यवीरों की जीवनियों का यदि हम सूक्ष्मता पूर्वक अनुशीलन करें तो ऐसी हो असंख्य घटनाएँ प्रकाश में आ सकती हैं। आज अक्सर आर्य समाज के पवित्र मंचों से भूत-प्रेत, मिथ्या एवं मनघड़ंत गप्पें एवं सिद्धान्तहीन किस्से कहानियों को उदाहरण के तौर पर प्रचारक एवं भजनोपदेशक लोग कहते सुने जाते हैं, जिनका वास्तविक कोई आधार नहीं होता, क्या ही उत्तम होता यदि आर्यउपदेशक, प्रचारक एवं भजनोपदेशक लोग ऐसे अमर बलिदानी वीरों, निष्कामसेवियों एवं अपने सर्वस्व की आहुति दाताओं के जीवनों में घटित गाथाओं को अपने प्रवचनों एवं उपदेशों, लेखों आदि में स्थान देते। इससे जहाँ पर जनता में आर्य नेताओं के जीवन से प्रेरणा ग्रहण करने की अभिलाषा जागृत होगी वहाँ वास्तव में वेद एव धर्म के प्रति श्रद्धा भी अधिकाधिक बढ़ेगी। इसी अभिलाषा को लेकर मैंने यह लेख लिखा है, इसके पूर्व भी इसी प्रकार के कई लेख मेरे प्रकाशित हो चुके हैं। आशा है सभी लाभ उठावेंगे।●

२३ दिसम्बर को जिनका बलिदान दिवस है :—

अमर शहीद स्वामी श्रद्धानन्द जी को श्रद्धाञ्जलि

(श्री वासुदेव शर्मा 'वसु' आर्य पुरोहित आर्यसमाज माडलटाऊन रोहतक)

श्रद्धा और आनन्द के धन थे स्वामी श्रद्धानन्द महान्।
अर्पित कर रहा उन्हें श्रद्धाञ्जलि प्रेम से मिलकर सकल जहान ।।
ऊँच नीच का भेद न माना, दलितों से था उनको प्यार।
कर्मयोग और निर्भयता का, था जिनमें अद्भुत संचार।
निकला था ले चक्र शुद्धि को, निज जीवन के व्रत को धार।
मार्ग में आने लगे विपद पर, मन में कभी न मानी हार।
पतितों के जीवन की निशा में, जिसने था फिर किया विहान।
अर्पित कर रहा उसी देव को, श्रद्धांजलि मिल सकल जहान ।।१।।
दयानन्द की सेना का था, वह अनुपम इक सेनानी।
किया बलिदान धर्महित ऐसा, नहीं विश्व में है सानी।
एकाकी था जीवन में पर, वेद विरुद्ध बातें न मानी।
केवल कथनी नहीं थी उनमें, दे दी थी सारी जिन्दगानी।
तन भी धन भी सभी दे दिया, ऐसे थे नरपुंग महान्।
अर्पित कर रहा उसी संत को श्रद्धांजलि मिल सकल जहान ।।२।।
देखा भारतवासी सारे, अंग्रेजों के हो रहे दास।
स्वाभिमान सब मिट रहा अपना, नहीं रही जीवन की आस।
भारत की यह हीन अवस्था, देख के करते सब परिहास।
दिन प्रतिदिन हो रहा यहाँ पर आर्य संस्कृति का ही नाश।
आर्य संस्कृति का बना रक्षक, आर्य जाति का जीवन प्राण।
अर्पित कर रहा उसी देव को, श्रद्धांजलि मिल सकल जहान ।।३।।
ऋषियों की शिक्षा हो जग में, वेद की ज्योति जले यहाँ।
हर घर में हो गान वेद का, वेद ऋचा से गूंजे जहां।
रग रग में हो वेद संस्कृति, हर बच्चा फिर बने महाँ।
भारत गौरव गूंजे फिर से, लोहा माने सकल जहां।
गुरुकुल को खोला उसने, ले स्वप्न यही वह संत महान।
अर्पित कर रहा उसी देव को, श्रद्धांजलि मिल सकल जहान ।।४।।
स्वतंत्रता का विगुल देश में, जब था चारों ओर बजा।
देश धर्म के लिए अनेकों, वीरों का था रक्त बहा।
खोल के सीना चला था आगे, नहीं था अत्याचार सहा।
'पहले दागो गोली मुझको', निर्भय होकर उसने कहा।
झुकी संगीने स्वामी के आगे, खड़े फिरंगी जिनको तान।
अर्पित कर रहा उसी वीर को, श्रद्धांजलि मिल सकल जहान ।।५।। ●

समाज सुधार २८ खापों का विराट् सम्मेलन स्थान मोहम्मदपुर रार्यसिंह (मुजफ्फरनगर)

विवाद—वुडिने वालों की लड़की छोड़ने पर गठवाला तथा लाटान खापों में विवाद उत्पन्न हुआ था।

१. ३० सितम्बर १९७३ ई० के आर्यमर्यादा में जो न्याय प्रकाशित हुआ था। इस न्याय को भंग करने के पश्चात्।

२. ९ दिसम्बर सन् १९७३ ई० को २८ खापों का विराट् सम्मेलन चौधरी शेरसिंह मलिक तथा बाबा भलेराम जी हुलाना की अध्यक्षता में ५ हजार व्यक्तियों ने भाग लेकर उपरोक्त विवाद की तह में पहुंचकर अत्यन्त छानबीन के पश्चात् निम्नलिखित निर्णय को घोषित किया गया को उसी समय से प्रयोग में लाया गया।

न्याय—१. लड़के ब्रह्मसिंह वर ने ५ हजार रुपया लड़की को दिया नकद जुर्माना।

२:—१००, ब्रह्मसिंह ने प्रति मास लड़की के घर रहने तक दे

३:—ब्रह्मसिंह पुत्र बीरबल स्थान मोहम्मदपुर रायसिंह का वि बन्द है सब खापों में।

कार्यक्रम—१. सर्वप्रथम अध्यक्ष का चुनाव किया गया।

२. मन्त्री सर्वखाप पंचायत का प्रभावशाली भाषण हुआ।

३. अतर सिंह दोघट को संचालक नियुक्त किया इन्होंने आसन ग्रहण कर रोचक भाषण दिया।

४. नायब सूबेदार लालसिंह शोरम ने उपरोक्त विवाद के समाधान में मनुस्मृति ऋग्वेद-रामायण तथा सत्यार्थ प्रकाश आदि से प्रमाण देकर अपना सुझाव रूपी भाषण दिया था।

५. सुरेन्द्र मोहन शास्त्री, वृहिकुरावा, रामकिशन हसनपुर ने ओजस्वी भाषण दिये।

६. लाटान खाप मन्त्री, कुन्दन जांगडा मन्त्री, कालखण्दा मन्त्री ने भाषण दिये।

बहुत से लोगों के श्रेष्ठ भाषणों के पश्चात् चौधरी आशाराम प्रधान शोरम ने भाषण में कहा कि अब सब घटना सामने आ चुकी हैं अब निर्णय दिया जाये।

नोट:—उपरोक्त न्याय की जनता ने भूरि भूरि प्रशंसा की तथा समाज को अन्धमहासागर में डूबने से बचा लिया गया बतलाया है। तथा लड़की छोड़ने की परिपाटी को नष्ट करने का मार्ग दर्शाया गया है। धन्य है ऐसे महानुभावों को जिन्होंने यह निर्णय दिया सभी भाइयों से प्रार्थना है कि ऐसे निन्दनीय कार्य के विरुद्ध भविष्य में ऐसा ही कठोर कदम उठाने के लिये तैयार रहें।

ले०—ना०—सूबेदार—लालसिंह—शोरम

पंडित भगवान स्वरूप जी न्यायभूषण नहीं रहे

दिनाँक १२ दिसम्बर १९७३ को पंडित जी का असामयिक निधन अमावस्या में सुजानगढ़ में हो जाने का समाचार जिसने सुना उसी के हृदय पर गहरा आघात लगा।

आदरणीय न्यायभूषण जी वर्षों आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान के प्रधान एवं मन्त्री रहे, आपने अपने मन्त्रीत्व काल में अनेक सत्याग्रह तथा हैदराबाद सत्याग्रह, सिंध सत्याग्रह के सफल संचालक रहे तथा सभा के अनेकों महत्वपूर्ण सम्मेलन दयानन्द निर्वाण अर्ध शताब्दी आदि अजमेर में आयोजित किये। आप अनेक शैक्षणिक सामाजिक संस्थाओं के प्रधान एवं मन्त्री तथा संचालक रहें जीवन का अधिकांश भाग वैदिक यं[illegible] अजमेर में व्यवस्थापक पद संभाल कर सफल संचालन करके व्यतीत किया।

पंडित जी पाक्षिक आर्य मार्तण्ड के प्राण थे। आपकी लग्न श्रद्धा, त्याग एवं विद्वता के कारण आर्यप्रतिनिधि सभा को अविरल बल मिलता रहा। प्रान्त के आर्य समाज की गतिविध्रियों से आपका चोली दामन जैसा सम्बन्ध रहा था।

पंडित जी जेसी महान् विभूति के निधन के कारण समस्त आर्य जगत् की अपार क्षति हुई है जिसकी पूर्ति होना नितान्त असम्भव है मृतक आत्मा को सद्गति प्रदान करने तथा संतप्त आत्मीय जनों को इस अपार दुःख को सहन करने के लिये सर्वाधार से प्रार्थना है।

—हेतराम आर्य मंत्री आर्य प्रतिनिधि सभा, राजस्थान अलवर

आर्य जगत् में महान् शोक

आर्य समाज के प्रसिद्ध धार्मिक विद्वान् पं० भगवान् देव जी न्यायभूषण पूर्व प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान का स्वर्गवास हो गया। हम समस्त आर्य समाज और आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब की ओर से दिवगत आत्मा को श्रद्धाञ्जलि प्रस्तुत करते हैं। —सम्पादक

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब द्वारा प्रकाशित ओर प्रचारित वैदिक साहित्य

१ बलिदान जयन्ती स्मृति ग्रन्थ—आर्य बलिदानो की गाथा मूल्य ४-५०
२ साम सरोवर-वेदमन्त्रो की व्याख्या —प० चमूपति एम ए ३-००
३ जीवन ज्योति-वेदमन्त्रा की व्याख्या " " ३-००
४ नीहारिकावाद और उपनिषद " " ०-२५
५ Principles of Arya samaj " " १-५०
६ Glimpses of swami Daya Nand " " १-००
७ पजाब तथा हरयाणा का आर्य समाज, प्रि० रामचन्द्र जावेद २-००
८ वैदिक सत्सग पद्धति सन्ध्या हवनमन्त्र अर्थ रहित विधि १-००
९ वेदाविर्भाव —आर्यमर्यादा का विशेषाक ०-६५
१० यजुर्वेद अ० ३२ का स्वाध्याय " " " ०-५०
११ वेद स्वरूप निर्णय —प० मदनमोहन विद्यासागर
१२ व्यवहारभानु —महर्षि स्वामी दयानन्द १-००
१३ स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश— " " ०-४०
१४ Social Reconstruction By Budha & Swami Daya Nand By Pt Ganga Prasad Upadhya M A २-००
१५ Subject Matter of the Vedas By S Bhoomanad १-००
१६ Enchanted Island By Swami Staya Parkashanand १-००
१७ Cow Protection By Swami Daya Nand ०-१५
१८ वेद मे पुनरुक्ति दोष नही है आर्यमर्यादा का विशेषाक २-००
१९ मूर्त्तिपूजा निषेध " " ०-५०
२० धर्मवीर प० लेखराम का जीवन —स्वामी श्रद्धानन्द १-२५
२१ कुलियात आर्य मुसाफिर प्रथम भाग—प० लेखराम की पुस्तको का सग्रह ६-००
२२ " " दूसरा भाग " " ८-००
२३ मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र —कु० सुशीला आर्या एम ए ०-२५
२४ योगीराज कृष्ण " " " ०-१५
२५ गोकरुणा निधि —स्वामी दयानन्द सरस्वती ०-२०
२६ आर्यसमाज के नियम उपनियम ०-१०
२७ आर्य नेताओ के वचनामृत —साईदास भण्डारी ०-१२
२८ कायाकल्प —स्वामी समर्पणानन्द सरस्वती १-५०
२९ वैदिक धर्म की विशेषताय —प० हरिदेव सिद्धान्त भूषण ०-१५
३० स्वतन्त्रानन्द लेखमाला —स्वा० स्वतन्त्रानन्द जी की जीवनी तथा उनके व्याख्यान १-२५
३१ आत्मानन्द लेखमाला—स्वामी आत्मानन्द सरस्वतीकी जीवनी १-२५
३२ आर्यसमाज के सदस्यता फाम —सैकडा १-५०
३३ [illegible] ०-७५
३४ दयानन्द चरित्र —प० देवेन्द्रनाथ १-५०
३५ वैदिक सिद्धान्त —प० चमूपति एम० ए० १-००
३६ मुक्ति के साधन —प० मदनमोहन विद्यासागर १-००
३७ महापुरुषो के सग —श्री सत्यव्रत १-५०
३८ सुखी जीवन —श्री सत्यव्रत २-००
३९ एक मनस्वी जीवन —प० मनसाराम वैदिक तोप १-५०
४० छात्रोपयोगी विचारमाला —जगदेवसिह सिद्धान्ती १-५०
४१ स्त्री शिक्षा —प० लेखराम आर्य मुसाफिर ०-६०
४२ विदेशो म एक साल —स्वामी स्वतन्त्रानन्द २-२५
४३ वेद विमर्श —प० भगवद्दत्त वेदालकार २-००
४४ वेद विमर्श —प० वेदव्रत शास्त्री २-००
४५ आसनो के व्यायाम " " " १-००
४६ महर्षि जीवन गाथा —स्वामी वेदानन्द वेदवागीश २-२५
४७ मास मनुष्य का भोजन नहो—स्वामी ओमानन्द सरस्वती १-००
४८ वीर भूमि हरयाणा " " " ४-००
४९ चोटी क्यो रख —स्वामी ओमानन्द सरस्वता ०-५०
५० हमारा फाजिल्का —श्री योगेन्द्रपाल १-५०
५१ सत्सग स्वाध्याय —स्वामी ओमानन्द सरस्वती ०-५०
५२ जापान यात्रा " " " ०-७५
५३ भोजन " " " ०-७०
५४ ऋषि रहस्य —प० भगवद्दत्त वेदालकार २-००
५५ महर्षि का विष पान—अमर बलिदान—राजेन्द्र जिज्ञासु ०-६५
५६ मेरा धर्म —आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति ७-००
५७ वेद का राष्ट्रिय गीत " " ५-००
५८ ईशोपनिषद्भाष्य —इन्द्र विद्या वाचस्पति २-००
५९ प० गुरुदत्त विद्यार्थी जीवन —डा० रामप्रकाश १-३०
६० वैदिक पथ —प० हरिदेव सिद्धान्त भूषण २-००
६१ वैदिक प्रवचन —प० जगत्कुमार शास्त्री २-२५
६२ ज्ञानदीप —प० हरिदेव सिद्धान्त भूषण २-००
६३ आर्यसमाज का सैद्धान्तिक परिचय—स्व० अनुभवानन्द ०-५५
६४ The Vedas ०-५०
६५ The Philosophy of Vedas —Swami Satya Parkash ०-५०
६६ ईश्वर दर्शन प० जगत्कुमार शास्त्री १-००
६७ श्वेताश्वरोपनिषद " " ४-००
६८ ब्रह्मचर्य प्रदीप " " ४-००
६९ भगवत् प्राप्ति क्या और कैसे स्वा० सत्यानन्द ०-६०
७० आर्य सामाजिक धर्म " " ०-७५
७१ बोध प्रसाद —स्वामी श्रद्धानन्द ०-२५
७२ ऋषि दर्शन —प० चमूपति एम ए ००-२५
७३ ऋषि का चमत्कार " " " ००-१२
७४ वैदिक जीवन दर्शन " " " ००-२०
७५ वैदिक तत्व विचार " " " ००-५०
७६ देव यज्ञ रहस्य " " " ००-३५
७७ स्वतन्त्रानन्द सस्मरणाक १-५०

सब पुस्तको के प्राप्ति स्थान—

१ आयप्रतिनिधि सभा पजाब, गुरुदत्त भवन, जालन्धर (४२५०) टेलीफोन
२ " " " दयानन्द मठ रोहतक (हरयाणा) " (५७४)

काल पात्र के तथ्य सदन के पटल पर रखे जाने की मांग

नई दिल्ली, २४ दिसम्बर। राज्य सभा में आज विपक्ष के सदस्यों ने लाल किले के सामने मैदान मे इस वर्ष १५ अगस्त को भूमिगत किये गये कालपात्र मे रखे गये ऐतिहासिक तथ्यो का सदन के पटल पर रखने की माग की।

इन सदस्यो ने कहा कि अगर कालपात्र मे ऐतिहासिक तथ्यों को तोड़-मरोड कर नही रखा गया है तो इसे प्रकाशित करने में सरकार को सकोच नही करना चाहिए क्योकि ऐसा करना सरकार और राष्ट्र दोनों के हित मे होगा।

काल पात्र मे रखे गए ऐतिहासिक तथ्यो को सदन के पटल पर रखने का प्रश्न सबसे पहले जनसघ के श्री पिताम्बर दास ने उठाया जिसका समर्थन श्री बीरेन घोष (मार्क्स), श्री सुन्दर मणि पटेल (स्वतन्त्र), श्री नवलकिशोर (सगठन काग्रेस) तथा श्री एन० जी० गोरे (समाजवादी), श्री के० सी० पडया (स्वतन्त्र) और श्री श्यामलाल यादव (निर्दलीय) ने किया।

श्री पिताम्बर दास ने कहा कि यह जनता से गोपनीय रखने वाला मामला नही है। उन्होने कहा कि प्राप्त जानकारी के अनुसार कालपात्र मे जो इतिहास रखा गया है उसमे सिर्फ एक परिवार का प्रचार किया गया है और उन लोगो के नाम का उल्लेख तक नही किया गया है जिन का देश के इतिहास मे स्थान है।

मार्क्सवादी सदस्य श्री घोष का कहना था कि कालपात्र को भूमि से निकाल कर उसमे ऐसी ऐतिहासिक सामग्री रखी जाए जिसकी रचना एक ससदीय समिति करे। श्री सुन्दर मणि पटेल और श्री के० सी० पंडया (स्वतन्त्र) ने कहा कि हम लोग जीवित इतिहास के तथ्यों को तोड़-मरोड कर रखने की अनुमति नहीं देंगे।

आय प्रतिनिधि सभा पजाब के लिए जगदेवसिह सिद्धान्ती शास्त्री द्वारा सैनी प्रिंटर्स पहाडी धीरज, देहली में मुद्रित और १५ हनुमान् रोड, नई दिल्ली—१ से प्रकाशित